कुरमी चेतना के सौ वर्ष

(1894-1994)

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में



छत्रपति शिवाजी

कूर्मि शिरोमणी छत्रपति शिवाजी महाराज

डॉ॰ दिलावर सिंह जयसवार

कुरमी चेतना के सौ वर्ष

(1894-1994)

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में



छत्रपति शिवाजी

कूर्मि शिरोमणी छत्रपति शिवाजी महाराज

डॉ॰ दिलावर सिंह जयसवार

प्रस्तुत ग्रन्थ में ऐतिहासिक एवं सामाजिक स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है। चाहे गुजरात के कुलमी क्षत्रिय पाटीदार-पटेल हों, या महाराष्ट्र के कुनबी-मराठा हों, या हिन्दी भाषी क्षेत्र मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार एवं मध्य प्रदेश के कुरमी या झारखंड अंचल के कुरमाली भाषी कुड़मि, उत्कल प्रदेश के कूर्मा, आन्ध्र के रेड्डी, कापू या कर्नाटक के नायडू, वक्कलिगर ये सभी प्राचीन काल से एक ही मूल जाति की, स्थानान्तरण के कारण विभिन्न नामों से जानी-पहचानी जाने वाली कूर्मि (अपभ्रंश, कुरमी) जाति के अभिन्न अंग हैं। इनका अनादिकाल से कृषि-कर्म जीवनोपार्जन का पेशा रहा है। आज भी इस बृहत्त जाति का अधिकांश गांवों में बसा हुआ है और मुख्यतः कृषि-कार्य में लगा हुआ है। कुरमीजन अधिकतर अपनी कर्मठता, कृषि-कार्य निपुणता तथा शराफत के लिए अपने ग्रामीण परिवेश में ही नहीं, प्रदेश स्तर एवं देश स्तर पर भी अपना विशेष और अच्छा स्थान रखते हैं।

नृ-शास्त्र की दृष्टि से इस प्राचीन हिन्दू जाति की जड़ों का वैदिक, पौराणिक तथा प्रागैतिहासिक काल में होना प्रमाणित हो चुका है। इस ग्रंथ में बिस्तार से उपयुक्त कथन की सत्यता स्थापित करने के लिए अकाट्य और सर्वमान्य प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं। इस बृहद् जाति के संगठन तथा उत्कर्ष के लिए अहिन्दी भाषीय क्षेत्रों में अलग-अलग अपनी संस्थाएं स्थापित की गई। अखिल भारतीय प्रारूप देने के लिए हिन्दी भाषी क्षेत्रों के लिए विशेष करके, 100 वर्ष पूर्व, 29 दिसम्बर 1894 को 'कुरमी सदर सभा' की स्थापना लखनऊ शहर में की गई। सभा का नाम बदलते-बदलते, वर्तमान में अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा है। और गत् 100 वर्षों में इसके 37 महाधिवेशन देश के विभिन्न स्थानों पर आयोजित हुए और राष्ट्रीय स्तर तक के अनेक कूर्मि-रत्नों ने इसकी अध्यक्षता की है। महासभा की स्थापना के प्रथम शताब्दी दिवस, 29 दिसम्बर 1994, को इस ग्रंथ को स्मृति-ग्रंथ स्वरूप प्रकाशित किया गया है। कुरमी जाति सम्बन्धी आवंश्यक जानकारी यदि पाठकगण इस ग्रन्थ में पा जाते हैं तो लेखक का लगभग 10 वर्षों का तथ्यान्वेषण उद्यम सफल हो सकेगा।

realpatidar.com

कुरमी चेतना के सौ वर्ष

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में

(1894 - 1994)

डा० दिलावर सिंह जयसवार

एम. एस-सी., डी. फिल. (इलाहाबाद)

गीतांजलि प्रकाशन,

गीतांजलि भवन,

बी-6/57 सफदरजंग एंक्लेव,

नई दिल्ली - 110029 दूरभाष : 604382

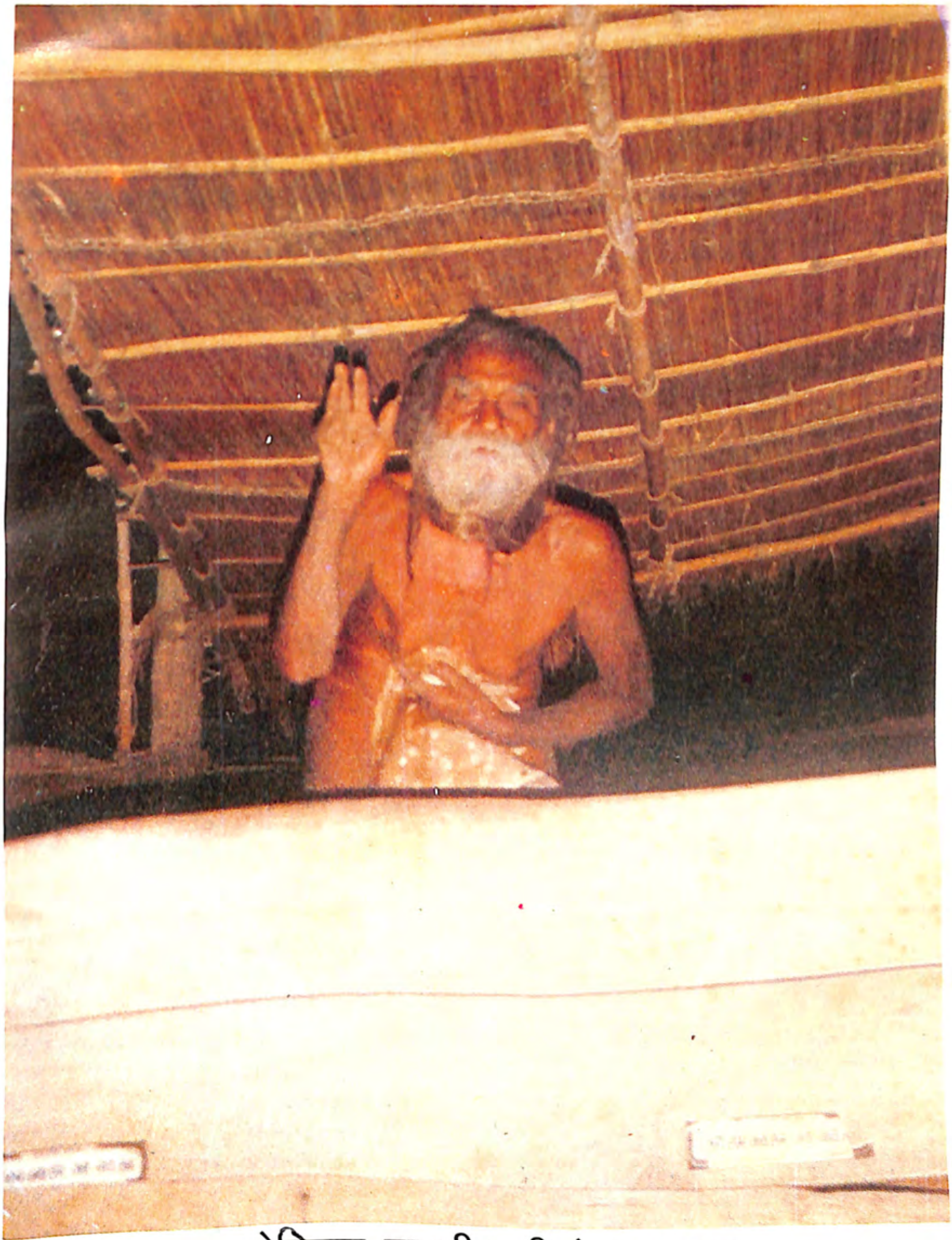
लेखक : डा. दिलावर सिंह जयसवार
एम. एस-सी., डी. फिल. (इलाहाबाद)

प्रथम संस्करण : 29 दिसम्बर 1994 (एक हजार प्रतियां)
(महासभा स्थापना प्रथम शताब्दी दिवस)

प्रकाशक : गीतांजलि प्रकाशन, गीतांजलि भवन,
बी- 6/57 सफदरजंग एंक्लेब,
नई दिल्ली - 110029, दूरभाष : 604382

मुद्रक : सन प्रिन्टस, 2 हुमाँयू पुर, नई दिल्ली-110029

सहयोग राशि : दो सौ रुपये



योगिराज ब्रह्मलीन श्री देवरहा बाबा

realpatidar.com

श्रीहित

समर्पण

प्रातः स्मरणीय, परम पूज्य
श्री श्री योगिराज संत देवरहा बाबाजी महाराज
[ब्रह्मलीन-एकादशी (मंगलवार) 19 जून 1990]

को

सादर
समर्पित

विनीतः डा० दिलावर सिंह जयसवार

realpatidar.com

राजर्षि शाहू छत्रपति महाराज



लोक नायक समाज सुधारक युगपुरूष



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के
तेहरवें अधिवेशन के अध्यक्ष-कोल्हापुर नरेश
हिज हाईनेस कर्नल श्रीमंत शाहू क्षत्रपति महाराज

सप्रेम भेट

भूमिका के बहाने



पद्म श्री डा. श्यामसिंह शशि

आज वर्ण-व्यवस्था समकालीन सामाजिक परिवेश एवं परिवर्तित परिस्थितियों में न केवल अपना अर्थ खो बैठी है; प्रत्युत अप्रासंगिक भी हो गई है। हिन्दू समाज लगभग नौ हजार जातियों-उपजातियों में बंटा हुआ है और राजनीति ने कई प्रकार के वोट बैंक खोले हैं जिनमें सत्ता का शुद्ध व्यापार होता है। मानव-मूल्यों का अधःपतन सीमा पार कर गया है। ईमानदारी, सत्य, चरित्र और समाज-सेवा जैसे शब्द केवल शब्दकोशों की शोभा बनकर रह गए हैं। आज का भारतीय पुनः अपने को किसी समुदाय, जाति, उपजाति कबीले, वर्ण-अवर्ण में ढूढ़ने लगा है।

आज मीडिया ने उच्च जातियों में एक गलतफहमी भर दी है और वह यह कि वे सभी अपने को **"सवर्ण"** समझने लगे हैं तथा शेष पिचासी प्रतिशत हिन्दू समाज **"अवर्ण"** की संज्ञा पाने लगा है। इस देश का दुर्भाग्य यही है कि यहाँ भेड़चाल के कारण सत्यासत्य का निर्णय करना कठिन हो जाता है। **"मनुस्मृति"** में जितने प्रक्षेप हुए हैं उतने हिन्दू समाज के शायद ही किसी अन्य ग्रंथ में हुए होंगे। इस ग्रंथ में एक ओर प्रक्षिप्त अंश है- **"स्त्री शूद्रों न धीयताम"** अर्थात स्त्री और शूद्र को विद्याध्ययन का अधिकार नहीं है जिसके विपक्ष में "मनुस्मृति" के ही दो अन्य श्लोकों को हम यहाँ उदधृत करना चाहेंगे-

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" (मनु० 3-56)
(जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं)
तथा-
"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्राताम
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव चं ।।" (मनु०10-65)

इसी प्रकार एक अन्य प्रसंग में कहा गया है -

"जन्मना जायते शूद्रों संस्कारात द्विज उच्यते ।"

अर्थात प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है तथा संस्कार ही उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य बनाते हैं। यदि कुछ और विस्तार में जाएं तो पता चलेगा कि हिन्दू समाज में शायद एक प्रतिशत भी सवर्ण नहीं मिलेंगे। कैसे ? **"आर्ष ग्रंथों"** के अनुसार यदि 8 वर्ष तक ब्राह्मण, 11 वर्ष तक क्षत्रिय तथा 12 वर्ष तक वैश्य बालक का यज्ञोपवीत नहीं होता तो वह शूद्र वर्ण में माना जाता है। अब आप स्वयं अनुमान लगाएं कि हिन्दू समाज में कितने लोग सवर्ण होंगें, जो समय पर यज्ञोपवीत धारण करते हैं।

यह तो रही कर्मकांड़ की बात। अब धर्म की बात में मनु ने इस श्लोक में धर्म के दस लक्षण बताए हैं-

"धृतिक्षमा दमोऽसत्येय शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विधा सत्यम क्रोधो दशकं धर्म लक्षणम ।" (मनु० 6-92)

इन लक्षणों के अनुसार जो व्यक्ति आचरण नहीं करता वह शूद्र है। काश धर्म के ठेकेदारों ने धर्म के इस स्वरूप को भी पढ़ लिया होता तो स्वार्थी पंड़ितों के घड़े अमानवीय श्लोकों के कारण **दलितों-पिछड़ों को अढ़ाई हजार वर्ष तक सामाजिक न्याय के लिए लड़ाई लड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।**

हम आज भी देख रहे हैं कि किस प्रकार से प्रशासन में फाइलों पर नोट अपने स्वार्थ के लिए तोड़-मरोड़ कर लिखे जाते हैं। किस प्रकार सरकारों में **स्वार्थों की बन्दर-बांट होती है**। हम यह नहीं मान सकते कि यह बंदर-बांट हजारों वर्ष पहले नहीं हुई होगी। आखिर मानव-स्वभाव तो लगभग एक जैसा ही है। प्रत्येक व्यक्ति **"स्व"** को देखता है, **"पर"** अथवा **समाज-हित** की बाद तो बाद की है। यही कारण था **समर्थ वर्गों** के हाथों असहाय वर्ग प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से लुटता रहा। पुरोहित वर्ग ने हजारों मंदिर बनवाकर उनमें अपनी पीढ़ियों के लिए आरक्षण कर डाला और इस प्रकार के नियम बनवाएं ताकि वह दलित वर्ग अपने भगवान के दर्शन करने को भी तरस जाए जिसने पाषाण को मूर्त-रूप देने में अपना **श्रम-स्वेद** बहाया था।

गौर तलब है **ब्राह्मणवादी व्यवस्था** ने आज भी दलितों, पिछड़ों का पीछा नहीं छोड़ा। आज पिछड़े - दलित - आदिवासी आपस में गले मिल रहे हैं तथा एक जुट होकर सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ रहे हैं किन्तु उनमें भी **नव-ब्राह्मणवाद** का अहं स्वार्थ के दायरों में अपना **कद बढ़ाता दिखाई पड़ने लगा है**। कहीं ऐसा न हो कि इन वर्गों की कुछ जातियां पुनः ब्राह्मणवादी व्यवस्था की शिकार हो जाएं और **"बहिष्कृत भारत"** का कोई **"मूक नायक"** अपना अँगूठा कटवा बैठे और **एकलव्य की बनवासी पीढ़ियाँ कभी न उतरने वाला कर्ज़ ढोती रहें**!

कुर्मी समाज के विद्वान लेखक, **डा० दिलावर सिंह जयसवार,** की पुस्तक **"कुर्मी चेतना के सौ वर्ष"** की भूमिका के बहाने यह लेखनी **वर्ण-व्यवस्था** की प्रासंगिकता पर प्रहार करने लगी। **डा० जयसवार के चिंतन में निश्चय ही एक ऐतिहासिक दृष्टि है, एक समाज-शास्त्रीय सोच है तथा विषय की पूरी पकड़ है। उन्होंने इस कृति के प्रणयन में वेद, उपनिषद, दर्शन, पुराण, स्मृति ग्रंथ आदि भारतीय मनीषा का प्रश्रय लिया है। उन्होंने कूर्मि क्षत्रिय समाज का सर्वांगीण अध्ययन करने का प्रयत्न किया है।**

हम यह तो नहीं कह सकते कि सभी विद्वान उनके प्रमाणों को पूर्णतः स्वीकार करेंगे अथवा इस पुस्तक को स्थापित इतिहासकारों-लेखकों की भांति साहित्य-जगत में स्थान मिलेगा, किन्तु यह तय है कि इस पुस्तक के वर्णित विषय की उपयोगिता **उत्तरोत्तर बढ़ेगी। कुर्मी समाज को चाहे कूर्म पुराण से या कूर्म ऋषि से जोड़े या कुरू वंश से, इससे मिथकीय इतिहास तो समृद्ध होता ही है। शोधार्थी यदि इस समाज की शैक्षणिक तथा आर्थिक स्थिति का समाज-शास्त्रीय अथवा नृ-वैज्ञानिक अध्ययन करेंगे तो अधिक उपयोगी होगा। सुधी लेखक को इस सार्थक श्रम के लिए हार्दिक साधुवाद देना चाहूंगा।**

एक स्पष्टीकरण हिंदी जगत के अलमबरदारों के लिए, और वह यह कि इस पुस्तक की भाषा तथा कथन-शैली सीधी-सादी है, अतः साहित्यिक कृति की भांति नहीं बल्कि ज्ञानात्मक सामग्री की भाँति इसका आस्वादन करें। **आशा है, लेखक भविष्य में और अधिक शोधपूर्ण रचनाओं से न केवल कुर्मी समाज बल्कि उसी की भांति अन्य पिछड़े क्षत्रिय समाजों पर भी अपनी लेखनी अनवरत ढंग से प्रवाहित करता रहेगा।**

नई दिल्ली
16 दिसम्बर 1994

डा० श्याम सिंह शशि

भूमिका लेखकः एक संक्षिप्त परिचय

डा० श्याम सिंह शशि साहित्यकार, नृ-वैज्ञानिक, कवि, प्रबुद्ध पत्रकार, विश्वकोशकार, हिन्दी तथा अंग्रेजी में समान रूप से लिखने वाले मूर्धन्य लेखक के साथ-साथ ओजस्वी वक्ता, लोकप्रिय शिक्षाविद एवं कुशल प्रशासक रहे हैं। उन्हें गणतंत्र दिवस, 1990 के अवसर पर हिन्दी तथा अंग्रेजी में उनके उत्कृष्ट साहित्यिक अवदान के लिए "पद्मश्री" के उच्च राष्ट्रीय सम्मान से अलंकृत किया गया था। राष्ट्रपति भवन से जारी विज्ञप्ति के अनुसार "डा० श्याम सिंह शशि एक प्रतिष्ठित कवि, साहित्यकार, तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मानव शास्त्री हैं। डा० शशि को विभिन्न संस्थानों, राज्य सरकारों तथा अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।"

डा० शशि के साहित्य पर मैथिलीशरण गुप्त तथा सुमित्रानन्दन पंत से लेकर रामधारी सिंह 'दिनकर', पं. सोहनलाल द्विवेदी, भवानी प्रसाद मिश्र तथा वियोगी हरि आदि तक की प्रशस्तियां हैं । अन्य भाषाओं के साहित्यकारों में डा. मुल्कराज आनन्द, डा. उमाशंकर जोशी, त. शिवशंकर पिल्ले, जी. शंकर कुरुप, डा० दशरथि, अमृता प्रीतम तथा सी. नारायण रेड्डी आदि ने उनके सृजन को सम्मान दिया है ।

डा० शशि ने मनुकथा पर आधारित प्रबंध काव्य **"अग्नि सागर"** का सृजन कर काव्य-जगत में नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं तथा रोमा एवं हिमालय के यायावरों पर विपुल साहित्य लिखकर यायावर-साहित्य की श्रीवृद्धि की है । भारत के लगभग सभी आदिवासी क्षेत्रों में शोधयात्राओं के बाद रूस, यूरोप तथा अमेरिका के चालीस देशों की लेखकीय यात्राओं ने उनके लेखन को नए आयाम दिये हैं । डा० शशि आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के कार्यक्रमों में भी यदा-कदा भाग लेते रहते हैं । उन्होंने मैक्सिको के सूर्य मंदिरों तथा देश-विदेश में प्रचलित सूर्योपासना पर भी शोध कार्य किया है । स्वयं उनके साहित्य पर आगरा विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालग, बंगलौर विश्व०, मेरठ विश्व०, गढ़वाल विश्व०, मुजफ्फरपुर विश्व०, केरल विश्व०, रांची विश्व०, उस्मानिया विश्व०, आदि विश्वविद्यालयों से शोध कार्य हुआ है । तथा विश्व के रोमा जिप्सियों पर विदेश से नृ-विज्ञान में वे प्रथम डी० लिट० हैं ।

आठवीं कक्षा से एम० ए० तक अपनी कक्षाओं में प्रथम रहे । देश-विदेश के संदर्भ ग्रंथों "हूज हू ऑफ इंटेल्क्चूअस" आदि में उनका जीवन-परिचय सम्मिलित किया गया है । हिंदी अकादमी दिल्ली ने 1991 में उनके साहित्य पर विशिष्ट पुरस्कार के साथ 21,000/- रु० की राशि भी प्रदान की थी जिसे डा० शशि ने हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए दान में दे दिया । वे अपनी रायल्टी का कुछ अंश भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त आदिवासी तथा शहीद सैनिक परिवारों के कल्याणार्थ भी देते रहे हैं । उनके लेखन पर भारत सरकार के अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश और बिहार सरकार एवं अनके सरकारी-स्वैच्छिक संस्थानों ने उन्हें पुरस्कृत/सम्मानित किया है । वे हिन्दी के प्रथम लेखक हैं जिन्हें यह सम्मान अंग्रेजी में उत्कृष्ट लेखक के लिए भी मिला है । वे देश के प्रथम नृ-वैज्ञानिक हैं जिन्हें उनके सृजनात्मक साहित्य के लिये यह सम्मान मिला है । साथ ही डा० शशि भारत सरकार की केन्द्रीय सूचना सेवा के प्रथम वरिष्ठ अधिकारी, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रथम निदेशक तथा भारत सरकार के प्रथम वरिष्ठ अधिकारी रहे हैं जिन्हें हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी लेखन में भी सेवाकाल के दौरान **"पद्म श्री"** से विभूषित किया गया है ।

डा० शशि ने 1991 में हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के लिये तीन बार सरकारी नौकरी से इस्तीफा देकर यह सिद्ध कर दिया कि लेखक स्वाभिमान के साथ **"मनसा-वाचा-कर्मणा"** जीवन जीता है । डा० शशि की विजय हुई किन्तु उन्होंने संस्कृति और बड़े कार्यों के लिए स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति का निर्णय लिया और शेष जीवन साहित्य, शोध, शिक्षण के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं के लिए व्यतीत करने का व्रत लिया । दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति तथा भाषा संस्थान रिसर्च फाउण्डेशन के अध्यक्ष के रूप में भी उनको उत्तरोत्तर ख्याति मिलती जा रही है ।

भारत सरकार ने उन्हें सेवानिवृत्त नहीं होने दिया बल्कि उनकी पदोन्नति कर उन्हें महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय में बनाया । इसी पद से तीसरी बार स्वतः वे त्यागपत्र देकर सेवा निवृत्त हो गए । वे अंतर्राष्ट्रीय बाल अकादमी के अध्यक्ष भी हैं । डा० शशि ने डेढ़ सौ पुस्तकें लिखी हैं जिनमें सोलह कविता संग्रह, एक महाकाव्य, दो दर्जन पुस्तकें यायावर तथा आदिवासी साहित्य, बाल साहित्य में बीस पुस्तकें तथा छियत्तर पुस्तकें अंग्रेजी में हैं । उनकी लेखनी अभिनय तथा अछूतें विषयों पर शोध और भ्रमण के साथ चलती है । डा० शशि के कवित्व में यथार्थ-वर्णन को इन पंक्तियों में देखिये

वे वो अक्षर लिखते हैं,
तो उम्र भर गाते हैं,
हम पोथियां लिखते हैं,
एक उम्र वे जाते हैं ।।

- वेदवाणी -

तुवि कूर्मि :

स स्तोभ्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुवि कूर्मिः ।
एकश्चित् सन्नाभि भूति : ।।

- ऋग्वेद 8/16/8

भावार्थ :- महान् कूर्मि (देवराज इन्द्र) स्तुति-सत्कार के सर्वथा योग्य होता है ।, वह सत्य स्वरूप और महा बलशाली है । वह अकेला भी विघ्न-बाधाओं और शत्रु-समूहों से कभी पराजित नहीं होता, सदा विजयी होता है ।

सामाजिक व्यवस्था :

"समानी प्रपा सहं वोन्न भागः समाने योक्ते सहवो युनज्मि ।
सम्यं चोइग्निं समर्यतारा नाभि मिवाभितः ।।

(अथर्व0 सोमनस्य सूक्त)

भावार्थ : तुम्हारा पानी पीने का स्थान एक हो, तुम्हारा सबका परस्पर में एक साथ भोजन हो, इसलिये मैं तुम्हें एक ही बन्धन में बांध रहा हूँ । और भलीभाँति ज्ञानरूपी अग्नि की उपासना करो, एकत्र होकर, नाभि (केन्द्र) के चारों ओर अरों के समान ।।

"संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्,
देवा भांगमूयथा पूर्वे संजानाना उपासते ।

-ऋग्वेद 1011912

(भावार्थ) : "एक साथ मिलकर चलो, एक जगह मिलकर बातें करो, एक साथ मिलकर अपने मन के भावों कों जानो । जिस प्रकार पहले के विद्वान अपने कर्तव्य कर्मो को मिलकर करते थे, उसी प्रकार तुम भी करो ।"

"दो शब्द"

किसी भी देश, राष्ट्र, समाज व जाति के इतिहास में सौ वर्ष का समय कम नहीं होता, इतने समय में परिस्थितियों में मामूली परिवर्तन नहीं होते, प्रायः उनकी कायापलट तक हो जाती है । आधुनिक भारत का इतिहास इसका जीवन्त उदाहरण है । सन् 1857 में हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई की पहली चिनगारी फूटी और सौ वर्ष भी पूरे नहीं हुए, 90 वर्ष में ही हम अंग्रेजी शासन से मुक्त हो गए । सन् 1885 में कांग्रेस पार्टी का जन्म हुआ और 72 साल के संघर्ष में उसने भारत की सीमा से अंग्रेजों को बाहर कर दिया ।

कांग्रेस के जन्म से महज 9 साल बाद सन् 1894 में हमारी **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** का भी प्रादुर्भाव हुआ, जिसके आज एक सौ वर्ष पूरे होने को आए । यदि 25 वर्ष की ही एक पीढ़ी मानें, तो इस दौरान चार पीढ़ियां पूरी हो गई हैं । हमारी महासभा के शताब्दी समारोह के कुछ समय बाद 21 वीं सदी में सारी दुनिया कदम रखेगी । अतः अपनी महासभा की शतवार्षिकी पर एक बार हमें अपनी प्रगति का लेखा-जोखा कर ही लेना है । जिससे हमें आगे की कार्य-दिशा निर्धारण में सुविधा हो ।

पर ऐसा लेखा-जोखा सबके वश की बात नहीं । इसलिये अनुभव के साथ-साथ, तटस्थता और निष्पक्ष दृष्टि भी आवश्यक है । **राजतरंगिनी** के रचनाकार **कल्हण** ने इसीलिए इतिहासकार को न्यायाधीश की संज्ञा से विभूषित किया है । आप महासभा की कार्यकारिणी से घनिष्ट रूप से जुड़े रहे हैं- अनेक वर्षों तक वरिष्ठ उपाध्यक्ष भी रहे - इसलिये आपको तरह-तरह के अनुभव तो प्राप्त हैं ही, जागरूक चिन्तक होने के नाते आप सामाजिक गतिविधियों का लेखा-जोखा उपस्थित करने के अधिकारी भी हैं । एक इतिहास लेखक की तटस्थ दृष्टि तो आपकी रही ही है, जिसका परिचय आपने **'कुरमी जाति अतीत से आज तक, एक विहंगम दृष्टि,'** **'तुवि कूर्मिः इन्द्र'** तथा **'प्रागैतिहासिक काल में कुर्मी जाति'** जैसी छोटी-छोटी पुस्तकों के लेखक के रूप में दिया है । महासभा के अधिवेशन से भी तथा जातीय पत्रिका **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'** के माध्यम से भी सामाजिक कार्यों के लिये आप यथेष्ट समय निकाल लेते हैं, यह आपकी सामाजिकता का प्रमाण है । **"कुरमी चेतना के सौ वर्ष (1894-1994) - राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में"** प्रकाशन की आपकी योजना की, महासभा के इस शताब्दी वर्ष में, मैं भूरि-भूरि सराहना करता हूँ, जिससे समाज को अपने विगत कार्यकलापों की एक सही जानकारी सुलभ हो सकेगी ।

कुरमी समाज के विगत एवं वर्तमान स्वरूप को लेकर आये दिन-सामाजिक स्तर से लेकर राजनीतिक स्तर पर भी, विवाद होते रहते हैं । **"वादे वादे जायते तत्वबोधः"** की दृष्टि से यदि कुछ ठोस निष्कर्ष निकले, तब तो ठीक, अन्यथा केवल बहस के लिये बहस करना, बाल की खाल खींचने-जैसा होगा, जिससे अब तो बचना चाहिए। आशा है, आपकी यह पुस्तक इस दिशा में मार्गदर्शक बनेगी - इसी शुभ कामना के साथ आपके इस सत्प्रयास के लिये सौ-सौ बधाइयां ।

पटना

दिनांक : 19 मार्च 1994

राम बृक्षावन सिंह
पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष,
बी० एन० कालेज, पटना विश्वविद्यालय
निवास : बाकरगंज, बजाजा,
पटना - 4 (बिहार)

पूर्व साहित्य की समीक्षा

डा0 मंगुभाई रामदास पटेल
एम0 ए0, पी-एच0 डी0
रीडर, इतिहास विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय,
अहमदाबाद - 380009, गुजरात

निवास : 6 अरुणोदय पार्क,
सेंट जैवियर नुक्कड़ के निकट
नवरंगपुरा, अहमदाबाद- 380009
(Dr. M. R. Patel)
Executive Council Member
Department of Social Sciences
Gujrat University, Ahmedabad -380009
10 दिसम्बर, 1993

"कुर्मी जाति अतीत से आज तक
एक विहंगम दृष्टि"
लेखक डा0 दिलावर सिंह जयसवार
एम0 एस-सी0, डी0 फिल0 (इलाहाबाद)

आदरणीय डा0 दिलावर सिंह जी और परिवार

सादर प्रणाम् !

आपकी तरफ से भेजी गई उपर्युक्त पुस्तक एवं पुष्पमाला का प्रथम तथा द्वितीय अंक प्राप्त हुआ । लम्बे समय से इनका प्रत्युत्तर नहीं भेज सका इसका खेद है । **'कुर्मी जाति-अतीत से आज तक'** पुस्तक दो बार ध्यान से पढ़ी साथ में पुष्पमाला के दोनों अंक भी पढ़े हैं । प्रथम पुष्प में **'तुवि कूर्मिः इन्द्र'** तथा **'सरदार बल्लभ भाई पटेल'** - लेख बहुत पसन्द आए । आपके भारतीय शास्त्रों के गहन अध्ययन की छाप उनमें स्पष्ट दिखाई देती है । कूर्म-वंश तथा कूर्म ऋषि की जड़ें अतीत में कितनी गहरी गई हुई हैं, इस सम्बन्ध में आपके शोधपूर्ण लेख खूब पसन्द आये । इनमें आपने पौराणिक आधारों एवं इतिहासकारों के उद्धरणों द्वारा विषय की सत्यता साबित की है ।

भारतरत्न लौहपुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल के लेख में **राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त** एवं **कवि हरिवंशराय 'बच्चन'** के पद्यों ने जो **'सरदार'** का शब्द चित्र खड़ा किया है - उसे उचित स्थान पर यथायोग्य उल्लिखित करने में आप सचमुच सफल हुए हैं... धन्यवाद ! स्वध्वज गीत एवं पटेल-स्मृति गीत भी सुंदर हैं ।

पुष्पमाला के दूसरे अंक में **"प्रागैतिहासिक काल में कुर्मी जाति"** का आपका लेख बहुत प्रशंसनीय है। इतना ही नहीं बल्कि कहना चाहिये - सम्पूर्ण रूप से संशोधित लेख है । **'कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास'** में भी मैंने प्रागैतिहासिक काल के प्रमाण नहीं दिये हैं । आपने इतने अतीत का भी संशोधन कार्य करके कुर्मी जाति के इतिहास में चार चांद लगा दिये ।

आपने इस लेख में पूर्व एवं पाश्चात्य विद्वानों के ऐतिहासिक प्रमाण देकर लेख पर सत्यता की मोहर लगा

दी है । आपने अपनी कृति **'कुरमी जाति-अतीत से आज तक एक विहंगम दृष्टि'** (पृष्ठ 112) को **'पटेल सार्वजनिक पुस्तकालय'** को समर्पित किया है । ऐसी आपकी शुभकामना वाली भावना पर कूर्मी जाति को गर्व का अनुभव होता है आपकी यह कृति **प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक के कुर्मी इतिहास** की झांकी प्रस्तुत करती है । **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के संरक्षक महोदय श्री धनीराम जी वर्मा** के आशीर्वाद के साथ यह पुस्तक प्रकाशित हुई है । यह भी प्रशंसनीय है । वेदोत्तर काल में समाज व्यवस्था कैसी थी । वर्ण व्यवस्था में कुर्मी जाति का क्या स्थान था, सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी एवं उसी प्रकार कूर्मवंश का भी सुन्दर चित्रण आपकी इस पुस्तक में है । कूर्म-कुर्मी शब्दों का विवेचन भी प्रमाणों के साथ दिया है । ब्राह्मण क्षत्रिय के परस्पर संघर्ष का भी उल्लेख है । जन्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था की टीका सुप्रसिद्ध कई विचारकों ने की है । जिसका उल्लेख आज की स्थिति के संदर्भ में जरूरी है, उसका भी आपने अच्छा उल्लेख किया है ।

आज कुर्मी वंश की स्थिति क्या है और कैसी होनी चाहिये? उस हेतु 1896 से 1947 तक के शासकीय प्रमाणों सहित विवेचन करके आपने कुर्मी जाति की श्रेष्ठता को सिद्ध किया है ।

कुर्मी जाति में जाति-उपजाति की सुन्दर, विस्तृत जानकारी के साथ-साथ कौन से उपनामों (आस्पद), (टाइटल) के नाम के साथ वे भारत के विभिन्न स्थानों में रहते हुए प्रसिद्ध हैं, इसका भी आपने वर्णन अपनी कृति में किया है । साथ ही पाटीदारों पर लिखे गए ग्रन्थों के साथ मेरी कृति का भी आपने उल्लेख किया है। अंतिम भाग में 1870 से प्रारंभ हुई कुर्मी जाति की जागृति का उल्लेख करते हुऐ जन-जागरण का संठनात्मक उत्थान का भी वर्णन किया है । भारत की सेना में एक कुर्मी रेजिमेंट विषयक मांग के वाइसराय के साथ पत्रों के आदान-प्रदान का भी आपने उल्लेख किया है ।

पुस्तक में पार्लियामेंट के स्वजाति के सदस्यों की नामावली तथा स्वजाति के पुस्तकालयों एवं संस्थानों और उनके संचालकों प्रकाशकों का उल्लेख भी सर्वजाति हित उपयोगी सिद्ध होंगे ।

डा0 दिलावर सिंह जी जयसवार की कुर्मी समाज के लिये सक्रिय लगन एवं स्वजाति परिवार का इतिहास दोनों अपने कुर्मी जाति के लिये गौरव का विषय है । उनकी ये तीनों पुस्तकें कुर्मी समाज के लिये महान देन हैं । सभी के लिये ये पुस्तकें खरीदना और पढ़ना नितांत उपयोगी सिद्ध होगा । ऐसी सुन्दर एवं उपयोगी पुस्तकें समाज को देने के लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद ।

लम्बे समय तक आपके शोधन कार्य प्रकट होते रहें और इस प्रकार समाज को आपकी अमूल्य सेवा मिलती रहे, ऐसी ईश्वर से शुभ कामना,

आपका

मंगुभाई रा0 पटेल
(सिंडिकेट-सिनेट-सदस्य)
रीडर, इतिहास विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय,
अहमदाबाद - 380009

प्राक्कथन

अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा की कार्यकारिणी समिति में सर्वप्रथम 10 अगस्त् 1980 को दिल्ली में, श्री धनीराम वर्मा जी की अध्यक्षता में हुई बैठक में, **'कूर्मि क्षत्रिय जाति एवं महासभा के इतिहास'** को, **डा० दिलावर सिंह जयसवार** द्वारा लिखे जाने का सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया था। सारे देश में बसे स्वजातीयों की आवश्यक जानकारी प्राप्त करना सुलभ कराने के लिये महासभा की कार्यसमिति द्वारा डा० दिलावर सिंह जयसवार के संयोजकत्व में एक आठ-सदस्यीय समिति गठित की गई। डा० जयसवार के नाम से इस सम्बन्ध में मासिक **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' में अक्टूबर 1980 से जून 1981 तक** विज्ञापन भी प्रकाशित किये जाते रहे। विद्वान पाठकगण जानते हैं कि उपर्युक्त प्रस्ताव के पालन में ही कई वर्षों के शोध एवं गूढ़-अध्ययन के पश्चात डा० दिलावर सिंह जयसवार द्वारा निम्नलिखित तीन ऐतिहासिक कृतियाँ प्रकाशित की जा चुकी हैं :-

1. **तुवि कूर्मिः इन्द्र,**
2. **प्रागैतिहासिक काल में कूर्मि जाति,**
3. **कुरमी जाति, अतीत से आज तक, एक विहंगम दृष्टि ।**

माननीय **डा० जी० एल० कनौजिया,** एफ० आर० सी० यस० (लंदन), सदस्य लोकसभा, खीरी (उ० प्र०) के द्वारा उपयुक्त तीनों कृतियों का, **आन्ध्र प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय संघ** के आमंत्रण पर, 13 जून 1993 को **'लिटिल एन्जिल्स स्कूल'**, चारमहल, हैदराबाद में **अ० भा० कू० क्ष० महासभा** की कार्यसमिति की बैठक तथा आयोजित **छत्रपति शिवाजी समारोह** के पुण्य अवसर पर लोकार्पण किया गया। उपर्युक्त प्रथम व द्वितीय कृतियों को कुछ अधिक विस्तार के साथ इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है।

तदोपरान्त अ० भा० कू० क्ष० महासभा के महासचिव, श्री जे० पी० कनौजिया जी द्वारा मासिक **"कूर्मि क्षत्रिय जागरण"** अगस्त् 1993, अंक के पृष्ठ 32 पर निम्नलिखित समाचार प्रकाशित किया गया :-

"आवश्यक सूचना"

अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के अनुरोध पर **डा० दिलावरसिंह जयसवार,** अध्यक्ष **कूर्मि क्षत्रिय समाज,** दिल्ली निवासी बी-6/57 सफदरजंग एन्क्लेब, नई दिल्ली 110029, महासभा के शताब्दी वर्ष पर **"अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा शताब्दी स्मृति ग्रन्थ"** लेखन का कार्य कर रहे हैं। आप सभी बन्धुओं से अनुरोध है कि महासभा के अब तक हुए 37 अधिवेशनों से सम्बंधित उपलब्ध महत्वपूर्ण जानकारी, प्रकाशित अध्यक्षीय अभिभाषण, पत्रिकाएं आदि डा0 जयसवार के पास, उक्त पते पर, भेजने का कष्ट करें। भेजी गई सामग्री लेखन कार्य के पूर्ण होने पर उन्हें सधन्यवाद लौटा दी जायेगी।

जे० पी० कनौजिया
महासचिव, अ० भा० कू० क्ष० महासभा

जातीय अतीत के इतिहास की गहराइयों में उतरना मेरे जैसे इस लेखक के लिए, जिसका विद्यार्थी जीवन में इतिहास के स्थान पर महज रसायन शास्त्र से, डी० फिल० (डाक्ट्रेट डिग्री) प्राप्त करने हेतु इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शोध-कार्य करने तक ही रहा हो और तदोपरान्त जिसने अपने व्यावसायिक जीवन के 33 वर्ष तक दिल्ली की

एक रसायन कम्पनी में मुख्य रसायनज्ञ के पद पर रह कर अग्नि-शमन रसायनों का उत्पादन करवाया हो, कोई सरल कार्य नहीं है। फिर भी सुधी पाठकों की तथा अनेक स्वजातीय विभूतियों की अविरल प्रेरणा तथा प्रोत्साहन से ही मैंने अतीत के इतिहास की गहराइयों में उतरने की भरसक चेष्टा की है और इस प्रयास में जो कुछ भी मेरे हाथ लग पाया है, उसमें से मैने उपादेय सामग्री चुनकर यथायोग्य संदर्भ में इस पुस्तक में देने का प्रयास किया है।

इस पुस्तक में न केवल सौ वर्षों के अन्तराल में आयोजित महासभा के गत 37 अधिवेशनों का महत्वपूर्ण विवरण है अपितु इस अवधि के राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सरसरा ऐतिहासिक सर्वेक्षण और विवेचन भी करने का प्रयत्न किया गया है। इस पुस्तक में, जो भी महासभा की गतिविधियों की स्पष्ट शब्दों में विवेचना की गई है, विशेष करके त्रुटियों पर विचार करते समय जो भी मत व्यक्त किये गये हैं वे मेरे अपने विचार समझे जायें, आवश्यक नहीं है कि महासभा की उन सबसे सहमति हो।

यह लेखन और प्रकाशन महासभा की प्रथम शताब्दी जयन्ती के पावन अवसर पर एक विशेष उद्देश्य से किया जा रहा है। जिससे हम सब देश के चारों कोनों में बसे कुरमीजन, जो विभिन्न उपजातीय नामों से जाने जाते हैं, अपने श्रद्धा-सुमन उन कर्मठ समाज सेवियों को अर्पित कर सकें, जिन्होंने जी-जान से लगकर एक शताब्दी पूर्व महासभा की स्थापना की थी। आगे चलकर सर्वश्री चौधरी **रामअधीन सिंह, रायसाहब जनकधारी लाल, श्री विट्ठलभाई पटेल, रायबहादुर सेठ बेचरदास अम्बाईदास लश्करी, रायबहादुर बाबू बहादुर सिंह, बड़ौदा नरेश के भ्राता, श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड़, श्री मिथिलाशरण सिंह, बैरिस्टर बी0 नागप्पा, श्री सी0 बी0 नायडू, श्रीमंत सदाशिवराव पँवार खासे साहिब, चौधरी दीपनारायण सिंह, महाराजा देवास (प्रथम श्रेणी) हिज हाईनस तुकोजीराव पंवार, हिज हाईनेस कर्नल सर साहू क्षत्रपति महाराजा कोल्हापुर, डा0 खूबचन्द्र बघेल, सांसद, श्री शिवराम सिंह, श्री गुप्तनाथसिंह, डा0 पंजाबराव देशमुख** तथा कलकत्ता के **श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह** आदि स्वजातीय महापुरुषों की एक लम्बी श्रृंखला है। जिन्होंने समाज-हित में जातीय-उन्नयन हेतु अनेकानेक महान कार्य किए, बिखरे समाज को संगठित किया, आन्तरिक दुर्बलताओं, कुरीतियों तथा अन्ध-विश्वासों की बुराइयों से समाज को सचेत कराते हुए उनमे से बहुत कुछ से मुक्त करवाया। उन्होंने विचारों और संस्कारों को परिमार्जित करते हुए शैक्षिक, आर्थिक तथा राजनैतिक उत्थान के लिए समय-समय पर समाज का सही दिशा की ओर मार्ग प्रशस्त किया है। महासभा की शताब्दी के अवसर पर हम उन सब कूर्मि रत्नों का श्रद्धा से स्मरण करते हैं और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

आने वाली पीढ़ियों के लिये यह पुस्तक एक दर्पण बन सके, जिसके अनुशीलन एवं अवलोकन द्वारा पिछली पीढ़ियों द्वारा की गई भूलों की पुनरावृत्ति से बचा जा सकें, और नये जमाने की नई रोशनी और नये-नये विचारों से इस प्राचीन कूर्मि जाति की उत्कर्ष-गति इतनी तीव्र हो सके कि महासभा स्थापना की द्वितीय शताब्दी मनाते हुए कूर्मि जाति जब बाइसवीं शताब्दी में प्रवेश करने के लिये चौखट पर दस्तक देवे, **यदि तब तक भी जाति-व्यवस्था हिन्दू समाज में बनी रहती है,** तो वह उन्नत जातियों की प्रथम पंक्ति में अपना स्थायी स्थान बनाये हुये द्रष्टव्य हो। यही भावी पीढ़ियों का लक्ष्य होना चाहिए, विगत सौ वर्षों के पूर्वजों के अनुभव और उनके अपने विचार-विवेक उनका सही मार्ग प्रशस्त करेंगे। सामाजिक समस्याओं का शान्तिपूर्ण स्थायी एवं सुचारु रूप से सुदृढ़ हल ढूंढने के लिये केवल जातीय चिन्तन में न उलझकर व्यक्ति, परिवार, जाति, देश और विश्व-पाँचों स्तरों पर प्रयास किया जाना चाहिए। तभी इस पृथ्वी पर मनुष्य मर्यादित जीवन जी सकेगा और पूर्वजों का **"वसुधैव कुटुम्बकम"** का दिव्य स्वप्न साकार हो सकेगा। **"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया"** अर्थात् सभी लोग सुखी और निरोग रहे ऐसी हमारी प्रार्थना की भावना पूरी हो सकेगी।

यहाँ मैं अत्यन्त विनम्रता से निवेदन करता हूँ कि जहां कहीं भी पाठकों को इस पुस्तक में त्रुटियां या विसंगतियां नजर आयें, कृपया वे मुझे सूचित कर देवें। जिससे अगले संस्करण में उन्हें परिष्कृत किया जा सके।

इस पुस्तक के लेखन में जिन विद्वानों की कृतियों से जानकारी या अंश उद्धृत किये गये हैं उन सभी महानुभावों के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ । मैं महासभा का भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने जातीय इतिहास तथा महासभा के गत 100 वर्षों का लेखा-जोखा तैयार करने का दायित्व मुझको सौंपा । मैं कूर्मि क्षत्रिय समाज, दिल्ली तथा इसकी सभी शाखाओं और उसके अपने सहयोगी सभी पदाधिकारियों का तथा सदस्यगणों का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ कि जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु विक्रय दायित्व का गुरुभार वहन करने का आश्वासन दिया है । मैं अपनी पत्नी, श्रीमती गीता जयसवार का आभार प्रकट करता हूँ जो अनेक अवरोधों और निराशाओं के बावजूद, मुझे इस महत कार्य को, पूरा करने को प्रेरित करती रही हैं ।

फरवरी 1994 में कानपुर की अ० भा० कू० क्ष० महासभा की तदर्थ कार्यकारिणी समिति की बैठक में महामंत्री और एक पूर्व-अध्यक्ष के अकारण विरोध के फलस्वरूप महासभा इस प्रकाशन को स्वयं कराने को तैयार न हुई । लेखक को अपनी कई वर्षों की मेहनत को स्वजातियों तथा अन्य जिज्ञासुओं तक पहुँचाने के लिये इस पुस्तक को स्वयं सम्पूर्ण अपने खर्चे से प्रकाशित करना पड़ रहा है । यह सब आने वाला समय ही बतायेगा । पर प्रसन्नता इस बात की है कि महासभा के संरक्षक श्री धनीराम वर्माजी का तथा अन्य सभी पदाधिकारियों और सदस्यों का प्रोत्साहन इस लेखक को सदैव मिलता रहा है । अन्य प्रादेशिक सभाओं, उनके पदाधिकारियों और आम कुरमी जनता के सदैव प्रोत्साहन भरे पत्र मिलते रहे हैं । मेरी कृतियों और लेखों को उन्होंने सदैव सराहा है और उन्हीं से प्राप्त प्रेरणा से मुझे सृजनात्मक अनुभूति होती रही है और मैं इस बड़े दायित्व को पूरा करने में सफल हो सका हूँ ।

इन्हीं भावनाओं, कृतज्ञताओं और हार्दिक शुभकामनाओं के साथ यह कृति आप विद्वत जनों के समक्ष मैं निम्नलिखित यथार्थ की ओर ध्यान आकर्षित करता हुआ प्रस्तुत करता हूँ :-

युग बीते पर सत्य न बीता,
सब हारे पर सत्य न हारा ।

गीतांजलि, प्रकाशन,
गीतांजलि भवन,
बी-6/57 सफदरजंग एन्कलेव,
नई दिल्ली-1110029
दूरभाष : 604382,
महासभा स्थापना शताब्दी तिथि, 29 दिसम्बर 1994.

विनीत
डा० दिलावर सिंह जयसवार

क्रम

अध्याय - 1

पूर्व गाथा

मानव एवं भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति विश्व में प्राचीनतम है, घातों-प्रतिघातों के बावजूद उसकी गरिमा अक्षुण्य बनी हुई है, उसके प्रतिपादन में आज की सभी समस्याओं के समाधान छिपे हुये हैं, यह बात आज हमें आसानी से समझ में नहीं आती क्योंकि आत्मबोध की विस्मृति की विडम्बना ने हमें ग्रस्त कर रखा है ।

मानव को सृष्टि की विशिष्ट तथा उत्कृष्ट कृति माना गया है । सृष्टा ने समस्त जीवधारियों में मानव को ही सत और चित प्रदान किया है । मन और बुद्धि का निरन्तर विकास मनुष्य को अन्य जीवधारियों की कोटि से अलग करता है । मानव-जिज्ञासा का पुतला है । उसकी जिज्ञासायें उसकी बुद्धि और विवेकानुसार अर्थकारी भी होती है, अनर्थकारी भी, कुछ सर्वथा व्यर्थ की भी । पर यह भी सत्य है कि गत लगभग पाँच हज़ार वर्षों में. जो मनुष्य अपनी प्रारम्भिक पशु-समान स्थिति से आज की तथाकथित उन्नत स्थिति में पहुँचा है, वह इसी जिज्ञासा की पूर्ति के सत्प्रयासों के फलस्वरूप ही सम्भव हो सका है । मनुष्य का जैसे-जैसे मानसिक विकास हुआ, उसकी जिज्ञासा में भी वृद्धि होती गई । यह प्रकिया निरन्तर जारी है और भविष्य में भी यथावत रहने वाली है ।

किसी मानव समूह के पूर्वजों ने, या किसी जाति विशेष के पूर्वजों ने अपनी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये कौन-कौन से प्रयत्न , कैसे-कैसे किये, किन-किन विषम परिस्थितियों से जूझते हुए कोशिशें की, इसे जानने की कुछ न कुछ जिज्ञासा हरेक प्रकृतस्थ तथा कृतज्ञ मनुष्य में होती है, तभी वह सही अर्थों में उनका वंशज या उत्तराधिकारी कहलाने का हकदार बनता है । इस पूर्ति के सतत प्रयत्न-प्रक्रिया के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, या कहा जा रहा है, या कहा जाने वाला है, वही इति-ह-आस (अर्थात् ऐसा-ही-था) अथवा इतिहास है। मोटे तौर पर हित से युक्त भाव को साहित्य कहते हैं । साहित्य जितना मानव हित से सरोकार रखता है, इतिहास उससे कम नहीं रखता ।

इतिहास किसी देश, धर्म, मानव-वर्ग अथवा उसकी किसी जाति विशेष का भी हो सकता है, और ऐसा है भी । लाभ-हानि की दृष्टि से सोचा जाये तो इतिहास के अवलोकन और परिशीलन से ज्ञान-लाभ तो होता ही है साथ ही यह अतीत से सही-सही परिचय स्थापित करने का सहज उपाय भी है ।

साहित्य जब इतिहास को छूता है तो फिर उसे अपने में खूब भिगोकर सींचता है । जबकि इतिहास साहित्य को उठाता है तो उसमें मानव की, उसके समाज के परिवेश की, उसके कालखंड की प्रकृति को खोजता है । साहित्य दृष्टि से स्पष्टतः तात्पर्य हैं 'घटित' । यदि ये दोनों दृष्टियां अपने इस मूलरूप को न छोड़े तो भ्रम पैदा करने वाले कुछ नहीं कर सकते । इतिहास के द्वारा साहित्य नहीं लिखा जा सकता है । किन्तु साहित्यक-दृष्टि के द्वारा इतिहास लिखा जा सकता है ।

भारतवर्ष क्या है ? अनादिकाल से नाना जातियां, नाना भाँति के संस्कार रीति-रिवाज, आदि लेकर इस देश में आती रहीं हैं । इस भारत भूमि पर अनेक मानवीय समूह विद्यमान रहे हैं । और फिर रगड़-झगड़कर ले-देकर नाना जातियों, नाना संस्कारों, नाना धर्मो-मतान्तरों तथा नाना रीति-रिवाजों का जीवन्त समन्वय, यह हमारा प्यारा देश भारत है । इतिहास का उद्देश्य अतीत को जानना, व्याख्यायित करना और समझना है ।

भारतीय संस्कृति, युग अथवा व्यक्ति या मानव समूह विशेष की देन नहीं है, उसका सतत प्रवाह सभ्यता

के आदिकाल से आज तक गतिशील रहा है। और भविष्य में भी रहने वाला है। उसमें जीव, प्रकृति तथा ब्रह्म के चिन्तन सम्बन्धी विचार बिखरे हुए हैं, उसका आधार धर्म है जिसका अर्थ किया गया है "धारण करने योग्य" अथवा "अनुकरणीय"। जो जमाने के अनुकूल हुआ उसे स्वीकार कर लिया गया। इसीलिए भारतीय संस्कृति को शाश्वत तथा अजर-अमर कहा गया है। इस मिश्रित संस्कृति में आर्यों के अलावा अनेक पहले से बसी हुई प्रजातियों का भी योगदान रहा है। ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध है कि आर्यों से पूर्व भी इस देश में लोग आबाद थे, और उनका उस समय की परिस्थितियों को देखते हुये विकसित समाज था ऐसा निःसन्देह कहा जा सकता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर रोमिला थापर के अनुसार ऐतिहासिक अभ्यास के तौर पर "आर्य जाति" के सिद्धान्त का आविष्कार यूरोप ने किया, यह 19 वीं सदी का यूरोपीय आविष्कार है, जिसे मैक्समूलर जैसे लोगों ने इस्तेमाल किया, जिन्होंने वैदिक ग्रंथों में आर्यों और दासों का संदर्भ पढ़कर उसे **'आर्य जाति'** और **'अनार्य जाति'** के रूप में समझा। साम्राज्यवादी इतिहासकार इसका लगातार इस्तेमाल करते रहे। वे इस सिद्धान्त का समर्थन इसलिये करते थे, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार श्रेष्ठ आर्यों के दल ने भारत पर आक्रमण किया और वे भारतीय सभ्यता के संस्थापक बने। अंग्रेजों ने इसे अपने क्रियाकलापों के समानान्तर पाया। रोचक तो यह है कि भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भी इस पर सवाल नहीं उठाया। इसका एक कारण तो यह था कि सन् 1920 से 1930 तक ऐसे सवालों के पीछे कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं था। और दूसरा कारण यह था कि यह सिद्धान्त उनके हितों के भी अनुकूल था। एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि वे मध्य वर्ग की पृष्ठभूमि से आये थे। और वे भी मध्य वर्ग द्वारा खोजी गयी उसकी उच्च जातीय पहचान से जुड़े इसलिये आर्य जाति का इतिहास बहुत सफाई से उच्च जाति के पक्ष में फिट हो गया।

एक राष्ट्रवादी मत है, जिसके अनुसार आर्य यहीं के मूल निवासी थे, यह मानना, उनके अनुकूल नहीं बैठता कि वे उस समूह के वंशज हैं जो यहां विदेशी था। उनका तर्क था कि भारतीय राष्ट्र में विदेशियों का दर्जा नीचे है, इसके लिये विरोध में **समाज सुधारक महात्मा ज्योतिबा फुले** और ब्राह्मण विरोधी आन्दोलनों के विचारकों तथा उन दिनों के दलित चिंतकों का मत था कि आर्य विदेशी थे और उन्होंने यहां के मूल निवासियों को बेदखल किया, जिन्हें आज बतौर निम्न जाति, अस्पृश्य और अनुसूचित जनजाति के नामों से जाना जाता है, तो एक तरह से हर किसी ने इस सिद्धान्त को अपने मकसद से इस्तेमाल किया और अपनी 20 वीं सदी की वैचारिक स्थितियों को उस सबमें फिट करने की कोशिश की, जिसकी वे अतीत में से व्याख्या कर रहे थे।

लगभग सौ वर्ष पूर्व सन् 1893 में शिकागो, अमेरिका में आयोजित विश्व धर्म-संसद के उद्घाटन पर स्वामी विवेकानन्द ने तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कहा था, **"बहनों एवं भाइयों! मुझे इस बात पर गर्व है कि मैं एक ऐसे धर्म से जुड़ा हूँ जो संसार को सहनशीलता तथा विश्वव्यापी स्वीकृति का सबक देता है। उन्होंने आगे कहा था हम विश्वव्यापी सहनशीलता में ही विश्वास नहीं करते, बल्कि सभी धर्मों को सच्चा समझते हैं।"**

मनुष्यों में रंग-भेद उत्पत्ति स्थानों की विभिन्न जलवायु के कारण

मानव-मानव के बीच की असमानता की भावना जिन आधारों पर टिकी है, विदेशी मनीषी **एरिक फ्राम** ने उनका संकेत अपनी बहुचर्चित कृति **'दि सेन सोसाइटी'** में विस्तार से किया है। ऊँच-नीच की खाइयाँ-खड्डे जब तक इंसान-इंसान के बीच हैं, दुनिया में तब तक अशान्ति रहने वाली है। गाय, बाघ, हाथी, ऊँट, मोर, तोता, और कबूतर आदि की तरह मनुष्य केवल एक जाति है। नृजाति विज्ञानी **अर्नेस्ट फिशर** के ग्रन्थ **"सोशल आर्गेनाइजेशन"** में बताया गया है कि ऋतु और परिस्थिति के कारण मनुष्यों के रंग-रूप, आकृति-प्रकृति में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है, पर उससे उसके स्तर में कोई फर्क नहीं पड़ता। मनुष्य भी एक सामाजिक प्राणी है। यह एक असलियत है कि गरम देशों में जन्म लेने वाले काली चमड़ी वाले होते हैं। ठण्डे, अति ठण्डे भू-भाग

में उत्पन्न लोगों की चमड़ी का रंग गोरा होता है । इस प्रकार मध्य एशिया के मंगोल नस्ल के लोग पीले रंग के तिरछी आँखों और चपटी नाक वाले होते हैं । इस विभिन्नता का कारण जेनेटिक्स विज्ञान भी बताता है ।

यह रंग-भेद तथा आकृति का अन्तर केवल उत्पत्ति स्थान की विभिन्नता एवं जलवायु का अन्तर बताता है, किन्तु इस आधार पर उनके स्तर को नीचा-ऊँचा नहीं माना जा सकता । गोरे लोग, काली चमड़ी वालों को, केवल रंग के आधार पर अपने से नीचा समझें, घृणा करें, मानवीय अधिकारों से उन्हें वंचित कर दें, यह अन्याय के सिवा और क्या है? संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अभी भी काले-गोरों में संघर्ष की स्थिति बनी हुई है, और बीच-बीच में दंगे और हाथापाई होती रहती हैं । अमेरिका की न्यूजर्सी स्टेट में भारतीय स्त्रियाँ, जो सुहाग चिह्न के रूप में माथे पर बिन्दी लगाती हैं । उनके विरोध में गौर-वर्ण उपद्रवियों ने जिन्हें डाट-बस्टर्स कहा जाता है कहीं-कहीं पर रंग-भेद से प्रभावित होकर भारतीय स्त्रियों पर भी जान-लेवा हमले किये हैं । भारतवासियों ने अपने देश भारत में तो इस दिशा में गजब ही कर दिया है । जबकि एक परम्परा, एक ही रक्त, एक ही अंश, एक ही रंग के लोग आज ही नहीं कई हजार वर्ष पूर्व से कथित जाँति-पाँति के आधार पर एक दूसरे को नीचा-ऊँचा मानते चले आ रहे हैं ।

आर्यजन आदिकाल में खेतिहर थे

पं0 जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक (**"डिस्कवरी ऑफ इण्डिया"**- हिन्दी अनुवाद पृष्ठ 112 **"हिन्दुस्तान की कहानी"**) में लिखा है "कि-जाति या वर्ग का आरम्भ आर्यों और अनार्यों के भेद से हुआ । अनार्यों में भी भेद थे, एक तो द्रविड़ जातियां थी, दूसरे कदीम (पुरानी) जातियाँ थीं । शुरू में आर्यों में एक वर्ग था और धन्धों का शायद ही बटवारा हुआ हो । 'आर्य' शब्द की व्युत्पत्ति एक ऐसी धातु से हुई है जिसका अर्थ 'धरती का जोतना' है । सभी आर्य खेतिहर थे । खेती एक सम्मानित पेशा समझा जाता था । धरती को जोतने वाले पुरोहित, सिपाही, व्यापारी सभी होते थे और पुरोहितों को कोई विशेष हक हासिल नहीं थे । वर्ण-भेद का अर्थ आर्यों (कृषकों) को अनार्यों (अकृषकों) से जुदा करना था । अब खुद आर्यों में ज्यों-ज्यों धंधे बढ़े और इनका आपस में बटवारा हुआ त्यों-त्यों वर्णों ने जाति की शक्ल ले ली" ।

प्रारम्भ में आर्यों में चार वर्णों का सृजन गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर और व्यवसायों के विभाजन की दृष्टि से किया गया था । उस वर्णाश्रम-व्यवस्था के स्थापकों ने आज की मौजूदा दुर्दशा की कल्पना तक भी न की होगी । जातियों ही नहीं उपजातियों तक में बंटा हुआ हिन्दू समाज बुरी तरह से विलगाव के रोग से ग्रसित होकर हर दृष्टि से दीन-दुर्बल होता चला गया । इसके कारणों पर विस्तार से चर्चा आगे के पृष्ठों में की गई है ।

आर्यों के आगमन से पूर्व देश में अन्य मानव समुदाय आबाद थे

नृजाति वैज्ञानिकों का मत है कि इस देश की सबसे पुरातन प्रजाति की **प्रोटो आस्ट्रोलायड** नाम देकर पहचान बनाई गई । यह भी मान्यता है कि अस्त्र-शस्त्र निर्माण, देवी-देवताओं की पूजा, पान, सुपारी तथा सिन्दूर का प्रयोग, पृथ्वी तथा अन्य विशिष्ट मानव-वर्ग की उत्पत्ति, नाग और बन्दर की मूर्तियां बनाकर पूजा इसी प्रजाति की उपलब्धि है । **'गंगा'** शब्द भी हमें इसी जाति से ज्ञात हुआ है । उत्तरी नेपाल की विभिन्न बोलियां इसी प्रजाति से प्रभावित है । जाति-व्यवस्था का प्रारम्भ करके तथा जाति में विवाह-प्रथा को प्रचलित करके भी इसी भूमध्य-सागरीय प्रजाति ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया है । भारतवर्ष में इस प्रजाति को **'पूर्व द्रविड़'** के नाम से जाना गया है। पूजा-पाठ में गन्ध द्रव्यों का प्रयोग, इष्ट देवी-देवताओं पर प्रसाद चढ़ाया जाना, कीर्तन, मूर्तियों के सम्मुख नृत्य

आदि इसी प्रजाति की ही देन है। कहा जाता है कि निग्रिटो प्रजाति के प्रभाव से सन्तान प्राप्ति की मंगल कामना से बरगद वृक्ष की पूजा प्रचलित हुई।

शिव ऋग्वेद-काल से आज तक भारतीय संस्कृति के स्रोत बने हुऐ हैं। विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के उत्खनन में शिवलिंग प्राप्त हुये हैं उसके आधार पर प्रमाणित होता है कि उस प्राग्वैदिक काल में भी अनार्य लोगों में शिव-पूजा का प्रचलन था। आर्यों ने उन्हें देवाधिपति देव माना।

क्या आर्य भारत के मूल निवासी थे ?

इस प्रश्न से सकारात्मक उत्तर से सहमति रखने वाले इस देश में हिन्दुओं का भी एक बहुत बड़ा समुदाय है। आखिर हमें गौर करना चाहिये कि वे इस बात को किन तर्कों के आधार पर मानते हैं। इन विद्वानों का मत है कि सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में देश की आजादी के लिए दलित पिछड़े मुसलमान और सवर्ण हिन्दू प्रथम बार एक झंडे, एक बादशाह के नीचे बिना मजहब, जाति, ऊँच-नीच जैसी बातें मन में लाये मिल-जुल कर एक साथ, लड़े थे किन्तु असफल रहे, उसके अनेक कारण हैं जिन पर हम अभी विचार नहीं कर रहे हैं। अंग्रेजों की इस कामयाबी से उनके हौसले और बुलंद हो गये। आगे वे सतर्क हो गये और "फिर फूट डालो और राज करो" की नीति अपनायी। हिन्दुओं और मुसलमानों को आपस में लड़वाया। हिन्दू समाज ब्राह्मणवाद की स्वार्थी नीतियों के कारण विभक्त था। दलितों और पिछड़ों का बुरी तरह सैकड़ों शताब्दियों तक शोषण और उत्पीड़न हुआ था। और मध्यकाल में उन्हें मानवी अधिकारों से वंचित भी रखा गया था। उन्हीं ब्राह्मणों ने दैवी कृत्य सिद्ध करने के उद्देश्य से धार्मिक ग्रंथों में अनाप-शनाप बातें लिख मारीं। ऋग्वेद में पुरुष-सूक्त जैसे क्षेपक डालकर एक अपौरुषेय कृति के साथ भी मिलावट करने में वे न चूके। अन्ततोगत्वा इन्होंने हिन्दू समाज को पंगु बना दिया। मेरी समझ में इस देश के लोगों का मुसलमान, ईसाई धर्म या पुनः बौद्धधर्म में इतनी बड़ी संख्या में जाने का मुख्य कारण है इनके स्वार्थपूर्ण कुकर्म। इनका इतना बड़ा चिट्ठा है, जिसकी सफाई देते-देते इस वर्ग और इनकी सन्तति को इसका कुछ न कुछ दंड़ जरूर भुगतना पड़ेगा। तमिलनाडु में ऐसा होना प्रारम्भ हो चुका है। और आदि काल से उत्पीड़ित दलित और पिछड़े वर्ग अब जाग चुके हैं। वे जरूर अपने पूर्वजों के कष्टों का लेखा-जोखा करेंगे और बहुत सी जानकारी पायेंगे और फिर दोषी वर्ग जरूर गल्तियों का फल भोगेंगे। ईश्वर पीड़ित और शोषित लोगों को सत्बुद्धि दे और उनमें क्षमा करने की भावना उत्पन्न करे।

उपर्युक्त जर्जर हिन्दू समाज में विभाजन के लिये अंग्रेजों ने एक चाल चली। विदेशी इतिहासकारों ने आर्य और अनार्य (गैर आर्यों) का मत शुरू किया। अंग्रेज प्रशासकों के इशारे पर विदेशी इतिहासकारों ने यह कुटिल एवं मिथ्या प्रचार शुरू किया कि भारत की तीन सवर्ण जातियां ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आर्य जाति से सम्बंधित है, जबकि देश की आदिवासी अनुसुचित जनजातियाँ एवं मौजदूा अनुसुचित जातियों के पूर्वज भारत के वे निवासी हैं, जिन्हें पश्चिमी एशिया से आये आर्यो ने आक्रमण करके दूर पहाड़ों पर या दूर के घने जंगलों में खदेड़ दिया था और जो कब्जे में आ गये थे उन्हें दास बना लिया था।

ऐसा उन विद्वानों का मत है जिनका उद्देश्य हिन्दू समाज की एकता को भंग करना था। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त के प्रचार का एक उद्देश्य यह भी था कि हिन्दू इस देश के मूल निवासी नहीं हैं। वह भी हजारों वर्षों पूर्व बाहर से मुसलमानों, अंग्रेजों की भांति आये थे। इसलिये उनकी भारत के प्रति निष्ठा और देशभक्ति उनकी बपौती नहीं है। इसी तरह से सुनियोजित ढंग से सवर्ण जातियों के खिलाफ आदिवासियों एवं पिछड़ी जातियों और दलितों को भड़काना शुरू कर दिया गया। सर्वप्रथम आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने यह सिद्ध किया कि आर्य इसी देश के मूल निवासी थे तथा भारत से ही वे ईरान, पश्चिमी एशिया और यूरोप के अनेक देशों में गए। पंजाब के विख्यात इतिहासकार प्रो0 जयचन्द विद्यालंकार ने सन् 1925 में अपनी पुस्तक "वैदिक भारत" में वेद-शास्त्रों से ठोस प्रमाण देकर इस यूरोपीय सिद्धान्त को गलत सिद्ध कर दिया था कि आर्य पश्चिमी

एशिया से भारत में आए थे । उन्होंने यह सिद्ध किया कि आर्य मूल रूप से सप्त-सिन्धु प्रदेश के ही मूल निवासी थे। और वर्तमान पंजाब में ही वेदों के दृष्टा ऋषियों ने वैदिक ऋचाओं की अनुभूति की थी ।

अब हाल में देश के पाँच प्रमुख पुरातत्व शास्त्रियों ने भी इस सिद्धान्त की ही पुष्टि की है । ये हैं मैरीन आर्क्योलॉजी सेन्टर के परामर्शदाता डा० एस० आर० राव, नासा (NASA) के निर्देशक डा0 एम0 एस0 राजाराम। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भाषा विभाग के अध्यक्ष ने कहा कि भारत पर आर्यों के आक्रमण के सिद्धान्त को मैक्समूलर, लासेन और वेबर ने सर्वप्रथम उछाला था । अब ऋग्वेद में उल्लिखित सरस्वती का खोया मार्ग मिल गया है, और पंजाब में रोपड़ से लेकर गुजरात में धालूवीरा तक बसे हड़प्पा संस्कृति के अवशेष मिल गये हैं । हड़प्पा लिपि को संस्कृत परिवार की ही भाषा माना गया है । हाल की खुदाइयों में मिली वस्तुओं का विश्लेषण करने के बाद आचार्य डेल्स, डा० ऐल्विन जैसे विद्वान पुरातत्व शास्त्रियों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि हड़प्पा की सभ्यता उत्तर वैदिक सभ्यता थी । बलानवाली और पीली बंगान के अवशेषों से यह सिद्ध हो गया है कि ये मूल रूप से आर्य ही थे उनके नगर आर्यों के हमलों से नहीं बल्कि बाढ़ आदि प्राकृतिक प्रकोपों से नष्ट हुए । द्रविड़ आर्य सभ्यता का ही अभिन्न अंग थे । समाज में वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्म था जन्म नहीं । हड़प्पा की सभ्यता आज की भारतीय संस्कृति का ही मूल आधार है । इसलिये आर्य और द्रविड़ अलग-अलग नस्लों के नहीं बल्कि एक ही नस्ल के हैं ।

विद्वत पाठक आप इस दृष्टिकोण पर भी विचार करें और जिसे आपका विवेक सही समझे उससे सहमति प्रकट करें । अनुसन्धान और खोज जारी है कुछ नये तथ्य सामने आयेंगे । फिर निष्कर्ष निकाला जायेगा कि उनके आधार पर क्या मत सही है, और क्या गलत है? भारत में भी जलवायु में अन्तर, उत्तर और दक्षिण भारत में स्पष्ट है, जिसके कारण हजारों वर्ष तक विपरीत जलवायु वाले वातावरण में रहने से एक ही नस्ल में रंग-भेद स्वाभाविक है और नृजाति शास्त्रियों के निश्चित मतानुसार है ।

सारी पृथ्वी पर सृष्टि प्रजापति कश्यप अथवा 'कूर्म' से उत्पन्न

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने कश्यप का रूप धारण कर प्रजा की सृष्टि की । जो उन्होंने "किया" अथवा सिरजा वह 'कूर्म' यानी कच्छप कहलाया । कच्छप का दूसरा पर्याय कश्यप है । इसी कारण यह कहा गया है कि **'सारी प्रजा कश्यप से उत्पन्न हुई'** । कश्यप के अदिति से उत्पन्न पुत्र आदित्य अथर्ववेद के अनुसार इन्द्र कहलाये और मनु के पिता विवस्वान् थे, जैसे :-

पूर्वीश्चिद्धित्वे तुवि कूर्मिन्नाशसों हवन्त इन्द्रोतयः।
तिरश्चि वर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुद्धि में हवम्।।

ऋग्वेद, मण्डल 8, सक्त 55, मंत्र 42

भावार्थ:- उपर्युक्त श्लोक मे 'तुवि' शब्द महानता का बोधक है और 'कूर्म' शब्द पृथ्वी के उत्खनक कर्मशील कृषक के लिये प्रयुक्त हुआ है । हे बहुकर्मा इन्द्र राजन् ! शत्रुओं से अपनी रक्षार्थ हम आपका आह्वान करते हैं ।

स्कन्द पुराण के अनुसार मालमालिनी देवी के भक्त कूर्म नामक ऋषि के कुल में प्रथम राजा प्रणनाथ हुए और उनके वंश में दीर्घवाहु राजा हुए तथा उनसे संसार में प्रीति बढ़ाने वाले वीरसेन इत्यादि राजा हुए । इन सबकी "कौर्मि" संज्ञा हुई और इस वंश के कूर्मि अद्यावधि वर्तमान है (पूर्ण विवरण के लिये पीलीभीत निवासी रायबहादुर लाला खूबचन्द ऑनरेरी मजिस्ट्रेट द्वारा पं साधूराम जी कृत "कौर्मि वंशावली" इस पुस्तक के परिशिष्ट -3 पर देखें ।) कूर्मि ऋषि महाराज गृत्समद के पुत्र और ऋषि पद प्राप्त राजा वीतहव्य के पौत्र थे । पिता की तरह यह भी वैदिक ऋषि थे कूर्म ऋषि के वैदिक ऋषि होने से उत्तमवंश के कूर्मि भी वेद बालक जान पड़ते है ।

"मिश्रबन्धुओं" ने अपनी पुस्तक **"भारतवर्ष का इतिहास,"** में उक्त कूर्म ऋषि का इस प्रकार वर्णन किया है :-

"ऋग्वेद के दूसरे मंडल में कुल मिलाकर केवल 43 सूक्त हैं जिनके ऋषि गृत्समद, सोमाहृत और कूर्म है । कूर्म, गृत्समद के पुत्र थे । इनके केवल 3 सूक्त और सोमाहृत के 4 हैं शेष सभी सूक्त गृत्समद के हैं। गृत्समद के नाम पर यह गार्त्समद मण्डल कहलाता है ।"

("मिश्रबन्धु," "भारतवर्ष का इतिहास," सं0 1 अंक 10, पं0 लक्ष्मीशंकर मिश्र की रचना 'कूर्म सिद्धान्त विमर्श' के पृष्ठ 303 पर कूर्मवंश के उद्भव और इस वंश के राजर्षियों और अनेक क्षत्रिय वंशों के कुल वंश में होने का दावा किया है, जैसे :-

ब्रह्मा प्रजापति कूर्मः, कुश कूर्मो महातपः ।
आदित्यो भास्कर श्वैव, कूर्मो वैवस्वतो मनुः ।। 1 ।।

ऋषिः कश्यप कूर्माख्यः कूर्मोगार्त्समदस्त था ।
वसुवंशे महाकूर्मो, बासस्तस्याथ मागधी ।। 2 ।।

परित्राणय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम ।
धर्म संस्थापनार्थाय, कूर्मः कृष्णेऽभवत्प्रभु ।। 3 ।।

सुरेन्द्रः कूर्म आख्यात, सुराणां तारको वै ।
दानवेन्द्रो बलिः कूर्मो, राक्षस, कूर्मि रावणः ।। 4 ।।

दुर्गा शक्तिमती भीमा, नाम्न्या कूर्म्यार्थ विश्रता ।
राणस्याऽथ भार्या या, कूर्मो सापि तथा कूर्मकः ।। 5 ।।

रामपुत्रः कुशः कूर्म, स्तस्मात कूर्मो महावली ।
विक्रम किनृपः कूर्मः सुमित्र स्यामित्ज स्तथा ।। 6 ।।

सुहोत्र श्चन्द्रजः कूर्मः कौद्याः कूर्मवंश जाः ।
कूर्मामिधः कुन्ति भोजः श्रीकृष्ण कूर्म यादवः ।। 7 ।।

राजस्थान के कूरम (कूर्मि) रजवाड़े

चंद वरदाई ने **"पथ्वीराज रासौ"** में ऋतु वर्णन करते हुये पृथ्वीराज को अपनी रानियों से कनवज (कन्नौज) गमन करने से पूर्व स्वीकृति प्राप्त करने के लिये जाने का वर्णन किया है उनकी एक रानी कुरमिन थी । जिसकी स्वीकृति लेने वह शरद ऋतु के अन्त में जाता है, जैसे :-

हिम आगम वित्ते सरद, मन चित्र नृप इंद ।
पूछन कुरमी महल गय, सरद गेह वर चंद ।।

"पृथ्वीराज रासौ" जैसे मध्यकालीन काव्य-कृतियों में भी जबकि अग्निवंशी राजपूतों की शूरवीरता की ख्याति बुलंदी पर थी, उस काल में कूर्मवंश के तेजस्वी नरवीरों के यश की पताका राजपूतों से कम ऊँची नहीं उड़ती रही है । 'रासो' में कूर्मवंश के नरवीरों का यश वर्णन अन्य सभी क्षत्रिय वीरों से, जिन्होंने पृथ्वीराज के साथ युद्धों में भाग लिया था, कहीं अधिक है । रासोकार ने कूर्मियों को सूर्य तेजधारी दिग्पालों की तरह सामर्थ्यवान बतलाया है :-

**"रवितेज़ कहर कूरम सब, चंदु अमिय अब्बूधनी
विग्पाल सबले सामंत, रहै बब्बि धरतीधनी ।।**

रामकथा, स्वामी दयानन्द और पेरियार

स्वामी दयानन्द सरस्वती अवतारवाद के खिलाफ़ थे । उन्होंने वेदों का सहारा लेकर अवतारवाद का जमकर विरोध किया । इसी सिलसिले मे उन्होंने अपने अनुयायियों (आर्य समाजियों) से कहा कि तुलसीदासकृत 'रामचरित मानस' हिन्दी (अवधी) को ऐसे छोड़ देना चाहिए जैसे कोई **'विषाक्त भोजन को छोड़ता है ।'** उनका मानना था उसमें काल्पनिक और मनगढ़न्त किस्सों के अतिरिक्त कुछ नहीं । यद्यपि स्वामी दयानन्द ने अपने मानने वालों को बाल्मीकि की रामायण पढ़ने की अनुमति दे दी थी , लेकिन साथ में यह भी कहा था कि इसे धार्मिक साहित्य न मानकर काव्य के रूप में देखा जाना चाहिए । (संदर्भ के लिये 'सत्यार्थ प्रकाश'का तीसरा अध्याय देखा जा सकता है ।)

गोस्वामी तुलसीदास ने **रामचरित मानस 16 वीं शताब्दी में लिखी थी** । वे मुगल सम्राट अकबर, अब्दुल रहीम खानखाना, संत दादूदास के समकालीन थे । **बाल्मीकि कृत 'रामायण' की लेखन तिथि अभी तक तय नहीं हो सकी है** ।

गौरतलब तथ्य यह है कि कोई चार दशक पहले द्रविड़ विचारधारा के जनक **रामास्वामी नायकर पेरियार** ने इसका इस्तेमाल किया था, वह भी नकारात्मक रूप में । द्रविड़ संस्कृति को **ब्राह्मणों** के चंगुल से निकालने के लिये पेरियार ने रामायण की भर्त्सना की । पेरियार रामकथा के इतने कट्टर विरोधी थे कि उन्हें राम की मूर्ति या चित्र के खिलाफ हिंसा का प्रयोग करने में भी संकोच नहीं होता था । पेरियार संभवतः रामकथा के तमिल रूप से प्रभावित थे ।

वैदिक युग और आर्यजन

वैदिक युग में आर्य जाति मुख्यतः आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई । आर्यों का अफगानिस्तान पर अधिकार था । वे कुभा (काबुल नदी), सुवस्तु (स्वात) कन्यु (कुरेण) गोमती (गुमल) परुष्णी (रावी) के किनारे बसे । ऋग्वेद में विन्ध्य, नर्मदा नदियों और जानवरों में चीता और खाद्य पदार्थों में चावल का कथन नहीं है । सिंह और हाथी का उल्लेख है ।

संसार का सबसे पहला पद्य ऋग्वेद है, और संसार का सबसे पहला गद्य यर्जुवेद है उसके बाद का गद्य ब्राह्मण ग्रन्थ हैं । ऋग्वेद में 33 देवता है । वेद में प्रतिमा पूजन नहीं है । प्राचीन काल में वरुण की महत्ता थी । फिर इन्द्र की हुई वे देवराज कहे जाने लगे । सरस्वती सबसे पहले पवित्र नदी मानी जाती थी, बाद में गंगा मानी जाने लगी ।

उत्तर वैदिक काल में, अनेक शताब्दियों बाद, शनैः-शनैः अनेक कारणों से, वैदिकयुग का उन्नत समाज, पतनोन्मुखी होता चला गया । महाभारत का कौरव-पाण्डव युग उस अवनति-प्रक्रिया की अन्तिम सीमा मानी गयी है । महात्मा वेदव्यास द्वारा संकलित **'महाभारत-ग्रंथ'** को कुछ विद्वानों ने 'इतिहास', 'आख्यन' अथवा 'पंचम वेद' भी कहा है ।

वैदिक काल की संस्कृति, हमारी प्राचीनतम और बहुमूल्य धरोहर है । प्राग्वैदिक काल की सभ्यता के भी अनेक प्रमाण मिले हैं । अनेक कारणों से उस काल की पर्याप्त जानकारी का संकलन नहीं हो पाया है । अतः उस समय लोगों की क्या धार्मिक मान्यताएँ थी, उनकी क्या संस्कृति थी, अभी कुछ कहना अटकलें लगाना ही होगा। पुरातत्वशास्त्री गवेषणा में व्यस्त हैं उन्हीं से इन प्रश्नों के निकट भविष्य में सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त होने की सम्भावना

है । रामायण काल से लेकर पौराणिक काल तक, विशेषतः गुप्त राजाओं के राज्य काल में भारतीय संस्कृति पर बहुत गहरे प्रभाव पड़े । उत्तर वैदिक काल में, बाद में वैदिक देवतागण, इन्द्र, अग्नि, पवन आदि भी बदल दिये गये, पूजा की नईं विधियां आ गई । केवल विष्णु के ही नहीं अनेक देवताओं, नागों और राक्षसों तक के अवतार माने जाने लगे । बाहर से भी भारतवर्ष में अनेक जातियों का आगमन होता रहा जैसे यूनानी, हूण, कुशाण आदि। इनमें से ज्यादातर यहीं के लोगों में घुल-मिलकर यहीं के होकर रह गये । इन सबका यहां की संस्कृति पर बड़ा क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा और धार्मिक मान्यताओं और सिद्धान्तों में भी अनेक परिवर्तन हुए। इतना सब कुछ होने पर भी भारतीय संस्कृति की मूलधारा अविरल अपने नैसर्गिक वेग से बहती चली जा रही है । भारत ने सभी नये सिद्धान्तों को अपने में ऐसा समोया कि उन सबका समावेश भारतीयता में हो गया । विदेशियों पर ही नहीं, यहां के आर्यों से पूर्व बसी जातियों पर भी वैदिक और पौराणिक संस्कृति की गहरी छाप पड़ी, जिससे आर्य और अनार्य अथवा देशी और विदेशी का अन्तर शनैः-शनैः मिटता गया, लोग भूलते गये कि उनके पूर्वजों में से एक या अनेक मानव समूहों के मूल पुरुष कौन-कौन थे । साँस्कृतिक दृष्टि से भारत एकता-सूत्र में बंध गया ।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतवर्ष को महामानव समुद्र कहा है । विचित्र देश है यह । असुर आये, आर्य आये, यक्ष आये, गंधर्व आये, शक आये, हूण आये...., न जाने कितनी मानव जातियां आईं और आज के भारतवर्ष को बनाने में अपना हाथ लगा गई । जिसे हिन्दू रीति रिवाज़ कहते हैं, वह अनेक आर्येतर, उपादानों का उद्धत मिश्रण है । प्रसिद्ध हिन्दी के समालोचक डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्ध, **"अशोक के फूल"** में लिखा है कि, "इतिहास इस तथ्य का भी साक्षी है कि प्रारम्भ से लेकर बाद तक इस देश में आने वाली, बसने वाली और घुमक्कड़ जातियों के बीच, आर्य और आर्येतरों के बीच रक्त-सम्बन्ध स्थापित होते रहे हैं और वे सब परस्पर घुलती मिलती रही हैं । ऐसी स्थिति में रक्त, नस्ल या जाति की शुद्धता का दावा कितना उपहासास्पद हो सकता है, यह कहने की बात नहीं है ।"

वेद गुण-कर्म पर आधारित **वर्ण-व्यवस्था** को स्वीकार करता है, **जन्म पर आधारित जाति-व्यवस्था** या **अस्पृश्यता** के लिए ही कोई स्थान नहीं है । वेद तो **'आओ सारे विश्व को आर्य बनायें'** (ऋग्वेद 9-63-5) की उद्घोषणा करता है ।

कूर्मि जाति और उसका उद्गम

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि - **"अखिल भारतीय मूल निवासी सभा"** नाम से एक संस्था श्री श्यामप्रीत सिंह, के.संयोजकत्व में पटना (बिहार) में गठित हुई, और उसके संकल्प प्रकाशित किये गये । इसमें श्री श्यामप्रीति सिंह ने अपना मत प्रकट किया है कि - **"कूर्मि जाति जोकि कुनबी, कुलम्बी, कुलवादी, बक्कलीगार, कापू, तिरौले, पाटीदार, कड़वा, लावा, पटेल, रेड्डी, मराठा इत्यादि, कुल मिलाकर 1488 उप-शाखाओं में विभक्त हैं, सब एक ही द्रविड़ या अति प्राचीन प्रजाति के हैं ।"**

आज भी झारखंड के कुड़मि बन्धुओं को छोड़कर अधिकांश कुरमीजन उपर्युक्त अवधारणा से कदापि सहमत न होंगे और न कभी स्वीकार करेंगे । अपनी जाति और धर्म सम्बंधी, परिवार की दीर्घकालीन संकल्पना और विश्वास को स्वीकार कर वे उस पर आचरण करते आये हैं और करते रहेंगे । यह नामुमकिन है कि आज या कल किसी के कहने पर कि तुम्हारे 5000 या 6000 वर्ष पूर्व के पूर्वजों का क्या धर्म था या क्या मान्यताएं थी जोकि अभी प्रमाणित भी नहीं हुई हैं, उन्हें स्वतः ग्रहण कर लेंगे, और अपने को द्राविड़ या अन्य अति प्राचीन प्रजाति के कहना शुरू कर देंगे । ऐसा होना सम्भव नहीं लगता है, अतः समाज क्यों इस बखेड़े में पड़कर समय व्यर्थ नष्ट करे, कोई लाभ होने वाला नहीं है । इस द्वंद में पड़ने वाले व्यक्ति सतर्क रहें ।

सिन्धुघाटी सभ्यता

उपलब्ध पुरातात्विक सामग्रियों के आधार पर विद्वानों में इस विन्दु पर सहमति है कि आर्यों के इस देश में आने के पूर्व भी यहाँ सिन्धुघाटी में एक सभ्य और समुन्नत समाज मौजूद था और उस समाज में धनी, गरीब, कारीगर, शिल्पी इत्यादि विभिन्न वर्ग के लोग थे । उन लोगों ने अपने समुदाय के पहचान-चिह्न भी जरूर रखे होंगे, जिन्हें लोग **टोटम** भी कह सकते हैं । आर्यों के आ बसने के काफी बाद में जरूरत को देखते हुये, तेजी से फैलते हुये समाज को सुव्यवस्थित करने के लक्ष्य से **वर्णाश्रम विभाजन** की व्यवस्था करना आवश्यक समझा गया होगा । पर उससे पहले वर्ण और भिन्न-भिन्न समुदाय जिन्हें जातियां भी कह सकते हैं अस्तित्व में आ गई होंगी। किन्तु यह सब होने में काफी लम्बा अरसा जरूर गुजरा होगा, आजकल की तरह नहीं कि सरकार ने अध्यादेश जारी किया ओर वह अमुक तारीख से लागू घोषित हो गया ।

कुछ शब्दों के अर्थों में विसंगतियाँ

1. 'वर्ण' शब्द जिसका आधुनिक अर्थ 'जाति' किया जाता है ऋग्वेद में केवल 'आर्यों' ओर अनार्यों में भेद प्रगट करने में आया है । आर्यों में भिन्न-भिन्न जातियाँ या वर्ण थे, ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं मिलता।
-म0 3/सू034 ऋ09 आदि

2. 'विप्र' शब्द जिसका अर्थ आजकल ब्राह्मण किया जाता है, वास्तव में वेदों में 'मंत्र दृष्टा' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अथवा 'बुद्धिमान' के अर्थ का द्योतक है और वह देवताओं के विशेषण के तौर पर काम में लाया गया है ।

3. 'ब्राह्मण' शब्द जिसे आजकल एक हिन्दू जाति विशेष या वर्ण-विशेष का द्योतक बना डाला है वैदिक काल में पुरोहित के अर्थ में आया है ।
-म0 ७ सू0 103 /ऋ0

4. 'क्षत्रिय' शब्द कहीं नहीं आया है । 'क्षत्र' शब्द आया है, उसका अर्थ **'बलवान'** है, किसी वर्ण विशेष के अर्थ में नहीं ।

5. 'वैश्य' शब्द वेदों में कहीं भी नहीं है । 'विश' शब्द आया है और वह प्रजा के अर्थ में मिलता है, किसी वर्ण विशेष के अर्थ में नहीं ।

6. 'शूद्र' शब्द वेदों में कहीं भी नहीं है । 'दस्यु' है मगर वह अनार्यों के लिये है । 'आर्य' और 'दस्यु' इन शब्दों के आगे 'वर्ण' शब्द प्रयुक्त मिलता है । केवल 'दस्यु' और 'दास' उपद्रवी पुरुष को कहते थे ।

7. वेद में, केवल 'पुरुष सूक्त' में बहुचर्चित तथा अति आलोचित **'ब्राह्मणश्य मुखमासीत्'** मंत्र मिलता है पर यह उत्तर वैदिक काल में बहुत बाद में क्षेपक के रूप में जोड़ा गया है । यह पुरुष सूक्त ऋग्वेद का बहुत पिछला भाग है ।

देश में बसा बृहत कूर्मि समाज

देश के विभिन्न अंचलों मे बसी कूर्मि जाति अन्यान्य नामों से ज्ञात जैसे **कुलमी, कुनबी, कण्बी, कूर्मा, कुटुम्बी, पाटीदार, पटेल, रेड्डी, कम्मा, बक्कलिगार, कापू,** मराठा, आदि जातियों का एक बृहत रूप है । इस जाति के बारे में गहराई और विस्तार से खोज अंग्रेज विद्वानों जैसे **डब्लू. क्रूक्स, कारनेगी, डाल्टन, ईलिअट, बरेन्ड, शेरिंग, हन्टर** आदि ने की । बड़े खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि इस प्राचीन जाति की इस स्तर की खोज और अध्ययन का कार्य अभी तक किसी हिन्दू ने नहीं किया है । किसी हिन्दू लेखक ने अपनी ऐतिहासक पुस्तकों में इस कूर्मि जाति की जो भी हल्की-फुल्की विवेचना की है वह ज्यादातर स्थलों पर पूर्ण सच्चाई से परे हैं और ऐसा आभास होता है कि अन्य जगहों पर लेखक ने कुंठित मानसिकता वश सतही रूप से सर्वेक्षण कर किसी तरह विषय को छू मात्र लिया है कुछ ने बिना परिश्रम किये ऐसा भी निष्कर्ष निकाला है कि इस जाति का विशेष प्राचीन इतिहास है ही नहीं । किसी अहिन्दू द्वारा भारतीयों का काबिले तारीफ एवं पठनीय कुरमी जाति सम्बन्धी सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक अध्ययन निःसंदेह एक मुसलमान विद्वान का है । सन् 1920 में **हिज़ एक्सीलेंसी निजाम हैदराबाद** ने अपनी स्टेट की जो जनगणना करायी थी उन आँकड़ो और विवरणों के आधार पर **हिज़ एक्सीलेंसी निजाम्स हाईकोर्ट ऑफ जुडीकेचर** (His Excellancy the Nizam's High Court of Judicature) **के जज, जस्टिस सैयद सिराज उल-हसन को हैदराबाद स्टेट का जनगणना कमिश्नर** नियुक्त किया गया था । एकत्रित आँकड़ों और जानकारी के आधार पर बाद में उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी, जिसका शीर्षक था **"दि कास्ट एंड ट्राइब्स ऑफ हिज ऐक्सीलेंसी दि निजाम्स डोमिनियन्स"** और इसे सन् 1920 में **'दि टाइम्स प्रेस',** बम्बई ने प्रकाशित किया गया था । मूल अंग्रेजी भाषा में उसका संक्षिप्त अंश परिशिष्ट - I के रूप में इस पुस्तक के अन्त में उद्धृत किया गया है ।

निजामशाही में हैदराबादी कुरमीजन

विद्वान जस्टिस सैयद सिराज-उल-हसन, ने मुसलमान होते हुये भी, हैदराबाद रियासत की रिआया के उन **कुरमियों** के बारे में, जिनके पूर्वज **तत्कालीन निजाम** के या उनके **पूर्व निजामों** के प्रोत्साहन पर यू0 पी0 से आकर बड़ी संख्या में उनकी फौज में भर्ती हुये थे, उपर्युक्त पुस्तक में बड़ी मेहनत से तथा विस्तार पूर्वक कमाल का विवरण दिया है । उस पुस्तक में **सैयद सिराज-उल-हसन,** जिनके निर्देशन में निजाम ने अपनी हैदराबाद रियासत की मरदमशुमारी (Census) भी करायी थी, वेद-पुराणों का हवाला देते हुये लिखते हैं कि **ये कुर्मी लोग प्राचीन क्षत्रिय वंश की सन्तति हैं । कुरमियों की आकृति तथा शारीरिक गठन उनके क्षत्रिय होने को प्रमाणित करता है । अपनी योग्यता के कारण वे अनेक प्रकार के सरकारी पदों पर नियुक्त किये गये । वे सुसंस्कृत कुर्मी लोग हैदराबाद रिआसत के निवासी हैं ।**

भारत के आज़ाद होने के बाद हैदराबाद स्टेट के भारतीय संघ में विलय के साथ निजामशाही का अन्त, हो गया । और राज्यों के भाषा के आधार पर पुनर्गठन के परिणामस्वरूप यह स्टेट आन्ध्र प्रदेश का अंग बना दी गयी और हैदराबाद शहर ने इस नये राज्य की राजधानी बनने का गौरव प्राप्त किया । वहां आजकल **कुरमियों** की एक संस्था **"आन्ध्र प्रदेश क्षत्रिय संघ"** हैदराबाद शहर से ही संचालित है । वे हाल ही में मंडल सिफ़ारिशों के अर्न्तगत आरक्षण के स्थानीय लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने को **"अग्नि कुल क्षत्रिय"** लिखने लगे हैं, जबकि **'अग्नि कुल क्षत्रियों'** का कुरमियों, में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलेगा, और न वे स्वयं हैं । यदि यह प्रयोग चलता रहा तो कूर्मि इतिहास में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो सकती हैं । इस संस्था ने सन् 1988 तथा जून 1993 में **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** की कार्यसमिति की बैठक को अपने तत्वावधान में आयोजित करवाया । इनका बड़ा सुन्दर संगठन है और ये कार्यकमों को बड़े सुचारु रूप से और सांस्कृतिक गतिविधियों जैसे कवि सम्मेलन, मुशाइरा आदि भी सामूहिक सहयोग से बहुत प्रशंसनीय ढंग से संचालित करते हैं । **दिल्ली**

कूर्मि क्षत्रिय समाज का अध्यक्ष होने के नाते इस पुस्तक के लेखक को, उपर्युक्त दोनों बैठकों में सम्मिलित होकर व्यक्तिगत रूप से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला। उन अवसरों पर उन्होंने **"आन्ध्र प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय संघ"** की 'अग्नि कुल क्षत्रिय-परिचय निर्देशिका' भी प्रकाशित करवायी थी। उसमें वर्णित है :-

"मूसी नदी के तट पर पुराने पुल से लगा हुआ शिव मन्दिर **'शिवाला घाट'** हैदराबाद के **कुर्मियों के इतिहास** का प्रतिनिधित्व करता है। तीन सौ वर्ष पूर्व **बख्तावर सिंह** को उत्तर प्रदेश से हैदराबाद से 40 किलोमीटर दूर **नजमउद्दीन अलीखाँ** की जागीर में भेजा गया। वहाँ उनकी भेंट शाही दर्वेश **सैयदशाह बल्लीउल्लाह खावरी साहब** से हुई। घनिष्टता बढ़ी। शाहसाहब ने अपनी लड़की के विवाह के लिये मख्ते के नये गूड़े (बेगार कूँचा) को **बख्तारसिंह** को बेच दिया, जिसमें एक तालाब और कई कुयें थे। एक कुएँ की खुदाई के समय में उन्हें उसमें से भगवान शिव और हनुमान की मूर्तियां मिली। उन्हें वहाँ से निकाल लिया गया। रात में सपने में उन्हें निर्देश मिला कि इन मूर्तियों को हैदराबाद से लाकर मूसी नदी के तट पर मन्दिर निर्माण करो, उन्होंने उसी अनुसार निर्माण कार्य आरम्भ किया। इसी बीच उनकी बदली **बादशाह के दरबार में पेशी सूबेदार** के रूप में हो गई।

कुछ लोगों ने **बादशाह (निजाम साहब)** से शिकायत की कि कोई हिन्दू मूसी नदी के तट पर मन्दिर, निर्माण कर रहा है। बादशाह ने खुद जाँच करना चाही। मुहर्रम के महीने में **श्री बख्तावर सिंह** को उन्होंने देखा कि शाही दरबारी लिबास, अंगरखा पहने हुये शर्बत बाँट रहे थे। भीड़ देखकर स्वयं बादशाह उधर आये और वे श्री बख्तावर सिंह के हिन्दू-मुस्लिम प्रेम को देखकर बड़े प्रसन्न हुये। **बादशाह नासिर उद्दौला** ने **श्री बख्तावरसिंह** को गले लगाकर कहा कि **'तुम्हारा हिन्दू-मुस्लिम प्रेम सराहनीय है मगर यह मन्दिर नदी की धार से कितने साल बचा रहेगा।"** श्री बख्तावर सिंह ने कहा कि **"जिसके नाम पर मन्दिर बन रहा है, वही उसकी रक्षा करेंगे।"**

बादशाह नासिर उद्दौला ने कुरमी बख्तावर सिंह के लिये शाही खर्च से किले के आकार के मन्दिर का निर्माण करवाया। इस बात का प्रमाण आज भी मन्दिर के पत्थर पर खुदी हुई तेलुगु और उर्दू में अंकित घोषणा है। बादशाह ने दो कमरे, पुराने पुल के छै खाने तक की एक एकड़ सोलह गुंटे जमीन और अब जहां पार्दीवाड़ा है वह जगह भी दे दी। **प्रत्येक कार्तिकी पूर्णिमा पर यहाँ आजकल भगवान सत्यनारायण की कथा-पूजा होती है।**

कहा जाता है कि **छत्रपति वीर शिवाजी जब दक्षिण-विजय के लिये यहां आये थे, तब उन्होंने इस शिव मन्दिर की पूजा की थी और एक रात मन्दिर परिसर में उन्होंने अपने सरदारों के साथ विश्राम भी किया था।** आज भी यह ऐतिहासिक मन्दिर **"शिव मन्दिर, शिवाला घाट, पुराना पुल, हैदराबाद - 500006"** के नाम से प्रसिद्ध है।

पटेला बुर्ज में **खाकी बाबा** का **राम मन्दिर** भी **कुर्मियों** का अपना स्थान रहा है। हैदराबाद भारत में विलय से पहले एक स्वतंत्र राज्य था। जिस पर निजामशाही के बादशाह शासन करते थे। **कूर्मि क्षत्रिय समाज** के लोगों के पूर्वज उत्तर प्रदेश के मुख्यतः **उन्नाव जनपद** से आये थे और **निजामशाही** के अन्तर्गत विभिन्न सरकारी सेवाओं में लगे हुये थे। जब हैदराबाद में **रजाकारों** का उत्पात जोरों पर था इन **कुरमियों** के साथ उनके व्यवहार अच्छे रहे और इन पर कोई अत्याचार नहीं ढाये गये और इनमें से कोई शहर छोड़कर भी नहीं भागा।

कर्नल विलियम हेनरी स्लीमेन का अवध का भ्रमण

पाठकगण जानते होंगे कि सन् 1857 के सिपाही विप्लव से काफी पहले **कर्नल स्लीमेन** ने **नवाब वाजिद अली शाह** के जमाने में **ईस्ट इंडिया कम्पनी** के **पोलिटिकल एजेन्ट** की हैसियत से **अवध के देहातों** का भी दौरा किया था और वहां के हालात खुद पता किये थे और उस पर अपनी रिपोर्ट तैयार की थी और ईस्ट इंडिया कम्पनी को पेश की थी। बाद में उनकी रिपोर्ट पर आधारित उनकी प्रसिद्ध डायरी पुस्तक के रूप में प्रकाशित की गई उसमें भी **कुरमी कृषक** का उसके **उत्तम खेती ज्ञान, खुशहाली, शान्ति प्रियता, नम्रतापूर्ण व्यवहार,**

कानून-नियमों के पालनकर्ता के रूप में अनेक पृष्ठों पर प्रशंसात्मक शब्दों में उल्लेख है [पुस्तक का नाम Journey Through The Kingdown Of Oude है] जबकि कर्नल स्लीमेन की रिपोर्ट अवध शासन की वदइंतजामियत को प्रमाणित करती थी, जिसको आधार बनाकर अंग्रेजों ने नवाब वाजिद अली शाह को अवध के तख्त से उतारकर, अन्त में अवध को अपने शासित क्षेत्र में मिला लिया ।

चन्दन मित्रा की दृष्टि में कूर्मि जाति

श्री चन्दन मित्रा का लेख "Backward In The Lead" अप्रैल 1988 को दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक 'दि टाइम्स आफ इंडिया' में प्रकाशित हुआ । उस लेख में कुर्मी सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातें उन्हीं के शब्दों में तथा मूल भाषा में साभार उद्धृत हैं :-

1. When the legendary peasant leader of Avadh Baba Ram Chander got disillusioned with the attitude of the Congress leadership, he retreated from main stream of the national movement and launched a caste association. The Kurmi Kshatriya Sabha based in Pratapgarh did not last long, its achievements were inconsequent. Babu Ram Chandra died a bitter man.

2. Baba, a Maharashtrian Brahmin...his retreat into the politics of caste is significant. The Kurmi Kshatriya Sabha was among the first associations of its kind in U.P. set up to instil a sense of pride among the Kurmis, and mobilise them to agitate for a better social status, the Sabha's Charter included abolition of dowry and child marriage.

3. He made a deliberate and determined effort to link peasant problems with the nationalist agitation. As Jawaharlal Nehru has testified in his autobiography, the Congress acquired a mass base in rural areas of U.P. largely because of peasant ferment and the leadership of Baba Ram Chandra.

4. Baba Ram Chandra being an outsider, could never become a caste leader despite his efforts to uplift the Kurmis.

5. During the last 50 years the so called Kisan castes-Kurmi, Koeris, Yadavs and Jats have become increasingly assertive. While it may be an exaggeration to say that mass politics in U. P. has revolved around them, there can be little doubt that at least since the emergence of Mr.Charan Singh as U.P.'s principal political personality in the 1960's they have been crucial to political strategies of the Congress and the Opposition.

6. To the Chaudhari's credit, he systematically brought similarly located backward castes such as Ahirs, Kurmis and Koeris into his ambit, although he began as a Jat leader.

लगता है कि श्री चन्दन मित्र के इस आलेख की पाठकों ने काफी सराहना की और इस सम्बन्ध में अनेक पत्र 'ऐडीटर कालम' में प्रकाशित हुये । उसमें से मेरठ की श्रीमती कुसुमसिंह का निम्न उद्धृत पत्र 20 अप्रैल 1988 को दिल्ली से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी समाचार पत्र 'दि टाइम्स आफ इंडिया' में अत्यन्त महत्वपूर्ण है :-

THE BACKWARDS

Sir-Mr Chandan Mitra's article on the "Backwards" is a sharp analysis of Indian politics. Indian politics is nothing but caste politics all the way through. Peasants have suffered in the past and will continue to do so till they produce a capable leader. Ruling Congress elites will never give anything to them barring empty promises. In this connection I would like to mention that the Kurmis., the peasants of Avadh, have suffered tremendously both socially and economically right from the days of British rule to this day.

The Kurmis were the major contributing caste of the Bengal Presidency army till 1857. For their role in the uprising led by Raja Jai Lal Singh in the first war of independence, they got eliminated from the Indian army and have no representation till today. Unfortunately for them, they could not throw up all this time. Unless they unite with the Jats, Ahirs and Gujjars, they will continue to suffer at the hands of the ruling elite.

Meerut. **Mrs. KUSUM SINGH**

यह सच है कि कुरमियों में अब तक राष्ट्रीय या प्रादेशिक स्तर के ऐसे नेता नहीं निकल पाये जो अपनी कार्यकुशलता तथा चारित्रिक गुणों के आधार पर जाति का पूर्ण समर्थन अर्जित कर पाते । कुछ ऊँचे उठते नज़र भी आये पर दल-बदल की दलदल में फंस कर वे तेजहीन हो गये । कुछ ने अपने स्वार्थों को साधा, धन बटोरा पर राजनीति में कुर्मी जाति के हितों के संरक्षक न बन पाये । प्रान्तीय स्तर पर अनेक जातीय नेता हैं जो अपनी पार्टियों के अनुशासन से बंधे हैं । पर प्रतीक्षा उस स्वर्ण अवसर की है जबकि उनमें से कोई इतना सक्षम बनकर दिखाये कि हिन्दी भाषी कुरमियों का एकक्षत्र सर्वमान्य नेता हो सके, तभी कूर्मि जाति का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सकेगा । इसके लिये सर्वप्रथम **कूर्मि समाज** को एक सूत्र में बांधकर अपने संगठनात्मक ढ़ांचे को मजबूत और कारगर बनाना पड़ेगा । **सामाजिक चेतना एवं सामाजिक दायित्वों का जब उन्हें बोध हो जायेगा तब ही उनके मध्य निर्मल चरित्र का योग्य नेतृत्व भी उभर कर आ सकेगा ।**

जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण वादी धर्म की पुनर्स्थापना

इतिहास के अवलोकन से पता चलता है कि सन् 600 ई0 पूर्व के लगभग इक्ष्वाकु क्षत्रियों (24 तीर्थंकरों द्वारा) ने जैन-धर्म तथा शाक्य-क्षत्रिय गौतम ने बौद्ध धर्म का प्रवर्तन किया । अशोक की बौद्ध-व्यवस्था के अन्तर्गत कदाचित ब्राह्मणों की विशेष प्रतिष्ठा एवं उसके विशेषाधिकारों को पर्याप्त क्षति पहुँची । बौद्ध सम्राट के दृष्टिकोण से जन्म के आधार पर ब्राह्मण, श्रमण एवं अन्य धर्मानुयायियों आदि की अपेक्षा अधिक सम्मान का अधिकारी न था । वह विभिन्न मतानुयायियों के प्रति निर्विरोध श्रद्धाभाव रखता था । यज्ञ-विरोधी बौद्ध-प्रसार ने ब्राह्मण की याज्ञिक अनिवार्यता को समाप्त कर दिया था । इस प्रकार वर्ण-विरोधी तथा यज्ञ-विरोधी बौद्ध नीति से अपनी सामाजिक एवं धार्मिक प्रतिष्ठा को संरक्षित रखने हेतु ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्मावलम्बी मौर्य साम्राज्य के विरुद्ध संगठन करना प्रारम्भ किया । शनैः-शनैः यह अधिकाधिक प्रबल होता चला गया । अन्त में इससे लाभ उठाकर **सेनापति पुष्यमित्र शुंग** ने अपने **मौर्य सम्राट बृहद्रथ** का बधकर डाला था । ब्राह्मणों का शस्त्र-ग्रहण और सिंहासनारोहण अपनी सामाजिक एवं धार्मिक प्रतिष्ठा को पूर्ववत बनाने के लिये ही हुआ था । शुंगों की छत्रछाया में हम जिस ब्राह्मण व्यवस्था का पुनः संगठन पाते हैं वह उनके अनुगामी काण्व एवं सातवाहन ब्राह्मण शासकों के अन्तर्गत भी चला और उन्होंने

भी अपने क्षत्रिय प्रभुओं को मारकर/गद्दी से उतारकर ब्राह्मण राज्यों की नींव डाली थी । हिन्दुओं का प्रसिद्ध धर्मशास्त्र, मनुस्मृति ब्राह्मण-धर्मों द्वारा इसी सामाजिक पुनः संगठन एवं वर्णाश्रम प्रतिस्थापना के ऊपर प्रकाश डालता है ।

राजपूत इतिहास के झरोखे से

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा0 रोमिला थापर ने अपनी पुस्तक **"मध्य कालीन भारत"** में लिखा है :-

"राजपूतों का एक लम्बा और मनोरंजक इतिहास है । वह कौन थे और कहां से आए, यह आज भी रहस्य है । इतिहासकारों का विचार है कि उनमें से कुछ मध्य एशिया की उन जातियों से सम्बन्धित हैं, जो हूणों के उत्तर भारत के आक्रमण के बाद भारत में बस गई । वे कुलों में विभाजित थीं । राजपूत हमेशा जोर देकर कहते थे कि वे क्षत्रिय जाति के हैं । राजपूत राजाओं ने अपने वंशों के इतिहास लिखवाये, जिनमें उनका सम्बन्ध प्राचीन सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी राजाओं से जोड़ा गया । किन्तु चार ऐसे राजपूत वंश भी थे, जो इन दो प्राचीन वंशों से अलग इस काल के इतिहास के सबसे प्रसिद्ध हैं । वे प्रतिहार (या परिहार), चौहान (या चाहमान), सोलंकी (या चालुक्य) और पंवार (या परमार) थे ।"

उस काल के इतिहास के अवलोकन से प्रमाणित होता है कि ब्राह्मणों ने बौद्ध एवं जैन धर्मों के विरोध में राजपूतों की एक नयी जाति का उद्भव **"अग्नि कुंड"** से बताया । बाद में राजपूतों की विजय से प्राचीन क्षत्रिय जो कि प्रारम्भ में कूर्म, सूर्य, चन्द्र, नाग इत्यादि वंशों के नाम से जाने जाते थे, इनमें मिलते चले गये । आल्हा-ऊदल आदि की अधिकांश लड़ाइयाँ केवल प्राचीन क्षत्रियों से शादी-विवाह के सम्बन्ध करने के पक्ष-विरोध में हुईः क्योंकि प्राचीन क्षत्रिय वंशों के लोग उन सभी राजपूतों से, जो कि उस समय तक समाज में प्राचीन क्षत्रियों के वंशजों के रूप में पूर्णतया खप नहीं पाये थे, रोटी-बेटी के सम्बन्ध स्थापित करने के लिये मानसिक रूप से तैयार न हो पाये थे ।

ब्राह्मणवाद का रूढ़िवादी और स्वार्थी स्वरूप

मनु हिन्दू विधि-विधान के प्रमुख रचनाकार थे । मनुसंहिता को मनुस्मृति कहा जाता है । भारतीय समाज में जब राजतंत्र शासन और ब्राह्मणतंत्र धर्म आया तो क्षत्रिय शब्द को परिभाषित किया गया कि **'क्षतांतत्रायेत्कित क्षत्रियः'** अर्थात् वह समाज का क्षत अर्थात् कटने-भरने से त्राण (रक्षा) करता है, अथवा संपत्ति को 'क्षति' नुकसान होने से जो बचाता है, वह क्षत्रिय है । कृषक इस रूप में भी क्षत्रिय है, क्योंकि कृषक की सम्पदा, उसकी कृषि-उपज, दूर-दूर खेतों में खुली पड़ी रहती है वह उसे फसल के अनेकानेक दुश्मनों से उगने से लेकर पकने तक तथा साफ-सुथरा कर घर लाने तक बचाता है, तो कुरमी कृषक इस अर्थो में भी क्षत्रिय है ।

ऐसा लगता है कि स्मृतिकार का मुख्य लक्ष्य था आर्यों में जाति-प्रथा को दैवी मान्यता प्रदान कराकर सबसे मनवाना, जातीय भावनाओं का महत्व प्रतिपादित करना तथा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को सर्वदा के लिये सुनिश्चित करना। ब्राह्मण धर्माध्यक्षों ने जब कर्मानुसार बने हुये वर्णों को जन्मानुसार बना डाला, तो उन्होंने वर्णों के लिये कर्त्तव्य-कर्मों का बँटवारा भी कर दिया ।

पर सब आसानी से न हो पाया था । वैदिक ब्राह्मणवाद का घोर विरोध राजा **कीर्तवीर्य सहस्रार्जुन** ने भी किया, जिसका घोर संघर्ष ब्राह्मण परशुराम से हुआ । कहा जाता है कि जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम ने एक बार अपने पिता के कहने पर अपनी माता रेणुका का भी सिर अपने फरसे से काट डाला था । उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार करके पृथ्वी को निःक्षत्रिय बनाया था । परन्तु यह दंतकथा महज प्राचीन किसी व्यक्ति के मष्तिष्क से निकली अतिशयोक्ति जैसी लगती है । फिर भी उनके जाति-बिरादरी वाले उन्हें **भगवान् परशुराम** कहते हैं । और औरों की देखा-देखी उन्होंने अपने इस **महाहन्ता की जयन्ती** भी हाल के कुछ वर्षों से मनाना प्रारम्भ

की है । हिटलर ने भी बड़े गर्व के साथ यहूदियों को मारा था । उसने गैस चैम्बर और कन्सेन्ट्रेशन कैंपों में भूखे प्यासे यहूदियों को रखकर तड़फा-तड़फा कर मारा था । क्या अन्त हुआ हिटलर का? आज हिटलर की जयन्ती स्वतंत्र जर्मन लोग भी मनाने की हिम्मत नहीं रखते हैं, जिनकी वर्णश्रेष्ठता और रक्तश्रेष्ठता का उसने एक समय सारे विश्व में डंका पीटा था ।

परशुराम की पृथ्वी को इक्कीसवार क्षत्रिय रहित करने की कथा इसलिये भी मिथ्या प्रतीत होती है, कि उनका और क्षत्रियों के कोशलवंश के, भगवान राम के पूर्वजों का संघर्ष कभी नहीं हुआ । इस वंश का राज्य वैवस्वत मनु से लेकर प्रसेनजित के बाद राजा सुमित्र तक चलता आया । प्रसेनजित, मगध नरेश विम्बिसार का समकालीन और रिश्तेदार था, इसी तरह अनेक क्षत्रिय कुलों का सिलसिला अटूट चलता रहा है , तब फिर पृथ्वी निःक्षत्रिय कैसे हुई?

मनुस्मृति कहती है कि मुट्ठीभर द्विजों का जन्म श्रेष्ठ है बाकी के अछूत, अन्त्यज, स्त्रियां एवं अस्पृश्य नरक का द्वार हैं । यह धर्म कदाचित नहीं है । **मनु-विधान के कारण ही पुरोहित-पुजारी वर्ग ने प्रधानमंत्री इन्दिरागांधी को पुरी के जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश की अनुमति नहीं दी थी । छत्रपति शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक पर इन्हीं मनुवादी ब्राह्मणों ने पहले विधिवत पूजन कार्य करने से इंकार कर दिया, फिर ले-देकर गागा भट्ट पुरोहित बनकर आयोजन कराने को रजामन्द भी हुये, फिर उनका यह कार्य वेद-मंत्रों की जगह पौराणिक मंत्रों से सम्पन्न कराया गया । यह अपमानजनक व्यवहार उस व्यक्ति के साथ हुआ जिसने हिन्दवी स्वराज्य का सपना साकार किया, हिन्दुओं के मान-सम्मान की रक्षा की, गौ-ब्राह्मण दोनों को रक्षा की ।** महाकवि भूषण के अनुसार **"यदि शिवाजी न होते तो सुन्नत होती सबकी" ।**

कूर्मि इतिहास के विद्वान लेखक **श्री रामकृष्ण मेहता** ने अपनी पुस्तक **"सूर्य और भारतीय संस्कृति"**, के पृष्ठ 1 पर लिखा है :-

"जब **आदि शंकराचार्य** ने बौद्ध-धर्म के अनुयायियों और विशेष रूप से भिक्षुओं और भिक्षुणियों को हिन्दू धर्म में प्रत्यावर्तन के लिये आग्रह, अनुरोध किया, तो उन्होंने अपनी जीविका निर्वाह सम्बन्धी कठिनाइयों को उनके समक्ष रखा । भिक्षुओं, भिक्षुणियों को कोई कार्य नहीं करना पड़ता था । बगैर शारीरिक श्रम किये उन्हें मठ और बिहारों में भोजन प्राप्त होता था । अतः उन्होंने अपनी विवशता शंकराचार्य के समक्ष रखी । शंकराचार्य ने इसे गम्भीरता से लिया और **उन्होंने व्यवस्था कर दी कि हिन्दू धर्म के जितने पोषक और मानने वाले होंगे, उनके पितरों को संसार के आवागमन से मुक्त होने के लिये गया तीर्थस्थान में पितृ-पिंड़ दान करना, अनिवार्य होगा और इस कार्य का सम्पादन वही लोग करेंगे जो बौद्धधर्म से हिन्दू धर्म में प्रत्यावर्तित होंगे** । ऐसे ब्राह्मण लोग **"गयाबाल" ब्राह्मण कहलायेंगे और सारे हिन्दुस्तान के ब्राह्मण भी उनकी पैर-पूजा करेंगे** । ऐसा प्रावधान करने के बाद ही बौद्ध धर्म के अनुयायी हिन्दू-धर्म में प्रत्यावर्तित हुये और उसी काल से पिंडदान की प्रथा का प्रचलन हुआ जो अभी भी चालू है और गया के ब्राह्मण सभी हिन्दुओं में (ब्राह्मणों सहित) सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं ।" उनके मुख से **पिंडदान सफल** सुनने के लिये यजमान लोग उन पंडों को मुँह मांगी दक्षिणा देते हैं ।

ब्राह्मणों ने त्योहारों का बँटवारा वर्णभेद के आधार पर किया है, जैसे रक्षाबन्धन ब्राह्मणों का, दशहरा क्षत्रियों का, दिवाली बनियों का तथा होली शूद्रों का । इस तरह इनमें भी समता की जगह विषमता छिपी है । यह बात दूसरी है कि इन त्यौहारों को इस रूप में न लेकर सब मिल-जुल करके सहर्ष मनाते हैं जमाने के अनुसार यह बदलाव आया है, मनुस्मृति पंथी धर्माधिकारियों द्वारा नहीं । जब ब्राह्मणों ने देखा कि इतना कुछ करने पर भी बौद्ध धर्म सिमट नहीं पा रहा है तब उन्होंने बौद्ध धर्म में प्रवेश करके अन्दर-अन्दर से उसे इतना कमजोर करने की योजना बनायी, जिससे कि वे आकर्षित करने वाले और मूलभूत सिद्धान्तों को उल्टा-पुल्टा कर दें । वे बौद्ध बनकर, बौद्ध संघ में आ घुसे और बौद्धधर्म के अन्दर ब्राह्मणवाद को शनैःशनैः समाविष्ट करने लगे । जैसे संघ की मान्यता के विरुद्ध, पालि भाषा के बदले संस्कृत का प्रयोग पुनः किया जाने लगा । बुद्ध जो स्वयं

अपने को कोई अवतार या दैवी शक्ति आदि कुछ भी न मानते थे, उनके देहावसान के पश्चात इन्हीं घुसपैठियों नवबौद्धों ने बुद्ध को ईश्वर मानकर, उनकी मूर्ति-पूजा प्रारम्भ करा दी। इस तरह की उथल-पुथल के कारण बौद्ध संघ में भयंकर मतभेद पैदा हो गये और उसे दो हिस्सों में विभक्त होना पड़ा। असल बौद्ध संघ जो पूर्णतः बुद्ध निर्देशों का पालन करता था **'हीनयान'** कहलाया और घुसबैठिये ब्राह्मणों द्वारा प्रभावित बौद्ध संघ **'महायान'** कहलाने लगा।

दूसरी ओर मौर्यवंश के अंतिम **राजा वृहद्रथ** का, उसके ब्राह्मण **सेनापति पुष्यमित्र** ने षड़यंत्र रचकर दिन दहाड़े बध करके, राज्य पर अधिकार कर लिया और निर्लज्जतापूर्ण ढंग से अपना **शुंग वंश** चलाने की कुचेष्टा की। जैसे छत्रपति शिवाजी महाराज के संदेहजनक परिस्थितियों में, रायगढ़ के किले में मरणोपरान्त, शनैः शनैः उनके **एक अष्ट प्रधान, जो पेशवा कहलाते थे,** मराठा गद्दी पर आसीन होकर राज्याध्यक्ष हो गये और शिवाजी के पुत्र सम्भाजी को अवारा-ऐयाश की शिकायतें लगा-लगा के, बाप-बेटों में इतना भयंकर मन-मुटाव उत्पन्न कर दिया कि राजकुंमार सम्भाजी को अपने पिताश्री के विरूद्ध बगावत तक पर उतारू होना पड़ा। पेशवाकुल अपनी ऐयाशी तो भूल गया और यशगान करने में इनके भाट व्यस्त रहे पर इतिहास के पृष्ठों पर जिस अमिट रोशनाई से **बाजीराव पेशवा तथा उनकी मुसलमान प्रियतमा मस्तानी की प्रणय गाथा वर्णित की हुई है और उनसे उत्पन्न वह पुत्र, शमशेर बहादुर, जो आगे चलकर बादों की रियासत का नवाब बनाया गया था, किस आदर्श चरित्र का रहस्योघाटन करते हैं?** दूसरी तरफ शिवाजी के वंशजों और उत्तराधिकारियों को पेंशन याफ़्ता बनाकर सतारा, कोल्हापुर और नागपुर के राजभवनों तक उनका आज्ञा-पालन सीमित कर दिया था। इन्हीं पेशवाओं के नेतृत्व में, शिवाजी द्वारा अनुशासित मराठा फौज जो न कभी असहायों का धन छूती थी और न शत्रु की स्त्रियां, वे ही बाद में लूट-खसोट के लिये उड़ीसा और बंगाल में बहुत बदनाम हुई। कलकत्ता शहर में अंग्रेजों द्वारा बनायी **'मराठा डिच'** बाद में पाटकर वर्तमान में **सरकुलर रोड** के नाम से प्रसिद्ध हुई, जो इन्हीं मराठा लुटेरों और पिंडारियों से कलकत्ता के नागरिकों की सुरक्षा हेतु **ईस्ट इण्डिया कम्पनी** की दीवानी काल में बनाई गई थी।

शिवाजी ने सशक्त मराठा साम्राज्य की नींव रखी थी। किन्तु ब्राह्मणों (मुख्यतः पेशवाओं) ने उसे ब्राह्मण राज्य में बदल दिया। पेशवाई में महार-माँग, चमार जाति के लोगों को गले में मिट्‌टी के बर्तन लटकाने होते थे, जिससे चलते समय उनका थूक उसी बर्तन में गिरे और जमीन अपवित्र न हो जाय। साथ में कमर में बंधा झाड़ू पीछे लटकाना अनिवार्य था ताकि उस झाड़ू से उसके पद-चिह्नों के निशान मिट जाएं। अछूतों को सुबह और शाम के समय शहर के रास्तों से गुजरने की मनाही थी, क्योंकि उस समय छाया लम्बी होने लगती है और वह छाया किसी ब्राह्मण पर पड़ जाने से उसके अपवित्र होने की संभावना रहती थी इसलिये इन अछूतों को मुख्य सड़कों से केवल दोपहर के समय आने-जाने की अनुमति थी। किसी आपात कालीन काम-काज के कारण, इन लोगों को सुबह अथवा शाम के समय रास्ते से पैदल चलना आवश्यक हो जाये तब उन्हें हाथों में थाली लेकर बजाते हुए चलना होता था, ताकि थाली बजाने से उसकी आवाज सुनकर ब्राह्मण समझ जाय कि सड़क से कोई अछूत गुजर रहा है। जिससे वह अपने को भ्रष्ट होने से बचा सके। **अछूतों को मन्दिर प्रवेश की आज्ञा नहीं थी। शूद्र-अतिशूद्र को विद्याग्रहण करने का अधिकार नहीं था। इन्हीं सब अत्याचारों से तंग आकर शूद्र-अतिशूद्र सैनिकों ने अंग्रेजों का साथ देकर बाजीराव द्वितीय की पेशवाई नष्ट कर दी। मनुस्मृति के आदेशों का पेशवाई में कठोरता से पालन होता था।** (डी0 वी0 खापर्डे लिखित पुस्तक मराठी में **''ज्योतिबा फुले"**, पृष्ठ 18 से साभार)। श्री एम. एम. शंखधर ने 10 अगस्त 1994 के अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र- "इंडियन एक्सप्रेस" में एक विस्तृत लेख "The Vilified" में मनु और मनुस्मृति की पूरी वकालत की है पर उन्हें भी इन शब्दों में उसकी खामियों को स्वीकार करना पड़ा :-

"Dharma stands for equality between men and women, proclaimed Manu and added, "men and women are equal as sons and daughters. (Manu 9/131). The learned Pundits

point out that if there are references to the contrary in any version of Manusmriti, they are interpolations, adulterations and distortions of the original text."

जाति प्रथा और हिन्दू धर्म में समरसता कैसे लायी जाए

विद्वानों का मत है कि जाति प्रथा का हिन्दू धर्म से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है । धर्माधिकारी गण पुनर्जन्म पर ही सब बात टाल देते हैं, जो प्रश्न से बचने का एक सरल तरीका है । आर्थिक व्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न होने एवं वर्गीय स्वार्थ को स्थायी रूप में स्थापित करने की दृष्टि से जाति प्रथा को प्राचीन काल में जन्मजात बनाकर पनपाया गया है । अतएव वास्तव में जातीय भेद-भाव का मामला, किसी धर्म-सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं आता । यह संस्कृतियों के टकराव, वर्ण विशेष के स्वार्थों पर आधारित और सामाजिक दुर्व्यवस्था से उपजा है। जाति-प्रथा को यदि समूल नष्ट कर दिया जाये तो इससे हिन्दू-धर्म समाप्त नहीं होगा । वास्तव में, धर्म का सच्चा विधान तो इस प्रकार की संकीर्णताओं और कुरीतियों से परे हैं । योग, दर्शन, मानव-समता विश्व-बन्धुत्व, जैसे **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** आदि इस धर्म के अंग हैं ।

जाति-संघर्ष को समाप्त करने के लिये संवैधानिक उपायों तथा प्रबल जन आन्दोलनों की आवश्यकता है। संविधान में संशोधन करके जाति-प्रथा को समाप्त किया जा सकता है । यह भी सर्वमान्य है कि हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों में बहुसंख्यक जातियों का अनादर किया गया है, और ये ग्रन्थ कुछ विशेष जातियों, विशेषकरके द्विजो, का वर्चस्व स्थापित करने का आधार बन गये हैं उसके अतिरिक्त अन्य कोई वैज्ञानिक साक्ष्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता । जातिगत शोषण व्यवस्था को इनसे बल मिलता है । यदि हिन्दू समाज से जाति संघर्ष समाप्त करना है तो इस प्रकार के दूषित ग्रन्थों का समाज में प्रचलन सदा के लिये सौहार्द्र्पूर्ण ढ़ंग से नहीं तो उसमें से आपत्तिजनक अंशों को जो क्षेपक के रूप में स्वार्थी ब्राह्मणों ने उनमें प्रविष्ट कर दिये थे, हटाना होगा । उसी प्रकार यथार्थ पर आधारित नये इतिहास और ऐसे नवीन धार्मिक साहित्य का सृजन करना होगा, जिससे जातीय समरसता को प्रोत्साहन मिल सके । सामाजिक कार्यकर्ताओं को विशेष रूप से वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है । जैसे रक्त सिद्धान्त का खंडन, मनुष्य मात्र को एक जाति का मानना, सामाजिक प्रथाओं को विकासवादी दृष्टि से देखना आदि ।

जाति प्रथा की बुराइयाँ ढूंढना और बताना सरल है और इन बुराइयों को दूर करने का उपाय बताना कठिन है । जाति प्रथा का जो विकृत रूप हम देख रहे हैं वह अन्तरजातीय ऊँच-नीच की भावना के परिणाम स्वरूप है । अपनी जाति विशेष के प्रति ही नैतिक कर्तव्य को सीमित कर लेना, संकुचित मनोवृति को जन्म देता है । यह कहना ठीक है कि राष्ट्रीय एकता और सामाजिक गतिशीलता की दृष्टि से जाति-प्रथा के कोढ़ का शीघ्रातिशीघ्र उपचार करके ही रोगी-समाज को पतन से उवारा जा सकता है ।

विदेशियों द्वारा 'हिन्दू' नामकरण

प्राचीन काल में भारतवर्ष और इसकी पश्चिमी सीमापार तथा मध्य एशिया के देशों में बड़े जोरों से व्यापार चलता था । लोगों का उन देशों से भारत में आना होता था । और यहाँ से वहां जाते थे । विदेशी, विशेष करके ईरान वाले, **'सिन्धु'** को **'हिन्दु'** उच्चारण किया करते थे । वे **'स'** अक्षर को **'ह'** करके उच्चारण करते थे। इसी कारण **'सिन्ध'** का **'हिन्ध'** या **'हिन्द'** नाम पड़ा और उससे **हिन्दू** और **हिन्दुस्तान** शब्दों का प्रयोग प्रचलित हुआ। यह उस समय की बात है जब भारत पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ नहीं हुये थे । इस तरह विदेशी व्यापारियों द्वारा इस देश के लोगों को हिन्दू कहा जाने लगा और इस देश को हिन्दुस्तान । इस बदले हुये 'स' से **'ह'** अक्षर को तातार, हूण तथा शक आक्रमणकारी भारत में ले आये, यद्यपि मालवाधिपति विक्रमादित्य ने उन्हें

अपनी राज्य सीमाओं से परे खदेड़ दिया, किन्तु उनका 'स' अक्षर का उच्चारण 'ह' की तरह यहाँ के लोगों की बोल चाल में प्रवेश पा गया ।

ऐसा भी कहा जाता है कि फारसी में **'हिन्दू'** शब्द का अर्थ होता है **भगोड़ा, चोर,** ठग और **गुलाम** । बड़ा आश्चर्य होता है कि यदि उपर्युक्त अर्थों में से फारसी का एक भी अर्थ सही है तब आर्यों के वंशजों का क्या आकर्षण था या क्या मजबूरी थी कि **'आर्य'** जैसा वैदिक तथा उत्तम अर्थों वाला शब्द छोड़कर अपने को हिन्दू कहलवाने में गौरव समझा? इसी प्रकार ब्राह्मण शब्द का प्रयोग उपनिषद काल में शुरू हुआ, जब ब्रह्म विद्या का विकास हुआ । ऋग्वेद में न **'आर्य'** शब्द है और न **"ब्राह्मण", 'हिन्दू'** होने का प्रश्न ही नहीं उठता पर कूर्म, कूर्मि, कूर्मिन शब्दों का अनेक बार प्रयोग मिलता है ।

प्राचीन यूनानी, सिन्धु को **'इन्डस'** तथा सिन्धु के पारवर्ती प्रदेश को 'इण्डिया' तथा यहाँ के रहने वालों को इण्डियन कहते थे । अंग्रेज जब इस देश के शासक बने तो उन्होंने भी इन्हीं नामों का प्रयोग किया और आज भी विश्व में भारत के लिये उपर्युक्त तीनों नामों का प्रचलन है । यहाँ तक कि कोलम्बस ने यह **'इंडियन'** नाम धोखे से नयी दुनिया की खोज कर लेने पर वहाँ के निवासियों (मूल अमेरिका वासियों को) **'रेड इंडियन'** के रूप में दिया था जो आज भी प्रचलित है ।

भारतवासी होने की क्या योग्यतायें हैं ?

स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड 11/14 में ये योग्यतायें इन शब्दों में वर्णित है :-

"तवेतत् भारतवर्ष सर्व बीजं वरानने ।
तत् कूर्म भूमि नंयित्र सप्रोप्तिः पुराय पापयो ।।"

(भावार्थ) : जो कोई व्यक्ति सिन्धु से लेकर समुद्र तक फैली हुई इस भारतभूमि को अपनी पितृ-भूमि तथा पुण्य-भूमि मानता है, वही यहाँ का वासी (हिन्दू) है । इस प्रकार सनातन हिन्दुओं के साथ-साथ, आर्य-समाजी, बौद्ध, जैन, सिख, आदि विविध मत-मतान्तरों के अनुयायीगण भी सब **'हिन्दू'** की परिधि में आ जाते हैं ।

प्राचीन क्षत्रियों का स्थान राजपूतों को

जाति सम्बन्धी विश्वसनीय जानकारी के मुख्यतः दो ही स्रोत उपलब्ध हैं । अंग्रेजों द्वारा लिखे गये अनेक ग्रंथ, भारत सरकार द्वारा संकलित दस वर्ष के अन्तराल में सन् 1901, 1911, 1921 तथा 1931 की जनगणना सम्बन्धी रिपोर्ट्स तथा कुछ हद तक पौराणिक ग्रंथ, महाभारत अथवा विदेशी यात्रियों का भ्रमण-वृत्त आदि । **'क्षत्रिय'** शब्द का बहुधा गलत अर्थ लगाया जाता है, अक्सर उसे राजपूत समझकर एक दूसरे का पर्यायवाची समझ बैठने की भूल जाने-अनजाने में कर डालते हैं । **'राजपूत'** जाति के लोग भारत में ईसा बाद छठी शताब्दी से प्रकाश में आये। वेद में **'राजन्य'** शब्द मिलता है पर **'राजपूत'** का कहीं जिक्र नहीं मिलता । न किसी पुराण महाभारत या अन्य किसी शास्त्र आदि में छठी शताब्दी से पूर्व उनका नामोनिशान मिलता है । गुजरात में आज वे आरक्षण के अन्तर्गत पिछड़े वर्ग की सूची के अन्तर्गत आते हैं । और कुलमी क्षत्रिय पाटीदार या पटेल लोग आरक्षण से बाहर हैं ।

महाभारत काल तक में रूढ़िवादी प्रथा जाति प्रचलित नहीं हुई थी । **कूर्मि, पटेल,** मराठा, रेड्डी, **बक्कीलगर, कम्मा, कापू, यादव, कोयरी, लोधा** आदि यही लोग क्षत्रिय जाति के अंग थे । महाभारत काल में क्षत्रियों के कुल 100 वंश थे । आपस में शादी-विवाह भी रचाते रहते थे । विद्वानों का ऐसा भी मत है कि प्राचीन काल में कूर्मि तथा यादव दोनों एक वंश के क्षत्रिय थे । वे असुरराज ययाति के वंश के थे । उनकी दो पत्नियां थीं।

ब्राह्मण कन्या देवयानी के गर्भ से द्रद्यु, अनु और पुरु हुये । पुरु सबसे छोटे थे । ययाति ने अपने बाद उन्हीं को राजा बनाया। उन्हीं के वंश में आगे चलकर कुरु हुये । उत्तर भारत के कूर्मिजन कुरु के वंश के क्षत्रिय हैं। महाभारत में कौरव-पाण्डव युद्ध एक प्रकार से कूर्मि-कूर्मि दो महान क्षत्रिय शक्तियों का निर्णायक युद्ध था । यादव पक्ष को दोनों ओर से लड़ना पड़ा । अर्जुन के सारथी बनकर कृष्ण ने युद्ध में भाग लिया और बड़े भाई बलराम और यादव सैन्य-शक्ति कौरवों की ओर से लड़ी । कुन्ती का विवाह पाण्डु से हुआ । राजसी स्तर पर यह पहला यादव-कूर्मि विवाह कहा जा सकता है ! अपने जाति के किसी नेता को नेता न मानने का स्वभाव कूर्मियों में लगता है कि उसी समय से चला आ रहा है । यादवों के प्रति विरोध भी शायद उसी भारत--युद्ध की देन है । बाद में इन सब प्राचीन क्षत्रिय वंशों को विस्मृत कर छठी/सातवीं शताब्दी से **'राजपूत'** क्षत्रियों की तूती बज रही है । प्राचीन क्षत्रियों का स्थान मानो उन्हें ही दे दिया गया है ।

पहचान जाति से नहीं, कर्म से

हिन्दू धर्म के मर्मज्ञ डा0 अरविंद शर्मा (**"हिन्दुस्तान"** दैनिक, शनिवार 5 मार्च 1994 ई0) के अनुसार प्राचीन हिन्दू वर्ण-व्यवस्था व्यवसायगत थी जो समाज के पतन में नहीं उत्थान में सहायक थी । लेकिन सच तो यह है कि कोई भी व्यक्ति कैसा भी व्यवसाय अपना सकता है, जैसे उच्च कुल के ब्राह्मण पद्मभूषण डा0 बिन्ध्येश्वरी पाठक का कार्यक्षेत्र **"सुलभ शौचालय इण्टरनेशनल"** है और वे इस क्षेत्र में विश्व में प्रसिद्धि अर्जित कर चुके हैं। कोई भी व्यक्ति किसी भी कार्य में दक्षता प्राप्त कर सकता है यह महज अभ्यास, एकाग्रता और उसकी रुचि पर निर्भर करता है, क्योंकि,

"करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान,
रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान।"

डा0 अरविंद शर्मा अपने लेख में कहते हैं कि कायस्थ पता नहीं कहां से सवर्ण होने का दंभ करते हैं, जबकि व्यास-स्मृति में स्पष्ट वर्णित है- **"कोल, कलवारश्च कायस्थ एते शूद्राः"** - अर्थात् कोल, कलवार (मदिरा व्यवसाय से प्राचीनकाल से सम्बन्धित जाति) और कायस्थ ये सब शूद्र हैं ।

जिस परलोक जाकर कोई वापस नहीं आया और न आकर उसके बारे में ही कुछ बताया उसके सुधारने की बात करना व्यर्थ है । प्रकट इंसान पर ध्यान नहीं देते, अदृश्य वर्ण, जाति और यहाँ तक कि भगवान के ध्यान की बात करते हैं । बेरोजगारी का निदान कोई **'पुराण'** नहीं करता, वह समझ (शिक्षा) करेगी, जो हम सब अभी तक नहीं कर पाये हैं ।

आधुनिक जीवन व्यवस्था जिस दौर में पहुँच गई है वहां धर्म और जातियां विकास में सहायक न होकर बाधक बन चुकी हैं । जाति-व्यवस्था प्रगति के पक्ष में नहीं है पर शाश्वत धर्म को जरूर जीवन में रखना चाहेंगे अन्यथा कोई भी मनुष्य को पशुता की ओर बढ़ने से रोक नहीं सकेगा । इक्कीसवीं सदी प्रारम्भ होने में मात्र 6 वर्ष बचे हैं फिर आज कंप्यूटर युग में यह कहना कि अमुक काम सिर्फ इस जाति के लिये निर्धारित है, विकास ही नहीं बल्कि व्यवस्था विरोधी है । पश्चिम के एक मशहूर समाजशास्त्री सैमुअर हैंटिंगटन ने इतिहास को नये संदर्भ में देखते हुए कहा है कि आज जो संकट है, वह आर्थिक और राजनैतिक नहीं है बल्कि सांस्कृतिक और सभ्यताओं का है । **दुनिया के जिन इलाकों में धर्म (रूढ़िवादिता) और जातियों का आग्रह व्याप्त है । वे इलाके दुनिया में सबसे पिछड़े हैं** उदाहरणार्थ भारतीय उपमहाद्वीप धार्मिक आग्रहों और अफ्रीकी महाद्वीप नस्ली द्वंदों में उलझा है । **ये दोनों भूखण्ड** समस्त प्राकृतिक **सम्पदाओं के होते हुये भी विकास में पिछड़े हुओं में गिने जाते हैं । दुनिया के जिन देशों ने सबसे ज्यादा विकास किया है उनके मूल में जाति, नस्ल और धर्म के आग्रहों से मुक्ति ही सबसे पहली शर्त रही है** । हमें भारत को समुन्नत रूप में 21वीं सदी में ले जाना है तो इस तरह के दुराग्रहों से अपने समाज को मुक्त करना होगा ।

 जरूरत यह है कि वर्ण-व्यवस्था के पुराने स्वरूप पर विवाद न बढ़ाकर आज के युग को पहचाना जाए और आवश्यकताओं के अनुरूप अपने को ढाला जाए। आज आरक्षण की व्यवस्था इसलिये की गई है कि सदियों से जो लोग पिछड़े हुये हैं उन्हें आगे बढ़ाने और बाकी लोगों की बराबरी में आने का मौका मिले।

अतः आज पुरानी वर्णाश्रम व्यवस्था सफल नहीं हो सकती, अतः उसको कायम कराने की जिद्द छोड़नी ही पड़ेगी। क्योंकि यह व्यवस्था स्वयं चरमराकर खंडित होकर शिथिल होती जा रही है। आज का युग विज्ञान का है अतः हर क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा किया जाए। आज खेत में काम करने वाला व्यक्ति, चाहें किसी भी जाति का हो, समान प्रतिष्ठा का अधिकारी है। एक सरकारी दफ्तर में एक अधिकारी ऊँची जाति का है दूसरा नीची जाति का है परन्तु काम में, वेतन में, और अन्य किसी भी दृष्टि में दोनों में कोई भेद नहीं है।

वर्ण-व्यवस्था में उथल-पुथल

भारत के मध्ययुग के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा तथा यहाँ के राजाओं-महाराजाओं की आपसी फूट तथा कलह से यह देश शक्तिहीन होता गया। देश में बौद्धधर्म और जैन धर्म फैला। काफी अरसे तक इन धर्मों का इस देश में लगभग सर्वत्र बोलबाला रहा। बौद्धधर्म को पलटकर फिर ब्राह्मणवादी हिन्दूधर्म देश में पुनर्स्थापित हुआ, जिन जातियों ने इस धार्मिक उलट-पलट में ब्राह्मणों का साथ नहीं दिया, उन्हें जाति-भ्रष्ट घोषित करके वर्णाश्रम-विभाजन व्यवस्था में निचले स्थान पर ढकेलने की कुचेष्टा की गई और बहुतों को बेरहमी से नीचे धकेल भी दिया गया। **राम-कृष्ण** तथा **महावीर-बुद्ध** के जन्म प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार के उनके वंशज जो पहले क्षत्रिय थे, आज पिछड़े वर्ग में हैं और उनकी आबादी 40 प्रतिशत से ज्यादा ही है। और नये क्षत्रिय राजपूत 5 प्रतिशत भी नहीं हैं।

मध्य युग का इतिहास बताता है कि भारत में बौद्ध-धर्म के अन्तिम चरण में उसको और शीघ्र समाप्त करने के लिये तथा विदेशी हूणों के आक्रमण को निष्फल करने तथा उनके दाँत खट्टे करने के लिये ब्राह्मण-पुरोहितों ने उस काल में 'हिरण्यगर्भ' पद्धति द्वारा लड़ाकू जन-जातियों और लड़ाकू कबीलों के सरदारों को उनके समस्त अनुयायियों सहित **'अग्निवंशी' क्षत्रिय, चौहान, सोलंकी, परमार** और **प्रतिहार** घोषित किया। जिन्होंने बौद्ध-विहारों को नष्ट करने तथा बौद्ध-भिक्षु जनों के शीश काटने में उनका कहना माना और वैसा ही कर दिखाया। वे प्रसिद्ध कहावत के अनुसार **'सीताराम'** से यकायक **'सिकन्दर'** घोषित कर दिये गये, अर्थात जन-जाति और गिरिजाति या गिरिजनों को **'अग्निवंशी' क्षत्रिय जन** ब्राह्मणों के द्वारा पुरस्कार के रूप में घोषित कर दिया गया। उस समय जात्योन्नति या जातीय-पतन, पुरस्कार अथवा दण्ड-स्वरूप में देना ही उन ब्राह्मणों के हाथ में था, जिसको खुले दिल और खुले हाथ से उन्होंने बाँटा। ऐसा करने में उन्हें नवक्षत्रियों से खूब दक्षिणा भी मिलती थी, तभी इस देश की समस्त जनता को पुनः ब्राह्मणवादी व्यवस्था के अन्तर्गत अल्पकाल में वापिस लाना सम्भव हो सका था। यह ब्राह्मणवाद का विचित्र युग रहा है जिसमें **"जिसकी लाठी उसकी भैंस"** का सिद्धान्त सही माना जाता रहा है। इन्हीं सब बातों के परिणाम स्वरूप, हिन्दू समाज का ताना-बाना जीर्ण-शीर्ण होता गया। हिन्दू समाज प्याज के छिलकों के रूप में विभक्त एवं सारहीन बना दिया गया। प्याज के ऊपरी छिल्के सूखकर स्वतः निकल जाते हैं। इस समाज के दुःखी और पीड़ित वर्ग भी प्याज के सूखे छिल्कों की तरह निकल-निकल कर मुसलमान और ईसाई बनते गये। कोई शक नहीं वहाँ वे अपने को इंसान तो महसूस कर सके जबकि हिन्दुओं के घर में पालतू जानवर और कुत्ता तक भीतर जा सकता है पर उनका प्रवेश निषेध है।

इस पुस्तक में पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध हुआ कि वे **'मराठा'** थे, **शूद्र** थे और **क्षत्रिय नहीं थे**, उनका **यज्ञोपवीत** नहीं हुआ था, और उन **ब्राह्मणों के मतानुसार कलियुग में क्षत्रिय रह ही नहीं गए थे**। सब परशुराम ने 21 बार में मार दिये थे। आश्चर्य होता है कि यह आक्षेप उस ब्राह्मण वर्ग द्वारा लगाया गया जिन्होंने समाज का नेतृत्व करने के अपने कर्तव्य

को बिल्कुल भुला दिया था । धन के लालच में सोमनाथ मंदिर का गुप्त द्वार विदेशी आक्रमणकारी महमूद गजनवी को बताकर, उस पवित्र हिन्दुओं के मन्दिर का सत्यानाश करवा डाला था । अपने इष्ट देवता तक से इतना बड़ा विश्वासघात्। सन् 1026 ई0 में महमूद गजनवी ने मात्र तीस हजार की फौज लेकर भारत पर हमला किया और तीन लाख 'राजपूत' क्षत्रिय योद्धाओं को परास्तकर, सोमनाथ के पवित्र मंदिर की अतुल धन सम्पत्ति लूटकर उसे बुरी तरह ध्वस्त कर दिया । इतने पर भी हमारी आँखे नहीं खुली, और उस हार का कारण ब्राह्मणों ने यह बताया कि पूर्व जन्म में गजनवी ने शिवजी पर हजार काँवरे जल चढ़ाया होगा ।

शिवाजी जैसे महापुरुष ने अपना क्षत्रियत्व, गोत्र बताकर नहीं अनेक युद्धों में पराक्रम दिखाकर और शक्तिशाली बीजापुर के सुल्तान और मुगल साम्राज्य की सेनाओं पर विजय पाकर सिद्ध किया था । पद दलित हिन्दू जाति में नया आत्म विश्वास पैदा करना उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य है । किस राजपूत शासक ने ऐसा किया? पर ये क्षत्रिय बने रहे और मराठा इन ब्राह्मणों द्वारा शूद्र कहे गये । मुगल और बीजापुर की सुसज्जित सेना के मुकाबले में शिवाजी ने पूना के पास के 12 मावल और महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों से सीधे-साधे छोटे कद के साँवले मराठा कुनबियों की ऐसी प्रबल सेना खड़ी की, जिससे सभी थर्राते थे । जिस प्रकार वीर शिवाजी और पुत्र सम्भाजी सवाई राजा जयसिंह के आग्रह से औरंगजेब के दरबार में पेश होने को तैयार हुये, पर वहाँ पहुँचकर उचित आदर न पाकर, जो शिवाजी वहाँ गरजे और मुगल सम्राट से बिना पूछे लौट पड़े, क्या किसी राजपूत सरदार ने इतना साहस दिखाकर अपना क्षत्रियत्व और गोत्र कभी प्रदर्शित किया था? कभी नहीं, इतिहास साक्षी है । वे तो अपनी बहिनों और बेटियां को मुगलों के हरमों में भेजकर ऊँची-ऊँची मनसबदारी लेकर, मुगल सम्राटों के सम्मुख हाथ जोड़े सिर झुकाये दरबार में खड़े रहते के आदी हो चुके थे । ब्राह्मणों ने उनके खूब गुण-गान किये हैं। यही है इस देश का दुर्भाग्य और हिन्दू समाज के पतन का मुख्य कारण । जो ये कारण न देखकर शुतुरमुर्ग की तरह सिर रेत में घुसेड़कर हिन्दू समाज के पतन के कारण ढूँढेगा उसे वहाँ क्या मिलेगा, अभी तक द्विज इतिहासकार इसी तरह की खोज करते रहे हैं ।

साम्प्रदायिक सद्‌भाव के प्रतीक छत्रपति शिवाजी महाराज

वरिष्ठ राजनीतिज्ञ **श्री मधु लिमए** ने एक लेख "सन् 1993 **"सबक लेने का साल" लिखा है"** जोकि **'माया'** मासिक पत्रिका के अंक 31 फरवरी 1994 के पृष्ठ 9 पर प्रकाशित हुआ है, उसमें एक स्थान पर उन्होंने कहा है :-

"कभी-कभी मेरे मन में विचार आता है कि **संघ परिवार के अशोक सिंघल** और **लालकृष्ण आडवाणी** तथा **शिवसेना के बाल ठाकरे,** शिवाजी से भी श्रेष्ठ और महान हिन्दू हैं क्या? संघ परिवार और शिवसेना के तत्वज्ञान और कार्य पद्धति को न मानने पर तो शिवाजी को भी हिन्दू धर्म का शत्रु मानना पड़ेगा । कारण, उनका आचरण उनकी नीति बिलकुल अलग थी । **मराठा राज्य के संस्थापक शिवाजी के** समकालीन मुस्लिम इतिहासकार **काफीखाँ** ने काफिर, कुख्यात विद्रोही, चतुर बदमाश धोखेबाज आदि विशेषणों से उनकी निन्दा की है । किन्तु उनके कार्यों का वर्णन करते हुए उनकी लेखनी से स्वतः ही प्रशंसापूर्ण उद्‌गार निकले । उसने कहा, शिवाजी दूर के देशों से आने वाले काफिलों पर हमले करके माल लूटता था । किन्तु उसका एक सख्त नियम था कि लूट-पाट करने वाली सेना को मस्जिद, कुरान और स्त्रियों को किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाना है । यदि उसके हाथ कुरान शरीफ की प्रति आती तो उसे वह अपने किसी अनुयायी को सौंप देता । उसके द्वारा बंदी बनायी गयी हिन्दू तथा मुस्लिम स्त्रियां पूर्ण सुरक्षित रहती । मुस्लिम स्त्रियों की आबरू तथा बच्चों के जीवन की वह पूरी रक्षा करता और उन्हें उनके संबंधियों के पास सम्मानपूर्वक भेज देता । इस बारे में उसके आदेश बहुत सख्त थे और इनका जो भी उल्लंघन करता उसे वह दंडित करता था ।

साम्प्रदायिक सद्भाव के अलावा शिवाजी की एक और विशेषता थी। उन्होंने अपने कार्यों से जातिबंधनों से जकड़े हुऐ समाज में सामाजिक अभिसरण की प्रक्रिया शुरू की। हिन्दू समाज के सदियों से सताये और दबाये गये वर्गों में उन्होंने हर क्षेत्र में नेता पैदा किये।

निस्संदेह इस समय ऐसी स्थिति आ गयी है कि हमारे देश की जनता को अपना मार्ग और दिशा निश्चित करनी होगी। उसे निर्णय करता होगा कि उसे संघ परिवार और शिव सेना का मार्ग अपनाना है या शिवाजी महाराज का। संघ परिवार का मार्ग देश के विध्वंस और भाड़े के लेबनानीकरण का है और शिवाजी का मार्ग सहिष्णुता का आंतरिक शान्ति और सर्वांगीण उत्कर्ष का है। निर्णय में बिलम्ब करना घातक होगा।"

शिवाजी के बारे में ब्राह्मणजन चाहें मौन साधे रहे, पर उनके कट्टर शत्रु औरंगजेब ने भी शिवाजी की मृत्यु पर कहा था- "शिवाजी महान नेता थे। जब मैं भारत के पुराने राज्यों को नष्ट करने का प्रयास कर रहा था तब उन्होंने अपनी प्रतिभा से एक नया राज्य स्थापित किया। मेरी सेना उनके विरुद्ध उन्नीस वर्ष लड़ती रही। फिर भी उनके राज्य का बराबर विस्तार होता गया।" ("छत्रपति शिवाजी", लेखक काशीनाथ गोबिन्द जोगलेकर, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, संस्करण जनवरी1972, पृष्ठ 74 से साभार) औरंगजेब की शिवाजी के प्रति झुंझलाहट को प्राचीन कवि और इतिहासकार सभासद ने अपनी रचना में इस प्रकार व्यक्त किया है :-

बोलो तोल सकेगा क्या कोई सागर का पानी?
तपते हुए सूर्य को देखेगा कोई अभिमानी?
जलती आग हथेली पर रख सकता कोई मानव?
कठिन जीतना वीर शिवा को, वह दुर्जय सेनानी।

सम्पूर्ण भारत में **'हिन्दवी स्वराज्य'** की स्थापना का सपना सजोने वाले एवम् उसका बाल्य-काल से ही साहसपूर्ण अनुष्ठान करते हुए उसे अंततः पूर्ण करने वाले, धर्म-विभेद हीन, धर्म की स्थापना करने वाले, योद्धा, कूटनीतिज्ञ, दूरदर्शी, अतुल पराक्रमी **छत्रपति महाराज शिवाजी,** भारतीय इतिहास के ऐसे देदीप्यमान राष्ट्रोद्धारक महापुरुष थे, जो किसी राष्ट्र को भाग्य से ही प्राप्त होते हैं। यदि फ्रांस को नेपोलियन और इंग्लैण्ड को नेलसन पर गर्व है तो उससे भी अधिक भारतवर्ष को शिवाजी पर गर्व होना चाहिए।

पर ब्राह्मणों की निगाह में शिवाजी में कोई श्रेष्ठता नजर न आयी। शिवाजी ने ब्राह्मणों द्वारा किये गये अपने अपमान को बहुत महसूस किया। जिनकी सुरक्षा और समृद्धि के लिये उन्होंने अपना जीवन ही लगा दिया था, वे बार-बार उनको शूद्र मानते रहे और इसलिये उन्होंने **बालाजी आवजी का** सहारा लिया, जो कायस्थों का नेता और ब्राह्मण के गर्व का शिकार था। ब्राह्मण कायस्थों की बुद्धि और साहित्यिक योग्यता के प्रति डाह करते थे, जो शिक्षा और सरकारी नौकरी में उनके एक मात्र प्रतिद्वन्दी थे, और इतना कहकर सान्त्वना प्राप्त कर लेते थे कि कायस्थ निम्न जाति के हैं और उनको वेदों के अनुसार अनुष्ठान करने का कोई अधिकार नहीं है, तथा उन्होंने बाला जी आवजी का सामाजिक बहिष्कार भी घोषित कर दिया था, क्योंकि उन्होंने अपने लड़के को यज्ञोपवीत धारण करा दिया था। स्वाभाविक ही था कि बाला जी की सहानुभूति अपने स्वामी के प्रति थी और उन्होंने गागा भट्ट द्वारा शिवाजी का राज्याभिषेक करवाकर उनको सामाजिक उच्चता प्रदान करवाई, जिसने शिवाजी को शुद्ध क्षत्रिय बना दिया (सर यदुनाथ सरकार-**"शिवाजी और उनका युग,"** पृष्ठ 367-368)

पाठकगण उस बहुचर्चित घटना से वाकिफ होंगें कि एक बार एक सफल मुहिम के पश्चात उनके स्थानीय अधिकारी द्वारा एक अति सुन्दरी मुसलमान स्त्री को शिवाजी महाराज के सम्मुख पेश किया गया। पर शिवाजी तो खुश होने की जगह उस अधिकारी पर क्रोधित हो बरस पड़े और इस धृष्टता के लिये उसे कठोर दंड घोषित किया। उस महिला से बड़े आदर से सर्वप्रथम क्षमा याचना की, फिर कहा-माँ! क्या अच्छा होता कि आप जैसी

सुन्दर स्त्री मेरी माँ होती तो मैं भी उससे लाभांवित होता । उन भद्र महिला को शिवाजी के हुक्म से कीमती भेंट सहित अपनी सुरक्षा में बाइज्जत उनके परिजनों तक पहुँचा दिया गया ।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने "शिवाजी उत्सव" शीर्षक की अपनी सुदीर्घ कविता के अन्त में जो लिखा है उसका हिन्दी भावानुवाद इस प्रकार है ।

"हे बंगवासियों मरहठों के साथ **'शिवाजी की जय बोलो"** । **'शिवाजी उत्सव'** सम्पन्न करने के लिये मरहठों के साथ-साथ चलो । हे भारतवासियो तुम भारत की पूर्व-पश्चिम, उत्तर दक्षिण सभी दिशाओं से एकत्रित होकर शिवाजी के पावन नाम-गौरव के आनन्द का अनुभव करो ।"

आज भी स्वतन्त्र भारत में कुछ लोग अपने पुराने हथकन्डे तथा तिकड़म राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भी अपनाने से बाज नहीं आ रहे हैं इस कथन की पुष्टि में सुधी पाठकगणों का ध्यान राष्ट्र के उच्चतम अलंकरण वितरण की ओर आकर्षित करना चाहूँगा हाल ही में उसमें देखा गया कि उन लोगों ने महज सिनेमा कलाकार और चन्द वर्षों पूर्व बने राजनेता तक को देश की उच्चतम उपाधि **"भारत रत्न"** से अलंकृत करने में जरा भी देरी नहीं लगायी, पर **लौह पुरुष सरदार बल्लभभाई पटेल** को **"भारत रत्न"** से अलंकृत करने के निर्णय लेने में 44 वर्ष लग गये। **सुभाष चन्द्र बोस** के महान कृत्यों से ही अंग्रेज भारत छोड़ने का मन बना बैठे थे । आजादी पाने के अन्य सब कारण महज द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि हैं, पर इस राष्ट्र ने अब तक उनको भी **'भारत रत्न'** के अलंकरण से वंचित रखा है । ये देरी क्यों? यद्यपि **सरदार पटेल** या **सुभाषचन्द्र बोस** जैसे महापुरुष इस अलंकरण के मोहताज नहीं है, अपितु इन देश रत्नों के नामों से जुड़कर यह अलंकरण स्वयं और अलंकृत हो सकेगा । सरदार पटेल को पहले शायद इसलिये अलंकृत न किया हो कि वे द्विज न होकर एक साधारण **कुण्बी-पाटीदार-पटेल कृषक** परिवार में जन्मे थे । बल्लभभाई के पिता श्री झबेरभाई पटेल सन् 1857 के सैनिक विप्लव में गुजरात से पैदल चलकर झांसी पहुँचे और रानी लक्ष्मीबाई की सेना में भर्ती होकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े थे । पर सुभाष चन्द्र बोस जैसों की सुकृति जनता के ह्रदय पटल पर अंकित है, अमिट है, पर जो अब तक सरकारी प्रचार और सरकारी मान्यताओं की बैसाखी लगाकर देश के ऊँचे नेता बना दिये गये थे, वे सदा ऐसे रहने वाले नहीं हैं। इस कथन की सत्यता में सोवियत रूस के खंड-विखंड होने के पश्चात् आज स्टालिन और लेनिन जैसे दिग्गज, विश्व कोटि के उच्च नेताओं तक का अनेक प्रकार से अपमान करने के और इतिहास से विस्मृत कराने के भी अनेकानेक प्रयास चल रहे हैं । क्या हम लोग एक दशक पूर्व रूस में ऐसा कुछ होने की कल्पना भी कर सकते थे? क्या हम दावें से यह कह सकते हैं कि हमारे देश में जिन लोगों का वर्चस्व सदा बढ़-चढ़ कर रहा है, वह क्या आगे भी रहने वाला है?

श्री रामस्वरूप वर्मा, पूर्व मंत्री उत्तर प्रदेश सरकार तथा **'अर्जक संघ'** के संस्थापाक, अपनी पुस्तक **'मानववाद बनाम ब्राह्मणवाद'** में लिखते हैं :-

"प्रागैतिहासिक काल में कृष्ण का राज्य, **जो अहीर राज्य** था सारे देश में फैला हुआ था । इसके बाद **मौर्य राज्य** सारे भारत, ईरान, अफगानिस्तान, सीक्यांग प्रदेश और तिब्बत तक फैल गया । ब्राह्मणवादियों के अनुसार मौर्य लोग **नाई** और **वर्णसंकर** थे । **समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य** का साम्राज्य सारे भारत में फैल गया । **वे तेली थे** । इसके बाद मुसलमानों ने सम्पूर्ण भारत पर राज्य किया जो ब्राह्मणवादियों के हिसाब से **म्लेच्छ** थे । अन्त में सारे भारत पर **मराठा साम्राज्य** छा गया । **जो कुर्मी यानि कुनबी शूद्र थे । ब्राह्मणवादी कभी भी सारे देश पर हुकूमत नहीं कर सके । इन्सानी बराबरी का प्रतिपादक बौद्ध धर्म देश की सीमाओं में न बँधकर सारे विश्व का धर्म बन गया और आज भी सीमा विहीन है, किन्तु ब्राह्मणवाद तो दुनिया के किसी देश में मान्य नहीं है । धर्म सीमा विहीन होता है और अधर्म सीमित । यदि इन्सानी बराबरी पर आधारित** नीति रही होती **तो पाकिस्तान बनने का अवसर ही न आता । इण्डियन नेशनल कांग्रेस** भी, मानव-बराबरी के सिद्धान्त लेकर चली और **"भारत का संविधान"** भी मानव-मानव की बराबरी का प्रतिपादक है ।

गांधीजी से पूर्व मराठों ने दलितोद्धार कार्य प्रारम्भ किया

मराठा (कुनबी) जाति में जन्मे कर्मवीर बी0 आर0 शिन्दे, ने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से समाजशास्त्र एवं धर्म का तुलनात्मक अनुशीलन पूरा किया था । उन्होंने सन् 1906 ई0 में **'डिप्रेस्ड क्लास मिशन'** (दलितवर्ग मिशन) की स्थापना की, तब तक गांधी जी अफ्रीका में थे । भारत के राजनैतिक क्षितिज पर अभी वे उदित भी नहीं हुये थे । उधर **कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति शाहू** अपने राज्य की दलित प्रजा का सर्वप्रथम उद्धार करना चाहते थे । इस मानवीय परोपकार हेतु छत्रपति शाहू जी अपनी राजगद्दी, अपने परिवार तथा राजकोष और अपने जीवन तक की कुर्बानी देने को तत्पर रहते थे । उन्होंने सन् 1902 में कानून बनाकर 50 प्रतिशत आरक्षण पिछड़े और निर्बल लोगों के लिये लागू कर दिया था । जबकि भारत सरकार सन 1993 में प्रथम वार पिछड़े वर्ग के लिये ऐसा कर पायी । **छत्रपति शिवाजी महाराज** द्वारा एक अद्वितीय भौगोलिक तथा राजनीतिक क्रान्ति इस देश में हुई थी, जबकि **शाहूजी महाराज** द्वारा किये गये सारे कार्य सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक एवं मानव मूल्यों से सम्बद्ध थे । इस द्रष्टव्य सामाजिक परिवर्तन के बारे में किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि छत्रपति शाहूजी जैसा नरपुंगव समस्त नरेश मंडल में अथवा सम्पूर्ण भारत में न तो उनसे पहले हुआ और न बाद में हुआ । शिव सेना शिवाजी महाराज के नक्शे कदम पर चलने का दावा करती है पर मराठाबाड़ा विश्वविद्यालय का नाम बदल डा0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय करने में सबसे ज्यादा अवरोध शिव सेना चीफ श्री बालठाकरे का है जो कि ब्राह्मण हैं यही रुख पेशवाओं ने शिवाजी के बाद मराठा शासन में पिछड़ों और दलितों के साथ रखा जिससे मराठा राज्य का पतन होता गया ।

महात्मा ज्योतिबा फुले कुनबी मराठे थे । उनके मामा फूलों का कारोबार करते थे, उन्होंने ही इन्हें पाला-पोसा था । मामा को लोग फूल के व्यवसाय के कारण फुले आस्पद से सम्बोधित करते थे । उसी प्रकार ज्योतिबा के नाम का प्रत्यय फुले बन गया । ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र में स्त्री-शिक्षा और अछूतोद्धार के अग्रदूत थे । महात्मा फुले ने भविष्यवाणी की थी :-

"जब शूद्रों-अतिशूद्रों, कोल-भीलों के बच्चे जिनको ब्राह्मणों ने नीच, शूद्र, अछूत कहकर धिक्कारा है, धीरे-धीरे समुचित ज्ञान और शिक्षा प्राप्त करेंगे तो एक दिन उन्हीं के बीच में किसी महान व्यक्ति का प्रादुर्भाव होगा जो हमारी समाधि पर पुष्प वर्षा करेगा । और हमारे नाम से हर्ष और विजय की घोषणा करेगा । यह मेरी पक्की भविष्यवाणी है ।" महात्मा फुले की भविष्यवाणी सच्ची निकली । उनके विचारों और दर्शन के अनुयायी कोल्हापुर नरेश तथा डा0 भीमराव अम्बेडकर ने अछूतोद्धार के लिये गहन संघर्ष किया और डा० अम्बेडकर ने स्वतंत्र भारत के संविधान की रचना की ।

राहुल सांकृत्यायन जी ने हिन्दू धर्म के दोषों को देखा और उसकी आलोचना भी की । उदाहरण के लिये उन्होंने **"कुमायूँ"** ग्रंथ की परिशिष्ट में एक पाकिस्तानी (पूर्व भारतीय) भाई को लिखे पत्र में **हिन्दू-इस्लाम संस्कृतियों** के सन्दर्भ में अपने विचार इन शब्दों में प्रगट किये थे :-

"हिन्दू धर्म और संस्कृति बिल्कुल दूध की धुली नहीं है । यदि ऐसा होता तो हमारे देश में जात-पात न होती, हज़ारों वर्षों से मानव-अधिकारों से वंचित हमारे भाई अछूत न होते । तो भी यह मानना पड़ेगा कि संस्कृतियों के संघर्ष के समय इसने **'जियो और जीने दो'** को बहुत दूर तक माना । यदि इस्लाम ने भी उसे स्वेच्छापूर्वक माना होता तो शायद भारत के विभाजन की नौबत ही न आती ।"

डा० भीमराव अम्बेडकर

बड़ौदा के **मराठा (कुरमी) नरेश सयाजीराव गायकवाड़** तथा **कोल्हापुर** ने **मराठा (कुरमी) नरेश छत्रपति शाहू** का बरदहस्त डा0 भीमराव अम्बेडकर को प्राप्त हुआ । उनका आर्थिक सहयोग मिला, जिससे जून 1913 में महाराजा

बड़ौदा की राजकीय सहायता से प्रतिभासम्पन्न **डा० अम्बेडकर** को **कोलम्बिया विश्वविद्यालय** से उच्च शिक्षा प्राप्त करने भेजा गया। बाद में **कोल्हापुर नरेश** ने उन्हें **लंदन** भेजा। डा0 अम्बेडकर सुलभ प्रतिभा, ज्ञान-विज्ञान तथा वैभव में अद्वितीय थे। यह दलितों का अहोभाग्य ही था कि दलितों की मुक्ति हेतु संघर्ष करने के लिये डा0 अम्बेडकर जैसे समर्थ, योग्य, साहसी, और दृढ़ प्रतिज्ञ महापुरुष का जन्म हो गया।

डा० अम्बेडकर ने अछूत प्रथा की उत्पत्ति सन 400 ई0 में मानी है। उनके अनुसार अछूत इसलिये अछूत बना दिये गये, क्योंकि उन्होंने बौद्ध-धर्म को त्यागने से इन्कार कर दिया था। तथा हिन्दू समाज के पुनर्निर्माण को स्वीकार नहीं किया।

ब्राह्मणों के अत्याचार से मुक्ति पाने के लिये ही ज्यादातर हरिजन मुसलमान या ईसाई बने थे। ब्राह्मणों का कहना था कि हिन्दू जन्मना होता है, कर्मणा या धर्म परिवर्तन से नहीं। इसी कारण आज भी हिन्दुओं में अन्य धर्मावलम्बियों के आने का रास्ता बन्द है। आर्य समाज आदि सुधारवादी आन्दोलनों के कारण जो विधर्मी शुद्ध होते भी हैं समाज में उचित स्थान न मिलने पर वे अपने मूल धर्म में लौट जाते हैं। कश्मीर और पूर्वी बंगाल (वर्तमान में बंग्लादेश) में मुसलमानों की बहुलता इसी कट्टरपंथी नीति का कुपरिणाम है।

पाठकगण जानते होंगे कि मुगल सम्राट **फर्रुखसियर** की एक बेगम **शान्ति कुमारी** हिन्दू थी। **कालीपद मुखर्जी** (काला पहाड़) को ढ़ाका के नबाव की बेटी से विवाह करने पर हिन्दू समाज ने कहीं जगह नहीं दी। जाति से बहिष्कृत किये जाने का अपमान वह कैसे भुला सकता था अतः उसने मजबूरन मुसलमान बनकर बंगाल में हिन्दुओं को बड़े पैमाने पर मुसलमान बनाना शुरू कर दिया। उसने कहर ढ़ाया और गांव के गांव तथा कसबे के कसबे मुसलमान बनाता चला गया। आज बंग्लादेश उसी कट्टरपंथी विचारधारा का परिणाम है। उन्होंने न केवल हिन्दू धर्म तजा अपितु भारत से शत्रु भावना रखने वाला एक नया देश बना लिया।

ऐसे ही कहा जाता है कि **कश्मीर के राजा सहदेव** के राजदरबारी **रतन जू** का कोई धर्म नहीं था। गीता की कथा सुनकर, उसे हिन्दू धर्म ग्रहण करने की इच्छा हुई। उन्होंने कथावाचक जी से हिन्दू धर्म ग्रहण करने की जिज्ञासा प्रगट की तो उन्होंने **रतन जू** को हिन्दू बनाने से साफ इन्कार कर दिया। उसे क्रोध आया वह मुसलमान **बुलबुल शाह** के पास गया उनके द्वारा उसने मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया, वहाँ उसकी इज्जत की गयी। बाद में इन्हीं दरबारी **रतन जू का मुसलमान बेटा शाहमीर** राजा सहदव को मारकर कश्मीर के सिंहासन पर बैठा और इस्लाम धर्म का खुलकर प्रचार-प्रसार किया। जिसने मुस्लिम मजहब कबूल नहीं किया, उसको शाही हुक्म के तहत हाथ-पैर बाँध करके झेलम नदी में डुबो दिया, जिनमें ज्यादातर कट्टरपंथी कश्मीरी पंडित ही थे। जहाँ उन कश्मीरी पंडितों को निर्दयता पूर्वक ठंडे पानी में डुबोकर मारा गया था, आज भी वह स्थान कश्मीर में **'बट मजार'** के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ हिन्दू जान-माल बचाकर भागे भी तो उनको हिन्दूकुश पर्वत पर मौत के घाट उतार दिया गया। अभी नवम्बर 1993 में हजरतबल दरगाह में आतंकवादियों ने स्थानीय लोगों को बन्धक बना रखा था। सारे विश्व में यह चर्चा का विषय रहा जब तक कि 31 दिनों बाद उन्होंने आत्म सर्मपण न कर दिया। कश्मीर की जनता प्राचीन काल में प्रदर्शित कट्टर ब्राह्मणवादी नीति के कारण आज शतप्रतिशत हिन्दुस्तान विरोधी हो चुकी है, बचे-खुचे कश्मीरी हिन्दू जिनमें पंडित अधिक हैं पहले ही वहाँ से खदेड़कर निकाल दिये गये थे जो कि दिल्ली, नोएडा, गाजियाबाद में शरणार्थी बनकर रह रहे हैं। **पंडित नेहरू** ने **सरदार पटेल** की राय न मानकर कश्मीर की समस्या इतनी जटिल बना दी कि आज इन महापुरुषों के जाने के बाद कभी भय लगता है कि कहीं कश्मीर भारत से अलग न हो जाये, क्योंकि अब कोई **सरदार पटेल** जैसा नेता देश में नजर नहीं आता जो इस गुत्थी को सुलझा सके। इतने पर भी कट्टर ब्राह्मणवाद को पूर्णरूपेण अहसास हुआ कि नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, पर उसके कारण हिन्दू धर्म को तथा हिन्दुस्तान को अवश्य बहुत भयंकर क्षति उठानी पड़ी है। बचे खुचे ये हिन्दू और बचा खुचा यह हिन्दुस्तान भी भाईचारे और समतापूर्वक रह ले तो यहाँ विश्व की प्राचीनतम संस्कृति और आर्यों के वंशज नेस्तनाबूद होने से बच सकेंगे।

डा० अम्बेडकर भारत की आजादी के कट्टर समर्थक थे पर वे सामाजिक क्रान्ति को राजनैतिक क्रान्ति से पहले लाना चाहते थे। अंग्रेजी शासन में अछूतोद्धार को प्रोत्साहन मिलता था अतः ब्राह्मणवाद ख़तरे में पड़ गया था। इसलिये कांग्रेसी ब्राह्मण लोग आजादी शीघ्र लाने के पक्ष में थे। चाहे उसके लिये देश का विभाजन क्यों न हो जाय। देश स्वतंत्र हुआ। ब्राह्मणों का सत्ता पर प्रभाव और दवाब बढ़ा, जातिवाद और जाति-प्रथा अब न केवल समाज बल्कि राजनीति में भी प्रमुख भागीदारी अदा कर रहीं है।

पर मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ इस पुस्तक में कट्टर, पोंगापंथी, टकापंथी ब्राह्मणवाद की स्थान-स्थान पर आलोचना जरूर की गयी है पर ब्राह्मण जाति और व्यक्ति के प्रति वही आदर है जो अपनी निजी जाति के व्यक्ति का, क्योंकि कई महान समाज सुधारक ब्राह्मण जाति में ही जन्मे हैं, जैसे आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द। बंगाल में ब्रह्म-समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय भी ब्राह्मण कुल में जन्मे थे। ब्राह्मणों में महादेव गोविन्द रानाडे, अपने समय के एक उच्चकोटि के सुधारक थे। जहाँ बाल गंगाधर तिलक के कोल्हापुर नरेश छत्रपति, शाहू जी एवं डा० अम्बेडकर के समाज सुधार और सामाजिक क्रान्ति विचार भिन्न थे, परन्तु उन्हीं के पुत्र, श्रीधर पंत इन्हीं कार्य-क्रमों में सक्रिय भाग लेते थे। गांधीजी चाहते थे हिन्दू समाज में जातियां रहें किन्तु दलितों की दशा में सुधार हो, पर वे अपने जन्मजात कर्म को भी करते रहें। पर बाबा डा० भीमराव अम्बेडकर तीन महापुरुषों को अपना प्रेरणा स्रोत मानते थे, वे थे **कबीर, महात्मा ज्योतिबाफुले और महात्मा बुद्ध। कबीर ने उन्हें भक्ति भावना प्रदान की, फुले ने उन्हें ब्राह्मण विरोध के लिए प्रेरित किया और बुद्ध से उन्हें मानसिक और दार्शनिक पिपासा बुझाने वाला अमृत मिला। बाबा साहब की प्रबल आकांक्षा थी कि हिन्दू समाज से या तो वर्ण-व्यवस्था तथा जाति-प्रथा सदा-सदा कि लिये हटा दी जाय या फिर हिन्दू समाज से वे सदा के लिये हट जायें।**

यह हिन्दू धर्म का दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि 14 अक्टूबर 1956 को लाखों लोगों ने साथ बाबा साहब अम्बेडकर ने बौद्धधर्म को विधिवत अपना लिया। वे कहा करते थे कि, **"संविधान के माध्यम से भारतीय मुद्रा में अशोक स्तम्भ, झंडे में बौद्ध धम्म चक्र तथा देश के प्रथम नागरिक राष्ट्रपति के आसन के ऊपर भगवान बुद्ध की आदम कद खड़ी प्रतिमा, स्थापित कर मैंने भारत में बौद्धधर्म का ऐसा स्तम्भ गाड़ दिया है जिसे कोई उखाड़ नहीं सकेगा।"**

गांधी जी एक ओर जाति प्रथा के कट्टर समर्थक थे, दूसरी ओर वे हिन्दू समाज से छुआछूत और ऊँच-नीच का अभिशाप भी मिटाना चाहते थे। मराठा शक्ति की क्षीणता तथा समाप्ति के अन्तिम चरण को गलत रूप से मराठाकाल के पतन का नाम दिया जाता है वास्तव में वह पेशवाई के पतन का इतिहास है और उसी नाम से उसका उल्लेख होना चाहिये। पेशवाई युग में शिवाजी के वंशजों को सतारा, कोल्हापुर या नागपुर में सीमित कर दिया गया था। उन्हें एक तरह से अपना आश्रित बना लिया गया था। शिवाजी अपनी गरीब जनता तथा देश के अन्य स्थानों पर बसे हिन्दुओं की भलाई का ध्यान रखते थे। सन् 1679 में जब औरंगजेब ने अपनी धार्मिक कट्टरता से प्रेरित हो हिन्दुओं पर जजिया-कर लगाया, तो हिन्दू समाज के इस अपमान के विरुद्ध छत्रपति शिवाजी ने आवाज उठाई, और तुरन्त औरंगजेब को इस विषय पर जो पत्र लिखा, उससे उनकी निर्भीकता और उनकी धर्म-निरपेक्ष दृष्टि बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। वहीं पेशवाई शासनकाल में पेशवा, शिवाजी की प्रिय अछूत जनता का दुश्मन बन बैठा था। पेशवाई में पूना नगर की सड़कों पर कुछ ही घंटों दोपहर में चलना और अपने थूक के लिये गले में एक हांडी लटकाना अनिवार्य था। शिवाजी की उदारता का एक दूसरा तथा सर्वधर्म सहिष्णुता का उदाहरण देखिये।

10 नवम्बर 1659 को प्रतापगढ़ के दुर्ग के नीचे लगे शामियाने में **अफजलखाँ** से भेंट करने जाते समय शिवाजी जो दस अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्ति अपने साथ ले गये थे उसमें उनके परमभक्त **येसाजी** और **कोण्डाजी** कंक नायक मराठों के अलावा एक **मुसलमान सिद्धी इब्राहीम** भी था। 5 मार्च 1966 को **सवाई राजा जयसिंह** के आग्रह पर वे आगरा **शहन्शाह औरंगजेब** से मिलने गये, वहाँ दरबार में उचित मान न दिये जाने पर, वे वहीं

गरज पड़े और बिना आज्ञा बाहर चले आए । पाठकगण जानते है कि वे एक कोठी में अपने पुत्र सम्भाजी के साथ आगरा में नजरबन्द कर दिये गये थे । 17 अगस्त 1666 को उन्हें किसी नई जगह ले जाया जाना था, वे एक दिन पहले अपने पुत्र सहित बड़ी होशियारी से भाग निकले । उस अति गुप्त योजना में उनके एक परमविश्वासी मुसलमान सेवक मदारी मेहतर ने बड़ा नाटकीय पार्ट अदा किया था, जिसके कारण वे बिना शुबह मुक्त होकर आगरा से निकल सके थे । 5 जून सन् 1674 को रायगढ़ में शिवाजी का राज्याभिषेक किया गया । उन्होंने छत्र धारण किया रायगढ़ आये लोगों को शिवाजी ने मुक्त हस्त दक्षिणा और भेंट दीं । पुरोहित गागाभट्ट को दक्षिणा में एक लाख चाँदी के रूपये और अन्य बहुत सी कीमती वस्तुएं दी गई । अन्य सभी उपस्थित हजारों की संख्या में सपरिवार आये ब्राह्मणों, विद्वानों, साधु-सन्तों-फकीरों का उचित सम्मान किया गया । छत्रपति शिवाजी की नज़र पड़ी मुसलमान युवक मदारी पर । वह उनका निरन्तर निजी सेवक रहा था । आगरे से बच निकलने में उसने भी अपना जीवन खतरे में डालकर नाटकीय भूमिका निभाई थी । जब शिवाजी ने उससे पूछा मदारी क्या दें बोलो? तो उसने बड़ी विनम्रता से झुके सिर उत्तर दिया - "महाराज आप अपने सिंहासन का इन्तजाम मेरे सुपुर्द कर दीजिए, मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये ।"

एक अदना सा मुसलमान सेवक, शिवाजी की जान बचाने में अपनी जान की परवाह नहीं करता है, इनाम माँगने पर सिंहासन-आरोहित छत्रपति शिवाजी से मात्र उसकी हिफ़ाजत का हक माँगता है । निष्पक्ष दृष्टि से धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर यदि पाठकगण विचार करें कि सिद्दी इब्राहिम, मदारी मेहतर तथा मराठा फौज के सरदार, इब्राहीम गार्दी ने मराठा राज्य को मजबूत करने में जो निःस्वार्थ सेवायें कीं; वहीं दूसरी ओर शिवाजी के अष्टप्रधानों में से एक पेशवा (मुख्यमंत्री) ने, अपना पारिवारिक शासन चलाकर, शिवाजी के और उनके राज्यकाल के सारे उच्च उसूल तजकर मनुस्मृति की कट्टर नीतियों पर आधारित पूर्णतः ब्राह्मणवादी पेशवाई, सख़्ती से लागू की । उसका परिणाम क्या निकला? बड़ी मेहनत से अनेक त्यागों से स्थापित शिवाजी का राज्य तो समाप्त हुआ ही पर ये पेशवा भी अपनी कब्रें अपनी संकुचित तथा पूर्णतः जातिवादी आचरण से स्वयं खोदकर अपने को दफ़नाते गये। मराठों के शासनकाल और पतन का इतिहास जो अब सत्यता के आधार पर लिखा जा रहा है, उसमें उन हिन्दुओं की अनेक काली करतूतें उजागर होंगी, जिनके कारण हिन्दू धर्म और हिन्दू शक्ति को अपार क्षति पहुँची है । मुसलमानों से ज्यादा हिन्दू धर्म को इस वर्ग से परोक्ष रूप से भयंकर क्षति पहुँची है ।

रामकृष्ण मेहता अपनी पुस्तक "सूर्य और भारतीय संस्कृति" के पृष्ठ 19 पर लिखते हैं कि, "ज्योतिबा फुले, छत्रपति शाहू जी महाराज कोल्हापुर तथा डा0 भीमराव अम्बेडकर ब्रिटिश शासन के पक्षधर थे, क्योंकि ब्रिटिश शासन सवर्णी व्यवस्था और जाति प्रथा के सर्वथा विरुद्ध था । अतः अंग्रेज इस देश में यदि 20 वर्ष और टिक जाते तो यहाँ छुआछूत, जाति-पांति, ऊँच-नीच भेदभाव, सदा के लिये विदा हो जाता और हिन्दू समाज के सभी लोगों को समान रूप से धर्म, शिक्षा और न्याय उपलब्ध होते । उच्च वर्ग के लोग भारत की आजादी इसलिये जल्दी चाहते थे कि कहीं ऐसा न हो कि अंग्रेजी शासन के रहते जाति-प्रथा और ब्राह्मणवादी व्यवस्था नष्ट हो जाये । शायद राजनैतिक आजादी ब्राह्मणवादी व्यवस्था को मिली और सामाजिक परवशता और परतंत्रता का बोझ शोषितों और दलितों के सिर पर आया । तिलक तो लोकमान्य बन गए, देश के दलितों को आजादी के 46 वर्ष बाद भी चाहे पानी पीने को न मिले पर इनको देश की स्वतन्त्रता पहले चाहिये थी । माना कि देश की स्वतन्त्रता सर्वोपरि महत्व रखती है पर जिन लोगों को दलित और शोषित वर्ग की समस्याओं के अपमानजनक जीवन का न अहसास है और न हमदर्दी, और न उन्हें इन लोगों को अपने बराबर जीवन-मार्ग पर चलता देखना गवारा है, वे व्यक्त किये उपर्युक्त विचारों से अवश्य ही असहमत होगें । उन्हें तो सन् 1947 के आस-पास जल्दी से जल्दी आजादी चाहिये थी, देश का विभाजन चाहे हो जाए क्योंकि सारे अधिकार तो उनके पूर्वज मनुस्मृति में सुरक्षित छोड़ गये थे । अँग्रेज यदि और टिक जाते तो जैसे सती-प्रथा समाप्त हुई थी मनुस्मृति बहुत कुछ मानव हित में या तो बदल दी जाती या समाप्त कर दी जाती ।"

इस पुस्तक में आगे के अध्यायों में **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** के सन् 1894 ई० से अब तक सम्पन्न हुए 37 अधिवेशनों की विस्तृत जानकारी दी गयी है । साथ-साथ कुरमी जाति सम्बन्धी विशेष घटनायें, उपलब्धियाँ और समकालीन महान विभूतियों के व्यक्तित्व और कृतित्व से भी परिचय कराया गया है । राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में, देश की समसामयिक राजनैतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक महत्वपूर्ण घटनाओं का भी संक्षेप में उल्लेख करने का प्रयास किया गया है । आशा है कि इस पुस्तक के माध्यम से कुरमी जाति तथा इसके महापुरुषों सम्बन्धी सुरुचिपूर्ण, ज्ञानवर्धक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गरिमा प्रभावी ढ़ंग से झंकृत हो सकेगी।

महासभा की स्थापना 29 दिसम्बर सन 1894 ई0 को लखनऊ में **"कुरमी सबर सभा"** के नाम से की गयी थी । अब दिसम्बर सन 1994 में इस संस्था के कार्यकाल के 100 वर्ष पूरे होने जा रहे हैं । अतः सन 1994 ई0 महासभा का प्रथम शताब्दी वर्ष है । **इस महासभा का जन्म सन 1894 ई0 में एक भेदभाव मूलक सरकारी आदेश के विरोध में समाज को उससे सचेत कराने और उसे निरस्त करवाने के उद्देश्य से हुआ था ।** अपने पहले तथा तात्कालिक उद्देश्य की सिद्धि से सबका हौसला और बढ़ा और संगठन के लाभों का सबको अहसास हुआ । अधिवेशनों में सर्वसम्मति से कुरमीजनों में महासभा को मजबूत बनाने, प्रदेश-प्रदेश, देश के कोनों-कोनों तक जहाँ भी वे काफ़ी संख्या में बसे थे वहाँ तक उसकी इकाइयां स्थापित करने के निर्णय लिये गये, उनके क्रियान्वयन के लिये भी समय-समय पर चेष्टायें की गई । महासभा की स्थापना और प्रारम्भिक अधिवेशनों की सफलताओं के लिये ये जाति सदा श्रद्धा से **लखनऊ के चौधरी राम अधीन सिंह** को स्मरण करेगी । बाद में **प्रधान मंत्री श्री गुप्तनाथ सिंह प्रचार मंत्री कुंवर शंकर सिंह जी** आदि ने समाज की अनेक वर्षों तक सेवा की जो भुलाई नहीं जा सकती है ।

स्वाभाविक था कि महासभा का ध्यान अपनी कुरमी जाति के उत्थान की ओर गया । कुरमी जाति देश में अन्यान्य नामों से विभिन्न अंचलों में जानी-पहचानी जाती थी, वह लगभग 1450 उपजातियों में विभक्त हो चुकी थी और इन उपजातियों में परस्पर रोटी-बेटी का रिश्ता कायम न था । सर्व प्रथम उसकी फिरकापरस्त और असंगठित इकाइयों को संगठित करने, जातीय आत्माभिमान को जागृत कर शिक्षा-प्रसार करके उनके अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता आदि कुरीतियाँ, दूर करने का प्रयास किया गया । बाल-विवाह जैसी आत्मघाती प्रथा का अन्त किया गया । विधवा-विवाह पर रोक हटवा दी । कन्या-शिक्षा पर भी पूरा जोर दिया गया । जगह-जगह पर स्वजातीय विद्यालय और छात्रावास खोले गये । प्रचार के लिये प्रारम्भ में वैतनिक प्रचारक भी रखे गये । स्वजातीय पत्रिकाओं को प्रकाशित किया गया । स्वजातीय समाजसेवियों ने प्रारम्भ में ब्राह्मण विद्वानों से संस्कृत में रचित ग्रंथों का गूढ़ अध्ययन करवा के स्वजातीय इतिहास की रचना करवायी, फिर स्वजातीय विद्वानों ने कलम उठाई और जाति सम्बन्धी अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ रचे गये । आज उनके परिश्रम का परिणाम है कि इस जाति का अपना प्रामाणिक और विस्तृत इतिहास उपलब्ध हो सका है जितना हिन्दुओं की बहुत कम अन्य प्राचीन जातियों के पास है । इस इतिहास लेखन के लिये यह समाज अपने स्वजातीय इतिहास लेखकों का बड़ा कृतज्ञ है जिनमें **सर्वश्री चौधरी देवी प्रसाद सिंह, चौधरी दीपनारायण सिंह, बाबू शिवराम सिंह, श्री रामप्रिया सिंह रत्नेश, बाबू गुप्तनाथ सिंह, डा० रामकुमार सिंह, श्री रामकृष्ण मेहता, श्री केदार महतो, डा० रामसिया सिंह, श्री ध्रुव नारायण सिंह वर्मा, डा० मंगेराम आर० पटेल, श्री सिद्धेश्वर प्रसाद** आदि के नाम आते हैं । **इस लेखक की यह चौथी पुस्तक है । "पाटीदार लोक"** नीमच (बधाना) **तत्कालीन मध्यभारत में इस लेखक का पहला लेख सन् 1954 में सर्वश्री रामेश्वर पाटीदार और श्री बालमुकुन्द कुर्मी के संयुक्त सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ था ।** और तब से अब तक **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'** तथा अन्य स्वजातीय पत्रिकाओं और स्मारिकाओं में गत् 40 वर्षों में एक अर्धशतक से अधिक शोधपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं। **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'** की स्थापना और प्रारम्भिक 18 वर्षों तक इसके गौरवमय, प्रकाशन काल के लिये कलकत्ता के **श्री लक्ष्मणचन्द्र सिंह** तथा प्रधान सम्पादक **बाबू गुप्तनाथ सिंह** सदा कृतज्ञतापूर्वक याद किये जायेंगे ।

इन ऐतिहासिक पुस्तकों एवं स्वजाजीय पत्रिकाओं के माध्यम से देश में बसे **समस्त कूर्मिगण चाहें वे कुरमी,**

कणबी, कुनबी, कुर्मी, कुटुम्बी, कुलमी, कम्मा, कापू, पाटीदार, पटेल, रेड्डी, मराठा, वक्किलगर आदि अपने-अपने स्थानों में किसी भी नामों से जाने-पहचाने जाते हों, एक दूसरे बन्धुओं से परिचित हुये और उनमें जातीय आधार पर सम्बन्ध स्थापित हो सका। अन्तरशाखीय और अन्तर प्रादेशिक विवाहों से आधारभूत अन्तर काफ़ी घटा, पर इस दिशा में बहुत कुछ करना अभी भी बाकी है, क्योंकि जो अब तक हुआ है वास्तव में वह नगण्य ही है। दक्षिण भारत में बसे बन्धुओं के अपने उत्तर भारत में बसे कुरमियों से सक्रिय सम्बन्ध अभी स्थापित होने हैं।

गत सौ वर्षों में महासभा के संगठन का जाल प्रान्तीय तथा जिला स्तरों तक फैल गया है, पर गाँव-गाँव और कस्बे-कस्बे तक इकाइयां स्थापित करने का लक्ष्य है। इसके अधिवेशनों में धूम मची जब अध्यक्ष पद पर राष्ट्रीय स्तर के प्रतिष्ठित महानुभाव जैसे **प्रेसीडेन्ट विट्ठलभाई पटेल (जबकि सरदार बल्लभभाई पटेल भी उपस्थित हुये थे), कोल्हापुर, बड़ौवा, देवास (प्रथम श्रेणी) व देवास (द्वितीय श्रेणी) के महाराजाधिराजगण आसीन हुये, और इसके परिणामस्वरूप स्वजाति की गौरव वृद्धि हुई, इस जाति का वर्ण क्षत्रिय निर्धारित हुआ। देवास के पंवार राजघराने का भी कम योगदान नहीं रहा।** खेद है कि पुराने महारथियों के निधन के उपरान्त महासभा नेतृत्व विहीन होकर पतनोन्मुखी होती गयी। आज़ादी के बाद जहाँ यह संस्था पहले महज सामाजिक उद्देश्यों को लेकर चल रही थी, इसके माध्यम से राजनैतिक क्षेत्रों में भी अपना समुचित स्थान सुरक्षित करने का लक्ष्य सर्वोपरि हो गया यद्यपि विधान में इसका उल्लेख नहीं किया गया है, महासभा के अधिवेशन-मंचों पर राजनेताओं और राजनैतिक विभूतियों के आगमन से आशा की किरणें फूटीं। पुराने राजों-महाराजों के अध्यक्ष होने का जमाना बीत गया पर आज के जमाने के आधुनिक राजे-महाराजे, यह सफ़ेदपोश नेतागण भी अब तक कोई अधिक कामगर साबित नहीं हो सके हैं।

इधर कुछ दशकों से नये-नये **कुरमी जाति हितैषी संस्थान, अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** की अनुशासन परिधि से स्वतंत्र संरचना कर देश में कुर्मी बहुल अंचलों में **'सरदार पटेल'** के नाम से स्थापित हो रहे हैं यह बड़ी अच्छी बात है, पर उन सब पर **महासभा** और **कुर्मी समाज** का पूर्ण अंकुश रहना परमावश्यक है, अन्यथा इस सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता, कि कहीं-कहीं इन संस्थानों पर कुछ चतुर स्वार्थी तत्व अपना स्थायी वर्चस्व स्थापित कर लेंगे। और उनकी गतिविधियां समाजोपयोगी कार्यक्रमों के स्थान पर स्वार्थ-साधना तक ही सीमित रह जायेंगीं।

यहाँ महासभा तथा उसकी मुख-पत्रिका, मासिक **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'** की कतिपय समस्याओं की ओर आप सबका ध्यान आकृष्ट करना भी आवश्यक है। महासभा अखिल भारतीय संस्था है, इसके संगठन की प्रमुख समस्या है अहिन्दी भाषी प्रदेशों में अहिन्दी भाषी कुरमियों की स्थानीय जातियों को महासभा से जोड़ना और उसके कार्यक्रमों का प्रचार-प्रसार करना। उसके लिये उन्हीं लोगों द्वारा संचालित महासभा की इकाइयाँ हर स्तर पर स्थापित करना आवश्यक है। उत्तरी राज्यों में हुये महासभा के अधिकाँश अधिवेशनों की अध्यक्षता प्रतिष्ठित **कुलमी, रेड्डी, पटेल, नायडू, कापू, कम्मा महानुभावों से अथवा महाराष्ट्र के कोल्हापुर, बड़ौवा तथा पूर्व मध्य प्रदेश के देवास राज्य के नरेशों द्वारा की जाती रही है। कदाचित स्थान की दूरी तथा भाषा-विभेद इसके कारण रहे हैं। पर यह कोई कारण नहीं जो दूर न किया जा सके, क्योंकि सारे देश में अनेक राजनैतिक संस्थायें अपनी प्रादेशिक इकाइयां स्थापित किये हुये हैं, तो महासभा की भी अपनी इकाइयाँ ऐसे हर प्रदेश में स्थापित हो सकती हैं जहाँ भी कुरमी या कुरमियों से सम्बंधित उप-जातियाँ बसी हुई हैं।** अतः अहिन्दी प्रदेशों में महासभा का संगठन-तंत्र स्थापित करना तथा उसे समुचित ढ़ंग से संचालित करना महासभा का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिये। अभी हाल में अखिल भारतीय यादव सभा का महाधिवेशन मद्रास में हुआ, जिसमें दक्षिण भारत के सजातीयों ने बड़ा उत्साह दिखाया।

महासभा का अपना **स्थायी कोष, स्थायी कार्यालय-भवन** तथा **मुख-पत्र 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'** को कैसे आर्थिक समस्या से मुक्त रखा जाये वह सब व्यवस्था शीघ्रातिशीघ्र करनी हैं, जोकि गत एक शताब्दी के महासभा के जीवन काल में न हो सकी, यह अत्यन्त क्षोभ की बात है। महासभा का केन्द्रीय कार्यालय देश की राजधानी

दिल्ली में हो, यह सुझाव तो लगभग प्रत्येक प्रादेशिक इकाई का रहा है । इस लेखक की अध्यक्षताकाल में **'कूर्मि विकास संस्थान'** दिल्ली ने 533 वर्ग गज भूमि खंड पटपड़ गंज कालोनी, दिल्ली में इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर सन् 1987 में खरीदा था । **"कूर्मि विकास संस्थान, दिल्ली"** का **संस्थापक अध्यक्ष** होने के साथ-साथ यह लेखक उस समय **कूर्मि क्षत्रिय दिल्ली समाज** का **अध्यक्ष** भी था और अप्रैल 1993 में तीसरी बार फिर चुना गया ।

प्रस्तुत पुस्तक में महासभा सम्बन्धी उपर्युक्त सभी मुद्दों पर विस्तार से विवेचना की गयी है । गत् सौ वर्षों के कार्यकलापों से पाठकगण परिचत हों तथा स्वजातीय बन्धुओं को महासभा के माध्यम से भविष्य में क्या करना सर्वोचित होगा उस बारे में वे सहजता से निर्णय लें सकेंगे । **सामाजिक कार्यकर्त्ता को यह समझकर कार्य में जुटे रहना चाहिये कि उत्साह ही बलवान होता है । इससे बढ़कर कोई बल नहीं । उत्साहयुक्त व्यक्ति के लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है ।** महासभा का 38वां अधिवेशन **एवं शताब्दी समारोह** 29 और 30 दिसम्बर 1994 को लखनऊ के बेगम हजरत महल पार्क में महारैली सहित आयोजित करने की घोषणा हुई थी । अब वह अधिवेशन तीसरी बार बदली तिथियों के अनुसार 11 और 12 मार्च, 1995 को होने जा रहा है । अतः इस ग्रन्थ के प्रकाशन को ज्यादा आगे न टालकर मैं इसे 29 दिसम्बर 1994, महासभा की स्थापना की प्रथम शताब्दी के ऐतिहासिक दिवस पर प्रकाशित करने जा रहा हूँ । इस ग्रन्थ की काफी उत्सुकता से प्रतीक्षा की जा रही है, जैसा जिज्ञासुओं के अनेकानेक आने वाले पत्रों से प्रतीत होता है ।

आशा है, प्रस्तुत पुस्तक समाज के सभी वर्गों के पाठकों के लिये ज्ञानवर्द्धक और ग्राह्य सिद्ध होगी । यदि यह पुस्तक आत्मबोध तथा कूर्मि जाति के विभिन्न आयामों-आसंगों का दिग्दर्शन कराने में सक्षम सिद्ध हुई तो इसके प्रणयन में लेखक का अनेक वर्षों का शोधपूर्ण परिश्रम सफल समझा जायेगा ।

महासभा के प्रथम सौ वर्षों के कार्य-कलापों के लेखा-जोखा की सम्पूर्ण पक्षों की झांकी इस ग्रंथ में समाहित कर पाना एक भगीरथ प्रयास है, अतः यदि कोई न्यूनता रह गई हो तो प्रबुद्ध पाठकगण क्षमा करेंगे ।

हर रह गुज़र पे शमा जलाना है मेरा काम ।
तेवर क्या हवा के रहें मैं देखता नहीं ।।

- डॉ० दिलावर सिंह जयसवार

अध्याय - 2

तुवि कूर्मि इन्द्रः

विश्व आलोकित आर्य-संस्कृति का चरमोत्कर्ष, वैदिक युग में देखने को मिलता है। विश्व के विभिन्न धर्म-मत-मतान्तरों के प्रबुद्ध विचारकों ने इस बात को अंगीकार किया है कि उस समय भारत आध्यात्मिक उन्नति की पराकाष्टा पर पहुँचा हुआ था। उसमें सुख-समृद्धि, सुशासन-सुव्यवस्था, सभ्यता-संस्कृति और शिक्षा-शान्ति अपनी चरम सीमा को पहुँच चुके थे और आर्यजन तथा यहाँ के अन्य वासी सुदीर्घकाल तक दिव्य आलोकमय, आरोग्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। जहाँ भारत ने अपना चरमोत्कर्ष किया था, वहाँ उसने विश्व-कल्याण और **"वसुधैव कुटुम्बकम"** के लिये भी प्रयत्न किया था। अपने इस दैवीगुण के कारण ही उसे जगद्‌गुरु होने और संसार का ऐहिक-आध्यात्मिक ज्ञान-प्रदाता बनने का भी गौरव प्राप्त हुआ।

वैदिक काल में, आर्यावर्त में प्राकृतिक शक्तियों का आकाशी देवताओं के रूप में स्तुति-वन्दना करने का प्रचलन था। वैदिक ऋचाओं में वर्णित इन्हीं प्राकृतिक शक्तिओं का धार्मिक देवताओं के स्वरूप में शनैः-शनैः रूपान्तर हुआ। इन आकाशी देवताओं के राजा अथवा अधिनायक सर्वप्रथम वरुण माने जाते थे। वरुण का वेद में अनेक मन्त्रों में असुर उपाधि से उल्लेख मिलता है। असुरों के गुरु शुक्राचार्य थे। उनके अनुयायी आसुरी विचारधारा से सहमति रखने वाले हो गये थे।

असुर अग्नि के उपासक थे और सुर अथवा देव अग्निपूजक भी थे और उसके अतिरिक्त पितृपूजा में भी आस्था रखते थे। प्रारम्भ में जब सुर और असुर मिलजुल कर आर्यावर्त में रहते थे, तब दोनों समुदायों के लोग मित्र, वरुण अर्यमा, इन्द्र, ब्रह्मपति तथा विष्णु की उपासना मिल-जुल कर करते थे। ऋग्वेद में बाद में इस दोनों समुदायों में धार्मिक संघर्ष होने का स्पष्ट संकेत मिलता है। शतपथ के अनुसार देवता (सुर) और दैत्य (असुर) दोनों ही प्रजापति की सन्तानें हैं।

वेद मूल हैं और आर्यों में सबसे पूज्य, पवित्र तथा प्रामाणिक हैं। वेद के मन्त्रों के सम्बन्ध में ऋषियों के नाम आते हैं। ऐसी धारणा रही है कि प्राचीन काल में भिन्न-भिन्न महर्षियों के शुद्ध अन्तःकरण में स्वतः समाधि की अवस्था में मन्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ और इन मन्त्रों की रक्षा ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा कंठस्थीकरण के द्वारा हुई। जिन्होंने मंत्रों का वैदिक ऋचाओं का मन-इन्द्रिय से दर्शन किया, वे महर्षि कहलाते थे,- **"ऋषयो मन्त्र द्रष्टार"**। इस प्रकार वेदों की रचना का तात्पर्य है **"ब्रह्म के निश्वासभूत मंत्रों का ध्यान-नेत्रों द्वारा साक्षात्कार"**, जिसे कहा गया है - **"यस्य निश्वासितं वेदाः"**। ऐसा कहा जाता है कि समाधि की अवस्था में तत्-तत् ऋषि ने तत्-तत् मंत्र के शब्द सुने। इसीलिये वेद-मंत्रों को श्रुति कहते हैं।

भाषा वैज्ञानिकों के मतानुसार वैदिक संस्कृत, लैटिन तथा फ़ारसी एक ही भाषा से निकली हुई भाषायें हैं। महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने इन समस्त भाषाओं के बोलने वालों का नाम ही शकार्य (शक+आर्य) रखा था। उनके मतानुसार कहीं बोलगा (रूस देश) के पास एक जन-समूह वास करता था, बाद में किन्हीं कारणों से उसके दो विभाग हो गये। वे थे एक शक, जो पश्चिम को मुड़ गया तथा दूसरा आर्य जो भारत अथवा आवर्त में आ बसा।

मानव शास्त्रवेत्ताओं ने मनुष्यों को पाँच जातियों में विभक्त किया है - काकेशियन, मंगोलियन या तातार, हब्शी, मलय और अमेरिकन। रंगों के हिसाब से ये लोग क्रमशः पीले, काले, बादामी और लाल हैं। इन सबमें गोरी जाति प्रमुख है। गोरी जाति की तीन प्रधान शाखाएँ मानी गयी हैं - आर्य, सैमेटिक और हैमिटिक। आर्य जाति सर्व प्रधान है, इसमें हिन्दुओं, रूसियों, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों आदि की गणना है। विद्वानों का मत है कि किसी प्राचीन काल में हिन्दुओं, जर्मन, रूसियों, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों आदि के पूर्व पुरूष कभी एक ही स्थान पर वास करते थे, और एक ही भाषा बोलते थे। उसी भाषा से कहा जाता है कि संस्कृत, यूनानी और जर्मन आदि भाषाएं विकसित हुई थी।

विद्वानों का मत है कि समूची आर्य जाति की आदिम एकता का साक्षी आर्य-भाषा परिवार है। संस्कृत, जीन्द, अंग्रेजी, यूनानी, लैटिन, फारसी, अरबी आदि भाषाओं की मूलभाषा आर्य भाषा ही थी। इस सब भाषाओं में व्यवहार की साधारण बातों, औजारों, कामों, रिश्तों आदि के लिये प्रायः मिलते-जुलते एक ही से शब्द हैं। इन भाषाओं को बोलने वाली जातियाँ हजारों वर्षों से पृथक् हैं, इसलिये एक दूसरे से शब्द लेने की या उसकी नकल करने की कोई सम्भावना नहीं हो सकती। आचार्य चतुरसेन शास्त्री (अपनी पुस्तक "वैदिक संस्कृति पर दृग स्पर्श", प्रथम संस्करण 1983, प्रकाशित संमार्ग प्रकाशन, दिल्ली) में कहते हैं कि इस भाषा-सम्बन्धी जाँच से पाश्चात्यों ने केवल आदिम-एकता ही प्रमाणित नहीं की, अपितु छोड़ने के पूर्व काल की आर्य-जाति की उन्नति का भी परिचय प्राप्त किया।

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि उस समय भी आर्य लोग मकानों में रहते थे, पृथ्वी को जोतते और चक्कियों से अनाज पीसते थे। वे भेड़, गाय, बैल, कुत्ता, बकरा आदि को पालते और शहद आदि से बनाया हुआ मद्य पीते थे। वे ताँबे, चाँदी-सोने आदि का व्यवहार भी करते थे और धनुषबाण तथा तलवार से लड़ाई करते थे। इनमें राज्य-शासन प्रणाली आरम्भ हो चुकी थी। वे आकाश और आकाशवासी देवताओं जैसे इन्द्र, अग्नि, वायु, मरुत, वरुण, सोम, बृहस्पति आदि का पूजन करते थे। वैदिन संस्कृत सभी आदिम आर्य भाषाओं की जननी है।

विभिन्न देवताओं की भीड़ में न जाकर यहाँ यह कहना काफी होगा कि जब देव और असुर साथ-साथ रहे तब उनमें परस्पर निम्नलिखित देवताओं की उपासना साथ होती रही। संकेत ऋग्वेद के इन मंत्रों (ऋ0 1.1.56, 4.60.9) से मिलते हैं :-

"शंनों मित्रः शंनोवरुणः शंनों भवत्वर्यमा शंनो इन्द्र बृहस्पति शंनो विष्णु रुरुक्रमः।"

उपयुक्त मन्त्र में मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र बृहस्पति तथा विष्णु का उल्लेख है। ऋग्वेद के मंत्र 1/164/46 में कहा गया है -

इन्द्र मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वान माहुः ।।

इस मंत्र में स्पष्ट कहा गया है कि सत्स्वरूप परमेश्वर को ज्ञानी लोग अनेक प्रकारों से पुकारते हैं, उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण इत्यादि नामों से स्मरण करते हैं। परवर्ती साहित्य से ज्ञात होता है कि इन्द्र से पहले अदिति, वरुण और मित्र हैं। वरुण को पहला सम्राट कहा गया। सम्राट का यहां वह अर्थ नहीं लेना चाहिए, जो परवर्तीकाल में लिया जाने लगा था। सम्राट तब उतनी बड़ी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित नहीं था। वरुण के लोप (मृत्यु) होने के बाद ही इन्द्र का उत्थान होता है। **"इन्द्रस्य न वीर्याणि प्र वोचं (ऋ0 1/32/4)"।** मन्त्रों में इन्द्र के वीर्य और पौरुष का वर्णन हैं। इन्द्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है -

"तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वष नृम्णः"। (भावार्थ): "यह नृम्ण (पौरुष की मूर्ति अथवा मनुष्यों से सम्पर्क रखने वाला) भुवन में ज्येष्ठ उच्च स्थान अर्थात् मेरु प्रदेश में उत्पन्न हुआ। वेदमन्त्रों में इन्द्र के लिये

दीर्घायु होने की भी प्रार्थना मिलती है । इन्द्र के लिये सुन्दर नासिका वाला और अयस या वज्र धारण करने वाला तथा सुन्दर घोड़ों से जुते रथ पर आरोहण किये हुये वर्णन मिलता है ।

'अभिषेक' शीर्षक से प्रसिद्ध हिन्दी मनीषी जयशंकर प्रसाद के निबन्धों का संग्रह उनके पुत्र रत्नशंकर प्रसाद द्वारा प्रकाशित किया गया है, जोकि उससे पूर्व काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कोषोत्सव स्मारक ग्रन्थ में प्रकाशित "प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट" नामक लेख पर आधारित है । उस लेख के अनुसार विश्वामित्र इन्द्र-पूजा के प्रधान प्रचारक थे और अधिक सम्भव तो यह है कि, इन्द्र के समय में ही उनके बाहुबल से प्रवर्तित उस नवीन अभ्युदय काल में वे इन्द्र के व्यक्तिगत समर्थक रहे हों ।

वरुण की पूजा से हटकर इन्द्र का अनुयायी होने का प्रमाण भी मिलता है । ईरानी आर्यों ने 'अहुरमज्द' या असुर वरुण की प्रशंसा करते हुये इन्द्र को पाप-मति कह डाला है । ठीक उसी तरह वरुण की उपासना से हटकर इन्द्र-पूजा की ओर आकृष्ट होते हुये आर्यों का उल्लेख ऋग्वेद के चौथे मण्डल के 42 वे सूक्त (2,4, 7 वे मंत्रों) में है । ऋषि ने वरुण और इन्द्र का संवाद कराया है और उसमें वरुण के ऊपर इन्द्र की ही प्रधानता प्रदर्शित की है । इसी तरह दसवें मंडल के 124 वें सूक्त (3 व 4 मंत्रों) में भी वरुण को छोड़कर इन्द्र का आश्रय ग्रहण करने का स्पष्ट उल्लेख है । ऊपर के प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि इन्द्र के अनुयायी वरुण-पूजा से मुँह मोड़ रहे थे और इसी कारण त्वष्टा के पुत्र वरुणोपासक वृत्र ने असुरों का नेतृत्व किया पौराणिक कथायें भी बताती हैं कि सोमरस (सुरा) को लेकर देवासुर-संग्राम हुआ । देवासुर-संग्राम के फलस्वरूप आर्यावर्त में आन्तरिक कलह भीषण रूप से व्याप्त हो गयी । प्राचीन आर्यों में कुल-शासन प्रथा प्रचलित थी, जिसमें कुल या कुटुम्ब मुख्य था और पुरोहितों की प्रधानता रहती थी ।

वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में स्वर या वर्ण में अन्तर आ जाये तो यजमान को लाभांवित करने के स्थान पर नष्ट कर देता है । क्योंकि स्वरों में कुछ का कुछ हो जाने से न जाने क्या उल्टा-सीधा ध्वनि प्रभाव पड़ जाये । कहा जाता है कि उपर्युक्त इन्द्र- वृत्रासुर संग्राम के दौरान यज्ञ करते समय जो मन्त्रोच्चारण इन्द्र को मारने के अभिप्राय से किया गया था उसके पढ़ने में थोड़ा-सा स्वरभेद हो गया और उलटे वृत्तासुर का अहित फलदायी हो जाने से उसी का वध हो गया । अतः मंत्रों की उच्चारण विधि भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है ।

उपनिषद में यह कथा आयी है कि ब्रह्मा जी के पास देवराज इन्द्र और दैत्यराज विलोचन ब्रह्मज्ञान सीखने हेतु गये । विलोचन की ज्ञान-प्राप्ति अधूरी रह गयी । परन्तु देवराज इन्द्र पूर्ण ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पद के अधिकारी हुये । इन्द्र का नाम आयुर्वेद के आचार्यों में भी आदरपूर्वक लिया जाता है । 'संहिता' शब्द के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नाम के चारों ग्रन्थ हैं यजुर्वेद के शुक्ल और कृष्ण दो भेद हैं जिनके दो अलग-अलग ग्रन्थ हैं । इसलिये इन पाँचों पुस्तकों का सामूहित नाम संहिता है । सनातन धर्मावलम्बी ब्राह्मणों का मानना है कि मन्त्र और ब्राह्मणों (ग्रन्थों) का संयुक्त नाम वेद हैं । आर्य समाज के विद्वान तथा अन्य विद्वान ऐसा नहीं मानते । वे केवल संहिताओं को वेद मानते हैं । वेद के पहले व्याख्याता जिनका ग्रंथ निश्चित रूप से उपलब्ध है, महामुनि यास्क थे, इनके ग्रंथ का नाम यास्क निरूक्त है । यास्क के बाद दूसरे व्याख्याकार थे सायण।

वेदों में इन्द्र के सम्बन्ध में जितने मन्त्र हैं, उतने अन्य सब देवों के लिये मिलकर भी नहीं हैं । अधिकाँश मन्त्रों में इन्द्र का अकेले वर्णन मिलता है, परन्तु कहीं-कहीं उनके साथ किसी अन्य देव, जैसे वरुण या अग्नि का भी उल्लेख मिलता है । जैसे :-

1 **इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्भ हो यन्तः सुमतये चकानाः ।**
महो हिवाता वज्रहस्तो अस्ति महायुवरण्वम् अवसे यजध्वम् ।।
(ऋ0 6/29/1)

(भावार्थ) :- 'हे यजमान, तुम्हारे यज्ञ कराने वाले इन्द्र की इसलिये परिचर्या करते हैं कि उनका सख्य प्राप्त हो

और उनसे सुमति, सद्बुद्धि मिले, इन्द्र वज्र हस्त, बलवान और दाता हैं, तुम रक्षा के लिये उनका यजन करो।'

2 'कदात इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवानि शंतमः'

(ऋ08/13/22)

3 'इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः'

(ऋ0 8/16/7)

4 वैदिक आर्य इन्द्र को देवराज कहकर सम्बोधित करता था, उनसे युद्ध में विजय की कामना करता था और सदा ही अन्न, धन, पशु और सन्तति की आशा रखता था । पर वह उनके तात्विक स्वरूप को भी जानता था । इन्द्र परमात्मा से अभिन्न है, इस बात का साक्ष्य ऋग्वेद के मन्त्र (10/54/2) में देखिये ।

इन्द्र वैदिक काल में भारत का प्रथम सम्राट

इन्द्र के बारे में वैदिक साहित्य में जो भी विवरण मिलते हैं उनसे से इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुँचा जा सकता है कि वे कौशिक गोत्र (**'आतून इन्द्र कौशिक'** ऋ0 3/48/1) के किसी सामन्त राजा की पुत्री के पुत्र थे । उस सामन्त की मृत्यु के उपरान्त जब वे उनके राज्य के अधिकारी बने, तब तक वे इन्द्र के नाम से एक साहसी एवं पराक्रमी युवक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे । वह एलाम के आर्यों के अगुआ और नेता बन गये । एलाम के पश्चिम प्रदेश के मितन्नु या मितन्नि और दक्षिण में उरु, ऊमा आदि बैबिलोनियन जाति के छोटे राज्य उनके मित्र थे । तथा उत्तर के पर्शियन प्रबल शत्रु थे, अतः उसने पूर्व की ओर अपना प्रसार किया और पंच सिन्धु के नेता वृत्र को मार डाला ।

दबाव डालकर उसने विष्णु को अपने मित्र वृत्र की सहायता नहीं करने दी । त्वष्टा के पुत्र को पुरोहित बनाने का प्रलोभन दे उससे वज्र नामक महास्त्र लिया, जिससे वृत्र का बध कर डाला । दासों में दिवोदास, उसके पुत्र सुदसः, त्रसदस्यु एवं पुरु से सन्धि कर तथा तुर्वसु और यदु दासों को मिलाकर इन्द्र ने अपना साम्राज्य सप्त सिन्धु में स्थापित किया और एलाम को वापिस चले गये ।

पीछे बैबिलोनियन सम्राटों की देखा देखी इन्द्र ने अपनी गणना देवों में कराई और उस साम्राज्य में अपनी पूजन विधि प्रचलित की । अनेक बेबीलोनियन सम्राट अपने जीवनकाल ही में देवता हो गये थे तथा वे सोमपान (मदिरापन) का एक बड़ा आयोजन किया करते थे । इस समारोह के खुदे हुये बहुत से चित्र बैबीलोनिया में मिले हैं । इन्द्र ने बैबिलोनियन लोगों की सोमपान की परिपाटी देवों में भी प्रचलित की तथा अपनी एक नई संस्कृति की नींव एलाम में डाली जो वैदिक संस्कृति कहलाई । इन्द्र की स्तुति में बहुत सी ऋचाएं रची गयीं ।

वृत्र को मारने में इन्द्र ने जो पराक्रम किया, उसके कारण वे **'वृत्रहा'** भी कहे गये । उनके द्वारा दासों के सौ नगर ध्वस्त किये गये और उनका नाम **'पुरन्दर'** पड़ा । इन्द्र के कारण दास पराजित होकर पतनोन्मुखी हुये (ऋ0 4/26/4 ; 2/12/4)। वामदेव के अतिरिक्त और ऋषियों ने भी इन्द्र की स्तुति में बहुत-सी ऋचाएँ रचीं। इसी से ऋग्वेद के चतुर्थांश सूक्त इन्द्र की स्तुति से भर गये । इन्द्र के पश्चात अग्नि, वरुण आदि देवताओं के सूक्त हैं जो कि वैदिक आर्यों के पूर्वज थे और फिर देवता की श्रेणी में उनकी गणना होने लगी । मित्र-वरुण नासत्य आर्यों और पर्शियनों के भी देवता थे । (**आचार्य चतुरसेन, "वैदिक संस्कृति पर वृगस्पर्श,** पृ0 222-223)"।

स्वामी विवेकानन्द का मत है (**"भारत में विवेकानन्द"** अनुवादक -स्व0 पं0 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तृतीय संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर पृष्ठ 23)- **"एक विशेष बात हमें स्मरण रखनी चाहिए ।** वह यह कि जगत के अन्यान्य धर्म अपने शास्त्रों को यही कहकर प्रामाणिक सिद्ध करते हैं कि ईश्वर नामक व्यक्ति अथवा ईश्वर के किसी दूत या पैगंबर की वाणी है, पर हिन्दू कहते हैं, वेदों का दूसरा कोई प्रमाण नहीं है । वेद स्वतः

प्रमाण हैं, क्योंकि वेद अनादि, अनन्त हैं, वे ईश्वरीय ज्ञान-राशि हैं । वेद कभी नहीं लिखे गए, न कभी सृष्ट हुए, वे अनादिकाल से वर्तमान हैं ।"

स्वामी विवेकानन्द उक्त पुस्तक के पृष्ठ 293 पर लिखते हैं - " वेदों के सम्बन्ध में मेरा विश्वास है कि वेद कभी लिखे नहीं गए -वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई । एक ईसाई मिशनरी ने मुझसे किसी समय कहा था, "हमारा बाइबिल ऐतिहासिक नींव पर स्थापित है और इसलिये सत्य है ।" इस पर मैंने जवाब दिया था, "हमारे शास्त्र इसलिये सत्य हैं कि उनकी कोई ऐतिहासिक भित्ति नहीं है, तुम्हारे शास्त्र जब कि ऐतिहासिक हैं तब अवश्य ही वे कुछ दिन पूर्व किसी मनुष्य द्वारा रचे गये थे ; तुम्हारे शास्त्र मनुष्य प्रणीत हैं, हमारे नहीं । हमारे शास्त्रों की अनैतिहासिकता उनकी सत्यता का प्रमाण है ।"

महाभारत के आश्चर्य-चकित कर देने वाले प्रसंग

महाभारत में बहुसंख्य दृष्टांत ऐसे मिलते हैं जोकि आश्चर्य चकित कर देते हैं । पहले अपहरण नहीं होता था, आर्य-अनार्य दोनों का परस्पर विवाह हुआ है । असुर वंशी कन्या का रक्त आर्यवंशी पुरुष से विवाह करके उससे उत्पन्न सन्तति में बहता है । इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता । उदाहरण देखिये :-

अव्यक्त पुरुष (प्रजापति)

ब्रह्मा

आँख से उत्पन्न मरीचि कश्यप

पैर के अगूंठे से उत्पन्न दक्ष
|
मरीचि कश्यप और अदिति
|
विवस्वान (सूर्य)
|
वैवस्वत मनु (मानव सूर्यवंश)
|
इला (कन्या नाम)
|
पुरुरवा
|
आयु
|
नहुष
|
ययाति

महाराजा ययाति तथा शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से
यदु, तुर्वसु,

महाराजा ययाति तथा राजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से
द्रुह्यु, अनु पुरु

(महाराजा पुरु उत्तराधिकारी बनाये गये)

टिप्पणी :- महाराजा पुरु के वंशज कुरु से कुरुवंश और उससे कुरमी वंश चला

ययाति राजा हुये और उनका विवाह शुक्राचार्य की कन्या देवयानी (असुर) से हुआ । ययाति प्रजापति की दसवीं पीढ़ी में जन्में थे । ययाति अंत में भृगुतुंग पर्वत चले गये ।

प्राचीनकाल के इतिहास का ठीक से अध्ययन करने के लिये उसे दो खण्डों में विभक्त करना सुविधाजनक रहेगा । प्राचीन भारत के इतिहास में महाभारत का युद्ध एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और युग प्रवर्तक घटना मानी जाती है । उस एक घटना का भारतीय जन-जीवन और इतिहास पर जितना प्रभाव पड़ा उतना किसी अन्य घटना का नहीं । अतः प्राचीन भारत के पूरे इतिहास को पूर्व महाभारत तथा उत्तर महाभारत-काल नाम से दो खंड़ों में विभाजित करना उचित होगा ।

पूर्व महाभारत-काल से इतिहास में सूर्यवंश और चन्द्रवंश के राज्यों की प्रधानता बतायी गयी थी । इन वंशों के काल और ग्राम के सम्बन्ध में पौराणिक साक्ष्यों में विभिन्न मत पाये जाते हैं । जैसे पुराणों में उल्लेख मिलता है कि मनु की पुत्री इला का विवाह चन्द्रमा के पुत्र बुध से हुआ । उससे सिद्ध होता है मनु बुध के स्वसुर थे और लगभग उनके समकालीन थे । यदि इस समकालीनता को सत्य माना जाता है तो सूर्य का लगभग समानान्तर चलना प्रतीत होता है परन्तु वंश वृक्षों को देखने से पता चलता है कि सूर्यवंशी मनु की 14वीं पीढ़ी के राजा बृहद्बल चन्द्रवंशी 50 वीं पीढ़ी के महाराज युधिष्ठर के समकालीन थे ।

सूर्यवंशी रामचन्द्र मनु से 63 वीं पीढ़ी पर हैं जबकि युधिष्ठर 50वीं पीढ़ी पर और तब श्री राम युधिष्ठर से लगभग 29 पीढ़ी पूर्व हुये थे । स्पष्ट है कि चन्द्रवंश की स्थापना सूर्यवंश की अनेक पीढ़ियों के व्यतीत हो जाने पर ही हुई । इला किसी अन्य मनु की पुत्री थीं जो सूर्यवंशी किसी 35वीं या इससे भी कुछ नीचे की पीढ़ी के राजा के समकालीन थे । ऐसा भी हो सकता है कि इला आठवें सावर्णिमनु की पुत्री थी । जो सूर्यवंश के 35 से 40 वीं पीढ़ी के बीच की किसी पीढ़ी के राजा के समकालीन थे ।

चन्द्रवंश की स्थापना सूर्यवंश की अनेक पीढ़ियों के बीत जाने के बाद हुई । उपरोक्त विवरण से स्पष्ट पता चलता है कि चन्द्रवंश की 50वीं पीढ़ी सूर्यवंश की 92वीं पीढ़ी के, 19 वीं पीढ़ी 53वीं पीढ़ी के, 15वीं पीढ़ी - 52वीं पीढ़ी के और छठीं पीढ़ी से आठवीं, दसवीं पीढ़ी सूर्यवंश की 50 व 51वीं पीढ़ी के समकालीन ठहरती है । निश्चय ही चन्द्रवंश की स्थापना सूर्यवंश की स्थापना से 35वीं पीढ़ी बाद हुई । इसी समय में किसी सूर्यवंशी का नाम मनु रहा हो और उनकी कन्या इला से चन्द्रमा के पुत्र बुध का विवाह हुआ होगा । सावर्णि मनु वैवस्वत मनु के पीछे हुये हैं क्योंकि वह 8वें मनु कहे गये हैं । और वैवस्वत सातवें । यह भी समर्थ के पुत्र होने के कारण वैवस्वत कहे जा सकते हैं । सम्भव है यह इसी समय में हुये हों । और इला उनकी पुत्री हो । यथार्थ जो भी रहा हो पर उनकी समकालीनता को देखते हुये यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि सूर्य और चन्द्र इन दोनों वंशों का आरम्भकाल एक ही था । इसलिये युधिष्ठर की चन्द्र की 50वीं पीढ़ी और राम का सूर्य की 63वीं पीढ़ी पर होने से यह भ्रम कदापि न करना चाहिये कि युधिष्ठिर राम से पहले हुए । सभी हिन्दू ग्रन्थों में राम का युधिष्ठिर से पहले होना लिखा है । राम 7वें अवतार थे और युधिष्ठिर के समकालीन कृष्ण आठवें, राम त्रेता में थे और कृष्ण द्वापर में और राम की कथा वनपर्व में युधिष्ठिर को सुनाई गई थी।

पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के दो मानस पुत्र थे । 1 मरीचि और 2 अत्रि । मरीचि से सूर्यवंश की परम्परा और अत्रि से चन्द्रवंश की । जैसा ऊपर वर्णन किया है सूर्यवंश से 35 पीढ़ियों के गुजर जाने के बाद चन्द्रवंश का अविर्भाव होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्यवंशी महाराज सगर के समय में चन्द्रवंशी महाराज पुरुरवा ने अपना राज्य प्रतिष्ठान में स्थापित किया ।

पुरुरवा के छः पुत्र थे । आयु सबसे ज्येष्ठ थे । आयु के वंशजों का राज्य बहुत काल तक प्रतिष्ठान में चलता रहा । महाराज आयु ने राहु की पुत्री प्रभा से विवाह किया । उनके पाँच पुत्र हुये । नहुष सबसे बड़े पुत्र थे । अतः वे अपने पिता के राज्य के उत्तराधिकारी हुये ।

महाराज नहुष बड़े उच्च कोटि के शासनकर्ता थे । एक बार इन्द्र की अनुपस्थिति में देवताओं ने महाराज

नहुष को प्रशासन क्षमता के कारण अपना राजा चुना । नहुष स्वदेश छोड़कर देवताओं की भूमि इन्द्रलोक में गये। वहाँ वे देवराज इन्द्र की परम सुन्दरी रानी शची के रूप को देखकर मुग्ध हो गये । देवताओं ने नहुष को बहुत समझाया नहुष ने रानी शची को प्राप्त करने की चेष्टा की । वे ब्राह्मणों से अपनी पालकी उठवाकर शची के भवन की ओर चले । मार्ग में उन्होंने ब्राह्मणों से शीघ्र चलने को कहा । और आतुरता में अगस्त्य नामी एक विप्र के लात जमा दी । इस पर ब्राह्मण बिगड़ उठे और उन्होंने राजा को पालकी से ढकेल दिया तथा देवताओं से मन्त्रणा करके उन्हें देवभूमि से भी निकाल दिया । इस घटना से नहुष का पतन हुआ ।

नहुष के अपनी रानी विरजा से छः पुत्र हुये । उनके नाम है यति, ययाति, संयति, अयाति, वियति और कृत । ज्येष्ठ पुत्र यति ने इक्ष्वाकुवंशी राजा ककुत्स्थ की पुत्री गो से विवाह किया । यति के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे राजपाट छोड़कर बन में चले गये । उनके बाद नहुष के दूसरे पुत्र ययाति ने पिता का राजसिंहासन प्राप्त किया और बहुत दिनों तक राज्य किया । नहुष के अन्य पुत्रों का अथवा उनकी वंश परम्परा का कोई वर्णन उपलब्ध नहीं है ।

महाराज ययाति

नहुष के बाद उनके पुत्र ययाति ने उनके राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त किया । राजा ययाति एक दिन आखेट करते हुये वन में तृषा-निवारण के लिये एक कुएँ के पास पहुँचे । उस कुएँ में एक जीवित कन्या गिरी पड़ी थी । कुएँ में गिरने का कारण पूछा । कन्या ने जिसका नाम देवयानी था कहा, "मुझे राजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने कुँए में ईर्ष्यावश ढकेल दिया है । आप मेरे प्राण रक्षक है पतिरूप में मैं आपका वरण करती हूँ" ब्राह्मणकन्या होने के कारण पहले तो महाराज ययाति झिझके परन्तु देवयानी और उसके पिता शुक्राचार्य की आग्रह पूर्ण प्रार्थना पर उन्होंने उसे अंगीकार कर लिया । अपराधिनी शर्मिष्ठा के पिता महाराज वृषपर्वा ने अपनी पुत्री के अपराध का वही दण्ड उपयुक्त समझकर देवयानी की बात मान ली ।

देवयानी से महाराज ययाति के दो पुत्र हुए, जिनके नाम यदु और तुर्वसु थे । शमिष्ठा ने बड़ी चतुराई से अपनी रूपमाधुरी का जाल महाराज पर फेंका और आसक्त होकर महाराज ने उसके साथ गन्धर्व विवाह कर लिया । ययाति के शर्मिष्ठा से साथ तीन पुत्र हुए, जिनके नाम थे द्रुह्यु, अनु और कुरु । देवयानी को शर्मिष्ठा की इस चाल का पता चल गया था और उसने अपनी पिता शुक्राचार्य से शिकायत भी की । यद्यपि शुक्राचार्य ययाति के इस व्यवहार से बड़े अप्रसन्न हुए तथापि जामाता के अनिष्ट के भय से मौन रह गये ।

एक बार महाराज ययाति ने अपने पांचों पुत्रों के आगे एक कठिन समस्या प्रस्तुत की । बड़े चारों पुत्रों ने तो कान पर हाथ रख लिये परन्तु सबसे छोटे पुत्र कुरु ने समस्या का समाधान प्रस्तुत कर दिया । ययाति ने प्रसन्न होकर कुरु को अपना उत्तराधिकारी बनाया । उन्होंने शेष चारों पुत्रों को भी राज्य का कुछ भाग अलग-अलग सौंप दिया । उन्होंने यदु, को दक्षिण, तुर्वसु को दक्षिण-पूर्व, द्रुह्यु को पश्चिम और अनु को उत्तर प्रदेश का स्वामी बनाया ।

कानपुर के पास, लगभग तीन मील दूर पर जाजपुर नामक स्थान है । लोग इसे महाराज ययाति का स्मारक बताते हैं । राजपूताने में साम्भर झील के पास एक कुंआ है, जिसका नाम देवयानी है । लोगों का कहना है कि वही कुआं है जिसमें शर्मिष्ठा ने देवयानी को ढ्केल दिया था ।

महाभारत के अध्याय 140 के पृष्ठों 10-18 में दुर्योधन ने भरी सभा में कहा था, "शूरों और नदियों के जन्म का वृतान्त कोई नहीं जानता । चराचर विश्व में व्याप्त तेजस्वी अग्नि का जन्म (नीचगामी) जल से हुआ है। दानवों का नाश करने वाला वज्र नामक अस्त्र दधीचि की हड्डियों से बना है । कुमार कार्त्तिकेय के जन्म का भी कुछ निश्चय नहीं । उन्हें कोई अग्नि का, कोई कृत्तिका का, कोई रुद्र का कोई गंगा का पुत्र कहते हैं । क्षत्रियों से उत्पन्न विश्वामित्र ब्राह्मण हो गये । शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण कलश में से उत्पन्न हुये

थे ।" इस कथन का तात्पर्य है कि अनेक शूरवीरों की उत्पत्ति का इतिहास अनेक प्रकार की अनिश्चयता के अंधकार में लुप्त रह जाता है ।

कूर्म, कूर्मिनू एवं कौरम, तीन प्रकार के रूपों वाला, वेद में यह शब्द, क्या प्रगट करता है?

अब से लगभग सौ वर्ष पूर्व कुरमी महानुभावों द्वारा यह जिज्ञासा जागृत हुई कि धार्मिक ग्रन्थों के विद्वानों के द्वारा तथा स्वयं भी पता लगाया जाय कि कूर्मवंश की वास्तविकता क्या है? **पीलीभीत के श्रीयुत लाला खूबचन्द्र बलदेव प्रसाद जी, आनरेरी मजिस्ट्रेट एवं साहूकार** की प्रेरणा पर **पण्डित साधुसिंह जी** महाराज राजघाट निवासी से **"कौर्मि वंशावली"** की सम्वत् 1952 भाद्र शुदि 15 (सन् 1895 में) रचना करवा के बम्बई के बेंकटेश्वर प्रेस से सर्वप्रथम प्रकाशित की गयी । यह लघु पुस्तिका इस पुस्तक के अंत में परिशिष्ट सं० 3 के अन्तर्गत दी गई है। उसके अनुसार **स्कन्दपुराण** के सह्याद्रि खण्ड के अध्याय 33 के श्लोक 64, 65, और 66 से प्रमाणित होता है, **"माल मालिनी भगवती के कूर्म नामक ऋषि कुल में प्रथम प्राणनाथ-नामक राजा हुए । प्राणनाथ के वंश में बाहुबली राजा हुआ और उनके वंश में दीर्घबाहु राजा हुए । इस वंश में बाहुबली, दीर्घबाहु और वीर सेनादिक जो राजाओं की श्रंखला हुई वे सब कूर्म नामक ऋषि के कुल में जन्मे थे अतः कौर्म्भि या कौर्मि बोले जाते हैं और उनकी वंशावली भी 'कौर्मि वंशावली' कहलायेगी । जैसे युधिष्ठिर, जनमेजय और परीक्षत राजागण पाण्डव नाम से बोले जाते हैं क्योंकि साक्षात अथवा परम्परा राजा पाण्डु हैं ।**

उपर्युक्त प्रयास के पश्चात् अन्य स्वजातीय विद्वानों ने कूर्मि जाति की उत्पत्ति के सन्बन्ध में अनुसंधान किये, उपलब्ध सामग्री एकत्रित की गई और उनके आधार पर **"कुलादर्श"**, **"कूर्मिक्षत्रियत्व दर्पण"** तथा **"कूर्मिक्षत्रियत्व निर्णय"** पुस्तकों की रचना की गयी । जिनमें कुछ और प्रमाण प्रस्तुत किये गये । फिर भी जिज्ञासा रूपी पिपासा बनी रही कि अब तक इस सम्बन्ध में जो तथ्य प्रकाशित हुये हैं वे पर्याप्त नहीं हैं और कूर्मवंश की वास्तविकता पर पूर्णरूपेण प्रकाश डालने में सक्षम नहीं हैं । मौजा रूझई, जिला उन्नाव (यू० पी०) के मूल निवासी हैदराबाद निवासी सेठ रामनाथ वर्मा की प्रेरणा से एक शोध-ग्रंथ पं० लक्ष्मी शंकर मिश्रा ने लिखा जिसे सम्वत् 2009 विक्रमी में **"कूर्म सिद्धान्त विमर्शः"** के नाम से स्व० श्री हरिवंश कुमार वर्मा ने प्रकाशित करवाया । इसी उन्नाव जनपद में डा० राम कुमार सिंह डी० लिट० हुये जिन्होंने **'शिवाजी'** पर एक काव्य ग्रंथ लिखा । प्रो० रामसिंह, एल-एल०-एम० वर्तमान में अध्यक्ष विधि विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय भी इसी जनपद के भूपुत्र हैं ।

निरुक्त भाष्य में व्याख्याकार यास्क मुनि और व्याकरण में शाकटायन मुनि का मत है कि जितने नाम (संज्ञा) वाचक शब्द हैं वे सब धातुओं से उत्पन्न होने के कारण यौगिक और यौगरूढ़ि हैं । इसी प्रकार मीमांसाकार जैमनि मुनि ने भी मीमांसा दर्शन में **"परन्तु श्रुति सामन्य मात्रम्"** इत्यादि प्रतिपादन किया है । इस विचार से वेद में रूढ़ि शब्द नहीं है, जो हैं वे सब यौगिक और योग रूढ़ि हैं ।

यौगिक शब्द

ये गुण-कर्म-स्वभाव को लिये हुए किसी चेतन या जड़ वस्तु के वाचक होते हैं । जैसे किसी ने कहा कि "गोपालमानय" अर्थात् **'गोपाल को ले आ'** -वह गौ पालने वाले को ले आता है । और जो गौ नहीं पालता उसको नहीं लाता । परन्तु रूढ़ि शब्दों में अर्थ का कम विचार रखा जाता है । 'गोपाल को ले आ' कहने पर गौ का अर्थ बिचार किये बिना ही गोपाल नामधारी व्यक्ति को बुला लाता है ।

योगरूढ़ि

उन शब्दों को कहते हैं कि जो अपने वाच्यार्थ को लिये हुये किसी एक ही वाच्य के बोधक हों । जैसे पंकज शब्द कमल वाची है, जो पंक अर्थात कीचड़ से उत्पन्न हो वह पंकज कमल कहलाता है । यह अर्थ सदैव 'पंकज' कमल शब्द के साथ रहेगा, अतः यह योगरूढ़ि है ।

रूढ़ि शब्द

वे कहलाते हैं जिनका प्रयोग लोक में सांकेतिक रूप से होता है जैसे गोपाल, गौ एक भी नहीं परन्तु नाम गोपाल और नाम लखपति पर पास एक कौड़ी नहीं ।

प्रस्तुत में कूर्म शब्द के यौगिक, योगरूढ़ि और रूढ़ि तीनों प्रकार के अर्थ होते हैं । यौगिक और योगरूढ़ि पक्ष में यह कूर्म शब्द 'कृ' धातु से औणादिक 'मूक' प्रत्यय करके सायणाचार्य ने इसकी सिद्धि शतपथ के 7 वें काण्ड में की है, और सायण ने इसको केवल नाम वाचक माना है । शतपथ काण्ड 7 अध्याय 5 प्रपा0 4 में महर्षि याज्ञवल्पय ने इस शब्द का यौगिक अर्थ यह किया है कि,

1 **"यदसृजदकरोततस्मात्कूर्मः"** अर्थात् जिस लिये परमात्मा ने प्रजाओं को (अकरोत्) किया, अर्थात् रचा इसलिये उसका नाम कूर्म हुआ, अर्थात् सृष्टिकर्ता होने से वह संज्ञक है ।

2 दूसरा अर्थ **"स यः स कूर्मो सौ स आदित्यः"** शतपथकार ने आदित्य शब्द का अर्थ सूर्य किया है ।

3 कूर्म शब्द का तीसरा अर्थ शतपथ में, **"कूर्मो वै रसः"** है । यहाँ कूर्म शब्द का रूढ़ि अर्थ रस है । रस का अर्थ शतपथ में दूध और दही लिखा है ।

कूर्म का अर्थ इन्द्रः

ऊपर जो कूर्म शब्द का आदित्य अर्थ लिखा गया है, शतपथ उसका अर्थ सूर्य ही करता है, परन्तु कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता, अष्टक 5 (प्रपाठक) 7 अनुवाक 1 पृष्ठ 3793 में **"असौ वा आदित्य इन्द्र । एष प्रजापतिः"** यह आदित्य इन्द्र है और यह प्रजापति है । यहाँ आदित्य का अर्थ इन्द्र, प्रजापति होने से कूर्म का अर्थ भी इन्द्र होता है, अर्थात् कूर्म इन्द्र है । इन्द्र शब्द यहाँ देहधारी क्षत्रिय के अर्थ में है । और जिस का आकार गोल हो जो खण्ड-खण्ड न हो वह आदित्य अर्थात् सूर्य कहलाता है । वेद में इन्द्र का विशेषण **"तुवि कूर्मितमः"** है यहाँ कूर्मिन शब्द आया है जिसका अर्थ सायणादि भाष्यकारों ने **"अतिशयेन बहुविध कर्मा ।"** अतिशय से अनेक विषकर्मा किये हैं । अर्थात् जो युद्ध समय अनेक प्रकार की व्यूहादि क्रियाओं को करता हो वह इन्द्र परमैश्वये सम्पन्न क्षत्रिय राजा **'तुवि कूर्मितम'** कहलाता है ।

व्याकरण शास्त्र में 'तमप् ' प्रत्यय अतिशय अर्थ में होता है । 'कूर्मितमः में यह शब्द 'कूर्मिन' है और 'तमः' यह तमप् प्रत्यय है । इन्द्र शब्द कूर्मि विशेषण सहित **कूर्मितमेन्द्र** अथवा **कूर्मेन्द्र** के रूप में वैदिक काल में था, कुछ काल के पश्चात यह कूर्मि अथवा कूर्म शब्द अन्य नामों के साथ भी संस्कृत साहित्य के आर्षग्रन्थ वाल्मीकि रामायण आदि में प्रयोग किया जाने लगा, तब यह इन्द्र से अलग शूरवीरों आदि अर्थों में दूसरे विशेष्यवाची शब्दों के साथ जुड़कर केवल **कूर्म, कूर्मि, कौरम** रह गया ।

तुवि कूर्मि इन्द्रः

वेद के कई मंत्रों में इन्द्र के गुण, कर्म एवं स्वभाव को व्यक्त करने के निमित्त 'कूर्मिः' शब्द संज्ञा तथा विशेषण के रूप में प्रयोग हुआ है जैसे :-

इन्द्र सुशिप्रोमधवा तावरूत्रो महाब्रातस्तुति कूर्मिऋधावान्।
यद्गुग्रोधावाधितो मर्त्येषु क्व त्याते वृक्षम वीर्याणि ।
(ऋग्वेद 3/30/3)

वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण ने भी ऋग्वेद (5/69/2) में क्षत्रिय शब्द का अर्थ इन्द्र किया है । वैदिक प्रमाणों से स्पष्ट है कि कूर्म, क्षत्र, इन्द्र आदि शब्द के अर्थ 'बहुविधि कर्मा इन्द्र' - अर्थात् संग्राम में नाना विधि कर्मा, बलवान, वीर्यवान, इन्द्र आदि हैं । पृष्ठ (i) पर उपर्युक्त मंत्र से "ऋधावान" कूर्मि क्षत्रिय जाति के मोनोग्राम में दो तलवारें (क्षत्रित्व-प्रतीक), गेहूँ की दो वालियां (कृषि कर्म-प्रतीक) तथा प्रज्वलित लपटें (ज्ञान-पिपासा की प्रतीक) सहित गोलाकर आकृति में प्रदर्शित किया गया है ।

'तुवि कुर्मिन्' या 'तुवि कूर्मितमः', देवराज इन्द्र के विशेषण

1 **पूर्वीश्चिचद्धित्वे तुवि कूर्मिन्नाश सोहवन्त इन्द्रोतयः ।**
तिराश्चिचदर्यः सब नावसो गहि शविष्ठ श्रुधि में हवम्।।
(ऋ० मण्डल 8 सन् 555 अ० 6 अध्याय 4 व० 50 मं 12)

पदपाठः। पूर्वीः। चित् । हि। त्वे इति। तुवि। कुर्मिन् । आशसः। हवन्ते। इन्द्र। ऊतयः। तिरःचित् । अर्थः ।सवनाः। आ वसो इति। गहि। शविष्ठ। श्रुधि। में हवम् ।।12।।

(भावार्थ):-हे बहुकर्मा इन्द्र राजन शत्रुओं से अपनी रक्षार्थ हम आपका आह्वान करते हैं ।।12।। इस वैदिक मंत्र में **'तुवि कूर्मिन'** यह शुद्ध क्षत्रियवाचक पद इन्द्र शब्द का विशेषण है ।

वेद के निम्नलिखित मंत्रों से यह भी प्रकट होता है कि इन्द्र शब्द राजा, महाराजा, एवं सम्राट भाव को भी सूचित करता है । जैसे :-

"इन्द्रः सत्यः स्वराट्" (ऋग्वेद 4/21/10)
"त्वमिन्द्रडाधिराजः" (अथर्व0 5/98/2)"
"इन्द्रोयातो वसितस्य राजा" (ऋग्वेद 1/32/115)

उपर्युक्त मन्त्र बताते हैं कि इन्द्र सच्चा सम्राट है, वह अधिराजा है और वह समस्त, चल-अचल सम्पत्ति अथवा स्थावर-जंगम सबका राजा है । गुणों के आधार पर इन्द्र की कूर्मि से इतनी समता एवं सम्बन्ध होने के कारण उनके बारे में विस्तार से जानने की जिज्ञासा होना स्वाभाविक है ।

"कूर्मि" शब्द वेद में विशेष गुणों से सम्पन्न देवराज इन्द्र के लिये अनेक मंत्रों में प्रयुक्त हुआ है । इन्द्र की प्रचंड शक्ति और युद्ध कुशलता का वर्णन वेद में बार-बार आया है । इन्द्र को पराक्रमी, क्षत्रिय तथा कुशल कृषक भी कहा गया है । और वह अपने अनुयायियों को सब प्रकार की विपत्तियों से सुरक्षा प्रदान करता है । इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि कूर्मि शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में देवराज इन्द्र को अनेक बार **'तुवि कूर्मिः'** या **'तुविकूर्मिन'** और **"तुवि कूर्मितमः"** शब्दों से भी सम्बोधित किया गया है । वे सब मन्त्र यहाँ उद्धृत करने से काफी स्थान लेंगे अतः उन्हें नहीं दिया जा रहा है । जिज्ञासु पाठक सीधे ऋग्वेद में उन्हें देख लें । यहाँ 'तुवि' शब्द महानता का बोधक है और 'कूर्मिः' पृथ्वी के उत्खनक, कर्मशील कृषक के लिये प्रयुक्त हुआ है । सायण के भाष्यानुसार 'तुवि कूर्मिः' का अर्थ है **"संग्रामेनाना बहुविधि कर्मा इन्द्रः"**। इन्द्र की स्तुति-प्रसंग में कूर्म ऋषि के पिता गृत्समद ऋषि की अन्तर्दृष्टि पुकार-पुकार कर कह रही है- **"यः प्रकुपितां अरम्णात्"** अर्थात् इन्द्र ने चलायमान पर्वतों को स्थिर किया ।

2 **वरिष्ठों अस्य दक्षिणामिय र्तीन्द्रो मघोनां तुवि कूर्मि तमः ।**
यथा बजिबः । परियास्यं हो मधाव घृण्णों दयसे विसरीन
(ऋ0 मण्ड0 6 सू 37 (अष्ट0 3 अ0 7) मं04)

(भावार्थ) :- अतिशय बहुत प्रकार के कर्म करनेवाला इन्द्र तुवि कूर्मितम कहाता है । ऐसा इन्द्र धनवानों के बीच में यजवान को यज्ञ में दक्षिणा देने के लिए प्रेरित करता है ।

उपर्युक्त वैदिक मन्त्र का ऋषि दयानन्द कृत भाष्य यह है कि **"अतिशयेन बहुकर्ता वरिष्ठ इन्द्रः"** अर्थात अतिशय से बहुत कियावान श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाववाला इन्द्र कहलाता है । दोनों ही भाष्यकार **"तुविकूर्मितमः"** पद को इन्द्र का विशेषण मानते हैं । वेद में, कूर्मि संज्ञा इन्द्र, राजा, शक्तिशाली, रक्षक वीर्यवान, पराक्रमी, महावीर के अर्थ में प्रयुक्त हुई है ।

वेद में इकारन्त कूर्मि शब्द

3 **आत्वारथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।**
तुवि कूर्मिमृषी सहमिन्द्र शविष्ठ सत्यते ।।1।।

(ऋ0 मण्ड08, सू068 मं0 1)

पदपाठ : आत्वा । रथम् ।यथा। ऊतये सुम्नाय । वर्तयामसि । तुवि कूर्मिम् । ऋषी सह्म् । इन्द्र । शविष्ठ। सत्यते ।।

(भावार्थ) : हे धर्मात्माओं के रक्षक । अतिशय वलवान इन्द्र युद्धादि समय में आप हमारी रक्षा कीजिए क्योंकि आप ही **"तुवि कूर्मिन्"** - बहुत वीर कर्मा दुष्टों के बल को नाश करने में समर्थ हैं ।

इन्द्र वेद के सबसे बड़े देवता हैं । इन्हें कुशिक भी कहा गया है । त्वष्ठा ने दधीचि की हड्डियों से वज्र बनाया था, जिससे उसने वृत्र को मारा । इसके अतिरिक्त इन्द्र ने सुश्व, नमुचि, करंज, परनय, और वृंगद नामक असुरों को मारा । वृंगद के सौ दुर्ग नष्ट किये । दासों के भी दुर्ग मर्दित किये । सुश्रवठ, तर्यवान, यतस, नर्य, तुर्वश, तुर्वीत, पुरुकुत्स, पुरु और सुदास की रक्षा की । उन्हें युद्ध जीतने में मदद की ।

वेदों में कूर्मि शब्द का प्रयोग देवराज इन्द्र के विशेषण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है, महान पराकमी बहुविध कार्यों का कर्त्ता (तुवि कूर्मितमः)-**अतिशयेन बहुविध कर्मा इन्द्रः**, - इति सायण भाष्यः ऋ0 वे0 4/54/12 ।

अतः कूर्मि शब्द इन्द्र का पर्याय और क्षत्रियत्व का द्योतक है । ऋग्वेद के 10 मंडलों में कुल 1028 सूक्त हैं जिनमें 300 सूक्तों में केवल इन्द्र की स्तुति की गई है । जिससे हम इन्द्र की महानता का अनुमान लगा सकते हैं । वैदिक ऋषियों के मन में इन्द्र का कितना बड़ा मान था तथा उनकी अन्तर्दृष्टि में भी वे कितने महान थे यह हम सब आज समझ सकते हैं । वेद को जब हम अपौरुषेय कहते हैं तो इन्द्र सम्बन्धी ये तथ्य भी उतने ही अपौरुषेय और सत्य हुए, जितना वेद को कहा जाता है ।

मैकवोलेन, कीथ, तथा अन्य पाश्चात्य विद्वान इन्द्र को प्रथमतः वर्षा का तथा अन्ततः युद्ध का देवता मानते हैं । वेदों में वृत्र अवर्षण का प्रतीक माना गया है, वह वर्षा का शत्रु है, जसे नष्टकर इन्द्र वर्षा की धाराओं को पृथ्वी पर अवतरित होने के लिये मुक्त कराता है । वर्षा का सीधा सम्बन्ध कृषि-सम्वृद्धि से है । अतः वैदिक भारत में और काफ़ी बाद तक भी प्रतिवर्ष कृतज्ञ कृषकों द्वारा अपने उपकारक के रूप में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होते ही **'इन्द्र महोत्सव'** बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था ।

इन्द्र की महानता के संबंध में वेदों में अनेक सूक्त हैं जैसे :-

यो जात एव प्रथमोमनस्वान्, देव देवान् क्रतुना पर्यभूषत ।
यस्य शुष्माद्रोवसी अभ्यसेतां नृमणस्य मह्ना स जनास इन्द्र ।।

ऋ0 वे0 2/12/11

(भावार्थ) :- जो मनस्वी (श्रेष्ठ) देव उत्पन्न होते ही प्रधान बनकर अपने कर्मों से समस्त देवों को लाँघ गया, जिसके

शरीरिक बल और विक्रम की महत्ता से द्युलोक और पृथ्वी काँप गयी, हे लोगों ! वही इन्द्र हैं ।

वेद में कौरम शब्द

इदं जनास उपश्रुत नराशंसस्तविष्यते । षष्टिं सहस्त्रा नवतिं च कौरम । रुशमेषु दध्महे ।। 1 ।।

अ0 कां0 20/ सू0 127/ मं0 1 ।।

(भावार्थ) हे मनुष्यो! यह आदर से सुनो (कि) मनुष्यों में प्रशंसा वाला पुरुष बड़ाई पायेगा । (कौरम) कौरम का अर्थ है हे पृथिवी पर रमण करने वाले राजन (षष्टि सहस्त्राः) साठ सहस्त्र (च) और (नवतिम्) नब्बे (अर्थात् अनेक दानों को) (रुशमेषु) हिंसकों को फेंकने वाले वीरों के बीच (आदघ्न हे) हम पाते हैं । "कौरम" शब्द की सिद्धि यह है कि (कौरम) कौ+रमु क्रीडायाम् अच अलुक समासः । हे कौ पृथिव्यां रमणशील राजन् । अर्थात् हे पृथ्वी पर रमणशील राजन् ।

पूर्व उल्लिखित वैदिक मन्त्रों में **'कूर्मिन्'** **'कूर्मिम्'** दोनों शब्द इन्द्र-विशेषण के साथ क्षत्रियार्थ द्योतक हैं और **'कौरम'** शब्द का प्रयोग सम्बोधनार्थ उपर्युक्त मन्त्र में प्रदर्शित किया गया है वह स्वयं विशेष्य रूप क्षत्रिय राजवाचक है । जो व्यक्ति अपने गुण कर्म स्वभाव से स्वयं पात्र-कुपात्र से लिये विचार करके मदद करता हो और अपनी प्रजा की रक्षा करता हो, उसका वैदिक नाम **कौरम** होगा । और लोक में 'डि.' विभक्ति का 'लुक् ' हो, समास करने पर **'कुरम'** होगा, ऐसे गुण-कर्म-स्वभाव वाला वंश **'कुरम वंश'** के नाम से कहलाता है । कालान्तर में कूरम व कूर्मि अथवा उसका अपभ्रंश **'कुरमी'** या **'कुर्मी'** जाति और वंश बोधक शब्द प्रचलित हो गया ।

कूर्म शब्द के विभिन्न अर्थ

4 कूर्मि शब्द के तीन अर्थ पहले दिये जा चुके हैं अब कुछ अन्य अर्थों का अनुशीलन कीजिये, जैसे कूर्मि शब्द का प्रयोग इस मन्त्र में देखिये :-

"वृषा वै कूर्मो योषा षाढा" (श0 कां0 अ0 5 प्र0 4)

यहाँ शतपथकार ने स्पष्ट ही कूर्म का अर्थ देहधारी जीवात्मा किया है । क्योंकि वृषा का **'धात्वर्थ' 'सेचन'** है । सेचन का अर्थ सींचना है । सायण वृषा का यौगिक अर्थ यह करते हैं कि **'वीर्य सेचन समर्थत्वात पुमानुच्यते'** (श0 का07 /अ05 /प्र04) अर्थात् वृषा का अर्थ युवा पुरुष है और योषा का अर्थ स्त्री है । पुरुषों में भी वह पुरुष जो वीर्य सेचन में समर्थ हो, ऐसे विवाहित पुरुष का नाम वेद में इन्द्र आता है । कूर्म का अर्थ युवा दृढ़ांग हृष्ट पुष्ट व्यक्ति है, चाहे वह कुमार या कुमारी हो चाहे विवाहित हो ।

5. कूर्म शब्द का पाँचवा अर्थ कश्यप है । **"कश्यपो वै कूर्मः"** (श0 कां 7 अ0 5 प्रा 4) । शतपथकार कूर्म शब्द का यौगिक अर्थ करते हैं । **"यदकरोत्तस्मात कूर्मः"**, प्रजाओं के उत्पन्न करने से ईश्वर का नाम कूर्म है । इस अपने अर्थ की पुष्टि में प्रमाण देते हैं । कि इससे पूर्व भी यह सृष्टि कश्यप की रची हुई है और ऐसा विद्वान कहते हैं । **कश्यप शब्द का अर्थ सर्वद्रष्टा परमेश्वर है और उसी की कूर्म संज्ञा है**

पुराण में कश्यप को ब्रह्मा का मानस पुत्र लिखा है, ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा हुआ वही कश्यप है । शतपथ में कूर्म शब्द का जीवात्मा-परमात्मा तथा प्रकृति परक अर्थ हैं । मत्स्य पुराण में कश्यप को मरीचि का पुत्र लिखा है- **"मरीचेः कश्यपः पुत्रः"**। कश्यप सामवेद के मंत्रों के दृष्टा ऋषि का नाम है । परन्तु शतपथकार किसी देहधारी व्यक्ति को कश्यप नहीं मानते, किन्तु प्राण और युवा पुरुष को कश्यप मानते हैं **"कूर्मो वे प्राणः"** (श0/7/5/4) अन्य भाष्यकारों ने कश्यप को देहधारी व्यक्ति माना है कश्यप का विवाह दक्ष की तेरह पुत्रियों से हुआ था । इन तेरह पत्नियों के नाम थे अदिति (दक्षायणी), अरिष्टा, इरा, इला, कद्रु, क्रोधा, ताम्रा, दतु, दिति,

प्रधा, मुनि, विनता तथा स्वसा । सारी सृष्टि इन्हीं से उत्पन्न मानी जाती है । कश्यप ऋषि का निवास स्थान बाद में कश्मीर कहलाया । कश्यप और कूर्म दोनों शब्दों का अर्थ सृष्टि अर्थ में और योगरूढ़ि है ।

6 कूर्म शब्द का 6 वाँ अर्थ उसी शतपथ के 7वों काण्ड में **'प्राण'** दिया है और लिखा है कि **"प्राणोंहोमाः सर्वाः प्रजा उत्पादयति"**- इसका अर्थ सायण लिखते हैं **"प्राणिभिरेव इमाः सर्वाः प्रजा उत्पद्यन्ते"** अर्थात् प्राणी (शरीरधारियों से ये सारी प्रजा उत्पन्न होती है) जब शतपथ शरीरधारी का नाम कूर्म अथवा कश्यप कहता है, तब मैथुनी सृष्टि में कूर्म से कूर्म वंश की उत्पत्ति भी शतपथ से सिद्ध होती है । सायण, उबट और महीधर ने तो कूर्म का जलजन्तु कच्छप परक अर्थ - **"मही च द्यौः"** इत्यादि तीन मंत्रों की व्याख्या करते हुये कूर्म वंश लिखा है, अम्बर (जयपुर) के कछवाहे कूर्मि राजघराना इसका साक्ष्य है । उन महाराजाओं के नाम के पीछे **'कूर्मवतंस'** प्रत्यय का आम प्रयोग होता था । जिसके प्रमाण इस पुस्तक में अन्यत्र दिये गये हैं ।

अवतारवाद के पक्ष में जीव को ईश्वर माना गया है जिनका यह पक्ष है कि शतपथ में **'कूर्मवतार'** है-**'एतद्वै रूपं कृत्वा'** का अर्थ कूर्मावतार किया है । इससे कूर्मावतार शतपथ भी मानता है । यह उनका मूल शतपथ के सर्वथा अनुकूल है ।

7 कूर्म शब्द का सातवाँ अर्थ **"द्यावा पृथिवी कूर्म"**। अर्थात् द्युलोक और पृथिवी लोक का नाम कूर्म है । यह अर्थ खगोल विद्या से सम्बन्ध रखता है । पृथिवी नामक कूर्मलोक में द्युस्थानी सूर्य अपनी किरणों से वर्षा करता है जिससे पृथिवी अन्न, फल, मूल, कन्द तथा वनस्पति इत्यादि उत्पन्न करती है, इसी प्रकार **"द्यौः"** सूर्य पुरुष स्थानी और स्त्री पृथिवी स्थानी है, दोनों के विधिवत संयोग से वंशों की उत्पत्ति होती है ।

8 कूर्म शब्द का आठवाँ अर्थ शतपथकार (शतपथ काण्ड 7 अ0 5) लिखते हैं कि - **"शिरः कूर्मः"**। मनुष्य शरीर में सिर कूर्म अर्थात् इन्द्रियों की उत्पत्ति का स्थान (मूल) है । लोक में शिर को मूल भी कहते हैं शरीर में शिर सूर्य है, जैसे सूर्य से उसकी 7 किरणों का सम्बन्ध शिर से है । यह अर्थ जीवात्मा परक है । कूर्म का अर्थ प्राण और पाँच ज्ञानेन्द्रिय है ।

इन उपर्युक्त आठ अर्थों के अतिरिक्त एक अर्थ यह भी है कि जो मनुष्य समुदाय कूर्म संज्ञक ईश्वर का भक्त या उपासक हो, वह कूर्म वंश का कहलायेगा, कूर्म जो सृष्टिकर्ता परमेश्वर हैं उनकी सृष्टि कूर्मवंश है । इस अर्थों में कूर्मवंश अन्य सभी वंशों का आदि स्रोत है । यहाँ प्रश्न उठता है कि स्वायम्भुव मनु से वैवस्वत मनु तक कूर्मवंश का अनुक्रम (सिलसिला) कैसे सम्भव है, जबकि प्रति मन्वन्तर में नूतन सृष्टि होकर परिवर्तन हो जाता है उस समय पिछले मन्वन्तर केवल दूसरे परिवर्तित मन्वन्तर में नहीं रह सकते, क्योंकि वंश अनित्य हैं ? **पं लक्ष्मी शंकर मिश्र** के अनुसार इसका उत्तर यह है- **"सिद्धान्त शिरोमणि** में दैनंदिन और आत्यन्तिक भेद से चार प्रकार के प्रलयों का वर्णन है । अवान्तर प्रलयों में सृष्टि का अत्यन्त विच्छेद नहीं होता । शब्द नित्य है, प्रवाह न्याय से कल्प-कल्पान्त भी नित्य है, और वृष्णि कुरु अंधक आदि शब्द प्रतिकल्प में अनादि चले तो कभी नवीन नहीं होंगे । गोत्रों का क्रम भी सृष्टयारम्भ से है गोत्र इस बात का प्रमाण हैं कि वंश सृष्टयारम्भ से चले आ रहे हैं ।

कपिलमुनि अपने सांख्य शास्त्र में लिखते हैं कि जैसे अब कहीं सृष्टि हैं और कहीं सृष्टि का नाश है, परन्तु सर्वत्र बिल्कुल नष्ट नहीं हुई है । इस प्रमाण से कूर्मवंश की वंश लता स्वयम्भुव मनु से वैवस्वत मनु तक चली आ रही है ।

कूर्मवंश का विकास स्वयम्भुव मनु से वैवस्वत मनु तक तथा आगे भी :- सृष्टायारम्भ में आर्य और दस्यु दो भेद हुये । ये भेद मानव जाति की उत्पत्ति के पश्चात के हैं । जिनके आचरण श्रेष्ठ थे वे आर्य कहलाये

और जिनके श्रेष्ठ न थे वे दस्यु कहलाये । आर्यों में वर्णाश्रम-व्यवस्था पहले कर्मणा तथा बाद में जन्मना स्थापित हुई । जिसके अनुसार समाज, चार वर्गों, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभक्त किया गया । आगे क्षत्रिय ही से सूर्यवंश, अग्निवंश, नागवंश-आदि बने पर इन सबकी उत्पत्ति कश्यप कूर्म से है । इसी से कश्यप कूर्म अन्य सब वंशों का आदि स्रोत हैं कश्यप कूर्म रूप अमैथुनी सृष्टि में हुआ । मैथुनी सृष्टि उक्त सूर्य, चन्द्र, नाग और बाद में अग्निवंश इन्हीं चार में कूर्म वंश की उत्पत्ति पुराणों ने मानी है । जैसे सूर्यवंशी वीतहव्य के पुत्र गृत्समद और ग्रत्समद के पुत्र कूर्म ऋषि हुये । एवम् चन्द्रवंशी शुनहोत्र ग्रत्समद, ग्रत्समद के शुनक, शुनक के शौनक तथा कूर्म (देखो स्कन्द पुराण सह्याद्रिखण्ड, अध्याय 33) । चन्द्रवंश के 80 कुलों में कूर्मऋषि वाला नागवंश में कद्रू के अपत्यों में "कूर्मः कुलिकश्चैव" कूर्म का जन्म हैं । और इसी तरह अग्निवंश में कई राजाओं और यहाँ तक अन्तिम राजा पृथ्वीराज चौहान, उन्हें भी कुछ विद्वानों ने कूर्म कुल में ही उत्पन्न माना है । कूर्म शब्द संज्ञा और गुणवाचक दोनों अर्थों में आया है सो प्रकरणों से समझना चाहिए । क्योंकि ऐसा न समझने-समझाने से लोगों ने भूल की है। कहीं संज्ञावाचक को गुणवाचक और कहीं गुणवाचक को संज्ञावाचक समझा गया है ।

पुराणों के पढ़ने से यह स्पष्ट है कि कूर्मवंश में चारों वर्ण थे, ऐसा भी पौराणिक काल के समय था और वह समय चन्द्र वंशोत्पन्न शौनक का है । शुनक पुत्र शौनक चारों वर्णों के प्रवर्त्तक हुए हैं इस विषय में वायु पुराण और विष्णु पुराण का एक मत है । वायु पुराण खण्ड (3) अध्याय 30 में लिखा है कि -

"पुत्रो गृत्समदस्यापि ? शुनको यस्क शौनकः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शुद्रास्तथैवच ।।
एतस्य वंशे सम्भूता विधित्रैः कर्मभिर्द्विजाः ।।
एतस्य शौकनस्य वंशे हि सम्भूतः ।"

इन शौनक के वंश में ब्राह्मण आदि चारों वर्ण उत्पन्न हुये, अर्थात अपने -अपने गुण-कर्म-स्वभावानुसार कौर्मीयब्राह्मण, कौर्मीयक्षत्रिय, कौर्मीयवैश्य और कौर्मीयशूद्र संज्ञा से प्रसिद्धि पायी, जिसका अपभ्रंश कालान्तर में कुर्मी हो गया । ये बातें विशेष करके शोध-कर्त्ताओं के लिये यहाँ दी जा रही हैं जिससे इन बिन्दुओं की सत्यता पर और गहराई से जाँच की जा सके ।

इसी प्रमाण के आधार पर डा0 अघोरनाथ चट्टोपाध्याय प्रथम भारतीय डी० एस-सी० ने कुरमियों के एक अधिवेशन में चौ0 देवीप्रसाद सिंह का कूर्मि सम्बन्धी व्याख्यान सुन कर कहा था कि "मैं गर्व के साथ कह सकता हूँ कि मैं भी एक कूर्मिब्राह्मण हूँ तथा अपनी बेटी भारत कोकिला श्रीमती डा0 सरोजनी नायडू कूर्मि को क्षत्रिय कुल में ठीक ही विवाह में दी है ।" यह बात इस पुस्तक में अन्यत्र भी दी हुई है ।

लघु नारदीय पुराण में कूर्म को शौनक का भाई लिखा है । इसी प्रकार विष्णु पुराण में भी वर्णित है कि "शौनकश्चातुर्वर्ण्य-प्रवर्तयिताऽभूत", अर्थात शौनक चारों वर्णों का प्रवर्तक हुआ है । महाभारत में सर्प ने युधिष्ठिर से कहा कि "यदिते वृत्ततो राजन ! प्रस्यमीक्षितः। वृथा जाति स्तदाऽयुस्मन कृतिर्यावन्न विद्यते"।। "हे राजन युधिष्ठिर! यदि आप आचरण सें ही वर्ण मानते हैं तो 'वृथा जाति' जन्म पक्ष व्यर्थ है ।" इसके प्रत्युत्तर में महाराज युधिष्ठिर का कथन ध्यान देने और मनन करने योग्य है । युधिष्ठिर ने कहा हे सर्प-"जातिरत्र महासप्र मनुष्यत्वे महाभते । संकरात्सर्ववर्णामां दुष्करपरीक्ष्येति में मतिः।" अर्थात् - "हे बड़ी बुद्धि रखने वाले महासर्प! जाति तो मनुष्य है, इस समय वर्णों की संकरता से जाति की परीक्षा अति कठिन है । क्योंकि "सर्वे सवस्विपत्यानि जनयन्ति सदा मथोजन्ममरणंच समं नृणम्। इदमार्ष प्रमाणं चयेयजामह इत्यपि तस्माच्छील प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्वदर्शिनः ।।। वाणी (बोलचाल) मैथुन (संयोग) और (जन्म) उत्पत्ति- ये सब मनुष्यों में हैं कुछ भी भेद नहीं । इसलिये तत्वदर्शी सदाचार को ही मुख्य मान वर्ण निर्णय करना जानते हैं किन्तु जब तक आश्रम धर्म में हैं तब तक जन्म से ही वर्ण-व्यवस्था को मानते हैं और आस्तिक सिद्धान्त भी यही है ।

उपर्युक्त पौराणिक गूढ़ बातों को पढ़कर पाठक लोगों का मन विचलित अवश्य होगा, नई-नई शंकायें पैदा होगीं, जिज्ञासायें प्रगट होंगी, उनका विवेकपूर्ण उत्तर खोज निकालने के लिये उन्हें प्रेरित करना ही, इन सब नीरस और गये-बीते जमीने के गढ़े-मुर्दे उखाड़ने में इस लेखक का प्रमुख अभिप्राय रहा है । जिससे कूर्मि जातीय इतिहास की खोज का क्रम रुक न जाये, यहाँ उसके लिये नये स्रोतों की ओर इंगित किया गया है । इसलिये भी ये यहां दी गयी हैं कि प्रकाशित होकर पुस्तक में भावी गवेषकों के लिये सहज उपलब्ध हो सकेगी अन्यथा विस्मृत हो जाती ।

अब इस बात को यही रोककर, आपके विचारार्थ युवा समाज सेवी एवं कूर्मि जातीय इतिहास खोजी, **चौधरी नरसिंह पटेल 'अज्ञानी'** जोकि स्वयं जयसवार कुरमी हैं, के लेख **"इतिहास के आइने से"** प्रकाशिक मासिक **"कूर्मि क्षत्रिय जागरण"** ने अंक दिसम्बर 1993 के पृष्ठ 13-16 से आवश्यक कुछ उद्धरण ऊपर की विवेचना से कहीं न कहीं ताल-मेल रखते हुये इतिहास का एक दूसरा पहलू प्रस्तुत करतें हैं, नीचे दिये जा रहे हैं :-

1 ब्राह्मण समाज ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये भगवान बुद्ध को दिखावे के रूप में विष्णु का नवाँ अवतार तो मान लिया, परन्तु उनके अनुयायियों के प्रति उनका दुराग्रह, विद्वेष यथावत् ही रहा, जिसके कारण महाराज नन्द, बिम्बसार, श्रोणिक, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक, हर्षवर्धन आदि राजाओं को जो भी भगवान बुद्ध या भगवान महावीर के अनुयायी थे, आज भी ब्राह्मण ग्रन्थों, ब्राह्मण पुराणों में व्रात्यक्षत्रिय, शूद्रक्षत्रिय, अब्राह्मणक्षत्रिय ही कहा गया है, तथा आज का प्राप्त इतिहास इनके कुल के बारे में मौन है या भ्रमित है । इसी कारण हम और आप उन महान सम्राटों की सन्तान होने के बाद भी, समाज में और निम्न श्रेणी की प्रजा, में आ गए ।

2 दुनिया के बहुत सारे विद्वान-इतिहासकारों ने प्रचुर मात्रा में साक्ष्य एकत्रित करके इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि बिम्बसार श्रोणिक से लेकर सम्राट हर्षवर्धन तक के लगभग सभी सम्राट जिनको ब्राह्मण ग्रंथों में शूद्र या व्रात्य कहा गया है, सब खत्रिय (क्षत्रिय) थे । आप समस्त स्वजातीय बन्धु या तो उन्हीं सम्राटों के वंशज हैं या उनके राज्य कर्मचारियों के, जो सभी कुलीन राजकुल से सम्बन्ध रखते थे । (प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में हमारे पूर्वजों ने लोकभाषा में अपने को खत्रिय कहा है, जिसका तात्पर्य क्षत्रिय से है-देखें **महा परनिब्बाण सुत**)।

3 आप यह मान लें कि कुर्मी नाम की कोई जाति नहीं है, बल्कि यह एक वर्ग है, जब हमारे पूर्वजों के ऊपर शुंगकाल, कण्वकाल, एवं सम्राट हर्षवर्धन के काल के बाद घोर अत्याचार होने लगा, तो हमारे पूर्वज अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिये अपने-अपने मूल-स्थान से हटकर (कुछ को छोड़कर) जगह-जगह बस गए । जहाँ बसे वहीं उन्होंने पुराना नाम छोड़कर नये नामों से अपने को समाज में प्रकट किया। यही कारण है कि आज हमारे समाज की हजारों शाखायें हैं, और जो हमारा अपना खून हैं, समाज में गुमनामी की जिंदगी जी रही हैं जिनको हमारे समाज ने अज्ञानतावश अभी तक मान्यता नहीं दी है, उसमें कुछ हमसे बुरी सामाजिक स्थिति में हैं, कुछ हमसे अच्छी में । आप अपनी जो जनसंख्या समझते हैं, हम उससे कम से कम दो गुने से अधिक एवं लगभग तीन गुने हैं ।

4 इतिहासकार जिस इतिहास को पुराणों का सन्दर्भ देकर लिखते हैं, हमारे पूर्वजों का वह इतिहास इन पुराणों से लगभग 1000 वर्ष पूर्व का है । क्योंकि समस्त या अधिकांश पौराणिक ग्रन्थों की रचना गुप्तकाल की है । भगवान बुद्ध के समय में मात्र तीन वेद ही लिखे गये थे, यही कारण है, उस समय ब्राह्मण

उसी को कहा गया जो त्रयी हो । त्रयी का तात्पर्य तीन वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के ज्ञाता से है । अथर्ववेद भगवान बुद्ध के बाद की रचना है ।

5 ब्राह्मणों ने अपने विचारों से राजन्य (आपके पूर्वजों) के पूरे समाज को इतना प्रदूषित कर दिया था कि राजन्यों ने गुमनामी की जिन्दगी जीते हुए पाँचवी वर्ण-व्यवस्था समाज को दी । फिर आपके पूर्वजों ने समाज में एक नयी वर्ण-व्यवस्था दी । इस वर्ण या कूर्मियों (टिप्पणीः **पाठकगण इसको इस अध्याय में पूर्व वर्णित तथ्य से मिलायें, शुनक के पुत्र शौनक के वंश में ब्राह्मण आदि चारों वर्ण उत्पन्न हुये, अर्थात् अपने-अपने गुण-कर्म-स्वभावानुसार कौर्मीय ब्राह्मण, कौर्मीय क्षत्रिय, कौर्मीय वैश्य तथा कौर्मीय शूद्र संज्ञा से प्रसिद्ध थे जिनका अपभ्रंश कुर्मी हो गया है** ।) के पूर्वजों ने अपने को ब्राह्मण से नीचे रखा बनियों और शूद्रों से ऊपर । आप एक बात पर विचार करें कि क्या कारण है कि आपके समाज के अधिकांश लोग सिर्फ **कुर्मी** कहलाना पसन्द करते हैं । या **कूर्मि ब्राह्मण, कूर्मि वैश्य** या **कूर्मि शूद्र** कहलाना पसन्द नहीं करते हैं, सिर्फ **कुर्मी या कूर्मि क्षत्रिय** ही कहना या कहलाना पसन्द करते हैं । इस पर आप विचार अवश्य करें, मैं मानने के लिए नहीं कह रहा हूँ । आप सिर्फ विचार करें।"

चौधरी नरसिंह पटेल 'अज्ञानी' ने जो ऋग्वेद में **"पुरुष सूक्त"** का उल्लेख किया है, उसके बारे में अधिकांश विद्वानों का मत है कि वह क्षेपक है उत्तर वैदिक काल में बहुत बाद में ऋग्वेद में शामिल कर दिया गया था जब तक श्रुति को वेद के रूप में संकलित कर लिखित पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया जा चुका था । इसका खंडन तो गीता के इस श्लोक से **"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः"** हो जाता है जो कि वेद के **'पुरुष सूक्त'** से काफी बाद की कृति है और जिसके स्पष्ट अर्थ है कि चार वर्णों में समाज को गुण और कर्म भेद से विभक्त किया गया था न कि जन्मगत भेद से । यह विवेकपूर्ण सत्य लगता है, जब कि **'पुरुष सूक्त'** की वर्णों की उत्पत्ति अवैज्ञानिक है, वर्ण विशेष का मुख, बाहु, जंघा अथवा पैरों से उत्पन्न होना अविश्वसनीय और हास्यास्पद है और वह प्रजनन की क्रिया उस क्रम से न कभी हुई है और न भविष्य में कभी होगी भी ।

अज्ञानी जी ने उपर्युक्त उद्धरण 5 में कहा है कि चार वर्णों वाली चातुर्वर्ण-व्यवस्था के अतिरिक्त आपके पूर्वजों ने एक नई वर्ण-व्यवस्था दी वह था **कूर्मि वर्ण** जो बाद में **कुर्मी** कहलाया और इसके अन्दर भी चातुर्वर्ण बनाये । यह सब शोध के विषय हैं और इस ओर शोध कर्त्ताओं का ध्यान जाना चाहिये। इन विषयों पर गूढ़ अध्ययन की आवश्यकता है तभी कुछ विश्वसनीय निष्कर्ष निकालना उचित रहेगा ।

जाति-प्रथा की गतिशीलता का अध्ययन करने के लिये हम अपनी सुविधानुसार इसे निम्नलिखित पाँच युगों में बाँट सकते हैं :-

1 **वैदिक युग (ईसा से 600 वर्ष तक)**
2 **उत्तर-वैदिक काल (तीसरी शताब्दी तक)**
3 **धर्मशास्त्र युग (11वीं शताब्दी तक)**
4 **मध्यकालीन युग (11वीं से 17वीं शताब्दी तक)**
5 **वर्तमान या आधुनिक युग (18वीं शताब्दी से वर्तमान तक)**

कूर्मि कुलों का विवरण

(चौधरी देवीप्रसाद सिंह द्वारा लिखित पुस्तक "क्षत्रकुलादर्श" से साभार उद्धृत)

सारे देश में विद्यमान कूर्मि कुलों की ठीक-ठीक संख्यादि अवगत कराना सुगम कार्य नहीं है। बाम्बे गजेटीयर में लिखा है कि कुनबी लोगों के कुल सम्बन्धी नाम 292 हैं, सम्पूर्ण संख्या में से 102 की उत्पत्ति चन्द्र से 78 की सूर्य से और 81 की उत्पत्ति ब्रह्मदेव से वर्णित की जाती है। शेष 99 कुल नामों के विषय में कहा जाता है कि उनका सम्बन्ध विविध जातियों से है। और बाम्बे गजेटीयर के पूना के कुनबी (कुर्मी) अपने को मराठा कहते हैं। इनमें समग्र 96 परम्परीय कुल हैं, जो कहे जाते हैं कि 56 देशों के उन शासकों से उत्पन्न हुए हैं जो उज्जैन के (राजा) विक्रम के, साम्प्रदायिक ध्रुव काल से 56 वर्ष पूर्व ईसा पैठन के शालिवाहन के, शाकः का 78 वाँ वर्ष ईसा, और मालवा के भोजराज के, जिनका ध्रुव काल प्रायः दशवीं शताब्दी का अन्त है, के वंशज है। पारम्परीय कथाओं के अनुसार जिन से शिवाजी का सम्बन्ध था वे भोजराज के वंशज थे। विक्रम के वंशज सुकुरराज कहलाते है और शालिवाहन के वंशज राजकुमार। ये सब सोमवंश या चन्द्रशाखा, सूर्यवंश या सूर्य शाखा, शेषवंश या नागशाखा, और यदुवंश या यदु शाखा इन चार क्षत्रिय शाखाओं या वंशों में एक न एक से सम्बन्ध प्रतिपादित करते हैं और "किट्रस कम्पेण्डयम् आफ हिन्दू कास्ट्स एंड ट्राइब्स" आदि पुस्तकों में भी उनके कुर्मी कुलों व भेदों के नाम लिखे हैं। दो सौ चौबीय कुलों और भेदों के नामादि, आगे लिखे हैं। इस लेखक ने इन्हें उत्तरी भारत तथा दक्खिन भारत करके दो भागों में अलग-अलग करके नीचे दिया है :-

मुख्यवंशः सूर्यवंश, कूर्मवंश, कुशवंश, लववंश, चन्द्रवंश

उत्तरीय भारत के कुरमी कुल

चन्देल, पटेल, पाटीदार क्षत्रिय, चौधरी, पंवार, तोंवर, ठाकुर, गुर्जर, राठौर, घोडचढ़े, सचान, सङ्वान, चन्दन्न, परिहार, गवहार, गहरवार, बाघमार, रावत, राउ, राव, राउतराव, पटनवार, जयसवार, वयसवार, समसवार, रमैया, बैसवार, उमराव, उत्तम, मनवा, चन्द्राकर गौर, गंगवार, वंशवार, मनवार, गौर, कटियार, सैंठवार शिरगा, सिंगरौर, अवधीय (अवधिया), कनौजिया, गुजराती, कुलवादी, राजपूत, चन्द्रावल, गौर, महाले, बुंदेला, घमैला, कुचेसा।

दक्षिण भारत (महाराष्ट्र और आस-पास) के कुनबी (मराठे) :

जादव, सावंत, घोड़चढ़े, घोड़पदे, देशमुख, गोरे, मोरे, वाघे, राणा, राणे, माने, रावल, निंबालकर, पाटनकर, खांडेकर, मानकर, जगताप, घाटगे, दलवी, सूख, विचारे दामाडे, भोंसले, मराल, उपास्य, निकम, कदम्ब, नायडू, गायकवाड़, कुलवंदी, महाराष्ट्र।

कूर्मावतार

अब पुनः इस अध्याय के मूल विषय पर आया जाय। भगवान विष्णु के दशावतारों में प्रथम मत्स्यावतार और द्वितीय कूर्मावतार माना जाता है। कूर्म भगवान का अवतार शतपथ में वर्णित है। अधिकांश वैदिक ग्रंथों के मत से कूर्म, वाराह आदि अवतारों की जो कथा कही गयी हैं, वह प्रजापति के अवतार की प्रकारान्तर कथा है। वैष्णव पुराण इन्हीं अवतारों को भगवान विष्णु का अवतार बतलाते हैं। उत्तर प्रदेश में हिमालय का एक भाग कूर्मवन और कुमारवन भी कहलाता है। यहाँ लोहाघाट के समीप चम्पावत है। प्रजापति ने संतति-उत्पादन के लिये कूर्म रूप यहीं धारण किया था। कूर्म की पीठ का घेरा एक लाख योजन का कहा गया है।

हिमालय में स्थित प्रसिद्ध तीर्थ स्थल, श्री बदरीनाथ मंदिर के पीछे नर-नारायण नामक आस-पास स्थित उच्चे

पर्वतों के निकट सीधे पर्वत पर चढ़ने से आगे ऊपर **उर्वशी कुंड** तथा इसी पर्वत पर आगे **कूर्म तीर्थ स्थल** पड़ता है, यहाँ पर बने एक मन्दिर में **भगवान विष्णु का कूर्म रूप में पूजन होता है । पौष शुक्ल द्वादशी** ज्येष्ठा-नक्षत्र हो तो **भगवान विष्णु का पूजन** यहाँ विशेष रूप से किया जाता है क्योंकि इसी तिथि को **कूर्मावतार** हुआ था।

बदरीवन (गढ़वाल पर्वतीय क्षेत्र) के पाँच तीर्थों में एक कूर्मधारा नामक तीर्थ स्थल नदी--तट पर स्थित है । कहा जाता है कि भगवान का अंशावतार कूर्म इस कुंड में यहाँ छोड़ा गया था ।

भूगर्भ शास्त्रियों का कथन है कि जहाँ आज हिमालय पर्वत है, वहाँ हजारों-हजारों वर्षों पूर्व कभी अगाध सागर था । **प्रसिद्ध इतिहासकार डा0 साँकलिया** का मत भी कुछ इसी प्रकार का है । उनके मतानुसार पूर्वकाल में कश्मीर की भूमि जलमग्न थी, जिसके जल को कश्यप ऋषि ने अपने तेज से सोख लिया था । दूसरी ओर भूगर्भशास्त्रियों का कथन है कि हिमालय की पर्वतश्रंखला का क्षेत्र प्रत्येक वर्ष कुछेक सेंटीमीटर ऊँचाई में निरन्तर उठ रहा है । अतः जो भूखंड कश्मीर घाटी का समस्त क्षेत्र समुद्र तल रहा होगा, वही हजारों-हजारों वर्षों की ऊपर उठने की धीमी गति की प्रकिया से आज इस स्थिति में मनुष्य के आवास योग्य हो गया, उसमें समुद्र का जो सबसे अधिक गहरा भूभाग था वह आज डल-झील के रमणीक स्थल के रूप में मौजूद है । वह विश्व का सबसे सुन्दर प्राकृतिक स्थल माना जाता है । कश्मीर की प्रसिद्ध एवं पुरातन रचना का उल्लेख राजतरंगिनी और **नीलमत पुराण** में इसी प्रकार मिलता है कश्मीर की भूमि पहले जल में डूबी हुई थे । **कश्यप (कूर्म) ने उसे जल से बाहर निकालने में योगदान दिया** । (पं0 भगवतदत्त कृत "भारतवर्ष का इतिहास", द्वितीय संस्करण 1946, पृष्ठ 44)।

प्राचीन ग्रन्थों में 'कूर्म' सम्बन्धी शब्दों के अर्थ

कूर्मः

1. विष्णु का द्वितीय अवतार । प्रजापति ने संतति उत्पादन के लिये कूर्म रूप धारण किया था। कूर्म की पीठ का घेरा एक लाख योजन का था ।

2. ऋग्वेद के कई सूक्तों के दृष्टा एवं विकास करने वाले एक कूर्म नामक ऋषि, गृत्समद के पुत्र तथा गोत्र प्रवर्तक भी थे । यथा

   "कूर्मो गात्समदो गृत्समदे वा ऋषिः (ऋ. वे. 1/27)

3. नाभि-चक्र के पास की एक नाड़ी

4. शरीर में वह वायु जो पलकों को खोलती, तथा बंद करती है ।

कूर्मावतार : शतपथ ब्राह्मण में कूर्मावतार का वर्णन है । अधिकांश वैदिक ग्रंथों के मत से कूर्म, वाराह, आदि अवतारों की जो कथा कही गयी है, वह प्रजापति के अवतार की प्रकारान्तर की कथा है । इन्हीं अवतारों को विष्णु का अवतार बतलाते हैं ।

कूर्मक्षेत्र : हिन्दुओं का तीर्थ स्थान, जहाँ कूर्मावतार का दर्शन होता है । यह स्थान उत्कल प्रदेश में चिकाकोल से 8 मील पूर्व, गंजाम जिले में हैं । चैतन्य महाप्रभु ने इस तीर्थ-स्थान की स्थापना की थी ।

कूर्मतीर्थ : हिमालय में स्थित एक तीर्थ-स्थल । बदरीनाथ-मन्दिर के पीछे पर्वत पर सीधे चढ़ने से चरणपादुका का स्थान आता है । उसके ऊपर उर्वशीकुंड तथा इसी पर्वत पर आगे कूर्मतीर्थ पड़ता है । यहाँ भगवान विष्णु का कूर्म रूप में पूजन होता है ।

कूर्मद्वादशीः पौष शुक्ल द्वादशी ज्येष्ठा-नक्षत्र हो तो भगवान विष्णु का पूजन करें क्योंकि इसी तिथि को कूर्मावतार हुआ था ।

कूर्मचक्रः शुभाशुभ का शकुन और फल जानने का चक्र, जिसे तांत्रिक लोग बनाते हैं ।

कूर्मधारा : बदरीवन के पाँच तीर्थों में से एक । कहा जाता है कि भगवान विष्णु का अंशावतार कूर्म इस कुंड में छोड़ा गया था ।

कूर्मा : एक प्रकार की वीणा, सोमवंशी राजा, जिसके वंश में धृतराष्ट्र और पांडु हुये थे ।

कुरुक्षेत्र : एक प्राचीन तीर्थ, जो सरस्वती नदी (अतीतकाल से ही लुप्त) के किनारे पर वर्तमान हरियाणा राज्य में अम्बाला-दिल्ली मार्ग के मध्य स्थित है ऋग्वेद में इसका नाम 'सर्यानावत' है । ब्रह्मा की उत्तरवेदी। यहाँ ब्रह्मसर सरोवर में स्नान कर परशुराम ने क्षत्रिय हत्या के पाप से मुक्ति पायी थी । महाभारत का युद्ध यहीं हुआ था । यहीं श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था । ब्रह्मा जी को यहीं ब्रह्मत्व प्राप्त हुआ था ।

कश्यप : एक प्रजापति, ब्रह्मा के मानस-पुत्र । दक्ष की तेरह पुत्रियां कश्यप की 13 पत्नियां बतलायी गयी हैं इनके नाम हैं । अदिति (दक्षायणी), अरिष्टा, इरा, इला, कद्रु, कोधा, ताम्रा, दतु, दिति, प्रधा, मुनि, बिनता तथा स्वसा ।

कुमाऊँ : उत्तर प्रदेश में हिमालय का एक भाग जिसे कूर्मवन और कुमारवन भी कहते है । यहाँ कूर्मावतार लोहाघाट के समीप हुआ था ।

कान्यकुब्ज : वर्तमान कन्नौज के आस-पास का प्राचीन प्रदेश । वायु-दोष अथवा किसी ऋषि के शाप से यहाँ के राजा ब्रह्मदत्त की 100 कन्यायें कुबड़ी हो गयी थी । इससे इस प्रदेश का नाम कान्य-कुब्ज पड़ गया।

कुरम : एक नदी । यह सदकोह नामक पर्वत से निकल कर सिन्धु नदी में मिलती है । ऋग्वेद में 'कमु' नाम से उसका वर्णन किया गया है । उक्त नदी तटस्थ प्रदेश भी कूरम कहाता है । राजतरंगिनी में इसे 'कमुक' कहा है । राजतरंगिनी (4/159) के अनुसार कुरम समुद्र स्तल से 4800 फीट ऊँचा है ।

कुरमी : कुनबी समान अर्थी

कुम्बी : पंजाब (सप्तसिन्धु प्रदेश) की जाति विशेष । कुम्बी लोग प्राचीन कम्बोज जाति की एक शाखा समझ पड़ते हैं । **"हिन्दी विश्वकोष (बंगला विश्वकोष के सम्पादक श्री नगेन्द्र नाथ बसु)** तथा हिन्दी विद्वानों द्वारा संकलित पंचम भाग प्रकाशक बी0 आर० पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली"।

पुराणों में विष्णु भगवान के पृष्ठ भाग को कूर्म कहा गया है । यदि शरीर का आधार स्तम्भ (मेरुदण्ड) न हो तो शरीर सीधा तनकर खड़ा नहीं रह सकता । शरीर को सीधा तना रखना मेरूदंड का ही कार्य है । इसलिये कूर्म-कच्छप के समान कठोर पृष्ठ-भाग को कूर्म कहा गया है । भगवान विष्णु के शरीरिक अंगों का पुराणमय रूप एक प्रकार से संसार के तात्विक स्वरूप का द्योतक है । उनके कंठ को ब्रह्मांड, हृदय को पद्म, पृष्ठ भाग (पीठ) को कूर्म तथा इसी प्रकार अन्यान्य अंगों का पुराणमय रूप पद्म पुराण के स्वर्ग खण्ड के पृष्ठ 399 पर उल्लिखित है । इससे यह ज्ञात होता है कि समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिये मेरुदण्ड का पृष्ठ भाग (पीठ) का दायित्व जिस महापुरुष वर्ग को दिया गया अथवा उसे बाद में कूर्म या कूर्मि जाति बोधक नाम से जाना गया । उसका दायित्व था खाद्यान्न उपजाकर समाज का भरण-पोषण सुचारु रूप से करना साथ ही में जब कभी शत्रुओं के आक्रमण होने का अंदेशा हो तो तुरन्त योद्धा का रूप धारण कर शत्रु का नाश करना । पेट की भूख और मनुष्य समुदायों को अपने शत्रुओं से खतरा अनादि काल से चला आया है, अतः उससे समाज को राहत देने वाला कूर्मि (कृषक) वर्ग भी अनादि काल से, समाज का महत्वपूर्ण और सम्माननीय अंग बनकर, अस्तित्व में चला आ रहा है । इसको कर्म-गुण-स्वभावानुसार समाज का एवं समस्त राष्ट्र का मेरुदण्ड अथवा कूर्म सर्वथा उचित कहा गया है ।

कूर्म अथवा कूर्मि द्वारा संपादित कृषि एवं सुरक्षा कार्य उस वर्ग विशेष की वर्गगत अथवा बाद में जातिगत सहनशीलता, कठोरता और कर्मठता के कारण ही निर्विघ्न एवं निरन्तर सम्पन्न तथा सम्भव होते रहे होंगे । अनादि काल में जल से पृथ्वी का प्रकट होना, उसे स्थिर कर ठोस रूप प्रदान करना आदि प्रारम्भिक अनेक अति दुष्कर कार्य सुसम्पादित करना कूर्म भगवान (कूर्मावतार) की कठोरता, कर्मठता, सहनशीलता, पौरुष तथा लोक-कल्याण की भावना का ही द्योतक है । अन्यथा ऐसे दुस्साध्य कर्म करने का बीड़ा वे क्यों उठाते? अतएव गुण-स्वभाव और कर्मानुसार समानता के कारण ही कूर्मि-वर्ग विशेष को भी उस पुरातन काल में समाज और राष्ट्र का मेरुदण्ड (आधार स्तम्भ) मानते हुये कूर्म नाम से अलंकृत किया होगा ।

"कूर्म, कच्छप" के सम्बन्ध में Dimmitt & Bintemen ने अपनी सम्पादित और अनूदित पुस्तक "Classical Hindu Mythology- A Reader in the Sanskrit Puranas" प्रकाशित की रूपा एंड कम्पनी, दरियागंज, दिल्ली-2 प्रथम संस्करण 1978 उसके पृष्ठ 74 पर वे लिखते हैं :-

KURMA, THE TORTOISE

Long ago, in the battle between the gods and the Asuras, the gods were defeated by the Daityas, because of Durvasa's curse they became bereft of good fortune. Praising Vishnu, who had gone to the ocean of milk "Ksheer Sagar", they said, "Protect us from the demons !"

Vishnu replied to Brahma and the other gods, "Make a contact with Asuras to churn the milky ocean for the nector that will restore your good fortune. One should treat with one's enemies when something important is to be done. I shall see to it that you drink the nector, not the Danavas. Using Mount Mandara as a churning stick and the snake Vasuki as a rope, inflaggingly churn the milky ocean, with my help."

After making the agreement with the Daityas that Vishnu had advised, the gods went to the Ocean of Milk and taking Vasuki's tail, began to churn. When heated by the serpent's breath, the gods were invigorated by Hari. Because the unsupported mountain sank down into the water as they stirred up the sea, Vishnu took the form of a tortoise ,"KURMA" and held Mt. Mandara on his back. Rest of the story is well known about how Halahala, Coral tree, Parijata jewel Kauslubha, Cow, Celestial Apsaras and the goddess Lakshmi and lastly Vishnu arose as Dhanvantari, holding a jar filled with nector. The nector was given to gods to drink. Then the Daityas who had been deprived of the nector were felled by the gods in battle and the deities went to live in heaven." **यही पौराणिक कथा हम अनेक धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित पाते हैं, अतः सब हिन्दुओं की इस पर आस्था अगाध है । हाँ सागर-मन्थन के वास्तविक** अर्थ एवं अभिप्राय विद्वानों ने अलग-अलग लगाये हैं पर कथा का सार सब में एक समान है ।

पुराणों में यह भी वर्णित है कि सागर-मंथन के अवसर पर **कूर्म-कच्छप** ने लोक-कल्याण की भावना से अपनी पीठ पर मदराचल पर्वत की मथनी चलवाने का कष्ट वहन कर निष्काम लोक-सेवा का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया था । सागर-मंथन हेतु कूर्म रूप धारण करके जगत का कल्याण एवं रक्षा करने वाले विष्णु भगवान को इसी कारण **"आदि कूर्म"** विशेषण से भी सम्बोधित किया जाता है । जैसे :-

"अनन्तो वासुकिः शेषो कराहो धरणीधरः ।
पय क्षीर विवेवावर्यो हंसो हैमगिरि स्थितः ।।
हयग्रीवो विशालाक्षी हयकर्णो हमाकृति ः।
मन्थनों रत्नहारी च कूर्मोऽधर धराधरः ।।

उपर्युक्त पौराणिक आख्यान का लौकिक आशय शायद यह भी हो सकता है कि सागर-मंथन एक प्रकार के वैचारिक सागर (मत-मन्तान्तरों का) मंथन (वाद-विवाद, विराट् गोष्ठी) रही हो । सुर एवं असुर अर्थात् उस काल के अच्छे-बुरे सभी विचार वालों ने उस सागर-मंथन रूपी विशाल वैचारिक-गोष्ठी में सम्मिलित होकर अपने-अपने विचार स्वेच्छापूर्वक प्रस्तुत किये होंगे । और इस प्रकार के तर्क-वितर्क की रस्साकशी का आशय नाग वासुकि का मंथन रज्जु बनाया गया रहा होगा । **कूर्म-कच्छप** द्वारा अपनी-अपनी पीठ पर **मदराचल पर्वत** की मथनी के वज़न और घर्षण का घोर कष्ट सहन करने का सम्भवतः यह आशय भी रहा हो कि उक्त वैचारिक गोष्ठी में कूर्म नाम के महापुरुष को अध्यक्ष बनाया गया हो । कूर्म महोदय ने तर्क-वितर्कों की उस महागोष्ठी का दायित्व संभालने एवं दोनों पक्षों में शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने में अपनी महान योग्यता तथा गुरुता का परिचय दिया होगा । उक्त वैचारिक महासम्मेलन (विचार-मंथन) के परिणामस्वरूप सामाजिक हित में प्राप्त महान् निष्कर्ष ही सम्भवतः चौदह अमूल्य रत्न (सर्वस्वीकृत मत) प्राप्त हुये हों । उनके अनुशीलन से समाज को, संसार को लक्ष्मी (धन, ऐश्वर्य) एवं अमृतघट (अमरत्व, दीर्घजीवन) जैसी सार्वजनिक सुख-हित हेतु उच्च स्तरीय सद्विवेक रूपी अमोल रत्न प्राप्त हुए।

डा0 एम0 एल0 खरे ("समुद्र-मंथन एक सनातन किया है," कादम्बिनी, नवम्बर 1993 अंक, पृष्ठ 126 से साभार) के मतानुसार प्रतीक रूप से देखें तो समुद्र-मंथन एक सनातन किया है । मानव-सभ्यता के प्रारम्भ से लेकर अब तक यह किया निरंतर होती आयी है, व्यक्ति के संदर्भ में भी और मानव-समाज के संदर्भ में भी । समुद्र है ज्ञान का, जो अथाह है, अपार है । इसके मंथन से मूल्यवान उपलब्धियां और क्षमताओं के रत्न मिलते हैं । मंथन का अर्थ है अध्ययन, चिंतन, मनन और (ज्ञान का) सृजन । मंथन किसी द्रव को चकाकार घुमाने की किया है । ज्ञान-जल को भी चकाकार रूप में मथना पड़ता है । पहले मोटी-मोटी बातें जानी जाती हैं, फिर अर्जित जानकारी के परिप्रेक्ष्य में पहले सीखी हुई बातों का पुनरावलोकन किया जाता है । यदि आवश्यक हुआ

तो पूर्व अर्जित धारणाओं में संशोधन किया जाता है । विज्ञान के अध्ययन पर तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है ।

डा0 खरे आगे कहते हैं कि समुद्र-मंथन के लिये मदारचल (मंदारगिरि) को मथानी बनाने का वर्णन है। पर्वत प्रतीक है विशालता का, ऊँचाई का और अचल बने रहने का । ज्ञान-सिन्धु मथने के लिये बड़ी इच्छा शक्ति, उच्च आँकाक्षा और अडिग निष्ठा की जरूरत होती है । इन गुणों को पर्वताकार लगन कह सकते हैं ।

अब देखिये, रस्सी के रूप में वासुकि का उपयोग । सर्प लम्बा और कष्ट सहिष्णु होता है तथा कुंडली का आकार धारण करता है । कथा में मंदराचल को कच्छप (कछुवे) की पीठ पर टिकाने का वर्णन है । उसकी पीठ कठोर होती है । समुद्र-मंथन देवता और असुर दोनों मिलकर करते हैं । आशय दैवी और आसुरी वृत्तियों से हैं । मनुष्य में ये दोनों विद्यमान हैं । दैवी गुण हैं त्याग, निस्पृहता, आस्था, साधना, सत्यान्वेषण, विनम्रता और सौहार्द्र इत्यादि । आसुरीगुण हैं निशा-जागरण, घोरश्रम, कुछ हद तक हठधर्मिता, तीव्र लालसा, लिप्तता अपव्यय, दुस्साहस इत्यादि । इन दोनों प्रकार के गुणों को उचित ताल-मेल की आवश्यकता होती है । जैसा कि मंथन की क्रिया में करना आवश्यक है ।"

उपर्युक्त विचार मंथन महागोष्ठी (सागर मंथन) में कूर्म-कच्छप ने अपनी प्रखर बुद्धि एवं सतत प्रयासों से उसके प्रबल विरोधी विचार वाले असुरों को भी सम्मिलित होने के लिये राजी करके उस महागोष्ठी (विचार-मंथन) को सफल बनाकर समाज का जो उपकार किया है, वह पौराणिक काल की ऐतिहासिक घटना के रूप में चिरस्मरणीय रहेगा । उन्हीं कूर्म-कच्छप जैसी कर्मठता, कठोरता, सहनशीलता, पौरुष तथा लोक-कल्याणकारिता के प्रतीक के रूप में विद्यमान हैं कूर्म, कच्छ, कच्छवाह एवं कश्यप, कुशवाहा आदि अनेक विरुद धारक कूर्मवर्ग (कुरमी जाति के लोग) जिनका विचार, साहित्य, भाषा और संस्कृति से गहरा जुड़ाव रहता है । वैचारिक मन्थन का अर्थ है कि विभिन्न विचारों के संस्कार को उभारना, विचार तोड़-फोड़ के काम भी आते हैं । विचार कुछ व्यक्तियों पर नशा जैसा प्रभाव छोड़ता है और चन्द्रमा की तरह आह्लाद देने वाली विचार धारायें कामधेनु और कल्पतरु भी बन सकती हैं, पर उसकी वास्तविक अर्थवत्ता अमृत होना है, जो साथ ही साथ व्यक्ति को, समाज को स्वास्थ्य प्रदान करने वाला होता है । यही बातें पौराणिक आख्यान के सागर-मन्थन से प्राप्त चौदह अमूल्य रत्नों, जैसे कालकूट विष, वारुणी, पारिजात, लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत गज, धन्वन्तरि, कामधेनु, पाँच कल्पतरु, चन्द्रमा और सबसे अन्त में चौदहवाँ रत्न अमृत कलश को सांकेतिक रूप में दिग्दर्शित करती है । अतः इस पौराणिक कथा को यदि हम विशाल वैचारिक मन्थन के रूप में देखें तो लगेगा कि ऐसी घटना सम्भव है और घटा भी होगा और विचार की नयी-नयी संभावनायें जिनमें अमृतरूप में महानतम विचार उस महान वैचारिक गोष्ठी से निष्कर्ष रूप में प्राप्त हुये होंगे और साथ में अन्य 13 अमूल्य रत्न भी । वे सब रत्न वास्तविकता में वैसे न रहे होंगे, बल्कि उनके विशिष्ट गुणों को प्रतिपादित करने वाली उच्चकोटि की विचारधारायें ही उन महान् विचारकों द्वारा प्रस्तुत की गयी होंगी । इसी कूर्मवतार द्वारा सागर (वैचारिक) मन्थन से प्राप्त परम सत्य रूपी अमृत के प्रयोग से देवता गण अमर हुए ।

यदि इस विषय पर आज के परिवेश में व्याख्या करें तो पायेंगे कि बहिरंग में दृश्यमान समुद्र की तरह हमारा-सबका जीवन भी एक समुद्र-समान है, जिसका ठीक से मंथन करने पर हमारे हाथ मुख्यतः तीन बहुमूल्य रत्न लगते हैं । प्रथम है - प्रेम की पुलकन, आंतरिक उल्लास की अनुभूति, द्वितीय है - सत्य रूपी ज्ञान की गहन शोध प्राप्ति हेतु सहज जिज्ञासा तथा तृतीय है - पीड़ित मानव समुदाय के प्रति असीम - असहनीय स्तर की करुणा का उभार और उस निमित्त अपना सब कुछ अर्पण कर देना । इन्हीं तीन बहुमूल्य उपलब्धियों को जो जीवन रूपी समुद के मंथन (चिंतन) से प्राप्त होती है, भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी, उपासना, साधना और आराधना के रूप में भी जाना जा सकता है ।

प्रेम की पुलकन होना अर्थात् भौतिकवाद से भरे-स्वार्थों से जकड़े इस संसार रूपी मरुस्थल में सरसता

से भरी चन्द बूंदे बरस जाना जैसा है । प्रेमी बनकर हमें अपना 'अहं' सर्वप्रथम खोना पड़ता है । खोने के बाद प्रेमी-भक्त जो पाता है, वह लाख-करोड़ गुणा अधिक होता है । वही सच्ची भक्ति का स्वरूप है ।

ज्ञान, सत्य के रूप में इस दुनिया में मौजूद है । उसे जानने और प्राप्त करने के लिये मानव निरंतर गहन शोध में लगा हुआ है । मनुष्य ने अब तक जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह अद्भुत है । अभी भी बहुत कुछ जो जानने को बचा है, वह असीम-अनंत और अत्यंत लाभप्रद है । पूर्ण विवेक से बिना किसी कुंठा के इस ज्ञान को अधिकाधिक प्राप्त करने का प्रयास तथा उसके लिये साधनारत रह निरंतर और अविरल सीखने की मनोभावना बनाये रखना एक उच्च स्तरीय योग है । इसी को विद्वानों ने ज्ञानयोग परिभाषित किया है ।

मुख्यतः इन तीन दिव्य रत्नों के रूप में मनुष्य को जीवन-समुद्र के मंथन अथवा जीवन-साधना से जो बहुमूल्य अमृत-कण हाथ लगते हैं, उनसे सारी वसुधा को, अपने को, अपने समाज को, जिसमें जातीय हित भी निहित हैं, हम धन्य बना सकते हैं ।

सिख गुरु अर्जुनदेव जी महाराज ने अपनी शब्द (सबद) रचनाओं में श्री हरि (विष्णु भगवान को) अनेक नामों, जैसे गोपीनाथ, भक्त वत्सल, वासुदेव आदि से सम्बोधित किया है । एक शबद में वे कहते हैं, **"मछ, कछ, कुरम, आग्या अउत्तरासी ।"** ये दोनों चरित्र क्रमशः मत्स्य पुराण और कूर्मपुराण से उद्धृत किये गये हैं । मत्स्य रूप धारण करके अपनी सींग से नाव को बाँधकर नाव में अवस्थिति राजर्षि सत्यव्रत और सप्त ऋषियों की प्रलय काल में रक्षा की । कूर्म पुराण में हरि ने कच्छप (कूर्म) रूप धारण किया और समुद्र-मन्थन के समय कूर्मरूपी नारायण की अनुकम्पा से चौदह बहुमूल्य रत्न प्राप्त हुये । (इनके नामों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है)। अतः कूर्मावतार का वर्णन **गुरुग्रंथ साहिब** में भी है यह प्रमाणित होता है ।

मार्कण्डेय पुराण में पुलिंद और सुमीन देशों के अन्तर्गत कुरमी (कुरुमिन) देश का वर्णन किया गया है, जैसे :-

पलिन्दाश्च सुमीनाश्च रुपयाः स्वापदैः सह ।
तथा कुरुमिनश्चैव सर्वे चैव कठाक्षराः ।।

उपर्युक्त श्लोक में कुरुमी शब्द निर्विवाद रुपेण कूर्मि जाति का बोधक है, जो हमारी प्राचीनता को द्योतित करता है ।

कूर्म पुराण

18 पुराणों में कूर्म पुराण प्रमुख माना जाता है । यद्यपि प्रारम्भ में इस पुराण में छः हजार श्लोक तथा चार संहितायें थीं, जिनमें से अब केवल ब्राह्मी संहिता और बहुत कम श्लोक उपलब्ध हैं कूर्म पुराण में ईश्वर गीता और व्यास गीता दी गई है, जिसमें समाधि तथा कर्त्तव्य-पालन के द्वारा ज्ञान ज्योति प्राप्ति के साधनों का वर्णन है । कूर्म पुराण में शिव-अवतार का उल्लेख विस्तार से किया गया है । कूर्मि जाति प्रागैतिहासिक काल में थी । उसे उस प्राचीन जमाने में जाति न कहकर कुछ और नाम से जाना जाता होगा । इस विषय पर अगले अध्याय में चर्चा की गयी है । आर्यों के वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था-विभाजन से पहले कूर्मि थे । इसी प्रकार शंकर भी बड़े प्राचीन देवता हैं और उनकी मूर्ति तथा पूजन के प्रमाण मिले हैं । सिन्धु नदी सभ्यता में लैंगिक पूजन का प्रचलन था जोकि शंकर का ही एक प्रतिरूप है । अतः कूर्मिजनों और शिव-पूजन का बड़ा प्राचीन काल से सम्बन्ध रहा है । कूर्म पुराण में पाशुपत मत तीन प्रकार के माने गये हैं । वैदिक, तांत्रिक और मिश्र । दसवी शती में धीरे-धीरे पाशुपत मत का भारत में ह्रास हो गया ।

वैदिक आर्य इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं के अतिरिक्त अपने स्वर्गवासी पूर्वजों (पितरों) की भी पूजा-स्तुति करते थे । साधारणतः हिन्दू अपने 33 करोड़ देवता भ्रमवश समझ बैठे, जबकि वे मात्र 33 कोटि के हैं । वस्तुतः यहाँ कोटि का अर्थ करोड़ न होकर मात्र वर्ग है । इस प्रकार 33 कोटि देवता कहने का सही तात्पर्य है

प्रकार के देवतागण । ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाया गया है कि 33 देवों में 8 वसु, 12 आदित्य, 11 रुद्र तथा इन्द्र एवं प्रजापति ब्रह्मा, एक-एक । इस प्रकार आर्य धर्म बहुदेवतावाद को लेकर चला । इन देवों में इन्द्र ऋग्वेद के अनुसार सबसे प्रबल देवता है, जिनको वैदिक युग का वीरता का प्रतीक भी कहा गया है । इन्द्र के लिये वेद में इतने सूक्त मिलते हैं, जितने अग्नि को छोड़कर किसी अन्य वैदिक देवता के लिये नहीं पाये जाते हैं ।

देवासुर संग्राम

वैदिक काल में इन्द्र का व्यक्तित्व अति शक्तिशाली, सर्व विजयी योद्धा का प्रतीक था, जिसके कारण ही वे देवों में सर्वश्रेष्ठ अथवा उनके नेता, अधिनायक माने गये और उनका विरुद देवराज बन गया । इन्द्र से सम्बंधित वैदिक आर्यों की मान्यता रही है कि इन्द्र ही मरुत और मेघों द्वारा वृष्टि कराकर पृथ्वी को उर्वरा करते हैं । पहले इस अध्याय में सुर और असुरों के बिगड़े सम्बन्धों का उल्लेख किया है । इन दोनों वर्गों के सम्बन्ध इतने कटु हो गये कि सारे देवतागण इन्द्र के नेतृत्व में, और असुर लोग त्वष्टा के नेतृत्व में रहने लगे । फिर दोनों समुदायों में आपसी मन-मुटाव, विकट संग्राम का रूप तक धारण करते गये । इन द्वन्दों और संग्रामों की रंगभूमि थी आर्यावर्त । ऋग्वेद के अनुसार त्वष्टा लौह-परशु रखता था और वह ही इन्द्र के प्रसिद्ध अस्त्र-वज्र का निर्माता था । इन्द्र के सर्वशक्तिशाली अस्त्र का निर्माता होकर भी वह उनका जानी दुश्मन बन बैठा । इनके कारणों पर आगे विचार किया जायेगा । त्वष्टा अथवा वृत्र के बारे में कहा गया कि वह सर्पाकार असुर था । ऐसा वैदिक आर्यों का विश्वास था कि वृत्र ने समस्त जल-राशि अपनी शक्ति में बन्दी कर ली थी । इन्द्र उस समस्त जल को वृत्र के चंगुल से मुक्त कराना चाहते थे । घमासान युद्ध हुआ असुर पराजित हुये और इन्द्र ने जल को उनके पास से मुक्त करा दिया ।

ऋग्वेद में असुर नेता त्वष्टा और देवराज इन्द्र के बीच भीषण संघर्ष होने का बार-बार उल्लेख मिलता है । ऐसा प्रतीत होता है कि इन सब फसादों की जड़ सोमरस को लेकर आपसी मन-मुटाव था, जोकि बढ़ते-बढ़ते अन्त में असुरों और देवताओं में हुये देवासुर संग्राम का रूप धारण कर गया, जिसमें इन्द्र को त्वष्टा (वृत्तासुर) का वध तक भी करना पड़ा । ऋग्वेद के एक मंत्र (मंडल 1/32/1) में इन्द्र की अद्भुत वीरता और पौरुष का वर्णन मिलता है । इस मंत्र में इन्द्र द्वारा वृत्तासुर को मारकर सप्तसिन्धु के समस्त जलों को स्वतंत्र कराने का भी वर्णन है । इन्द्र ने वर्षा के शत्रु वृत्त को वज्रास्त्र से मारकर जल-प्रवाह को अवरोधित रखने वाली उसकी कुंडली खोलकर उसे निर्बन्ध बहने को बाध्य किया था । इन्द्र वज्र-प्रयोग से असुरों और दस्युओं के लौह-दुर्गों को विध्वस कर देता है, दैत्यों का संहार करता है । इन्द्र स्वयं सौ यज्ञों के अनुष्ठापक कहे गये हैं ।

वैदिक ऋषियों की दृष्टि में इन्द्र एक महावीर योद्धा, बहुविधि कर्मा है अतः वे कहते हैं :-

> "इन्द्र वो नरः सख्याय सेपुर्म हो यन्तः सुमतये चकानाः ।
> महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महायुरण्वमूअवसे यजध्वम् ।।"
>
> (ऋ06/29/1)

(भावार्थ) "हे यजमान, तुम्हारे यज्ञ कराने वाले इन्द्र की इसलिये परिचर्या करते हैं कि उनका साख्य (बन्धुत्व) प्राप्त हो । और उनसे सुमति, सद्बुद्धि मिले, इन्द्र वज्र-हस्त, बलवान और दाता है, तुम रक्षा के लिये उनका भजन करो

वरुण की उपासना से हटकर इन्द्र-पूजा की ओर आकृष्ट हुये आर्यों का उल्लेख ऋग्वेद के चौथे मण्डल के 42 वें सूक्त के 2,4 और 7वें मंत्रों में है । युद्ध प्रिय इन्द्र का उल्लेख और चित्रण ऋग्वेद के लगभग 250 सूक्तों में मिलता है । उन सूक्तों के अनुसार इन्द्र लम्बी और बलिष्ठ भुजाओं वाले हैं । वे सुन्दर अधरों से सोमरस का पान करते हैं । उनकी कॉंचन की भाँति सुन्दर केश राशि और दाढ़ी है । शक्ति और साहस में

वे अद्वितीय है । इन्द्र की अद्वितीय शारीरिक एवं मानसिक स्थिति की भाँति सोमरस पीने की उनकी क्षमता भी असीमित है ।

ऋग्वेद (8/16/7) के मंत्रानुसार **"इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरुहुतः, महात्महीभिः शचीभि"**- (भावार्थ) "इन्द्र ब्रह्म और ऋषि हैं, इन्द्र की सब स्तुति करते हैं, इन्द्र महती शक्तियों से युक्त है ।" वैदिक आर्य इन्द्र को देवराज कहकर आह्वान करता था, उनसे युद्ध में विजय प्राप्ति की मंगल कामना करता था और सदा ही अन्न-धन, पशु और सन्तति की आशा रखता था । उसकी अटूट आस्था थी कि इन्द्र सर्वशक्तिशाली, मरुतपति, वज्रधर और मेघ चालक है । उनकी अनुकंपा से ही पृथ्वी पर जल-वृष्टि होती है । ऋषि विश्वामित्र को इन्द्र-पूजा का प्रधान पुरोहित एवं प्रचारक बताया गया है । ऋग्वेद के मंत्र (1/169/61) में इन्द्र के पार्थिव सदन का भी वर्णन मिलता है - **"प्रति प्रयः हीन्द्र मी लुहुर्षो नृन्महः पार्थिक सदन यतस्व ।"** इन्द्र के लिए सुन्दर घोड़े जुते रथ पर वेग गति से उसके चलने का प्रशंसात्मक वर्णन ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में मिलता है । इन्द्र का श्वेत रंग वाला उच्चैःश्रवा नामक प्रसिद्ध घोड़ा है । इन्द्र की नगरी का नाम अमरावती, महल का नाम वैजयंत तथा उनके सुन्दर उद्यान का नाम नंदनवन है । इन्द्र को पूर्व दिशा का लोकपाल (दिक्‌पाल) कहा गया है । (पुराणके अनुसार आठ दिशाओं के आठ लोकपाल हैं, जैसे पूर्व दिशा का इन्द्र, दक्षिण-पूर्व कोण का अग्नि, दक्षिण का यम, दक्षिण-पश्चिम कोण का सूर्य, पश्चिम का वरुण, उत्तर-पश्चिम कोण का वायु, उत्तर का कुबेर तथा उत्तर-पूर्व कोण का ईशान है)। इन्द्र का प्रमुख वाहन ऐरावत हाथी है । ऐरावत और उच्चैःश्रवा इन्द्र के पास उन चौदह दैवी जीव-जन्तुओं में से थे जोकि पौराणिक कथानुसार देवों और असुरों को समुद्र-मंथन से प्राप्त हुये थे । इसी ऐरावत हाथी पर आरूढ़ देवराज इन्द्र की द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व की एक विशाल मूर्ति भाजा गुफा में उत्कीर्ण है ।

देवराज इन्द्र की पत्नी का नाम इन्द्राणी है, जिनके अन्य नाम ऐन्द्री और शची पुलोमजा भी है । ऋग्वेद में अनेक बार उनका नाम आया है । और और कुछ मंत्रों की वह द्रष्टा भी कही गयी हैं ।

पुलोमा दक्षपुत्री दनु और कश्यप के प्रधान पुत्रों में से एक असुर थे और वृत्रासुर के साथ इन्द्र से लड़े थे यह इन्द्र द्वारा मारे गये तथा इनकी पुत्री शची का इन्द्र से विवाह हुआ । शची पुलोम की पुत्री होने के कारण 'पुलोमजा' तथा इन्द्र की भार्या होने से इन्द्राणी भी कहलायीं ।

महाराष्ट्र के औरंगाबाद नगर में इस लेखक की पुत्री **सुनीता सिंह** का विवाह 1 जनवरी 1992 को **डा0 सतीश नारायण कामत** के साथ सम्पन्न हुआ । यह लेखक सपरिवार बाद में निकट स्थित इलोरा-अजन्ता की गुफायें देखने गया । वहाँ इलोरा की इन्द्र-गुफा में इन्द्राणी की एक विशाल मूर्ति गुफा भित्ति पर खुदी हुई है, जोकि इन्द्रलोक के कल्पवृक्ष की छाया में बैठी सौम्य मुद्रा में दिखायी पड़ती है । इन्द्र को 'क्षत्र' अर्थात् क्षत्रिय भी कहा गया है-**"अथ यदि राजन्यो यजते इन्द्रवंज जयेन्द्राय चाचवदतेन्द्र जाय येत क्षत्रहीन्द्रः क्षत्र राजन्यः"** (श0 ब्रा0 5/1/1) इन्द्र की आयु बहुत लम्बी बतायी गई है, एक सौ दिव्य वर्ष । इंन्द्र को कल्पतरु की प्राप्ति हुई थी । अमृत प्राप्ति के लिये देव और असुरों द्वारा किये गए समुद्र-मंथन से चौदह रत्न निकले थे, जिनमें से एक कल्पवृक्ष है। यह इन्द्रलोक का अलंकार कहा गया है और याचकों की मनोकामना को सफलीभूत करता है । (भागवत-8/8/2)

महर्षि अष्टावक्र

पाठकगण महर्षि अष्टावक्र के नाम से अवश्य परिचित होंगे । वे इतने बड़े विद्वान थे कि गर्भस्थ अवस्था में जब वे अपने माँ के पेट में थे, उनकी माता के निकट ही बैठे उनके पिता ने सस्वर कोई धार्मिक मंत्र पढ़ा, उसके उच्चारण में कुछ त्रुटि हो गयी । माँ के पेट में शिशु से किसी मंत्र का त्रुटिपूर्ण उच्चारण सुनकर न रहा गया । वह माँ के पेट के अन्दर से बोल पड़ा कि आपने मंत्रोच्चारण सही नहीं किया । ऋषि पिता को जब पता चला कि पेट के अन्दरवाले अजन्मा शिशु ने उनमें खामियाँ निकालने की धृष्टता की है तब क्रोधी ऋषि ने

प्रसन्न होने के जगह उन्हें शाप दे दिया कि पैदा होने पर बालक आठ अंगों से टेढ़ा उत्पन्न होगा । हुआ तो ऐसा ही पर बड़े होने पर वे महर्षि अष्टावक्र के नाम से बहुत प्रसिद्ध एवं विद्वान सिद्ध हुए । अष्टावक्र महर्षि तथा बन्दी प्रश्न-प्रश्नोत्तर बड़े ज्ञानवर्धक हैं । उसी का एक प्रश्न और उसका उत्तर मिलता है जोकि इन्द्र सम्बन्धी है तथा इन्द्र की महानता का एक अकाट्य प्रमाण है । अतः यहाँ यह उल्लेख करना असंगत न होगा ।

अष्टावक्र और बन्दी का वाद-विवाद

बन्दी के प्रश्न का उत्तर दिया - "एक ही अग्नि अनेक रूपों में प्रकाशित होती है । तथा एक ही सूर्य सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है । **शत्रुओं के हन्ता देवराज इन्द्र एक मात्र अद्वितीय है** । तथा पितरों के स्वामी यमराज भी एक मात्र नियन्ता हैं" ।

एक अन्य प्रश्न के उत्तर में महर्षि अष्टावक्र पाँच इन्द्रियाँ: त्वचा, श्रोत्र, नेत्र, जिह्वा और नासिका तथा पाँच नदियां: विपाशा (व्यास), इरावती (रावी), वितस्ता (झेलम), चन्द्रभागा (चुनाव) और शतद्रु (सतलज़) बताते हैं। इन पाँच नदियों से सिंचित और सुशोभित पंचनद प्रदेश वर्तमान में पंजाब [पंज प्रदेश (पाँच)+आव (पानी-नदी)] का उल्लेख वेद में है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्द्र सम्बन्धी उल्लेख

महाभारत के बाद ब्राह्मण उपनिषद काल का सभारंभ समझना चाहिए । इस काल की सामान्य दशा का दिग्दर्शन इस काल में निर्मित साहित्य से होता है । यह काल महाभारत युद्ध से गौतम बुद्ध तक समझा जाना चाहिये । (1500 ई0 पूर्व से 500 ई0 पूर्व तक)।

ब्राह्मण-ग्रन्थ वैदिक साहित्य का अंग माने जाते हैं, जबकि इनकी रचना वेदों से बहुत समय बाद हुई थी। ये वेदों की अनेक कठिन ऋचाओं का अर्थ समझाने हेतु लिखे गये थे ।

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि **इन्द्र** के उपासक आर्यों और **अहुरमज्दा** के उपासक ईरानियों में निरंतर झगड़े-टंटे होते रहते थे, वे **असुर** को **अहुर, पंच** को **पंज, मातर** को **मावर, भ्रातर** को **बरादर, सप्त** को **हफ्त, 'सप्तः सिन्धु'** को **'हफ्त हिन्दु' सोम को होम, सहस्त्र** को **हज़ार** कहते थे । इनका स्वर ठीक न होने के कारण आर्य इनको **असुर**-जिनका स्वर ठीक न हो- शब्द से सम्बोधित करते थे । तथा इनसे घृणा की जाती थी । शतपथ-ब्राह्मण में तो यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि असुरों की पराजय उनके खराब स्वर के कारण अशुद्ध उच्चारण की वजह से ही हुई थी । जैसे :-

"ते असुरा आत्त **बचसो हे अलवोहे अलव इति वदन्त परावभूवुः । तस्मान्न ब्राह्मणो क्लेच्छेत् । अस्यीहि** एषा वाक्"

ईरानी लोग इन्द्र आदि देवताओं की उपासना के विरुद्ध थे । वे अग्नि की उपासना करते थे तथा वे उसको (इन्द्र को) पशु आदि की बलि से अपवित्र हुआ मानते थे । विद्वानों का मत है कि आर्यों और प्राचीन ईरानियों के युद्ध को ब्राह्मण ग्रन्थों में कमशः देवताओं और असुरों के ऊपर घटाकर लिखा गया है । डा0 अविनाशचन्द्र दास अपनी अंग्रेजी भाषा में लिखी पुस्तक, **"ऋग्वैदिक इण्डिया"** में लिखते हैं:-

"ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा कल्पित है, उसमें सांसारिक युद्धों का वर्णन देवासुर-संग्राम के कल्पित रूप में किया गया है । यद्यपि हम निःसन्देह कहीं-कहीं मृत्युलोक सम्बन्धी विषयों के वर्णन की भी झलक देखते हैं ।"

ऐतेरेय ब्राह्मण (1-23) में देवताओं और असुरों के युद्ध के विषय में एक बड़ी मनोरंजक कथा है । असुरों ने देवताओं को भूलोक, अन्तरिक्ष और द्युलोक में प्रवेश न करने देने का विचार किया और इस विचार को कार्यान्वित करने के लिये उन्होंने तीन प्रकार की भित्तियाँ (1) लौह, (2) रजत (चाँदी), (3) स्वर्ण की

बनायीं। परन्तु देवताओं ने **'उपसव'** नाम के यज्ञ द्वारा उनकी एक न चलने दी और तीन दिन की याज्ञिक क्रिया समाप्त होते ही असुरों को तीनों लोक से निकलना पड़ा यहाँ यज्ञ का प्रभावकारी महत्व प्रदर्शित किया गया है। इस कथा से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन ईरानी लोग बड़े समृद्धिशाली एवं धनैश्वर्य में आर्यों से बढ़े हुये थे । इसके विपरीत आर्यों ने आध्यात्मिक उन्नति ही की थी ।

जैन तीर्थंकरों सम्बंधित इन्द्र एवं इन्द्राणी की कथा

प्रथम तीर्थंकर भगवान **ऋषभदेव** इस वसुन्धरा पर महान इसलिये नहीं थे कि उनके जीवन का वर्णन वेदों और पुराणों में मिलता है । वे इसलिये बड़े नहीं हैं कि जैन, हिन्दु, बौद्ध आदि सभी उन्हें किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हैं, वे पूज्य इसलिये नही हैं कि उनके पास देवराज इन्द्र आते थे, वे भगवान इसलिये नहीं कि उनके पास **समवसरण** आदि विभूति रहती है । तो फिर उन्हें भगवान मानकर जैन भक्तगण उनकी पूजा क्यों करते हैं ? कोई भी मानव जो दोष एवं आवरणों को नष्ट कर देता है वही सर्वज्ञ बनकर जगत पूज्य हो जाता है। उनमें से एक भगवान ऋषभदेव है, जिन्होंने सतयुग के प्रारम्भ में अयोध्या में जन्म लेकर संसार के प्राणियों को जीवन की कला सिखाई थी ।

राजकुमार पार्श्वनाथ उस समय 16 वर्ष के थे तब वे गंगा तट पर सेना के साथ हाथी पर चढ़कर भ्रमण के लिये निकले । राजकुमार पार्श्वनाथ अपने अवधिज्ञान के नेत्र से एक तपस्वी महीपाल विडम्बनापूर्ण तप को देख रहे थे । पार्श्वनाथ ने उसे नमस्कार नहीं किया इससे तपस्वी के मन में बहुत दुःख हुआ । तपस्वी ने लकड़ी काटने के लिये अपना फरसा उठाया ही था कि राजकुमार पार्श्वनाथ ने मना किया कि **"इसे काटो नहीं इसमें जीव है ।"** पर तपस्वी ने उस पर भी उस लकड़ी को अपने फरसे से काँट-छाँट डाला, इस लकड़ी के भीतर रहने वाले एक सर्प-सर्पिणी के जोड़े के दो टुकड़े हो गए । परम करुणाशील पार्श्वनाथ ने असह्यवेदना में बुरी तरह तड़पते हुए उन सर्पसर्पिणी को महामंत्र **'णमोकार'** सुनाया ! मन्त्र सुनकर वे दोनों शांतभाव के साथ मरे और मरणोंपरान्त नाग कुमार देवों के **इन्द्र** एवं **इन्द्राणी** के रूप में **धरणेन्द्र** और पद्मावती के नाम से जन्में।

धरणेन्द्र और पद्मावती ने बड़े होने पर एक दिन आकर प्रभु पार्श्वनाथ के चरणों में नमस्कार किया। धरणेन्द्र ने सर्प का रूप धारण कर श्री पार्श्वनाथ को ऊपर उठा लिया और सहस्त्र फन का मंडप उनके ऊपर कर दिया । देवी पद्मावती भक्ति के उल्लास में वज्रमय छत्र तानकर खड़ी हो गई । इससे संवर देव, पार्श्वनाथ के साथ धरणेन्द्र और पद्मावती पर भी क्रोधित हो उठा, उसने इन तीनों पर नाना प्रकार के कर्कश वचनों से प्रहार किए । इतना ही नहीं वह आँधी, जल, वर्षा, उपल-वर्षा द्वारा भी घोर उपद्रव मचाने लगा । प्रभु पार्श्वनाथ इन उपद्रवों, रक्षा-प्रयत्नों और क्षमा प्रसंगों से निर्लिप्त रहकर आत्म-ध्यान में लीन रहे । तभी उन्हें **"कैवल्य ज्ञान"** प्राप्त हो गया । **"संवर देव ने अपनी आक्षम्य उच्छृंखलता को जान लिया और वह तुरन्त पार्श्वनाथ भगवान के श्री चरणों में नतमस्तक हो क्षमा याचना करने लगा ।"** तत्पश्चात् देवराज इन्द्र की आज्ञा से धनपति कुबेर ने वहीं पर **समवसरण** की रचना की और जैन ग्रंथों में उल्लिखित है कि भगवान श्री पार्श्वनाथ का तब वहीं पर प्रथम जगत-कल्याणी प्रवचन हुआ ।

धरणेन्द्र ने **भगवान पार्श्वनाथ** के सिर पर **सहस्त्र फन** का **छत्र** लगाया था, इसी कारण इस स्थान का नाम **संख्यावती** के नाम पर **अहिच्छत्र** हो गया, साथ ही भगवान के **"कैवल्य ज्ञान"** कल्याणक की भूमि होने के कारण यह पवित्र तीर्थ क्षेत्र बन गया । **अहिच्छत्र धाम** आजकल रामनगर नामक गाँव का एक भाग है । राष्ट्र भर के जैन-जैनेतरों की मान्यता है कि भगवान श्री पार्श्वनाथ जी की **अधिष्ठात्री देवी श्री** पद्मावती जी पार्श्व भक्तों की समस्त मनोकामनाओं को पूर्णकर उनकी रक्षा करती है इस वर्ष 7 जनवरी 1994 को पार्श्व-जयन्ती हर्षोल्लासपूर्वक मनायी गई ।

उपर्युक्त आख्यान को यहां देने का **एकमेव तात्पर्य यह है** कि **जैन धर्म में भी देवराज इन्द्र और इन्द्राणी की कथा विद्यमान हैं । इन्द्र** ही ने **धरणेन्द्र** के रूप में और उनकी भार्या **इन्द्राणी देवी** ने पद्मावती के रूप में जन्म लिया । जैन समाज श्रद्धा से उनकी आराधना करता है । **इससे एक अन्य धार्मिक साक्ष्य से इन्द्र और इन्द्राणी का वैवत्य और ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है ।**

वैदिक काल में यज्ञों का महत्व

मध्ययुगीन अन्धकार और परतन्त्रता की त्रासदी के दिनों में न केवल वैदिक प्रकियाएँ विलुप्त हुई बल्कि उनके अर्थ के अनर्थ निकाले गए । इन्हीं में से एक **'मेध'** शब्द का अर्थ आसानी से हत्या या हिंसा किया जा सकता है । जबकि वेद के **मर्मज्ञ विद्वान पं0 दामोदर सातवलेकर** ने अश्वमेध के अंश-'मेध' को मेधृ धातु से निष्पन्न 'मेध' शब्द को लोगों ने मेधा, एकता और प्रेमवर्धन के अर्थो में प्रयुक्त किया है । यज्ञ का एक नाम है 'अध्वर' जिसका अर्थ होता है हिंसा रहित कृत्य । उसमें अग्नि का उपयोग तो होता है पर साथ में पुरोहितों और याजकों में से प्रत्येक को यह भी ध्यान रखना पड़ता है कहीं समिधाओं या शाकल्प में कीड़े-मकौड़े तो नहीं हैं और उसके ताप से चीटियाँ आदि जीव-जन्तुओं की जीवन-हानि तो नहीं हो रही हैं । जहाँ इतनी सतर्कता के निर्देश हो वहाँ यज्ञों में प्राणिवध की बात सोची नहीं जा सकती । मात्र अज्ञानतावश तथा विवेकहीनतावश अनेक हिन्दू अपनी अतीत की अति उपयोगी धरोहर से वंचित होते जा रहे हैं । हमें अपने सांस्कृतिक उपादानों की अवहेलना न करते हुये, अन्धविश्वासों से वंचित रहना होगा ।

बात यह चल रही थी कि देवताओं ने याज्ञिक क्रियाओं से असुरों पर उनके अति शक्तिशाली होते हुये भी विजय पायी । ऐतरेय ब्राह्मण (7/28) में लिखा है- "इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप तथा वृत्र का वध किया। उसने यतियों का भी वध किया । और उनको जंगली श्वानों से कटाने के लिये छोड़ दिया । उसने अर्रू मेघों का भी हनन किया और परास्त किया ।"

तैत्तिरेय ब्राह्मण में वर्णन मिलता है- "त्वष्टा ने वृत्त नामक ब्राह्मण को उत्पन्न किया, जिसको इन्द्र ने मार डाला। उसने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का भी बध किया और असुरों का भी, जिन्होंने यतियों का वेष धारण कर लिया था टुकड़े-टुकड़े कर उसने 'अरुर्मघ, नामक असुरों का भी, जिन्होंनें ब्राह्मणों का वेष धारण कर रखा था, हनन किया? यह कथा हमको दिव्यलोक से मृत्युलोक में ले आती है- देवताओं और असुरों से ब्राह्मणों यतियों और अरुर्मघों के पास पहुँचा देती है । इससे स्पष्ट है कि इन ग्रन्थों के रचनाकारों का ध्यान सांसारिक विषयों की ओर ही था, उन्होंने आर्यों की शाखाओं के परस्पर युद्ध को ही देवासुर-संग्राम का कल्पित स्वरूप दे डाला था ।

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ की भूमिका में एक स्थल पर **डाक्टर मार्टिन हांग** कहते हैं -"ब्राह्मणों और पारसियों (प्राचीन ईरानियों) के पूर्वज भाई-बन्धु की तरह हिल-मिल कर रहते थे । यह दशा-देवताओं और असुरों (जिनका ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत उल्लेख है और जो क्रमशः हिन्दुओं और ईरानियों के ही कल्पित नाम हैं) के संग्राम के पूर्व थी ।"

महाकवि जयशंकर प्रसाद जी का निबन्ध संग्रह-''अभिषेक"

"देवासुर संग्राम वैदिक काल का भीषण युद्ध था और कुछ का कहना है कि इसका प्रारंभ त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के सोमरस के सम्बन्ध में कुछ अनर्गल कह डालने से हुआ क्योंकि उससे इन्द्र कोधित हो उठे थे । अन्त में इस संग्राम में विश्वरूप का वध हुआ । इन युद्धों का मूल कारण देवों और असुरों का धार्मिक विचारधाराओं में मतभेद था । त्वष्टा का सम्प्रदाय अपनी आसुरी प्रवृत्ति के अतिरिक्त ईश्वरीय महत्ता से पूर्ण धर्म का शासन स्वीकार करता था जब कि इन्द्र और उनके साथी आत्म-विश्वास के प्रचारक और आत्मवाद के समर्थक थे । हो

सकता है कि इन मतभेदों के अतिरिक्त भी कुछ और आचार-विचार सम्बन्धी धारणायें भी मतभेद बढ़ाने में उत्प्रेरक सिद्ध हुई हों । यह विरोध बढ़ते-बढ़ते विकट संग्राम का रूप धारण कर गया । इस संग्राम में इन्द्र और अधिक बलशाली सिद्ध हुये । इन्द्र द्वारा सरस्वती तट पर वृत्तासुर के मारे जाने का विवरण भी ऋग्वेद (6/61/5) में है ।"

ऋग्वेद (1/80/ मन्त्र 14-15) के अनुसार साम्राज्य या स्वराज्य स्थापना करने वाले देवराज इन्द्र के डर से, त्वष्टा काँपने लगता है तब के देवगण अपने राजा इन्द्र में पूर्ण मनुष्यता (नृम्ण) और ओज की स्थापना की घोषणा करते हैं । इस प्रकार **"तुवि कूर्मिः इन्द्र"** अर्थात् परमवीर इन्द्र की विजयों के फलस्वरूप प्राचीन आर्यावर्त को अत्याचारी असुरों से मुक्त कर दिया गया था । उसे आर्य-सभ्यता के इतिहास का प्रारम्भिक काल कहा गया है । हिन्दी के प्रसिद्ध मनीषी श्री जयशंकर प्रसाद के मतानुसार **इन्द्र ने आत्मवाद का प्रचार किया और असुरों को पराजित कर प्राचीन आर्यावर्त में साम्राज्य स्थापित किया । इस प्रकार प्राचीन आर्यावर्त के प्रथम सम्राट होने का गौरव देवराज इन्द्र को मिलता है ।**

देवासुर संग्राम में क्षति प्राप्त आर्यवंश अपनी निजी क्षति को पूर्णतः भुला न पाये थे । धीरे-धीरे आन्तरिक कलह फिर पनपने लगी और थोड़े अरसे बाद ही उसने जटिल रूप धारण कर लिया । प्राचीन आर्यों में पाँच जन अथवा वंश माने गये हैं -यदु, पुरु द्रह्यु, तुर्वसु, और अनु, जिनका जिक्र ऊपर किया गया है । इन आर्यवंशों में कुल शासन का प्रचलन था, जिसमें कुल का स्थान प्रथम था और पुरोहितों की प्रधानता रहती थी, आर्यों का गोत्र अपने कुल-पुरोहितों का गोत्र ही होता था । तथा वैदिक ऋषियों में अनेक क्षत्रिय थे जैसे ऋषि गृत्समद और उनके पुत्र कूर्म ऋषि । उस काल की घटनाओं के अध्ययन से एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि वशिष्ठ के हाथों से उन दिनों अनेक आर्य जनों की पुरोहिती निकलकर ऋषि विश्वामित्र के हाथों में जा रही थी । क्योंकि ऋषि विश्वामित्र इन्द्र को अधिक महत्व देते थे जैसा कि ऋग्वेद के तीसरे मंडल के अन्तर्गत आये सूक्तों से स्पष्ट प्रगट होता है जिसके कारण उस काल में लगता है कि विश्वामित्र की ओर प्राचीन आर्य क्षत्रिय-कुल अधिक आकृष्ट हुये ।

दाशराज युद्ध

देवासुर संग्राम के परिणाम स्वरूप आर्यों के असुरों से आपसी मतभेद गहरे होते गये । जिसके फलस्वरूप एक और युद्ध हुआ जोकि दाशराज युद्ध के नाम से वेद में वर्णित है । इस दाशराज-युद्ध में दिवोदास के पुत्र सुदास से अन्य दस राजाओं का घोर संग्राम हुआ था । इससे पहले भी इन्द्र ने दिवोदास के लिये असुरों के एक सौ के लगभग नगरों को ध्वस्त किया था । इस युद्ध में इन्द्र ने सुदास की रक्षा की । युद्ध में इन्द्र की सहायता अत्यन्त महत्व की तथा आवश्यक समझी जाती थी, क्योंकि इंद्रासन उस काल का राज-शक्ति का अपराजेय केन्द्र था । वेद ऐसा भी उद्घाटिक करते हैं कि सुदास से युद्ध करने वाले दसों राजा यज्ञ विरोधी थे (ऋ08/83/7), और सम्भवतः सुदास के अश्वमेघ यज्ञ अनुष्ठान के विरोध में ही दाशराज युद्ध हुआ होगा । इस युद्ध में सुदास के सहायक के रूप में इन्द्र को तैयार करने वाले ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ही थे । उन्होंने देवराज इन्द्र की स्तुति की और निवेदन किया - "यं इमेरोदसी उभे अह भिण्द्रमतुष्टवम् विश्वामित्रस्य रक्षांत ब्रह्मेदंबे भारतं जनम्" (ऋ0 3/52/12) । ऐसा भी वैदिक विद्वानों का मत है दाशराज युद्ध वास्तव में देवासुर संग्राम के दीर्घ संघर्ष का पिछला अंश था ।

इन्द्र-हनुमान सम्बंधित एक प्रसिद्ध कथा

हनुमान को पवन कुमार, बल-बुद्धि-विद्या-निधान, साक्षात् **द्वादश रुद्र! रामदूत, अंजना नन्दन** आदि अनेक **नामों से जाना जाता है । जब वे बालक थे तब भी वे कुछ अकरणीय तथा विचित्र करतब कर बैठते थे । उसी**

समय की एक घटना से पाठकगण परिचित अवश्य होंगे, क्योकि वह इन्द्र से सम्बंधित है अतः यहाँ उल्लेखनीय है ।

पवनसुत एक बार अपनी बालावस्था में क्रीड़ाभाव से सूर्य को कंदुक (गेंद) जैसी वस्तु समझकर उसको पकड़ने दौड़े । उस प्रसंग का स्मरण **हनुमान चालीसा** में निम्नांकित इस प्रकार किया गया है :-

जुग सहस्त्र जोजन पर भानू ।
लील्यौ ताहि मधुर फल जानू ।।

(हनुमान चालीसा 10)

ब्रह्ममण्डल में त्राहि-त्राहि मच गयी । सूर्य को इस संकट में देख देवराज इन्द्र से उनके रक्षार्थ देवगण प्रार्थना करने पहुँचे । तब तक सूर्य को पवनसुत पकड़कर बाल-स्वभाववश अपने मुख में डालने ही वाले थे कि इन्द्र वहाँ जा पहुँचे । इन्द्र को उनका विशाल रूप अपने दिव्य नेत्रों से दिखाई भी पड़ा । पर सूर्य को बचाने के लिये इन्द्र ने अपने प्रसिद्ध अस्त वज्र का सन्धान हनुमान को लक्ष्य बनाकर कर दिया । वज्र-प्रहार से जीवित बचना साधारण मानव के लिये संभव नहीं था पर हनुमान बच गये, अतः उन्हें वज्रांग-वली नाम से भी सम्बोधित किया गया । इस नाम का आगे अपभ्रंश में ही वजरंगवली शब्द का प्रयोग होता है ।

अतः इन्द्र के वज्र द्वारा हनु (ठोड़ी की हड्डी) के किंचित टेढ़ा हो जाने के कारण ही उनका नाम हनुमान (टेढ़ी ठोड़ी वाला) इतना अधिक विख्यात हुआ कि सारा जग उन्हें इसी नाम से ही आज भी स्मरण करता है. शंकर-सुवन, केसरी-कुमार, पवन-सुत और अंजना-नन्दन उनके अन्य सदृश नामों का भेद तो पता नही है । हनुमान की मूर्ति को आप पास से देखिये, उनकी ठुडडी टेड़ी बनी मिलेगी, वह इन्द्र के वज्र-प्रहार से बना चिह्न है, जिससे ही उनका बहुप्रचलित नाम हनुमान पड़ा ।

इस कथा में विचित्र बात यह भी है हनुमान जी सविधि विद्याध्ययन (हनु0 क0 4) करने बाद में भगवान सूर्य के पास गये (हनु0 बा4) । हनुमान जी ने सूर्य से सम्पूर्ण विद्याएँ शीघ्र सीख लीं । वे वानरेन्द्र भी कहलाये । हनुमान जी ने अपने आचार्य सूर्य से गुरुदक्षिणा के लिये इच्छा व्यक्त करने का निवेदन किया । **निष्काश सूर्य ने अपने अंशोदपत्त सुग्रीव की सुरक्षा की कामना की । वह हनुमान ने निभाई ।**

इन्द्र का मानवीय स्वरूप

अनेक विद्वानों का यह मत भी है कि इन्द्र प्राचीन काल के काल्पनिक व्यक्तित्व न होकर मानवीय रूप में थे । डा0 रांगेय राघव भी इस मत से सहमत हैं और उनके अनुसार इन्द्र एक उच्च पद था । इन्द्र एक के बाद एक स्थान लेते गये और समय के साथ-साथ समाज बदलता रहा । प्रारम्भिक कृषि-पालन से विकास में वृद्धि होती रही है और आरम्भिक इन्द्र की तुलना में परवर्ती इन्द्र काल में समाज की अवस्था अधिक सम्पन्न और विकसित थी । **(डा0 रांगेय राघव, "प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास,"** पु0 97)। **चौदह इन्द्रों** का होना भी कहा कहा गया है जिनके नामों का उल्लेख इस प्रकार है - **इन्द्र, विश्वभुक, विभु, प्रभु,. शिखि, मनोजव, तेजस्वी, बलिभविय, त्रिदिव, सुशान्ति, सुकीर्ति, ऋतधाता और दिवस्पति** । ऐतरेय ब्राह्मण (38/3) में इन्द्र के अभिषेक का भी उल्लेख मिलता है ।

इन्द्र अनेक हुये है । ऊपर 14 इन्द्रों के नाम भी दिये गये हैं । इन्द्रपद योग्यतानुसार मिलता था। वह पैतृक पद न था । योग्यता के कारण ही, महाभारत काल में इन्द्र का पद **कार्तिकेय** को दिया गया था, यदि वह स्थान पैतृक होता तो राजा **नहुष** को भी अवसर दिया जाता । **नहुष** को अल्प काल के लिये देवलोक का स्वामी बनाने के आख्यान का पीछे वर्णन किया जा चुका है ।

त्रिसप्तक प्रदेश में बसने वाले उस काल के विभिन्न आर्यवंशों का अपना स्वतन्त्र शासन तंत्र कायम था। जो अक्सर आपस में भिड़ पड़ते थे । उन सबको अपनी ओर आकर्षित करके, इन्द्र ने उन सबका सम्राट बनकर उन्हें एक शासन-सूत्र के अन्तर्गत संगठित किया । इस प्रकार ऐसा पता चलता है तब वैदिक काल से आर्य कबीले, जैसे भरत, तृत्सु, पुरु, यदु, अनु, तुर्वसु और क्रिवि बीर बंश, इन्द्र को सम्राट मानकर, इन्द्र-ध्वज की छत्रछाया में अमन-चैन का जीवन व्यतीत करते हुये उन्नति पथ पर अग्रसर होते रहे थे । आर्यों की तब तक आकाशी देवताओं पर से आस्था शिथिल होकर उनमें आत्म-सत्ता का नव-विश्वास उत्पन्न हो चुका था ।

देवराज इन्द्र को नीचा दिखाने की कुचेष्टाएँ

इन्द्र के पराक्रम और उत्तम गुणों का उल्लेख वेदों में अत्यधिक मिलता है । पर हज़ारों वर्षों पश्चात जब पुराणों की रचनायें शुरु हुई तब तक बहुत कुछ सामाजिक परिवर्तन हो चुके थे । चातुर्वर्ण्य व्यवस्था काफ़ी रूढ़ता ग्रहण कर चुकी थी । समाज के अगुआ ब्राह्मण हो चले थे और वे अपनी तथा अपने वर्ण की उच्चता और सुरक्षा को कायम रखने के लिये धर्म ग्रन्थों के रूप में अनेक प्रकार की बातें लिख रहे थे । प्राचीन ग्रन्थों में भी कुछ काल्पनिक बातें वे अपनी तरफ से रचकर शामिल कर रहे थे । ऐसा भी कहा जाता है कि ऋग्वेद के प्रथम एवं दशम मंडल काफी बाद में जोड़े गये थे । अतः पुराण आदि ग्रन्थों में इन्द्र सम्बन्धी जो भी निंद्यय विवरण मिलते हैं, उनमें कितने सच हैं और कितने कल्पित? **कितने देवराज इन्द्र को परमवीर योद्धा, पूर्व दिशा** का दिगृपाल (लोकपाल) आदि **ऋग्वेद जैसे अपौरुषेय ग्रन्थ में माना गया है, पर परवर्ती उसी इन्द्र के बारे में पौराणिक आख्यानों में अनेक चारित्रिक कमियों और यहाँ तक कि उनकी बुरी तरह हार तक जाने के किस्से प्रस्तुत करते हैं ।**

उस काल में वेद ही एक मात्र काव्य था जो श्रुति अवस्था में था । कोई भी सुभाषित चाहे जिस विषय पर बोलता, उसे काव्य, वेद-काव्य मान लिया जाता और उसका कवि ऋषि । उदाहरण के तौर पर **वामदेव नारद** ने उसमें **वाम-विधि** स्थापित की थी, जिसका अभिप्राय था । **"खाओ पियो और मस्ती करो ।"** इन्द्र से उसकी बड़ी मित्रता थी । इन्द्र ने उसकी सहायता की थी और उसने इन्द्र के लिए स्तुति मूलक ऋचाएँ बनायी थीं । वह ऋषि ऋग्वेद के 4/18 सूक्त के अन्त में कहता है:-

"अवर्त्याशुन आंत्राणि पेचे देवेषु विवदे मर्डितरं।
अदश्यं जायाम महीषि यमानामधा मेश्येनो मध्वाजभार ।।"

(भावार्थ) :- "खाने को कुछ न मिलने पर मैंने कुत्ते की अन्तड़ियां पकायीं । देवों में मुझे रावण से युद्ध करने वाला कोई न मिला । पत्नी ने मेरी विडम्बना की । ऐसी दशा में इन्द्र ने मुझे मधु दिया ।"

उक्त वैदिक सूक्त के बारे में **आचार्य चतुरसेन** अपनी पुस्तक **"वैदिक संस्कृति पर वृगस्पर्श"**, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली, प्रथम सं0 1983 के पृष्ठ 71 पर लिखते हैं -"अब आप देखिये कि इस मधुदान की कथा भी इस दरिद्र और भुक्कड़ ऋषि ने वेद की ऋचा में कह दी ।"

अंगिरा पुत्र बृहस्पति का भी यही मत था । उसने चार्वाक मत का दर्शन बनाया था । सब देव इसी मत के थे । उनके राजा इन्द्र देवों की सभाओं में अप्सराओं का नृत्य द्वारा मनोरंजन कराते, सोम और मधुपर्क पीकर मस्त रहते तथा मौज-मचाया करते थे । रावण के भाई कुबेर ने भी यही मत अपनाया था - इसी से वह यक्ष कहलाता था । कुबेर की तथा उसके वंशजों की जाति ही यक्ष मानी गयी । परन्तु वशिष्ठ ने त्रेता युग के उपरान्त जो नयी वेद-विधि बनायी और अपनायी, वह आर्यों में बद्धमूल हुई । उसने देवों का आर्यों से मूलतः सांस्कृतिक विच्छेद कर दिया । दैत्य भी देवों से और आर्यों से असंबद्ध हो गये ।

दैत्य-दानव भी उस काल में वैदिक धर्म मानते और वैदिक आर्यों की भांति देवताओं का पूजन करते थे। इन्द्र, मित्र, वरुण, मरुत, सूर्य आदि वैदिक देवों की ही वे उपासना करते थे । मेसोपोटामिया में जहाँ आर्यों के

मूल पुरुष चिरकाल तक रहे, वैदिक धर्म ही माना जाता था और वैदिक देवता पूजे जाते रहे थे । विद्वानों का इसी से ऐसा मत है कि वेद, और पारसियों की धार्मिक पुस्तक **'अवेस्ता,'** के छन्दों में साम्य है । **'जन्द'** वास्तव में **'छन्द'** का विकृत रूप है, और **'अवेस्ता'**, **'अथर्व'** का विकृत रूप है ।

एक पौराणिक आख्यान के अनुसार रावण के साथ इन्द्र के युद्ध में मेघनाथ ने, शिव द्वारा प्राप्त वर से अदृश्य होकर, इन्द्र को बाँध लिया था और उसे वह पकड़कर लंका ले गया था । इन्द्र को मुक्त कराने देवतागण ब्रह्मा को साथ लेकर लंका पहुँचे और मेघनाथ को प्रसन्न करने के लिये उसे **'इन्द्रजीत'** उपाधि से सम्मानित किया। पर उस पर जब हठी मेघनाथ इन्द्र को मुक्त करने को राजी न हुआ तब बाध्य होकर ब्रह्मा जी को उसे अमरता का वरदान देना पड़ा । इन्द्र को बहुत साधारण छोटा दिखाने की अनेक कथायें पौराणिक ग्रन्थों में पाते हैं । लगता है कि उस युग में और आर्यों और उनकी आने वाली पीढ़ियों में इन्द्र के प्रति आस्था घटाने के लिये अनेक प्रकार की कथायें एक योजनाबद्ध रूप से बनाई गई । इन आख्यानों से लिखी इन्द्र की छवि धूमिल करने में वे कुछ हद तक कामयाब रहे, ऐसा कुकृत्य एक वैदिक देवता के साथ किया गया, जिस वेद को एक तरह से अपोरुषेय कहने का भी वे दावा किया करते हैं पर वे इन्द्र को जन-मानस से पूर्णतः विस्मृत न करा सके । लोगों के नामों में आज भी इन्द्र शब्द देखा जाता है, जैसे देवेन्द्र, वीरेन्द्र, सुरेन्द्र, महेन्द्र, राघवेन्द्र योगीन्द्र, कपीन्द्र इत्यादि। यहाँ तक कि मध्यकालीन और आधुनिक काव्यों में 'इन्द्र' वैदिक कीर्ति के साथ स्मरण किये जाते हैं । जैसे महाकवि भूषण छत्रपति शिवाजी के वीरत्व वर्णन में इन्द्र का स्मरण इस प्रकार करते हैं :-

इन्द्र जिमि जंभ पर बाडव सुअम्ब पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज है ।
पौन बारिवाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यौं सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं ।
दावा द्रुम दंड पर चीता मृग झुंड पर,
भूषन वितुंड पर जैसे मृगराज हैं ।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यौं म्लेच्छ बंश पर शेर सिवराज हैं ।।

पौराणिक आख्यानों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि प्रचुर मात्रा में सोमरस पान करने के कारण परवर्ती इन्द्र शायद अपनी इन्द्रियों पर सन्तुलन खो बैठते थे । यह सिद्ध करने के लिये इन्द्र की नारीभोग अथवा परपत्नी-हरण और गमन की अनेक कल्पित कथायें लिख दी गई थी, जिनमें गौतम ऋषि की अहिल्या सम्बन्धी निंदनीय घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इन्द्र की यह उच्छृंखलता कहाँ तक उनके अत्यधिक सोमरस पान के परिणाम स्वरूप थी, यह भी एक विचारणीय विषय है । इन्द्र को सोमरस-सुन्दरीरत प्रदर्शित कर, किसी के घोर तप-रत होने पर तुरन्त घबड़ा उठना और इन्द्रासन का बात-बात पर डोल उठना आदि बातें पूर्णतः काल्पनिक लगती हैं। और स्पष्ट है इन कथाओं के माध्यम से पौराणिकों का एक वर्ग सुनियोजित ढ़ंग से इन्द्र की महिमा तथा गरिमा और आदर को जन-हृदयों से घटाने या मिटाने के उद्देश्य मात्र से प्रयत्न करता रहा था ।

इन्द्र और कृष्ण के परस्पर विरोध एवं संघर्ष या यों कहा जाय उनके अनुयायियों में एक दूसरे के प्रति भयंकर विरोधाभास, के अनेक वृतान्त तथा आख्यान पुराणों में वर्णित हैं । विद्वानों का ऐसा भी मत है कि यह संघर्ष वास्तव में बहुदेव-पूजा और कर्मकांड़ तथा विष्णु या कृष्ण-पूजा के मध्य था । इसका प्राचीनतम संकेत स्वयं ऋग्वेद में यमुना के तीर पर आर्यों का मार्ग रोकने वाले कृष्ण को इन्द्र द्वारा अपने परमास्त्र वज्र से आहत कर देने के प्रसंग में मिलता है । ऋग्वेद में कृष्ण साँवले रंग वाले सैनिकों के नेता और तेज भागने वाले, **"द्रप्सः कृष्णः"**, कहे गये हैं, जिन्हें नष्ट करने के लिए ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करते हैं ।और कृष्ण अपने दस हज़ार साथियों

के साथ अंशुमती (यमुना) नदी के तीर गौर वर्ण देवताओं से लोहा लेने के लिए अड़े खड़े हैं। वहीं उत्तर वैदिक काल में रचित पौराणिक कथाओं के आधार पर देवराज इन्द्र उतने पराक्रमी नहीं प्रदर्शित किये गये, जितना कि वे वैदिक काल में निर्विवाद रूप से स्वीकृत थे और साक्ष्य के रूप में एक नहीं अनेक ऋचाओं में इसी आशय के वर्णन ऋग्वेद में देखे जा सकते हैं। प्रश्न यह है कि ऐसा उल्टा-पुल्टा चारित्रिक एवं पौरुष सम्बन्धी विवरण एक वैदिक पात्र और वह भी देवराज इन्द्र के साथ किस उद्देश्य से किया गया? कुछ पुराणों के रचनाकारों का ऐसी अनर्गल कथाओं को रचने का एक ही लक्ष्य निहित रहा होगा कि बदलते जमाने और परिवेश में वैदिक देवों, जैसे इन्द्र आदि की घोर निन्दा करके उनकी मर्यादा घटाकर, उनके स्थान पर अपने नये उपास्यों के गुणों और शक्ति को इन्द्र से भी अधिक बताकर भी कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा किया नहीं।

इस संदर्भ में कृष्ण द्वारा गोवर्धन पहाड़ अपनी कनिष्ठिका पर धारण करने की पौराणिक कथा भी विष्णु और इन्द्र के बीच अथवा उनके अनुयायियों के मध्य चले आ रहे संघर्ष पर भी प्रकाश डालती है। ऐसा भी वर्णन मिलता है कि प्राचीनकाल में ब्रजवासी यद्यपि पहले पहले इन्द्र के उपासक रहे थे पर कृष्ण और उनके साथियों ने उन्हें ऐसा आगे करने से जोर-जबरदस्ती द्वारा रोक दिया। जब ब्रजवासियों ने प्राचीनकाल से चली आयी इन्द्र-पूजा बन्द कर दी और उसके स्थान पर कृष्ण-पूजा करने लगे तब देवराज इन्द्र का सिंहासन डोल गया और वे क्रोधित हो उठे। इन्द्र ने अपने क्रोध-प्रदर्शन के रूप में भीषण वर्षा करके समस्त ब्रज-क्षेत्र जल-मग्न कर डालना चाहा, तब ऐसी कथा पुराणों में हैं कि कृष्ण ने गोवर्धन पहाड़ को अपनी कनिष्ठिका पर उठाकर रखा, जिससे ब्रजभूमि तथा ब्रजवासियों की वर्षा-जल से रक्षा की। सोचने की एक महत्वपूर्ण बात यहां यह है कि गोवर्धन पर्वत का उपयोग कृष्ण ने एक छाते के रूप में किया था, पर भीषण वर्षा का जल गोवर्धन पर्वत से बहकर नीचे ही गिरा होगा, उससे ब्रजभूमि तो जलमग्न हुई ही होगी जब भयंकर वर्षा का जल इन्द्र क्रोधित होकर, ब्रज पर गिरा रहे हों तो कल्पना कीजिये कि ब्रजभूमि और वहां के निवासीगण इन्द्र की अपार वृष्टि से डूबने से कैसे बच सके होंगे? सिर्फ इतना ही नहीं दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ जिसमें इन्द्र हार गये ऐसा भी वर्णन है। इन्द्र-पूजा वेदानुसार थी फिर उसके करने से ब्रजवासियों का रोके जाने का कृष्ण-कृत्य कहाँ तक धर्म-संगत था। वह भी उस व्यक्ति द्वारा जिसने स्वयं गीता में घोषणा की है कि अधर्म को दूर करने तथा धर्म को पुनर्स्थापित करने हेतु यह अवतरित होते हैं। उस कथा से इन्द्र की मर्यादा घटाने की चेष्ठा की गई पर इससे क्या भगवान कृष्ण के साथ भी उनके द्वारा अन्याय नहीं हुआ? इन्द्र-पूजा वैदिक मान्यता प्राप्त थी। उसे रोक कर कृष्ण क्यों अधर्म कर्त्ता बनते?

प्रसिद्ध विद्वान और राजनीतिज्ञ और "ब्राह्मणों सावधान" ग्रन्थ के रचयिता और उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्य मंत्री और राजस्थान के पूर्व गवर्नर स्व0 डा0 सम्पूर्णानन्द जी के शब्दों में:- "इन्द्र को जान-बूझकर पौराणिक काल में नीचे गिराया गया। इन्द्र को तो स्थान भ्रष्ट कर दिया गया, पर उनका उच्च स्थान कोई दूसरा देवता न ले सका, यह स्थान आज भी रिक्त है। राम-कृष्ण ऊपर उठे पर इन्द्र जैसा ओज, वीर्य या तेज उनमें नहीं है। वह दासता में जकड़े हुए निस्तेज हिन्दू का दुःख भुला देने में सहायता देते हैं, परन्तु विजय का संदेश नहीं सुनाते, आँसू पोछ देते हैं, परन्तु स्फूर्ति नहीं दे सकते। आज का "कर्ता राम करै सोई होय" कहकर रोने-गाने वाला हिन्दू कर्ण की इस उक्ति से बहुत दूर चला गया है कि "दैवायत्त कुले जन्म मदायत्त तु पौरुषम" अर्थात् देव ने जिस कुल में चाहा जन्म दे दिया, परन्तु पौरुष मेरे हाथ की वस्तु है। इन्द्र को छोड़कर हम सत्वहीन हो गये। यदि हमको ऊपर उठाना है तो फिर इन्द्र की शरण जाना होगा, चाहें हम उनको किसी नाम से स्मरण करें। "य एकश्चर्षणीनाम वसूनामिरज्यति। इन्द्रः पंचक्षितीनाम्" भावार्थ 'जो इन्द्र अकेले सब मनुष्यों और सब धनादि मूल्यवान वस्तुओं के स्वामी है (डा0 सम्पूर्णानन्द, वेदार्थ प्रवेशिका, पृष्ठ 55, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन)। इस देश में लेखनी वैदिक काल के बाद पौराणिक काल में मुख्यतः ब्राह्मणों के हाथ में रही। अपनी रचनाओं में अपनी तथा अपने पूर्वजों की ढ़पली खूब पीटी है, चाहें पुराण हो, रामचरित मानस हो अथवा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ।

श्रमजीवी समाज को संस्कारहीन बनाये रखना तथा अनेक वर्गों को क्षत्रिय वर्ण से नीचे उतारने की कुचेष्टा जैसे उन्होंने देवराज इन्द्र के साथ की, वैसे ही **कूर्मि, यादव कुशवाहा, कोयरी, जाट, गूजर, धनगर, सैनी** आदि अनेक प्राचीन कृषक जातियों के साथ भी की है । पर हताश होने की आवश्यकता नहीं है । इन जातियों के बुद्धिजीवी अपने काकून से बाहर आकर अपने-अपने समाज के प्राचीन गौरव को पुनर्स्थापित करने में अपना योगदान देवें। अनर्गल बातों का डटकर खण्डन करें । धार्मिक साहित्य के आधार पर भारत में अपने और अपनी आगे आने वाली सन्ततियों के जो समाज में उच्वासन, सुख-सुविधाओं का साम्राज्य ब्राह्मणवाद ने स्थापित किया अब वह दक्षिण भारत में तो लगभग लुप्त हो गया है और उत्तर भारत में भी इसकी चूलें हिल चुकी हैं ।

वामन शिवराम आपटे रचित **'संस्कृत हिन्दी कोश'** (प्रकाशक मोतीलाल बनारसी द्वारा द्वितीय संस्करण 1969, पुर्नमुद्रण 1977, पृष्ठ 175) 'इन्द्रः' शब्द के अर्थ देखिये । 1 देवों का स्वामी 2, वर्षा का देवता 3, स्वामी या शासक (मनुष्यादि का), अन्तरिक्ष का देवता इन्द्र भारतीय आर्यों का सृष्टि-देवता, वेदों में प्रथम श्रेणी के देवताओं में वर्णित, परन्तु पुराणों में इन्द्र द्वितीय श्रेणी के देवता माने गये । इन्द्र, कश्यप और अदिति के एक पुत्र हैं। ब्रह्मा, विष्णु महेश के त्रिक से बाद में निम्नतर बना दिये गये । परन्तु अन्य देवताओं से फिर भी दूर रखे गये। इनका लोक स्वर्ग कहलाता है । इन्हें सुरेश और देवेन्द्र आदि नामों से पुकारा जाता है । कहा जाता हे कि उसने पर्वत के पंख काट डाले जब कि वे कष्ट देने लगे थे । उसी समय उसने बल तथा वृत्र का वध कर दिया । इन्द्र की एक अन्य पत्नी पुलोमा राक्षस की पुत्री थी, इनके पुत्र का नाम जयन्त था । यह अर्जुन के पिता भी कहे जाते हैं ।

हमें चाहिऐ कि **देवराज इन्द्र के कूर्मत्व गुणों** को वेदानुसार समझें जैसा कि **इन्द्रदैवत** अर्थात इन्द्र से सम्बंधित वैदिक ऋचाओं में कहा गया है । पुराणदि तो ब्राह्मणों द्वारा रचे गये हैं जबकि वेद मन्त्रों के द्रष्टा वैदिक ऋषि रहे हैं । अतः उस ऋचाओं में सर्वथा सत्य ही प्रगट होता है । उसे मानकर चलना चाहिये इन्द्र को कलंकित करने के उद्देश्य से ब्राह्मणों द्वारा स्वार्थवश रची अनर्गल पौराणिक कथाओं से हतोत्साहित न होंवे । देवराज इन्द्र के गुणों में आस्था रखने वाले विद्वतजन अपने लेखों और व्याख्यानों द्वारा पौराणिक काल की इन्द्र सम्बन्धी असंगत और मिथ्या बातों का स्पष्ट शब्दों में खंडन करें और साथ-साथ वैदिक सत्य को भी उद्घाटित करें । हमारे हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में वेद हमारा सबसे प्रमाणित तथा स्वतः प्रमाण ग्रंथ है । पर इस बात को सदा ध्यान में रखना है कि सोच और आकांक्षा मानवी प्रगति के महत्वपूर्ण आधार स्तंभ हैं । यदि समय के साथ-साथ नई सोच और इच्छा न जगे, तो मनुष्य कलवाली पिछड़ी स्थिति में ही वर्षों तक पड़ा रहे । उसकी आज की विकसित स्थित विगत के प्रगतिशील चिंतन की ही परिणति है । निःसन्देह विचार-कान्ति आ रही है, क्योंकि अब स्वतंत्र चिंतन पर पाबंदी नहीं लगी हुई है और धर्मतंत्र का कठोर नियन्त्रण भी काफी शिथिल पड़ गया है और अधिक शिथिल होता चला जायेगा, विशेषकर अन्याय, जो द्वेष और मानव-मानव भेद पर आधारित है । अतः इस परिवर्तित माहौल में अब पुरानी तथा दकियानूसी प्रथाओं और मान्यताओं से सड़ी-गली सोच एवं विकृत आकांक्षाओं से चिपके रहने का समय लद चुका है । समय आया है **"जागो उठो और बढ़ते चलो"** जैसा हमारे धर्मशास्त्र भी निर्देश देते हैं **"चरैवेति-चरैवेति"** । इस संकल्प के साथ यदि हम इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करेंगे तो भविष्य उज्जवल है । प्रर प्रसिद्ध **फ्रांसीसी विद्वान रोमाँ रोलाँ** का यह कथन ध्यान में रखना आवश्यक है :-

"A man's first duty is to be himself, to remain himself, at the cost of self-sacrifice." अर्थात् :- "प्रत्येक मनुष्य का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपनापन न खोवे, अपना व्यक्तित्व कायम रखे, चाहे कितना ही बड़ा आत्म-त्याग उसे क्यों न करना पड़े ।"

Gold, Its Ills & Virtues ?

May be. as Sophocles sings (Antigene, Act I) That,

"Gold is the worst of ills,
That ever plagued mankind,
This wastes our cities,
Drives forth their natives to a foreign soil,
Taints the pure heart, and turns the virtuous mind,
To basest deeds."

Yet gold has its virtues. It was gold which not only enabled England to save herself and Europe in the last Century but decided the fate of Napolean Bonaparte. [The representatives of the Allied Powers, assembled at Vienna, declared him an out law after his return from Elaba, but declined to oppose him for want of funds]

अध्याय - 3

प्रागैतिहासिक काल में कूर्मि जाति

सृष्टि का उषा काल

मानवी विकास से संबंधित जटिल प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिये चिरकाल से ही ऊहापोह चल रही है। आदि-मानव मनु थे, उनकी सन्तानें मनुष्य कहलाईं। कहा जाता है इस्लाम के अनुसार जन्नत (स्वर्ग) से आदम और हव्वा जमीन पर ढकेल दिये गये थे और उन्होंने यहाँ आकर जो सन्तानें उत्पन्न की, वे ही आदमी कहलायीं। आर्यों की आस्था है कि ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना की और उसी समय वृक्षों-वनस्पतियों एवं समस्त जीवधारियों के साथ सर्वश्रेष्ठ प्राणी के रूप में मानव को भी सृजा। महज इन पौराणिक आख्यायिकाओं से अब बुद्धि का समाधान नहीं हो पाता। विज्ञान तथा विविध-ज्ञान इस संदर्भ में तर्कों, तथ्यों और प्रमाणों का आधार मानकर खोजें करते रहे हैं। और आगे भी यह प्रयास चलता रहेगा।

आदि मानव कहाँ और कब पैदा हुआ इस सम्बन्ध में अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिकों का मानना है कि एशिया एवं अफ्रीका उन प्रमुख केन्द्रों में से हैं- जहाँ सर्वप्रथम मानव का विकास हुआ। प्रारंभिक अवस्था को **"केनियोपिथेकस"** के रूप में बताया गया है, जो अब से बारह करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर निवास करते थे। एशिया में पाए जाने वाले **"रैमापिथेकस"** नामक आदि मानव अफ्रीका से होते हुये भारत पहुँचे। **आस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेन्स** को उसने प्रथम मानव की संज्ञा दी है और कहा है कि अफ्रीका के सवाना प्रान्त में पाये जाने वाले इस मानव प्रजाति के मस्तिष्क का अग्र और पश्च भाग विकसित था, जो इस बात का प्रमाण है कि उसकी मस्तिष्कीय शक्तियाँ तब भी उन्नत अवस्था में थी। मूर्धन्य वैज्ञानिक लुइस एच० मार्गन ने अपनी कृति में मानव-विकास के तीन स्तरों का वर्णन किया है कि किस तरह मनुष्य ने वन में, गुफाओं में अन्य जीवधारियों की तरह जीवन-व्यतीत करते हुए आज के तथाकथित सभ्यता के युग में प्रवेश किया है।

नृतत्ववेत्ताओं ने प्रागैतिहासिक प्रमाणों के आधार पर मानद जाति का अस्तित्व इस पृथ्वी पर लगभग 32 लाख वर्ष पूर्व का आँका है। विकासवादियों का मत है कि वह अब से लगभग 10 लाख वर्ष पूर्व इस स्थिति में विकसित हो चुका था कि उसे मनुष्य संज्ञा से जाना जा सके। मिस्र, भारत, दक्षिण और मध्य अफ्रीका, चीन, जावा-द्वीप आदि देशों में जो मानव कंकाल खोपड़ियां तथा उनके इस्तेमाल के जो उपकरण प्राप्त हुये हैं, उनके अध्ययन से प्रतीत होता है कि इन क्षेत्रों में मनुष्य का अस्तित्व था। एक जगह उत्पन्न होकर उसकी पीढ़ियाँ दूर-दूर फैली या विभिन्न स्थानों में अपने-अपने क्रम से मनुष्य का विकास हुआ। इस प्रश्न के उत्तर में जो बातें कहीं गयी हैं, उनमें यही युक्ति संगत है कि वातावरण और परिस्थितियों ने धरती के विभिन्न भागों में जीवों के विकास को प्रोत्साहन दिया है। इसी क्रम में मनुष्य भी विभिन्न स्थानों में अपना स्वतंत्र विकास करता रहा है, और अपने पूर्वजों की तुलना में उसे अपेक्षाकुत अधिक उन्नति करते रहने का अवसर मिलता रहा है।

लगभग 135 वर्ष पूर्व सन् 1859 में सर चार्ल्स डारविन की पुस्तक **"ऑन दि ओरिजन ऑफ स्पीसीज** (On The Origin Of Species) प्रकाशित हुई जो **डारविन के सिद्धान्त** को जीवधारियों के बारे में प्रतिपादित करती थी। इसमें कोई शक नहीं है कि इस एक कृति ने तब से अब तक मानविकी वैज्ञानिकों का तथा अन्य चिन्तकों का सर्वाधिक ध्यान आकर्षित किया है। इस गूढ़ प्रक्रिया को समझाने और सही सिद्ध करने हेतु वैज्ञानिकों

ने समय-समय पर तरह-तरह के विश्लेषण किये । इससे इस विषय विशेष के सम्बन्ध में हुये चिन्तन में मूलभूत परिवर्तन आये और मानवी जीवन के रहस्य की पेचीदगियों को सुलझाने के अनेक उल्लेखनीय प्रयास भी हुये । डार्विन ने यह कहा है कि मनुष्य बन्दर की सन्तान है । आज यह विषय विवादास्पद है । उनके अनुसार आदि मानव अफ्रीका में जन्मा ।

डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार जीवधारियों में विकास की प्रक्रिया बड़ी मन्द गति से चली और एक स्थिति में इसकी ज्यादा प्रगति की अवस्था तक पहुँचने में बड़ा अन्तराल बीता । इसको आम जनता की भाषा में समझने के लिये यों कहा जाय कि ऐमीबा की स्थिति से ५क दम सीधा तन कर दोनों पैरों पर इस धरा पर चलने वाले पहले आदमी को लाखों वर्ष लगे होंगे और इस मध्य आदमी के पूर्वजों को अनेक प्रकार के माध्यमिक परिवर्तनों से गुजरना पड़ा होगा । लेकिन डार्विन के समय के आदमी से आज वाले आदमी में कोई मूलभूत परिवर्तन हुये या नहीं वे स्पष्टतः नजर नहीं आते हैं । हाँ विभिन्न प्रजातियों में रूप, रंग, नाक-नक्शे, ऊँचाई में जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं वे विभिन्न स्थानों पर बसे लोगों के आपसी रहन-सहन, वैवाहिक संबंधों के फलस्वरूप सन्ततियों में नजर आते हैं पर मूलभूत ढ़ांचे, अंगों, अंगों की प्रक्रियाओं में तथा शरीर में उनकी स्थित आदि में कोई परिवर्तन होते नहीं देखा गया है । हाँ **डी एन ए** तथा आनुवंशिक (Genetic) विशेषताओं में नये--नये शारीरिक सम्पर्कों के कारण सन्तति में परिवर्तन आना स्वाभाविक है । वे एक किस्म से, उस व्यक्ति विशेष की वैज्ञानिक पहचान कराते हैं ।

नृतत्ववेत्ताओं के गूढ़ अध्ययन पर अगले 100 वर्षों बाद डारविन के सिद्धान्तानुसार परिवर्तित आदमी कैसा होगा, उसका अनुमान भी लगाया गया है । उस समय के आदमी का ललाट चौड़ा होगा, उसकी आँखें छोटी नाक लम्बी और वह नाटे कद का होगा इत्यादि । **चार्ल्स डारविन** का **"क्रम विकास का सिद्धान्त"** बाइबिल में वर्णित भाव के या ईसाइयत के मूलभूत विश्वासों का विरोधी था । बाइबिल के अनुसार गॉड ने दुनिया की छः दिनों में रचना करके सातवें दिन आराम किया । उस जमाने में कट्टरवादी ईसाइयों ने डारविन की तीव्र आलोचना की । **इसी ईसाई मिथक से प्रभावित विश्व के सारे देश, जिसमें भारत भी है, सप्ताह के सातवें दिन रविवार को गॉड की तरह अवकाश करता है ।**

वैज्ञानिकों ने हाल के मनुष्य में अन्य किसी प्रकार का मूलभूत परिवर्तन नहीं पाया है । द्वितीय महायुद्ध के दौरान गोरों की पल्टनें कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में बरसों रहीं । जिन्होंने ईसाई और गैरईसाई स्त्रियों से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किये, उस प्रजनन के एंग्लों इंडियन ईसाइयों की एक नई प्रजाति बनी जो केवल रूप रंग, नाक-नक्शे और ऊँचाई में मूल दोनों प्रजातियों से भिन्न थी । इसी प्रकार जापान और हिन्द चीन में युद्धकाल में तथा उसके उपरान्त भी अमेरिकन फौजें बरसों पड़ी रही । उस जगहों की स्त्रियों और अमेरिकन फौजियों के शारीरिक सम्बन्ध का एक ही परिणाम दृष्टिगोचर होता है कि स्थानीय लोगों की औसत ऊँचाई कुछ सेंटीमीटर बढ़ गयी । नाक कम चपटी होने लगी और आँखें भी पहले से ज्यादा बड़ी हो गयीं । पर यह परिवर्तन केवल डारविन के सिद्धान्त के परिणामस्वरूप न था । यही परिवर्तन अमेरिका में नीग्रो और गोरों की युगल जोड़ियों से उत्पन्न सन्तति में साफ नजर आते हैं ।

सन् 1972 में उत्तरी अमेरिका के वास्टन शहर के विश्व प्रसिद्ध हावर्ड विश्वविद्यालय के **डा. स्टीफेन जये गाइल्ड,** (Dr. Stephen Jay Gould) तथा अमेरिका की महानगरी न्यूयार्क के **"अमेरिकन म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री"** के **डा. नाइल्स एल्ड्रेज** (Dr. Niles Eldredge) ने डारविन की अति मन्द गति के अदृष्टिगोचर विकास प्रक्रिया के सिद्धान्त से असहमति प्रगट करते हुये अपना नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि विकास प्रक्रिया में परिवर्तन बड़ी तेजी से हुआ और उसमें स्थायी सन्तुलन बनने में लम्बा समय लगा होगा, इसे विरामी सन्तुलन सिद्धान्त (Punctuated Equilibrium Theory) के नाम से जाना जाता है । क्योंकि अब तक तो लाखों वर्षों पुराने जीवाश्म (Fossils) मिले हैं उनमें कोई भी मध्यवर्ती विकास प्रक्रिया रूप में (No example, no evidence

of Darvin gradualism) डारविन की क्रमिक या शनैः-शनै विकास के प्रमाण के रूप में साक्ष्य नहीं मिला है। भविष्य में मनुष्य कैसा बनेगा इसका उत्तर उसकी इच्छा शक्ति और आवश्यकताओं को देखते हुये दिया जा सकता है। मानव चिन्तन दो धाराओं में विभक्त है- पहली भौतिकवादी दूसरी अध्यात्मवादी। जैसा वह चाहेगा उसी अनुसार उसके अन्दर के जीव-कोषों में परिवर्तन आने लगेगें।

आदि मानव को **"होमोनिड"** नाम दिया गया है- अर्धवानर और अर्धमानव लगभग वनमानुष स्तर का इसी से लाखों वर्षों के कालान्तर में **"होमोसैपियन्स"** और विकसित मानव-**"होमोइरेक्टस"** क्रमशः बनते चले आये हैं। परिस्थितियाँ बदलती या सुधरती गयी। मानव की ये नस्लें भारत, चीन अफ्रीका और यूरोप के कुछ स्थानों पर विकसित हुई। सुप्रसिद्ध अनुसंधानकर्त्ता **डा० लेविस लीके** ने अफ्रीका में ओल्डुबाई नामक 30 मील लम्बी और 300 फुट गहरी गुफा की खोज करके जो अवशेष प्राप्त किये, उससे न केवल मनुष्य की, वरन् प्रागैतिहासिक काल के अन्य प्राणियों के इतिहास की भी प्रमाणित श्रृंखला मिलती है। सबसे पुराना नर-कंकाल जिसे नृतत्ववेत्ताओं ने **"जिंजानथ्रोपस"** नाम दिया है, प्रमाणित करता है कि मनुष्य का अस्तित्व इस पृथ्वी पर अब से लगभग 13 लाख वर्ष पूर्व भी था। पश्चिम जर्मनी में नियडर नदी के तट पर एक गुफा में मिली मानव-खोपड़ी, मध्य सुमात्रा और जावा में प्राप्त अस्थियाँ, एवं यूरोप के विभिन्न भागों से मार्स्टन द्वारा संग्रहित पुरातन प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य अपने पूर्वजों की अपेक्षा क्रमिक विकास पथ पर अग्रसर होता आया है।

विकासवादी नृतत्ववेत्ताओं का मत है कि प्राचीन मानव शारीरिक दृष्टि से विशालकाय और बलिष्ठ थे, पर मस्तिष्कीय दृष्टि से अल्प विकसित। जैसे-जैसे बुद्धि का उपयोग अधिक होने लगा है वह बढ़ती गयी और शरीर से कम श्रम लिया तो वह छोटा होता गया। पुराने महागज और डायनासौर मौजूदा समय के हाथी और गिरगिट की तुलना में कई गुने बड़े और भीमकाय थे। इसके विपरीत पुराने ज्ञान कौशल, उपकरण और साधनों में इस समय तक अत्यधिक विकास हुआ है। एक की घटोत्तरी तो दूसरी ओर बढ़ोतरी का क्रम चलता रहता है। इन दोनों ही कालचक्र रूपी पहियों पर टिका मानव-प्रगति रथ, इधर-उधर के काल के थपेड़ों और झंझावात से बचता-बचाता आज मानव समुदाय का काफिला यहाँ तक पहुँचा है।

पुराना मनुष्य कैसा था, इसकी एक झलक हिमालय पर पाये जाने वाले **"हिम-मानव"** के रूप में अभी भी यदा-कदा सामने आती रहती है। हिममानव का अस्तित्व अब असंदिग्ध है। पिछले वर्षों में **एवरेस्ट चोटी** पर सफल चढ़ाई करने वाले **सर एडमंड हिलेरी** और शैरपा **सर तेनसिंह** के पिता का यह दावा था कि उन्होंने 16 हजार फुट की ऊँचाई पर हिममानव देखा था। सीमेन्ट जैसा रंग, लम्बी नाक, पंजे डेढ़ फुट, आँखें छोटी बाल तीन से पाँच इंच तक। वे शाकाहारी और मांसाहारी भी होते हैं। सुप्रसिद्ध नेपाली इतिहासकार श्री नरहरिनाथ ने अपने लेख में हिममानव का आंखों देखा हाल स्वयं खीचें फोटो सहित प्रकाशित किया था। उनके अनुसार हिममानव की ऊँचाई 11 फुट थी और सीना तीन फुट चौड़ा था वह मनुष्य से बहुत कम मिलता-जुलता है। शरीर पर बालों की अधिकता ही उसे सामान्य मनुष्य से अलग करती है वह किसी को देखकर भयभीत नहीं होता।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध में भारतीय चिन्तन मूल रूप से भिन्न है। वह प्रारम्भ में अमैथुनी तथा बाद में मैथुनी प्रजनन प्रक्रिया पर आधारित है। प्राचीन काल में पृथ्वी जलमग्न होने के कारण भगवान विष्णु का जल-जन्तु के रूप में **मत्स्यावतार** हुआ और बाद में जब जल मात्रा घटी तो जल से पृथ्वी के उद्धार कराने हेतु **भगवान विष्णु** को दूसरा अवतार **कूर्मावतार** के रूप में लेना पड़ा। इस **कूर्मावतार** का इस पुस्तक में अन्यत्र विस्तार से वर्णन किया गया है। अतः उसको पुनः यहाँ नहीं दे रहे हैं। विष्णु ने दूसरा अवतार **कूर्म (कच्छप)** के रूप में लेकर जल से पृथ्वी का उद्धार किया उससे स्पष्ट है कि इस क्रम में सृष्टि का विकास क्रम छिपा हुआ है। जल पर उभरी पृथ्वी की परत एक दम कृषि योग्य न बनी होगी, लम्बा समय व्यतीत हुआ होगा। परन्तु आदि मनुष्य समुदाय को उस भूमि को कछारी से कृषि योग्य बनाने में जी-जान से मेहनत करनी पड़ी होगी। संगठित होकर वह समुदाय अन्ततोगत्वा उस भूमि में बीज रोपने में, फसल उगाने में, और अन्त में खाद्यान्न उत्पन्न करने

में सफल हुआ होगा । उसे कर्मानुसार "कूर्मि" नाम से सम्बोधित किया गया होगा । यह महज काल्पनिक नहीं अपने आदि ग्रन्थों के निष्कर्षों पर आधारित है । आबादी बढ़ी, उसकी खाद्यान्नों की आवश्यकता बढ़ी । वह गाय-बैलों के अतिरिक्त गर्म कपड़े के लिये ऊन हेतु भेड़े और अन्यान्य पालतू जानवर रखने लगा । आवश्यकतानुसार कुछ लोग केवल कृषि कार्य में लग गये, कुछ गाय-बैलों आदि की देखभाल में तथा कुछ भेड़ पालन में लग गये । और एक स्थान से निकल अन्यान्य स्थानों में आवश्यकतानुसार जा बसे । जब दशावतारों की कल्पना में द्वितीय अवतार-कूर्म है, फिर कूर्मि और कृषक का सम्बन्ध स्पष्ट है । अतः जिस जाति विशेष का नाम इतने प्राचीन शब्द से जुड़ा हो, जो एक प्रकार से सृष्टि का मूलाधार हो, उसकी जड़ों तक साक्ष्य के साथ आज लाखों-लाखों वर्षों बाद पहुँचना असंभव है । जब हमारा लिखित इतिहास ही ढ़ाई हजार वर्षों का है, तो कूर्मावतार और कूर्मि जाति कब अस्तित्व में आयी, सही-सही निर्णय लेना अत्यंत कठिन है । पर ये सब घटित हुआ है तभी उनका उल्लेख, वेदों, पुराणों, उपनिषदों आदि में दावे के साथ बार-बार तथा अनेक ग्रन्थों में मिलता है । फिर भी कुछेक ऐसे अकाट्य प्रमाण इन धार्मिक ग्रन्थों में मिलते हैं, जोकि कूर्मि जाति की प्राचीनता की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं ।

आंग्ल विश्वकोष खंड 13 (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका) 14वाँ संस्करण 1929 ई० पृष्ठ 517 का हिन्दी अनुवाद

"कुनबी, कुटुम्बी, पश्चिमी भारत की महान कृषक जाति (वैदिकोत्तर संस्कृत कुटुम्बिक जो किसी आदि कालीन शब्द का संस्कृत रूप है)। कुनबी नाम उत्तर भारत में कुरमी हो जाता है, जहाँ गंगा के कछार तथा उस नदी के दक्षिण में यह जाति बहुसंख्या में है । कुनबी का मद्रास के तेलगू देश के कापू, अन्यत्र की अनेक जातियों से लगाव है । मराठा वस्तुतः कुनबी की ऊपरी श्रेणी है, जो दक्षिण के कुछ भागों की अधिसंख्य आबादी है ।"

आँग्ल विश्वकोष खंड 13 (पृष्ठ 517 संस्करण 1957 ई०) में

"कुनबी महान हिन्दू कृषक जाति है जो मुख्यतः पश्चिमी भारत में पाई जाती है । इसका मद्रास के तेलुगू प्रदेश के कापू, बेलग्राम के कुलवी, दक्षिण के कुलंबी, दक्षिणी कोंकण के कुलवंदी, गुजरात के कुलमी, कणबी और भड़ौंच के पाटीदारों से लगाव है । पश्चिमी मध्यप्रदेश में कुलमी (पाटीदार) बहुसंख्य हैं । उच्च श्रेणी के मराठों और कृषिकार कुनबी नृवंशीय दृष्टि से समान है ।"

आज भी कुरमियों की कुछ प्रमुख उपाधियाँ उनके भूस्वामित्व की ही द्योतक हैं । जैसे चौधरी, महतो, महता, प्रधान, नायक, सिंह, गौर, पाटील, देशमुख, देसाई, सरदेसाई, मंडल, पटेल, पाटीदार, ईनामदार, अमीन, रेड्डी, नायडू, वर्मा आदि अनेक उपाधियाँ ग्राम प्रमुख या भूस्वामी को दी जाती थी, जो कि आज विभिन्न प्रदेशों में बसे विभिन्न जातीय नामों से जाने वाले कुरमियों के आस्पद या उपाधि के रूप में नाम के साथ प्रयुक्त होते हैं । इसी सत्य को हमारे प्राचीन ग्रन्थों में ठीक ही वर्णन किया है-"कूर्मि सर्वत्र भूपति" ।

गुजरात में यद्यपि पाटीदार लोग कुनबियों से विवाह नहीं करते किन्तु इन दोनों में कोई वास्तविक भेद नहीं है । पाटीदार तीन भागों में विभाजित हैं - लेवा, कड़वा, अंजना । विवाह में अत्यधिक व्यय होने के कारण कुनबियों में लगभग सौ वर्ष पूर्व तक पुत्री-हत्या की प्रथा मिलती थी जिसके कारण सन् 1870 ई0 की 8वीं धारा का नियम कड़वा और लेवा कुनबियों के लिए प्रयोग किया गया था । कुनबियों के पश्चात् पुत्री-हत्या में राजपूतों का द्वितीय स्थान है । (भारत का इम्पीरियल गजेटियर नवीनावृति) भाग 5, पृष्ठ 97 और 98 अहमदाबाद, (हिन्दी अनुवाद)

रजनी कोठारी (भारत में राजनीति, अनुवादक अशोक जी, प्रकाशकः ओरियंट लॉग्मैन, दिल्ली, पृष्ठ 17) का मत है- "भारत का इतिहास हजारों वर्षों का है । यहाँ बड़े साम्राज्यों से लेकर छोटे राज्यों और गणराज्यों

जैसे अनेक प्रकार के राजतन्त्र रहे हैं । जिसे हम हिन्दू युग कहते हैं वह ईसा से पहले 15 वीं शताब्दी के बीच स्थिर हुआ । इसी अवधि में मध्य एशिया से आने वाली आर्य जातियों ने देश के उत्तरी और पश्चिमी भागों में अपनी बड़ी-बड़ी बस्तियां स्थापित की । उन्होंने यहां के आदिम निवासियों को हराकर अपने अधीन कर लिया और बहुतों को दक्षिण की ओर ढकेल दिया ।

स्व० डा० सेठ गोविन्द दास (हिन्दी के ख्याति प्राप्त लेखक तथा वरिष्ठ सांसद) ने अपनी पुस्तक **''सरदार पटेल''** (प्रकाशक राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली 1981, पृष्ठ 6) में लिखा है :

"गुजरात प्रदेश की कुरमी नामक प्रसिद्ध क्षत्रिय जाति में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के पुत्र लव के नाम पर लेवा और कुश के नाम पर कदवा, नामक दो उपजातियों में से लेवा जाति में 31 अक्टूबर 1875 को बोरसद तालुके के करमसद गाँव के एक कृषक परिवार में झवेरभाई को पुत्र लाभ हुआ । बालक का नाम बल्लभभाई रखा गया ।"

इसी तथ्य को **आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री** अपनी पुस्तक **''राष्ट्र निर्माता सरदार पटेल''** (प्रकाशक सोसाइटी फार पार्लियामेन्टरी स्टडीज, नई दिल्ली) में वंश परिचय के अन्तर्गत प्रस्तुत करते हुये लिखते हैं :-

"गुजरात में कुरमी नामक एक क्षत्रिय जाति है । उसमें लेवा और कँदवा नाम की दो उपजातियां हैं । कहा जाता है कि ये दोनों जातियां मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के पुत्र लव और कुश की वंशज हैं । सरदार बल्लभभाई ने इनमें से लेवा जाति को अपने जन्म से 31 अक्टूबर 1875 को अलंकृत किया ।"

आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक **''विचार प्रवाह''**-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली के पृष्ठ 139 पर लिखते हैं :

एक बार आप भारतवर्ष की पिछली शताब्दी की ऐतिहासिक और पुरावृत्तीय जानकारी की बात सोचकर देखिये तो आपको लगेगा कि हम लोग अपना पुराना इतिहास एकदम भूल बैठे थे । सही बात तो यह है कि अंग्रेजों के इस देश में आने के पहले एक प्रकार से प्राचीनतर, विद्यार्थी के लिए अन्धकार युग हो चला था । यहाँ के प्राचीन शास्त्रों के मर्मज्ञ सात-आठ सौ वर्षों तक पुरानी लिपियों को तो कदाचित पढ़ लेते थे, परन्तु अधिक पुरानी लिपियों को पढ़ना एकदम भूल गये थे । चौदहवीं शताब्दी में **फीरोजशाह तुगलक** ने बड़े परिश्रम से टोपरा और मेरठ से अशोक के लेख वाले दो विशाल स्तम्भ उठवा मंगवाये थे परन्तु उन दिनों उस लिपि को पढ़ने वाला कोई पण्डित नहीं मिला । **मुगल सम्राट अकबर** भी उन लेखों का आशय समझना चाहते थे, परन्तु भारतवर्ष से प्राचीन लेखों को पढ़ने की विद्या लुप्त हो गयी थी ।" सन् 1834 में कप्तान टायर ने प्रयाग वाले अशोक स्तम्भ का कुछ अंश पढ़ा जिस पर समुद्रगुप्त के लेख का अंश था । गाजीपुर जिले में एक स्तंभ मिला जिस पर स्कन्दगुप्त ने एक लेख खुदवाया था, जिसे सन् 1837 ई० में डा० मिल ने सम्पूर्णतया पढ़ लिया था। इस प्रकार गुप्त कालीन लिपि में खुदे अभिलेख पढ़ लिये गये ।

परन्तु ब्राह्मी लिपि अत्यंत विचित्र थी फिर उसका पढ़ना और भी दुर्गम रहा । सन् 1834 में **जेम्स प्रिंसेस** ने ब्राह्मी लिपि को पढ़ने का कठिन प्रयास किया । बाद में **रेवरेण्ड जेम्स स्टीवेनसन लासन** आदि विद्वानों की सहायता और परिश्रम से सारी ब्राह्मी लिपि पढ़ी जा सकी । ब्राह्मी लिपि के पश्चात भारतवर्ष की अन्य लिपियों का पठन सुगमता से संभव हो सका । मात्र खरोष्ठी लिपि में पढ़ने में काफी समय लगा । पर अभी भी मोहन-जोदड़ों और हड़प्पा में तथा अन्य स्थानों की कन्दराओं और पर्वतीय गुफाओं में मिली अनेक जानवरों की आकृतियां तथा विचित्र चिह्नों वाली लिपि ठीक से नहीं पढ़ी जा सकी है ।

सिन्धु लिपि

सिन्धु सभ्यता का ज्ञान 1921-22 में हुआ । भारत विभाजन के समय सभ्यता के मोहन जोदड़ों, हड़प्पा आदि सभी प्रमुख स्थल पाकिस्तान में चले गये थे । भारतीय पुराविदों ने पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात

में नए सिरे से इस सभ्यता के पाँच सौ से अधिक स्थल खोज निकाले जिसमें प्रमुख है ; काली बंगा, लोथल, रोपड़, सुरकोत आदि । इधर कच्छ के रन में धौलावीरा नामक स्थान पर सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण अवशेषों की खोज हुई है । सिंधु-सभ्यता ताम्र-पाषाण युग की सबसे विस्तृत सभ्यता है ।

सिन्धु सभ्यता के पुरावशेषों के बारे में काफी कुछ लिखा गया है । मगर सात दशकों का लंबा अरसा गुजर जाने के बाद भी आज सिंधुलिपि भारतीय पुरातत्व की सबसे बड़ी पहेली बनी हुई है । देश-विदेश के कई दर्जन विद्वानों ने सिंधु लिपि के पठन के प्रयास में अब तक किसी को भी पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

सिन्धु-लिपि के अधिकांश लेख सेलखड़ी, चीनी मिट्टी और हाथी दांत की बनी मुहरों पर उकेरे हुऐ हैं । तांबें की कुछ मुहरों पर भी संक्षिप्त लेख मिले हैं । तांबे के हथियारों और मिट्टी के ठोकरों पर भी सिंधु लिपि के संकेत मिलते हैं । मुहरों पर लेखों के अलावा पशु, पक्षी, पेड़ मानव आदि की आकृतियां उकेरी हुई है । कुछ मुहरों की पीठ पर मूठें भी है जिनमे डोरी डालने के लिये छेद बने हुए हैं ।

ये मुहरें किस प्रयोजन से बनी थी, इस बारे में पूरे विश्वास के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता है । प्राचीन मेसोपोटामिया के कीलाक्षर लेख मिट्टी के फलकों पर हैं । वहाँ के कीलाक्षर अभिलेखों के पूरे ग्रंथालय भी मिलते हैं । प्राचीन मिस्र से भी प्रस्तर स्मारकों पर विस्तृत लेख मिले हैं । तुलना में सिंधु सभ्यता की उपलब्धि बहुत संक्षिप्त है । इन लेखों के संकेतों की औसत संख्या 5 है । सिंधु-लिपि के सबसे लम्बे तीन पंक्तियों के लेख में 26 संकेत हैं । सारे सिंधु लेखों की संख्या चार हजार के आस पास है ।

सिन्धु सभ्यता का उन्नतकाल 2350 ई० पूर्व से 1750 ई. पू. तक माना जाता है । उस समय कहीं पर भी अभी वर्णमालात्मक लिपियां अस्तित्व में नहीं आयी थी । सुमेरी लिपि में दो हजार से अधिक संकेत थे अक्कादी कीलाक्षर लिपि में संकेतों की संख्या 900 से कम नहीं है । प्राचीन मिस्र की लिपि में कुछ व्यंजनाक्षर अस्तित्व में आ गये थे, मगर मिस्र के लेखक अधिकतर भाव-चित्रों का ही प्रयोग करते थे । चीनी लिपि और भी भावचित्रात्मक बनी हुई है ।

सिन्धु जनों के मेसोपोटामियां के साथ व्यापार संबंध थे । सिन्धु लिपि की कुछ मुद्रा मेसोपोटामिया के नगरों में मिली हैं । मगर मेसोपोटामिया या सिन्धु-सभ्यता के किसी स्थल से कोई द्विभाषिक लेख नहीं मिलता है ।

फादर हेरास का मत था कि सिंधु लेखों में **प्राक्द्राविड़** भाषा विद्यमान है । **वाल्टेर फेयर सर्विस** भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है । कंप्यूटरों की मदद से सिंधु संकेतों का विश्लेषण करने वाले रूस और फिनलैंड के पुरालिपि विदों का भी यही मत है कि सिंधु-लेखों की भाषा प्राक्द्राविड़ है । एरावतम् महादेवन भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं ।

मगर एस. आर. राव का मत भिन्न है । उन्होंने सिंधु लिपि को सेमेटिक व्यंजन मालाओं से जोड़ा और अंततः इसमें प्राक् ब्राह्मी लिपि की खोज की । जाहिर है कि राव के मतानुसार सिंधु-सभ्यता वस्तुतः वैदिक सभ्यता है ।

आदिम मनुष्य

पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि आज से लगभग 6 लाख वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति होना आरम्भ हो गया था । इन जीवधारियों में मनुष्य भी था । आरम्भ में मनुष्य भी पशुओं की भांति जीवन व्यतीत करता था । ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य ने भी लाखों वर्ष तक जंगली जीवन व्यतीत किया । उस समय मनुष्य छोटे-छोटे समूहों में रहते थे । और भोजन की तलाश में एक स्थल से दूसरे स्थल को चले जाते थे। वे लगभग नग्नावस्था में रहते थे तथा कन्द मूल खाकर क्षुधा शान्त करते थे । धीरे-धीरे मनुष्य पत्थर का प्रहार कर पशुओं को मारने और उनका मांस भक्षण करने लगे । विश्व के अनेक भागों में प्रस्तर अस्त्र उपलब्ध हुये

हैं जो आकर-प्रकार में लगभग एक से हैं । ये आयुध इस बात के द्योतक हैं कि आज से लाखों वर्ष पूर्व मनुष्य भ्रमणशील थे । और पत्थर के अनेक हथियारों से पशुओं का आखेट किया करते थे । फिर वह पशुओं के चर्म से अपने आप को ढ़क कर शीत और उष्णता से अपनी रक्षा करने लगे । पत्थर के इस प्रयोग के कारण ही लाखों वर्ष वाली अवधि के इस लम्बे युग को प्रस्तर युग कहते हैं । जब मनुष्य का तन ढ़क गया तब उसने नये आयामों की खोज में ठंडे प्रदेशों की ओर भी निर्भीकता से कदम उठा दिये ।

मनुष्य का कृषक रूप

भ्रमण करते-करते जब मनुष्यों को थकान मालूम पड़ने लगी तो उनमें एक स्थान पर बसने की इच्छा जागृत हुई । पर एक स्थान पर बसने के लिये खाद्यान्नों या अन्य खाद्य-पदार्थों की आवश्यकता भी महसूस हुई । इन मानवीय आवश्यकताओं का ही परिणाम था कि मनुष्य ने कृषि और पशुपालन का आविष्कार किया । कृषि की बढ़ती आवश्यकताओं को देखते हुये धातु के औज़ारों का प्रयोग होने लगा, और आज से दस-पन्द्रह हजार वर्ष पूर्व ताम्र-युग का आविर्भाव हुआ । यह अनुमान लगाना कठिन है कि ताम्रयुग का अस्तित्व आज से दस-पन्द्रह हजार वर्ष पूर्व से कितने काल तक रहा । ये तो रही मनुष्य के आविकास की बात । अब यह विवेचना करना है कि इतिहास की दृष्टि से विश्व की अनेक सभ्यताओं का जन्म किस प्रकार हुआ और हिन्दू सभ्यता से इन सभ्यताओं का क्या सम्बन्ध था ।

आर्यों का मूल स्थान

आर्यों का मूल स्थान कौन सा था इस पर मतभेद हैं । कुछ पुरातत्ववेत्ताओं का मत है कि आर्यों का मूल स्रोत मध्य एशिया था, दूसरे इसको कैस्पियन सागर का प्रदेश अथवा इसे दक्षिणी रूस, अथवा ईरान और सप्त सिन्धु (आधुनिक पंजाब) भी बतलाते हैं । लोकमान्य तिलक अपने ग्रंथ "आर्कटिक होम इन दि वेदास (Arctic Home in the Vedas)" में वेद सूक्तों के आधार पर आर्यों का घर आर्कटिक (उत्तरी ध्रुव) प्रदेश को बताते हैं, जहाँ दीर्घकालीन उषा और एक वर्ष की अहोरात्रि होती है ।

वेद एवं भावी भारतीय समाज

वेद वह ज्ञान है, जिसे ऋषियों ने आत्मानुभूति के आधार पर अवतरित किया । अनुभूति जन्य - अनुभव जन्य ज्ञान सर्वश्रेष्ठ कहा भी जाता है । फिर वह वैदिक ऋषियों की अनुभूति भी, घोर चिन्तन - मनन के पश्चात् अति शान्त-स्वच्छ पर्यावरण में प्राप्त बहुत उच्च स्तरीय थी । आत्म-चेतना ने ब्राह्मी चेतना की गहराइयों अथवा ऊँचाइयों तक पहुँच कर जिनके मौलिक तथ्यों की अनुभूति की, उन्हें श्रेष्ठतम कहा जाना सर्वथा उचित है ।

इस अनुभूति को ऋगवेद के मन्त्र उद्घोषित करते हैं :-

"समानी व आकूतिः ।
समाना हृदयानि वः ।
समानं अस्तु वोमनः ।
यथा वः सुसहासयति ।।"

(भावार्थ) : "हमारा संकल्प समान हो, हमारे हृदय समान हों हमारे मन समान हो, ताकि हम उत्तम ढंग से सामूहिक जीवन जी सकें ।"

सारे विश्व को पुनः एक सूत्र में बाँधने के लक्ष्य की पूर्ति तो बाद में आने वाली पीढ़ियाँ सोच लेंगी, फिलहाल हिन्दूधर्म के सभी धर्माचारियों को सम्मिलित होकर उपर्युक्त वैदिक उद्‌घोष को ईमानदारी से पालन कराने के लिये जो भी अवरोध हों चाहे वे धार्मिक पुस्तकों-ग्रन्थों के रूप में हों, चाहे मत-मतान्तरों में, जाति-वर्ण व्यवस्था में , यदि वे निर्मोही बनकर समाज में सहमति उत्पन्न कराके उन्हें एक तरफ से दूर करते जायें तो हम समस्त हिन्दू समाज को भेद-भाव, ऊँच-नीच की भावना से मुक्त एक सूत्र में पुनः बाँधकर प्राचीन काल की आदर्श भारतीय संस्कृति को पुनर्स्थापित कर सकते हैं । यह सब कुछ कह देना बड़ा सरल है पर इनका अनुशीलन, सच्चाई से क्रियान्वयन उतना ही कठिन है पर हमारे समाज की सारी विकृतियों, कुरीतियों और जड़ता का उपचार भी इसी लक्ष्य पूर्ति में निहित है । ऐसे लक्ष्य को अपने चिन्तन का विषय तो पहले बनायें, हो सकता है कि अन्य विद्वतजन निकट भविष्य में इसकी प्राप्ति के लिये अन्य सुलभ उपाय खोज सकें । भारत वसुन्धरा पर बसने वालों के संकल्प समान हो सकें, हृदय समान हो जावें, मन समान हो सकें, जिसके परिणामस्वरूप उत्तम ढंग से सामूहिक जीवन् व्यवस्था कायम हो सके । यह लक्ष्य तो सब मिलकर बनायें ।

संसार में फैली हुई सैकड़ों जातियाँ और विभिन्न देशों के निवासी आकृति रंग, रूप, खान-पान, और परिस्थितियों के कारण वेष और बनावट में कितने ही बदल गये हों, वे सब एक ही मूल पुरुष से जन्मे, एक ही स्थान से विकसित हुये हैं । एक घर में, जब पाँच लड़के होते हैं तब वे बड़े होने पर पाँच अलग-अलग घर विभिन्न स्थानों पर बना लेते हैं । यह परिवारों का विस्तार और उनके सदस्यों का परदेशों में या अन्य कहीं पर घर से दूर जा बसने की प्रक्रिया के ही परिणाम स्वरूप इस पृथ्वी पर इतने देश, इतनी जातियां बन गयीं हैं और वे ऐसी अलग-अलग हो गयीं कि अब उनको एक ही मूल पिता की संतान कहना भी कठिन हो गया है ।

किन्तु धार्मिक भूगोल और मनुष्य जाति के पुरातत्व इतिहास की खोज एक बार हमें फिर उसी ओर ले जाती हैं । उपलब्धियां और निष्कर्ष यह बताते हैं कि **भारत कभी सारे विश्व के सिरमौर की भूमिका निभाता था और यहाँ की संस्कृति विश्व-संस्कृति जैसी मान्य थी** । अनेक देशों में रहने वाले लोग भाषा की दृष्टि से एक थे, सबकी भाषा संस्कृत थी । संस्कृत शब्द का अर्थ है--शुद्ध, परिष्कृत, परिमार्जित । अतः संस्कृत भाषा का अर्थ हुआ शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा जो केवल व्याकरण या कथोपकथन मात्र नहीं होती, वरन् उसमें अभिव्यकित की विविध क्षमताएँ भी होती हैं ।

प्राचीन भाषाओं की जननी संस्कृत

संस्कृत भाषा को देववाणी भी कहा जाता है, क्योंकि यह समग्र देव संस्कृति की वाहिका भाषा है । वेदों का ऋषियों का समूचा ज्ञान-विज्ञान इसी भाषा में सन्निहित है अतः इसे वेद जननी भी कहा जाता है । सुप्रसिद्ध विज्ञान मैक्समूलर ने अपने ग्रंथ **"साइंस ऑफ लैंग्वेज"** में कहा है **"संस्कृत तो भाषाओं की भाषा है ।**विविध भाषायें **इसी एक भाषा से जन्मी है ।"** मूर्धन्य मनीषी विलियम जोन्स ने अपनी कृतियों में स्पष्ट लिखा है कि संस्कृत भाषा संसार की सबसे प्रचीन भाषा है । इसकी रचना अद्‌भुत है । वह ग्रीक भाषा की अपेक्षा अधिक पूर्ण, लेटिन भाषा की अपेक्षा अधिक सम्पन्न और दोनों की तुलना में अधिक परिष्कृत है । परन्तु दोनों के साथ धातु कियाओं और व्याकरण के रूप में इतनी मिलती-जुलती है यह मिलाप इतना गहरा है कि कोई भाषा शास्त्री परीक्षा करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि ये सभी भाषायें एक ही स्रोत-संस्कृत भाषा, से विकसित हुई हैं । **संस्कृत की संस्कृति मनुष्य मात्र को महामानव-देवमानव बनने की प्रेरणा देती है** । वेद और उपनिषद उस संस्कृति के आदि ग्रंथ भी है और सारतत्व भी । **हिन्दी एक ओर तो संस्कृत, पाली, प्राकृत की उत्तराधिकारिणी है और उसकी पूरी गरिमा का निर्वाह करने की जिम्मेवारी लिये हुये हैं,** दूसरी ओर वह समकालीन विविध जनपदीय भाषाओं या सम्पर्क में आने वाली विजातीय भाषाओं से नयी-नयी प्राण शक्ति पाने वाली वास्तविकता है । साथ ही संस्कृत की वैचारिक गति अन्य भाषाओं से प्रखर है ।

राहुल सांकृत्यायन ने संस्कृत लैटिन तथा फारसी को एक ही भाषा से निकली हुई माना और इन्हें बोलने वालों का नाम ही शकार्य (शक+आर्य) रखा था । उनके अनुसार **बोल्गा** के पास एक जन समूह था - एक शक, जो पश्चिम को मुड़ गया तथा दूसरा आर्य भारत आ गया ।

प्राकृत भाषा संस्कृत से पूर्व थी

यह ऐतिहासिक सत्य भी नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता कि आर्य ब्राह्मण जिस काल में प्रस्थापित हुए उस काल में यहाँ के लोग **पाली-प्राकृत** भाषा बोलते थे । **तथागत बुद्ध** ने अपने सारे उपदेश **पाली-भाषा** में दिये। पाली का अर्थ होता है **पंक्ति** । उस काल में उत्तर भारत में बोली जाने वाली लगभग सारी भाषाएं जैसे **मागधी, अरांतिका, मैथिली, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, अर्धमागधी, बुंदेली गौतम बुद्ध को अवगत थीं** । पाली कोई बोली या भाषा न थी, लेकिन बुद्ध जिन शब्दों के माध्यम से अपना उपदेश देते उन्हीं से बनी भाषा **पाली** कहलायी। इतिहास निर्धारण में जैसे बुद्ध मील का पत्थर सिद्ध हुये वैसे उन्हीं से बनी भाषा पाली कहलायी ही पंक्ति भाषा के लिये वे ही प्रमाण साबित हुए । वास्तव में यह भाषा **प्राकृत** थी और वह तत्कालीन समाज की **लोकभाषा** थी। **'संस्कृत'** शब्द का और एक अर्थ है शुद्ध । **अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक और अति महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह कौन सी ऐसी अशुद्ध भाषा रही है जिसे आर्य विद्वतजनों ने संस्कार करके उसे संस्कृत भाषा में रूपान्तरित किया ?**

आर्य विद्वान जो उस काल में मुख्यतया ब्राह्मण होते थे वे **'प्राकृत'** शब्द का अर्थ अशुद्ध, हीन, असंस्कृत ऐसा करते थे । वास्तव में प्राकृत शब्द का अर्थ **'सहज सुलभ'** या **'स्वाभाविक'** (नैसर्गिक) ऐसा होना चाहिए । किसी भी भाषा में प्रारंभिक अवस्था में कुछ न कुछ कमी या अभाव रहना बिल्कुल स्वाभाविक है । आर्य विद्वानों (ब्राह्मणों) ने इस अभाव को पहचाना और उसको दूर करने के लिये भाषा में जो फेर-बदल आवश्यक समझे गये, किये । भगवान सुखदेव, अड्याल (भंडारा) से **'बहुजनों का बहुजन भारत'** के दिनांक 1 से 15 जुलाई 1994 के अंक में अपने लेख **"ब्राह्मणों की भाषा विषयक चतुराई"** में लिखते हैं :

"ब्राह्मणों ने प्राकृत को तुच्छता से देखा और उसके बारे में लिखा, उसे मुर्दा बनाने और, उसे दुर्लक्षित करने की ठानी । इससे जाहिर होता है कि उनका हेतु कुछ शुद्ध न था । ब्राह्मणों ने संस्कृत के विकास के लिये प्राकृत को स्वीकार किया । प्राकृत भाषा के सभी अक्षर कुछ हेराफेरी करके उपयोग में लाये । कुछ थोड़े से अक्षरों का निर्माण किया और संस्कृत भाषा तैयार की ।

आपको मालूम होना चाहिए कि प्राकृत भाषा अपने आप में **एक परिपूर्ण** भाषा है और उसका अपना व्याकरण है । ब्राह्मणों ने इस बात की जान-बूझकर उपेक्षा की, और ऐसा आभास पैदा करवाया कि प्राकृत भाषा अशुद्ध है, अधूरी है । इतना ही नहीं ये उलटा यह प्रचार करने लगे कि प्राकृत और अन्य भाषाएं संस्कृत से पैदा हुई हैं । संस्कृत यदि प्राकृत पूर्व भाषा होती तो आज उपलब्ध प्राचीन पाली साहित्य प्रारंभ में प्राकृत में और बाद में संस्कृत या प्राकृत मिश्रित संस्कृत में रचा नहीं जाता बल्कि विपरीत क्रम से साहित्य निर्माण हुआ होता और अशोककालीन व उसके पूर्व के शिलालेख संस्कृत भाषा में लिखे होते लेकिन ऐसा हुआ नहीं ।

प्राकृत में - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ आदि आठ स्वर और क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, स, ह, ल, अं आदि 33 व्यंजन मिलाकर कुल 41 अक्षरों की संख्या बनती है । ब्राह्मणों ने 'ऐ' और 'औ' ये दो स्वर 'एँ' और 'ऑ' की जगह बनाए। 'अं' को स्वर में सम्मिलित कर विसर्ग 'अः' की निर्मित की । इस प्रकार संस्कृत के बारह स्वर तैयार हुए, व्यंजनों में 'श' और 'ष' को निर्मित किया 'ऋ', 'लृ' ये खास अक्षर बनाये गये, नियमों में भी हेर-फेर किया गया । श, ष और विसर्ग अक्षरों का निर्माण ब्राह्मणों का कार्य मान भी लिया जाय तो भी इतनी सी बात के लिये संस्कृत को प्राकृत से श्रेष्ठ समझना तथा संस्कृत को प्राकृत की जननी कहना क्या उचित है?

इससे ऐसा कौन सा परिवर्तन हुआ? **'गोतम'** शब्द **'गौतम'** में रूपान्तरित हुआ । **'पकाश'** शब्द **'प्रकाश'** में रूपान्तरित हुआ । यदि हमें यह कहना हो कि **'दिया प्रकाश देता है'** तो इसे प्राकृत में **'दीप पकासेति'** कहना पड़ता है और संस्कृत में इसे ही **'दीप प्रकाशेति'** कहना शुरु हुआ । अब तो **'धम्मं शरणं गच्छामि'** को **"धर्म शरणम् गच्छामि"** कहना शुरु हो गया है । महापंडित **राहुल सांस्कृत्यायन** के भाषा सम्बंधी ये शब्द बड़े ध्यान देने योग्य हैं -

"इसमें जरा भी संशय नहीं है कि प्राकृतकाल में हिन्दी क्षेत्र की २० भाषायें अपने-अपने प्राकृत स्वरूप में थी ।"

आदि पुरुष मनु

भारतीय संस्कृति ही नहीं विश्व के अन्य देशों और धर्मों में मनु को विभिन्न नामों से आदि पितामह माना है । महाभारत के वनपर्व में कहा है :-

"मनुना च प्रजाः सर्वाः स देवासुर मानुषः ।
सृष्ट्याः सर्वलोकाश्च यत्रे गति पच्चे गति ।।"

अर्थात-सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार जाकर बसे देवता, मनुष्य और राक्षस (ये मनुष्यों के क्रमशः गुण-विभाग हैं) सब मनु की संतानें हैं ।

बाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है :-

"अमरेन्त्रमया बुद्धया प्रजाः सृष्टस्तथा प्रभो ।
एक वर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः ।"

अर्थात-"हे प्रभो । संसार भर में बसे सभी लोग एक ही जाति, एक ही भाषा और सब प्रकार एक ही आचार-विचार वाले मनु के पुत्र हैं ।"

"एन्शियेन्ट एण्ड मीडिवल इण्डिया" नामक ग्रन्थ के प्रथम खण्ड पृष्ठ 118 में प्रख्यात इतिहासविद् **मैनिंग** ने उपरोक्त तथ्य की जो तुलनात्मक व्याख्या की है, वह बड़ी महत्वपूर्ण है । वे लिखते हैं कि मानव-जाति के आदि जनक जिन्हें भारतीय "मनु" कहते हैं, उन्हीं से समूचे संसार की समस्त जातियाँ बनी, यह निर्विवाद सत्य है । **भारतीय "मनु" या "मनस्" की तरह जर्मन लोग भी आदि पुरुष "मानस" कहते हैं, ये ही 'ट्यूटनों' के मूलपुरुष समझे जाते हैं । जर्मनी का "मन्न" और अंग्रेजी का "मैन" उच्चारण में थोड़ा भिन्न है, पर वस्तुतः वह "मनु" शब्द ही है । जर्मनी के "मनस्" और संस्कृति के "मनुष्य" में कोई अन्तर नहीं है ।**

अनुसंधानकर्ताओं का कहना है कि बाहर गयी हुई जातियाँ कालान्तर में अपने आहार-विहार और रहन-सहन अवश्य बदलती रही, किन्तु वे दीर्घकाल तक साधना, उपासना, व्यापार, व्यवहार, धर्म और दर्शन, भाषा और शासन व्यवस्था आदि की दृष्टि से भारतीय संविधान से जुड़ी रहीं । ईसा से 1500 वर्ष पूर्व मध्य एशिया में **"मिटानी"** और **"हिटाइट"** नामक दो पड़ोसी राज्य थे । मिटानी का शासक **"मत्तिउजाला"** था और हिटाइट में **"शिविलुलिउमा"** राज्य करता था । प्राचीनकाल में जब दो राजाओं के मध्य सन्धि या किसी प्रस्ताव पर बातचीत होती थी तो जैसे अदालतों में भगवान की शपथ ली जाती है, उसी प्रकार देवताओं को साक्षी बनाया जाता था। इन दो राजाओं के मध्य हुई सन्धि का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है । उसमें जिन देवताओं की साक्षी हो गयी है उनके नाम इन्द्र, मित्र, वरुण, और नासत्य अर्थात अश्विनी कुमार हैं । यह देवता वैदिक युग के थे और ऋग्वेद में ही अनेक ऋचाओं में उल्लिखित है । और विश्व के अन्य किसी धर्मों में इन नामों वाले देवतागण् नहीं हैं इससे साबित होता है कि ये दोनों राज्य भारत की वेदान्त सभ्यता से प्रभावित थे ।

विश्व के प्राचीन देश तथा भारतीय संस्कृति

पुराणों में वर्णित आन्ध्रालय ही आस्ट्रेलिया है । महाभारत एवं रामायण में वर्णित पाताललोक आज का अमेरिका है । बलि पाताल देश का अधिनायक था । दक्षिण अमेरिका में उसके नाम की याद दिलाने वाला नगर "बलिविया" (BOLIVIA) आज भी है, यह किसी समय वहाँ की राजधानी थी । वहाँ अब ईसाई धर्म का वर्चस्व है पर इस लेखक को उसके अमेरिका प्रवास में उसके पुत्र संजयसिंह के एक दक्षिण अमेरिकावासी ईसाई मित्र हैक्टर हुवाइज़ (Hector Hoyes) ने बताया था कि जब वहाँ के लोगों की रखी हुई कोई मानता पूरी होती है तो आज भी प्रचलन है कि वह व्यक्ति अपने निवास से अपने चर्च तक जमीन पर साष्टांग दंडवत करता हुआ लेट कर ही मार्ग का सारा फासला तय करता है । बिल्कुल जैसे हिन्दू भक्तों को कुछ विशिष्ट देवालयों में या "छट त्यौहार" के अवसर पर बिहार प्रदेश में गंगा-पूजन को जाते हुये इसी प्रकार जमीन पर लेटकर, खड़े होकर, फिर साष्टांग दंडवत की मुद्रा में अपने इष्ट देवता को प्रणाम करते हुये अक्सर भारत में जाते देखा जाता है पर भारत में या विश्व के अन्य देशों में कोई ईसाई भक्त अपने चर्च को इस प्रकार जाता कभी दिखाई नहीं देता । ध्यान दीजिये कि हजारों-हजारों वर्षों के अन्तराल में दक्षिण अमेरिका के मूल निवासियों का धर्म बदल गया पर एक पूजा-विधि, जो ऊपर कही गई हैं आज भी भारतीय संस्कृति में परोक्ष रूप में रह गयी है । कोलम्बस के पहुँचने से पहले पेरु और मेक्सिकों में स्वास्तिक का चिह्न प्रत्येक मंगल पर्व पर प्रचलित था जो पूर्णतः भारतीयों का धार्मिक चिह्न है । इस सम्बन्ध में कुछ और उदाहरण दिये जा सकते हैं जैसे जर्मनी के अधिनायक हिटलर ने भी आर्य चिह्न स्वास्तिक को अपने राष्ट्रीय ध्वज, अन्य महत्वपूर्ण चीजों में भी अंकित करवाया था ।

भारतीय संस्कृति का राष्ट्रसंघ

इण्डोनेशिया के द्वीप जावा, सुमात्रा, कम्बोक, बलि आदि के नाम तो ज्यों के त्यों महाभारत में आये हैं। वहाँ के लोगों के नाम अभी भी सुकर्णों, भीमों, अर्जुनों आदि होते हैं यद्यपि उनके धर्म अब हिन्दू नहीं रहे हैं। किन्तु वे स्पष्ट बतलाते हैं कि उनके नामों की शैली भारतीय थी अर्थात वे संस्कारों की दृष्टि से भारतीय संस्कृति के ही अंग रहे हैं । कम्बोडिया, थाइलैण्ड और रूस के अधिकतर प्रदेशों के नाम और स्थानीय संस्कृति में अभी भी भारतीय संस्कृति की पुट शेष मिलती है । यह उदाहरण इस तथ्य के साक्ष्य हैं कि सृष्टि में मानव-जाति का प्रादुर्भाव भारतवर्ष में हुआ । शनैः शनैः उसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति बनती गयी । आबादी बढ़ने से तथा नयी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भारतवर्ष की इसी मानव-जाति का अपनी संस्कृति सहित आप्रवासन विश्व धरा पर नये-नये प्रदेशों में होता चला गया । वे वहीं बस कर वहीं के हो गये पर कुछ न कुछ सांकेतिक लक्षण और चिह्न उनमें बाद तक भी अमिट रहे जो मूल भारतीय संस्कृति और भारतीय मानव-समाज से अतीत-काल का उनका संबध स्मरण कराते हैं । इस प्रकार प्रतीत होता है कि भारत में पहले सांस्कृतिक स्तर पर राष्ट्रसंघ स्थापित था, इसीलिये सभी लोगों ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप जीवन पद्धति, नीति, धर्म, दर्शन आदि को स्वतः अपनाया । उस काल में विश्व-संस्कृति भारतीय संस्कृति को मूल उद्‌गम मानकर ही वे लोग गुरुत्वाकर्षण के समान इसकी आकर्षण शक्ति से आकर्षित होकर सांस्कृतिक स्तर पर इसे अपने जीवन में स्थान देते रहे । यूरोप की प्रसिद्ध यायावर और घुमक्कड़ बंजारा जाति 'रोमा' आज भी अपने पूर्वजों को भारत से बाहर गये उत्तर भारत के क्षत्रिय मानते हैं।

कालान्तर में यह उच्च एवं श्रेष्ठ भारतीय संस्कृति अनेक कारणों से पतनोन्मुखी होती चली गयी । दूर-दूर के प्रदेशों में बसे विश्व के मानव-समुदायों से भारतीय जनों का सम्बन्ध विच्छेद होता गया । परवर्ती भारतीय समाज के कर्णधारों में वह सूझ-बूझ, विश्व बन्धुत्व की तथा "वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना क्षीण होती गयी और यहाँ के लोगों में भेदभावस्वार्थ-परायणता और ऊँच-नीच का भाव आता गया । उससे अथवा किन्हीं भौगोलिक एवं ऐतिहासिक कारणों से मूल-भूत परिवर्तन होते गये और विश्व अनेक देशों, अनेक संस्कृतियों के रूप में दिखायी

पड़ने लगा । जहाँ कभी प्राचीन काल में उन सबमें जाति, गुण, कर्म, स्वभाव, धर्म, दर्शन की एकता थी और मूल उद्गम संस्कृति तार-तम्य स्थापित हुये थे वह टूट गया, पुराने रिश्ते विस्मृत होते गये और आने वाले जमाने में वे वर्ण-भेद, जाति और धर्म-भेदों से ग्रसित होकर परस्पर संघर्षरत होते रहे हैं । यदि भारतीय संस्कृति और उससे विकसित हिन्दू धर्म को आगे भी जीवित रखना है तो इसको पुनर्जागरण की प्रक्रिया में से गुजरना होगा। यदि हम चाहते है कि भविष्य में भी हमारा धर्म मान्य रहे तो उसे विज्ञान और तकनीकी की नई सच्चाइयों को जानकर जूझना पड़ेगा और समुचित बदलाव लाना होगा, समाज से ऊँच-नीच की भावना समूल मिटानी होगी ।

वेदों में इतिहास नहीं है

वेदों में वर्णित विवरण को मानव-इतिहास मान लेना एक भारी भूल होगी । वह भूल भ्रम का कारण बन सकती है । उदाहरण के तौर एक वैदिक मन्त्र में लिखा है कि अदिति के आठ पुत्र थे । मन्त्र है :-

"अष्टौ पुत्रासो अदितिर्ये जातास्तन्वस्परि ।
देवां उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्तण्डमास्यत् ।।"
(ऋग्वेद 10/72/8)

भावार्थः अदिति (प्रकृति) से आठ पुत्र (तत्व) हुए । इन देवों में से सात (नक्षत्र) नीचे रहे और मार्तण्ड (सूर्य) ऊपर (आकाश में) हुआ ।

परन्तु ये देवता और यह अदिति मानव शरीरधारी देवता नहीं थे । यहाँ ऋषि का अभिप्राय अष्टधा प्रकृति से है । यही अदिति (अथवा प्रकृति) के आठ पुत्र (तत्व) हैं पृथिवी, आपः, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अंहकार । ये आठों प्रकृति से जन्म लेते हैं । जब ये ठीक से समझ लिया जाय कि वेदों में मानव इतिहास नहीं है तो फिर भ्रम होने की संभावना नहीं रहती ।

वेद के भाष्यकारों में जरूर सदा से दो पक्ष चले आते हैं - ऐतिहासिक और नैरुक्त । ऐतिहासिक वेद में लिखे संज्ञा शब्दों को मनुष्य नाम अथवा देव नाम मानते हैं । जैसे इन्द्र-वृत्र के संग्राम को नैरुक्त लोग "वर्षण कर्म" मात्र ही कहते हैं । इन्द्र और वृत्र का स्वतन्त्र नर-जीवन अथवा देव जीवन नहीं मानते । किन्तु पुराणों की कथाएँ इसके विरुद्ध ऐतिहासिक परिपाटी से बढ़ी हैं ।

हिन्दू लोग वेदों को शाश्वत मानते हैं । शाश्वत का तात्पर्य है कि इनमें वर्णित नियमों का न तो आदि है, न अन्त, जैसे प्रकृति का न आदि है और न अन्त । एक पृथ्वी के बाद दूसरी पृथ्वी, एक मंडल के बाद दूसरा मंडल बनेगा, और कुल काल तक चलकर पुनः विघटित होकर प्रलय में समाहित हो रहेगा । किन्तु विश्व ज्यों का त्यों बना रहेगा । ऐसी हमारे विद्वानों की अभिधारणा है । वैदिक जन भजन करते थे - पूजन नहीं, परन्तु आगे चलकर देवी-देवताओं के पूजन का प्रचलन हो गया । वेद में पूजा का कोई संकेत नहीं मिलता ।

तीर्थराज प्रयाग

प्रयाग की चर्चा न केवल ऋग्वेद (10/75) की ऋचाओं में मिलती है : इस प्रकार सित एवं असित जल वाली नदियों के संगम में जो स्नान करते हैं वे स्वर्ग जाते हैं । जो लोग यहाँ शरीर त्याग करते हैं वे मोक्ष पाते हैं । महाकवि कालिदास के रघुवंश (13/50) में लिखा है कि "तत्वावबोधेन विनापि भूयस्तनूत्यजां नास्ति शरीर बन्धः"। अर्थात बिना ज्ञान के भी यहाँ मोक्ष प्राप्त होता है ।

महाभारत के वन पर्व 83/18.19 से "प्रयाग" शब्द अपने आप मे पारिभाषिक शब्द है । इसके तीन भौगोलिक अर्थ है :- प्रथम प्रयाग मण्डल, द्वितीय प्रयाग तीर्थ तथा तृतीय त्रिवेणी । मूल प्रयाग प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) पूर्व में उत्तर में बासुकि, पश्चिम में अश्वतरु और दक्षिण में अलर्कपुर (अरैल) तक फैला है । वेणीक्षेत्र (त्रिवेणी)

यह स्थान गंगा और यमुना के मध्य की भूमि है ।

प्रयाग के सम्बन्ध में एक श्रुति है कि समुद्र-मन्थन से प्राप्त अमृत कुम्भ को लेकर असुरगण भागने लगे तो विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर उनका पीछा किया था । भगवान के मोहिनी रूप के लावण्य के दर्शन की इच्छा से विचलित मन वाले असुरों के हाथ से अमृत कलश का अमृत बिन्दु सर्वप्रथम मौनी अमावस्या को जब सूर्य मकर राशि और बृहस्पति वृष राशि में थे तो इस गंगा-यमुना संगम में गिरा था । वही अमृत बिन्दु सरस्वती के रूप में तीसरी वेणी (धारा) के रूप में अविरल बह चला । त्रिस्थली सेतु के पृ० 8 के अनुसार ओंकार "ओउम्" स्वयं ब्रह्म है तथा वहीं यह त्रिवेणी है ।

प्रयाग शब्द के भौगोलिक अर्थ ऊपर दिये गये हैं । आदि कवि बाल्मीकि की संस्कृत कृत "रामायण" में रामचन्द्रजी के प्रयाग आगमन का उल्लेख मिलता है । वन-गमन करते समय राम, लक्ष्मण एवं सीता अयोध्या से "शृंगबेरपुरम" (सिंगरौर) आये यहाँ उनको निषादराज ने अपनी नौका से गंगा-पार पहुंचाया । आज भी "शृंगबेरपुरम" (सिंगरौर) गंगा के उत्तरी किनारे पर तहसील सोरांव में बसा हुआ है । यह भूमि शृंगी ऋषि की स्मृति के कारण भी पवित्र मानी जाती है । अशोक-काल में सिंगरौर एक परगना का केन्द्र था । प्रयाग के इसी अंचल के सिंगरौर उपजाति के कुरमी आज भी विद्यमान हैं और शिक्षा और सामाजिक स्तर में काफी आगे हैं। इससे सिंगरौर कुरमियों की प्राचीनता और रघुकुल के समकालीन होने का साक्ष्य मिलता है । (गाजियाबाद निवासी, कर्मठ समाजसेवी, श्री हरिभान सिंह सिंगरौर ने उपर्युक्त जानकारी दी ।)

इसी प्रकार गंगा के पूर्वीतट पर वर्तमान झूँसी (प्रतिष्ठानपुर) नामक स्थान पुरातत्व की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । प्रागैतिहासिक काल से ही इसके अस्तित्व का उल्लेख मिलता है । प्राचीन काल में चन्द्र परिवार के राजाओं की राजधानी यही प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) ही थी । यहाँ पर आज भी चन्द्रवत्त (चन्दौल) चन्देल, चन्द्रावत आस्वद के कुरमी बसे मिलते हैं जिनकी अन्य जातियों की निगाह में उच्च वर्गीय क्षत्रिय के रूप में गणना की जाती है ।

पाठकगण जानते होंगे कि बुद्धकालीन संस्थागारों के संरक्षकों को बाद में एक पारिवारिक व्यवसाय बन जाने से वे आज भी "सैंथवार" कुरमी के रूप में विद्यमान है । "मल्ल" कूर्मि की बौद्धकालीन गणराज्यों के लोगों की पुनः सनातन धर्म स्थापना के बाद और मल्ल-कूर्मि के नाम से आज भी विद्यमान हैं । ये कूर्मि जाति की प्राचीनता का और श्रेष्ठता का सामाजिक दृष्टि से साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं ।

भारतीय संस्कृति

प्राचीन काल से लेकर अब तक न जाने कितनी संस्कृतियां और सभ्यताएं संसार में आयीं और अपना वैभव दिखाकर, सदा के लिये, समय के विशाल और विकराल गर्भ में विलीन हो गई । उनका आज कोई अस्तित्व बाकी न रहा, मात्र इतिहास के विद्यार्थियों के लिए उनका नाम और यश-गाथा इतिहास के पन्नों में सीमित होकर रह गयी हैं । उनके लुप्त होने के कारण भी वहीं से पता चलते हैं । उनकी याद उनके कुछ चिह्नों, भग्नावशेषों, कुछ भवनों और उनके जमाने में निर्मित कुछ स्मारकों से जरूर प्रत्यक्ष रूप से तरो-ताज़ा हो जाती है । इसके अतिरिक्त उनके जमाने के खुदाई में से प्राप्त सिक्कों, मूर्तियों, शिलालेखों और उस काल की कुछ अलभ्य वस्तुओं से भी उनके चिह्न हमें मिलते हैं । इनके अतिरिक्त न तो आज उनका पुराना धर्म शेष रहा, न उनकी प्राचीन संस्कृति, और न उनके देवी-देवता । केवल उनकी यादें ही इतिहास के गलियारे में बाकी रह गयी हैं । शायद इन्हीं विलुप्त संस्कृतियों के उत्कर्ष और पतन, स्वर्णिम दिनों और गर्त के अन्धकार में लुप्त अवस्थाओं पर विचार करके महाकवि भर्तृहरि ने निम्नलिखित श्लोक की रचना की होगी :-

"सा रम्या नगरी महान् स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत् ।
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत् ताश्चन्द्र बिम्बानना :।।

उदवृतः सच राजपूत्र निवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः ।
सर्व यस्य वशावगात्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ।।"

अर्थात :- "वे प्रतापी विश्व-विजयी सम्राट, वे बड़े-बड़े राजे-महाराजे उनके दरबार के वे दरबारी सामन्त और सरदार उनकी स्तुति करने वाले वे चाटुकर तथा भाटवृंद, वे शक्ति के मद में बदहोश राजकुमार, उनकी नयनाभिरामी राजधानियां, उनकी चन्द्रमुखी महारानियां, पटरानियां-कहां गये? वे सब लोग और वस्तुएं अब कुटिल काल की कराल कृपा से मात्र स्मृति पटल पर शेष बची हैं, उस काल को मेरा सादर नमन् ।"

इन्हीं **भर्तृहरि** ने साहित्य, संगीत तथा कलाविहीन मनुष्य को पशु की संज्ञा से सम्बोधित किया था ।

प्राचीन सभ्यताओं और संस्कृतियों के सिलसिले में उर्दू के महाकवि **डा० मोहम्मद इकबाल,** तब तक उनके सिर में पाकिस्तान का फितूर काबिज़ नहीं हुआ था, ने कहा था :-

यूनानों मिस्र रोमा सब उठ गए जहाँ से,
बाकी बचा है अब तक नामो-निशां हमारा ।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा ।

अनेक आक्रांता आए, आंधी की तरह छाए, अनगिनत नर-संहार कर रक्त बहाया परन्तु भारतीय संस्कृति को नेस्त-नाबूद न कर सके । आज उनके लिये न कोई रोने वाला बचा और न उनके गुण गाने वाला ।

हिन्दू धर्म : एक समग्र दृष्टि

भारतीय संस्कृति और अपना यह हिन्दू धर्म संसार के महान धर्मों में सबसे प्राचीन और विविधतापूर्ण है और आज भी विद्यमान है जबकि विश्व के अनेक धर्म, जैसा ऊपर वर्णन किया गया है अब लुप्त हो चुके हैं । हिन्दू धर्म के लिए यह एक चुनौती भी है और अपने को और सशक्त बनाने का तथा विसंगतियों से मुक्त कराने का एक सुअवसर भी । हिन्दू धर्म विश्व का एक मात्र ऐसा धर्म है, जो इस बात को स्वीकार करता है कि अन्य धर्मों के माध्यम से भी ईश्वर की प्राप्ति संभव है भारत की जनसंख्या अब 90 करोड़ से आगे बढ़ चुकी है ।

देश में अस्सी प्रतिशत नागरिक हिन्दू धर्म के अनुयायी है । नेपाल को छोड़कर हिन्दू बहुसंख्य यह एकमेव राष्ट्र है । यह भी स्पष्ट है कि जब तक हिन्दू धर्म में ओजस्वी पुनर्जागरण नहीं होता, हम इस महान तथा प्राचीन देश की क्रियाशीलता को सशक्त नहीं कर सकते । यह इतिहास के उषाकाल से एक महान नदी के समान विभिन्न मतों और विचारधाराओं को अपने में समोता हुआ शताब्दियों से अविरल चला आ रहा है, और इस बीच में इसने विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आध्यात्मिक आन्दोलनों को भी जन्म दिया है । **उसको सनातन धर्म इसलिये कहा जाता है कि क्योंकि यह किसी एक गुरु की शिक्षा, किसी एक धार्मिक पुस्तक पर नहीं बल्कि भारत की सभ्यता के उषाकाल से ही आरम्भ होकर ऋषि-मुनियों, तत्व-दर्शियों की सामूहिक प्रज्ञा और अन्तःप्रेरणा पर आधारित है।**

जहाँ तक आध्यात्मिक चिन्तन का सम्बन्ध है, हिन्दू धर्म किसी एक धार्मिक पुस्तक अथवा एक देवता पर आधारित नहीं है । हिन्दू धर्म इस दृष्टि से बड़ा अनूठा है कि इसमें ईश्वर तक पहुँचने के अपनी पसन्द के किसी एक रास्ते को, इन विविध रास्तों में से चुनने की न केवल अनुमति है, अपितु उसको प्रोत्साहन दिया जाता है। इसमें मानवता की बौद्धिक और आध्यात्मिक विविधता और प्रवृतियों को स्वीकार किया गया है । आराधक को जो भी माध्यम रुचिकर या विवेकपूर्ण लगे, उसी का प्रयोग करके वह परमपिता परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकता है इसी वजह से हिन्दू धर्म में बहुत अधिक समुत्थानशीलता और परिवर्तनशीलता है जो उसकी आन्तरिक शक्ति का स्रोत है ।

कुटुम्ब

यह एक महान प्रागैतिहासिक घटना है । वैदिक काल में सिन्ध और पंजाब को सप्त-सिन्धु कहते थे, पीछे इसे सिन्धु कहने लगे । (ऋ० 4 म० 17, 18 व 19 सूक्त की 1,78 वीं, ऋचा में)। ऋग्वेद के मध्यकाल तक आर्यों का विस्तार लगभग सिन्धु या सरस्वती नदी तट तक हो चुका था । उत्तरापथ में भी उनका विस्तार कठिनाई से गंगा के किनारों तक ही हुआ था । नगर नहीं बस पाये थे, नागरिकता नहीं स्थापित हुई थी, किन्तु सभ्यता की उच्च सीमा उनके रहन-सहन में पहुँच गयी थे । कुटुम्बों में परिवारों की प्रथा प्रचलित थी और कुटुम्ब का पिता उसका मुखिया माना जाता था । अतः जाति और वर्ण ऋग्वेद-काल में नहीं थे - कुटुम्ब थे और पिता उनका मुखिया या गृहपति होता था । अन्य सदस्य उसका पूरा सम्मान करते और उसकी आज्ञा का पालन करते थे । वैदिक काल के आर्यों के उत्कृष्ट विचारानुसार समस्त संसार के मानवगण उनके एक विशाल परिवार के सदस्यगण हैं । वेद-शास्त्रवाणी **"वसुधैव कुटुम्बकम"** को चरितार्थ करने की उनकी परिकल्पना थी ।

कूर्मनिवेश खण्ड

सबसे पहले **पाराशर** और **बाराहमिहिर** ने बतलाया कि भारतवर्ष नव-खण्डों में विभक्त है । बाद में यह धारणा कुछ पुराणों के लेखकों ने ग्रहण की । मार्कण्डेय पुराण के **कूर्मनिवेश** खण्ड में भारतवर्ष का धरातल **पूर्वाभिमुख कूर्म या कच्छप** के ऊपरी पृष्ठ के समान उत्तल आकार वाला बतलाया है । यह अवधारणा भारत की भौगोलिक विशेषताओं सम्बन्धी हमारे वर्तमान ज्ञान से पूर्णतः संगत है । **मार्कण्डेय पुराण में कूर्म (कच्छप)** को भगवान नारायण के समान कहा गया है ।

H. Kern remarks (Journal of Royal Asiatic Society, 1871, p.81)

"The word Kurma is the specific form of a word once common to all Indo-European tongues, viz, Kurma, Latin Culmus,Teuton, holm etc. It does not originally denote the **'tortoise'** itself, but its back, for the proper meaning is 'mound, buckle, half globe, holm'. Even in Sanskrit in such compounds as Kurmonnata, the word signifies the form of the back of tortoise."

विद्वान **एच.कर्न (जरनल ऑफ रायल ऐशियाटिक सोसायटी,** ज.र.ए.एस., सन् 1871, पृष्ठ 81) यह उपर्युक्त मत व्यक्त करते हैं ।

परिवर्तन प्रकृति का विधान है । हमारे देश में इस परिवर्तन को प्रत्येक क्षेत्र में स्वीकार किया गया है। हमारी मान्यता में समय के परिवर्तन को सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग में दर्शाया गया है । इस परिवर्तन को उक्त चारों युगों की समाज-व्यवस्था के सतत् परिवर्तन युग, धर्म-प्रक्रिया में व्यक्त किया गया है ।

भगवान वेदव्यास

प्रसिद्ध ग्रन्थ **भागवत** में वर्णन मिलता है कि कलियुग में जब शास्त्रीय ज्ञान लुप्त हो जायेगा, समाज में पापाचार सर्वत्र फैल जायेगा, तब **महर्षि कृष्ण द्वैपायन** के रूप में भगवान अवतरित होंगे और देश में लोप हो गये, शास्त्रीय ज्ञान को मानव-कल्याण हेतु पुनः उपलब्ध करायेंगे ।

हमारे धर्म शास्त्रों की ऐसी मान्यता है कि **महर्षि व्यास** का जन्म द्वीप में हुआ था , इससे वे **द्वैपायन** कहलाये । शरीर का वर्ण **श्याम** था, अतः **कृष्ण द्वैपायन** कहे गये । उन्होंने ही वेदों का शास्त्रीय विभाजन किया था । इसी से वे **वेदव्यास** नाम से भी प्रसिद्ध हुये । कहा जाता है कि व्यास जी प्रकट होते ही माता से अनुमति लेकर तपस्या के लिये वन-गमन कर गये थे । वहाँ इन्होंने वेद को चार भागों मे बाँटा, जिससे अलग-अलग यज्ञ

कर्म कराने वालों के लिये मन्त्रों के चयन और उपयोग की बड़ी सुविधा हो गयी।

भारतीय संस्कृति का उद्‌गम स्थान और आदि स्रोत वेद और वैदिक साहित्य है। वेद शब्द "विद्" धातु से बना है, जिसका अर्थ है ज्ञान अथवा ज्ञान का भण्डार। आरम्भ में वेद श्रुति अवस्था में केवल एक ही था, पर जैसा ऊपर कहा गया उसको ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में विभाजित करने से उनका नाम वेदव्यास पड़ा। कहा गया है कि,

"विव्यास वेदात् यस्मात् सः वेदव्यास इति स्मृत।"

अर्थात वेद को उन्होंने चार भागों में बाँटा, इससे वे वेदव्यास नाम से जाने जाने लगे। वेद के तीन महा वाक्य है :

"अहं ब्रह्मास्मि," "तत्वमसि" तथा "सर्व खल्विदं ब्रह्म"।

महामुनि वेदव्यास ने वेदों के पठन-पाठन का अधिकार स्त्रियों, शूद्रों एवं अन्य सभी के लिए घोषित किया, इससे पूर्व यह अधिकार केवल द्विजजाति तक ही सीमित था। महर्षि व्यास का यह कदम सामाजिक एकता की दृष्टि से ऊँच-नीच की भावना मिटाने की दिशा में बड़ा क्रान्तिकारी था। उन्होंने धर्म के सभी अंगों में व्याप्त लाखों आख्यानों का संकलन किया और सबका अत्यन्त सरल और रोचक ढंग से महाभारत में आलेख किया। धर्म और ज्ञान को समाज के सर्वसाधारण जनों को उपलब्ध कराने की दृष्टि से महाभारत की रचना वेद व्यास जी का एक महान राष्ट्रीय कार्य था, जो उन्होंने बड़े सुचारु रूप से सम्पादित किया। वे भारतीय संस्कृति के चिरस्मरणीय उच्चकोटि के धर्माचारी, ब्रह्मर्षि मूर्धन्य विद्वान और महान एवं मौलिक कवि माने जाते रहेंगे।

विश्वामित्र के पुत्र और उनकी रेड्डी सन्तति

अंध्र और आंध्र विशेषतः प्रदेश तथा उसके निवासी, दोनों के लिए आता है। यह तेलंग (तेलुगु-भाषी) देश है ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेप उपाख्यान में लिखा है कि विश्वामित्र ने जब शुनःशेप को नरमेघ से बचाकर अपना पुत्र बनाया, तब उनके पचासों पुत्रों ने उसे अपना नया भाई स्वीकार करने से पिता, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र, को साफ मना कर दिया। पुत्रों द्वारा इस प्रकार पिता-आज्ञा की अवहेलना से विश्वामित्र का क्रोधित हो उठना स्वाभाविक था। उन्होंने अपने पुत्रों को दक्षिणतम को चले जाने का आदेश दिया। उन्होंने अपना जन्म और कर्मस्थल उत्तरी भारत छोड़कर दक्षिण भारत की ओर चलकर वर्तमान आन्ध्रप्रदेश वाले भूभाग को अपनी कर्म भूमि बनाया। स्थानीय लोगों जैसे नागवंशी, यक्ष और तेलुगु जनसमुदाय में शादी-विवाह, खान-पान साथ-साथ करके वहाँ के जन-जीवन में वे आत्मसात हो गये। ऐसी मान्यता है कि रेड्डी कूर्मि बन्धु उन्हीं आर्यक्षत्रिय पुत्रों तथा अनार्य जनजातियों की स्त्रियों से उत्पन्न हैं। अन्य कूर्मिक्षत्रियों की तरह उनका खानदानी प्रमुख पेशा सर्वदा कृषि रहा है।

दक्षिण में कृषक वर्ग को "कापू" नाम से सम्बोधित किया जाता है। कापू शब्द इतना व्यापक है जिसमें सारे कृषक वर्गों रेड्डी, कम्मा, नायडू प्रधानतः कृषक वर्ग हैं आ जाते हैं। वे सम्पन्न भी हैं। रेड्डी वंश ने आन्ध्र देश पर सन् 1324 से 1434 तक शासन किया था। रेड्डी राजाओं के समय में आन्ध्र ने कला, कृषि व्यापार, भाषा-साहित्य आदि क्षेत्रों में स्पृहणीय उन्नति की थी। ("The History of the Reddy Kingdom") "दि हिस्ट्री ऑफ दि रेड्डी किंगडम" नामक ऐतिहासिक ग्रंथ है, जो आन्ध्र विश्वविद्यालय वाल्टेयर (विशाखापट्टनम) द्वारा प्रकाशित हुआ है। तेलुगु के प्रसिद्ध साहित्यकार स्व० श्री सुरवरमुप्रताप रेड्डी ने अपने "आन्ध्र का सामाजिक इतिहास" में सौ पृष्ठों में रेड्डी राज्य की अत्युन्नति का विशद विवेचन किया है। यह ग्रंथ हिन्दी में भी साहित्य एकडेमी दिल्ली, के द्वारा उपलब्ध है। ये रेड्डी या नायडू आस्पद (विरुद) से अभिहित है।

दक्षिण के रेड्डी, कम्मा, कापू, नायडू, बक्कलिगर इत्यादि वर्ण प्रधानतः कृषक हैं । ये समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अग्रसर हैं । अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के 31 वें अधिवेशन भंजनगर गंजाम, उड़ीसा के अध्यक्ष 'चन्दा मामा', बाल-पत्रिका (हिन्दी) के पूर्व सम्पादक श्री बालशौरि रेड्डी थे ।

सिन्धु घाटी एवं भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता

साधारणतः भारतीय संस्कृति का उद्‌गम वैदिक काल से माना जाता है, किन्तु सिन्धुघाटी तथा देश की अन्यान्य स्थानों की अब तक हुई खुदाई से प्राप्त भग्नावशेषों से इसका प्रारम्भिक काल कई हजार वर्ष और पीछे की ओर से आंका जाने लगा है । हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ो आदि स्थानों में से जो अवशेष खुदाई से प्राप्त हुये हैं उनसे एक बात तो स्पष्ट पता चलती है कि भारतवर्ष में वेद-पूर्व भी मानवीय सभ्यता काफी विकसित अवस्था में विद्यमान थी ।

हमारी संस्कृति का यह नद मात्र आर्य-संस्कृति का स्रोत नहीं है । इसे महज आर्य-संस्कृति कहना इतिहास के एक अनूठे सत्य को छिपाने जैसा होगा । यह वास्तव में भारतीय संस्कृति है जिसमें आर्यों के आगमन से पूर्व यहाँ बसी हुई अनेक प्रजातियों का भी अति महत्वपूर्ण योगदान रहा है । (मूल स्रोत सिंधु घाटी संस्कृति 3250 ईसा पूर्व से 2000 ईसा पूर्व तक) । कांस्य-युग की सभ्यताओं में हड़प्पा संस्कृति सबसे पुरानी नहीं है ।

इसको यहां प्रथम इसलिये कहा जा रहा है क्योंकि यह भारत की प्रथम ज्ञात सभ्यता है । ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यह 2500 वर्ष ईसा पूर्व विकसित हुई थी । और किसी भी तत्कालीन सभ्यता की अपेक्षा उसका विस्तार बड़े क्षेत्र में हुआ था । इस सभ्यता के चिह्न बलोचिस्तान, सिंध, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, पश्चिम उत्तर प्रदेश में मिलते हैं । हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नगर सुव्यवस्थित थे और वहां की आबादी सघन थी । लगता है कि अधिकतर लोग कृषि कार्य करते थे । लगभग 1500 ईसा पूर्व हड़प्पा की संस्कृति का अन्त हो गया था। यह क्यों और कैसे हुआ यह मालूम नहीं है ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक, इतिहासज्ञों की ऐसी धारणा रही थी कि भारत में स्थानीय संस्कृति की द्वितीय अवस्था, आर्यों के लगभग 1500 वर्ष ईसा पूर्व आगमन के बाद शुरु हुई, इसलिये उस समय यह भारतीय संस्कृति विश्व की अन्य प्राचीन संस्कृतियों की तुलना में सबसे नई आँकी गयी थी । किन्तु इस शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में भारत के पुरातत्व विभाग द्वारा, पश्चिमी पंजाब के हड़प्पा में सिंध के मोहन जोदड़ो (वर्तमान में ये दोनों स्थान पाकिस्तान के अंग हैं), में किए गये उत्खनन से अभी तक यह उद्‌घटित हुआ है कि क्षेत्र की दृष्टि से यह तथाकथित सिन्धु घाटी संस्कृति सम्पूर्ण पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान और काठियावाड़ के बहुत बड़े भू-भाग में, एक ओर पश्चिम उत्तर प्रदेश और दूसरी ओर पश्चिम के तटीय क्षेत्र, दक्षिण भारत के एक भाग तक फैली हुई थी । ऐसा ही अनुमान लगाया गया है कि यह संस्कृति ईसा के 3000 वर्ष पूर्व इस देश में अपने पूर्ण वैभव को पहुँच चुकी थी । इसीलिये डा. एस. आबिद हुसैन ("भारत की राष्ट्रीय संस्कृति" अनुवादक दुर्गा शंकर शुक्ला, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, प्र. संस्करण 1987 पृष्ठ 25) के अनुसार एलम, प्राचीन मिस्र, बेबीलोनिया, सुमेरिया और प्राचीन चीन के साथ, इसकी गणना संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में की जानी चाहिये ।

सर जान मार्शल के अनुसार मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में पाये जाने वाले प्राचीन नगरों के अवशेष यह प्रदर्शित करते हैं कि इन नगरों में निवास करने वाले लोग, सभ्य जीवन के जिस स्तर पर पहुँच गये थे, वह प्राचीन बेबीलोन और प्राचीन मिस्र के निवासियों के जीवन-स्तर की तुलना में ऊँचा था तथा सुमेरियन वासियों की बराबरी का था । सुनियोजित चौड़ी सड़कों के जाल, सिंचाई के लिए नहरें और गंदगी दूर निकालने वाली नालियाँ युक्त बड़े नगर थे । इससे स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने केवल सिविल इंजीनियरिंग में ही अच्छी प्रगति नहीं की थी, अपितु उन्हें नगर नियोजन का भी उन्नत ज्ञान प्राप्त था ।

मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में पुरातत्वीय खोज से यंत्र, हथियार और बर्तन प्राप्त हुये हैं । वे मिट्टी,

ताँबे और कॉस्य के बने हुये हैं जिन पर मनुष्यों और पशुओं की आकृतियाँ पायी गयी । मोहरों पर अंकित चित्रलेखों को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है, हम इसीलिये सिन्धु घाटी के निवासियों के मानसिक और आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम जान सके हैं । मुहरों पर अंकित आकृतियाँ प्रर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करती है कि वे शक्तियों, देवी की पूजा करते थे । कुछ मुहरों पर शिव के समान भगवान का रूप देखा गया है । नदियों, पशुओं तथा पीपल वृक्ष की पूजा की जानकारी भी उसी काल में मिलती है । सिन्धु घाटी सभ्यता के प्रवर्तकों के मूल के सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं है । कुछ उन्हें आप्रवासी आर्य या सुमेरियन मानते हैं और कुछ द्रविड़ के रूप में । पर जिनके भी वे वंशज थे वे शताब्दियों तक भारत में रहे और संस्कृति में सुमेरियनों के साथ कुछ समानता होने के बावजूद भी वे कुल मिलाकर भारतीय थे ।

नगेन्द्र कुमार सक्सेना ("राष्ट्रीय एकता के सांस्कृतिक सूत्र", राजस्थान प्रकाशन, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर) के अनुसार इस देश में बसी सबसे प्राचीन प्रजाति **प्रोटो आस्ट्रोलायड** है । अस्त्र-शस्त्र निर्माण, देवी-देवताओं की पूजा, पान, सुपारी तथा सिन्दूर का प्रयोग, पुनर्जन्म, पौराणिक कहानियाँ, पृथ्वी का जन्म, नाग एवं बन्दरों की पत्थर की मूर्तियाँ बनाकर पूजा इसी जाति की देन है । भारत में यह जाति इतिहास के पृष्ठों में **"पूर्व द्राविड़"** के नाम से संबोधित की गई है । पूजा पाठ में सुगन्धों का प्रयोग, प्रसाद चढ़ाना, मूर्तियों के सम्मुख नृत्य इसी प्रजाति की देन है । परिवहन, घरों की संरचना, ईटों का प्रयोग, रंगीन मिट्टी के बर्तन तथा नगर निर्माण कला जो सिन्धु घाटी सभ्यता से मिलती है, इस प्रजाति के विकास का प्रतीक है ।

निग्रटो प्रजाति के प्रभाव से बरगद के पेड़ की पूजा सन्तान प्राप्त की कामना से प्रचलित हुई है । **मंगोल** प्रजाति ने तन्त्रवाद, चाय, सीढ़ी दर सीढ़ी खेती, शीर्ष शिकार आदि का उपयोग भारतीय संस्कृति को सिखाया । आर्यों की देन सर्वोपरि रही । जीवन के सभी क्षेत्रों में उन्होंने सांस्कृतिक व्यवस्था को स्थिरता दी तथा परवर्ती प्रभावों को भी ग्रहण करते चले गये । भारतीय संस्कृति का स्रोत विभिन्नता का संश्लेषण है । तथापि उसमें एकता के मौलिक तत्वों को संरक्षण मिला है । अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेष अनुभूति रही है ।

यूनानी, शक, हूण, सिथियन, अरब, ईरानी, फारसी, अफगान, मुगल तथा अंग्रेजी संस्कृति की यह विशेषता रही है कि उदार तथा समन्वयपरक रह कर उसने व्यापकता ग्रहण की है, देश और काल की संकीर्णता से ऊपर उठकर उसने विशालता स्वीकार की है ।

अतः भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता किसी युग, प्रजाति अथवा व्यक्ति विशेष की मात्र देन नहीं है । उसका प्रवाह सभ्यता के उषाकाल से आज तक गतिवान रहा है ।

दो धारायें : द्रविड़ संस्कृति एवं आर्यो की वैदिक संस्कृति

(2000 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व तक)

लगभग 2000 ईसा पूर्व जबकि पश्चिम भारत में सिन्धु घाटी सभ्यता जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, जंगली अथवा अन्य किन्हीं आक्रमणकारियों द्वारा की गई बरबादी से नष्ट हो रही थी तब दक्षिण भारत में द्रविड़-तमिल संस्कृति विकास के बहुत ऊँचे स्तर पर पहुँच चुकी थे । वर्तमान तमिलनाडु में उन्हीं द्रविड़ तमिल लोगों के वंशजों का शासन है तथा उनके नेताओं **रामास्वामी परियार, अन्ना दुराई, रामचन्द्रन, करुणानिधि** आदि के सतत् प्रयासों से प्रादेशिक राजनीति पर उनका पूरा वर्चस्य स्थापित हो सका है । वर्तमान मुख्य मंत्री **सुश्री जयललिता** यही कर रही हैं पर उनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ है ।

आदि देव शिवजी

आशुतोष भगवान शिवजी को **आदि देव** कहा गया है । **द्रविड़ों में** उन्हें **आर्येत्तर देवता** माना जाता था।

बाद में जाकर वे आर्यों के भी देवता बने। शिव का अर्थ है कल्याण। उनके अनेक रूप हैं तो नाम भी अलग-अलग हैं। शिवजी श्वेत नन्दी पर उमा के साथ सुशोभित हैं। नर, नाग, गंधर्व, किन्नर, देवता उनके अधिपति इन्द्र, देवगुरु बृहस्पति सब शिव की वन्दना करते हैं। विसंगतियों के देवता हैं शिव। शिव का रंग गोरा है तभी तो उन्हें गौरांग कहते हैं। शिव का एक नाम त्र्यंबक है अर्थात तीन नेत्र। ये सूर्य, चन्द्र और अग्नि के परिचायक हैं। शिव का एक नाम-चन्द्रमौलि भी है। वे पंचमी के चन्द्र का मुकुट पहनते हैं। शिव की जटा में गंगा रहती हैं, अतः उनको "गंगाधर" भी कहा जाता है। पाशुपत उनका प्रधान अस्त्र है। इसी से उन्होंने दैत्यों का विनाश किया था। शिव परशु धारण करते हैं। उन्होंने उसे परशुराम को दिया था। उनका एक नाम नीलकंठ है क्योंकि विश्व की रक्षा के लिये वे हलाहल विषपान करते हैं। शिव का वाहन वृषभ है। दक्ष प्रजापति शिव के ससुर थे।

प्रागैतिहासिक काल की शासक प्रजातियाँ

नृतत्ववेत्तओं और मानव शास्त्रियों द्वारा ऐसा मत प्रकट किया गया है कि पैलियोज़ोइक काल में गोंडवाना, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका परस्पर भूमि भाग से मिले हुये थे। उसके उपरांत पैलोज़ोइक काल में केवल भारत और अफ्रीका लेमूरिका नामक भूखंड द्वारा मिले रहे। आने वाले युग में भारतीय भूंखड संकुचित हो गया और बंगाल की खाड़ी का जन्म हुआ। इसके बाद जब हिमयुग की बर्फ पिघलने लगी तब एक भीषण प्रलय हुआ, जिसमें अनेक देश डूब गये। विद्वानों का विचार है कि इसी प्रलय का वर्णन संसार के प्राचीन साहित्यों में बिखरा पड़ा है।

अब हिमालय के इतिहास पर दृष्टिपात कीजिये। ऐसा कहा जाता है कि प्लयोसीन युग में हिमालय जल से बाहर निकल आया। कुछ विद्वानों का मत है कि इसके निकलने के बाद ही इसकी तराई में मानव जीवन प्रारंभ हुआ और हिमालय और अरावली के बीच के उस मैदान में फैल गया, जो लगभग औसतन 200 मील चौड़ा और 2000 मील, लम्बा है। (राघव रांगेय, "प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास"-आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली--6, सं० 1953)। चीन सरकार के सर्वेक्षण विभाग के अनुसार विश्व की उच्चतम चोटी, माउन्ट एवरेस्ट सन् 1992 में गत् 17 वर्षों के अन्तराल में 1.86 मीटर नीचे हुई, नापी गई है, अब सन् 1994 में उसकी ऊँचाई समुद्रतल से 8,846.27 मीटर रह गयी है।

अब यह सर्वमान्य है कि विश्व में भिन्न-भिन्न समयों में मनुष्य की अलग-अलग उत्पत्ति हुई है। भारतवर्ष की पुरानी जगहों की खुदाई में कुछ ऐसी वस्तुएं मिली हैं जो स्पष्ट ही पूर्व चिलियन ओलिथिक सभ्यता की है। नर्मदा नदी की घाटी में नरसिंहपुर में भूत्रा में विन्ध्य के लाल पत्थर मिले हैं। वहीं कुछ पशुओं की हडिड्यां भी मिली हैं। भूत्रा में जो चीजें मिली हैं, उनका साम्य अफ्रीका, यूरोप, बर्मा, लंका, जावा तथा अंडमान में प्राप्त हुई चीजों से है। इससे प्रगट होता है कि उस समय के प्राचीन संसार में एक समान "इलोलिथिक संस्कृति" व्याप्त थी।

प्राचीन ईरानी साम्राज्य और संस्कृति

ईरान, पूर्व नाम पर्शिया, आरम्भ में भारत की ही तरह साधारण कृषि-प्रधान देश था। लेकिन समय के साथ-साथ समाज उन्नति करता गया और बाद में वहाँ ऐसे वीर प्रतापी राजा हुए जिन्होंने अपनी वीरता और पराक्रम के बल पर दूसरे देशों को जीतकर एक महान ईरानी साम्राज्य स्थापित किया। ईरानी राजाओं में सर्वाधिक ख्याति दारा प्रथम ने अर्जित की। इसने ईरानी साम्राज्य को बहुत बढ़ाया और सुसंगठित किया। उसकी मृत्यु के समय ईरानी साम्राज्य अपनी उन्नति और वैभव की चरम सीमा पर था और उसमें मिस्र तथा सिन्धु नदी के पश्चिमी

किनारे (वर्तमान पाकिस्तान का भूभाग) तक एशिया के समस्त देश सम्मिलित थे।

ईरानी सम्राट दारा आर्य वंश का था और उसे अपने आर्यवंशी होने का अभिमान भी था। "नक्स-ए-रुस्तम" नामक स्थान पर उसका एक शिलालेख मिला है, जिसमें उसने अपने को - "आर्यवंशी" कहा है। ईरान के लोग भी अपने देश को "आर्यानावाएजो" अर्थात आर्यों का निवास स्थान कहते थे। बाद को वह सिर्फ "आर्याना" कहा जाने लगा, जोकि लोक-व्यवहार में बिगड़कर "ईरान" हो गया। ऐसा भी कहा गया कि पहले उस देश का नाम आर्यबान था जिसका अपभ्रंश ईरान हो गया। जहाँ सिन्धु नदी के तट पर रहने वाले लोगों को ईरानियों ने हिन्दू नाम दिया वैसे ही भारत देश को सबसे पहले उन्होंने हिन्दुस्तान कहा था, फिर सभी एशिया वाले कहने लगे।

भारत का आर्याना (आधुनिक ईरान)

प्राचीन काल में जैसा ऊपर वर्णित है, सदियों तक ईरान (पर्शिया) और भारत के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। ईरानियों और भारतीयों के पूर्व पुरुष एक ही आर्य वंश के थे। ईरान शब्द स्वयं आर्य (आर्याना) शब्द का अपभ्रंश है। दोनों के रीति-रिवाज और दोनों के देवी-देवताओं में बहुत कुछ साम्य हैं। ईरानियों के ग्रन्थ "आवेस्था" और भारतीयों के धर्म ग्रन्थ "वेद" दोनों की भाषा बहुत कुछ एक सी है। प्राचीन ईरानी भाषा में "स" अक्षर "ह" में बदलकर बोला जाता था - जैसे सप्त का हप्त, सप्ताह का हप्ताह, सिन्ध का हिन्द, सिन्धु या हिन्दु (ये सिन्धु नदी के पार रहने वाले भारतीयों को हिन्दू कहने लगे और यहाँ के लोग हिन्दू नाम से आज भी जाने जाते हैं)। इसी तरह सोम को होम, असुर को अहुर आदि अनेक शब्दों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। दोनों के देवता भी बहुत कुछ समान हैं। सिर्फ थोड़ा उच्चारण भेद है। हमारे वैदिक देवता मित्र उनके मिथ है। हमारा वृत्र हन्त (इन्द्र) उनक बेरेत्रजन्त हैं। हमारा यम उनका यिम है। हमारे सोम (चन्द्र) उनके होम है। हमारी वैदिक नदी सरस्वती उनके यहाँ हरहती हो गयी। हमारे यज्ञ उनके यहाँ यरन हो गये। इस प्रकार ईरान की प्राचीन संस्कृति का भारतीय वैदिक संस्कृति से काफी एकसा तारतम्य नजर आता है।

भारत में आर्य

भारत में आर्य लोग स्थाई रूप से सबसे पहले सप्त-सिन्धु (पंजाब) में आकर बसे। ऋग्वेद की ऋचाओं के दृष्टा वैदिक ऋषिगणों को इसी क्षेत्र में उसकी अनुभूति हुई थी। वे पंजाब से पूर्व की ओर बढ़े और गंगा की उपजाऊ घाटी में फैल गये। फिर दक्षिण दिशा में विन्ध्याचल पर्वत माला तक पहुँच गये। इसके बाद वह भारत के आदि निवासियों से घनिष्टता स्थापित करते गये। यहां तक कि वैवाहिक सम्बन्ध भी किये। समय बीतता गया और शनैः शनैः जिस भारतीय संस्कृति का विकास हुआ उसमें वैदिक और प्राक्‌वैदिक दोनों संस्कृतियों का समन्वय उभरा था।

जब आर्यों के काफिले सप्तसिंधु प्रदेश आकर बसे, तब वे छोटे-छोटे कबीलों में बटे हुये थे जो आपस में भी लड़ पड़ते थे। कालान्तर में वे अपनी शक्ति-वृद्धि कर यहां के मूल निवासियों के विरुद्ध भी युद्ध करते रहते थे। जो हारकर शरणागत आ जाता था उससे सन्धिकर अपनी छत्रछाया में ले लेते थे, दूसरे जो काबू न आते थे उन्हें दक्षिण और पूर्व दिशा की ओर दूर खदेड़ देते थे। कालान्तर में उनके छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये। उनमें कुछ राजा और कुछ में अभिजात वर्ग के व्यक्ति शासन चलाते थे। छटी शती ईसा पूर्व में यह राज्य बड़े राज्यों में बदलते चले गये। इनमें से कुछ राजतन्त्र थे और यह सोलह राज्य महाजनपद कहलाते थे। इस समय तक मगध राज्य इतना शक्तिशाली हो गया था कि उसने साम्राज्य का रूप ले लिया था।

ब्रह्म एवं सोहऽम्

ब्रह्म और ब्रह्माण्ड, सृष्टिकर्ता और सृष्टि इन दोनों में क्या सम्बन्ध है, इस बारे में दो मत ही अधिकांश

मान्य हैं । एक मत के अनुसार ब्रह्माण्ड से और ब्रह्म, सृष्टिकर्ता और सृष्टि एक ही पदार्थ हैं अर्थात ब्रह्म ही ब्रह्माण्ड का उपादान है । अतएव इस मत के अनुसार जो पदार्थ ब्रह्म है, ब्रह्माण्ड भी उसी पदार्थ से बना है । ब्रह्माण्ड ब्रह्म से पृथक नहीं है । इस मत के बारे में यही प्रधान और गूढ़ बात है ।

दूसरा मत है कि ब्रह्म ब्रह्माण्ड से और सृष्टिकर्ता सृष्टि से बिल्कुल पृथक हैं । सृष्टि से पहले सृष्टि का उपादान कुछ भी न था । सृष्टिकाल में सृष्टिकर्ता ने अपनी असीम शक्ति से जाने कैसे जगत बना डाला । सृष्टिकर्ता स्वयं जिस पदार्थ से बना है सृष्टि जगत उससे भिन्न चीज है और उसके पदार्थ की प्रकृति भी भिन्न है ।

इन उपर्युक्त दोनों मतों में प्रथम हिन्दुओं का दूसरा ईसाइयों का है । दोनों मतों में कौन सत्य है । कौन ग्रहण करने या मानने योग्य है । इस मत की जितनी भी मीमांसायें हुई है उनसे प्रथम अर्थात हिन्दू मत ही पक्का प्रतीत होता है ।

"सोऽहम्" भारत के हिन्दुओं को बड़ा गौरव प्रदान करता है । यह उस हिन्दू समाज के प्रति है जहाँ ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं है । मनुष्य वही पर ब्रह्म है, एक हिन्दू को छोड़कर और कोई इतनी ऊंची भावना की भक्ति करने में समर्थ नहीं है । सोऽहम् अर्थात वह मैं हूँ । यह बात भारतवर्ष के हिन्दू के सिवाय कोई नहीं कह सकता । इसी बात के कहने से हिन्दू, हिन्दू है; इसी में हिन्दू का हिन्दुत्व निहित है यही धर्म हिन्दू का है । सोऽहम्, हिन्दू का, हिन्दुत्व का और हिन्दू धर्म का लक्षण है ।

इस विशाल विचार को मन धारण कर सके ऐसी मानसिक विशालता और किसी धर्मावलम्बी में नहीं हो सकती । किन्तु यह कहकर अभिमान नहीं प्रदर्शित किया जाता है । "सोऽहम्" किसे कहते हैं । वह यदि समझ लिया जाय तो अभिमान किया ही नहीं जा सकता । अभिमान के अहंकार को नष्ट किए बिना कोई भी हिन्दू इस "सोऽहम्" का अधिकारी नहीं होता । सूक्ष्मदर्शी महामति हिन्दुओं के सूक्ष्मतम अति विराट सोऽहम् का अर्थ-प्रकृत ब्रह्मज्ञान प्रकृत आत्मज्ञान है, अपरिसीम मन, अपरिसीम साहस, सबका सामन्जस्य, सबका महत्व, सबका एकत्व और अच्युत विश्वत्यापि अस्तित्व है । इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति हिन्दू ही हो सकता है । और वास्तव में यह ही अपने को सोऽहम् घोषित करने का सच्चा अधिकारी होता है ।

मूल द्वारिका की सृष्टि और विनाश

(एकता के देवदूत : शंकराचार्य, पृष्ठ 213 से साभार अदधृत)

प्राचीन काल की बात है, एक बार यदुकुल के यादवों की सभा में महर्षि गार्ग्य आये हुये थे वहीं उनके साले ने उन्हें नपुंसक कह दिया । जिसे सुनकर सभी सभासद हंस पड़े, जिससे कुपित होकर महर्षि गार्ग्य समुद्र के दक्षिण तट पर तपस्या करने लगे - एक ऐसे पुत्र की कामना से जो उन पर हंसने वाले यादवों का सर्वनाश कर सके। बारह वर्ष की घोर तपस्या के फलस्वरूप आशुतोष शंकर से अभीष्ट वर पाकर एक पुत्र की उन्हें प्राप्ति हुई । जिसका नाम उन्होंने कालयवन रखा । बड़े होने पर कालयवन ने नारद मुनि से पूछा कि 'मुनिवर आप तो सर्वत्र विचरण करते रहते हैं । क्या बताने की कृपा करेंगे कि कौन - कौन से बलवान राजा है" तो नारद जी ने यदुकुल को ही बता दिया । कालयवन को यादवों द्वारा अपने पिता का अपमान ज्ञात था । उसने तुरन्त सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण कर दिया । देवकी नन्दन भगवान कृष्ण ने विचार किया कि इस समय मगध नरेश जरासन्ध भी हमारे विरोधी हैं, अगर हम कालयवन से लड़ते हैं, और यदि जरासन्ध भी मौके का लाभ उठाकर हमसे लड़ने आ जाता है, तो कालयवन हमें पराजित कर देगा ।

ऐसी गंभीर परिस्थिति में उन्हें एक उपाय सूझा कि एक ऐसे नगर का निर्माण कराया जाय जहाँ सुरक्षित रहते यादव सेना आक्रामक राजा कालयवन को पराजित कर सके । ऐसा सोचकर श्रीकृष्ण ने समुद्र से बारह योजन भूमि मांगी और उसे पाकर वहाँ एक नगरी का निर्माण किया जिसका नाम द्वारिकापुरी रखा गया । उधर अपने

सैन्य बल सहित यवनराज कालयवन के मथुरा के समीप आने के पूर्व ही सम्पूर्ण मथुरावासियों को कृष्ण जी चुपचाप बिना शत्रुओं को पता लगे द्वारिका ले आये। और फिर स्वयं मथुरा अकेले लौट आये। कालयवन की सेना ने जब मथुरा की घेराबन्दी कर डाली तो मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण नगर से बाहर आ गये। श्रीकृष्ण को शस्त्र-विहीन देखकर कालयवन अकेला ही उन्हें मारने को दौड़ पड़ा। कालयवन को अपने पास आते देख श्रीकृष्ण पास ही में जो एक गहन गुफा थी उसमें घुस गये। वहाँ महाबली राजा मुचुकुन्द गहरी नींद में सो रहा था। कालयवन भी श्रीकृष्ण का पीछा करते हुये उस गहन गुफा में घुस आया। वहाँ कालयवन ने सोते राजा मुचुकुन्द को श्रीकृष्ण समझ बैठने में गलती कर दी और उन्हें कसकर एक लात जड़कर युद्ध को ललकारा। राजा मुचुकुन्द जागते ही सब माजरा समझ बैठा। उसके क्रोध की सीमा न रही। राजा मुचुकुन्द ने कालयवन को अपने क्रोध से भस्म कर दिया। यदुवंशियों पर आया भयंकर संकट समाप्त हो गया। **इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान ने एक अजेय नगरी द्वारिका पुरी बसाई।**

इस संदर्भ में एक विचित्र बात यह है कि बाद में श्रीकृष्ण का जरासन्ध से मथुरा में युद्ध हुआ था और वे उस युद्ध में मथुरा की रणभूमि छोड़कर द्वारिका पहुँच गये थे। वहाँ के राजा के रूप में **द्वारिकाधीश** कहलाये। पर द्वारिकाधीश नाम से उनका मन्दिर मथुरा में है जबकि वह द्वारिका में होना चाहिये था और **रणछोड़दास** नाम से उनका मंदिर मथुरा के स्थान पर द्वारिका में स्थित है।

मौर्य साम्राज्य

महामात्य वयोवृद्ध **चाणक्य** मृत्यु शैया पर पड़े थे। उस समय सम्राट पद पर **चन्द्रगुप्त मौर्य** का पुत्र **बिन्दुसार** आसीन था। उसके सिंहासन पर बिराजते ही चाणक्य ने पूर्व से पश्चिम तक की समस्त भूमि का शासन-तंत्र फिर सुव्यवस्थित कर दिया था। सोलह जनपदों के विद्रोह को कुचलकर दक्षिण और उत्तर भारत को भी एक ही सत्ता के हाथ में कर दिया था। बिंदुसार अमित्रघात् कहलाता था। उसकी राजधानी में रहकर राजसभा में पश्चिमी एशिया के राष्ट्र **सीरिया फिलोडेल्कस** के सम्राट **एन्टिओकस** प्रथम का राजदूत **डेईमेक्स** तथा प्राचीन मिस्र के सम्राट **टालेमी फिलाडेल्कस** का राजदूत **डायोनिसयस** रहता था।

वैशाली का प्रजातंत्र

अब से 2474 वर्ष हुए जबकि **वैशाली के संघ राज्य,** जनता के पंचायती राज्य की ध्वजा अवनत हुई, और तबसे निरंकुश रजुल्ले सैकड़ों वर्षो तक स्वतन्त्रता की भूमि पर मनमानी करते रहे। दूसरों की क्या चर्चा की जाए स्वयं वैशाली वासी भी भूल गए कि एक समय ऐसा भी था, जब उनकी इस गंगा और **मही** (गंडक) नदियों द्वारा सिंचित बज्जी भूमि में किसी राजा का शासन नहीं था, जनता के 7777 प्रतिनिधियों सारा राजकाज चलाते थे और न्याय का इतना ध्यान था कि अपने समय के और सर्वदा के अद्वितीय **महामानव बुद्ध** ने अपने मुख से इनकी प्रशंसा की थी। गंगा पार **रजुल्ला अजातशत्रु** वज्जी की समृद्ध भूमि को आत्मसात करने को लालायित थे। उन्होंने एक दो बार उस पर अधिकार करने का प्रयत्न भी किया पर उनकी सदा जबरदस्त हार ही हुई। इस संघ राज्य के बारे में **दीर्घनिकास की अट्ठकथा** में वर्णित है - **"एक नदी के पास आधे योजन में अजातशत्रु का राज्य था और आधे योजन में लिच्छवियों का ....**। वहाँ पर्वत के नीचे से नदी तट पर बहुमूल्य सुगन्धित माल उतरता था। क्या वैभव था उस संघ राज्य का और किस सुख और सम्पन्नता में वहाँ के नागरिकों का जीवन गुजरता था ?

बौद्ध धर्म की सफलता के कारण

1. **भगवान बुद्ध** का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था। उनकी बाणी में माधुर्य, मुखमण्डल पर अदभुत तेज

और हृदय में अपार करुणा थी । उनका व्यवहार बड़ा स्नेहपूर्ण था ।

2. गौतम बुद्ध का धर्म अत्यंत सरल, उदार और सुबोध था । इसमें न वैदिक यज्ञ-धर्म की जटिलता थी, और न उपनिषदों के दर्शन की दुर्बोधता और न जैन-धर्म की कष्टकर यातनाएँ ।

3. भगवान बुद्ध ने जिस संघ की स्थापना की, उसने धर्म के प्रचार में अधिक सहायता दी । संघ ने संगठित रूप से समाज के सामने अपने सदाचार, अध्ययनशीलता और अध्यवसाय का उदाहरण रखा । इससे जनता की भिक्षु और धर्म पर श्रद्धा हुई । बुद्ध के समान उनके अनुयायी भिक्षु भी वर्षाकाल छोड़कर वर्ष के शेष मासों में धर्म-प्रचार करते रहते थे ।

4. भगवान बुद्ध और उनके साथियों ने धर्म प्रचार में क्लिष्ट संस्कृत भाषा का प्रयोग न कर लोकभाषा पाली का प्रयोग किया ।

5. बौद्ध-धर्म का उदय ऐसे प्रदेश में हुआ था जहाँ वैदिक धर्म अधिक प्रबल नहीं था । इस प्रदेश में आर्यसंस्कृति की जड़ें मजबूती से नहीं जम पाई थीं । इसलिये वैदिक धर्म का विरोध करने वाले बौद्ध और जैन धर्म यहाँ शीघ्र ही लोकप्रिय हो गये ।

6. गौतम बुद्ध का जन्म शाक्य राजवंश में हुआ था । इसलिये वह पूर्वी भारत के तत्कालीन राजपरिवारों से भली-भांति परिचित थे । इस कारण उन्हें मगध, कोसल, वैशाली तथा अन्य गणराज्यों के गण प्रमुखों से पूर्ण सहयोग प्राप्त हो सका । व्यापारी वर्गों ने भी पूरा सहयोग दिया ।

बौद्ध धर्म की लोकप्रियता

1. बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का एक कारण राजकीय संरक्षण था । बौद्ध-धर्म को भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् भी बराबर राजकीय संरक्षण और सहायता मिलती रही । अशोक के शासनकाल में संघ को प्रचुर आर्थिक सहायता मिलती थी । अशोक ने बौद्ध-धर्म को न केवल राजधर्म बनाया, वरन विदेशों में भी इसके प्रचार का भरसक प्रयत्न किया । अशोक का पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा धर्मप्रचारक होकर लंका गये और अशोक के बाद बौद्ध-धर्म की ख्याति को बढ़ाया ।

2. बौर्द्ध-धर्म की सफलता का सबसे बड़ा कारण इसकी सामाजिक अनुकूलता थी । इस धर्म में लचीलापन इतना अधिक था कि यह धर्म अपने को हर प्रदेश में सामाजिक परिस्थिति के अनुकूल बना लेता था, इसी कारण यह चीन, जापान, बर्मा, लंका तथा अन्यान्य प्रदेशों में जनता द्वारा सुगमता पूर्वक स्वीकार कर लिया गया ।

बुद्ध का गण-संस्था के प्रति अगाध प्रेम था इसी से 483 ईसा पूर्व बैशाख मास में उन्होंने अन्तिम बार वैशाली को छोड़ा, तो एक बार फिर उसी वीतराग (बुद्ध का एक नाम) ने अपने सारे शरीर को घुमाकर (नागावलोकन करके) वैशाली, को जी भरकर देख अपने प्रिय शिष्य से कहा "आनन्द । रमणीय है वैशाली, रमणीय है उसका उदयन-चैत्य, गौतमकचैत्य, सप्ताम्रक-चैत्य, बहुपुत्रक चैत्य"। ये चारों चैत्य वैशाली नगर-द्वार के बाहर क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशाओं में देवस्थान तथा वनपुष्करणी सहित रमणीय भू भाग थे ।

वैशालीवासी लिच्छवि भगवान (तथागत) के दर्शनार्थ वैशाली नगरी से कुछ दूर दक्षिण में अवस्थित

अम्बपाली-बन में पहुँचे, उन्हें आते देख बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा था - "देखो लिच्छवियों की परिषद को, इस लिच्छवि परिषद को त्रायास्त्रिणं (देवताओं की) परिषद समझो (त्रायस्त्रिणं इन्द्रलोक के देवता माने गये हैं)।" बुद्ध ने वैशालीवासियों की उपमा उनसे दी थी, यह प्रकट करता है कि तथागत् के भाव इस भूमि (वैशाली) के निवासियों के प्रति कैसे थे । एक बात बुद्ध के बारे में विचलित करती है, कहते हैं कि बुद्ध ने "अट्ठकथा" और "ललित विस्तार" में स्वयं कहा है कि बुद्ध सदा द्विज परिवारों में जन्म लेते है । यह कहाँ तक सच है या उनके नाम से बाद में द्विजों द्वारा रोपित है पता लगाना बौद्ध साहित्य के विद्वानों का कर्तव्य है ।

वैशालीवासियों के निम्न सात गुण

1. वैशाली के प्रजातंत्री सभा में बहुमत से निर्णय करके किसी काम को करते थे ।
2. वह सर्वसम्मति से काम करते, साथ-साथ उठते-बैठते थे ।
3. अवैधानिक या वज्जिधर्म (वैशाली के कानून) के विरुद्ध कोई कार्य न करते थे ।
4. अपने वृद्धों का सम्मान-सत्कार करते, उनकी बात पर कान देते थे ।
5. स्त्रियों, कन्याओं के साथ सद्व्यवहार करते थे ।
6. नगर के भीतर बाहर बने चैत्यों (देवस्थानों) का सत्कार-सम्मान करते और उनके लिये प्रदत्त धन-सम्पदा आदि को उनसे छीनतें न थे ।
7. धर्माचार्यो (अर्हतों) की रक्षा करते और इस बात का ध्यान रखते कि वे सुख-शान्ति से जीवन बिता सकें।

इनमें से पहले तीन **जनतांत्रिक व्यवस्था के मूलमन्त्र** हैं । वृद्धों और स्त्रियों के लिए सम्मान भाव उनकी उच्च **संस्कृति** का द्योतक है तथा अन्तिम दो बातें धर्म के प्रति लिच्छवियों की **उदारता** को प्रकट करती हैं । गणों की सर्वोपरि शासन-सभा या पार्लियामेन्ट को संस्था कहा गया था और जहाँ संस्था की बैठक हुआ करती, उसे **संस्थागार (संथागार)** कहा जाता था । इन **संस्थागारों** (संथागारों) के प्रशिक्षित प्रहरी संभवतः बाद में **साइथवार** या **सैथवार** जातिबोधक नाम से जाने गये । कुरमियों की यह उपजाति पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी उत्तरी बिहार में आज भी बड़ी सम्पन्न और सुशिक्षित मानी जाती है ।

बौद्ध परम्परा की रामकथा

बौद्धों की धार्मिक पुस्तक में **"दशरथ जातक"** वाराणसी के राजा दशरथ और उनके परिवार की कथा है जो परम्परागत राम कथा से काफी भिन्न है । इस कथा को न तो संस्कृत के **महाकवि अश्वघोष** ने अपने महाकाव्य **"बुद्ध चरितम"** में स्वीकार किया है और न ही **स्वामी बिमलानंद सरस्वती** ने अपने वृहद महाकाव्य **"बोधायन"** में जिसे बौद्ध साहित्य के विद्वान बुद्ध चरित और बौद्धधर्म का विश्वकोश कहते हैं । कई बौद्ध विद्वानों ने इसे कपोल-कल्पित घोषित किया है ।

भदंत आनन्द कौशल्यायन द्वारा पाली से हिन्दी में अनूदित संपूर्ण जातक साहित्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित हुआ है । उसके चौथे खंड में 461 वीं कथा के रूप में **"दशरथ जातक"** संग्रहीत हैं जो पिता की मृत्यु के शोकाकुल एक गृहस्थ के परितोष के लिये **शास्ता** (भगवान बुद्ध) के मुँह से कहलायी गयी है।

पितृ-शोक से विह्वल गृहस्थ यह कथा सुनकर आश्वस्त हो गया, तब शास्ता (बुद्ध) ने कहा," उस समय दशरथ महाराज शुद्धोदन, माता (पहली पटरानी) महामाया, सीता राहुल की मां (यशोधरा), भरत आनन्द, लक्ष्मण सारिपुत्र था और रामपंडित तो मैं ही था ।" उपर्युक्त अंश "दशरथ जातक" कथा का संक्षिप्त रूप है । उसकी बाल्मीकि रामायण से भिन्नता जहाँ उजागर है, वही दो बातें विचारणीय है । एक जातक रचनाकार की मंशा पौराणिक राम की अवहेलना या अवमानना करने की नहीं थी । उसने तो गौतम को राम के अवतार के रूप में पेश किया था। राम को बोधिसत्व के रूप में दर्शाया गया - अर्थात् बुद्ध का रूप धारण किया जो बौद्धमत के संस्थापक थे और जिन्होंने अंतिम सत्य की खोज करते हुए परिनिर्वाण (ईसा से 501 वर्ष पूर्व) प्राप्त किया । दशरथ जातक में राम और लंका के बारे में कोई चर्चा नहीं है ।

हर्षवर्धन काल में कुटुम्बी या कणबी जाति

इतिहासकारों का मत है कि सन् 606 ई0 में महाराज हर्षवर्धन सिंहासनारूढ़ हुये थे, उनके राजकवि बाणभट्ट ने अपने "हर्ष चरित" नामक ग्रन्थ के सातवें उच्छ्वास में विन्ध्याटवी के वर्णन के प्रसंग में लिखा है-

"प्रतिवेश्यं विषय वासिना नैकटिक कुटुम्बिक लोकेन"

पड़ोस प्रदेश में रहने वाली निकटवासी कुटुम्बिक लोग सब ओर से जंगल में प्रवेश कर रहे थे । यहाँ कुटुम्बिक का कुटुम्बी भी अर्थ हो सकता है, पर महाकवि बाणभट्ट के वर्णन में यह परिभाषित ज्ञात होता है, जिसका अर्थ कणबी जाति है । (डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, "हर्षचरित" का एक सांस्कृतिक अध्ययन")।

जैन परम्परा में रामकथा

जैन परम्परा में राम पूर्व इतिहास के 63 अति सम्मानित महापुरुषों में से एक हैं । इन महापुरुषों में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवती, नौ बालभद्र, नौ नारायण और नौ प्रति नारायण भी शामिल हैं । राम आठवें बालभद्र है । लक्ष्मण आठवें नारायण और रावण आठवें प्रति नारायण हैं । इस परम्परा से रामचन्द्र जी इक्ष्वाकु के वंशज हैं । यानी वे प्राचीन भारत के सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं । उन्होंने राजपाट और सांसारिक जीवन त्यागा और आदर्श योगी बने । इससे उन्हें कवल जनम मिला और वे अरहत-कवलिन अर्थात् सम्पूर्ण व्यक्ति-ईश्वर बने जिससे अन्ततः उन्हें निर्वाण या मोक्ष प्राप्त हुआ । क्योंकि मुनि को पद्म या परम् मुनीश्वर भी कहते हैं, इसलिये जैनों की रामकथा से संबंधित जो पौराणिक किस्से हैं, उन्हें पद्म पुराण या पद्म चरित्र (अपभ्रंश, पाम-चरु और प्राकृत पाम-चर्यम में पढ़िए)।

ब्राह्मण और जैन परम्पराओं में राम-कथा

1. राम तीर्थंकर ऋषभदेव के सीधे वंशज है । इन्हें इक्छवाकु के नाम से भी माना जाता है । इन्होंने ही अयोध्या नगर और राज्य की नींव रखी । भारत क्षेत्र के पहले चक्रवर्ती भरत इनके बड़े पुत्र थे ।

2. राम सहित कथा के सभी प्रमुख पात्र जैन धर्म के अनुयायी थे ।

3. राम ने कभी शिकार नहीं खेला और न वे मांसाहारी थे और न मदिरापान करते थे ।

4. रावण और उनके साथी अमानवीय राक्षस नहीं थे बल्कि वे सभ्य थे विद्याधर नस्ल के राक्षस कुनबे के

थे । इसी तरह हनुमान, बालि, सुग्रीव, अंगद नील आदि भी बंदर जाति के न थे । वे भी विद्याधर हैं और "वानर" उनका निशान है । वे भी जैन मत के अनुयायी थे । हनुमान, नील, महानील, तथा रावण के पुत्र मेघनाद ने दुनिया त्यागी, मुनि बने और मोक्ष प्राप्त किया ।

5. रावण का वध लक्ष्मण ने किया था, राम ने नहीं ।

6. रावण की पत्नी मंदोदरी एक पवित्र महिला थी जिसका सती के रूप में सम्मान किया जाता है ।

7. 16 महासतियों में से एक सीता, मंदोदरी-रावण से उत्पन्न थी, जिनका संयोगवश मिथिला में जनक ने पालन-पोषण किया था ।

8. सीता के स्वयंबर का दृश्य भी भिन्न है ।

9. बनवास के दौरान राम और लक्ष्मण ने कई विवाह किये ।

10. रणभूमि में इंद्रजीत की शक्ति से घायल होने वाले लक्ष्मण का राजकुमारी विशाला ने उपचार किया था ।

11. हनुमान ने विभीषण से भेंट करके उन्हें राम के खेमें में खींचा ।

12. चंद्रहास की तलवार का किस्सा और गलती से शंबूक का लक्ष्मण के हाथों वध ही राम रावण का युद्ध का कारण बना । शंबूक रावण की बहिन चन्द्रनखा का पुत्र था ।

13. राम द्वारा सीता को घर से निकालने का कारण लव--कुश का जन्म, सीता की राम से भेंट, अग्नि परीक्षा, सीता तपस्या, मृत्यु पश्चात् सीता का स्वर्ग में पैदा होना आदि दृश्य भी भिन्न हैं ।

14. लव-कुश के राम से युद्ध और मिलाप के दृश्य भी भिन्न हैं ।

15. रावण की पात्रता के अच्छे पहलुओं को भी दर्शाया गया है ।

जैन तीर्थंकार महावीर

महावीर का जन्म ईसा पूर्व 600 वर्ष पहिले वैशाली के निकट कुण्डग्राम में हुआ था । इनके पिता का नाम सिद्धार्थ था वे लिच्छवि क्षत्रिय और कुण्डग्राम के ज्ञातृकों के गणमुख्य थे । इनकी माता त्रिशला वैशाली के गुणमुख्य राजा चेटक की बहिन थी । महावीर के बाल्यकाल का नाम वर्धमान था। उनका राजकुमारी यशोदा से विवाह हुआ था । इस विवाह से महावीर की अणोज्जा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। महावीर अपने भाई नन्दिवर्द्धन की अनुमति से 30 वर्ष की आयु में विरक्त हुये थे । उन्होंने 13 वर्ष तक गंभीर चिन्तन एवं घोर तपस्या की। और इतना करने के बाद ही जम्भिका ग्राम के पास शाल वृक्ष के नीचे उन्हें "कैवल्य" ज्ञान की प्राप्त हुई । उस समय से ही वे अर्हत्-जिन, केवलिन आदि नामों से विख्यात हो गये । जैन धर्म में ज्ञान प्राप्त महात्माओं को "तीर्थंकर" गुरु या पथ-प्रदर्शक कहा गया है । कुल 24 तीर्थंकर हुये, जिनमें ऋषभदेव प्रथम थे । 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे जिनकी ऐतिहासिकता सभी विद्वान मानते है, वे महावीर से लगभग 250 वर्ष पूर्व जन्मे थे ।

ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भगवान महावीर अपने ज्ञान और अनुभव का प्रचार उत्तर भारत में करते रहे। उनके प्रचार में अधिकांशतः बज्जि, अंग, मगध, राठ, सुह्य, मल्ल, कौसल, काशी आदि जनपदीय गणराज्य ही थे। उन्होंने प्रचार किया। वे बुद्ध से आयु में बड़े थे। उनका बहत्तर वर्ष की अवस्था में मल्लों की राजधानी पावापुरी में निर्वाण हुआ। महावीर जी ने प्राचीन मत को संशोधित करके वर्तमान जैन-धर्म का रूप दिया।

महावीर ने सत्य के अनुसंधान में वेदों के प्रमाण को नही माना। उन्होंने अर्हतों (पूर्व जैन आचार्यों) के कैवल्य ज्ञान और उसके वचनों को आधारभूत सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया। इन्हीं बचनों से जैन सम्प्रदाय के आगम का निर्माण हुआ। जैनियों में आगम का वही आदर है जो वेदों का हिन्दुओं की दृष्टि में। जैनियों का मार्ग मध्यमार्ग है। उन्होंने आत्मवादियों और नास्तिकों के एकान्तवादी मतों को अस्वीकार किया। जैनियों के विचार में बौद्धिक उदारता है। वेदों के प्रमाण को न मानते हुये भी महावीर किन्हीं अंशों में आत्मवादी ही थे। वे आत्मा में विश्वास करते हुये बहुत सी जड़ वस्तुओं में भी जीव का अस्तित्व मानते थे। वे प्रकृति और सृष्टि को अनादि मानते थे और उसके संचालन के लिए किसी ईश्वर की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते थे। उनकी दृष्टि में प्रकृति और सृष्टि का एक प्रवाह है। इन दोनों को प्रवहमान रखने के लिए किसी ईश्वरीय सत्ता की जरूरत है ही नहीं। आत्मा और कर्मों के अनुसार व्यक्ति संसार चक्र में फंसा रहता है और कैवल्य ज्ञान प्राप्त करके ही कोई मोक्ष प्राप्त करता है।

उत्तरवैदिक काल का साहित्य

आर्य लोगों ने अपने प्रबुद्धवर्ग के बोल-चाल की भाषा संस्कृत में अपना साहित्य रचा। वैदिक संस्कृति के पश्चात् लौकिक संस्कृत फैली। जनसंख्या में बढ़ोत्तरी हो रही थी, ज्यादातर लोग अन्यान्य व्यवसायों को मनुष्य जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये खोज कर अपनाते जा रहे थे। साधारण जनता के प्रयोग के लिये एक नई भाषा विकसित हुई जिसे प्राकृत नाम से जाना गया। प्राकृत भाषाओं में सर्वाधिक लोकप्रियता पाली को प्राप्त हुई, जोकि उस काल की आम जनता की भाषा बन गयी थी। पाली संस्कृति से काफी मिलती जुलती है इसलिये उसे संस्कृत का सरल रूप भी कह सकते हैं। पर पाली भाषा के विद्वानों का दावा है कि प्राकृत भाषा में हेर-फेर करके संस्कृत भाषा बाद में बनी। इस मुद्दे पर बिस्तार से इस पुस्तक के पूर्व पृष्ठों में वर्णन दिया जा चुका है।

महाभारत काल से प्राग्बौद्ध काल तक

इस काल का इतिहास इतना कम उपलब्ध है कि उसे अन्धकारमय कहना अनुचित न होगा। बौद्ध-धर्म देश में फैलने पर वैदिक, उत्तर वैदिक साहित्य एवं ऐतिहासिक ग्रंथ रख-रखाव ठीक से न हो पाने के कारण नष्ट होने सें बच न पाये होंगे। फिर बौद्ध धर्म को इस देश से नष्ट करने के तथा ब्राह्मण धर्म के पुनर्स्थापन के लिये बौद्ध भिक्षुओं को मारा गया, बौद्ध विहार नष्ट किये गये, नालन्दा जैसे प्रख्यात विश्वविद्यालयों को नष्ट कर विशाल पुस्तकालय को यवन आक्रमणकारियों ने भी आग लगा दी थी, जोकि कई मास तक जलता रहा। इन सब मानवीय और प्राकृतिक प्रकोपों से इस युग की इतिहास सामग्री कैसे बच सकी होगी और वह भी विशेष करके मैदानी भागों में इसलिये राहुल सांस्कृत्यायन को अपनी लद्दाख और तिब्बत यात्रा पर निकलना पड़ा, जिस में बहुत ही मूल्यवान, धार्मिक आध्यात्मिक साहित्य एवं ऐतिहासिक पुस्तकें, पाण्डुलिपियों तथा अन्यान्य सामग्रियां प्राप्त हुई। अतः इस काल के इतिहास का तारतम्य हमें महाभारत कालीन गणराज्यों के तथा बौद्धकालीन गणराज्यों के उपलब्ध इतिहास से ही स्थिर करना होगा। राहुल जी द्वारा एकत्रित और तिब्बत यात्रा से लाये हुये धार्मिक ग्रंथों और अन्यान्य पाण्डुलिपियों के गूढ़ अध्ययन से भावी इतिहासकार इस काल के बारे में काफी कुछ कह सकेंगे।

बौद्ध ग्रन्थों में जिन सोलह राज्यों का उल्लेख है वे पाली भाषा में इस प्रकार हैं :
(1) अंग (2) मगध (3) कासी (4) कोसल (5) बज्जी (6) मल्ल (7) चेती (8) कुरु (9) पांचाल (10) मच्छा (11) सूरसेन (12) अल्लक (13) अवन्ती (14) गंधार (15) वंसा और (16) कम्बोज ।

महाभारत काल में **मेकल, द्रविड़, लाठ, पुण्ड्र, कण्वीशिरस, दरद, वत्स, चौर, शबर, बर्बर, किरात, यवन,** तथा अन्य अनेक जातियों का वर्णन **"दि वाइल्ड ट्राइब्स इन इंडियन हिस्ट्री, पृष्ठ 14 में"** विस्तार से दिया गया है । पहले ये जातियाँ क्षत्रिय थीं, परन्तु ब्राह्मणों के क्रोधवश वे सब शूद्र करार दे दी गई ।

ऐसी ही एक अविश्वसनीय कथा हमारे धर्म ग्रन्थों में अभिहित है कि इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करके परशुराम ने अश्वमेघ यज्ञ किया और उसमें सारी पृथ्वी महर्षि कश्यप को दक्षिणा में दे दी । कश्यप (अर्थात प्रजापति) ने बचे-खुचे क्षत्रियों की प्राण-रक्षा के लिये **स्रुक** और **प्रग्रह** लिये हुये हाथ से इशारे से परशुराम से कहा : **"अब आप जाकर दक्षिण समुद्र (वर्तमान केरल प्रदेश) के किनारे वास कीजिये"** ।

ऐसा कहा जाता है कि वहाँ जाकर **परशुराम** ने **सूर्पारक** बसाया । कश्यप ने पृथ्वी का राज्य ब्राह्मणों को देकर वन गमन किया । इस तरह क्षत्रियों के न रहने पर पृथ्वी रसातल को जाने लगी । तब **प्रजापति कश्यप** ने पृथ्वी को उरु (जांघ) पकड़कर रसातल जाने से थाम लिया । तभी से पृथ्वी का एक अन्य नाम उर्वी पड़ गया ।

"संतकाव्य के विकास में वर्ण, जाति और वर्ग की भूमिका" साहित्य भंडार, इलाहाबाद 1989" में **श्रीकृष्ण कुमार सिंह** का कथन है - "वस्तुतः वर्ण-व्यवस्था का उदय दास-प्रथा वाले भारतीय समाज में हुआ । **के. दामोदरन** (**भारतीय चिन्तन परम्परा,** पृ० 64, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1979) ने लिखा है **"चातुर्वर्ण्य,"** अथवा समाज का चार वर्णों में विभाजन, भारतीय दास-प्रथा का एक विशिष्ट रूप था ।

श्रम-विभाजन से पूर्व, भारतीय समाज का आरम्भिक अवस्था में कोई वर्ण-विभाजन न था । महाभारत के **"शान्तिपर्व"** में भीष्म का यह कथन इस बात का प्रमाण है :-

"न वै राज्यम न राजासीन्न च दण्डोन विण्डना :
धर्मेणैव प्रजा सर्वा रक्षान्तिस्म परस्परम् ।"

अर्थात :- उस युग में न तो राज्य था और न राजा, न दंड-विधान था और न दंड देने वाला । धर्म के आधार पर सभी मनुष्य एक दूसरे की रक्षा करते थे ।

"वर्ण" का सर्वप्रथम उल्लेख **"ऋग्वेद"** में मिलता है । "ऋग्वेद के आरम्भिक मंडलों में तीन वर्णों का उल्लेख है । **ब्राह्मण,** राजन्य और **विश** अर्थात **वैश्य** । किन्तु ऋग्वेद के आखिरी हिस्से अर्थात **"पुरुष सूक्त"** के एक श्लोक (10,90) में चार वर्णों और उनकी उत्पति कैसे हुई उसका उल्लेख है जोकि वैदिक पूर्व उल्लिखित नहीं है । वह **क्षेपक** करके **उत्तर वैदिक काल में खोटी नियत वाले ब्राह्मणों का निन्दनीय कृत्य है ।** उसे शीघ्र ही ऋग्वेद से हटाया जाय, यह न केवल भारतीय समाज-हित में होगा अपितु वेदों की गरिमा पर आँच आने से भी रोक सकेगा । अन्यथा **वेद** या **"पुरुष सूक्त"** जैसे मंत्रों का आश्रय लेकर कोई भी आने वाले जमाने में हिन्दू समाज के किसी वर्ग पर सामाजिक दुर्व्यवहार कर सकेगा तब तक अनेक कबीर जन्मेंगे, गुरु नानक जन्मेंगे और वे धर्मग्रन्थों को तोड़-मरोड़कर अर्थ के अनर्थ करने वालों से बार-बार पूछते रहेंगे :-

"बाम्हन है तू बाम्हनि जाया,
और राह से क्यों नहीं आया?"

"पंडित बोरो पत्तरा, काज़ी छोड़ कुरान,
वह तारीख बताइदे, न जमीं-आसमान?"

इस वर्ग को **स्वामी विवेकानंद** ने भी चेतावनी दी है और हमारे ज़माने के प्रसिद्ध कवि और सहित्यकार **श्री गिरजाकुमार**

माथुर ने भी जन-जागरण की चुनौती की ओर इंगित किया है :-

ये शोषण के सब रक्त यंत्र,
तेरे ही अन्तिम काल बने,
जो जाल बिछाये थे तूने,
तेरी फांसी के जाल बने ।
बढ़ रहे चरण पर कोटि चरण,
अब क्रान्ति सैन्य दल सजता है ।
प्रतिक्षण उठती जनवाणी का,
बादल दल आज गरजता है ।

प्रायः सभी विद्वानों का मत है कि प्रारम्भ में ऊँच-नीच की भावना न थी । अस्पर्श्यता का सारा ढकोसला काफी बाद में खड़ा किया गया, जब समाज कृषि प्रधान होने के बाद वर्णों में बँट गया और ऊपर के वर्ण अपने लिये तरह-तरह की सुविधाएं और विशेषाधिकार मांगने लगे । प्रसिद्ध समाजशास्त्री स्व० प्रो० गोविन्द सदाशिव धुर्ये के अनुसार, "ऋग्वेद में वर्ण शब्द किसी वर्ग के लिये नहीं लागू किया गया है । वहाँ तो दास वर्ग के विपरीत आर्य वर्ण का ही उल्लेख है । वर्ण का अर्थ रंग और इसी अर्थ में इस शब्द को आर्य (गौर वर्ण) तथा दास (श्याम रंग) वैपरीत्य बताने में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है ।"

वृन्दावन की खोज

निमाई नाम के कृष्ण के परम भक्त नदिया, प्राचीन नाम नवद्वीप (बंगाल) में 1480 ई० में जन्मे थे। प्रारंभ में ही उनमें असीम कृष्ण-भक्ति देखी गयी और उसी के कारण वे चारों ओर प्रसिद्ध हो गये । जहाँ भी वे कीर्तन भजन करते हुये जाते लोगों की भीड़ उनके साथ हो लेती । उनके भक्तों में एक शिष्य हरिदास ठाकुर भी थे । वे जन्म से मुसलमान थे । पर बाद में उन्होंने चैतन्य महाप्रभु से वैष्णव धर्म ग्रहण किया । पुरी में उनकी समाधि है ।

दूरी को देखते हुये बड़ा मना करने पर भी वे (चैतन्य महाप्रभु) श्री कृष्ण भगवान की जन्मभूमि मथुरा को उसके दर्शनार्थ अपने एक-दो साथियों के साथ नवद्वीप से चल पड़े । रास्ते भर निमाई बड़े भाव मग्न रहे। ज्यों-ज्यों श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा निकट आती जाती थी, त्यों-त्यों महाप्रभु का आनन्दोल्लास बढ़ता जाता था। ब्रज में प्रवेश करते ही उस की धूलि को माथे पर चढ़ा कर वे समाधिलीन हो गये । चैतन्य के समाकालीन सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का जमाना था ।

यह बात सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशक की है । ब्रजभूमि (मथुरा जनपद) उस समय खंडहरों से भरी हुई थी । श्रीकृष्ण की स्मृतियों से सम्बद्ध स्थानों का पता बतलाने वाला भी तब कोई न बचा था । श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने भावावेश में जिस-जिस स्थान को अपनी अगाध प्रेमानुभूति से जो मान लिया वही ब्रजवालों ने भी स्वीकार कर लिया । श्री चैतन्य ने अपनी, अनुभूति से कहा : "यह जमुना तट पर विश्रामघाट है, तीर्थ, यह विष्णु , भूपेश्वर और कर्णेश्वर घाट है ।" मधुबन, तालबन, कदम्बबन, आदि श्री कृष्ण की प्रसिद्ध लीला-स्थलियों को भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहचाना । जिस स्थान को चैतन्य महाप्रभु ने अपने आत्म-ज्ञान से वृन्दावन नाम दिया गया होगा ब्रज के महानकवि रसखान तक आते-आते वहाँ के पेड़-पौधे भी बदल गये होंगे जिनका उल्लेख उनके काव्य में है । यह पढ़कर आश्चर्य न होना चाहिये कि आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व ही ब्रजभूमि में कृष्ण लीला सम्बन्धी महत्वपूर्ण स्थल चैतन्य महाप्रभु की अन्तर्प्रेरणा से पहचान लिये गये थे, तब तक लोग उन

सबको भूल चुके थे । इस सम्बन्ध में तुलना कीजिये कि **कूर्मि जाति का प्राचीन इतिहास** खोज निकालना कितना कठिन है। उड़ीसा के गंजाम जिले के चिकाकोल से 10 किलोमीटर दूर समुद्र में वह स्थान स्थित है जहाँ **कूर्मावतार** का दर्शन होता है । **चैतन्य महाप्रभु** ने इस स्थान की खोज कर उसकी स्थापना की थी । आज कोई भी कुरमी विद्वान वृंदावन के धार्मिक स्थलों की ऐतिहासिक सत्यता पर चाहे प्रश्न चिह्न न लगाये पर कुरमी जातीय इतिहास जिसके साक्ष्य प्राचीनकाल में मिलते हैं, इसे स्वीकारने में आनाकानी क्यों? इसी उद्देश्य से इस प्रसंग का उल्लेख यहां किया गया ।

पुनः उपर्युक्त प्रसंग पर लौटा जाए । मथुरा-वृंदावन से लौट कर चैतन्य महाप्रभु बंगाल गये और देश के अन्य स्थानों का पर्यटन किया । उड़ीसा गये, वहाँ शकाब्द 1455 में भक्तों की अपार भीड़ भरे भगवान जगन्नाथ के मन्दिर में सहसा अदृश्यमान हो फिर कभी न दिखाई पड़े । नदिया (नवद्वीप) का यह गोरा चन्द्र दैहिक रूप से अस्त हो गया, किन्तु उनकी ख्याति और कृष्णभक्ति अमर है ।

यहाँ यह वर्णन करना असंगत न होगा कि श्रीकृष्ण की जन्मस्थली मथुरा, स्वामी दयानंद की साधना स्थली मथुरा, जैन तीर्थंकरों की दृष्टि में तीर्थों का तीर्थ मथुरा, ब्रज का हृदय मथुरा, चैतन्य महाप्रभु की श्रद्धा स्थली मथुरा-वृंदावन, कदम्ब और तमाल वृक्षों की नगरी मथुरा, महाकवि रसखान की काव्य-सृजन भूमि मथुरा, संत शिरोमणि देवरहा बाबा की प्रवचन तथा देह-त्याग-स्थली मथुरा (वृंदावन), मिष्ठान्न पेड़ों की नगरी मथुरा तथा धमार गायकी और विख्यात गायक स्वामी हरिदास की कर्मस्थली मथुरा और गये जमाने की विख्यात नौटंकी विधा की प्राचीनतम नगरी मथुरा का स्वरूप आज बदलकर कुरूपता ग्रहण करता जा रहा है । प्रसिद्ध तीर्थ स्थलों का स्वरूप बदल चुका है श्रीकृष्ण कालीन यमुना यहाँ एक गंदी सीवर धारा सी बन चुकी है । विश्रामघाट पर यमुना में स्नान करते समय जल की अस्वच्छता देखकर श्रद्धालुओं की श्रद्धा कायम नहीं रह पाती । यहाँ का धार्मिक वातावरण लोप होता जा रहा है । कृष्ण जन्मभूमि राजनीति का अड्डा बन गयी है और उसके निकट में वे सारी चीजें बिकती नजर आती हैं, जोकि तीर्थस्थलों जैसे हरिद्वार, वाराणसी, अमृतसर और जगन्नाथपुरी में वर्जित हैं । अतः मथुरा-वृन्दावन तीर्थ-स्थलों की स्वच्छता, पवित्रता एवं यात्रियों की सुविधाओं की ओर जनता और सरकार दोनों का ध्यान जाना चाहिये ।

वृन्दावन का बांके बिहारी मंदिर

चैतन्य महाप्रभु द्वारा खोजकर निकाले गये वृंदावन में बिहार पंचमी के पावन पर्व पर, पिछले वर्ष 17 दिसम्बर 1993 को भारत विख्यात **बांके बिहारी** मंदिर में बिहारी जी महाराज के **श्री विग्रह** का प्रकट्योत्सव मनाया गया था । इस दिन प्रतिवर्ष रसावतार संगीत शिरोमणि **स्वामी हरिदास** की साधना स्थली वृंदावन (किसी प्राचीन काल में तुलसीदल-पौधों का वन) का कोना-कोना कृष्णमय हो उठा था । प्रसिद्ध धर्मग्रन्थों के मर्मज्ञ और रामकथा वाचक **श्री मुरारी बापू** के अनुसार वृंदावन में वृंदा का अर्थ है तुलसी, जो आप भगवान को भोग लगाते है, तुलसी समर्पण का प्रतीक है, त्याग का प्रतीक है तुलसी कहती है कि मैं तुम्हारे आँगन में आ जाऊँ । तुम मुझे काट लो, तुम मुझे छेद डालो, उनकी माला बना लो, कुछ भी करो, मैं तुम्हारे पास रहूँगी तो तुमसे कभी-न-कभी कृष्ण की मुलाकात करा दूँगी ।" उनका पूरा वन जो है समर्पण से लबालब हरियाली से भरा है । उस भूमि का नाम है वृंदावन । वृंदावन भौगोलिक प्रदेश नहीं, हाँ धाम जरूर है । वैसे ब्रज का कोना-कोना वर्ष-पर्यन्त राधा और कृष्ण के भक्ति-रस में आकंठ अनुरक्त रहता है, किन्तु कुछ विशेष पर्व और त्यौहार ऐसे भी आते हैं जिनमें यहाँ आने वाले तीर्थयात्री या देश-विदेशी पर्यटकों को कृष्ण की वंशी और राधा के नृत्य की थिरकन का स्पंदन होने लगता है ।

बांके बिहारी जी के मन्दिर के **बिहारी जी महाराज** के **प्राकट्य** के सम्बन्ध में पौराणिक दृष्टांत है कि **ललिता सखी** के स्वरूप स्वामी हरिदास जी, तानसेन और बैजू-बावरा के संगीताचार्य, नृत्य बिहार के नृत्य निकुंज

में रसमग्न रहकर प्रिया-प्रियतम से साक्षात्कार करते हुये उन्हीं की केलियों का गान करते थे । वे लोगों को बताया करते थे कि किस प्रकार वह उनके साथ खेलते हैं, खाते हैं । सामान्य जन को भी प्रिया-प्रियतम (राधा-कृष्ण) का दर्शन लाभ हो सके, इसलिये ही जगन्नाथ महाराज एवं अन्य रसिकों की प्रार्थना पर ही उन्होंने **श्री बाँके बिहारी महाराज** के दिव्य विग्रह को निधिवन से प्रकट किया था ।

श्री बांके बिहारी जी महाराज के प्राकट्य के संबंध में वृंदावन के प्राच्य दर्शन महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के कार्यकारिणी अध्यक्ष, डा० शरण बिहारी गोस्वामी बताते हैं कि स्वामी हरिदास जी महाराज के इंगित करने पर जिस समय एक प्रकाशगुफा से बिहारी जी महाराज प्रकट हुए उस समय प्रिय-प्रियतमा मुस्करा रहे थे । उनका उज्जवलतम प्रभा सौन्दर्य जगमगा रहा था । उपस्थित दर्शकों ने जब प्रिया-प्रियतम को देखा तो आश्चर्य चकित हो गए । उसी समय स्वामी हरिदास जी ने प्रिया जी (राधा जी) से कहा कि उनके सौंदर्य को लोक सहन न कर सकेंगे अतः वे दोनों एक ही रूप में प्रकाशित होकर दर्शन दें, इन अनुरोध के बाद वे दोनों एक ही स्वरूप में प्रकाशित हुए । अतः वृन्दावन के प्रसिद्ध श्री बांके बिहारीजी महाराज के श्री विग्रह में प्रिया-प्रियतम का सम्मिलित स्वरूप और प्रकाश है । प्रिया-प्रियतम के युगल का श्री विग्रह पहले निधिवन में था बाद में समस्त 35 गोस्वामियों ने मिलकर सामूहिक रूप से बिहारी जी के मंदिर का निर्माण कराया तथा निधिवन से युगल श्री विग्रह को वर्तमान मन्दिर में प्रतिस्थापित किया गया ।

उपर्युक्त उल्लेख का एक तात्पर्य यह भी है कि चैतन्य महाप्रभु के प्रथम बार मथुरा आगमन से पूर्व वृन्दावन तथा उससे संबंधित कृष्ण-राधा क्रीड़ा स्थलों को लोग पूर्णतः भूल गये थे । यह बात ज्यादा पुरानी नहीं है लगभग 500 वर्ष पहले की है । आज लगता है कि वृन्दावन और वहाँ के प्रसिद्ध तीर्थस्थल सदैव से ज्ञात थे । **इससे प्रेरणा लेकर कुरमी जाति का इतिहास खोजने में इसके जिज्ञासु अन्वेषक लग जायें । इस जाति के अतीत तक सप्रमाण जा पहुँचेंगे ।**

प्रागैतिहासिक काल में कूर्मि-कृषक जाति

प्रसिद्ध नृतत्ववेत्ता विद्वान सर डब्लू. विलियम कुक अपनी पुस्तक "दि ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ दि नार्थ-वेस्टर्न इण्डिया" में कुरमी या कुनबी के बारे में वर्णन करते है **"एक बहुत ही महत्वपूर्ण कृषक जाति है जो कि संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में सर्वत्र बसी हुई है । इस नाम के लिये अनेक व्युत्पत्तियां बना ली हैं । कुछ की मान्यता है कि इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के "कृषि" शब्द से हुई, जिसका अर्थ है खेती कार्य, अन्य लोगों के अनुसार यह शब्द "कूर्म" से उत्पन्न है, जोकि विष्णु-अवतार का एक रूप है, कूर्म अथवा कच्छप, जिसके प्रति ऐसी मान्यता है कि उन पर पृथ्वी टिकी हुई है या अन्य खेतिहर जातियों द्वारा उसकी पूजा-उपासना की जाती है ।"**

इस संदर्भ में प्रोफेसर जे. एफ. हेविट ने कुरमी जाति का उसकी अन्य समवर्गीय जातियों सहित गूढ़ता से अध्ययन किया है, विशेष करके इनकी (कुरमियों की) प्राचीन काल में क्या सामाजिक भूमिका रही है । उनके इस शोध एवं अनुसंधान कार्य को ओरियन्टल पब्लिशर्स, दरियागंज दिल्ली ने सन् 1972 में "दि रूलिंग रेसेज ऑफ प्रीहिस्टॉरिक टाइम्स" नामक अंग्रेजी पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया । इस लेखक का मन्तव्य है कि कुरमी (Kurmis) कुरम्बस (Kurambas) कुदम्बस (Kudambas), कुदम्बीस भारत की सिंचित कृषि करने वाली महान जातियाँ थी - "were the great irrigating agricultural races of India", जो कि कुरु "Kur" (कूर्म या कच्छप) की सन्तानें हैं ।

कूर्म अथवा कश्यप का प्राचीन वाङ्मय में बहुत बड़ा महत्व है और मानवी इतिहास के अनुशीलन के समय स्थान-स्थान पर इसका बहुविधि वर्णन पाया जाता है । कूर्म-कश्यप भगवान के प्रयत्न-पुरुषार्थ से पृथ्वी को जल से निकाला गया होगा । भूतल पर सृष्टि रचना के अन्तर्गत उस पर वनस्पतियाँ, वन, पशु और अन्यान्य

जीवधारी भी बन चुके होंगे । ब्रह्मा ने दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनमें छः ऋषि थे, वे ब्रह्मा के **मानस पुत्र** कहलाये:- **मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, कृतु,** ये छः पुत्र महर्षि कहलाये और शेष चार **भृगु, वशिष्ट, दक्ष और नारद,** ये विद्वान तो थे, परन्तु ऋषि नहीं थे । ऋषि उनको कहते थे जो वेदों की ऋचाओं को सुनकर या द्रष्टव्य प्रक्रिया से ग्रहणकर उनको मानव भाषा में कह सकते थे और जो उनके सही-सही अर्थ करने में सक्षम थे । अन्य चार नारद इत्यादि देवताओं द्वारा उच्चारित ऋचाओं को सुनकर न समझ सकते थे न समझा सकते थे । ब्रह्मा ने कुछ कन्याएं भी उत्पन्न की, अन्ततोगत्वा मनुष्य समुदाय इस पृथ्वी पर अपनी दैनंदिनि आवश्यताओं की पूर्ति के लिये, विशेष करके भूख और शरीर की सुरक्षा के उपाय खोजने और जुटाने में लग गया ।

प्रारंभ में ऊबड़-खाबड़ या वनों से घिरे पृथ्वी तल को समतल सपाट-साफ बनाये बिना न अपेक्षित अन्न आदि का उत्पादन हो सकता था और न सृष्टि के बाधक विघ्न-बाधाओं से बचाव ही । ऐसी स्थिति में इस जटिल समस्या को सुलझाने का दायित्व **कूर्म-कश्यप** की सन्तति पर आ पड़ा । वे और उनकी आने वाली पीढ़ियों ने अन्ततोगत्वा पृथ्वी के भूतल को काँट-छाँट कर झाड़-झंकार से साफ समतल कर उसमें सिंचाई की समुचित व्यवस्था द्वारा कृषि को सफलतापूर्वक स्थापित किया और उसके विकास में जुट गये ।

प्रोफेसर हेविट ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में प्रागैतिहासिक काल की कुछ प्रमुख शासक जातियों का भी विस्तार से उल्लेख किया है, जो कि उस अतीत काल में भारत में तथा दक्षिण-पश्चिम एशिया एवं दक्षिण योरूप में विद्यमान थीं । इन जातियों के सम्बन्ध में प्रो. हेविट लिखते हैं, **"दूरानियन लोग** (Turanians) व्यंजन ध्वनि का प्रयोग नहीं करते हैं । अतः **फ्राइयानों** (Fryano) अवश्य दूरानियन शब्द रहा होगा तथा **वीरु-आनों** (Viru-ano) एक जाति विशेष रही होगी, जिसका इष्ट देवता वीरु है वहाँ वह हिन्दू विराट के समान ईरानी सम-देवता अवश्य रहा होगा, जो कि महाभारत काल में यमुनातट पर बसे मथुरा राज्य पर शासन करता रहा होगा । ये वैसे ही लोग है जैसे कि **कुरुमबस** (Kurumbas) शिकारियों और गड़रियों की एक जाति जो कि दक्षिण भारत में सर्वत्र फैली है । इन लोगों के इष्ट देवता जैसा कि हमें **माकेन्जी-ग्रन्थ** से विदित होता है, **वीरू-भद्रा,** अथवा कल्याणकारी **वीरू** या **लैंगिक** देवता है, और ये कबीले सामान्यतः या तो शक्ति पूजक हैं, या जननेंद्रिय सूचक प्रतीकों के उपासक हैं । वे अपने को **ईडाइयास** (Idaiayas) अथवा भेड़-रूपीय देवता **इडा** (Ida) या **ऐडा** की सन्तान घोषित करते हैं । जो कि **कुरमी** या **कुदुमबिस** नामक महान कृषक जाति के अंश में से हैं **(प्रोफेसर जी. औपर्ट- "ओरिजिनल इनहैबीटेन्टस् ऑफ भारतवर्ष,** भाग 2 पृष्ठ 237-239") । ये वे लोग हैं जोकि **वीरुपक्ष** (Viru Paksha) या वीरू पूजकों के कबीले के हैं जिनका **चूला-वग्गा** (Chula Vagga) के नाग-पूजक जातियों की सूची में नामांकन किया गया है । अंग्रेजी शब्दकोश **"The Random House Dictionary of the English language"** के सन् 1976 के कालिज संस्करण को एलाइड पब्लिशर्स लिमिटेड, दिल्ली ने प्रकाशित किया है उसमें दूरानियन (Turanian) शब्द के अर्थ दिये हैं - "Belonging or pertaining to a group of Asian peoples or languages comprising nearly all of those that are neither Indo-European, nor Semitic, Allophylian."

पाठकगण, यह जानकर आश्चर्यचकित होंगे कि महमूद गजनी के शासन काल में जो उसके सिक्के ढाले गये थे उसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग मिलता है और प्राचीनकाल में संस्कृत भाषा उस समस्त भूप्रदेश की भाषा थी जो **बाकटेरिया** (Bacteria), **बल्ख** (Balkh) अंचल, यानी अफगानिस्तान के **आक्सूस** (Oxus) तक फैला हुआ क्षेत्र था कितने लोग जानते हैं कि उस काल में मुसलमान शासकों की आक्सस और भारत में जंगी सफलताओं में तुर्क-मंगोल शक्ति सफलता के परम शिखर पर थी, जिसमें सहयोग हिन्दू अधिकारियों की कमान में भाड़े के हिन्दू सैनिकों (mercenaries) का था ।

उपर्युक्त मन्तव्य एक मुसलमान भारतीय विदुषी, **श्रीमती ताराअली बेग** ने दिल्ली के रविवारीय अंग्रेजी दैनिक **"दि टाइम्स ऑफ इंडिया"** दिनांक 30 नवम्बर 1986 में अपने लेख "Can we reverse History" में निम्नलिखित

शब्दों में प्रकट किया है

"The fact that Sanskrit was the language of Bacteria (Balkh, the territory stretching from Afghanistan to the Oxus) and even persisted in the coinage of Mahmood of Ghazni is forgotten, because he was a destroyer, which so shocked Hindu sentiments. It has now become a bitter memory. How many people know that Muslim victories in the Oxus and in India at the time of the Turko-Mongol supremacy were won with the help of Hindu mercenaries under Hindu officers.'

श्रीमती ताराअली बेग ने आगे लिखा है कि यह मोहम्मद गजनी की धन लूटने की अभिलाषा थी, मजहबी जैसा उसका ऊँचा अभिप्राय नहीं था । वह भारत में मन्दिरों पर आक्रमण करता था और सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण और लूट-खसोट का अभिप्राय केवल धन-लोलुपता और विरोधियों पर वर्चस्व स्थापित करना मात्र ही था। जिसके लिये हिन्दू उसे सदैव नफरत की निगाह से देखेंगे । उनके शब्द इस प्रकार है :-

'Mahmood of Ghazni's first coin struck in Lahore was inscribed in Sanskrit. Hindu architectural styles in Iraq and Central Asia and the city of Ghazni to embellish mosques and palaces with exquisite crafts, he found in India.

It was Mahmood of Ghazni lust for loot that lured him to temple towns where offerings and idols were rich sources of treasure. He plundered Mathura, Kannauj and Thaneswar in the year 1026, forty years before the Norman conquest of Britain, but it was the wealth of Somnath, which gave him his greatest prize and the undying hatred of Hindus to this day"

पुनश्चः प्रोफेसर हेबिट की प्रागैतिहासिक कालीन भारतीय जातियों के विषय पर लौटा जाय । शिव-लिंग से मिलते-जुलते उपर्युक्त लिंगदेव जोकि पुरुष और स्त्री सन्तानोत्पत्ति सूचक प्रतीकों के रूप में थे, और प्रोफेसर हेबिट के अनुसार प्रागैतिहासिक काल में जिन ईदाइयास (Idaiyas) नामक लोगों द्वारा पूजे जाते थे, वे कुरमी नामक महान कऽषक जाति के एक महत्वपूर्ण अंग थे । लिंगदेव की पूजा के पीछे निहित रहस्य ऐसा बताया गया है ।

लिंगदेव की पूजा

यह जो शिवलिंग मन्दिरों में देखा जाता है वह उस व्यापक, निर्विकार, निराकार, पुरुषत्व का प्रतीक है जिसकी महाशक्ति प्रकृति के रूप में सारी लीला रच रही है यह अर्घा या योनि ही प्रकृति है । न केवल पुरुषत्व सृष्टि कर सकता है और न प्रकृति पुरुषत्व । कूटस्थ है तथा प्रगृति जड़ और ज्ञान रहित । इसीलिये भगवत् गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है :-

"मम योनिर्महद ब्रह्म तस्मिन गर्भ दधाम्यहमं ।
संभवतः सर्वभूतानों ततों भवति भारत ।।"

(गीता 14/3)

भावार्थ- इसी पुरुष लिंग के द्वारा सारे भूतों की सृष्टि होती है । इतना अवश्य ध्यान में रखना चाहिऐ कि ये लिंग और योनि अस्थि, मांस, और चर्ममय सामान्य मानव के रूप में नहीं वे सर्वव्यापक के रूप में हैं ।

आर्यों में एक वंश या समुदाय नागपूजक मतावलम्बियों का भी था । चन्द्रवंश, सूर्यवंश, कूर्मवंश की तरह नागवंश भी था । नागवंशी क्षत्रिय अपनी उत्पत्ति उन्हीं नागपूजक मतावलम्बियों से मानते है । इनमें अनेक राजा हुये । आज भी प्रयाग स्थिति नागरी प्रचारिणी सभा तथा नागर गोत्र के ब्राह्मण उनकी स्मृति को जिंदा रखे हुये

हैं । इन नागवंश क्षत्रियों के गोत्रों में एक "तक्षक" गोत्र भी होता है । कुरमियों में भी नागवंशी मतावलम्बी थे । इससे यह प्रमाणित होता है प्रागैतिहासिक समय में जब कि आर्य-वंशियों में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था स्थापित नहीं हो पायी थी, तब भी कुरमी नाम से जाना-पहचाना जाने वाला हिन्दुओं में एक वर्ग विशेष मौजूद था, और प्रोफेसर जे. एफ. हेविट ने अपने शोध-ग्रंथ में उनका विस्तार से उल्लेख यत्र-तत्र किया है । जिसका विवरण पहले दिया जा चुका है, इस अभारतीय विद्वान की प्रशंसा करना चाहिये कि जिसने अपने अनुसंधान से कुरमी जनों का अस्तित्व प्रागैतिहासिक काल में भी प्रमाणित किया और वे शायद शैव थे, शिव-लिंग या लैंगिकदेव के उपासक थे और साथ ही उनमें से कुछ नागवंशी मतावलम्बी भी थे ।

सिन्धु सभ्यता में लिंगोपासना

प्राचीन मिस्र, क्रीट, सुमेर और सिन्धुघाटी की प्राचीन सभ्यताओं में जो सामान्य रूप से मिलती है, उसमें लिंगोपासना और प्रजनन सम्बन्धी रीति-रिवाजों (Fertility Cult) का प्रचार है । भाषा -विज्ञान और पुरातत्व दोनों विधाओं से ही यह प्रमाणित होता है ।

ग्रीस देश में "बैकस" मदिरा का देवता माना गया है, किन्तु उसका आदिम रूप दूसरा था । वह खेतों की कृषि-उपज का रक्षक, प्रजनन सम्बन्धी प्रक्रियाओं का देवता था । वह प्रजनक देवता वैदिक इन्द्र के समान बहुगुण सम्पन्न था । विद्वान प्रृत्सीलुस्की के अनुसार संस्कृत में "लांगल" शब्द की कोई मान्य व्युत्पत्ति नहीं है । इस शब्द का अर्थ हल और लिंग दोनों था । लिंगोपासना का जन्म खेती के तौर-तरीकों से हुआ है । इसका आधार यह विश्वास था कि प्रजनन-क्रिया से खेती की पैदावार बढ़ेगी, इसीलिये लांगल शब्द के दो अर्थ हैं जो वास्तव में सम्बद्ध हैं ।

मोहनजोदड़ों के निवासी लिंगोपासक थे । इसी तरह दक्षिण ग्रीस और क्रीट के प्राचीन निवासी भी शिश्नोपासक थे । ग्रीक (आर्य) जातियों ने इनसे लिंगोपासना सीखी । चौराहों पर ये लिंग स्थापित करते थे और उनकी पूजा होती थी ।

शिवोपासना का लिंगपूजा से सम्बन्ध अति प्राचीन है । यद्यपि ऋग्वेद में लिंग (शिश्न) पूजकों को घृणा की दृष्टि से देखा गया है । पुराणों में लिंगपूजा का उल्लेख जरूर मिलता है । वहाँ शिव की परिकल्पना "अर्धनारीश्वर" के रूप में भी की गयी है, जिसके अन्तर्गत पुरुष और नारी को एक शरीर के भाग के रूप में स्वीकार किया गया है । परिणामतः शिव और पार्वती-युक्त "अर्धनारीश्वर" की मूर्ति इसी परिकल्पना पर आधारित है । शिवोपासना त्रिमूर्ति के रूप में भी विकसित हुई है, जिसके अन्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु, महेश की परिकल्पना की गयी है । भारतवर्ष में घरों में और शिव-मन्दिरों में इसी प्रकार लिंगोपासना और लिंग-गौरी की उपासना आज भी प्रचलित हैं ।

पुनः प्रोफेसर हेविट की उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ 282 पर दिये वर्णन की ओर पाठकगण का ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा । उनके अनुसार "अस्सीरिया (Assyria) और प्राचीन मिस्र का धार्मिक इतिहास प्रायः यह स्पष्ट कर देता है कि इन दोनों देशों के देवताओं का आगमन समुद्रमार्ग से हुआ । दक्षिणी अक्काडियनों (South Akkadians) के लिए मा (Ma) या जलपोत देवताओं को जन्म देने वाला गर्भाशय था और वह जलपोत था जिसमें ईरा (Ira) को जन्म, जो कि मत्स्य देवता था, और मत्स्य-त्वचा मंडित था, और जो इरीदू (Eridu) बन्दरगाह के रूप में अवतरित हुआ । उस दिव्य-ज्ञान का जो उसने अपने जन्म-स्थान में ग्रहण किया था, समुद्राटन कर सारे देशों में फैलाया । वह देश अवश्यमेव भारतवर्ष रहा होगा, जहाँ के नदी-देव घड़ियाल (Alligator) है," जोकि मेघावास लोगों का टोटम है और जो सप्ताहों को समय चक्र-बन्धन में बाँधे हुए हैं, जिसके एक सम्पूर्ण चक्र ने कुश (Kush) और कुर (Kur) के वर्ष की संरचना की । यह अन्तिम नाम जिसका उल्लेख अक्काडियन कुर (Akkadian Kur) में है और जिसका मतलब पूर्व की पर्वतीय भूमि तथा कूर्म (कच्छप) भूमि दोनों से है । वहाँ

से अक्काडियन लोग सूती कपड़े को प्राप्त करते थे, जो कि पुरातन बेबीलोनियन उल्लेखों में, "सेपत कुर्री" (Sepat Kurri) या कुर का कपड़ा कहा जाता था । यहाँ कपास उगायी गयी होगी, जो अभी भी खानदेश में काम्बे की खाड़ी के तट पर बसे हुये कुरमियों द्वारा (By the Kurmis living in Khandesh) उगायी जाती है । यह वह अँचल है जोकि महाभारत में कर्पासिका (Karpasika) कहा गया था, और इरीदू के बन्दरगाह पर जलपोतों द्वारा अवश्य लायी जाती रही होगी । "यहाँ कुरु को ही कुर (Kur) कहा गया है ऐसा प्रतीत होता है ।"

उत्तरी भारत के कुरमियों की आज भी यह धारणा है कि वे कुरु वंश के हैं । प्रश्न उठता है कि कुरुवंश आया कहाँ से अथवा उसकी उत्पत्ति का क्या इतिहास है, राजा ययाति के बारे में इस पुस्तक में विस्तार से विवरण दिया हुआ है, उनके पाँच पुत्र थे तुर्वसु, यदु द्रहयु, अनु, पुरु थे । ययाति असुर राजा थे, उनके इस नाम से तथा दानवराज क्षत्रिय कहकर भी उनका बार-बार उल्लेख मिलता है । इनकी पहली पत्नी देवयानी (ब्राह्मणी) थी और दूसरी पत्नी शर्मिष्ठा (असुरराज वृषपर्वा की पुत्री) थी । ययाति ने योग्यता देखकर अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु को अपना उत्तराधिकारी बनाया । इसी पुरु वंश में आगे चलकर कुरु हुए जिनके वंशज ही कौरव कहलाये। यहाँ यह कहना ही पर्याप्त होगा कि उस काल के कुरमी जिनका प्रोफेसर हेविट ने अक्कावियन कुर (कुरु) करके उल्लेख किया हे वे कुरुवंशी कुरमी थे, अतः इस बात की ऐतिहासिकता भी प्रमाणित होती है । कुरु वंश की अपनी राजसत्ता में आने वाला कुरुक्षेत्र को जीता-जागता अस्तित्व आज भी कुरुवंश की ऐतिहासिकता का प्रमाण प्रस्तुत करता है । हरियाणा प्रदेश में कुरुक्षेत्र जनपद आज भी कुरुवंश का स्मरण कराता है ।

प्राचीन मेसोपोटामिया (वर्तमान इराक) एवं सुमेरी सभ्यता

वर्तमान इराक या प्राचीन मेसोपोटामिया की लगभग 3000 वर्ष ईसा पूर्व की भाषा का नाम अक्कादी भाषा था । ऊपर प्रोफेसर जे० एफ० हेविट ने अपनी पुस्तक में दक्षिणी अक्कादियनों के जल और मत्स्य देवता या देवी ईरा (Ira) का विस्तार से उल्लेख किया है । इन अक्कादियनों की भाषा अक्कादी थी । यह भाषा स्वयं प्राचीनतम लिखित सुमेरी भाषा और लिपि की अनेक विशेषताओं की ऋणी थी, क्योंकि अक्काद बेबीलोन राज्य के संस्थापक सार्गन प्रथम ने सुमेर राज्य के नगर-राज्यों को मिलाकर 3000-2000 ईसा वर्ष पूर्व एक बड़ा राज्य बनाया था, जिसकी राजधानी बेबीलोन नगर था । अक्कादियों ने धीरे-धीरे सुमेरी सभ्यता को ग्रहण किया । (हिन्दी विश्व साहित्य कोष - प्रकाशक, नागरी प्रचारिणी सभा)।

जल प्रलय

जल-प्रलय की उस प्रसिद्ध कथा का भी वर्णन प्राचीन ग्रंथों में विस्तार से मिलता है, जिसका कुछ वर्णन अथर्ववेद में है और महाभारत, जिन्द अवस्ता तथा बाइबिल में भी मिलता है । इसमें उल्लेख है कि मनु को एक छोटी सी मछली मिल जाती है, जिसने मनु को आने वाले भयंकर जल-प्रलय का पूर्वाभास कराते हुए उनको अपनी सहायता से सुरक्षित बचा लेने का वचन दिया । मछली के कथनानुसार, एक जहाज (बड़ी नाव) बनवाकर मनु, जल-प्रलय के समय उसमें बैठ गये और वही मछली उस जहाज को उत्तरी पर्वत पर ले गयी, जिसके सींग से उसने अपना जहाज बाँध दिया था । फिर अपनी पुत्री के द्वारा मनु ने मनुष्य जाति की उत्पत्ति की थी ।

पाठकगण ! यहाँ आप इस जल-प्रलय में मनु की रक्षा करके बचाने वाली मछली को तथा प्रोफेसर हेविट के उपर्युक्त विवरण में दक्षिण अक्कदियनों के मत्स्य देवता या देवी ईरा (Ira) की तुलना करें तो अनेक मानों में समानता पायेंगे । शोधक लोग इस विषय का गूढ़ अध्ययन करके जो कड़ियां अस्पष्ट हैं वे और स्पष्ट तौर से पता चलाकर देखेंगे कि जल-प्रलय के सम्बन्ध में विश्व के प्रमुख और प्राचीन धर्मों के मिथक--कथानक कमो-वेश एक जैसे ही हैं ।

कूर्मावतार, भगवान विष्णु का द्वितीय अवतार माना गया है। हिन्दुओं के धार्मिक-मतानुसार यह सृष्टि के आदिकाल की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पौराणिक घटना है। प्रजापति कश्यप सन्तति उत्पादन के लिए कूर्म रूप धारण कर अवतरित हुये थे। पृथ्वी को जल से निकाला। उस कूर्म भगवान की पीठ का घेरा एक लाख योजन का था। **प्रोफेसर हेविट के उपर्युक्त वर्णन से इस बात की परोक्ष रूप से पुष्टि होती है कि प्रागैतिहासिक काल में एक जाति या वर्ग विशेष के लोग भगवान कूर्मावतार के अनन्य भक्त तथा उपासक थे, और अपने इष्टदेव, कूर्म-कश्यप भगवान के उपासक होने के कारण दूर-दराज़ के लोग बाद में उन्हें कूर्मि या कुरमी जातिबोधक नाम से ही जानने-पहचानने लगे थे।**

प्रोफेसर हेविट अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ 324 पर उन **कुरमियों के मूल स्थान की भौगोलिक स्थितियों** पर अन्य महत्वपूर्ण जानकारी देते हुए लिखते हैं, **"परम पवित्र और परम पुरातन, जैन पूजा-स्थल उन जिलों में स्थित हैं, जिन्हें प्राचीन काल में सिन्धु सुवर्ण और सौराष्ट्र कहा जाता था............ उसके उत्तर में सतलुज नदी है और जो कि पश्चिमी तट के जल-पत्तनों (बन्दरगाहों) के आस-पास का क्षेत्र है। इन सबको महाभारत काल में भागवत्ता (Bhaga Datta) कहा गया था। खाद्य फलों के देवता भागा (Bhaga) द्वारा प्रदत्त कुरमी कृषकों (Kurmi Cultivators) की यह उद्यान भूमि हैं। वे पुरातन सौराष्ट्र के काठियावाड़ और गुजरात की उर्वरा भूमि में कपास, नील, गन्ना, उगाते थे।"**

यह बात ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक गुजरात राज्य और सौराष्ट्र अंचल में बसे हुये पटेल बन्धु, अपनी की व्यावसायिक सूझ-बूझ के लिए प्रसिद्ध हैं, वे कुछ दशक पूर्व, यानी सन् 1931 की भारतीय जनगणना तक कण्बी, कनबी व कुलमी कहे जाते थे पर तब से वे रातों-रात सरकारी काग़जातों में पाटीदार (भू-पट्टों के स्वामी होने के कारण) दर्ज किये जाने लगे और अब वर्तमान में पटेल जाति बोधक नाम से जाने-पहचाने जाते हैं। प्रसिद्ध बारदोली किसान-सत्याग्रह के पश्चात उसके कर्णधार **सरदार बल्लभभाई पटेल** और बारदोली, खेड़ा आदि के पाटीदार-पटेलों की ख्याति दुनिया के कोने-कोने में फैल गयी। गुजरात विश्व-विद्यालय के रीडर, डा. एम. आर. पटेल की पुस्तक **"कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास"** प्रथम संस्करण 1991 प्रकाशक जयंति भाई पटेल, पाटीदार संशोधन ओर प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदावाद में से कुछ उद्धरण नीचे दिये जा रहे हैं :-

1. गुजरात में बसने वाले **कुर्मी भाई, "लेउवा"** तथा **"कड़वा"** संज्ञा से जाने जाते हैं। (पृष्ठ 161 से साभार

2. आज के समय का **कुलमी पाटीदार** कुछ हद तक समृद्ध बना है। गुजरात में तम्बाकू की फसल ने चरोतर के पाटीदारों को, मूंगफली की फसल ने, सौराष्ट्र के पाटीदारों को, आलू, अफीम और लहसुन की फसलों ने मालवा-निमाड़ के **कुलमियों** को प्रसिद्धि प्रदान की है। कई साहसी **पाटीदार** विदेशों में जा बसे हैं और बड़े-बड़े मोटलस् -होलटस् के मालिक, व्यापारी या उच्च पदाधिकारी बने हैं। अपने देश में विशेषतः गुजरात में साहसो और उद्यमी **पाटीदार** बड़े उद्योगपति के रूप में विख्यात हुये हैं।

3. **कड़वा कुलमियों** की आबादी गुजरात के अलावा खानदेश, मालवा, राजस्थान, सौराष्ट्र तथा कच्छ में अधिक है। साथ में लेउवा भी बसते हैं (पृष्ठ 161, 186 से साभार उदधृत)।

इस लेखक के पास एक पत्र "कड़वा पाटीदार परिवार ट्रस्ट" पंजीकृत संख्या ई 3664 अहमदाबाद, मुख्य कार्यालय जिला बैंक भवन, दूसरी मंजिल रिलीफ रोड, अहमदाबाद -1 से आया था, जोकि इस प्रकार है और जिसका यहाँ देना असंगत न होगा।

श्रध्येय डॉ० दिलावर सिंह जयसवार

सादर नमस्कार ।

सबसे पहले तो हमें कहना चाहिये कि आप जैसे एक संशोधक को नयी खोज का जितना हर्षोल्लास होता है, हमें आप के प्रदेश में हमारे समाज बन्धुओं को मिलकर हुआ है । आपको जानकार खुशी होगी कि समग्र पाटीदार समाज का एकत्रीकरण करने के लिये "कडवा पाटीदार परिवार" संस्था स्थापित की गई है । इसके बारे में थोड़ा सा विवरण आपको देना चाहता हूँ ।

संस्था की प्रवृत्तियाँ :-

यह संस्था पाटीदार समाज के संगठन के लिये समाज, सम्मेलन, परिसंवाद, शिविर, सामूहिक शादियों का सम्मेलन, शिक्षा-पारितोषिक योजना, समाज यात्रा, मेरेज ब्यूरो, युवा-संगठन और महिला कार्यक्रमों का आयोजन करती है ।

संस्था की विभिन्न प्रवृत्तियों का ख्याल हितेच्छुओं को मिल सके इसलिये संस्था का "कडवा पाटीदार परिवार" मासिक मुखपत्र प्रकाशित किया जाता है । जो सदस्यगण् रु. 251 से 5000 तक देकर संस्था का आजीवन सदस्य और दाता बनें उनको मासिक पत्रिका नियमित निःशुल्क भेजी जाती है ।

समाज की नींव तरुण हैं । इसलिये संस्था की भावी फौज तैयार करने के लिये युवा और महिला विंग भी शुरु किये गये हैं जो युवा पीढ़ी को समाजाभिमुख बनाने की कोशिश करते हैं । इसके साथ अभी-अभी समाज के डाक्टर लोगों का भी एक नया संगठन बनाया गया है और अब इंजीनियरों का संगठन हो रहा है ।

इस संस्था की प्रेरणा से स्त्री-शिक्षा के बारे में एक नूतन प्रस्ताव किया गया है । अहमदवाद-हिम्मतनगर हाईवे पर चन्द्राला गांव में "उमा संस्कार तीर्थ" की स्थापना की गई है । यह संस्था करीब 30 एकड़ में फैली हुई है । जिसमें प्राथमिक शिक्षा से उच्चशिक्षा तक, खास करके तकनीकी शिक्षा देने की सुविधा उपलब्ध करने का आयोजन है ।

समाज में नीतिमत्ता और आचार-संहिता सुरक्षित रहे इसलिये संतों की वाणी एवं सदाचार की पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं । इस संस्था की ओर से पीड़ितों के लिये सहायता की प्रवृत्तियां भी देखी जाती हैं ।

अपनी कुलदेवी (श्री उमिया माताय नमः) का सदैव स्मरण के लिये "कडवा पाटीदार ट्रस्ट" की चांदी की मुद्रा भी बनायी गई है ।

जैसे कि आप जानते हैं कि अहमदाबाद बड़ी नगरी है । इसलिए उसमें हमारा समाज कहां कैसे फैला है उसकी जान-पहचान के लिये समाज की बड़ी डायरेक्टरी भी तैयार की गई है ।

पाटीदार समाज के तेजस्वी विद्यार्थी अपने अभ्यास में उज्जवल बने रहें इसलिये शैक्षणिक पारितोषिक योजना से अभिवादन करने का आयोजन भी किया गया है ।

हमारी हार्दिक अपील

समाज संगठन का भावी आयोजन के लिये हम ऐसे समांज बंधु और दानवीर लोगों की खोज में हैं कि जो समाज को आगे बढ़ायें, इसलिये हमने प्रतिवर्ष दाता की येजना रु 1000 से 11,000 तक बनाई है । उसका प्रारंभ भी हो चुका है ।

मुझे कहने में गर्व होता है कि इस बारे में सारे सामाज से रोमांचक प्रोत्साहन मिला है ।

कडवा पाटीदार समाज के उपलक्ष्य में आरम्भ किये गये इस समाज-यज्ञ में आपका यत किंचित योगदान हमें बड़ी पुष्टि देगा ।

1. अपने गांव के कडवा पाटीदारों की जनसंख्या एवं प्रतिनिधियों के नाम और पता भेजें ।

2. आपके गांव के डाक्टर भाइयों और किसी भी शाखा के इंजीनियरों का नाम और पता हमें फौरन भेंजे।

प्रत्युतर की अपेक्षा ।

धन्यवाद ।

भवदीय

भीखू भाई पटेल

मानव मंत्री

प्रो. हेविट ने जो भी अपनी उपर्युक्त पुस्तक में **कणबी, कुनबी, कुलमी, कुलमित्र, पाटीदार** अथवा **पटेलों** के पूर्वजों को प्राचीन काल में कूर्मि या कुरमी जाति बोधक नाम से तथा एक महान सिंचित खेतिहर जाति के नाम से बयान किया है वह प्रमाणित हो जाता है । यह भी सर्वमान्य है कि गुजरात तथा सौराष्ट्र के तटों से समुद्र मार्ग से सुदूर देशों से व्यापार होता था, जिसमें विशेष करके कच्चे तथा तैयार माल का आयात-निर्यात किया जाता रहा है । जिस प्रकार कालीकट का उत्पन्न सूती कपड़ा-विदेशों में प्राचीन काल में केलिको (Calico) कपड़े के नाम से विख्यात था, उसी प्रकार खानदेश में कुरमियों (कुलमियों) द्वारा उपजाई हुई कपास से बना कपड़ा "सेपत कुर्री" (Sepat Kurri) के नाम से परदेशों में विख्यात हो गया था । प्रोफेसर हेविट ने यह खोजपूर्ण जानकारी अपनी पुस्तक में दी है ।

आचार्य चतुरसेन अपनी पुस्तक **"वैदिक संस्कृति पर वृग स्पर्श"**- सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली 110007 प्र. म. 1983 पृष्ठ 215 पर लिखते हैं

"आर्यों को समुद्र और समुद्र यात्राओं का पूरा अनुभव था व्यापार कुशलता बढ़ गयी थी और वस्तुओं का यथावत् विनियम होता था । जौ और गेहूँ की खेती मुख्य थी । आर्य मांस खाते थे । नशे की चीज़ केवल एक सोम बूटी थी जो दूध मिलाकर पी जाती थी । ऊन और सूत को रंगकर सुन्दरवस्त्र बनाने की कला उन्नत हो गई थी ।"

भूगर्भशास्त्र से यह पता चलता है कि सिन्धु प्रदेश जो वास्तव में सम्पूर्ण पंजाब (विभाजन पूर्व का) था, एक समुद्र के द्वारा दक्षिण भारत से सर्वथा पृथक था तथा यह समुद्र राजस्थान प्रदेश को भी जलमग्न किये हुये था और पूर्व दिशा में इसका विस्तार असम प्रदेश तक चला गया था और पश्चिम दिशा में सिन्धु नदी के उस कोण तक फैला था, जिसके अंश आज **कृष्ण सागर** (Black Sea) **कश्यप सागर** (कैस्पियन सागर), **अरब सागर** और **बालकन झील** है । टर्की के पूर्व में एक और एशियाटिक भूमध्यसागर था उस समय दक्षिणापथ एक महाद्वीप था जो ब्रह्मदेश में अफ्रीका के किनारे तक तथा दक्षिण में आस्ट्रेलिया तक फैला था । ऋग्वेद के अस्तित्व में आने के बाद ही किसी प्रबल भूकम्प से यह प्रदेश समुद्र में डूब गया और वहाँ के उच्च प्रदेश भारतीय द्वीप समूह प्रशान्त सागर के द्वीप, आस्ट्रेलिया के द्वीप, तथा मेडागास्कर के द्वीप रह गये । उधर राजस्थान प्रदेश समुद्र से उभर आया, बीच में जो समुद्र जल रह गया, उसी ने वर्तमान प्रसिद्ध सांभरझील का रूप लिया । इस भौगोलिक परिवर्तन से सप्तसिन्ध प्रदेश के वासियों के लिये दक्षिणपथ का मार्ग खुल गया । **अगस्त्य ऋषि** का दक्षिण दिशा जाने, समुद्र-जल पीकर समाप्त कर देने तथा विन्ध्याचल को नीचे झुकाने का पौराणिक आख्यान इसी महत्वपूर्ण घटना से सम्बन्धित प्रतीत होता है । कश्मीर प्रदेश भी जल से तभी उभरा । पर गन्धार प्रदेश और सप्त-सिन्धु प्रदेश की भूमि का सम्बन्ध पश्चिमी एशिया और एशिया माइनर से तब भी था ।

जिस भंयकर जल-प्रलय का वर्णन **शतप्रथ ब्राह्मण** तथा **बाईबिल** में है और जो **"मनु जल-प्रलय"** अथवा **"नूह जल-प्रलय"** के नाम से वर्णित है, वह निश्चय ही उसी काल में घटा होगा जबकि दक्षिण महाद्वीप समुद्र में

डूब गया और राजस्थान वाला प्रदेश समुद्र जल से उभर आया। इस भयानक भूजन्य उथल-पुथल के समय आर्यजन या जो भी सप्तसिन्धु प्रदेश के वासी थे प्रलय-जल से जान-बचाकर उत्तरी हिमालय के प्रदेशों में चले गये होंगे और प्रलय के बाद नीचे आकर बस गये होंगे और संभवतः इसी समय में वे आर्य लोग हिम-युग की कठिनाइयों के कारण नीचे आकर धीरे-धीरे पांचाल, कोशल, विदेह और अन्यान्य प्रदेशों में आबादी बढ़ने के साथ-साथ घर बनाकर बसते गये होंगे (ऋग्वेद इंडिया, अविनाशचन्द्र दास)।

यह निष्कर्ष निकालना उचित ही है कि प्रोफेसर हेविट ने, विदेशी होते हुये भी बड़ी लगन तथा अथक परिश्रम से, अनेकानेक प्रकार की विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी सततृशोध एवं अनुसंधान द्वारा प्रागैतिहासिक कालीन कुरमियों के इतिहास को खोजकर प्रमाणित कर निकालने का अति प्रशंसनीय कार्य किया है। कुरमी जाति के कृतज्ञ लोग उस इतिहासज्ञ मनीषी को सदा श्रद्धा एवं आदर से स्मरण करेंगे। इनसे तथा अंग्रेज नृतत्ववेत्ताओं से, जिन्होंने अंग्रेजों के शासन-काल में इस विधा में कुरमियों के बारे में खूब खोजें की थी, प्रेरणा लेना चाहिए क्योंकि इस देश के आने वाले खोज-कर्त्ताओं को बहुधा भारतीय इतिहासज्ञों, मानव-शास्त्र के विद्वानों तथा नृतत्ववेताओं की न जाने किन कुंठाओं के कारण प्राचीन काल के कुरमियों के सम्बन्धों से इतनी बिस्तार से पैठ नहीं रही है।

प्रोफेसर हेविट की गवेषणा से प्रागैतिहासिक कालीन कुरमियों के संदर्भ में उनमें प्रचलित वैवाहिक अवसरों के एक विशेष रीति-रिवाज का भी पता चला है। उसे उन्होंने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 429 पर इन शब्दों मे व्यक्त किया है :-

अपनी-अपनी वधुओं से विवाह करने के पहले कुर या कच्छप वंश की सन्तान इस कुरमी जाति के वरों का विवाह संस्कार आम या आम्रवृक्ष रूपी मां की पूजा वंदना करते हुये पहले उसी वृक्ष के साथ सम्पन्न कराया जाता है। अम्बा तथा महाभारत काल के राजकुलों की मातायें, अम्बिका और अम्बालिका के नाम उससे सम्बन्धित हैं।...... ये नाम, जैसा कि मैंने पौराणिक किंवदन्तियों से उद्घाटित किया है, उन माताओं के हैं जोकि मायावी मेघादास, कौरवों अर्थात कुर (Kur) या कच्छप के पुत्रों और उनके विरोधी तथा उत्तराधिकारी, पाण्डवों या श्वेत पांडु (Pandu) की सन्तति की जननी है।"

हम सब जानते हैं कि आम को तत्सम में आम्र तथा अम्ब नामों से भी जाना जाता है। पुरातनकाल में आम के पेड़ में अथवा अम्ब-वृक्ष में माता अम्बा की परिकल्पना की गई होगी। यद्यपि समय के साथ-साथ न केवल कुरमियों के अपितु हिन्दुओं की प्रायः अन्य जातियों के वैवाहिक रीति-रिवाजों में बदलते समय में पहले से अब के में मूलभूत परिवर्तन हो चुके हैं; फिर भी कुछ रसमें पहले की अब भी परिवर्तित रूप में उन वैवाहिक अवसरों पर सम्पन्न की जाती है। समय के अभाव में अब विवाह समारोह तीन-दिवसीय कार्यक्रम के स्थान पर केवल एक दिन मात्र का रह गया है। क्योंकि पाँच-छः दशक पूर्व तक लोगों के पास समय की कमी न थी, आना-जाना सुलभ न था, दूर वाले लोग आपस में बहुत कम मिल पाये थे। यह ही अवसर होते थे जबकि सब कुटुम्बी, स्वजन और परिवार के दूर बसे सदस्य आपस में मिल-जुल कर एक दूसरे के दुःख-सुख में सम्मिलित होते थे। अतः बीते जमाने में तीन दिनों में तरह-तरह के संस्कारों को सम्पन्न किया जाता था, इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता। सन् 1959 में स्वयं इस लेखक का विवाह कलकत्ता में उन्हीं प्राचीन त्रिदिवसीय रीति-रिवाजों के साथ हुआ था। प्रो. हेविट ने उसी संस्कार का विवाहोत्सव के समय कुरमियों द्वारा उस काल में सम्पन्न कराये जाने का विस्तार से उल्लेख किया है। तब की आम अथवा अम्ब-वृक्ष से, कुरमी वर का अपनी होने वाली वधू से पूर्व, विवाह कराने का संस्कार या रीति तो अब लुप्त हो गयी है। जोकि इस शुभ अवसर पर कुलदेवी अम्बा के प्रति अपनी अटूट और अगाध श्रद्धा एवं आदर व्यक्त करना था। आज भी मंगल-कलश में घड़े या लोटे में जल भर कर आम की पत्तों युक्त टहनी उसमें रखकर पत्तियां चारों और फैला कर उस पर नारियल बीच में रखकर, उस पर फूल, अक्षत, रोली, मौली बांधी जाती है।

विद्वपाठकगण ध्यान दें तो पायेंगे कि अभी भी कुरमी वधू और वर पक्षों के घरों में, उत्तरी भारत में, विवाह समारोह के दौरान आँगन में सुन्दर-सुन्दर मंडप सजाये जाते हैं, जिसके मध्य मढ़े को गाढ़ा जाता है। जोकि काष्ठ-खम्ब या देहातों में हल के रूप में भी होता है । इस केन्द्रीय मढ़े की लकड़ी में तरह-तरह की पूजन की वस्तुयें, सजावट की चीजें और खिलौनों, फूलों के साथ-साथ आम या **अम्ब-वृक्ष के हरे पत्तों और टहनियों सहित बंदनवार (तोरण)** बांधकर सुसज्जित किया जाता है । जल भरे कलश में **आम या अम्ब-पत्तों की टहनी डुबाकर उस पर घृत-दीप प्रज्वलित किया जाता है** । पुरोहित भूमि पर गेहूँ के आटे से नवग्रह पूजनार्थ उनके अलग-अलग स्थान पर बनाकर वर द्वारा विवाह के लिए प्रस्थान से पहले उस मढ़े की अथवा अम्ब-वृक्ष की पूजा कराता है। और उधर वधू-पक्ष के यहाँ बारात पहुँचने पर उसी प्रकार के **अम्ब-वृक्ष** की टहनियों, पुष्पों आदि से सुसज्जित मढ़े के सम्मुख अथवा मण्डप में बैठकर वर-वधू का पाणिग्रहण संस्कार विधिवत् सम्पन्न कराया जाता है । देवी अम्बा तथा प्रागैतिहासिक काल में **कुरमियों में वैवाहिक अवसरों पर अम्ब-वृक्ष के साथ दुल्हा (वर) का पहले विवाह** कराना तथा फिर उसकी होने वाली दुल्हन से, इस प्रकार की रस्मों के पीछे क्या धार्मिक पक्ष था, उनमें कब और क्या परिवर्तन अब तक आयें हैं, यह सब अपने में एक खोज का विषय है ।

अम्बा और भीष्म

अम्बा महाभारत युग की एक प्रसिद्ध पात्र है, उसके विषय में अनेक वृतान्त हैं । वर्णन विविध रूप में हैं । सत्यता का मापदण्ड पा लेना सुगम नहीं है । उसे विद्रोही अबला के रूप में जाना जाता है । उस आदि युग में **काशी नरेश** की तीन पुत्रियां थीं, जिनके नाम थे क्रमशः **अम्बा, अम्बिका** और **अम्बालिका** । तीनों विवाह योग्य हो चुकी थी ।

काशीराज ने **अम्बा** का स्वंयबर रचा । अनेक राजागण दूर-दूर से भी पधारे, जिनमें **राजा शाल्व** भी आये और उन्हें देखते ही अम्बा ने मन-ही मन उन्हें अपना स्वामी मान लिया । किन्तु उस स्वयंबर में हस्तिनापुर से **गंगापुत्र भीष्म**, यकायक और बिना आमंत्रण पाये भी, आ उपस्थित हुए । वे बोले कि मैं हस्तिनापुर के महाराजा **विचित्रवीर्य** की ओर से इस स्वयंबर में भाग लेने आया हूँ । राजा शाल्व को उनका प्रस्ताव मान्य न था अतः उनका भीष्म से अम्बा के लिये युद्ध हुआ जिसमें महाराजा शाल्व पराजित हुये । इस प्रकार काशी-नरेश की तीनों कन्याओं अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका को महाराजा विचित्रवीर्य की अर्द्धागनी के रूप में स्वीकार कर भीष्म हस्तिनापुर ले चले ।

महाराज विचित्रवीर्य ने अम्बा को अन्तःकरण से पहले राजा शाल्व को अंगीकार कर लेने के कारण अपनी भार्या बनाने से इंकार कर दिया । भीष्म अम्बा को लेकर राजा शाल्व के राजदरबार में पहुँचे और उन्होंने भी अम्बा को अब पत्नी रूप में अस्वीकार कर दिया । वहाँ से भी दोनों हताश लौटे । सीधे फिर वे दोनों काशीराज के पास पहुँचे । भीष्म ने क्षमा मांगते हुए उनसे निवेदन किया वे अपनी कन्या अम्बा को आश्रय दें । पर रुढ़िवादी समाज के भय से काशीराज अपनी कन्या अम्बा को अपने यहाँ ऐसी परिस्थितियों में रखने का साहस न कर सके। भीष्म अन्त में अम्बा से ही क्षमा मांगने पर विवश हो उठे कि उसके दुर्भाग्य का कारण वास्तव में वे ही हैं। भीष्म के क्षमा-वचन सुनकर अम्बा, गरज पड़ी- **"मेरा सर्वस्व नष्ट कर तुम्हें क्षमा याचना करते लज्जा नहीं आती गंगा-पुत्र ! यदि मेरा हित करना ही चाहते हो तो क्यों न आप स्वयं मुझसे विवाह कर मुझे ग्रहण कीजिए ।" पर भीष्म ऐसा करने पर पूर्णतः विवश थे, क्योंकि उन्होंने विवाह न करने की प्रतिज्ञा ले रखी थी । यह भी संभव न था । बड़ी जटिल समस्या आ उपस्थित हुई थी ।**

अम्बा को समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करें, किधर जाये । हताश हो वह सबको छोड़कर अकेले अरण्य मार्ग पर चल पड़ी । सुदूर जंगलों में चली गई । मार्ग में **ऋषि जमदग्नि-पुत्र परशुराम** से साक्षात्कार

हुआ। अम्बा से पूछने पर उसने अपनी व्यथा आद्योपन्त सुनायी । परशुराम बोले, "तुम्हारे साथ नियति और भीष्म दोनों ने घोर अन्याय किया है । तुम राजा शाल्व की त्यक्ता हो, महाराजा विचित्रवीर्य की अस्वीकृत वधू हो और भीष्म-सहवास में सन्देह-ग्रस्त अबला हो । इस निष्ठुर समाज में तुम्हारा कोई सम्माननीय स्थान शेष रहा ही नहीं है । पर मैं तुम्हारे लिये फिर भीष्म को तैयार करने की चेष्टा करूंगा ।"

परशुराम ने भीष्म के पास जाकर अम्बा को उनके द्वारा भार्या स्वीकार कराने की भरसक चेष्टा की, पर भीष्म अपनी प्रतिज्ञा के कारण अटल व अडिग रहे । अन्त में कुरुक्षेत्र में भीष्म से युद्ध करने को परशुराम ने ललकारा । कुरुक्षेत्र में परशुराम और भीष्म में भीषण युद्ध हुआ । सात दिन बीत गये, अन्ततः परशुराम ने ही अपनी हार मान ली । आश्चर्य चकित अम्बा चीख पड़ी "प्रपंचक परशुराम, तुमने पराजय मान ली । मैं युग-युगांतक भीष्म के सर्वनाश का लक्ष्य धारण करे रहूँगी । अम्बा पराजित नहीं हो सकती ।"

लक्ष्यपूर्ति में लीन अम्बा सघन वन में जा बैठी और घोर तपस्या में लग गयी । वह दृढ़ संकल्प थी कि वह तब तक कठोर तपस्या करती रहेगी, जब तक माँ दुर्गा स्वयं उसके सम्मुख प्रगट होकर वरदान नहीं देगी। तपस्विनी अम्बा को वर्षों वहां बीत गये । आखिर एक दिन आशुतोष शंकर इस घोर तपस्या से प्रसन्न हो अम्बा के सम्मुख प्रगट हुये । अम्बा ने नतमस्तक हो अपना जीवनलक्ष्य उन्हें बताया । महादेव ने द्रवित होकर अम्बा को एक पुष्पमाला दी कि इसे पहनकर जो कोई भी युवराज योद्धा भीष्म से युद्ध करेगा अवश्यमेव विजयी होगा। पर अम्बा के बहुत खोजने पर भी कोई भी युवराज पुष्पमाला धारण कर महारथी भीष्म से युद्ध करने को तैयार न हुआ ।

अम्बा उस पुष्पमाला को लेकर पुनः सघन वन में जाकर तपस्या में लीन हो गयीं । अन्त में आद्यशक्ति दुर्गा (शुक्ल यजर्वेद की वायसनेय संहिता में अम्बिका देवी का उल्लेख मिलता है) ध्यानस्थ अम्बा के सम्मुख अवतरित होकर बोली - अम्बा तुम्हारा लक्ष्य अशुभ है । इष्टलोक के नियम-विधान के विपरीत है। भीष्म देवलोक में भी सर्वप्रिय हैं । तुम कुछ भी अन्य मांग कर सकती हो ।" अम्बा बिलखती-रूदन करती रही, उसके जीवन का एक ही लक्ष्य रह गया था । अपने सर्वनाश का भीष्म के सर्वनाश द्वारा ही प्रतिशोध लेना । माँ दुर्गा ने क्रन्दन करती अम्बा को शान्त कराया, फिर बोली :-

"अम्बा ध्यान से सुनो! गंगा-पुत्र भीष्म का और तीन दशक तक जीवित रहना तो निश्चित है । यदि तुम्हें अपनी इच्छा की पूर्ति देखनी है तो तुम्हें अभी अपना शरीर त्यागना होगा । फिर तुम शिखण्डी के रूप में वत्स देश के राजा के घर जन्म लोगी । और तीस वर्ष बाद महाभारत के विशाल युद्ध में भीष्म पितामह की जीवन-लीला का अन्त होने में तुम ही मात्र कारण होगी । क्या तुम्हें यह सब होना और करना स्वीकार्य है?" अम्बा तो सिर्फ यही देखने को जीवन का बोझ ढो रही थी । अम्बा ने तुरन्त जवाब दिया - "ऐसा मुझे स्वीकार है । मैं तत्काल अपना शरीर त्यागने को तैयार हूँ ।"

मां दुर्गा ने अन्तर्ध्यान होने से पूर्व निर्देश दिया "अम्बा! अब तुम अग्नि की चिता में जलकर अपने इस भौतिक शरीर से मुक्ति पायो । मैंने जैसा कहा है तुम्हें वरदान देती हूँ कि अपने अगले जन्म में कुछ वर्षों की प्रतीक्षा के पश्चात तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी ।" अम्बा ने वैसा ही किया और धधकती चिता में वह स्वाहा हो गयी । अम्बा ने अगले जन्म में, महाराजा द्रुपद के यहाँ जन्म लिया । महाराज द्रुपद को इतनी प्रतीक्षा के बाद कन्या का शिखण्डिनी होना जब पता चला तो वे अत्यन्त दुखी हुये । यही शिखण्डिनी बड़े होने पर शिखण्डी कहा जाने लगा ।

बड़े होने पर उसने अश्वारोहण, खड्ग प्रवीण्ता और वाणविद्या आदि आवश्यक युद्धविद्या में निपुण होकर अपना नाम शिखण्डी रखा । महाभारत के महायुद्ध में कुरुक्षेत्र के रणभूमि पर कौरवों और पाण्डवों की प्रबल सेनायें जूझ रही थीं, सर्वत्र मारकाट का दृश्य था पर महारथी भीष्म पितामह के कारण कौरव दल का पलड़ा भारी पड़ता था । उन्हें समाप्त करने के लिये शिखण्डी को बड़े नाटकीय ढंग से सामने लाया गया । भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञानुसार

उसे अर्धनारी समझकर अस्त्र रख दिये । अर्जुन को मौका मिल गया । उसने भीष्म पितामह पर उस अवस्था में, शिखण्डी की आड़ में, सुरक्षा पाकर असंख्य प्रखर वाणों से उनके मर्मस्थानों को जख्मी कर दिया। रक्त-रंजित वाणों से विधे हुये महारथी भीष्म अपने रथ से गिर पड़े ।

भीष्म पितामह को वाणों की शैया पर अर्धमूर्छित देखकर शिखण्डी का मन दाहक दुविधा में बंटा हुआ व्याकुल था । एक ओर उसके मन में सन्तप्त प्रतिहिंसा की भावना बसी हुई थी । आज निज सर्वस्व और उत्सर्ग की आहुति देकर ध्येयपूर्ति को प्राप्त कर भी शिखण्डी सच्चे हृदय से भीष्म पितामह से क्षमा करने की प्रार्थना करने लगे । उदारचित्त गंगापुत्र भीष्म ने कहा, "नहीं अम्बा नहीं मैं तुमसे किंचित भी रूष्ट नहीं हूँ मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि पुनर्जन्म में तुम एक सुन्दर और सुखी कन्या बनकर जीवन-लीला का आनन्द लोगी ।" अपने सुत भीष्म के देह-त्याग की करुण व्यथा में भगीरथी (गंगा) विलाप करती हुयी वहां प्रकट हुई । अन्त में शिखण्डी के रूप में जन्मी अम्बा करबद्ध स्नेह-सलिला गंगा को प्रणाम करते हुये उसकी निर्मल धारा में समा गयीं । अम्बा ने अन्ततः सब कुछ खोकर भी सब कुछ पा लिया था ।

वामन शिवराम आपटे के संस्कृत-हिन्दी कोश पृष्ठ 86-87 पर दिये अर्थ के अनुसार :-

अम्बा : (वैदिक संबोधन-अंबे, वाद की संस्कृत में-अम्ब), दुर्गा, भवानी, पांडु की माता, काशिराज की कन्या (वह और इनकी दो बहने भीष्म के द्वारा सन्तानहीन विचित्रवीर्य के लिये अपहृत की गई थीं । क्योंकि अम्बा की सगाई पहले ही शाल्वराज से हो चुकी थे, अतः इसे उन्हीं के पास भेज दिया गया । परन्तु दूसरे के घर में रही होने के कारण शाल्वराज ने उसे ग्रहण नहीं किया, अतः वह वापस आई और उसने भीष्म से प्रार्थना की कि वह अब उसे स्वीकार करें, परन्तु उन्होंने अपना आजन्म ब्रह्मचर्य भंग करना उचित नहीं समझा, फलतः उसने जंगल में जाकर भीष्म से प्रतिशोध दिलाने की प्रतिज्ञा ली । बाद में वह द्रुपद के घर शिखण्डिनी के रूप में पैदा हुई, और शिखंडी कहलाने लगी, और अन्त में वही भीष्म की मृत्यु का कारण बनीं ।

अम्बिका :- माता, भद्र महिला ("अम्बा" की भांति स्नेह और आदर सूचक शब्द), शिव की पत्नी पार्वती, काशिराज की मझली पुत्री, तथा विचित्रवीर्य की ज्येष्ठ पत्नी, अपनी छोटी बहन की भांति इसके भी कोई सन्तान नहीं हुई, फिर व्यास के द्वारा इनके उत्पन्न पुत्र "धृतराष्ट्र" कहलाये ।

अम्बालिका : माता, भद्र महिला (सम्मान तथा स्नेह सूचक शब्द काशिराज की सबसे छोटी पुत्री - विचित्रवीर्य की पत्नी) जब, सत्यवती ने निस्संतान विचित्रवीर्य के लिये एक पुत्र पैदा करने के लिये व्यास का आह्वान किया - तब वे व्यास के द्वारा उत्पन्न "पांडु" की माता बनीं ।

देवीमाता के बावन शक्तिपीठ

देवी के बावन शक्तिपीठ देश में विद्यमान हैं । श्री विष्णु भगवान के चक्र से कट-कट कर देवी के देह के पृथक-पृथक अवयव भूतल पर स्थान-स्थान पर गिरे और गिरते ही वे पिंडी के रूप में बदलते गये । यह निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट विदित होता है :

"विष्णुचक्रेण संछिन्नस्तद्देहावयवाः पृथक ।
निपेतुः पृथ्वीपृष्ठे जग्मुः पार्थिवतां भुवि ।।
शक्तिपीठानिमान् भक्तया, यः पूजयति भूतले ।
इहं नानासुखं भुक्त्वा, हर गौरीपुरं व्रजेत् ।।"

अम्बिका देवी के नाम से दो शक्तिपीठ हैं । एक है विराट नामक स्थान में जहां देवी की टांग भूमि पर आ गिरी थी और दूसरा जयपुर (राजस्थान) में है जहाँ कहा जाता है कि मां देवी की दाहिने पांव की अंगुलियां भूतल पर आ गिरी थीं और दोनों स्थलों में पिंडी रूप में बदल गयी थीं । मां के भक्तों की ऐसी आस्था है कि जो इन बावन शक्ति पीठों में से किसी का भी भक्ति तथा श्रद्धा से पूजन करता है, वह इस लोक के नाना प्रकार के सुखों को भोगकर अंत में शिव-धाम (गौरीपुर) को प्राप्त होता है । अम्बाजी का विशाल मन्दिर गुजरात प्रदेश में है ।

एच.-एच. रिसले ने अपनी पुस्तक ("ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ बंगाल-इथनोग्रेफिक ग्लोसरी, कलकत्ता 1891" भाग 4, पृष्ठ 531) में भी महाभारत युद्ध की कुछ प्रमुख विभूतियों का उल्लेख इस प्रकार किया है, "अम्बा, जैसा कि किंवदन्ती प्रचलित है, काशी नरेश की पुत्री थी, उसे भीष्म जबरदस्ती उसकी बहनों अम्बिका तथा अम्बालिका सहित उनके स्वयंवर से विचित्रवीर्य की पत्नियां बनाने हेतु ले आये थे । बाद में यह जानने पर कि वह शाल्व को मन से पति मान चुकी थी, उसके पास जाने के लिये अम्बा को भीष्म ने मुक्त कर दिया । शाल्व द्वारा भी उसे पत्नी रूप में ग्रहण करने से इन्कार करने से अपमानित एवं तिरस्कृत अम्बा ने भीष्म से प्रतिशोध लेने की मन में ठान ली । अन्यान्य उपायों के बाद अन्त में अम्बा ने आशुतोष शिवजी की घोर तपस्या करके वर प्राप्त किया जिससे पांचाल नरेश द्रुपद के यहां उभयालिंगी बालिका के रूप में उसका जन्म हुआ और नाम शिखण्डिनी पड़ा । बाद में नपुंसक पुत्र बनकर वही शिखण्डी कहलाया । वहीं शिखण्डी दसवें द्यु (Dyu) तथा आठ वसुओं में से एक के अवतार और उत्तर दिशा के सूर्यदेव के रूप में मान्य भीष्म की मृत्यु का महाभारत के युद्ध में कारण बना । इस प्रकार वह (अम्बा) अपनी तपस्या के कारण, सार्वलौकिक देवी, शिव-उमा या पार्वती के रूप में प्रतिष्ठित की गई । वे इन्हीं अम्बा की बहिनें (अम्बिका तथा अम्बालिका) थीं जो कि किंवदन्तियों के अनुसार आम के पेड़ या अम्ब-वृक्ष द्वारा गर्भाधान कर, कौरवों और पाण्डवों के पिता क्रमशः धृतराष्ट और पांडु की माता, तथा दूसरी जरासंध की माता बनी । अम्ब वृक्ष (आम के पेड़) में अम्बा देवी की परिकल्पना की गई । अम्बा देवी की कृपा प्राप्त करने के लिये, उनको विवाह योग्य स्वीकारने के लिये जो कि शाल्व और भीष्म द्वारा विवाह के लिये अस्वीकृत कर दी गई हों, कुरमी दूल्हे का प्राचीन काल में अपनी दुलहन से पूर्व अम्ब (आम) वृक्ष से विवाह रचाया जाता रहा हो । अंग्रेज विद्वान रिसले के अपने शब्दानुसार इस तरह आम पेड़ को कुरमी या कच्छप जाति के पुरुषों की माता वृक्ष के रूप में प्रतिष्ठित किया गया, जिससे वे लोग अपनी-अपनी वधुओं से विवाह करने के पूर्व विवाह रचाते हैं । (They thus established the Aam or mango tree as the mother tree of the males of the Kurmis or tortoise race, to which they are first wedded before being married to their wives. Risley, H. H. "Tribes and Castes of Bengal-Ethnographic Glossary/Anthropometric Data," Calcutta, 1891,) ।

सुधी पाठकगण प्रोफेसर हेविट और एच. एच. रिसले जैसे दोनों विदेशी महान नृतत्ववेताओं के अथक अनुसंधान से लिखित उनके उपर्युक्त ग्रन्थों में वर्णित पौराणिक आख्यानों से परिचित होंगे । उनकी सत्यता से सहमत वे पूर्णतया हों या न हों, पर इस विवेचना से एक बात स्पष्टतः उभरकर आती है कि भारत युद्ध या महाभारत काल में कुरुवंशी कूर्मि क्षत्रिय राजपरिवार के थे । या यह कहिये कि आज के कुरमियों के पूर्वज, अवश्य विद्यमान थे और तब उनकी गणना शासक जातियों में की जाती थी । उक्त दोनों विद्वानों की कृतियों में, प्रागैतिहासिक उस काल में कुरमी जनसाधारण का उल्लेख हमें माता-अम्बा के अनन्य भक्तों की जाति के रूप में और सिंचित खेतिहर जाति के रूप में भी प्रमाणित है । अतः कूर्मिवंश बड़े पुरातन काल से, प्रागैतिहासिक काल में, चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था समाज में लागू होने के पूर्व भी थे, और आज भी उनके वंशज करोड़ों की संख्या में हैं यह प्रमाणित होता है।

श्री माता अम्बा जी

प्रोफेसर हेविट ने अपनी पुस्तक में कुरमी, कुरमबस, आदि सिंचित कृषि करने वाली कुरू (कच्छप-कूर्म) की सन्तानों वाली जाति का उल्लेख किया है और उन्हें मुख्यतः सौराष्ट्र, काठियावाड़ तथा गुजरात की उर्वरा भूमि-क्षेत्र में बसे हुये बतलाया है। कुरुवंशी क्षत्रिय क्योंकि महाभारत कालीन थे अतः एच. एच. रिसने ने उन कुरमियों को अम्बादेवी का अनन्य भक्त बताया है और उनमें विवाह समय कुरमी दूल्हे का विवाह अपनी दुल्हन से सम्पन्न करने से पूर्व अम्ब-वृक्ष में अम्बामाता (जिन्हें जगदम्बा माँ भी कहा जाता है) की परिकल्पना कर उनकी कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से अम्ब-वृक्ष से विवाह पूजन कर कराया जाता रहा है।

वर्तमान में भी गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश में बसे प्राचीन कण्वी,, कुनवी, कुलमी, पाटीदार-पटेल ऊँझा की श्री उमियामाता और माता अम्बा के परम भक्त हैं। "उमाम्बा शरणमस्तु", "जय अम्बा" "जय उमिया" उनके अपनी इष्ट देवी के प्रति 'जयघोष' हैं। डा. मंगुभाई आर० पटेल, एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर, इतिहास विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय ने "कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास" प्रथम संस्करण सन् 1991 में प्रकाशित किया। उसके पृष्ठ 287 पर भी "श्री अम्बिका पाटीदार समाज धार्मिक एवं पारमार्थिक ट्रस्ट जिला इन्दौर (म. प्र.)" की ओर से न्यास मण्डल की प्रस्तावित योजनाओं की रूपेरखा अपने श्रद्धालु पाटीदार भाइयों एवं बहिनों को बताते हुये कहते हैं :-

"भारतवर्ष का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह धर्म, और संस्कृति का देश है।.... भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिये एवं साधना तथा आराधना के लिये मन्दिरों का अपना विशिष्ट स्थान है। हमारा समाज अपनी कुलदेवी एवं जगत जननी श्री उमिया माता एवं श्री अम्बिका (अम्बा) माता की अराधना करता है। मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र एवं निमाड़ क्षेत्र में हमारा समाज सैकड़ों वर्ष पूर्व गुजरात से आकर बसा है। हमारा प्रमुख धन्धा कृषि है। हम दिन-रात परिश्रम करके अन्न उपजाकर देश की भुखमरी को मिटाते हुये परमार्थ कार्य तो कर ही रहें हैं, किंतु अपनी गाढ़े पसीने की कमाई को पुराने रीति-रिवाज एवं रूढ़ियों के जंजाल में फंसकर बरबाद कर देते हैं।....... आज समय की पुकार है कि हम अपने रीति-रिवाज एवं रूढ़ियों को सीमित करके अनावश्यक खर्च में बचत करके इस राशि को अपने परिवार की शिक्षा का स्तर सुधारने, आदर्श भावना को जागृत करने एवं समाज तथा देश की सेवा में अर्पित करें।"

उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ 156 पर डा. मंगुभाई आर. पटेल ने श्री कुलम्बी वंश की उत्पत्ति का वर्णन निम्नलिखित पद में भी किया है :-

कुलम्बी कुल के भूषण, देवी अम्बा का परिवार।
संत कहे कर जोड़ के, विनती बारम्बार ।।
धर्म चलाओ आपणो, करो जगत विस्तार।
यश फैले तिहूं लोक में, ज्यों रवि के प्रकाश ।।
भागीरथ भानु भये, कीनो तप अपार।
विष्णु चरण बैकुण्ठ से, लाये सुरसरि धार ।।

एक लम्बी पौराणिक कथा भी दी गयी है। सारांश है, कभी प्राचीन काल में गुजरात में नौ लाख दानव-राक्षस रहते थे, इनको श्री महादेव जी का वरदान था कि कोई मार नहीं सकता, पर अकेली स्त्री से मत लड़ना वरना तुम मारे जाओगे। यह भी उन्हें बता दिया था। गुजरात के हारासुर पर्वत पर श्री माता जी षोडशी बाला के रूप में अवतरित हुई। आसो सुद दूज को श्री माता और दानव-राक्षस सेना में युद्ध हुआ। अष्ट भुजाधारी माता ने संग्राम में नौ लाख राक्षसों का संहार किया। माँ ने महिषासुर राक्षस का मस्तक काटा और खप्पर से रक्तबीज

 को भी मार डाला । फिर भी मां अम्बे को शांति नहीं मिली और महाकराल क्रोध में अपना हाथ चबाने लगी, तब से वे महाकाली नाम से भी संबोधित की जाती है । इस युद्ध में तीनों देवता महादेव, ब्रह्मा और विष्णु को उन्होंने अपने कब्जे से बांध रखा था ।

युद्ध विजयी महाकाली, वंश सरोवर के निकट घोड़े से उतर कर जल पीने लगी । वहां उन्हें गंगा जी की मिट्टी नज़र आयी, उससे 52 पुतले बनाये । उन पुतलों की सुन्दरता पर मोहित होकर संजीवन-मंत्र से उनमें प्राण प्रतिष्ठा कर दी । पुतले बालकों की तरह मां अम्बे के ऊपर-नीचे कूदने-फांदने क्रीड़ा-भाव से करने लगे । पुत्र प्रेम से मां का क्रोध पूर्णतया शान्त हुआ । बन्धक तीनों देवताओं पर निगाह पड़ी, पहले महादेव को वैशाख सुद-दूज के दिन छोड़ा । महादेव जी ने महाशक्ति अम्बे से पूछा कि ये 52 लड़के तूने किसके बीज से पैदा किये हैं । "कौन बीज" कहने से उनका नाम 'कुलम्बी' पड़ा । बाद में ब्रह्मा और विष्णु को भी मुक्त कर दिया गया।

तीनों देवताओं को चिन्ता हुई कि यदि शक्ति-देवी मनुष्यों को उत्पन्न करने लगेगी तब उनको संसार में कौन मानेगा। उन देवताओं ने उन 52 बच्चों को डराना शुरू कर दिया । बच्चों ने मां अम्बे को बता दिया । मां बोली कि तुम डरो नहीं मैं तुम्हें चार वरदान देती हूँ :-

1. तुम हलपति (कृषक) होंगे और ये सब देव तुमसे आशा करेंगे, तुम दुनिया का पेट भरोगे,
2. हल की अणी से ही तुम्हारा यश फैलेगा, तथा
3. सारे पृथ्वीवासी तुमसे आशा करेंगे
4. कलिकाल (कलयुग) में तुम्हारा वंश बढ़ेगा ।

उन बालकों के विवाह का प्रसंग उठा तो माता ने 52 नाग-कन्यायें पाताल-लोक से निकाली । मां के पूछने पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने विवाह किस रीति से करना चाहिये, नहीं बताया । तब वैशाख सुदी तीज़ यानी "अखातीज" को मां ने लड़के-लड़कियों का हाथ पकड़वाकर बिना छोटे-बड़े का ध्यान के आपस में विवाह करा दिया । महादेव यह अद्भुत विवाह रीति देखकर हंस दिये और कहने लगे कि सती तुमने यह क्या किया? इन सबको "कड़बड़" कर दिया अर्थात् छोटी कन्या बड़े वर को तथा बड़ी कन्या छोटे वर को ब्याह दी । "कड़बड़" कहने से उनका 'कड़वा' नाम पड़ा । इन्हीं 52 पुत्रों ने गुजरात में गांव बसाये और उनसे 52 साक (गोत्र) कुलम्बियों के शुरु हुये । पहला पुत्र लवसंग नाम का था । वह माता की बिना आज्ञा लिये अपनी स्त्री लेकर अलग गांव बसाकर रहने लगा और उसकी सन्तति लेवा कुलमी कहलायी । बाकी 51 पुत्रों से कड़वा कुलमित्रों की उत्पत्ति हुई । इन्हीं बावन गोत्रों से (साक) तथा नाम से कुलम्बियों की उत्पत्ति है । माता ने पांती पाड़ी (भाग किये) और लड़कों को अलग-अलग हक दिये थे । इस कारण वे और उनकी संतति पाटीदार भी कहलाये । यही देवी माता उमिया जी ऊंझा (उत्तरी गुजरात) वाली बाद में अम्बा जी के नाम से विख्यात हुई । यह है कडवा कुलम्बी (पाटीदारों) के उत्पत्ति का पौराणिक इतिहास ।

कड़वा पाटीदार कुलमी समाज की कुलदेवी, श्री उमिया माता संस्थान, उत्तर गुजरात के प्रतिनिधि मंडल तथा श्री अम्बिका पाटीदार ट्रस्ट इन्दौर के पदाधिकारियों ने इन्दौर में रंगवासा मार्ग पर स्व० सेठ श्री पुरनचंद अम्बाराम पाटीदार से 12 एकड़ भूमि दान में प्राप्त कर उस पर 51 लाख की लागत से श्री अम्बिका, श्री उमिया तथा श्री अन्नपूर्णा माता का भव्य मन्दिर बनाने का कार्य 30 मार्च, 1987 को 'गुड़ी पड़वा' के पावन दिन प्रारम्भ कर दिया । गुजरात में पटेल बन्धुओं के नाम में "अम्बा" शब्द अक्सर देखने में आता है जैसे प्रसिद्ध उद्योगपति स्व० अम्बाभाई साराभाई, पाटीदार जाति सुधारक श्री बेचरभाई अम्बादास लश्करी इत्यादि ।

75 वर्ष पूर्व सन् 1919 में कलकत्ता से प्रकाशित, "बंगला विश्वकोष के सम्पादक नगेन्द्रनाथ वासु, हिन्दी शब्दकोश, अनुवाद एवं संकलन हिन्दी कि विद्वानों द्वारा, (प्रकाशक बी. आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली - 110052, पुनमुद्रण सन् 1986) के अनुसार :

कुनबी (सन् 1919 के दौर में) :- "**कृषि कर्मोपजीवी एकजाति, खेती करने वाली एक हिन्दू कौम । प्रायः** संयुक्त प्रान्त, बिहार, छोटा नागपुर और उड़ीसा में रहते हैं । उनकी देह सुगठित एवं अंग-प्रत्यंग अनेक अंश में सुसभ्य आर्यों से मिलते हैं । आचार-बिचार साधारण हिन्दुओं के समान हैं । किन्तु छोटा नागपुर और उड़ीसा में कुनबी वैसे नहीं होते । बिहार के कुनबियों में गराइन और कश्यप गोत्र प्रचलित हैं । उनकी उपाधि मुखिया, चौधरी, मण्डल, रावउ, सिंह होती है । जैसवार कुनबी कृषिकार्य द्वारा ही जीविका चलाते हैं । मानभूम वाले कुनबी अपने को सबसे श्रेष्ठ बताते हैं ।

युक्त प्रान्त में प्रधानतः खरीविन्द, पतरिया, घोरचड़ा, जैसवार, झुनैया कुनबी रहते हैं । अधिक दिन नहीं हुये, अवध में दर्शन सिंह नामक किसी व्यक्ति को स्वजातीय कुनबियों में राजा की उपाधि प्रदान की गई थी । युक्त प्रदेश (उ० प्र०) में बड़े धनाढय कुनबी देख पड़ते हैं ।

गुजरात, महाराष्ट्र, खानदेश, बरार प्रभृति स्थानों में भी खेती करने वाले कुनबी विद्यमान हैं, सुप्रसिद्ध सिंधिया राज कुनबी ही जाति सम्भूत हैं ।

उनमें स्त्री-पुरुष दोनों ही बलवान, कष्ट, सहिष्णु और अधिक परिश्रमी होते हैं । स्त्रियां स्वामियों की कृषिकार्य में सहायता करती हैं । एक प्रवाद है - **"भली जाति कुरमिन की खुरपी हाथ, खेत निरावे अपने प्रिया के साथ"** ।

बिहार और युक्त प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों के कुनबियों में बाल-विवाह प्रचलित है । विवाह प्रणाली हिन्दू धर्मानुसार सम्पन्न होती है । ब्राह्मण लग्न विचारते हैं । **विवाह के दिन प्रातःकाल कुल प्रथा के अनुसार वर अपने गृह में प्रथम अम्ब वृक्ष और कन्या महुवे के पेड़ से विवाह करती है** । सन्ध्या को वर-बरात के साथ कन्या के पितृगृह जाता है ।

एक मृण्मय पात्र में दीपक जला करता है । दम्पत्ति उक्त आलोक की सात बार प्रदक्षिणा करते हैं । फिर वह एक स्थान पर जाकर बैठते हैं । वर कनिष्ठांगुलि के रक्त से कन्या का वक्षस्थल स्पर्श करता है । कुनबियों में रक्तदान ही सिन्दूर दान समझा जाता है । तद्पश्चात् कन्या के हाथ में लोहे का कंगन पहनाते हैं । वही कंगन **कुनबियों** का विवाह प्रतिभास्वरूप है । युक्त प्रदेश और बिहार में ब्राह्मण ही मन्त्रादि उच्चारण करते हैं । उड़ीसा के कुनबियों में **शैव, शाक्त और वैष्णव** तीन समुदाय दिखाई पड़ते हैं । ब्राह्मण उनका पौरोहित्य करते हैं । हिन्दुओं की प्रधान उपास्य देवी को छोड़ बिहार के कुनबियों के **"मोकिनी महतो"** नामक एक ग्राम्य देव की भी पूजा होती है । छोटा नागपुर के **कुनबी गोसाईं, राय, घाटा, गारीयार, ग्रामेश्वरी, किंचकोरी, बीरमदेवी, सातबाहिनी, वकुमघुड़ी और महामाया** को पूजते हैं । भारत में सन् 1919 में प्रायः 75 लाख **कुनबी** रहते थे, आजकल **कुनबी** अपने को **कूर्मवंशीय क्षत्रिय** बताते हैं ।" ध्यान दीजिये सन् 1919 में भी कुनबी अपने को कूर्मवंशीय क्षत्रिय बताते थे । **इस ओर बिहार के कुरमियों को विशेष रूप से सोचना चाहिये** ।

उपर्युक्त वर्णन जोकि अब से 75 वर्ष पूर्व पर सन् 1919 में **'बंगला विश्वकोष'** में उसके सम्पादक **श्री नगेन्द्र नाथ बासु** ने बंगला भाषा में किया था, जिसका हिन्दी अनुवाद और संकलन-**हिन्दी शब्दकोश** के शीर्षक से सन् 1986 में पुनर्मुद्रण **बी० आर० पब्लिशिंग कारपोरेशन दिल्ली - 110005** द्वारा किया गया था । इस 75 वर्ष पुरानी पुस्तक में से कई बातों की पुष्टि होती है । प्रथम यह कि तब भी कूर्मि जाति के लोगों के बारे में अभिधारणा थी, जैसा ऊपर व्यक्त किया गया है-**"इनकी देह सुसंगठित और अंग-प्रत्यंग अनेक अंश में सुसभ्य आर्यों से मिलते हैं ।" दूसरा कुनबी-कुरमियों का पुश्तैनी व्यवसाय कृषि रहा है । तीसरा इस स्वतंत्र स्रोत से यह भी प्रमाणित होता है कि 75 वर्ष पूर्व तक कुनबियों की विवाह-प्रणाली हिन्दुओं के धर्मानुसार सम्पन्न की जाती रही है । और विवाह के दिन प्रातःकाल कुल प्रथा के अनुसार अपने गृह में प्रथम अम्ब (आम) वृक्ष से कुरमी वर का सांकेतिक विवाह कराने की प्राचीन विवाह-प्रथा थी जिसका प्रोफेसर जे० एफ० हेविट ने तथा एच० एच० रिसले ने अपने ग्रंथों में उल्लेख किया है उसकी पूर्णतः पुष्टि एक विश्वसनीय भारतीय स्रोत से भी हो जाती है । प्राचीन इस बंगला हिन्दी-शब्दकोश का कुनबी सम्बन्धी विवरण यहाँ देने का इस लेखक का यही मात्र अभिप्राय रहा है।**

अध्याय - 4

आधुनिक दर्पण में कूर्मि जाति

मानव इतिहास का महत्व

अनेक धर्मों को मानने वाले, विश्व में फैले हुये सैकड़ों मानव समुदाय हैं, जिनमें विशेष करके हिन्दू और मुसलमान, विभिन्न जातियों में विभक्त हैं , जोकि विभिन्न देशों में बसे हुये हैं, वे आकृति, रंग-रूप खान-पान और परिस्थितियों के कारण-वेश विन्यास में कितने ही बदले-बदले क्यों न प्रतीत होते हों, वस्तुतः वे सब एक मूल-पुरुष से जन्मे हैं और एक स्थान से विकसित होकर संख्या के बढ़ने के साथ-साथ चारों ओर जहां भी सिर ढ़कने को जगह मिली, इस भूतल पर फैल गये ।

प्रारम्भिक मानव-समुदाय की आबादी जैसे-जैसे बढ़ी, उसकी बुद्धि का विकास होता गया । वैसे-वैसे ही उनकी आवश्यकताओं में भी वृद्धि हुई और उन्होंने अपने बल-बुद्धि से उनकी प्राप्ति में नये-नये भू-स्थलों की ओर कदम बढ़ा दिये, जहां उचित लगा वहां-वहां वे बसते गये । प्रारम्भ में गुफा-कन्दराओं में रहे और अपनी सुरक्षा अथवा भक्षण के लिये जीव-जतुओं के शिकार के लिये हाथ से फेंक कर मारने वाले अनेकानेक प्रकार के पत्थर के औज़ार बनाये । इसे मानवीय इतिहास का प्रस्तरयुग या पाषाण-युग कहते हैं । मानव-प्रगति करता गया। वह आगे के कास्ययुग में बहुत कुछ तरक्की कर गया । फिर वह मध्यकालीन दौर से गुजरा । उसके अलग-अलग समुदाय बनते चले गये । तब तक आवश्यकतानुसार भू-तल का विभाजन राष्ट्रीय सरहदों में हो चुका था । आदमी की मूल जरूरत **रोटी-कपड़ा-मकान** कमोवेश पूरी करने में वह सक्षम बन चुका था । परन्तु अब वह चाहने लगा था कि उसकी रोटी-कपड़ा-मकान औरों से और अच्छा हो, उसे संचय की आदत के अतिरिक्त युद्ध कर दूसरे से छीनने की भी आदत पड़ गयी थी । इसी नियत से वह अपने देश की सरहदों को बढ़ाने लगा । शक्ति-वृद्धि करने लगा और युद्ध करके नये-नये इलाकों पर अपना कब्जा करने लगा । वह युद्ध में सफलता सुनिश्चित करने के लिये नये-नये ज्यादा घातक और कारगर अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण भी करने लगा तथा दूरी को जल्दी से तय करने के लिये अपने वाहन बनाने के उद्देश्य से गधे, खच्चर, घोड़े, ऊँट तथा हाथी तक अनेक जानवरों को उसने पालतू बना लिया ।

मनुष्य प्रारम्भ में प्रकृति के प्रकोप से जूझता था, भयानक जीव-जन्तुओं से टक्कर लेता था । अब अन्य मानवीय दलों को गैर समझकर, अपनी स्वार्थसिद्ध के लिये एक मानव-समुदाय दूसरे से लड़ने-भिड़ने और मारकाट भी निस्संकोच करने में लग गया । वह अनेकानेक प्रकार के खाद्य पदार्थों की जानकारी एवं भण्डारण करना, कृषि-कर्म, पशु-पालन आदि में निपुणता बहुत कुछ प्राप्त कर चुका था । जो प्रारंभिक आदमी आकाश में बिजली चमकने या बादल गरजने से अत्यधिक घबराकर जान बचाने बेतहाशा इधर-उधर भागता दीखता था, उसी की सन्तति अब अनेक प्राकृतिक प्रकोपों से शान्तिपूर्वक जूझना सीख चुकी थी, उन पर काबू भी पाना जान गये थे । इस तरक्की शुदा आदमी ने अनेक धर्मों को प्रतिष्ठापित करते हुये, इस पृथ्वी पर इतनी लकीरें इधर-उधर बना डालीं कि वे विभिन्न बहुत सारे मुल्कों की भौगोलिक सीमायें बन गयी, उनमें अलग-अलग वर्ग, धर्मावलंबियों और जातियों का भी विभाजन हो गया और वे सब अब अपने को एक ही आदि पिता की सन्तान तक कहना भूल गये, मानने का प्रश्न ही कहां उठता है । मोटे तौर पर यही आज की इक्कीसवीं सदी में प्रवेश को तत्पर मानव-समाज की वस्तुस्थिति है । हां बीसवीं सदी में इस आदमी ने बड़ी तरक्की की, वह पहली बार चन्द्रमा के तल पर उतरा।

बाद में तो अन्तरिक्ष यात्रा एक साधारण बात हो गई । अपने भौतिक सुखों में खूब वृद्धि की तथा विनाश के भयंकर साधन भी ईजाद कर डाले । 6 अगस्त 1944 को हिरोशिमा और नागासाकी नगरों का क्षणभर में अणुबमों से विध्वंस इसके ज्वलंत उदाहरण हैं । परिणामस्वरूप जापान को द्वितीय विश्व युद्धमें संयुक्त राष्ट्र सेनाओं के सम्मुख घुटने टेकने पड़े ।

वैज्ञानिक दृष्टि में चार्ल्स डारविन का मानव क्रमिक विकास का या डॉ स्टीफेन गाइड आदि अनेक मानवशास्त्र के विद्वानों का कुछ योगदान भी रहा है, पर इतिहास साक्षी है कि चाहे कोई हिन्दू हो, चाहे मुसलमान हो और चाहे ईसाई या यहूदी, सबकी धार्मिक मान्यतायें इस बिन्दु पर एक जैसी हैं कि एक ही आदि पुरुष और स्त्री से ही दुनिया के आदमी या पुरुष अस्तित्व में आये । चाहे उन आदि स्त्री-पुरुष को अलग-अलग नाम से सम्बोधित कर दें, उत्पत्ति की कथा को अपने-अपने ढंग से कहें, इस सृष्टि-रचना को अलग-अलग कथानकों, आख्यानों तथा मिथकों से वर्णन करें, पर मूल तथ्य समान हैं सब धर्मों के मनुष्यों की प्रजनन क्रिया समान है । समान तरह से उसके शारीरिक अंग, आंख, कान, नाक, ह्रदय, गुरदा, गुप्तांग आदि होते हैं और समान प्रक्रिया के साथ वे समान स्थानों पर हरेक के शरीर में पाये जाते हैं । अतः मूलभूत सभी बातों में मानवी शरीर रचना में समानता पायी जाती है, केवल रूप-रंग, बाल, कद शरीरिक आकार आदि बाह्य शारीरिक चिह्नों को छोड़कर । बच्चे का पैदा होने का तरीका और नवजात् शिशु का प्रारम्भिक व्यवहार, चिरकाल से एक जैसा चला आया है और मृत्यु प्रक्रिया भी समान रूप से सभी धर्मावलम्बियों की एक जैसी होती है । विभिन्न धर्मावलम्बियों की मृत-शरीरों की अन्त्येष्टि अलग-अलग ढंग से अपने रीति-रिवाजों के अनुसार चाहें की जाती हो, उसके सृष्टा का इसमें कोई हाथ नहीं । अब प्रश्न उठता है कि यह सृष्टा या मानव बनाने वाला महापुरुष कौन है? वह किसी आकार का है या निराकार है? या आदमी या मनुष्य को जीवन देने वाला या बनाने वाला और उसकी अन्तिम सांसों तक किसी अदृश्य पर ज्ञान-चक्षुओं से अनुभव कर सकने योग्य किसी प्राकृतिक अटल, अमर शक्ति से संचालित है । और यदि वह ऐसे ही संचालित है तो एक अलग प्रश्न है जिसका उत्तर इस पुस्तक के मूल विषयों से हटकर है अतः उसे यहां देना असंगत रहेगा ।

कुरमी जाति का आधुनिक इतिहास

विद्वतजनों का मत है कि इतिहास से वर्तमान और भविष्य का निर्माण होता है, जबकि वर्तमान से इतिहास और भविष्य का । इतिहास के दर्पण से हमें अपने अतीत का बोध होता है,उसकी जानकारी मिलती है । इतिहास मानवीय घटनाओं, संकल्पों, संगठनों की अनवरत प्रकिया है । इतिहास किसी भी देश का हो सकता है, समाज का या किसी जाति विशेष का भी हो सकता है, पर उन सबके मूल में उपर्युक्त बातें सदैव निहित होती हैं । इतिहास की उपयोगिता निर्विवाद है, चाहे वह कोई राष्ट्र हो जातीय इतिहास की चर्चा करें तो यह भी सत्य है कि इसकी उपयोगिता अन्य जनों की तुलना में उस जाति विशेष के लोगों के लिये सर्वाधिक है ।

यदि हमारा कार्यक्षेत्र या चिन्तन विषय किसी जाति विशेष तक है तो बहुत जरूरी हो जाता है कि उस जाति विशेष के इतिहास का समय-समय पर भलीभंति अवलोकन किया जाये, जिससे आगे के जाति संबंधी कार्यकलापों को और अच्छी तरह कियान्वयन में मार्ग-दर्शन भी मिलेगा और पिछली हुई भूलें जो जाने-अनजाने में गुजरे जमाने में हमसे या हमारी पिछड़ी पीढ़ियों से हुई हैं, उनकी पुनरावृत्ति भविष्य में न हो सकेगी । तथा सुधार के और अच्छे तथा नये-नये कार्यक्रमों को अपना कर उससे समाज को लाभान्वित किया जा सकता है । इसी दृष्टिकोण से हमें अपनी **"अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा"** के गत सौ वर्षों के इतिहास का अवलोकन तथा उस पर गम्भीरता से विवेचना करना तथा तीव्र गति से सुधारवादी कार्यक्रमों को अपनाने से, इस जाति के करोड़ों लोगों को बड़ा लाभ मिलेगा ।

इस जाति विशेष के इतिहास के अध्ययन से हमें यह जानकारी मिलती है कि कुछ शताब्दियों पहले सारे देश में सर्वत्र, कुनबी-मराठों की कीर्तिध्वजा **छत्रपति शिवाजी महाराज** के नेतृत्व में फहराने लगी थी किन्तु हिन्दुओं में आपस में फूट तथा ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित ऊँच-नीच की भावना के कारण आगे एक शताब्दी तक ही वह स्थिति चल पायी । **आर. बी. रसल** (वाल्यूम 4, पृष्ठ 201, **पुस्तक "ट्राईब्स एण्ड कास्टस ऑफ, दा सेन्ट्रल प्रोविन्सस आफ इंडिया",**) के अनुसार **"मराठा जाति तीन महान कबीलों, कुनबी, धनगर (गड़रिया) और ग्वाला मिल कर बनी है । उनके सादे जीवन, रहन-सहन और रीति-रिवाज़ तथा व्यवहार का शायद यही मूल कारण है, जोकि मराठों की विशिष्टता है ।" अज्ञानवास** के शक्ति **"पवारा"** की निम्नलिखित लोकप्रिय पंक्तियां अब भी महाराष्ट्र में गाई जाती **हैं** :-

"शिवजी सरले सलाम केला,
अफजल खां ने गुमान केला,
खान वादुनी बोलता,
तू कुनबी का छोकरा ।"

यह वर्णन उस समय का है जब शिवाजी महाराज तथा फजलखां की भेंट होती है तो शिवाजी को छोटा जताने के लिये उन्हें **'कुनबी का छोकरा'** कह कर सम्बोधित किया था । आगे क्या घटा, उससे पाठकगण् परिचित ही होंगे ।

सन् 1674 ई० में छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपना राज्याभिषेक कर हिन्दू धर्म, हिन्दू सभ्यता और हिन्दू संस्कृति की रक्षा के लिये **हिन्दू पदपादशाही** की स्थापना की तथा साथ ही साथ उन्होंने **हिन्दवीं मराठा साम्राज्य** की नींव रखी ।

जे. एन. मिल ने अपनी पुस्तक **"हिस्ट्री ऑफ द सैन्ट्रल प्राविन्सेस एण्ड बरार"** में मत व्यक्त किया है कि - **"मराठे लोग उस जाति के हैं, जिनका गठन सैनिक-सेवा से हुआ और ऐसा अनुमान है कि वे कुनबी खेतिहर लोगों में से उभरे, जिन्होंने हथियार उठाये । और शिवाजी की ओर से औरंगजेब के विरुद्ध मुहमों में उनके अनुयायी रहकर लड़े । उनमें युद्ध-काल की कठोरता के स्वभाव में बिल्कुल कमी न आयी थी, जिसकी ख्याति ह्वेन सांग के दिनों में भी थी ।"** यह चीनी यात्री 630-644 ई० में हर्षवर्धन के शासन काल में भारत में रहा था ।

"कुनबी" और "मराठा" लोगों का आपसी रिश्ता क्या है, उसका **"बाम्बे प्रेसीडेंसी एण्ड सेण्ट्रल प्राविन्सस"** नामक ग्रन्थ में इन शब्दों में उल्लेख किया गया है :-

"कुनबी" और "मराठा" शब्द पूना जिले में बिना भेदभाव के एक दूसरे के लिये बार-बार प्रयोग होते हैं । कुरमी (मराठा) और कुनबी वास्तव में एक ही वर्ग के लोग हैं । कुनबियों को स्वभावतः आजाद-प्रकृति प्रदर्शन का शौक होता है निम्नलिखित कुछ मुहावरे भी इस संबंध में प्रचलित हैं ।

1 **"जहां बादल गरजे, उस धरती का स्वामी कुरमी"**
2 **"कोटि चले कुर्मी के पीछे, कुर्मी नहीं, काहू के पीछे" तथा**
3 **"कुर्मी सर्वत्र भूपति"** ।

"इलस्ट्रेटड वीकली ऑफ इण्डिया के 2 मई 1971 के अंक में एक लेख के अनुसार कुनबी जाति, जोकि आरम्भ में केवल खेतिहर मजदूर थे, अब मराठों में समाविष्ट हो चुकी है, मराठों और कुनबियों का अनुपात अभी 45:55 है । एक ऐसी पद्धति मराठों और कुनबियों में विद्यमान है कि मराठा कुनबी-कन्या से विवाह करने को तैयार होगा, यदि उसके लोग काफी सम्पन्न हैं ।"

भारतीय न्यायालयों ने भी अपने न्यायिक उद्घोषणा द्वारा भारतीय सामाजिक ढांचे में कुनबी और मराठों के मध्य नाते को स्पष्ट कर दिया है । वर्धा (तत्कालीन सेण्ट्रल प्रांविन्सस) के अतिरिक्त जिला जज, श्री डी. के मल्हाटकर ने सी. पी. सिविल सूट संख्या--22, वर्ष सन् 1920 ई0 के अन्तर्गत अपना निर्णय 20 अक्टूबर 1921

को दिया कि - "मराठा जाति एक वंश है और कुनबी उसकी उपजाति है और वे मराठे जोकि कृषि-व्यवसाय को अपनाये हुये हैं, उन्हें कुनबी कहा जाता है ओर मराठा और कुनबी में विवाह पूर्णतः न्याय-संगत है ।"

राजस्थान में कुर्मी, कलबी, कुलमी एवं कणबी

डा० भंगुभाई आर० पटेल अपनी पुस्तक के पृष्ठ 161 पर लिखते हैं :-

"गुजरात में बसने वाले कुर्मी भाई "लेउवा" तथा "कड़वा" संज्ञा से जाने जाते हैं । उनके रीति-रिवाज, आचार-विचार समान होते हुये, रोटी का व्यवहार होते हुये भी, बेटी का व्यवहार नहीं है । क्योंकि वर्षों पूर्व कड़वा कुर्मियों में कारणवश लग्न-पद्धति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ और यह पद्धति लेउवा बन्धुओं के पूर्वजों को प्रतिकूल लगने के कारण इन दोनों शाखाओं में बेटी-व्यवहार बन्द हो गया, जिससे धीरे-धीरे अन्तर बढ़ता गया। दोनों पक्षों के विद्वानों और विचक्षण नेताओं ने शिक्षा की अभिवृद्धि करके उन्नति के अथक प्रयास किये हैं, जिसके मीठे फल शीघ्र ही मिलेंगे । कड़वा कुलमियों की आबादी गुजरात के अलावा **खानदेश, मालवा, राजस्थान, सौराष्ट्र** तथा **कच्छ** में अधिक है । साथ में लेउवा भी बसते हैं ।"

यह सर्वविदित है कि प्राचीन काल के कुरमियों के दो कर्म थे, युद्ध और कृषि । वह बारहमासी कृषक था पर आवश्यकता पड़ने पर कुशल योद्धा का दायित्व भी बड़ी निपुणता से निभाता था । जिस प्रकार भारतीय भाषाओं में "**हल**" का काम करने वाले को "**हली**" भी कहते थे और उसी प्रकार उस शब्द का फारसी भाषा में पर्याय "**कलब**" होने से "**हली**" को भी "**कलबी**" कहा जाने लगा । जमाना मुसलमान सल्तनतों का तथा मुगल शासन का आ चुका था । इसी "**कलबा**" शब्द का अपभ्रंश "**कलबी**" हो गया । आगे चलकर वे ही "**कलमी**" और "**कणबी**" कहे जाने लगे । "**राजस्थानी जातियों की खोज**" नामक ग्रन्थ में "**कलबी पटेल**" जाति के सम्बन्ध में पृष्ठ संख्या 133 पर अन्वेषक **रमेश चन्द्र विद्यार्थी** ने लिखा है कि "**इस समाज के कई वर्ग क्षत्रियों में जाने जाते हैं** ।" उक्त पंक्ति का अर्थ हुआ कि कलबियों की एक विशाल जाति है । जिसमें अनेक भेद होते हैं । कृषि पर निर्भर हो जाने के कारण इनके "**कलबी क्षत्रिय**" से "**क्षत्रिय**" शब्द उनके इस कर्म के लुप्त हो जाने से लुप्त हो गया और वे मात्र कृषक यानी कलबी रह गये ।

17 नवम्बर, सन् 1948 को पुष्कर और शाहपुरा में "**क्षत्रिय धर्म समाज**" का सम्मेलन हुआ था उसमें अन्य क्षत्रियों की तरह **आंजणा गोत्र** वाले **कलबी लोगों** को भी क्षत्रिय मानते हुये आमंत्रित किया गया था (देखिये दैनिक "**दरबार पत्र,**" दिनांक 29 नवम्बर, 1948 अजमेर से प्रकाशित)। उक्त सम्मेलन में दिनांक 5,6 मार्च, सन् 1949 ई० को मध्यभारत के रतलाम नगर में "**राजपूत सेवा संघ**" का अधिवेशन हुआ था । उसमें भी कणबी जाति को शुद्ध क्षत्रिय मानते हुये आमंत्रित किया गया था । उक्त दोनों सम्मेलनों के आमंत्रण पत्रों से यह पुष्टि होती है कि **कलबी, कुलबी, कुनबी क्षत्रिय वर्ण** के ही है अन्य तीनों (ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र) में से नहीं ।

यायावर जाति प्रसिद्ध लेखक **श्री रामकृष्ण मेहता** महासभा के शताब्दी समारोह पर प्रकाशित, अपनी नयी पुस्तक "**समाज के अनमोल रत्न**", पुस्तक के पृष्ठ 36 पर लिखते हैं ।

"यह बात स्पष्ट है कि राजस्थान और मालवा में हूणों का राज्य समाप्त होने पर हूण आर्यों के तीन भाग हो गये थे । प्रथम भाग ने राजाओं से भयभीत हो कर कश्मीर की ओर शरण ली, द्वितीय भाग में उन हूणों को गिना जा सकता है जिन्होंने यहां नये राजाओं की अधीनता स्वीकार कर छोटे-छोटे राजाओं के रूप में रहना स्वीकार किया । तृतीय भाग में उन हूणों को गिना जा सकता है जो राज्य करने की लालसा छोड़कर सदा के लिये शांतिमय कृषक-जीवन अपना कर कलबी क्षत्रियों से जा मिले । आज भी हूण कुरमियों में शाख मान्य उक्त प्रकार के हूणों के कुलबी क्षत्रियों के साथ जा मिलने का उल्लेख "**राजपूतों का इतिहास**" नामक पुस्तक की पृष्ठ संख्या 130 पर **प्रसिद्ध विद्वान ग्रन्थकर्त्ता रायबहादुर पंडित गौरी शंकर हीराचन्द ओझा** ने इस प्रकार किया - "**अब तो हूणों का कोई राज्य नहीं रहा** । **राजपूताना और गुजरात** आदि के **कुनबी लोग** जिनकी गिनती अच्छे

कृषिकारों में हैं, हूण जाति के अनुमान किये जाते हैं ।" पर गुजरात के कुनबियों का प्रमाणित इतिहास है अतः वहां उनका यह अनुमान सही नहीं मालूम पड़ता ।

भारत की सेन्सस रिपोर्ट 1981 ई0 भाग 2, पृष्ठ 41 पर मूल अंग्रेजी में उल्लेख मिलता है 'The orginal home of Kalbi in Marwar was Bhinmal now amalgamated with Jaswantpura, from where they proceeded to Patan in Gujrat'

अर्थात - **कलबियों** का मूल निवास मारवाड़ (राजस्थान) में **भनमाल** था जो अब **जसबन्तपुरा** के साथ विलय किया जा चुका है । जहां से वे लोग **पट्टन** गये । विक्रम सम्वत् 212 में कलमी क्षत्रियों ने **ऊमापुर पट्टनपुर (ऊँझा)** नगर की स्थापना की । वहीं कुनबी बन्धुओं का प्रसिद्ध **श्री उमिया माता मन्दिर** स्थित है । दो तरह के कलबी हैं, **देशी** और **मारवाड़ी** । **मारवाड़** से जाकर गुजरात में बसने के कारण आज भी उनको मारवाड़ी कलबियों के नाम से पुकारा जाता है । आंजणों के मारवाड़ प्रदेश में रहने के कारण संज्ञा मारवाड़ी हुई और जो लगातार गुजरात प्रदेश के ही निवासी बने रहे उनको **"देशी" आंजणा** की संज्ञा मिल गई । पुराने जमाने में **राजस्थान** में एक बार भयंकर सूखा पड़ने के कारण ये कूलबी गुजरात आदि प्रदेशों में जा बसे ।

आंजणा कलबियों में वैष्णव, जैन तथा श्री स्वामीनारायण मत

आंजणा बहुधा वैष्णव-धर्म के मानने वाले होते हैं, वे त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) को शक्ति का प्रतीक मानकर उनकी उपासना करते हैं । आंजणा कलबी पशु-बलि रहित यज्ञ में भी विश्वास रखते हैं । गुजरात के कुछ आंजणा जैन धर्म, के भी अनुयायी हैं जोकि हिन्दू धर्म का अंग है। मारवाड़ वासी कुछ आंजणा कबीर-पंथी भी हैं । सांचोर परगना के आंजणा कलबी **श्री स्वामीनारायणिया** (श्री स्वामीनारायण पंथ के अनुयायी) भी कहलाते हैं । गुजरात में वे **कृष्ण भक्त** कहे जाते हैं ।

होल्कर राजवंश

होल्कर राजाओं को ऐतिहासिक पुस्तकों में मराठा नाम से सम्बोधित किया है । होल्कर राजवंश पर विचार करने से पहले क्षत्रियों के 36 राजवंशों की सूची अनेक विद्वानों ने प्रस्तुत की है, जिसमें **'हल' (हलकर, होल्कर) देखिये कल्हण की राजतरंगिणी और पृथ्वीराज रासो में क्षत्रिय वंशावली** । **धनगर** के अतिरिक्त **गड़रिये जाति** के लोगों को **"पाल"** व **"बघेला"** भी कहा जाता है ।

श्री मधुसूदन होल्कर ने बड़ी अच्छी पुस्तक **"होल्करों का इतिहास"** लिखी है जिसे **"होल्कर संघ-दिल्ली"** द्वारा सन् 1992 ई० में प्रकाशित करवाया, उसी से साभार कुछ जानकारी पाठकों के लिये यहां दी जा रही है :-

"हुल" का अर्थ **"दोधारी तलवार"** होता है, **(बृहत हिन्दी कोष प्रसाद, सहाय, श्रीवास्तव,** पृ० 1366) दोधारी तलवार सामने की नोक तथा दोनों धारों से बार करती है । **"हुलू"** का अर्थ **"मेष"** (भेड़) होता है । कालान्तर में **हुल बंश** के क्षत्रियों ने आपत्तिकाल में भेड़-बकरियों का पालन-पोषण कर अपना जीवन-यापन किया तथा आगे चलकर वे ही **होल्कर** कहलाये । होल्कर राजवंश के पूर्वज धनगर (गड़रिया) कहलाते थे । **"धन"** शब्द संस्कृत में **"धेनु"** से बना है । जिसका अर्थ गाय होता है । **"गर"** फारसी का शब्द है, जिसके अर्थ पालने वाला होता है । **"धन"** और **"गर"** के योग से **"धनगर"** शब्द बना । शास्त्रों में गाय, भैंस, भेड़ बकरी इत्यादि दूध देने वाले पशुओं को **"गोधन"** या **"धन"** भी कहते हैं । इस प्रकार भेड़ पालने वाली एक हिन्दू जाति धनगर कहलायी ।

एक अन्य घटना के अनुसार महमूद गजनवी ने चित्तौड़ पर हमला किया तो उस समय अनेक क्षत्रिय वीरों ने जान देकर उसकी रक्षा की । **"हुल"** नाम के कबीले भी उसमें सम्मिलित थे । **(टाड राजस्थान, विलियम कुक,**

आयंगर 1, पेज 290)। उस समय तीस हजार राजपूत परिवार घर छोड़कर दूर-दूर चले गये । यह अराजकता और गड़बड़ी का जमाना था । होल्कर परिवार के मुखिया भी अपना स्थान छोड़कर मथुरा के निकट "धना नामक" स्थान पर बस गये । उनके वंशजों ने इसलिये अपनी जाति पहचान नाम धनगर (गड़रियों) रख लिया । उस जाति विशेष के धनगर नामकरण होने का यह द्वितीय कारण का उल्लेख मिलता है ।

सर्वप्रथम मल्हरराव होल्कर ने पेशवाओं के नेतृत्व में मराठा साम्राज्य को चरम सीमा तक देश में दूर-दूर तक फैलाया । तत्कालीन पेशवा ने खुश होकर उनको 75 परगनों की "सरजाम" सौंप दी । इस तरह सन् 1731 ई० में होल्कर राज्य की स्थापना हुई और इन्दौर इसकी राजधानी रखी गई । आगे महाराजा यशवंतराव होल्कर ने डटकर अंग्रेजों से टक्कर ली । लाहौर के महाराजा रणजीत सिंह के माध्यम से अंग्रेजों ने महाराजा यशवंतराव होल्कर से स्वयं सन्धि की और उन्हें एक स्वतंत्र महाराजा स्वीकार कर लिया गया । होल्कर, राजवंश देशी रियासतों के विलीनीकरण के परिणामस्वरूप 28 मई 1948 ई० तक चला । होल्कर राजवंश में देवी अहिल्याबाई का बड़ा नाम और यश सर्वत्र फैला । वे होशियारी, निपुणता तथा वीरता में दुर्गा की मूर्ति थी । दया-धर्म तथा त्याग के लिये वे सदा प्रातः स्मरणीय देवी स्वरूपा हैं ।"

यह लेखक हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं मूर्धन्य विद्वान डा० श्याम सिंह शशि, "पद्मश्री", पूर्व डाइरेक्टर जनरल, प्रकाशन विभाग, सूचना, प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, का और इसी प्रकार द्वितीय विभाजन के पूर्व दिल्ली जनता दल के महामंत्री, श्री हेमराज आर्य का भी स्नेह पात्र रहा है । दोनों महानुभाव धनगर (होल्कर) समाज के हैं । इसी प्रकार ब्रिगेडियर दिलबाग सिंह (सेवानिवृत्त) से घनिष्ट परिचय हुआ है । वे होशियारपुर (पंजाब) में जन्में सैनी जाति के हैं । जिनका एक लेख अन्यत्र इस पुस्तक में दिया गया है । उन सबकी राय है कि कृषि-सम्बन्धित सभी जातियों को एक मंच पर संगठित होकर सामूहिक रूप से अपनी-अपनी समस्याओं का समाधान निकालना चाहिये और उन्हें आपसी सहयोग से दूर करना चाहिये ।

आधुनिकता का प्रभाव

भारतीय समाज पर आधुनिकता का असर धीरे-धीरे पड़ा है । अंग्रेजी शासन-काल में नई शिक्षा, सरकारी नौकरियां, बालिग मताधिकार और विभिन्न व्यवसायों के विस्तार का प्रभाव पुरानी जाति-पांत वाली जटिल रूढ़िवादी समाज-व्यवस्था पर पड़ा है । शिक्षा प्रसार; नये शिल्प, तेज़ी से हुये शहरीकरण, पुराने संयुक्त परिवारों के टूटने तथा मानवीय रिश्तों का स्वार्थाधारित होना, तथा लोगों का काम-धन्धे के चक्कर में देशावर जाकर बस जाने आदि अनेक कारणों से जाति-विरादरी की कट्टर भावना शिथिल होती गयी है । सामाजिक व्यवहार, खान-पान आदि अपने परिवार से आगे जाति की परिधि तक भी सीमित न रह सका है ।

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, या चाहें उसे सिपाही विप्लव कह दीजिये, में देश के सभी वर्गों, धर्मावलम्बियों, जातियों-उपजातियों, भिन्न-भिन्न भाषाओं और सम्प्रदायों के नर-नारियों का जहां योगदान रहा है, वहां यह भी सच है कि कुरमी समाज के लोगों का, जो देश के विभिन्न स्थानों पर बसे हुये हैं और जिन्हें **कुरमी, कुनबी, कण्वी, कुलम्बी, मराठा, पटेल, रेड्डी, कापू, कम्मा और बक्कलिगर** आदि अनेकानेक नामों से जाना पहचाना जाता है, उनका योगदान भी अन्य किसी से कम नहीं रहा है । इस जाति के लोगों की मातृभाषायें, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगाली, उड़िया, कन्नड़ तथा तेलुगु आदि हैं और इसे दो तीन क्षेत्रीय बोलियों को बनाने का एवं सम्बद्ध करने का श्रेय भी प्राप्त है । वे बोलियां हैं मध्यप्रदेश की छत्तीसगढ़ी, उत्तर-प्रदेश की अवधी और झारखंड अंचल की कुरमाली बोली । इसके अतिरिक्त अपने-अपने प्रदेशों की प्रमुख भाषाओं तथा यहां तक कि राष्ट्र भाषा हिन्दी के संवर्धन में भी इन विभिन्न भाषा-भाषी कुरमियों का बहुत कुछ योगदान भी है । यह जाति जानती है कि,

"जो जाति अपने पूर्वजों का ध्यान कुछ रखती नहीं ।
वह जाति जीवित जाति में फिर रह नहीं सकती कहीं ।।"

---राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

ललित कलाओं और विधाओं के कूर्म रत्न

हिन्दी भाषा का प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदास कृत **"रामचरित मानस"** है । उसके प्रथम तथा प्रमुख टीकाकारों में जिनका नाम आदर से स्मरण किया जाता है वे बाराबंकी में जन्में, अयोध्या में अध्यात्म-ज्ञान अर्जित किये, **संत बाबा बैजनाथ कुरमी** हैं । तथा आंचलिक उपन्यास विधा के सम्राट, अमर शिल्पी **स्व. पद्मश्री फणीश्वरनाथ रेणु**, हिन्दी **"चन्दा मामा"** पत्रिका के पूर्व सम्पादक तथा हिन्दी के जाने-माने उपन्यासकार, **श्री बालशोरि रेड्डी** पूर्व केन्द्रीय राज्य मंत्री, भारत सरकार **प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद**, जोकि तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के महामंत्री थे, पूर्व कुलपति मगध एवं बिहार विश्वविद्यालय **प्रो. बी. एम. प्रसाद**, पत्रकारिता के जगत् के चमचमाते सितारे 93 वर्षीय **राणा जंगबहादुर सिंह**, पूर्व विधायक (दिल्ली प्रथम विधान सभा), उनके अनुज स्व. **श्री पृथ्वीपाल सिंह**, पूर्व विभागाध्यक्ष पत्रकारिता विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ तथा **प्रथम अध्यक्ष कूर्मि क्षत्रिय समाज**, दिल्ली, **वरिष्ठ सांसद श्री चन्दू लाल चन्द्राकर**, छत्तीसगढ़ी भाषा के महाकवि स्व. **श्री कल्पनाथ कश्यप**, पिछली पीढ़ी को मनोरंजन प्रदान करने वाली नौटंकी के जनक अपने समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध नक्कार वादक कानपुर के कलाकार **श्री त्रिमोहन सिंह**, आध्यात्म जगत के चमचमाते सितारे महाराष्ट्र के **संत तुकाराम**, विवेकानन्द आश्रम रायपुर के अध्यक्ष और संचालक **स्व० आत्मानन्द जी महाराज** तथा विश्वमाता गायत्री ट्रस्ट (पंजीकृत) दिल्ली के संस्थापक **स्वामी प्रज्ञानन्द**, 'वीरचक्र' विजेता **मेजर आलोक सिंह**, झारखंड के तथा बिहार के छऊ, लोकनृत्य सम्राट, पद्मश्री से अलंकृत, **श्री नेपाल महतो**, उत्कल वाले झारखंड अंचल के प्रसिद्ध झूमर सम्राट **श्री गिरीश चन्द्र मोहन्ता**, तथा उनके दामाद एवं **"करम राजा"** फिल्म के निर्देशक और प्रोड्यूसर युवा चलचित्र कलाकार, **श्री विपिन मोहन्ता** तथा छत्तीसगढ़ अंचल की प्रसिद्ध पंडयानी युवा गायिका एवं नृत्यांगना कु० ऋतु वर्मा आदि अनेक लोग हैं जिन्होंने कूर्मि क्षत्रिय जाति को देश-विदेशों में अपनी-अपनी विधाओं में विशिष्टता तथा ख्याति अर्जित करके गौरवांवित किया है । इस सब कूर्मि जातीय रत्नों पर उनके जातीय समाज को बड़ा गर्व है । इसमें अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के स्वजातीय रत्नों का उल्लेख नहीं है नहीं तो मराठों, पटेलों, रेड्डियों, नायडू आदि को सम्मिलित करने से कई पृष्ठ भर जाते ।

उन्नीसवीं शताब्दी का मध्यकाल

कर्नल डब्लू. एच. स्लीमन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रेजीडेन्ट एवं एजेन्ट के 1849-1850 ई० के दौरान अवध के अपने भ्रमण में जहां किसी भी गांव में उन्हें अच्छी कृषि, खुशहाली, अमन-चैन नज़र आया तो पता चला कि इसकी वजह है वहां बड़ी संख्या में कुरमी लोगों का बसा होना । उनकी भ्रमण डायरी में आद्यान्त **कुरमी** जाति के चरित्र, स्वभाव, कृषि-कर्म निपुणता, अमन-चैन पसन्दगी, कानून की पाबन्दगी का अच्छे शब्दों में उल्लेख किया गया है जबकि अपनी रिपोर्ट में अवध राज्य में बेहद बेईमानी, बदइंतजामियत, कानून-व्यवस्था का पंगु हो जाना, अफसरानों की बद्नियती आदि का खुलकर दो टूक शब्दों में जिक्र भी किया था । फलतः अवध के इन्हीं कारणों को अंग्रेज सरकार ने बताकर उसे अपने अधिकार में लेकर, नबाव वाजिदअली शाह को अपदस्थ कर दिया। उन्हें कलकत्ता ले जाकर मटियाबर्ज इलाके में नज़रबन्द कर दिया गया । वहीं पर कई वर्ष तक बेवसी की जिंदगी गुजारते हुये उनका इंतकाल हुआ । लखनऊ छोड़ते समय बादशाह वाजिदअली शाह के मुख से यह शेर निकला था :-

"दरो दिवार पर हसरत से नज़र करते हैं ।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं ।।

इस घटना के तुरन्त बाद सन् 1857 का सिपाही विपल्व हुआ । देश में बहुत कुछ मारकाट और तोड़-फोड़ हुई पर अनेक कारणों से यह अन्ततः असफल सिद्ध हुआ और अंग्रेज फिर सारे देश पर हावी हो गये । बागियों से बदला लेने तथा रियाया को बुरी तरह डराने के उद्देश्य से अंग्रेज फौज ने बहुत जुल्म ढाये । दोषी तो

दोषी-निर्दोषों को सरे आम फांसी पर लटकवा देने की हरकत एक अदना अंग्रेज आफीसर भी अक्सर कर गुजरता था। जगह-जगह इतने कहर ढाये, लोगों को मारा-पीटा, सम्पन्न वर्ग के लोगों को लूटा-खसोटा, जिसके परिणामस्वरूप पहले का हरा-भरा खुशहाल यह देश काफी अरसे तक बीरान और उजड़ा हुआ खौफनाक दृश्य प्रस्तुत करता रहा। किसी शायर ने ठीक कहा था । :-

सदा न बागां बुलबुल बोले,
सदा न बाग बहारां ।
सदा न जवानी रहती यारो,
सदा न सोहबत यारां ।।

सन् 1857 के सिपाही-विप्लव के पूर्व, बहादुरशाह जफर, दिल्ली के तख्त पर आखिरी मुगल बादशाह के रूप में बैठे थे, पर उस जमाने में बादशाह की ओर से आम रियाया के लिये जो शाही ऐलान जारी होते थे, उनकी शुरुआत इन जुल्मों से होती थी :-

"खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, हुक्म कम्पनी बहादुर का"

इतिहास वेत्ता **श्री रामफल सिंह** अपनी कृति **'हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का इतिहास'** में लिखते हैं :-

"1857 के स्वातंत्र्य समर को हिन्दू-मुस्लिम एकता का सर्वोत्तम दृष्टांत बताते हुए कहा है कि यह संघर्ष सिपाही विद्रोह अधिक था । उन्होंने मिलकर बहादुरशाह को अपना नेता चुना, जिन्होंने जोधपुर, बीकानेर, अलवर और दूसरे हिन्दू राजाओं को ख़त लिखकर देश भक्ति का परिचय देने का आह्वान किया । दासता के चिह्न समाप्त करने के लिये मस्जिदों में दुआएँ और मंदिरों में प्रार्थनाएं की गई ।"

इस संदर्भ में **स्वातंत्र्य वीर सावरकार** का यह कथन ध्यान देने योग्य है - **"11 से 16 मई 1857 के पांच दिन भारत के इतिहास में चिरस्मरणीय होंगे । महमूद गजनवी के समय से चला आ रहा हिन्दू-मुसलमानों का आपसी विवाद इन पांच दिनों ने समाप्त कर दिया ।"**

सन् 1857 के कथित विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने पुरानी दिल्ली के चांदनी चौक में स्थित फतेहपुरी मस्जिद अपने अधिकार में ले ली थी । बाद में यह मस्जिद अंग्रेजों द्वारा नीलाम की गई । उसी इलाके के सेठ छन्नामल ने सबसे ऊँची बोली देकर फतेहपुरी मस्जिद को खरीद लिया और बाद में उसे दिल्ली के मुसलमानों को सम्मानपूर्वक वापस कर दिया ।

ज्ञातव्य हो, कि तब तक बंगाल सूबे की दीवानी हक-हकूक, पूर्व मुगल बादशाह शाहआलम ने अंग्रेजी (ईस्ट इंडिया कम्पनी) को, बड़ी मजबूरी व दबाव की हालत में, उनकी ओर से इंतजाम करने के लिये दे दिये थे । इसीलिये तब से उन दिनों के सरकारी कागज़ातों में **ईस्ट इंडिया कम्पनी** को **"दीवान बहादुर"** के नाम से सम्बोधित और वर्णित किया जाता था । धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कम्पनी का आधिपत्य बंगाल के सूबे की सरहदों से बाहर बढ़ते-बढ़ते देश के बहुत बड़े इलाके पर फैल गया । उस सब विजित क्षेत्र के भी वे "दीवान बहादुर" बन गये । शासन का विस्तार देखते हुये, भारतीय जनता के जख्मी दिलों पर मरहम लगाने के ख्याल से, देशभर में फैले असंतोष की अग्नि पर पानी डालने के विचार से, 1 नवम्बर 1858 को इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने भारतवर्ष का शासन अपने हाथों में लेते हुये सबके साथ निष्पक्ष व्यवहार और समतापूर्ण बर्ताव करने का घोषणा-पत्र प्रकाशित किया । उसी का एक अनूदित अंश निम्नलिखित है :-

"..............भारतीय प्रजाओं में जो लोग अपनी-अपनी शिक्षा, सामर्थ्य और सच्चाई से जिन सरकारी कार्यों को पूरी रीति से करने के योग्य होंगे जाति और धर्म का विचार न करके निष्पक्ष भाव से उनको जहां तक हो सकेगा उन कामों पर स्थायी नियुक्त किया जायेगा ।"

.......सम्राज्ञी विक्टोरिया के घोषणा पत्र से

इलाहाबाद
तारीख 1 नवम्बर 1858 ई०

पर उससे पूर्व सन् 1857 के सिपाही विप्लव के लिये मुगल बादशाह, बहादुरशाह जफर पर लालकिले में अंग्रेजों ने 27 जनवरी से 9 मार्च 1858 तक मुकदमा चलाया। अन्त में उनको उम्र कैद की सज़ा सुनायी गयी और उन्हें हिन्दुस्तान से दूर रंगून में देश-निकाला करके, वहां नज़रबन्दी में रखा गया। अपने लड़कों, पोतों को अपनी आंखों के सामने मारे जाने के घोरतम ग़म में, शेर-शायरी करते हुये इस अधूरी पर बड़ी मामूली सी ख्वाहिश के साथ, अपनी बदकिस्मती पर अफ़सोस करते हुये, वे इस दुनिया से खामेशी से कूच कर गये :-

"कितना है बदनसीब ज़फ़र, दफ़न के लिये,
दो गज़ ज़मीं भी मिल न सकी कूए-यार में।"
"न किसी की आंख का नूर हूँ।
न किसी के दिल का करार हूँ।
जो किसी के काम न आ सके।
मैं वह एक मुश्तेग़ुबार हूँ।"

"जफर" ने रंगून में इसी तरह दुःख के दिन काटते हुये बरसों बिताये। उन कष्टों की अनुभूति उनकी शायरी में यों कर फूटी निकली :-

"खिलाया ग़म पिलाया खून-दिल मेहमानबाज़ी का,
तेरे एहसानमंद ऐ चर्ख़, हम दुनिया से जाते हैं।"

मगर ज़माना कभी किसी के लिये एक-सा नहीं रहता। किसी शायर ने सच कहा है :-

"जो सर आज जीनतवहे ताज है,
वह कल एक तकिये का मोहताज है।"

कालचक्र की करवट

मुगल साम्राज्य के समाप्त होने के पश्चात् अंग्रेजों को एक शताब्दी भी पूरी न हो पायी थी कि देश में ऐसे हालात पैदा हो गये कि वह जो पहला अंग्रेज बंगाल की खाड़ी से व्यापारी के रूप में देश में सूरत (गुजरात) शहर से घुसा था उसके आखिरी सिपाही तक को सन् 1947 में "गेट वे ऑफ इण्डिया" बम्बई से कवायद करते हुआ बाइज्ज़त पानी के जहाज में बैठकर अपने अफसरान साहिबान सहित बड़ी हरसत की निगाहें से पीछे छूटती जाती बम्बई महानगरी और गेट वे ऑफ इंडिया आदि को ताकते हुये अपने वतन लौट जाना पड़ा। अंग्रेज चले गये पर अंग्रेजियत अपने विकराल रूप में हमारे जन-जीवन में छोड़ गये हैं, उसके दोषी हम स्वयं हैं। हम सब उसको अपने जीवन में चिपकाये हुये हैं। एक और निशानी अभी भी प्रचलित है। वह है कि हमारे देश के सिविल कोर्ट्स का देशी नाम जिन को अभी भी दीवानी अदालतें कहा जाता है जोकि ईस्ट इंडिया कम्पनी के ज़माने के "दीवान बहादुर" शासन-तंत्र की याद तरोताज़ा कर देतीं हैं। इस देश के कर्णधारों को इंग्लैण्ड के सम्राट तथा साम्राज्ञी की प्रमुख नगरों के प्रमुख स्थानों पर लगी प्रतिमाओं को हटाने का, किंग्स एवेन्यु को "राज पथ" तथा क्वींस ऐवेन्यु को "जनपथ" बदलने की याद रही पर न्याय विद्वतगण कब "दीवानी" अदालतों के नाम पर ध्यान देंगे ? और गुलामी की निशानी को तज़कर उचित पर्यायवाची शब्द का प्रयोग करेंगे।

सिपाही विप्लव की असफलता के बाद कुरमियों पर भी अंग्रेजों का अत्याचार

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के असफल हो जाने के बाद अन्य भारतीयों की तरह अनेक कुरमियों को अंग्रेजी के अत्याचारों और यहां तक कि उनकी गोली का निशाना तक बनना पड़ा। अनेक विद्रोहियों को

आम जनता को दिखाकर बड़ी बेरहमी से जगह-जगह पेड़ों से फांसी पर लटका दिया गया । उदाहरण के तौर पर प्रसिद्ध साहित्यकार स्व० अमृतलाल नागर जी की पुस्तक **"गदर के फूल"**, (प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 1982 (प्रथम) पृष्ठ 222) में लिखा है :-

"राजा जयलालसिंह जुसरतगंज," जो लखनऊ में अधिकतर राजा जियालाल के नाम से प्रसिद्ध है, **कूर्मि क्षत्रिय राजा दर्शन सिंह "गालिब जंग"** के पुत्र थे । उन्हें शाही में कलक्टरी का पद मिला था । सरकार विरजीसी में भी उनका बड़ा मान था, फौजी पंचायत भी उनका आदर करती थी । 24 सितम्बर 1857 को अंग्रेज-वध के अपराध में उन्होंने 1 अक्टूबर 1858 को उसी जगह फांसी का फंदा अपने गले में डाला और वतन के नाम पर हंसते-हंसते शहीद हुये ।"

अंग्रेज सरकार ने राजा जयलाल सिंह का तालुका जब्त करके, उसे अपने एक चाटुकार, रुस्तम शाह को दे दिया । उनका अतरौलिया कस्बे का गढ़ तोप के गोलों से मार-मार कर ध्वस्त कर दिया गया ।

राजा दर्शन सिंह गालिब जंग

राजा दर्शन सिंह "गालिब जंग" फैजाबाद जिले के परगना बिरहर के पद्मपुर गांव के मूल निवासी थे। 18वीं शताब्दी के अन्त में किसी समय एक कुरमी गरीबदास नामक अपने जवान बेटे दर्शनसिंह के साथ रोटी-रोज़ी की तलाश में लखनऊ आये । ऐसा कहा जाता है कि दर्शनसिंह का जन्म सन् 1782 ई० के लगभग आजमगढ़ के बौड़रा लच्छरामपुर नामक ग्राम में हुआ था । उस समय नवाब सजादत अली खां (1798-1814) द्वारा बनवाये जा रहे कुछ किलों में उन दोनों ने दैनिक मजदूरी पर काम करना शुरु किया ।

अल्पकाल में दर्शन सिंह नवाब के कृपापात्र बन गये । नवाब ने दर्शनसिंह को अस्त्र-शस्त्र प्रयोग तथा युद्धकला में दक्षता दिलाई । नवाब ने दर्शनसिंह को युवकों की एक रेजिमेन्ट में शामिल कर लिया । इस रेजिमेन्ट को **"शैतान की पलटन"** भी कहा जाता था । आगे चलकर उसका नेतृत्व उसे करने को भी दिया गया। योद्धा के रूप में उनकी ख्याति अवध दरबार में खूब फैली और वे एक के बाद एक ऊंचे पद पाते गये । 11 जुलाई, 1814 को सजादत अली खां के देहावसान के पश्चात् उनके पुत्र गाजीउद्दीन हैदर अवध की गद्दी पर बैठे । सन् 1819 में **गवर्नर जनरल लार्ड मायरा** की सिफारिश पर मुगल बादशाह दिल्ली के नवाब **वजीर गाजीउद्दीन हैदर** को बादशाह की पदवी से अलंकृत किया । बादशाह गाजीउद्दीन हैदर ने अपने योग्य सेनाध्यक्ष दर्शनसिंह को **"राजा"** का खिताब प्रदान किया । कूर्मि क्षत्रिय राजा दर्शन सिंह गालिबजंग को तथा अवध दरबार में अन्य कुरमियों को बड़ा मान मिला, जिस प्रकार निजामशाही में उन्नाव से गये तथा अन्य जगहों से आये कुरमियों को ऊँचा रूतबा मिला था ।

अवध सेनाध्यक्ष राजा दर्शन सिंह ने हड़ाहा के राजपूत तालुकदारों पर चढ़ाई की । उन्होंने दूर तक मार करने वाली तोपों के भयानक प्रहार करके शत्रु के सभी मोर्चों को ध्वस्त कर दिया और हड़ाहा के उद्दंड तालुकेदार को पराजित करके उससे बकाया का अवध दरबार का कर मय हरजाने के वसूल कर लिया । इसी प्रकार नानपारा का राजपूत शासक भी **राजा दर्शन सिंह** के पहले धक्के से ही हार मान गया । उन्होंने इन तालुकेदारों के शीश काटकर बकाया राशियों को वसूल करके उनके किलों पर अवध बादशाह का झंडा फहरवा दिया । अन्य बागी तालुकेदार इन दो उदाहरणों से काबू में आकर समय से कर देने लगे और अवध क्षेत्र में पुनः शांति स्थापित हुई । आम जनता को तालुकेदारों के अमानवीय अत्याचारों से राहत मिली । **बादशाह नसीरुद्दीन हैदर** ने राजा दर्शन सिंह की विजय एवं रियासत में अमन-चैन कायम कर देने के महान कार्य के लिये **"गालिब जंग"** खिताब से उन्हें अलंकृत किया था । **बादशाह वाजिद अली शाह** (सन् 1848-1856) तक राजा दर्शन सिंह "गालिब जंग" का अवध दरबार में बड़ा रूतबा था । या यों कहा जाय कि उनकी तूती बोलती थी, तो अतिशयोक्ति न होगी।

जानेआलम वाजिद अली शाह ने अपनी खुशी का इज़हार करते हुये राजा साहब को फैज़ाबाद, आजमगढ़, सुल्तानपुर जिलों में कई गांवों का इलाका जागीर के रूप में प्रदान किया ।

लखनऊ नगर के रिकाबगंज मुहल्ले में उन्होंने एक महल बनवाया, यहीं अपने पूरे परिवारजनों के साथ रहने लगे । लखनऊ, बाराबंकी में भी उन्हें जागीरें दी गई थीं और अतरौलिया के निकट 41 गांव जो अंग्रेजी राज्य में थे राजासाहब ने खरीद लिये थे । राजा दर्शन सिंह की मृत्यु 1 मई 1832 को 80 वर्ष की परिपक्व आयु में हुई ।

राजा दर्शनसिंह गालिबजंग की तीन रानियां थीं । सबसे बड़ी रानी से केवल एक पुत्री हुई । दूसरी से दो पुत्र, राजा रघुबरदयाल सिंह तथा राजा फतेहबहादुर सिंह थे । सबसे छोटी और तीसरी रानी सुभाग्यी देवी से दो पुत्र हुये, जिनके नाम थे राजा जयलाल सिंह तथा राजा बेनीमाधव सिंह ।

अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह 'जफर' जी-जान से सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में उसकी सफलता चाहने लग गये थे, जो उनकी काव्यमयी भविष्यवाणी द्वारा इस प्रकार उद्घाटित हुई :-

गाजियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की ।
तब तो लंदन तक चलेगी, तेग हिन्दुस्तान की ।।

किसी भी राष्ट्र के, समाज के, जाति विशेष के, यहाँ तक कि व्यक्तिगत् जीवन में भी सुख-दुःख, उत्थान-पतन, आशा-निराशा सदैव एक-सी नहीं रहती । परिवर्तन, उतार-चढ़ाव, उन्नति-अवनति तो जीवन में प्रत्येक के लगी रहती हैं, पर निराश न होकर अपने गन्तव्य की ओर सदैव पैर बढ़ते रहना चाहिए । महाकवियत्री महादेवी वर्मा ने ठीक की कहा है :-

कोकिला होती अन्तर्धान,
चला जाता प्यारा मधुमास।
यहां किसका अनन्त जीवन,
अरे अस्थिर, भोले जीवन ।।

महाकवि निराला जी का कहना था :-

"दुःख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।"
"मां! अपने आलोक निहारो,
नर को नरक-त्रास से वारो ।"

राजा दर्शन सिंह गालिबजंग और उनके पुत्र राजा जयलाल सिंह नुसरतजंग एवं राजा बेनीमाधव सिंह का वंश वृक्ष

- बाबा गरीबदास
  - राजा दर्शन सिंह "गालिबजंग"
    - बड़ी रानी से
      - एक पुत्री
    - मझली रानी से
      - राजा रघुवीरदयाल सिंह
        - रामस्वरूप सिंह
        - रामप्रताप सिंह
      - राजा फतेहबहादुर सिंह
    - छोटी रानी सुभाग्यीदेवी से
      - राजा जयलाल सिंह "नुसरतजंग"
        - ठाकुर प्रसाद सिंह
        - नरसिंह
      - राजाबेनीमाधव सिंह
        - तेजप्रताप सिंह
          - बाबू बिहारी प्रसाद सिंह
            - बाबू बिन्देश्वरी प्रसाद सिंह पत्नी सावित्री सिंह
              - बाबू राजेन्द्र प्रताप सिंह पत्नी विद्यादेवी सिंह
                - अशोक कुमार सिंह
                - अमित कुमार सिंह
                - शमशेर सिंह
                - कुसुमलता सिंह
                - कृष्णाकुमारी सिंह
                - श्वेत कुमारी सिंह
                - दुर्गावती सिंह
          - बाबू बद्रीनारायण सिंह
            - घुनघुनप्रसाद सिंह पत्नी मुनेश्वरी कुंवर

नोट : राजा जयलाल सिंह का जन्म सन् 1803 ई0 में हुआ था और 1 अक्टूबर 1859 को लखनऊ में उनकी हवेली के सामने पेड़ से सन् 1857 ई0 के अवध की विद्रोही राज्य-क्रान्ति में अनेक गोरे अफसरों और सैनिकों के मारने के अभियोग में, जबकि इलाहाबाद में महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र प्रकाशित हो गया था, उन्हें सरे-आम फांसी दे दी गई थी।

(मासिक "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" मई-जून 1991 अंक, पृष्ठ 21 से साभार उद्धृत)

राजा जयलाल सिंह नुसरतगंज

इनके बारे में कुछ जानकारी प्रसिद्ध उपन्यासकार और किस्सागो श्री अमृतलाल नागर पुस्तक "गदर के फूल" से साभार उद्धृत की जा रही है। वैसे जयलाल सिंह का जन्म सन् 1803 ई0 में हुआ था। बड़े होने पर राजा जयलाल सिंह को अपने पिता से फैज़ाबाद जिला का दुर्बस तालुका प्राप्त हुआ था। राजा जयलाल सिंह हृष्ट-पुष्ट, कुशाग्र बुद्धि एवं दूरदर्शी व्यक्ति थे। बादशाह अवध में उन्हें "राजा" और "नुसरत जंग" की सम्मानित उपाधियों से सुशोभित किया था। सन् 1856 में लार्ड डलहौजी ने अवध राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। अधिकांश पश्चिमी तथा भारतीय लेखकों का मत है कि प्राचीन युग के रामराज्य के नाम पर ही इस राज्य या सूबे का नाम "अवध" रखा गया था। इसका क्षेत्रफल 24,000 वर्गमील था और जनसंख्या तब 50 लाख थी।

सन् 1857 ई0 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भारत के अन्य क्षेत्रों में सिपाही विप्लव में अंग्रेजों को देश के बाहर खदेड़ देने के लिये स्वातंत्र वीरों और वीरांगनाओं ने सैनिक अभियान छेड़ दिया। अवध में आजादी की मशाल लेकर बादशाह बेगम हजरत महल के नेतृत्व में सब हिन्दू-मुसलमान उठ खड़े हुये थे। नाबालिग शहजादा "बिरजिस कदर" को सिंहासनारूढ़ कराया गया। वली अहद स्वयं बेगम साहिबा बनी। राजा जयलाल सिंह को युद्धमंत्री बनाया गया। पूरी जंग की तैयारी कर ली गई। (सुरेन्द्रकान्त, "बेगम जहरत महल", पंचशील प्रकाशन, कानपुर, 1989)।

वाजिदअली शाह को अंग्रेजों ने अवध से निष्कासित कर कलकत्ते में नज़रबंद कर दिया, तो उनकी अनुपस्थिति में उनके एकमात्र वफ़ादार प्रबन्धक एवं सेनापति राजा जयलाल सिंह नुसरतजंग लखनऊ में ही रह गये थे। सन् 1857 ई0 के स्वतंत्रता-संग्राम काल में जब बिरजिस कदर को अवध के राजसिंहासन पर बिठाया गया तो उस समय एक मात्र राजा जयलाल सिंह का ही संरक्षण प्राप्त था। स्वतंत्रता संग्राम के असफल होने पर, अपने ऊपर आने वाली भावी विपत्तियों की चिन्ता न करते हुये, राजा जयलाल सिंह ने बिरजिस कदर और उनकी माता बेगम हजरत महल को सुरक्षित नेपाल पहुँचाने का प्रबन्ध किया। उन्होंने अवध दरबार की सच्चे शुभचिन्तक की तरह सेवा की और अपने लिये तथा अपनी कूर्मिक्षत्रिय जाति के लिये सम्माननीय स्थान अर्जित किया। सुरेन्द्रनाथ सेन द्वारा लिखित तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा मई 1957 में प्रकाशित पुस्तक "ऐट्टीन फिफ्टी सेवन" ('Eighteen Fifty Seven') के पृष्ठ 210 पर अवध के नये बादशाह बिरजिस कदर को बनाने के बारे में लिखा है - "The principal Offices of the State were distributed among the Hindus and Muslims...... Raja Jailal Singh became war minister"

राजा जयलाल सिंह लखनऊ में रहने लगे और भाई राजा बेनीमाधव सिंह अपनी कोट (गढ़ी) अतरौलिया में आकर रहने लगे और अपनी जमींदारी का प्रबन्ध करने लगे उधर अन्य भाई राजा फतेहबहादुरसिंह ने फैज़ाबाद की जमींदारी संभाली।

अंग्रेजों द्वारा सिपाही विद्रोह की भागीदारी और एक अंग्रेज के वध के अपराध में 13 सितम्बर 1859 को उन्हें प्राणदंड देने का निर्णय हुआ। 1 अक्टूबर 1859 ई0 को लखनऊ में चीना बाजार फाटक के सामने भूखंड पर जहां अब "जयलाल सिंह" पार्क बना है वहां स्थित एक पेड़ पर फांसी देने का काम आम जनता के सम्मुख रखा गया। राजा साहब स्वयं फंदा अपने हाथ से अपने गले में डालकर हंसते-हंसते लटक गये। यह थी राजा जयलाल सिंह की देश-प्रेम की गाथा।

ऐसे शहीदों के लिये किसी शायर ने ठीक कहा है :-

"है शोहरत वे परवानों की, कुर्बान शमा पर हो जाते।
दीवानी शमा को भी हमने गल-गल के पिघलते देखा है।"

 यदि राजा जयलाल सिंह खुशी-खुशी फांसी के फंदे को स्वयं गले में डालकर झूल गये तो उनकी शमा (अवध की जनता) भी अंग्रेजों के जुल्मों की लेशमात्र परवाह किये बिना, गांव-गांव, पगडंडी-पगडंडी आल्हा की धुन पर मंडली बनाकर लोगों को आह्वान करने में तन-मन से लग गयी थी और गाती फिरती थी :-

"बड़े लड़ैया भारतवासी, इनकी चमक रही तलवार,
कहँ फिरंगी हमरी नैया, आनि फंसी अब बीच मंझार ।
पड़े जानके लाले उनकूँ, किये खूब जिन अत्याचार,
जगे देश के सिंह, अब गोरन को जे करहिं सिकार ।
आज़ादी के दीवाने नर-नारी सब कहते ललकार,
नहीं रहेगी, नहीं रहेगी, नहीं रहेगी गोरी सरकार ।
बिजली कड़के उत बादर में, चमकै इत उनकी तलवार,
फटै करेजा इंगरेजन को छुपते फिरें सबहि नर-नार ।
अरे फिरंगी सौदागर तुम बैठे क्योंकर पांइ पसार,
आज उठे अब भारतवासी एक एक कूं देइ पछार ।।"

अवध के दरबार में और बाहर जगह-जगह फौजियों के नारे सुनाई देते :

हिन्द की आजादी जिन्दाबाद अंग्रेज कम्पनी मुर्दाबाद,
फिरंगी सरकार बदल डालो अब गोरों को मसल डालो ।

जब राजा जयलाल सिंह को फांसी लगी, तब उनका पुत्र राजा ठाकुर प्रसाद सिंह लखनऊ के कैनिंग कालिज का विद्यार्थी था । उनके तालुके में निम्नलिखित प्रखण्ड सम्मिलित थे जो समय-समय पर तालुके में जोड़े गये थे :-

प्रखण्ड	गांवों की संख्या	तालुके में सम्मिलित किये गये
मऊ जदुवंश पुर	8 गाँव	1227 फसली में
पालिया शाह बड़ी	3 गाँव	1229 फसली में
जनौरा आदि	47 गाँव	1229 फसली में
रानोपाली	4 गाँव	1230 फसली में
देवपाली	2 गाँव	1235 फसली में
योग	64 गाँव	

उनके वंशजों में बाबू राजेन्द्र प्रसाद सिंह और उनका आगे का परिवार आज भी विद्यमान है ।

राजा बेनीमाधव सिंह

राजा बेनीमाधव सिंह जब अपने पिता राजा **दर्शनसिंह गालिबजंग** से अलग हुये तो अपने साथ बड़ी तोपों, बन्दूकों तथा अन्य युद्ध-सामग्री को गुप्त रूप से लेते आये थे और उसे बौड़रा के जंगल में, जहां उनका निवास-स्थान था, एक कुटी में छिपाकर रख दिया था। बौड़रा की ओर कंटिली झाड़ियों का जंगल इनका सुरक्षित शास्त्रागार था और अतरौलिया के गढ़ में अपार सम्पत्ति भी एकत्रित कर रखी थी। अतरौलिया के राजा बेनीमाधव सिंह को समकालीन शंकरपुर के बैसवार राजपूत बेनीमाधव समझने में भूल नहीं करनी चाहिये।

प्रसिद्ध इतिहासकार **सुरेन्द्रनाथ सेन** द्वारा लिखित तथा **भारत सरकार के प्रकाशन विभाग** द्वारा मई 1957 में प्रकाशित पुस्तक 'Eighteen Fifty Seven' के पृष्ठ 360 के फुटनोट में लिखा है - "Beni Madho of Shankarpur should not be confused with the Chief of the same name of Atraulia !"

सन् 1857 के बाद **"अंग्रेज फूट डालो और राज्य करो"** की कूटनीति से शनैः -शनैः भारतभूमि पर अपने कब्जे का विस्तार करते जा रहे थे। इससे राजा **बेनीमाधव सिंह** का चिन्तित हो उठना स्वाभाविक था। जब कभी उनके अनन्य भक्त एवं पुराने मित्र आजमगढ़ के अहिरीपुर निवासी मधई प्रसाद यादव आ जाते तो सदैव इसी विषय पर चर्चा चलती थी। श्री मधई प्रसाद यादव राजा बेनीमाधव सिंह के साथ लखनऊ में रहते थे और वे तोपखाने के अचूक निशांची थे। **श्री नानासाहब, अजीमुल्ला खां, लखनऊ की बेगम साहिबा, झांसी की रानी** और **जगदीशपुर (बिहार) के बाबू कुंवर सिंह से राजा बेनीमाधव सिंह** का सम्पर्क हुआ और परामर्श करके अंग्रेजों को देश से समूल उखाड़ फेंकने की योजना बनी। आगे के हाल से इस संबंध में पाठकगण परिचित हैं अतः उसे यहां दोहराने की जरूरत नहीं है। **राजा रघुवर दयाल सिंह** और **राजा बेनीमाधव सिंह,** इन दोनों भाइयों का 1857 के स्वतंत्रता-आंदोलन में सक्रिय योगदान कम नहीं रहा। बिहार केसरी बाबू कुंवर सिंह की सहायता से पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार क्षेत्र में स्वाधीनता संग्राम बड़े जोरों पर लड़ा गया, अनेक बार अंग्रेज सेना के दांत खट्टे किये गये, जिसमें **बाबू कुंवरसिंह** के साथ-साथ इन दोनों कुरमी नर केसरी बन्धुओं का भी बड़ा प्रशंसनीय तथा अति महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पता नहीं क्यों भारतीय इतिहासकारों की निगाह से अतरौलिया राजघराने के वीरों के कारनामें चूके हुये हैं।

सन् 1857 के घटना-चक्र से पूर्व, **राजा बेनीमाधव सिंह** का अवध दरबार में अच्छा प्रभाव था। **नवाब वाजिदअली शाह** ने उन्हें **नाजिम** नियुक्त किया था तथा उन्नति करते-करते वे भी **"नुसरते जंग" (दिलेर जंग)** की पदवी से अलंकृत हुये। जिस समय **राजा बेनीमाधव सिंह** की यशगाथा और कीर्ति चरम-बिन्दु पर थीं, अंग्रेजों की गाज़ उन पर गिरी और उनकी नई शासन नीति के अनुसार उनके तालुके में से 116 गांव अंग्रेजों ने छीन लिये। उनका मन आक्रोश से भभक उठना स्वाभाविक था सन् 1857 के सिपाही विप्लव शुरू होने पर वे भी इसमें पूरे उत्साह से सम्मिलित हो गये। 12 मई सन् 1858 के आस-पास **बेनीमाधव सिंह** की सेनायें लखनऊ के निकट **"बनी"** के पास जमा हुयी थीं। **बेगम हजरत महल** ने उन्हें आलमबाग के युद्ध में भाग लेने के लिये आमंत्रित किया था। **राजा बेनीमाधव सिंह** अंग्रेजों को समूल नष्ट करने के लिये कटिबद्ध थे। मई-जून 1858 में उन्होंने अंग्रेज फौजों को बहराइच से बाहर खदेड़ दिया। **वीर शिरोमणि शिवाजी महाराज** की मराठा फौज की तरह छापामार युद्ध द्वारा उन्होंने अंग्रेज़ों को नाकों-चने चबवा दिये थे। लखनऊ पर अंग्रेजों का पुनः कब्जा होने पर उन्होंने पराजय स्वीकार नहीं की। उन्होंने दुगने उत्साह के साथ क्रान्ति का संचालन अपने हाथ में ले लिया। फिरंगी समझ गये थे कि **राजा बेनीमाधव सिंह** के जीवित रहते अवध में शान्ति स्थापित होना असम्भव है। उनके बारे में अनेक लोकगीतों द्वारा उनकी यश-गाथा अवध में जगह-जगह गूंजती थी। उसका एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत है :-

एक अवधी लोकगीत का अंश

राजा बेनीमाधव सिंह, अवध में,
राजा भयो मरदाना पहली लड़ाई भई बक्सर में,
सिगरो के मैदान,
हुंवा से जाय पूरब मां जीत्यो तबै लाट घबराना,
अवध में,
भाई, बन्धु और कुटुम्ब कबीला, सबको करौं सलाम,
तुम तो जाय भिड़े गोरन से हमका है भगवाना,
अवध में,
हाथ में भाला, बगल सिरोही, घोड़ा तोरा चले मस्ताना,
अवध में ।

कुछ लोग इन कुरमी राजा **बेनीमाधव सिंह** को अन्यत्र अवध के **राणा बेनीमाधव** से भ्रमित होकर एक की जगह दूसरे की बात कहकर इतिहास उलट-पुलट कर देते हैं । ठीक से अध्ययन करें तो दोनों महान पुरुष अलग-अलग हुये हैं । **कुरमी राजा बेनीमाधवसिंह** के लिये साक्ष्य के रूप में सन् 1984 में **आक्सफोर्ड युनीवर्सिटी प्रेस** द्वारा प्रकाशित तथा **रूद्राक्ष मुखर्जी** द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक, शीर्षक **"अवध इन रिवोल्ट"** 1857-58, **"स्टडी ऑफ पापुलर रेजिस्टेन्स"** के पृष्ठ 109 -110 की टेबिल II से यह स्पष्ट हो जायेगा ।

	सैन्य शक्ति	स्थान
जयलाल सिंह बेनी माधो (अतरौलिया के)	2000 घुड़सवारों, 3 तोपों का रिसाला	फैजाबाद जिले के अंतर्गत

अंग्रेजों ने फिर कूटनीति का सहारा लिया । सन्धि का प्रस्ताव रखा, तो संधि-पत्र के प्रति उत्तर-पत्र में **बेनीमाधव सिंह** ने लिख भेजा - **"मैं किसी प्रकार अस्त्र डालने को तैयार नहीं हूँ । मैंने नये बादशाह बिरजिस कदर की अधीनता स्वीकार की है और मैं जीते जी विश्वासघात नहीं करूँगा ।"** राजा **बेनीमाधव सिंह** के पास इस समय भी साढ़े सात हजार सैनिक थे । उन्होंने आठ तोपें डोडिया खेड़े के किले पर लगा रखी थीं । इस समस्त क्षेत्र में घना जंगल था । उन्होंने दोहरी सुरक्षा के लिये जंगल के आगे एक गहरी खाई खोदी थी । अंग्रेजों ने एक बार फिर समझौता करने का प्रयास किया । परन्तु **राजासाहब** ने साफ इंकार कर दिया । इधर अंग्रेजों का पलड़ा भारी पड़ गया । वैसवाड़ा पर अंग्रेजों का अधिकार होता चला गया । पराजित होकर राजासाहब अपनी सेना सहित नेपाल की ओर निकल गये । वहां वे **बेगम हजरत महल** तथा अन्य क्रान्तिकारियों से मिल गये । नेपाल में राजा साहब ने भयंकर कष्ट झेले । इधर अंग्रेजों और गोरखों ने मिलकर अतरौलिया पर आक्रमण किया, पर वहां के **शेर-बबर राजा बेनीमाधव सिंह** तो नेपाल में दूर थे, **अतरौलिया** को जी भर कर लूटा । किले को आग लगाकर राख कर दिया । बाद में **राजासाहब** अन्य लड़ाई में मारे गये ।

अवध शाही परिवार और मलका जमानी

अवध दरबार में एक कुरमी स्त्री का भी उल्लेख इतिहास के पृष्ठों में दबा मिलता है और उसका यहां जिक्र करना आपत्तिजनक नहीं होना चाहिये क्यों कि यह सर्वविदित है कि मुगल सम्राट अकबर की एक पत्नी, महारानी

जोधाबाई थी थीं, जिनका उल्लेख बिना संकोच सबने किया है और वे जयपुर नरेश सवाई राजा मानसिंह की सगी बुआ थीं । यह व्यक्तित्व था दुलारी बेगम उर्फ "मलका जमानी" का :-

"20 अक्टूबर 1827 को बादशाह गाजीउद्दीन हैदर की मृत्यु हुई और उसी दिन उनके पुत्र नसीरुद्दीन अली हैदर की पहली शादी दिल्ली के मुगल बादशाह, की अति सुन्दर पोती, से हुई थी । दिल्ली के बादशाह की पोती, बादशाह बेगम को दूध पिलाने वाली एक धाय की जरूरत पड़ी, शहर से एक औरत जिसे हाल में ही एक बच्ची दुलारी पैदा हुई थी, लाई गई । दुलारी के पिता हिन्दू थे तथा कुर्मी जाति के थे"। .... समय के अनेक उतार-चढ़ाव के देखने के बाद दुलारी जब बड़ी हुई तो किस्मत उसे अवध के शाही महल में ले आयी । बादशाह की निगाह जब उस पर पड़ी, वे उस पर इतना रीझ गये कि वह दुलारी बेगम बन गयीं और बादशाह नसीरुद्दीन हैदर ने उसे नाम दिया "मलका जमानी" ।

बादशाह बेगम (दिल्ली के बादशाह की पोती) अर्थात बेगम अफजल महल तो बादशाह की निगाहों से इतना उतर गयीं थीं कि एक दूसरे महल, आलम बाग में बादशाह (नसीरुद्दीन) से हटकर रहने लगीं (परिपूर्णानन्द वर्मा "वाजिद अली शाह और अवध राज का पतन" से साभार उद्धृत) ।

यू० पी० के ख्याति प्राप्त कुरमी तालुकेदार एवं जमींदार

1. चौधरी धाधूराय कुरमी का कठवारा तालुका

परगना महोना, तहसील मलीहाबाद यू० पी० में गोमती नदी के किनारे कठवारा नामक गांव स्थित है । कठवारा का एक लम्बा पौराणिक इतिहास है आस-पास का इलाका मिलाकर कठवारा राज्य बनाया गया था । उसमें गये बिना आगे का हाल जाना जाये तो कहा जाता है कि भरों (जिनकी खोज राहुल सांस्कृत्यायन ने की थी) ने वैशवंश के बाद कठवारा पर राज्य किया था । तदनन्तर कुरमी क्षत्रिय सामन्तों ने भरों को उखाड़ फेंका और अपना सुदृढ़ राज्य स्थापित किया और एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण किया । इसी कुरमी राज-वंश में अनेक पीढ़ियों बाद, दिल्ली के सुल्तान मोहम्मद तुगलक के शासन काल में, सन् 1350 के आस-पास चौधरी धांधूराय कठवाड़ा के राजा बने । उस समय राजपूतों की हालत बड़ी दयनीय थी । मुसलमानों ने उनकी सारी हेकड़ी को धूल चटा दी थी । वे अपना सर्वस्व गंवाकर शरणार्थियों की भांति इधर-उधर आसरा खोजते फिरते थे । इसी प्रकार मैनपुरी के चौहानों को वहां से खदेड़ा गया तो वे अपने दलबल के साथ लखनऊ के पश्चिम से होकर गुजरे । उनकी कुदृष्टि कुरमी राजा धाधूराय के राज्य पर और उनके अजेय दुर्ग पर पड़ी । चौहानों के मुँह में पानी आ गया। झटपट उस पर धावा बोल दिया पर धाधूराय की प्रचण्ड तेज तलवार ने उनकी धज्जियां उड़ा दी और चौहान राजपूत अपने प्राण बचाकर भाग लिये । फिर प्रथम पराजय के पश्चात् उन चौहानों में से राजा धाधूराय के यहां, छल, करके किसी ने छद्म वेश में नौकरी कर ली । एक दिन पूर्व नियोजित योजनानुसार चौहानों ने अपने भेदियों द्वारा रात को दुर्ग का पिछला दरवाजा खुलवा दिया और चुपके से वे सब अस्त्रधारी किले में प्रवेश कर गये । दुर्ग में अचानक हमला करके मारकाट कर राज्य पर अधिकार कर लिया और राजा धांधूराय को निष्कासित कर दिया। कठवारा चौहान को आज भी अपनी प्रथम पराजय पर तथा छल से द्वारा धांधूराय पर विजय के किस्से याद हैं। छलकपट से कुरमी जाति के अनेक राजघरानों को लूटा-खसोटा गया है । इस प्रकार अवध के अनेक कुरमी राजाओं से राजपूतों ने छल-कपट और बलपूर्वक राज छीना और स्वयं राजा बन गये थे । यह ठगी या पिंडारीगिरी न थी तो क्या थी ? मुसलमान आक्रमणकारियों के सम्मुख ये राजपूत तथाकथित शूरमा टिक न पाते थे क्योंकि वे इनके छल-कपट का जबाव उसी से देना जानते थे ।

2. राजा उग्रसेन का तालुका बस्ती जिला बाराबंकी (यू. पी.)

डा. जे. पी. वर्मा अपनी पुस्तक **"भारतीय कुरमी कृषक का इतिहास, भाग 2,** प्रथम संस्करण जुलाई 1988 ई. के पृष्ठ 213 पर वर्णन करते हैं कि आज से लगभग 400 वर्ष पूर्व **बैसवारा क्षेत्र** में **बीरसेन** नामक एक कुरमी जमींदार थे । उनसे बैस राजपूतों की अनेक मुठभेड़ें हुई । राजपूतों की लूट-खसोट एवं आतंक से निरंतर अशांति का वातावरण बना रहने के कारण वहां का जन-जीवन अस्त-व्यस्त रहने लगा । इसलिये कुरमियों के परिवार उत्तर की ओर खिसकने लगे और घाघरा नदी तक के वर्तमान बाराबंकी और सीतापुर जिलों के क्षेत्रों में आबाद हो गये । **बीरसेन** ने भी राजपूतों के निरंतर दबाव के कारण बैसवारा छोड़ दिया और लखनऊ के उत्तर में 12 मील दूर एक विशाल कच्ची गढ़ी बनवा कर उसमें रहने लगे । उसका नाम **बस्ती** पड़ा । वहां उन्होंने अपना एक विशाल तालुका स्थापित कर लिया जो **बीरसेन** की चौथी पीढ़ी के **राजा उग्रसेन** तक उनके अधिकार में रहा ।

एक बार **राजा उग्रसेन** के समय, बैसवारे की किसी राजपूत की बारात बस्ती के निकट से होकर वापस जा रही थी वहां के कुछ कुरमियों से बारात वालों की किसी बात पर कहा-सुनी हो गयी । राजपूतों ने कुरमियों को बैसवारे के जनाने-भगोड़े कहकर अपमानित भी किया । राजपूतों की इस उद्दण्डता एवं दुर्व्यवहार के कारण **राजा उग्रसेन** ने उनको रोक लिया । राजपूतों ने उस समय अपने को असहाय एवं निर्बल पाकर कुरमी **राजा उग्रसेन** से क्षमा मांग ली । और अपने घर लौट आये, परंतु कुछ समय बाद बदला लेने की भावना से सुनियोजित ढंग से कुछ राजपूत स्त्री-वेशधारी बनकर डोलियों में सवार तथा अन्य डोली-वाहक राजपूत यात्रियों के रूप में आकर कोई विश्वास-योग्य बहाना बनाकर **राजा उग्रसेन** की गढ़ी में ठहर गये । रात में स्त्री वेशधारी राजपूत और अन्य पालकी वाहक राजपूत असली रूप में आकर तलवारें निकाल **राजा उग्रसेन** तथा उनके अंग-रक्षकों पर टूट पड़े। चन्द मिन्टों में सबका सफ़ाया कर दिया गया और गढ़ी पर कब्जा कर लिया गया ।

सौभाग्य से **राजा उग्रसेन** के सगे भाई **राजा गंगासेन** जो **बस्ती** के पड़ोस **चचेड़ा** गांव में अपनी गढ़ी में रहते थे, बच गये । **तिन्वोना** गांव का वर्तमान कुरमी परिवार उन्हीं **राजा गंगासेन** की तेरहवीं पीढ़ी में है। बस्ती उग्रसेन की गढ़ी के भग्नावशेष ऊंचे टीले के रूप में आज भी देखे जा सकते है । टीले पर, राजपूत किसी कुरमी को नहीं जाने देते, विशेष कर दीपावली के दिनों में, क्योंकि उनका विश्वास है कि यदि कोई कुरमी व्यक्ति टीले पर उस दिन दीपक जला देगा तो कुरमी पुनः यहां के राजा हो जायेंगे और उनका नष्ट वैभव पुनः लौट आयेगा । यद्यपि रजवाड़े समाप्त हो चुके हैं पर पुरानी मान्यताएं चलती रहती हैं ।

तिन्वोला के आस-पास के गांवों में उन्हीं बैस राजपूतों के वंशज बसे हुये हैं, जो पुराने समय से ही अत्यन्त हीन दृष्टि से देखे जाते हैं । यद्यपि वे **तिलोक चन्दी बैस** हैं और राजपूतों में अत्यंत कुलीन समझे जाते हैं किन्तु उनके पूर्वजों ने स्त्री-वेश धारण करके, विश्वासघात जैसा निकृष्ट कार्य किया था । अतः उस क्षेत्र में आसपास का कोई दूसरा कुलीन राजपूत उनके यहां अपनी कन्या का ब्याह नहीं करता । फलतः उनके पचासों वंश नष्ट हो गये हैं । **धौरमऊ** में कभी बैस राजपूतों के अस्सी घर थे, जिनमें से आज तीन, चार घर ही बचे हैं, शेष नष्ट हो गये हैं ।

धौरमऊ, तिन्वौला, झाड़ी खमरिया, कैथी आदि पूरे के पूरे गांव थे जो उनके अधिकार में सन् 1958 के जमींदारी उन्मूलन तक रहे । **बरेठी, बस्ती** तथा **परगना सतरिख** में स्थित **गैंहबबल सिकन्दरपुर, सुल्तानपुर नगर** आदि गांवों में उनका हिस्सा अथवा पट्टियां थीं । एक सच्चा वाकया है कि **चचेड़ा गांव** भी पूरा उनके तालुके में था, पर भूल से अवध के **नवाब वजीर गाजीउद्दीन हैदर** ने उसे **देवाशरीफ** के एक मौलवी साहब को दे दिया। मौलवी साहब अवध के शाहजादों को पढ़ाने के लिये राजभवन में नियुक्त किये गये थे । उक्त गांव, नवाब वजीर ने मौलवी साहब को शाहजादों को पढ़ाने के वेतन के रूप में अता फर्माया था । जब **तन्वोला वालों** ने, ज्ञात

होने पर, अवध दरबार में आपत्ति पेश की तो नवाब साहब को अपनी भूल पता चली, इसलिये नवाब साहब ने घचेड़ा गांव की 250 बीघा भूमि तिन्दोला वालों को बिना मालगुजारी के, देकर अपनी भूल का परिमार्जन किया था। यह था अपनी रियाया के साथ अवध का नवाबी इंसाफ। यह भूमि तिन्दोला वाले कुरमी परिवार के अधिकार में अब तक है और जिसकी सनद भी उनके पास अब तक मौजूद है।

अवध के कुरमी तालुकों और राज्यों की राजपूतों द्वारा छीना-झपटी

कठवारा कुरमी राज्य के कुरमी लोग तो पंवारों और चौहानों के आक्रमण के कारण एक बार ही सामूहिक रूप से वहां से पलायन कर गये थे, चौहानों ने तो सुनियोजित ढंग से कुरमियों को वहां से निकाला, बे-वतन किया। पर बैसवारे के कुरमियों का पलायन कुछ काल तक निरन्तर चलता रहा। धीरे-धीरे वहां कोई भी कुरमी नहीं बचा। कुरमियों के सब परिवार देवा, कुरसी, महमूदाबाद, सिधौली तथा बिसवां आदि क्षेत्रों में बस गये थे। बैसवारा तथा उसके आस-पास के बैसवार कुरमी कहलाये, उनका एक दल आगरे की ओर जाकर कसबा नुनहाई, नौबस्ता, सुल्तानगंज आदि इलाकों में बस गया। वहां प्रारम्भ में वे बैसवारा क्षेत्र से आने के कारण बैसवार कहलाये किन्तु आज उनमें से अधिकांश परिवार अपनी उपजाति जयसवार बतलाते हैं। वे कभी पुरबिया कुरमी भी कहे जाते थे क्योंकि वे बैसवारा (अवध, यू० पी०) से आकर आगरा बसे थे। गत पचास वर्ष पूर्व तक आगरा का सुल्तानगंज मोहल्ले का स्वामित्व एक जयसवार कूर्मि परिवार के अंतिम रईस श्री नन्नूमल जी के पास रहा था। इस परिवार में पुत्र उत्तराधिकरी न होने से तथा स्टेट की देखभाल ठीक से न होने से पहले के से ठाटबाट अब समाप्त हो चुके हैं।

"कूर्मि क्षत्रियत्व निर्णय" के लेखक चौधरी दीपनारायण सिंह, मेड़िया, चुनार (उ. प्र.) निवासी जयसवार कूर्मि थे। उनकी बेटी श्रीमती विद्यावती देवी इस परिवार में ब्याह कर आगरा आयी थीं। उनके कोई पुत्र न हुआ। उनकी एक मात्र पुत्री का विवाह इटावा के कूर्मी टोले के बड़े सम्पन्न परिवार में हुआ। उनकी सन्तानें ही आगरा की जायदाद की मालिक हैं। नुनहाई और नौबस्ता में वर्तमान में भी अनेक सम्पन्न कुरमी परिवार बसे हुये हैं।

शाने अवध

पुरातन संयुक्त प्रान्त के जिलों के गजेटियर्स का अनुशीलन करें तो पायेंगे कि लखनऊ के दक्षिण की ओर पूर्व से पश्चिम तक का विशाल अंचल, जो वर्तमान में हरदोई, उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली, सीतापुर और प्रतापगढ़ जिलों के अंतर्गत आता है, कुछ शताब्दी पूर्व तक कुरमी किसानों तथा तालुकेदारों से भरा हुआ था। इन जिलों के प्राचीन गजेटियर्स में दिये ऐतिहासिक वृतान्तों से ज्ञात होता है कि यहां प्राचीन काल में अन्य क्षत्रिय राजाओं के राज्य थे। उनके पश्चात् भरों का प्रभुत्व स्थापित हुआ। भर जाति के बाद कुरमी प्रमुख भूस्वामी बन गये थे। कुरमी भू-स्वामियों की अनेक पीढ़ियां बीत जाने के उपरान्त बौद्धधर्म को मारकाट, लूट-खसोट द्वारा नष्ट करने के लिये ब्राह्मणों द्वारा जिन कुछ लड़ाकू कबीलों को आबू पर्वत पर अग्नि कुंड द्वारा क्षत्रियकृत करके "राजपूत" बनाया गया था वे बौद्ध धर्मावलम्बियों को बेरहमी से तहस-नहस करने के बाद इधर-उधर भूमि पर जबरन कब्जा करने के लिये इस क्षेत्र में घुस आये। इस तरह इस देश से बौद्ध धर्म सिमटता गया और सनातन हिन्दू धर्म राजपूतों की तलवारों की छत्र-छाया में पनपता चला गया।

लखनऊ गजेटियर में उल्लेख है कि भिन्न-भिन्न काल में, कई शाखाओं के राजपूतों के दल के दल आये और उस क्षेत्र के भिन्न-भिन्न स्थानों पर हमला करके, वहां के उस समय के निवासी, कुरमियों और मुरावों को जिनके स्वामित्व में भूमि थी, बड़े-बड़े भूखंड छीनकर उन्हें वहां से जान बचाने के लिये पलायन करने को मजबूर

 कर दिया गया। गजेटियर में वर्णन मिलता है कि जो राजपूत सर्वप्रथम इस क्षेत्र में घुसे, सम्भवतः वे तिलोक चन्दी बैस-शाखा के थे। उन्होंने कानपुर से लेकर पूर्व में सई नदी तक का क्षेत्र अधिकृत कर लिया। उस क्षेत्र को आज भी बैसवारा के नाम से जाना जाता है।

अन्य आने वाले राजपूत दलों में चौहान और पंवार (परमार) प्रमुख थे जिन्होंने यहां अपने तालुके, कुरमियों से जबरदस्ती छीनकर स्थापित कर लिये। आस-पास के राजपूतों के तालुकें कुरमियों की बड़ी-बड़ी जमीनों को छीनकर स्थापित किये थे। लूट-खसोट कर बने ये राजपूत तालुकेदार अपनी जातिवालों को अन्य कहीं लूटखसोट करने में पूरी सहायता भी प्रदान करते थे। गजेटियर ने इनको "A Turbulent set of Men', अर्थात् गैर-जुम्मेदार, उद्दण्ड वर्ग के लोग बतलाया है। यहां तक कि वे लोग कुरमियों और मुराबों से जमीन छीनकर भी अवध के नवाबों को मालगुजारी भी नहीं चुकाते थे और हेकड़ी दिखाने में तो बड़े माहिर थे। उनकी उद्दण्डता इतनी बढ़ गयी कि अवध की राजधानी लखनऊ शहर तक में घुसकर, वे उत्पात मचाते थे। अतः इन अराजकता फैलाने वाले राज्य प्रशासन के दुश्मन राजपूतों की "सरकोबी" करने के लिये एक बार चकलेदार खान अली खान ने चौहानों (राजपूतों) को घेर लिया और उनसे बकाया और मौजूदा सारी मालगुजारी वसूल करके उनको ऐसा कुचल दिया कि आगे फिर वे कभी सिर उठाने योग्य न रह गये। उन्हें जान बचाने के लिये घुटने टेककर चकलेदार से माफी मांगनी पड़ी थी।

मन्सबदार चौधरी असई की जागीर

यू. पी. के वर्तमान सुल्तानपुर जिले के कुरमियों को प्राचीन काल में, अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वे तब प्रभुसत्ता सम्पन्न भू-स्वामी थे। जिले का गजेटियर बतलाता है कि "भरों" की अवनति एवं उनके विनाश के पूर्व तक यहां के कुरमी बड़े सम्पन्न तथा प्रभावशाली थे। वहां के कुरमी अब भी बीते दिनों की स्मृतियां, संजोये बैठे हैं, और उन दिनों की प्रेरणाप्रद बातों की याद करते हैं, किन्तु वे अपने मूल वंशोत्पत्ति तथा प्राचीन पूर्वजों के बारे में कुछ अधिक नहीं बता पाते। वे केवल इतना ही जानते हैं कि आदिकाल से वे भूमि ही के रहे हैं और अब भी भूमि के ही हैं। कहते हैं कि चौ० असई नामक एक कुरमी, सम्राट अकबर के दरबार में पंच हजारी मन्सबदार था। मन्सबदार के रूप में उसके पास जो सेना, शाही सेवा के लिये थी, उसके खर्च एवं सैनिकों का वेतन अदा करने के लिये मन्सबदार चौधरी असई कुरमी को यहां 52 गांव की एक जागीर मिली हुई थी। यह जागीर एक तालुके के रूप में उनके उत्तराधिकारियों के अधिकार में अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक बनी रही, किन्तु बाद में उनके निर्बल एवं अयोग्य वंशज बढ़ाने की जगह उसे घटाते गये। अन्त में उनके पास केवल तीन या चार गांव बचे। वे सब सन् 1958 की जमींदारी उन्मूलन में चले गये। अभी भी उनके वंश के अनेक परिवार मौजूद हैं।

सीतापुर

डा. जे. पी. वर्मा ने अपनी पुस्तक में वर्णन किया है कि सीतापुर के आस-पास वाले क्षेत्र में कुरमी जाति का प्राचीनकाल से ही निवास था। वहां उनके अनेक प्राचीन वंशों के लोग भू-स्वामी थे। पृथ्वीराज चौहान के शासनकाल तक, वे वहां निर्वाध रूप से रहते रहे। सन् 1193 ई0 में मोहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को तरायन के युद्ध में पराजित करके उसका बध कर डाला और इस प्रकार राजपूती प्रभुसत्ता का प्रखर सूर्य अस्ताचल को चल पड़ा। ऐसे विकट संकट काल में राजपूत सरदार, शासन, शक्ति तथा जीविकोपार्जन के साधनों से सर्वथा विहीन हो गये। अतः "मरता क्या न करता" के अनुसार वे अपनी सैन्य टुकड़ियां लेकर सम्पूर्ण उत्तर भारत में लूट-खसोट में लग गये। शायद पिंडारी उसी जमाने की देन है। ग्रामों में उन्हें सबसे सम्पन्न, धन-धान्य

पूर्ण कुरमियों के इलाके ही नज़र आये । वे उन पर आततायियों की तरह टूट पड़ते थे । इस तरह उस काल में अगणित कुरमी सम्पन्न कृषकों की भूमि पर जबरदस्ती कब्जा कर उन्हें बाहर खदेड़कर वे स्वयं उन समृद्ध तालुकों के नये स्वामी बन बैठे । यहां सारे उत्तर भारत में मिलने वाले राजपूत जमींदारों, तालुकेदारों और जागीरदारों की यही असलियत है । कहाँ तक उसे तफसील से बयान किया जाये । ज्यादातर ये कुरमियों को जो शांतिप्रिय सम्पन्न कृषक थे और आज भी हैं उन्हें लूट के ये नये तालुकेदार, ज़मीदार बन गये थे ।

राढ़, कुरमी और आल्हा-ऊदल

चौहानों के सीतापुर में कुरमियों से भू-सम्पत्ति छीनने के कुछ समय पूर्व में ही सन् 1180 ई. के आस-पास **आल्हा ऊदल ने, तहसील बिसवा** के उत्तरी क्षेत्र पर हमला कर दिया । उस समय घाघरा नदी के दोनों ओर **केवल गांजरी क्षेत्र में बैसवार कुरमी बसे हुये थे** । सीतापुर जिले का शेष भू-भाग, उस समय लगभग कुरमियों से शून्य था । क्योंकि उस समय तक बैसवारे से कुरमियों का स्थानान्तरण नहीं हुआ था । अतः **बनाफर आल्हा-ऊदल** ने, कुरमियों को परास्त कर आतंकित करने की चेष्टा की । **किंतु कुरमियों ने अपनी तलवार का वह करतब दिखाया कि आल्हा को दिन में तारे नज़र आने लगे** । अतः स्योता गांव के पास अपनी एक कच्ची गढ़ी बनाकर, उसपर अपना आधिपत्य जताकर, **इज्जत** बचा आल्हा चुपचाप महोबा खिसक गये ।

पृथ्वीराज चौहान के समकालीन **महोबा नरेश परमर्दिदेव** के **सेनानायक आल्हा** और उनके छोटे भाई **ऊदल** की वीरता के किस्से और **काव्य** उत्तर भारत के गांव-गांव में गाये जाते हैं । ऊपर **राढ़ कुरमियों** की वीरता भी पढ़ ली । पर हाल में (दिसम्बर 1993) मे हुये उत्तर प्रदेश के विधान सभाई चुनाव में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से वाराणसी की **कोल असला** सीट जीतकर आये कुरमी जाति के **श्री ऊदल जी** के लिये यह उक्ति चरितार्थ होती है.....**"जिस खेत में ऊदल गरजे, हाथी खेत छोड़ भग जाये ।"** दरअसल ऊदल जी बसपा के (हाथी चिह्न वाले) प्रतिद्वंदी श्री गुलाब जी को 876 मतों से हराकर नौवीं बार विधानसभा में पहुँचे हैं । ऊदल जी उत्तर प्रदेश के एकमात्र ऐसे प्रत्याशी रहे हैं, जो आजादी के बाद से हुये हर विधान सभाई चुनाव में खड़े हुये हैं । **कोल असला** से पहला चुनाव उन्होंने सन् 1952 में **रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट** पार्टी के टिकट पर लड़ा था पर हार गये थे, लेकिन उसके बाद 1957, 1962 और 1967 में **भारतीय क्रांति दल** से लड़े, ऊदल जी ने लगातार जीत दर्ज कर पहली तिकड़ी बनायी। सन् 1969 में **भारतीय क्रांति दल** की आंधी के चलते वे हार गये, लेकिन सन् 1974, 1977, 1980 में लगातार जीतकर उन्होंने दूसरी तिकड़ी बनायी । सन् 1985 में वे हार गये पर 1989, 1991 व 1993 में लगातार जीत प्राप्त कर उन्होंने तीसरी तिकड़ी बनायी । नौ बार चुनाव जीतने वाले कितने विधायक हैं?

आल्हा और **पासियों** की संगठित शक्ति के सामने, वहां के **कुरमी** लोग उसी प्रकार डटे रहे जिस प्रकार अरहर का पौधा प्रचण्ड आंधी के सम्मुख डटा रहता है और भयंकर आंधी उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाती ! आंधी उसका मूलोच्छेदन कभी नहीं कर पाती । इसलिये अरहर के पौधे जैसे टिकाऊपन के कारण वे रणबांकुरे कुरमी **"राढ़"** नाम से प्रसिद्ध हुये । किन्तु वर्तमान में वहां **राढ़ कुरमी** नहीं पाये जाते और कदाचित घाघरा तथा उसकी अनेक धाराओं के समय-समय पर मार्ग बदलने के कारण और उस क्षेत्र के बाद में **बहराइच जिले** में आ जाने से हुआ। सन् 1891 ई0 की जनगणना में **राढ़ कुरमियों** को **बहराइच जिले** के ही अन्तर्गत गिना गया था । **कस्बा तम्बोर,** तथा **बाराबंकी** और **बहराइच जिले** के सीमावर्ती क्षेत्र में **राढ़ कुरमियों** की अनेक जमींदारियां थीं जिनका उन्मूलन सन् 1958 में हुआ था । अब वहां के कुरमी शिक्षा पाकर जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी ऊँची पहचान बनाने में प्रयत्नरत हैं ।

बछरावां, जिला रायबरेली के चौधरी बछराज

वर्तमान **रायबरेली** जिले के **गजेटियर** से पता चलता है कि कुछ शताब्दी पूर्व इसका अधिकांश भाग **जैसवार कुरमियों** के अधिकार में था। सारे उत्तर प्रदेश में **जयसवार कुरमी** संख्या में अन्य उपशाखाओं वालों से अधिक हैं, इन्हीं में ज्यादातर जमींदार, जागीरदार, तालुकेदार और मनसबदार हुये। ज्यादातर चौधरी, वर्मा या सिंह की उपाधि लगाने के कारण इनकी संख्या सही रूप में प्रकट नहीं हो पाती। मिरजापुर जिले में ये घोड़चढ़े जयसवार उपजाति सूचक संज्ञा का प्रयोग करते हैं। सामाजिक दृष्टि से उत्तर प्रदेश में ग्रामीण क्षेत्रों में यह सम्पन्नता तथा भूसम्पत्ति के स्वामित्व में सदा अग्रणी रहे हैं।

बताया जाता है कि पहले **"दिल्ली सल्तनत"** के प्रारम्भिक काल में, **परगना बछरावां, काजी सुल्तान** के वंशधरों के अधिकार में था। **काजी सुल्तान** का पूर्वज **किद्वतुद्दीन** था। जब **कुतुबुद्दीन ऐबक** ने अवध पर आक्रमण किया था तो वह उसके साथ आया था। बाद में वापस न जाकर **कुतुबुद्दीन "धुर्लेड़ी"** में रहने लगा और वहां अपनी जागीर बना ली। काजी सुल्तान के पश्चात जब उनके वंशधर अयोग्य निकले तो वहां पर पहिले से बसे हुये **राजपूतों** और **जैसवार कुरमियों** ने उनकी जागीर का अधिकांश हिस्सा अपने कब्जे में कर लिया। **जैसवार कुरमियों** के सरदार **चौधरी बक्षराज** ने अपने नाम से **बछरावां गांव** बसाया और आस-पास के क्षेत्र को लेकर अपना तालुका स्थापित किया। इन्हीं **चौधरी बक्षराज** के यहां **केशवदास** नामक एक **कुर्मी सरदार** ने आकर नौकरी कर ली। कुछ समय के पश्चात दिल्ली के सुल्तान की ओर से नियुक्त अवध के **"आमिल"** (अर्थात् गवर्नर) से उनकी अनबन हो गई। आमिल ने बछरावां की गद्दी पर धावा बोल दिया। युद्ध में **बक्षराज** मारा गया और उसका परिवार नष्ट कर दिया गया।

तत्पश्चात् **केशवदास कुरमी** आमिल से मिला और अपने को **बछराज** का उत्तराधिकारी सिद्ध करने की चेष्टा की। आमिल ने जांच करके वक्षराज का इलाका और बहुत से गांव केशवदास को प्रदान किये। **बछरावां के वर्तमान कुरमी** इन्हीं **केशवदास कुरमी** की सन्तान माने जाते हैं। उपर्युक्त घटना का विस्तार से विवरण **डिस्ट्रिक्ट गजेटियर रायबरेली** में दिया हुआ है। कुछ काल तक केशवदास के वंशजों ने बछरावां तालुके का विस्तार कर उसे और खुशहाल बनाया पर फिर उससे आगे आने वाली पीढ़ियां निर्बल, अयोग्य सिद्ध हुईं, जिनकी असावधानी के कारण उनका तालुका भारी ऋण के बोझ से दब गया। फलतः तालुका रहन रख दिया गया। ऋण चुकता करने के लिये उसका एक बड़ा भाग, **उन्नाव जिले** में स्थित **मौरावा** के **चन्दनलाल महाजन** के हाथ बेच दिया गया। यह इलाका **"धुर्लेड़ी"** के नाम से प्रसिद्ध था।

कुम्हरावां परगना

ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन काल में इस परगने में कुरमियों का ऐसा बर्चस्व था कि हर क्षेत्र में वे ही अग्रणी थे। गजेटियर वर्णन करता है यहां कुरमी जाति का स्वामित्व और प्रभुत्व होने के परिणामस्वरूप उनकी जाति के नाम पर इस परगना का नामकरण किया गया था। प्राचीन काल में कुरमी परिवारों के पास बड़ी-बड़ी जागीरें और तालुके थे, वे ही नामी ग्रामी भूखंडों के स्वामी थे। पर जब लूटखसोट करने वाले राजपूतों के पैर इस इलाके पर पड़े तब उनकी नियत डोल गई। और एक छोटे से तालुके के अलावा प्राचीन कुरमी परिवारों के वंशजों के अधिकार में **तमनपुर** और **मवैया** गांव रह गये। तीन गांवों में उनकी पट्टियां और नम्बरदारी भी थी। वहां एक पट्टी **सेहगों के चौधरी** की भी थी।

सेहगों तालुका

रायबरेली जिले में **सेहगों का कुरमी** लोगों का **तालुका** अत्यंत प्रसिद्ध रहा है। **सम्राट अकबर** के शासन

काल में यह घटकर बहुत छोटा रह गया । डिस्ट्रिकट गजेटियर रायबरेली सन् 1905 ई0 लिखता है कि पिछले बन्दोबस्त में **चौधरी गौरीशंकर** के अधिकार में तीन गांव तथा **कुम्हरावां** में एक पट्टी थी । सेहगों का तालुका **विनायक राम** नामक एक **कुरमी कुशल व्यक्ति** द्वारा स्थापित किया गया था । वह **मुगल सम्राट अकबर** का कोई **मनसबदार** था । उसने पश्चिम गांव को अपना निवास स्थल बनाया और वहीं रहकर उसने अपना तालुका स्थापित कर लिया। आगे का विवरण इस पुस्तक में एक अन्य सन्दर्भ में दिया गया है । अतः यहां उसकी पुनरावृत्ति नहीं कर रहे हैं ।

उपरोक्त उदाहरणों से पता चलेगा कि एक तरफ राजपूत आक्रमणकारी लुटेरे कुरमी भूपतियों की जमीने छीन-छीनकर स्वयं जमींदार बन गये, **उधर मानसिक रूप से कुरमी समाज को पुरोहितों, पुजारियों, पंडा आदि से ठगा जा रहा था । वे कुरमी सब कुछ खोते-खोते अनेक लोग मुंशी प्रेमचंद के बहुचर्चित पात्र "होरी" की आर्थिक पतन की दशा की ओर अग्रसर होते जा रहे थे ।**

पूर्वी उत्तर प्रदेश की कुर्मियों के दो और प्रसिद्ध राज्य थे

पूर्व स्टेट - लेजरूवा, वर्तमान नाम - लेजार महदेवा

इस कुरमी स्टेट के ताल्लुकेदार महाराज तेजबहादुर सिंह, विजय बहादुर सिंह आदि हुये हैं । इस राजकुल के वर्तमान उत्तराधिकरी मुरलीधर महाराज हैं । जो कि अधिवक्ता हैं । इस स्टेट के उत्तराधिकारी महाराजा ने तालुकेदारों के कालिज, लखनऊ में शिक्षा प्राप्त की थी ।

पूर्व स्टेट-ढकेहरी, वर्तमान नाम धरूआर

यह कुरमियों की काफी बड़ी स्टेट थी । इस स्टेट का क्षेत्रफल करीबें 45 वर्ग किलो. मी. था । एक बार **नेपाल सरकार** ने इनकी रियासत में विद्रोह करवा दिया, फिर उसे दबाने के बहाने **ढकेहरी स्टेट** में घुस गये। आधा इलाका जीतकर नेपाल में मिला लिया और बाकी आधा क्षेत्रफल जो रह गया था वह भारत के स्वतंत्र होने पर उसमें विलय कर लिया गया । **ढकेहरी राज्य के नेपाल** में काफी भूमि और आवासीय भवन आदि थे ।

वर्तमान में स्टेट के वंशजों में दो भाई **चौधरी बाल जी** तथा चौधरी गोपाल जी हैं । बड़े भाई के कोई संतान नहीं हुई । छोटे भाई की हुई । **चौधरी गोपाल जी के पुत्र रवीन्द्र प्रताप चौधरी** उर्फ **पप्पू चौधरी** वर्तमान उत्तर प्रदेश विधान सभा में विधायक हैं और वे महाराज गंज से निर्वाचित कुर्मी सांसद **श्री पंकज चौधरी** के बहनोई हैं । **श्री पंकज चौधरी** की दादी जी तथा इस लेखक की सास, कलकत्ता निवासी **श्रीमती देवकी देवी,** सगी बहिने थीं।

मुंशी प्रेमचन्द्र का ब्राह्मणवाद को दो टूक जवाब

उस अन्याय और शोषण के प्रति **मुंशी प्रेमचन्द्र** जैसे महान लेखक ने कलम उठाई, तब उन्हें भी न बख्शा गया । यह घटना सन् 1934 के आस-पास की है । उस समय की क्या मानसिकता थी इसका चित्रण मुंशी प्रेम चन्द्र जी का लेख **"क्या हम वास्तव में राष्ट्रवादी हैं?"** (**विविध प्रसंग,** भाग 2, पृष्ठ 470-476, **हंस प्रकाशन, इलाहाबाद में बखूबी किया गया है) :-**

8 जनवरी 1934

"अभी हाल में "भारत" में एक लेख देखकर हमारी आंखें खुल गयीं और यह अप्रिय अनुभव हुआ कि हम अभी तक केवल मुंह से राष्ट्र-राष्ट्र का शोर मचाते हैं, हमारे दिलों में अभी वही जाति-भेद का अन्धकार

छाया हुआ है और ये कौन नहीं जानता कि राष्ट्रीयता और जाति-भेद दोनों में अमृत और विष का अन्तर है। यह लेख किन्हीं **"निर्मल"** महाशय का है, और यदि यह वही "निर्मल" हैं, जिन्हें **श्रीयुत ज्योतिप्रसाद जी "निर्मल"** के नाम से हम जानते हैं, तो शायद वह ब्राह्मण हैं । हम अब तक उन्हें राष्ट्रवादी समझते थे, पर **"भारत"** में उनका लेख देखकर हमारा विचार बदल गया, जिसका हमें दुःख है । हमें ज्ञात हुआ कि वह अभी भी उन पुजारियों का, पुरोहितों का और जनेऊधारी लुटेरों का हिन्दू समाज पर प्रभुत्व बनाये रखना चाहते हैं जिन्हें वह ब्राह्मण कहते हैं पर **हम उन्हें ब्राह्मण क्या ब्राह्मण के पांव की धूल भी नहीं समझते** । **"निर्मल"** की शिकायत है कि हमने अपनी तीन-चौथाई कहानियों में ब्राह्मणों को काले रंगों में चित्रित करके अपनी संकीर्णता का परिचय दिया है, जो हमारी रचनाओं पर अमिट कलंक है । हम कहते हैं कि अगर हममें इतनी शक्ति होती, तो हम अपना सारा जीवन, हिन्दू-जाति को पुरोहितों, पुजारियों, पंडों और धर्मोपजीवी कीटाणुओं से मुक्त कराने में अर्पण कर देते । हिन्दू जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक यही टकेपंथी दल है, जो एक विशाल जोंक की भांति उसका खून चूस रहा है, और हमारी राष्ट्रीयता की कल्पना ही नहीं की जा सकती । जब तक यहां, समाज की भक्ति, श्रद्धा, अज्ञान और अंधविश्वास से अपना उल्लू सीधा करने के लिये एक दल बना रहेगा, तब तक हिन्दू समाज कभी सचेत न होगा । और यह दल दस-पांच लाख व्यक्तियों का नहीं है, असंख्य लोगों का है । उसका उद्यम यही है कि वे हिन्दू जाति को अज्ञानता की बेड़ियों में जकड़े रखें, जिससे वे जरा भी चूं न कर सकें । मानो आसुरी शक्तियों ने अन्धकार और अज्ञान का प्रचार करने के लिये अगणित स्वयंसेवकों की सेना नियत कर रखी है । अगर हिन्दू समाज को पृथ्वी से मिट नहीं जाना है, तो उसे इस अन्धकारमय शासन को मिटाना होगा । हम नहीं समझते, आज कोई भी विचारवान हिन्दू ऐसा है, जो इस **"टके पंथी दल"** को चिरायु देखना चाहता हो, सिवाय उन लोगों के जो स्वयं उस दल में हैं । **निर्मल**, खुद शायद उसी टकेपंथी समाज के चौधरी हैं, वरना उन्हें टकेपंथियों के प्रति वकालत करने की जरूरत क्यों होती ? वह और उनके समान विचार वाले उनके अन्य भाई शायद आज भी हिन्दू-समाज को अन्धविश्वास में से निकलने नहीं देना चाहते वह राष्ट्रीयता की हांक लगाकर भावी हिन्दू समाज को पुराहितों और पुजारियों का ही शिकार बनाये रखना चाहते हैं । मगर हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि हिन्दू-समाज उनके प्रयत्नों और सिर तोड़ कोशिशों के बावजूद अब आंखें खोलने लगा है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जिन कहानियों को **"निर्मल"** जी ब्राह्मण-द्रोही बताते हैं, वे सब उन्हीं पत्रिकाओं में छपी थीं, जिनके सम्पादक स्वयं ब्राह्मण थे । मालूम नहीं **"निर्मल"** जी **"वर्तमान"** के सम्पादक **श्री रमाशंकर अवस्थी, "सरस्वती"** के सम्पादक **श्री देवीदत्त शुक्ल, "माधुरी"** के सम्पादक **पं० रूप नारायण पाण्डे, "विशाल"** भारत के सम्पादक **श्री बनारसीदास चतुर्वेदी** आदि सज्जनों को ब्राह्मण समझते हैं या नहीं, पर उन सज्जनों ने उन कहानियों को छापते समय जरा भी आपत्ति नहीं की थी । वे उन कहानियों को आपत्तिजनक समझते, तो कदापि न छापते। ....**राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्ण-व्यवस्था, ऊंच-नीच के भेद और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है ।"**

उपर्युक्त विचार आज से लगभग 6 दशक पूर्व हिन्दी के मूर्धन्य उपन्यासकार तथा कहानीकार **श्री प्रेमचन्द्र जी** द्वारा प्रकट किये गये थे और वे आज भी उतने ही सार्थक और समाजोपयोगी हैं जितना कि तब थे । कुरमी बन्धुओं से भी निवेदन है कि प्रेमचन्द्र जी के उपन्यासों और कहानियों में कुरमी जाति का जो उल्लेख उस काल के व्यक्ति विशेष की गरीबी के कारण हीन लगता है उसे **"निर्मल"** जी की तरह अन्यथा न लें । प्रेमचन्द जी ने साहित्य रूपी एक दर्पण दिया है जिसमें हम आज उस समय के समाज को ज्यों का त्यों देख सकते हैं।

अंग्रेजी फौज़ में कुरमियों की भर्ती

सन् 1857 की सैनिक कान्ति की विफलता के कुछ अरसे बाद ब्रिटिश सरकार ने पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से कुरमियों की अपनी फौज में सैनिक भर्ती करना एक तरह से बन्द ही कर दिया था, क्योंकि अंग्रेजों

को संदेह था कि क्रान्ति में कुर्मी इलाकों के सैनिकों और आम जनता का अधिक हाथ था। इसके अलावा इस पाबन्दी का और कोई कारण नज़र नहीं आता। जो आवश्यक गुण किसी व्यक्ति को सेना में भर्ती के लिये होने चाहिये, वे सब कूर्मि जाति के नवयुवकों में पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। दूसरे सन् 1857 तथा उससे कुछ वर्षों बाद तक भी कूर्मि-नवयुवकों को ब्रिटिश सेना में भर्ती किया जाता था। प्रमाण के लिये निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत हैं:-

1. **"हिस्टोरिकल रिकार्डस ऑफ दि गवर्नर जनरल बाड़ी गार्ड्स"**

2. **"दि सर्विसेस ऑफ दि बंगाल नेटिव आर्मी"**

परन्तु बाद में अंग्रेज सरकार की नीति में परिवर्तन हुआ और पंजाब (जिसमें तब हरियाणा और हिमाचल प्रदेश सम्मिलित था) तथा राजस्थान से अधिक सैनिकों की भर्ती की जाने लगी। कुरमियों की आबादी उन प्रदेशों में नगण्य थी, अतः उनका सम्बन्ध भारतीय सेना से लगभग छूट गया और अगले कुछ वर्षों में कुरमी जाति की फौज में भर्ती बन्द कर दी गई।

उधर सारे देश में, होने वाले तरह-तरह के अत्याचारों से परेशान, भारतीय जनता के रोष तथा अफसोस से अंग्रेज हुक्मरान लोग और यहां तक कि **ब्रिटिश पार्लियामेंट** भी अनभिज्ञ न थी। वे पुनः सन् 1857 के सिपाही-विप्लव के कारणों और घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होने देना चाहते थे। जनता के जखमों पर मरहम लगाने के लिये तथा असन्तोष की अग्नि का शमन करने के विचार से सन् 1858 ई० में **मल्का विक्टोरिया** ने अपनी समस्त भारतीय प्रजा के साथ निष्पक्ष और समतापूर्ण व्यवहार करने का **घोषणा-पत्र** प्रकाशित किया। **सम्राज्ञी विक्टोरिया** के इस **घोषणा पत्र** का सारांश इस पुस्तक में पहले ही एक अन्य सन्दर्भ में दिया जा चुका है।

अनेक सुधारवादी समाजों का उदय और उन्नति का पुनर्योजन

इतिहास के अवलोकन से यह भी ज्ञात होता है कि सन् 1857 ई0 के असफल **सिपाही-विप्लव** या चाहें हम उसे प्रथम **स्वतंत्रता-संग्राम** कह लें, के उपरान्त देश भर में धार्मिक, सामाजिक, शान्तिमय शासन की इच्छा और शैक्षिक सुधारों और विकास की प्रबल लहर-सी दौड़ गयी। वह दौर ही ऐसा था क्योंकि उधर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर योरुप में भी सामाजिक ढांचे में तेज़ी से बड़े प्रभावशाली वैचारिक परिवर्तन आ रहे थे, उसका भी प्रभाव कुछ न कुछ यहां के बुद्धिजीवियों पर पड़ा। परिणामतः **ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, सत्य शोधक समाज,** आदि धार्मिक एवं सामाजिक तथा **इण्डियन नेशनल कांग्रेस,** विदेशों में **गदर पार्टी** जैसे राजनैतिक दल तथा अन्यान्य बहुसंख्यक शिक्षा प्रसारक एवं जाति-सुधारक संगठनों का जन्म वास्तव में उत्तर विप्लव कालीन अवसादजन्य असहाय अवस्था का प्रतिफल ही था। देखते ही देखते देश में प्रायः सभी जातियां और सम्प्रदाय अपनी-अपनी सोच-समझानुसार उन्नति करने, बुराइयों के निराकरण और अन्यान्य प्रकार के सुधार-प्रयासों में जुट गये। उसी अवधि में अखिल भारतीय स्तर पर जाति सभायें जैसे **कायस्थ-महासभा, अग्रवाल महासभा, मारवाड़ी महासभा, जाट महासभा, ब्राह्मण महासभा, क्षत्रिय महासभा** आदि प्रायः प्रत्येक बड़ी जातियों की सामजिक संस्थायें स्थापित हुई। इन सबके प्रारम्भिक कार्य-कलापों को देखकर उसी दौरान विशाल कुरमी जाति के लोगों के मन में भी यह बात घर कर गयी कि उनकी अनेक जातीय समस्याओं का निराकरण बिना सबल जातीय संगठन के सम्भव न होगा। अतः वे ऐसे संगठन की स्थापना के महत्व को पहचान कर मानसिक तौर पर तैयार हो चुके थे।

मनुवादी व्यवस्था के स्थान पर मानववादी व्यवस्था

जब कोई सांस्कृतिक या सामाजिक व्यवस्था दोषपूर्ण हो जाती है तो क्रान्ति-द्रष्टा व्यक्ति उस पतनोन्मुख

व्यवस्था को त्यागने का मार्ग प्रशस्त कर वैकल्पिक व्यवस्था भी प्रस्तुत करता है। एक चेतना यह भी तीव्रता से फैल रही थी कि सामाजिक विषमता का उच्छेदन कर समाज में **मनुवादी व्यवस्था के स्थान पर मानववादी व्यवस्था स्थापित हो।**

इस दृष्टिकोण के सुधारकों का मत है कि जहां समतापरक मानववादी सामाजिक व्यवस्था है वहां आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था सही रहती है। किन्तु जब सामाजिक व्यवस्था में विकृति आ जाती है तो आर्थिक शोषण एकतंत्रीय शासन का दौर चल पड़ता है। उदाहरण के तौर पर **इंगलैंड** और **जापान** में राजशाही होते हुये भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था बनी है परन्तु भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रत्यक्षतः जनतंत्री होते हुये भी कुलीन तंत्र चल रहा है जिससे यहां पर पुरोहितवाद, सामंतवाद तथा पूंजीवाद की तीनों बुराइयां देश को घोर पतन की ओर ले जा रही हैं। **अतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रान्ति के बिना राजनैतिक या आर्थिक क्रान्ति और उत्कर्ष असम्भव है। समाजवाद और वर्तमान हिन्दू धर्म एक दूसरे के इतने उलटे है जैसा कि दिन और रात।**

बिट्रिश सरकार का कुरमी जाति के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार

सिपाही विपल्व की असफलता के तुरन्त बाद एक घटना और घटी। उधर **साम्राज्ञी विक्टोरिया** के 1 नवम्बर, 1858 के **घोषणा-पत्र** की स्याही ठीक से सूख भी न पायी थी, कि अपने पुश्तैनी कृषि-व्यवसाय में लगी हुई भोली-भाली सीधी-साधी, सच्ची साधु-प्रकृति वाली **कर्मशील कुरमी जाति** पर सरकारी तंत्र द्वारा जगह-जगह पक्षपातपूर्ण प्रहार होने लगे, जिससे उनके पढ़-लिखकर बाहर शहरों में आने वाले लड़कों को सरकारी नौकरी न मिल सके, जिससे उनका भविष्य उज्जवल न बन सके। उस ज़माने में सरकारी नौकरियों या शिक्षक की नौकरियों के अलावा अन्य कल-कारखाने या तरह-तरह के दफ्तर आदि तो थे नहीं जहाँ नौकरियां उपलब्ध हो सकती।

इस स्वतंत्रता प्रिय, स्वाभिमानी जाति की मानसिकता को जर्जर करने के उद्देश्य से कुछ सिर फिरे अंग्रेज आफीसरों की बदला लेने की भावना और कुछ दासत्व-प्रवृत्ति तथा खुशामदी प्रवृत्ति के कारण तत्कालीन सेवा में उच्चवर्ण के कतिपय कुटिल हिन्दू बाबुओं की व्यक्तिगत, जातीय ईर्ष्या ने - **युनाइटेड प्राविन्सस आफ आगरा एंड अवध (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में 2 फरवरी, 1894 को ब्रिटिश सरकार के द्वारा एक परिपत्र निकालकर कुरमी तथा अन्य कुछ जातियों के लोगों को यू. पी. सरकार के पुलिस विभाग की नौकरियों से वंचित कर दिया।**

इसका सम्भवतः एक कारण यह भी था, जिसका विस्तार से इस पुस्तक में अन्यत्र उल्लेख किया जा चुका है कि सन् 1857 के सिपाही-विप्लव में अतरौलिया (जिला आजमगढ़) के **राजा जयलाल सिंह "नुसरतजंग"** तथा अन्य कुरमी राजाओं, जमींदारों और तालुकेदारों ने तथा पुरबिया सिपाहियों के रूप में आम कुरमियों ने खुलकर अंग्रेजों की सरकार को इस देश से समूल उखाड़ फेंकने हेतु, सक्रिय भाग लिया था और अंग्रेज अफसरों तथा उनके परिजनों को उनके द्वारा मौत के घाट उतारना, वे भूल न पाये थे।

कुरमी सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के बाद भी स्वभावतः बदल न पाये थे। वे स्वाभिमान खोकर अंग्रेजों से किसी भी प्रकार का इनाम-इकरार, नौकरी या नये व्यवसाय में मदद, प्राप्त करने में भी औरों से बहुत पीछे रहे। उनकी अपनी निजी सम्पत्ति, गांव-तालुके, जागीरें भी देश की स्वतंत्रता की बलि चढ़ गई, पर उन्होंने उफ् तक न की, क्योंकि उन्होंने देश के साथ विश्वासघात करना स्वीकार नहीं किया। चाटुकारिता की कला उन्हें आती न थी और न सीखने की चेष्टा करना पसन्द था। इसलिये जमीन-जायदाद के मामले में **गोरी सरकार** के हाथों सबसे ज्यादा **कोप-भाजन** का लक्ष्य कुरमी लोग बनें। यू. पी. के अतरौलिया तालुके को जब्त करना, राजा को फांसी पर लटकाने की सजा देना और उनके किले को तोंपों से ध्वस्त कर डालना इस तथ्य के ज्वलंत उदाहरण हैं। **कुरमियों को अभिमान होना चाहिये कि उनके पूर्वज ईमानदार और पवित्र थे और उनकी तरह वे आज भी अपनी कमाई की रोटी खाते हैं।**

कुरमी नव चेतना का प्रारम्भ

आज देश को राजनैतिक रूप से स्वतंत्र हुये 47 वर्ष के लगभग हो चुके हैं, पर आर्थिक रूप से हम अब भी स्वावलम्बी नहीं हो पायें हैं, जैसे अधिकांश गांवों में पेयजल उपलब्ध नहीं हो सका है और न जन-साधारण को आवश्यक चिकित्सा सुविधायें ही मिल पाई हैं। हां खाद्यान्न में जरूर हम अपने पैरों पर खड़े हो सके हैं। पर देशी अर्थ-व्यवस्था पर अपना अंकुश लगा देने के उद्देश्य से विदेशी आर्थिक शक्तियां **डंकल प्रस्ताव** (Dunkel Proposal) को भारत सरकार से मनवाने के लिए हर प्रकार से विवश कर रही हैं। उधर स्वास्थ्य सेवाओं, शुद्ध पर्यावरण, बिजली, परिवहन, रेल, प्राकृतिक विपदाओं पर नियंत्रण आदि अनेक दिशाओं में हम औरों से बहुत पिछड़े हुये हैं। **सर्वाधिक चिन्तनीय गिरावट देशवासियों के राष्ट्रीय चरित्र में आयी है।**

दुर्भाग्य से ब्रिट्रिश शासन-तन्त्र में अंग्रेजों के अतिरिक्त उस समय सभी भारतीय राज्याधिकारी उच्च वर्ण के हिन्दू या मुसलमान ही थे। हिन्दू अपनी ही जाति-बिरादरी वालों को सरकारी नौकरियों में प्रवेश दिलवा देते थे। **"राय साहबों", "राय बहादुरों"** का सरकारी तंत्र में बोल-बाला था और वे अमूमन उच्च वर्ग के थे। उस समय कोई **संघ** या **प्रादेशिक सेवा आयोग** तो थे नहीं, मौखिक परीक्षायें और **आला अफसरों** के सामने उपस्थित होने पर यदि उनकी **कृपा-दृष्टि हो** गई तो फिर उस व्यक्ति के **सितारे बुलन्द** हो जाते थे। बड़े दिनों और नव वर्ष दिवस पर डालियां और तरह-तरह के उपहार देकर समाज के अग्रिम वर्ग के लोग हाकिमों के कृपापात्र बन जाते थे गर्वनर या अन्य नीचे का अंग्रेज अधिकारी यदि शिकार का शौकीन हुआ और बस जमींदार, जागीरदार या तालुकेदार साहब उन्हें सफल रूप से शिकार करवा दें, तो अंग्रेज हाकिम से इच्छित काम करवाना उनका बायें हाथ का काम था। जैसे ऊपर जिक्र किया जा चुका है कि सिपाही-विप्लव के दोषियों में जातीय स्तर पर दोषी होने का भ्रम अंग्रेजों के मन में पैदा करके वे कुरमी नवयुवकों को **सरकारी परिपत्र** द्वारा पहले ही पुलिस विभाग की नौकरियों से अयोग्य घोषित करवा चुके थे।

उन सब अपमानजनक सरकारी परिपत्रों तथा अपने हितों की अवहेलना और मूलभूत अधिकारों के हनन को उस समय के कुरमी जनों का प्रबुद्ध वर्ग ज्यादा देर बर्दाश्त न कर सका। उनका उत्तेजित होकर रोष प्रकट करना स्वाभाविक था। वे एक हद से आगे कुछ करने में लाचार थे। पर हर एक शिक्षित कुरमी यह अनुभव करने लगा था कि जाति-हित में सामूहिक कदम उठाना नितान्त आवश्यक तथा समयानुकूल है। अब से लगभग 100 वर्ष पूर्व, सन् 1893 के अन्तिम महीनों में लखनऊ के **बाबू रामाधीन सिंह** ने वन-विभाग में **"फॉरेस्टर"** की सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया, तथा 2 फरवरी सन् 1984 के सरकारी सरकुलर का विरोध प्रकट करने के लिये वे कुरमियों का संगठन तुरंत स्थापित करने में जुट गये। कुछ सप्ताह पश्चात वर्तमान **आई. टी. कालेज के चौराहे** पर स्थित **पेट्रोल पम्प** के पीछे उस समय खाली पड़े मैदान में कुरमी समुदाय की पहली स्थानीय बैठक हुई, जिसका आयोजन **बाबू रामाधीन** सिंह और लखनऊ के कुछ अन्य कर्मठ कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया गया था।

"कुरमी सदर सभा, लखनऊ" का गठन

लखनऊ के जातीय इतिहास में कुरमी समुदाय की यह पहली सभा प्रथम क्रांतिकारी पग था, जिसने जनमत का निमार्ण करने, अपनी मांग को ब्रिटिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करने का मार्ग प्रशस्त किया। वैसे इस प्रथम सभा का आकार-प्रकार स्थानीय स्तर का था किन्तु स्वजातीय संगठन और आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिये **"कुरमी सदर सभा"**, लखनऊ की स्थापना की गई। सभी ने बड़ी तत्परता के साथ अपने उद्देश्यों का प्रचार और प्रसार करने के लिये बाहरी दौड़-भाग आरम्भ कर दी। सभा के उद्देश्यों एवं उनके कार्यों के समाचार लेकर वे अन्य आस-पास के जिलों में भी पहुँचे, वहां उनका हार्दिक स्वागत किया गया। विशेष रूप से इटावा वासी कुरमी बहुत उत्साहित हुये। **चौधरी दुर्गाप्रसाद ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, दरोगा श्री बिहारी लाल** तथा इटावा के अन्य सम्भ्रान्त उत्साही

सज्जनों ने आगामी सभाओं में सम्मिलित होने एवं हर प्रकार का सम्भव योगदान करने की इच्छा प्रकट की । बाबू रामाधीन सिंह को स्वजातीय बन्धुओं की इस आशातीत प्रतिक्रिया से अपूर्व बल मिला, अतः दो मास के अल्पकाल के भीतर ही उन्होंने लखनऊ में पुनः 28-29 जून, 1894 ई0 को एक विशेष अधिवेशन आयोजित किया । इसमें इटावा, पीलीभीत, सीतापुर, रायबरेली और बाराबंकी के कुरमीबन्धु एकत्र हुये । वह अधिवेशन बहुत सफल रहा । अपने इस प्रारम्भिक प्रयत्नों में बाबू रामाधीन सिंह को अपने संकल्प की सफलता का पूर्वाभास हुआ।

इन सभाओं में उक्त सरकारी सर्कुलर के विरुद्ध प्रबल जन-ज्वार खुले रूप में नज़र आने लगा । इस विशेष अधिवेशन में ही सर्वसम्मति से निर्णय किया गया कि अखिल भारतीय स्तर पर अधिवेशन शीघ्र ही किया जाये । अतः बाबू रामाधीन सिंह ने कुरमी सदर सभा लखनऊ की ओर से दूर-दूर के नगरों में तथा अन्य प्रदेशों में सभा के उद्देश्यों एवं कार्यों के प्रचार-प्रसार के लिये शिष्ट-मंडल भेजे । अधिक दूरी पर स्थित भद्रपुरुषों से पत्राचार द्वारा सम्पर्क स्थापित करने का भरसक प्रयास किया गया । दूरदर्शी तथा कर्मठ बाबू रामाधीन सिंह जानते थे कि अपने साथ, बिखरी हुई स्वजाति को संगठित करके साथ लिये बगैर, सरकारी सर्कुलर का विरोध कर, ब्रिटिश सरकार से अपनी बात मनवाना आसान नहीं होगा । अतः उन्होंने 6 मास अनवरत परिश्रम करके उत्तरी भारत के कुरमी समाज के अधिकाधिक लोगों से सम्पर्क स्थापित कर नवजागरण का सूत्रपात कर दिया । गुजरात और दक्षिण भारत, महाराष्ट्र तथा सेण्ट्रल प्राविन्सेस में भी इस कुरमी चेतना और जागरण के शंखनाद तथा ब्रिटिश सर्कुलर के विरोध के समाचार पहुंच गये । अपने सदाचार एवं विलक्षण बुद्धि के बल से बड़ौदा के महाराजाधिराज सर श्रीमन्त सयाजीराव गायकवाड़, ग्वालियर के महाराजा श्री जियाजी राव सिंधिया, देवास नरेश (प्रथम श्रेणी) एवं (द्वितीय श्रेणी) और अवध के तालुकेदारों, जमींदारों आदि एवं आम कुरमी जनमानस का सहयोग प्राप्त करने में पूर्ण सफलता मिली । केवल 8 माह के अल्पकाल में बाबू रामाधीन सिंह ने इस महान जाति को संगठित कर उसके प्रथम अखिल भारतीय स्तर के अधिवेशन आयोजित करने सम्बन्धी सभी आवश्यक तैयारियां कर डाली। वास्तव में श्री रामाधीन सिंह अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के संस्थापक तथा जनक थे और उन्हें इस जाति के लोग सदा कृतज्ञता से स्मरण करते रहेंगे ।

उर्दू के शायरों के निम्नलिखित उद्‌गार देखिये :-

(1) अंधेरा आया था मांगने रोशनी की भीख,
हम अपना घर न जलाते तो और क्या करते?

(2) हदूदे जात से बाहर निकलकर देख जरा,
न कोई ग़ैर है न कोई रकीब अपना ।।

राष्ट्रकवि श्री रामधारीसिंह दिनकर के अनुसार :-

कौन कहता है कि बापू शत्रु थे विज्ञान के,
वह तो मनुज से मात्र बात इतनी कहते थे,
कि रेल, मोटर या कि पुष्पक-यान कुछ भी रचो,
सोच लो पहले कि जाना कहां है ।

पहला अधिवेशन

"कुरमी सदर सभा" का पहला अधिवेशन 29 और 30दिसम्बर 1894 को लखनऊ शहर के मोहसिन गंज मोहल्ले में, उस समय पड़े हुये खुले मैदान में बने विशाल पंडाल में फर्रुखाबाद (यू. पी.) के रायसाहब बाबू गेन्दनलाल बी. ए., एल. एल. बी. वकील की अध्यक्षता में हर्षोल्लास के वातावरण में सम्पन्न हुआ ।

कुरमी जाति के अखिल भारतीय स्तर के प्रथम अधिवेशन में संयुक्त प्रान्त तथा बिहार के जमींदार, रईस गण, वकील, अध्यापक तथा अन्य जातीय हितैषी बन्धुओं ने बड़े जोश-खरोश के साथ भाग लिया था । लखनऊ शहर में, बाहर के आने वाले उपर्युक्त प्रतिनिधिगण 28 दिसम्बर, 1894 से ही आने प्रारम्भ हो गये थे । रेल सेवाओं का ज्यादा विस्तार तब तक न हुआ था और आजकल की तरह न इतनी सड़कों का जाल बिछा हुआ था और न यातायात की बस सेवाओं का प्रचलन प्रारम्भ हुआ था । ऊपर से दिसम्बर माह की कड़ाके की सर्दी, अतः सभी आगन्तुक गण साथ में रजाई और आवश्यक बिस्तर तथा निजी सेवकों सहित आये थे, तथा लखनऊ चारबाग स्टेशन पर पहचान हेतु बाजुओं पर सभा की पट्टी बांधे स्वयंसेवक, स्वागत करने को इक्का और तांगा (उस समय की उपलब्ध आम सवारी-साधन) सहित, हर आने वाली ट्रेन के समय सदैव खोजती हुई आंखों से तैयार रहते थे । ज्यादातर वे युवा वर्ग के थे । अतः नया खून, नया जोश इस महान काम की शुरुआत मे उभर कर आया था सभी कार्यकर्ताओं में अपूर्व उत्साह था । योजनानुसार कुछ प्रतिनिधिओं के ठहरने का प्रबन्ध तम्बुओं में किया गया था और अन्य कुछ सभा-स्थल के पास के मन्दिर की धर्मशाला तथा चौधरी चेतराम साहब के नवनिर्मित मकान में ठहराये गये थे ।

प्रथम दिवस 29 दिसम्बर 1894 का सत्र

"कुरमी सदर सभा" के प्रथम दिन, 29 दिसम्बर 1894 को अपराह्न 3 बजे अधिवेशन का श्री गणेश किया गया । सर्वप्रथम **बाबू मैकूलाल साहब,** लखनऊ वासी ने प्रस्ताव रखा, जिसका **श्री मक्खनलाल साहब, आगरा कालेज** तथा **बाबू जंगासिंह साहब, निवासी पीलीभीत** शहर ने अनुमोदन तथा समर्थन किया कि फर्रुखाबाद निवासी वकील **बाबू गेंदनलाल** बी. ए., एल-एल.बी., हमारी नवगठित **"कुरमी सदर सभा"** के वार्षिक अखिल भारतीय स्तर के अधिवेशन का सभापतित्व ग्रहण करें। तदोपरान्त सभा-मण्डप में उठी करतल ध्वनि के साथ **बाबू गेंदनलाल** जी वकील ने सभी उपस्थित प्रतिनिधिगणों का अभिवादन करते हुये अध्यक्षासन ग्रहण कर लिया और कार्यवाही प्रारम्भ हुई ।

फर्रुखाबाद के **बाबू शिवप्रसाद** जी ने जातीय पत्रिका का प्रकाशन तुरन्त प्रारम्भ करने पर बल दिया, जिसका अनुमोदन लखनऊ के **बाबू शिवदयाल जी, श्री बजरंग सिंह** रईस व जमींदार बीबीरपुर (जिला बाराबंकी) ने किया। **बाबू रामाधीन सिंह,** महामंत्री द्वारा सभा के कार्यकलापों पर एक रिपोर्ट पढ़ी गयी । उन्होंने ही **"कुरमी सदर सभा"** के नाम से गठित कुरमियों के जातीय संगठन को राजकीय नियमों के अनुसार सभा की स्वीकृति प्राप्त कर पंजीकृत कराने की अनुमति प्रदान कराने का भी प्रस्ताव किया, जिसका समर्थन तथा अनुमोदन सर्वसम्मति से कर दिया गया। सभापति महोदय ने अपनी स्वीकृति की भी घोषणा कर दी । तभी एक कमेटी का गठन किया गया जिसमें **बाबू रामाधीन सिंह** के अतिरिक्त अन्य दो सदस्य, मुरादाबाद के **बाबू गुलजारी लाल एकाउन्टेंट** तथा फर्रुखाबाद के रईस और जमींदार **ठाकुर रामप्रसाद** आदि थे । इन लोगों ने 29 दिसम्बर, 1894 की सारी रात जागकर, बड़े परिश्रम से **"कुरमी सदर सभा"** की नियमावली बनाई ।

ठाकुर मूलचन्द्र साहब फर्रुखाबाद और **श्याम प्रसाद सिंह साहब ताल्लुकेदार मिरजापुर, बाबू सूरजबली सिंह** ओवरसियर ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि जहां कहीं भी हमारी अधिक आबादी है **"कुरमी सदर सभा"** की



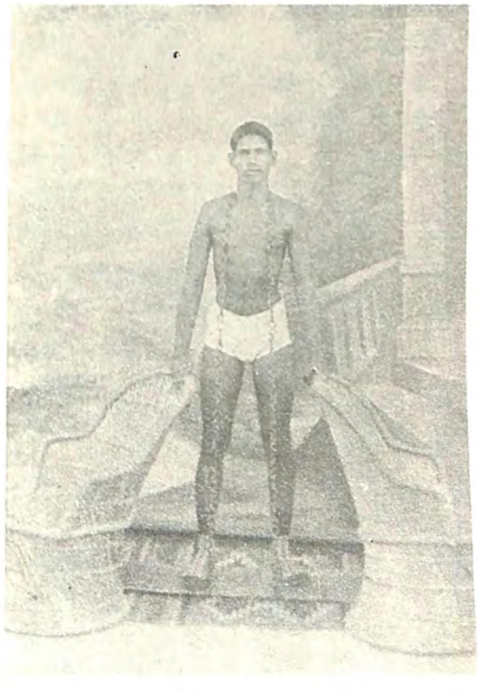
अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के
प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष
श्री बा० गेन्दनलालजी, वकील



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के
द्वितीय अधिवेशन के अध्यक्ष
श्री बाबू नन्दलाल जी



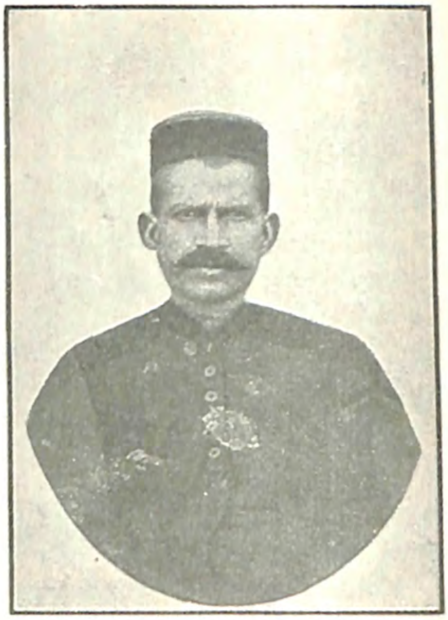
अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभाके
उपाध्यक्ष धर्मशहीद राय बहादुर बाबू बहादुर सिंह



कलियुगी भीम प्रोफेसर राममूर्ति के पट्ट शिष्य
प्रोफेसर महावीर विश्राम सिंह



राजा दर्शन सिंह "ग़ालिब जंग"
सेनापति बादशाह अवध-लखनऊ



अ० भा० कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
आद्य संस्थापक, स्तंभ और मंत्री
श्री बा० रामाधीन सिंह



गुजरात के महान कुरमी-समाज-सुधारक
राव बहादुर सेठ अम्बैदास बेचारदास लश्करी सी० एस० ई०



बिहार के कुरमी समाज में नव जागरण के सूत्रधार
बाबू जनक धारी लाल जी

शाखायें खोली जायें। इसे भी जनसभा ने सर्वसम्मति से अनुमोदन के पश्चात, सभापति महोदय ने जनसभा द्वारा स्वीकृत घोषित किया। उपर्युक्त प्रस्तावों के संबंध में प्रतिनिधियों ने अपने-अपने विचार भी सभापति की अनुमति से रखे।

प्रथम दिवस के अन्त में बाबू रामाधीन सिंह, महामंत्री ने सबको धन्यवाद ज्ञापित किया, उस काल की परम्परा के अनुसार, जो आज हम सबको विचित्र लगती है, सबसे अधिक प्रशंसा उन्होंने **श्री राजराजेश्वरी महारानी सम्राज्ञी विक्टोरिया** की, कि उनकी अनुकम्पा से आधुनिक विज्ञान की उपलब्धि, रेल यात्रा, डाक-तार का चलन हुआ, हम सब आपको पत्राचार से और स्वयं जगह-जगह रेल द्वारा जाकर आमंत्रित कर सके और आप उसी सुविधा के कारण यहां तक आराम से आ सके। अन्त में मल्का विक्टोरिया का तहे-दिल से तीन बार जयघोष करके शुक्रिया अदा करने के बाद सभापति जी ने उस दिन की सभा का समापन घोषित किया। रायबहादुर बाबू गेंदन लाल की प्रपौत्री, डा० कुमकुम राय, प्राध्यापिका तथा महासचिव प्रदेश जनता दल, बिहार, से इस लेखक की भेंट कार्यकारिणी समिति की, 1 जनवरी 1995 में लखनऊ में सम्पन्न हुई, बैठक में हुई।

द्वितीय एवं अन्तिम दिवस, 30 दिसम्बर, 1884 ई० का सत्र

आज भी सभी प्रतिनिधि महोदय, सभास्थल पर एकत्र हुये। निश्चित समय पर सभापति बाबू गेंदन लाल वकील साहब करतल-ध्वनि के मध्य अपने आसन पर विराजमान हुये तथा महामंत्री बाबू रामाधीन सिंह ने सभा के नियम-उपनियम क्रमशः जो कि उनके द्वारा रातभर जागकर बनाये गये थे, एक-एक करके सभासदों को सुनाये इस संबंध में **बाबू चिरौंजीलाल, मक्खन लाल** साहिबान आगरा तथा **श्री बिहारी लाल** इटावा ने सभा के नाम पर संशोधन प्रस्ताव रखा, जिस पर सभापति महोदय ने हाथ उठाकर यह निर्णय दिया कि हमारी इस सभा का नाम **"कुरमी सदर सभा"** रखा जाये।

इसके बाद **"कुरमी क्लब"** पीलीभीत के कुछ विद्यार्थियों ने सुन्दर अलंकार-युक्त भाषा में लिखे हुये लेख पढ़े, जिन्हें सुनकर समस्त उपस्थित जन-समुदाय बड़ा ही आनन्दित हुआ। इन कुरमी नवयुवकों के नाम थे सर्वश्री **बाबू मगनीराम इन्ट्रेंस** क्लास विद्यार्थी, **बाबू लालताप्रसाद,** मंत्री **"कुरमी क्लब" पीलीभीत, बाबू बहादुरसिंह वर्मा,** पुत्र **लाला बालगोबिन्द साहब,** म्युनिसिपल कमिश्नर, पीलीभीत, **चन्द्रमुकुट** विद्यार्थी, **श्रीराम विद्यार्थी, होशियार सिंह**। उन्होंने शिक्षा का महत्व, संगठनात्मक एकता, जातीय-विविध हितों, बाल-विवाह के दोषों इत्यादि विषयों पर बड़े ज्ञानवर्द्धक तथा विषय की महत्ता को प्रतिपादित करने वाले अपने-अपने लेख पढ़े।

पीलीभीत के **"कुरमी क्लब"** के नवयुवकों ने उपर्युक्त वर्णन के अनुसार अधिवेशन में भाग लिया, वे सब वहां के प्रतिष्ठित रईस और जमींदार **जयसवार कुरमी परिवारों** से थे। आज उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ी विद्यमान है और पीलीभीत में उनकी गणना आज भी बड़े सम्पन्न परिवारों में होती है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न लिखित है :-

1. **बाबू मगनीराम :** इनके पुत्र **श्री जगतसिंह** की तीन पुत्रियां हैं। दामादों के नाम हैं स्व. ले. **कर्नल महेशचन्द्र कटियार, मेजर सी. पी. सिंह, श्री पी. यस. कटियार** जनरल मैनेजर रामडुन्डम कोलरीज लिमि. (आन्ध्र प्रदेश) की एक कोयला खान कम्पनी। इन तीनों पुत्रियों का नाती-पोतों से भरा-पूरा सम्पन्न परिवार है, जिसमें एक **मेजर राहुल कटियार,** भारतीय थल सेना के फलाइंग विंग में हैं तथा **राष्ट्रपति** जी द्वारा **सेना मंडल** और **युद्ध सेवा मेडल** से अलंकृत हैं।

2. **बाबू बहादुर सिंह वर्मा :** बाद में यह **राय बहादुर बहादुर सिंह** ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के नाम से विख्यात

हुये । **"कुरमी सदर-सभा"** के उपाध्यक्ष भी रहे । ये जयसवार कुरमी थे। इनका जीवन वृत्त इस पुस्तक में आगे दिया गया है । अन्य विवरण के लिये कृपया उसे देखिये ।

3. **श्री चन्द्र मुकुट :** मोहल्ला तुलाराम में काली हवेली वाले इनके वंशज सर्वश्री **बलभद्र सिंह** और **महेन्द्रसिंह** तथा **श्री बलभद्रसिंह** के पुत्र, पौत्र, नाती-पोते हैं महेन्द्र सिंह आजीवन अविवाहित रहे ।

4. **श्री होशियार सिंह :** इनके पुत्र थे **श्री कन्हैयालाल**, पौत्र **श्री रामसिंह** (इस पुस्तक के लेखक के बहनाई) । प्रपौत्रों में श्री **कुलराज सिंह, जालिमसिंह, जगतारनसिंह, बुद्धिसिंह, इन्दरसिंह** । आगे इन सबके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र और नाती-पोते आदि सम्पन्न हैं !

5. **श्री लालता प्रसाद :** यह भी मोहल्ला तुलाराम में स्थित काली हवेली वाले **श्री चन्द्र मुकुट** के सगे भाई थे ।

6. **श्री श्रीराम :** **रायबहादुर बाबू बहादुरसिंह ऑनरेरी मजिस्ट्रेट पीलीभीत** के सगे भाई । इनकी पुत्रियां थीं, उनके अपने सम्पन्न परिवार हैं ।

सभापति बाबू गेंदन लाल जी वकील के अभिभाषण के महत्वपूर्ण अंश

"सभ्यवर ! आप लोग जानते हैं कि यह पद जो कि आप लोगों ने सर्वसम्मति से मुझे प्रदान किया है बड़ा उच्च और कष्टसाध्य है । प्रिय प्रतिनिधिगणों ! मैं अपका सम्पूर्ण हृदय से धन्यवाद करता हूँ कि आप लोगों ने इतना कष्ट उठाकर दूर-दूर से आकर इस सभा को सुशोभित किया है । मेरे पास इतने शब्द नहीं हैं कि मैं उस अनुग्रह को जो आप लोगों ने यहां आने से, इस सभा पर किया है, प्रकाश डालूँ ।

अब तक हमारी जाति में सभा का प्रचार न होने के कारण जो बुराइयां हमारी जाति में प्रवेश कर गई हैं, आप लोगों से छिपी नहीं हैं । जब तक हम लोग हर गांव और मुहल्ले में जहां बिरादरी के लोग अधिक रहते हैं, सभायें स्थापित न करेंगे, तब तक हमारी जाति में परस्पर मेल और प्रेम स्थापित होना कठिन है। पुलिस सर्कुलर से हमारे माथे पर आश्चर्यजनक धब्बा लगा है । इसे छुड़ाने के लिये इतना कहना न पड़ता । इसलिये हम लोगों को उचित है कि बहुत जल्द यत्न करके स्थान-स्थान पर कुरमी जातीय सभायें स्थापित करें, जिससे हमारा विभाजित बल एकत्र होकर बड़े-बड़े कामों को करने में समर्थ हो ।

आप लोगों के बाप-दादों ने और आपने भी जितनी कार्रवाई जंगी फौज आदि में की है वह छिपी नहीं है । कौन कह सकता है कि आप लोगों में फौजी बनने की योग्यता नहीं है? इस समय मैं उचित समझता हूँ कि रिवेण्ड शेरिंग की राय आप लोगों को सुनाऊं । **रिवरेण्ड शेरिंग** ने अपने **"हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कॉस्ट्स"** नामक ग्रंथ के तृतीय खण्ड, पृष्ठ 258 के **"दि यूनिटी ऑफ द हिन्दू रेसेस"** नामक अध्याय में लिखा है :-

"कुम्भी या कुरमी जाति जिसके अनेक नाम हैं, तादाद के ख्याल से कृषक जातियों में प्रमुख हैं और यह बात इस विषय का जानकार हर एक व्यक्ति जानता है कि यह उन जातियों का यथार्थ और पूर्ण प्रतिनिधि स्वरूप है । कुरमी लोग बलिष्ठ हैं, जैसा कि इस पेशे के लोगों को होना चाहिये । इनका रंग महोगनी के समान होता है, काला या काला जैसा कभी नहीं होता । यह बहुधा और विशेषकर पश्चिमोत्तर भारत में लम्बे, बलवान,

बहादुर, साफ दिल और स्वाधीन भावनायुक्त होते हैं । यह नीच शूद्र लोगों की तरह खुशामदी बिल्कुल नहीं है, केवल बुद्धि की मंदता इनमें देखी जाती है और वह इनके पेशे और देहात के रहने के कारण ही जान पड़ती है । इनमें कुछ ऐसे गुण देखे जाते हैं, जो केवल उच्च जातियों में होते हैं, नीच जातियों में कभी नहीं पाये जाते हैं । इन लोगों में दासता और भय के भाव नहीं हैं जो कि नीच जातियों में उच्चजातियों के साथ बात-व्यवहार में स्पष्ट प्रकट होते हैं ।

असली कुरमी ऐसा भाव कभी प्रकट नहीं करता, बल्कि उलटे राजपूतों की तरह, जिसके साथ इसका बहुत अधिक साम्य है, निर्भीकता और स्थिर-शान्त भाव दर्शाता है । उसमें धूर्तता, कुशाग्रता और चपलता नहीं है । परिणामतः वह ब्राह्मणों से भिन्न है । उसका ढांचा राजपूत के समान है और निन्दित जातियों के समान कभी नहीं । राजपूत के समान साफ और सुन्दर न होते हुये भी उसका आकार-प्रकार और चेहरे की बनावट राजपूतों जैसी है । यह सहनशील, शान्त और सबसे अधिक स्वमर्यादा-रक्षणशील है, जोकि एक सच्चे हिन्दू का प्रथम चिह्न है वह गरीब होते हुये भी अपने गौरव को नष्ट नहीं करता और न नीच या कुत्सित कर्म ही करता है । उसकी सामाजिक अवस्था विलायत के खेतिहर मजदूरों से बहुत ऊँची है और इसलिये उसका अन्य जातियां अधिक सम्मान करती हैं । किन्तु उसका यह सम्मान अत्युत्तम आचरण के कारण है, जोकि ब्राह्मण के दम्भ और राजपूत के अभिमान से मुक्त होता है ।"

हमको चाहिये कि हम अपनी वंशावली जल्दी तैयार करें, जिसका मसाला हम इन-इन स्थानों में पावेंगेः-

1 शास्त्र-पुराण, 2. जातीय रीति-नीति, धर्म-कर्म का विचार और तुलना, 3. उन इतिहास लेखकों की राय जिन्होंने भिन्न-भिन्न जातियों के विषय में अनुसंधान करके लिखा है ।

हमको इस बात का जानना आवश्यक है कि हम कौन हैं और कहां से आये हैं? मनुष्य अपने कर्म से ही नीच और श्रेष्ठ कहा जा सकता है ।

बड़े-बड़े अंग्रेज इतिहास लेखकों में से रिवरेण्ड शोरिंग एम. ए., एल-एल. बी. से अधिक और किसी ने हिन्दू जातियों पर अनुसंधान नहीं किया है । वह कहते हैं कि "कुरमी जाति-कुरमी, कुनबी, कन्बी, कुम्बी आदि नामों के साथ हिन्दुस्तान के अनेक स्थानों में रहती है । इसके विषय में ठीक-ठीक जान लेना उचित है ।"

"इस संबंध में अन्त में यह भी कह देना उचित समझता हूँ कि जातीय सभा का धर्म और राजनीति से कुछ सम्बन्ध नहीं है । इसका उद्देश्य इसके नियमों में लिखा है । इसका कार्य केवल कुरमी जाति में भ्रातृभाव, प्रेम, एवं एका फैलाने और उसकी विद्या, नीति विषयक उन्नति करने का है ।"

इस अधिवेशन में सभासदों ने सर्वसम्मति से जो प्रस्ताव पारित किये, उनमें दो अत्यन्त महत्वपूर्ण थे :-

(क) "कुरमी सदर सभा" के नाम से कुरमियों के अपनी शीर्षस्थ जातीय संगठन के गठन करने का निर्णय लिया गया, जिसके अन्तर्गत प्रदेश और जिला स्तर पर सभायें स्थापित करना था । बाबू रामाधीन सिंह को "कुरमी सदर सभा" का प्रधान मंत्री चुना गया । (इस पुस्तक में कभी उन्हें महामंत्री भी कहा गया है उनका नाम कहीं 'राम अधीन सिंह' भी लिखा मिला । जैसा विवरण मिला वैसा ही देने की चेष्टा की गई है ।)

(ख) कुरमियों को अपनी जातीय समस्याओं और उनके उपचार हेतु "कुरमी सदर सभा" नामक अपनी उपर्युक्त संस्था के कार्य-कलापों से अवगत कराने हेतु "कुरमी समाचार" नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित करने का भी निर्णय लिया गया । ("कुरमी समाचार" के अंक 1, खण्ड 2, दिनांक 15 अप्रैल, 1895 के सौजन्य से)

उपर्युक्त प्रस्तावों के कियान्वयन के संबंध में "कुरमी सदर सभा" की आज्ञानुसार बाबू भगवान दीन के सम्पादकत्व में "मुंशी जी. पी. वर्मा ब्रादर्स प्रेस" में छापकर "कुरमी समाचार" पत्रिका, हसनगंज लखनऊ से प्रकाशित

की गई, जिसमें उस समय की अपनी जातीय स्थिति, पहली महासभा लखनऊ में बुलाने की आवश्यकताओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया ।

इस अधिवेशन के निर्णय के अनुसार **"कुरमी सदर सभा"** विधिवत स्थापित की गई और उसकी ओर से ब्रिटिश सरकार से, उसके अपने 2 फरवरी 1894 के परिपत्र को, जिससे कुरमी तथा अन्य कुछ जातियों के लोगों को पुलिस विभाग की नौकरी से वंचित कर दिया गया था, उसे वापिस लेने के लिये जातीय तथ्यों सहित तत्कालीन गर्वनर महोदय से पत्राचार किया गया तथा एक शिष्ट मंडल भी सरकार के पास भेजा गया । **आखिर ब्रिटिश सरकार ने अपनी भूल अनुभव करते हुये, कुरमी जाति विरोधी अपना परिपत्र निरस्त करते हुये गवर्नर महोदय ने निम्नलिखित आदेश (मूल अंग्रेजी भाषा में) उत्तर प्रदेश, जिसे उस समय पश्चिमोत्तर प्रदेश एवं अवध (N.W.P. and Oudh) कहा जाता था, की पुलिस विभाग के इंस्पेक्टर जनरल के नाम जारी किया :-**

आदेश क्रम. 251/आठ-186ए-6 दिनांक 21 मार्च, 1894 ई.

"गवर्नर महोदय की राय है कि कुरमी एक सम्मानित समुदाय है, जिसे शासकीय सेवा से बाहर रखना अनुचित है ।"

हस्ताक्षर
कृते गवर्नर
नार्थ वेस्ट प्राविन्स एंड अवध

उपर्युक्त उपलब्धि से **"कुरमी समाचार"** पत्रिका के माध्यम से यू.पी. एवं बिहार प्रान्त भर में कुरमियों में सर्वत्र विजयोल्लास की लहर फैल गयी और वे अपने नवगठित संगठन **"कुरमी सदर सभा"** की उपयोगिता तथा महत्व को भलीभांति अनुभव कर जिला स्तर पर सभायें गठित करने में जुट गये ।

उस समय की उचित जन-भावना, कुरमी स्वाभिमान-रक्षक आन्दोलन, कुरमी नवचेतना और उसके परिणामस्वरूप सफलतापूर्वक तथा सुचारु रूप से **"कुरमी सदर सभा"** का गठन और उसका प्रथम अधिवेशन का लखनऊ की सरजमीं पर आयोजन; **"कुरमी समाचार" प्रकाशन का शुभारम्भ आदि के प्रेणता, जनक और संचालक लखनऊ के सरकारी ठेकेदार और रईस, बाबू रामधीन सिंह, को कहें तो लेशमात्र की अतिशयोक्ति न होगी । क्योंकि यह उनका ही दिव्य स्वप्न था और उसे साकार कर दिखाने में वे अपने सहयोगियों के साथ रात दिन जुटे रहे ।** स्वयं जाकर या अपने प्रतिनिधियों द्वारा आस-पास के जिलों में, जैसे फर्रुखाबाद, कानपुर, रायबरेली, इटावा, पीलीभीत, बरेली, शाहजहांपुर, सीतापुर, हरदोई, लखीमपुर-खीरी, कानपुर बनारस, मिरजापुर आदि जिलों में उन्होंने प्रचार सामग्री भेजी, जिसके परिणामस्वरूप ही हजारों की संख्या में प्रतिनिधिगण **"कुरमी सदर सभा"** के प्रथम अधिवेशन में भाग लेने लखनऊ सहर्ष पधारे । प्रथम अधिवेशन के द्वितीय प्रस्ताव के क्रियान्वयन में **"कुरमी समाचार"** मासिक पत्रिका, लखनऊ के हसनगंज के **"मुंशी जे. पी. वर्मा ब्रावर्स प्रेस"** से 19 अप्रैल 1845 को **बाबू रामाधीन सिंह** तथा **श्री भगवानदीन** के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई, पर वह पत्रिका प्रचार-प्रसार की कमी और पाठकों से आशातीत सहयोग न मिलने के कारण लगभग दो वर्ष ही प्रकाशित हो पायी जो कि करोड़ों की संख्या वाले समाज के लिये अत्यंत खेद की बात है । तब से अब यद्यपि सौ वर्ष पूरे होने वाले हैं, देश स्वतंत्र हो चुका है पर तब के युवक वर्ग की तरह आज भी वे तरह-तरह की समस्याओं से घिरे हुये हैं । हां आज का तरुण वर्ग तब से अधिक शिक्षित है ।

वर्तमान काल के सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि नागार्जुन, मधुबनी, बिहार प्रदेश में सन् 1911 में जन्मे, पूर्व नाम **वैद्यनाथ मिश्र**, तथा सन् 1994 में साहित्य अकाडेमी के उच्चतम पुरस्कार से सम्मानित, का भावुक हृदय बेरोजगार नवयुवकों की लम्बी-लम्बी कतारें रोजगार दफ्तरों के सम्मुख देखकर निम्नलिखित काव्य द्वारा चीत्कार कर उठा था:-

तरुणों को डाकू बनने दो,
फिर करवाना आत्मसमर्पण ।।
अपराधों की राख से ही तो,
चमक उठेगा प्रजातन्त्र ।।

उत्तर प्रदेश में वर्तमान में 96 विधायक बनने में सक्षम

डा० सत्येन्द्र नारायण सिंह, सहायक प्राध्यापक, पटना मेडिकल कालेज ने उत्तर प्रदेश के कुर्मी बहुल विधान सभा क्षेत्रों का गूढ़ अध्ययन कर हाल ही में अपने निष्कर्ष जातीय पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाये । **"शोषित मुक्ति"**, मासिक पत्रिका के जून 1994 अँक में प्रकाशित उनके उपर्युक्त निष्कर्ष के कुछ अंश साभार यहाँ उद्धृत हैं :-

"उत्तर प्रदेश में कुल 425 विधान सभा क्षेत्र हैं जिनमें कुल मिलाकर वोटों की संख्या 8 करोड़ 2 लाख है । प्रदेश की आबादी सन् 1991 की जनगणना के अनुसार 13 करोड़ 87 लाख है । यानी यहाँ जनसंख्या वोटों की संख्या से (13.87/8.02=1.73) 1.73 गुणी (लगभग पौने दो गुनी अधिक) है । प्रदेश के सर्वाधिक घनी आबादी वाले पूर्वी एवं मध्य क्षेत्रों में जहां कुरमी जाति का बाहुल्य है एक विधान सभा क्षेत्र में लगभग सवा दो लाख वोट हैं जबकि शेष अन्य क्षेत्रों में प्रत्येक में लगभग पौने दो लाख के आस-पास वोट हैं ।

उत्तर प्रदेश के पिछले चुनावी विश्लेषणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वहाँ लगभग छियानवे (96) विधान सभा क्षेत्रों में कुरमी जाति के वोट चालीस (40) हजार से अधिक हैं जिनमें लगभग 32 क्षेत्र अनुसूचित जातियों के लिये आरक्षित हैं । इन 96 में से अनेक क्षेत्रों में कुरमियों के वोट 60 से 80 हजार तक भी हैं । फिर भी यदि इन सभी 96 क्षेत्रों में कुरमी जाति के औसत वोट पचास (50) हजार भी माना जाय तो केवल 96 क्षेत्रों में ही कुरमी जाति की आबादी इस प्रकार निकली :-

कुल वोट	50 हज़ार x 96	48 लाख
कुल आबादी	48 लाख x 1.73	83 लाख

इस प्रकार उत्तर प्रदेश में कुरमी जाति की कम से कम जनसंख्या डा० सत्येन्द्र नारायण सिंह के अनुसार इस प्रकार निकली :-

कुरमी बहुल 96 विधानसभा क्षेत्रों में	83 लाख
कुरमी २२० विधान सभा क्षेत्रों में	57 लाख
कुरमी शेष 109 (पश्चिमी एवं पहाड़ी) क्षेत्रों में	00 (शून्य) लगभग
कुरमी जाति की कुल जनसंख्या (न्यूनतम)	1 करोड़ 40 लाख

डा० सिंह के उपर्युक्त एक साधारण गणित के माध्यम से हमने देखा कि उत्तर प्रदेश में कुरमी जाति की कुल जनसंख्या सन् 1991 की जनगणना में कम से कम 1 करोड़ 40 लाख है । प्रत्यक्ष है कि कुरमी जाति की जनसंख्या इससे कहीं अधिक हो सकती है कम नहीं । यदि मोटे तौर पर यह संख्या 1 करोड़ 50 लाख के करीब भी मानी जाय तो **इस तरह कुरमी जाति कुल जनसंख्या सन् 1991 में उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या 13 करोड़ 87 लाख की 11 (ग्यारह) प्रतिशत हुई ।"**

[**नोट :** सन् 1993 के विधान सभा के चुनावों में 96 कुरमी बहुल विधान सभा क्षेत्रों से मात्र 39 कुरमी चुने गये थे]

बाबू रामाधीन सिंह

रामाधीन सिंह का जन्म सन् 1870 ई0 को बाराबंकी जनपद (यू0 पी0) के ग्राम मानपूर में एक **जयसवार कुरमी कृषक** के यहां हुआ था। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम **श्री बिहारी लाल** था। जब वे मात्र पांच वर्ष के थे उनके पिता जी का निधन हो गया। उनके बड़े भाई अभी बालक ही थे। अतः पिता जी की मृत्यु एक विपदा बनकर उनके परिवार पर टूटी। उनकी माता, अपने दोनों बेटों को लेकर लखनऊ के मुहल्ला हसन गंज (डालीगंज) के निवासी अपने भाई **चौधरी चेतराम** के यहां पालन-पोषण के लिये चली आयीं। डालीगंज उन दिनों में गुड़ और गल्ले की बड़ी मंडी हुआ करती थी। चौधरी चेतराम को डालीगंज बाज़ार का चौधराना (कर-शुल्क) मिलता था। बाद में, वे ही सम्पूर्ण बाजार के, एक मात्र मालिक हो गये। चौधरी चेतराम के कोई पुत्र न हुआ। रामाधीन सिंह के बड़े भाई, बिहारी लाल पढ़-लिखकर अपने मामा चौधरी चेतराम के काम में हाथ बंटाने लगे और बाद में मामा जी की इच्छानुसार उनके निधन के उपरान्त, उनकी सारी सम्पत्ति और बाज़ार परिसर के उत्तराधिकारी हो गये।

उधर मामा के घर रहकर पढ़कर, **रामाधीन सिंह इन्ट्रेन्स की परीक्षा** पासकर सन् 1888 में यू0 पी0 वन विभाग में **फारेस्टर** नियुक्त हो गये। 5 या 6 वर्ष की बड़ी निष्ठा से सरकारी नौकरी कर पाये थे तभी 2 फरवरी 1894 को **यू. पी. पुलिस विभाग का परिपत्र (सरकुलर)** जारी हुआ। स्वाभिमानी और स्वावलम्बी प्रकृति के रामाधीन सिंह को भी उससे ठेस पहुँची, उन्हें अंग्रेजों के प्रति ग्लानि उत्पन्न हुई और उन्होंने तत्काल वन-विभाग की सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। रोज़ी-रोटी के ज़रिये के रूप में सन् 1907 ई. से वे सरकारी ठेकेदार बन गये। अब वे स्वतन्त्र रूप से, सरकारी सर्कुलर के विरोध में, स्वजातीय बन्धुओं में स्वाभिमान जागृत करके, एकता का महत्व बताकर उन्हें संगठन के सूत्र में बांधने की योजना में लगे, जिससे सामूहिक रूप से उसका उचित विरोध किया जा सके।

अपने अथक प्रयासों तथा अपने सहयोगियों की मदद से मात्र आठ माह के अल्पकाल में **"कुरमी सदर-सभा"** का गठन करके विधिवत् प्रथम अधिवेशन भी **लखनऊ (रामचन्द्र** जी के अनुज लक्ष्मण यानी **"लखन"** की स्मृति में बसा नगर लखनऊ) में सम्पन्न कराके, जनसभा से आवश्यक आदेश और स्वीकृतियां प्राप्त कर लीं। इन प्रयासों के प्रेरक परिणाम सम्मुख आये। **"कुरमी सदर सभा"** के 21 मार्च, 1894 के प्रतिवेदन पर **गवर्नर ने आदेश जारी कर 2 फरवरी 1894 का अपना कुरमी जाति विरोधपूर्ण परिपत्र निरस्त कर दिया था।** उनके मामा चौधरी चेतराम के नवनिर्मित भवन में ही प्रथम अधिवेशन में भाग लेने बाहर से आये काफी प्रतिनिधिगण ठहराये गये थे।

चौधरी रामाधीन सिंह तब तक प्रथम श्रेणी के सफल ठेकेदार के रूप में स्थापित हो चुके थे। वे जातीय उन्नति के लिये सदैव जागरूक एवं प्रयत्नशील रहे। उनकी निगाह में उन्नति के लिये आवश्यक शिक्षा और ज्ञान प्राप्त कराना परमावश्यक था। अतः शिक्षा-प्रसार के लिये कुरमी स्वजातीय शिक्षा संस्थायें स्थापित करना बड़ा हितकर समझकर उन्होंने सन् 1886 ई. में **"अवध कूर्मि क्षत्रिय पाठशाला"** स्थापित करायी और उसका पंजीकरण सन् 1910 में करवा लिया।

महासभा के अधिवेशनों के प्रभाव से **कुरमी जाति** का ध्यान विद्या-प्रचार की ओर आकर्षित हुआ था। पाठशाला की इमारत जो बाबूगंज क्षेत्र में बनायी गयी उसके लिये 8000 रु. की राशि (जोकि सन् 1886 में एक बहुत बड़ी राशि थी) लखनऊ के मोहल्ले हैदराबाद निवासी **रायबहादुर बिहारीलाल जी** ने प्रदान की थी सन् 1946 में उक्त पाठशाला को हाई स्कूल की परीक्षायें देने की मान्यता प्राप्त हुई।

बाबू रामाधीन सिंह अपने प्रौढ़ जीवन में सदैव **लखनऊ नगरपालिका** के सदस्य रहे। इनकी सामाजिक सेवाओं

 को चिरस्मरणीय बनाने के लिये लखनऊ के मुकारिम नगर क्षेत्र में एक मार्ग का नामकरण "राम अधीन सिंह" मार्ग किया गया है । इस समाज-सुधारक कर्मवीर का स्वर्गवास सन्1917 ई. में मात्र 47 वर्ष की आयु में हुआ । इनके कोई पुत्र न था, द्वितीय पत्नी से एक पुत्री हुई, जिसका विवाह बछरावां, जिला रायबरेली के श्री दरबारी लाल जी से सम्पन्न हुआ, जो बाद में स्टेशन मास्टर रहे थे ।

मात्र 47 वर्ष के जीवनकाल में, इस कूर्मि बीर ने सुप्त कूर्मि जाति को जागृत किया उनमें एकता, संगठन की भावना जागृत की तथा उसके परिणामस्वरूप "कुरमी सबर सभा" का गठन कर पहले, दूसरे और दसवें अधिवेशनों को लखनऊ शहर में आयोजित करवाया तथा कुरमी समाचार का प्रकाशन प्रारम्भ करवाया । कुरमी जाति के उम्मीदवारों को यू. पी. पुलिस की नौकरी के लिये अयोग्य घोषित करने वाले ब्रिटिश सरकार के आपत्तिजनक सर्कुलर को निरस्त कराया । स्वावलम्बी इतने थे कि ब्राह्मणों के द्वारा यज्ञोपवीत तोड़ने पर उन पर केस कर देने, बाद में अंग्रेज जज द्वारा इस कुकृत्य को अनुचित बताते हुये ब्राह्मणों द्वारा माफीनामा कोर्ट में पेश करने तथा इन्हें जनेऊ पहनने को देने पर, मामूली जुर्माना के साथ मुक्त करना, इनकी दिलेरी के ज्वलन्त उदाहरण हैं । इसका विवरण इस लेखक की अन्य पुस्तक (कुरमी जाति, अतीत से आज तक, एक विहंगम दृष्टि) में पढ़ें । वे आर्य समाजी और सुधारवादी विचारधारा के व्यक्ति थे ।

शिक्षा के क्षेत्र में भी उनके प्रारम्भिक प्रयासों के फलस्वरूप ही आज भी "रामधीन सिंह उच्च माध्यमिक कालिज," बाबूगंज, लखनऊ-226007 में शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रहा है । पर गत वर्षों में इस विद्यामन्दिर का और अधिक विस्तार होकर उसे विश्वविद्यालय का रूप ले लेना चाहिये था । इस शिक्षा केन्द्र को अपने संस्थापक की दिव्य दृष्टि के अनुसार शिक्षा विस्तार की नयी योजना बनाकर समाज सेवा और अधिक करनी चाहिये थी जैसे सर सैयद अहमद खां का एंग्लो मुस्लिम स्कूल बढ़ते-बढ़ते अलीगढ़ विश्वविद्यालय बन गया तथा गुजरात के चारोतार क्षेत्र में कुलमी पाटीदार बन्धुओं के सहयोग से हाल ही में 93 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हुये श्री एच. एम. पटेल, आई. सी. यस. पूर्व वित्तमंत्री, भारत सरकार, की देख-रेख में, बल्लभ विद्यासागर नगर शैक्षिक परिसर में बल्लभभाई विश्वविद्यालय, आयुर्विज्ञान संस्थान तथा तकनीकी शिक्षण हेतु अनेक कालेज स्थापित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त विदेश में बड़े पटेल बन्धुओं की आर्थिक सहायता से वृद्ध और सेवा-निवृत्त पुरुषों और स्त्रियों के शान्तिपूर्ण वातावरण में रहने के लिये पास ही वल्ल्भ विद्यासागर परिसर, चरोतार में आवासीय इकाइयां सैकड़ों की संख्या में बनती जा रही हैं।

लखनऊ में, महासभा की स्थापना का प्रथम शताब्दी समारोह तथा 38वां महाधिवेशन जोकि 29 तथा 30 दिसम्बर 1994 को आयोजित होना चाहिए था वह महज राजनैतिक कारणों से दो-दो बार टलकर अन्त में 11 और 12 मार्च 1995 को, बेगम हजरत महल पार्क में सम्पन्न होने की आशा है । यह ग्रंथ जोकि महासभा-स्थापना के प्रथम शताब्दी समारोह स्मृति-कृति के रूप में कई वर्षों के शोध के फलस्वरूप तैयार किया गया, उसे 29 दिसम्बर 1994 के पावन प्रथम स्थापना शताब्दी वर्ष की तिथि पर प्रकाशित किया गया है । महासभा चाहे अपना ऐतिहासिक शताब्दी समारोह तथा अधिवेशन उचित तिथियों पर आयोजित करने में पूर्णतया असफल रही है, किन्तु इस लेखक ने अनेक प्रकार के अवरोधों तथा कुछ पदाधिकारियों के असहयोग के बावजूद इस ग्रंथ को अपने व्यय से "प्रथम स्थापना शताब्दी दिवस" पर प्रकाशित करा सका, ये आम कुरमी जनों के स्नेह तथा प्रेरणा का प्रतिफल है ।

दूसरा अधिवेशन

लखनऊ में 29 और 30 दिसम्बर 1895 ई. को पुनः उसी स्थान पर "कुरमी सवर सभा" का दूसरा अधिवेशन, बाबू नन्दलाल जी, सुपरिटेण्डेंट चुंगी विभाग की अध्यक्षता में सोल्लास सम्पन्न हुआ ।

यह दूसरा अधिवेशन दूर-दूर से आये बहुसंख्य लोगों के भाग लेने से पहले अधिवेशन की अपेक्षा अधिक सफल रहा । जातीय-जागृति की दृष्टि से अधिक प्रेरणादायक और उत्साहवर्धक रहा । उस अवसर पर विशेष रूप से, कुरमी-वंश विकास पर भी एक गोष्ठी हुई, जिसमें राजघाट, जिला बुलन्दशहर के निवासी श्रीमत स्वामी श्री साधुसिंह महाराज ने स्कन्दपुराण के आधार पर कूर्म ऋषि के वंश विस्तार पर प्रभावशाली भाषण दिया । इन्हीं स्वामी जी ने सन् 1896 में "कुरमी सवर सभा" के तृतीय अधिवेशन के अवसर पर पीलीभीत के स्वजातीय जवसवार कुरमी रईस, लाला खूबचन्द जी जमींदार, महाजन तथा ऑनरेरी मजिस्ट्रेट की प्रेरणा तथा पूर्ण आर्थिक सहायता से "कौर्मि वंशावली" नामक लघु पुस्तिका की रचना की तथा उसे प्रथम बार वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से मुद्रित कराया। इस पुस्तक की द्वितीयावृति सन् 1961 में श्री शिवराम सिंह, चुप्पेपुर, वाराणसी कैण्ट निवासी ने अपने प्रेस से की। अब यह फिर उपलब्ध नहीं है अतः कूर्मि जाति की सर्वप्रथम ऐतिहासिक इस लघु पुस्तक को, लगभग 100 वर्ष बाद महासभा की प्रथम शताब्दी वर्ष के पुण्य अवसर पर इस पुस्तक के अन्त में दिये परिशिष्ट संख्या-3 के रूप में पूर्णतः प्रकाशित किया जा रहा है ।

इस अधिवेशन के अध्यक्ष, बाबू नन्दलाल जी ने अपने अभिभाषण में स्वजातीय बन्धु-बान्धवों का आह्वान करते हुए कहा - "मेरी आत्मा इस बात को देखकर अत्यंत प्रफुल्लित हो रही है कि इतने महाशय भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न स्थानों से पधारकर जाति उद्धार के लिये पूर्ण रीति से प्रयत्नशील हैं और वे लोग जो एक दूसरे के नाम से भी अपरिचित थे, आज एक दूसरे के प्रति अपने सच्चे प्रेम का परिचय दे रहे हैं । आप महाशयों को उचित है कि तन-मन-धन से जाति-उद्धार में प्रवृत्त हो जायें और जाति उत्कर्ष के लिये पैर आगे बढ़ायें ।"

अध्यक्ष महोदय ने "कुरमी सवर सभा" के प्रथम अधिवेशन का जिक्र किया और कहा - "यहाँ प्रथम जातीय सभा की कृतकार्यता के सम्बन्ध में मैं इटावा और पीलीभीत के सभ्य गणों को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, क्योंकि वह सभा आप ही महाशयों के विचार, उद्योग और साहस का फल था ।"

अध्यक्ष जी ने "भर्तृहरि नीति शतकम्" का निम्न श्लोक सुनाया और उसके भावार्थ बतलाये :-

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।।

भावार्थ :- उसी का जन्म सफल है, जिसके जन्मने से कुल की उन्नति होती है अन्यथा इस परिवर्तनशील संसार में कौन मरता नहीं, और कौन जन्मता नहीं । अतः वे पुरुष धन्य हैं जो अपनी जाति के हितचिंतन में अधिक रस लेते हैं ।

इस अधिवेशन में देश के ऐसे प्रत्येक अंचल में, जहाँ स्वजातीय बन्धु बसे हुये हैं, जाति-प्रचार के लिये जाति सम्बन्धी पुस्तकें भेजने," "कुरमी समाचार" पत्रिका के लिये निजी प्रेस स्थापित करने, तथा कूर्मि क्षत्रिय जाति की गौरवपूर्ण वंशावलियों को प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया । इसी अधिवेशन का प्रभाव था कि "कुरमी पाठशाला, लखनऊ" के नाम से एक अंग्रेजी स्कूल खोला गया ।

आज सन् 1994 में उपर्युक्त बात को सोचिये कि हमारे पूर्वज कितने दूरदर्शी थे कि एक शताब्दी पूर्व उन्होंने जीवन में तरक्की के लिये, आगे आने वाले समय में, अंग्रेजी ज्ञान के महत्व को तब ही पहचान लिया था और "कुरमी पाठशाला लखनऊ" के नाम से एक अंग्रेजी स्कूल खोला गया था ।

सन् 1924 ई. में सीतापुर (यू. पी.) में सम्पन्न हुये 24 वें अधिवेशन के निर्णयानुसार इस शिक्षण संस्था का नाम बदलकर "अवध कूर्मि क्षत्रिय पाठशाला, सोसायटी" (पंजीकृत) रख दिया गया । वर्तमान में इस संस्था का पता है, बाबू गंज, फैजाबाद रोड लखनऊ 226007 और इसके अधीनस्थ दो शिक्षण संस्थायें कार्यरत हैं :-

1. रामाधीन सिंह इण्टर कालेज,
2. सरदार पटेल स्मारक विद्यालय

सन् 1885 ई. में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसके संस्थापक अध्यक्ष मिस्टर ह्यूम थे । तब से देश में राजनैतिक चेतना प्रकट रूप में अंकुरित हुई । श्री दादा भाई नौरोजी, फीरोजशाह मेहता, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, सी. आर. दास, महात्मा गांधी, विट्ठलभाई पटेल, सरदार बल्लभभाई पटेल, सी. राजगोपालाचार्य, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, मौलाना आजाद की रहनुमाई में स्वतन्त्रता आन्दोलन जोर पकड़ता गया । बम्बई में 9 अगस्त 1942 को "अंग्रेजों भारत छोड़ो" का नारा महात्मा गांधी के नेतृत्व में बुलन्द किया गया । द्वितीय महायुद्ध से अंग्रेजों की आर्थिक अवस्था जर्जर हो गयी थी । इंग्लैंण्ड में मिस्टर एटली की लेबर पार्टी की सरकार सत्ता में आई । उसने इस देश को आजाद करने की घोषणा की तो पर बन्दर बाँट द्वारा दो भागों में बांटकर भारत और पाकिस्तान बनाकर वे यहां से चले गये । खण्डित राजनैतिक स्वतन्त्रता, मिल गयी, पर आर्थिक स्वतंत्रता पूरी तरह नहीं आयी है । साथ में बहुजन हिन्दू समाज की सामाजिक स्वतन्त्रता भी आवश्यक है जोकि कट्टर ब्राह्मणवाद के कारण उस वर्ग विशेष ने हरण कर ली थी । कानूनी तौर से सामाजिक स्वतन्त्रता भी मिल गयी है पर उसके क्रियान्वयन् में शनैः-शनैः समता आ रही है उसके लिये मंडल सिफारिशों को लागू हो जाना उपयोगी सिद्ध होगा । 20 फरवरी 1994 इस दिशा में ऐतिहासिक दिवस के रूप में सदैव स्मरण किया जाता रहेगा, क्योंकि इस दिन ही मंडल आयोग की सिफारिशों के तहत, भारत सरकार के कल्याण मंत्री श्री सीताराम केसरी ने राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त एवं विकास निगम में आसुला (सोनकर) जाति के बी० राज शेखराचारी को सहायक प्रबंधक का नियुक्ति-पत्र दिया । उससे चार माह पूर्व, 8 सितम्बर 1993 को अन्य दलित वर्गों में क्रीमी लेयर (Creamy Layer) अर्थात साधन सम्पन्न लोगों, को अलग करने के बाद लागू किया गया । 15 अगस्त 1994 भारत की जनसंख्या 90 करोड़ 64 लाख के लगभग हो चुकी है और यह देश अपनी स्वतंत्रता की 47वीं वर्षगांठ भी मना चुका है ।

तीसरा अधिवेशन

"कुरमी सदर सभा" का तीसरा अधिवेशन 28 और 29 दिसम्बर 1896 ई. को पीलीभीत शहर (यू. पी) में बांकीपुर (बिहार) निवासी, बाबू मिथिलाशरण सिंह,, एडवोकेट, पूर्व मेम्बर बिहार लेजिस्लेटिव कौंसिल की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष, लाला खूबचन्द जी रईस एवं ऑनरेरी मजिस्ट्रेट थे और मोहल्ला गोपालसिंह में, स्टेशन रोड के समीप, उनकी हवेली के सम्मुख वाले खुले मैदान में इस अधिवेशन हेतु भव्य तथा विशाल मंडप बनाया गया था। इन्हीं लाला खूबचन्द की हवेली के सम्मुख ही इस पुस्तक के लेखक का अपना तथा परिवार के अन्य सदस्यों के पुश्तैनी मकान स्थित हैं। जहाँ अधिवेशन का सभा-मंडप बनाया गया था वह लाला खूब चन्द के फाटक के नाम से प्रसिद्ध रहा है और स्टेशन रोड स्थित मुख्य द्वार पर आज भी "लाला खूबचन्द" रईस व आनरेरी मजिस्ट्रेट" का संगमरमर पर उत्कीर्ण पत्थर लगा हुआ अतीत का स्मरण कराता है।

अधिवेशन विधिवत् प्रारम्भ किया गया। स्वागताध्यक्ष लाला खूबचन्द जी ने देश के दूर-दूर से पीलीभीत आये प्रतिनिधियों तथा आस-पास से आये हजारों स्वजनों का हार्दिक स्वागत किया। महामन्त्री ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करके जनसभा की स्वीकृति के लिये "कुरमी सदर सभा" की उपलब्धियों और कार्यक्रमों की जानकारी बिस्तार से प्रस्तुत की। अन्य महानुभावों ने अपने-अपने क्षेत्र की जातीय समस्याओं से सभासदों को अवगत् कराया। अध्यक्ष बाबू मिथिलाशरण सिंह ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा-मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप सभी बन्धु मिलकर समाज के उत्थान में योगदान देंगे। हमें अपनी मोह-निद्रा, आलस्य और प्रमाद छोड़कर सामाजिक सुधार और जाति उन्नति के कामों में जुट जाना चाहिये। तभी हम अपने को इस प्रगतिशील युग में योग्य साबित कर सकेंगे। इस युग में जो व्यक्ति या समाज गाफिल रहेगा। वह बहुत पीछे पड़ जायेगा। संसार में उन्हीं की कीमत होती है, जो समय की गति को पहचान कर आगे बढ़े हैं। सब जानते हैं कि गया वक्त फिर हाथ नहीं आता, अतः जो करना है, उसे शुरू कर दो।"

इस अधिवेशन की शानदार सफलता का श्रेय इसके स्वागताध्यक्ष लाला खूबचन्द जी रईस को और उनके सहयोगियों को जैसे लाला सीताराम जी, श्री तुलाराम सिंह, श्री रमाचरण कटियार, श्री उमाचरण कटियार एडवोकेट बाबू गेरी लाल, राय बहादुर बाबू बहादुर सिंह, लाला लायक राम को जाता है। शहर के "कुरमी क्लब पीलीभीत," के युवाओं और स्वयंसेवकों ने बड़ी मेहनत और लगन से उपस्थित प्रतिनिधियों को सभी सुविधायें उपलब्ध करवाई। अधिवेशन के बारे में पत्राचार तथा "कुरमी समाचार" के माध्यम से तथा कार्यकर्ताओं द्वारा योजनाबद्ध तरीके से प्रचार किया गया। सारे देश के प्रमुख समाज सेवियों से पत्राचार कर व्यवस्थित तरीके से यह कार्य सम्पन्न किया गया। पीलीभीत स्टेशन पर आने वाले प्रतिनिधियों के स्वागतार्थ तथा वहां के विश्राम स्थलों तक उन्हें ले जाने को स्वयंसेवकों की टुकड़ियां वहां तैनात थीं। बाहर से आये प्रतिनिधियों की भोजन की तथा आवासीय व्यवस्था बड़े सुचारु रूप से की गई।

यह अधिवेशन प्रथम दो की तुलना में अधिक वृहद और सुव्यवस्थित था। इस अधिवेशन में बिहार प्रान्त के और संयुक्त प्रान्त के अन्य शहरों से अनेक प्रतिनिधिगण तो सम्मिलित हुये ही, साथ में वहां के दानापुर निवासी तथा प्रसिद्ध समाजसेवी, ऋषितुल्य रायसाहब बाबू जनकधारी लाल जी भी पधारे थे, जिससे इस अधिवेशन का महत्व और गरिमा में और अधिक वृद्धि हुई। उसमें दिये हुये उनके ओजस्वी भाषाओं का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। इसी वर्ष मार्च 1896 ई. में ही ब्रिटिश सरकार ने कुरमियों के विरुद्ध सरकारी नौकरियों में उनकी अयोग्यता सम्बन्धी अपना पूर्वोक्त परिपत्र निरस्त घोषित कर दिया था। इससे महासभा के पदाधिकारीगण तथा उपस्थित सभासद गण सभी अपनी ब्रिटिश सरकार से संघर्ष कर प्राप्त की गई उस जातीय विजय पर अत्यन्त उत्साहित थे।

इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पारित किये गये थे, उनमें सबसे महत्व का प्रस्ताव इस प्रकार था। स्वजातीय



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
पंचम अधिवेशन के अध्यक्ष
श्री बी० नागप्पा, बार-एट-लॉ, दौरा जज



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
तृतीय तथा चतुर्थ अधिवेशनों के अध्यक्ष
श्री बा० मिथिलाशरण सिंह, एडवोकेट



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
अष्टम अधिवेशन के अध्यक्ष
प्रो० जे० सी० स्वामिनारायण



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
नवम अधिवेशन के अध्यक्ष
कूर्मि कुल-दिवाकर
माननीय श्री विट्ठल भाई झवेर भाईपटेल
(प्रेसिडेन्ट पटेल)

इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पारित किये गये थे, उनमें सबसे महत्व का प्रस्ताव इस प्रकार था । स्वजातीय विद्यार्थियों की सुविधा के लिये प्रमुख-प्रमुख शिक्षा केन्द्रों में छात्रावास स्थापित किये जायें और बाल-हत्या कानून सन् 1870 के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार ने बम्बई में जो सत्तर हजार रुपये जुर्माने के रूप में जमा किये थे उनसे स्वजातीय विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियां दी जायें । रायबहादुर सेठ बहेचर दास लश्करी द्वारा पाटीदारों में बालिका-हत्याएं रोकने के लिये चलाये गये जन आन्दोलन के परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने सन् 1870 का आठवां कानून, बालिकाओं की सुरक्षा हेतु बनाया था उसके उल्लंघन करने वालों से जुर्माने के तौर पर यह राशि वसूल की गयी थी ।

रुहेलखंड और पीलीभीत के कूर्मि

रुहेलखंड संभाग के अन्तर्गत 7 जिले **शाहजहांपुर, पीलीभीत, बरेली बदायूँ, रामपुर, मुरादाबाद** और **बिजनौर** आते हैं । उत्तर प्रदेश प्रशासन ने 14 नवम्बर 1976 से रुहेलखंड को दो संभागों में **मुरादाबाद** एवं **बरेली** में विभाजित कर दिया है । बरेली संभाग में चार जिले आते हैं **बदायूँ, बरेली, शाहजहांपुर एवं पीलीभीत** ।

बदायूं

इस जिले के अन्तर्गत कूर्मि जाति के 24 गांव हैं । वैसे इक्का-दुक्का अनेक गावों में भी कूर्मि बसे हुये हैं । उपर्युक्त 24 गांव **बदायूं शहर** के चारों ओर बसे हुए हैं । उपशाखा की दृष्टि से ये **कूर्मि कनौजिया** है और बहुधा **"राठौर आस्पद"** का प्रयोग करते हैं । इस जिले के अनेक शिक्षित व्यक्ति इंजीनियर, डाक्टर, अधिवक्ता और प्राध्यापक हैं और अनेक निजी व्यवसाय में भी हैं । कृषि तो प्रत्येक कूर्मि परिवार का प्रमुख व्यवसाय रहा ही है । इस जनपद के सबसे वयोवृद्ध विद्वान 90 वर्षीय **डा. हुकम सिंह राठौर** हैं जो कि पूर्व अध्यक्ष, भू-भौतिकी विभाग बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय हैं, सेवानिवृत होने पर उन्हें ब्राजील सरकार ने वहां के एक विश्वविद्यालय में भू-भौतिकी विभाग स्थापित करने के लिये बुलाया था । वहां का कार्य सम्पन्न कर इस समय वे अपने 3 पुत्रों (2 इंजीनियर 1 डाक्टर) के साथ अमेरिका में बस गये हैं । राजनैतिक दृष्टि से यहां के कूर्मि काफी जागरूक रहे हैं। **श्री रामसेवक** दूसरी बार नवम्बर 1993 में विधायक निर्वाचित हुए ।

शाहजहाँपुर

इन जनपद में कुरमियों की आबादी **तिलहर** एवं **पुवायां** तहसील में अधिक है । तिलहर तहसील के कुर्मी अधिकांशतः **गंगवार** हैं । ये मुख्यतः कुशल कृषक, सुशिक्षित और सम्पन्न हैं पर राजनैतिक जागृति में बहुत पीछे है । वे **तिलहर, कटरा, खुदागंज** के मध्य लगभग 50 गांवों में बसे हुये हैं । इस तहसील के नौजवान डाक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, आई. ए. एस., पी. सी. यस. आफीसर हैं । इसी तहसील के ग्राम कमलापुर के निवासी **श्री महेश्वरदयाल गंगवार**, दिल्ली के प्रसिद्ध पत्रकार हैं । पहले **"दिनमान"** में थे और वर्तमान में **"संडे टाइम्स"** के सम्पादक हैं । इनके अनुज **श्री राजेश्वर गंगवार** रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, बंबई में हिन्दी विभागाध्यक्ष है । **डा. वीरपालसिंह** एवं **श्री कृष्ण गंगवार** दोनों एम. एस-सी., पी-एच. डी. हैं । वे दोनों कृषि विभाग में उच्च पदों पर हैं । **डा. वीरपाल सिंह** सहायक कृषि कमिश्नर कृषि मंत्रालय, दिल्ली और पश्चिमी दिल्ली कूर्मि क्षत्रिय समाज इकाई के अध्यक्ष रह चुके हैं । उपशाखा की दृष्टि से इस जिले के कुर्मी गंगवार, युदवंशी, रावत, कटियार और कनौजिया हैं । इस सभी शाखाओं में उत्तर प्रदेश के अन्य स्थानों की तरह अन्तर शाखा विवाह निस्संकोच होते हैं । **पुवायां** तहसील में कनौजिया कुर्मियों की अधिक आबादी है, वे भी हर क्षेत्र में अपनी पहचान और स्पष्ट और प्रभावशाली बनाते जा रहे हैं । पुरखों से चला आया मुख्य व्यवसाय कृषि है । विदेशों में भी अनेक हैं।

विशेष कर के श्री मित्तन लाल आर्य अमेरिका में बसे हैं, बड़े सम्पन्न है, और इसी जनपद के हैं। उनका परिवार अमेरिका में बस गया है।

बरेली जनपद

यह कुर्मियों का गढ़ रहा है। रायबहादुर ढाकनलाल ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, सन् 1920 से लेकर 1946 तक लगातार जिला परिषद बरेली के अध्यक्ष रहे थे। श्री भानुप्रताप सिंह (यदुवंशी) उत्तर प्रदेश सरकार में कृषि एवं पशुपालन उपमंत्री पद को सुशोभित कर चुके हैं। नवाबगंज चुनाव क्षेत्र से श्री चेतराम गंगवार चार बार विधायक चुने गये और उत्तर प्रदेश सरकार में कृषि एवं पशुपालन मंत्री के पद पर कार्य कर चुके हैं। बहेड़ी तहसील में कुर्मी जाति की आबादी घनी है पर आपसी फूट के कारण चुनाव में असफलता हाथ लगती है। बरेली जनपद पन्द्रह ब्लाकों में बंटा हुआ है जिसमें से कम से कम आठ ब्लाकों में प्रमुख कुरमी रहते हैं। उपशाखा की दृष्टि से इस जिले में कुर्मि जाति कनौजिया, गंगवार, कटियार, रावत और यदुवंशी उपशाखाओं में बटी हैं। दो बार श्री सन्तोष कुमार गंगवार, भारतीय जनता पार्टी के टिकट से लोकसभा चुनाव में, पहली बार कांग्रेस की पूर्व राष्ट्रपति स्व. फखरुद्दीन अली अहमद की पत्नी श्रीमती आबिदा बेगम को और दूसरी बार श्री मोहम्मद अहमद उर्फ इम्मी को पराजित कर, विजयी हुये थे। बरेली जनपद से आई. ए. एस, पी. सी. यस. तथा अन्य केन्द्रीय सरकारी नौकरियों (क्लास प्रथम) में अनेक अधिकारी हैं। इंजीनियर, डाक्टर, अधिवक्ता तथा प्राध्यापक भी अनेक हैं। देहातों में से काफी कुरमी शिक्षित होकर बाहर निकल रहे हैं। जैसे श्री छोटेलाल (गंगवार) रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया में ज्वाइंट डायरेक्टर हैं। कृषि कार्य तो पुश्तैनी है उसमें कई बड़े कृषक हैं जैसे श्री महेन्द्र सिंह तथा श्री भानुप्रताप सिंह जो एक बार पीलीभीत से संसद सदस्य रहे। फिर भी और अधिक शिक्षा के साथ-साथ संस्कारित होने की भी आवश्यकता है। आपसी-फूट इनकी उन्नति में सबसे प्रमुख अवरोध है। मेजर पुरुषोत्तम सिंह फौज में कार्यरत हैं।

पीलीभीत जनपद

पानीपत के तीसरे तथा अंतिम निर्णायक युद्ध में अफगान सरदार अहमदशाह अब्दाली की फौज से संख्या और शक्ति में मराठे काफी अधिक थे। किन्तु मराठों की जबरदस्त हार हुयी, आपसी भाई-चारे और एकता की कमी के कारण वे पराजित हुये। इस दुर्भाग्यपूर्ण हार से मराठा-शक्ति जिसका नेतृत्व पूना दरबार से पेशवा करते थे, छिन्न-भिन्न हो गयी। इस युद्ध के पश्चात् मराठा फौजों में अनेक लश्कर एवं दस्ते अपने दल-बल के साथ दिल्ली के पास शाहदरा में बस गये। उनका इरादा था कि अवसर पाकर विदेशी हमलावरों से युद्ध करके अपने खोये हुये इलाकों पर पुनः कब्जा कर लिया जायेगा। पर हालात इतने खराब होते चले गये कि जब अपनी अभिलाषा पूरी होती नजर न आयी तब उनमें से अनेक समूह स्थायी रूप से बसने के लिये अपने परिवारों के सहित आसपास के तराई के इलाकों में चले गये और जंगल साफ करके कृषि-कार्य में लग गये। पीलीभीत जिले में काफी संख्या में कुरमी बसे हुऐ हैं। इन जिले की 3 तहसीलें, पीलीभीत, पूरनपुर और बीसलपुर हैं और सात ब्लाक हैं। जनपद में शहर में ज्यादातर जयसवार कुर्मी है वैसे देहात में और शहर में भी गंगवार, कटियार, कनौजिया भी हैं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से बरेली से पीलीभीत जिला नया बनाया गया और कुछ हिस्सा शाहजहांपुर से भी काटकर इसमें जोड़ दिया गया। राजनीति में गंगवार कुरमी ही अन्य शाखा वालों की जगह चुनाव में कामयाब होते हैं। उनकी संख्या भी अधिक है और जयसवारों की अपेक्षा उनमें ज्यादा एकता है।

समस्त पीलीभीत जनपद की आबादी 10 लाख के करीब है जिनमें 3 लाख कुरमी हैं, इनमें शाखोत्तर शादियां बड़े आराम से होती हैं। उपजातियों में ऊँच-नीच का विचार नहीं है। समस्त उत्तर प्रदेश के कुरमियों

में भी अब नहीं है । जहां कहीं देहातों में होगा भी वह शिक्षा-प्रसार के साथ समाप्त हो गया है । पीलीभीत शहर के कई मुहल्लों के नाम कुरमियों के प्रतिष्ठित पूर्वजों के नाम पर रखे गये थे, जैसे मुहल्ले गोपालसिंह, केसरी सिंह, तुलाराम तथा खुस्तीमल ।

कभी सुरक्षा की दृष्टि से रोहिल्ला सरदार के शासकों से पहले ही किसी ने इस शहर के चारों ओर पीली मिट्टी की दीवार (भीत) बनवाई थी इसलिये इसका नाम पीलीभीत पड़ा । तत्कालीन रोहिल्ला शासक, हाफिज रहमत खां के नाम पर पीलीभीत को हाफिजाबाद भी कहा जाता रहा । पर यह नाम अधिक दिनों तक चल न सका और यह पीलीभीत के नाम से ही जाना पहचाना जाता है । यहां का श्री गौरीशंकर का मंदिर काफी पुराना है। शिवलिंग में आधे शिव और आधे भाग में पार्वती की मूर्ति है । पुरातत्व विभाग वाले इसे 1000 वर्ष पुरानी मूर्ति बतलाते हैं । यह मंदिर अभी बड़ी जीर्ण-क्षीर्ण अवस्था में है । शिवलिंग हल्के लाल रंग के पत्थर का है । इस मंदिर की बड़ी मान्यता है । शिवरात्रि के पावन पर्व पर यहां बड़ी भीड़ होती है और मेला भी लगता है ।

रोहिला शासन काल की बची निशानियां प्रसिद्ध जामा मस्जिद और 4 मुख्य दरवाजे स्टेशन रोड और बजाज़ा-तहसील वाली सड़क पर हैं । स्वतंत्रता के पश्चात् इस जिले में पंजाबी हिन्दू और सिख काफी तेजी से आकर बसे हैं । नवनिर्मित सिखों का गुरुद्वारा बड़ा विशाल, मजबूत और दुर्गनुमा बनाया गया है । सन् 1801 ई. में अवध के नवाब ने रुहेलखंड को ईस्ट इंडिया कम्पनी को खिराज के तौर पर भेंटकर दिया था । सन् 1857 ई. में स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने पर अनेक कुर्मियों को जान-माल की क्षति झेलनी पड़ी और कुछ ने अंग्रेजों की जाने बचाकर गांव और खिताब भी प्राप्त किये । कृषि-उपज में यह जनपद अग्रणी है विशेष करके धान, गेहूँ, गन्ना आदि में ।

यहां ज्यादातर कुर्मी कृषि-कार्य में लगे हैं और शहर में वकील, डाक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक भी हैं । एक सोहनलाल गंगवार नामक युवक इस वर्ष आई. ए. एस. भी बने हैं । विदेशों में इस जिले में जन्मे इस ग्रन्थ के लेखक के बड़े पुत्र संजय सिंह और पुत्री सुनीता सिंह क्रमशः अपनी पत्नी और पति के साथ अमेरिका में उच्च इंजीनियरिंग पदों पर कार्यरत हैं । इस लेखक के छोटे पुत्र मेजर आलोक सिंह को अप्रैल 1991 में राष्ट्रपति जी की ओर से "वीर चक्र" से अलंकृत किया गया था। यू. पी. सरकार ने 50,000 रुपयों की एक मुश्त राशि बहादुरी प्रदर्शन के लिये पारितोषिक के रूप में दी और 300-/ प्रति वर्ष सारे जीवन देती रहेगी । इस लेखक के बड़े भाई श्री पुत्तूलाल सिंह 12 वर्ष आनरेरी मजिस्ट्रेट रहे । इनके पिता श्री तुलाराम सिंह इस जिले के प्रतिष्ठित जमींदार और रईस थे । तथा बड़े भाई स्व० श्री दर्शनसिंह शहर के प्रतिष्ठित नागरिकों में थे । इनके तीन भाइयों के परिवार यहां बसे हैं । और उनके पुत्रों ने भी काफी तरक्की की है । उनमें डा० राजेश कुमार जयसवार,प्रादेशिक चिकित्सा सेवा में हैं और श्री गोपाल सिंह, देवेन्द्र सिंह, अजयसिंह, जीतेन्द्र सिंह, संदीप सिंह एवं संजीवसिंह व्यवसाय तथा कृषि कार्यों में लगे हैं । शहर में इन परिवारों का बड़ा मान है । इस परिवार की लड़कियां सुशिक्षित तथा प्रदेश के ख्याति प्राप्त परिवारों में ब्याही गयी हैं । उनके अपने सम्पन्न परिवार हैं । इस लेखक का वंश-वृक्ष परिचय के साथ इस ग्रंथ के अन्त में दिया गया है ।

अ. भा. कू. क्ष. महासभा का तीसरा और छठा अधिवेशन यहाँ क्रमशः सन् 1896 ई. और 1910 ई० में सम्पन्न हुआ । इस शहर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नाम हैं लाला खूबचन्द जी, लाला लायकराम, लाला सीताराम जी, राय बहादुर बाबू बहादुर सिंह, बाबू उमाचरण कटियार, लाला तुलाराम, और बाबू रमाचरण कटियार, बाबू रक्षपाल सिंह, श्री दर्शन सिंह, श्री पुत्तूलाल सिंह, श्री रुद्रभानुसिंह तथा श्री सुखदेव सिंह एडवोकेट कर्नल महेशचन्द्र कटियार और उनके पुत्र मेजर राहुल कटियार, जिन्हें युद्ध सेना मंडल से अलंकृत किया गया था । यहां से 3 बार छोड़कर सदैव कुरमी ही लोकसभा का सदस्य चुना जाता रहा है । पहले कु. मोहन स्वरूप, फिर श्री हरीशचन्द्र गंगवार, उनके बाद श्री भानुप्रताप सिंह तथा वर्तमान में डा. परशुराम गंगवार हैं । यहां शहर में अनाज और

तेल-गुड़ का व्यापार ज्यादातर कुरमियों के हाथों में है । शिक्षा में भी ये आगे निकल रहे हैं । यहां के कुरमियों में सामाजिक कार्यों के प्रति रुचि नज़र नहीं आती इसीलिये असंगठित है और बाहर के जातीय क्रिया-कलापों में भी दिलचस्पी नहीं दिखाते । **जयसवार कुरमी** जो कभी यहां हर क्षेत्र में अग्रणी थे, आज वे सुप्त अवस्था में नज़र आ रहे हैं, अतः उनकी प्रगति उतनी नहीं हो पा रही है जितना गांव में बसे ग्रामीण परिवेश में पले गंगवार कुरमी हर क्षेत्र में तेज़ी से प्रगति करते जा रहे हैं । जिस पीलीभीत शहर में **'कुरमी सवर सभा'** के दो प्रारम्भिक अधिवेशन आयोजित हुये, जहां के अनेक लोग लम्बे अरसे तक महासभा के पदाधिकारी रहे, वहां अब सामाजिक संगठन के प्रति कोई दिलचस्पी नज़र नहीं आती । यह मौजूदा पीढ़ी के जयसवार कुरमियों के लिये शर्म की बात है । यह उनकी उन्नति नहीं बल्कि सामाजिक पतन का सूचक है । इस ओर उन्हें तेज़ी से कार्य करना चाहिये।

नीम गांव स्टेट

कुरमियों का यह तालुका **लखीमपुर खीरी जिले** में स्थित था । इसके अन्तर्गत कई सौ गांव थे । इसके अन्तिम **राजा जगमोहन सिंह** थे जो **तालुकेदार कालिज लखनऊ** में शिक्षा प्राप्त थे, जिन्हें कई तोपों की सलामी दी जाती थी और उन्हें कहा जाता है कि अंग्रेज सरकार की ओर से 3 खून माफ थे । इन राजा साहिब की पत्नी **रानी राम चांदनी देवी** थी, जोकि पीलीभीत शहर के जयसवार कुर्मी **लाला सीताराम** जी की सुपुत्री थी । जब **लाला सीताराम** जी के ज्येष्ठ पुत्र **रामलखन सिंह** की बारात आगरा शहर में सड़क से गुजर रही थी, एक हाथी पर **नीमगांव स्टेट के राजा जगमोहन सिंह** बैठे थे, उनके सम्मान में शहर का अंग्रेज कलक्टर भी घोड़े पर बरात के साथ चल रहा था । राजासाहब से छोटे भाई ने षड्यन्त्र द्वारा जो व्यक्ति हवाई फायर कर रहा था उसी के एक फायर उनके सिर की ओर, राजा बनने के लोभ में करवा दिया । राजा गोली की निशाना बनते ही मारे गये । मुकदमा चला, राजा साहब का भाई छूट गया पर स्टेट को **कोर्ट आफ वार्ड** में ले लिया गया । **रानी राम चांदनी देवी** 9 माह मात्र का विवाहित जीवन भोगकर विधवा हो गयी। नीम गांव स्टेट का सारा धन शनैः शनैः बाहर वाले उठा ले गये । राजा साहब के भाई का नाम **राजा गौरी शंकर सिंह** था इन के भी कोई सन्तान न थी । उनकी मां ने बड़ी विधवा बहू को पीलीभीत से बुलाकर उनका हिस्सा दिया पर वह सब कर्ता-धर्ता हड़प गये । इस समय **राजा गौरी शंकर सिंह** की पत्नी बड़े कष्ट में हैं । इस प्रकार **नीम गांव स्टेट के कुरमी** राज-परिवार का अन्तःकलह से अन्त हो गया ।

"कुरमी सवर सभा" के प्रारंभिक वर्षों में अधिवेशन करने के पूर्व ब्रिटिश सरकार के विश्वासपात्र होने का आश्वासन देते हुये अभिनन्दन पत्र की परम्परा थी । आज स्वतंत्र भारत के इक्कीसवीं सदी शुरु होने के कुछ शेष वर्षों के आधुनिक दौर में, वह कृत्य कितना भी हास्यास्पद लगे या आलोच्य क्यों न हो, पर यह एक ऐतिहासिक सत्य है, अतः उसे यहां वर्णन करना असंगत न होगा । पाठकगण जानते होंगे कि सन् 1911 में **विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर** ने तत्कालीन भारत साम्राज्य के युवराज, जो बाद में **जार्ज पंचम** के नाम से सिंहासनारूढ़ हुये एक प्रशस्ति गीत की रचना **"भाग्य विधाता"** शीर्षक से की थी । भारत जब स्वतंत्र हुआ तो क्रान्तिकारियों द्वारा मुक्त कंठ से गाया जाने वाला **बंकिम चन्द्र चटर्जी** रचित **"वन्दे मातरम"** गीत राष्ट्रगीत का गौरव न प्राप्त कर सका, जिससे मुसलमानों तथा उस समय के कांग्रेसी हिन्दू मौलानाओं की छद्म सेकूलर भावनाओं को ठेस न पहुँचे । टैगोर के उसी प्रशस्ति गीत में कुछ शब्दों में फेर-बदल करके, **"जन मन गण अधिनायक। भारत भाग्य विधाता"** को ही स्वतंत्र भारत के राष्ट्रगीत के रूप में रोपित कर दिया गया । टैगोर ने इस राष्ट्रगीत में पूर्व प्रशस्ति के **"भारत विधाता"** को **"भारत भाग्य विधाता"** में बदल दिया ।

यह निम्नलिखित **अभिनंदन-पत्र सम्राज्ञी के डायमण्ड जुबिली के महोत्सव** के अवसर पर **"कुरमी सवर सभा"** की ओर से भेजा गया । ऐसी उस समय की प्रथा थी । क्या आप जानते हैं कि **भविष्य पुराण** में ब्राह्मणों ने जिन्हें **महाराज्ञी** (दुर्गा का एक नाम) **"विकटावती"** कहा गया है - उन विक्टोरिया महारानी, कुछ खड़ी बोली के

कवियों ने नामानुवाद कर उन्हें "विजयन्ती महारानी" नाम से भी सम्बोधित किया था। वही दुर्गा (महारानी) सम्बोधन कुछ वर्ष पूर्व मशहूर चित्रकार अलताफ हुसेन ने भारत द्वारा सहायता कर बंग्लादेश को स्वतंत्र बनाने के कारण तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को दिया और उन्हें सिंहारूढ़ दुर्गा के रूप में चित्रित किया था।

महारानी विक्टोरिया को "कुरमी सदर सभा" का अभिनन्दन पत्र (हिन्दी रूपान्तर)

प्रसादतु राजेश्वरी,

हम "कुरमी सदर सभा", लखनऊ के सदस्यगण अपने स्वदेशीय अन्य जाति और सम्प्रदाय के साथ मिलकर आपके हीरक जयन्ती महोत्सव में प्रसन्नतापूर्वक आनन्द करते और धन्यवाद देते हैं और भारतवर्षीय कुरमी जाति की ओर से यह नम्र राज्य-भक्ति सूचक अभिनन्दन-पत्र भेजते हैं और राज-भक्त प्रजा की निर्मल प्रार्थना सर्वशक्तिमान ईश्वर के निकट करते हैं कि वह सर्वदा उसी प्रकार श्री महारानी के लिये आशीर्वाद प्रदान करते रहे। आपने सन् 1857 ई. के दयापूर्ण राजपत्र प्रकाश और संसदीय व्यवस्था से इस देशवासियों की जाति और रंग का विचार न करके बहुत से अधिकार और स्वत्व प्रदान किये हैं, जो आपकी अंग्रेजी प्रजा भोग करती है। इन अधिकारों और स्वत्वों के उपभोग ने आपकी भारतीय प्रजा की सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक व्यवस्था को उन्नत करने में सहायता दी है। आपने भारतवर्ष के राज-शासन को स्वयं अपने हाथ में लेकर प्रजा को दृढ़ विश्वास दिया है कि सब लोग राज-व्यवस्था की एक प्रकार और पक्षपात रहित रक्षा में वास करेंगे। आपने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर दी है कि **"हमारी इच्छा है, जहां तक संभव हो, हमारी प्रजा चाहे जिस जाति या सम्प्रदाय की हों उसकी नियुक्ति बिना रोक टोक या पक्षपात के हमारे राज्य के पदों पर उपयोगिता शिक्षा, समता और पूर्णता के आधार पर हो सके।"**

इस हितकारी उपाय द्वारा, प्रत्येक जाति को चाहे जैसी भी छोटी हो, ऐसा पूरा विश्वास, या पूरा अधिकार किसी भी राज्य में प्रजा को नहीं मिला है। वह समय अब दूर नहीं है कि जब सब छोटी-बड़ी जातियां, जो इस पुरातन देश में बास करती है, आपके सुखप्रद राज में रहकर ऐसी राजनैतिक अवस्था प्राप्त करेगी जिससे एक महाजाति बनकर, आपके ब्रिटिश प्रजाजनों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आपके राजतंत्र की रक्षा में खड़ी होगी। और आपकी हितैषिता का जीवंत प्रमाण बनेगी।

इस हृदय उद्दीपक भावों से पूर्ण होकर हम आन्तरिक मन से राजभक्ति के अभिनंदन को, आपके राजसिंहासन तक पहुंचाते हैं और करुणा सिन्धु, जगतपिता से यही प्रार्थना करते हैं कि वे आप और आपके परिवार पर विशेष आशीर्वाद प्रदान करें।

हम लोग है महारानी श्री के आज्ञापालक और राजभक्त प्रजाजन, इस अभिनन्दन पर निष्ठापूर्वक हस्ताक्षर करते हैं :-

हस्ताक्षरकर्त्ता : सर्व श्री मैकूलाल, दुर्गासिंह, जगमोहन सिंह, चेतराम, बिहारी सिंह, गुरुप्रसाद, हनुमान प्रसाद, मिठ्ठीलाल, प्रयागदीन, नन्दलाल, भगवानदीन, देवीदीन सिंह, सरदारसिंह, छेदीलाल, मेवालाल, चुन्नूलाल, देवराज, लेखराज, बिहारी लाल, दूबलाल, बैजनाथ, गणेश प्रसाद एवं धनपति।

उपर्युक्त अभिनन्दन पत्र के उत्तर में जो पत्र आया वह लखनऊ के हसनगंज मोहल्ले से प्रकाशित होने वाले "कुरमी समाचार" के 7 जून, 1887 ई. के अंक में छपा था, उसके हिन्दी अनुवाद का सार इस प्रकार है :-

वास्तव में "कुरमी सदर सभा" लखनऊ के सम्राज्ञी विक्टोरिया को भेजे अभिनन्दन पत्र का उत्तर इण्डियन गवर्नमेन्ट के पास आया और उसने 24 जून सन् 1887 ई. के संदेश का तार भेजा जिसका हिन्दी में अनुवाद

नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

सरकारी सूचना

सेवामें
सेक्रेटरी महोदय,
"कुरमी सदरसभा"
लखनऊ (यू. पी.)

प्रेषित
गवर्नमेंट
पश्चिमोत्तर प्रदेश एवं अवध
नैनीताल

निम्नलिखित तार श्रीमान महाराज वाइसराय महोदय से प्राप्त हुआ :-

श्री राजराजेश्वरी का निम्नलिखित दयापूर्ण संदेश श्रीमती की प्रजा को, संसार के समस्त देशों में भेजा जा रहा है- "मैं अपने हृदय से अपनी प्यारी प्रजा को धन्यवाद देती हूँ, ईश्वर उन्हें कृत-कार्य करें ।"

Compiled from HINDU CASTES AND SECTS by J. N Bhattacharya - 1896; Reprinted in 1973.

(In lakhs)	Rajputs	Jats	Brahmin	Kurmi-Kunbi	Malis	Kachhi	Lodha	Ahir	Gujar
1. N. W. Province (U.P.)	37.9	7.0	44.8	20.3	2.7	7.0	10.6	36.9	3.4
2. Punjab	17.9	46.2	10.0	-	2.0	-	-	1.7	7.1
3. Bengal (Bihar,Orrisa)	15.2	-	-	13.2	1.5	-	-	-	-
4. Rajasthan	7.8	10.6	7.7	0.4	3.8	-	-	1.6	-
5. Central India	7.1	-	-	-	-	4.7	2.5	-	5.7
6. Bombay (Gujarat & Maharashtra)	5.7	-	-	35.7	3.1	-	-	-	-
7. Central Province	3.8	0.5	5.57	8.0	1.4	1.2	2.9	2.2	0.75
8. Madras	1.7	-	-	-	-	-	-	-	-
9. Kashmir	4.0	1.4	-	-	-	-	-	-	2.4
10. Sindh	-	0.5	-	-	-	-	-	-	-
11. Hyderabad	-	-	-	12.3	-	-	-	-	-
12. Berar (Part of Bombay)	-	-	-	8.3	2.0	-	-	-	-
Total	101.1	66.2	68.07	98.2	16.5	12.9	16.0	42.4	21.35

Other farmer castes are : (given in lakhs)
Punjab - Kamboh (1.5), Saini (1.25). Chirath (1.73), Tagu (0.12)
U.P - Koeris-also in Bihar, Kisan, Murao (6.7)
Bengal - Kaibarta, Sadgopa, Koch, Poliya, Aguris, Kallam

Telegu - Vellama, Kamma, Reddi, Kapus (Bilijas, Talegas & Ontari) Naga
Mysore - Vakkaligas (12.8), Tigals, Agriculture Lingayats (2.9)
Dravira - Vellalass, Vadgas, Maravans, Telega, Velama
Orissa - Khandaits & Chasa
Maharashtra - Marathas, Kunbis, Dhangers (13.0)
Kerala - Nair

प्रारम्भिक तीन अधिवेशनों के पश्चात कुरमी समुदाय में तथा उसकी "कुरमी सदर सभा" की गतिविधियों में शिथिलता

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक तक देश के अन्य प्रान्तों, जैसे बम्बई प्रसीडेन्सी के अन्तर्गत कम्मा, कापू, वक्कलिंगर, रेड्डी आदि कुरमियों की पर्याय जातियों में जन-जागृति का तथा वहां नवचेतना का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। इसी दौरान गुजरात में पाटीदारों में एक युगान्तरकारी जाति सुधारक, रायबहादुर बेचारवास अम्बाईवास लश्करी सी. एस. आई. का अविर्भाव हुआ। कड़वा पाटीदारों में ऐसी प्रथा प्राचीन काल से चली आयी थी कि दस वर्षों के अन्तराल से गुजरात के ऊंझा स्थान में स्थित कुलदेवी श्री माता उमिया देवी के मन्दिर से एक तिथि घोषित होती थी, और उसी तिथि को ही पाटीदारों में सामूहिक विवाह सम्पन्न होते थे। फिर अगले दस वर्षों बाद ही अगली तिथि घोषित होने तक बीच के अन्तराल में विवाह सम्पन्न नहीं होते थे। ऐसी स्थित में इतना हंगामा हो जाता था कि जो दस वर्ष तक आगे इन्तजार नहीं कर सकते थे, वे अपने गोद वाले, मां का दूध पीते, अबोध बालक-बालिकाओं तक का ब्याह भी उस हुड़ दंग में रचा देते थे।

पाटीदार समाज के राय बहादुर बहेचरवास लश्करी जी के सतत् प्रयासों और ऋषि तुल्य व्यक्तित्व के कारण सन् 1911 में सम्पन्न विवाहों की आखिरी तिथि के बाद, एक मात्र दस वर्षीय तिथि से पाटीदार समाज को मुक्ति मिल गई। सेठ श्री बेहच्दरवास अम्बाईवास लश्करी अंग्रेजी सरकार द्वारा नाइट कमांडर ऑफ स्टार ऑफ इंडिया (सी. एस. ई.) उपाधि से सम्मानित थे। उन्होंने ही सन् 1870 ई. में ब्रिटिश सरकार को समझा कर "पुत्री रक्षा" कानून (Infanticide Act) जारी करवाया था, जिससे कड़वा पाटीदारों में भी वह जघन्य कुकृत्य समाप्त कराया जा सका। सौभाग्य से अन्य स्थानों के कुरमियों में विशेष करके यू० पी० और बिहार में यह जघन्य कुप्रथा नहीं थी।

डा. मंगुभाई रामवास पटेल अपनी पुस्तक "कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास" (प्रथम संस्करण 1991, अहमदाबाद) के पृष्ठ 161 पर लिखते हैं :- "गुजरात में बसने वाले कुर्मी भाई "लेउवा" तथा "कड़वा" संज्ञा से जाने जाते हैं। अनेक रीति-रिवाज, आचार-विचार समान होते हुये और रोटी-व्यवहार होते हुए भी उनमें बेटी-व्यवहार नहीं है। क्योंकि वर्षों पूर्व कड़वा कुर्मियों में कारणवश लग्न पद्धति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ और यह पद्धति (सन् 1911 की एक मात्र दस वर्षीय तिथि पर विवाह सम्पन्न होने के बाद से सबको आगे के लिये सेठ श्री रायबहादुर बहेचरवास लश्करी के प्रयत्नों से मुक्ति मिल गयी) लेउवा बन्धुओं में पूर्वजों को प्रतिकूल लगने के कारण इन दोनों शाखाओं में बेटी-व्यवहार बन्द हो गया, जिससे धीरे-धीरे अन्तर बढ़ता गया। दोनों पक्षों के विद्वानों और विलक्षण नेताओं ने शिक्षा की अभिवृद्धि करके उन्नति के अथक प्रयास किये हैं, जिसके मीठे फल शीघ्र ही हमें मिलेंगे। कडवा कुलमियों की आबादी गुजरात के अलावा खानदेश, मालवा, राजस्थान सौराष्ट्र तथा कच्छ में अधिक है। साथ में लेउवा भी बसते हैं।"

सारे देश के विभिन्न नामों से जाने पहचाने वाली कुरमी जातियां में नव जागृति

सेठ बहेचरवास लश्करी के नेतृत्व में पाटीदारों ने जातीय उत्थान के लिये पाटीदारों की अधिक आबादी

वाले स्थानों पर स्कूल, जगह-जगह छात्रावास, पुस्तकालय आदि खोले, गरीब विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां दिलवायीं, स्थान-स्थान पर सभायें आयोजित की और जातीय पत्रिकायें निकाली गई । उधर मराठों ने अपना मराठा महासंघ बनाया गया, वक्कलिंगर, रेड्डी, कापू, कम्माओं ने अपने-अपने अँचलों में महासभायें संगठित कीं, सुधार-समितियां स्थापित कर अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ किया । हिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक और जिला स्तर पर "कुरमी सबर सभा" की सभायें गठित हुई । छत्रपति शिवाजी महाराज के नाम पर स्कूल एवं पुस्तकालय स्थापित किये गये । इन सबका परिणाम यह हुआ कि कुरमियों में नवचेतना जागृत हुई और वे एक दूसरे बन्धु से जान-पहचान स्थापित करने के लिये लालायित हो उठे । इस एकता और संगठन का मुख्य कारण था यू. पी. पुलिस विभाग का कुरमी जाति विरोधी 2 फरवरी 1894 का सर्कुलर, जिसे "कुरमी सबर सभा" के सामूहिक प्रयास से ब्रिटिश सरकार ने अपने 21 मार्च 1894 के आदेश पत्र द्वारा निरस्त कर दिया, उसके बाद तो लगता था कि कुरमियों में सारा जोश, दूध में आये तूफान की तरह ठंडा सा पड़ गया । यही संभवतः कारण था कि तीसरे अधिवेशन के पश्चात्13 वर्षों तक "कुरमी सबर सभा" का न कोई अधिवेशन आयोजित किया गया और न उस दौरान कोई विशेष उल्लेखनीय जातीय गतिविधि होने का पता चलता है ।

कुरमियों की उस दौरान की जातीय गतिविधियों में शिथिलता का दूसरा कारण यह भी बताया जाता है कि उन्हीं वर्षों में आर्य समाज का सर्वत्र हिन्दी भाषी क्षेत्र में बड़े जोरों से प्रचार हुआ । कुरमियों के घर के घर महाशय बनने में गौरव अनुभव करने लगे । उधर रूढ़िवादी ब्राह्मणवाद, एक कैंसर रोग समान है जो स्वतः मरीज का पीछा अन्तिम क्षण तक नहीं छोड़ता । हां सर्जरी द्वारा ही इस सड़े गले ब्राह्मणवाद को, प्रभावित अंग सहित समाज से बेरहमी से कांट कर फेंकने में, शायद हिन्दू समाज और हिन्दू कहलाने वाले लोग बच सकें ; अन्यथा यह हिन्दू समाज की जान लेवा बड़ी खतरनाक बीमारी है और सदियों से हिन्दू शरीर को गलाती, सड़ाती, पुरुषत्वहीन और क्षीण करती रही है । जैसे नरभक्षी हो जाने पर शेर देखते ही आदमियों पर झपटता है, शिकार का लक्ष्य बनाता है, वेसे ही वर्ण-व्यवस्था को कर्मणा से जन्मना करके इनके पूर्वजों ने, मंदिर के पुजारी और कर्मकाण्ड सम्पन्न करने के लिये पंडितों, और पंड़ों के रूप में इनकी जीविका का, माल-पुआ और ऐश-आराम का आरक्षण, मंडल आयोग से हजारों वर्ष पूर्व सुनिश्चित कर दिया था । विद्वता हो या न हो, ब्राह्मण पुत्र ब्रह्म-ज्ञानी, समाज में सर्वश्रेष्ठ, सर्वदा पूजनीय, वंदनीय और न जाने क्या-क्या होने का मिथ्या दम्भ संजोये वह, बैताल सा राजा विक्रम के कंधों पर सवार की तरह, हिन्दू समाज पर अब तक गर्व से चढ़ा, उसे निर्देश देता रहा है कि यह न करो और यह करो । पर लगता है कि अब हिन्दू समाज के ज्ञान-चक्षु खुल चुके हैं, यदि जमाने से उस पर लदा आया वह अपनी जान के खातिर स्वयं नहीं उतरता है तो इसे तुरंत उतारकर जमीन पर पटकने में ही उनका हित निहित है । दक्षिण भारत में यह प्रक्रिया लगता है प्रारंभ हो चुकी है । उत्तर भारत में भी होकर रहेगी ।

बात कुरमियों में आर्य समाज के प्रचार-प्रसार की चल रही थी । उसी तारतम्य को और आगे बढ़ाया जाये । बहुजन हिन्दू समाज, जिनमें कुरमी जन भी थे, मरता क्या न करता, वे भी आर्य समाज की ओर झुकने लगे थे, क्योंकि यह संस्था वास्तव में हिन्दुओं को पाखंडों और रूढ़ियों का विध्वंस करने में अधिक सक्षम, ठोस एवं दमदार प्रतीत हुई । अतः उस दौरान के अधिकतर शिक्षित एवं प्रगतिशील कुरमी विचारों से ही नहीं, वरन व्यवहार से भी आर्य समाज के सक्रिय अनुयायी हो गये थे । अन्य बहुत से प्रबुद्ध कुरमी लोग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सक्रिय सदस्य बनकर राष्ट्रीय आन्दोलनों में ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज आदि का यद्यपि बंगाल में सर्वाधिक प्रभाव था पर हिन्दी भाषी क्षेत्र के कुरमीजन भी भक्तिकाल के संत कवियों जैसे गुरु नानकदेव से प्रेरणा लेकर नानकपंथी, संत कबीरदास जी से प्रेरणा ले यहां तक कि किसी साधु संत को व्यक्तिगत् गुरु बनाकर आध्यात्मिक जीवन जी कर सांसारिक जीवन के अनेकानेक कष्टों और विसंगतियों को भुलाते रहे । ऐसा कहा जाता था कि उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप उस समय का हिन्दू समुदाय समर्पित तथा योग्य कार्यकर्ताओं तथा जातीय संगठनकर्ताओं से प्रायः शून्य हो गया था ।

(चुनार) जिला मिरजापुर (यू. पी.) निवासी घोडचढ़े जयसवार उपजाति के रईस और जमींदार **चौधरी दीपनारायण सिंह,** (जैसा कि उन्होंने अपनी पुस्तक में अपना वंश परिचय दिया है)। यह सोचकर कि समाज को संगठित करने तथा नयी दिशा देने के लिये कि सर्वप्रथम जातीय पत्रिका का होना आवश्यक है उन्होंने 1 सितम्बर 1908 ई. से **"कूर्मि क्षत्रिय हितैषी"** नाम से एक मासिक पत्रिका, अपने ही सम्पादकत्व में निकालना प्रारंभ किया । पूर्व **"कुरमी समाचार"** पत्रिका दो साल तक तो खूब चली पर अर्थाभाव में उसका प्रकाशन मजबूरन बन्द करना पड़ा था। बहुत शीघ्र इस दूसरी जातीय पत्रिका ने भी कुरमी समाज पर आशातीत प्रभाव डालना शुरु कर दिया । लोग समाज हित में क्या करें, यह सब नगर-नगर में गंभीरता से सोचने लगे । युवा पीढ़ी में बड़ी तेजी से जागृति आयी, फिर तो प्रौढ़ और वृद्धजन भी सहयोग देने लगे । प्रायः निष्क्रिय पड़ी सभायें अपने-अपने अंचलों में पुनः सक्रिय होकर संगठन कार्यों में पूरे जोश-खरोश के साथ जुट गयीं । समाज में फिर चेतना भरी तो कुरमी बहुल क्षेत्रों में सामूहिक मिलन के अवसरों पर इस बात की आवश्यकता समझी जाने लगी कि **"कुरमी सदर सभा"** का अगला अधिवेशन शीघ्र आयोजित करना चाहिये ।

वेदों में तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में कूर्मि जाति सम्बन्धी प्रमाणित जानकारी मिलती है किन्तु उनमें हिन्दू शब्द का कहीं जिक्र भी नहीं मिलता, यह विदेशियों (ईरानियों) द्वारा दिया गया हमारा कौमी नाम है, जिसके मूल अर्थ जानने पर इसके कोई भी धारक इसे पसंद नहीं करेंगे, पर इसे आज धारण करने में गौरव अनुभव किया जाता है । किन्तु कूर्मि शब्द वैदिक होते हुये भी तथा कूर्मि जाति प्राचीनतम होती हुई भी इस का धारक, न जाने क्यों औरों से अपनी जाति बताने तक में संकोच अनुभव करता है । हीनता की मानसिक ग्रंथि उसने क्यों कर बना रखी है । क्या कूर्मि जाति बोधक शब्द का अर्थ ठीक नहीं है या अनादि काल से पूर्वजों के कृषि कार्य को उन्हें बताने में शर्म आती है? ऐसी कोई भी बात न होने पर भी यदि कूर्मि जाति का कोई बुद्धिजीवी अपनी जाति समाज में छिपाता है जो उसे सही अर्थों में बुद्धिजीवी न मानकर उन्हें छद्म बुद्धिजीवी (Pseudo Intellectual) कहना ज्यादा उचित रहेगा । उनमें साहस की कमी है । उनसे तो कम पढ़े-लिखे कुरमीजन अपनी जाति का अधिक लाभ कर रहे हैं, क्योंकि वे जो हैं वही जग को बताते हैं । समाज को यही वर्ग सामाजिक कार्यों में तन-मन-धन का सर्वाधिक सहयोग देता है और यह छद्म बुद्धिजीवी वर्ग अपने बारे में अन्य कुरमियों से सम्पर्क करना तक भी पसन्द नहीं करता । हां नेताओं से कुछ करवाने का या अपने बेटियों के लिये रिश्ते ढूंढने का जब इनका कोई मतलब होगा तब ये लोग अपने घरौंदों या कोकून से बाहर निकलकर समाज वालों के पास निसंकोच पहुँच जायेंगे, पर मतलब निकल जाने पर ये फिर पूर्वतः आत्म-केन्द्रित होकर, आम कुरमीजनों के प्रति उदासीन और समाज से असंबद्ध हो जाते हैं । मगर यह भी सत्य है कि कुछ बुद्धिजीवी सदैव ही समाज के लिये तन-मन-धन से बिना किसी के कहे, निस्वार्थ भाव से जाति बन्धुओं के लिये सामर्थ्यानुसार सहयोग करते रहते हैं पर इन जैसे महानुभावों की संख्या बहुत कम है पर वे प्रशंसा के योग्य है अनुकरणीय जातीय रत्न हैं। **इस मुद्दे को यहां उठाना इसलिये समीचीन है कि इस बुद्धिजीवी वर्ग के उदासीनतापूर्ण रवैये के कारण महासभा का पहला शताब्दी वर्ष भी आ पहुंचा पर गिनाने को गत् 100 वर्षों की उपलब्धियों में कुछ अधिक और विशेष नहीं है। अतः यदि सुबह का भटका शाम को भी घर आ जाये तो वह भटका हुआ नहीं कहलाता । इसलिये आशा की जाती है कि इस शताब्दी वर्ष से कुरमी बुद्धिजीवी वर्ग साहसी बनेंगे तथा आशातीत रूप से सभी समाजोन्नति कार्यों में खुलकर सक्रियता प्रदर्शित करेंगे जिससे अब तक की उनके प्रति समाज की निराशा शीघ्र समाप्त होवे।**

अनेक ऐसी जातियां है, जैसे **कायस्थ, जाट** आदि जिनका इतिहास प्राचीनतम ग्रन्थों में नहीं मिलता । **"जाट"** के बारे में **डा. हरदेव बाहरी** पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, अपनी पुस्तक **"प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश वैदिक काल से 12 वीं शताब्दी तक"** में लिखते हैं कि - **"शिव की जटा से, यादव, जाटव और जाट बने।"** जाट बन्धुओं की जोकि मुख्यतः कृषक है, उनकी अपनी धारणा है कि बौद्धकालीन भारत में जब कट्टर ब्राह्मणवाद ने सिर उठाया, सनातन धर्म के कर्मकाण्ड और टका-पंथ को मानने से इंकार कर दिया और बौद्धों के संहार तथा

बौद्ध मठों के ध्वंस करने के अनेक कतिपय आदेशों का पालन नहीं किया, अतः रुष्ट होकर उस काल के ब्राह्मणों, पुरोहितों ने इन्हें "जाति बहिष्कृत" या जाति-भ्रष्ट घोषित कर दिया था। हूणों, शकों तथा अन्य जिन जातियों ने उनका कहा माना और उनकी जातियोंन्नति आबूपर्वत के "अग्निकुंड" द्वारा करके चार कुल राजपूतों के बना डाले और उनका गुणगान जोरों से कर दिया और ये "जाति बहिष्कृत" या "जाति भ्रष्ट" लोगों का जातीय नाम कालान्तर में अपभ्रंश होते-होते मात्र जाट रह गया, वही इनका जाति बोधक नाम हो गया। तुलनात्मक विवेचना में कूर्मि जाति के सम्बन्ध में कुछ साक्ष्य व विश्वसनीय ऐतिहासिक विवरण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। कुरमियों का स्पष्ट प्राचीन इतिहास है।

इस चतुर्थ अधिवेशन में टौरालखन ग्राम, जिला बाराबंकी (यू. पी.) के जयसवार उपजाति के कुरमी चौधरी देवीप्रसाद सिंह (कहीं इन्हें चौधरी देवी प्रसाद वर्मा भी कहा गया है) को "कुरमी सवर सभा" का महामंत्री मनोनीत किया गया। चौधरी देवी प्रसाद सिंह ने जातीय इतिहास के सम्बन्ध में बतलाया कि कुनबी, कणबी, पाटीदार, कुलमी, कुड़मि बक्कलिगर, रेड्डी, मराठा और कुरमी सब एक ही मूल जाति की सन्तानें हैं। इन्हीं चौधरी देवी प्रसाद सिंह के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि कहीं और समारोह में उनके सारगर्भित भाषण को सुनकर भारत कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू के पिता जी डा. अघोरनाथ चट्टोपाध्याय ने अपने ये उद्गार प्रकट किये थे- "अवध प्रदेश के बाबू देवी प्रसाद सिंह चौधरी ने कूर्मि के क्षत्रियत्व का प्रतिपादन किया है यह बहुत ठीक है। आपके पांडित्य और प्रमाण बहुत जबरदस्त हैं और इसमें संदेह नहीं कि कूर्मि लोग क्षत्रिय हैं। इस जमाने में प्रदर्शित अर्थों में कूर्मि होना कठिन है। मैं कुर्मियों का आर्यत्व उनके परम्परागत पेशे से सिद्ध कर सकता हूँ। हल चलाना आर्यों का काम है। कुणबी के स्थान पर शुद्ध कुर्मी या कूर्मि क्षत्रिय का प्रयोग करें और करावें।" इतना ही नहीं डा. चट्टोपाध्याय जोकि बंगाल के कुलीन ब्राह्मण थे और पहले ऐसे भारतीय होने का गौरव उन्हें प्राप्त था, जिन्हें शोधकार्य पर डी. एस-सी (विज्ञान) की डिग्री सर्वप्रथम मिली थी, उन्होंने अपनी पुत्री कुमारी सरोजनी का विवाह दक्षिण कूर्मि वंश के श्री रंगनाथ नायडू से करवाने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट अब से 80 वर्ष पूर्व उस घोर रूढ़िवादी जमाने में भी प्रकट नहीं की। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में श्रीमती सरोजनी नायडू का योगदान स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगा। इनकी पुत्री कुमारी पद्मजा नायडू पश्चिम बंगाल की राजपाल रही थी।

प्रसिद्ध नृतत्ववेत्ता आर. बी. रसल ने अपनी पुस्तक "ट्राइब्स एण्ड रेसेस् ऑफ इण्डिया" में "कूर्मि" शब्द का सीधा सम्बन्ध संस्कृत शब्द "कृषि" से जोड़ा है। जो कृषि कार्य में दक्ष और कृषि कर्म करते थे, वे कूर्मि कहलाये। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि कूर्मि समाज की वंश परम्परा भगवान विष्णु के "कूर्मावतार" से जुड़ी है। कुछ प्रसिद्ध समाजशास्त्रियों का यह भी तर्क है कि कूर्मि शब्द किसी जाति विशेष का द्योतक नहीं है बल्कि यह एक व्यवसाय है और जो भी इसे अपनाता है, वह कूर्मि कहलाता है। प्रसिद्ध समाज शास्त्री श्री गोविन्द एस. धुर्ये का भी कहना है कि "कूर्मि", "कण्बी", कुनबी संभवतः जमात के धन्धे को व्यक्त करता है जैसे कृषि कार्य (G. S. Ghurye also observes that 'Kurmi', Kunbi and `Kanbi' perhaps signify the occupation of the group viz that of cultivation).

यदि हम "कुरमी सवर सभा" के तीसरे (28-29 दिसम्बर 1896) और चौथे (6 से 8 मई 1909) अधिवेशनों के बीच के 13वर्षों के काल पर दृष्टिपात करें और देखें कि देश में उस दौरान क्या-क्या नई महत्वपूर्ण गतिविधियां हुई तो पहले ध्यान जाता है सन् 1901 की जनगणना की ओर। इन जनगणना में हिन्दुस्तानी मुसलमानों की जनगणना तीन दरजों मे की गई थी। वे मुसलमानों के वर्ग या दरजे थे - (1) अशरफ (2) अजलाफ और (3) रियाजिल या इससे मिलता जुलता कोई लफ्ज। अशरफ वह मुसलमान होते थे जो अपने को सबसे ऊँचा मानते थे। अशरफ शब्द शरीफ का बहुबचन है। अशरफ मुसलमान परिवार के लोग उस गये जमाने में ऊँचे से ऊँचे ब्राह्मण को भी अपने से नीचा मानते थे, और यहां तक कि उनके हाथ के छुये या बनाये हुए खाद्य

पदार्थों के खाने में भी उन्हें आपत्ति हुआ करती थी। दूसरे वर्ग के यानी "अजलाफ" में वे मुसलमान आते थे, जोकि उनके समाज के निचले तबके के लोग होते थे। तथा तीसरे वर्ग में यानी "रियाज़िल" वे मुसलमान होते थे, जो कंगालों (सर्वहारा) की श्रेणी में आते थे। इससे एक बात तो स्पष्ट होती है कि मुसलमानों की शरिअत या पाक पुस्तक "कुरान शरीफ" के आदेशों के विपरीत मुसलमानों में भी, हिन्दुओं की तरह ऊँच-नीच और इंसान को एक सा न मानने की भावना जरूर रही है, इसको नकारा नहीं जा सकता। पुरुष और स्त्री में हक-हकूक का फर्क तो मुसलिम धर्म में अभी भी है। पाकिस्तान के न्यायालयों में एक स्त्री की गवाही आधी मानी जाती है। अर्थात एक पुरुष की गवाही के खिलाफ दो स्त्रियों की गवाहियां पेश करने पर ही उसका पूरा काट माना जायेगा, महज एक स्त्री की गवाही से नहीं।

स्व. खान अब्दुल गफ्फार खां, फ्रंटियर गांधी या बादशाह खान के नाम से अधिक विख्यात हुये। वे इस देश की आजादी के लिये संघर्ष करने वाले चोटी के नेताओं में से और उनके समकालीन थे। उनके फ्रंटियर प्रान्त ने मतगणना में भारत के साथ रहने की स्पष्ट राय दी थी पर हमारे नेता उसके बाद भी उसे पाकिस्तान का अंग बनने से रोक न पाये। उस उसूल खिलाफी का उन्हें तथा उस प्रान्त के मुसलमान निवासियों को बड़ा अफसोस रहा। फ्रंटियर गांधी ज्यादातार पाकिस्तान की जेल में रहे। रिहा होने पर उन्हें स्वतंत्र भारत ने **"भारत रत्न"** के सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित किया। जबाव में पाकिस्तान ने तुरन्त **पूर्व प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई** को भी अपनी सबसे ऊँची ईनामी पदवी से अलंकृत कर दिया। बादशाह खान ने अपनी आत्म कथा में बड़े अभिमान (फख्र) के साथ लिखा है कि - **"वे उस पठान जाति के हैं जिनके पुरखों ने ही वेद रचे थे।"** यह भी कहा जाता है कि **सुल्तान शेरशाह सूरी** मुसलमान धर्म ग्रहण करने से पूर्व खत्री जाति के पंजाबी थे और आज भी पंजाब के खत्रियों में "सूरी" अल्ल एक आम जाति सूचक चिह्न है।

इस दौरान दूसरी महत्वपूर्ण राष्ट्रीय घटना थी सन् 1905 में बंगाल का अंग्रेजों द्वारा विभाजन। बंग-भंग ने बंगाल में वैचारिक क्रान्ति को जन्म दिया। **"बन्दे मातरम"** जैसा अमर गीत **बंकिमचन्द्र चटर्जी** की उस काल की देन है। सब जगह इसके विरोध में सभायें हुई, प्रदर्शन हुए अनेक लोग शहीद भी हुये। अंग्रेजों ने **"फूट डालो और शासन करों"** की कूटनीति के अंतर्गत यह राजनैतिक चाल चली थी।

बंकिम चन्द्र चटर्जी ने सन् 1880 के आस-पास **"बन्दे मातरम्"** गान की रचना की थी जोकि **"बंग -जननी"** पत्रिका में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था। बाद को बंकिम बाबू ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास **"आनन्दमठ"** में, जोकि बंगाल के मुस्लिम शासकों के घोर अत्याचारी शासन के विरोध में उठे **जन आन्दोलन** पर आधारित था। उस आन्दोलन में **साधु-सन्यासियों** की भी प्रमुख भूमिका रही थी। वे सामूहिक रूप से **"वन्दे-मातरम्"** गीत एक प्रेरक गान के रूप में गांव-गांव गाते फिरते थे। जिसे रोकने के लिये शासन के अमानवीय जुल्मों को वे सहते थे पर ओंठों से **"वन्देमातरम्"** के शब्द ही उच्चारित होते थे।

इस गान में एक भी शब्द न मुस्लिम लोगों के खिलाफ है और न **'कुरान पाक'** के। जबकि **विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर** रचित मूल गीत सन् 1911 में **सम्राट जार्ज पंचम** के भारत आगमन के समय प्रशस्ति गीत के रूप में **"भारत भाग्य विधाता"** शीर्षक से था। उसका परिवर्तित रूप में **"जन-गण-मन अधिनायक, भारत भाग्य विधाता"**, में भारत का भाग्य-विधाता (बनाने-बिगाड़ने) वाले अर्थ में स्पष्ट संकेत तत्कालीन भारत के ब्रिटिश सम्राट की ओर करता है। फिर भी मुसलमानों और अपने को तथाकथित असाम्प्रदायिक कहने वाले हिन्दू कांग्रेसियों को **'जन-गण-मन अधिनायक'** के सम्बन्ध में कोई आपत्तिजनक बात नज़र नहीं आती, पर **'बन्दे मातरम्'** गान में साम्प्रदायिकता की दुर्गंध महसूस होती है। मुसलमान बन्धुओं का ऐतराज़ इसलिये भी है कि **खुदा** के अलावा उन्हें किसी और के आगे सिर झुकाने की मनाही है वह चाहें **भारत मां** ही क्यों न हो, सिर उसके सामने भी झुकाना **इस्लाम के खिलाफ** होगा, अतः मना है।

"बन्दे मातरम्" के अर्थ उर्दू में किये जायें तो होगा- "अय मादिरे वतन तुझे मेरा सलाम", उचित ही कहा जायेगा। क्या मुसलमान लोग मुगल शासकों और सुल्तानों के दरबार में "फर्शी सलाम" करते थे तो उसके लिये सिर को झुकाना नहीं पड़ता था। आम जिन्दगी में जब कोई मुसलमान "आदाब अर्ज" करते हैं तो सिर झुकाकर सीधे हाथ से सलाम करते देखा जाता है। यहां अहम प्रश्न यह है कि जबकि मुसलमान "आदाब अर्ज़" करते समय साधारण इंसानों के सामने सिर झुका सकता है, तब भारत मां के सम्मुख सिर नवाने में ऐतराज का इज़हार कहां तक उचित हैं और इस्लाम के खिलाफ है? भारत मां तो इस देश के सभी निवासियों की मां है। फिर किसी भी धर्म विशेष के व्यक्तियों को ऐसा करना वाजिब क्यों नहीं है? जब भारत को मां के कहने में इस देश के मुसलमान नागरिकों को ऐसा ऐतराज है तब यहां के हिन्दू, सिख, जैन, बौद्ध और पारसी नागरिकों को बन्धु कहने पर भी उन्हें ऐतराज रहेगा।

चौथा अधिवेशन

दिनांक 6, 7 और 8 मार्च सन् 1909 को बिहार के उस समय के उप-मण्डल भभुआ (वर्तमान में जिला रोहतास) के अन्तर्गत एखलासपुर ग्राम में चतुर्थ-सम्मेलन हुआ । मनोनीत अध्यक्ष मैसूर के प्रसिद्ध समाज सेवी एवं बैरिस्टर बी. नागप्पा की अनुपस्थिति में प्रथम दिन की अध्यक्षता दानापुर (बिहार) के मुन्सिफ (बाद में सब-जज) श्री रामविलास सिंह एडवोकेट ने की तथा बाद में दोनों दिनों की अध्यक्षता, बाबू मिथिलाशरण सिंह, एडवोकेट ने की ।

चौथा अधिवेशन आयोजित करने के लिये, पहली बार यू. पी. से बाहर से निमन्त्रण, गौतम बुद्ध तथा तीर्थंकर महावीर के जन्म प्रदेश एवं कर्म-स्थल बिहार की पवित्र भूमि से, वहां के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने वहां के लोगों की जन भावनानुसार भेजा था । इस अधिवेशन के निमन्त्रण का कुरमी क्षेत्रों में सर्वत्र स्वागत किया गया और लोग दूर-दूर से एखलासपुर ग्राम में पहुँचे ।

"कुरमी सदर सभा" के लगातार तीन अधिवेशन संयुक्त प्रान्त में हुए । दिसम्बर 1894 में पहला और दिसम्बर 1895 में दूसरा लखनऊ में तथा दिसम्बर 1896 में पीलीभीत शहर में तीसरा । इसके बारह वर्ष चार माह बाद एखलासपुर, जिला रोहतास (बिहार) में 6 से 8 मई 1909 में चौथा अधिवेशन आयोजित किया गया। तीसरे और चौथे अधिवेशनों के बीच की एक घटना का जिक्र स्व. श्री शिवराम सिंह और स्वामी अभयानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक "कूर्मि क्षत्रिय इतिहास" के पृष्ठ 173, संस्करण 1974 पर निम्नलिखित शब्दों में किया है :-

"जब सन् 1901 ई. की जनगणना होने को थी, उस समय कुछ अशान्ति हो गयी थी । लखनऊ के भाइयों ने प्रशंसनीय कार्य किया । मिस्टर बर्न उस समय इस विभाग के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे । उनसे पत्र-व्यवहार कर, स्वजाति का स्मरण पत्र (मेमोरेंडम) भेजकर, अपनी जाति को क्षत्रियों के अन्तर्गत लिखाया गया । उस समय बाबू रामाधीन सिंह ने मंत्रित्व-पद से बड़ा ही काम किया था ।"

वास्तव में, यह चौथा अधिवेशन मैसूर के सब-जज तथा मैसूर धारा सभा के सदस्य, बैरिस्टर बी. नागप्पा की अध्यक्षता में आयोजित कराने का निश्चय लिया गया पर बीमार पड़ जाने के कारण वे बिहार न आ सके। ऐसी स्थिति में श्री मिथिलाशरण सिंह को अध्यक्ष मनोनीत किया गया था । दुर्भाग्य से उनके भी एखलासपुर ग्राम में समय पर न पहुँच पाने के कारण, प्रथम दिन के अधिवेशन की अध्यक्षता जैसे ऊपर कहा गया है मुंसिफ श्री रामविलास सिंह जी ने की और शेष दो दिनों मनोनीत अध्यक्ष श्री मिथिलाशरण सिंह ने की । उस जमाने की प्रथा के अनुसार अध्यक्ष जी ने अपना लिखित भाषण पढ़ा । उसके प्रेरक अंश मूल भाषा में ही नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं ।

1. 'The Kshatriyas of old, after the Great Mohamedan invasions, when they could not hold their kingdoms. dispersed and took to cultivating the soil, whenever they could, converting their blades of steel into plough shares. When they failed to govern the land they began to till it saying:

"उत्तम खेती मध्यम बान, अधम चाकरी भीख निदान" ।

(हिन्दी रूपान्तर) : प्राचीन काल के क्षत्रिय, महाभारत युद्ध के पश्चात तथा दशमीं शताब्दी में राजपूती विजय और मुसलमानी आक्रमणों के पश्चात् जब अपने स्वतंत्र राज्यों को अपने अधिकार में न रख पाये, तो भूमि-अधिग्रहण कर उस पर खेती करना प्रारम्भ कर दिया, मानो अपनी तलवारों को हल के फालों में ढ़ाल दिया हो। जब वे अपने इलाके पर अपना प्रभुत्व कायम न रख सके, तो यह मानकर कृषि-कार्य में जुट गये कि-**"उत्तम खेती, मध्यम बान, अधम चाकरी, भीख निदान"**

2. 'The Kshatriyas of olden times are now known under different appellations - Kshatriyas, Marathas, Kurmi etc, the last two names are interchangeable terms and differently pronounced and differently spelt. The word 'Maratha' has been derived in half a dozen different ways and the word 'Kurmi' likewise conveys an honourable meaning and has had an honourable usage in old and ancient literature. The quotations etc. given below will induce our Maratha, Kurmi Kshatriya brothers to find more proofs in support of their greatness and belief against the antagonistic remarks of the ill-informed scholars.

(हिन्दी रूपान्तर) :-

प्राचीनकाल के क्षत्रियों को क्षत्रिय, मराठा और कुर्मी इत्यादि नाम प्रदान किये गये थे । अन्तिम दो नाम एक दूसरे के लिये प्रयुक्त होते हैं इनकी वर्तनी में (उच्चारण में) भेद रहा है । मराठा शब्द की व्युत्पत्ति आधे दर्जन रूपों में की जा सकती है । कुर्मी शब्द भी सम्मानजनक है और प्राचीन साहित्य में इसका सम्मानपूर्ण प्रयोग किया गया है । नीचे लिखे उदाहरणों इत्यादि से हमारे मराठा कुर्मी बन्धुओं को अपनी महानता और अल्पज्ञानी विद्वानों द्वारा दी गई पूर्वाग्रह पूर्ण टिप्पणियों के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण प्राप्त हो सकेगें ।

Authorities from ancient books show that the Kurmis belong to the 2nd class i.e. Kshatriya.

(हिन्दी रूपान्तर) :- "प्राचीन ग्रन्थों के रचयिताओं के मतों से प्रकट होता है कि कूर्मि जाति द्वितीय वर्ण की अर्थात क्षत्रिय है ।"

Etymology of the term (इस शब्द की व्युत्पति)-

"सयत्कूर्मोनाम । एतवै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत्त यवसृजताकरोत्त
गूव करोत्त - समात्कूर्मः कश्यपी वै कूर्मस्तस्मावाहुः प्रजा काश्यप्य इति" ।।

(शतपथ का. 7 अ. 5, ब्रा.1)

3. ऋग्वेद के मंडल 3, सूक्त 30 के निम्नवर्णित मंत्र 3 में "तुवि कूर्मि" का प्रयोग किया गया है :-

इन्द्र तुविष्मोमघवा तरुत्रो महा व्रातस्तुवि कूर्मि ऋघावान ।
यदुग्रोधावाधितो मर्त्येषु कृत्वा ते वृषभ वीर्याणि ।।

वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण ने "तुवि कूर्मि" का प्रयोग जो उपर्युक्त मन्त्र में किया गया है, उसका अर्थ किया है "बहुविधि कर्मा इन्द्र" -अर्थात संग्राम में नानाविधि कर्मा, बलवान, वीर्यवान, इन्द्र आदि के रूप में प्रयुक्त किया गया है ।

(टिप्पणी :- वेदों के कई मंत्रों में इन्द्र के गुण, कर्म, एवं स्वभाव को व्यक्त करने के लिये "कूर्मि" शब्द का संज्ञा तथा विश्लेषण के रूप में प्रयोग हुआ । कूर्मि शब्द तो वेदों में अनेक मंत्रों में आया है, इसका इस पुस्तक में अन्यत्र विस्तार से उल्लेख किया गया है किन्तु आर्य, हिन्दू, राजपूत तथा ब्राह्मण जैसे शब्द एक बार भी प्रयुक्त नहीं हुये । इससे पता चलता है कि ये शब्द तब प्रचलित न थे ।

4. स्कन्द पुराण (33/64-66) में कूर्म नाम के ऋषि का उल्लेख इस प्रकार मिलता है :-

"मालमालिनी भक्तस्य कूर्म्म नाम्ने ऋषे : कुले ।।64।।
जातः प्रथम तो राजा प्राणनाथ इतीरितः । तस्यवंशे नृपोजाते
बाहुशाली इतीरितः ।।65।। तदन्वये नृपों जातो दीर्घबाहुरिति
श्रुतः । तस्माच्च वीर सेनाख्यावमुतुः प्रीति वर्द्धना ।।66।।

(भावार्थ) : "मालमालिनी (देवी) के भक्त कूर्म्म नामक ऋषि के कुल में पहले प्राणनाथ राजा प्रकट हुआ । इस

स्कन्द पुराण के सह्याद्रि खंड के 33वें अध्याय के 64 वें वचन में क्षत्रियों में कूर्मवंश की गणना की है कूर्म ऋषि का पुत्र कौर्मि कहलाया । इसी शब्द के देशी भाषाओं में कुर्मी (कुनबी) इत्यादि बहुत से अपभ्रंश हुये । आगे इसके 65 व 66 श्लोकों के अर्थ हैं कि प्राणनाथ राजा के वंश में बाहुशाली राजा हुए और उनके वंश में दीर्घबाहु राजा हुए तथा उनसे वीरसेन इत्यादि संसार में प्रीति बढ़ाने वाले राजा हुए । इन सबकी कौर्मि संज्ञा हुई और इस वंश के कूर्मि अद्यवधि वर्तमान हैं ।
पाठकों को यह ज्ञात होगा कि कूर्म ऋषि महाराज गृत्समद के पुत्र और ऋषिपद प्राप्त राजा वीतहव्य के पौत्र थे । पिता की तरह कूर्म ऋषि भी वैदिक काल के मंत्र दृष्टा ऋषि थे ।

5. हिन्दी के कवि पद्माकर ने सदा अपने कवित्व में जयपुर के सवाई राजा जगतसिंह के नाम के पीछे "कूर्म वंशावतंस" प्रत्यय के रूप में प्रयोग किया है । इस पुस्तक का नाम है "जगत विनोद" और इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में सवाई राजा के नाम के अन्त में "कूर्म वंशावतंस" का प्रत्यय प्रयुक्त किया गया है, जिससे स्पष्ट अर्थ निकलते हैं कि वे कूर्मवंश के थे ।बाद में जयपुर का कछवाहा (कूर्मवंशी) राजपरिवार उस काल में राजपूतों जैसा मान-सम्मान पाने के लोभ में शायद अपने को कछवाहा सूर्यवंशी क्षत्रिय कहने लगे ।

6. पंडित कृष्णदत्त ने "बिहारी लाल की सतसई" में राजा सवाई जयसिंह को "कूरम" शब्द से सम्बोधित किया है, जैसे :-
कूरम सवाई जयसिंह के अभंग,
जगमत विनेश को सो तेज अंग-अंग में

7. कवि नाभादास ने अपनी कृति "भक्तमाल" में राजा पृथ्वीराज चौहान को कूरम वंशी बताया है :-
"आँवेर अछित कूर्म को द्वारिकानाथ दर्शन दियो" पूरा काव्य अंश इस प्रकार है :-

श्री कृष्णदास उपदेश परम तत्व परचो पायो ।
निर्गुण-सगुण निरूप तिमिर अज्ञान नशायो ।
काछ-बाच निकलंक मनो गांगेय युधिष्ठिर हरिपूजा
प्रहलाद धरमध्वज धारी जग पर । पृथ्वीराज परचो
प्रकट तन शंख चक्र मंडित कियो आंवेर-अछित कूर्म को
द्वारिकानाथ दर्शन दियो ।

8. महाकवि गंग ने जो सत्य कहने के कारण से हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिये गये थे, कूर्मवंश के बारे मुगल बादशाह अकबर के दरबार को सुशोभित करने वाले जिन क्षत्रियवंशी राजागण थे उनका निम्नलिखित पद्यांश में उल्लेख मिलता है :-

सुनि भटी चाचानी कमधजों धवड वांनीव,
जदु बहाड़ै, गौर, बौल जानै सो ठानीव,
चालक तोवरं कुरमं टाक पिंची परीहारा,
शोलषी चंदेल जैत बिकान करारा,
मछरीक राव अनुनोववं चार्न सुनंत अकबर अषत,
सीशोव रान हीवबान नृपः सौ उवैनंव सुनीय सकल ।।

("गंग कवित्त" नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तक से साभार उद्धृत)

 अध्यक्षीय भाषण में उल्लिखित उदाहरणों के अतिरिक्त कूर्म बंश सम्बन्धी कुछ अन्य प्रमाण :-

1. कूरम कमल कमधुज है कदंबफूल,
और है गुलाब राजा केतकी बिराज हैं ।

(भूषण-शिवा बावनी)

2. हरीसिंह बघ्येल कूरम्म मीरं ।
चाहुवान सवूवल अजमन्त सीमं ।।

(हम्मीर-रासो)

चढ़ि चले साह हरवल समीर ।
तिहिं जुटे रारं कूरम बीर ।।

(हम्मीर-रासो)

3. "मारवाड़ के राठौरों का मूल पुरुष राव सींहा (सिंह सेन) कनवजिया (कन्नौज) से यात्रा करते हुये पाटण, गुजरात पहुँचा, वहां पर उसने चावड़ों का पक्ष लेकर सिंध के माउलाखा जाम से युद्ध किया और जब जाम को यह पता चला कि मुकाबिले में कनवजिया कटक के साथ है तो मैदान छोड़कर भाग गया ।"

"प्राचीन काल में कन्नौज राज्य के अन्तर्गत बदायूं इलाका राठौरों का ठिकाना था, वहीं से राठौर राजपूताने में आए, ऐसा पता लगता है । "आज भी बदायूं के कुरमी अपने को राठौर कुर्मी लिखते हैं । अतः वे कूर्मवंशी कनवजिया राठौर मूल रूप से थे, और उनके वंशजे राठौर राजस्थान चले गये और क्षत्रियों का नया नाम "राजपूत" प्रयोग से वे भी राठौर राजपूत कहे जाने लगे ।

4 महाराणा प्रताप की दृष्टि में अब्दुल रहीम खानखाना का ऊँचा स्थान था । महाराणा प्रताप के आत्मज, अमरसिंह महाराणा तो रहीम से गम्भीर मसलों पर उनकी सलाह भी लिया करते थे । दो दोहे महाराणा अमरसिंह ने रहीम के पास अपनी समस्या लिख भेजे, जिनमें से एक में कूरमवंशी राजा का उल्लेख है :-

1 हाडा कूरम राव बड़, गोरवाँ जोख करन्त ।
कहियो खानखाना ने, बनचर हुआ फिरन्त ।।

2 तुवरातु दिल्ली गई, राठोड़ा कनवज्ज ।
राण पय पै खान ने, वह दिन दीसे अज्ज ।।

रहीम की राणा-परिवार के प्रति श्रद्धा थी अतः उत्तर में तथा सान्त्वना देते हुये एक दोहा उन्होंने लिख भेजा था :-

3 धर, रहसी, रहसी धर्म, खप जासी खुरसाण
अमर विश्म्भर ऊपरे, राखौ नह चौराण ।।

रहीम इस दोहा के माध्यम से कहते हैं कि -

"हे अमरसिंह! यह पृथ्वी यहां ही रहेगी । धर्म भी स्थिर है किन्तु व्यर्थ की अनीति करने वाले खुरसाण (अत्याचारी) खप (मिट) जायेंगे । - इसे तुम निश्चय और अटल सत्य समझो । तुम परवरदिगार पर विश्वास रखो ।" "यह रहीम की राष्ट्रीयता"- लेखक कुंवर देवेन्द्र प्रताप सिंह सौलंकी, प्रकाशक-कृष्णा ब्रादर्स-अजमेर, के पृष्ठ 170 से साभार उद्धृत)

4. बाल्मीकि रामायण में कूर्मिन शब्द का प्रयोग विशेषण रूप में आया है जैसे -

"असंदेशसतु समस्य तपसश्चानुपालनात्।
नत्वां कूर्मिन दशग्रीव । भस्म भस्माई तेजसा ।।"

बाल्मीकि 1 सर्ग 22 ।।9।।

(भावार्थ) माता सीता लंकापति रावण से कहती है, "हे कूर्मि दशग्रीव (दस कण्ठ वाला) रावण । श्री राम की आज्ञा न होने और तपके कारण मैं तुझको तेज से भस्म नहीं करती हूँ ।"

यहां "कूर्मिन" शब्द रावण के विशेषण में आया है और रावण की निन्दा में सीता जी ने प्रयोग किया है कि तूने कूर्मि अथवा अनेक विषकर्मा होकर भी ऐसा निन्दित और घृणा-युक्त दुष्ट कर्म क्यों किया?

5. महावीर हनुमान जी के लिये भी "कूर्मि" शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है :-

"इदन्तु मम दीनस्य, मनो भूयः प्रकर्षति।
यदि हास्य प्रियाख्यातु, र्न कूर्मि सदृशां प्रियम ।।"

(बाल्मीकि रामायण)

(भावार्थ) : महाराज राम कहते हैं कि मुझ दीन का मन फिर हनुमान की ओर आकर्षित होता है क्योंकि प्रिय हित कहने वाले कूर्मि (अतिशय बहुत प्रकार के वीरोचित कर्म करने वाला) हनुमान के समान प्रिय और नहीं है ।

6- रुक्मिणी के स्वंयम्बर में महाकूर्म राजाओं का आगमन :-

जरासन्धः सुनीथश्च, दन्त वीर्यवान ।।6।।
साल्व सौभपतिश्चैव, महा कूर्मश्च पार्थिवः
कथ कैशिक मुख्याश्च, नृपाः प्रवर वंशजा ।।7।।

(हरिवंश पुराण, अ. 53, श्लोक 6 और 7)

भावार्थ :- हरिवंश पुराण से ज्ञात होता है कि जरासन्ध, सुनीथ पराक्रमी दन्तवक्र, साल्व, सौभपति, राजा महाकूर्म (मरुत्कुन्ति भोज) और श्रेष्ठ वंशोत्पन्न कथ, तथा कौशिक आदि मुख्य-मुख्य महाराजे रुकिमणी के स्वयंबर में आये थे । कथ और कौशिक, राजा विदर्भ के पुत्र थे और राजा विदर्भ का राज्य का नाम बाद में विदर अपभ्रंश रूप में हो गया ।

व्याख्या :- भगवान कृष्ण को अवतरित हुये पांच सहस्त्र वर्ष से अधिक समय हो गया । उस काल में यदुवंशीय राजा महाकूर्म, रुक्मिणी के स्वयंबर में विद्यमान थे, यह प्रमाणित होता है ।

प्राचीन ग्रन्थों में कूर्म की बड़ी महिमा गायी गई है, जिसने सर्वप्रथम पृथ्वी को रहने योग्य और कृषि उत्पादन योग्य बनाया । प्रलय के पश्चात् जलमग्न पृथ्वी के आवश्यक तत्वों को ठोस रूप देने के लिये बड़े कौशल और सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता थी । केवल कूर्म भगवान की सहायता से ही पृथ्वी का उद्धार किया गया । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है "पृथ्वी त्राता कूर्मः ।" - अर्थात कूर्म की सहायता से ही पृथ्वी के एक अंश को जल से बार निकाला गया था । कल्हण की राजतरंगिणी और "नीलत पुराण" के अनुसार कश्मीर भूमि जो पहले जल-मग्न थी, उसे कूर्म अथवा कश्यप भगवान ने जल से बाहर किया ।

कश्यप प्रजापति को कूर्म कहा गया है । कूर्म और कश्यप एक ही शक्ति और व्यक्ति के नाम हैं - "कश्यपो वे कूर्मः" । सृष्टि के आरम्भ में कूर्म-कश्यप के प्रयत्न, पुरुषार्थ से जल से पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ, इसलिये पृथ्वी, आकाश का नाम ही कूर्म पड़ गया । सच तो यह है कि कूर्म की कर्मठता, क्रियाशीलता, प्रयत्न और पुरुषार्थ से जल से पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ, इसलिये पृथ्वी, आकाश का नाम ही कूर्म पड़ गया । भारतवर्ष का उद्भव हुआ । इसलिये भारत देश का नाम भी कूर्म पड़ गया । स्कन्द पुराण, प्रभास खण्ड 11/14 में शंकर जी ने पार्वती जी से "कूर्म भूमि" संज्ञक भारतवर्ष की इस प्रकार चर्चा की है :-

तदेतत भारतवर्षं सर्वबीजं वरानने ।
तत् कूर्म भूमि नन्वित्र सम्प्रोप्तिः पुराण पापयो ।।

(अर्थात) यह वही कूर्मि भूमि भारतवर्ष है जो सबका मूल स्थान है, जहां पुण्य-पाप की परख होती है, भले-बुरे का विवेक विचार होता है ।

सूर्यवंशी क्षत्रियों की जन्म गाथा

भविष्य पुराण, वाराह, विष्णु, कूर्म, मत्स्य, मार्कंडेय तथा ब्रह्म-वैवर्त्त पुराणों के अनुसार-जगत सृष्टा ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरिचि के पुत्र कश्यप तथा इनकी पत्नी दक्ष प्रजापति की पुत्री अदिति से सूर्य का जन्म हुआ। सूर्य का जन्म नाम विवस्वान रखा गया ।

सूर्य खंड-खंड न हो अतः इसे आदित्य भी कहते हैं । युवा होने पर सूर्य के तीन विवाह हुए । पत्नियां थी संज्ञा, राज्ञी और प्रभा । संज्ञा सूर्य की सबसे प्रिय भार्या थी । वह देव शिल्पाचार्य विश्वकर्मा की पुत्री थी। संज्ञा के सबसे प्रथम उत्पन्न संतान वैवस्वत मनु थे, जो मानवजाति के आदि पुरुष माने जाते हैं । दूसरी संतान यम, यमी थे, जो जुड़वा पैदा हुये ।

वैवस्वत मनु से प्रथम सन्तति इक्ष्वाकु हुई और इससे सूर्यवंशी क्षत्रियों का कुल चला जिसके सबसे प्रतापी राजा मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी हुए ।

(क) आइन-ए-अकबरी के हिन्दी संस्करण में एक राजा का वर्णन करते हुये लिखा गया है ।:-

"सूरजवंशी कूर्म कुल, रवि सौं तेज प्रताप ।
तिमिर नशावन जगत को, छत्रपति नृप आप ।।

(ख) मिश्रण सूर्यमल्ल ने अपने ग्रंथ "वंशभास्कर" में कूर्मवंश को सूर्यवंश के अन्तर्गत माना है और उसकी उत्पति अयोध्या के किसी सुमित्र नामक राजा के पुत्र "कूर्म" से लिखी है । जैसे :-

"सुमित्र वंशे राठौर कूर्म वंशोत्पति,, तृतीय राशि, सप्त पंचाश मयुख :-

इति सुमित्र साकेत नृप, तज्यों योग बल देह।
विश्वराज कूरम प्रमुख, हुव बहु सुत तस गेह ।।8।।

विश्वराज को ही विदित, ऊपर विश्वबर नाम ।
जाके सुत के पुत्र सौं, कुल रढौर ललाम ।।9।।

कूर्म विश्वबर को अनुज, जासो कूरम वंश ।
बजि है सुहि कछवाह बलि, याके सुत से अंश ।।01।।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाराज सुमित्र के विश्वराज तथा कूर्म नामक पुत्र हुए । इन्हीं कूर्म से कूर्म वंश चला । बाद में महाराज कूर्म या कूरम के पुत्र वत्सवाध (कत्सवाध) से कछवाहा कुल चला ।

(ग) कर्नल टाड के अनुसार रामचन्द्र जी के पुत्र कुश भी "कूर्म" कहलाते थे । "Annals and Antiquities of Rajasthan' By Lieut Col. James Tod [vol 2, 1971, K.M.N. Publication, 85 Jorbagh, New Delhi - 3]

'Jodhpur, aur Amber,
Doono thap oot-hap,
Koorma mare deekro,
Kamdhuj mara hap'

(The Princes of Jodhpur and Amber can dethrone the enthroned. But the Koorma slew his son, the Kamdhuj murdered his father'

Foot Note given : Koorma-or Cuchwa (Kushwaha) (the tribe of the princes of Amber)

(घ) ई. जी. जेंकिन्सुन, डिप्टी कमिश्नर एण्ड सेटलमेंट आफिसर का दिनांक 27 अप्रैल सन् 1904 का लेख शीर्षक "मेमो आन व कास्टस प्रिवेलिंग इन व डिस्ट्रिक्ट ऑफ झांसी (यू. पी.)" लिखते हैं कि -"झांसी प्रभाग के कुरमी अपने आपको सूर्यवंशी कहते हैं और अपनी उत्पत्ति त्रेतायुग के बलभद्र नामक किसी सूर्यवंशी राजा से मानते हैं ।"

(ङ०) बाम्बे गजेटियर, बेलग्राम, जिल्द 21 में उल्लेख मिलता है । कि बम्बई प्रेसीडेंसी के बेलग्राम आदि अंचलों में सूर्यवंशी कुनबी हैं और वे वहां सूर्यवंशी ही प्रख्यात है ।

(च) जयपुर स्टेट के कछवाहे राजघराना :-

पूर्व सांसद और जयपुर राज्य की राजमाता गायत्री देवी ने अंग्रेजी में "DELHI, AGRA, JAIPUR" शीर्षक से एक पुस्तक लिखी, जिसे हिमालयन बुक्स नामक प्रकाशक ने हाल ही में प्रकाशित किया है । उस पुस्तक की लेखिका राजमाता साहिबा के अनुसार जयपुर कछवाया राजाओं के राज्य की राजधानी सन् 1729 से 1949 तक (भारत में विलय होने तक) रही । उनके ही के शब्दों में,

"The Kachwahas claim direct descent from Kush, the son of the Suryavanshi emperor, Ramchandra, the hero of the epic Ramayan"

राजमाता द्वारा कछवाहों का उद्‌गम बिहार प्रदेश का रोहतास जिला बताया गया है । जहां से वे नरवार और ग्वालियर में आ बसे । इनके आदि पुरुष दुलेह राय थे जोकि राजस्थान में स्वजनों के साथ आये थे । जिन्होंने स्थानीय सरदार की बेटी से विवाह किया और अपने राज्य की प्रथम राजधानी की नींव रखी । एक किंवदंती प्रसिद्ध है कि एक बार दुलेहराय के पैर एक लड़ाई में उखड़ गये और वे बुरी तरह जख्मी होकर एक मंच पर पड़े आराम कर रहे थे । उन्होंने सपना देखा कि जम्मूवा देवी उन्हें पुनः युद्ध करने के लिये आह्‌वान् कर रही है, जिसमें उनकी विजय भी अवश्यम्भावी है ऐसा आश्वस्त किया । दुलेह राय ने दूसरे दिन वैसा ही किया और वे विजयी हुए । अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुये जहां वे जख्मी पड़े आराम कर रहे थे वहीं माँ जम्मूवा (Jammuva Mata) का मन्दिर बनवाया और स्थान का नामकरण जम्वा रामगढ़ अपनी इष्ट देवी जम्मूवा देवी तथा कुल पुरुष मर्यादा पुरुष रामचन्द्र

के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुये किया । उन्होंने राज्य सीमाओं को बढ़ाया । सन् 1036 में उनका निधन हो गया । वह राज्य मौजूदा जयपुर शहर से 6 मील दूर था । उनके पुत्र ककिल देव ने विद्रोही मीनाओं पर पूर्ण काबू स्थापित किया और उन्होंने जयपुर राज्य के प्रसिद्ध जयगढ़ किले की नींव डाली। किन्वदंती है कि किले के तालाब में भगवान अम्बिकेश्वर (शिवजी) की प्रतिमा प्राप्त हुई इसी से नये राज्य का नाम 'अम्बर' रखा गया ।

सन् 1036 से 1727 तक अम्बर कछवाहा राज्य राजधानी रही । बाद में जयसिंह जयपुर नगर बसाकर राजधानी वहां ले गये । वे थे राजा पाजवान देव और उनके प्रसिद्ध पुत्र राजा मानसिंह प्रथम जो कि मुगल सम्राट अकबर के नौ रत्नों में से एक थे । अम्बर के किले के खंड़हरों में नरसिंह जी का मन्दिर था, जिसके बारे में यह कवित्त प्रसिद्ध है :-

जब तक नरसिंह देहली में ।
तब तक राज हथेली में ।।

महारानी साहिबा लिखती है कि बड़ा आश्चर्यजनक सत्य है कि जैसे ही नरसिंह जी की मूर्ति अम्बर के किले से चुरा ली गई उसी समय जयपुर स्टेट का भारत में, सन् 1949 में, विलय हो गया। इस पुस्तक में कहीं भी यह वर्णन नहीं मिला कि कछवाहे राजकुल के लोग राजपूत थे । उनका उद्‌गम जैसे प्रारम्भ में कहा गया है अयोध्या के रामचन्द्रजी के पुत्र कुश से है और वे सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं ।

जिस प्रकार महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक ने 'शिवाजी जयन्ती' तथा "गणेशोत्सव" को सार्वजनिक रूप से मनाने का प्रचलन करवाकर, वहां सब लोगों में एकता स्थापित की, उसी प्रकार बंग-भंग (Partition of Bengal) के एकदम बाद विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने बंगाल के हिन्दू और मुसलमानों को कहा कि, 16 अक्टूबर 1905 को एक धर्म वाला सार्वजनिक स्थल पर दूसरे धर्म वाले के हाथ पर राखी बाँधकर, स्नेह पूर्ण वातावरण में रक्षा-बन्धन पर्व मनाये, और लोगों ने ऐसा ही किया । राखी के रेशमी धागों ने दो कौमों, हिन्दुओं और मुसलमानों को, एक दूसरे के पास ला दिया और फिर एक दूसरे की सुरक्षा उनका कर्तव्य बन गया ।

बंगाल का विभाजन पूरे देश में नवचेतना और जागृति ले आया । सब लोग गंगा (हुगली नदी) में नहा-नहाकर बन्देमातरम् का जयघोष करते हुये, कलकत्ता की सड़कों पर लम्बे-लम्बे जलूस निकालते थे । उस समय के जन-प्रिय नेता श्री सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी (जिन्हें उनके नाम एवं गुणानुसार लोग बड़े प्यार से Surrender Not Bannerjee भी कहा करते थे) काजी नजरूल इस्लाम और देशबन्धु श्री चितरंजन दास आदि राष्ट्रीय नेता कलकत्ता महानगरी की सड़कों पर उन लम्बे-लम्बे जुलूसों की अगुआई करते थे । बंगालियों ने इस प्रकार सिद्ध कर दिखाया कि हिन्दू और मुसलमानों को अंग्रेज हठधर्मी सरकार, कम से कम बंगाल में और उस काल में एक दूसरे से जुदा करने में पूर्णतः असफल रही ।

मैकाले ने जहाँ अपने मिनट में लिखा था - "हमें अभी एक ऐसे वर्ग का निर्माण करने में पूरी ताकत लगा देनी चाहिए, जो हमारे और उन करोड़ों के बीच संवाद बना सके, जिन पर हम शासन करते हैं, ऐसे लोगों का वर्ग जो खून और रंग से तो भारतीय हों, लेकिन अपनी रुचियों, विचारों, नैतिकता और बुद्धिमत्ता में अंग्रेज हों ।" पर मैकाले का यह सोचना और उसके क्रियान्वयन में एक शिक्षा प्रणाली का लागू करवाना भी बंगाली बन्धुओं ने गलत सिद्ध कर दिखाया । अंग्रेजों द्वारा स्थापित ऐसे विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में उन्होंने शिक्षा तो जरूर प्राप्त की, पर कुछेक काली भेड़ों को छोड़कर ज्यादातर यह शिक्षित वर्ग राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत था । और ये वे लोग थे, जिन्होंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद को ताबूत में बन्दकर अधिकाधिक कीलें उस पर ठोंक-कर उन अंग्रेजों को जो बजबज और हुगली नदी के मार्ग से इस देश में व्यापारी बनकर घुसे थे, उनके ताबूत को,

सन् 1947 के अगस्त माह में "गेट वे आफ इण्डिया" बम्बई से उनके मादरे-वतन इंगलैंड जल-मार्ग से रवाना कर दिया । मैकाले की शिक्षा-प्रणाली पर आधारित खोले गये उन अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाये जाने वाले स्कूलों, विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों से पढ़कर निकले बंगालियों ने अपनी जाति, प्रदेश और देश का नाम हर क्षेत्र में ऊँचा ही किया है । एक मार्के की बात यह भी है कि उन शिक्षित बंगालियों के घर पर आप उन्हें अपनी मातृभाषा बंगाली के समाचार पत्र-पत्रिकायें आदि पढ़ते देख सकते हैं पर हिन्दी भाषी क्षेत्र का प्रबुद्ध वर्ग अपनी मातृभाषा के समाचार पत्र और पत्रिकाओं को बहुत कम पढ़ता नजर आयेगा । और उनके घर हिन्दी समाचार पत्र-पत्रिकायें मिलना ही दुर्लभ है ।

भारत में अंग्रेजों का शासन तन्त्र

ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से भारत की सत्ता जो अपने हाथ में ली । अपने आधिपत्य वाले क्षेत्र को, रियासतों और रजवाड़ों को छोड़कर, शासन की दृष्टि से जिन प्रान्तों में विभक्त किया था, उनमें बम्बई, बंगाल और मद्रास प्रान्तों को प्रेसीडेन्सी का नाम दिया गया, जिनका शासनाधीश गर्वनर होता था और उसकी कार्यकारिणी समिति में तीन सदस्य होते थे । इनके अतिरिक्त पांच प्रान्त भी बनाये गये थे । जिनके नाम प्रारम्भ में थे (1) उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त (2) उत्तरी पश्चिमी प्रान्त (3) पंजाब प्रान्त (4) उत्तरी प्रान्त और (5) मध्य प्रान्त । इन प्रान्तों के शासनाधीश लेफ्टि० गर्वनर थे । और उनकी सहायता के लिये चीफ कमिश्नर होते थे, जिनकी नियुक्त गर्वनर जनरल ऑफ इण्डिया द्वारा होती थी । गर्वनर जनरल को ब्रिटिश गवर्नमेंट अपने क्राउन की स्वीकृति से किसी अंग्रेज को नियुक्त कर अपनी ओर से शासन करने भारत भेजती थी । प्रेसीडेंसी सरकारों के प्रान्तीय सरकारों से अधिक अधिकार होते थे । प्रत्येक रियासत और रजवाड़ों में एक अंग्रेज आफीसर, पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त किया जाता था ।

CHAPTER XI - CASTE, TRIBE, AND RACE

SUBSIDIARY TABLE 1

Census of India, Report 1911, Vol. I, Part I
Variation in Certain Main Castes Since 1891

Sl. No.	Caste	Total Number of Persons Enumerated			Remark
		in 1911	in 1901	in 1891	
1.	Agarwal	10,19,698	5,57,596	3,54,177	Earlier
2.	Ahir	95,08,486	980,6,475	10,3,92,542	Under
3.	Baniya	11,25,517	28,98,126	31,89,666	Baniya
4.	Brahman	1,45,98,708	1,48,93,258	1,48,21,732	
5.	Dhobi	20,74,405	20,16,914	20,39,743	
6.	Gadariya	13,68,990	12,72,410	12,91,830	
7.	Gujar	21,90,198	21,03,023	21,71,627	
8.	Jat	69,64,286	70,86,898	66,88,735	
9.	Kahar	18,38,698	19,70,825	19,43,155	
10.	Kamma	11,26,531	9,75,374	8,51,851	
11.	Kayastha	21,78,390	21,49,331	22,39,810	
12.	Koiri	17,66,796	17,84,841	17,35,431	
13.	Kori	9,17,820	12,04,678	11,87,613	
14.	Kumhar	34,25,815	33,76,318	33,16,488	
15.	Kunbi	45,12,337	37,04,578		
16.	Kurmi	37,35,651	38,73,560	1,05,31,300	
17.	Lodha	17,32,230	16,63,354	16,74,098	
18.	Mal	21,35,230	18,63,908	13,65,621	
19.	Mal	20,70,372	19,15,712	18,76,211	
20.	Maratha	50,87,436	50,09,024	33,24,095	
21.	Rajput	94,30,095	37,12,156	1,04,24,424	
22.	Vakkalinga	15,07,193	13,92,375	13,60,558	

Note : 1. In the above table only those castes have been shown which have a strength of about a million and upwards. Total population of India as a whole was about 30 crores.

2. Total of Kamma, Koiri, Kunbi, Kurmi, Mal, Maratha & Vakkalinga given above is 2,29,95,705 (2 Crores 29 Lakhs, 95 Thousands 7 Hundreds and Five in the year 1911. In the August month of the Year 1994 same population of present India is about 90 crores 64 lakhs. In the same proportion one can visualise the corresponding growth in the total population of Kurmis and its allied sub castes.

पाँचवाँ अधिवेशन

बैरिस्टर बी० नागप्पा, सबार्डिनेट एवं असिस्टेंट सेशन जज बंगलौर तथा मेम्बर मैसूर लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभापतित्व में महासभा का पाँचवां अधिवेशन 28 से 30 सितम्बर 1909 को चुनार, जिला मिरजापुर यू० पी० में सब प्रकार से सफलतापूर्वक आनन्दमय एवं उत्साहपूर्ण बातावरण में सम्पन्न हुआ । इस अधिवेशन में पंजाब, हैदराबाद मध्यप्रांत, संयुक्त प्रान्त, बिहार आदि अनेक प्रान्तों से काफी संख्या में प्रतिनिधिगण् उपस्थित हुये थे। पाप-नाशिनी गंगाजी के पवित्र निर्मल तट पर, चुनार के प्राचीन-ऐतिहासिक सुदृढ़ दुर्ग के निकट, विशाल पंडाल निर्माण कराकर यह अधिवेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ । इस अधिवेशन में पंजाब, हैदराबाद, मध्यप्रांत, संयुक्त प्रान्त, बिहार आदि अनेक प्रान्तों से काफी संख्या में प्रतिनिधिगण् उपस्थित हुये थे ।

इस अधिवेशन की विशालता तथा कुरमी समुदाय का अपूर्व उत्साह और आत्मीयता देखकर तथा देश के विभिन्न प्रान्तों के कुरमी प्रतिनिधियों के सम्मिलित होने से आत्म विभोर होकर अध्यक्ष जी ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की । अपने अध्यक्षीय भाषण में अपने उद्गार प्रकट करते हुये उपस्थित स्वजनों को अंग्रजी में बताया :- " Our Community forms nearly 1/16th of the entire population of India and is the largest revenue paying class in the country. I feel proud I am born a Vokkaligar Kurmi and I think our Community is not in need of any certificates to prove its respectability. We are, as we are, a very important section of Hindus, but being backward in education and sub-divided into several sub-sects we have ceased to be a power in the land. Our first and most important duty is therefore to feel, as our secretary Babu Devi Prasad Singh Choudhury has expressed in our Conference, that all the true kurmis by whatever sur-names they might be called and to whatsoever sub-divisions they might belong and which so ever parts of India they might be living in, are one and the same race. Though some of us are strangers in language, we are still bound to unite as our origin, hopes and aspirations are one and the same"

(हिन्दी रूपान्तर) : " हमारी जाति भारतवर्ष की सम्पूर्ण जनसंख्या का 1/16 वां भाग है । और यह देश की सबसे अधिक मालगुजारी ओर भूमि-लगान देने वाला समुदाय है । मुझे गर्व है कि मैं वक्कीलगर कुरमी हूँ । मैं समझता हूँ कि हमारी जाति को अपनी सम्माननीयता सिद्ध करने के लिये, किसी से प्रमाण-पत्र लेने की आवश्यकता नहीं है । हम लोग जो हैं, सो हैं, और चाहे जिस नाम से भी जाने जाते हैं, परन्तु सब बृहद् कूर्मिक्षत्रिय समाज के महत्वपूर्ण अंग हैं, किंतु शिक्षा में पिछड़े तथा अनेक वर्गों में बटे होने के कारण देश में हमारा अस्तित्व नगण्य हो गया हे । अतः हमारा सबसे पहला और अहम् कर्तव्य यह है कि हम सब अनुभव करें, जैसा कि पिछले सम्मेलन में हमारे मंत्री श्री देवी प्रसाद सिंह जी चौधरीनेकहा था कि हम सभी सच्चे कुरमी, चाहें वे किसी भी नाम से जाने-पहचाने जाते हों, एक हैं और समान हैं, चाहें हम भाषाओं के बोल-चाल में एक दूसरे के लिये अपरिचित हों, फिर भी हमारा संगठित होना अपरिहार्य है, क्योंकि हमारा मूल, हमारी आशाएं और इच्छायें आकांक्षायें एक जैसी तथा समान हैं ।"

श्री नागप्पा ने अपने अंग्रेजी भाषण में आगे कहा :-

" I would strongly advise, you my brothers of the North, to form yourselves into a registered association on the lines of Vokkaligar Sangh. You can have your headquarters at some towns or villages where many of the educated members of our community live. You will then be able to hold monthly meetings and transact any business which tends to

the welfare of the Kurmi Community "

(हिन्दी रूपान्तर) : उत्तर भारत के मेरे भाइयो, मैं आपको जोरदार राय देता हूँ कि स्वयं को वक्कीलिगर संघ के नमूने पर एक पंजीकृत संस्था के रूप में संगठित कीजिये । आप कुछ कस्बों या गावों में जहां अपने समुदाय के बहुत से शिक्षित सदस्य रहते हों अपना मुख्यालय बना सकते हैं, तब आप मासिक बैठकें करने तथा कुरमी समुदाय के निमित्त कोई भी कार्यक्रम करने योग्य हो सकेंगे ।"

दक्षिण भारत में कुरमी संगठन के सम्बन्ध में अध्यक्ष महोदय ने बताया :

"You will be happy to hear that in Southern India two Kurmi Associations have been started with the object of providing facilities for the education of the Kurmi Community. The Vokkaligar Sangh formed on 1st April, 1906, is a registered Association having its head quarter in Bangalore in the Mysore Province. It has a press and weekly paper of its own and under its auspices three Annual Conferences have already been organised.

The other Association is the Social and Educational League of the Reddis of the Bombay Presidency having its head-quarter at Dharwar. A very distingnished member of our community, Mr. C. Ramalinga Reddy, Professor of History in Mysore Maharaja's College, Foundation scholar of St. John's Cambridge, and ex-vice President of Cambridge University Union, presided its second Conference, which met at Devanala in the Bijapur district last year in 1908...

The Vokkaligar sangh is peculiarly fortunate in having as its esteemed Patron His Highness Sri Krishnarajendra Wodeyar Bahadur, G.C.S.I. Maharaja of Mysore, who has always shown an aiding interest in its welfare and has extended to it his gracious sympathy and hearty support........... The present Government of His Highness the Maharaja is also affording whatever assistance it can, in order to help the Sangh to fully realise its object".

(हिन्दी रूपान्तर) : आपको यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि दक्षिण भारत में कुरमी जाति के लोगों को शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने के उद्देश्य से कुरमियों के दो संगठन स्थापित किये जा चुके हैं । वक्कीलिगर संघ का गठन 1 अप्रैल 1906 को हुआ यह एक पंजीकृत संस्था है, जिसका मुख्यालय मैसूर प्रान्त के बैंगलौर शहर में है । इसकी अपनी मुद्रण व्यवस्था और निकलने वाला साप्ताहिक पत्र है । इसके तत्वावधान में अब तक तीन सम्मेलन आयोजित किये जा चुके हैं ।

दूसरा संगठन सामाजिक एवं शैक्षिक लीग बम्बई प्रसीडेन्सी के रेड्डीजनों का है । जिसका मुख्यालय धारवाड़ में है । हमारे जाति के एक बहुत प्रतिष्ठित सदस्य, श्री. सी. रामालिंगा रेड्डी है जो कि मैसूर के महाराजा कालिज में इतिहास के प्रोफेसर हैं । वे सैन्ट जान्स कैम्ब्रिज के संस्थापक स्कॉलर और कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी यूनियन के उपप्रधान रहे हैं । उन्होंनें दूसरी कान्फ्रेंस की अध्यक्षता की थी जो कि पिछले वर्ष सन् 1908 में देवानाला, बीजापुर जिले में आयोजित हुई थी ।

वक्कीलिगर संघ विशिष्ट रूप से सौभाग्यशाली है कि इसके परमादरणीय संरक्षक, हिज हाईनस श्री कृष्ण राजेन्द्र वाडियार बहादुर, जी० सी० एस० आई०, महाराजा मैसूर रहे हैं । जिन्होंने सदैव इस संघ के कल्याण में गहरी दिलचस्पी रखते हुये अपनी हार्दिक सद्भावना और सहयोग देने की महती कृपा की । मौजूदा सरकार के हिज हाईनस महाराज से भी, जो कुछ सहायता इस संघ को मिलनी चाहिये, उसे उपलब्ध कराने में वे मदद करते रहे हैं, जिससे यह पूर्णतः अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके ।

अध्यक्ष जी ने यह सलाह भी दी है कि हमें एक दूसरे के दुःख सुख की जानकारी रखना चाहिये, तभी समय पर उसके सहायतार्थ कुछ किया जा सकता है । किसी ने ठीक ही कहा है -

"जा के पाँव न फटी वेवाई , सो क्या जाने पीर पराई"

श्री नागप्पा जी ने आगे कहा - " We Kurmis are the backbone of Indian society, and yet no community is so helpless as ours, because our people are divided into several sub-sects, which are themselves jealous of each other."

(हिन्दी रूपान्तर) : "हम कुरमी लोग भारतीय समाज का मेरुदंड हैं, किन्तु तो भी हमारी जाति से अधिक असहाय कोई और जाति नहीं है, क्योंकि हम लोग अनेक उपजातियों में बंटे हुये है, और एक दूसरे से ईर्ष्या-द्वेष रखते हैं ।"

इस पंचम अधिवेशन का एक महत्वपूर्ण निर्णय था कि अपनी सभा का नाम 'कुरमी सदर सभा' से बदलकर. **"आल इण्डिया कूर्मि क्षत्रिय ऐसोशियेसन"** "All India Kurmi Kshatriya Association" रखा गया, और सभा का पंजीकरण कराने का प्रस्ताव भी पारित किया गया । तदनुसार अधिवेशन के बाद 5 मार्च सन् 1910 ई० को इस एसोशियेसन के अधिकारियों ने नियमावली बनाकर संस्था के स्मरण-पत्र के साथ पंजीकरण कराने हेतु बांकीपुर (बिहार) स्थित कम्पनियों के रजिस्ट्रार के प्रमाण-पत्र संख्या 882, दिनांक 7 मार्च सन् 1910 ई० के अधीन **"आल इण्डिया कूर्मि क्षत्रिय एसोशियेसन"** को इसकी नियमावली सहित पंजीकृत करा लिया गया था । उस स्मरण-पत्र पर एसोशिएसन के पदाधिकारियों का विवरण इस प्रकार दिया गया था :-

अध्यक्ष - बाबू मिथिलाशरण सिंह, बी० ए०, बी० एल० वकील, बांकीपुर (बिहार)

उपाध्यक्ष -	1.	बाबू सजीवन लाल सिन्हा, बी० ए० गवर्नमेण्ट पेन्शनर, बांकीपुर
	2.	सेठ नारायण प्रसाद वर्मा, जमींदार, उन्नाव (उ० प्र०)
	3.	बाबू कोमल चौधरी, बी० ए०, बी० एल०, प्लीडर, बांकीपुर
	4.	बाबू राम प्रसाद सचान, बी० ए० जमींदार, कानपुर (उत्तर प्रदेश)
मंत्री		बाबू बैजनाथ सिंह, हेड क्लर्क, टेलीग्राफ डिपार्टमेन्ट, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
सहायक मंत्री	1.	बाबू मूरत लाल सिन्हा, जमींदार, बांकीपुर (बिहार)
	2.	बाबू शिव गुलाम सिंह, जमींदार, उन्नाव (उत्तर प्रदेश)
	3.	बाबू राम अधीन सिंह ठेकेदार, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
	4.	बाबू डोरी लाल, मुख्तार, पीलीभीत (उत्तर प्रदेश)
कोषाध्यक्ष		बाबू राम औतार शरण सिन्हा, जमींदार, बांकीपुर (बिहार)
लेखा-निरीक्षक	1.	बाबू केशव प्रसाद सिन्हा, दीनापुर (बिहार)
	2.	बाबू दीप नारायण सिंह, जमींदार, चुनार जिला मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश)
	3.	बाबू राम अनुग्रह सिन्हा, एम० ए०, जमींदार, बांकीपुर (बिहार)
बैंकर -		बैंक ऑफ बंगाल

सदस्यगण

1. बाबू जनकधारी लाल, हैड मास्टर, ऐंग्लो संस्कृत स्कूल तथा वाइस प्रसीडेन्ट, दानापुर म्युनिसिपैलिटी दानापुर (बिहार)
2. बाबू रणजीत सिन्हा, मुख्तार, बांकीपुर (बिहार)
3. चौधरी बैजनाथ प्रसाद सिन्हा, जमींदार, गांव एखलासपुर, भभुआ (बिहार)
4. बाबू राम बदन सिन्हा, भभुआ के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, ग्राम एखलासपुर, भभुआ (बिहार)
5. बाबू शिव प्रसाद सिन्हा, जमींदार ग्राम मुझन्दा, डाक गोह, गया (बिहार)

6. बाबू प्रकाश सिन्हा, जमींदार गांव बेरौली, बिगहा, डाक हसपुरा, गया, (बिहार)
7. बाबू तुलाराम बी० ए० तहसीलदार, ग्राम मिम्भोरी, डाक कुनरा, रायपुर (म० प्र०)
8. चौधरी गोकुल प्रसाद सिन्हा, जमींदार, गांव कान्ता, डाक सईदरजा, वाराणसी
9. बाबू जंग बहादुर सिन्हा मुख्तार, हाजीपुर, मुजफ्फरपुर (बिहार)
10. बाबू जयजयराम जमींदार, महाजन, गांव लिजुरूआ, डाक सेमरा, गोरखपुर (यू० पी०)
11. बाबू हीरा लाल सिन्हा, जनरल मर्चेन्ट, अनारकली, लाहौर (अब पाकिस्तान)
12. बाबू दीप चन्द सिन्हा, जमींदार, गांव देहली, डाक मूसानगर कानपुर (उत्तर प्रदेश)
13. बाबू देवी प्रसाद सिन्हा, उपदेशक, कुर्मी क्षत्रिय सभा, गांव रुम्हई, उन्नाव (यू० पी०)
14. मास्टर बाबू लाल, जमींदार द्वारा बाबू जवाहर लाल पेन्शनर इलाहाबाद (यू० पी०)
15. राय बिहारी लाल साहेब, ठेकेदार व मिल-मालिक हैदराबाद, लखनऊ (यू० पी०)
16. ठाकुर बल्देव सिन्हा, जमींदार, ठेकेदार गांव सफीपुर, बाराबंकी (यू० पी०)
17. बाबू गुरप्रसाद, ठेकेदार, मिल-मालिक, हैदराबाद, लखनऊ (यू० पी०)
18. ठाकुर राम सिन्हा, जमींदार, गांव पतमऊ, डाक सत्रीख, बाराबंकी (यू० पी०)
19. ठाकुर बृज मोहन सिन्हा, ठेकेदार, चांदगंज कलां, लखनऊ (यू० पी०)
20. बाबू शिव दयाल सिन्हा, चांदगंज खुर्द, लखनऊ (यू० पी०)
21. बाबू बदलू राम ठेकेदार, कुतुबपुर, लखनऊ (यू० पी०)
22. लाला बैजनाथ ठेकेदार, हसनगंज लखनऊ (यू० पी०)
23. बाबू नन्दलाल भूतपूर्व अधीक्षक, लखनऊ-चुंगी, गणेशगंज लखनऊ (यू० पी०)
24. बाबू रघुनन्दन सिन्हा, व्यापारी, ठेकेदार, पूर्णिया (बिहार)
25. बाबू मित्र लाल, कोयला व्यापारी, मीठापुर, पटना (बिहार)
26. बाबू राम चेत सिन्हा, मंत्री कुर्मी क्षत्रिय सभा, गोरखपुर (यू० पी०)

इस संस्था का हिन्दी में "समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा" के नाम से उल्लेख किये जाने लगा था। उन्होंने इलाहाबाद या काशी में एक छात्रावास स्थापित करने की सलाह दी।

वक्कलिगर संघ और इसके संरक्षक महाराजा मैसूर

वक्कलिगर संघ का संक्षेप में विवरण अध्यक्ष बैरिस्टर बी० नागप्पा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में दे ही दिया था। धारवाड़ शहर में वक्कलिगर छात्रों के लिये छात्रावास खोला गया। उसके मंत्री श्री के० एच० रमैया मनोनीत हुये थे। वक्कलिगर संघ के कार्य-कलापों में तथा जातीय अन्य गतिविधियों के क्रियान्वयन में महाराजाधिराज मैसूर, हिज हाईनेस सर कृष्ण राजेन्द्र वाडियार बहादुर का उसकी सफलता हेतु उस संस्था पर वरद्-हस्त रहा।

पाठकगण् मैसूर के वाडियार राज परिवार का इतिहास भी संक्षेप में जानना पसन्द करेंगे। सन् 1608 ई० में मैसूर के राजा वाडियार ने श्री रंगापटन (Sri Rangpatan) के दुर्ग को भी विजय कर लिया और विजयनगर के साम्राज्य से विधिवत मान्यता प्राप्त कर ली। तत्पश्चात् इस परिवार के एक के बाद एक अनेक महाराजा होते गये। सन् 1762 में महाराजा मैसूर के एक सिपाहसलार हैदर अली ने उनके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। और तत्कालीन महाराजा को कैद में डालकर स्वयं मैसूर का शासक बन गया। हैदर अली के बाद उसका बेटा टीपू सुल्तान मैसूर की गद्दी पर बैठा। पूर्व वाडियार महाराजा की विधवा महारानी लक्ष्मीम्मान्नी बड़ी साहसी तथा दूरदर्शी



The Maharajah of Mysore

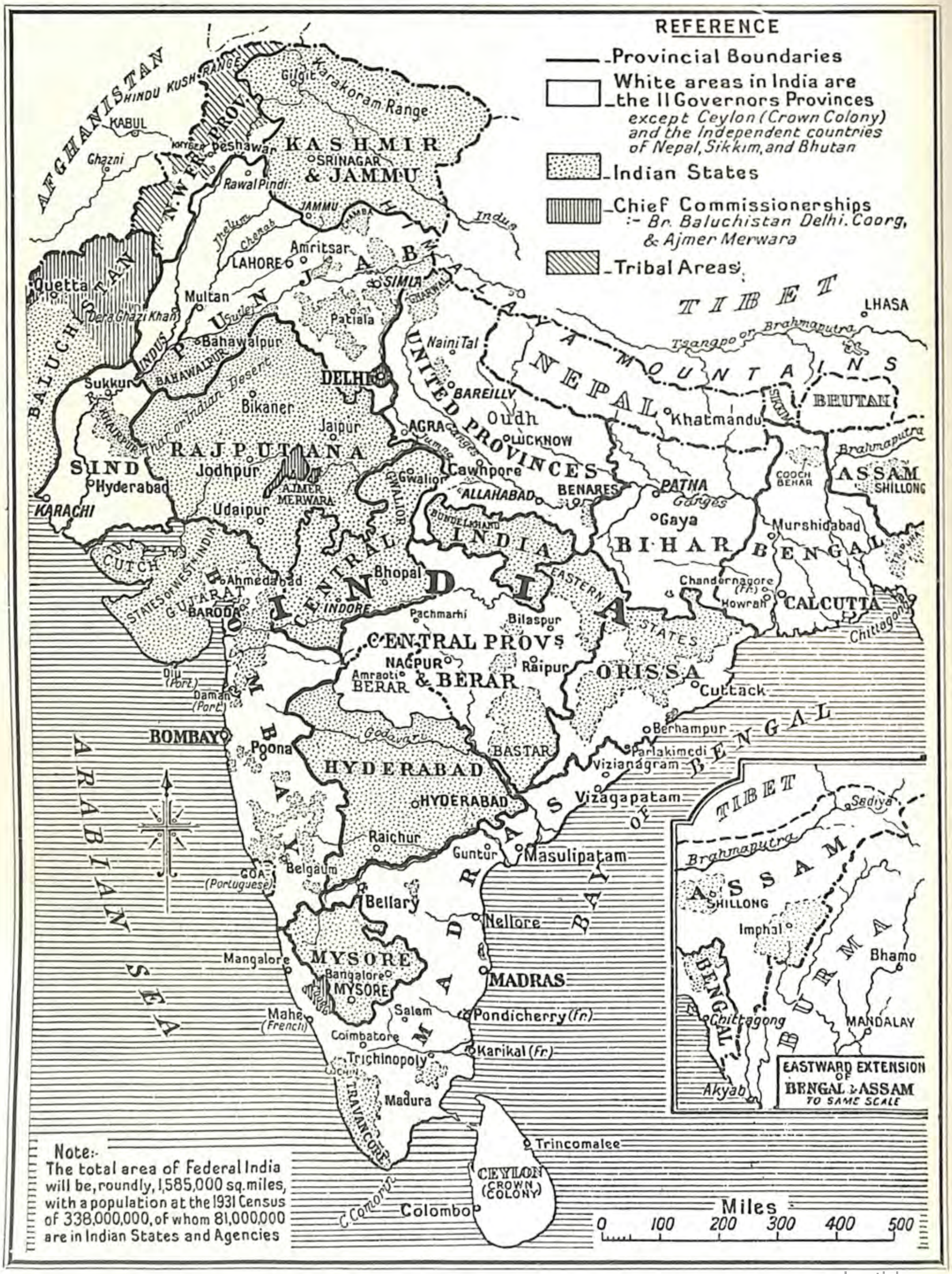


The Maharajah Gaekwar of Baroda



The Maharajah of Gwalior

POLITICAL MAP OF INDIA



थी और उन्होंने अंग्रेज तथा अन्य तत्कालीन शक्तियों को भी गुप्त सम्पर्क सूत्रों द्वारा सूचित करते हुए अपनी प्रजा पर होने वाले टीपू सुल्तान के अत्याचारों को समाप्त करने और वाडियर राज-परिवार को उनका छीना गया राज्य पुनः दिलवाने के लिये समुचित प्रयास करती रहीं, जिसका उल्लेख डा० लुईस राइस ने मैसूर गजट में बिस्तार से किया है ।

टीपू सुल्तान ने शान्तिप्रिय मैसूर राज्य को रणभूमि में बदल दिया था । रंगनाथ के मन्दिर के आस-पास भाग के जान बचाकर आये हुये हजारों लोग आ बसे थे {पाठकों ने टेलीविजन पर "Sword of Tippu Sultan" धारावाहिक कथा देखी है उसमें तथा वास्तविक इतिहास में काफी अन्तर है, अतः उससे यहां भ्रमित न हों, अच्छा हो कि वे मैसूर का उस समय का इतिहास पढ़ लें ।} उन्हें निर्दयता से मारा काटा गया और टीपू की फौज द्वारा मैसूर वासियों को शहर की सड़कों पर घसीट-घसीट कर अपमानित किया गया कुछ को तो हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया । जिन्होंने घबड़ाकर इस्लाम मजहब कबूल कर लिया, उनकी जान बख्श दी गई । कुछ को बंगलौर शहर के निकट ऊंची नन्दी पहाड़ियों (Nandi Hills)से ढ़केल कर मरवा डाला गया । उन पहाड़ी चोटियों को आज भी टीपू ड्राप (Tippu Drop) कहा जाता है (लेखक एम० ए० श्रीनिवासन् -"आफ दि राज, महाराजा एण्ड मी' पृष्ठ 10, प्रकाशक रविदयाल, दिल्ली, सन् 1991 ई० - श्रीनिवासन अन्तिम मैसूर महाराजा के अन्तिम प्रधान दीवान पद पर कार्य कर चुके थे और वे ग्वालियर राज्य के दीवान भी रहे थे आदि-आदि ।)

टीपू सुल्तान की अंगेजी फौज से कई लड़ाइयां हुई, कई संधि-पत्र भी लिखे गये पर अन्त में 4 मई 1799 ई० को श्री रंगापटन के किले पर अंग्रेजों से उसका घमासान युद्ध हुआ जिसमें टीपू सुल्तान हारा और मारा भी गया । इस युद्ध से पूर्व महारानी साहिबा अपने प्रधान के साथ ब्रिटिश गर्वनर से मद्रास जाकर मिल चुकी थी तथा सन् 1782 ई० में एक सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये गये । उसमें महारानी को मैसूर राज्य अंग्रजों की मदद से पुनः प्राप्त करने के बचन का उल्लेख था । इस प्रकार मैसूर राज परिवार की महारानी लक्ष्मीम्मान्नी की दूरदर्शिता तथा समुचित सतत् प्रयासों से सन् 1799 को पुनः पूर्व वाडियार महाराजा के वंशजों को मैसूर राज्य की गद्दी वापिस मिल गयी ।

पहले महाराजा कृष्णाराजा वाडियार द्वितीय और उनके पश्चात् कृष्णाराजा वाडियार तृतीय मैसूर की गद्दी पर बैठे, सन् 1918 में श्री कृष्णाराजा वाडियार चतुर्थ महाराजा थे और जिस समय सन् 1909 में चुनार (मिरजापुर) में समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा का पंचम अधिवेशन वैरिस्टर श्री वी० नागप्पा की अध्यक्षता में हुआ, वे ही मैसूर के महाराजाधिराज थे । इनका कोई पुत्र न हुआ । अतः इनके जीवनोपरान्त श्री जयचामराज वाडियार मैसूर के नये महाराजा बने । जिस समय सरदार पटेल के आग्रह पर मैसूर राज्य का भारतीय संघ में विलय हुआ, वे ही अन्तिम महाराजा थे । जिन्होंने विलय के प्रपत्रों पर हस्ताक्षर कर अपनी स्वीकृति प्रदान की।

कृष्ण भगवान का देह-रंग श्याम कहा गया है, उसे नील मेघश्याम रंग भी कहा गया है । इस रंग विशेष को कन्नड़ भाषा में चामा (Chama) शब्द से वर्णन किया जाता है । उतः मैसूर के वाडियार महाराजाओं के नामों में "चामराज" उपर्युक्त अर्थ के कारण प्रयोग हुआ था ।

जैसा कि महासभा के पंचम अधिवेशन में अध्यक्ष श्री बी. नागप्पा ने वक्कीलिगंर संघ की गतिविधियों पर प्रकाश डाला था और बताया था कि महाराजा मैसूर स्वयं वक्कीलिगर जाति के होने के कारण उनकी या पूर्व अथवा बाद के महाराजाओं की भी इस संघ पर सदा कृपा दृष्टि बनी रही । इस संघ ने भी अपनी स्थापना के 97 वर्ष पूरे कर लिये हैं ।

वक्कीलिगरों को पिछड़े वर्ग के आरक्षण हेतु क्रीमीलेयर (Creamy Layer)

अब सन् 1993 में, कर्नाटक राज्य में वक्कीलिगर लोगों की सामाजिक स्थिति ऐसी रही है कि उन्हें आरक्षण के अर्न्तगत पिछड़ी जातियों की सूची में रखा गया था । पर चिन्नप्पा रेड्डी कमीशन की हाल की पेश की गयी

रिपोर्ट में वक्कीलिगर के एक बड़े वर्ग की पहचान कर ली गई, जिसे पिछड़ी जाति की चिकिनी परत (Creamy Layer) के आधार पर उस सूची से हटाने का सुझाव कर्नाटक सरकार को दिया है, जिससे उपरोक्त रिपोर्ट के विरोध में वक्कीलिगर लोगों में बेचैनी और प्रतिकूल प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है । मैसूर राज्य में बाद में उसके कर्नाटक प्रदेश के रूप में गठन होने के बाद भी वक्कीलिगर कूर्मि बन्धुओं को अपने हितों के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा है, उसका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है :-

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात तथा पुराने मैसूर राज्य में, फिर उसके कर्नाटक प्रदेश में भाषीय आधार पर पुर्नगठित होने के तुरन्त बाद तक वहां के सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में सन् 1960 के दशक के अन्त तक सर्वाधिक वर्चस्व वक्कीलिगरों तथा उसके बाद द्वितीय लिंगायत जाति के हिन्दुओं का रहा ।

उत्तरी भारत की तरह दक्षिण भारत में भी जातिगति-विज्ञान (Caste Dyanamics) वहां के राजनैतिक जीवन में महत्वपूर्ण कारक है । तमिलनाडु और कर्नाटक में और भी महत्वपूर्ण है, लेकिन आन्ध्र प्रदेश, केरल भी इस बात में पीछे नहीं है । आन्ध्र प्रदेश में कम्मा (Kammas)लोग अपने अधिकारों तथा हितों के लिये जागरूक और संघर्षरत हैं, उसी प्रकार पुराने मैसूर राज्य में तथा तब अन्य अंचलों का उसमें विलय करके वर्तमान कर्नाटक प्रदेश बना जहां जाति तत्व ने सदैव प्रमुख भूमिका अदा की है, जिनमें वक्कीलिंगा (Vokkalingas), लिंगायत (Lingayats) तथा बाद में अन्य पिछड़े वर्ग के लोग भी शक्ति परीक्षा में मुख्य प्रतिद्वन्दी रहे हैं ।

जाति आधारित राजनीति का श्री गणेश मद्रास प्रसीडेन्सी में सन् 1906 में हुआ, जब रामास्वामी मुदालियर, पी.टी. राजन और गुरुवा रेड्डी ने जस्टिस पार्टी का गठन किया, जो कि ब्राह्मणवाद के विरोध में आन्दोलन के रूप में उभरी । तब तक ब्राह्मण लॉबी 3 प्रतिशत से अधिक अनुपात में न थी किन्तु उसका प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता था । यहां तक कि मैसूर राज्य के वाडियार राजवंश के महाराजाओं के अधिकतर दीवान तक भी तमिल ब्राह्मण ही हुये थे । समाज के ब्राह्मणों द्वारा शोषण और दोहन के विरुद्ध आन्दोलन बल पकड़ता गया । जिसका संचालन उस राज्य में वालाकृष्णप्पा और माध्यवाप्पा संचालित करते रहे । मैसूर राज्य में सन् 1948 से 1956 के बीच जो तीन मुख्यमंत्री थे वे उपर्युक्त आन्दोलन के फलस्वरूप वक्कीलिंगा जाति से चुने गये, वे थे के. सी. रेड्डी, हनुमन्तय्या तथा काडीडल मन्जाप्पा । पर ये तीनों मैसूर राज्य के दौरान बने थे । कर्नाटक प्रदेश का गठन इसके बाद में हुआ था ।

आज जबकि बीसवीं सदी को सिमटने में मात्र छः वर्ष शेष बचे हैं । कर्नाटक में जो अधिकार और पद अब तक ब्राह्मण हथियाये हुये थे उनके विकल्प में इस सत्ता-संघर्ष में मुख्यतः तीन अब्राह्मण जातियां आपस में जूझ रही हैं वे हैं वक्कालिंगा, लिंगायत तथा तथाकथित अन्य पिछड़ा वर्ग । पिछड़े वर्गों के सर्वाधिक गरीब, दलितों ने सन् 1957 में एकत्रित होकर, देवराज उर्स के नेतृत्व में अपनी आवाज प्रथम बार बुलन्द की और उन्हें सफलता मिली । व्यवसाय से चिकित्सक और सर्जन डा० यस० भीमाप्पा कर्नाटक की पिछड़ी जातियों के विशेषज्ञ समझे जाते हैं । उनका मत है कि देवराज उर्स स्वयं उन दस हजार सशक्त अरसु (Arsu) क्षत्रियों की उपजाति से ही थे, जिसमें से ही कहा जाता है मैसूर राजवंश के वाडियार भी आये । इस पुस्तक में जिक्र किया गया है कि मैसूर महाराज वक्कलिंगर संघ के संरक्षक अध्यक्ष रहे थे । इससे ज्ञात होता है कि देवराज उर्स और उपजाति अरसु क्षत्रिय व वक्कालिंगा लोग सब एक ही जाति के हैं ।

कर्नाटक के इतिहास के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वहां लगातार 12 वर्ष तक, सन् 1969 तक लिंगायतों का कांग्रेस पार्टी के शासन पर वर्चस्व रहा है, उसे देवराज उर्स ने ऐतिहासिक कांग्रेस पार्टी विभाजन द्वारा भंग किया । तब तक लिंगायतों में जो मुख्यमंत्री रह चुके थे, वे थे निजलिंगप्पा (दो बार) वी० डी० जट्टी, एस० आर० कान्ती और वीरेन्द्र पाटील । पर सन् 1972 में देवराज उर्स भारी बहुमत से कर्नाटक के मुख्यमंत्री बने । उससे पहले वे प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे ।

लिंगायतों की शिकायत है कि देवराज उर्स ने कई तरह के परिवर्तन कर कर्नाटक प्रदेश में अनेक वर्षों

से लगातार चले आ रहे लिंगायतों का वर्चस्व समाप्त कर दिया । पिछड़े वर्गों के हितों के लिये सिफारिशें करने के लिये पहले आयोग का गठन उन्होंने ही करवाया । जो कि पिछड़े वर्गों के हेवनूर आयोग (Havnoor Commission for Backward Classes) के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस आयोग ने सन् 1975 में अपनी रिपोर्ट कर्नाटक सरकार को पेश की जिसका राज्य में सन् 1977 से क्रियान्वयन किया गया । इस आयोग ने कई मानों में पिछड़े वर्गों के आन्दोलन में अपना नाम अमर बना लिया है, क्योंकि इसने ही घोषणा की थी की कर्नाटक प्रदेश में ब्राह्मणों और लिंगायतों को छोड़कर और सब हिन्दुओं की जातियां और उपजातियां पिछड़े वर्ग की परिधि के अन्तर्गत आती हैं और वे ही उनके सुझावों और सरकार द्वारा मान्य सिफारिशों के लाभों को पाने के अधिकारी हैं । इस आयोग की रिपोर्ट को एक तरफ तो पिछड़े और दलित वर्ग के हितों को सुरक्षित करने वाली बाईबिल जैसी पवित्र पुस्तक की संज्ञा दी गई और दूसरी ओर यह आरोप भी लगाया कि इस रिपोर्ट के जरिये लिंगायतों का महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनैतिक पदों से पूर्णतः सफाया कर देने का षड़यन्त्र किया गया।

पर सच्चाई यह भी है कि केवल हेवनूर आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप कर्नाटक के हर तालुके में पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिये छात्रावास निर्माण किये गये । देवराज उर्स ने वक्कीलिंगों और पिछड़े वर्ग की अन्य जातियों उपजातियों के लोगों में आपस में भ्रातृ-भाव बढ़ाने की पूरी चेष्टा की तथा लिंगायतों से भी सम्बन्ध सुधारने के बड़े प्रयत्न किये जिससे वे अपनी पिछली बातें मन से निकाल सकें । देवराज उर्स के मुख्यमन्त्रित्व काल में कर्नाटक के वक्कालिंगों के जीवन स्तर में प्रशंसनीय सुधार आये । और उनसे तथा अन्य पिछड़ी जातियों से अनेक विधायक और सांसद चुने जाने लगे जबकि अतीत में ऐसा नहीं होता था । उन्होंने सन् 1978 में चिकमंगलूर से श्रीमती इन्दिरा गांधी को लोकसभा के लिये वीरेन्द्र पाटिल को भारी मतों से हरवाकर लोकसभा में पहुंचाया, पर शीघ्र उनका जादू क्षीण होता गया और श्रीमती इन्दिरा गांधी से भी अनबन हो गई । राजनीति में यह कोई विचित्र बात न थी पर विचित्र बात यह थी कि चिकमंगलूर में अपने विरोधी उम्मीदवार वीरेन्द्र पाटिल को, जो कि कांग्रेस (रेड्डी) से थे उन्हें अपनी पार्टी में लेकर कैबिनेट मंत्री तक बना डाला । इतिहास में देवराज उर्स सदैव कुछ उपलब्धियों के लिये याद किये जाते रहेंगे । वे ही थे जिन्होंने कर्नाटक की राजनीति से लिंगायतों के एकाधिकार को समाप्त किया, वक्कीलिंगों व अन्य पिछड़ी जातियों को हर क्षेत्र में आगे लाये और पहली बार उनके प्रयास से इस जाति के लोग विधायक या सांसद बन सके । यह विचारणीय बात है कि किसी समय कर्नाटक की पिछड़ी जातियों में गिनी जाने वाली लिंगायतों और वक्कालिंगों में विरोध इतना प्रबल क्यों है । ऐसा समझ लीजिये जैसे उत्तर प्रदेश और बिहार में कुरमी तथा यादव जातियां दोनों पिछड़ी हैं पर अनेक स्थानों पर वे एक दूसरे के विरोधी हैं । इस समय कर्नाटक में लिंगायतों तथा वक्कीलिंगों की आबादी मिलाकर कुल जनसंख्या की 28 प्रतिशत से अधिक नहीं आंकी जाती है । पर यह भी सही है कि ये दोनों जातियां एक दूसरे से संपन्न है । लिंगायत वास्तव में वीराशैव्य, अर्थात केवल शिव-उपासक हैं, शिवलिंग और जनेऊ उनकी जातीय पहचान है। 13वीं शताब्दी में धर्म सुधारक बसवाना अथवा वसवेश्वर के द्वारा इस मत को प्रतिपादित किया गया था । जैसे हिन्दू धर्म से जैन-धर्म और सिख धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ । लिंगायत तो एक मत था जिससे आकर्षित होकर अन्यान्य उपजातियां विशेष करके वक्कीलिंगा भी इस नये मत में सम्मिलित हुए । वे मुख्यतः शाकाहारी होते हैं। वे कृषि भूमि के स्वामी और बड़े-बड़े कृषक हैं जो कि सादास (Sadas) कहे जाते है या व्यापारी वर्ग के है जो कि बालजिग्या (Ballgigya) कहे जाते हैं ।

वक्कीलिंगा सामान्यतः हिन्दूधर्मानुयायी है अतः अन्य हिन्दुओं की तरह वे भी शंकर के भक्त हैं । पर वे हिन्दुओं के अन्य देवी देवताओं की भी पूजा स्तुति करते है । जो कि एक पक्का लिंगायत नहीं करता है । ऐसा कहा जाता है कि कभी इन दोनों जातियों मे अधिकतर भूमिहीन जनता थी और ब्राह्मण उस काल में मुख्यतः भूस्वामी थे । जिनकी खेती बाड़ी ये करते थे । भूमि-सुधार कानून द्वारा इन्हें कृषि-भूमि का स्वामित्व प्राप्त हुआ। खेती-बाड़ी में तरक्की करते गये । मैसूर राज्य के अन्तिम दशक तक वक्कलिंगा लोगों ने कृषि, व्यापार, शिक्षा

में तरक्की कर अपनी सबसे मजबूत सामाजिक स्थिति बना ली थी । कर्नाटक प्रदेश बनने से उनकी आबादी का प्रतिशत गिरने से उनका बर्चस्व घटा । उससे मान-सम्मान में कमी आयी । अतः वक्कीलिंगा लोग कर्नाटक प्रदेश बनने से प्रसन्न नहीं हुए । पर फिर भी कर्नाटक के जन-जीवन में वक्कीलिंगा कुर्मी बन्धुओं का एक विशिष्ट स्थान है तथा राजनीति में उनसे पंगा लेने पर बड़े-बड़े महारथियों को राजनीति के रणस्थल में वे धूल चटा चुके हैं। उन्हें शिक्षा में और अधिक तरक्की करनी है, तथा केवल कृषि पर ही निर्भर न रहकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से लाभ उठाते हुये उद्योग तथा अन्यान्य धंधों में महारत हासिल कर अग्रणी लोगों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना होगा ।

इतिहास बताता है कि ईसा की पांचवी-छठी शताब्दी में वर्तमान उत्तर प्रदेश के गंगा तटीय क्षेत्र से अनेक सैनिक, सामन्त किन्हीं तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित होकर दक्षिण भारत में मैसूर के निकटस्थ क्षेत्र में आकर बस गये । ये लोग निश्चित रूप से आर्य कुरमी क्षत्रिय थे । वहां वे 'गंग' कहे जाने लगे । आज भी इतिहास में यह भू-क्षेत्र 'गंगवाड़ी' अथवा 'गंगवारी' के नाम से विख्यात है और मैसूर के वक्कीलिंगर कुरमी समूह में गंगा-देकर नामधारी कुरमी कुल मौजूद हैं जो अत्यन्त प्रतिष्ठित और आदरणीय समझे जाते हैं । वक्कीलिंगर (हिन्दी भाषा क्षेत्र में कुरमी, कुनबी कणबी) काश्तकार अथवा रैयत कहे जाते हैं । इसके अतिरिक्त गंगादेकर भी पाये जाते है। चौधरी दीपनरायण सिंह की पुस्तक "कूर्मि क्षत्रियत्व निर्णय" में गंगवार उपजाति को नहीं दिया गया है । इनका उपनाम 'गंग' है वंश सूर्य एवं गोत्र पाराशर है । 'गंगवार' पहले गंगापारी नाम से ज्यादा प्रसिद्ध थे । तथा अंग्रजों के शासन काल में जनगणना से पूर्व इन्होंने सरकार को लिखा कि उन्हें 'गंगापारी' की जगह 'गंगवार' उपजाति कूर्मि क्षत्रियों से लिखा जाये, तब से ये 'गंगवार' कहे जाने लगे हैं । इनका चन्द्र वंश है तथा कश्यप गोत्र है। श्री शिवराम सिंह अपनी पुस्तक **'कूर्मि-क्षत्रिय इतिहास'** प्रकाशित सन् 1974 के पृष्ठ 49 पर 'गंगवार' के सम्बन्ध में लिखते हैं कि इन कुरमियों का निकास गंगवाने से हुआ अतः वे गंगवार कहलाये ।

बात ऊपर 'गंगादेकर' नामधारी कुरमियों की चल रही थी । इनके बारे में मैसूर स्टेट के जमाने के गजेटियर खंड XVIII पृष्ठ 193 व 194 पर निम्नलिखित विवरण मिलता है ।

The Gangadakar, who form nearly one half of the class are purely Kanarees, found chiefly in the Central and Southern tracts. They represent the subjects of the ancient Gangavans, which formed the nucleus of the Ganga empire. At the present day they are followers, some of Siva and some of Vishnu.

"गंगादेकर, जो कि कुल वर्ग के लगभग आधे हैं शुद्ध कनारी हैं । जोकि मुख्यतः मध्यप्रान्त तथा दक्षिणी पट्टियों में पाये जाते हैं । वे प्राचीन गंगवंश के प्रजागणों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो गंग-सामाज्य के केन्द्रीय तन्त्र के अंग थे । वर्तमान में उनमें से कुछ शैव हैं और कुछ विष्णु के अनुयायी हैं ।"

दिसम्बर 1994 में कर्नाटक प्रदेश में जनतादल सरकार के नव-निर्वाचित मुख्यमंत्री, श्री एच. डी. देवेगौडा वक्कलिगा जाति के हैं और उनके मंत्रिमंडल में इसी जाति के पांच और मंत्रीगण हैं । **कर्नाटक विधानसभा में,** सरकार और विपक्ष को मिलाकर, वक्कलिगा विधायकों की संख्या इस बार पहले से काफी अधिक हो गई है ।

छठवां अधिवेशन

पीलीभीत (यू० पी०) में 25 से 27 दिसम्बर 1910 ई० तक "समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा" का छठवां अधिवेशन बैरिस्टर कोटारी बेंकटराव नायडू की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । पीलीभीत नगर में इस प्रकार दूसरी बार महासभा का अधिवेशन आयोजित हुआ ।

अधिवेशन का सभा-मण्डप, पीलीभीत के वर्तमान मोहल्ला गोपालसिंह (पूर्व नाम इनायतगंज) में उसी स्थान पर बना था, जहां कि सन् 1896 में तृतीय अधिवेशन आयोजित हुआ था । वह अधिवेशन-स्थल, स्वागताध्यक्ष, लाला खूबचन्द के फाटक के नाम से भी जाना जाता है । आजादी के बाद से यह फाटक बाबू डोरीलाल के नाम से भी मशहूर हो गया है, क्योंकि स्व० बाबू डोरीलाल एक प्रख्यात कानूनविद हुये हैं । ओर उनकी हवेली इसी फाटक में है । वे महासभा के पदाधिकारी भी रहे, और उनके दामादों मे एक बिहार के प्रसिद्ध नेता स्व० वीर चन्द पटेल थे । और उन्हीं को ब्याही पुत्री श्रीमती श्यामादेवी पटेल बाद में बिहार विधान परिषद की सदस्या भी रही । पटना की एक सड़क का नाम वीरचंद पटेल है । यह मोहल्ला गोपालसिंह एक स्वजातीय व्यक्ति के नाम पर प्रसिद्ध हुआ, जिनके बारे में कुछ जानकारी इस अधिवेशन के विवरण के अन्त में दी गई है । यह जयसवार कुरमी बहुल मोहल्ला है । ज्यादातर लोग सम्पन्न हैं । इस पुस्तक के लेखक का जन्म-स्थल और पैतृक मकान आदि भी इसी मोहल्ले में, अधिवेशन स्थल के निकट ही है । इस फाटक में खीरी की पूर्व सांसद श्रीमती उषा वर्मा के पिता जी श्री गोविन्दराम भी रहा करते थे । श्रीमती वर्मा अपने बचपन में यहां रही हैं ।

स्वागताध्यक्ष लाला खूबचन्द जी रईस

लाला खूबचन्द की गणना उस सभय के पीलीभीत शहर के सबसे धनाढ्य व्यक्तियों में की जाती थी। उनकी आढ़त थी और उनकी दर्शनी हुंड़ी दूर-दूर के शहरों में भी चलती थीं । वे अनेक गांवों के जमींदार थे। वे बड़े दानी स्वभाव के थे । उनका बनवाया मन्दिर खूबचन्द के नाम से अभी भी शहर के प्रसिद्ध मन्दिरों में से एक है । वे बहुत प्रतिष्ठित जमींदार, आढ़ती और रईस थे और उनके गांव वाले या आढ़त पर आने वाले व्यापारी मुसलमान भी थे । शहर आने पर जब उन्होंने नमाज की असुविधा होते देखी तो मोहल्ला इनायतगंज स्थित अपनी ही भूमि पर उन्होंने अपने पूरे खर्चे से एक मस्जिद हिन्दू बाहुल मोहल्ले में बनवा दी, जो कि आज भी विद्यमान है । लाला खूबचन्द ने महासभा के दोनों अधिवेशनों को मुख्यतः अपने धन से आयोजित करवाया था । उन्होंने अपने पूरे खर्चे पर राजघाट के श्री पण्डित साधू सिंह जी से "कौर्मि वंशावली" लिखवाकर प्रकाशित करवायी, निःशुल्क आयुर्वेदिक औषधालय खुलवाया, जिसमें कीमती से कीमती दवायें भी मरीजों को मुफ्त दी जाती थीं । इन्होंने आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में शोध करवाकर "लाला खूबचन्द आयुर्वेदचिकित्सा" नामक ग्रंथ की रचना करवाकर, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से अपने खर्चे पर प्रकाशित करवाया जो कि वैद्यों के लिये बहुमूल्य ग्रन्थ माना जाता रहा। उन्हीं की प्रेरणा से एक अन्य धनाढ्य वैश्य परिवार पीलीभीत शहर में "श्री ललित हरि आयुर्वेदिक विद्यालय एवं औषधालय" की स्थापना की गई, जहां से हर वर्ष अनेक आयुर्वेदिक डाक्टर पढ़कर निकलते हैं । पीलीभीत के वर्तमान सांसद डा० परशुराम गंगवार भी यहीं से पढ़कर आयुर्वेदी डाक्टर बने हैं । लाला खूब चन्द जी जीवन पर्यन्त ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे । उनकी अपनी कोई सन्तान न थी ।

ऐसे बहुमुखी प्रतिभावाले तथा दरिया-दिल स्वागताध्यक्ष, लाला खूबचन्द जी और उनके सहयोगी लाला बाल गोविन्द तथा उनके पुत्र बाबू बहादुर सिंह आनरेरी मजिस्ट्रेट (जो कि बाद में रायबहादुर और महासभा के अनेक

वर्षों तक उपाध्यक्ष थे ।) बाबू बलदेव प्रसाद, श्री तुलाराम सिंह (इस पुस्तक के लेखक के पूज्य पिताजी), श्री उमाचरन कटियार एडवोकेट, श्री रमाचरन कटियार एडवोकेट, लाला सीताराम, बाबू डोरीलाल मुख्तार, बाबू जंगबहादुर सिंह आदि अनेक स्वजातियों की देखरेख में तथा युवा-कुरमी दल के सदस्यों की सेवा-सहायता से यह अधिवेशन बड़े बृहत् रूप में आयोजित किया गया था । बाहर से दूर-दूर स्थानों से आये हुये प्रतिनिधियों की आवासीय, भोजनादि सभी सुविधाओं का पूरा ध्यान रखा गया था ।

अधिवेशन से पूर्व, अध्यक्ष महोदय को एक खुली बग्घी में बिठलाकर पीलीभीत की मुख्य सड़कों पर से भव्य जलूस निकाला गया । जगह-जगह उनके स्वागत में द्वार बनाये गये थे, स्वजातियों की ओर से मार्ग में अनेक स्थानों पर अल्पाहार और पेय-द्रव्यों का प्रबन्ध किया गया था । जब अध्यक्ष श्री नायडू ने अपना स्थान ग्रहण किया तब तक अधिवेशन का पंडाल खचाखच भर गया था ।स्वागत की औपचारिकता पूर्ण होने के बाद अध्यक्ष महोदय ने अंग्रेजी में भाषण देते हुये उन्होंने कहा :-

" Our Kshatriyas are forming about one 10th of the population of India and paying largest revenue to the Government. I am proud that I am born a Nayudu Kshatriya in an important section of the Hindus named Telanga or Kapu. Our first duty is to unite all of our various divisions into one, our old race of Kshatriya caste as a homogeneous whole, not withstanding the varied differences in language and manners. We form a part and parcel of our one common class and one common religion. These Kshatriyas are scattered all over India known differently :-

1. As Kurmis in Northern India,
2. As Kurmis, Kunbis or Marhatas in Maharastra,
3. As Telanga or Nayudus in the South.
4. As Vokkaligar or Reddis in Mysore,
5 As Patidars in Bombay (then consisting of Maharashtra and Gujrat State).

(हिन्दी अनुवाद) :-

"हमारे क्षत्रिय बन्धु भारत की जनसंख्या का दसवां हिस्सा है । और सरकार को सर्वाधिक मालगुजारी वे ही देते हैं । मुझे गर्व है कि मैंने नायडू क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है, जो कि हिन्दू धर्मावलंबियों का महत्वपूर्ण वर्ग है जिसे तैलंग या कापू के नाम से जाना जाता है । हमारा सर्वप्रथम दायित्व है कि हम इन सब विभिन्न उपजातियों को उस प्राचीन सशक्त जाति में संगठित कर दें, जो कि एक ही क्षत्रिय जाति की सजातीय है । माना कि दृश्य-रूप में हममें भाषा, वेश-भूषा, खान-पान में अन्तर हैं पर मूलतः हम समानधर्मी और समानवर्णी एक ही जाति की अविभक्त इकाइयां हैं । ये क्षत्रियगण देश में सर्वत्र फैले हुये हैं और निम्नलिखित भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं ।

1 जैसे उत्तरी भारत के कुरमी जन,
2 जैसे महाराष्ट्र के, कुरमी, कुनबी, मराठा
3 जैसे दक्षिण के तैलंग या नायडू,
4 जैसे मैसूर राज्य के वक्कलिगर या रेड्डी
5 बम्बई के पाटीदार (बम्बई में तब महाराष्ट्र, और गुजरात सम्मिलित था)

इस अधिवेशन को अपने जीवन का एक अनुपम एवं विचित्र संयोग बताते हुये, अध्यक्ष महोदय ने कहा कि - "मैंने देश-विदेश में अनेक सभायें देखी हैं, परन्तु ऐसे अद्‌भुत अधिवेशन में भाग लेने का सौभाग्य मुझे इस जीवन में प्रथम बार मिला है, जिसमें एक स्थान या एक नगर के नहीं, अपितु सम्पूर्ण देश के कोने-कोने

से महान् कूर्मि जाति के सभी वर्गों के प्रतिनिधिगण सम्मिलित होने आये हैं ।"

माननीय नायडू जी ने जातीय एकता को एकजातीय अनिवार्यता बताते हुये कहा - "बन्धुओं यह मेरी मनोगत उत्कण्ठा रही है कि हमारी विघटित जाति कभी संगठित रूप में, एक ऐसी उपलब्धि बन जाय कि इस प्रकार संगठित होकर हम बिखरी हुई इकाइयों के स्थान पर सशक्त जाति के रूप में जी सकें ।"

बैरिस्टर नायडू के प्रयासों से कुरमी जाति में प्रथम बार स्त्री शिक्षा-प्रसार के लिये व्यापक अभियान, सामाजिक कुरीतियों के निवारण के लिये सामूहिक ठोस योजना बनाकर उस पर कार्यान्वयन किया गया । बैरिस्टर नायडू ने सब उपजातियों में विवाह पर जोर दिया । उन्होंने इस सच्चाई की ओर भी सभी प्रतिनिधियों का ध्यान आकृष्ट किया कि विभिन्न उपजातियों में ईर्ष्या-द्वेष और दुर्भाव फैले हुये हैं, उनको दूर करना है । यह भी सर्वथा सत्य है कि संगठित होने से हमारा समाज सुदृढ़ बन सकेगा और अलग-थलग रहने से हमारी भित्ति ढह जायेगी ।

बैरिस्टर नायडू की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ यह अधिवेशन, न केवल महासभा के लिये एक महान् लक्ष्य प्राप्ति में बहुत सहायक सिद्ध हुआ, अपितु उत्तर और दक्षिण के कुरमी बन्धुओं के मध्य आत्मीयता तथा समीपता स्थापित करने का एक और अत्यन्त प्रेरणापद तथा लाभकारी कदम रहा ।

महासभा में वैतनिक उपदेशक का प्रस्ताव स्वीकृत

इस अधिवेशन की एक उपलब्धि यह भी थी कि प्रथम बार महासभा में वैतनिक उपदेशक रखने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । कन्याओं को भी शिक्षित कराने का निर्णय लिया गया । हाई स्कूल की शिक्षा पूरी करके कालिज शिक्षा के लिये जाने वाले दो श्रेष्ठ विद्यार्थियों को पांच रुपया प्रतिमाह छात्रवृत्ति देने का नियम बनाया गया । एकता, शिक्षा-प्रसार, रूढ़िवादिता तथा सामाजिक बुराइयों को समाज से दूर करना, महासभा के भावी कार्यक्रमों के प्रमुख मुद्दे बन गये ।"

रायबहादुर बाबू बहादुर सिंह

पीलीभीत निवासी, राय बहादुर बाबू बहादुर सिंह, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, वाइस-चेयरमैन पीलीभीत म्युनिस्पिल बोर्ड, दरबारी, रईस ओर जमींदार अपने जमाने के जयसवार कुरमियों में सारे संयुक्त प्रान्त अवध में सुप्रसिद्ध तथा महान व्यक्ति हुये हैं । इनके पिता लाला बालगोबिन्द ओर पितामह लाला उमराव सिंह भी अपने जमाने के माने हुये रईस और जमींदार थे । ये सब पीलीभीत शहर के प्रतिष्ठित नागरिक भी थे । इनके सुपुत्र बाबू रुद्रभानु सिंह, जोकि इस समय लगभग 75 वर्ष के हैं, अनेक वर्षों तक पीलीभीत के प्रथम श्रेणी के आनरेरी मजिस्ट्रेट रहे । इनके ज्येष्ठ पौत्र श्री उदयभानु सिंह, इस समय राजनंदगांव (मध्यप्रदेश) के किसी कालिज के प्रधानाचार्य पद पर कार्यरत हैं, जिसकी उच्चशिक्षा इलाहाबाद विद्यालय से गणित विषय में हुई थी । रायबहादुर, बाबू बहादुर सिंह अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के भी बड़े उत्साही कार्यकर्ता रहे । और वे प्रारम्भ में अनेक वर्षों तक महासभा के उपाध्यक्ष भी रहे । वे आर्यसमाज के बड़े कट्टर समर्थक थे, जिसके कारण 27 अगस्त सन 1927 को रात्रि 8 बजे के समय एक मुसलमान ने उन्हें पीलीभीत शहर की आम सड़क पर गोली मार दी थी । सारे शहर के हिन्दू मुसलमानों ने उनका तहे-दिल से मातम मनाया । यह शहीद होकर कुरमियों के ही नहीं शहर के सारे हिन्दुओं के और मुसलमानों के भी श्रद्धा पुरुष बन गये, जिनका नाम और ख्याति आज भी शहर के बुजुर्ग लोग बड़े गौरव से लेते हैं । अपने जमाने में अंग्रेज ले० गर्वनर से लेकर शहर का हर आफीसर उनकी इज्जत करता था ।

रायबहादुर बाबू बहादुर सिंह के पूर्वजों का इतिहास

आपके पूर्वज महाराजा पृथ्वीराज के शासन काल में दिल्ली में निवास करते थे । उनके पूर्वजों का उस

समय वहां दिल्ली में बड़ा प्रभाव था । उनकी जमीन-जायदाद शहादरे (शाहदारा) में बहुत अरसे बाद तक रही । पृथ्वीराज के शासन काल के बहुत बाद जब मराठों ने देहली पर आक्रमण करना आरम्भ किया, उस समय आपके पूर्वज ने नवाब वजीर (मुगल दरवार के वज़ीर व अवध के नवाब) के समय में देहली छोड़कर अवध में अपना निवास स्थान बनाया । नवाब वजीर ने आपके पूर्वजों को हर प्रकार से मान-मर्यादा रखने में सहायता दी । और वहां (अवध में) आपका परिवार "छटवान" के नाम से प्रसिद्ध हुआ । "छटवान" के नाम से प्रसिद्धि का कारण यह था कि ग्राम सेहगों और समनपुर आदि, जो जिला रायबरेली नें हैं, उसमें छठवें हिस्से की पट्टीदारी आपके परिवार की थी ।

सेहगों तालुका :

राय बरेली जिले में सेहगों का कुरमी तालुका अत्यन्त प्रसिद्ध रहा है । सम्राट अकबर के शासन काल में और उसके पश्चात् यह तालुका बहुत विशाल था । इस तालुके को विनायक राम नामक एक कुरमी द्वारा स्थापित किया गया था । वह विनायक राम कुरमी, सम्राट अकबर का कोई विश्वासपात्र राज्याधिकारी था । सम्राट ने उसे, किसी प्रशासकीय कार्य पर, अवध भेजा था । वहां रहते हुये उसने अपना तालुका स्थापित किया था । उसके पुत्र गजेनसिंह ने पलिया और अपने पिता के नाम पर विनायकपुर बसाया । उनके वंशजों ने तालुके में पूरब गांव तथा खानपुर सम्मिलित करके उसे और भी विशाल बनाया । किन्तु बाद में कुछ लोगों की धोखाधड़ी से तथा तत्कालीन तालुकेदारों की अकर्मण्यता के परिणाम स्वरूप यह तालुका छोटा होता गया । डिस्ट्रिक्ट गजेटियर रायबरेली (सन् 1905 ई०) में लिखा है कि पिछले बन्दोबस्त में चौधरी गौरीशंकर कुरमी के अधिकार में तीन गांव तथा परगना कुम्हरावां में एक पट्टी थी ।

तालुके के स्वामियों ने सन् 1857 के सिपाही विप्लव में सक्रिय भाग लिया था । अतः ब्रिटिश सरकार ने यह तालुका जब्त कर लिया । इस तालुके के अन्य पट्टीदार भी थे । उन्हीं गजेनसिंह के वंशधरों में में से एक ठाकुरसिंह लखनऊ रेजीडेंसी विद्रोह के समय अंग्रेजों की नौकरी में था । उसने अंग्रेजों की बहुत सहायता की । अंग्रेजों ने खुश होकर सेहगों और तीन गांव उसे प्रदान किये । उनके बेटे सीताराम को और वंशजों को अंग्रेजों ने 'वेलीगारद बहादुर' की पदवी दी थी । उनके वंशज श्री सीताराम चौधरी बारादरी, लखनऊ के आंग्ल भारतीय राजा संघ अवध (British Indian Association of Taalukdar of Oudh) के राजमान्य सदस्य थे। रायबहादुर बाबू बहादुर सिंह के पूर्वज वंशधरों ने सन् 1774 ई० में रुहेलों के विरुद्ध नवाब अवध की सहायता की थी । नवाब वजीर (अवध) ने आपके पूर्वजों के इस कार्य से प्रसन्न होकर और लड़ाई में प्रदर्शित उनकी बहादुरी के कार्यों के बदले में उन्हें पीलीभीत में तिजारती रियायतें व अन्य सुविधायें प्रदान की, तब से आपके पूर्वज पीलीभीत में निवास करने लगे । इसके बाद यह प्रान्त अवध राज्य से ब्रिटिश सरकार के अधिकार में आया। सरकार भी आपके पूर्वजों को यथोचित सहायता और सम्मान देती रही । आपके पितामह लाला हरद्वारी लाल थे।

बाबू बहादुर सिंह का जन्म पौष कृष्ण 8 गुरुवार सम्वत् 1834 को हुआ था । बचपन से ही आपका ध्यान विशेष रूप से समाज सेवा और जाति भक्ति की ओर आकर्षित रहा करता था । जिस समय आपके पिताजी, बालगोविन्द सिंह ने सन् 1900 में अवकाश ग्रहण किया म्युनिस्पिल बोर्ड के. मेम्बर हेतु पुत्र बाबू बहादुर सिंह को मनोनीत करा दिया । उस समय वे बरेली कालिज में शिक्षारत थे । सन् 1890 ई० में जब इंगलैंड के युवराज भारतवर्ष में प्रथम बार पधारे थे, उस समय लाला बालगोविन्द सिंह जी भी युवराज के समक्ष मुलाकात के लिये उपस्थित किये गये थे । सन् 1901 में पीलीभीत में जनगणना का काम आपने बहुत अच्छी प्रकार किया । इसी वर्ष में लेफ्टीनेन्ट गर्वनर की घोषणानुसार जिले के बैंकों को कायम करने के कार्य के लिये आप सचिव नियुक्त किये गये । सन् 1904 ई० में सरकार द्वारा आप पीलीभीत के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किये गये और जीवन पर्यन्त रहे ।

आप केवल राज्य कार्यों में ही योग देते हो ऐसा नहीं था, प्रत्युत जाति के उपकार के लिये उन्होंने अपने मुहल्ले के निजी मकान में पाठशाला खोली जो बाद में उन्नति करके एक स्कूल में परिणत होकर राजकीय प्रबन्ध में आ गयी। इससे स्वजातीय तथा अन्य बच्चों को बहुत लाभ हुआ। आप स्थानीय हिन्दू सभा के तथा अनेक संस्थाओं के सभापति थे। अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के आप उपसभापति रहे। महासभा के पीलीभीत में सम्पन्न हुये तीसरे और छठे अधिवेशनों को सफल बनाने में आपका बड़ा महत्वपूर्ण योगदान था। अन्त में सन् 1927 का समय आया। दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्द को एक मुसलमान ने गोली मार दी थी और 27 अगस्त् 1927 को रात्रि 8 बजे इसी तरह रायबहादुर बाबू बहादुर सिंह को पीलीभीत में बलिदान देना पड़ा। शोक में सम्पूर्ण नगर में तथा पास के नगरों व कस्बों में पूर्ण हड़तालें रही ("कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर," अंक अक्टूबर 1929 से साभार संकलित)।

सन् 1857 के सिपाही विप्लव में इनके पूर्वज श्री बालकृष्ण जी ने एक अंग्रेज, श्री ए० ब्रेमनर, सुपरिन्टेन्डेन्ट नहर विभाग, रोहेल खंड़ डिवीजन के परिवार को मौत के मुंह से निकाल कर सुरक्षित अपनी कोठी पर रखा था। उसके प्रमाण-पत्र उनके वर्तमान वंशज श्री रुद्रभानुसिंह जी ने इस लेखक को दिखाये। ये मूल पत्र अंग्रेजी भाषा में हैं, इन प्रमाण पत्रों के कुछ आवश्यक अंश की ज्यों के त्यों, नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं :-

(1) Lala Bal Krishna Sahib,

You have done your best in giving us protection. It is with extreme delight and satisfaction that I give you this letter to testify to the excellent services you have done us and to your loyalty to Government.

(Sd.) A. Bremner
Supdt Canals, Rohild.
Division

Dated 19th September, 1857

2 Extract No. 7 from the statement of Bareilly Loyals (Column 3)

"Gopal singh and Tula Ram, sons of Zanki Ram, Kurmi, and Rais Pilibhit are men of considerable influence in public; it was owing to their exertions that Pilibhit was not plundered, during the first ten days after Mr. Carmichael left. They also rendered great services to the Bremner family and constantly sent letters to Nainital. They also fumished some good men to go out and garrison Leoria in August 1858. The Zamindari of the following villages is, therefore, proposed as a reward to them, subject to payment of revenue now and hereafter in the villages specified below :-

Names of Villages and Acreages/Jama

District	Pergannah	Village	Jama	Date of Expiry of Settlement
Bareilly	Richa	Rujnari	Rs 1360/-	
Bareilly	Richa	Bazpur	Rs. 600/-	1st July 1867
Bareilly	Pilibhit	Luchmanpur	Rs. 301/-	
			Total Rs 2261/-	

Board of Revenue, N.-W.-P.
Allahabad : 3rd September

(Sd.) C.B. Thornhill & R. Crust
Members

इन्हीं श्री गोपाल सिंह तथा श्री तुलाराम के नाम पर पीलीभीत के कुरमी बहुल दो मोहल्लों के नाम रखे गये जो आज भी प्रचलित हैं । और मोहल्ला गोपाल सिंह में ही एक स्थल पर दो बार अ० भा० कूर्मि क्षत्रिय महासभा के अधिवेशन भी आयोजित किये गये थे । और इस लेखक का जन्म-स्थल तथा पैतृक मकान भी इसी मोहल्ले में है । उसका पता है मकान संख्या 58 बी, गोपालसिंह पीलीभीत (उ० प्र०) - 262001 ।

(3) Umrao Singh Kurmi, is an enlightened member of that class. His family did good Service in 1857, and was rewarded. He takes great interest in educational matters, and is trying to raise his caste fellows from ignorance in which they have so long remained. He is a wealthy man.

Pilibhit : (Sdr) W. Tudball C.S.
2nd Decempber 1894 Offg. Collector

(4) Admit Lala Balgovind, Member Municipal Board Pilibhit, in the Durbar of His honour the Lieutenant-Governor, N-W. Provinces.

17th March 1893 (Sd.) J. Macpherson
Collector

(5) Balgovind is a member of the clan of Kurmis who inhibit Pilibhit. He is a respectable man of good character, who takes great interest in the matters of education and advancement of his class.

2nd December, 1894 (Sd.) W. Tudball C.S.
Magistrate Magistrate

(6) The term of office of the elected member of the Municipal Board. Pilibhit (Lala Balgovind) having expired, Babu Bahadur Singh has been elected to fill his place (Notification 1192 XIX-88, dated 23rd March, 1900)

(7) I have known Bahadur Singh since I joined this District. He belongs to a family of certain member of the class of kurmis, which rendered good services during the mutiny and were given the rewards and sanads. Personally Babu Bahadur Singh is an energetic youngman and his services as Secretary of the organisation society for village Banks do much credit to him

PILIBHIT (Sd.) R. Raman
4th December, 1902 Offg. Collector

(8) My dear Rai Bahadur Bahadur singh, Please accept my warm congratulations on the distinction which the viceroy has been pleased to bestow upon you It is a worthy recognition of the valuable services which you have never failed to render to Government or to your fellow citizens. I trust that it will encourage you in good loyalty and good works, and I remain

Government House Sincerely Yours
Nainital (Sd) J. S. Meston
the 3rd June, 1915 Lieutenant-Governor

(9) **राय बहादुर बाबू बहादुर सिंह जी की निर्मम हत्या के शोकाकुल अवसर पर 27 अगस्त सन् 1927 को एक आशु कवि के उद्गार :-**

जिस वक्त ज़नाज़ा उनका शहर में निकला,
एक आलम उस दिन भरा क़हर में निकला ।

भाइयों, शहर खामोश था ज्यों तस्वीर,
कारोबार बन्द था साथ में था वरना और पीर ।

साथ में लाश के नौंदा पीर था थामे जिगर,
उनकी बेवा अरु बहिन दोनों भी थीं अगर नौहागर ।

गया पब्लिक का हमदर्द बात बर हम है,
ऐसी मौत कहो तो बड़ा कलंक है ।

उड़ी आव इनायतगंज की, रंगत फक् है,
मेलों में नहीं वह पहली सी रंगत है

वह मेम्बर, मैजिस्ट्रेट नामी गिरामी,
वह हिन्दू-मुसलमान दोनों का हामी ।

गयी जिसकी लंदन तलक नेक नामी,
है अफ्सोस पावे न शोहरत दवामी ।

भाइयों जिसका जन्नत में गया विमान,
था वह कोई देवता, जो आया जन्म ले इंसान ।

सुनी वारदार थी उनकी दिलावरी की,
रहे यादगार ता बाबू बहादुर सिंह की ।

इस पीलीभीत में हुये महासभा के छठवें अधिवेशन के सेक्रेटरी (महामंत्री) उसी शहर के प्रसिद्ध वकील स्व० श्री उमाचरन कटियार एडवोकेट जी थे । और उनका निवेदन सारे देश के स्वजातीय बन्धुओं को उसमें भाग लेने के लिये स्वाजातीय पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया गया था । इसका हवाला डा० भंगुभाई रामदास पटेल, रीडर इतिहास विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद ने सन् 1991 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास" के पृष्ठ 241 पर दिया है, उसे साभार नीचे उद्धृत करते हैं ।

Annual Conference of All India Kurmi Kshatriya Association:-
(समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय सभा)

खबर दी जाती है कि समस्त हिन्द के समग्र कुलमी (कुंरमी) क्षत्रिय एसोसियेशन की वार्षिक बैठक सन् 1910 के दिसम्बर माह की तारीख 25, 26 और 27 को युक्त प्रान्त में पीलीभीत के लाला खूबचन्द, ऑनरेरी मजिस्ट्रट साहब की इनायतगंज मोहल्ला में स्थित हवेली में होयेगी । इस अवसर पर समग्र हिन्द से सर्व कुनबी बंधु पधारने की कृपा करेंगे, ऐसी आशा की जाती है । मध्य हिन्दुस्तान में नागपुर के जाने-माने वैरिस्टर-एट-ला, मिस्टर सी० विनायक नायडू ने सभा के प्रमुख का स्थान स्वीकार किया है । इसमें होने वाला कार्यक्रम रहेगा :-

प्रथम दिन : प्रमुख का भाषण- **"हिन्द के सहयोग में कुरमी क्षत्रिय एकता"**

दूसरे दिन : **"कुर्मियों को अपना क्षत्रियत्व (क्षात्र कुलादर्श) बनाए रखना; क्षत्रियत्व प्रस्थापित करना ; धर्म और फर्ज के लिये तैयार रहना ।"**

तीसरे दिन : **कुर्मी क्षत्रियों में प्राथमिक और व्यावहारिक शिक्षा प्रचार और साधन**

हस्ताक्षर
उमाचरण कटियार
बी० ए०, एल० एल० बी०, वकील
पीलीभीत
Secretary - All India Kurmi Kshatriya Association

प्रकाशित : **"कड़वा विजय"** सन् 1910, **"पटेल बन्धु"** सूरत (गुजरात) सन् 1910

टिप्पणी : उक्त निवेदन की भाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि मूल अपील अंग्रेजी भाषा में रही होगी, जैसा उस समय का प्रचलन था, उसका गुजराती भाषान्तरण 'कड़वा विजय' और 'पटेल बन्धु' पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ किया गया होगा, फिर उससे उसका हिन्दी भाषानुवाद 'कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास' में उद्धृत करने हेतु किया गया होगा । इन अन्तरभाषीय अनुवादों में उक्त निवेदन में कहीं-कहीं पाठकगण अटपटापन पायेंगे पर वे अर्थ जरूर सही समझ लेंगे ।

इस दौरान देश में घटी अन्य राष्ट्रीय महत्वपूर्ण घटनायें

वाइसराय लार्ड कर्जन (सन् 1899 - 1905 तक) ने ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें भारत में और सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से 1 जनवरी 1903 को दूसरा राज दरबार तथा वाइसराय लार्ड लिटन (सन 1876-80) ने 1 जनवरी 1877 को दिल्ली में ही प्रथम राज–दरबार आयोजित किया था । वह राज-दरबार साम्राज्ञी विक्टोरिया को "कैसर-ऐ-हिन्द" (भारत की साम्राज्ञी) उपाधि ग्रहण करने की खुशी में दिल्ली के ऐतिहासिक स्थल रिज (Ridge) पर बड़ी शान-शौकत के साथ सम्पन्न किया गया था । द्वितीय दरबार में एडवर्ड अष्टम को सम्राट घोषित किया गया था और वह अलंकरण समारोह देशी राजाओं, महाराजाओं, नवाबों तथा अंग्रेज उच्च पदाधिकारियों की उपस्थिति में बड़े भव्य-रूप में दिल्ली के लालकिले के 'दीवाने आम' में सम्पन्न किया गया था ।

तीसरा राज-दरबार 12 दिसम्बर 1911 को सम्राट और साम्राज्ञी तथा जार्ज पंचम की उपस्थिति में दिल्ली में ही रायसीना हिल्स पर, जहां आजकल राष्ट्रपति भवन, नार्थ और साऊथ ब्लाक्स आदि हैं, बड़े भव्य रूप से सम्पन्न किया गया, जिसमें अंग्रेज उच्च पदाधिकारियों के अतिरिक्त समस्त राजे-महाराजे, नवाब तथा ताल्लुकेदार और प्रमुख जमींदार और नागरिक भी आमंत्रित किये गये थे । इसी दरबार में किंग सम्राट जार्ज पंचम ने ऐतिहासिक घोषणा की कि भारत की राजधानी का स्थानान्तरण कलकत्ता से दिल्ली कर दिया गया है । नई दिल्ली को राजधानी का रूप देने के लिये जहां वाइसराय भवन (वर्तमान में राष्ट्रपति भवन) बनाने की योजना बनी, वहीं प्रमुख राजे-महाराजों और नवाबों को नये नगर के प्रमुख स्थानों पर क्रम से योजनावद्ध रूप से अपने-अपने भवन बनाने के लिये बड़े-बड़े भूखण्ड आवंटित किये गये । उन्होंने अपने-अपने भवन उसी तरह बनाये । आज उन्हीं में से हैदराबाद हाऊस, बड़ौदा हाऊस आदि हैं जिनका उपयोग स्वतंत्रता के बाद से भारत सरकार अपने विभिन्न कार्यालयों

के लिये कर रही है। उस जमाने की किंग्स रोड तो राजपथ में बदल गयी है और उसी तरह क्वींस रोड का नाम बदलकर जनपथ हो गया है। इण्डिया गेट के सम्मुख जो संगमरमर की ब्रिटिश सम्राट की विशाल प्रतिमा थी, उसे स्वतंत्रता के बाद उतरवाकर दिल्ली नगर निगम के किसी स्थान पर अन्य प्रतिमाओं के साथ रख छोड़ा है पर रिक्त स्थान पर गत 47 वर्षों से गांधी जी की प्रतिमा स्थापित करने की चर्चा चलती रही है। वह कब लगेगी अभी बताना कठिन है।

लुटयेन्स (Lutyens) की नई दिल्ली

12 दिसम्बर सन् 1911 को, तृतीय राज-दरबार के समय दिल्ली में, तत्कालीन राजा एवं सम्राट जार्ज पंचम और उनकी महारानी की उपस्थिति में, भारत की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली कर देने का ऐतिहासिक निर्णय घोषित किया गया। इस राज-दरबार की शान-शौकत पर उस समय कई करोड़ रुपये व्यय कर दिये गये थे।

सन् 1912 से राजधानी के योग्य सरकारी भवनों का निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया था। उसके लिये काफी खोज-बीन के पश्चात् रायसीना की पहाड़ी वाला इलाका, जिसे रिज (Ridge) भी कहा गया है, राजधानी के प्रमुख सरकारी भवनों के निर्माण के लिये सर एडविन लूटयेन्स (Sir Edwin Lutyens) तथा सर हर्बट वाकर (Sir Herbert Baker) ने चुना, और सन् 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अवश्य ही इस कार्य में शिथिलता आयी, पर उसके उपरान्त फिर काम तेजी से चल पड़ा।

निपुण वास्तुकार (architect) लूटयेन्स ने नयी दिल्ली निर्माण की जो योजना बनायी, वह वास्तुकला और नगर-आयोजन की हर दृष्टि से प्रशंसा के योग्य है। चौड़ी-चौड़ी सड़कें, जिसके दोनों ओर पैदल चलने वालों के लिये पर्याप्त फुट-पाथ, दोनों ओर के बगलों के आवागमन हेतु साइड-रोड़ आदि सड़कों के दोनों ओर छायादार वृक्ष भी, खूब सोच-समझकर और चयन करके लगाये। वे सारे वृक्ष भारत में उपलब्ध वृक्षों में से चुने गये थे जैसे जामुन, नीम, और इमली। इन वृक्षों का रोपण सन् 1920 के कुछ समय बाद से ही शुरु कर दिया गया था। इन वृक्षों की औसत आयु लगभग 80 वर्ष आंकी जाती है। आज भी दिल्ली में वे वृक्ष देखे जा सकते हैं। दिल्ली वाले जामुन के मौसम में जामुन के फल भी खाने का आनन्द लेते हैं, यद्यपि 70 वर्ष के जामुन के पेड़ों में पुराने हो जाने के कारण बहुत छोटे-छोटे आकार की ही जामुन फलती हैं। ये पेड़ सैकड़ों लोगों को गर्मियों में अपनी छांह से ठंडा रखते हैं। जिन सड़कों पर ये लगे हैं वे अभी भी ग्रीष्म ऋतुओं में दिल्ली की ठंडी सड़कें हैं। इस वर्ष जून 1994 में इतनी गर्मी पड़ी कि गत् 50 वर्ष का रिकार्ड टूट गया।

यहां एक बात वर्णन करने योग्य है कि वास्तुकार लूटयेन्स ने इन देशी वृक्षों का उनके गुण-दोषों पर अच्छी तरह बिचार करके ही चयन किया था। जैसे कि उनकी औसत आयु क्या होगी पूरी तरह बढ़ जाने पर उनकी सर्वाधिक ऊंचाई क्या होगी और तब उनका आकार का फैलाव कितना होगा। उन्होंने एक सड़क पर एक ही तरह के वृक्ष लगवाये, जैसे वर्तमान राजपथ पर आप जामुन के पेड़ों की सीधी कतारें देखेंगे। तिलक मार्ग पर इमली के तथा शाहजहां रोड पर नीम के वृक्षों की सीधी कतारे देखेंगे।

लूटयेन्स ने धीमे बढ़ने वाले, पर लम्बी उम्र वाले इन देशी वृक्षों को सोच समझकर छांटा, जो कि सदाबहार हरियाली वाले हों, फूल और फल भी लगें, जिससे विभिन्न नस्लों की चिड़ियां आदि उनके लिए आकर महानगर की प्राकृतिक सुन्दरता में वृद्धि करें उनका अनुमान सही ही निकला और पक्षी-दर्शकों (Bird Watchers) ने लगभग 200 किस्म के पक्षियों को यहां आते देखा है। लूटयेन्स ने यह भी ध्यान रखा कि पतझड़ के मौसम में, यदि इनके पत्ते बड़े आकार के होंगे तो खूब कूड़े-कचरे का ढ़ेर लगेगा। सड़कों को गन्दा करेंगे और एक प्रकार से पाट देंगे। दूसरे बड़े पत्तों वाले वृक्षों से हवा के बहाव (Air Circulation) में अवरोध पैदा होता है। जबकि छोटे पत्ते वाले पेड़ों से ऐसा नहीं होता है। इसीलिये गर्मियों के महीने, अप्रैल से जून तक राजपथ, तिलक मार्ग, तुगलक रोड, अकबर रोड, औरंगजेब रोड़, शाहजहां रोड और पृथ्वीराज रोड़ पर चलना अन्य सड़कों

से ज्यादा सुखद होता है । तभी वे पहले से ही नयी दिल्ली की ठंडी सड़कें कही जाती हैं ।

दिल्ली विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के अध्यक्ष, प्रो० मोहनराम का कथन है कि 50 टन वजन का एक विशाल वृक्ष वातावरण को ठंडा रखने में उतना ही सक्षम होता है, जितना 5 टन क्षमता वाला वायु-वातानुकूलित यन्त्र (air conditioner) । लूटयेन्स ने जानकर सफेदा (Eucalyptus) और चीड़ (Pine) वृक्षों को महानगरी नयी दिल्ली के सड़कों के किनारे लगाने के लिए नहीं चुना, क्योंकि पतझड़ में या वैसे भी जो पत्ते उनसे जमीन पर गिरते हैं, वे कठिनता से सड़ते-गलते हैं, और जमीन में हानिप्रद अवशेष छोड़ देते हैं, जिससे उनके पास के वृक्षों की प्राकृतिक वृद्धि में अवरोध उत्पन्न हो जाता है ।

उपरोक्त वर्णन का तात्पर्य है कि सर एडविन लूटयेन्स ने महानगरी की योजना करते समय कितनी सूक्ष्मता से छोटी-छोटी बातों पर भी पूर्ण विचार कर, उचित और सही निर्णय लिये, जो आज प्रत्यक्ष है । दिल्ली में सन् 1994 के प्रारम्भ में आज लगभग 18 लाख वाहन हो गये हैं और अन्य सड़कों पर ये वाहन समस्या बन गये हैं पर लूटयेन्स की आयोजित सड़कों पर वे अभी भी सुविधानुसार आते-जाते देखे जा सकते हैं, यद्यपि उन्होंने वाहनों की इतनी बड़ी संख्या की कल्पना भी सन् 1911-17 में नहीं की होगी ।

आज दिल्ली में ही या देश के अन्य नगरों में नयी-नयी कॉलोनियां और बस्तियां बसाने की योजना सरकार बनाती है । क्या हमारे आधुनिक वास्तुकार और सिविल इंजीनियर तथा नगर-योजनाकार इन सब आवश्यक बातों का ध्यान रख पाते हैं? लगता है कि नहीं, उन्हें लूटयेन्स तथा चन्डीगढ़ के फ्रांसीसी वास्तुकार, ल केवेशियर, से इस क्षेत्र में प्रेरणा लेनी चाहिये और उस पर अमल करना चाहिये । अंग्रेज लूटयेन्स के नयी दिल्ली में लगाये ये जामुन, इमली और नीम के देशी वृक्ष अब बूढ़े हो चले हैं, पर अपने दायित्व को भलीभांति निभाते आये हैं, जैसे उनसे अपेक्षा की गई थी । अब देखना है कि इन वृक्षों की जगह, हमारे आधुनिक भारतीय नगर-योजनाकार कौन से वृक्ष लगाते हैं यदि अन्य कोई वृक्ष लगाये जाते है, तो क्या सोचकर उसके गुण-दोष और लाभ-हानि को दिल्लीवासियों की आगे आने वाली पीढ़ियां ही देखेगी, भोगेगी और उनके बारे में अपना निष्कर्ष व्यक्त कर सकेंगी।

दिल्ली की जनसंख्या अब 80 लाख से अधिक हो चुकी है । यहां हाल में दिल्ली में विधान सभा स्थापित करने के लिये 70 विधान-सभा चुनाव क्षेत्रों को चुना गया है । आजादी के बाद जब दिल्ली में प्रथम विधान सभा चौधरी ब्रह्मप्रकाश के मुख्यमंत्रित्व काल में गठित हुई थी, उसमें एक कुरमी, राणा जंग बहादुर सिंह, पूर्व सम्पादक ट्रिब्यून लाहौर, पर उत्तर प्रदेश के मूल निवासी, विधायक चुने गये थे । दिल्ली में नवम्बर 1993 के विधान सभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी की अभूतपूर्व विजय हुई । श्री मदनलाल खुराना के मुख्यमंत्रित्व में दिल्ली में भा० ज० पा० की सरकार वर्तमान में कार्यरत है ।

सातवाँ अधिवेशन

महासभा का सातवां अधिवेशन 27, 28 एवं 29 दिसम्बर 1911 को इटावा (यू० पी०) में गर्वनमेंट स्कूल, पटना के हेडमास्टर, बाबू संजीवन लाल सिन्हा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने उपस्थित बन्धुओं को आह्वान किया -"हमें गर्व है कि हमारे समुदाय में भारत के सबसे बड़े राजा और महाराजा हैं । ग्वालियर, बड़ौदा और कोल्हापुर आदि के महाराजा अपनी जाति के हैं ।" उन्होंने शिक्षा समाजिक सुधार, राजनीति, पंचायत-स्थापन, कृषि कार्य में प्रगति आदि विषयों पर विद्वतापूर्ण भाषण दिया ।

इस अधिवेशन में जगत् प्रसिद्ध कूर्मवंश-रत्न, कलयुगी-भीम नाम से ख्याति प्राप्त, प्रो० राममूर्ति नायडू के पट्ट-शिष्य स्वजातीय युवक श्री विश्राम सिंह, उत्तर प्रदेश की भारतीय जनता पार्टी के 6 दिसम्बर सन् 1992 तक मुख्यमंत्री श्री कल्याणसिंह के मंत्रिमंडल में न्याय व कारावास मंत्री, श्री ओमप्रकाश सिंह के पूज्य पितामह ने, अपनी शारीरिक शक्ति का अद्‌भुत प्रदर्शन करके उपस्थित प्रतिनिधियों की भूरि-भूरि प्रशंसा अर्जित की । बाबू परमेश्वरी दीन, मंत्री स्वागत समिति (इटावा) ने सस्वर कविता-पाठ से सब प्रतिनिधियों और अध्यक्ष जी का स्वागत् किया।

उस अवसर पर **कवि शंकर प्रसाद दीक्षित, उपदेशक भारत धर्म महामंडल, इटावा** ने इतिहास संबंध में कुरमी जनों की उपस्थिति में प्रेरणाजनक सस्वर कविता पाठ उसके कुछ अंश नीचे उद्‌धृत किये गये हैं :-

।। कविता ।।

कूर्मी लोग क्षत्रिय हैं, वेद है प्रमाण यामे
औरहु इतिहास औ पुराण हैं बखानते,
पुल्लिंग कूर्मी शब्द भूपति का बाचक है,
वीर्यवान वीर्यकर्म इन्द्र रूप मानते ।।

स्वर्ग और भूमि दोऊ कूर्म हैं बिचार करौ,
व्याकरण करैं हैं सिद्ध विविध प्रमाणते ।
कूर्मी बहुत हैं अभी विद्यमान भूमि पर,
भूपत कहावते क्या आप नहीं जानते ।।

कूर्मी भूल गये जिन रूपहि, कोइ और पै और बतावैं,
त्याग पुराने दिये कुल धर्म ये आपनि आदि को खोज लगावैं,
पावैं तबै ही स्वरूप पुरातन 'शंकर' शब्द सभा में सुनावैं,
कोई जो मूढ़ कुतर्क करैं गुणवानन के सोई सामने आवैं ।।

कूरम बंशी अनेकन भूपति, भूमि पै शोभित सो सुन लीजिये,
बंश बखान करौ उनको सुनिये चित लाइके ध्यान को दीजिये,
कुरम बंश पुनः कुश बंश कहयों लब बंश त्यों और गनीजिये,
त्यों कुरुवंश यदू नृपके कुल क्षत्रिय हैं चित शंका न कीजिए ।।

क्षत्रिय भूप चन्देल, राठौर, पवार, चौधरी, राणा बिचारौ,
ठाकुर, घोड़चढ़ा जयसवार, पठारी, व पतनवार निहारौ,

अवधिया त्यों महाराष्ट्र सचान, सुलंकी पुनः सिगरौर सिहारौ,
रावत त्यों मनवार, कटियार व सैंगारन को परिवारौ

कूर्मि इक खांप कहावत है कानकुब्ज पुनः सैठवार प्रबीनों
गायकवाड़ पुनः कछवाह तैलग मैराल चंदेरियन चीनो,
है राजपूत व आन्ध्रहु कूर्मक सूरज वंश पसार है कीनो,
'शंकर' क्षत्रियन की यह खांप हैं, अपनो रूप बिसार है दीनों ।।

कूर्मि बंश जयपुर में विद्यमान अब लों है राजा जयसिंह कूर्मिबंशी कहाये हैं
कुश बंश लवबंश कूर्म कुल कुरुवंश यदुबंश क्षत्री पुराण में लाये हैं,
'शंकर' यह कूर्मबंश उज्ज्वल सुकर्मी धनी क्षत्रीपन भूले अब होश महिं आये हैं ।

इस अधिवेशन को जिस समय आयोजित किया गया था उसी ही वर्ष सन् 1911 में 'बन्देमातरम् ' जय गीत से तथा बंगाली क्रान्तिकारियों और साधुओं से परेशान होकर अंग्रजों ने पहले बंग-भंग (बंगाल प्रान्त का बिभाजन) घोषित किया था, फिर उसे रद्द करके भारतीयों, विशेष करके बंगाली जनमत को सन्तुष्ट करने की चेष्ठा सरकार द्वारा की गई थी । यह सन् 1994, 'वन्देमातरम्' जयगीत के रचयिता श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी की मृत्यु का प्रथम शताब्दी वर्ष भी है ।

कवि शंकर प्रसाद दीक्षित ने अगला स्वरचित कवित्त यह सुनाया :-

कूर्मिन के उज्ज्वल कर्म व धर्म है देखिये आंख पसारि के भाई,
क्षत्रिन के यह वंशज है पर भूल गये अपनी ठकुराई,
चेत भयो इनको निज जाति को उन्नति हेतु सभा है बनाई,
पाइ पुरानी गई भई की रति शंकर मैं सोई आज सुनाई ।

क्षत्रपति महाराज शिवाजी मराठे वीर कोल्हापुर अब लौं कहावते,
भूपति सितांरा आदि भोंसला सुनागपुर सेंधिया सुलश्कर में डंका वजावते,
छोटानागपुर के हैं उदितनाथ महाराज, मानभूमि नीलमणि अर्जौं मान पावतें,
देसाई सूर्यमल जोरावार आदि भूप विद्यमान तिनकों कविंद गुण गावते ।।

काठियावाड़ में श्री विशेश्वर और सोमेश्वर भूप पिछानौ,
राव महाबलवन्त बहादुर और उमापति राव सुजानौ,
श्री समेश्वर हैं बहरी पति त्यों वन परती को दक्षिण थानौ,
दर्शनसिंह 'गालिबजंग' त्यों अवध महीपहिं कूर्मि मानौ ।।

इन पदों के सस्वर श्रवण से श्रोतागण् जाति स्वाभिमान से आत्मविभोर तथा द्रवित हो उठे । जन समुदाय ने करतल ध्वनि से कवि शंकर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की, कि उन्होंने कूर्मि कीर्ति का बड़ा सटीक वर्णन किया। बांकीपुर बिहार से पधारे बाबू मिथिलाशरण सिंह, वकील ने "समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा" के प्रारम्भ से अब तक के इतिहास, कार्यकलाप तथा उपलब्धियों पर प्रकाश डाला । चौधरी देवी प्रसाद सिंह (पूर्व उपदेशक, कूर्मि क्षत्रिय सभा, रुधई, जिला उन्नाव यू० पी०) ने बड़ा सारगर्भित व्याख्यान दिया । तद्पश्चात बाबू बद्रीनारायण

सिंह, उपदेशक "समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय सभा" ने अनेकानेक उदाहरणों से कुरमियों में परस्पर मेल और एकता के लाभ बताये । इटावा शहर में कूर्मियों का पुर्विया टोला मोहल्ला सदा प्रसिद्ध रहा है । यहां के 'कूर्मि क्षत्रिय कालिज' का नाम कुछ वर्षों से 'कूर्म क्षेत्र कालिज' कर दिया गया है । महासभा के अब तक के सम्पन्न हुये सात अधिवेशनों के कार्यकलापों के अवलोकन से ऐसा ज्ञात होता है कि अधिवेशन बहुधा दिसम्बर माह के अन्तिम सप्ताह में आयोजित किये जाते थे, क्योंकि सरकार अंग्रजों की थी, अतः बड़े दिन (X-mas) और नववर्ष दिवस (New Year's Day) के कारण देश में सर्वत्र न्यायालय, शिक्षा संस्थायें, सरकारी, सभी विभागीय कार्यालय, केन्द्रीय एवं प्रान्तीय स्तर पर तथा रजवाड़ों और रियासतों तक में अवकाश होता था । अतः उसी दौरान कूर्मि बुद्धिजीवी वकील, अध्यापक, सरकारी बाबू तथा अन्याय कर्मचारीवर्ग, साथ में विद्यार्थी वर्ग भी आसानी से अधिवेशनों में सम्मिलित हो सकते थे, और होते भी थे ।

उस जमाने में समाज में और भी अनेक उन्नति के केन्द्र स्थापित किये जा रहे थे । जैसे महात्मा गांधी का सेवाग्राम, रवीन्द्रनाथ टैगोर का शान्तिनिकेतन, आर्य समाज का ऋषिकेश स्थित गुरुकुल कांगड़ी आदि । सुधारकों द्वारा अनुभव किया गया कि केवल उपदेश से आदर्श तब तक नहीं पहुंचा जा सकता है । जब लोक जीवन में ऐसे व्यक्ति उतरेंगे जिन्होंने जीवन में वे आदर्श उतारे हों तभी लोक उन्हें ग्रहण करेगा । इसी को लेकर इस प्रकार के आश्रमों की देश के कोने-कोने में स्थापना हुई । किन्तु समाज की दशा ऐसी विकृत हो उठी है कि बाद में चलकर ऐसे प्रयोग विशेष सफल नहीं हुए । यही कारण है बापू ने साबरमती आश्रम को छोड़कर सेवाग्राम बनाया । गुरुकुल कांगडी के लिये वहां का प्रबन्ध हाथ में लेने के लिये उम्मीदवारों को न्यायालय के दरवाजे भी खटखटाने पड़े । कभी कोर्ट का रिसीबर बैठाया गया । उसी तरह बोलपुर स्थित कवीन्द्र-रवीन्द्र का दिव्य-स्वप्न शान्ति निकेतन भी किसी तरह चल रहा है, और वहां शान्ति की जगह अशान्ति लेती जा रही है।

कला मर्मज्ञ साहित्य मनीषी राय कृष्णदास का **"प्रसाद की आस्थाएं"** नामक शीर्षक से लेख हिन्दी के **"इंडिया टुडे"** की साहित्य वार्षिकी 1993-94 में प्रकाशित हुआ । उस लेख के पृष्ठ 7 पर जयशंकर प्रसाद जी के सम्बन्ध में लिखा है - 'कंकाल' में समाज का वर्णसंकरी रूप प्रकट हुआ है । प्रसाद जी सृष्टि को ही वर्णसंकरी मानते थे । 'कंकाल' में उन्होंने समूचे समाज के भीतर के 'कंकाल' को प्रकट किया हैं । इसीलिये जहां 'तितली' में सौंदर्य और कोमल भावना की अभिव्यक्ति है, वहीं 'कंकाल' में कठोर और खुरदरे वीभत्स तत्वों का समावेश है । इसके साथ-साथ 'कंकाल' प्रसाद जी का मेनीफेस्टो है । उनके धार्मिक विचारों का उनके भीतर चल रही उथल-पुथल की इसमें एक उद्घोषणा-सी है । पहले की आर्य परंपराओं की उद्दात्ता जो उनके सभी नाटकों , काव्यों आदि में अजस्र मिलती है, उसकी व्याख्या बराबर की गई है । क्या सनातन धर्म अपने वर्तमान रूप में उसी उद्दात्त परम्परा की रक्षा कर रहा था अथवा एक सड़े-गले समाज को ढो रहा था ।

राय कृष्णदास आगे लिखते हैं कि - "हिन्दू धर्म के अन्दर जो आन्दोलन हुए, जिनमें आर्य समाज वाला सुधारवादी आंदोलन था, वह कहां तक सफल हुआ 'कंकाल' में प्रारंभ में ही उस पर प्रसाद जी ने अपना लम्बा वक्तव्य दिया है । वे आर्य समाज के उत्कृष्ट रूप को स्वीकार करते हैं और ऐसे व्यक्तियों को 'आर्य' कहते हैं। उसी वर्ग में जो साधारण कोटि के व्यक्ति थे उन्हें वे 'आर्यसमाजी' कहते और जो प्रचारक किस्म के वाद-विवादी प्रकार के लोग थे, उन्हें **'आरिया'** कहते हैं ।" रायकृष्ण दास की जन्म शताब्दी भी इसी वर्ष सन् 1994 में मनाई जा रही है ।

राय कृष्णदास ने प्रख्यात साहित्यकार जयशंकर प्रसाद पर उनका एक प्रकाशित रोचक संस्मरण इसी लेख में इन शब्दों में व्यक्त किया था -"हिन्दू धर्म के संबंध में हम लोगों की चर्चा होती रहती थी । हम लोगों के बीच कई प्रकार के लोग थे । काशीप्रसाद जायसवाल का तो मत था कि ब्राह्मणवाद ने ही हिंदू धर्म को इस 'गर्त' में ला पटका । रामचंद्र शुक्ल भी ब्राह्मण पौरोहित्य की हंसी उड़ाते, वे कहते, **"दुःख इसका है कि इन लोगों ने धर्म को व्यवसाय बना लिया है । ये लोग सुधार की बातों का विरोध इसलिये करते हैं क्योंकि इस प्रकार**

उनके रोजगार पर आघात पहुंचता है ।" कभी-कभी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी, प्रसाद जी और मैं तथा इस गोष्ठी के कुछ अन्य लोग सनातन धर्म की रूढ़िवादिता और ब्राह्माचार के इस पक्ष को लेकर "सड़ातन" धर्म कहते थे। प्रसाद जी इलाहाबाद के गिरिजाशंकर की यह उक्ति अकसर दोहराया करते "दीवार पर पानी का छींटा मारा, सफेदी पर अपनी चार उंगलियां रगड़ी और मस्तक पर फेर लीं । उज्ज्वल और उन्नत ललाट देदीप्यमान हो उठा ।" प्रेमचंद्र की वर्णाश्रम धर्म पर अनावश्यक आस्था न थी । उन्होंने प्रसाद जी को एक पत्र लिखा था । "किस बात पर गर्व करें । वर्णाश्रम धर्म पर, जिसने हमारी जड़ खोद डाली ।"

सन् 1911 में भारत की जनसंख्या में कितने कुरमी या उससे सम्बंधित जातियाँ थीं :

SUMMARY TABLES

Table XIV - Statistics of Main Castes

India - 1911 Census, Vol I, Part I.

Taking total population of United India as 30 Crores.

Sl. No.	Caste	Strength	Where Chiefly found
1.	Ahir	95,08,486	Most Provinces
2.	Brahman	1,45,98,708	Most Provinces
3.	Chamar	1,14,93,737	Most Provinces
4.	Dhobi	20,70,405	Most Provinces
5.	Gujar	21,99,198	Most Provinces
6.	Kamma	11,20,531	Madras
7.	Kapu	32,41,621	Madras, Hyderabad
8.	Kunbi	45,12,737	Bombay, C. P. and Berar
9.	Kurmi	37,35,651	Bihar, Orissa, U.P., C.P.
10.	Telenga	9,67,218	Madras, Hyderabad
11.	Vakkaliga	15,07,063	Madras, Mysore
12.	Balija (Kapu)	10,46,419	Madras
13.	Telaga (Kapu)	9,67,218	Madras, Hyderabad
14.	Marathas	50,81,436	Bombay, C. P. & Berar Hyderabad.

Note : **Total of Sl. Nos. 6-14 is 2,31,85,944,** which is a total population of Kurmis and its sub-castes/allied castes as enumerated in the Census of 1911, settled in various provinces of India (undivided).

आठवां अधिवेशन

बाराबांकी (यू० पी०) में 24, 25 और 26 दिसम्बर 1912 ई० को आठवां अधिवेशन, श्रीयुत जेठालाल सी० स्वामीनारायण, एम० ए०, प्राध्यापक गणित, गुजरात कालेज, अहमदाबाद की अध्यक्षता में तथा वहां के चौधरी देवी प्रसाद सिंह एवं अन्य स्थानीय प्रमुख व्यक्तियों और कार्यकर्त्ताओं के सतत प्रयासों से भलीभांति सम्पन्न हुआ।

इस अधिवेशन में गुजरात के पाटीदार बन्धु भी पर्याप्त संख्या में सहर्ष सम्मिलित हुये थे। इसके परिणामस्वरूप गुजराती बन्धुओं में उत्साह की लहर दौड़ गई। यहां तक कि गणपतपुरा (बड़ौदा) के श्रीयुत छोटा भाई रायजी पटेल ने महासभा का अगला अधिवेशन अपने गांव में आयोजित करने का सानुरोध आमन्त्रण वहीं पर घोषित भी किया था। गुजराती भाइयों की असीम प्रसन्नता एवं उत्साह का कारण यह भी था कि वे अभी तक यही नहीं जानते थे कि उत्तर भारत में भी कुरमी इतनी बड़ी संख्या में निवास करते हैं।

अध्यक्ष श्री स्वामीनारायण जी भी उत्तर भारत के कुरमी बन्धुओं का सहोदर-स्नेह पाकर इतने आत्म-विभोर हो उठे, कि अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त किया :

"अभी कुछ अरसे पूर्व तक हमारी धारणा थी कि कुरमी जाति, जिससे हम सम्बन्धित हैं, केवल गुजरात और काठियावाड़ के ही क्षेत्रों में पायी जाती है तथा भारत के अन्य क्षेत्रों में भी कुछ कुरमी रहते जरूर हैं, पर अभी तक उनसे किसी प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध कायम नहीं हो सका है। लेकिन जब हमें पता चला कि हमारे भाई बन्धु उत्तर और दक्खिन भारत में भी रहा करते हैं आप आसानी से महसूस कर करते हैं कि हमारी असीम खुशी की इस समय कोई हद न थी। हमारी खुशी की तुलना आप उस एकाकी व्यक्ति के हर्षोल्लास से कर सकते हैं, जिसे पता चलता है कि वह अकेला नहीं है, उसके 10 भाई और हैं इसी प्रकार हम गुजराती कुरमीजन भी इस भ्रम में थे कि हम केवल 20 लाख हैं, लेकिन हमारा यह भ्रम इस विश्वास में बदल गया है कि सारे देश भर में 2 करोड़ सशक्त कुरमी लोग हैं"

अध्यक्ष महोदय ने इसी सन्दर्भ में आगे कहा- "हमारी महासभा का कार्य मात्र सामाजिक है। और राजनीति से बिल्कुल दूर है। इसलिये वे हमारे भाई जो सरकारी नौकरियों में हैं बिना किसी संकोच या डर के, इसमें हिस्सा लें। ब्रिटिश सरकार भी हमारी महासभा द्वारा संचालित जन-सेवा के कार्यों में सहायता करती है सरकार ने भवन निर्माण के लिये "कुरमी पाठशाला लखनऊ" को तीन हजार रुपयों का अनुदान दिया है।"

जातीय एकता पर बल देते हुये माननीय अध्यक्ष महोदय ने अपनी असीम प्रसन्नता व्यक्त करते हुये उद्घोषित किया :-

"बर्फ से ढ़के हिमालय की चोटी से सुदूर नीचे कन्याकुमारी तक भारत के हर अंचल में बसने वाले कुरमियों के प्रतिनिधियों को देखकर हमें वास्तव में अतीव प्रसन्नता हुई है। हमारे भाइयों को उत्तर में कुरमी कहा जाय, चाहे दक्कन में मराठा, गुजरात में कडवा कणवी या लेवा पाटीदार, किन्तु हम सबको दृढ़ विश्वास है कि हम सब एक ही कुरमी क्षत्रिय जाति के है। अतः हमारा ध्येय प्रशंसनीय है। हमारा लक्ष्य और आदर्श है कि सारे देश के कुरमी क्षत्रियों का एकीकरण किया जाये हमारी महासभा को सही रूप में "अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा" नाम दिया गया है।

अध्यक्ष, श्री स्वामीनारायण के सारगर्भित भाषण के पश्चात प्रस्ताव पारित कर उपस्थित प्रतिनिधियों ने स्वीकृति दी कि प्रमुख नगरों, जैसे बनारस, लखनऊ, बांकीपुर में स्वजातीय छात्रों के लिये शिक्षा सुलभ कराने हेतु छात्रावास खोले जायें। प्रतिनिधियों के मनोरंजन के लिये जहां अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये थे, उनमें

एक था, विश्वप्रसिद्ध कलयुगी भीम प्रोफेसर राममूर्त्ति नायडू, विजयानगरम (मद्रास) निवासी कूर्मिक्षत्रिय के युवा-शिष्य, श्री विश्राम सिंह मिरजापुर वालों का, गुरु-शिक्षा एवं ब्रह्मचर्य ब्रत का सफल शारीरिक बल-प्रदर्शन कर, नाना प्रकार के करतब दिखाकर उपस्थित स्वजनों की भूरि-भूरि प्रशंसा अर्जित करते हुये उन्होंने उनका खूब मनोरंजन किया। प्रो० राममूर्ति नायडू को पंडित मदनमोहन मालवीय जी ने बनारस विश्वविद्यालय में व्यायाम प्रशिक्षक नियुक्त किया था, बनारस के पास मिरजापुर के निवासी युवक विश्रामसिंह थे जो कि उक्त विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करते थे, उनके निकट सम्पर्क में आये और उनके प्रिय एवं पट्ट शिष्य बन गये ।

अध्यक्ष प्रो० जे० सी० स्वामीनारायण ने शिक्षा के महत्व को समझाते हुये अपने गुजराज के कडवा और लेवा पाटीदारों की सामाजिक समस्याओं और उसके समाधान का उल्लेख करते हुये बताया :-

"I can, here take the liberty of demonstrating how good social institutions accelerate the spread of education. Amongst the kurmi kshatriyas of Gujrat and Kathiawar, there are two principal sections namely, Kadwa Patidars and Lewa Patidars. Both these sections interdine with each other but up to this time there has not been any intermarriage between them owing to a very pernicious system of marriage prevailing among the Kadwa Patidars. You will indeed be astonished to hear that we, the Kadwa Patidars marry all the existing children once in ten years. At an interval of ten years, a marriage date is declared from the temple of goddess, Uma Devi in Unjha. The people believe that the goddess herself utters and proclaims this date but such superstitions have now been wholly dispelled. As soon as the marriage date is declared, all the Kadwa Patidars marry all the existing children, be they six years of age or only six months old. As a consequence the community of Kadwa Patidars is most backward from the point of education. Just in contrast to this take Lewa Patidars marry their children at a later age and the result has been that they have been able to make very great strides in education. In fact they can boast of 105 graduates in comparison to five or six graduates of the Kadwa Patidar Community. Thus you must have been convinced by this illustration that it is absolutely essential to root out pernicious social evils before we can hope to accelerate the spread of education amongst the members of our Community. Now by the middle of the twentieth century intermariages between Lewa & Kadwa Patidars do take place. Now this savage custom has been abolished.

सन् 1905 ई० में बाराबांकी (उ० प्र०) के निवासी और जमींदार चौधरी देवीप्रसाद सिंह जी ने जो जयसवार उपजाति के कूर्मि थे एक शोधपूर्ण ग्रंथ 'क्षत्रकुलादर्श' प्रकाशित किया । उसमें कुरमियों के विभिन्न कुलों और उपजातियों को प्राचीन क्षत्रियों के कुल होना सिद्ध किया और सभी कुलों के गोत्र-प्रवर आदि का वर्णन किया, जिनसे लोग बहुधा अनभिज्ञ रहते हैं । 'क्षत्रकुलादर्श' के बाद, उत्तर प्रदेश के ही मिरजापुर जिले के चुनार तहसील के भेडिया ग्राम निवासी चौधरी दीपनारायण सिंह ने जो कि घोड़चढ़े जयसवार कुर्मी थे सन् 1908 ई० में "कूर्मि क्षत्रिय निर्णय" नामक बृहत ग्रंथ लिखकर प्रकाशित किया, साथ ही चौधरी साहब ने "कूर्मि क्षत्रिय हितैषी" नामक एक भव्य मासिक पत्रिका निकाली और उसे वर्षों तक बहुधा अपने खर्चे पर ही नियमित निकालते रहे । वे स्वयं एक सम्पन्न जमींदार थे और चौधरी देवीप्रसाद सिंह, बाराबंकी वालों की तरह उनकी मनोच्छा थी कि हर कुरमी ..ई के साथ अनुभव कर सके कि वह क्षत्रियवर्ण का हिन्दू है और उस जातीय यथार्थ को मन में धारण किये हुये परिवार को संस्कारित ढंग से आगे बढ़ाते हुये, अपने जीवन क्षेत्र में कुशलता प्रदर्शित करते हुए, देश के

नागरिकों की अग्रणी पंक्ति में अपना स्थान बनाना और देश हित कार्य करना उसका लक्ष्य है । यही भावना उत्तर प्रदेश के प्रत्येक कुरमी क्षत्रिय के मन में है । प्रमाण के लिये शादी-विवाह के विज्ञापन **"सरिता"** मासिक पत्रिका तथा दैनिक समाचार पत्रों में जाति सदैव **'कूर्मि क्षत्रिय'** ही दी जाती है । वे सदा यही एक अभिधारणा अपनी जाति के बारे में लेकर चले हैं ।

इस अधिवेशन में पाटीदार बन्धुओं का मनोबल खूब बढ़ा यद्यपि अन्य हिन्दी भाषी कुरमी भी उन्हें देखकर अपने को बड़ा गौरवांवित अनुभव करते रहे । जैसा प्रारम्भ में कहा गया कि गणपतपुरा (बड़ौदा) के प्रतिष्ठित पाटीदार बन्धु श्रीयुत छोटाभाई रायजी भाई पटेल ने अगला अधिवेशन अपने गांव में कराने का निमन्त्रण दिया। इसी पाटीदार परिवार के श्री बहेचरभाई रायजीभाई पटेल (पीछे सन्यास ग्रहण करने पर स्वामी ब्रह्मानन्द सागर महाराज, श्री छोटाभाई के ज्येष्ठ भ्राता) ने पाटीदार समाज के उत्थान के लिये अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये तथा बड़ौदा में **पाटीदार छात्रालय** की भी स्थापना की, जिसका संचालन उनके सुयोग्य पुत्र, गुरुकुल विश्वविद्यालय के स्नातक, पं० रामचन्द्रभाई बहेचर भाई पटेल ने अनेक वर्षों तक बड़ी लगन से किया ।

अधिवेशन-नगर बाराबंकी और वहां के कुर्मी साहित्यकार

कुरमी जाति बड़ी विशाल है । उसने कुर्माली भाषा को जन्म दिया विकसित किया, छत्तीसगढ़ी, मराठी, गुजराती तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं को समृद्ध किया । स्थानान्तरण के कारण उनकी मातृभाषायें भिन्न-भिन्न हैं? अतः इसमें जन्में सहित्यकारों की सूची भी बड़ी लम्बी है । यहां पर केवल हिन्दी भाषा के प्रमुख साहित्यकारों का उल्लेख करने का प्रयास रहेगा । बाराबंकी जनपद को तथा सारी कुरमी जाति को गर्व होना चाहिये कि वहां लगभग 160 वर्ष पूर्व एक ऐसे व्यक्ति का जन्म हुआ जो हिन्दी साहित्य में अमिट हस्ताक्षर छोड़ गया और अध्यात्मज्ञानकोष की वृद्धि में अति महत्वपूर्ण योगदान कर गया । वे महापुरुष थे **बाबा बैजनाथ कुर्मी,** जिन्हें गोस्वामी तुलसीदास कृत "रामचरित मानस" का सर्वप्रथम और उच्च कोटि का टीकाकार होने का गौरव प्राप्त हुआ । अयोध्या के तत्कालीन संतों ने उन्हें गोस्वामी तुलसीदास का अवतार माना था । वहीं पर परखी परम्परा के महान **संत विशालदेव** की समाधि स्थापित की गई है । परखी संतों का पन्थ, संत विशालदेव का नाम एवं यश अमर रहेंगे । परखी पंथी कबीर साहिब की धार्मिक शिक्षा से प्रेरणा लेते हैं । एक प्रकार से वे कबीर-पंथ का एक अन्य प्रारूप है । संत विशालदेव महाराज की सारी साखियाँ और बचन **"विशाल बचनामृत"** नामक ग्रंथ में संग्रहित हैं । यह ग्रंथ परखी पंथ का प्रमुख ग्रंथ माना जाता है । इन संतों, साधकों एवं बिचारकों का एक अलग अध्याय में बिस्तार से विवरण दिया गया है ।

प्रोफेसर राममूर्ति नायडू (कलयुगी भीम)

इसका जन्म मद्रास प्रेसीडेन्सी के विशाखापट्टम के विजयनगरम स्थान में एक सम्पन्न नायडू (कूर्मि क्षत्रिय) परिवार में हुआ था । उनके पिता रायबहादुर श्री स्वामी नारायण थे । प्रोफेसर राममूर्ति ने देश-विदेश में घूमकर खूब नाम कमाया । दो-दो मोटर कारों को एक साथ सफलतापूर्वक रोक लेना, 40 मन का भारी पत्थर अपने सीने पर रखवाकर तोड़वाना, सीने पर हाथी को खड़ा करवा लेना और मोटे-मोटे लोहे की जंजीर को अपनी शारीरिक शक्ति से तोड़ देना उनके लिये साधारण कार्य हो गया था । वे बहुत कुछ और कर दिखाने का साहस रखते थे । आपको बड़े-बड़े पदाधिकारियों और राज्याध्यक्षों से दो सौ से अधिक पदक और अनेक प्रशस्ति-पत्र मिले। महामना मदनमोहन मालवीय जी ने इन **'कलयुगी भीम'** को अपने बनारस विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिये व्यायाम-प्रशिक्षक के रूप में नियुक्त किया था ।

विशेष उल्लेखनीय बात उनके सम्बन्ध में यह थी कि उत्तर भारत के उनके प्रदर्शन-कार्यक्रमों के दौरान जब उन्हें पता चला कि उनकी जाति और हिन्दी भाषी कुरमी मूलतः एक ही विशाल एवं प्राचीन जाति के अंग

हैं, तब वे कुरमियों के उत्थान के लिये अपना योगदान देने लगे थे । शिक्षा-प्रसार और उत्तम स्वास्थ्य के लिये कुरमियों को सलाह देते थे । इस संदर्भ में आगरा शहर में अपने शारीरिक बल-प्रदर्शन से अर्जित राशि को दान में देकर वहां **"राममूर्ति कूर्मि क्षत्रिय पाठशाला"** स्थापित करायी । आगरावासी कुरमियों को चाहिए था कि उस शिक्षा मंदिर को आगे बढ़ाते किन्तु वे ऐसा न कर सके । कूरमी नवयुवकों को अपनी मंडली में लेकर उनकी शारीरिक शक्ति की वृद्धि करना उनका दूसरा कार्य था, जिसमें उनके शिष्य विश्रामसिंह ने काफी ख्याति अर्जित की, और उनका जिक्र यहां अन्यत्र भी किया गया है । उन्हें प्रो० राममूर्ति नायडू विदेश भी ले जाना चाहते थे पर उनके परिवार वाले भेजने को तैयार नहीं हुये थे । प्रो. राममूर्ति नायडू देश में कितने प्रसिद्ध हो चुके थे उसका उदहारण देखिये : मंडावा (नवलगढ़) राजस्थान की एक मारवाड़ी हवेली में उनकी, विश्व प्रसिद्ध शेखावटी पेंटिंग में, दीवार पर बनी एक आकृति द्वारा चलती मोटर रोकते दिखाया गया है । जिसे आज भी देखा जा सकता है।

कृषि की वर्तमान स्थिति

यदि जनसंख्या इसी गति से बढ़ती गयी तथा कृषि में नये-नये वैज्ञानिक प्रयोग सफल होते रहे, तब बीसवीं शताब्दी के अंत तक पैदावार में अभूतपूर्व चौगुनी वृद्धि पृथ्वी की मृदा पर उसके क्षमता से कहीं ज्यादा दबाव डाल रही है । लेकिन अंटार्कटिका (दक्षिण ध्रुव) को छोड़कर पृथ्वी के जमीनी हिस्से का केवल 11 प्रतिशत भाग ही ऐसा है जो कृषि के लिए कोई गम्भीर समस्या उत्पन्न नहीं करता । बाकी हिस्सा कभी बाढ़ से तो कभी सूखे से त्रसित रहता है । लवणीय क्षरण (पोषक तत्वों की कमी तथा विषाक्ता) नीची जमीन जलाक्रांनि, व्यापक खारापन आदि के कारण भूमि की पूरी क्षमता को पैदावार के लिए उपयोग होने नहीं देता है । कृषि के लिए जो सबसे अच्छी भूमि है, वह भी समान रूप से पृथ्वी के सभी भागों में नहीं बंटी है । दुनिया का सभी उपजाऊ भूमि का क्षेत्र मात्र 14 करोड़ वर्ग किलोमीटर आंका गया है ।

भारतवर्ष का आधा भाग किसी न किसी कारण-कारण भूक्षरण का शिकार है । इसके लगभग 3.3 करोड़ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में से 1.4 करोड़ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में भूक्षरण बढ़ता जा रहा है । इसके अलावा बाढ़, लवणीयता तथा क्षारपन के कारण अतिरिक्त 27,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का क्षरण भी हो जाता है । ऐसा अनुमान लगाया गया है कि केवल 8 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र से 6 हजार लाख टन मिट्टी प्रतिवर्ष बरवाद हो जाती है। इसके साथ 60 लाख टन पोषक तत्व भी बहकर निकल जाते हैं, इनकी मात्रा प्रत्येक वर्ष कृषि कार्य में कृत्रिम उर्वरक के उपयोग करने की कुल खपत से कहीं ज्यादा है । कुरमियों का कृषि-कार्य आदिकाल से चला आया है अतः यह जानकारी उसके उपचार खोजने के लिए उनके लिये अति आवश्यक है । और वे भी अपने क्षेत्रों में भूक्षरण रोकने में वैज्ञानिक उपाय अपनायेंगे ।

नवां अधिवेशन

अहमदाबाद (गुजरात) में, महासभा का नवां अधिवेशन 27, 28, 29 दिसम्बर 1913 को सम्पन्न हुआ। यह पहले गणपतपुरा में होने वाला था । किसी बड़े शहर में कराना अभीष्ट समझकर उसे अहमदाबाद में कराने का निश्चय हुआ, जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन सुप्रसिद्ध बैरिस्टर, बम्बई लेजिस्लेटिव कौन्सिल के सदस्य और समाज-सेवी माननीय विट्ठलभाई पटेल ने की । पीछे विट्ठलभाई पटेल जैसे विख्यात नेता के अध्यक्ष होने तथा उनके अनुज श्रीयुत वल्लभभाई पटेल (पीछे लौहपुरुष सरदार पटेल के नाम से विख्यात) के सभा में पधारने से महासभा की शान में चार-चाँद लग गये । इस अधिवेशन में गुजरात के बड़े से बड़े श्रीमन्त पाटीदार पटेल सम्मिलित हुये । इस अधिवेशन से गुजरात और उत्तर भारत में विशेष सम्पर्क स्थापित हुआ और समाजोत्थान की दिशा में प्रगति आई।

अध्यक्ष पद से माननीय श्री विट्ठलभाई पटेल ने कहाः

"The programme, which we have adopted is universal in its character. We shall require a good deal of self sacrifice for the purpose of carrying out in practice, all the aspirations, which we have placed before ourselves. There will be immense good, done to our community by the accomplishment of the problem of all sided regeneration of the Community towards which this Conference pays its foremost attention."

अर्थात - "हमने जिस कार्यक्रम को अंगीकार किया है, वह बहुत व्यापक है समस्त आकांक्षाओं को, जिन्हें हमने अपने सम्मुख रखा है, अमल में लाने के लिये पर्याप्त त्याग की आवश्यकता है । जातीय पुनर्जीवन की बहुमुखी समस्या की पूर्ति से हमारी जाति को बहुत बड़ा लाभ पहुंचेगा । जिस पर हमारी महासभा सर्वाधिक ध्यान देती है।"

अध्यक्ष महोदय ने बताया कि जिस प्रकार उत्तर भारत में सन् 1870 में दीनापुर (बिहार) में, जाति के प्रमुख लोगों की बैठक हुई । उसी तरह गुजरात में भी स्वर्गीय रायबहादुर सेठ बेचरदास लश्करी, सी० एस० ई० ने, जिनको ठीक ही पाटीदार समाज में सामाजिक सुधार लाने में महान् पथ-प्रदर्शक कहा जाता है, कदवा-पाटीदारों में बाल-विवाह के विरुद्ध एक जोरदार अभियान छेड़ा था और उसे बन्द कराने में सफल भी हुये थे । सरकार ने सन् 1870 में बाल-हत्या अधिनियम पारित किया । सन् 1908 में चुनार के बाबू दीपनारायण सिंह ने **"कूर्मि क्षत्रिय हितैषी"** का सम्पादन शुरू किया, जो प्रारंभ में मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित हुआ । जिससे कूर्मि क्षत्रियों में सामाजिक तथा शैक्षिक उत्थान लाया जा सके । यह जानकर प्रसन्नता होगी कि वास्तव में लगभग उन्हीं दिनों के जब कि उत्तर भारत में उक्त पत्रिका का जन्म हुआ , वीरमगांव से **"कदवा विजय"** सूरत से **"पटेल बन्धु"** और भावनगर से **"कदवा हितेच्छु"** जातीय पत्रिकायें निकल रही थी । इन सब पत्रिकाओं के कारण जातीय-चेतना उत्पन्न होना शीघ्र सम्भव हो सका । बाल-विवाह को रोकना तथा शिक्षा के प्रचार-प्रसार के महत्व को जन-जन तक पहुंचाना सुलभ हो सका ।

अध्यक्ष माननीय पटेल जी ने महासभा के विगत इतिहास तथा उसकी जातीय उत्थान की दिशा में, महत्वपूर्ण गतिविधियों का वर्णन किया तथा गुजरात के पाटीदार बन्धुओं के द्वारा किये गये विकास कार्यों पर सम्यक् प्रकाश डाला । उनका कथन था कि हमारा पुश्तैनी पेशा कृषि है, अतः अब आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग करना परमावश्यक है । उन्होंने स्वजातीय सहकारी समितियों, छात्रावास तथा निर्धन छात्रों के लिये सहायक कोष स्थापित करने का अमूल्य सुझाव भी दिया । इस अधिवेशन से गुजरात के पाटीदारों और हिन्दी भाषी कुरमियों के मध्य काफी अपनत्व बढ़ा और दूरियां घटीं ।

अध्यक्ष माननीय विट्ठभाई पटेल के सम्बन्ध में विशेष जानकारी

पाठकगण जानते हैं कि माननीय श्री विट्ठलभाई पटेल बाद में दिल्ली स्थित केन्द्रीय धारा सभा के अध्यक्ष बने थे। वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के संविधान विधिवेत्ता माने गये, और वे प्रेसीडेन्ट पटेल के नाम से सम्बोधित किये जाते थे। इसी दक्षता और निर्भीकता के लिये वे विख्यात् हुये। उनके कार्यकाल की एक घटना ऐतिहासिक बन गयी। अतः उसका वर्णन यहां असंगत न होगा :-

सन् 1928-29 की घटना है। अंग्रेजों ने दो ऐसे कानून बनाये, जिससे देशवासियों में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। एक कानून का नाम था "ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल" जो हड़ताल के हक को छीनता था और दूसरा था "पब्लिक सेफ्टी बिल," जिसका उद्देश्य था देश में स्वतंत्रता की उभरती हुई लहर को कुचलना और समाप्त करना। केन्द्रीय धारा सभा में तब तक इन बिलों को पास नहीं कराया जा सका, क्योंकि उन्हें पास करने के लिए अध्यक्ष की रूलिंग की आवश्यकता थी।

केन्द्रीय धारासभा के अध्यक्ष, माननीय श्री विट्ठलभाई पटेल 8 अप्रैल 1929 को इन दोनों बिलों पर अपनी रूलिंग देने वाले थे, एसेम्बली हाल सदस्यों और दीर्घायें दर्शकों से खचाखच भरी हुयीं थी। सब प्रेसीडेंट की रूलिंग की प्रतीक्षा बड़ी तीव्रता से कर रहे थे। पहले 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' पर दोनों पक्षों की ओर से बहस हुई पर अन्त में उसके पारित हो जाने की रूलिंग दी गई। सरकारी सदस्यों ने मेजें थप-थपाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। अब 'पब्लिक सेफ्टी बिल' पर बहस के बाद प्रेसीडेन्ट पटेल अपनी रूलिंग देने को उठे, असेम्बली में शान्ति स्थापित हो गयी, सब उन्हें सुनने के लिये आतुर थे। प्रेसीडेंट पटेल कुछ शब्द ही बोल पाये थे कि एसेम्बली हाल की पीछे वाली बेंचों की ओर से एक जोरदार धमाके की आवाज आयी। कुछ क्षणों के लिये सभी स्तब्ध रह गये। पर 'बम-बम' की आवाजों से शीघ्र ही सब अपने आपे में आ गये। और यह समझने में देर न लगी कि क्या हो गया है। स्वाभाविक था कि जान बचाने के लिये सभासद खड़े होकर इधर उधर बचाव का उपाय खोजने लगे। कुछ क्षणों बाद एक और जोरदार धमाका हुआ। इस धमाके के बाद दर्शक दीर्घा से दो क्रान्तिकारियों ने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाये और नीचे हाल में इन्कलाबी अपील के इश्तहार फेंके। फिर पिस्तौल से फायर किया लेकिन एक गोली चलने के बाद ही वह जाम हो गयी।

यह आतंक मचाने वाले दो युवक, क्रान्तिकारी दर्शक दीर्घा में खड़े, भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त थे। धारा सभा में फेंके गये पर्चे, "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी" के गुलाबी रंग के लेटर-पैड पर टाइप किये हुये थे। उन पर्चों का शीर्षक था "बहरों को सुनाने के लिये" आगे उन दोनों क्रान्तिकारियों के साथ अंग्रेज सरकार ने जो किया वह सर्वविदित है।

सरदार भगतसिंह के साथ बंगाल के जिला वर्दवान निवासी वटुकेश्वर दत्त भी थे। वे दोनों भागे नहीं और अपने को पकड़वा दिया। दोनों को उम्र कैद की सजा दी गई। इन महान क्रान्तिकारियों का मुख्य उद्देश्य था कि जन-जागृति और जन-साहस बढ़ाया जाए।

फिर 10 जुलाई 1929 को भगतसिंह और उनके साथियों पर लाहौर षड़यंत्र का मुकद्दमा चलाया गया। वायसराय द्वारा गठित ट्रिब्यूनल के जजों ने उन क्रान्तिकारियों को 7 अक्टूबर 1930 को मुकद्दमे के अंतिम दिन अपना फैसला सुनाया जिसमें सजायें दी गयी थी। सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को मौत की सजा दी गई अन्य कई क्रान्तिकारियों को उम्रकैद या पांच-पांच वर्ष की सजाएं दी गई। सुखदेव, राजगुरु और भगतसिंह को 24 मार्च 1931 को फांसी पर लटकाने के निर्देश जारी किए गए। सारा देश इन वीरों के जीवन के प्रति चिंतित था। गांधी जी से बहुत कहा गया कि वे लार्ड इरविन पर जोर डालकर इन नौजवानों को फांसी के फन्दे से बचाने के लिए कोशिश करें। लगता है कि उन्होंने कुछ नहीं किया जबकि वे मामूली मुद्दों पर भी अपना अनशन का रामबाण अस्त्र प्रयोग करने में न चूकते थे। वे इस केस में क्यों कुछ न कर सके यह भावी इतिहास उजागर करेगा।

खैर अब भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव फांसी की प्रतीक्षा में थे कि 23 मार्च 1931 का मनहूस दिन आया जबकि उन तीनों नौजवानों को फांसी से मुक्ति दिलाने के लिये कार्यवाही की जा रही थी कि तभी दावानल की तरह यह खबर चारों ओर फैल गई कि उन तीनों को सुबह 9 बजे ही फांसी पर लटका दिया गया और उनके शवों को बिना उनके रिश्तेदारों को दिये गुप्त रूप से फिरोजपुर में सतलज नदी के किनारे पैट्रोल डालकर लावरिस की तरह फूँक दिया गया। पर वे अमर शहीद **"माँ रंग दे बसंती चोला"** गाते-गाते **'इन्कलाब जिंदाबाद'** के नारे लगाते सहर्ष फांसी के फन्दे को स्वयं अपने गले में डालकर इस भारत माँ के लिये झूल गये।

सारे देश में लोगों पर मानो वज्रपात हो गया हो। अंग्रेज सरकार ने उन तीनों को निश्चित तिथि से एक दिन पूर्व इसलिये फांसी दे दी क्योंकि उन्हें जनता की क्रोधाग्नि और आक्रोश का भय लगा था।

शहीदे-आजम भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को एक साथ फांसी देने के लिये नई फांसी तैयार की गई और तीनों को एक ही समय पर फांसी पर लटकाया गया। तीनों शहीद नौजवानों ने जो विभिन्न जाति और प्रान्तों के थे इतनी कम उम्र में हंसते-हंसते फांसी के फंदों को चूमा था। और सारे विश्व को दिखा दिया कि क्रान्तिकारी अपने आदर्श के लिये किस तरह बहादुरी से अपनी जान तक बलिदान कर सकते हैं। तब से देश में 23 मार्च बलिदान दिवस के नाम से मनाया जाता है। दिल्ली में 23 मार्च 1994 को मुख्यमंत्री श्री मदनलाल खुराना ने घोषणा की कि इन शहीदों की यादगार के तौर पर तीन नये कालिज दिल्ली में शीघ्र स्थापित किये जायेंगे।

राय बहादुर बेचरदास अम्बाईदास लश्करी, सी० एस० ई०

सन् 1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में उत्तर गुजरात के और खेड़ा चरोतर के पाटीदारों ने अपना शौर्य दिखाया था। ब्रिटिश शासनकाल में भारत भर के पाटीदार जाति के अनेक व्यक्ति उच्च पदों पर आसीन थे। गुजरात के औद्योगिक नगर अहमदाबाद के बहेचरदास अम्बाईदास लश्करी, अंग्रेजी शासन काल में नाइट कमान्डर ऑफ स्टार आफ इण्डिया (सी० यस० ई०) पद से सम्मानित थे। उनके पूर्वज और खुद वे भी अंग्रेज 'लश्कर' को खाद्यान्न सामग्री पहुंचाते थे, इसलिये लश्करी कहलाये। इतना ही नहीं, क्योंकि उस जमाने में बैंक आदि न थे अतः वे ब्रिटिश कम्पनी सरकार, और सेना को सूद पर रुपये उधार भी देते थे। और काफी सम्पन्न हो गये थे। उन्होंने अहमदाबाद में सन् 1865 में एक कपड़ा मिल की भी स्थापना की थी। जोकि आज भी चल रही है। वे कडवा जाति के कूर्मि थे। गुजरात में कूर्मि को कुलमी बोलने का प्रचलन है। डा० एम० आर० पटेल ने अपनी पुस्तक **"कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास"** में इनका नाम बहेचरदास अम्बाईदास लिखा है।

रायबहादुर लश्करी साहिब के गुजरात के 'पाटड़ी दरबार' से अति घनिष्ठ सम्बन्ध थे। अतः 'पाटड़ी दरबार' के सौजन्य से कडवा कुलमी जातीय सम्मेलन बुलवाया गया। उस सम्मेलन की सफलता का ही परिणाम था कि **वीकरीना संरक्षण** (सात/सास) नियमों का प्रकाशन हुआ। सेठ श्री बहेचरदास लश्करी ने सन् 1870 में ब्रिटिश सरकार को समझाकर **'पुत्री-रक्षा'** कानून (Infanticide Act) जारी करवाया और इसी तरह से न केवल कड़वा कुलमी पाटीदारों के अपितु हिन्दू समाज का बाल-हत्या का महाकलंक दूर करने के लिये उचित कानून बनवा दिया।

सेठ लश्करी जी के सतत् प्रयत्नों के परिणामस्वरूप सन् 1911 में सम्पन्न **"ऊँझा की उमिया माँ"** के मन्दिर से उद्घोषित तिथि पर आखिरी दस वर्षीय अन्तराल का विवाह समारोह के बाद उस अन्धविश्वासी रूढ़िवादी, कम उम्र के वरों-वधुओं के लिये अत्यन्त अहितकारी प्रथा में परिवर्तन आया। इस प्रचलन से दस वर्ष के अन्तराल से एक ही तिथि के दिन व्याह-रचाने की प्रथा द्वारा सारे कुलमी पाटीदारों को एक स्थान पर एक समय जोड़ने वाला जो तत्व था, वह इस प्रथा में परिवर्तन आने से समाप्त हो गया। इससे कुलमी कदवा पाटीदार समाज भी काफी कुरीतियों से मुक्त हुआ।

गुजरात मध्यप्रदेश के कुलमी पाटीदार बन्धुगण

श्री परमानन्द भाई पटेल ने जोकि मध्यप्रदेश मंत्रिमण्डल में मंत्री रहे हैं वे मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध बीड़ी उद्योगपति के साथ-साथ दैनिक समाचार पत्र **'नवीन दुनिया'** भी निकालते हैं । कवि हृदय पाया है, हिन्दी की प्रसिद्ध फिल्म 'बाबी' के गीत **"काहे कौवे से डरियो............"** के सृजनकार वे ही रहे हैं । उनकी धर्मपत्नी, श्रीमती ज्योत्सना बहन उपरोक्त ख्यातिनाम 'लश्करी परिवार' की बेटी थीं । गुजरात और मध्यप्रदेश के पाटीदार कुलमियों को यदि कोई जोड़ने वाला है तो वह है **" श्री उमिया-माताजी संस्थान-ऊँझा (गुजरात)"** ।

कुलमी पाटीदारों की वर्ण स्थित समझनी है तो आप जानते हैं कि समस्त पाटीदार बन्धुगण ऊँझा की श्री उमिया माता के वैसे ही अनन्य भक्त हैं जैसे बंगाली हिन्दू कालीघाट की 'काली मां' के और पंजाबी हिन्दू जम्मू स्थित 'माता वैष्णव देवी' के । गुजराती भाषा में लिखित 'श्री उमिया माता संस्थान परिचय' के पृष्ठ 1 पर उल्लिखित हैं :-

"के गुजरातमांना धणा खरा खेडूतो कलबी छे,
छतां ते ओनी उत्पत्ति क्षत्रिय मांथी थंयली छे ।"

अर्थात्- गुजरात में निवास करने वाले कृषक कलबी हैं फिर भी उनकी उत्पत्ति क्षत्रियों से हुई । अतः कुलमी पाटीदार पटेल क्षत्रिय वर्ण के हैं । 'राजस्थानी जातियों की खोज' नामक ग्रन्थ में कलवी पटेल जाति के सम्बन्ध में पृष्ठ 133 पर अन्वेषक रमेशचन्द्र विद्यार्थी ने लिखा है कि- "इस समाज को कई क्षत्रियों से जाना जाता हैं । उक्त पंक्ति का यह आशय है कि कलबियों की एक विशाल जाति हैं, जिसमें अनेक भेद हैं । कृषि पर निर्भर हो जाने के कारण इनके **'कलबी क्षत्रिय'** शब्द में से 'क्षत्रिय' शब्द का प्रयोग बन्द हो गया तत्पश्चात् वे 'कलबी' जाति के नाम से भी पहचाने-जाने लगे हैं । यह निर्विवाद है कि प्राचीन काल में क्षत्रिय वर्ण वाले कृषक वर्ग के लोग थे । पाराशर स्मृति के दूसरे अध्याय के 18वें और 19वें श्लोक में उद्घोषित है कि **"क्षत्रिय, खेती, व्यापार और शिल्पकारी कर्म कर सकते हैं ।"**

जबलपुर के क्षेत्र में समूचे बीड़ी उद्योग का विकास गुजरात से आ बसे पाटीदारों ने किया है । आज वह सौ साल से अधिक पुराना व्यवसाय स्थापित हो चुका है । 'शेरछाप' व अन्य बीड़ियों के निर्माता श्री मोहन लाल और हरिगोविन्द पटेल (फर्म का नाम मेसर्स मोहनलाल हरगोविन्द) जैसे साहसी, पाटीदार अपना नसीब आजमाने गुजरात से डोरी-लोटा लिये ही मारवाड़ियों की तरह निकले थे । और अपने अथक परिश्रम से मध्य प्रदेश में बीड़ी उद्योग के राजा कहे जाने लगे । इस प्रकार उन्होंने अपार धन अर्जित किया और अपना तथा अपने कुलमी पाटीदार समाज का नाम रोशन किया । उनके वितरक बरेली डिवीजन के एक मुन्ने मियां नामक मुसलमान ने स्व० मोहनलाल हरगोबिन्द की वृद्ध पत्नी की प्रेरणा से कई दशक पूर्व बरेली में अपने सम्पूर्ण खर्चे से 'राधा-कृष्ण' का एक भव्य मन्दिर बनवाया, और उसकी पूजा-आरती आदि की समुचित आर्थिक व्यवस्था भी कर दी । इसी प्रकार विलासपुर (म० प्र०) में दियासलाई का उत्पादान करने वाले पाटीदार, श्री अमृतलाल हउसा हुये थे । उनकी भी काफ़ी ख्याति हुई । अनेक पाटीदार और पटेल आज देश-विदेश के प्रमुख व्यवसायी हैं ।

गुजरात में से विदेशों में व्यवसाय हेतु या नौकरी हेतु बसे हुये पाटीदारों/पटेलों की संख्या बहुत बड़ी है । अमेरिका में ये लोग बहुत सफल व्यवसायी सिद्ध हुये हैं और ज्यादातर मोट्ल्स (Motels) इन्हीं पटेलों के हैं । प्रारम्भ में, देश के आजाद होने से काफी पूर्व गुजरात में भयंकर अकाल की स्थिति बन जाने के कारण, ये पाटीदार-पटेल अफ्रीकी देशों में जा बसे । आजादी के बाद तो ये अनेक विकसित देशों के अग्रणी स्तर के नागरिक बन गये हैं । इंग्लैंड में सबसे धनाढय बीस लोगों की सूची बनायी जाये तो दो या तीन पटेल बन्धुओं का नाम उसमें जरूर आ जायेगा । जब यह लेखक चार माह के विदेश प्रवास में अमेरिका और इंगलैंड में था वहां कई कुरमी बन्धुओं की सम्पन्नता की जानकारी मिली थी सिर्फ व्यवसाय में ही नहीं बड़े-बड़े वैज्ञानिक, इंजीनियर, डाक्टर, तथा अन्यान्य विधाओं के उच्च कोटि के कुरमी विद्वान भी उन देशों में बड़ी संख्या में हैं । ये पटेल

ज्यादातर गुजरात से आये हुये हैं । मध्यप्रदेश के पाटीदार बन्धुओं को इस बात का क्षोभ है कि उनके प्रदेश से ये लोग उस अनुपात में विदेश जाकर बस नहीं पा रहे हैं । लगता है कि एक तो इस ओर उनका विदेशों में प्रवास का लक्ष्य ही नहीं है दूसरे गुजरात के मुकाबले में यहां के कुलमी पाटीदारों में शिक्षा बिस्तार उतना अधिक नही हो पाया हैं फिर भी मध्य प्रदेश के कुलमी पाटीदार काफी मेहनती, व्यवहारकुशल और सम्पन्न हैं ।

आजादी के बाद जब तक रजवाड़े, राजे-महाराजे और नवाब भारत महासंघ में सम्मिलित न हुये थे, कुलमी कौम के दो राजवंश गुजरात में थे । वीरमगाम और पाटड़ी में कड़वा कुलमियों का राज्य था, जब कि बसों में अमीनों (लेडवा कुलमिओं) का राज्य था । इसी अमीन घराने में वीरात्मा दरबार गोपालदास ने अपनी तमाम जागीरी आय छोड़कर महात्मा गांधी के शिष्य बनने में कृत-कृत्यता का सन्तोष पाया था । और स्वतंत्रता संग्राम में योगदान दिया था । बारडोली सत्याग्रह के सफल संचालक सरदार वल्लभभाई पटेल और उनके ज्येष्ठ बन्धु विटठभाई पटेल इसी कौम में पैदा हुये और राष्ट्रीय वंद्यविभूति बने रहे । पटेल परिवारों की सम्पन्नता का राज, पति का कर्मठ परिश्रमी होना और पत्नी का भी मेहनती होने के साथ-साथ व्यवहार कुशल होना है ।

वीरमगाम और पाटड़ी के राजघराने

मुहम्मद बेगड़ा के शासनकाल में, गुजरात का किसान-कणवी से पाटीदार बना । यद्यपि उसने कृषि का त्याग नहीं किया । पाटीदार बनने का भी इतिहास है । उन्हें जमीन के पट्टे दिये गये । पट्टे यानी पत्ती अर्थात् पाती भाग, हक । पत्तीदार होने से कण्बी कृषक अब जमीन का स्वामी बन गया और प्रारम्भ में पत्तीदार और कालान्तर में पाटीदार कहलाने लगा । उससे पूर्व मौर्यकाल में भारत में आये हुये पर्यटक मेंगेस्थनीज ने कणवियों का स्थान भारतीय समाज में ब्राह्मणों के बाद ही दूसरे स्थान पर बताया है । कई लोग गुजरात में कणवियों को वैश्य वर्ग का मानते हैं, पर यह भ्रांति है । वे लोग जो कण (अनाज, कणक) के बीज का भण्डार करते थे, रखते थे, वे 'कण्बी' कहे जाने लगे । कणक उगाने का कृषि-कार्य तो कूर्मि जाति का प्रारम्भ से ही रहा है । अतः इसी कारण गुजरात में उन्हें कण्बी, कणक उगाने वाला कहा जाने लगा । यह तर्कसंगत लगता है । फिर गुजरात के इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट पता चलता है कि कण्बी/पाटीदारजन, पादशाही, अमीनाताई, जागीरताई हकदारी, गिराश आदि से सम्पन्न थे, यह देखते हुये उनका क्षत्रिय होना सिद्ध होता है । अंग्रेज इतिहासकारों, विदेशी यात्रियों ने अपने संस्मरणों में, तथा भारतीय समाज शास्त्रियों ने भी पाटीदार कौम को क्षत्रिय ही बताया है । रावबहादुर गोविन्द भाई हाथीभाई देसाई ने, जो बड़ौदा राज्य के ओर से कड़ी प्रान्त के सूबेदार थे , कण्बीं-कुर्मियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में **"गुजरातनों प्राचीन इतिहास"** लिखा ।

(देखिये डा० भंगुभाई रामदास पटेल द्वारा लिखित **"कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास"**, प्रथम संस्करण सन् 1991, प्रकाशकः जयंति भाई पटेल, पाटीदार संशोधित और प्रकाशन ट्रस्ट, गज्जर का बंगला आस्टोडिया रोड़ अहमदाबाद-380001 ।)



अ० भा० कु० क्ष० महासभा के लखनऊ में आयोजित दशवें अधिवेशन की स्वागत समिति तथा स्वयं सेवकों के साथ अध्यक्ष
बैठे हुए :—बांयें से सर्व श्री १-बदलू राम २- नरायन प्र० ३- चुन्ना लाल ४- भगवान दीन स० मंत्री ५- रघुवर दयाल चेयर०
६- श्री मन्त सम्पत राव गायकवाड़ अध्य० ७- बी० ए० आप्टे अध्य० के सेक्रे० ८- रामाधीन सिंह ९- बल्देव सिंह मंत्री
१०-नन्हें लाल ११-माता दीन १२-महादेव प्र० प्रधानाध्या० कु० पाठशाला

आगे अध्यक्ष महोदय ने बताया- "मराठा लोग दक्कन-भारत के वास्तविक कृषक हैं । यह भी सत्य है कि कालान्तर में देश के सम्मान एवं स्वराज्य स्थापना हेतु जब वीर शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने तलवार उठायी तब धीरे-धीरे बहुतों का कृषक रूप एक सैनिक के रूप में परिवर्तित होता गया । और इसी प्रकार मराठों में से ज्यादा से ज्यादा खेती से हटकर अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग में प्रवीण हो गये और शासन प्रणाली से जुड़ गये; मराठा राज्य एवं जागीरों की स्थापना की । मराठा शासकों में जैसे ग्वालियर के सिन्धिया महाराजाओं के पूर्वज पाटिल कृषक ही रहे थे । मुझे पूर्ण आशा है कि मेरी मराठा जाति के लोग ज्यादा से ज्यादा संख्या में महासभा से सक्रिय रूप से सम्बन्ध स्थापित करेंगे ।" इस अधिवेशन में एक स्वजातीय डाइरेक्टरी तैयार करने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ था ।

इस दसवें अधिवेशन वर्ष, सन् 1915, में राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में एक अन्य महत्वपूर्ण घटना घटी । बैरिस्टर मोहनचन्द कर्मचन्द गांधी इसी वर्ष दक्षिण अफ्रीका में, वहां की ब्रिटिश सरकार की रंग भेद की नीति के विरोध में सफल सत्याग्रह का नेतृत्व करके और वहां उसे मजबूती से स्थापित करके, भारत में लौटे थे । धीरे-धीरे भारत की परिस्थितियों का अध्ययन कर मोहनचन्द कर्मचन्द गांधी का राजनीति में सक्रिय प्रवेश सन् 1920 से माना जाता है । तब से 30 जनवरी 1948 तक लगभग 28 वर्ष तक वे भारतीय राजनैतिक क्षितिज पर पूर्णतः छाये रहे और देश में राजनीति के केन्द्र-बिन्दु बने रहे । राजनीति के अतिरिक्त समाज-सुधार के अनेक महान कार्य भी इसी दौरान सम्पन्न किये गये । वे गौतम बुद्ध के बाद पहले व्यक्ति थे जो इस देश के प्रमुख नेता बने जिनका सत्य और अहिंसा पर पूर्ण विश्वास था और उनकी कथनी और करनी में अन्तर न था । उन्हें भारत के ही नहीं विश्व के लगभग सभी राष्ट्र महात्मा गांधी के नाम से बड़ी श्रद्धा से स्मरण करते हैं । वे वास्तव में युग-पुरुष थे ।

अध्यक्ष श्रीमन्त सम्पतराव जी गायकवाड़ का वंश परिचय

श्रीमन्त सम्पतराव जी बड़ौदा महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़ के अनुज थे । बड़ौदा राज्य भारत की देशी रियासतों में प्रमुख स्थान रखता था । इसका क्षेत्रफल 4399 वर्ग मील था । बड़ौदा शहर ही राज्य की राजधानी रही, अब उसका नाम बदलकर बड़ोदरा कर दिया गया है ।

वार्षिक राजस्व 60 लाख रुपये था । राज्य की जनसंख्या सन् 1871 ई० में 17 लाख दस हजार 400 आंकी गई थी । बड़ौदा गायकवाड़ परिवार के सबसे पहले ज्ञात व्यक्ति दामाजी गायकवाड़ थे । वे शिवाजी महाराज के वंशज, सतारा राज्य में मराठा सेना के जाने-माने सेनानायक थे । इसी वंश ने बड़ौदा राज्य की स्थापना की। उनके बाद उनके भतीजे वालाजीराव ने बड़ौदा का शासन संभाला । उनके आगे के वंशजों में मल्हारराव महाराज हुये और उनके पश्चात् प्रसिद्ध सर सयाजी राव गायकवाड़ (द्वितीय) थे जो कि बड़ौदा के सिंहासन पर सन् 1857 ई० में आरुढ़ हुये थे । सन् 1881 में महाराजा सयाजीराव (तृतीय) का राज्याभिषेक किया गया । वे बड़े प्रगतिशील विचारधारा के महाराजा थे । उन्होंने मंत्रियों में एक से एक योग्य और विद्वान व्यक्ति रखे थे । इस कारण ही उनके शासन में जनहित का विशेष ध्यान रखा जाता था । उन्हें 19 तोपों की सलामी का अधिकार प्राप्त था और ब्रिटिश सरकार की ओर से अनेक सम्मानजनक उपाधियाँ उन्हें दी गई थी । इन्होंने ही अनेक मेधावी छात्रों को उच्च शिक्षा के लिये छात्रवृत्ति देकर विलायत भेजा, उनमें से आगे चलकर स्वतंत्र भारत के विधान-निर्माता, डा० भीमराव अम्बेडकर ने बहुत ख्याति अर्जित की । दलितों के मसीहा के रूप में वे सदा ही स्मरण किये जायेंगे ।

इन्ही हिज-हाईनस सदाजीराव गायकवाड़ (तृतीय) के अनुज श्रीमन्त सम्पतराव जी गायकवाड़ सन् 1915 के अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के 10 वें अधिवेशन के अध्यक्ष थे । महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ की याद में उनके नाम का विश्वविद्यालय तथा अन्य संस्थायें स्थापित की गई । अन्य देशी रियासतों की तरह बड़ौदा

राज्य का भारतीय संघ में विलय हुआ, उस समय के महाराजा फतेहचन्द गायकवाड़ थे । विलय के पश्चात् एक साधारण नागरिक के रूप में भी उनकी अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियां रहीं । वे दो बार लोक सभा के सदस्य चुने गये । गुजरात सरकार में मन्त्री रहे । उनका निधन 1 सितम्बर 1988 को हो गया । वे अपने पीछे तीन भाई छोड़ गये । उनमें एक भाई श्री रंजीतसिंह गायकवाड़ जी सांसद भी चुने गये ।

हिज हाईनस सयाजीराव गायकवाड़ (तृतीय)

इनका सिंहासनारोहण सन् 1911 में हुआ था । बड़ौदा स्टेट की गरिमा के अनुसार महाराजा का शासनाधीश बनने का जश्न मनाया गया । राज्याभिषेक-समारोह में सम्मिलित होने के लिये जहां देश के अन्याय राजे-महाराजे तथा नवाब और महान विभूतियां आयीं थी, वहां केरल राजघराने के प्रसिद्ध चित्रकार, श्री रविराजा वर्मा भी राज्य अतिथि के रूप में आमंत्रित थे । बड़ौदा में राजा रविवर्मा को अपनी चित्रकला के कार्य-सम्पादन के लिये उपयुक्त और सुसज्जित कला-स्टूडियो की सुविधा उपलब्ध करायी गई । कहते हैं कि राजा रविवर्मा द्वारा सर्वाधिक प्रसिद्ध और कला-जगत् में बहुचर्चित चित्रों को उन्होंने अपने इसी बड़ौदा-प्रवास के दौरान ही बनाया था । बाद में इन चित्रों में से अधिकतर बड़ौदा राज्य दरबार या वहां के दरबारियों ने मुंह मांगे मूल्य पर खरीद लिये गये थे ।

उस समय बड़ौदा महाराजाधिराज के लिये नये महल का निर्माण चल रहा था, जो कि बाद में 'लक्ष्मी-विलास महल' के नाम से प्रख्यात हुआ । आज भी वह महल बड़ौदा के दर्शनीय स्थलों में प्रमुख है । लक्ष्मी विलास महल के लिये 14 पौराणिक चित्रों का बनाना भी इन्हीं विश्वप्रसिद्ध चित्रकार राजा रविवर्मा को सौंपा गया था । वे चित्र आज भी उस महल की शोभा-वृद्धि में चार-चाँद लगाये हुये हैं ।

यह भी सत्य है कि भारतीय सिनेमा के जन्मदाता तथा प्रथम फिल्म निर्माता दादा साहब फाल्के ने सबसे पहले बड़ौदा के उसी कला-भवन में प्रशिक्षण पाया था, जिसकी स्थापना कुछ वर्ष पूर्व ही महाराजाधिराज ने करवायी थी । भारत सरकार इन्हीं दादा साहब फाल्के के नाम का पुरस्कार प्रतिवर्ष किसी न किसी सर्वश्रेष्ठ भारतीय फिल्म निर्माता या कलाकार को देकर सम्मानित करती है । बड़ौदा के इसी प्रसिद्ध कला-भवन से फिल्म निर्माण की बारीकियां और टैक्नीक सीखकर ही दादा साहब फाल्के बम्बई पहुँचे और अपनी पहली भारतीय फिल्म **"आलम आरा"** बनाने का चिरस्मरणीय श्रेय और कीर्ति अर्जित की ।

महाराजा को इन उपाधियों के साथ सम्बोधित किया जाता था - हिज हाईनेस फरजिंद-ए -खास, दौलत-ए-इंग्लीशिया, The most favoured son of the British Realm, सर सयाजीराव गायकवाड़, सेना खास-खेल, शमशेर बहादुर, जी० सी० एम० आई०, जी० सी० आई० ई० । इन महाराजा के सिंहासनारोहण-समारोह में सम्मिलित होने किंग एडवर्ड सप्तम भी भारत पधारे थे और दिल्ली-दरबार में इन महाराजा बड़ौदा को प्रमुख तथा सर्वाधिक सम्मानीय स्थान तथा व्यवहार प्रदान किया गया था । जिस समय महाराजा प्रतापसिंह गायकवाड़ बड़ौदा-महाराज थे, तब भारत के उपप्रधान तथा गृहमंत्री सरदार बल्लभभाई पटेल के आग्रह को न मानकर अपने राज्य का भारतीय संघ में विलय करने के लिये उन्होंने भारत सरकार के विचारार्थ कुछ शर्तें रखीं । जिसके लिये उन्हें गद्दी छोड़नी पड़ी और उनकी जगह उनके पुत्र श्री फतेहसिंह गायकवाड़ को महाराजा बनाया गया, जिन्होंने बड़ौदा स्टेट को भारतीय संघ में विलय की सारी औपचारिकतायें सहज रूप में पूरी कर दी थी ।

गायकवाड़ घराने की राज सम्पत्ति

बड़ौदा के गायकवाड़ स्टेट द्वारा प्रकाशित पुस्तक **"बड़ौदा रिव्यू"** के अनुसार महाराज मल्हरराव गायकवाड़ को कलात्मक वस्तुएं बनवाने और उनका संग्रह करने का शौक जनून की सीमा तक था । उन्होंने सोने की ऐसी तोपें ढ़लवायी थीं, जिसका विश्व में कोई सानी नहीं था । कहा जाता है कि फिरंगी सरकार की नीयत इस तोप पर गयी थीं । वे इस तोप को सात समुंदर पार (इंग्लैंड) ले जाना चाहते थे । इसकी भनक लगते ही महाराजा

सयाजीराव गायकवाड़ ने एक तोप रातों-रात गलवा डाली, ताकि तोप का कोई और जोड़ किसी और के पास न बचे । पिछली सदी के उत्तरार्द्ध में ढ़ाली गयी उस तोप का वजन 96 किलो यानी 8176 तोला था जो कि आज के भाव से कम से कम 5 करोड़ रुपये की कीमत का हुआ । बड़ौदा नरेश स्व० सयाजीराव गायकवाड़ ने जिस बेमिसाल तोप को अपनी सूझ-बूझ से इंगलैंड जाने से बचाया था वह तोप ब्रिटिश काल यानी गुलामी के दिनों में तो सुरक्षित रही, किन्तु आजादी के बाद वही एक बची तोप राजघराने के सदस्यों की धनलिप्सा और मनोमालिन्य की भेंट चढ़ गयी । इस तोप का महत्व इसलिये भी बढ़ जाता है, क्योंकि यह तोप महज एक आयुध न होकर, अनुपम और बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि थी ।

ऐसा माना जाता है कि सम्पन्नता के मामले में हैदराबाद के निजाम के पश्चात् बड़ौदा का गायकवाड़ राज परिवार देश का दूसरा सबसे बड़ा राजघराना है । महाराजा खंड़ेराव गायकवाड़ हीरों के उत्कृष्ट पारखी माने जाते थे । उन्होंने उपने इस विलक्षण ज्ञान का उपयोग करते हुये विश्व के विख्यात हीरों और मोतियों का संग्रह किया था, जो आज भी गायकवाड़ खजाने में शोभायमान हैं । विश्व का सबसे बड़ा हीरा **"स्टार आफ द साउथ"** इसका एक हिस्सा है । एक सौ पच्चीस कैरेट का यह आबदार शफ्फाक हीरा 254.5 कैरेट का है । इसके अलावा **"यूजीन"** और **"शाही अकबर"** भी इस जवाहरखाने में अटे पड़े हैं ।

वस्तुतः खजाने की बेशुमार चीजों का सही-सही अनुमान तो गायकवाड़ राजपरिवार के मौजूदा सदस्यों को भी नहीं है जिनमें इसे लेकर मनोमालिन्य चल रहा है और **'राजमाता'** के संबोधन से पुकारी जाने वाली पूर्व महारानी शान्ता देवी जी को भी नहीं, जिनके हाथ में आज खजाने की चाभियां हैं । इस परिवार के एक पक्ष में है पूर्व सांसद रणजीत सिंह गायकवाड़ पूर्व महारानी शान्तादेवी तथा धार राज्य की पूर्व महारानी मृणालिनी देवी पंवार तथा विवाद के दूसरे पक्ष में हैं श्री संग्राम सिंह गायकवाड़ । यदि संग्राम सिंह गायकवाड़ के दावे को भी आधार माना जाये तो गायकवाड़ घराने की राजसम्पत्ति आज के बाजार भाव से अनुमानित 1500 करोड़ रुपये आंकी गयी है।

खजाने के बारे में अनभिज्ञता, उसकी विपुलता की भी परिचायक है । बेची गयी सोने की उपयुक्त तोप के अलावा चांदी की तोप, सोने और चांदी की बग्घियां, कई रत्नजड़ित मुकट, तलवारें, कटारें और सिंहासन इस खजाने की प्रमुख वस्तुएं हैं । बड़ौदा राज्य के अनेक महल और भूखंडों को पहले ही सरकार ले चुकी है । जिसमें दिल्ली स्थित बड़ौदा हाउस भी है । परिवार के पास जो **'नजरबाग पैलेस'** है, उसकी शान में तो विदेशियों द्वारा बहुत कुछ लिखा गया है । और बहुत कुछ राज परिवार के पास बचा है, जिससे वह सम्माननीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

समाचार पत्रों में प्रकाशित खबरों के अनुसार बड़ौदा राज-घराने का गुमशुदा सतलड़ा हार और मोतियों जड़ा कालीन, दोनों विदेशों में कभी के बिक चुके हैं । जेनेवा में सन् 1989 में कालीन की कीमत लगभग साढ़े तीन करोड़ डालर (अर्थात् सन् 1994 के डालर-रुपये की दर से 108 करोड़ रुपये की) आंकी गई थी, मगर उस समय उसकी नीलामी नहीं हो सकी थी । ऐसा माना जाता है कि बाद में वह कालीन और अधिक कीमत पर बिका । सतलड़ा हार पेरिस में किसी के पास बताया जाता है । उस सतलड़े हार की कीमत् सन् 1903 में ही लगभग 40 लाख रुपये लगाई गयी थी ।

ऐसा आरोप लगाया जाता रहा है कि बड़ौदा की महारानी सीतादेवी उक्त सतलड़ा हार और मोती-हीरे जड़ा कालीन सन 1948 में अपने देश पेरिस ले गयी थीं । इसके अतिरिक्त वह अपने साथ अन्य बहुमूल्य हीरे-जवाहरात भी ले गई थीं । बड़ौदा के तत्कालीन महाराजा प्रतापसिंह गायकवाड़ ने 1943 में एक अंग्रेज महिला से विवाह किया था जिनका भारतीय नाम महारानी सीतादेवी था । परन्तु वह विवाह ज्यादा दिन चल न सका और 1948 में सीतादेवी पेरिस चली गयीं । सन् 1954 में दोनों में तलाक हो गया । महाराजा की 1968 में मृत्यु हो गई । दिसम्बर 1994 में ग्वालियर के श्री माधवराव सिंधिया के सुपुत्र का विवाह बड़ौदा राजघराने के श्री उदयसिंह राव गायकवाड़ वर्तमान सांसद की सुपुत्री से सम्पन्न हुआ ।

ग्यारहवां अधिवेशन

महासभा का 11वां अधिवेशन, आगरा (यू० पी०) में 29, 30 और 31 दिसम्बर सन् 1916 को अहमदाबाद के प्रसिद्ध बैरिस्टर श्रीयुत मगनभाई चुतरभाई पटेल की अध्यक्षता में सानन्द सम्पन्न किया गया । विगत् अधिवेशनों के परिणाम स्वरूप उत्तर भारत और गुजरात में बसे हुये कुरमी-कुलमी बन्धुओं के मध्य जो अपनत्व और जातीय सम्पर्क स्थापित हुआ , वह इस अधिवेशन से और दृढ़ हुआ ।

इस अधिवेशन के अध्यक्ष बैरिस्टर पटेल जी ने शिक्षा के प्रसार-प्रचार की महत्ता पर प्रकाश डालते हुये कहा :-

"The searching light of education lays bare before you all the ways of improving yourselves and if you are only resolute to make yourself happy there is nothing that can stand in your way for undoubtedly, because you possess the vigour of action ."

अर्थात् "शिक्षा का प्रकाश आपको स्वयं उन्नत बनाने के सभी प्रकार के उपायों को आपके समक्ष खोलकर रख देता है । और यदि आप अपने को सुखी बनाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हो जावें तो आपके मार्ग में कोई अवरोध टिक नहीं सकते, क्योंकि आप में निस्सदेह कार्यशीलता है ।

बैरिस्टर पटेल ने सन् 1916 में कुरमियों की भारतीय सेना में खुली भर्ती की मांग को अपने अध्यक्षीय भाषण में इन शब्दों में रखा :-

"This leads me on to our right to demand recruitment from our community in his majesty's Indian Army. This question has been prominently brought to the front by the bloody war against the Germans for over two years. The man power of India is almost inexhaustible and Indian soldiers have proved their mattle in the fields of Flanders and elsewhere, covering themselves with glory in defence of the Empire. Why are we then to be deprived of sharing in the immortal glory we cannot understand. All Kurmi Kṣhatriya were a fighting race in the past. Their general characteristics and their fine spirit of still surffering manliness eminently befit them for the army. Circumstances throw them on agriculture, but it has been the support of many other soldiers in adverse times of all countries. European armies are mostly drawn from peasantry, why not tap Indian peasantry then If we have got out of martial practices that surely is not our fault. Let us be prepared for the defence of our country and the empire and the Kurmi Kshatriya Community will readily undertake the duty that was once theirs"

अध्यक्ष महोदय ने अपने लम्बे भाषण में भारतीय फौज में कुरमियों की खुली भर्ती करने के लिये अतिरिक्त जाति उत्थान के लिये अन्य आवश्यक उपाय बताते हुये स्वजातीस बालक/बालिकाओं की आधुनिक और उच्च शिक्षा के लिये पूरा ध्यान आकर्षित किया । उनका कथन था कि यदि आप समाज में अपना पूर्वकालिक गौरवमय स्थान बनाने रखना चाहते है, तो आपको अपने कार्यक्रम में शिक्षा को सर्वोपरि स्थान देना होगा ।और ऐसा करके आप अपने समस्त दोषों की जड़ काटने में समर्थ हो सकेंगे । केवल एक-दो स्कूल, छात्रावास स्थापित कर देने से काम चलने वाला नहीं है । ज्ञान का प्रकाश तो घर-घर तक पहुंचाना होगा । अनपढ़ आदमी मूक पशु की तरह होता है, जो सदा दूसरों का पिछलग्गू रहता है । वह शारीरिक रूप में कितना ही बलवान क्यों न हो, लेकिन यदि

अनपढ़ है, तो स्वार्थी लोगों द्वारा जानवर जैसा हांका जाता है । शिक्षा से मेरा अभिप्राय साक्षर मात्र होने से नहीं है, सच्ची शिक्षा वह है जो व्यक्ति को मानसिक परतंत्रता से मुक्त कराती है । तथा सारे दोषों को दूर करके उसकी विवेक बुद्धि को जागृत करती है । ऐसी शिक्षा का महत्व हमारे लिये भोजन से भी बढ़कर है ।

इस अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव भी पारित किया गया :

"इस अधिवेशन की यह सहमति है कि अब समय आ गया है जबकि केन्द्रीय महासभा से सम्बद्ध करने के लिये देश के सभी भागों में शाखा-सभाएं कायम करने के कार्य को अपने समुदाय को तेजी से अपनाना चाहिए"

पाठकगण जानते होंगे कि आगे चलकर सन् 1929 में शारदा ऐक्ट सरकार द्वारा पारित किया गया था, जिसके अनुसार वर एवं कन्या (वधू) की विवाह-समय न्यूनतम आयु क्रमशः 18 और 14 वर्ष रखी गई किन्तु. उससे 13 वर्ष पूर्व ही इस 11वें अधिवेशन में महासभा के विवाह के समय वर-वधू की न्यूनतम आयु क्रमशः 20 वर्ष और 13 वर्ष सर्वसम्मति से स्वीकार करके अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया था ।

इस अधिवेशन में यह दुःखद समाचार पर शोक प्रस्ताव पारित हुआ कि हाल ही में पीलीभीत में हुये 6ठे महासभा के अध्यक्ष नागपुर के प्रसिद्ध स्वजातीय बैरिस्टर श्रीमान सी० वी० नायडू का देहावसान हो गया । इसी अधिवेशन में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जोकि सूची के रूप में थी, जिसमें स्वजातीय प्रतिनिधियों के नाम, स्थायी पते, उपजाति भेद और व्यवसाय/नौकरी के संक्षिप्त विवरण दिये गये थे ।

इस अधिवेशन में चुने गये पदाधिकारियों तथा सदस्यगणों की सूची :-

अध्यक्ष : बाबू मिथिलाशरण सिंह, बी० ए०, बी० एल०, बांकीपुर पटना (बिहार)

उपाध्यक्ष :	1.	रायसाहब बाबू बहादुर सिंह, पीलीभीत (यू० पी०)
	2.	सेठ नारायन प्रसाद, मछली कुआँ, हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश)
	3.	बाबू राम प्रसाद सचान, बी० ए० जमींदार कानपुर (यू० पी०)
	4.	प्रोफेसर जे० सी० स्वामीनारायण, एम० ए० अहमदाबाद (गुजरात)
मंत्री :		बाबू उमाचरण कटियार, बी० ए०, एल० एल० बी० वकील (पीलीभीत)
सहायक मंत्री :	1.	बाबू राम अधीन सिंह, ठेकेदार हसनगंज, लखनऊ (यू० पी०)
	2.	बाबू डोरीलाल मुख्तार, पीलीभीत (यू० पी०)
	3.	बाबू मूरत लाल सिंह, जमीदार, पटना (बिहार)
	4.	श्रीमान हीरालाल बसन्तलाल, अहमदाबाद (गुजरात)
कोषाध्यक्ष :		लाला सीताराम रईस, पीलीभीत (यू० पी०)
लेखा-निरीक्षक :	1.	बाबू दीपनारायण सिंह, चुनार जिला मिरजापुर (यू० पी०)
	2.	बाबू बहोरीलाल, नौबस्ता, आगरा (यू० पी०)
सदस्य गण :	1.	बाबू रमाचरण कटियार, बी० ए० वकील हाईकोर्ट (यू० पी०)
	2.	लाला नन्नू प्रसाद, रईस, सुल्तानगंज, आगरा (यू० पी०)
	3.	राय साहब जनकधारी लाल, दीनापुर, पटना (बिहार)
	4.	चौधरी बैजनाथ प्रसाद, भभुआ, शाहाबाद (यू० पी०)
	5.	बाबू जंगबहादुर सिंह, मुख्तार, पीलीभीत (यू० पी०)
	6.	बाबू रघुनन्दन सिंह, ठेकेदार, व्यापारी, पूर्णिया (बिहार)
	7.	बाबू गोवर्धन सिंह, जमींदार, सारण (बिहार)
	8.	बाबू राजबंशी सिंह, जमींदार, दिग्वारा, सारण (बिहार),

9. चौधरी देवी प्रसाद, जमींदार, बाराबंकी (यू० पी०)
10. राय बिहारी लाल साहब, ठेकेदार, लखनऊ (यू० पी०)
11. बाबू मातादीन, छोटा हसनगंज, लखनऊ (यू० पी०)
12. बाबू गुरुप्रसाद ठेकेदार, लखनऊ (यू० पी०)
13. बाबू जंगबहादुर मुख्तार, बाराबंकी (यू० पी०)
14. ठाकुर राम सिंह, पत्नीपुर बाराबंकी (यू० पी०)
15. बाबू शिव नारायण बी० ए० बाराबंकी (यू० पी०)
16. बाबू भगवान दीन, चांदगंज कलां, लखनऊ (यू० पी०)
17. बाबू शिव दयाल सिंह ठेकेदार, चांदगंज खुर्द, लखनऊ (यू० पी०)
18. लाला बैजनाथ, मदईपुरा लखनऊ (यू० पी०)
19. बाबू वृन्दावन कटियार, बी० ए०, एल० एल० बी० वकील फर्रुखाबाद (यू० पी०)
20. बाबू माता प्रसाद वकील, बाराबंकी (यू० पी०)
21. बाबू खुशी राम, जमींदार, रायबरेली (यू० पी०)
22. बाबू जोगेश्वर दयाल, जमींदार रायबरेली (यू० पी०)
23. चौधरी गोकुल प्रसाद, जमींदार, कटरा सैयदरजा, वाराणसी (यू० पी०)
24. बाबू जयजय राम जमींदार लजुरिया, डाक समेरा , गोरखपुर (यू० पी०)
25. बाबू दीपचन्द देहैली, कानपुर (यू० पी०)
26. बाबू बाबूलाल व्यापारी, कटरा, इलाहाबाद (यू० पी०)
27. बाबू राम खिलावन सिंह, शहनशाहपुर, वाराणसी (यू० पी०)
28. बाबू शिव प्रसाद फतेहगढ़ (यू० पी०)
29. बाबू गुलजारी लाल, फतेहगढ़ फर्रुखाबाद (यू० पी०)
30. बाबू रूपकिशोर रईस, नौबस्ता, आगरा (यू० पी०)
31. लाल झम्मन लाल, पुरविया टोला, इटावा (यू० पी०)
32. बाबू भोला प्रसाद,. जमींदार, डाक मन्धार रायपुर म. प्र.
33. बाबू तुलसीराम, बी० ए० तहसीलदार, कुनरा, रायपुर (म. प्र.)
34. बाबू हीरालाल व्यापारी अनारकली, लाहौर (पाकिस्तान)
35. श्री भोला भाई झवेर भाई पटेल, बैरिस्टर, अहमदावाद (गुजरात) (पटेल बन्धु)
36. बाबू जयगुरु सहाय, पुरबिया टोला, इटावा (यू० पी०)
37. कुँवर लालसिंह जी रायसिंह जी, वीरमगांव गुजरात (वीरमगाम के कुलमी राजवंशी देसाई)
38. बाबू भगइलू राम बहेरा, डाकबुन्देखां बस्ती (यू० पी०)
39. बाबू बल्देव सिंह, गोंड़ा जेल, गोंड़ा (यू० पी०)
40. बाबू प्रयागसिंह, मऊनाथ भंजन, आजमगढ़ (यू० पी०)
41. बाबू रुकम सिंह, बदायूं (यू० पी०)
42. मास्टर भगवान दीन, टकैला लहरपुर, सीतापुर,
43. सेठ किशोरी लाल जीवाभाई, ठेकेदार, अहमदाबाद (गुजरात)
44. सेठ सोमनाथ भद्रभाई रायपुर अहमदाबाद (गुजरात)
45. श्री भायल भाई साराभाई बी० ए०, एल-एल० बी० अहमदाबाद (यू० पी०)
46. श्री मानकलाल हीरालाल एम० ए०, एल-एल० बी० वकील अहमदाबाद (यू० पी०)

46. श्री मानकलाल हीरालाल एम० ए०, एल-एल० बी० वकील अहमदाबाद (यू० पी०)
47. डा० पीताम्बर दास कुवेरदास, अहमदाबाद (गुजरात)
48. श्री पारीख शंकरलाल बल्लभदास सूरत (गुजरात)
49. श्री कुंवरजी विटठलभाई मेहता, सूरत (गुजरात)
50. श्री कालीदास मोहनलाल बैंकर्स अहमदाबाद (गुजरात)
51. सेठ जुगलदास दामोदर दास रायपुर, अहमदाबाद (गुजरात)
52. सेठ चुम्मन लाल जीवाभाई शाहपुर, अहमदाबाद (गुजरात)

दिन के वर्तमान काल को वैज्ञानिक घंटों, मिनटों और सैकंडों में नापते हैं । भारतीय शास्त्र में दिन का विभाजन इस प्रकार किया है :-

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तुतः कला ।
त्रिशंत्कला मुहूर्तः स्यावहोरात्रं तु तावतः ।। मनु 1-94 ।।

आँख झपकने के काल को निमेष कहते हैं जोकि 0.17 सैकंड के बराबर होता है :-

18	निमेष	= 1	काष्ठा	= 3.186 या	3.2 सैकेंड
30	काष्ठा	= 1	कला	= 1.6 मिनट	= 96 सैकेंड
30	कला	= 1	मुहूर्त	= 48 मिनट	
30	मुहूर्त	= 1	दिन एवं रात	= 24 घंटे	= 1440 मिनट

ग्यारहवें अधिवेशन की नगरी आगरा

आगरा शहर उत्तर प्रदेश के प्रमुख नगरों में से एक है । आगरा शहर विश्व के सातवें आश्चर्य ताजमहल, लालकिले, फतेहपुर सीकरी आदि मुगल शासन काल की भव्य इमारतों के लिये विश्वप्रसिद्ध है । यहां आधुनिक काल में भी बनी दयालबाग की इमारत भी देशी-विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है ।

जब आगरा मुगल शासन काल की राजधानी थी, विशेषकरके मुगल बादशाह अकबर, जहांगीर और शाहजहां के भी जमाने में, तो मुगलों ने अपनी सुरक्षा तथा नगर की सुरक्षा के लिये मुसलमान फौजों के अतिरिक्त हिन्दुओं की फौजें भी स्थापित की थी, जिनमें कुरमियों की भी फौजें थीं । ये कुरमी वहां पूर्वी यू० पी० जैसे अवध आदि क्षेत्र से फौज में भर्ती होने के लिये बुलाये गये थे इसलिये इन्हें अभी तक स्थानीय बुजुर्ग लोग पुरविये बोलते थे, इसी प्रकार इटावा (यू० पी०) में बसे कुरमी भी पुरविये कहलाये और उनका मशहूर पुरविया टोला अभी भी इटावा में कुरमी बहुल मोहल्ला है । मजे की बात यह है कि जबकि कुरमी प्राचीन काल से कृषि-कार्य से जुड़ा रहा है फिर भी आगरा और इटावा में कुरमी शहर में ही बसा मिलेगा, वहां के गांवों में खेती करता हुआ एक भी पुराना परिवार नहीं मिलेगा । कारण स्पष्ट है कि उस जमाने के शासकों ने इन्हें अपनी फौजों में भर्ती किया था वे बाद में वहीं बस गये और उनके वंशजों ने उन शहरों में जो भी व्यवसाय या धन्धा हाथ लगा, अपना लिया ।

आगरा में मुगल जमाने में कुरमी लोग फौज में भर्ती होने के अलावा, मुगल लश्करों को खाद्यान्न-सामग्रियां आदि सप्लाई करते थे , इसलिये धनाढ्य बन गये । आगरा का सुल्तानगंज मोहल्ला और अन्य मोहल्ले और बड़े-बड़े भूखण्डों के मालिक कुरमी हो गये थे । इस प्रकार कुरमियों के कई रईस परिवार इटावा और आगरे में हुये। ये कुरमी फौज के साथ दूर-दूर तक गये । जैसे बंग्लादेश बनने तक ढाका हवाई अड्डा, आम जनता में कुरमीटोला हवाई अड्डा, के नाम से प्रसिद्ध था । जबकि सरकारी नाम कुछ और था क्योंकि जिस स्थान पर वह हवाई अड्डा बना था उस पर पहले मशहूर कुरमी टोला बसा हुआ था । बस्तियां हटा दी गई पर पुराना नाम बहुत बाद तक लोगों की जवान पर चलता रहा और ऐतिहासिक प्रमाण का संकेत देता रहा । जैसे दिल्ली के चांदनी चौक पर घंटाघर गिरे पचासों वर्ष हो गये पर वह स्थान अभी भी बुर्जुगों की जवान पर घंटाघर वाली जगह ही कहलाती है । स्वामी श्रद्धानन्द जी की मूर्ति स्थापित हो जाने पर भी उनका नाम अभी भी घंटाघर की जगह न ले सका।

बात आगरा की चल रही थी । वहां के सभी पुराने कुरमी जयसवार कुरमी हैं । कलयुगी भीम प्रोफेसर राममूर्ति नायडू की सहायता और प्रेरणा से इसी शहर में **'कूर्मि क्षत्रिय राममूर्ति पाठशाला'** खोली गयी थी ।

आगरा के स्वजातीय प्रमुख परिवार

आगरा में अपने स्वजातीय मुख्यतः जयसवार कूर्मि क्षत्रिय और उनके पूर्वज मुगलों के जमाने में देहली के शाहदरा, (शाह दाराशिकोह के नाम पर,) में बसे थे उनकी आबादी मुख्यतः मुहल्ला नौवस्ता, सुलतानगंज और यमुनापार नुनहाई, में है जो तब एक गांव था पर आज एक प्रसिद्ध औद्योगिक नगरी बन गया है ।

पहले जमाने से वहां के अपने स्वजातीय कुरमियों के दो घराने विशेष रूप से जाने जाते हैं । मास्टर कन्हईलाल अंग्रेजों के जमाने में आगरा कालिज के प्राध्यापक थे और शिक्षा के क्षेत्र में बड़ी ख्याति रखते थे । उनके वंश में उनके पोते रायसाहब अम्बाप्रसाद, म्युनिसपल कमिश्नर हुये, जो कि आगरा के सुप्रसिद्ध दीवानी अधिवक्ता थे । वे पीलीभीत के रायबहादुर बहादुर सिंह के दामाद थे । रायसाहब के तीन सुपुत्रों में ज्येष्ठ स्व० गजेन्द्रसिंह एडवोकेट उनके भी तीन सुपुत्र ले० कर्नल प्रदीप कुमार सिंह, सुबोध कुमार सिंह, तथा प्रवीन कुमार

सिंह एडवोकेट हैं । द्वितीय डा० अमरेन्द्र सिंह एम.बी.बी.एस. तथा तीसरे श्री शैलेन्द्र सिंह इंजीनियर (सेवानिवृत्त) हैं । उन तीनों का बड़ा भरा-पूरा परिवार है । नौवस्ता में स्व० श्री ध्रुवनारायण सिंह वर्मा पूर्व सदस्य विधान कौंसिल का परिवार भी प्रसिद्ध है । कूर्मि क्षत्रिय समाज, आगरा के वर्तमान अध्यक्ष, डा० अमरेन्द्र सिंह हैं ।

राय साहब अम्बाप्रसाद के एक भाई बाबू कैलाशनाथ मुख्तार थे, वे दीवानी बार एसोसियेशन के अध्यक्ष रहे । उनके दो पुत्र ई० यशेश्वरसिंह यू.पी.एस.ई.बी. में कार्यरत हैं तथा दूसरे विष्णुनारायण सिंह, बम्बई के श्री जगदीश शरण कश्यप के बहनोई हैं, वे नागदा (म.प्र.) में बिरला मिल्स में कार्यरत थे । दोनों का भरापूरा परिवार है और वे हर दृष्टि से सम्पन्न हैं ।

सुल्तानगंज में **बुद्धसिंह छोटेलाल** की पुरानी गद्दी और बाग हैं । कहा जाता है कि कभी सुलतानगंज और अन्य मुहल्लों की ज्यादातर जायदाद इसी परिवार की थी । इस परिवार के पोते बा० नन्हूप्रसाद आगरा के बड़े प्रतिष्ठित रईस थे, उनके एक मात्र पुत्र श्री बाबूलाल उन्हीं के जीते मर गये थे । यह गद्दी **"चावल वालों"** के नाम से दूर-दूर तक विख्यात थी । इस परिवार की रिश्तेदारियां इटावा, चुनार (मिरजापुर) और कलकत्ता शहर में हैं ।

नुनहाई में लाला चेतराम, चौ० हरनारायन और चौ. विशम्भर नाथ, ठेकेदार रामचन्द्र पुराने रईस थे । नयों में कई दाल मिलों के मालिक, ला० राजकुमार सर्राफ और उनके पुत्र डा० इन्द्रकुमार, **बलवन्त राजपूत कालिज** के मैंनेजमेंट विभाग के प्रोफेसर हैं । अनेक और है सबका विवरण यहां देना सम्भव नहीं है ।

लाला श्रीराम आगरा से अपना व्यापार दिल्ली ले आये और वहां से बम्बई ले गये । आज उनके पुत्र श्री जगदीश शरण कश्यप प्रसिद्ध उद्योगपति हैं । ननुहाई, नौबस्ता मोहल्ले में अनेक कुरमी परिवार रह रहे हैं । ये सब जयसवार कुरमी हैं ।

आगरा ऐतिहासिक इमारतों के अलावा कुछ और चीजों के लिये भी मशहूर हैं । जैसे फाउंड्री का सामान, सैनेटरी पाइप, कवर आदि, डीजल इंजन, डीजल जनरेटर, चमड़े के जूते तथा अन्य सामान, पेठा और दालमोठ और वहां के खलीफे और पागलखाना के लिये भी देश में आगरा बेजोड़ नगर है ।

महासभा की आर्थिक दशा

आगरा निवासी, श्री ध्रुवनारायण सिंह वर्मा, पूर्व सदस्य, विधान परिषद (उ. प्र.) ने **"महासभा की आर्थिक दशा"** नामक शीर्षक से एक लघु पुस्तक, मई 1984 में **सत्य प्रकाशन,** 35/306 नौबस्ता, आगरा - 282002 से महासभा का 90 वर्षीय ऐतिहासिक विवेचन करते हुये प्रकाशित की, जिसमें वर्णित निम्नलिखित बातों का यहां उल्लेख करना आवश्यक है :-

"अखिल भारतीय कूर्मि महासभा की कार्यसमिति ने 10 अगस्त 1980 को दिल्ली में हुई बैठक में कूर्मि जाति एवं महासभा का इतिहास लिखने के लिए डा० दिलावर सिंह जयसवार के संयोजकत्व में एक आठ सदस्यीय समिति बनायी थी, जिसका एक सदस्य मैं भी था । डा० जयसवार के नाम से आधे पृष्ठ का निःशुल्क विज्ञापन मासिक **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'** में अक्टूबर 1980 से जून 1981 तक छपता रहा लेकिन संयोजक के रूप में इस समिति की बैठक कभी नहीं बुलायी गई। इस तरह इतिहास लिखने की दिशा में प्रगति शून्य रही ।"

उपयुक्त बात की सफाई में यह बताना आवश्यक है कि लेखक के विज्ञापन द्वारा निवेदन पर किसी भी स्वजातीय बन्धु अथवा समिति के सदस्य ने कोई भी प्रकाशन योग्य सामग्री न तो लेखक, डा० दिलावर सिंह जयसवार के पास भेजी और न इस कार्य के लिए अन्य प्रकार से कोई मदद या सहयोग प्रदान किया । ऐसी स्थिति में समिति की बैठक बुलाना एक औपचारिकता मात्र निभाना होता, पर इतिहास लेखन में कोई प्रगति होने की सम्भावना नहीं लगी थी । लेखक ने स्वयं सैकड़ों पुस्तकें पत्रिकायें खरीद कर और उत्तर प्रदेश, बिहार, सी० पी०, बंगाल और मद्रास एवं बम्बई प्रेजीडेन्सी के अनेक नगरों के पुस्तकालयों में जाकर जाति सम्बन्धी जानकारी एकत्र की

जहाँ-जहाँ कुरमी काफी संख्या में बसे हुए हैं । आजादी से पूर्व की जनगणना रिपोर्टस, सेटिलमेन्ट रिपोर्ट्स, प्राप्त की उन शहरों के गजेटियर्स, विषय सम्बन्धी सैकड़ों पुस्तकें एवं पत्रिकाओं का अवलोकन एवं गूढ़ अध्ययन कर इस पुस्तक के योग्य सामग्री जुटाने में यह लेखक कहाँ तक सफल हुआ है यह तो सुधी पाठकगण् ही बता पायेंगे।

मुझे खुशी है कि महासभा ने जो दायित्व इस पुस्तक के लेखक को सौंपा था उसे वह लगभग 14 वर्ष बाद पूरा करने जा रहा है और ऐसे अवसर पर, अर्थात महासभा के शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में स्मृति ग्रंथ के रूप में पूरा कर रहा है । वह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा सर्वरूपेण उचित अवसर है जबकि ऐसे ग्रन्थ का प्रकाशन नितान्त आवश्यक है । अतः बिलम्ब वाली कमी स्वतः एक अच्छे रूप में परिणत होकर समयानुकूल अधिक लाभकारी बन गयी है । खेद है कि श्री ध्रुव नारायण सिंह वर्मा इस समय हमारे बीच नहीं हैं । वे इस अवसर पर इस ग्रन्थ के प्रकाशन से बड़े संतुष्ट होते । उनकी पुण्य आत्मा को प्रभु शान्ति प्रदान करे । वे विद्वान व्यक्ति थे उनका अपना मुद्रणालय है और उनके पुत्र बड़ा अच्छा कार्य कर रहे हैं । ये सब प्रतिष्ठित जयसवार कूर्मि हैं।

श्री ध्रुव नारायण सिंह वर्मा अपनी उक्त लघु पुस्तिका के पृष्ठ 4 व 5 पर लिखते हैं

आगरा (उत्तर प्रदेश) में 29, 30 व 31 दिसम्बर 1916 को हुए ऐसोसिएशन के 11वें अधिवेशन की मुद्रित रिपोर्ट मुझे उपलब्ध है । इसकी 31 दिसम्बर 1916 की कार्यवाही में निम्नलिखित अभिलेख हैं ।

"अधिवेशन के मददगार वयोवृद्ध सैनिक बाबू जनकधारी लाल राय साहिब (उपाध्यक्ष नगर पालिका, दीनापुर पटना) ने ऐसोसिएशन की निधि के लिये सावधानीपूर्वक अपील की, जिसका बिरादरी ने गरम जोशी से स्वागत किया और उसी समय 833 रुपयों का चन्दा इकट्ठा हो गया ।"

(उक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 20 पैरा 10 अंग्रेजी से अनूदित है)

"उपर्युक्त चन्दा उस समय किया गया था । जब कि एक तोला सोने का भाव 20 रुपया था । आज सन् 1984 में उतना सोना 2,000/- में बिक रहा है । रुपये की कीमत सौगुना कम हो गयी है । चन्दा आज के रुपये के मूल्य में 83,300 रुपयों का आंका जा सकता है ।" यदि सन् 1994 के वर्तमान सोने का मूल्य से उसे आंका ज़ाय तो 5000 रुपये के तोले के दर से वह 833 रुपयों की राशि·आज 4,16,500 रुपयों के बराबर हुई । क्या महासभा आज एक अधिवेशन में चार या सवा चार लाख रुपये चन्दे में एकत्रित कर सकने की आशा रखती है?

बारहवां अधिवेशन

महासभा का 12 वां अधिवेशन 30, 31 मार्च तथा 1 अप्रैल सन् 1918 ई० को बढ़पुर (फर्रुखाबाद) में हिज हाईनस सर श्रीमन्त मल्हार राव पंवार, महाराजा देवास (द्वितीय श्रेणी) राज्य के कनिष्ठ भ्राता (बाद में महाराजा बने) श्रीमन्त सदाशिवराव खासे साहिब पंवार, तब ग्वालियर स्टेट के गृह-सदस्य, की अध्यक्षता में सानन्द, और सबको प्रेरित करता हुआ, सम्पन्न हुआ।

इससे पूर्व महासभा के जितने अधिवेशन हुये थे, वे कोई पूर्व निश्चित अथवा पूर्व सुनियोजित कार्यक्रम (एजेण्डा) के अनुसार संचालित नहीं हुये थे। उन सब अधिवेशनों के आयोजन और कार्यक्रम-निर्धारण में विशिष्ट और प्रमुख भूमिका स्थानीय पदाधिकारियों और उत्साही व्यक्तियों की होती थी। प्रारम्भ के लगभग सभी अध्यक्षीय भाषण अंग्रेजी में तथा लिखित होते थे। अन्य सब वक्ताओं के भाषण एक-दो को छोड़कर सब हिन्दी में होते थे, और बहुधा वे भाषण सारगर्भित और भावुकतापूर्ण होते थे, इनमें विगत कार्य-कलापों की समालोचना या समीक्षा की सर्वथा कमी रहती थे। लम्बे-चौड़े उद्देश्यों वाले अनेक प्रस्तावों को उपस्थित प्रतिनिधिगणों की करतल-ध्वनि से पारित तो करा लेते थे, पर जातीय शीर्षस्थ पदाधिकारी आगे चलकर यह ख्याल न कर पाते थे कि उन प्रस्तावों में कितनों का कार्यान्वयन हो पाया है और कितनों का नहीं। यदि नहीं हो पाया है, तो पता लगाना चाहिये था कि क्यों नहीं हो पाया। उसके कियान्वयन के लिये क्या उपाय अपनाये जायें, यह सब सोचने-समझने और करने की व्यवस्था न थी।

परिणाम यह रहता था कि समाजोत्थान में न कोई प्रगति होती दिखाई पड़ती थी और फलतः न प्रचलित कुरीतियों में कमी आती थी। कूर्मि जाति की स्थिति का वही हाल था - "ढ़ाक के तीन पात" जैसी। यह सब देखकर समाज के शुभचिन्तकों ने इस समस्या के समाधान के लिये आवश्यक कदम उठाये।

इस अधिवेशन में श्रीमन्त पंवार ने सर्वथा क्रान्तिकारी रुख अपनाया। आपके अभिभाषण का एक-एक वाक्य सारपूर्ण अतिशय प्रेरक, मार्गदर्शक एवं लाभप्रद था। जैसे श्रीमन्त खासे साहिब पंवार ने कहाः-

"जब तक हम स्वयं अपने कार्यों एवं उद्देश्यों के निरन्तर समालोचक नहीं बने रहेगे और जब तक सच्चे वैज्ञानिक की प्रवृति एवं दृष्टिकोण नहीं अपनायेंगे, तब तक वास्तविक सत्य का उद्घाटन कर सकना हमारे लिये सम्भव न हो पायेगा।"

अध्यक्ष महोदय ने एकता पर जोर देते हुये कहा - "In my opinion from the stand point of our association, the crying need of the hour is greater assimilation and blending together."

अर्थात् -"मेरी सम्मति में, हमारी महासभा की दृष्टि से वर्तमान कार्य की सबसे बड़ी आवश्यकता अधिक से अधिक एकता, मेल-मिलाप की, सब को एक सूत्र में बंध जाने की है।"

अध्यक्ष महोदय ने इस बात की ओर संकेत भी किया कि महासभा का गठन उत्तर भारत में हुआ। उसके कार्यकलापों का क्षेत्र बहुत कुछ उत्तर भारत तक ही है। उसके लगभग सब कार्यकर्ता भी उत्तर भारत के हैं। महासभा के विगत सभी अधिवेशन भी यू० पी० में आयोजित किये गये, मात्र एक अहमदाबाद में हुआ, और वह भी काफी अरसे बाद सन् 1913 ई० में। हॉ! अध्यक्ष जरूर कई बार दक्षिण भारत के लिये गये। उन्होंने कहा कि मुझे प्रतीत होता है कि अभी तक किसी व्यापक, निश्चित एवं सुदृढ़ नींव पर आधारित कोई ऐसी कार्य-प्रणाली नहीं अपनायी गई हैं जो बिखरी हुई समस्त उपजातियों को एकजुट कर देती। अध्यक्ष महोदय का सुझाव था कि उत्तर भारत के प्रतिष्ठित पुरुषों, वक्ताओं और प्रचारकों को दक्षिण में समय-समय पर परिभ्रमण करना चाहिये, और वहां पर सभायें रखना चाहिये तथा महाराष्ट्र मैसूर एवं मद्रास में महासभा के अधिवेशन आयोजित करना चाहिये।(अखिल भारतीय यादव महासभा ने 1994 ई० में अपना अधिवेशन मद्रास जाकर आयोजित किया)।

अध्यक्ष महोदय ने प्रान्तीय और केन्द्रीय ब्रिटिश सरकार से जो पत्र-व्यवहार किये और सतत् प्रयत्न किये, जिसके परिणामस्वरूप ही **'कुरमी पलटन'** के गठन की अनुमति दी गई । उन पत्रों के एक पत्रोत्तर का हिन्दी-अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :-

L.A.F.Z.. 2010

कार्प्स जी डिपार्टमेंट

मेमोरैंडम

डी० आ० ओ० लखनऊ श्रीमंत (हि० हा०) सदाशिवराव पंवार

सभापति, कूर्मिक्षत्रिय कान्फ्रेंस, फर्रुखाबाद

न० 566 स्थान लखनऊ, दिनांक 3 मई, 1918 ई०

हिज एक्सीलेंसी भारत के वायसराय (बड़ेलाट) और गवर्नर जेनरल के पास आपका तारीख 31 मार्च सन् 1918 को भेजा हुआ आवेदन पत्र मिला एडजुटेण्ट जेनरल के पत्र नं०3269 (A-G-2) तारीख 23 अप्रैल 1918 से कूर्मियों की एक खास-कम्पनी (पल्टन) स्थापित करने की स्वीकृति हुई है जो 2/11 राजपूत, सीतापुर के साथ शामिल रहेगी । कूर्मि रिक्रूट, जो आवश्यक कद के हैं, और दूसरी तरह से योग्य हैं, उस पल्टन में भेजे जा रहे हैं ।

वाइसराय भवन

शिमला

अध्यक्ष महोदय ने जातीय उत्थान के लिये शिक्षा प्रसार को प्रोत्साहन देने के लिये अनेक स्थानों पर नये स्कूल और छात्रावासों का निर्माण करवाया । इस अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि सब जिलों में महासभा की शाखा-सभायें स्थापित की जायें । अनिवार्य बचत-योजना और जातीय कोष स्थापित किया जाय तथा स्वजातीय बन्धुओं की देश स्तर पर परिचय-निर्देशिका प्रकाशित की जाये ।

इस अधिवेशन में स्त्री-शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा के विस्तार और कृषि-क्षेत्र में वैज्ञानिक यन्त्रों के प्रचलन आदि पर विचार किया गया । पंचायत राज की व्यवस्था और श्रमिकों की दशा सुधारने के लिये आवश्यक कदम उठाने पर भी विचार-विनियम हुआ और समुचित निर्णय लिये गये ।

इस अधिवेशन में एक ऐसे कूर्मि-रत्न के सन् 1917 में निधन का दुःखद समाचार पता चला, जिसने कूर्मि क्षत्रिय समाज के संगठन के गठन, और उसके साथ-साथ कार्य करते हुये कूर्मि समाज के उत्थान में तरह-तरह प्रयास किये । इस जाति के वे महापुरुष थे लखनऊ के प्रसिद्ध समाजसेवी, **"कुर्मी सदर सभा"** और **'कुरमी समाचार'** पत्र के जन्मदाता एवं पोषक **चौधरी रामाधीन सिंह** । चौधरी साहिब का नाम कूर्मि क्षत्रिय जातीय इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा और आगे आने वाली संतति उनके जातीय कार्यों से प्रेरणा लेते हुये उनको सदैव कृतज्ञतापूर्वक और श्रद्धाभाव से स्मरण करेगी । वे वास्तव में कुरमी संगठन के जनक और एक पुरोधा थे ।

कलकत्ता का सन् 1917 का देसी घी कांड

(कलकत्ता-लेखक ज्यूफ्फरी मूरहाउस, प्रकाशक वील्डेन एवं निकलस, 5 विस्सले स्ट्रीट कलकत्ता पृष्ठ 170-171)

सन् 1890 से 1920 के मध्य कलकता में मुट्ठी भर मारवाड़ी थे जो कलकता में बस गये थे , उनकी आबादी 400 प्रतिशत बढ़ गयी । प्रारम्भ में वे शहर में महाजनी और छोटी-मोटी दुकानदारी करते थे । उसके बाद जमीन-जायदाद की ख़रीद-फरोख्त में लगे और फिर तो बड़े औद्यौगिक प्रतिष्ठानों का स्वामित्व उनके हाथों में आता चला गया । फिर उन पर इतना धन-दौलत हो गया कि जब कलकत्ता मे इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट की ओर से बड़ी-बड़ी सड़कें काटी गयीं तो इन मारवाड़ियों ने उन सड़कों के दोनों ओंर की जमीनें खरीद डाली । प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया, इसमें तो इनके भाग्य खुल गये, पर कभी-कभी वे कुछ चक्करों में फंसे भी मिलते थे ।

सन् 1917 के बदनाम घी काण्ड में कुछ मारवाड़ियों को रंगे हाथ पकड़ा गया। सन् 1917 में अफ़वाह फैलती गयी कि कलकत्ता मिलावटी देशी घी के व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र बनता जा रहा है। सरकार का ध्यान इस ओर गया उसने देशी घी में मिलावट करने वालों को पकड़कर दंड देना चाहा। कलकता में घी का सारा व्यापार मारवाड़ियों के हाथों में था। जगह-जगह छापे मारे गए और गुणवत्ता के मूल्यांकन के लिये घी के नमूने लिये गए। 67 नमूनों में से केवल 7 नमूने शुद्ध असली घी के पाये गये। एक नमूने में 5 प्रतिशत देसी घी था बाकी 59 नमूनों में विभिन्न मात्राओं में जानवरों की चर्बी की मिलावट की गयी थी।

कलकत्ता की जनता को जब इस घी-घोटाले की पूरी जानकारी मिली तब वे समझ गये कि इन सब मिलावट करने वालों ने सारे शहर के लोगों को चर्बी मिला घी अनजाने में खिलाकर उनका धर्म भ्रष्ट कर दिया है। उन्होंने बनारस से ब्राह्मणों को बुलवाया और उनसे पूछा गया कि अब वे क्या प्रायश्चित करें। कई दिनों के विचार-विमर्श के पश्चात् उन्होंने यह निर्णय दिया कि मिलावटी घी खाने वाले सब लोग हुगली नदी में पूजा-स्नान आदि 4 दिन तक करेंगे, फिर उपवास रखेगें।

बंगाल के गर्वनर लार्ड रोनाल्ड शाये ने देखा कि 19 अगस्त् 1917 को लगभग 3000 ब्राह्मण हुगली तट पर कलकत्ता के अपवित्र हुये हिन्दुओं की पूजा-शुद्धि करा रहे थे। उधर दोषी मारवाड़ियों पर सरकार की ओर से तथा उनकी ऐसोसियेशन की ओर से एक लाख रुपये तक प्रति व्यापारी दंड़ निश्चित किया गया। वे मारवाड़ी कलकत्ता के अन्य हिन्दुओं से कुछ समय के लिये अलग-थलग हो गये। फलस्वरूप स्वदेशी आन्दोलन में भी वे आगे नहीं आये और जब लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया तो उसके विरोध में जनता द्वारा वायकाट में भी सम्मिलित नहीं हुये। मारवाड़ियों से बंगाली मुसलमान भी सख्त नाराज थे कि गौ-बध पर ये घड़ियाली आंसू बहाते थे पर गाय-सुअर की चर्बी घी में मिलाकर उन्होंने सब का जीना हराम कर दिया था।

बारहवें अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय कान्फ्रेन्स फर्रुखाबाद के प्रधान देवास राज्य द्वितीय श्रेणी के श्रीमन्त सदाशिव राव खासे साहब पंवार का संक्षिप्त जीवन वृत्त :-

जन्म और बाल्यावस्था

श्रीमन्त सदाशिवराव जी खासे साहब पंवार के उपनाम से भी प्रख्यात थे, उनका जन्म देवास राज्य की द्वितीय श्रेणी की राजधानी में सन् 1887 ई० में हुआ था। इनके पूज्य पिताश्री, स्व० राजकुमार जीवाजीराव जी रावसाहब के नाम से विख्यात थे, वे देवास राज्य की द्वितीय श्रेणी के स्वर्गवासी राजा श्रीमान हैवतराव वापूसाहब के दत्तक पुत्र थे। राजकुमार जीवाजी राव के गोद लेने के थोड़े ही दिनों बाद राजा हैवतराव की रानी गर्भवती हुई और उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो राजा की मृत्यु पर गद्दी का अधिकारी हुआ। राजा जीवाजीराव के दो पुत्र और एक पुत्री थीं। सबसे बड़े पुत्र जीवाजीराव के भाई स्व० राजा नरायनराव दादासाहब की मृत्यु पर, उनके कोई सन्तान न होने के कारण जो गद्दी पर बैठे, वह उनकी पहली स्त्री से थे। और श्रीमन्त सदाशिवराव और उनकी बहिन श्रीमती द्रोपदीबाई उनकी दूसरी पत्नी श्रीमती यशोदाबाई साहिबा से थे।

पिताजी की मृत्यु और भाई का अलग होना

राजकुमार जीवाजीराव जनता में रावसाहब के नाम से प्रसिद्ध थे। उनकी मृत्यु सन् 1891 ई० में हुई। दोनों भाइयों में जो घनिष्ट भ्रात्र प्रेम था उसको देवास की जनता आज तक आनन्द के साथ स्मरण करती है। दोनों भाइयों का रहन-सहन तथा लालन-पालन उनके पिता के घर में उस समय तक साथ-साथ होता रहा जब तक कि बड़े भाई अपने चाचा, राजा नरायनराव दादासाहिब की मृत्यु पर राज्य कार्य को अपने हाथ में लेने के लिए राजमहल में बुलाए गए। राजकुमार जीवाजीराव की मृत्यु अपने राज्याधिकारी भाई की मृत्यु के केवल एक माह पूर्व हुई थी।

 राजकुमार सदाशिवराव की शिक्षा :- कुमार सदाशिवराव को नियमबद्ध शिक्षा मिले इसके लिए कोई उपाय उठा नहीं रखा गया था, तद्पश्चात वे डेली कालिज में पढ़ने के वास्ते इन्दौर भेजे गए । वहां 3½ वर्ष रहे और इसी समय में वे उस सयम स्कूल के मुख्य ध्येता छात्रों में गिने जाने लगे ।

विवाह

सन् 1904 ई० में श्रीमन्त खासे साहब महाराज का विवाह श्रीमती जीजीबाई साहिबा से हुआ । वे इतिहास प्रसिद्ध स्व० सरदार मानाजीराव अगडे की अकेली पुत्री थी ।

पत्नी

श्रीमती जीजीबाई साहिबा की माता की मृत्यु उनकी बाल्यावस्था में ही हो गयी थी अतः उनका लालन-पोषण उनकी फूफी महारानी बड़ौदा के पास रहकर हुआ । उन्होंने बड़ौदा राज्य महल में शिक्षा पाई । विवाह के समय उनकी अवस्था केवल 15 वर्ष की थी और तब तक उन्होंने उच्च शिक्षा की आवश्यक शैली का अर्जन कर लिया था और हर प्रकार से एक योग्य पत्नी कहलाने में सक्षम थीं । वे अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि की थीं ।

विवाह

विवाह संस्कार बड़ौदा में बड़ी धूमधाम से हुआ । महाराजाधिराज गायकवाड़ और उनकी महारानी ने कन्या को सदैव अपनी पुत्री के समान समझा, उन्होंने बड़े उत्साह के साथ विवाह के प्रत्येक कार्य में भाग लिया था ।

उच्च शिक्षा उपार्जन

विवाहोपरान्त राजकुमार सदाशिवराव ने अजमेर जाकर राज महाविद्यालय (चीफ्स् कालिज) में पढ़ना आरम्भ कर दिया। यहां आपने डेढ़ वर्ष तक रहकर राज महाविद्यालय की उच्चतर उपाधि (Higher Chiefs College Diploma) को प्राप्त कर लिया । वहां से आप देहरादून गये । और राजकुमारों की सेना में सम्मिलित हो वहां की युद्ध विद्या प्रणाली की शिक्षा सन् 1906 ई० में समाप्त की । और तदोपरान्त आप देवास को लौट आये ।

देवास में अवैतनिक सेवा

आप देवास के दीवान होने को बाल्यावस्था से ही चुने गये थे इसी हेतु सन् 1907 में आप राजमंत्री के सहायक नियुक्त हुए और इस पद पर आपने अप्रैल सन् 1908 तक काम किया ।

उच्च शिक्षा के लिये इंगलैंड प्रस्थान

सन् 1908 में श्रीमन्त खासे साहब अपने परिवार सहित उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु इंगलैंड पधारे । इंगलैंड में आप करीब 6 वर्ष तक रहे इस समय में आपने लंदन विश्वविद्यालय से मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा पास की और लिंकन साहब के नीति आश्रम (Inn) में प्रवेश किया । श्रीमान खासे साहब बैरिस्टरी की अन्तिम परीक्षा में बैठने वाले थे पर देवास राज्य में आपकी आवश्यकता हुई और 1914 ई० में उन्हें भारत लौट आना पड़ा ।

दीवान-देवास (द्वितीय श्रेणी) बनना

21 मार्च सन् 1914 ई० को उन्होंने दीवान पद ग्रहण किया और सन् 1917 ई० के अन्त तक आप उस पद पर रहे । इस अल्पावधि में आपने सुधार के अनेक कार्य किये जिनकी देवास में बड़ी प्रशंसा की गयी ।

मरहठा जाति की सेवा

श्रीमन्त खासे साहब ने अपना जनता सम्बन्धी कार्य सन् 1916 ई० के अन्त से आरम्भ किया जब वे मरहठा विद्यापरिषद के प्रधान नियुक्त हुए जो सितारा में हुई थी । इस अपूर्व प्रतिष्ठा की प्राप्ति के प्रथम ही आपने मरहठा जाति के लिये देवास में एक शिक्षा केन्द्र खोलने में भागीदारी की । मरहठा छात्रों के लाभार्थ आपने शीघ्र

ही एक छात्रावास स्थापित किया जबकि इस छात्रावास का विचार सर्वप्रथम श्रीमान महाराजाधिराज श्री महाराज सिंधिया ग्वालियर नरेश को हुआ था ।

सन् 1917 से आपने अपना समय मरहठा जाति में विद्या प्रसार के लिए कई अमूल्य संस्थाओं को स्थापित करने में व्यतीत किया और शिवाजी महाराज की स्मृति हेतु जो केन्द्र पूना में खोला गया था इसके सुधार में मुख्य रूप से भाग लिया । आपने मरहठा जाति के प्रतिनिधि के चुने जाने का प्रस्ताव बिट्रिश सरकार के भारत विभाग के मंत्री मिस्टर मांटेगू से किया । मरहठा जाति सुधारक कार्यों में आपने सदा बड़े उत्साह से भाग लिया।

ग्वालियर स्टेट के होम मेम्बर

सन् 1918 के प्रारम्भ में आप ग्वालियर स्टेट में होम मेम्बर नियुक्त किये गए । आपको ग्वालियर जैसे बड़े राज्य में स्वयं सेवा करके अच्छा अनुभव प्राप्त हुआ । उसका लाभ देवास राज्य (द्वितीय श्रेणी) को बाद में मिला, जब वे वहां के महाराजाधिराज बनाये गये । महाराज सिंधिया अपने इस होम मेम्बर की अद्वितीय सेवा तथा उपलब्धियों से बड़े प्रसन्न थे ।

देवास (द्वितीय श्रेणी) राज्य के महाराजाधीश

सन् 1934 में बड़े भाई महाराज मल्हरराव पंवार के निधन पर 21 फरवरी 1934 को वे गद्दी पर बैठे सन् 1918 के अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय कान्फ्रेन्स के बारहवें अधिवेशन में फर्रुखाबाद तथा हरनौत, पटना (बिहार) के बीसवें अधिवेशन में सन् 1933 के अध्यक्ष पद पर आपको ही चुना गया था, तब आपने कूर्मि जाति के उत्थान के लिये पूरे मन से प्रयास किया । देवास नरेश तो आप बाद में बने । कूर्मि जाति का सौभाग्य था कि उसे आपका नेतृत्व प्राप्त हुआ, पर 2 दिसम्बर सन् 1943 ई० को इस शुभ चिन्तक के निधन से कूर्मि जाति के सामाजिक संगठन को बहुत बड़ी क्षति पहुंची ।

गंगवार, कटियार, कनौजियों तथा राठौर कूर्मि क्षत्रियों का इतिहास

श्री सतीशचन्द्र गंगवार, मूल निवासी फैजबाग, खेड़े, कुइँयां, जनपद फर्रुखाबाद के अनुसार प्रसिद्ध राजा जयचन्द जोकि पृथ्वीराज चौहान सगे मौसेरे भाई थे, गहरवार क्षत्रिय थे । गहरवार सूर्यवंशी और कश्यप गोत्रिय होते हैं । **मुहम्मद गोरी** ने जब कन्नौज के राजा **जयचन्द** और बाद में **पृथ्वीराज चौहान** को पराजित किया तो यही गहरवार क्षत्रिय कन्नौज से निकलकर खोर (वर्तमान शम्सावाद) में आकर बस गए । कुछ लोग गंगा के आस-पास के जनपदों-पीलीभीत, बरेली, बदायूं, शाहजहांपुर आदि में सामूहिक रूप में जा बसे । गंगा के इस पार वाले उस पार वालों को तथा उस पार वाले इस पार वाले इन लोगों को **'गंगापारी'** कहने लगे । कालान्तर में वही **गंगापारी** और अन्ततः **गंगवार** उपजातिबोधक नाम से ये कूर्मि क्षत्रिय लोग जाने-पहचाने लगे । इसका साक्ष्य भारतीय जनगणना 1901, 1911, 1921 एवं 1931 में मौजूद है ।

प्राचीनकाल में इस गंगापारी कुरमियों की खेती गंगा नदी की बाढ़ में नष्ट हो जाती थी, जानवरों को भी जल-प्रवाह बहा ले जाता है । सुरक्षा की दृष्टि से ये कुरमी कृषक गंगा नदी की कछार के क्षेत्र से ,जिसे कटरी कहते थे , निकलकर फर्रुखाबाद नगर में जो, मुस्लिम राज से पूर्व **भीष्मपुर** के नाम से विख्यात था, और गंगा नदी तट से काफी ऊँचाई पर स्थित था, बस गये । कटरी क्षेत्र से उनका निकास हुआ । अतः वे **कटियार कुरमी** कहलाये । गंगवार कुरमियों ने इन्हें पहाड़े (ऊँचे भू-भाग पर बसे हुए के कारण) के कुरमी कहना शुरु कर दिया।

आज भी फर्रुखाबाद जनपद के बुर्जुगों की जुमान से इनको **कटियार कुरमी** न कहकर **पहाड़े के कुरमी** जाति बोधक नाम निकलेगा । कनौजिया कुरमी भी गहरवारों के वंशज हैं और कन्नौज इनका उद्गम स्थान है। ये लोग मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से बचने के लिये उन्नाव, हरदोई, बरेली, शाहजहांपुर, पीलीभीत और बदायूं आदि जिलों में जा बसे । बदायूँ के 24 ग्रामों में राजा महीबाल के बंशज बसे हुये हैं । जिन्हें राठौर कूर्मि नाम से जाना जाता है । कभी इनमें बड़े जागीरदार, जमींदार और हाथी नशीन हस्तियां थीं । जमींदारी उन्मूलन से वे सब बातें समाप्त हो गईं अब वे अधिकतर सम्पन्न कृषक हैं और अनेक क्षेत्रों में तेज़ी से तरक्की कर रहे हैं । श्री सतीश चंद्र गंगवार, कूर्मि क्षत्रिय समाज दिल्ली, पूर्वी शाखा के वर्तमान अध्यक्ष हैं ।

तेरहवां अधिवेशन

महासभा का 13 वां अधिवेशन कानपुर (यू० पी०) में 19, 20 और 21 अप्रैल 1919 को कोल्हापुर नरेश, हिज हाइनेस सर श्री शाहू छत्रपति महाराज की अध्यक्षता में बड़े हर्षोल्लास के वातावरण में सम्पन्न हुआ। छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशज होने के कारण, कोल्हापुराधीश को अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के अधिवेशन में पधारने और अध्यक्ष पद को सुशोभित करने से उन्हें कुरमी समाज का स्नेह और आदर दोनों प्राप्त हुये। इससे उत्तरी भारत के कुरमियों और महाराष्ट्र के मराठों में बन्धुत्व सम्बन्ध और दृढ़ हुये और इन दोनों का सम्पर्क और आगे बढ़ा।

अब तक महासभा के जितने अध्यक्ष दक्षिण भारत के हुये थे, सब महानुभावों ने अंग्रेजी में भाषण दिये पर कोल्हापुर नरेश की बड़ी इच्छा थी कि मात्रभाषा मराठी होने पर भी अपना अभिभाषण हिन्दी में करें। यात्रा के दौरान वे हिन्दी में बोलने का अभ्यास भी करते रहे, पर वे हिन्दी ठीक से न बोल सके। अतः आपका हिन्दी में भाषण स्वामी परमानन्द जी ने पढ़ा। महाराजा कोल्हापुर ने अधिवेशन को बड़े मधुर तथा नम्र शब्दों में सम्बोधित करते हुये कहा :-

"प्रिय क्षत्रिय बन्धुओं,

मैं आप लोगों में से ही हूँ। या तो मुझे मजूर समझो, या तो खेती करने वाला समझो। मेरे बाप-दादा यही काम करते थे। मुझे बड़ा ही आनन्द होता है कि जिस काम को मेरे पूर्वज करते चले आ रहे हैं उसी काम के करने वालों ने मुझे आज अध्यक्ष के पद पर बुलाया है।.........., लेकिन अध्यक्ष पद के लायक न होने पर भी कृषक, मजूर और महत् पराक्रमी **महाराज शिवाजी** और महाराज की **महारानी ताराबाई** के वंश में होने से यह बड़ा मान मुझे दिया गया है।

महाराज कोल्हापुर ने उपस्थित प्रतिनिधियों को परामर्श दिया कि दूसरे आपको क्या कहते हैं इसकी चिन्ता न करो, आप उस वितण्डावाद में भी न पड़ो कि क्या हम पूर्वकात में क्षत्रिय थे क्या अमुक वंश से हमारा सम्बन्ध था। आप गुण कर्मों से सम्पन्न होकर क्षत्रिय बनें। नाम मात्र के क्षत्रियों की सूची में एक और नाम की वृद्धि न करें। कृषि कर्म करने पर भी क्षात्र-धर्म में कोई बाधा नही आती। उन्होंने पूछा-

"क्या कुरमियों में विधवा विवाह प्रचलित है ? यदि है तब मुझे बड़ी प्रसन्नता है। उन्होने यह भी बताया मैं कि ने युवराजों को कृषि विद्या की शिक्षा के लिये विलायत तथा प्रयाग आदि के स्कूलों में भेजा है।"

अध्यक्ष महोदय ने जो प्राचीन इतिहास के बारे में प्रकाश डाला, उसके मुख्य अंश इस प्रकार है:-

1. हम और आप जिस देश में रहते हैं, उस देश का नाम आर्यावर्त है। इसको आर्यावर्त देश इसलिये कहते हैं, कि आरम्भ में इसको आर्य लोगों ने बसाया था। आर्यों का प्रारम्भिक स्थान त्रिविष्टय अर्थात् तिब्बत था, आर्य प्रथम दो वर्णों में विभक्त थे, एक आर्यवर्ण, दूसरा दस्युवर्ण। वे सब एक ही पित्रों की सन्तान थे।
2. आर्यों के गुण कर्म स्वीकार करने से दस्यु लोग आर्य हो जाते थे, आर्य दस्युओं के गुण कर्म स्वीकार करने से दस्यु हो जाते थे। आर्यों की सामाजिक आवश्यकतायें जब अधिक बढ़ी उस समय आर्यों के सामाजिक कार्यों की पूर्ति के लिये चार वर्णों की कल्पना और संस्थापना हुई।
3. धर्माचरण से नीचे का वर्ण ऊपर के वर्ण को प्राप्त हो जाता है। और इसी प्रकार ऊपर का वर्ण अधर्माचरण से नीचे के वर्ण को प्राप्त हो जाता है। वैदिक समय से लेकर महाभारत के समय तक

छत्रपति शिवाजी महाराज और कुछ वंशज



श्रीमंत छत्रपती शिवाजी महाराज



श्रीमंत बापूसाहेब महाराज



श्रीमंत
छत्रपती शहाजी महाराज

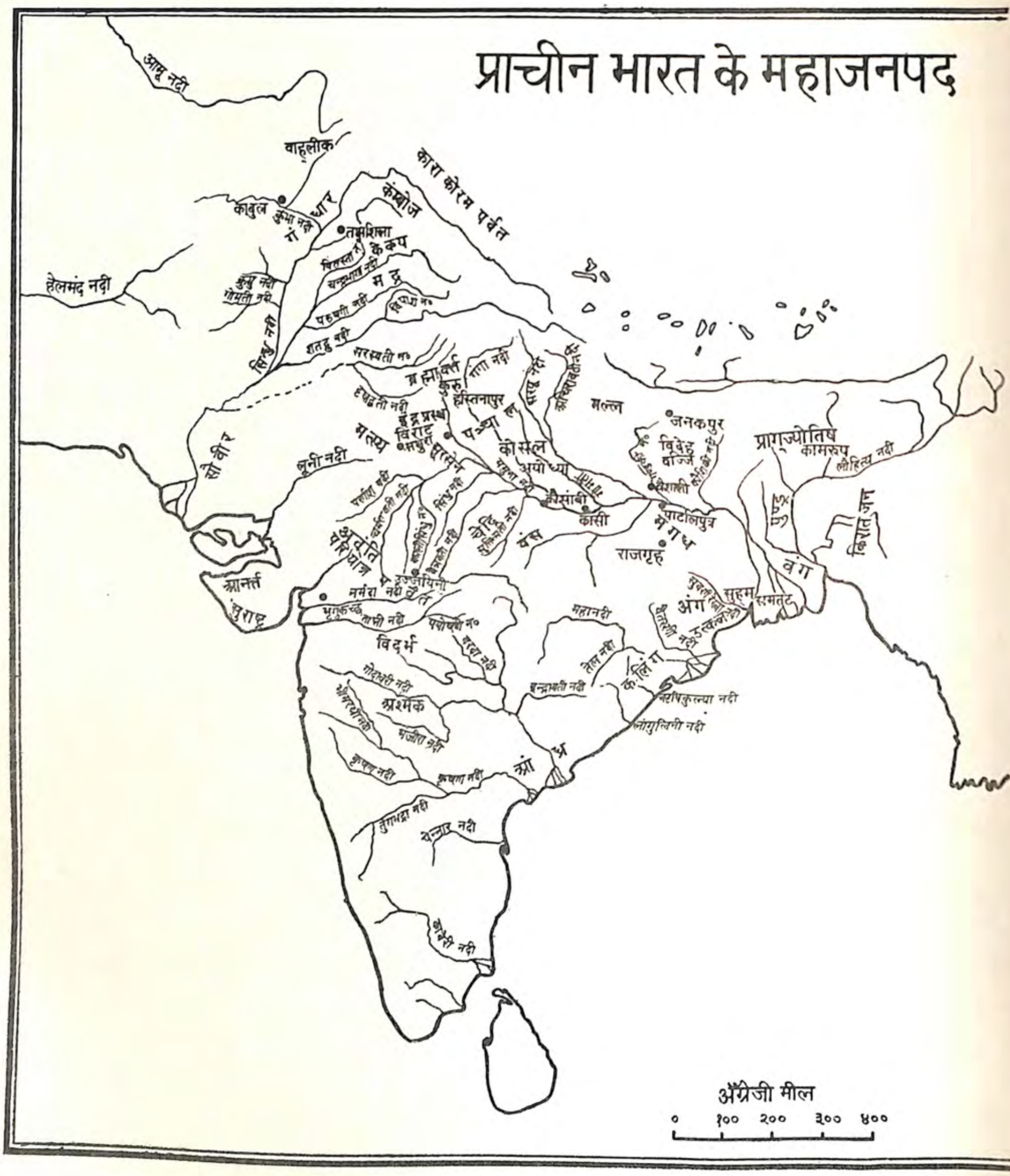


प्रिन्स छत्रपती शिवाजी महाराज



श्रीमंत छत्रपती राजाराम महाराज

प्राचीन भारत के महाजनपद



अधर्माचरण से नीचे के वर्ण को प्राप्त हो जाता है । वैदिक समय से लेकर महाभारत के समय तक यही मर्यादा रही है ।

4. वैदिककाल में प्रत्येक मनुष्य को इस बात की स्वतंत्रता थी कि वे जिस वर्ण के कर्तव्य-कर्म को करना चाहे उसको स्वीकार करें । वेदादि शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार प्रत्येक नर-नारी को था ।

5. यही कारण था कि वैदिक काल में वेदों के मन्त्र दृष्टा ऋषि सब वर्गों के लोग हुये हैं । यहां तक कि बहुत-सी स्त्रियां भी मंत्र-दृष्टा हुई उस समय आर्यावर्त स्वर्गधाम था ।

6. फिर शनैः शनैः लोग अपने-अपने वर्णों के कर्तव्य कर्मों से च्युत होने लगे । सामाजिक प्रबन्ध बिगड़ने लगा । कहां तक कहें अंतिम रूप में यह वर्ण व्यवस्था गुण कर्मों के बजाय जन्म पर आकर ठहर गई। इस प्रकार के नियम बनाकर स्मृतियों में मिला दिये कि आगे किसी को 'चें', 'में' करने का अवसर न मिले ।

7. इससे हिन्दुओं की जो दुर्गति हुई है, उसको इतिहास के पढ़ने वाले अच्छी तरह जानते हैं । इस समय हिन्दू जाति में चार वर्णों के स्थान पर पांच हजार जातियां बन गई हैं, जिसके कारण से हिन्दू जाति के सामाजिक बल का ह्रास हुआ है । प्रत्येक जाति का एक दूसरी जाति के साथ खान-पान का न सम्बन्ध है, न लग्न सम्बन्ध है । एक जाति के ऊपर अत्याचार होता है तो दूसरी सब जातियां आंखों से देखती हैं, अत्याचार से पीड़ित जाति की रक्षा के लिये अन्य जातियों के लोगों में जरा भी दया का भाव प्रकट नहीं होता ।

8. सत्य सिद्धान्त तो यह है कि मनुष्य मात्र एक जाति है । जाति का लक्षण शास्त्रकारों ने ऐसा लिखा है। **"समान प्रसवात्मिका जाति : ।।"** न्यायदर्शन 71/198 अर्थात जिसमें सादृश्य भाव, समान आकृति, समान उत्पति पाई जाये वह जाति है । इसी प्रकार व्याकरण शास्त्र में भी लिखा है कि **"आकृति अग्रहणाज्जाति"** जिसमें आकृति की समानता पाई जाय वह जाति है, जैसे मनुष्य, गाय, घोड़ा, हाथी, वट, पीपलादि वृक्ष ।

इस अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में से एक द्वारा विवाह-सम्बन्ध के लिये वर-वधू की न्यूनतम आयु क्रमशः 21 और 16 वर्ष स्वीकार की गईं । इस अधिवेशन वर्ष की अत्यन्त दुःखद घटना थी कि इससे एक सप्ताह ही पूर्व वैशाखी के दिन अमृतसर के जलियांवाला बाग में इक्कट्ठी निहत्थी जनता पर जनरल डायर ने अपने सैनिकों से घिरवाकर उन पर गोलियां चलवा दी, जिससे सैकड़ों निर्दोष मारे गये और उससे भी ज्यादा जख्मी भी हुये। इस घटना से देशभर में रोष फैल गया ।

कोल्हापुर नरेश-सर कर्नल शाहू छत्रपति महाराज और उनका वंश

शिवाजी का जीवन ध्येयमय तथा त्यागमय था । उनका एक वाक्य सुप्रसिद्ध है **'आम्ही धर्म कारिता फकीरी घेतली आहे'** अर्थात धर्म संरक्षणार्थ हम सन्यासी बने हैं । इस एक वाक्य में उस महापुरुष के जीवन का सार सर्वस्य आ गया है ।

ऐतरेय ब्राह्मण के शुनः क्षेपाख्यान में एक श्लोक इस प्रकार है :

कलिः शयानों भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।

उत्तिष्ठत् त्रेता भवति कृतं सम्पदयते चरन् ।।

अर्थात मानवीय समाज जब तक निद्रा में लीन होता है तब तक वह काल कलियुग कहलाता है, जब वह जंभाई लेते हुए जागने के लक्षण दिखाता है तब द्वापर युग कहलाता है, जब वह जागकर खड़ा हो जाता है । तब त्रेता युग हो जाता है और जब वह प्रगति पथ पर चलने लगता है तब कृतयुग प्रारम्भ हो जाता है ।

कर उसे अपने पैरों पर ठीक से खड़ा किया और फिर उसे उन्नति मार्ग पर दौड़ाया भी, उन्होंने उसे ऐसी तीव्र गति प्रदान कर दी कि उनके असामयिक निधन के बाद भी लगभग दो शताब्दियों तक वह प्रगति पथ पर चलता रहा।

किसी देश पर जब कोई विदेशी जाति आक्रान्ता बनकर आ उपस्थित होती है वो वह उस भू भाग पर बसने वाली जाति को नष्ट करने के लिए उसकी प्राणदायिनी शक्ति को क्षीण करने का यत्न करती है। अंग्रेजों ने भी हमारे देश में यही किया। तब देश पराधीन था। यह घोषित कर दिया गया कि भारतवर्ष का सुस्पष्ट प्राचीन इतिहास नहीं है।

छत्रपति शिवाजी के कार्यों में तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों के ऐतिहासिक तथ्य सप्रमाण विद्यमान है। इस कारण छत्रपति शिवाजी के प्रचण्ड पौरुष, धीरोदात्तता, नीतिकुशलता, रणचातुर्य, तीक्ष्णबुद्धि, अतुलनीय साहस, अचूक कूटनीतिक व्यूह रचना, संगठन क्षमता, धर्म संस्थापकता, चारित्रिक दृढ़ता आदि श्रेष्ठ गुणों को परोक्ष-अपरोक्ष रूप से अनुभव किया जा सकता है। वे सब साक्ष्य मौजूद हैं।

छत्रपति शिवाजी का महान चरित्र अध्ययन करते-करते अनुभव होता है कि यह दिव्यपुरुष अभी-अभी सह्याद्रि के पर्वत-शिखरों से तलवार चमकाता, भगवाध्वज फहराता, राष्ट्रकार्यार्थ संकेत और विजय का संदेश दे रहा है और सचमुच उन पश्चिमी घाटों में छत्रपति के घोड़ों की टापें आज भी गूँज रही हैं। महाराज किसी मुहिम पर जा रहे हैं **'हर हर-हर महादेव'** और **'जय शिवा'** का जयघोष सुनाई देगा।

मराठा साम्राज्य

छत्रपति शिवाजी के आकस्मिक निधन के पश्चात् राजगढ़ के सिंहासन पर उनके ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी बैठे। बाद में उन्हें मुगल बादशाह औरंगजेब ने बन्दी बनाकर, घोर यातनाएं देकर मार डाला। शम्भाजी के सौतेले भाई राजाराम मराठा राज्य के स्वामी बनाये गये। सन् 1700 ई० में राजाराम की विधवा महारानी ताराबाई ने अपने नाबालिग पुत्र 'शिवाजी द्वितीय' की ओर से आवश्यकता पड़ने पर साहस और शौर्य से राज-काज चलाया।

इस बीच मुगलों ने शम्भाजी के पुत्र साहू को नजरबन्द कर लिया था। औरंगजेब ने उसे अपने पोतों के साथ सुख-सुविधापूर्वक रखा। यहां तक कि साहूजी का विवाह औरंगजेब ने सिंधिया और जाधव परिवार के सरदारों की कन्याओं से भी करवा दिया था। यह उसका मराठों को अपने पक्ष में कर लेने का एक और असफल प्रयास था। 20 फरवरी सन् 1707 ई० को औरंगजेब दक्कन में औरंगाबाद के सन्निकट दौलताबाद नामक स्थान पर मराठा विजय के अधूरे सपने लिये सदा के लिये सो गया। उनके पौत्र और मुगल सल्तनत के आखिरी **बादशाह, बहादुरशाह, 'जफर'** ने दिल्ली के तख्त पर बैठते ही साहू को सपरिवार तथा ससम्मान दिल्ली में नज़रबन्दी से मुक्त करके, उन्हें अपने राज्य दक्कन में भेज दिया।

साहू जी की दिल्ली में नजरबन्दी के दौरान मराठा राज्य का प्रशासन शंभाजी के सौतेले भाई राजाराम ने संभाला था। राजाराम की दो पत्नियां थीं, ताराबाई और राजसबाई। महारानी ताराबाई का पुत्र था शिवाजी द्वितीय और महारानी राजसबाई का पुत्र था शम्भाजी द्वितीय। सन् 1698 ई० में महाराजा राजाराम के निधन के पश्चात्, महारानी ताराबाई ने अपने पुत्र नाबालिग 'शिवाजी द्वितीय' की ओर से प्रशासन को बड़ी कुशलतापूर्वक संभाला। पर सन् 1707 में साहूजी के दिल्ली के मुगल बादशाह की नजरबन्दी से मुक्त होकर मराठवाड़ा में वापिस लौटने पर, उस काल में साहू जी तथा शंभाजी द्वितीय के बीच सत्ता हथियाने के लिये घोर संघर्ष चला। उनके कर्मचारी पेशवा लोगों ने इस ग्रह-कलह में आग में घी डालने का छिपे-छिपे कार्य किया और दूसरी ओर इस संघर्ष की आड़ में अपनी स्थिति को मराठा-दरबार में मजबूत करते चले गये।

सन् 1730 ई० तक शिवाजी महाराज के वंशजों में यह संघर्ष चलता रहा। अन्त में शंम्भाजी द्वितीय,

सन् 1730 ई० तक शिवाजी महाराज के वंशजों में यह संघर्ष चलता रहा । अन्त में शंम्भाजी द्वितीय, साहूजी के हाथों पूर्णतः पराजित हो गये । उदार हृदय साहू जी ने फिर भी कोल्हापुर और वरुणा तथा कृष्णा नदियों के दक्षिण का क्षेत्र सहर्ष अपने चचेरे भाई शम्भाजी द्वितीय को शासन करने को दे दिया । इन नदियों (वरुणा और कृष्णा) के उत्तर का शेष सम्पूर्ण राज्य साहू जी ने अपने आधिपत्य में रखा । साहूजी ने सतारा और शम्भाजी द्वितीय ने कोल्हापुर को अपने-अपने मराठा-राज्यों की राजधानियां बनाकर शासन तंत्र स्थापित किये। इस प्रकार छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा स्थापित और बाद में विस्तार को प्राप्त मराठा-साम्राज्य अब उनके पौत्रों में दो स्वतंत्र राज्यों में, विभाजित हो गया । इन दोनों नये राज्यों को कोल्हापुर राज्य तथा सतारा राज्य के नाम से जाना गया ।

कोल्हापुर महाराज हि० हा० शाहू छत्रपति महाराज

इसी कोल्हापुर राज्य के महाराजा, हिज हाईनस सर शाहू छत्रपति महाराज ने अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के 13वें अधिवेशन में सन् 1919 में कानपुर में अध्यक्ष-पद सुशोभित किया था । वे बड़े प्रगतिशील विचार वाले शासक सिद्ध हुये । उनकी प्रजा श्रद्धा से उन्हें राजर्षि सर शाहू छत्रपति जी महाराज भी कहती थी, जबकि आरक्षण शब्द ही समाज के लिये बिलकुल नई बात थी, तब इन्होंने अपने कोल्हापुर राज्य में सन् 1902 में 50 प्रतिशत तथा सन् 1919 में 90 प्रतिशत आरक्षण लागू कर दिया था । वे सही माने में आरक्षण के जनक माने जाते हैं, जबकि भारत सरकार ने आज़ादी के बाद अनुसूचित जातियों और जनजातियों को 'आरक्षण' प्रदान किये, और मंडल कमीशन के सुझावों को ध्यान में रखते हुये 8 सितम्बर 1993 को अन्य पिछड़े वर्गों के लिए नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण का लाभ, चिकनी परत (Creamy Layer) की शर्तों सहित देने को घोषणा की । कोल्हापुर नरेश ने ही डॉ० भीमराव अम्बेडकर को अपने सामाजिक दलितोद्धार आन्दोलन में किसी की भी परवाह किये बगैर तन-मन-धन से पूरा संरक्षण और सहयोग दिया ।

लोगों का यह मत सही है कि एक दलित सिपाही के घर जन्में डा० बाबा साहिब भीमराव अम्बेडकर राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विधि-वेता न बन पाते, क्योंकि वे महु में जन्मे (Mhow) थें, यदि उन्हें कोल्हापुर नरेश और बड़ौदा महाराजा का आर्थिक सहयोग और समर्थन न मिला होता । डा० अम्बेडकर पर मराठा कुल के इन दोनों नरेशों का सदा बरद हस्त रहा और कोल्हापुर नरेश तो उनका मनोबल सदा बढ़ाते रहते थे ।

कोल्हापुर नरेश सर शाहू छत्रपति महाराज ने अपने राज्य काल में, राज्य के मन्दिरों के पुरोहितों की नियुक्ति के लिये, वे पद योग्य अब्राह्मण, व्यक्तियों के लिये भी खोल दिये थे । उस समय का द्विज वर्ग बड़ा भौंचक्का हुआ । ये वही थे जिनके पूर्वज ब्राह्मणों ने छत्रपति शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक में अनेक प्रकार के अवरोध पैदा किये थे, और फिर भी राज्याभिषेक होकर रहा, पर इन्होंने वेद-मंत्रों को पढ़ने से इंकार करके पूजा अन्य मंत्रों से सम्पन्न करायी थी । यह अपमान न शिवाजी महाराज के वंशज भूले थे, और न आज तक साधारण मराठा या कुरमीजन ही । जबकि ये सारे ब्राह्मण इन्हीं मराठा राजपरिवारों के टुकड़ों पर पलते थे ।

जब डा० अम्बेडकर के छूने से एक महाराष्ट्र के पवित्र तालाब को सवर्णों ने विशेषकर महाराष्ट्रियन ब्राह्मणों ने दूषित घोषित कर दिया था तब वहां हिज हाईनस सर शाहू छत्रपति जी महाराज आगे आये और एकत्रित अपार भीड़ के सम्मुख सबसे पहले उस तालाब का जल पिया । फिर एकत्रित सारी जनता ने भी उस तालाब का जल पिया । और इस प्रकार इन पाखंडियों का दम्भ चकनाचूर हुआ ।

गांधी जी और वर्णाश्रम-व्यवस्था

महात्मा गांधी वर्णाश्रम-धर्म के समर्थक थे । इसीलिये वे अस्पर्श्यों की समस्या की ओर सामाजिक क्रांति की दृष्टि से नहीं देखते थे । गांधी जी के अनुसार अस्पर्श्यों की अस्पर्श्यता नष्ट होनी चाहिए, लेकिन उनको वर्णाश्रम-धर्म प्रचलित आनुवांशिक उद्योग-धन्धे करते रहना चाहिये, ऐसा उनका आशय था । दलितों को इस बिन्दु पर

गांधी जी से यही गिला-शिकवा रहा, ऐसा उनके साहित्य से पता चलता है। अर्थात् हरिजन को रास्ते साफ करने का पुश्तैनी काम करते रहना चाहिये और इसी तरह चमार को जूते सीने का काम करते रहना चाहिऐ। गांधी जी के दिये नाम 'हरिजन' से भी उन्हें आपत्ति है। हरिजन एक प्रकार से देव-दासियों की सन्ततियों को कहा जाता है। अपने को देवदासी की नाजायज सन्तान के लिये प्रयुक्त शब्द हरिजन से सम्बोधित किया जाना उनको अपमानजनक लगता है। दलितों की समस्याओं और उसके निराकरण के उपायों में इस प्रकार डा० भीमराव अम्बेडकर और महात्मा गांधी जैसे नेताओं में मूल-भूत अन्तर था।

राजर्षि सर शाहू छत्रपति महाराज और दलितोद्धार कार्य

सन् 1920 में अपने राज्य कोल्हापुर में सर शाहू छत्रपति जी महाराज ने दलितों को गुलामी से मुक्त घोषित किया। उन्होंने उन्हें सभी मानवीय अधिकार प्रदान करके, भारत में कभी भी न हुई सामाजिक-क्रान्ति का श्री गणेश अपने राज्य में किया। राजर्षि ने अपने राज्य कोल्हापुर की इस सामाजिक-क्रांति को समूचे महाराष्ट्र में प्रस्तुत करने के लिये डा० अम्बेडकर को आर्थिक सहायता देकर, 'मूक नायक' नामक एक पत्रिका को निकलवाया। डा० अम्बेडकर यद्यपि एक संस्थान के प्रोफेसर बन चुके थे, पर वे तब तक हिन्दू समाज पर खुल्लमखुल्ला हमला करने में सिद्ध-हस्तता नहीं प्राप्त कर पाये थे, जैसा कि दो या तीन दशक बाद उन्होंने बखूबी कर दिखाया।

राजर्षि शाहू छत्रपति महाराज ने डा० अम्बेडकर के संस्थान में रहने वाले महार, मांग, चमार आदि जातियों की, जिन्हें अस्पर्श्य समझा जाता था, एक परिषद् बुलाई। डा० अम्बेडकर के नेतृत्व एवं विचारों का समर्थन करने के लिये ही उस क्रान्तिकारी महापुरुष ने वह परिषद बुलाई थी।

मार्च सन् 1920 में आयोजित परिषद में राजर्षि शाहू छत्रपति महाराज ने घोषणा की थी-"प्रजाजनों! तुमने अपना सही नेता ढूंढ लिया है। इसीलिये मैं तुम्हें हार्दिक बधाई देता हूं। मेरा विश्वास है कि डा० अम्बेडकर तुम्हारा उद्धार किये बिना नहीं रहेंगे। इतना ही नहीं एक समय ऐसा आयेगा कि वे समूचे हिन्दुस्तान के नेता होंगे, ऐसा मेरा मन देवता बताता है।" पाठकगण जानते हैं कि सन् 1920 की राजर्षि की भविष्यवाणी अगले तीस वर्षों में यानी सन् 1950 में सही सिद्ध हुई जब उनका मुख्यतः बनाया भारत का संविधान देश ने स्वीकार किया। वे आधुनिक मनु भी कहे गये पर वे मनु से अपनी तुलना करना पसन्द नहीं करते थे। क्योंकि वे मनुस्मृति के कड़े विरोधी थे। छत्रपति शाहू जी ने अपने राज्य में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क करने का कानून सन् 1922 ई० में बनाया और अमल भी किया। सन् 1917 ई० में पुनर्विवाह का कानून पारित किया। राजर्षि सर शाहू छत्रपति जैसा पक्का, खरा, बेजोड़ और अपूर्व अध्यक्ष न तो अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा को अब तक मिला था और न अस्पर्श्यों की परिषद को। एक बार का सही किस्सा है कि राजर्षि कोल्हापुर राज्य के महार और मांगों का परिवार लेकर नागपुर आ रहे थे, ऐसा मालुम होते ही अशौच के भय से तत्कालीन नागपुर राज्य के भोंसले महाराज, राजर्षि के सगे कुटुम्बी होते हुये भी, शिकार का बहाना बनाकर महल से बाहर जंगल में चले गये। उन्हें भय हो गया कि यदि राजर्षि अपने साथियों सहित उनके नागपुर-निवास पर ठहर गये तो अमंगल हो जायेगा। अस्पर्श्यों को फिर राजर्षि शाहू छत्रपति जैसा कोई अन्य संरक्षक न मिल सका। इस सम्बन्ध में एक अन्य महाराजा ने भी काफी क्रान्तिकारी कदम उठाया, वह थे ट्रावनकोर और कोचीन के महाराजा, जिन्होंने सन् 1936 में अपने राज्य में अस्पर्श्यों का मन्दिर प्रवेश जो उस समय तक पाखंडी पुरोहितों की रुढ़िवादिता के कारण वर्जित था, (Proclamation For Temple Entry By untouchables) अस्पर्श्यों के मन्दिर प्रवेश को घोषणा करके खोल दिया गया। वह दिन वहां के दलित एवं अस्पृश्यों के लिये मान-सम्मान की दृष्टि से स्वर्णिम दिवस था। दो वर्ष पूर्व ही इन महाराजा का निधन हो गया, वे आजीवन अविवाहित रहे।

क्रान्ति ज्योति, श्रीमती सवित्रीबाई फुले (महात्मा ज्योतिबा की पत्नी) की मृत्यु के बाद महाराष्ट्र में चले "सत्य शोधक समाज" का कारवाँ चलाने वाला कोई योग्य नेता नहीं बचा था। सन् 1910-1911 ई० तक

शाहू महाराज ने महात्मा फुले द्वारा स्थापित **'सत्य शोधक समाज'** आन्दोलन का अध्ययन किया । इन्होंने ब्राह्मणी बर्चस्व को समाप्त करने हेतु 'सत्य शोधक समाज' का आन्दोलन चलाना उचित समझा और सन् 1911 ई० में शाहू जी ने अपने राज्य में 'सत्य शोधक समाज' की विधिवत स्थापना की । सत्य शोधक पाठशालायें खुलवाकर और बहुजन समाज के विद्यार्थियों को धर्मज्ञान का प्रशिक्षण देकर उन्होंने पोंगापंथी पुरोहितों का दम्भ-भंग किया। इनके इस कार्य से धर्म के ठेकेदार तिलमिला उठे, पर वह कुछ कर न सकते थे क्योंकि छत्रपति शाहू जी महाराज स्वयं कोल्हापुर नरेश थे और यह सुधार प्रजाहित में कर रहे थे उनसे, अंग्रेज सरकार भी सहमति रखती थी।

शाहूजी राजे 15 अप्रैल 1920 में **'अछूत निर्मूलन परिषद'** मानगांव के तथा 30 अप्रैल 1920 में नागपुर में इस परिषद के सम्मेलन के अध्यक्ष बनाये गए । इन सम्मेलनों का आयोजन डा० अम्बेडकर ने किया था । शाहू जी ने इस परिषद को सम्बोधित करते हुए घोषणा की थी - **"अगर सत्ताधारी लोग मुझ पर दबाव डालते हैं तो मैं राजगद्दी का त्याग तक कर दूंगा । और शूद्र (सछूत शूद्र) और अतिशूद्र (अछूत शूद्र) के क्रान्ति संग्राम में कार्य करूंगा । इस बक्तव्य से जनता में चेतना की चिनगारी सुलग उठी ।**

महाराष्ट्र राज्य में बसी फासेफारधी नामक एक आदिवासी जमात है । इस कौम के लोग जंगलों और बीहड़ पहाड़ों पर रहते थे । शाहू जी महाराज एक बार शिकार करने जंगल गये । वहां दयालु महाराज का उपनी प्रजा की इस जाति से परिचय हुआ । महाराजा ने पूछा - आप लोग गांवों में क्यों नही बसते? उन्होंने कहा-महाराजा लोग हमें अपराधी मानते हैं । हमें लोग चोरी, डकैती करने वाला समझ कर दंड देते रहते हैं । हम चोर -डाकू हैं इसलिये लोग हमें काम पर नहीं लगाते अतः पेट पालने के लिये हमें मजबूरन चोरी, डकैती करनी पड़ी है । छत्रपति शाहू ने उन फासेफारधी आदिवासी लोगों को गांव में बसाया और उन्हें जीवनोपार्जन हेतु काम दिलाये । छत्रपति शाहू के कारण वे आदिवासी लोग समाज की मूलधारा में आये । भारतीय सेनामें जो महार रेजीमेन्ट हैं, उसी महार जाति में डा० अम्बेडकर जी का जन्म हुआ था ।

महारों के समाजोद्धार में तथा भारतीय फौज में उनकी अलग रेजीमेंट जैसे मराठों, सिक्खों, और गोरखों आदि की थी उन्होंने महार रेजीमेंट बनवाने में अंग्रेजों से कह कह करके अन्त में उसका गठन करवा दिया । आज महार सैनिक किसी तथाकथित लड़ाकू जाति के सैनिकों से किसी बात में कम नहीं बैठते । डा० अम्बेडकर को शाहू जी ने पत्र-प्रकाशन के लिये धन देकर प्रोत्साहित किया । प्रकाशित जस्टिस पत्र में डा० अम्बेडकर ने लिखा - **"शाहू जी मनुष्यों में राजा थे और राजाओं में मनुष्य थे ।"** 6 मई 1922 को समाज हितैषी राजर्षि छत्रपति शाहू जी का देहावसान हो गया । सारे राज्य में जनता शोकाकुल हो गई मद्रास से उनके मित्र तथा गुरु फ्रेजर महोदय ने अपने शोक-सन्देश में कहा कि शाहू जी ने दलितों और दीन-हीनों की सहायता स्वयं को संकट में डालकर की । लन्दन से डा० बाबासाहेब अम्बेडकर ने लिखा - **"इस निधन से मुझे बड़ा दुःख हुआ है शाहू जी के निधन से मेरा एक महान उपकारी संरक्षक तथा दलितों का मसीहा चला गया । शाहू जी का एक उद्देश्य था कि भारत की समग्र मानवता अखंड़ित अथवा अविभाजित रहे । वे सचमुच निर्बल के बलराम थे । इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि शाहू जी जैसा महापुरुष समूचे नरेश मंडल में अथवा सम्पूर्ण भारत में न तो इनसे पहले और इनके बाद में ही हुआ ।"**

गांधी जी द्वारा 'हरिजन' संज्ञा से अनुसूचित जन जाति को घोर आपत्ति

गांधी जी ने अनुसूचित जाति एवं जनजाति को सन् 1920 में **'हरिजन'** संज्ञा से सम्बोधित किया था, तब से यह वर्ग बोधक नाम उनके लिये प्रयोग होता रहा है । संविधान में उनके लिए आरक्षण का प्रावधान सम्मिलित किया गया । अब लगभग 70 वर्ष बाद जब अनुसूचित जनजाति को **'हरिजन'** का अर्थ देवदासी पुत्र भी होता है पता चला, अतः वे अपने लिये हरिजन जैसे अपमान जनक शब्द के प्रयोग पर घोर आपत्ति करने लगे हैं । परिणामतः उन्हें अब हरिजन संज्ञा से सम्बोधित नहीं किया जाता । हरिजन और देवदासी पुत्र का इतिहास इस प्रकार है :-

"ऋषि परशुराम की माता का नाम रेणुका तथा पिताजी का नाम प्रसिद्ध ऋषि जमदग्नि था। एक बार जलाशय से पानी भरते समय रेणुका ने गंधर्वकुमार को देखा, वे उन पर इतनी ज्यादा मोहित हुई कि उनके प्रस्ताव पर अपना आपा बिसारकर जल-क्रीड़ा के साथ-साथ शारीरिक-क्रीड़ा में लीन हो गयीं। कुटी पर लौटने में रेणुका को बिलम्ब होने पर ऋषि जमदग्नि ने किसी को उनकी खोज-खबर लेने भेजा। उस व्यक्ति ने जलाशय के निकट जाकर जो देखा था उसे ऋषि जमदग्नि को बता दिया। उनका क्रोधित होना स्वाभाविक था। जमदग्नि ने किसी और को भेजकर इस कुकृत्य की पुष्टि भी करवा ली। जब रेणुका जल भर कर कलश सहित कुटिया लौटीं, तो जमदग्नि को क्रोध ने अत्यन्त उत्तेजित कर दिया। उन्होंने अपने पुत्र परशुराम को आज्ञा दी कि वह अपनी कुलटा मां का शीश काटकर दे। परशुराम ने आज्ञा का पालन करते हुये अपने फरसे के एक बार से मां का सिर धड़ से काट अलग कर दिया। जमदग्नि का क्रोध शान्त हुआ। प्रसन्न हो उन्होंने आज्ञाकारी पुत्र परशुराम से वर मांगने को कहा। परशुराम ने वरदान मांगा कि उसकी मां पुनर्जीवित हो जायें।"

आगे की कथा बड़ी विचित्र है, विश्वसनीय नहीं लगती है पर इसलिये उसको कहना जरुरी भी है। ऋषि जमदग्नि की कुटिया के आगे से मातंगी जाति (अनुसूचित जाति) की महिला जा रही थी जिनका नाम येल्लामा था। ऋषि जमदग्नि ने परशुराम को उसका सिर काटकर अपनी मां रेणुका के धड़ से लगाने को कहा। परशुराम ने वैसा ही किया और उनकी मां का शरीर जीवित हो उठा। रेणुका जीवित होने पर विलाप कर ऋषि जमदग्नि से क्षमा-याचना करने लगी। ऋषि ने कहा तूने शूद्रा जैसा आचरण किया है, इसीलिये तेरे धड़ पर शूद्र महिला का सिर लगाया गया हैं रेणुका को अन्त में पूर्व सेवा के लिये वरदान दिया अब तू रेणुकायेल्लमा के नाम से देवी रूप में पूजी जाया करेगी।

भक्त लोग अपनी कुआंरी कन्यायें मन्दिर के देवता के सात फेरे लगवाकर वैवाहिक औपचारिकता पूरी कर उनकी सेवामें समर्पित किया करेंगे। तभी से देवदासी प्रथा का प्रचलन हुआ। ये देवदासियां रजस्वला होने के बाद रेणुकायेल्लमा देवी के मन्दिर में देवदासियों की हरिजन सन्तानें मंदिर की सेवा में छोड़ दी जाती थी वहीं वे पुरोहितों की काम-वासना का शिकार हो जाती थीं।

जातीय आँकड़े संयुक्त प्रान्त, आगरा एवं अवध के सन् 1921 की जनगणनानुसार

U. P., Agra & Oudh 1921 Census Report

Vol. XVI. Part I,

Chapter XII OCCUPATION

Subsidiary Table VIII - Occupation of Selected Caste (Cont....)

Sl. No.	Caste & Occupation	Number per 1000 workers engaged in each occupation	Number of Female workers per 1000 male workers.
1.	**Agrawal**	1000	90
	Traders, bankers, shop keepers of all kinds.	705	55
	Agriculture and stock raising Public force, Administration	143	118
	Arts and professions.	27	11
	Domestic services	19	162
	others	81	285

2.	**Ahir**	1000	646
	Owners, breeders and sellers Of the produce of cattle	109	275
	Ordinary agriculture	836	715
3.	**Brahman**	1000	187
	Priesthood	70	371
	Agriculture & Stock raising	818	166
	Industry	11	1366
	Trade force	23	141
	Public Force & administration	13	
	Begging & other unproductive occupations	16	514
	others	20	187
4.	**Jat**	1000	78
	Land owning and cultivation	840	69
	other occupations connected	86	81
	with land Industry	21	902
	Public force & administration	9	-
	Labourers unspecified	20	54
	others	24	140
5.	**Koeri**	1000	842
	.Cultivation	866	760
	other natural products	92	101
	Industry	15	910
	Domestic service	33	135
	Labourers unspecified	75	615
	Others	27	104
6.	**Kurmi**	1000	545
	Cultivators	848	512
	Other natural products	101	882
	Industry	15	1553
	Labourers unspecified	11	630
	Others	25	258
7.	**Rajput**	1000	243
	Military service, Govt. service land holders	447	350
	Cultivation and stock-raising	498	154
	Industry	11	985
	Domestic services	9	185

Labourers unspecified	11	228
Others	15	175

उपर्युक्त जनगणना सारिणी से पता चलता है कि कुरमी, जहां सन् 1921 में संयुक्त प्रान्त, आगरा और अवध क्षेत्रों में मुख्यतः कृषि कार्य में लगे हुये थे, वहां ब्राह्मण भी काफी संख्या में कृषि कार्य करते थे, जो कि नगण्य नहीं कही जा सकती। उस काल में भी कुरमी घरेलू नौकरी नहीं करते थे किन्तु ब्राह्मणों में पुरुष एवं स्त्रियों दोनों को यह करते प्रमाणित किया गया है। इस सारिणी में और एक विशेष बात देखिये कि सन् 1921 के भारत में भी भीख कुरमी माँगते नहीं थे जबकि ब्राह्मणों में काफी स्त्री-पुरुष भीख माँगकर गुजारा करते थे। इन जनगणना सारिणी में दिये आँकड़ों के अनुशीलन से यह भी स्पष्ट पता चलता है कि ब्राह्मणों के व्यवसाय/रोटी-रोजी कमाने के जरिये कुरमियों से क्या कहीं ज्यादा अच्छे थे? पता चलता है कि ऐसा ब्राह्मणों के जीवनोपार्जन के साधन कुरमियों की तुलना में अच्छे न थे। जब कि कुरमी खाद्यान्न उत्पन्न करता था और उसकी भार्या सच्चे अर्थों में अन्नपूर्णा थी। ब्राह्मण वर्ग अपने कुरमी-कृषक यजमानों से खाद्यान्न और भोजन-पदार्थ प्राप्त कर उन्हें **"अन्नदाता सुखी भव !"** का हृदय से आर्शीवाद देते थे।

ज्यादातर ब्राह्मण रचनाकार अन्य अब्राह्मण जातियों के सम्बन्ध में मिथ्या एवं अनर्गल बातें दैविक बनाकर लिखने में, बिना संकोच किये हुए महारत प्राप्त रहे हैं। क्या कभी उन्होंने यह जानने की चेष्टा भी की कि ब्राह्मणेतर हिन्दु जातिओं तथा ब्राह्मणों के बारे में भारत की जनगणना में, विशेषकर अंग्रेजों के शासनकाल में, क्या तथ्य अंकित किये हुये हैं? उन आँकड़ों की तुलना में वे कैसे अपने को सर्वश्रेष्ठ मान बैठे थे।

ब्राह्मण रचनाकारों में से अधिकतर ने अपनी जातीय ढ़पली तो खूब कसकर पीटी है पर अन्य ब्राह्मणेतर हिन्दू जातियों का इतिहास बहुधा बिगाड़ा है, जबकि जैसा उनका था वैसा ही वर्णन करना चाहिये था। इसीलिये इनके रचे धर्मग्रन्थों में उल्लिखित जाति सम्बन्धी तथ्यों पर अनेक प्रश्न चिन्ह लगाये जाते हैं, जिसका संतोषजनक उत्तर भी वे नहीं दे पाते हैं। यह आलोचना नानकदेव जी, दादू, कबीर, तुकाराम, सुब्रह्मण्यम भारती, सूरदास, बाल्मीकि और मीराबाई की क्यों नहीं होती, क्यों मनुस्मृति, रामचरित-मानस, उनके पुराणों तथा अन्यान्य धर्मग्रन्थों की टीका-टिप्पणी तथा आलोचनाएं करना एक आम बात बनती जा रही है।

उत्तर भारतीय नौटंकी के जनक, कूर्मिरत्न, श्री त्रिमोहन सिंह

महासभा के तेरहवें अधिवेशन की नगरी कानपुर में एक ऐसे कूर्मि रत्न ने जन्म लिया, जिसने ललित-कला विधा नौटंकी में विशिष्ट महारत प्राप्तकर अपनी इस कला प्रदर्शन से सारे देश में उसका और अपना नाम रोशन किया। वे महापुरुष थे त्रिमोहनसिंह। बीसवीं सदी के अर्ध दशक तक उत्तर भारत में नौटंकी के लिये कानपुर के त्रिमोहनसिंह और ब्रजशैली में मथुरा के श्रीकृष्ण, इस विधा के उस्तादों के उस्ताद माने जाते थे। नौटंकी को स्वांग भी कहा जाता है।

नौटंकी के जन्मदाता होने और उसको ख्याति की बुलंदी पर ले जाने का श्रेय, श्री त्रिमोहन सिंह को जाता है। उनकी नौटंकी की अपनी बेजोड़ कम्पनी विभिन्न कलाकारों को भर्ती करके बनी थी। वे नौटंकी के कुशल निदेशक के अतिरिक्त हर अभिनय करने या संगीत-वाद्य को बखूबी बजाने में प्रसिद्ध थे। नौटंकी का प्रमुख संगीत-वाद्य नक्कारा कहलाता है। जिसे वे हाथ-पैरों की मदद से 16 लकड़ियों द्वारा बखूबी बजाते थे। साधारणतः 9 लकड़ियों से जब वे नक्कारा बजाते थे तो श्रोतागण मंत्र-मुग्ध हो जाते थे। कहा जाता है कि गर्भवती स्त्रियों को उनकी नक्कारा-ध्वनि सुनने की मनाही थी, उनका गर्भपात हो सकता था।

चौदहवां अधिवेशन

महासभा का चौदहवां अधिवेशन 29, 30 और 31 दिसम्बर 1924 को सीतापुर (यू०पी०) में देवास (प्रथम श्रेणी) के महाराज, क्षत्रिय कुलावतंश सप्त सहस्त्र प्रतिनिधि सर श्री तुकोजी राव पंवार, के० सी० एस० आई०, की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ ।

लोगों को आश्चर्य और खेद इस बात का था कि सन् 1919 के 13वें अधिवेशन के बाद अगले पांच वर्षों में यानी सन् 1924 ई० से पूर्व न तो महासभा का कोई अधिवेशन कहीं आयोजित किया जा सका और न ही प्रादेशिक या स्थानीय समाजों का महासभा से कोई सक्रिय सम्बन्ध रहा । ऐसी ही निराशाजनक चर्चाएं उस काल में चल पड़ी थीं कि अब महासभा अन्तिम रूप से बिखर गई है, परिणामतः जातीय कार्यकलापों में चारों ओर निराशा और शिथिलता फैल गई थी ।

पाठकगण् स्मरण करें ! सन् 1894 ई० में सरकारी पदों के अयोग्य जातियों में कुरमियों का नाम प्रकाशित कर देने से और उसके अनुसार यू० पी० पुलिस विभाग के आदेश जारी होने से, कुरमी समाज को झकझोर कर उसे सुप्तावस्था से जागृत कर दिया था । वह नवचेतना **'कुरमी सदर सभा'** की चटापट स्थापना तथा **"कुरमी समाचार"** का प्रकाशन प्रारम्भ होने में वरदान सिद्ध हुयी थी ।

अब सन् 1924 ई० ब्रिटिश सरकार की ओर से **"आला-अदना"** का तीव्र प्रतिवाद लखनऊ, गोंडा, सीतापुर आदि अवध के नगरों में हुआ । उस उत्तेजना और जन-जागृति का ही परिणाम था कि 24 वां अधिवेशन सीतापुर में आयोजित किया गया । पुरानी अधिवेशन सम्बन्धी उपलब्ध जानकारी से ऐसा प्रतीत होता है कि सन् 1924 तक बांकीपुर (पटना) निवासी श्री मिथिलाशरण सिंह, महासभा के स्थायी अध्यक्ष रहे । मात्र अधिवेशनों का अध्यक्ष कोई सम्मानित महानुभाव मनोनीत कर लिया जाता था, उसके बाद उस अध्यक्ष का दायित्व समाप्त हो जाता था। महासभा के प्रथम प्रधानमंत्री लखनऊ के चौधरी रामाधीन सिंह थे और द्वितीय थे बाराबंकी वाले श्री देवीप्रसाद सिंह चौधरी । दोनों जयसवार कुरमी थे । और दोनों में जातीय उत्कर्ष के लिये भावना जनून का रूप ले चुकी थी ।

इस अधिवेशन वर्ष की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना यह थी कि 4 जनवरी सन् 1924 ई० को गोरखपुर के निकट **चौरी-चौरा** नामक स्थान पर अंग्रेजी सरकार की पुलिस के दमनचक्र और जन-आक्रोश की एक ऐसी घटना घटी, जिससे सारे देश में भय उत्पन्न हो गया । सरकार की दमननीति से प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी । उनकी मन स्थिति को शायर निम्न पंक्तियों द्वारा व्यक्त कर रहे थे ।

"तूने गर ठान लिया जुल्म से गुजरने के लिये,
हम भी तैयार हैं, अब जी से गुजरने के लिये ।
अब नहीं हिन्द वह जिसको दबाये बैठे थे,
जाग उठे-नींद से, हां हम तो संभलने के लिये ।।"

पर चौरी-चौरा में अत्याचारों की कड़ी ज्वाला में लगातार झुलसती असहाय जनता ने अपने जन-नायक गांधी जी का सहनशीलता और अहिंसा का पाठ तज़कर एक पुलिस-थाने पर धावा बोल दिया । जन-आक्रोश इतना तीव्र था कि सोच-समझ से कदम उठाने की बात पर वे गौर तक करने को तैयार न थे । उन्होंने आव देखा न ताव, थाने को चारों ओर से घेर कर, उसे और उसमें अन्दर मौजूद थानेदार और चौबीस सिपाहियों को आग लगाकर खाक कर दिया । देश की अंग्रेज सरकार भी यह देखकर आश्चर्य-चकित रह गयी कि जनता का रोष इस हद तक भी तीव्र हो सकता है । गांधी जी को इस हिंसक घटना से घोर दुःख हुआ और प्रायश्चित के रूप में उन्होंने, कांग्रेस के **"असहयोग आन्दोलन"** को तुरन्त स्थगित कर दिया ।

सौभाग्य से इस 24 वें अधिवेशन में महाराजा देवास (प्रथम श्रेणी) का अध्यक्ष पद ग्रहण करना, कुरमी जाति के इतिहास की ऐसी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, जिसके आगे चलकर इस जाति को दूरगामी लाभ प्राप्त हुये । अनोखी बात यह भी थी कि तभी से महासभा के अगले अधिवेशन तक स्थायी अध्यक्ष और उनका पूर्ण संरक्षण भी मिल गया । अगले वर्षों में महासभा के माध्यम से महाराजा ने कुरमी क्षत्रिय समाज की सेवा की, उसका नाम देश में सब तरफ फैला, उसकी मान प्रतिष्ठा में वृद्धि की, वह इस समाज के इतिहास का एक अति प्रशंसनीय और अविस्मरणीय प्रसंग है । महाराजा ने कुरमी जाति के साथ जो उपकार किये, उसके लिये कुरमीजन और इनकी आगे आने वाली संततियां उन्हें सदैव श्रद्धापूर्वक याद करती रहेंगी ।

महाराजा देवास की मनोच्छा थी कि वे किसी प्रकार इस जाति को सबल और उन्नत जातियों की श्रेणी में ला खड़ा करें । उन्होंने जो कुछ भी किया स्वतः प्रेरित होकर और सहर्ष किया । वे सच्चे कर्मयोगी थे और इस सत्य से अवगत् थे -

"आया है सो जायेगा, राजा, रंक, फकीर" ।

यहां यह उल्लेख कर देना असंगत न होगा कि प्रथम बार, श्रीमन्त महाराजा साहब का इस महासभा से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध सन् 1918 ई० में हुआ था, जबकि उक्त महाराजा साहब से फर्रुखाबाद में होने वाले अधिवेशन का अध्यक्ष-पद ग्रहणार्थ प्रार्थना की गई थी, किन्तु उस समय श्रीमंत महाराजा साहब कुछ व्यक्तिगत् कारण वश प्रार्थना स्वीकार न कर सके, पर वे तभी से इस कुरमी समाज से जुड़ गये थे । यह अप्रत्यक्ष सम्बन्ध 6 वर्ष बाद प्रत्यक्ष सम्बन्ध में परिवर्तित हो गया, जब उन्होंने सहर्ष सन् 1924 ई० में सीतापुर अधिवेशन के अध्यक्ष पद ग्रहण करने की स्वीकृति प्रदान कर दी । उनके इस सुकृत्य ने असंगठित कुरमी जाति में संजीवनी बूटी जैसा असर दिखाया । आपने सीतापुर अधिवेशन के पश्चात् अपने राज्य की राजधानी देवास में महासभा का एक विशेष अधिवेशन 27 और 28 दिसम्बर 1926 ई० को पूर्णतः अपने व्यय पर आयोजित करवाया । उसका विवरण इसके तुरन्त बाद में दिया गया है ।

सीतापुर (यू० पी०) में सम्पन्न हुये इस चौदहवें अधिवेशन के अध्यक्ष महाराजा देवास ने अपने मृदुल स्वभाव एवं आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से, जन-मन को ऐसा आकर्षित कर लिया था कि उनकी सुकीर्ति की चर्चा और प्रशंसा, अधिवेशन समाप्ति के काफी बाद अनेक वर्षों तक वापिस लौटे प्रतिनिधियों द्वारा अपने-अपने जनपदों लखनऊ, सीतापुर, पीलीभीत, बरेली, रायबरेली, बाराबंकी, प्रतापगढ़, लखीमपुर, खीरी, पटना आदि में बड़ी श्रद्धापूर्वक होती रही ।

अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में महाराजा देवास ने कहा था :-

" I know one thing from history that the Mahrattas were, up till a century ago, the supreme power in India-mainly on the strength of their armies recruited from the agricultural and landowning classes of the Maharashtra. Many of the Patels or headmen of that historic country figured themselves in high positions both in civil and military lines and some of them carved out large kingdoms forming part of Mahratta Empire. In fact the history of the Maharatta race at its best is the fine combination of its aristocratic and agricultural classes in the national life."

अर्थात् - "मैं इतिहास से एक बात जानता हूं कि एक शताब्दी पहले तक मराठा भारत में मुख्यतः कृषकों तथा भूपतियों की सेना के बल पर ही देश की सर्वश्रेष्ठ सत्ता थे । अधिकांश पटेल या ग्राम-प्रधान उस ऐतिहासिक प्रदेश में उच्च राजकीय और सैनिक पदों पर आरूढ़ होकर विख्यात हुये और कइयों ने महाराष्ट्र साम्राज्य के अन्तर्गत बड़े राज्य स्थापित किये । वस्तुतः मराठा जाति का सर्वोत्तम इतिहास राष्ट्रीय जीवन में आभिजात्य और कृषकों



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
१४ वें अधिवेशन के अध्यक्ष
देवास नरेश सर तुकोजी राव पँवार



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय युवक संघ
के
प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष
देवास—राजकुमार श्रीमन्त विक्रम सिह राव पँवार
(अब देवास (१) और कोल्हापुर राज्यों के महाराज)



'कूर्मि क्षत्रिय हितैषी'
के
प्रवर्तक. सम्पादक और प्रकाशक
श्री प्रो० दीपनारायण सिंह



'कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर'
के
प्रवर्तक, सम्पादक और प्रकाशक
श्री शिवराम सिंह

का मिलन मात्र है ।"

अध्यक्ष महोदय के भाषण के अति महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार थे :-

1 जो स्वयं जागृत होता है, वही दूसरों को जगाने का अधिकारी हो सकता है ।

2 मैं आपको इस विशाल भारत खंड के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न स्थानीय सभायें स्थापित करने की सम्मति देता हूँ ।

3 निश्चित वार्षिक आय की आवश्यकता है । ऐसी वार्षिक आय कितनी भी कम क्यों न हो, कोई फिक्र नहीं ।

4 सभी नये कार्य प्रारम्भ में कठिन जान पड़ते हैं, लेकिन सुन्दरता उसकी पूर्ति में ही निवास करती है ।

इस अधिवेशन के अवसर पर पहले-पहले कुरमियों की अपनी अन्यान्य उपजातियों के प्रतिनिधियों ने एक साथ भोजन करके **'सहभोज'** को व्यवहारिक रूप में स्वीकार करते हुये उस पर अमल कर दिखलाया । आज यदि हमें पता चले कि लगभग सत्तर वर्ष पूर्व तक कुरमियों की विभिन्न उपजातियां आपस में एक साथ बैठकर **'सहभोज'** नहीं करती थी तो आश्चर्य होना स्वाभाविक है तब तक वे **"तीन कनौजिये और तेरह चूल्हे"** वाली कहावत चरितार्थ करते थे । इन सात दशकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप जातीय एकता हेतु उपजातियों का आपस में साथ उठना, बैठना खाना-पीना, अन्तरोपजातीय शादी-विवाह में आम बात हो जाना, यह अपने में एक महान वैचारिक एवं सामाजिक परिवर्तन तथा चेतना का प्रमाण है ।

इस अधिवेशन में ही **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय नवयुवक संघ** की स्थापना की गई, जिसके प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता महाराजा देवास (प्रथम श्रेणी) के सुपुत्र श्रीमन्त विक्रमसिंह राव पंवार ने की । महाराजकुमार देवास को अपना नेता देखकर कुरमी नवयुवकों में सर्वत्र हर्ष और जोश फैल गया ।

इस अधिवेशन के अध्यक्ष सर श्री तुकोजीराव पंवार प्रथम श्रेणी देवास-नरेश के बारे में तथा उनके पूर्वजों के सम्बन्ध में भी पाठकगण् जानना चाहेंगे ।

देवास नरेश का वंश परिचय

देवास राज्य की स्थापना इनके पूर्वज श्री कालोजी के वंशजों ने की थी । दोनों मराठा वीरों के द्वारा. मालवा-विजय के दौरान प्रदर्शित महान नेतृत्व, अद्वितीय वीरता तथा साहस के लिये पुरस्कार स्वरूप छत्रपति साहू के द्वारा तुकाजी और शिवाजी को सन् 1725-1726 के दौरान देवास राज्य सम्मिलित रूप से प्रदान किया गया था । राज्य के दोनों समान हिस्सेदार थे । कुछ समय पश्चात् दोनों **'देवास सीनियर'** और **'देवास जूनियर'** के नाम से प्रथक-प्रथक देवास-खंड़ के नरेश कहलाने लगे । ये पंवार उपजाति के मराठा वीर थे । पंवार को 'परमार' नामक पुरातंन क्षत्रिय जाति का अपभ्रंश भी कहा जाता है , पर वे मराठा थे, राजस्थान के राजपूत नहीं, जिसमें एक परमार उपजाति होती है ।

सन् 1739 ई० में मराठों ने सम्पूर्ण मालवा पर विजय प्राप्त कर ली । मालवा को होल्कर, महादजी सिन्धिया और पंवार के मध्य बांट दिया गया । आनन्दराव पंवार को धार का प्रदेश तथा पड़ोस के कुछ इलाके प्राप्त हुये । दस वर्ष बाद सन् 1749 में धार नरेश श्रीमंत आनन्दराव पंवार का निधन हो गया । सन् 1819 ई० को धार राज्य को ब्रिटिश सरकार ने अपने संरक्षण में ले लिया । धार के महाराजा को 15 तोपों की सलामी का अधिकार था । इस राज्य का क्षेत्रफल 2691 वर्गमील था और उस समय की जनसंख्या 1,25,200 थी ।

इन्हीं मराठा वीरों के आदि नायक छत्रपति शिवाजी के बारे में महाराष्ट्र के सम्मानीय संत कवि, महात्मा रघुदास जी ने भी उन्हें कूर्म अथवा कूर्मि शब्द से अपने इस काव्य-कृति में स्मरण किया है :-

मरहटं शिवाः न जन्मते, पुनरस्य महि कं रक्षते ।
हिन्दुस्य धर्म विहीनतो यदि कूर्म भवेत न शिवाः पतीः ।।

महादजी सिंधिया

(जन्म सन् 1727 ई० - मृत्यु 12 फरवरी 1794)

छत्रपति शिवाजी महाराज की आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् नवस्थापित मराठा साम्राज्य को ठीक से संचालित करने में उनके पुत्र-पौत्रों में अनेक कारणों से कोई भी समर्थ सिद्ध न हो सका । फलस्वरूप उनके उत्तराधिकारियों के हाथों से सत्ता और शक्ति निकल गई जो उनके अपने राज्य कर्मचारी पेशवाओं ने छल-कपट से हथिया ली।

सन् 1761 ई० में अहमदशाह अब्दाली और पेशवा के नेतृत्व में मराठा सैन्य बल के बीच पानीपत का तीसरा घमासान युद्ध हुआ । जिसमें अहमदशाह अब्दाली विजयी हुआ और मराठों की भीषण पराजय के कारण मराठा शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई । कहा जाता है कि उस युद्ध में महाराष्ट्र के प्रत्येक मराठा परिवार का कोई न कोई व्यक्ति काम आया था । पहिले भी मराठों ने युद्ध में भयानक क्षति झेलीं थीं किन्तु हर बार वे वट-वृक्ष की भांति आमूल शिखर नष्ट-भ्रष्ट होकर भी, शीघ्र ही पुनः लहलहा उठते थे, परन्तु पानीपत के इस युद्ध में विनाश, पराजय और निराशा इतनी भयावह थी कि ऐसा लगता था जैसे मराठा-शक्ति का सूर्य सदा के लिये अस्ताचल की ओट में चला गया । ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह युद्ध पेशवा सरदारों के नेतृत्व में लड़ा गया था।

पानीपत की पराजय से महादजी सिन्धिया बड़े दुखी थे । वे कर्मवीर होनेके कारण चुपचाप बैठने वाले नहीं थे । महादजी (माधव जी) सिन्धिया का जन्म सन् 1727 में हुआ था । उनके पिताजी का नाम रानोजी सिन्धिया और माता का नाम श्रीमती चिमाबाई था । भारत का सौभाग्य था कि ऐसे वक्त में महादजी सिन्धिया मराठों के एक उभरते हुये सरदार थे । लगातार बारह वर्षों तक घर से बाहर रहकर उन्होंने विरोधी शक्तियों से लोहा लेने और मराठा सामाज्य के बिस्तार में आशातीत सफलता प्राप्त की थी । उनकी कूटनीतिज्ञता के सामने उनके समकालीन बड़े से बड़े घाघों की घिग्घी बंध जाती थी, और तब उनसे मात खा जाते थे ।

महादजी सिन्धिया से अंगरेजों की तलेगांव नामक स्थान पर घोर पराजय हुई थी । उनकी वीरता निष्ठा और दक्षता का देश में गुण-गान होने लगा । "माधवराव सिन्धिया" नामक पुस्तक में, अंग्रेज लेखक कीन (Keen) ने पृष्ठ 191 पर लिखा है - **"एशिया के लोकनायकों में कोई भी नाम माधवराव सिन्धिया के जोड़ का नहीं मिला"**-(Amongst Asiatic publicmen there is no name to match with Madhava Rao Sindhia)।

महादजी सिन्धिया के जीवन के दो मुख्य उद्देश्य थे- प्रथम, भारत में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करना, द्वितीय, अंग्रजों के विरुद्ध संघर्ष की पूर्ण तैयारी । इस दृष्टि से वह भारत का अत्यन्त दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था । अपनी शक्ति, शौर्य और सूझबूझ के सहारे उन्होंने पदच्युत मुगल बादशाह शाह आलम को सही सलामत इलाहाबाद से दिल्ली लाकर मुगल तख़्त पर बैठाया और स्वयं उनके शासन-सूत्र का सफलतापूर्वक संचालन किया।

शाहआलम रचना सिद्ध शायर थे, और समय-समय पर सामयिक शेर फौरन आशु कवि की तरह बना डालते थे । जैसे मराठों की संरक्षकता में सन् 1772 में जब वे इलाहाबाद से दिल्ली लाये जा रहे थे और माधोराव सिन्धिया उनके साथ में चल रहे थे । रास्ते में एक दोहा बनाकर **शाहआलम** ने सिन्धिया को सुनाया वह शेर था :-

'मुल्क-माल सब खोय के पड़े, तुम्हारे बस्स,
मधु तुम ऐसी कीजियो, भावे तुमको जस्स ।।
(मधु- माधवजी सिन्धिया)
अन्य मौके पर एक और शेर रचा था :-
"माधोजी सिन्धिया फर्जन्दे जिगरबन्दे मन अस्त ।
हस्त मस्रूफे तलाफीए सितम मारिये माँ ।"

मुगल सम्राट शाहआलम ने उनकी बुद्धि और बल से प्रभावित होकर महादजी सिन्धिया को **"बकील ए**

मुतलक" (सर्वाधिकार प्राप्त प्रतिनिधि) की भव्य उपाधि से विभूषित किया । उसमें वजीर तथा मीर बख्शी दोनों का कर्तव्य और अधिकार सम्मिलित थे । पहले यह उपाधि केवल एक बार बादशाह मुहम्मद शाह द्वारा निजामुल्मुल्क को प्रदान की गई थी ।

मुगल सम्राट शाहआलम ने कुछ समय के लिये धूर्त मुसाहिबों के फेर में पड़कर महादजी सिन्धिया को अपने से दूर कर दिया था । इसी बीच गुलाम कादिर नामक एक पठान दिल्ली पर उपने सैन्य बल सहित चढ़ आया । और लालकिले पर भी कब्जा कर शाह आलम और उनके परिवार वालों के साथ घोर अत्याचार किये। शाह आलम की तो दोनों आंखें लोहे के गर्म सूजों से दगवाकर गुलाम कादिर ने फोड़वा डाली । शाहआलम ने पुनः सिन्धिया से सहायता की याचना की । सिन्धिया ने तुरन्त दिल्ली आकर गुलाम कादिर और उसके लुटेरे सहयोगियों का दमन कर सम्राट को राहत पहुंचायी । गुलाम कादिर और उनके साथियों को प्राणदंड दिये गये । मुगल सम्राट सिन्धिया के इतने ऋणी बन गये कि उनके द्वारा समूचे राज्य में गोवध बन्द कर दिया गया ।

औरंगजेब की मृत्यु के कुछ काल पश्चात ही देशभर की राजनैतिक शक्ति का स्रोत मुगलों के हाथ से निकलकर मराठों के हाथ में पहुंच गया । कई इतिहासकारों का मत है कि अंग्रेजों ने भारत का साम्राज्य मुगलों से न लेकर मराठों से प्राप्त किया । राजपूतों ने तथा जयपुर स्टेट के महाराजा प्रतापसिंह ने महादजी सिन्धिया से सन्धि कर पन्द्रह लाख वार्षिक कर नियमपूर्वक देना स्वीकार किया । इसी प्रकार जोधपुर का महाराजा विजयसिंह भी सिन्धिया से पराजित होकर सन्धि करने पर मजबूर हुआ । इस प्रकार कूटनीति, वीरता तथा पराक्रम से महादजी सिन्धिया ने मराठा-शक्ति को नर्मदा से सतलज तक शनैः-शनैः पुनः स्थापित करने में सफलता प्राप्त की । ये वही मराठे थे जिन्हें लोभी ब्राह्मण शिवाजी के राज्याभिषेक के समय, कुनबी-मराठा होने के कारण, क्षत्रिय तक मानने को तैयार न थे और राजपूतों के क्षत्रियत्व का गुणगान करते उनका कंठ कुंठित नहीं होता था, जो मुगल बादशाह की कृपा-पात्रता अर्जित करने के लिये अपनी विवाह योग्य बहिनों व बेटियों के डोलों को उनके हरम में भेजने के लिये स्वतः प्रस्ताव भेजते थे । मात्र अकबर बादशाह को जोधाबाई सहित सोलह राजपूतानियों के डोले भेजे गये थे । जिसका इतिहास साक्षी है पर राजपूत फिर भी राजपूत क्षत्रिय पर शिवाजी महाराज के वंशज क्या शूद्र थे? जिन्होंने मात्र कुछ दशकों के राज्यकाल में देश के इतिहास में सदा याद रहने वाला अध्याय जोड़ा ।

शिवाजी महाराज द्वारा प्रस्थापित मराठा साम्राज्य पानीपत के तीसरी युद्ध में पराजय के परिणाम स्वरूप छिन्न-भिन्न हो चला था । उसे मात्र महादजी सिन्धिया ने अपने प्रयासों से फिर सशक्त कर उसकी कीर्ति पुनः स्थापित की । पूना स्थित पेशवा सरकार से किसी प्रकार की सहायता न मिलने एवं नाना फड़नबीस की ओर से सदा विरोध रहने पर भी उन्होंने मराठा शक्ति की कीर्ति ध्वजा ऊँची से ऊँची बुलन्दी तक पुनः पहुंचायी । जिस समय महादजी सिन्धिया उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुंचने वाला था और अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति अभी कुछ ही दूर था कि इस देश का दुर्भाग्य और अंग्रजों का सौभाग्य कि इस पराक्रमी दूरदर्शी वीर का पूना में यकायक निधन हो गया । छत्रपति शिवाजी महाराज का इस देश में हिन्दू पद पादशाही स्थापित करने का दिव्य-स्वप्न परम प्रतापी वीर महादजी सिन्धिया के देहावसान से भविष्य के गर्त में ओझल हो गया ।

'ग्रेट मराठा' - महादजी सिंधिया पर दूरदर्शन धारावाहिक

'टीपू सुल्तान' दूरदर्शन धारावाहिक के निर्माता निर्देशक संजय खान ने एक नया धारावाहित 'द ग्रेट मराठा' बनाया है । जिसका प्रदर्शन दूरदर्शन पर फरवरी 1994 से प्रारम्भ हो गया हैं यह नया धारावाहिक महान मराठा सरदार महादजी सिन्धिया के जीवनवृत्त और कृतित्व पर आधारित है, इसके माध्यम से संजय खान ने यह दर्शाने की चेष्टा की है कि जब-जब अफगानी लुटेरों, विदेशी ताकतों ने दिल्ली की बादशाही पर हमले किए, तब-तब मराठों ने ढाल बनकर दिल्ली की सल्तनत ही मदद ही नहीं की, अपितु केन्द्र की मजबूती के लिए प्राणों की आहुतियां भी दीं ।

संजय खान का कहना है कि वह इतिहास के गर्भ में छुपे उन घटनाक्रमों और बहादुरों को पर्दे पर लाना चाहते हैं, जो धीरे-धीरे गुमनामी के अंधेरे में खो गए। इसमें दो राय नहीं कि शिवाजी महान थे, किन्तु मराठों में महादजी सिंधिया की शूरवीरता को कम करने आंकना उचित नहीं होगा, जिन्होंने अफगानी बादशाह एवं लुटेरे अहमदशाह अब्दाली से सीधी टक्कर ली थी।

भारी बजट के इस धारावाहिक से हिन्दू-मुस्लिम आपसी सौहार्द्र बढ़ेगा, ऐसा आश्वासन निर्माता-निर्देशक संजय खान का है। बहरहाल प्रथम कुछ एपिसोड में मुस्लिम बादशाहों की गद्दी के लिए मक्कारी, वजीर द्वारा बादशाह की हत्या तथा मराठों के बीच भ्रातत्व, प्रेम, त्याग व वीरता का चित्रण करके में संजय खान कामयाब रहे हैं।

चौदहवें अधिवेशन में गठित अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के पदाधिकारियों और सदस्यगणों की सूची (साभार अ० भा० कू० क्ष० महासभा विशेषाधिवेशन देवास तारीख 27 व 28 दिसम्बर 1926 ई० की रिपोर्ट से)

सभापतिः क्षत्रिय कुलावतंस सप्त सहस्त्र प्रतिनिधि सर श्रीमन्त तुकोजीराव पंवार के० सी० एस० आई० महाराज देवास स्टेट (प्रथम श्रेणी)

उपसभापतिः
1. बाबू गेंदनलाल बी० ए०, एल० एल० बी, फर्रुखाबाद
2. सेठ नारायन प्रसाद वर्मा, हैदराबाद
3. प्रोफेसर पटेल, काटी
4. बाबू मिथिलाशरण सिंह बी० ए०, बी० एल०, बिहार
5. मिस्टर एम० बी० शिन्दे

प्रधान मन्त्री बाबू वृन्दावन कटियार बी० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, वकील, फर्रुखाबाद

संयुक्त मन्त्री
1. बाबू डोरीलाल जी, मुख्तयार, पीलीभीत
2. मेसर्स हीरालाल वसन्तलाल, अहमदाबाद
3. ठा० नारायन जाधव, शिवाजी रोड़, बड़ौदा
4. बा० भगेलू राम मास्टर, बस्ती
5. जा० मूरतलाल पटना
6. बा० रामकृष्ण दास, सहायक सम्पादक 'आज', बनारस (डा० अशोक दास के पितामह)
7. बा० रघुवर दयाल, लखनऊ

कोषाध्यक्ष : बाबू डोरीलाल, फर्रुखाबाद

लेखा निरीक्षक :
1. प्रोफेसर बेचन सिंह, देवास स्टेट
2. चौधरी दीपनरायन सिंह, भेड़िया (चुनार), जि० मिरजापुर (उ० प्र०)

कार्यकारिणी समिति के सदस्यगण्

1. श्रीयुत शरनसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी० बस्ती

2. श्रीयुत जानकी प्रसाद वर्मा	टिकरा स्टेट, सीतापुर
3. श्रीयुत दीनबन्धु जमींदार	अंगरौंजा, सीतापुर
4. श्रीयुत मास्टर भगवान दीन	टकेला, सीतापुर
5. श्रीयुत रामाधीन सिंह	महमूदाबाद, सीतापुर
6. श्रीयुत वृन्दालाल	लखीमपुर (यू०पी०)
7. श्रीयुत रामेश्वरदयाल	फतेहपुर (यू० पी०)
8. श्रीयुत इन्द्र दमन सिंह	पटना (बिहार)
9. श्रीयुत जसकरन सिंह	खीरी (यू० पी०)
10. श्रीयुत पुरुषोत्तम दास	बनारस (यू० पी०)
11. श्रीयुत सुरजन सिंह	कानुपर (यू० पी०)
12. श्रीयुत रामकिशोर सिंह	कानपुर (यू० पी०)
13. श्रीयुत उमाचरन कटियार, वकील	पीलीभीत (यू० पी०)
14. श्रीयुत रमाचरण कटियार वकील	पीलीभीत (यू० पी०)
15. श्रीयुत जंग बहादुर, मुख्तयार	पीलीभीत (यू० पी०) (इन्द्रवीर सिंह वकील के पितामह)
16. श्रीयुत नन्नू प्रसाद	सुल्तान गंज, आगरा
17. श्रीयुत बैजनाथ प्रसाद	भभुआ (बिहार)
18. श्रीयुत रघुनन्दन सिंह कान्ट्रेक्टर	पुरुलिया (बिहार)
19. रायबहादुर बिहारीलाल, ठेकेदार	लखनऊ (यू० पी०)
20. श्रीयुत गोवर्धन सिंह जमींदार	सारन (बिहार)
21. चौधरी देवीप्रसाद सिंह जमींदार	बाराबंकी (यू० पी०)
22. श्रीयुत गुरुप्रसाद	लखनऊ (यू० पी०)
23. श्रीयुत जगमोहन सिंह	हसनगंज, लखनऊ
24. श्रीयुत शिवदयाल सिंह ठेकेदार	डाली गंज (लखनऊ)
25. चौधरी बैजनाथ ठेकेदार	डालीगंज (लखनऊ)
26. श्रीयुत जंगबहादुर सिंह, मुख्तयार	बाराबंकी (यू० पी०)
27. श्रीयुत रामसिंह	पाठमऊ बाराबंकी (यू० पी०)
28. श्रीयुत माताप्रसाद, वकील	बाराबंकी (यू० पी०)
29. श्रीयुत खुशीराम, जमींदार	रायबरेली (यू० पी०)
30. श्रीयुत जागेश्वर दयाल, इलेक्ट्रिक इंजीनियर	गोरखपुर (यू० पी०)
31. श्रीयुत गोकुलप्रसाद, जमींदार	कटरा सरूयद, बनारस (यू० पी०)
32. श्रीयुत बाबूराम, सौदागर	कटरा, इलाहाबाद (यू० पी०)
33. श्रीयुत रामखिलावन सिंह (मुरब्बे वाले)	शाहंसापुर, बनारस (यू० पी०)
34. श्रीयुत शिवप्रसाद,	फतेहगढ़, फर्रुखाबाद (यू० पी०)
35. श्रीयुत जयजय राम, जमींदार	लाजुइया,डा० सेमरा, गोरखपुर
36. श्रीयुत दीपचन्द	दहेली, कानपुर (यू० पी०)
37. श्रीयुत गुलजारी लाल	फतेहगढ़ फर्रुखाबाद (यू० पी०)
38. श्रीयुत गेंदनलाल	फतेहगढ़ फर्रुखाबाद (यू० पी०)

39. श्रीयुत शिवदयाल मास्टर	फतेहगढ़ फर्रुखाबाद (यू० पी०)
40. श्रीयुत माधोराम प्लीडर	फतेहगढ़ फर्रुखाबाद (यू० पी०)
41. श्रीयुत रूपकिशोर	फतेहगढ़ फर्रुखाबाद (यू० पी०)
42. श्रीयुत झमन लाल	पुरविया टोला, इटावा (यू० पी०)
43. श्रीयुत जयगुरु सहाय	पुरविया टोला, इटावा (यू० पी०)
44. श्रीयुत तुलाराम बी० ए० तहसीलदार	कुमार, रायपुर (सी० पी)
45. श्रीयुत हीरालाल सौदागर	कानकली रायपुर (सी० पी०)
46. श्रीयुत युगलदास दामोदरदास	कानकली रायपुर (सी० पी०)
47. सेठ युगलकिशोर दामोदरदास	कानकली रायपुर (सी० पी०)
48. श्रीयुत सोमनाथ भद्रभाई	रायपुर, अहमदाबाद
49. श्रीयुत भोलाभाई झवेरभाई पटेल, बैरिस्टर	अहमदाबाद (पटेल बन्धु)
50. श्रीयुत भयालभाई साराभाई, बी० ए०, एल० एल० बी०	अहमदाबाद
51. श्रीयुत कैलासदास मोहनदास बैंकर	अहमदाबाद
52. श्रीयुत मदनदास पुरुषोत्तमदास	बसनीपात अहमदाबाद
53. कुंवर श्री लालसिंह, रायसिंह जी, ताल्लुकेदार	वीरमगांव स्टेट (गुजरात)
54. श्रीयुत मानकलाल हीरालाल, वकील	20 क्वींस रोड, बम्बई
55. श्रीयुत कनवर जी विट्ठभाई मेहता	सूरत (गुजरात)
56. श्रीयुत भगेलूराम	बस्ती (यू० पी०) वाया बुन्देलखंड
57. श्रीयुत बल्देवसिंह, जेलर	गोरखपुर (यू० पी०)
58. श्रीयुतपरियार सिंह	आजमगढ़ (यू० पी०)
59. श्रीयुत रुक्मु सिंह	बदायूँ (यू० पी०)
60. श्रीयुत चुमनभाई जीवाभाई	शाहपुर (गुजरात)
61. श्रीयुत बृजमोहन	चाँदगंज कला, लखनऊ
62. श्रीयुत बदलूराम	चाँदगंज कला, लखनऊ
63. श्रीयुत भोलाप्रसाद, जमींदार	डा० मन्धार, रायपुर (सी० पी०)

समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा का विशेषाधिवेशन

महासभा का विशेषाधिवेशन 27, 28 दिसम्बर सन् 1926 ई० को देवास शहर (देवास स्टेट, सी० पी०) में रावसाहब रामचन्द्रराव विट्ठलराव बण्डेकर, जस्टिस ऑफ पीस, एम० एल० सी०, बम्बई लेजिस्लेटिव कांसिल तथा जेनरल सेक्रेटरी, मरहट्ठा शिक्षण परिषद् की अध्यक्षता में बड़ी शान-शौकत से देवास नरेश की कृपा से राजसी ठाट-बाट के साथ, हर्षोल्लास पूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ, जिसका स्मरण उपस्थित प्रतिनिधियों को अपने जीवनांत तक रहा ।

पाठकों को विदित होगा कि सीतापुर (यू० पी०) में सम्पन्न महासभा का चौदहवाँ अधिवेशन विगत् सभी अधिवेशनों में सर्वोत्कृष्ट माना गया । प्रथम श्रेणी देवास-नरेश कूर्मि क्षत्रिय कुलावतन्स सप्त-सहस्त्र-सेनापति प्रतिनिधि श्रीमन्त महाराज साहब सर श्री तुकाजीराव पंवार, के० सी० एस० आई, समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के स्थायी अध्यक्ष, तथा उनके अनुज श्रीमंत भाऊ साहब महाराज जगदेवराव पंवार इसी अधिवेशन में स्थापित नवयुवक-समिति की कार्यकारिणी उपसमिति के स्थायी अध्यक्ष, महाराजकुमर श्रीमन्त विक्रमसिंहराव पंवार नानासाहब के सभापतित्व में सम्पन्न हुई । श्रीमंत महाराजा साहब का प्रेम अनुपम और व्यवहार चित्ताकर्षक था । यद्यपि कहावत

है कि "प्रभुता पाय काहि मद नाहीं" परन्तु महाराजा साहेब इसके अपवाद थे ।

श्रीमन्त महाराजा साहेब की इच्छा थी कि शीघ्र उत्तरी भारत को और कुरमियों के दक्खन के मराठों के प्रतिनिधियों को अपने खर्चे पर बुलाकर उनका सम्मेलन अपनी राजधानी देवास में बुलाया जाय । भाग्यवश ऐसा अवसर आया । महाराजकुमार श्री विक्रमसिंह पंवार नानासाहब का शुभ विवाह सन् 1926 ई० के दिसम्बर माह की 30 तारीख को होना निश्चत हुआ । अतः विशेष अधिवेशन उससे पूर्व 27 और 28 दिसम्बर सन् 1926 ई० को इसलिये रखा गया कि अधिवेशन की समाप्ति के पश्चात महाराजकुमार के शुभविवाह में सम्मिलित होने के लिये सबको निमंत्रण दिया जाये, तदानुसार अधिकाँश प्रतिनिधियों ने उक्त शुभ विवाह में भाग लेकर राजसी समारोह का आनन्द प्राप्त किया ।

इस विशेष अधिवेशन के अध्यक्षासन ग्रहणार्थ नागपुर स्टेट के महाराज श्रीमंत राघोजी भोंसले महाराज से निवेदन किया गया था पर बीमार पड़ जाने के कारण वे उसे स्वीकार न कर सके । तब देवास नरेश ने अध्यक्ष पद के लिये "मराठा शिक्षण परिषद्" के जनरल सेक्रेटरी तथा बम्बई प्रान्तीय लेजिस्लेटिव ऐसेम्बली के सदस्य, सुप्रसिद्ध समाज सेवक, और मराठी, अंग्रेजी भाषाओं के अगाध विद्वान, राव बहादुर रामचन्द्रराव विट्ठलराव वण्डेकर, जे, पी० को अध्यक्ष पद ग्रहण करने को निमन्त्रित किया गया । उक्त महानुभाव ने देवास-नरेश का निवेदन सहर्ष स्वीकार करके उस विशेषाधिवेशन की अध्यक्षता ग्रहण की ।

इस विशेषाधिवेशन में जो 380 प्रतिनिधियों की सूची रिपोर्ट में प्रकाशित हुई है उनमें से मुख्यतः उत्तर भारत के कुरमियों के प्रमुख नाम नीचे दिये गये हैं ।

विशेषाधिवेशन में उपस्थित उत्तर भारत के प्रतिनिधियों की सूची

क्र० सं०	नाम	पूर्ण पता
1.	बाबू डोरीलाल, मुख्तयार,	पीलीभीत (यू० पी०)
2.	बाबू रामचरण कटियार, वकील	पीलीभीत (यू० पी०)
3.	श्रीमान प्रयाग सिंह	मऊमंज, आजमगढ़ (यू० पी०)
4.	श्री शिवराम सिंह,	सम्पादक 'कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर' बनारस केन्द्र (यू० पी०)
5.	श्री देवी शरण सिंह.	वीरा पट्टी, बावतपुर, बनारस (यू० पी०)
6.	श्री जानकी प्रसाद वर्मा,	स्टेट टिकरा विसवां, सीतापुर (यू० पी०)
7.	श्री विशेश्वर नाथ,	स्टेट टिकरा विसवां, सीतापुर (यू० पी०)
8.	मास्टर भगवान दीन,	सीतापुर (यू० पी०)
9.	श्री दीनबन्धु जमींदार,	अंगरौजा, लहरपुर, सीतापुर (यू० पी०)
10.	श्री रामरतनलाल, जमींदार	शरीफपुर, लहरपुर, सीतापुर (यू० पी०)
11.	रायबहादुर बिहारीलाल, कान्ट्रेक्टर	लखनऊ (यू० पी०)
12.	श्री श्यामलाल	हैदराबाद, लखनऊ (यू० पी०)
13.	श्री रामसेवक, बी० ए०, एल-एल० बी०	लखनऊ (यू० पी०)
14.	श्री वृजनन्दन लाल, बी० ए०, एल-एल० बी०	बढ़पुर, फर्रूखाबाद (यू० पी०)
15.	श्री वृन्दावन कटियार	बढ़पुर, फर्रूखाबाद (यू० पी०)
16.	श्रीमती सत्यवती देवी	बढ़पुर, फर्रूखाबाद (यू० पी०)
17.	श्री जानकी प्रसाद जगमोहन लाल, कान्ट्रेक्टर,	भलदारपुरा, जबलपुर
18.	कुंवर रूकमसिंह राठौर	नगला शर्की, बदायूं (यू० पी०)

19.	श्री चन्द्रभाल सिंह,	मुख्तार आम नीमगांव स्टेट, खीरी (यू० पी०)
20.	श्री मोहन सिंह	आमगांव, बदायूं (यू० पी०)
21.	श्री उमराव सिंह	आमगांव, बदायूं (यू० पी०)
22.	श्री लेखराज सिंह	गुलडिया बदायूं (यू० पी०)
23.	श्री वृन्दालाल वर्मा- सेक्रेटरी	कू० क्ष० महासभा खीरी (यू० पी०)
24.	श्री श्याम सिंह, पोस्टमास्टर लाहौर	मूल निवासी लखीमपुर खीरी (यू० पी०)
25.	कुंवर पृथ्वीपाल सिंह पुत्र श्यामसिंह पोस्टमास्टर	लाहौर (पाकिस्तान) लखीमपुर खीरी (यू० पी०)
26.	श्री रघुनन्दन सिंह	झसिया, बैल, लखीमपुर खीरी (यू० पी०)
27.	श्री गनेश प्रसाद	अलीगंज, लखीमपुर खीरी (यू० पी०)
28.	श्री शंकर दयाल सिंह	जटपुरवां, धौरहरा लखीमपुर खीरी (यू० पी०)
29.	श्री द्वारिका प्रसाद	छतौनियां, गोला, लखीमपुर खीरी (यू० पी०)
30.	श्री हुलासराय	छतौनियां, गोला लखीमपुर खीरी (यू० पी०)
31.	श्री सुरजन सिंह बी० ए०,	धरमंगदपुर, वरीपाल, कानपुर (यू० पी०)
32.	श्री बद्रीसिंह, जमींदार	धरमंगदपुर, वरीपाल, कानपुर (यू० पी०)
33.	श्री यदुनाथ सिंह	धरमंगदपुर, वरीपाल, कानपुर (यू० पी०)
34.	श्री केदार सिंह	धरमंगदपुर, वरीपाल, कानपुर (यू० पी०)
35.	श्री रघुराज सिंह	वरीपाल, कानपुर (यू० पी०)
36.	श्री रामभरोसे सिंह	माचा, पुखरायां, कानपुर (यू० पी०)
37.	श्री भगवान दीनसिहं	रत्तापुर, रसधान, पुखरायां कानपुर (यू० पी०)
38.	श्री शिवनरायन लाल	खासवरा, रसधान, कानपुर (यू० पी०)
39.	श्री रामदयाल	खासवरा, रसधान, कानपुर (यू० पी०)
40.	श्री मन्नीलाल मुंसरिम	कैलाश मन्दिर, कानपुर (यू० पी०)
41.	मेसर्स ब्रह्मदीन सरयूप्रसाद	कोपरगंज, कानपुर (यू० पी०)
42.	श्री शिवप्रसाद एम० ए०, एल० एल० बी०	कछियानामुहाल, कानपुर (यू० पी०)
43.	श्री काशी प्रसाद, एडिटर	कछियानामुहाल, कानपुर (यू० पी०)
44.	श्री शिवशरण सिंह, प्रिंसिपल,	राजा की मंड़ी, आगरा (यू० पी०)
45.	श्रीमती अन्नपूर्णा देवी	आगरा (यू० पी०)
46.	कुमारी पद्मा देवी	आगरा (यू० पी०)
47.	श्री हरप्रसाद सिंह, जमींदार	खपुखा, फतेहपुर (यू० पी०)
48.	श्री जानकी प्रसाद	कठिगरा, बाराबंकी (यू० पी०)
49.	श्री बैजनाथ सिंह	खेटिया, बाराबंकी (यू० पी०)
50.	श्री रामनारायन सिंह	कान्ट्रेक्टर, दशहराबाग, बाराबंकी (यू० पी०)
51	श्री माताप्रसाद वकील	बाराबंकी (यू० पी०)
52.	श्री नारायनसिंह, दीनपनाह, सिद्धौर	बाराबंकी (यू० पी०)
53.	श्री वल्देव सिंह, जेलर डिस्ट्रिक जेल	गोरखपुर (यू० पी०)
54.	श्री मिथिलाशरण सिंह, वकील	बांकीपुर (पटना) (महासभा के पूर्व अध्यक्ष)
55.	श्री परदेशीसिंह	रिकाबगंज, फैजाबाद (यू० पी०)
56.	श्री बृजलाल सिंह, आर्ट्रिस्ट,	इब्राहीमपुर, सुढ़ियामऊ बाराबंकी (यू० पी०)

57. श्री मिश्रीलाल सिंह, वकील	मवैया, मिरजापुर (यू० पी०) (बाद में सन्यास ग्रहणकिया)
58. श्री शिवदान प्रसादसिंह, वकील	मिरजापुर (यू० पी०)
59. श्री रामनाथ सिंह, इलेक्ट्रिकल इंजिनियर,	मेड़िया चुनार, मिरजापुर (यू० पी०)
60. प्रो० विश्राम सिंह	मगरहां, सीखड़, मिरजापुर (यू० पी०)
61. श्री जोखूराम सिंह	मगरहां, सीखड़, मिरजापुर (यू० पी०)
62. श्री वेनी प्रसाद, वकील	उरई (यू० पी०)
63. चौधरी छीतर सिंह, मुख्तार	उरई जालौन (यू० पी०)
64. वैरिस्टर चतुरभाई मगनभाई पटेल,	अहमदाबाद (गुजरात) (महासभा के 11वें अधिवेशन के अध्यक्ष)

'समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा' के इतिहास में ऐसा अवसर कभी नहीं आया था, जब कि सारे भारत के विशेष करके महाराष्ट्र के स्वजातीय बन्धु हज़ारों की संख्या में, महासभा के पूर्व अध्यक्षगण् तथा अन्य हिन्दी क्षेत्रों और प्रान्तों से प्रतिनिधिगण् इतनी अधिक संख्या में एकत्रित हुये हों। इस विशेषाधिवेशन के अवसर पर अखिल भारतीय स्तर पर पूर्ण प्रतिनिधित्व का प्रदर्शन यहीं पर हुआ था। इसको चाहें **भरत-मिलाप** या यों कहियें **भारत-मिलाप (कुरमी-मराठा पाटीदार मिलाप)** के फलस्वरूप इस अधिवेशन में इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि स्वजातीय संगठनकर्ताओं द्वारा एक केन्द्रीय शिक्षा संस्थान का निर्माण करना जाति हित के लिये अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर प्रस्ताव पारित किये गये।

महासभा के गत् 32 वर्ष के इतिहास में ऐसा अवसर पहले कभी नहीं आया कि अध्यक्ष महोदय तथा समस्त प्रतिनिधिगण् विशाल सभा-मंडप में एकत्र होने के अतिरिक्त लगभग दो सप्ताह तक एक साथ बैठकर, सुबह शाम चाय आदि पीते, जलपान करते और साथ-साथ भोजन करते थे। रात्रि में मनोरंजन के लिये, उस समय का अजूबा, बोलता सिनेमा, नाटक या संगीत आदि साथ बैठकर देखते और सुनते थे। प्रातः शाम फुटबाल आदि खेल-खेलते, और टोलियों में देवास नगर-भ्रमण को निकलते। देवास में यह कुरमी जाति के प्रमुख महानुभावों के मिलन तथा सम्पर्क द्वारा आत्मीयता स्थापित करने का एक अद्वितीय शिविर था।

अधिवेशन हेतु भव्य पंड़ाल देवास प्रथम श्रेणी के गवर्नमेंट हाउस के विस्तृत चौक में बनाया गया था, जिसे सफ़ेद कपड़ों के पर्दों से सजाया गया था। पंडाल के खम्भों पर छत्रपति शिवाजी महाराज तथा अन्य स्वजातीय महापुरुषों के चित्र टांगें गये थे। अध्यक्ष महोदय के लिये एक उच्च्व सिंहासन बनाया गया था। सभा-मंडप में सब प्रतिनिधियों के लिये बैठने की समान व्यवस्था की गयी थी।

'कूर्मि क्षत्रिय' नामक एक कैम्प बनाया गया था जिसके अन्तर्गत पांच बड़े-बड़े कक्ष थे, जिनमें सभी प्रतिनिधियों के निवास की सुविधापूर्ण व्यवस्था की गई थी। रेलवे स्टेशन पर वाहन-व्यवस्था भारत के किसी भी भाग से देवास में आने के लिये, जो निकटस्थ रेलवे स्टेशन इन्दौर, उज्जैन हैं, वहां कर्मचारी और स्वयंसेवक नियुक्त थे। और देवास से निरन्तर मोटरें इन्दौर तथा उज्जैन रेलवे स्टेशन को दौड़ती थीं। सब स्थानों पर स्वयंसेवकों की सेवायें उपलब्ध थीं और उन्होंने अपना कर्त्तव्य बड़ी ही तत्परता से निभाया।

वास्तव में **'समस्त भारतवर्षीय कूर्मिक्षत्रिय महासभा'** के मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति इसी अधिवेशन में हुई। जातीय गूढ़ समस्याओं पर समुचित विचार करके निर्णय लेने के साथ प्रतिनिधिगण् उपरोक्त रीति से पन्द्रह दिन के रात-दिन के सहवास के कारण विचार विनिमय, पारस्परिक पूर्ण परिचय स्थापित करने में सफल हो सके। भ्रातृत्वभाव और भ्रातृत्व-प्रेम को कुरमियों की विभिन्न अंचल के लोगों में मजबूत करने में यह विशेषाधिवेशन बड़ा सफल रहा और इन सब महान उपलब्धियों के लिये यह चिरस्मरणीय रहेगा। कूर्मि क्षत्रिय संगठनात्मक इतिहास में यह विशेषाधिवेशन सदैव एक बड़े अहम् आयोजन के रूप में अंकित रहेगा।

विशेषाधिवेशन के अध्यक्ष, राव बहादुर रामचन्द्रराव विट्ठलराव बंड्रेकर, जे०पी०, एम० एल० सी०, बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल ने 27 दिसम्बर 1926 ई० को अपने अभिभाषण में जो कहा, उसमें प्रमुख बातें निम्न थी:-

1 "बहुत वर्ष पूर्व उत्तर भारत के कतिपय निवासियों के हृदयों में इस विस्तृत देश भर में फैली हुई "कूर्मि" "कुनबी" तथा "कण्डबी" आदि नामों से प्रसिद्ध जातियों और उपजातियों को संगठित करने का बिचार अंकुरित हुआ। उसका प्रारम्भिक उद्देश्य केवल उत्तर भारतनिवासी जातियों और उपजातियों को एक सूत्र में संगठित करना था। और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उक्त महानुभाव कितने ही वर्षों पर्यन्त सभाओं द्वारा प्रचार कार्य में लीन रहे। तदन्तर उक्त कार्य में किंचित सफलता प्राप्ति के पश्चात् जिस समय उनको यह ज्ञात हुआ कि उनका कार्यक्षेत्र उत्तर भारत ही नहीं किन्तु समस्त भारतवर्ष है और "कूर्मि" "कुनबी" तथा "कण्डबी" नामों से विख्यात समाज केवल उत्तर भारत में ही नहीं किन्तु समस्त देश भर में बसा हुआ है। उस समय कार्यकर्ताओं के सामने एक उच्च आदर्श उपस्थित हुआ और सन् 1909 ईसवी में मैसूर लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य तथा बैरिस्टर श्रीमान् वी० नागप्पा के सभापतित्व में इस महासभा को "कुरमी सवर सभा" से "समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा" में परिवर्तित कर दिया गया। इस महासभा का संगठनात्मक कार्य क्षेत्र सारा देश मान लिया गया था।

2 इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है कि स्वजाति के अन्तर्गत अन्यान्य उपजातियों में भेद-भावों को मिटाकर एकता स्थापित करना। इस अभिशाप को दूर करने का एक मात्र उपाय यही है कि हम लोग समाज को भलीभांति सुसंगठित तथा सुशिक्षित कर लोगों के दिमाग में स्वाभिमान और आत्मज्ञान की भावना कूट-कूट कर भर देंवे। ये भेदभाव कृत्रिम है। और इनका कोई औचित्य भी नहीं है अतः हर समझदार व्यक्ति इनको तुरन्त दूर करने के पक्ष में अपनी राय रखता होगा।

3 स्वजाति का इतिहास निःसन्देह उज्जवल है और इस सामाजिक अभिशाप के अतिरिक्त जिससे हमारे समाज का इतना पतन हुआ है। हम लोग अति-निकट भूतकाल में देश के शासक तथा उसके करोड़ों लोगों के भाग्य निर्माता रहे हैं। मराठा राज्य का नाश तथा महान छत्रपति शिवाजी द्वारा एकत्रित शक्तिशाली सेना के भंग होने का यदि मात्र नहीं तो प्रधान कारण, यही सामाजिक स्वाभिमान और आत्मज्ञान का विस्मरण था। समाज का कोई व्यक्ति नहीं होगा जिसे यह जानकर रोष होता हो कि कतिपय अदूरदर्शी ब्राह्मणों ने प्रातः स्मरणीय श्री छत्रपति शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक संस्कार में बाधायें खड़ी करके और बाद में उनको स्वाधिपति राजा न मानकर समाज का घोर तिरस्कार किया था। ब्राह्मणों द्वारा इस अदूरदर्शी नीति अपनाने का मुख्य कारण यह सामाजिक अभिशाप ही था। इसका दुष्परिणाम इस समय देश के सम्मुख है।

4 ब्राह्मणों की इस नीति का अभिप्राय ऐसा था या नहीं इस समय समझना कठिन है, किन्तु उनकी इस नीति का एक निश्चित परिणाम यह हुआ कि अन्य हिन्दुओं पर शिवाजी तथा उनके उत्तराधिकारियों के प्रति मराठों का जो प्रभाव था कुछ समय पर्यन्त पूर्णतः समाप्त कर दिया गया और साथ ही लोगों की उनके प्रति राजनिष्ठा का भी सत्यानाश कर दिया गया। यद्यपि सम्भवतः उक्त मराठा राजनिष्ठा भंग के कारण किंचित् काल तक ब्राह्मण साम्राज्य या पेशवा साम्राज्य फैल अवश्य गया, फिर भी देश के इतिहास की अत्यन्त शोचनीय दुघर्टना के रूप में यह राजनिष्ठा-भंग भविष्य में हिन्दू सन्तति को सदैव बड़े दुःख के साथ याद रहेगी।

पाठक शायद जानते होंगे कि छत्रपति शिवाजी महाराज के प्रति इस प्रकार की राजनिष्ठा और उनकी व्यक्तिगत् प्रतिष्ठा भंग करने के उद्देश्य का कुचक्र वे अभी भी चलाने से बाज नहीं आते हैं। उदाहरण के तौर पर यह कहना असंगत न होगा कि फरवरी सन् 1993 में साप्ताहिक अंग्रेजी पत्रिका

"इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया" में छत्रपति शिवाजी महाराज तथा झांसी वाली वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई पर किसी सिर-फिरे लेखक ने घोर अपमानजनक लेख प्रकाशित किया । उस पत्रिका के सम्पादक तथा उनके सहायक सम्पादक बहुधा ब्राह्मण ही होते रहे हैं । जमाना बदल गया पर लगता है कि उनकी मानसिकता अभी भी नहीं बदली है । तभी जाने या अनजाने में उस लेख को प्रकाशित कर दिया गया । जब जनता ने उस लेख में शिवाजी और झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई के प्रति घोर अपमानजनक बातें पढ़ी, देश में क्षोभ और रोष की ऐसी जबरदस्त लहरें उठने लगी कि पत्रिका के प्रकाशकों ने उस अंक की सारी प्रतियां वापिस मंगाकर नष्ट कर देने की घोषणा करके और जनता से इस घटित भयंकर भूल के लिये क्षमा याचना करके अपनी जान बचाई और अपने प्रेस, कार्यालय आदि को जनता की क्रोधाग्नि में भस्म होने से बचा लिया । यह वही वर्ग और तत्व है जिसने अपने चहेते नेताओं की पुश्त दर पुश्त खूब डफली पीटी है, पर जिनके द्वारा नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, सरकार बल्लभभाई पटेल के नाम राष्ट्रीय स्तर. पर एवं कीर्ति को फैलने से रोकने के लिये तरह-तरह के अवरोध पैदा किये जाते रहे हैं । इस बिन्दु पर आगे इतिहासकार ही सही प्रकाश डाल पायेंगे ।

अतः यह कहना ठीक है कि कुछ लोगों का जाति-दम्भ उनकी मानसिकता को इतना दूषित कर चुका है कि आगे भी वे लोग जल्दी बदलने वाले नहीं हैं, ऐसे आसार नजर आते हैं । पर इस तरह अपमान करने का या स्वाभिमान भंग करने का कोई भी वर्ग या जाति विशेष यदि जान बूझकर कुचेष्टा करता है तो उसके विरोध में बुद्धिजीवियों का यह परम दायित्व बनता है कि बौद्धिक रूप से तुरन्त उसका जवाब प्रस्तुत करें । अब लगता है यही उन्हें ठीक रास्ते पर लाने का उपाय शेष बचा हैं । पर ध्यान रखना आवश्यक है कि अन्य जाति या वर्ग के निर्दोष व्यक्तियों के साथ अन्याय न हो जाये । हमें ध्यान रखना होगा कि अपने मान-सम्मान की रक्षा में हमसे किसी दूसरे के सम्मान-स्वाभिमान का किसी भी प्रकार से हनन न होने पाये ।

5 हमारा समाज कृषि प्रधान है । हमारा व्यवसाय उच्च कोटि का है । हम लोगों को उत्तम कृषि-पद्धति द्वारा उन्नति करना चाहिये । यदि हमारे हृदय में कभी अन्य किसी धन्धे को अपनाने की अभिलाषा उठे तो हमें उद्योग-धंधों को अपनाना चाहिये, क्योंकि हम कृषक लोग उनमें भी स्वतंत्र रह सकते हैं । उद्योग-व्यवसाय का बृहत् क्षेत्र हमारे लिये उपलब्ध है, अतः हमारी संस्थायें ऐसी हों जो कि समाज को स्वतंत्र औद्योगिक व्यवसाय द्वारा जीवन निर्वाह करने के योग्य बना सकें और ऐसी नहीं जो लोगों को मात्र क्लर्क ही बना सकें ।

अभिभाषण के समाप्त होने पर तथा अन्याय कार्यक्रमों के पूरा होने पर अधिवेशन की समाप्ति की घोषणा से पूर्व अध्यक्ष महोदय ने **ग्वालियर नरेश श्रीमन्त महाराजा श्री माधवराव सिन्धिया, अलीज़ा बहादुर, धार नरेश, महाराजा सर श्री उदाजीराव पंवार, हैदराबाद निवासी सेठ नारायण प्रसाद तथा दिल्ली निवासी स्वामी श्रद्धानन्द महाराज** की अकाल तथा शोचनीय मृत्यु पर मर्मस्पर्शी संवेदना प्रगट करते हुये सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया ।

प्रथम श्रेणी देवास-नरेश कूर्मि क्षत्रिय कुलावतन्स सप्त सहस्त्र-सेनापति प्रतिनिधि

श्रीमन्त महाराजा सर श्री तुकोजीराव पंवार बापू साहेब महाराज, के० सी० एम० आई का प्रस्ताविक भाषणः-

"कूर्मि क्षत्रिय स्वजाति भाइयो !

यद्यपि हमारे महान समाज के परम माननीय सेवक बाबू वृन्दावन कटियार जी के द्वारा मुझे अपने समाज से बहुत वर्षों से परिचय है, तथापि आप में से बहुतों को मिलने का और अपने समाज की उन्नति के विषय में कुछ वार्तालाप करने का सुअवसर दो वर्ष पूर्व सीतापुर की परिषद् में मुझे प्राप्त हुआ था । तत्पश्चात अब

कुछ ऐसी घटना हुई जिसके फलस्वरूप आज आप अल्पावकाश की सूचना पर ही दूर-दूर के प्रवास के अनेक कष्टों को सानन्द उठाते हुये यहां सम्मिलित होकर देवास के राज्य तथा कूर्मि क्षत्रियों को अपनी कृपा से आनन्दित कर सके । लखीमपुर खीरी (यू० पी०) में होने वाली परिषद् का निर्धारित अधिवेशन स्थगित करके आप महाशय यहां परमोत्साह पूर्वक आये हैं, परन्तु आपके स्वागत-सत्कार में तथा निवासादि के प्रबन्ध में जो त्रुटियां और न्यूनतायें हुई हों उनके लिये आप क्षमा करेंगे ।..

दक्षिणात्य और उत्तरीय कूर्मि क्षत्रियों का सम्मेलन होना महत्वपूर्ण है । और मैं जानता हूँ कि इस विचार को सुभीता प्रदान करने में देवास निमित्त हुआ है, इसका मुझे अभिमान है । दक्षिण से इतिहास प्रसिद्ध मराठे कूर्मि क्षत्रिय-पुंगवों के वंशज और उत्तर से आप जैसे महापुरुषार्थी उन्नति के इस रणक्षेत्र में यहां पर सम्मिलित हुये हैं । भौगोलिक दृष्टि से मालव-देश भारतवर्ष का केन्द्र है, और इसी केन्द्र में हमारे पूर्वजों की महती प्रसिद्धि का सूत्रपात हुआ है । ऐसे स्थान पर एकत्रित होकर परस्पर लाभ उठाना वर्तमान कालोचित है और समुत्थान हेतु संघ बढ़ाना यह प्रत्येक समाज का आद्य कर्तव्य है ।

स्वागत - कारिणी समिति के अध्यक्ष

प्रथम श्रेणी-देवास नरेश के भ्राता, श्रीमन्त जगदेव राव पंवार, भाऊ साहब महाराज, विश्वास राव बहादुर, सी० आई० ई० पंतप्रतिनिधि महाराज संस्थान सूपा-जमगोद, के अंग्रेजी भाषण के हिन्दी रूपान्तरण के कुछ अंश :-

मेरे कुरमी भ्राताओं !

मुझे इसका पूर्ण ज्ञान है कि आप लोग अनेक आवश्यक कार्यों को छोड़कर और नानाप्रकार का कष्ट सहन करके यहां पर एकत्र हुये हैं । इस विशेषाधिवेशन के हेतु आप लोगों ने खीरी में निर्धारित वार्षिकोत्सव स्थगित कर के वास्तव में हम लोगों को आश्चर्यान्वित कर दिया है । वास्तव में इस बात के लिये देवास आपका अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक हार्दिक गुणानुवाद करता है कि आप लोग यहां पर परमोत्साह से एकत्रित हुये हैं ।

कूर्मि-क्षत्रिय समाज एक बृहत समाज है और इसकी जनसंख्या अनुमानतः तीन करोड़ से अधिक है । इस समाज में बड़े-बड़े राजे-महाराजे, ताल्लुकेदार, ज़मींदार तथा सरदार विद्यमान हैं । मेरा यह कथन असंगत न होगा कि जिस भांति प्राचीनकाल में हमारे पराक्रमी स्वजाति-नायक श्रीमन्त महाराज विक्रमादित्य, श्रीमन्त महाराजा भोज तथा प्रातः स्मरणीय छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपने - अपने अमूल्य जीवन को भारत-ऐक्योत्पादन में लगाया था, उसी भांति देवास दयामयी सार्वभौम बृटिश राज्य की छत्रछाया में रहते हुये इस प्रशान्तोन्नतिशील काल में उत्तरीय, दक्षिणात्य, पूर्वीय तथा पाश्चात्य स्वजाति क्षत्रिय भ्राताओं के एकीकरणार्थ निराभिमान भाव से यथा शक्ति प्रयत्न तथा उद्योग कर रहा है ।

हमें ऐसी आशा करनी चाहिये कि सहभोजता अर्थात् प्रीति-भोजन और तत्सम इतर प्रश्नों का शीघ्र निर्विघ्नतापूर्वक इस प्रकार समाधान किया जा सकेगा जिससे कि कूर्मि क्षत्रिय समाजोन्नति विकास में किसी भी प्रकार की अनावश्यक बाधायें न पड़ सकें ।

मालवा भारत का केन्द्र है देवास प्रायः इसके मध्य में स्थित है । अतः आप लोगों को आज के इस सम्मेलन का जिसका हमें वास्तव में अभिमान है, यह शुभावसर प्रदान करने के उपकार के लिये हम लोग कोटिशः धन्यवाद देते हैं ।

स्वागताध्यक्ष के भाषणान्तर प्रथम श्रेणी देवास के उप-ग्रह सदस्य तथा स्वागत-मंडल के संयुक्त मंत्री श्रीयुत रामचन्द्रराव नानासाहब सालुन्के ने ओजस्वी भाषा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि **"मराठा शिक्षण परिषद्"** के जनरल सेक्रेटरी तथा मुम्बई-प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य, रावबहादुर रामन्द्रराव विट्ठलराव वंडेकर साहब जे० पी०, इस महासभा के अध्यक्ष निश्चित किये जाएं । तत्पश्चात बांकीपुर (पटना) निवासी पूर्व सभापति श्रीयुत बाबू

देवास कु० क्ष० महासभा विशेषाधिवेशन १९२६ के सभापति



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
१५ वें तथा १७ वें अधिवेशनों के अध्यक्ष
देवासनरेश के अनुज
श्रीमन्त जगदेवराव पँवार भाऊ साहब



राव साहब रामचन्द्रराव विट्ठलराव वंडेकर, जे० पी०, एम० एल० सी०, बाम्बे, सेक्रेटरी, मराठा शिक्षण परिषद्।



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
१६ वें अधिवेशन के अध्यक्ष
श्री बा० वृन्दावन कटियार, एडवोकेट



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
२१ वें अधिवेशन के अध्यक्ष
श्री बा० वृजनन्दन लाल बार-ऐट-ला

मिथिलाशरण सिंह बी० ए०, बी० एल० वकील के उपयुक्त प्रस्ताव का अनुमोदन हृदयग्राही शब्दों में किया गया। और यह प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

अध्यक्ष राव बहादुर रामचन्द्र राव विट्ठलराव वड़ेकर के अभिभाषण के कुछ अंश

"महिलाओं और भद्रपुरुषो !"

इस महत्वपूर्ण सभा के कार्य-संचालन में कृपा और दक्षतापूर्ण सहायता प्रदान करने के लिये मैं आप लोगों का अनुगृहीत हूँ। हमारा देश, जैसा कि आप सब महानुभावों को विदित है कि कृषि प्रधान देश है।....

मुझे इसका बड़ा हर्ष है कि यह महासभा कार्यक्षेत्र में कृषक को यथोचित स्थान देकर देश की सार्वजनिक हित-सिध्दि का प्रयत्न कर रही है। उत्तरी भ्रातृगण स्वदेश बन्धुओं को उपदेश प्रदानार्थ केवल प्रचारास्त्र लेकर दक्षिण की ओर और दक्षिणात्य भ्रातृगण केवल प्रचारास्त्र लेकर उत्तर की ओर बढ़े हैं। ऐतिहासिक काल से पूर्व **"धारा"**, **"नगर"** तथा **"उज्जयिनी"** उस समय में भारत के लिये **"ग्रीन विच"**, **"रोम"** तथा **"वेनिस"** का कार्य करती थीं। पौराणिक भूतकाल में भी स्वाधीन **"उज्जयिनी"** का स्थान वैसा ही था जैसा कि पूर्व - ऐतिहासिक कालीन उज्जयिनी का था।

आज भी उन्हें **"धारा उज्जयिनी"** के मध्य में स्थित भारत के केन्द्रस्थ इस देवास में, **श्रीमन्त महाराज सर श्री तुकोजीराव पंवार** के नृपोचित आतिथ्य-सत्कार, कृपा तथा विनय के आश्रय में, देश के सार्वजनिक हितसिध्दि के निमित्त उत्तर दक्षिण- सम्मिश्रणार्थ हम लोग एकत्रित हुये हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका प्रस्तावान्तर्गत ऐक्य शीघ्र ही फलीभूत होगा। ऐसे शुभावसर पर जब कि श्रीमंत महाराज साहब के जन्म दिवस तथा देवास के भावी नरेश के शुभ राजकीय विवाह का सन्निपात हुआ है उत्तर-दक्षिण के इस नवीन संगठन द्वारा हम लोगों में एक नवीन शक्ति का संचार हो रहा है।.....

मैं स्वागत-समिति तथा स्वयंसेवकों को अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने हमारे इस अधिवेशन को सफल बनाने में अत्यंत तत्परता तथा परिश्रम से हम लोगों की सहायता की है।

इसके पश्चात **श्रीमंत महाराज सर श्री तुकोजीराव पंवार,** के० सी० एस० आई० महाराज प्रथम श्रेणी देवास की **"जय"** की ध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई।

देवास स्टेट एवं पंवार राजवंश

पूना के उत्तर-पूर्व लगभग 40 कि० मी० दूरी पर स्थित मुल्तान ग्राम में एक परिवार निवास करता था, जिसे पैतृक उपाधि 'पटेल' धारण करने का हक था। इस परिवार में शिवाजी पटेल हुये और उनके एक मात्र पुत्र कृष्णाजी हुये। उनके तीन बेटे हुये बाबा, रायाजी और कैरोजी। बाबाजी के दो पुत्र हुये सम्बाजी और कालोजी। सम्बाजी पंवार के वंशजों ने मालवा क्षेत्र में धार राज्य को स्थापित किया। सम्बाजी के दूसरे भाई कालोजी के वंशधरों ने एक अलग राज्य स्थापित किया जो इतिहास में देवास राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उक्त कालोजी के चार पुत्र हुये - कृष्णाजी, तुकाजी, जीवाजी और मन्नाजी। पेशवा बाजीराव प्रथम ने 1725-26 में जब मालवा पर आक्रमण किया था तब तुका और जीवाजी ने उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर युद्ध में अपूर्व शौर्य और पराक्रम प्रदर्शित किया। मालवा विजय में धार राज्य के ऊदाजी पंवार तथा सिन्धिया और होल्कर का भी महान सहयोग रहा। अतः बाद में, जब मालवा का बटवारा उपरोक्त मराठा सरदारों में किया गया तो पंवार बन्धुओं, तुकाजी और जीवाजी को देवास, सारंगपुर और आलौत के जिले तथा अन्य क्षेत्र अपना राज्य कायम करने को दिये गये और उन्हें **छत्रपति साहू महाराज** ने अपने राज-दरबार की **'प्रतिनिधि'** की पदवी से अलंकृत किया। इसके साथ-साथ उन्हें कुछ क्षेत्रों की मालगुजारी भी दी गई जो कि उस जमाने में कुल 78, 922 रूपये की थी।

छत्रपति साहू महाराज की ओर से देवास क्षेत्र मूलतः तुकाजी और शिवाजी को सम्मिलित रूप में दिया गया था , अर्थात् राज्य में दोनों समान हिस्सेदार थे । यह स्थिति कुछ ही दिन चली । अतः कुछ समय पश्चात् दोनों ने अपनी अलग-अलग विशिष्ट स्थिति बना ली ।

होल्कर और सिन्धिया की उस राज्य पर कुदृष्टि थी, ऊपर से लुटेरों और पिंडारियों का भी आतंक सर्वत्र था । इसके अलावा देवास जैसा छोटा सा राज्य अपनी सुरक्षा हेतु सेना आदि रख सकने में समर्थ भी न था। समय की आवश्यकता को भाँपते हुये तुकोजी और जीवाजी के दूरदर्शी उत्तराधिकारियों ने पुनः देवास राज्य के विभाजित दोनों प्रथक भागों का एकीकरण कर लिया और इस तरह राज्य के मूलस्वरूप, एकता, शक्ति और अधिकार पुनः स्थापित हो गये । आगे दोनों नरेशों ने वही किया और तब से यही व्यवहार प्रचलित हो गया। **दोनों नरेश मान-मर्यादा में समान थे और सभी प्रकार की राज्यीय आय में समान भागीदार थे, पर दोनों नरेश-परिवारों की पहचान हेतु बड़े भाई की सन्तति को देवास-नरेश (प्रथम श्रेणी) अथवा (वरिष्ठ) और दूसरे छोटे भाई के वंशजों को देवास-नरेश (द्वितीय श्रेणी) अथवा (कनिष्ठ) उल्लिखित किया जाता था ।**

कर्नल मालेसन देवास राज्य के सम्बन्ध में लिखते हैं कि एक बार किसी अंग्रेज अफसर ने दोनों देवास नरेशों से पूछा कि स्थिति तथा पद-प्रतिष्ठा आदि के संदर्भ में आप लोगों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाय । इस पर राज्य के किसी अधिकारी ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया :-

"If a lime is presented by a villager, it must be cut into two equal parts and divided between our two Rajas"

अर्थात् **"यदि कोई ग्रामीण प्रजा एक नींबू भेंट करती है तो उसके दो बराबर टुकड़े कर दोनों नरेशों में एक-एक समान टुकड़ा वितरित कर देना चाहिये ।"**

प्रथम श्रेणी या वरिष्ठ देवास राज्य

तुकाजी राव की मृत्यु सन् 1751 में हो गई, उनके कोई पुत्र न था । अतः उन्होंने ज्येष्ठ भ्राता कृष्णाजी के पौत्र को गोद लिया, उसका नाम भी कृष्णाजी द्वितीय था । वह तुकाजी के पश्चात् देवास नरेश बना । आगे चलकर कृष्णाजी के भी पुत्र नहीं हुआ, अतः उन्होंने अपने भतीजे को गोद लिया, जिसका नाम तुकाजी द्वितीय रखा गया। इन तुकाजी द्वितीय का सन् 1824 ई० में निधन हो गया, वे भी पुत्रहीन थे । अतः उनके पश्चात् उनके दत्तक पुत्र रुक्मांगद राव देवास नरेश बने जो खासे साहब के नाम से प्रसिद्ध हुये । खासे साहब का विवाह बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ प्रथम की दो पुत्रियों से हुआ था, उनसे कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिये उन्होंने सूपा में स्थित पंवार कुल के एक बालक को गोद लिया था । सन् 1860 ई० में रुक्मांगदराव के स्वर्गवास के पश्चात् यही बालक कृष्णाजीराव के नाम से देवास की गद्दी पर बैठा । उसके अवयस्कता काल में उनकी माता यमुनाबाई ने राज-काज का संचालन किया । उनको सम्पूर्ण राज्याधिकार 23 मार्च सन् 1876 ई० प्राप्त हुये पर कृष्णाजीराव का विवाह जियाजी सिन्धिया की पुत्री से हुआ था यह भी पुत्र हीन रहे । कृष्णाजी राव का देहान्त सन् 1899 ई० को हुआ था । यह भी पुत्रहीन रहे । उसके पश्चात् सूपा के पंवार राज कुलोत्पन्न एक बालक को दत्तक पुत्र बनाया गया और वह 12 वर्ष की आयु में 4 अप्रैल सन् 1900 को तुकोजीराव पंवार (तृतीय) के नाम से देवास की गद्दी पर बैठा । सन् 1908 में उनके वयस्क हो जाने पर सरकार की ओर से उन्हें समस्त शासनाधिकार प्राप्त हुये । यही महाराज देवास सन् 1924 में **"समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा"** के अध्यक्ष मनोनीत हुए । तदान्तर उन्होंने आजीवन कुरमी समाज की उन्नति के लिये कार्यरत रहकर अनेक चिरस्मरणीय कार्य किये । आपने दिसम्बर सन् 1926 में युवराज श्रीमन्त विक्रम राव पंवार, नानासाहब के विवाह के समय महासभा का विशेषाधिवेशन आयोजित किया था । जिसकी स्मृतियां लोग कभी न भूलेंगे ।

महाराजा तुकोजीराव पंवार (तृतीय) ने अपने शासन-काल में पिछला लाखों रुपयों का ऋण चुकता करवाया। बाद में आपके जीवनकाल में, राजकुमार और राजकुमारियों के विवाहादि में अत्यधिक व्यय तथा अन्य कारणों से

राज्य पर फिर कई लाख रुपयों का ऋण चढ़ गया । अन्त में आप तीर्थयात्रा के लिये रामेश्वरम जा रहे थे कि मार्ग में पांडिचेरी मे आप बीमार पड़ गये । उसी समय अंग्रेज सरकार ने उनके 10 नवम्बर 1933 तक देवास लौटने को लिखा, परन्तु बीमारी के कारण असमर्थ होने से ब्रिटिश सरकार के निदेशानुसार निश्चित समय तक वे वापस देवास न आ पाये । अतः रुष्टता प्रगट करते हुये 3500 रुपये प्रतिमाह की पेंशन नियत करके उन्हें देवास से बाहर ही रहने को कहा गया । पाण्डिचेरी में ही प्रथम श्रेणी देवास नरेश कूर्मि क्षत्रिय कुलावतन्स, सप्तसहस्त्र-सेनापति प्रतिनिधि श्रीमन्त महाराजा सर श्री तुकोजीराव पंवार, बापू साहेब महाराज तथा पूर्व अध्यक्ष "समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा" का देहावसान हुआ । आपके पीछे युवराज श्रीमन्त विक्रमराव पंवार, नाना साहिब को अंग्रेजों ने देवास-नरेश बनाया । देवास नरेशों को 15 तोपों की सलामी का अधिकार था ।

द्वितीय श्रेणी या कनिष्ठ देवास राज्य

जैसा पूर्व वर्णन किया जा चुका है कि देवास का राज्य मूलतः तुकाजीराव पंवार तथा जीवाजीराव पंवार दो सगे भाइयों को समान भागीदारी में मराठा राज्य की ओर से दिया गया था । कुछ काल बाद दोनों ने अपनी अलग-अलग सीमायें बना ली, परन्तु लूट-पाट तथा अन्य समस्याओं को देखते हुये फिर वे दोनों राज्य एक सीमा के अन्तर्गत आ गये और दोनों नरेशों के समान अधिकार निश्चित किये गये । देवास-नरेश (प्रथम श्रेणी) का इतिहास ऊपर दिया जा चुका है । अब नीचे देवास राज्य (द्वितीय श्रेणी) के अन्तर्गत जीवाजीराव की कनिष्ठ शाखा का वर्णन किया जाता है ।

जीवाजीराव का शासन काल स्वतंत्र रूप में सन् 1739 ई० के आस-पास प्रारंभ हुआ । सन् 1775 ई० में पूना जाते समय रास्ते में बीमार पड़ने से उनका निधन हो गया । उनके पुत्र सदाशिवराव पंवार गद्दी पर बैठे पर वे भी सन् 1790 ई० में चल बसे । तब उनका पुत्र रुक्मराव गद्दी पर बैठा पर सन् 1810 ई० में उसकी भी अकाल मृत्यु हो गई । उनका पुत्र न था अतः उन्होंने अपने पूर्वज कालोजी के सबसे छोटे पुत्र मनाजी के पौत्र, नीलकान्त को दत्तक पुत्र बनाया जो कि आनन्दराव के नाम से सिंहासन पर आरुढ़ हुये पर उनका भी सन् 1840 में स्वर्गवास हो गया । उसके बाद उसका दत्तक पुत्र हैवतराव राजा बना पर वे भी पुत्र हीन रहे। सन् 1858 ई० में एक बालक को इस शर्त पर गोद लिया कि यदि राजपुत्र का जन्म हुआ तो उसका गोदनामा खारिज माना जायेगा । सन् 1860 ई० में राजपुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम रखा गया नारायणराव दादा साहेब जब तक वह नावालिग था राज्य प्रबन्ध ब्रिटिश सरकार के पोलिटिकल एजेन्ट की देख-रेख में रहा । सन् 1880 में बालिग होने पर शासन-तंत्र अपने हाथ में लिया पर उनका निधन सन् 1892 ई० में हो गया तो मल्हारराव गद्दी पर बैठा । उसका भाई सदाशिवराव राज-काज में उसकी बड़ी मदद करता था । उसने सन् 1914 से 1917 तक दीवान पद भी संभाला ।

सन् 1934 ई० में मल्हारराव पंवार का देहावसान हुआ, तब उनके भाई सदाशिवराव खासे साहब ही 21 फरवरी सन् 1934 को गद्दी पर बैठे । सन् 1908 ई० में खासे साहब ने विलायत जाकर बार-एट-लॉ प्राप्त करने के लिये अध्ययन करना चाहा, पर देवास राज्य (जूनियर) में दीवान की गड़बड़ी करने के कारण वे उपना अध्ययन रोक विलायत से देवास वापिस आ गये । उनके शासन काल में राज्य ने काफी प्रगति की । उन्नति तथा सुधार कार्यों में सदैव ही उनकी विशेष रुचि रही ।

यही देवास नरेश हरनौत (पटना) के सन् 1933 में अ० भा० कू० क्ष० महासभा के 20 वें अधिवेशन, के अध्यक्ष हुये । कुरमी जाति के दुर्भाग्य से 2 दिसम्बर 1943 ई० को उनका यह शुभचिन्तक नरेश भी चल बसा। पर इन दोनों देवास (प्रथम श्रेणी) नरेश श्री तुकोजीराव पंवार तथा यह देवास (द्वितीय श्रेणी) नरेश श्रीमन्त सदाशिव राव पंवार, खासे साहब को उसकें सुकृत्यों के लिये कुरमी जाति सदा श्रद्धा एवं आदर पूर्वक याद करती रहेगी। इन्हीं महानुभावों के लिये किसी शायर ने ठीक कहा है "जाने वाले कभी नहीं आते, जाने वालों की याद आती है ।" "जी के मरना तो सबको आता है, मरकर जीना सिखा दिया तूने ।"

देवास (कनिष्ठ) के पूर्व महाराजा श्रीमन्त यशवन्तराव पंवार

महाराजा श्रीमन्त सदाशिवराव खासे साहेब की 2 दिसम्बर सन् 1943 ई० को आसामयिक मृत्यु के पश्चात् उनके सुपुत्र राजकुमार यशवन्तराव पंवार, बाबू साहेब देवास (कनिष्ठ) राज्य के महाराज बनाये गए। इन्हीं राजकुमार ने ही हरनौत अधिवेशन में, अपने पूज्य पिता महाराजा श्रीमन्त खासे साहब के प्रथम दिन समय पर न पहुंच सकने के पर अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के 20 वें अधिवेशन में समायोजित प्रथम दिवस की कार्यवाही का सुचारु संचालन किया था।

जिस समय इस राज्य की बागडोर श्रीमन्त बाबू साहेब महाराज को संभालनी पड़ी तो उस समय भारतवर्ष में अन्य राज्यों की तरह यहां भी खाद्यान्न, जल एवं वस्त्रादि की समस्या बड़ी कठिन हो चली थीं। अपने पूज्य पिता के सद्‌गुणों से सम्पन्न महाराज श्रीमंत बाबू साहेब ने बड़ी सूझ-बूझ से जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करके समस्याओं का समयोचित समाधान कर दिया।

श्रीमन्त खासे साहब ने सन् 1934 में अपने सिंहासनारोहण के शुभ अवसर पर राजकुमार श्रीमन्त यशवन्त राव के प्रति अपने उद्‌गार प्रजा के सम्मुख रखते हुए कहा था कि युवराज सच्चरित्र, बिचारवान, विवेकशील अस्वार्थी, प्रजा के लिये सदैव दयालु और पंवार राजघराने के अनुरूप मिलनसार, विनम्र, सदाचारी, आज्ञाकारी तथा दूसरों का आदर सम्मान करने वाले शील-स्वभाव के पुरुष हैं। उसी के अनुसार वर्तमान महाराज अपने पिताश्री तथा पितामहश्री के अनुरूप निकले।

महाराज श्रीमन्त पंवार की प्रारम्भिक शिक्षा देवास में हुई तत्पश्चात् उनकी शिक्षा मेयो कॉलेज अजमेर, अलीगढ़ तथा विलायत में हुई। वे कानून का अध्ययन कर रहे थे कि पिताजी ने आवश्यक कार्य से उन्हें देवास बुला लिया। श्रीमन्त ने बिलायत में रहकर यूरोप का भ्रमण किया अंग्रेजी भाषा पर उनका अधिकार था।

जब 15 अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ और जब सरदार पटेल के आह्वान पर देशी रियासतों रजवाड़ों का भारत में विलय होने लगा उस समय श्रीमन्त यशवन्तराव पंवार ने देवास की अपनी प्रजा को समझाया कि समय की मांग है कि छोटे-बड़े सब राज्य और रजवाड़े भारत संघ में स्वतः विलयकर उसे सुदृढ़ और शक्तिशाली राष्ट्र बनाने में अपना चिरस्मरणीय योगदान देंवे। श्रीमन्त ने अपने प्रजाजनों के सम्मुख इच्छा प्रकट की न मुझे राज्य चाहिए और न प्रजा का शासन, मैं तो स्वयं एक सेवक के रूप में सेवा कार्य करना चाहता हूँ। देवास राज्य कनिष्ठ की बड़ी इच्छा थी कि प्रजा अपने पैरों पर खड़ी हो जाय और अपने प्रतिनिधियों को चुनकर राजकाज का संचालन करे।

श्रीमन्त महाराज यशवन्तराव भारत के प्रथम राजप्रमुख बनाये गये। आपका बिचार था कि जो दृढ़ता से अपने धर्म का अनुयायी होता है वही दूसरे के धर्म का सम्मान करता है। उनका सम्पर्क स्वतंत्र भारत के शीर्षस्थ नेताओं से था। कूर्मि क्षत्रिय जाति के संगठन और उन्नति में वे सदा सहयोग देने को तत्पर रहते थे।

पन्द्रहवां अधिवेशन

महासभा का पन्द्रहवाँ अधिवेशन 1,2 और 3 मार्च सन 1927 को लखीमपुर खीरी (यू० पी०) में हिज़ हाईनस श्रीमन्त महाराजा देवास (प्रथम श्रेणी) के भ्राता श्रीमन्त जगदेवराव पंवार भाऊसाहब महाराज विश्वासराव बहादुर, सी० आई० ई०, पन्त प्रतिनिधि महाराज संस्थान सूपा-जामदेव की अध्यक्षता मे हर्षोल्लास के साथ समाप्त हुआ। इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष उसी जनपद के नीमगांव स्टेट के नवयुवक ताल्लुकेदार कुंवर गौरीशंकर सिंह थे । अध्यक्षीय भाषण अंग्रेजी भाषा में दिया गया और उसका हिन्दी अनुवाद श्री एस० एस० बागवे ने पढ़ा ।

15वीं महासभा के अध्यक्ष श्रीमन्त जगदेवराव पंवार भाऊसाहेब महाराज ने अपने अभिभाषण में यह स्वीकार किया कि मैंने यह पद स्वीकार करके अपने अग्रज हिज़ हाईनस महाराजा देवास (प्रथम श्रेणी) की इच्छा पूरी की है । उन्होंने उपस्थित प्रतिनिधिगणों को बताया "भाइयो हिज़ हाईनेस महाराजा साहेब की यह प्रबल मनोकामना है कि जाति-उत्थान कार्य में कुरमियों और मराठों में हार्दिक सहयोग स्थापित होना चाहिये।" उन्होंने उदाहरण देकर अपने मन्तव्य को स्पष्ट किया । "हमारी सम्पूर्ण जाति को उसी प्रकार सक्रिय होना चाहिये जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में हृदय होता है ।" उन्होंने आगे बताया कि "जहां कहीं विचारों में बिखराव होता है, वहां ही विनाश आ उपस्थित होता है ।"

अध्यक्ष महोदय ने अपने ओजस्वी और उपदेशपूर्ण भाषण में स्पष्ट शब्दों में उद्घोषित किया कि जातीय पदाधिकारियों में परस्पर प्रेम और विश्वास होना चाहिए, उन्हें मितव्ययी और सादे-जीवन का अभ्यस्त होना चाहिये। उनका यह भी कथन था कि जब तक पाठशालायें, विद्यालय, छात्रावास और एक विश्वविद्यालय अपना न होगा तब तक हम अधिक कुछ नहीं कर पायेंगे ।

इस अधिवेशन में वैतनिक उपदेशक रखने की आयोजना भी स्वीकृत हुई । दो उपदेशक भी नियुक्त हुये। इसका श्रेय कानपुर के प्रतिनिधि बाबू शिवप्रसाद सिंह वकील तथा बाबू काशीप्रसाद सिंह को था । रात्रि में स्वागत समिति की ओर से सारे प्रतिनिधियों और विशिष्ट अतिथियों और महासभा के पदाधिकारियों और सदस्यगणों का सहभोज आयोजित हुआ, और उसमें अध्यक्ष महोदय श्रीमंत भाऊसाहब महाराज ने सबके साथ कच्ची रसोई वाला भोजन एक साथ जातीय पंगत में विराज कर ग्रहण किया । पाठकगण इससे पूर्व पढ़ चुके होंगे कि देवास नरेश के अध्यक्षीय काल में खीरी (उ० प्र०) में सम्पन्न 14वें अधिवेशन के दौरान उनके विशेष आग्रह पर पहली बार सब उपजातियों के हिन्दी भाषी कुरमियों ने एक साथ बैठकर भोजन किया था । देवास नरेश को सहभोज के लिये मानसिक रूप से तैयार करने को काफी प्रयत्न करना तथा समझाना बुझाना पड़ा था । नहीं तो प्रत्येक उपजाति की भोजन व्यवस्था अलग-अलग करानी पड़ती, जो कि कई तरह की परेशानियां पैदा करती । तब विगत अधिवेशनों में अक्सर ऐसे दृश्य उपस्थित होते, जो **"नौ कनौजिया, बारह हुक्का, बात ही बात में धुक्कम-धुक्का"** कहावत को चरितार्थ करते । सहभोज का यह कदम बड़ा प्रगतिशील सिद्ध हुआ ।

इसी पन्द्रहवें अधिवेशन में कूर्मि क्षत्रिय महिला परिषद की भी स्थापना हुई और उसकी प्रथम सभा वहीं, श्रीमती चम्पा कुँवार रानी साहिबा, की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई थी । महासभा के भविष्य के सम्बन्ध में अध्यक्ष महोदय ने सलाह दी :-

"Efforts should be made to preserve work and to retain confidence, love, ambitions and ideals of the people. Such efforts will beget true and natural leaders".

अर्थात् - "कार्य को चालू रखने का यत्न होना चाहिये और विश्वास, प्रेम, महत्वाकांक्षा और आदर्शों को बनाये रखने का प्रयत्न होना चाहिये । ऐसी कोशिशों से सच्चे और प्रकृत नेता उत्पन्न होंगे ।"

अध्यक्षीय भाषण में माननीय श्री वृन्दावन लाल कटियार ने आर्य समाज के सुधारात्मक पहलुओं पर प्रकाश डाला । उन दिनों आर्य समाज की हिन्दुओं में सर्वत्र चर्चा थी । लोगों को समझ में आने लगा था कि आर्य समाज, जाति-पांति एवं मिथ्याडम्बर से रहित, विकृत ब्राह्मणवाद के विरुद्ध एक सरल, सीधा, और सच्चा मार्ग-दर्शक मत था । यह जीवन्त संस्था, युगों-युगों से दबायी गयी कुरमी तथा हिन्दुओं की अन्य अनेक उपजातियों की विशाल संख्या को प्रभावित करने लगी ।

बाबू वृन्दावन लाल कटियार स्वयं आर्य समाजी थे । उन्होंने बताया कि महासभा के जन्मदाता तथा प्रथम प्रधानमंत्री, स्वनामधन्य बाबू रामाधीन सिंह स्वयं एक पक्के तथा सक्रिय आर्य समाजी थे । महासभा के उपाध्यक्ष पीलीभीत के राय बहादुर बाबू बहादुर सिंह, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट स्वयं आर्य समाज के प्रभावशाली नेता और नागरिक थे । उनकी एक धर्मान्ध मुसलमान ने पीलीभीत शहर की एक आम सड़क पर घात लगाकर गोली मार कर हत्या कर दी । अध्यक्ष माननीय कटियार जी ने इस जघन्य हत्या पर आवश्यक चेतावनी देते हुये अपने भाषण में उल्लेख किया था । उन्होंने अंग्रेजी में लिखे अपने परम्परागत अध्यक्षीय भाषण में बड़े विद्वतापूर्ण ढंग से प्रमाणित किया कि कुरमियों को अपने क्षत्रियत्व स्थापित करने के लिये ब्राह्मणों से ऐसी व्यवस्था प्राप्त करना घोर अपमानजनक है, क्योंकि हमारी जाति के रणबांकुरे रणभूमि में अपने अस्त्र-शस्त्रों द्वारा अनेक बार स्वयं क्षत्रियत्व को प्रमाणित कर चुके हैं ।

देश की समकालीन राजनीतिक हलचलें

सन् 1928 के अन्त में कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि ब्रिटिश सरकार यदि सन् 1929 के अन्त तक औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं देती है तो मजबूरन भारतीय जनता को उसके खिलाफ एक जबरदस्त आन्दोलन फिर से शुरू करना पड़ेगा । उस समय की युवा-पीढ़ी अगर-मगर की भाषा से सन्तुष्ट न थी, वे लोग तो तुरन्त कुछ कर डालने के पक्षधर थे । अंग्रेजों ने हिन्दुस्तानी लोगों के गुस्से को ठंडा करने की एक नयी चाल चली । ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन का गठन कर उसकी घोषणा कर दी कि वह जाँच करेगा कि भारत किस हद तक आजादी पाने के लायक हो गया है । परन्तु साइमन कमीशन के अध्यक्ष, मिस्टर साइमन सहित सभी सदस्य अंग्रेज थे, वे यहां के लोगों के मन की बातें कैसे ठीक से समझ पाते? अतः कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार का यह व्यवहार बहुत बुरा लगा । और उसने निश्चय कर लिया कि उसके कार्यकर्ता साइमन कमीशन का हर जगह काले झंडे दिखाकर और **"साइमन वापस जाओ"** के नारों से अपने पूर्ण विरोध का आभास करायेंगे । इस प्रकार साइमन कमीशन जहाँ पहुंचा इन्हीं उन्मादी नारों और काले-झंड़ों से उनका विरोध प्रदर्शित किया गया ।

गोरों की सरकार के उस जमाने के काली खाल वाले चमचों को ज्यादा बुरा लगता था, वे अपने अंग्रेज स्वामियों को खुश करने की दृष्टि से गांधी जी और उनके अनुयायियों की खिल्ली उड़ाते और कहते फिरते:-

"बोल गई चरखे की चरख चूँ "

जनता भी उन्हीं के लहजे में उनकी आकांओं का मजाक उड़ाते हुये उत्तर में कहती :-

"बोल गई माई लार्ड की कुकड़ूँ कूँ"

पर गांधी एक आंधी थे, उनके आन्दोलन में देश के कोने-कोने में निस्वार्थ, देशव्रती, सेवाव्रती युवकों के दल के दल सारे देश में अंग्रेजी वस्त्रों तथा अन्यान्य विदेशी चीजों का बहिष्कार करते यह गाते फिरते थे :-

"क्या हुआ गर मर गये, अपने वतन के वास्ते,
बुलबुलें कुर्बान होती हैं, चमन के वास्ते,
तरस आता है तुम्हारे हाल पे ऐ हिन्दियों,
गैर के मोहताज़ हो अपने कफ़न के वास्ते ।"

उस जमाने में प्रभात फेरियों का प्रचलन खूब था। मोहल्ले-मोहल्ले युवा लोग टोलियां बनाकर इस प्रकार के गीत गाते हुये, स्वदेशी चीज़ों के प्रचार-प्रसार हेतु प्रभात फेरियां निकालते :-

"जिए तो बदन पर स्वदेशी बसन हो,
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफ़न हो।
पराया सहारा है अपमान होना,
जरूरी है निज शान का ध्यान होना।
है वाजिब स्वदेशी पै कुर्बान होना,
इसी से है सम्भव समाधान होना।।

स्वदेशी और वन्देमातरम के गीत बंगाल की तरह ही उत्तर भारत के अनेक प्रान्तों तें तेज़ी से प्रचलित होते गये। अंग्रेज शासक वर्ग के लोगों को चिढ़ाने के लिये भी लुक-छिपकर जोशीले नवयुवक ये गाने से न चूकते :--

तीर है खंजर है या तलवार बन्देमातरम्
कर रहा है कौम को बेजार बन्देमातरम ।।
यह वह नुस्खा है कि जिसका नाम है संजीवनी ।
सुनके पाते हैं शफा बीमार बन्देमातरम्।।
लुत्फ आ जाये हमारे कत्ल को निकले अगर ।
म्यान से कहती हुई तलवार बन्देमातरम्।।

कोई गुरु नानक जैसे संतों की वाणी सुनाकर जनता में प्रेरणा इन 'सन्त वचन' के गायन से करते :-

"जननी जनै तो भक्तजन कै दाता कै सूर ।
नाहींतो तू बॉझ रह, मती गंवावे नूर ।।"

-गुरुनानक देव जी

दिल्ली का मौजूदा भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने प्रशासनिक नियंत्रण वाले सभी स्कूलों को यह आदेश भेजा है कि सभी बच्चे स्कूलों में रोज़ सबसे पहले एक साथ 'बंदे मातरम्' गाएं। उस आदेश का विरोध मुस्लिम समुदाय की ओर से बिहार के मौजूदा सांसद सैयद शहाबुद्दीन जैसे नेताओं ने किया है। उनका तर्क है कि 'बंदे मातरम्' को गाना अनिवार्य किये जाने से उनके समुदाय के लोगों की भावनाओं को ठेस पहुंचेगी। सैयद शहाबुद्दीन कहते हैं कि सबसे पहले तो मातृभूमि के समक्ष 'नमन' की आवश्यकता इस इस्लामी परम्परा के खिलाफ है, जिसमें ईश्वर और सिकंदर के सिवा किसी और के समक्ष शीश नवाना मना है। इसके अलावा (बंकिम चन्द्र चटर्जी द्वारा 'आनंद मठ' के लिए लिखा) यह गाना साधुओं के लिये एक समूह द्वारा बंगाल के तत्कालीन मुस्लिम शासक के खिलाफ बगावत में गाया गया था।

उस शासक का नाम मीर जाफर था, जिसे इतिहास में ब्रिटिश कठपुतली और गद्दार के रूप में याद किया जाता है। मीर जाफर का आज भी कोई आदर से नाम नहीं लेता है। उसने कर वसूलने का काम ब्रिटेन की 'ईस्ट इंडिया कंपनी' को सौंप दिया था। उक्त साधु-बगावत मूलतः टैक्स वसूलने वाली कार्रवाइयों के खिलाफ थी। सैयद शहाबुद्दीन जैसे मुस्लिम नेताओं के विरोध के बावजूद भी 'बंदे मातरम्' का स्थान आज भी पुराने समय के देशभक्ति वाले कामों की सूची में सम्मानजनक स्थान पर है।

सत्तरहवां अधिवेशन

मुजफ्फरपुर (बिहार) में 26, 27 और 28 दिसम्बर 1929 को होने वाले महासभा के 17वें अधिवेशन के अध्यक्ष सप्त सहस्त्र सेनापति प्रतिनिधि हिज़ हाईनस महाराजा सर तुकोजीराव पंवार, के० सी० एस० आई० महाराजा देवास (प्रथम श्रेणी) के अनुज श्रीमन्त जगदेवराव पंवार, भाऊसाहब महाराज मनोनीति किये गये थे। पर अपने ज्येष्ठ भ्राता, महाराजा साहब देवास की आकस्मिक बीमारी के कारण वे मुजफ्फरपुर अधिवेशन में उपस्थित न हो सके। अतः उनकी अनुपस्थिति में श्री सीताराम लक्ष्मणराव बागले साहेब ने उनकी ओर से उपस्थित सभासदों के सम्मुख उनका लिखित अध्यक्षीय भाषण पढ़ा और उन्होंने ही सभा का संचालन भी किया।

इस अधिवेशन में कवि-सम्मेलन तथा निबन्ध-पाठ के भी मनोरंजक आयोजन किये गये जिनकी उपस्थित प्रतिनिधियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की । नई पीढ़ी के बाबू ठाकुरशरण सिंह की अध्यक्षता में कूर्मि क्षत्रिय नवयुवक सम्मेलन बड़े जोश-खरोश के साथ सम्पन्न हुआ । इस अधिवेशन में साइमन कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पारित किया गया । इसी वर्ष, सन् 1929 में लाहौर कांग्रेस ने सतलज के किनारे अधिवेशन कर 'पूर्ण-स्वराज्य' का प्रस्ताव पारित किया था ।

मुजफ्फरपुर का यह अधिवेशन बीस वर्ष पूर्व 1909 ई० में हुये इखलासपुर के अधिवेशन के बाद बिहार का दूसरा अधिवेशन था, अतः बिहार के प्रतिनिधियों में विशेष जोश और जागृति उत्पन्न हुई थी ।

अध्यक्षीय भाषण में प्रचार और संगठन पर ज़ोर देते हुये कहा गया :- समाज की वर्तमान अवस्था में यह बहुत ही आवश्यक है कि प्रचार द्वारा समाज को सुसंगठित तथा उन्नत करने वाले भिन्न-भिन्न उपकरणों का महत्व जाति भाइयों को समझाया जावे"।

इसी अधिवेशन में कृषि आयोग बनाने एवं **"कूर्मि क्षत्रिय हितैषी"** जातीय पत्रिका के पुनः प्रकाशन की बात सर्वसम्मति से स्वीकार की गई । जातीय अर्थ व्यवस्था सुधारने हेतु सरकारी समितियां और सामाजिक उत्कर्ष के लिये पुस्तकालय, बाचनालय की स्थापना तथा अच्छे साहित्यकारों को प्रशस्ति-पत्र और पुरस्कार देने की बात भी तय की गई ।

इसी अधिवेशन में मानभूम (वर्तमान में झारखंड क्षेत्र) से तीन कुड़मि महतो प्रतिनिधि भी आमंत्रित किये गये और यह घोषणा की गई कि छोटा नागपुर प्लेटू के कुड़मि महतो और उत्तर बिहार के अन्य कूर्मियों में कोई अन्तर नहीं है । महासभा से वापिस होने पर बहुतों ने यज्ञोपवीत धारण कर लिया । निरंजन मेहता (ग्राम मोजकिया, पो० जसीपुर, मयूरभंज स्टेट, उड़ीसा) ने यज्ञकर्ता पंडित कृष्णा पांडे द्वारा बाकुड़ा मानभूम, मिदनापुर से आये प्रतिनिधियों सहित सबको जनेऊ धारण करवाया । झाड़गुड़ी (मानभूम) में सभा का आयोजन हुआ, जिसमें प्रस्ताव पास हुआ कि छोटा नागपुर के कुड़मि अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा में भाग ले सकते हैं । पंचकोट के राजा ने भी कुड़मि महतो की उन्नति में योगदान दिया ।

मिस्टर डब्लू० जी० लेसी, आई० सी० एस० जनगणना सुपरिन्टेन्डेन्ट इस विषय में वर्णन करते है [Census of India, 1931. Vol VI, Bihar and Orissa, Part I, Report {Page 293] :-

"इसके (मुजफ्फरपुर के अधिवेशन) बाद उसी वर्ष घागरजुरी (Ghagarjuri) मानभूम में एक बड़ी सभा हुई जिसमें संयुक्त प्रान्त से कुरमियों के एक प्रतिनिधि ने भी भाग लिया, और उस सभा में यह निश्चित कर दिया गया कि छोटा नागपुर के कुरमी लोग और बिहार तथा संयुक्त प्रान्त के कुरमी एक दूसरे के समान हैं और उनमें रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित होगा"- यह भी कि "छोटा नागपुर के कुरमी" **अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय** एसोशियेसन से निकट सम्बन्ध स्थापित करके उसके निर्देशानुसार चलेंगे"- इस सभा में यह समझाया गया कि कुरमी

लोग क्षत्रिय वर्ण के हैं। अतः यज्ञोपवीत उनका अधिकार है, और लगभग पचास लोगों का इस सभा में ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया ।"

कुछ रूढ़िवादियों ने इसका विरोध किया । विडम्बना यह है कि दोनों वर्ग के कुरमियों में कोई समन्वय नहीं हो सका । तब से आज 63 वर्ष बाद भी दोनों वर्ग के कुरमियों में अन्तर स्पष्ट देखा जा सकता है। एक दूसरे के बीच वैवाहिक सम्बन्ध अत्यन्त विरल हैं । और जो हुये हैं वे निजी लाभ के लिये हुये हैं। यह अवश्य सही है कि झारखंड के कुड़मि वहां की अन्य जातियों से अधिक उद्यमी और प्रगतिशील हैं । संथालों के विपरीत इन्हें भविष्य की चिन्ता है । एक उपलब्धि इनकी यह है कि इन्होंने मदिरापान से परहेज कर लिया है । और वे तेज़ी से अन्य जनजातियों से अधिक संस्कारित होते जा रहे हैं ।

झारखण्ड के कुड़मियों (कुरमियों को यहां यही कहा जाता है) अनुसूचित जनजातिं की सूची में दर्ज होने के कारण 1930 ई० तक छोटा नागपुर के कुड़मियों को जनजाति की जो सुविधायें प्राप्त थीं, 1929 के मुजफ्फरपुर के अधिवेशन में भाग लेकर अपने को क्षत्रिय कुल का घोषित करने के कारण वे सुविधायें 1931 की जनगणना के पश्चात बन्द कर दी गईं ।

झारखण्ड क्षेत्र की सभ्यता, संस्कृति, राजनीति तथा उसके उच्च आदर्शों के वर्तमान संवाहक के रूप में जो कुड़मि बुद्धिजीवी हैं, उनमें श्री केदार महतो का नाम प्रमुख है । उनके अनुसार 'कुर्मी' के आगे 'क्षत्रिय' जोड़ने का कोई औचित्य नहीं दिखता, बल्कि उसे जोड़कर 'कूर्मि क्षत्रिय' कहलाने में कहीं न कहीं अपनी ही हीन भावना छिपी नजर आती है । सब कुरमी बन्धुओं को अपने संगठन के माध्यम से प्रयत्न करना चाहिये कि उनकी परिस्थिति वश झारखण्ड के कुड़मि बन्धुओं को पहले की भांति पुनः अनुसूचित जनजाति की कोटि में लाने हेतु सरकार से समुचित प्रयास करना चाहिये ।तभी वे तेज़ी से उन्नति कर सकेंगे ।

साइमन कमीशन और कूर्मि समाज

इस 17 वें अधिवेशन का विवरण 'कूर्मि क्षत्रिय इतिहास' के पृष्ठ 178 पर देते हुए लेखकों सर्व श्री शिवरामसिंह तथा स्वामी अभयानन्द सरस्वती ने कहा है कि, "जिस समय भारत में साइमन कमीशन का आगमन हुआ और सम्पूर्ण भारतीयों ने इसका विरोध किया था । ऐसे अवसर पर महासभा ने बहुत सोच-विचार कर अपना अधिकार सभा के स्थायी सभापति महाराज देवास (प्रथम श्रेणी) के हाथों में उचित कार्यवाही करने के लिए सौंप दिया था ।"

बिहार के जयसवार कुरमियों का महासभा के कार्यकलापों में योगदान

कुरमी जाति का सौभाग्य है कि चौधरी दीपनारायन सिंह, चौधरी देवीप्रसाद सिंह, बाबू शिवरामसिंह, बाबू गुप्तनाथ सिंह, श्री रामप्रिया शरण सिंह "रत्नेश" आदि की अटूट जातीय इतिहास लेखकों की श्रृंखला में एक और नाम उभर कर आया है वे हैं श्री रामकृष्ण मेहता जी । जैसा नाम है वैसे ही साधु प्रकृति तथा स्वच्छ व्यक्तित्व वाले हैं । वे पटना जनपद के सोनमई ग्राम के निवासी हैं । तथा एक प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय के उपप्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हुये हैं ।

श्री रामकृष्ण मेहता को इस लेखक ने प्रथम बार सन् 1987 की महासभा के 36 वें अधिवेशन के दौरान सारनाथ में देखा था । और तब से उनसे बराबर पत्राचार तथा जातीय इतिहास सामग्री का आदान-प्रदान होता रहता है । श्री रामकृष्ण मेहता को सही अर्थों में यायावर-साहित्यकार तथा विशेष करके कूर्मि जातीय इतिहास लेखक कहा जाता है । वे अनेक पुस्तकें लिख चुके हैं । कुरमी जाति के इतिहास के तथ्यों को बटोरने को वे गांव-गांव, नगर-नगर घूमें हैं । जिस प्रकार मधुमक्खी मधु संचय करने हेतु एक स्थान से फूलों से उड़कर दूरस्थ स्थान के

अन्य फूलों तक भ्रमण करती रहती है, उसी प्रकार मेहता जी उस जानकारी को इकट्ठा करते रहने के लिये निरन्तर घूमते रहते हैं । लगता है कि यहीं उनकी दिनचर्या बन गयी है । आज वे अपने जीवन के आठवें दशक में भी वे समर्पित भाव से जातीय इतिहास के सम्वर्धन में एक युवा कार्यकर्त्ता की तरह जुटे हुये हैं । उन्होंने डा० नगेन्द्र के साथ लिखित पुस्तक **"इतिहास के बिखरे पन्ने"** के पृष्ठ 14 पर बिहार के **जयसवार कुरमियों** के बारे में निम्नलिखित जानकारी दी है :-

"अखिल भारतवर्षीय कू० क्ष० महासभा, मुजफ्फरपुर सन् 1929 के अधिवेशन से लौटने पर बाढ़ इलाके के मास्टर श्री रामसिंह के ह्रदय में विचार उठा कि पटना ज़िला जयसवार कुरमी क्षत्रियों का संगठन किया जाय, किन्तु यह विचार केवल विचार ही मात्र बन के रह गया । हरनौत महासभा के सन् 1933 के अधिवेशन के वातावरण ने इनकी गहरी नींद तोड़ी । आरम्भ में चन्दे द्वारा धन-राशि एकत्र करने में बड़ी कठिनाई हुई । इस सभा में जयसवार कुरमियों में शिक्षा-प्रसार तथा तिलक-दहेज की कुप्रथा मिटाने पर जोर दिया गया । इस सभा के सभापति बाबू हरिहरनाथ सिन्हा, जमींदार (बाढ़-पटना) थे । पटना जिला **जयसवार कूर्मि क्षत्रिय महासभा** का द्वितीय अधिवेशन 12 अप्रैल 1936 ई० को बिहटा सेवान के निकट हुआ । इस सभा के सभापति कलकत्ता के रईस और प्रसिद्ध समाजसेवी बाबू लक्ष्मणचन्द्र सिंह थे । सभा के मास्टर रामसिंह (बाढ़) पटना वाले प्रधानमंत्री थे । उनकी पत्नी से जून माह सन् 1992 में इस लेखक की भेंट डा० मेहता नगेन्द्र सिंह जी के डाक्टर्स कालोनी, कंकरबाग, पटना स्थित निवास पर हुई थी । डाक्टर साहब ने उनका परिचय अपनी मामीजी करके करवाया । खेद है कि उसके कुछ माह पश्चात् ही उनकी मामी जी का निधन भी हो गया । पटना जनपद के जयसवार कुरमियों का तृतीय अधिवेशन बिहार शरीफ में ता० 21 अप्रैल 1937 को हुआ । चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन पटना सिटी में सन् 1938 में हुआ । बाद में जयसवार उपशाखा की यह सभा **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** में विलीन हो गयी ।"

जयसवार कुरमी

उत्तर भारत के कूर्मि क्षत्रियों में जयसवार उपशाखा या उपजाति का एक बृहत समुदाय है । इतिहास का अवलोकन करने से जयसवार कुरमियों से सम्बधित अनेक चकित कर देने वाले तथ्य मिलते हैं । सन् 1896 में बंगाल सिविल सर्विसिज़ के **विलियम क्रूकस** ने अपनी पुस्तक **"दि ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ द नार्थ वेस्टर्न इण्डिया"** में लिखा है कि जयसवार उपजाति के लोग राजपूत होते हैं । वे लोग अपनी **'जयसवार'** उपजाति की उत्पत्ति अवध के जिला रायबरेली के कस्बा **'जायस'** से आये अपने पूर्वजों से बतलाते हैं । लेखक का अनुमान है कि उनके पूर्वजों का **'जायस'** नामक स्थान से निकास होने से वे **जायस+वार-जायसवार या जयसवार** कहलाने के अतिरिक्त कोई अन्य कारण भी होने चाहियें । यह अनुसन्धान का विषय है । उपर्युक्त पुस्तक में यह भी वर्णित है कि मथुरा में रहने वाले जयसवारों का मत है कि उनके पूर्वज जायस (जिला राय बरेली, यू० पी०) से बीकानेर जा बसे थे । वहीं से उनके वंशज इधर-उधर जा बसे । इन जयसवार कुरमियों का सामाजिक स्तर एवं आर्थिक दशा क्या थी इसका अनुमान **सर एच० एस० इलियट** के इस वर्णन से बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता कि जयसवारों और बछाल राजपूतों में आपस में विवाह सम्बन्ध हुआ करते थे ।

विलियम क्रूक ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में कुरमियों की उपजातियों का विस्तार से उल्लेख करते हुये लिखा है कि जयसवार कुरमी उत्तरी पश्चिमी भारत (वर्तमान में जिसे उत्तर प्रदेश कहते हैं) में अन्य उपजातियों के साथ-साथ मुख्यतः मिरजापुर, आजमगढ़, फर्रुखाबाद, खीरी और कानपुर आदि जिलों में बसते हैं । तत्कालीन (सन् 1896 के आस-पास) अवध के सम्बन्ध में तो विलियम क्रूक महोदय जयसवार कुरमियों की उत्पत्ति का स्पष्ट स्रोत वर्णन करते हुये लिखते हैं, "अवध में सर्वाधिक सम्पन्न उपजाति जयसवार कुरमियों की है जो कि अपनी उत्पत्ति कन्नौज

से हुई पाते हैं, जबकि लगभग पांच सौ वर्ष पहले एक भयंकर सूखे ने इनके पूर्वजों को यहां से बाहर जाने पर विवश कर दिया था ।" (The strongest sub-caste in Oudh is the JAISWAR, who trace their origin to Kannauj, where they say their forefathers were driven five hundred years ago by a famine.)

कर्नल विलियम हेनरी स्लीमन ने अंग्रेजों द्वारा अवध को हथियाने से पहले अपनी भ्रमण डायरी में अवध के देहातों का विस्तार से वर्णन किया है । यह डायरी पुस्तक-रूप में प्रकाशित भी हुई थी । उसमें सन् 1840 के आस-पास, अवधिया कुरमी कहलवाने के वास्तविक अधिकारी, अवधवासी कुरमियों, का वर्णन काफी विस्तार से किया है । हर वर्णन में उन्होंने यही कहा कि कुरमी बड़े परिश्रमी और कुशल कृषक हैं, और जहां-जहां बसे हैं, वे खेती करते हैं और वहां उत्तम पैदावार होती है । अवध के इन कुरमियों में विलियम क्रूक के अनुसार अधिकतर जयसवार लोग ही थे । अतः जनरल स्लीमन ने भी मुख्यतः अवध के खुशहाल जयसवार कृषकों का ही उल्लेख निरन्तर किया है । स्व० चौधरी दीपनरायण सिंह ने अपनी पुस्तक "कूर्मि क्षत्रियत्व निर्णय" में जयसवार कुरमियों के सम्बन्ध में मत प्रकट किया है कि ये लोग (जयसवार) अपने को राजा ययाति की रानी देवयानी की सन्तान कहते हैं । चन्द्रवंश में एक राजा शगार (खगार) हुये उनके वंशज जशध्वल (यशोध्वल) हुये । आगे चलकर ये ही जशध्वल (यशोध्वल) वंशज जयसवार कहलाये । इस वंश के कूर्मि चौधरी साहब के अनुसार संयुक्त प्रान्त (आज का उत्तर प्रदेश) में अधिक संख्या में बसे हुये जयसवार कूर्मियों का गोत्र कश्यप बतलाया गया है । न जाने क्यों ये लोग जयसवार आस्पद का प्रयोग न कर अपने नामों में 'सिंह' 'वर्मा', 'चौधरी' तथा 'प्रसाद' आदि का प्रयोग करते हैं । जिससे इनका बहुसंख्यक कुरमी रूप प्रकट नहीं हो पाता । पर असलियत यही है कि उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक संख्या जयसवार कुरमियों की है । और इनका सामाजिक तथा आर्थिक स्तर अन्य उपजातियों से कम नहीं है । कम है तो इनमें राजनीतिक चेतना और इसीलिये स्थानीय, प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर ये अन्य उपजातियों से अब तक पीछे रहे हैं । चौधरी दीपनारायण सिंह स्वयं अपने को घोड़चढ़े जयसवार उपजाति के बताते थे । उनकी पुस्तक में उनका वंश-परिचय देखिये ।

श्री शिवराम सिंह, भूतपर्व अध्यक्ष व महामन्त्री अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा ने अपनी पुस्तक "कूर्मि क्षत्रिय इतिहास" में जयसवार कुरमियों को चौधरी दीपनारायणसिंह की तरह, राजा ययाति और उनकी रानी देवयानी की सन्तान लिखा है । इन्होंने भी जयसवारों को चन्द्रवंश के राजा शगार (खगार) और उनके वंशज जशध्वल (यशोध्वल) की संतति होना बताया है । इनके मतानुसार इस उपजाति के कूर्मि क्षत्रिय उत्तर प्रदेश में अनेक जिलों में पाये जाते हैं । पर मुख्यतः वे मिरजापुर, फर्रूखाबाद, मैनपुरी, एटा आदि जिलों में विशेष रूप से पाये जाते हैं। पुराने तिरहुत विभाग के जयसवारों के गोत्र कश्यप, वंश चन्द्र, पूर्व पुरुष यशो या जसो कहे जाते हैं । इन्होंने यह मत भी व्यक्त किया है कि इन्हीं जयसवारों की कोई शाखा राजपूतों से परास्त होकर उनमें मिल गई हो । गोरखपुर खंड में जयसवार तथा मल्ल कुरमियों का अस्तित्व अधिक संख्या में पाया जाता हैं । पटना जिला के जयसवार कुरमी अपने को चन्द्रवंशी क्षत्रिय कहते हैं । बिहार में आज स्थिति ऐसी है कि अनेक जिलों में, विशेषकर जो सीमावर्ती हैं वहां जयसवार कुरमी अधिक हैं । आजादी के बाद इन लोगों में उन्नति की दिशा में काफी परिवर्तन आया है।

स्वर्गीय चौधरी देवीप्रसाद सिंह बाराबंकी वासी जयसवार कुरमी तथा महासभा के पूर्व महामंत्री का एक लेख 'जयसवार कूर्मि' शीर्षक से "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" के फरवरी 1963 वाले अंक में पुनः उद्धृत हुआ था । उस लेख में विद्वान लेखक ने मत व्यक्त किया है कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिनके पूर्वजों का, पद्मावत के रचयिता मल्लिक मोहम्मद 'जायसी' की तरह 'जायस' कस्बे से सम्बन्ध रहा होगा, वे उसको प्रतिष्ठा की निगाह से देखते होंगे । परन्तु अवध अंचल में जयसवार कूर्मि उसके विपरीत इस सम्बन्ध में कुछ अन्य मान्यताएं रखते हैं । रायबरेली, बाराबंकी, लखनऊ, आदि जिलों में अनेक बड़े-बड़े ग्राम और कस्बे मौजूद हैं, जिनमें अधिक संख्या जयसवार कुरमियों की ही है । रायबरेली जिले में बछरावां जैसा विशाल एवं प्राचीन कस्बा है, जिसको कहा जाता है कि वत्सराज

(वच्छराज) नामक कूर्मि क्षत्रिय ने कन्नौज की ओर से आकर बसाया था । कभी इनके आधीन अनेक ग्राम थे । और बच्छराज जी की सन्तानों की जमींदारी वहां अन्त तक कायम रहीं । वे जयसवार कुरमी जाति के थे ।

चौधरी देवीप्रसाद सिंह ने अपने उक्त लेख में बताया कि ऐतिहासिक तथ्यों से विदित होता है कि उस समय के तालुका सेहगांव को काजनसिंह नाम से एक कुरमी ने दिल्ली के आस-पास से आकर बसाया था। सेहगांव या सहगों के काजनसिंह की तरह बाराबंकी जिले के बीबीपुर के जमींदार बल्देव सिंह, उचिरा के जमींदार प्रमोदसिंह, जंगबहादुर सिंह आदि जयसवार कूर्मि ही थे । और जिनके पूर्वजों का कोई भी सम्बन्ध 'जायस' कस्बे से नहीं था। इन उदाहरणों से निष्कर्ष निकलता है कि जयसवार कुरमी जो इतनी बड़ी संख्या में आज भी उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रदेशों में बसे हुये हैं उन सबका मूलस्रोत केवल राय बरेली जिले का जायस कस्बा ही नहीं रहा होगा । उत्तर प्रदेश के कुरमियों में जयसवार कुरमी सबसे अधिक जनपदों में बसे हुये हैं ।

जयसवारों के सम्बंध में एक पौराणिक कथा मिलती है अतः उसका उल्लेख करना लाभप्रद रहेगा । स्कन्दपुराण के सह्याद्रि खण्ड में हारीतवंश के जय उपनामक राजाओं का वर्णन शिवजी-गणेशजी कथा के रूप में इस प्रकार है:-

"हारीतस्य ऋषे वंशे जातस्य जय भूपते,
योगेश्वरी सेवकस्य वंश व्यूहं ब्रवीमते ।।42।।
जयान्तु पौण्ड्र को राजा तस्मा दण्ड इतीरितः ।
दण्डाच्च दमणोज्ञेयो दीर्घ बुद्धिस्ततः परम ।। 43 ।।
पाञ्चजन्य स्तनोज्ञेयो भासुरिश्च ततः परम ।
लिपिंजयश्च ततो भूडगलस्य ततः परम ।। 44 ।।
शार्दूलश्च ततो ज्ञेयो योगेपाश्च ततः स्मृतः ।
योगेश्वर्याः प्रसादश्च हारीता जय नामकाः ।। 45 ।।
कथित तास्ते मया तात काम शास्त्र विशारदः ।

अर्थात् - "योगेश्वरी के उपासक ऋषि हारीत के वंश में पैदा जय राजा के वंश-समूह का मैं तुम्हें विवरण बतलाता हूँ । राजा जय से पुत्र पौण्ड्रक हुये, उनसे दण्ड, दण्ड से दमन, उनसे दीर्घबुद्धि, उनसे पांचजन्य और उसके पश्चात् भासुरि, भासुरि से लिपिंजय हुये, उनके पश्चात् लगल, उनसे शार्दूल, उनसे गोपाल स्मृत उत्पन्न हुये। शिवजी गणेशजी से कहते हैं कि हारीश वंश में उत्पन्न योगेश्वरी की कृपा से कामशास्त्र में विशारद 'जय' नाम वालों का वर्णन तात् मैंने तुमसे किया ।"

उपरोक्त पौराणिक उल्लेख से यही विदित होता है कि हारीत वंश के लोग कालान्तर में अश्वारोहण में निपुण होने के कारण जय + अश्ववार अथवा जयाश्ववार कहलाये । कालान्तर में जिनका संक्षिप्त रूप फिर बदलकर जयसवार या जैसवार बनकर रह गया । जिसका आज आस्पद के रूप में कुरमियों की एक विशेष उपजाति प्रयोग करती है । कुछ अन्य जातियों के लोग जो अपना उद्गम 'जायस' कस्बे को मानते हैं और अपने को जायसवाल, जायसवारा और जैसवारा आदि कहते हैं वे सब जयसवार या जैसवार कुर्मियों से अवश्य भिन्न हैं । शायद वे कुछ और हैं, और सामाजिक स्तर में काफी पीछे हैं । उनके कारण भ्रान्ति से बचने के लिये उत्तर प्रदेश के जयसवार कुरमी अपने इस आस्पद का प्रयोग बहुधा नहीं करते हैं । जायसवाल तो कलवार जाति के होते हैं ।

डा० जे० पी० वर्मा अपनी पुस्तक **"भारतीय कुरमी कृषक का इतिहास"** भाग-2 सन् 1988, पृष्ठ 167-168 पर लिखते हैं :-

'कुरमी जाति की यह एक मौलिक प्रवृति है कि इसके अन्तर्गत जितनी भी उपजातियों अथवा वंश हैं, उनमें से प्रायः प्रत्येक समुदाय एक ही स्थान पर, एक ही क्षेत्र में आबाद होता आया है । आज भी यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है । **बैसवार, गंगवार, उमराव, कटियार, सचान, कनौजिया, सिंगरौर, मल्ल, राढ़, गुजराती आदि**

अनेक वर्ग अपने-अपने एक ही क्षेत्र में निवास करते हैं । परन्तु जयसवारों का कोई एक सीमित क्षेत्र नहीं है, वे प्रायः सम्पूर्ण उत्तरी भारत में यत्र-तत्र फैले हुये हैं । इनकी जनसंख्या भी अन्य सभी कुरमियों की उपजातियों से अधिक है । उत्तर प्रदेश विशेष करके अवध के जैसवार परिवार अपना सम्बन्ध कन्नौज से बताते हैं । उनका कहना है कि उनका जातीय पूर्वज नेता, महान पराक्रमी सम्राट था , तथा वह विक्रम सम्वत् का प्रवर्तक था । लखनऊ के आस-पास के जैसवार अपने पूर्वजों को अब से लगभग 600 वर्ष पूर्व अकाल के कारण कन्नौज क्षेत्र से आया हुआ बताते हैं । अवध गजेटियर में भी यही उल्लेख मिलता है ।

जैसवार कुरमियों के पूर्वज विक्रम संबत के प्रवर्तक मालव-गण राज्य के महान सरदार यशोधर्मन

उपर्युक्त लोक मान्यता के अनुसार यह पूर्वज निश्चय ही अपरिमित शक्ति-सम्पन्न एक महान योद्धा था जो अपने अतुल पराक्रम के कारण **'विक्रमादित्य'** उपाधि का अधिकारी हुआ । विक्रमादित्य उपाधिकारी कई राजाओं की सूची उपलब्ध है । अब पता यह करना है कि वह कौन सा राजा जिसके नाम से विक्रम सम्वत चलना शुरू हुआ था । प्रामाणिक विवेचन से पता चलता है कि मालवाधिपति, **"यशोधर्मन, विष्णुवर्द्धन विक्रमादित्य"**, विक्रम सम्वत् के प्रर्वतक थे । मन्दसौर में प्राप्त साक्ष्य यह स्पष्ट रूप से बताते हैं कि **"मालव सम्वत"** जिसको मालवों ने अपने **"मालव गणराज्य"** की स्थापना के समय चलाया था, लगभग 500 वर्ष पश्चात, उन्हीं मालव जनों के वंशजों ने, **'विक्रम संवत्'** के नाम से प्रचलित किया । अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना एवं अनुपम शौर्य और पराक्रम के कारण यशोवर्धन, विक्रमादित्य उपाधि का अधिकारी हुआ, और उसके नाम से मालव सम्वत् , विक्रम सम्वत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

सन् 422 ई० के आस-पास क्रूर हूण जाति ने पश्चिम की ओर से, गुप्त सम्राटों के शासन-काल में भारत पर विकराल आक्रमण किया । हूण मध्य एशिया के वर्फीले पर्वतों के निवासी, और विश्व के सबसे भयानक तथा अत्याचारी आक्रमणकारी लोग थे । उनके दल के दल, हरे-भरे खेतों, बाग-बगीचों, घनी बस्तियों, नगर-ग्रामों को उजाड़ते-जलाते और निरीह जनता को मारते-काटते अबाध गति से चले जाते थे । उनके एक सरदार अटीला का दावा था कि जहां मेरे घोड़ों की टापें पड़ जाती थी, वहां घास तक न उगती थी । ऐसे 2 लाख हूणों के एक प्रचण्ड दल ने भारत की ओर प्रयाण किया । हूणों के टिड्डी दल न तो एक स्थान पर रुकते और न एक स्थान पर जमकर लड़ते । वे सम्पूर्ण देश में फैल गये । इस कारण गुप्त सम्राटों को हूणों पर काबू पाना अत्यन्त कठिन हो गया । सम्राट कुमारगुप्त को जीवन भर हूणों से संघर्ष करना पड़ा । इसके पश्चात् सम्राट स्कन्दगुप्त ने बीस वर्ष तक हूणों का कठिन सामना किया । स्कन्दगुप्त के ही सेनापति मन्दसौर के मालव सरदार यशोधर्मन ने हूणों के विरुद्ध युद्धों में अपूर्व रण कौशल एवं शौर्य दिखाया, उन पर पूरी तरह काबू पाया जिससे उनके वीरत्व की छाप सर्वत्र कायम हो गयी । सन् 468 ई० में स्कन्दगुप्त की मृत्यु हो गई । तोरमाण के नेतृत्व में हूणों का एक बड़ा दल मथुरा तक बढ़ आया । उसका पुत्र मिहिरकुल सौराष्ट्र में भयानक लूट-मार करने लगा । सब राजों-महाराजाओं ने इकट्ठे होकर, अपनी सामूहिक सेना का महासेनापति, यशोधर्मन को ही बनाया । दोनों ओर से डटकर भयंकर निर्याणक युद्ध हुआ । महाराज यशोधर्मन ने पांच हजार ऊंटों पर जमें हुये सैनिकों को लेकर हूणों पर भीषण हमला कर दिया । समूची हूण सेना मौत के घाट उतार दी गयी । कुछ वापिस अपने मुल्क भाग गये । हजारों बचे हुये हूण बौद्ध धर्म ग्रहण कर भारतीयों में घुलमिल गये । यह युद्ध इतिहास में कोलूर संग्राम के नाम से जाना जाता है । यह सन् 520 ई० के आस-पास घटित हुआ था । इस निर्णायक युद्ध के लगभग 500 वर्षों तक फिर किसी विदेशी हमलवार ने भारत पर कुदृष्टि नहीं डाली ।

इस विजय का श्रेय मालव-गण के प्रतिनिधि वीर केसरी यशोधर्मन को ही दिया गया। इतनी बड़ी विजय प्राप्त करने पर सब ओर से इस महान सरदार को सम्राट-पद पर आसीन कराने का सुझाव आया। ब्राह्मणों ने विरोध किया कि यशोधर्मन कृषक कुनबी साधारण परिवार के हैं, क्षत्रिय राजकुल के नहीं। पर उस जमाने में सभी नरपालों ने सहर्ष एक स्वर से उन्हें अपना सम्राट मान लिया था। अन्त में ब्राह्मणों ने भी यशोधर्मन को मालव सिंहासन पर विधिवत् अभिषिक्त किया। उन्हें विक्रमादित्य की 'पदवी' से सम्मानित किया गया। इस प्रकार एक साधारण स्थिति का कुनबी मालव सरदार अपने पराक्रम, प्रताप एवं भुजबल से 'महाराजाधिराज यशोधर्मन विष्णुवर्द्धन विक्रमादित्य' नाम धारण करके समस्त भारत का एकछत्र सम्राट घोषित हुआ। समस्त सजातीय मानव जन समुदायों ने अपने इस कुल भूषण के नाम पर 'यशो' उपाधि ग्रहण की। तदनन्तर उनके वंशज 'यशोवार' या 'जशोवार' कहलाये।

अन्य सहस्त्रों मालव-जन उत्तर भारत में सैनिक, कर्मचारी आदि के रूप में फैले हुये थे। उन्होंने 'यशोवार' या 'जशोवार' उपाधि धारण की कालान्तर में यह यह शब्द जसोवर, जैसवार, जयसवार आदि रूपों में बदल गया। यहां यशोधर्मन को जो जयसवारों का आदि पुरुष कहा गया है, उन्हें भी पूर्व इतिहासकारों ने 'यशोध्वज' नाम से वर्णन किया है। अतः वर्तमान जयसवारों के आदि पुरुष मालव जन थे।

बैसवार : बैसवार कुरमियों की आबादी उत्तर प्रदेश में बाराबंकी, सीतापुर, लखनऊ, और विशेष रूप से खीरी में है। ये आगरा नगर में भी पाये जाते हैं। मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ में इनकी बस्ती है। मध्य प्रदेश में भी ये अनेक स्थानों पर पाये जाते हैं। ये 'बैस' भी लिखते हैं और उदाहरणतः नौवीं लोकसभा में श्री रमेश बैस, कुर्मी जाति के सदस्य मध्यप्रदेश से निर्वाचित हुये थे। ये मिर्जापुर और जौनपुर में भी अल्पसंख्या में बसे हुये हैं। बैसवार राजपूत भी होते हैं। इनमें कुछ कुर्मी अपने को 'वंशवार' भी लिखते हैं।

अधिकांश बैसवार जन अपने नाम के साथ 'वर्मा' लगाते हैं और कोई-कोई 'बैसवार' भी लिखते हैं। प्रचीनकाल में, एक निश्चित एवं स्वामित्व की दृष्टि से सीमित भू-क्षेत्र को 'विश' कहते थे। आज भी गाँव की जमीन का नाप विसे व विसवा में पुराने बन्दोवस्त में मिल जायेगा। अतः भूस्वामी, कुनबी, 'विशपति' अथवा 'वैश्य' भी कहे जाते थे। सम्राट हर्षवर्धन स्वयं वैश्य क्षत्रिय थे, जिसका सबसे प्रबल तथा विश्वसनीय प्रमाण चीनीयात्री हैनसांग का यात्रा वर्णन है हेन सांग ने सम्राट हर्षवर्धन को स्पष्ट रूप से वैश्य माना है यह वैश्य शब्द ही बाद में 'बैस' हो गया। यदि हर्षवर्धन वैश्य क्षत्रिय न होता तो उसके परिवार के वैवाहिक सम्बन्ध मालवा और वल्लभी क्षत्रिय राजाओं से कैसे स्थापति हो सकते थे। उ. प्र. का बैसवारा क्षेत्र लगभग 800 वर्षों से बैस कुरमियों के निवास स्थान के नाम से जाना जाता है। भ्रमवश बैस कुर्मियों का सीधा सम्बन्ध बैस राजपूतों से निकालना भ्रमपूर्ण रहेगा। इसी प्रकार बैस को वनिया समझना भी त्रुटिपूर्ण है। मध्यप्रदेश से आठवीं संसद में रमेश बैस सांसद थे जो जाति के कूर्मि क्षत्रिय थे।

गंगवार, गंगापारी

उत्तर प्रदेश के कुरमी मूल वंशों में गंगवार वंश का विशिष्ट स्थान है। बरेली और पीलीभीत जनपदों में इस वर्ग के सर्वाधिक घनी आबादी वाले क्षेत्र हैं शाहजहांपुर, फर्रुखाबाद। तराई क्षेत्र में ये घने और इटावा में आंशिक रूप से बसे हुये हैं। सन् 1891 ई० की जनगणना में इनकी जनसंख्या एक ही आस्पद 'गंगापारी' के अर्न्तगत दी गई है। ये दोनों एक ही उपजाति हैं और 80 वर्ष पहले ये सब गंगापारी उपजाति से जाने जाते थे। कुछ जानकार स्रोतों से पता चलता है कि 500-600 ईसा वर्ष पूर्व गंगा तटीय क्षेत्र से अनेक कुर्मी सैनिक मैसूर में जा बसे और उनका 'गंग' वंश प्रसिद्ध है। इस विषय पर बिस्तृत जानकारी इस पुस्तक में अन्यत्र दी गई है।

अखिल भारतीय जयसवार राजपूत महासभा (रजि०) दिल्ली

ठाकुर संतसिंह परिहार जो कि 107 बी विक्टोरिया रोड जबलपुर के निवासी हैं, ने "जयसवार क्षत्रिय प्रकाश" पुस्तक की रचना की , जिसे अखिल भारतीय जयसवार राजपूत महासभा (रजि०) दिल्ली द्वारा प्रकाशित कराया गया । इस संस्था के अनेक पदाधिकारीगण इस लेखक के निवास पर इसके कार्यक्रमों में आमंत्रित करने आते रहे हैं वे सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे । इस लेखक का स्पष्ट कहना था कि हम कूर्मि क्षत्रिय हैं और यदि वे भी यही हैं, या इसको अपना अंग मानते हैं तब वह सहर्ष उनके कार्यक्रमों में न केवल सम्मिलित होंगे, अपितु सहयोग भी करेंगे । पर वे ऐसा कोई आश्वासन न दे सके, अतः घनिष्ठता आगे बढ़ न पायी । उनकी उपर्युक्त पुस्तक की मुख्य बातें यहां दी जा रही हैं जिससे पाठक भी लाभान्वित हो सकें :-

"इस दिशा में महासभा ने इस संदर्भ में समाज को क्या दिया और अपना कर्तव्य जिस सफलता से निभाया, वह इस जाति की प्रथम विश्व युद्ध से दूसरे विश्वयुद्ध तक की सामाजिक दशा तथा आज के देश के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जायेगा । हमारा आज का प्रगतिशील समाज, हमारे त्यागमय तथा कर्मवीर पूर्वजों की देन है । आज इस समाज में एक कृतघ्न वर्ग भी उत्पन्न हो गया है, जो हीन भावना और विकृत प्रवृत्तिवश, कुत्सित प्रचार कर रहा है कि अखिल भारतीय जयसवार राजपूत महासभा की कोई उपलब्धि नहीं है और "जयसवार" नाम हमारे पूर्वजों ने आतंकवश रख लिया था और हम "जयसवार" न होकर "जैसावत" है ।

ये हीन भावना ग्रस्त लोग अपने स्वनिर्मित एवं आधारहीन इतिहास के द्वारा जाति बन्धुओं के मन में निरर्थक शंका उत्पन्न करते हैं । ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार क्षत्रिय जाति के बारे में अनर्गल शंकाएं किया करते हैं कि क्षत्रिय और राजपूत दो भिन्न जातियां हैं, जबकि यह भ्रामक है । इस संदर्भ में मेरा निवेदन यह है कि वेदों में क्षत्रिय के लिये राजन्य शब्द आया है और स्मृतियों में क्षत्रिय, बाहुज, राजपुत्र और क्षत्रिय आदि शब्द प्रयुक्त हुये हैं और ये सब ही शब्द पर्यायवाची हैं । क्षत्रिय एवं राजपूत एक ही जाति के द्योतक हैं । उपरोक्त तत्व (तथाकथित जैसावत) "जयसवार" शब्द के बारे में अनर्गल एवं मिथ्या प्रचार करते हैं जबकि प्राचीन धर्मग्रंथ एवं ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रमाणित करते हैं कि "जयसवार" चन्द्रवंशीय क्षत्रिय हैं और जयसवार शब्द स्वयं में वीरता तथा पराक्रम का द्योतक है । देखिये परिशिष्ट (क, ख,छ एवं ग)।"

परिशिष्ट (क, ख, छ तथा ग)

(क) जयसवार राजपूतों के अस्तित्व के ऐतिहासिक प्रमाण

(नोट 52 पुस्तकें दी गयी हैं जिनमें 13 प्रमुख पुस्तकों का नीचे उल्लेख है)

क्रम सं०	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन स्थान
1.	जयसवार वंश भास्कर	ठा० हीरालाल कौसर,	कौसर प्रेस, सोलन, हिमाचल
2.	सूर्यवंश क्षत्रिय वंशावली	ठा० बुद्धिसिंह, ठा० द्वारका प्रसाद	
3.	जाति भास्कर		श्री खेमराज, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
4.	"ट्राइब्स एण्ड कास्ट आफ दी नार्थ वेस्टर्न इण्डिया"	विलियम क्रूक ।	सहारनपुर (उ० प्र०)
5.	गलोसरी ऑफ इण्डिया कास्ट एण्ड ट्राइब्स	श्री बी० ए० गुप्ता	बम्बई
6.	क्षत्रिय वंशावली	डा० उदय नारायण सिंह	
7.	राजपूत (पृष्ठ 1898)	कैप्टन ए० एच० भिंगले	
8.	इथनोग्राफीकल हैंडबुक	विलियम क्रुक 1880	

9. इम्पीरियल गेजेटियर इण्डिया, भाग XXII
10. चीफस एण्ड लीडिंग फेमिलीज़ इन राजपूताना 1894 राजपूताना
11. "हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्ट पृष्ठ" नं.222-223 एम० ए० शेरिंगि लंदन 1872
12. अलीगढ़ गजेटियार भाग VI पृष्ठ 78 ए० आर० नेविल I. C. S. लंदन
13. "रूलर्स आफ इण्डिया एण्ड चीफ आफ राजपूताना" हैंडले ।

(ख) श्री ए० एच० भिंगल द्वारा जयसवार राजपूतों की जानकारी :

विवाह सम्बन्ध :

जयसवार	गहलौत	राठौर	कछवाहा	झाला	चौहान को कन्या देता है
जयसवार	सोलंकी	बघेला	राठौर	--	गहलोत की कन्या लेता है
जयसवार	तंवर (तोमर)	चौहान	पवार	बड़गुजर	परिहार गहलौत राठौर कछवाह और हाड़ा की कन्या लेता व देता है ।

कास्ट हैण्डबुक फार इण्डियन आर्मी का हिन्दी रूपान्तर लेखक ए० एच भिंगले पुस्तक राजपूत पृष्ठ 81)

क्रम सं०	कुल	शाखाएँ	संख्या व	स्थान	सैनिक योग्यता
1.	यादव (जादों, यदु, जादौत)	करौली के यदु भुड़ेचा जरेचा-कुधमुड, विद्यमान-सोहा	9000,	जैसलमेर जयपुर करोली	अच्छे
		भट्टी-धाकर-बारेसरी, जयसवार-बरमला-पोर्च, जसावत-डरिया नारा	35000	अलीगढ़, बुलन्दशहर-मथुरा आगरा एटा	अच्छे
2.	भट्टी	केलन-खिआन्ह जैसलमेरिया-मेलयात पुरालिया	31000	मारवाड़ मेवाड़, बीकानेर जैसलमेर	बहुत अच्छे
		भट्टी-जयसवार	50,000	बुलन्दशहर एटा-बरेली	

(छ) जयसवार राजपूतों के वंश, गोत्र विवाह सम्बन्ध तथा कुल देवियों आदि की जानकारी

(1) वंश : जयसवारों का वंश है चन्द्र, शाखा-यदुवंश, उपशाखा-भट्टी तथा प्रशाखा जयसवार है । "क्षत्रिय

वंशावली" के लेखक ठाकुर उदयनारायण सिंह जी पृष्ठ 57 पर लिखते हैं कि "बसावत" अपने को क्षत्रिय कहते हैं और उनका विवाह सम्बन्ध क्षत्रियों में होता है परन्तु इनको अपने इतिहास का कुछ भी पता नहीं है । वे मथुरा, आगरे में पाये जाते हैं अल्प संख्यक जान पड़ते हैं, क्योंकि किसी भी सरकारी रिपोर्ट में इनका जिक्र नहीं पाया जाता।

(2) गोत्र : विष्णु, गौतम (ब्रह्म), शौनक, कौडव्य, कौशिक, विश्वामित्र, कश्यप, भारद्वाज, पुतीमाक्ष (जमदग्नि), वशिष्ठ, हरित, बच्छ (मॉडव्य)

(3) कुल देवियां: प्रभावती, कालिका महालक्ष्मी, योगेश्वरी (परमेश्वरी), इन्द्राणी, दुर्गा

(4) विवाह सम्बन्ध: जयसवार क्षत्रिय चन्द्रवंशी हैं उनका विवाह सम्बन्ध अग्निवंशी तथा सूर्यवंशी क्षत्रियों से होता है ।

जयसवार गहलौत, राठौर, कछवाहा, झाला तथा चौहान को, कन्या देता है ।

जयसवार	सोलंकी, बघेल, राठौर, गहलौत की कन्या लेता है ।	
जयसवार	तोमर, चौहान, पवांर, बड़गूजर, परिहार, गहलौत, राठौर की कन्या लेता और देता है ।	
सूर्यवंशी	गहलौत, राठौर, कछवाह, बड़गूजर	= 4
चन्द्रवंशी	जयसवार, झाला, तोमर	= 3
अग्निवंशी	चौहान, सोलंकी, बघेल, पवार (परिमार) परिहार एवं हाडा	= 6
		13 कुल

नोट :- (कैप्टन ए० एच० भिंगले की पुस्तक 'राजपूत' से साभार उद्धृत 13 कुलों (कुरियों) में विवाह सम्बन्ध का विधान है ।)

(ग) क्षत्रिय वंश विवरण

दिन में सूर्य के प्रकाश में उत्पन्न होने के सूर्यवंशी कहलाये, रात्रि को चन्द्रमा के प्रकाश में उत्पन्न होने से चन्द्रवंशी कहलाये, अंधेरी रात में अग्नि के प्रकाश में उत्पन्न होने से अग्निवंशी कहलाये । इन तीनों के विपरीत गुफा में उत्पन्न होने से नागवंशी कहलाए । ऋषियों (बृहस्पति) की सन्तान होने से ऋषिवंशी कहलाये । ऋषि शुक्राचार्य की केवल एक कन्या हुई वंश नहीं चला, इसी प्रकार शनि का कोई वंश नहीं चला । (नोटः ऐसा जयसवार राजपूतों ने अपनी पुस्तकों में लिखा है, उससे जरूरी नहीं है कि हर कुर्मी उनकी हर बात से सहमत हो।)

नोटः ऋषि शुक्राचार्य की कन्या राजा ययाति को व्याही गई जिससे राजा यदु हुए और इसी वंश में आगे-चलकर राजा जशध्वल के वंशज जयसवार कहलाए । चन्द्रवंश को अग्नि पुराण के पृष्ठ 453 पर देखिये मासिक **"कल्याण पत्रिका," गीता प्रेस गोरखपुर,** ।

सज्जनो यहां यह जानना अनिवार्य हो जाता है कि अतीत में हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है कि ब्राह्मण स्वार्थवश **'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'** आदि श्लोक रचकर जगत को मिथ्या बताते हुऐ निवृत्ति मार्ग पर ले आये । इसीलिये भारत के हिन्दू राजा, वेदान्ती, पंडित और साधु अपना समय देश की एकता में न लगाकार सिर्फ स्वार्थ और झूठे मान-सम्मान के लिए शास्त्रार्थ करने मे ही राजनीति की इतिश्री समझ, अद्वैतवाद का दुरुपयोग करके **'अहं ब्रह्मास्मि'** और **'शिवोहं'** का जाप कर अपने आपको भगवान समझने लगे । ऐसे भगवान भला कैसे विदेशियों (यवन आक्रमणकारियों) का सामना कर सकते थे । अहिंसा और असारता को आधार मानने वालों द्वारा भारत की जनता

निर्बल हो चुकी थी इस निर्बलता के कारण देश में आम्भी, जयचन्द, मानसिंह और मीरजाफर जैसे विश्वासघाती पैदा हुए। फलतः सर्वप्रथम संवत 768 में मुस्लिम सेनापति अब्दुल मुहम्मद बिनकासिम ने सिंध प्रान्त पर आक्रमण किया। तत्पश्चात् महाराजा पृथ्वीराज ने अहंकारवश, सर्प को दूध पिलाकर, उन्हें अनेक बार छोड़कर उदारता का परिचय दिया। अर्थात शहाबुद्दीन गोरी को बार-बार प्राणदान दिया। जिसके परिणामस्वरूप दिल्ली, कन्नौज, और शनैः-शनैः लगभग पूरे भारत पर विदेशियों का अधिकार हो गया। और देखते ही देखते इन्द्रप्रस्थ के विष्णुध्वज (लोह स्तम्भ) तथा यमुना स्तम्भ नामक गगनचुम्बी स्तूप का नाम कुतुबमीनार रख दिया गया।

बहरहाल यह देश गरदिश में फंस गया। ब्राह्मणों का एक समुदाय वाममार्गी बनकर मदिरा, मांस, मीन, मुद्रा तथा मैथुन में मग्न हो गया तथा बुजदिल क्षत्रियों ने पशुओं की हत्या करके (शिकार के नाम पर) वीरता दिखाई। विधर्मी सभी तरह के अत्याचार कर रहे थे और हमारे पुरोहित संसार को असार मानते हुये पूरे अत्याचार का प्रतिकार कैसे करते। अतः हिन्दू समाज का संगठन सूत्र टुकड़े-टुकड़े हो गया। जिसका लाभ मुट्ठी भर शत्रुओं ने खूब उठाया। गौतम, कपिल, कणाद, वशिष्ठ, व्यास और चाणक्य जैसे विद्वानों के वंशज ब्राह्मण, विरहमन, बरामन, बामन व बम्मन आदि अपभ्रंश व अशुद्ध शब्दों से पहचाने जाने लगे। क्षत्रिय, खत्री, क्षत्री, राजपूत हो गऐ जैसे कि लोधी राजपूत, गूजर राजपूत, खगड़ राजपूत, जायस राजपूत आदि। भारतीय जातियों के ही नहीं प्राचीन नगरों के नामों में भी अनेक परिवर्तन कर डाले गये। वाराणसी का बनारस, अयोध्या का फैजाबाद, प्रयाग का इलाहाबाद, लक्ष्मणपुरी का लखनऊ और लवपुर लाहौर हो गए। अर्थात भारत का प्राचीन गौरव धूल में मिल गया।

ऐसे राजनीतिक उथल-पुथल के समय में, भारतभूमि को विदेशी शत्रुओं से मुक्त करने के लिए जिन क्षत्रिय वीरों ने स्वयं को स्वाहा कर दिया, उन्हें समाज ने भुला दिया। उन्हीं वीरों की सन्तान शक्तिहीन होकर अभावग्रस्त भटकती रहीं। उनकों आश्रय देने वाला कोई न रहा। और न कोई उनके मनोबल को बढ़ाकर उन्हें गिरावट से उभारने वाला मिला। जिन राजपूतों ने विधर्मियों तथा विदेशी आक्रमणकारियों की अधीनता स्वीकार कर ली तथा उनको अपनी कन्याओं का डोला देते रहे, उन पर उनके आकाओं (स्वामियों) की कृपादृष्टि बनी रही और वे सम्पन्न बने रहे। जिन क्षत्रियों ने स्वतंत्रता संग्राम को जारी रखते हुए शत्रुओं के समक्ष झुकने से इंकार कर दिया उनको विदेशी आक्रांताओं ने अपने उपरोक्त भक्तों की सहायता से कुचल दिया। किसी कवि ने ठीक कहा है :

प्यारा था धर्म जिनको वे बलिदान हो गए,
प्यारा था शीश जिनको वे मुसलमान हो गए।

जयसवार राजपूत जाति भी इस कुचक्र का शिकार हुई जिसके परिणामस्वरूप अपने अस्तित्व को पुनः स्थापित न कर पाई। ब्रिटिश काल में भी शासकों ने नियोजित षड़यन्त्र द्वारा इसको अशिक्षित एवं अप्रगतिशील रखा। आज भी विघटनकारी शक्तियां जयसवार जाति का नामोनिशां मिटाकर इसे बनावटी नाम **"जैसावत"** देने पर उतारू हैं उनकी दलील है कि यह शब्द निम्न वर्ग की जातियों से संबंधित है। इन महानुभावों ने पूछना चाहिए कि जिन योग्य इतिहासकारों एवं प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथों द्वारा जयसवारों का क्षत्रिय होना प्रत्यक्ष है, क्या यह सब झूठ हैं (देखिये परिशिष्ट क, ख, छ, तथा ग) जहां तक शब्द विशेष का प्रश्न है 'हिन्दू' शब्द को मुसलमान इतिहासकारों ने काफिर और कई अशोभनीय संज्ञाएं दीं, तो क्या ये तथाकथित जैसावत आंख-मूंदकर इस अशोभनीय कथन को स्वीकार कर लेंगे।

प्रत्येक जयसवार राजपूत महिला, पुरुष एवं किशोर को जाति विषय पर आवश्यक ज्ञान होना चाहिए। (कृपया देखिये इस लेख के परिशिष्ट क, ख, छ तथा ग)। सर्वविदित है कि इतिहास, भूतकाल में घटी घटनाओं का लिखित संकलन है। इनको भिन्न-भिन्न इतिहासकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से लिखा है। यह जरूरी नहीं कि सभी

इतिहासकारों का किसी मुद्दे पर एक मत हो । उदाहरणार्थ, आर्यों के मूल निवास और भारत आगमन के विषय पर इतिहासकारों में गहरा मतभेद है इसी प्रकार राजपूतों की उत्पत्ति, इनके वंश एवं शाखाएं आदि हमेशा विवाद का विषय रहे हैं । इस संदर्भ में भिन्न-भिन्न इतिहासज्ञों का अलग-अलग मत रहा है । उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाण, विरोधियों को निरुत्तर करने के लिये पर्याप्त हैं । जयसवार क्षत्रिय हैं और हमें किसी की पुष्टि अथवा दया की आवश्यकता नहीं । क्षत्रियत्व स्वयं में क्षत्रियोचित संस्कारों के विकास से उपलब्ध होता है । मात्र नाम बदलकर (बनावटी नाम जैसावत रखकर) कागजी राजपूत बनने से नहीं ।

त्रेतायां मंत्र शक्तिश्च, ज्ञान शक्ति सतयुगे ।
द्वापरे युद्ध शक्तिश्च, संघे शक्ति कलियुगे ।

(अर्थात्) त्रेतायुग में मंत्र-शक्ति तथा सतयुग में ज्ञान की, द्वापर में युद्ध की शक्ति थी तथा अब कलयुग में संगठन की शक्ति प्रधान है ।। अखिल भारतीय जयसवार राजपूत महासभा का संगठन बना है । अगर जयसवार राजपूत अपने संगठन को सशक्त बना लेते हैं तो उनकी गणना हिन्दू समाज के सशक्त एवं सक्षम सदस्यों में होने लगेगी ।

नोट :- ठाकुर उदयनारायण सिंह अपनी पुस्तक "क्षत्रिय वंशावली" पृष्ठ 55 पर लिखते हैं कि राजा जशध्वल के वंशज जयसवार कहलाये । जयसवार राजपूतों की अन्य विशेष बातें हैं :

1 कुरी या सरनेम है जयसवार
2 वंश है चन्द्रवंश
3 गोत्र है कश्यप
4 प्रवर हैं कश्यप, दुर्वासा व गौतम
5 कुलदेवी है अम्बिका (परमेश्वरी)
6 धर्म है शैव
7 इष्ट है शिव,
8 शाखा है यदु की
9 वेद सामवेद
10 सूत्र गोविल है ग्रहसूत्र
11 झन्डा है केसरिया
12 पूजा है कटार की
13 शस्त्र है कटार
14 निवास है जैसलपुर
15 नामकरण है राजा जशध्वल से
16 विवाह क्षत्रियों की 13 कुरी कुल से जिनकी सूची पीछे [(छ) (4) के अंतर्गत दी गई है ।]

अठारहवाँ अधिवेशन

महासभा का 18 वां अधिवेशन 19, 20 और 21 अप्रैल 1930 ई० को रायपुर (सी० पी०) में "मराठा शिक्षण परिषद" बम्बई के मंत्री श्रीयुत रामचन्द्रराव अर्जुनराव गोले की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ ।

अध्यक्ष महोदय का भाषण ओजस्वी, शिक्षाप्रद, हृदय-ग्राही और विद्वतापूर्ण था । उन्होंने बताया कि जातीय उत्थान के लिये शिक्षा-प्रसार पर विशेष ध्यान देना चाहिये उन्होंने स्त्री-शिक्षा के महत्व पर जोर देते हुये बताया **"जिच्या हाती डोरी तो जगात उद्घपी ।"** आपने कुरमी जाति की क्षत्रियवृति को प्रखरता देने के लिये व्यायाम-शालायें खोलने एवं नवयुवकों को कुश्ती, अस्त्र-शस्त्र जैसे तलवार, भाला, मलखम, बनेठी आदि के प्रयोग में दक्षता और परेड आदि का अभ्यास कराने का परामर्श दिया । स्वागताध्यक्ष बाबू रामप्रसाद देशमुख, एडवोकेट का भी भाषण सारयुक्त और प्रेरक था ।

समाज और महासभा के सुदृढ़ बनाने पर जोर देते हुये श्री गोले साहब ने कहा "हममें से प्रत्येक का कर्तव्य है कि समाज के प्रत्येक अंग को सबल बनाने के हेतु रीति, नीति तथा स्वभाव में साम्य स्थापित कर पारस्परिक प्रेम, बंधुत्व को दिन प्रतिदिन अधिकाधिक दृढ़ करके समाज की उन्नति के हेतु स्नेहयोग कर समाज का हित अपना समझकर इस महासभा की सहायता करें ।"

सी० पी० (वर्तमान मध्यप्रदेश) में पहली बार जबलपुर में तीन वर्ष पूर्व हुये अधिवेशन के बाद यहां दूसरी बार अधिवेशन आयोजित हुआ था । अतः प्रादेशिक कुरमी उपजातियों में परस्पर मेल-मिलाप और संगठन स्थापित होने लगा । एक छात्रावास की भी स्थापना की गई । जिसके लिये श्री भोला प्रसाद सिंह, मालगुजार ने अपना भवन अर्पित कर दिया था । इस अधिवेशन से प्रभावित होकर मध्यप्रान्त के कुरमियों में यज्ञोपवीत प्रचार बढ़ने लगा । अधिवेशन में उपस्थित स्त्री प्रतिनिधियों ने बड़े उत्साह के साथ महिला परिषद की भी सभा की थी ।

अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में श्री गोले ने कहा कि- "समाज की अवनति की ओर ध्यान देकर प्रचलित कुप्रथाओं को दूर करना चाहिए । मुझे हर्ष है कि यह महासभा कुप्रथाओं को दूर करने में कुछ अंश तक सफल हुई है । इसी प्रकार स्थल, भाषा, आचार, रीति व्यावहारादि से विभिन्न उपजातियों का एकीकरण आजकल स्पष्ट प्रतीत हो रहा है और मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि यह महासभा प्रथम से ही मुख्यतः इसी कार्य में अपनी सारी शक्ति लगाती चली आ रही है । जिसको आज हम सभी प्रत्यक्ष देख रहे हैं । किसी भी यंत्र के भिन्न-भिन्न भागों को एकत्र करना हुआ तो छोटे-छोटे भागों को प्रथम एकत्र करके उस यंत्र का एक बड़ा भाग पूर्ण होने पर पृथक-पृथक भाग एकत्र करने का कार्य सरल हो जाता है । तद्वत सर्वप्रथम, जैसा कि महासभा करती चली आ रही है, प्रान्तीय उपजाति भेद को मिटाकर अन्तर्प्रान्तीय भेद मिटाना आवश्यक है । प्रान्तीय एकीकरण सिद्ध हो जाने पर उत्तर भारतीय कूर्मिक्षत्रिय समाज और दक्षिणात्य मराठा समाज तथा उत्तर प्रान्तीय समाजों की संयुक्त सभा होने का योग आवेगा ।

श्री गोले ने आगे कहा कि- "समाज की शैक्षणिक, राजनीतिक तथा आर्थिक उन्नति करने के निमिक्त महासभा द्वारा शिक्षणालय, छात्रावास, उपदेशक विभाग तथा सहकारी समितियां आदि उपयुक्त संस्थाओं का निर्माण आवश्यक है । अन्त में ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि वह हमारे समाज को ऐसी शक्ति प्रदान करे कि वह उन्नति पूरी कर देश के उन्नति कार्य में भाग ले सके ।"

उन्नीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 19 वाँ अधिवेशन 4, 5 एवं 6 अप्रैल, सन् 1931 ई० को पुरुलिया (बंगाल) में, ऑनरेबिल श्रीयुत नामदेव एकनाथ नावले, डिप्टी प्रेसीडेंट बम्बई लेजिस्लेटिव काउंसिल की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । महासभा के लम्बे इतिहास में यह पहला अवसर था जब शस्य-श्यामला बंगाल की भूमि पर अधिवेशन आयोजित किया गया था ।

उन्होंने कहा कि ''गुजरात-खानदेश में लेवा पाटीपार", दक्कन के मराठा और उत्तर भारत के कुरमी कम-बढ़ एक ही मूल कुरमी क्षत्रिय वंश से उत्पन्न हैं । उत्तर भारत में कुरमियों के पिछड़ेपन का प्रथम तथा प्रमुख कारण अशिक्षा है । यद्यपि मराठे भी शिक्षा में उत्तर भारत के कुरमियों से आगे नहीं हैं गुजरात के खानदेश के 'लेवा' काफी उन्नत हैं । किन्तु मराठों में नवयुवकों के प्रयासों से शिक्षण आन्दोलन तेजी से आगे बढ़ रहा है । ''श्री शिवाजी मराठा सोसायटी" के अन्तर्गत पूना में ''श्री शिवाजी मराठा हाई स्कूल" स्थापित किया गया जो कि हजारों युवकों को शिक्षित करने में योगदान दे रहा है । उत्तर भारत के कुरमियों के लिये इस प्रकार की कोई शिक्षण संस्था, आन्दोलन, स्कूल छात्रावास तथा धन-राशि आदि अभी तक स्थापित नहीं हो सके हैं ।"

अध्यक्ष महोदय ने खेद व्यक्त किया कि "उत्तर भारत की कुरमी जाति अनेक उपजातियों और उपवर्गों में विभक्त है । यह भेद-विभेद प्रदेशीय ओर उपजाति विशेष दोनों प्रकार के हैं । इसे यथा शीघ्र समाप्त करने में जाति हित निहित है ।"

प्रादेशिक मतदाता सूची, प्रादेशिक धारा सभा, म्युनिस्पिल बोर्डों के अवलोकन से पता चलता है कि उसमें लगभग 60 प्रतिशत कुरमी मतदाता हैं । मराठा जूझारू प्रकृति के होने के कारण अपनी मत-शक्ति का उचित उपयोग करके पूरा लाभ जाति हित में उठा रहे हैं, तथा जब और जहां जितना भी सम्भव हो सका, अपने अधिक से अधिक प्रतिनिधि चुनकर स्थानीय संस्थाओं और प्रादेशिक धारा कौंसिल और सभा में भेजते रहे हैं । उनका परामर्श था कि आप सबका मूल-मंत्र होना चाहिये - **''शिक्षित हों, संघर्षरत हों"**-"Educate & Agitate" ।

उत्तर भारत के कुरमी और मराठे कृषक दोनों सम्पन्न नहीं हैं । तथा ऋण-भार से दबे रहते हैं । परन्तु मराठों ने अपने देहाती क्षेत्रों में सहकारी समितियां स्थापित कर ली हैं । जिससे किसानों को बड़ी राहत पहुंची है । मुझे खेद है कि उत्तरी भारत के कुरमी इस क्षेत्र में सफल नहीं हो पाये हैं । आज महाराष्ट्र का मराठा-कुनबी गन्ना सहकारी फैक्टरियों और अन्य समितियों के कारण तथा पाटीदार-पटेल गुजरात के दुग्ध सहकारी समितियों जैसे आनन्द के अमूल के कारण उत्तर भारत के कुरमियों से काफी सम्पन्न हो गये हैं ।

झारखंड के कुड़मि

पुरुलिया झारखंड क्षेत्र के अन्तर्गत आता है । यहां के कुरमियों को कुड़मि के नाम से जाना जाता है। अतः झारखंड क्षेत्र तथा वहां के निवासी कुड़मियों के बारे में जानना आवश्यक हो जाता है । डा० नन्दकिशोर सिंह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, विश्व भारती विश्वविद्यालय, शान्ति निकेतन के मतानुसार झारखंड के कुड़मि जाति के पूर्वज कुरमीजन 12वीं और 13वीं शताब्दी में मगध राज्य से चलकर बक्सर होते हुये छोटा नागपुर प्लेटो में पहुंचे थे । दसवीं लोकसभा के झारखंड के संसद सदस्य श्री शैलेन्द्र महतो ने इस लेखक को बताया कि डा० नन्दकिशोर सिंह भी उनकी तरह कुड़मि महतो परिवार में जन्में पर बाद में 'महतो' आस्पद की जगह 'सिंह' नाम का प्रयोग करने लगे । अन्य कुछ विद्वानों का मत है कि यहां के कुड़मि उत्तर बिहार के कुरमियों के पूर्वजों

की तरह मध्य प्रदेश होते हुये महाराष्ट्र से आकर बस गये । कुड़मि जन झारखण्ड में छोटा नागपुर, संथाल परगना, पश्चिम बंगाल के मानभूम, पुरुलिया, मिदनापुर एवं दिनाजपुर जिलों में, उड़ीसा राज्य के मयूरगंज, बोनाई, बामड़ा क्योंझर, जिलों में आदिवासियों के साथ निवास करते है । छोटा नागपुर के कुरमियों, जिन्हें कुड़मि नाम से सम्बोधित किया जाता है, की बोली 'कुरमाली' है इस बोली के बारे में एक लेख इस पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है ।

दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक पत्र "इंडियन एक्सप्रेस" के 14 सितम्बर सन् 1993 में, झारखंड के हजारीबाग क्षेत्र से पुरातत्व विभाग द्वारा संचालित उत्खनन से हड़प्पा सभ्यता के काल के अनेक महत्वपूर्ण अवशेष मिले हैं, उस पर श्री मनोज प्रसाद का विस्तृत लेख मय अवशेषों के चित्रों-सहित प्रकाशित हुआ है । यह अवशेष ज्यादातर नाट्यतन्ड (Natyatand) ग्राम में मिले हैं । मनदायेर (Mandair) ग्राम में शिला कला (Rock art) की अत्यन्त महत्वपूर्ण कृतियां मिली हैं । वहां सन् 1993 में इसको (Isco) ग्राम में ज्यामितीय लिपि पायी गई जो कि शिला - कला के रूप में खोज निकाली गई हैं । अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इतिहासज्ञ बूलू इमाम (Bullu Imam) तथा अन्य स्थानीय विशेषज्ञों के अनुसार ये सब पूरी तरह सिन्धु घाटी लिपि (Indus Valley script) से मेल खाती हैं । इस प्रकार के पुरातन अवशेष और ज्यामितीय चिह्नों वाली लिपि झारखंड में अनेक स्थलों पर हाल में खोज निकाली गयी हैं । इन चिह्नों में लाल रंग द्रव्य (Haematite pigment) तथा सफेद रंग के द्रव्य का प्रयोग किया गया था । आगे इनके खराब होने की आशंका व्यक्त की गई है । इस्को, वालिया और तनवा ग्रामों में लौह गालक के अम्बार मिले हैं । विशेषज्ञों का मत है कि सम्राट अशोक के लौह स्तम्भों की गालक ढलाई लगभग 300 वर्ष ईसा पूर्व इन्हीं झारखंडी स्थानों में हुई थी । जिससे बचे ये लोहे के ढेर आज भी साक्ष्य रूप में हैं । इन ग्रामों में आज भी मुंड़ा, ओरॉन, संथाल और कुड़मि बसे हुये हैं ।

विद्वान इतिहासज्ञ बूलू इमाम के अनुसार उपरोक्त झारखंडी गांव उत्तरी कर्नपुरा घाटी (North Karnpura Valley) में स्थित हैं । जहां 2500-3000 वर्ष ईसा पूर्व की सिन्ध घाटी सभ्यता से काफी पूर्व भी इस घाटी में सभ्यता फली-फूली थी, बूलू इमाम के हाल में प्रकाशित लेख "मैन इन इंडिया" के अंक 3-2-1993 के अनुसार इस क्षेत्र में कृषि चाकोलिथिक काल में लगभग 9000 वर्ष ईसा पूर्व में कार्य प्रारम्भ हो गया था । इस क्षेत्र में पत्थर के अनेक औजार भी मिले हैं । विशेषज्ञों का मत है कि इनका प्रयोग आदमी ने इस क्षेत्र में 15 लाख वर्ष पूर्व किया होगा । जैसा बिहार प्रशासनिक सेवा के अधिकारी श्री निर्मल कुमार वर्मा ने दावा किया किया है कि अब सिन्धु घाटी सभ्यता की लिपि के सही अर्थ निकालना आ गया है । (देखिये अंग्रेजी समाचार पत्र "दि हिन्दुस्तान टाइम्स", दिनांक 17 सितम्बर 1993 पृष्ठ 12 पर लेख शीर्षक 'हिस्ट्रीज पोजर' - History's Poser)। उनकी नियुक्ति बिहार जनजाति बहुल साहबगंज जनपद में हुई थी । उन्होंने वहां के सन्थाल जनजाति के लोगों के गीतों और किंवदन्तियों से उस सिन्धुघाटी की सभ्यता की लिपि की उत्पत्ति का पता लगाया । यद्यपि इतिहासज्ञ-समाज का ध्यान इनके इस कार्य और उसकी उपलब्धियों की ओर पूरी तरह आकर्षित नहीं हो पाया है, पर लोगों को वे अपने एकाकी प्रयास से काफी प्रभावित कर चुके हैं ।

श्री वर्मा का दावा है कि अब तक सिन्धुघाटी सभ्यता की लगभग 3000 पट्टियों का गूढ़ अर्थ करने में वे सफल हो चुके हैं, जो कि इन्हीं बिहार के जनजाति क्षेत्रों में उत्खनन में प्राप्त हुई हैं । इन खोजों से उसका मत बनता है कि झारखंड की जनजातियां ही सिन्धुघाटी सभ्यता के लोगों के सीधे बंशज हैं । इस प्रश्न के उत्तर में कि सिन्धुघाटी की शहरी सभ्यता क्यों कालान्तर में संकुचित और सीमित परिधि में सिमट जनजातियों के रूप में रह गयी उसका उत्तर है कि इतिहासज्ञों का दायित्व है कि वे इन सबका कारण खोजें। पन्द्रह वर्ष की मेहनत और लगन से श्री वर्मा का यह मन्तव्य बना है कि सिन्धुघाटी लिपि में अभिज्ञेय लिपि योजना में 900 से अधिक संकेत हैं ।

उपर्युक्त खोज को आगे बढ़ाना आवश्यक है जिससे कि निष्कर्ष शंका रहित हों तथा अन्य साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित किये जा सकें तब वहां के प्राचीन काल से बसे कुड़मि लोगों की उत्पत्ति का और उनके पूर्वजों का एक दूसरा ही आश्चर्य चकित कर देने वाला इतिहास ज्ञात हो सकता है ।

कुड़मिजन छोटा नागपुर पठारी क्षेत्र में, सबसे अधिक पैदावार देने वाले इलाकों में तथा दामोदर एवं स्वर्णरेखा नामक नदियों के दोनों किनारों के आस-पास के इलाकों में घनी आबादी में बसे हुये हैं। जिस प्रकार मुण्डाओं एवं संथालों के परगने थे, उसी प्रकार झारखंडी कुड़मियों के 22 परगने थे, जैसे (1) हजारी बाग (2) राँची (3) मानभूम (4) सिल्ली (5) झालदा (6) सीखर (7) कसाई पार (8) पालगंज (9) खड़ग डीहा (10) बम्हनवै (11) सींघपुर (12) तीसरी (13) हॉलग (14) जगेसर (15) पलानी (16) कर्णपुरा (17) देवरखण्ड (18) लाली पैंका (19) खुसरा (20) जसपुर (21) गोला तथा (22) चनगढ़ा। प्रत्येक परगने में एक मुखिया होता था, जिसे परगनैत, मुखिया अथवा चौधरी कहते हैं। आवश्यकतानुसार बैठकें भी होती थीं। परगनैतों की आखिरी बैठक लगभग 64 वर्ष पूर्व सन 1929 में मानभूम जिले में हुई थी। अंग्रेजी शासन काल के प्रारम्भ में जब राजा और जमींदार बनाये गये तो इन लोगों ने झारखंड प्रदेश में बाहर के ब्राह्मणों एवं जमींदारों के बहकावे में आकर परगनैतों ने सन् 1929 के बाद सभाओं का आयोजन बन्द कर दिया।

उसी समय कुड़मि महतो लोगों ने अपने समाज से एक ब्राह्मण, **श्री रामदास पंडित,** ग्राम अचल थाना बगोदर जिला हजारी बाग (बिहार) को धर्म प्रचारक नियुक्त किया। श्री रामदास पंड़ित घूम-घूमकर धर्म प्रचार करने लगे। जगह-जगह स्थानीय स्तर पर कूर्मि सभायें आयोजित की जाती थी। कुड़मिजनों का यज्ञोपवीत कराया जाता था, जिसका सप्रमाण विवरण बनारस से श्री शिवराम सिंह जी द्वारा **'कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर'** के अंकों में उस समय प्रकाशित किया गया था। श्री केदार महतो तथा अन्य कुड़मिजन अपनी जनजाति की सुविधाओं से वंचित होने का दोष बिहार के कुरमियों को देते हैं जिनके द्वारा यज्ञोपवीत कराकर उन्हें कूर्मि क्षत्रिय घोषित कर दिया गया था। किन्तु वे भूल जाते हैं कि उस जमाने के कुड़मि भी स्वयं उत्तर बिहार के कुरमियों की मूल धारा में आने के लिये स्वयं पंडितों द्वारा यज्ञोपवीत करवाया करते थे।

छोटा नागपुर में **कर्ण-सुबर्ण नामक एक गण राज्य** था जिस पर एक **कूर्मि परिवार** का शासन था। पंचकोट का राजा मूलतः कुरमी जाति का चौधरी या दलपति था, जिसका उल्लेख मानभूम गजेटियर में बिस्तार से दिया है। उन्होंने भी झारखंडी कुड़मियों को मूल धारा में सम्मिलित करवाने के लिये भरसक प्रयत्न किये।

झारखंड में बसने वाले कुड़मियों में सामाजिक विवाह प्रथा प्रचलित है। कुल देवी-देवताओं की पूजा एवं पर्व मनाने की प्रथा है। कुड़मियों के अपने पाहुन होते हैं। माह और शुभ दिन के आधार पर विवाह की तिथि तय की जाती है। एक समय तक रिवाज था कि विवाह के पहले कन्या के पिता को वर पांच रुपया देकर कन्या की कीमत चुकाता था पर अब उसका प्रचलन समाप्त हो गया है सिन्दूर-दान स्थानीय समाज के हर वर्ग के समक्ष होता है। विवाह के समय महिलायें खुशी के गीत गाती है। गीत की भाषा मगधी/कुरमाली होती है। यहां कुड़मियों में तिलक-दहेज की प्रथा नहीं है। झारखंड़ कुड़मियों में कई बातों में अन्तर आ जाना स्वाभाविक है। **'धर्म पूजा'** और **'कर्म पूजा'** इन कुड़मियों के प्रमुख धार्मिक उत्सव हैं।

छोटा नागपुर के कुड़मियों में बाल-विवाह की और तलाक की प्रथा भी है। जाति पंचायत के द्वारा आदेश मिलने पर ही तलाक दिया जा सकता है। सन् 1942 से समाज संगठन किया गया है, तब से बाल-विवाह और तलाक में सुधार आया है। क्षेत्रीय स्तर पर एक संगठन है जिसका नाम है **"शिवाजी समाज"**, जिसके जन्मदाता तथा अध्यक्ष अधिवक्ता धनवाद के स्व० श्री विनोद बिहारी महतो थे जो बाद में सांसद चुने गये थे। उनकी हाल में मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र श्री रामकिशोर महतो, अधिवक्ता उनकी लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र गिरिडीह से सदस्य निर्वाचित हुये हैं।

झारखंड़ में बसने वाले कुड़मियों की उपजातियां अन्य कुरमियों की तरह अनेक नहीं हैं सभी नाम के साथ 'महतो' आस्पद या उपाधि का प्रयोग करते हैं। अतः यहां के सभी कुड़मियों में एक दूसरे में सहज रूप से विवाह होते हैं। 'कुरमाली' इन कुड़मियों की मातृभाषा है। और कुड़मियों को गर्व है कि उन्होंने एक बोली या भाषा विशेष को जन्म दिया, और उसे हर तरह से समृद्ध कर रहे हैं। कुरमाली भाषा की महत्ता को ईसाई

मिशन के पादरियों ने भी समझा था। और बाइबिल का अनुवाद झारखंड क्षेत्र के लिये अन्य भाषा में न करके सर्वप्रथम 'कुर्माली' भाषा में ही किया गया था। रांची-धनवाद आकाशवाणी रेडियो केन्द्र से 'कुर्माली' गीत व अन्यान्य कार्यक्रम आये दिन प्रसारित किये जाते हैं। 'कुरमाली' छोटा नागपुर अंचल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषा है। इसे करीब पचास लाख लोग बोलते हैं (सन् 1991 की जनगणना के अनुसार)। कुरमाली भाषा-क्षेत्र के संबंध में एक कहावत प्रचलित है :-

"शिख शिखर नागपुर,
आधा-आधी खड़गपुर ।।"

कुरमाली-साहित्य परिमाण में वृहत होने के साथ-साथ काव्यगत विविधताओं से भी समृद्ध है। इसकी गद्य में लोक-कथाओं के साथ कहानी मुहावरे, पहेलियां तथा लोकोक्तियों का विपुल भंडार है। काव्य में लोक गीत हैं। ये लोक-गीत ग्रामीण जन-जीवन की परिधि के भीतर हैं। इनमें जीवन में शुद्धता, वास्तविकता, मार्मिकता एवं जन-जीवन की स्वाभाविक सहज अनुभूतियाँ प्रकट होती हैं। किसी देश की संस्कृति, रीति-रिवाज, बिचार-धारा, चिन्तन पद्धति एवं दर्शन की जानकारी के लिये लोकगीत भी सहायक हो सकते हैं। अतः कुड़मि जनों के बारे में, कुरमाली लोक-गीत भी, आवश्यक जानकारी देने का उपयोगी साधन हैं। 'कुरमाली साहित्य' मुख्य ग्रंथ -रामायण, महाभारत, भागवत आदि ही हैं। लोकगीतों में वैष्णव, शैव, शाक्त-मत का समन्वय मिलता है। आज कुरमाली-साहित्य गद्य-पद्य अनेक विधाओं में अमित सम्भावनाओं को लेकर दिनानुदिन पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है। अनेकानेक पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। डा० नन्दकिशोर सिंह ने "कुरमाली बोली का भाषा तात्विक अध्ययन" नामक शोध-प्रबन्ध लिखकर सन् 1962 ई० में विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्ति निकेतन से पी-एच० डी० की उपाधि ली थी। ये वहां प्राध्यापक भी रहे। बाद में बिहार में ही शायद धनवाद के किसी कालिज में अब वे विभागाध्यक्ष हैं। इनके बाद डा० सन्तोष जैन ने कुरमाली विवाह गीतों का अध्ययन विषय पर शोध प्रस्तुत कर रांची विश्वविद्यालय से डाक्ट्रेट की डिग्री प्राप्त की। अब रांची विश्वविद्यालय में एम० ए० पढ़ाई कुरमाली में हो रही है।

रांची के अध्यापक श्री एच० एन० सिंह ने एक पुस्तक लिखी है। जिसका शीर्षक **"कुरमाली बोली के मुहावरे और लोकोक्तियां"** प्रकाशक कुरमाली-भाषा, परिषद, रांची है, उसकी एक प्रति इस लेखक को अनेक वर्षों पूर्व सन् 1980 में भेजी गई थी। उससे कुछ मुहावरे पाठकों के सूचनार्थ नमूनों के तौर पर नीचे दिये जा रहे हैं :-

1 **"माछेक माई के पूतेक सक, आधा सांप आधा बक" (कुरमाली)**
"बकरे के मां कब तक खैर मनायेगी" (हिन्दी)

2 **"विधिकृविपाके मुड़ सिंथाने सापं" (कुरमाली)**
"जाको राखे साईयां मार सके न कोय" (हिन्दी)

बिहार की ललित कलाओं में कुड़मियों का योगदान

कला और संस्कृति के क्षेत्र में देश-विदेशों में बिहार का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिकांश कलाकार लोक-नृत्य निपुण झारखंड क्षेत्र के कुड़मि जन ही हैं। सारे संसार में लोक-नृत्यों के माध्यम से भारत का गौरव, बढ़ाने वाले पद्मश्री अंलकार से राष्ट्रपति जी द्वारा सम्मानित नेपाल महतो, झारखंड के ही कुड़मि हैं। इनकी नृत्यशैली को छऊ या छौ कहते हैं। ये दो विभिन्न शैलियां हैं। एक है पुरुलिया छऊ तथा दूसरा मयूरभंज छऊ। इसके साथ जो संगीत होता है उसमें झूमर संगीत अति प्रसिद्ध है। श्री गिरीश चन्द्र महान्ता, झूमर संगीत के सम्राट

 माने जाते हैं और वे उत्कल प्रदेश वाले झारखंड क्षेत्र के कुड़मि हैं । इस संगीत में जो वाद्य-संगीत प्रयुक्त होते हैं, वे है मदला (Madala), बांसुरी (Flute) और एकतारा (Ektara)। इस क्षेत्र के कुड़मिजन कृषक हैं, ज्यादा सम्पन्न नहीं हैं । पर वे सब एक हैं । महतो उपाधि-धारक हैं और उन्होंने अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक धरोहर तथा गौरवशाली अतीत का भंडार वर्तमान में न केवल सुरक्षित रखा है वरन उसमें समृद्धि भी करते जा रहे हैं ।

डा. नन्दकिशोर सिंह, प्राध्यापक, हिन्दी साहित्य, विश्वभारती विश्वविद्यालय (शान्ति निकेतन, भोलपुर (प० बंगाल) ने अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के सन् 1971 में पटना में आयोजित तीसवें अधिवेशन के अवसर पर **"कुर्मांचल"** नाम से प्रकाशित एवं प्रो० राम बुझावन सिंह द्वारा सम्पादित स्मारिका में अपने लेख **"कुरमाली बोली"** में वन-प्रदेश में कुरमियों के आगमन के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "छोटा नागपुर" के कुड़मि भारत के किसी भी क्षेत्र से क्यों न आये हो, किन्तु झारखण्ड में अपने से पहले वे मगध में शताब्दियों तक रहे हैं और आने से पहले वे 'मागधी' बोलते आये । ये 12-13वीं शताब्दी में मगध में आकर हजारीबाग होते हुये मानभूम और रांची जिलों में बसे । उनकी जनसंख्या में वृद्धि के परिणाम स्वरूप वे सिंहभूम, झारग्राम, मेदिनीपुर, बांकुड़ा, दिनाजपुर, मयुरभंज, बोनाय, बामड़ा और क्योंझर में बसते गए ।

परम्परागत कथनानुसार, मुसलमान राजाओं के अत्याचार से आतंकित होकर कूर्मि लोगों ने झारखंड (छोटानागपुर) में और मानभूम (वर्तमान में धनबाद जिला) और पुरुलिया जिले के बड़े पहाड़- "राजा बुरु" में आश्रय ग्रहण किया। इन कुरमियों ने मुसलमानों को अपने बेटियां नहीं ब्याही पर निवास-स्थल को छोड़ देशान्तर कर जनजातियों में सैकड़ों मील दूर जा बसे और अपने परिवार और जाति की मर्यादा सुरक्षित रखी । इस सम्बन्ध में कुड़मियों में एक लोकगीत अभी भी प्रचलित है:-

जाति कुल राखैक तोरे हो,
जाति कुल राखैक तोरे, चन्द्रवंशी नरपति,
कूर्मि कुले उत्पत्ति राय राजा,
सात सहोदरे कूर्मि जाति एसन झांटि,
नहीं वेलाय,
मुगलें बेटी, कन्या लेय, चललांय देशान्तरे ।।

हण्टर महोदय का मत है कि - "कुर्मी, बिहार छोटा नागपुर की महान खेतिहर जाति है, जिसकी संख्या सिंहभूम में छोटा नागपुर 1872 ई० में 19,667 थी इन लोगों ने अति प्राचीनकाल के बीच अपने अधिकार जमा लिये थे और कई उदाहरणों के आधार पर ऐसा लगता है कि अपने पुराने ग्रामों पर अधिपत्य जमाने में सफल हुए थे ।"

डा० एस० पी० राय ने अपनी राय व्यक्त करते हुये लिखा है कि "स्थानीय परम्परागत कथाओं के आधार पर कुर्मियों ने कोल समुदाय के सदस्यों को मानभूमि जिला के पश्चिमी भागों से निकाल दिया था ।"

छोटा नागपुर क्षेत्र में कुड़मि-महतो के कुर्मी पूर्वजों के आगमन एवं वासस्थान के विषय में रायबहादुर शरतचन्द्र राय का विचार है कि "इनके (कुर्मियों के) मूल वास स्थान, अरावली पर्वत-श्रेणियों के पहाड़ी क्षेत्रों से लेकर पूर्व दिशा की तरफ बिना पर्वत के साथ-साथ एवं कैमूर की पर्वत श्रेणियों तक तथा सरगुजा के वर्तमान राज्य की दूरी एवं छोटा नागपुर जिला के दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी सीमा तक है ।"

जी० यस० घुर्ये ने आर० बी० स्नेल एवं हीरालाल की अवधारणाओं का समर्थन करते हुए अपनी राय जाहिर की है कि "मध्य भारत के कृषि एवं कारीगरी में दक्ष गोण्डों एवं अन्य कामगरों ने महतो कुर्मियों पर आक्रमण करके इस वन प्रदेश में बसने के लिये बाध्य किया था एवं कुरमी अपने अस्तित्व की रक्षा करने के उद्देश्य से परिवर्तित एवं अनिश्चित कृषि प्रथा (झूम प्रथा) को भी साथ लेकर यहां आये थे ।"

देश के स्वतन्त्रता संग्राम में तथा इसके पूर्व के संघर्षों में भी उनका महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय योगदान रहा है । असहयोग आन्दोलन में भी कुड़मियों ने अन्य लोगों के साथ हाथ बटाया था । सन् 1770 ई० में **'चुआड़ विद्रोह'** की आड़ में झारखंड के कुड़मियों ने परम्परावादी व्यवस्था के विरुद्ध जेहाद छेड़ा था । सन् 1930 ई० में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये झारखंड के पुरुलिया जिले के सर्वश्री गोकुल महतो, सहदेव महतो, गणेश महतो, मोहन महतो और शहीद महतो शहीद हुये थे । सन् 1942 के **"अंग्रेज भारत छोड़ो"** आन्दोलन में इसी पुरुलिया जिले के ही चूनाराम महतो एवं गोविन्द महतो पुलिस की गोली से शहीद हुये थे ।

झारखंड के कुड़मि सन् 1931 ई० तक जनजातियों की सूची में सम्मिलित थे, पर उसी वर्ष की जनगणना में कूर्मि क्षत्रिय घोषित कर दिये जाने से वे उस सूची से बाहर कर दिये गये । बाद में उन्हें जब पता चला कि यह उन्हें अत्यन्त हानिप्रद सिद्ध हुआ है तब से वे अपना नाम अनुसूचित जनजातियों की सूची में पुनः सम्मिलित करवाने के लिये संघर्षरत हैं । अभी भी बिहार राज्य की पिछड़ी जातियों की सूची में एनेक्सर 1 में कुड़मियों को रखा गया है ।

अ० भा० कू० क्ष० महासभा का 19 वाँ अधिवेशन जो सन् 1931 ई० में पुरुलिया में हुआ था, उसमें झारखंड के कुड़मियों को कूर्मि क्षत्रियों को मूलधारा में सम्मिलित करने के लिये की प्रतिनिधियों का ब्राह्मणों से यज्ञोपवीत कराकर उन्हें 'कूर्मिक्षत्रिय' घोषित कर दिया था । उसके बाद बाबू दासूसिंह, एडवोकेट, पटना उच्च न्यायालय की अध्यक्षता में रांची में सिल्ली थाना के अन्तर्गत कुड़मि जाति में सुधार लाने हेतु पूर्वी भारत के कुरमियों की एक बैठक हुई थी, जिसमें झारखंड के कुड़मियों को कूर्मिक्षत्रिय जाति का समान-वर्ग माना गया था । प्रसिद्ध संत निरंजन महाराज ने सन् 1927 ई० में बिहार, उड़ीसा के अंग्रेज गवर्नर महोदय से भेंटकर उनसे लिखित निवेदन किया था कि आगामी (सन् 1931 की) जनगणना में झारखंड के कुड़मियों की जाति 'कूर्मिक्षत्रिय' लिखी जाये। गवर्नर महोदय ने जनगणना अधिकारियों को वैसा ही करने का सरकारी आदेश जारी कर दिया था । वे फिर 1931 की जन गणना में कूर्मिक्षत्रिय जाति में अंकित किये गये । जब संत निरंजन देव ने बिहार-उड़ीसा के गवर्नर से लिखित में कुड़मियों को अगली जनगणना में 'कूर्मि-क्षत्रिय' अंकित करने को स्वयं निवेदन किया था फिर अन्य कुरमियों पर इसके लिये दोषारोपण क्यों किया जा रहा है ?

झारखंड के कुड़मि सांसद

झारखंड के प्रथम कुड़मि लोकसभा सदस्य श्री खुदीराम महतो थे, वे मानभूम (वर्तमान में पुरुलिया-प० बंगाल) के निवासी थे । उनके बाद श्री देवेन्द्र महतो वहां से सांसद चुने जाते रहे और वे प्रथम बार छोटा नागपुर क्षेत्र से होने वाले कांग्रेस के संसदीय सचिव बने । वर्तमान में बिहार विधान सभा के 17 विधायकों में से 6 कुड़मि हैं । दसवीं लोकसभा में भी उनके चार सांसद हैं, जमशेदपुर से श्री शैलेन्द्र महतो, गिरिडीह से श्री राजकिशोर महतो, रांची से श्री रामटहल चौधरी तथा पुरुलिया से श्री वीरसिंह महतो । केन्द्रीय अनुसूचित जनजाति की समिति में श्री वीरसिंह महतो को हाल में ही सदस्य बनाया गया है ।

श्री केदार महतो ने सन् 1991 में **'झारखंड के कुर्मी'** पुस्तक लिखी । उनका मानना है कि कूर्मि और कुड़मि बिहार के द्रविड़ मूल के हैं । विकास के नाम पर आज़ादी के बाद छोटानागपुर के कुड़मियों पर भूमि अधिग्रहण की जबरदस्त मार पड़ी । उनकी लाखों एकड़ उपजाऊ जमीनी कौड़ी के दाम पर हड़प ली गई । अब तक समुचित क्षतिपूर्ति या उनका पुनर्वास नहीं हो पाया है । इस बात का भयंकर असंतोष वहां के कुड़मियों में है । कुड़मियों ने इसके लिए आन्दोलन भी चलाये, उनके लोग शहीद भी हुये जिनमें एक शहीद निर्मल महतो जमशेदपुर में पुलिस गोली से हुये थे । कुरमाली भाषा सम्बन्धी एक लेख इस पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है, उससे भाषा सम्बंधी पर्याप्त जानकारी मिलती है ।

बीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 20 वाँ अधिवेशन 27, 28 एवं 29 दिसम्बर 1933 को पटना शहर से लगभग 70 कि० मी० दूर पटना जनपद में ही, हरनौत कसबें में श्रीमन्त सदशिवराव, खासे साहब पंवार देवास राज्य (कनिष्ठ), गृहमंत्री ग्वालियर राज्य [बाद में महाराजा देवास राज्य (कनिष्ठ)] की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । यह पहला अवसर था कि महासभा का अधिवेशन शहरी सुविधाओं से दूर के वातावरण में गांवों के मध्य आयोजित किया गया था ।

प्रथम दिन मनोनीत अध्यक्ष के समय से पहुंचने में बाधा आ जाने के कारण उनके सुपुत्र **युवराज श्रीमंत यशवंतराव जी पंवार** द्वारा सभा-कार्य का संचालन हुआ । दूसरे दिन पहुंचने पर मनोनीत सभाध्यक्ष, **श्रीमंत सदाशिवराव पंवार जी** ने अध्यक्षता की । इस सभा में **डा० पंजाबराव देशमुख,** पूर्व मिनिस्टर, सी० पी० गवर्नमेन्ट भी उपस्थित हुये थे ।

इतना बड़ा पंडाल तथा स्वजातीय बन्धु-बान्धवों की उतनी बड़ी भीड़ पहले के किसी भी अधिवेशन में देखने को नहीं मिली थी । पचास हजार लोगों के बैठने योग्य व्यवस्था को ध्यान में रखकर भव्य पंडाल कलात्मक ढंग से सजाया गया था । पर अन्त में आस-पास के गांवों से, कुरमियों की भीड़ इतनी अधिक हुई कि बाद में आने वालों को पंड़ाल में बैठने का स्थान भी न मिल सका, वे पंडाल के बाहर से अधिवेशन की कार्यवाही को देखने और सुनने की चेष्टा करते रहे ।

इस अधिवेशन का संचालन स्व० श्री शिवराम सिंह, पूर्व सम्पादक- **"कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर"** कर रहे थे। जब वे जीवित थे, तब लगभग सन् 1980 के आस-पास यह लेखक उनसे चुप्पेपुर, वाराणसी कैन्ट स्थित उनके निवास स्थान पर जाकर मिला था । उनसे भेंट करके महासभा के उनके अनुभव तथा विशेष जातीय ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा थी । उन्होंने हरनौत अधिवेशन की अनेक रोचक घटनायें बतलायी, जो उनके सामने घटित हुई । इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष वयोवृद्ध सामाजिक नेता, बांकेपुर, पटनावासी और महासभा के पूर्व अध्यक्ष,. श्री मिथिलाशरण सिंह, एडवोकेट थे ।

श्रीमन्त सदाशिवराव, खासे साहब पंवार ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि इससे पूर्व भी फर्रुखाबाद में सम्पन्न हुई 12वीं महासभा के अध्यक्ष पद पर मुझे ही आसीन किया गया था । और इस बार भी आपने मुझे अध्यक्ष चुना है । यह सब आपके अगाध स्नेह को प्रकट करता है । आपने शिक्षा के व्यापक प्रसार, उपजातियों में निस्संकोच रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित करना, सामाजिक सुधार तथा स्त्री-शिक्षा रुढ़िवादिता-अन्धविश्वास निवारण आदि समसामयिक विषयों पर आवश्यक निर्णय लेने को कहा, और महासभा ने अपनी स्वीकृति सर्वसम्मति से व्यक्त की ।

अध्यक्ष जी ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा-"समाज रूपी देह के भिन्न-भिन्न अंग जब तक सुदृढ़-समृद्ध न होगें, तब तक समाज सुदृढ़ नहीं कहा जा सकता और जिस तरह एक इन्द्रिय में कोई पीड़ा हुई तो समस्त शरीर उससे पीड़ित रहता है उसी तरह हमारी जाति के इस बड़े हिस्से की उन्नति न हुई तो अन्त में हमारी जाति का नुकसान हैं, हमारी शक्ति का ह्रास है दूसरों से हमारा बचाव कर लेना कठिन है ।"

आधुनिक शिक्षा प्रणाली की अनेक अच्छाइयों के साथ-साथ उन्होंने एक विसंगति की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया कि यह शिक्षित व्यक्ति को अधिकाधिक बुद्धि प्रधान बनाती है। उनका कथन था- "श्रद्धा, भक्ति, प्रीति आदि को इधर हमारी आधुनिक शिक्षा कुछ दुर्लक्ष्य करती है ।" बुद्धि के विषय में अंग्रेज कवि टेनिसन ने कहा है कि-

"बुद्धि का स्थान दूसरा है, पहला नहीं"

हमारे श्री शिवाजी महाराज तथा महाराणा प्रताप सरीखे प्रतापशाली महापुरुष हुये हैं, अधिकतर भावना-प्रधान ही थे और इस संसार की कर्मभूमि पर जो परमोच्च कार्य उन्होंने किये, उनके मूल में बुद्धि से भावना ही अधिक

कार्यक्षम थी । श्री शिवाजी महाराज के सम्बन्ध में तो यहां तक लिखा है कि वे कठिन प्रसंग पड़ते ही भावनावश बेहोश हो जाते थे । उनकी भावना इतनी प्रवल हो जाती थी कि वे एकाग्र समाधि की अवस्था में आ जाते थे, जो कहते लिख लिया जाता था । और उसके अनुसार बड़े-बड़े कार्य किये जाते थे । कदाचित यह किंवदन्ती या अख्यायिका समझी जायेगी, परन्तु जस्टिस गोविन्द रानाडे जैसे तीव्र समालोचक इतिहासकार ने यह स्वीकार किया है कि "हमारी उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि हमारे क्षत्रिय बन्धुओं में भावना जागृत हो । जहां कहीं हमारा बन्धुत्व हमें दृष्टिगोचर हो जाय, फिर वह भौगोलिक दृष्टि से कितनी भी दूर रहने वाला हो, उसके सम्बन्ध में हमारी सहानुभूति उछल पड़नी चाहिये । इससे यह न समझा जाय कि मैं बुद्धि की उपेक्षा करता हूँ । परन्तु भावना विहीन बुद्धि कार्यक्षम नहीं हो पाती - यह मेरा विश्वास है । राजकीय क्षेत्र में विचार करते हुये मुझे यह भी कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि सरकारी नौकरियों में, फिर वह सिविल हो या फौजी हो हमको अपना उचित स्थान प्राप्त कर लेना चाहिये । हमें नौकरियों में प्रवेश कर लेना चाहिये ।"

अपने लम्बे भाषण के अन्त में अध्यक्ष महोदय ने आह्वान किया - "सफलता प्राप्त होना दुर्लभ हुआ करता है । इसीलिये जो कुछ हमें करना हो वह बहुत सोच-समझकर करना चाहिये । ऐसा कार्य करने से हमें अपने भाइयों को साथ लेकर ऊँच-नीच, शिक्षित-अशिक्षित इत्यादि का भेद-भाव छोड़ सबका संग्रह करना चाहिए और भगवान की इस युक्ति को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि - "कर्तब्यो लोक संग्रहः" । आज इस पंडाल में क्षत्रिय जाति के मुख्य-मुख्य अंगों के प्रतिनिधि भेद-भावों को छोड़कर एकत्र हुये हैं । यह देखकर मुझे परम आनन्द होता है। मेरा यह आनन्द स्वाभाविक ही है क्योंकि हम हिन्दुओं के यहां त्रिवेणी संगम महापवित्र माना गया है ।" ("कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर", अप्रैल-मई 1934 से साभार उद्धृत)

इस अधिवेशन में लगभग 60,000 कुरमीजन इकट्ठे हुये थे । इधर अध्यक्ष महोदय ऊँच-नीच, शिक्षित-अशिक्षित आदि भेद-भाव तथा कुरमियों के इस महापवित्र त्रिवेणी संगम की बात समझा रहे थे । उधर पंडाल के अन्दर-बाहर तथा मंच पर बैठे महानुभावों में ऊँच-नीच, की भावना प्रवल हो उठी थी ओर उन कुरमियों ने जातिय सम्बन्धी इन मुद्दों पर अपने व्यवहार द्वारा डबल-मापदण्ड का खेदजनक एवं घृणित प्रदर्शन किया । श्री शिवराम सिंह जी के अनुसार अधिवेशन के प्रथम दिन सभामंच पर अन्य विशिष्ट स्वजातीय महानुभावों के साथ-साथ बाढ़ (पटना) के तत्कालीन 52 गांवों के जमींदार परिवार के बाबू हरिहरनाथ सिंह भी बैठे थे । जो कि जयसवार शाखा के कुरमी थे । उनका वहां बैठना अपने को शीर्षस्थ ब्राह्मण वाले कूर्मि होने का दम्भ रखते अन्य कुरमियों को फूटी आंख भी नहीं भा रहा था । जब लोग उनके बारे में ऐसी भावना रखते थे तो साधारण, गरीब तथा सर्वहारा जयसवार कुरमीजन जो पंड़ाल में या बाहर थे वे भी कुरमियों के उस वर्ग विशेष की आंखों में चुभ रहे थे। श्री शिवराम सिंह जी से यहां तक कहा गया कि - "बाबू हरिहरनाथ सिंह को मंच से नीचे जाने को कहा जाये। वे बोले-कि मैं तो ऐसा अनर्थ कर नहीं सकता । हां मैं उन्हें माइक पर अपने बिचार रखने को आमंत्रित करने को हूँ । जैसे ही वह बोलने को आयेंगे आप कोई उनकी कुर्सी पर जा बैठना । बाद में वे कुर्सी खाली न पायेंगे स्वयं मंच से नीचे चले जायेंगे ।"

किसी तरह यह बात अधिवेशन के पहले दिन तो बिना किसी हादसे से टल गयी । दूसरे दिन के अधिवेशन में फिर ऊँच-नीच का दम्भ लिये सभा-पंडल में घूम रहे स्वजातीय बहुरुपियों ने फिर जयसवार कुरमियों का अपमान करने की कुचेष्टा की । पाठकगण् जानते होंगे के जयसवार कुरमी बिहार में संख्या तथा सामर्थ्य में अन्य किसी उपजाति वालों से कम नहीं है, वे कहां तक अनदेखी करते हुए बर्दाश्त करते । तू-तू, मैं-मैं होना स्वाभाविक था । बात का वतंगड़ बनना ही था, पंड़ाल में भगदड़ मच गयी । जिसके लिये दो कुरमियों की अन्य कुरमियों के पैरों तले कुचल जाने से जानें चली गयीं । इस दुर्घटना पर बिहार के गैर-जयसवार कुरमीगण पर्दा डालना चाहते हैं, क्योंकि इससे उनकी निन्दनीय मनोवृति का पूर्ण पर्दाफाश होता है ।

उपर्युक्त शर्मनाक दुर्घटना को चाहें, उन दम्भी कुरमियों की उद्दंडता पर परदा डालने और कूर्मि-इतिहास

में उनका सही उल्लेख हो जाने से वे सदैव निंदनीय दृष्टि से न देखे जायें, इसे अनुशासनहीन कार्यकर्ताओं की लापरवाही कह दिया जाय, परन्तु हरनौत अधिवेशन में इन कुरमियों में ऊँच-नीच की भावना-प्रदर्शन को सदा हेय दृष्टि से देखा जाता रहेगा, जब भी इसका स्मरण किया जायेगा ।

जहां तक बाढ़ के जमींदार परिवार के **बाबू हरिहरनाथ सिंह** की उपजाति के अधार पर मंच से नीचे जाने का कुछ दम्भी कुरमियों को जोर देने का प्रश्न है तो अन्य उपजाति के कितने कुरमी उस समय बिहार भर में थे जिनके यहां 52 गांव की जमींदारी रही हो ? फिर बाबू हरिहरनाथ सिंह का परिवार वह जयसवार कुरमियों का परिवार था जिसके दामादों या नजदीकी रिश्तेदारी में महासभा के बाद में अध्यक्ष तथा कलकत्ता के समाजसेवी **स्व० लक्ष्मणचन्द्र सिंह, चुनार (यू० पी०) के स्व० चौधरी दीपनारायन सिंह के पुत्र स्व० सरोजसिंह, दिल्ली के उद्योगपति श्री हरनारायण राय, पीलीभीत के रईस श्री स्व० रामसिंह, बाराबंकी के प्रसिद्ध वकील स्व० श्री माताप्रसाद के पुत्र श्री जालिम सिंह पटना के स्व० डा० बटेश्वर प्रसाद एम० एल० सी०** और अनेक ऐसे प्रतिष्ठित और सम्पन्न व्यक्तियों के उस परिवार से रिश्ते थे जिनकी एक बड़ी लम्बी सूची बन जायेगी । जब उनके साथ दुर्व्यवहार करने की लोग कुचेष्टा कर सकते थे तब उसी शाखा के जनसाधारण के बारे में क्या-क्या सोचा जाता रहा होगा यह तो कल्पनातीत है । बिहार के कुरमी **स्व० वीरचन्द पटेल** को जो प्रसिद्ध राजनेता रहे सभी बड़े आदर से स्मरण करते हैं । उनकी पत्नी **श्रीमती श्यामा देवी** पटेल पूर्व एम० एल० सी० ने पीलीभीत (यू० पी०) के एक प्रतिष्ठित जयसवार कुरमी परिवार में ही जन्म लिया था ।

बिहार से जब आवाज़ उठती है कि कूर्मि के साथ क्षत्रिय प्रत्यय लगाना व्यर्थ है, या कूर्मि आर्य नहीं हैं, द्राविड़ हैं तो अन्य प्रदेशों के कुरमी भौचक्के होकर इनकी ओर देखते हैं । वे सब अपनी पुरानी आस्था से ही सहमत हैं कि वर्ण व्यवस्थानुसार वे क्षत्रिय हैं । चाहें उनके पूर्वज इस देश में आर्यों के आगमन से पहले बसे हुये थे, पर हज़ारों वर्षों के उनके पूर्वजों का आर्यकरण हो जाने से अब न उन्हें द्रविड़ों की स्थिति को लौटना हैं और न अन्य किसी नई दिशा की ओर । हरनौत में बिहार के कुछ लोगों की मनोधारणा कुछ और थी । वे अपनी कृत्रिम श्रेष्ठता के ताप से पीड़ित थे आज उनमें बुनियादी तब्दीलियां आयी हैं । कब तक कायम रहें इसी में उनका तथा इस जाति विशेष का भविष्य मंगलमय रहेगा । समय-समय पर अपनी जातीय स्थिति वे उलट-पलट करते रहे हैं अन्य प्रदेश के कुरमी उनका इस प्रक्रिया में साथ न दे सकेंगे ।

दानापुर (पटना) निवासी स्वजातीय विद्वान **श्री श्याम प्रीत सिंह** ने हरनौत अधिवेशन के सम्बन्ध में जो जानकारी इस लेखक को अपने पत्र दिनांक 23 मार्च, 1993 को भेजी, वह अक्षरशः निम्नलिखित है:-

"आपका 16 मार्च 1993 का पत्र 22 मार्च को दानापुर पहुंचा । ....आपने हरनौत सभा का जिक्र किया है । मारपीट हुई थी । भगदड़ मची । दो व्यक्ति कुचलकर मर गये थे । गोली नहीं चली थी। मैं तेरह साल का बालक था । भगदड़ में मेरी चादर (कश्मीरी दोशाला) गायब हो गयी। जयसवार कुरमी भाइयों को धानुक बताकर कहा गया था कि वे सभा छोड़कर चले जायें । वे आज तक इस दुःख को नहीं भूले हैं । कूर्मि सभा में वे भाग नहीं लेते हैं । अभी हाल में (फरवरी 1993) उन्होंने गांधी मैदान पटना में धानुक कुरमियों की अलग सभा बुलाई । उन्होंने सरकार से आग्रह किया कि उन्हें अनुसूचित जनजाति का घोषित किया जाय ऐसे ही प्रश्न सन् 1991 में सम्पन्न हुये अखिल भारतीय कूर्मि सभा, पटना में उठे थे । छोटा नागपुर के कूर्मि भाई उसमें सम्मिलित हुये थे । उन्होंने अनुरोध किया कि क्षत्रिय शब्द कूर्मि महासभा के नाम से हटाया जाय । महासभा ने वाद-विवाद के बाद प्रस्ताव स्वीकार किया एवं कहा कि सभा का नाम सिर्फ 'अखिल भारतीय कूर्मि महासभा' रहेगा । इस पर उत्तर प्रदेश के लोगों को आपत्ति हुई । उन्हें एक लम्बा पत्र मुझे लिखना पड़ा ।"

बिहार के **श्री नरसिंह जी,** स्वतंत्रता सेनानी, पटना के बी० एन० कालिज के पूर्व विभागाध्यक्ष (हिन्दी) **प्रो० रामबुझावन सिंह** का पत्र लेकर 7 सितम्बर 1993 को दिल्ली आये और इस लेखक से मिले । जहां कुरमी समाज के बारे में अनेक बातें हुई, तो जिक्र उठा सन् 1933 के हरनौत में हुये महासभा के अधिवेशन का । वयोवृद्ध

स्वतंत्रता सेनानी श्री नरसिंह जी ने बताया कि तब वे नौ वर्ष के बालक थे और अपने बुजुर्गों के साथ वे भी हरनौत अधिवेशन में सम्मिलित हुये थे। महासभा के अधिवेशन के अन्तिम दिन, किसी बात पर पंडाल में भगदड़ में दो अभागे कुरमी दर्शक भागती हुई स्वजातीय लोगों की भीड़ के पैरों तले कुचलकर दम तोड़ गये।

इन सब चश्मदीद प्रतिनिधियों और दर्शकों के बयानों से पता चलता है कि हरनौत अधिवेशन में कुरमियों की उपजातियों में ऊँच-नीच की भावना इतनी प्रबल हो उठी थी कि आपस में मार-पीट तक की नौबत आ गयी थी। पंडाल में भगदड़ मच गयी, जिससे कुछ लोग गिर कर भागते लोगों के पैरों तले कुचल गये। जिनमें दो ने वहीं दम तोड़ दिया। खेद है कि हरनौत अधिवेशन के 60 वर्ष बाद भी बिहार के कुरमियों की उपजातियों में पारस्परिक ऊँच-नीच की भावना दम तोड़ती नजर नहीं आती, पास के प्रदेशों उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, प० बंगाल में यह भावना तेजी से लगभग समाप्त होने की ओर अग्रसर हो रही है।

नालन्दा (बिहार) में 18 मई सन् 1941 ई० में जन्में श्री सिद्धेश्वर जी भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के लेखा परीक्षा अधिकारी पद पर कार्यरत हैं। वे काफी वर्षों से बिहार के सामाजिक, जातीय एवं साहित्यक गतिविधियों में प्रमुख कार्यकर्ता के रूप में भाग लेते हैं। हाल में उन्होंने दो पुस्तकों का सम्पादन किया है :-

1 बिहार के कुरमी (परिचयात्मक निबंध-संग्रह) पहला खंड
2 बिहार के कुरमी (निदेशिका) द्वितीय खंड

श्री सिद्धेश्वर प्रसाद जी से इस लेखक का पत्र-व्यवहार भी चलता रहता है और उनके दिल्ली आगमन पर, राजनेताओं और सांसदों के यहाँ आना-जाना भी साथ-साथ होता रहता है। इस लेखक के हाल ही के एक पत्र के उत्तर में श्री सिद्धेश्वर जी का एक पत्र यहां उद्धृत है :-

सिद्धेश्वर प्रसाद

लेखा परीक्षा अधिकारी, बिहार

संयोजक राष्ट्रीय विचार मंच
पटना,
16 जून 1994

समादरणीय डा० जयसवार साहब,

नमस्कार,

आपका पत्र मिला और मिला समाचार भी। बड़ी प्रसन्नता हुई यह जानकर कि आपकी लिखी पुस्तक **"कुरमी चेतना के सौ वर्ष, (1894-1994)"** अब प्रेस में जाने को है। समाज के इतिहास में यह पुस्तक अपने आप में महत्वपूर्ण सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। वर्तमान तथा भावी पीढ़ी अपना मुखड़ा इसमें देख पायेगी, अतीत में उसे झांकने का अवसर मिल सकेगा, यह सब आपके कठिन परिश्रम का ही प्रतिफल है। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

"बिहार राज्य कुर्मी चेतना महारैली" पर मेरी भी एक पुस्तिका प्रकाशनाधीन है। उसके लिये भी महारैली के चित्र चाहिएं। छायाकार से वांछित चित्रों की प्रतियां मांगी गयी हैं। उपलब्ध होने पर उसकी प्रति आपको भेजने का प्रयास मेरी तरफ से होगा।

जहाँ तक रुपये-पैसे की व्यवस्था का सवाल है, आप इस बात से अवगत् है कि मैंने अपनी दोनों पुस्तकों को **"सरदार पटेल साहित्य एजेन्सी"**, पटना को दे रखा है। सारी पुस्तकों के वितरण तथा बिक्री का भार एजेन्सी के कन्धों पर है।

आपकी पुस्तक के लिए भी वैसे ही पुस्तक एजेन्सी की खोज हो तो अच्छा। मैं भी प्रयास करूँगा क्योंकि

वही रुपयों की व्यवस्था कर पायेगा ।

वैसे सम्भवतः आगामी 20 जून, 94 को एक संसदीय समिति की बैठक के सिलसिले में दिल्ली पहुँचने को हूँ । तब विस्तार से शायद बात हो पाये ।

सादेश ।

आपका ही

सिद्धेश्वर
निवास : बसेरा, पुरन्दरपुर, पटना -1
दूरभाष : 228519

सेवामें,
डा० दिलावर सिंह जयसवार,
बी-6/57 सफदरजंग एन्कलेव,
नई दिल्ली - 29

श्री सिद्धेश्वर जी की प्रथम पुस्तक का लोकार्पण समारोह 5 जून 1993 को लोदी रोड, नई दिल्ली स्थित डेल्टन हाल में आयोजित किया गया । सुपरिचित साहित्यकार एवं सांसद श्री शंकरदयाल सिंह जी, मुख्य अतिथि थे तथा पूर्व मंत्री, भारत सरकार, सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद जी उद्घाटनकर्ता थे । तथा इस लेखक को उस समारोह की अध्यक्षता करने की गरिमा प्रदान की गई थी ।

श्री सिद्धेश्वर जी अपनी उक्त प्रथम पुस्तक के पृष्ठ 50-51 पर **"शाखान्तर शादी समय की मांग"** के अन्तर्गत लिखते हैं :-

"यह बात ठीक है कि कुर्मी समाज की अवधिया शाखा के हमारे बन्धुवर अपने को सिरमौर मानते हैं, बल्कि यहां तक कि कई क्षेत्रों में तो वे अपने को कुर्मी कहते भी नहीं, कहलाना चाहते भी नहीं । और तो और हमें कई बैठकों तथा सभाओं में लोगों से यह कहते सुनने को मिला है कि वे भी कुर्मी जाति के हैं, यह उन्हें पता भी नहीं था । यह हाल केवल अशिक्षित तथा सुदूरवर्ती गांवों के लोगों का ही नहीं है, बल्कि शिक्षित अध्यापकों-प्राध्यापकों का है । सचमुच यह मंडल आयोग धन्यवाद का पात्र है जिसने अपनी सिफ़ारिशों में आरक्षण की सूची में कुर्मी, कुर्मी महतो तथा धानुक शब्दों का ही इस्तेमाल किया है, अवधिया', "कौचेसा", 'घमैला' का नहीं अन्यथा आगे स्थिति इससे भी भयानक और बदतर हो जाती मंडल आयोग ने कुर्मी के 'पंड़ितों' को यह अहसास कराया है कि वे कुर्मी हैं और यही कहने पर भी उन्हें आरक्षण का लाभ मिल सकेगा अन्यथा नहीं ।"

"पर केवल 'अवधिया' शाखा पर सारा इलजाम लगा देना लाज़िम नहीं प्रतीत होता है । यहां तो **'को बड़ छोट कहत अपराधू'** वाली हालत है । पटना, नालन्दा के घमैला तथा कौचेसा शाखा के लोग भी पीछे नहीं है । उनमें भी अभी बहुत से पंड़ित बैठे हैं जो घरौंदों में बन्द हैं । नालन्दा, पटना को ही कुर्मियों की दुनिया समझ बैठे हैं ।...............

"खैरः । बहुत अधिक अधीर होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इनकी मानसिकता में अब बदलाव स्पष्ट दीखने लगा है । पटना के पुनपुन, मसौदी, फुलवारी शरीफ, फतुहा, तथा हरनौत आदि इलाकों में अवधिया शाखा के भाइयों की मानसिकता में सुस्पष्ट परिवर्तन दीख रहा है । भले ही अपने गांव, घर-परिवारों में अपने को वे 'अवधिया' शब्द से सम्बोधित करें, किन्तु समूह में, सामाजिक बैठकों में तथा सभाओं में वे खुलकर 'कुर्मी' कहने में गौरव का अनुभव कर रहे हैं..............।"

बिहार राज्य कुर्मी सभा, जिसके वर्तमान अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध आर्युविज्ञानविद् डा० मोहन सिंह जी हैं, ने अपनी कार्यकारिणी समिति में हाल ही में निर्णय लिया है कि शाखान्तर तथा बिना तिलक-दहेज के शादी-विवाह

करने वाले समाज के स्वजनों की सूची तैयार की जाय । यह प्रशंसनीय कदम सही दिशा की ओर उठा है । इस असाध्य जातीय रोग से मुक्ति पाने के लिये प्रमुख व्यक्तियों को प्रेरित किया जाय । बिहार प्रदेश के कुरमियों में शाखान्तर शादी-विवाह का प्रचलन जितनी तेजी से चल पड़ेगा, उतनी तेज़ी से यह मर्ज स्वतः गायब हो जायेगा। उत्तर प्रदेश के कुरमियों का इस रोग से लगभग मुक्त हो जाने का यही कारण है । श्रद्धेय डाक्टर मोहन सिंह जी ने अपना शुभ संदेश, इस लेखक को भेजा है, कृपया उसे इस पुस्तक के प्रारम्भ में देखें ।

ठीक ही कहा गया है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और परस्पर सहयोग की बुनियाद पर मनुष्य का और उसके समाज का उत्कर्ष निहित है । इसी सहयोग की भावना को अगर हम व्यापक पैमाने पर हृदयंगम कर उस पर सच्चाई से आचरण करने लगें, तो निश्चित है कि ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, शाखा-उपशाखाओं आदि के कृत्रिम भेद-भाव स्वतः लुप्त होते चले जायेंगे ।

इसी सन्दर्भ में बिहार के जयसवार बन्धुओं को हतोत्साहित होने का कोई कारण नहीं है, उन्हें उत्तर प्रदेश के जयसवार कुरमियों की आर्थिक, सामाजिक स्थिति से प्रेरणा लेना चाहिये, जो कि पूरे प्रदेश में अपनी अन्य उपजातियों में सबसे अधिक संख्या में हैं, कोई भी अन्य शाखा-उपजाति वाले उन्हें अपने से किसी भी बात में पीछे नहीं कह सकते । हां । उत्तर प्रदेश में इस लेखक की जानकारी के अनुसार धानुकों में एवं जयसवार कुरमियों में कहीं भी सामाजिक स्तर पर ताल-मेल नहीं है । न कभी इस दिशा में कोई निकट आने का प्रयत्न किया गया हो, ऐसा उदाहरण मिला है। उत्तर प्रदेश के धानुकों ने भी अपने कुरमी बन्धुओं से निकट सम्बन्ध स्थापित करने की कभी चेष्टा की हो, ऐसी भी कोई जानकारी इस लेखक को नहीं मिली है ।

बिहार के जयसवार कुरमियों को चाहिये कि वे अपने को उन्नत करके समाज में ऐसा स्थान बना लें, कि उन्हें हीन समझने का कोई साहस न कर सके । फरवरी 1993 में पटना के गांधी मैदान में हुई सभा में जयसवार-धानुकों ने अपनी समस्याओं के निवारण के लिये अपने को अनुसूचित जनजाति घोषित कराने के लिए सरकार से प्रार्थना की जैसा कि झारखंड के कुड़मि बन्धु भी कराने में प्रयत्नशील हैं । किसी अन्य जाति के बड़े राजनेता के इशारे पर, यह राजनैतिक चाल बृहत् कुरमी समाज को विभक्त कर उनके घटकों को अलग-अलग कर मौजूदा अस्तित्व में उनकी शक्ति को कम करने की भी हो सकती है । अतः उसके लिये सतर्क रहते हुये सही रास्ता चुनना है जिससे वे अपनी मानसिकता तथा मनोबल को किसी भी भौतिक प्रलोभन से क्षीण न होने दें, अपने को शिक्षित करते हुये अन्ध-विश्वास और रुढ़िवादिता को तज़ते हुये, आपस में संगठित होकर जीवन के हर क्षेत्र में आगे निकलकर नये कीर्तिमान स्थापित करें , यहीं उनका उचित उत्तर होगा, विशेषतः उन लोगों के लिये, जो कभी उन्हें अपने से नीचा समझते थे । अंग्रेज लोग परतंत्र भारत के सभी हिन्दुस्तानियों को हेय-दृष्टि से देखते थे । आज वहीं भारतीय इंगलैंड में उद्योगपति, डाक्टर, इंजीनियर, एटार्नी, पत्रकार आदि बन गये हैं और अंग्रेज उनके बच्चों की आया या कार ड्राइवर, या नौकर हैं । इस लेखक के अपने इंगलैंड प्रवास में बस-ड्राइवर, टैक्सी ड्राइवर तथा घर के काम करने वाले मिस्त्री आदि अंग्रेज ही देखे । वही आपका सामान उठाकर बस में रखेंगे और गन्तव्य स्थान पहुँचने पर वे ही आपका सामान उतार कर सवारी को सौंपेंगे । वे बख्शीश की आशा करते हैं । इसलिये बिहार के जयसवार कुरमियों से यही निवेदन है कि वे अपनी तरक्की की बातें सोंचें पर घटिया स्तर के भौतिक प्रलोभन में आकर स्वयं को निकृष्ट घोषित करना स्वीकार न करें । उन्हें अपनी मूल जाति कुरमी से नहीं कटना चाहिये, नहीं तो उन्हें कहीं अपनी भूल से आगे ऐसी स्थिति में न पहुँच जाना पड़े, जिसे यह कहावत सही चरितार्थ करती है- **"माया मिली न राम ।"** जयसवार कुरमी क्या हैं इतिहास के आइने में, इस पुस्तक में पहले ही बिस्तार से वर्णित किया जा चुका है ।

बिहार की रोजमर्रा की राजनीतिक उथल-पुथल का सीधा प्रभाव वहाँ की कुरमी जाति के लोगों पर भी सीधा पड़ता नज़र आता है । उदाहरण के तौर पर 23 जून 1994 को जब जनता दल का तीसरी बार विघटन हुआ और बिहार के दो कुरमी सांसदों, **श्री नीतिश कुमार** और **श्री वृषेन पटेल** ने अन्य सांसदों के साथ उससे

बाहर आने की घोषणा की तो दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र "इंडियन एक्सप्रेस" के 24 जून 1994 के अंक में "Media Concocted VP Statement : Laloo:" के अन्तर्गत पटना में श्री लालूप्रसाद यादव, मुख्य मंत्री बिहार की पत्रकारों को दी प्रतिक्रिया प्रकाशित हुई । जहाँ उन्होंने अनेक बातें कहीं वहां मात्र कुरमी सम्बन्धी अंश नीचे उद्धृत किये गये हैं ।

श्री लालूप्रसाद जी ने श्री नीतीश कुमार के संदर्भ में कहा कि कुछ लोग बिहार के मुख्यमंत्री बनना चाहते हैं इसलिये यह जनता दल पुनः टूटा है । एक पत्रकार के प्रश्न कि नीतिश जी का कथन है कि उनके मुख्य मंत्री बनाने में उनका योगदान रहा है । लालूजी भड़क पड़े और उठ खड़े होकर बोले कि मैं बाद में बताऊँगा कि किसको मैंने बेइज्जत किया । जनता मेरे साथ है । सारे मेरे विरोधी, मय नीतीश कुमार के अगले चुनाव में सफाचट कर दिये जायेंगे । जब वे कुछ न रहेंगे तब मैं फिर उनसे दोस्ती करूँगा । श्री नीतिश कुमार और श्री सैयद शाहाबुद्दीन पर कटाक्ष करते हुये मुख्यमंत्री ने कहा कोई अपने को कुरमियों का नेता कहता है और कोई मुसलमानों का, लेकिन लालू सबका नेता है ।

श्री नीतिश कुमार ने मुख्यमंत्री के उपर्युक्त बयान का करारा जवाब दिया है और कहा है कि समय ही बतायेगा कि कौन क्या है? श्री नीतिश कुमार यदि अपने अवधिया जाति वालों के अतिरिक्त सभी उपजातियों को साथ लेकर संघर्ष करते हैं और सबके लिये भलाई के काम करते हैं तो वे अखिल भारतीय स्तर पर बड़े सशक्त नेता बनकर उभरने की क्षमता रखते हैं । वे इंजीनियरिंग स्नातक है, उत्तम वक्ता है, युवा है और अब तक उनकी छवि स्वच्छ है । सारे देश के कुरमी समाज को उनसे बड़ी आशायें हैं और वे उनके मंगलमय भविष्य की कामना करते हैं । अगस्त 1994 माह से बिहार की राजनीति में नया ध्रुवीकरण होता नज़र आ रहा है । लालूप्रसाद विरोधी पक्ष, श्री नीतीश कुमार को बिहार की भावी मुख्यमंत्री बनाने के लिये प्रयत्नरत हैं । अब आने वाले विधान सभा चुनाव परिणाम से कौन क्या होता है, पता चल जायेगा । जनवरी 1995 में समता पार्टी का प्रथम विभाजन होना इसके भविष्य पर प्रश्न चिह्न लगाता है ।

श्री श्यामप्रीत सिंह

इनका जन्म 21 सितम्बर 1920 को पटना जिले के मनेर थाना के अन्तर्गत ताजपुर ग्राम में एक सुखी सम्पन्न कुरमी कृषक परिवार में हुआ । पिताजी का नाम श्री युगलसिंह था जो कृषि-कार्य करवाते थे । पटना विश्वविद्यालय से सन् 1944 में दर्शन शास्त्र में एम० ए० करके कुछ वर्ष एस० सिन्हा कालेज, औरंगाबाद (बिहार) में प्राध्यापक पद पर रहे । तदोपरान्त सन् 1948 में बिहार प्रशासनिक सेवा में पदभार ग्रहण किया , जहां बिहार सरकार के विभिन्न विभागों के पदों पर कुशलता तथा दक्षता पूर्वक कार्य करते हुये सन् 1979 में अपर समाहर्ता के पद से इन्होंने अवकाश प्राप्त किया । आपके सुयोग्य बेटे ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदों पर हैं, जिनमें एक श्री अनिल सिन्हा, दिल्ली पुलिस में डिप्टी कमिश्नर पुलिस पद पर कार्यरत हैं । अवकाश प्राप्त कर लेने के पश्चात् श्री श्यामप्रीति सिंह अपना सारा समय सामाजिक संगठनों की सेवा में पठन-पाठन, लेखन में व्यतीत करते हैं । एक समर्पित व्यक्तित्व वाले, विद्वान लेखक हैं । अपने लेखन में समाज की खामियों, स्वभाव और चरित्र-चित्रण को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है :-

कुरमी और ककड़ी में कोई अन्तर नहीं,
थोड़ा बढ़ने पर दोनों टेढ़ा होते हैं ।
डीनर और राजनीति में सलाद का स्थान है दोनों का,
चिकेन और पुलाव बनने के दिन अभी दूर हैं ।।

इक्कीसवाँ अधिवेशन

दिनांक 29, 30 व 31 दिसम्बर 1937 को छपरा, जिला सारण, (बिहार) में फतेहगढ़ (यू० पी०) के प्रसिद्ध बैरिस्टर और समाजसेवी, श्री बृजनन्दन लाल कटियार की अध्यक्षता में महासभा का 21 वां अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

बैरिस्टर कटियार ने अपने अध्यक्षीय भाषण में बताया कि-"हम सब लोग जानते हैं कि हमारी महासभा का मुख्य उद्देश्य, उन कारणों को दूर करना है जिससे भाई-भाई से अलग हैं, जाति को संगठित करना है। इन्हीं कारणों से अन्तर उपजाति-सहभोज और विवाह का समर्थन बराबर किया गया है। मिरजापुर की महासभा में अध्यक्षासन से अध्यक्ष जी ने 29 सितम्बर 1909 ई० को कहा था- **"सभामंच पर से बहुत लम्बे-चौड़े भाषणों के पश्चात् भी अन्तर उपजाति का प्रश्न हल नहीं हुआ।"** तब से अब तक यू० पी० में बहुत कुछ उन्नति हुई है और अन्तर-उपजाति विवाह अब मान्य हो गई है। मेरे प्रान्त में तो बहुत से विवाह हुये हैं। मेरे ज्येष्ठ पुत्र (कटियार) ने एक कन्नौजिया लड़की से विवाह किया है और मेरे दूसरे पुत्र का सम्बन्ध आगामी मई 1938 में एक बैसवार कन्या से होगा। सहभोज तो अब एक साधारण बात हो गयी है। मुझे इस बात का गर्व है कि प्रथमवार सीतापुर महासभा के अवसर पर सहभोज करने के लिये मैंने भाइयों को समझाने में विशेष उद्योग किया था। इसके पश्चात् देवास के विशेषाधिवेशन में हमें सफलता प्राप्त हुई थी। किन्तु आपको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ऊँच-नीच का भाव अब भी जाति में, वरन सम्पूर्ण हिन्दू समाज में, वर्तमान है जो केवल हमारी जाति और देश के विनिष्ट होने का कारण है यदि यह भाव समाप्त नहीं होता तो स्वतंत्रता की बात व्यर्थ हो जायेगी।"

अध्यक्ष बैरिस्टर कटियार साहब ने भारत सरकार से मांग की कि विभिन्न नौकरियों में कुरमी जाति के उम्मीदवारों को उचित और समानुपातिक स्थान मिलें। सरकार हमारे बार-बार मांग करने पर अन्यायपूर्ण रवैया अपनाए हुये है।

अध्यक्ष बाबू बृजनन्दन लाल कटियार ने यह भी कहा कि "मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करूँ कि यदि महासभा को जीवित रहना है, तो प्रचार अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए वैतनिक कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ेगी। मुझे आशा है कि आप लोग इस पर विचार करेंगे। उपदेशक लोग कार्यालय के कार्य के अतिरिक्त बाल-विवाह आदि ऐसी कुरीतियों पर उपदेश करेंगे, जो कि अब भी देश में बहुत से स्थानों में विद्यमान हैं।" (रजत जयन्ती स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ 364)

पिछले अधिवेशन से इस अधिवेशन के अन्तराल में ब्रिटिश सरकार और हमारी महासभा के मध्य कई पत्राचार हुये, उनमें से प्रमुख-प्रमुख पत्रों के हिन्दी अनुवाद नीचे दिये जा रहे हैं :-

रेवेन्यू बोर्ड लैण्ड रेकार्डस संयुक्त प्रान्त
एन० एल० आर० 859/173 बी

लखनऊ
तारीख: 9 नवम्बर 1934

सेवामें :-

बा० वृन्दावन कटियार साहेब
बी० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, एडवोकेट
उपप्रधान, समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा,
फतेहगढ़ (संयुक्त प्रान्त)

विषयः आपका पत्र तारीख 30 सितम्बर 1934 ई० का जो डाइरेक्टर लैंड रेकार्ड्स यू० पी० के पास 'कूर्मी' शब्द के स्थान पर 'कूर्मि क्षत्रिय' लिखे जाने के लिये था।

जी० ओ० (Government Order सरकारी आज्ञा) न० 366, 389 तारीख 3 मार्च 1931 ई० सब जिलाधीशों के पास पालनार्थ भेजा गया था। यदि कोई पटवारी, कानूनगो अथवा अंन्य माल विभाग (महकमें) का कर्मचारी 'कूर्मी' के 'कूर्मि क्षत्रिय' कहने पर माल के कागजातों में वैसा लिखने से इन्कार करे तो उसे इस विषय को अपने कलेक्टर को सूचित करना चाहिये।

परसनल असिस्टेंट
वास्ते सेक्रेटरी

स० 336/ I ए -389

प्रेषक	टी० स्लोन स्क्वायर, सी० आइ० ई०
रेवन्यू	आई० सी० एस०, एम० एल-सी०
(ए)	सेकरेट्री गवर्ननेंट
विभाग	संयुक्त प्रान्त

सेवामें,

डाइरेक्टर लैंड रेकार्डस, संयुक्त प्रान्त, इलाहाबाद, मार्च 3, सन् 1931 ई०

महाशय,

समस्त भारतवर्षीय कूर्मिक्षत्रिय महासभा के डेपूटेशन के सम्बन्ध में मुझे यह कहने की आज्ञा हुई है कि गर्वनर ने सपरिषद् यह निर्णय लिया है कि कोई कूर्मी अगर वह अपने को मालगुजारी के कागजातों में कूर्मि क्षत्रिय लिखना चाहता है तो जब नये कागजात (रिकार्ड्स) तैयार किये जायें उसे वैसा लिखना चाहिये।

टी० स्लोन
सेक्रेटरी टू गवर्नमेंट

न० 358/I ए० -389

स० भा० कू० क्ष० महासभा के प्रधानमंत्री की सेवा में नकल सूचनार्थ भेजी जाती है। बन्दोवस्त और रोस्टर चकबंदी के विषय में मालगुजारी की सुविधाओं के सम्बन्ध में ऊँच-नीच का अब कोई कानून नहीं रह गया है और जो फार्म आफीसर बन्दोबस्त इस्तेमाल करते हें, उसमें रियायती और गैर-रियायती जातियों का हवाला है।

आसाम गवर्नमेंट
गर्वनर परिषद्
पत्र सं० 1556 ई०
शिक्षा विभाग, फुटकर शाखा

प्रेषक :-

श्रीमान ए० बी० जोन्स
सहायक सेक्रेटरी, आसाम गवर्नमेंट

सेवामें,

जेनरल सेक्रेटरी,
समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय एसोशिऐसन,
देवास (प्रथम श्रेणी)

शिलांग
2 जुलाई, सन् 1931 ई०

महाशय जी,

मुझे आज्ञा हुई है कि आपके पत्र नं० 2230 ता० 15 मई 1931 ई० जो सरकारी कागज़ों में 'कुर्मी' शब्द के स्थान पर "कूर्मि क्षत्रिय" लिखे जाने के विषय में है, आपको हवाला देकर लिखूं कि यदि कोई कुर्मी अपने आप को माल के कागज़ों में "कूर्मि क्षत्रिय" लिखना चाहे तो नये कागजात् (रेकाड्स) तैयार करते समय उसे वैसा लिखा जायेगा ।

आसाम के लैंड रेकार्ड्स के डाइरेक्टर साहब को इस आज्ञा की सूचना दे दी गई है ।

मुझे सम्मान प्राप्त है, इत्यादि
ए० वी० जोन्स
सहायक सेक्रेटरी, आसाम गवर्नमेंट

इस अधिवेशन के सफल आयोजन के मार्ग में कुछ स्वार्थी कुरमियों द्वारा अनेक अवरोध उत्पन्न किये गये। इस अधिवेशन की स्वागत-समिति कलकत्ता में गठित हुई थी । कलकत्ता कूर्मि क्षत्रिय समाज द्वारा महासभा के अधिवेशन के संचालनार्थ अधिक धन भी उन्हीं से आया था । महासभा के अधिवेशन के आयोजन का प्रबन्ध चुप्पेपुर बनारस कैन्ट निवासी तथा "कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर" मासिक पत्रिका के सम्पादक, श्री शिवराम सिंह जी के हाथों में सौंपा गया था (देखिये पृष्ठ 191, "कूर्मि क्षत्रिय इतिहास" लेखक श्री शिवराम सिंह) । उन्होंने महीने भर छपरा शहर में ठहर कर स्वागत समिति का सारा प्रबन्ध किया था । स्वागत समिति ने अधिवेशन का संपूर्ण व्यय वहन नहीं किया, जिससे प्रबन्धकों को अर्थ संकट का निस्तारण अन्य उपायों से करना पड़ा ।

महासभा के जबलपुर में सम्पन्न हुये सन् 1927 ई० के सोलहवें अधिवेशन में, श्री शिवप्रसाद सिंह, वकील कानपुर तथा श्री शिवराम सिंह, सम्पादक, "कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर" बनारस कैन्ट आदि की एक समिति महासभा की नियमावली के संशोधनार्थ नियुक्त की गई । इसी अधिवेशन में उसका पूर्ण संशोधन करके नवीन तथा विस्तृत नियमावली विधिवत् स्वीकृत हुई । इस अधिवेशन में महामंत्री (जिन्हें उस समय प्रधानमंत्री भी कहा जाता था) देवास निवासी प्रोफेसर बेचन सिंह 10 वर्ष तक पदासीन रहने पर भी उपस्थित तक नहीं हुये थे । अतः इस अधिवेशन में उनके स्थान पर ठाकुर श्यामसिंह मूल निवासी लखीमपुर खीरी तथा उसके बाद में पोस्ट मास्टर लाहौर को नया मंत्री बनाया गया ।

श्री श्यामसिंह जी के तीन पुत्र थे । उनमें से विशेष रूप से दो काफ़ी प्रसिद्ध हुये । सबसे बड़े पुत्र राणा जंग बहादुर सिंह अनेक वर्षों लाहौर से निकलने वाले दैनिक अंग्रेजी अखबार- "दि ट्रिब्यून" के सम्पादक रहे । भारत विभाजन के पश्चात् 1947 में वे अपने परिवार सहित दिल्ली आ बसे और पत्रकारिता से किसी न किसी रूप में जुड़े रहे । चौधरी ब्रह्मप्रकाश जी के मुख्य मंत्रित्वकाल में जो पहली असेम्बली दिल्ली में चुनी गई उसमें राणा जंगबहादुर सिंह स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़े और विधायक बने । दूसरे पुत्र श्री

पृथ्वीपाल सिंह, पंजाब विश्वविद्यालय चन्डीगढ़ में पत्रकारिता विभाग के संस्थापक अध्यक्ष रहे । सेवानिवृत होकर वे भी दिल्ली की राजेन्द्रनगर कालोनी में आ बसे । उनकी पत्नी गवर्नमेंट गर्ल्स स्कूल दिल्ली में प्रधानाचार्या रही हैं। "दिल्ली कूर्मि क्षत्रिय समाज" का जब गठन किया गया तो वे उसके पहले अध्यक्ष बनाये गये और सीताराम बाजार दिल्ली के मेसर्स राय ट्वायज़ इण्डस्ट्रीज के मालिक श्री हरनारायन राय, महामंत्री बने । श्री पृथ्वीपाल सिंह की मृत्यु के पश्चात् पंजाब विश्वविद्यालय ने उनकी पत्रकारिता में की गई सेवाओं तथा विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग के संस्थापक अध्यक्ष रहने के नाते सन् 1992 में इस विधा में शोधकार्य कराने हेतु पीठ स्थापित करने की घोषणा की । तीसरे पुत्र श्री श्याम सिंह खीरी, उत्तर प्रदेश में अभिवक्ता थे, जिनकी कुछ वर्ष पूर्व हत्या कर दी गई। केवल राणा जंगबहादुर सिंह जिन्दा है । उनकी आयु 94 वर्ष की है ।

इस अधिवेशन में निम्नलिखित कुरमी रत्नों, महासभा के पूर्व अध्यक्ष के निधन पर शोक -सन्तप्त प्रतिनिधियों ने उनकी दिवंगत् आत्मा की शान्ति के लिये प्रार्थना की तथा अध्यक्ष एवं अन्य वक्ताओं ने भी इन जाति उद्धारकों की महान् सेवाओं को स्मरण किया,

1 हिज़ हाईनेस सर श्री तुकोजीराव पंवार, के० सी० यस० आई०, देवास
2 बैरिस्टर विट्ठभाई पटेल, प्रेसीडेन्ट, केन्द्रीय असेम्बली, दिल्ली
3 श्री मिथिलाशरण सिंह, एडवोकेट, बांकेपुर (पटना)

महासभा के अध्यक्ष बैरिस्टर-एट-लॉ, बाबू बृजनन्दन लाल कटियार ने कहा कि, "कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व मेरा शोकपूर्ण कर्तव्य है कि हम लोग महासभा के स्थायी सभापति हिज हाइनेस सर तुकोजीराव पंवार के० सी० एस० ई०, उन्होंने जाति को संगठित करने के लिये बहुत कार्य किया था, उनकी मृत्यु पर हार्दिक दुःख प्रकट करें । मृत्यु से हमारी जाति को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति असम्भव है ।(रजत जयन्ती स्मृति ग्रंथ पृष्ठ 354)

अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा

महासभा के इस छपरा अधिवेशन में ऐसोसिएशन की नियमावाली में पूर्ण परिवर्तन कर दिया गया । नई नियमावली में एसोसिएशन का नाम "अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा" रखा गया, अर्थात् नाम में शब्द कुर्मी का कूर्मि कर दिया गया । महासभा के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री गुप्तनाथ सिंह ने सन् 1958 में इसे पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया था । इस नियमावली के नियम 3 में वर्णन किया गया है कि **"महासभा का प्रधान कार्यालय साधारणतः उसी स्थान पर होगा, जहां प्रधानमंत्री निवास करते हों परन्तु आवश्यकतानुसार किसी भी समय कार्यकारिणी समिति दूसरा स्थान भी नियत कर सकती है ।"**

इस तरह प्रधान कार्यालय के संचालन की जिम्मेदारी से स्थायी अध्यक्ष मुक्त हो गए और प्रधानमंत्री उसके संचालक बन गये । प्रधानमंत्री श्री बेचन सिंह 10 वर्ष तक पदासीन रहने पर भी इस अधिवेशन में उपस्थित नहीं हुए थे, अतः उनके स्थान पर ठाकुर श्यामसिंह, रिटायर्ड पोस्ट मास्टर, लाहौर (अब पाकिस्तान में) प्रधानमंत्री निर्वाचित हुए ।

इसी वर्ष भारत ने अपने महान सपूत एवं विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक, सर जगदीश चन्द्र बोस को भी खो दिया था, जिस पर सम्पूर्ण विश्व ने खेद व्यक्त किया ।

श्री पृथ्वीपाल सिंह का भारत के गवर्नर जनरल को प्रार्थना-पत्र

बहराइच जिले (संयुक्त प्रान्त) में सन् 1936 के दौरान जमीन का बन्दोबस्त कार्य हो रहा था । ऐसी शिकायतें मिली कि वहां कुछ शरारती आफीसर कूर्मियों की गणना निम्न जातियों में कर रहे थे और बन्दोवस्त के कागज़ातों में उन्हें क्षत्रिय लिखने को तैयार नहीं थे अतः अ० मा० कू० क्ष० महासभा के महामंत्री श्री श्याम सिंह, पोस्ट मास्टर लाहौर के सुपुत्र श्री पृथ्वीपाल सिंह बी० ए०, एल-एल० बी० एडवोकेट (बाद में पोलिटिकल

डिपार्टमेन्ट, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़) ने इस अन्याय के निराकरण के लिये वायसराय लार्ड लिनलिथगो को 14 जुलाई सन् 1936 को तार भेजा और साथ ही डाक से अंग्रेजी में एक स्मरण पत्र भी भेजा, जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है:-

सेवामें,

हिज एक्सेलेंसी लार्ड लिनलिथगो,
गवर्नर जनरल,
शिमला

बहराइच में बन्दोवस्त विभाग के अधिकारी किसानों को दो श्रेणियों रियायती तथा गैर-रियायती में विभाजित करके उनके बीच असमानता का व्यवहार कर रहे हैं। वे कूर्मियों की गणना द्वितीय श्रेणी में कर रहे हैं, जिससे उनमें असन्तोष फैल रहा है। कूर्मि जाति सारे देश में कुरमी, कुनबी, रेड्डी, पटेल, देसाई, नायडू आदि उपनामों से फैली हुई हैं और इसकी जनसंख्या 3 करोड़ है। इस जाति में महाराज बड़ौदा, कोल्हापुर, ग्वालियर, सतारा, सर कूर्मरमण बी० रेड्डी (मद्रास हाटा के लाट साहब), मद्रास प्रेसीडेन्सी के स्थानापन्न गवर्नर मिस्टर जस्टिस बी० एल० रेड्डी आदि नवरत्न मौजूद हैं ऐसे गणमान्य व्यक्तियों की जाति की दूसरी श्रेणी में गणना करके उसके साथ घोर अन्याय किया गया है। हम आपसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि आप बहराइच के बन्दोवस्त विभाग के, किसानों को दो श्रेणियों में विभाजित करके उनके साथ असमानता का व्यवहार करने से रोकें और और हर हालत में कूर्मि जाति की गणना प्रथम श्रेणी में करने का आदेश दें। विस्तृत मेमोरियल (प्रार्थना पत्र) भी भेज रहा हूँ।

पृथ्वीपाल सिंह एडवोकेट
अध्यक्ष अवध कूर्मि क्षत्रिय एसोसिएशन

उस प्रार्थना-पत्र (मेमोरियल) में स्व० श्री पृथ्वीपाल सिंह ने वायसराय महोदय का ध्यान सन् 1858 की घोषणा की ओर आकृष्ट किया था, जिसमें कि समस्त भारतीयों के साथ बिना धर्म, जाति या मत का बिचार किये हुये, एक सा व्यवहार करने का बचन दिया गया था। कूर्मि जाति की उत्पत्ति तथा अंग्रेज विद्वानों के मत भी दिये थे, जिन्होंने कूर्मियों को विशुद्ध क्षत्रिय बंशज सिद्ध किया है। श्री सिंह ने प्रार्थना की थी, वे जिला बहराइच के बन्दोवस्त विभाग के अधिकारियों को किसानों को दो श्रेणियों में विभाजित करके असमानता का व्यवहार करने से रोकें, तथा उन्हें हमारी जाति को प्रथम श्रेणी में अंकित करने, एवं कुर्मी भाइयों की जाति, बन्दोवस्त के कागजातों (रिकार्ड्स) में 'कूर्मि क्षत्रिय' इन्दराज करने का आदेश दें। इसी सिलसिले में उन्होंने वाइसराय महोदय का ध्यान संयुक्त प्रान्त सरकार के सन् 1931 की अनुज्ञा (Order of Secretary to the U. P. Govt. No. 336/IA-389, dated 3rd March 1931, to Director Land Records, United Provinces)की ओर आकर्षित किया था, जिसमें कि सरकार ने कूर्मि जाति को 'कूर्मि क्षत्रिय' अंकित किये जाने की आज्ञा बहुत पहले ही जारी कर दी थी।

स्व० श्री पृथ्वीपाल सिंह के उपयुक्त प्रार्थना-पत्र के उत्तर में संयुक्त प्रान्त सरकार के उपमंत्री मिस्टर जे० बी० लैंगफोर्ड ने एक पत्र, दिनांक 20 अक्टूबर सन् 1936 ई० भेजा उसमें उन्हें विश्वास दिलाया गया कि बहराइच जिले के बन्दोवस्त में लगान निश्चित करने के लिये जातियों को 'नीची' अथवा 'ऊँची' श्रेणियों में नहीं विभाजित किया गया है वरन् उनको रियायती और गैर रियायती दो श्रेणियों में तकसीम किया गया है तथा जिले के जिन गांवों में कूर्मि पहले से 'रियायती' काश्तकार की हैसियत से चले आ रहे थे, उनकी गणना इस बन्दोबस्त में भी पहले की तरह रियायती श्रेणी में की गई है। उन्होंने अपने कथन की पुष्टि उदाहरण देकर की।उपमंत्री मिस्टर

सैंडफोर्ड के कथनानुसार नानपारा (बहराइच) में कूर्मि पहले से रियायतें पाते चले आ रहे थे और उनकी गणना इस बार भी रियायती श्रेणी में की गयी थी तथा अन्य गांवों में जहां वे पहले रियायती श्रेणी में नहीं थे, इस बार भी उस श्रेणी में नहीं शुमार किये गये । यहीं आला-अदना अथवा ऊँची-नीची श्रेणियों में कुरमियों को विभक्त करने का प्रयास किया गया था, जिसे स्व० श्री पृथ्वीपाल सिंह जैसे सतर्क समाजसेवियों के समुचित संघर्ष ने विफल कर दिया । इस पुस्तक में अन्यत्र इसी "आला-अदना" का जो जिक्र किया गया है वह यही सरकारी शगूफा था जिसे कुरमियों को उस काल में काफी उत्तेजित कर डाला था, पर सतर्क लोगों ने उससे जाति को क्षति होने से न केवल बचा लिया, वरन सरकारी गलत कार्यवाही वापिस ले ली गयी ।

बिट्रिश सरकार के साथ कुछ अन्य पत्र-व्यवहार

पत्र नं० ई० एन० सम० एन

कार्यालय :- भारत सेन्सस कमिश्नर

दिल्ली

ता० 25 नवम्बर 1930 ई०

प्रेषक :-

जे० एच० हटन०

डी० एस-सी०, सी० आई० ई०

भारत के जनगणना कमिश्नर

सेवा में,

प्रधानमंत्री

समस्त भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय एसोसिएशन,

देवास सीनियर

महाशय जी,

आपके 6 नवम्बर सन् 1930 के पत्र संख्या 1944 के उत्तर में प्रार्थना है कि जनगणना के जनरल शेड्यूल अर्थात् साधारण नक्शे में 'कूर्मि' समा को 'कूर्मि क्षत्रिय' लिखवाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, यदि कूर्मि-क्षत्रिय शब्द के अतिरिक्त स्थानीय जाति का नाम अर्थात उपजाति का नाम भी दिया जावे, जैसे राजवंशी, कुनबी, रेड्डी इत्यादि क्योंकि इसके बिना पूर्व जनगणनाओं में आपकी जाति की संख्या का मिलान आगामी जनगणना की संख्या से करना सम्भव न होगा । सभी जनगणना सुपरिण्टेण्डेण्टों को भी इसकी सूचना दी जा रही है ।

भवदीय

(जे० एच० हटन)

जनगणना कमिश्नर, इंडिया

भारत सरकार और असम, पंजाब, मद्रास, बिहार और उड़ीसा सरकार तथा जन-गणना आयुक्त द्वारा "प्रधानमंत्री, ऑल इंडिया कूर्मी क्षत्रिय ऐसोसिएशन, देवास सीनियर" के पते पर भेजे गए लगभग एक दर्जन पत्र विभिन्न जातीय ऐतिहासिक पुस्तकों में प्रकाशित किए गए हैं । विभिन्न सरकारों के जनगणना आयुक्त के ये पत्र उन पत्रों के उत्तर में हैं, जोकि देवास (प्रथम श्रेणी) स्थित प्रधान कार्यालय से ऐसोसिएशन के प्रधानमंत्री द्वारा 2 फरवरी 1929 से 16 अक्टूबर 1931 के बीच भेजे गये थे । इनमें कुछ के पत्रोत्तर ऊपर उद्धृत किए गये हैं ।

यू० पी० में महासभा के दो प्रान्तीय कार्यालय

उपयुक्त पत्राचार से एक बात तो यह स्पष्ट होती है कि "ऑल इण्डिया कुर्मी क्षत्रिय ऐसोसिएशन" का प्रधान कार्यालय देवास (प्रथम श्रेणी) राज्य में स्थापित अध्यक्ष, क्षत्रिय कुलावतन्स सप्त-सहस्त्र-सेनापति प्रतिनिधि, हिज हाईनेस श्रीमन्त महाराज सर तुकोजीराव पंवार, बापू साहेब महाराज, के० सी० एस० आई, के संरक्षण में मंत्री द्वारा संचालित होता था । अनुमान है कि ऐसोसिएशन के अन्य पदाधिकारी भी अपने प्रान्त के लिए अधिकृत किये गये थे और वे अपने आवास से पत्र व्यवहार कर प्रान्तीय कार्यालय चलाते थे । इस पत्राचार के अवलोकन से निम्नलिखित दो ऐसे कार्यालयों का होना पता चलता है :-

1 संयुक्त प्रान्त (यू० पी०) सरकार के सचिव डा० एस० एस० नेहरू आई० सी० एस० के पत्र सं 134/VX-1088 दिनांक 20 जुलाई 1931 की एक प्रतिलिपि बाबू जानकीप्रसाद, मंत्री कूर्मि क्षत्रिय सभा, बछरावां, जिला राय बरेली (यू० पी०) को उनके 7 मई 1931 के आवेदन पत्र के हवाले में सूचनार्थ भेजी गई इससे बछरावां के कार्यालय का पता चलता है ।

2 संयुक्त प्रान्त (यू० पी०) के बोर्ड ऑफ रेवन्यू (लैण्ड रिकार्डस्) के सेक्रेटरी का एक पत्रोत्तर है, जो कि बाबू वृन्दावन कटियार साहब बी० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी, एडवोकेट, वाइस प्रेसिडेण्ट, ऑल-इण्डिया कुर्मी क्षत्रिय ऐसोसिएशन, इंचार्ज ऑफ यू० पी० एफेयर्स, फतेहगढ़, जिला फर्रूखाबाद (यू० पी०) को सम्बोधित कर 30 सितम्बर 1934 के आवेदन-पत्र के उत्तर में भेजा गया था । इससे दूसरे प्रान्तीय कार्यालय का पता चलता है ।

विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि ऐसोसिएशन की नियमावली में न तो कोई स्थायी अध्यक्ष या प्रधानमंत्री के पदों का प्रावधान है और न प्रान्तीय स्तर के 'प्रभारी' बनने की व्यवस्था थी । और न इसे वैध करने के लिये नियमावली में जनसभा में ऐसा कोई संशोधन किया गया था अथवा कार्यकारिणी समिति ने अपने किसी निर्णय को पारित कर ऐसा लागू किया था ।

संत तुकाराम

संत तुकाराम इंद्राणी नदी के तट पर या घर पर अपने ईष्ट देवता, विट्ठल और रुक्मणि की भक्ति में लीन रहते थे । इसलिये परिवार के लिये उपार्जन का समय नहीं मिलता था । परिवार के सम्मुख भूखे रहने की नौबत आ गई । अन्त में पत्नी रुखमा को एक उपाय सूझा । वह अपने खेत से कुछ गन्ने काटकर लाकर तुकाराम को दिये कि इन्हें बेचकर वह परिवार को भूख से मरने से बचाये । संत तुकाराम ने पीठ पर गन्ने लादकर गांव की हाट में बेचने चले,बच्चे रास्तें में खेलते हुए मिल गए । वे गन्ना चूसने के लिये मचलने लगे । दयालु तुकाराम अपने परिवार की भूख भूलकर उनमें, एक गन्ना का टुकड़ा छोड़कर,सारे बांट दिये ।शाम को बिना आटा-दाल परिवार के लिये लाए, वे मुंह लटकाये घर लौट आये ।

घर की चौखट पर आटा-दाल की प्रतीक्षा करती पत्नी ने पूछा कि आटा-दाल आदि कहां है । तुकाराम ने स्पष्ट बता दिया कि गन्ने को मचलते बच्चों में बांट दिये । पत्नी का गुस्से से आग-बबूला होना स्वाभाविक था।मारे गुस्से के उसने बचा गन्ने के टुकंड़ा संत तुकाराम के हाथ से लेकर उसी से उनकी खूब खबर ली । संत जी मार खाते रहे । अन्त में उस गन्ने के दो टुकड़े हो गये । तब कहीं पत्नी का गुस्सा शान्त हो सका। बीतरागी तुकाराम ने गन्ने के टुकड़े उठाकर अपनी पत्नी से स्नेह से बोले - "मैंरे काम को तुम्हीं ने कर दिया। इस गन्ने के दो टुकड़े तो मुझे ही करने थे । आओ अब हम गन्ने का एक टुकड़ा चूसे । बहुत भूख लगी है ।" क्रोधित पत्नी का दिल अपने निर्मल-चित्त पति की दयालुता देख पसीज गया ।

बाईसवाँ अधिवेशन

महासभा का 22 वाँ अधिवेशन 7, 8, 9, अप्रैल, 1939 ई० को झारग्राम, मिदनापुर (बंगाल) में पटना निवासी श्री दासू सिंह एडवोकेट की अध्यक्षता में हर्षोल्लास के वातावरण में बदलती राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार सम्पन्न हुआ। उपस्थित श्रोताओं में बंगला-भाषी कुरमीजन अधिक होने के कारण वक्ताओं के भाषण का बंगला अनुवाद सुनाने की व्यवस्था की गई। इस अधिवेशन के आयोजन को सफल बनाने में श्री महेन्द्र नाथ एम० एस-सी०, प्लीडर के सतत् प्रयासों का अति महत्वपूर्ण योगदान तथा अंग्रेजी में दिया गया अध्यक्षीय भाषण बड़ा सारपूर्ण और सारगर्भित था।

अध्यक्ष श्री दासू सिंह जी ने आह्वान किया कि हम सब सैनिक जाति भी हैं, पर हम अब यह प्रसिद्ध कहावत भूल गये हैं :- "या तो स्वयं आगे बढ़कर शासन करो, वरना कोई और तुम पर शासन करने आगे आ जायेगा। अतः हम सबको आपसी "ऊँच-नीच" भुलाकर, एक जुट होकर जीवन में तरक्की का हर उपाय करना चाहिये।"

महासभा के नवीन उद्देश्यों को गिनाते हुये अध्यक्ष महोदय ने कहा :-

"1. अपनी महासभा की सभी गतिविधियों को समय पर अवगत कराने और अपने सभी कूर्मिक्षत्रिय भाइयों को सम्पर्क में रखने के उद्देश्य से अपने देश के प्रत्येक गांव, खण्ड, थाना या तहसील, परगना, जिला मण्डल एवं प्रदेश में 'अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा' की शाखा का कार्यालय खोलना।"

"2. अपने संगठन के हर शाखा कार्यालय में मजबूत, दबंग, ईमानदार और निष्ठावान स्वयं सेवकों की सेना संगठित कराना।"

झारग्राम-अधिवेशन के बाद गांव, खण्ड, थाना, तहसील, परगना, जिला, मण्डल एवं प्रदेश में महासभा के कितने शाखा कार्यालय खुले, इसकी कोई जानकारी न मिलने से यही निष्कर्ष सही लगता है कि महासभा ने अब तक इनके कियान्वयन में कोई उल्लेखनीय कदम नहीं उठायें। जो भी जिला, मण्डल तथा कहीं-कहीं प्रदेश स्तर पर समाज की कोई इकाई कार्यरत है, वह बहुधा वहीं के लोगों के प्रयास से हैं :-

1 **अग्नि कुल क्षत्रिय**

आन्ध्र प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय संघ, हैदराबाद का गठन सन 1982 में विधिवत हुआ और उसे उसी वर्ष पंजीकृत कराया गया। इस संघ के तत्वावधान में 9-10 अप्रैल 1988 को, अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा की कार्यकारिणी समिति की एक बैठक, महेश्वरी भवन, हैदराबाद में तथा दूसरी बार 12-13 जून 1993 को लिटिल एंजेल्स स्कूल, चारमहल, हैदराबाद में सम्पन्न हुई। इस लेखक ने इन दोनों बैठकों में भाग लिया। उनके पदाधिकारियों से इस लेखक के यह पूछने कि आप सबके पूर्वज मुख्यतः उन्नाव (यू० पी०) से वहां आकर बसे थे। वे तो अग्नि कुल क्षत्रिय नहीं थे फिर भी आप अपने को ऐसा क्यों कहते हो। ऐसा तो वास्तव में कुरमियों का कोई वंश हैं भी नहीं। उनका एक मात्र उत्तर था कि क्योंकि इन क्षत्रियों को आन्ध्रप्रदेश में आरक्षण का लाभ प्राप्त है, अतः उसे हम सबने अपना लिया है। अन्य कोई वजह नहीं है। इस प्रकार आन्ध्र प्रदेश के कुरमियों ने आरक्षण के लोभ में अपना कुल ही बदल दिया है।

2 **राष्ट्रीय कूर्मि क्षत्रिय समाज, बुलन्दशहर**

कुरमियों में अपने मूल इतिहास से हटकर मन-गढ़न्त कुल या वंश या जातीय नाम की संस्थाये खड़ी करने के जो उदाहरण मिलते हैं उनमें लाभ-हानि संगठनात्मक कार्यों में कितनी होती है वह अलग मुद्दा है पर वे ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति भ्रांतियाँ जरूर उत्पन्न कर देते हैं, अतः इस प्रक्रिया से बचा जाना चाहिए। श्री सुरेन्द्रसिंह कटियार

विद्वान युवक हैं। राष्ट्रीय कूर्मि क्षत्रिय समाज का कार्यकलाप बुलन्दशहर के आस-पास तक ही सीमित रह गया है।

अध्यक्ष जी श्री दासूसिंह बिहार के अवधिया शाखा के कुरमी थे उन्होंने 'कूर्मि' शब्द के साथ क्षत्रिय जोड़कर अपनी जाति को 'कूर्मि क्षत्रिय' संयुक्त शब्द रूप में प्रयोग करने की राय दी। राष्ट्रीय कांग्रेस की घोषणा के अनुसार उन्होंने भी देश के लिए पूर्ण स्वराज्य पर बल दिया। इस अधिवेशन में प्रथम बार महासभा के दीर्घ-इतिहास में, **पूर्ण स्वराज्य** की घोषणा की गयी। अध्यक्ष जी ने सावधान करते हुये कहा कि यदि हम सब कूर्मि क्षत्रिय जन अब शीघ्र ही सभी प्रकार के जातीय और आपसी भेद मिटाकर एक जुट नहीं हो जाते, तो हम सबका अधःपतन निश्चित है, जिसके लिये ब्राह्मण वर्ण या हमसे जलने वाले निरन्तर हमें नीचा दिखाने के लिये प्रयत्नशील हैं।"

अध्यक्ष जी ने अपने लम्बे भाषण के दौरान यह भी कहा,- "वर्तमान परिस्थिति की मांग है कि हमें अपनी कूर्मि क्षत्रिय महासभा की नीति और कार्यक्रम को चलाते रहना चाहिये और स्वजाति बन्धुओं में एकता उत्पन्न करनी चाहिए ताकि हम सबको भविष्य में सुख और शान्ति प्राप्त हो।"

इस अधिवेशन में देवास नरेश, महाराजा सदाशिवराव पंवार जी ने अपना विशेष प्रतिनिधि भेजकर अगले वर्ष देवास में महासभा का अगला अधिवेशन कराने की इच्छा प्रकट की थी, जो कि कतिपय कारणों से पूरी नहीं हो सकी। कुरमी जाति के दुर्भाग्य से 2 दिसम्बर 1943 ई० को देवास नरेश हिज हाईनस सर सदाशिवराव पंवार खासे साहब महाराज का निधन हो गया। महासभा की कूर्मि महाराजा-नरेशों से यह अन्तिम कड़ी भी टूट गयी।

और, कारवां बढ़ता गया

महासभा का 22 वां अधिवेशन जिस दौरान मनाया गया यदि हम समकालीन देशीय स्थिति पर दृष्टिपात करें, तो पायेंगे कि उस जमाने में, चन्द्रशेखर आज़ाद, रामप्रसाद विस्मिल, यतीन्द्र नाथ सान्याल अथवा मन्मथनाथ गुप्त आदि क्रान्तिकारियों द्वारा काकोरी रेलगाड़ी कांड अथवा मेरठ बम-षड़यन्त्र केस द्वारा देश के बदलते हुये मानस में युवाओं का एक ऐसा वर्ग उभरकर आया था, जो स्वभावतः ही उस काल के सभी युवकों, जिनसे कुरमी युवक भी अछूते न थे, की विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करता था। वह जमाना ही अनोखा था। उस समय देश में सर्वत्र ऐसी भावनात्मक लहर उठी और मजबूत हो गयी, जो कहती थी: **हमें अपने लिये कुछ नहीं चाहिये, भारत-माता की परतन्त्रता की बेड़ियां तोड़ना हमारा परम कर्तव्य है, उनके लिये हर प्रकार का बलिदान और कष्ट झेलना हमें सहर्ष मंजूर हैं।**

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आरम्भ **नमक सत्याग्रह** से प्रारंभ हुआ। भारत में विलायती नमक की बिक्री को बढ़ावा देने के उद्देश्य से और देशी उत्पादन का नमक महंगा हो जाये, उस पर एक नया टैक्स लगा दिया गया था। **'नोन-रोटी'** का मुहावरा बोलने वाले देश में, और गरीबी रेखा के नीचे आने वाले 60 प्रतिशत भारतीय किसान-मजदूरों को कभी-कभी आज वीसवीं सदी के अन्तिम दशक में भी नमक रोटी ही खाकर अपनी उदराग्नि शान्त करने पर मजबूर होना पड़ता है, नमक का महत्व हमारे दैनिदिन जीवन में जितना तब था उतना आज भी है। इसे उस काल के अनेक भारतीय बुद्धिजीवी समझ नहीं पाये थे। वे खुल्लम-खुल्ला नमक आन्दोलन की खिल्ली उड़ाते थे। किन्तु जब कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने भी नमक कानून तोड़ो का प्रस्ताव पास किया तब हमारे रायसाहब, रायबहादुर, खानसाहब, सरदार बहादुर वर्ग तथा साधारण प्रबुद्ध वर्ग के भी ज्ञान-चक्षु खुले और असलियत नज़र आने लगी। केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति ने कांग्रेस कमेटियों से भी कहा कि वे अपने-अपने प्रान्तों में नमक कानून तोड़कर ब्रिटिश सरकार से अपना विरोध प्रदर्शित करें। फिर क्या था नमक बनाने और सरकारी नमक कानून का उल्लंघन करने की होड़ लग गयी। गांधी जी ने नमक आन्दोलन का पहला स्वयंसेवक विनोबा भावे को चुना, स्वयं भी उस कानून को नमक बनाकर तोड़ा और गिरफ्तार हुये। इलाहाबाद में जवाहरलाल नेहरू और उनके परिवार वाली स्त्रियों ने जब गैर-कानूनी तरह से नमक बनाकर गिरफ्तारियां दीं तब तो देश के शहरों-शहरों, कस्बों-कस्बों और गांव-गांव में यह आन्दोलन पहुंच गया और गैरकानूनी तरह से नमक बनाकर, उसकी नीलामी

करके अर्जित धन से सत्याग्रहियों की मदद की जाने लगी ।

इस अधिवेशन वर्ष की अन्यन्त महत्वपूर्ण घटना है कि सन् 1939 की त्रिपुरा कांग्रेस में गांधीजी की इच्छा के विरूद्व कांग्रेस महासमिति ने डा० पट्टाभि सीतारभैय्या की जगह श्री सुभाषचन्द्र बोस को काँग्रेस का नया अध्यक्ष चुन लिया । गाँधी जी के उम्मीदवदार डा० पट्टाभि सीतारभैय्या की हार को, उन्होंने अपनी हार बतलाया था । गांधी जी आदि के तीव्र विरोध के कारण सुभाष बाबू ने अध्यक्ष पद, से स्वतः त्यागपत्र दे दिया । देश की राजनीति ने इससे एक अन्य और नया मोड़ लिया । सुभाषचन्द्र बोस को द्वितीय महायुद्ध के दिनों में भारत से बाहर जाकर आज़ाद हिन्द फौज बनाकर देश को आजाद कराने के लिये फौजी कार्यवाही करनी पड़ी जिससे पाठकगण भलीभांति परिचित हैं ।

भारत के मूल निवासी आर्य थे

भारतीय अमेरिकी विद्वानों के एक वर्ग ने दावा किया है कि आर्य भारत के मूल निवासी थे । परिस्थितिकीय और राजनैतिक कारणों से भारत से ही **आर्य पश्चिम एशिया** होते हुए **यूरोप** तक पहुंचे । शोधकर्ताओं ने यह दावा हाल के पुरातात्विक अनुसंधानों, भुजल सर्वेक्षणों, उपग्रह से मिले चित्रों, प्राचीन शिल्पों की वैज्ञानिक तिथियों, ज्योमिति और वैदिक गणित के आंकड़ों के आधार पर किया है । उनका मानना है कि **महाभारत का काल ईसा जन्म** से 3102 वर्ष पूर्व था । सरस्वती नदी 1900 ईसा पूर्व अज्ञात कारणों से सूख गई थी ।

उधर आर्यों के विदेशी आक्रांता बताने वाले इतिहासकारों का मानना है कि सभ्यता का **उदय मेसोपोटामिया** की नदी घटियों से हुआ । हड़प्पा के नगर नियोजन पर यूनानी ज्यामिति की छाप है । **भारत से आयरलैंड** तक भाषाओं में समानता है । इस सब कारणों से वे कहते हैं कि **आर्य मध्य एशिया से भारत आए थे । इन तर्कों को भारतीय अमेरिकी शोधकर्ताओं ने खोखला सिद्व करने के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं** । इन शोधकर्ताओं में अमेरिका की अंतरिक्ष संस्था नासा (NASA) के सलाहकार **डा० राजा राम, डेविड फ्रांवले, जार्ज फ्यूरिस्टीन, हैरी हिक्स, जैम्स शेफर और मार्क केनोयर प्रमुख है** । एस० आर० राव, एस. पी. गुप्त, बी. जी. सिद्धार्थ, पी. बी. पठान और भगवान सिंह भी इस मत के समर्थक हैं ।

बंगलूर के **डा. एम. एस. राजाराम** गणितज्ञ और कंप्यूटर विशेषज्ञ भी हैं । इस समय वह अमेरिका के राज्य टेक्सास के प्रमुख नगर हास्टन में रह रहे हैं उनका कथन है कि भारतीय अमेरिकी इतिहासकारों ने सच की तह तक पहुंचने के लिए खोजबीन की चौतरफा रणनीति अपनायी है । प्रमाणों को जुटाने के लिये बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में उपलब्ध अत्याधुनिक संसाधनों का प्रयोग किया है ।

इन बातों को सामने रखकर· उन्होंने भारतीय इतिहास की प्राचीनतम तथ्यों को खोज निकालना चाहा तो पाया कि **महाभारत का समय ईसा से 3102 वर्ष पूर्व के लगभग ज्ञात होता है** । इस काल का निर्धारण कई तरह से किया गया । महाभारत के इस काल को मिथक नहीं माना जा सकता, क्योंकि उपग्रह से मिले चित्रों से पता चलता है कि **सरस्वती नदी 1900 ईसा पूर्व सूख गई थी । महाभारत के वर्णन में सरस्वती का उल्लेख मिलता है । सूत्र-सहित्य में काफ़ी विकसित ज्यामिति-शास्त्र है** । अतः यह माना नहीं जा सकता कि भारतीयों ने ज्यामिति यूनानियों से हस्तगत की थी । हड़प्पा के नगरों का नियोजन और वास्तुशिल्प उच्चकोटि के ज्यामिति-शास्त्र का प्रतिफलहै । जिस प्रमेय को **पाइथागोरस** की प्रमेय कहा जाता है, उसका वर्णन **पाइथागोरस** से दो हज़ार वर्ष पूर्व बोधायन ने अपने सुलभ-सूत्र में कर दिया था ।

तेईसवाँ अधिवेशन

महासभा का 23 वाँ अधिवेशन 7,8 तथा 9 अप्रैल सन् 1944 को इटावा (संयुक्त प्रान्त) में डा० पंजाबराव देशमुख, बार-एट-ला, डी० लिट्, पूर्व शिक्षा मंत्री मध्य प्रान्त, पोलिटिकल मेम्बर देवास राज्य (द्वितीय श्रेणी), तथा बाद में कृषि एवं सहकारिता मंत्री भारत सरकार एवं संस्थापक अध्यक्ष ''भारत कृषक समाज" दिल्ली की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ ।

अध्यक्ष महोदय ने अपने अभिभाषण का प्रारम्भ इन शब्दों से किया - "कैलाशवासी श्रीमन्त हिज हाईनेस सदाशिवराव पंवार, खासे साहेब महाराज के आकस्मिक और असामयिक निधन के विषय में कुछ कहे बिना मैं अपना भाषण शुरू नहीं कर सकता । कैलाशवासी श्रीमन्त खासे साहब महाराज का तथा इस कूर्मि क्षत्रिय महासभा का कई साल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और श्रीमन्त के नेतृत्व, पथ-प्रदर्शन और आशीर्वाद के फलस्वरूप ही इस संस्था ने इतनी लोकप्रियता, शक्ति और उन्नति की है । भारतीय क्षत्रिय जातियों का संगठन कराना ही श्रीमन्त महाराजा साहेब के जीवन का एक अत्यन्त प्रिय ध्येय था ओर इन जातियों के लिये, जो कि अधिकतर पिछड़ी हुई और असंगठित थीं, उनके दिल में बड़ी सहानुभूति थी और उन्हें सहायता पहुंचाने की उनको सदैव चिंता लगी रहती थी ।"

"आपको यह जानने की रुचि होगी कि श्रीमन्त से मेरा परिचय सन् 1934 में हुआ था जब कि वे देवास राज्य (द्वितीय श्रेणी) के शासक नहीं हुये थे और जबकि उसी साल में बिहार में हरनौत गांव में हमारी महासभा का अधिवेशन हुआ था । श्रीमंत महाराजा साहेब महासभा के अध्यक्ष थे और मुझे आपकी युवक परिषद् का अध्यक्ष होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । मुझे श्रीमन्त ने देवास बुलाया तब से 2 1/2 वर्ष हो गये हैं, आपकी संस्था द्वारा अवसर देने पर ही मुझे श्रीमन्त से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर मिला ।"

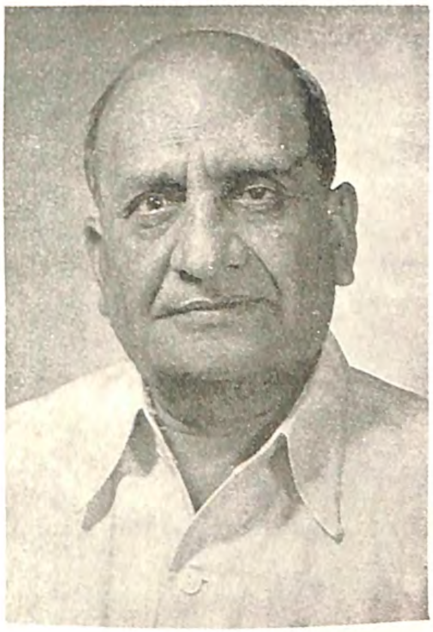
डा० देशमुख ने अपने भाषण में स्व० श्रीमन्त खासे साहब महाराज के बारे में आगे बताया-"अस्वस्थता की अवस्था में बम्बई के नर्सिंग होम में इलाज के लिये भर्ती होने की अवधि में भी मराठा जाति के कुछ नेताओं के विनती करने पर उन्होंने मराठा लीग की धुरी अपने कन्धे पर लेकर उसे निभाने का बचन दिया था और इसमें तिलमात्र भी स्वार्थ का अंश नहीं था । जिस तरह से उन्होंने पूर्वी हिन्दुस्तान के कूर्मि क्षत्रियों के संगठन को मदद दी थी उसी प्रकार मराठा-संगठन और उन्नति के लिये उन्होंने अपनी ऐसी गिरी हुई शारीरिक अवस्था में भी मराठा-लीग के नेतृत्व की जिम्मेदारी अपने सिर पर ली ।" स्व० श्रीमन्त खासे साहब महाराज देवास (द्वितीय श्रेणी) द्वारा की गई महान सेवाओं का स्मरण करने और महाराजा की पुण्यात्मा की शान्ति हेतु एक मिनट का खड़े होकर मौन रखा गया तथा हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की गई ।

अध्यक्ष महोदय इस बात से बहुत दुःखी थे कि हर अधिवेशन में बड़े जोश-खरोश के साथ अनेक प्रस्ताव पारित कर लिये जाते हैं, पर उन पर अमल नहीं हो पाता है । अतः महासभा द्वारा पारित प्रस्तावों को अमल में लाने के लिये समुचित उपाय करना चाहिये । अगले अधिवेशन में इस बात पर विशेष बिचार होना चाहिये। पिछले अधिवेशनों के प्रस्तावों के क्रियान्वयन की स्थिति क्या है ? और यदि उसमें कभी नज़र आये तो उन्हें तुरन्त पूरा करवाने के समुचित उपाय अपनाना चाहिये । आपने इस बात पर भी खेद व्यक्त किया **कि महासभा की स्थापना को 50 वर्ष पूरे हो चुके हैं पर अब तक उसके पास न अपना स्थायी नियमित कार्यालय है और न हीं बैंक में उसका अपना सुरक्षित कोष हो पाया है ।**

अधिवेशन समारोह तीन दिन तक बड़े शान-शौकत के साथ चला । अधिवेशन के अन्तिम दिन अध्यक्ष डा० पंजाबराव देशमुख जी ने एक 'विनती पत्र' जारी कर सब कुरमी भाइयों के नाम प्रार्थना जारी की कि सब बन्धुजन एक-एक रुपया प्रतिव्यक्ति के हिसाब से धन इकट्ठा कर महासभा के महामंत्री (जो उस समय प्रधान मंत्री



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
२२ वें अधिवेशन के अध्यक्ष
श्री बासू दाबू सिंह, एडवोकेट



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
२३ वें अधिवेशन के अध्यक्ष
डा० पंजाब राव एस० देशमुख



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
२४ वें अधिवेशन के अध्यक्ष
डा० खूबचन्द बघेल



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा
के
रजत जयन्ती (२५ वें) अधिवेशन की अध्यक्षा
श्रीमती विमला देवी देशमुख, बी० ए० एल्० -एल्० बी०

कहे जाते थे) श्री राम नारायन सिंह, एडवोकेट, 40 कैलाश मन्दिर, कानपुर (उ० प्र०) के पास सुरक्षित कोष निर्माण हेतु भिजवायें । डा० देशमुख जी ने बड़े विश्वास के साथ यह अपील जारी करते हुये कहा था "मुझे उम्मीद है कि जिस प्राचीन क्षत्रिय वंश में जन्म पाया है, उसका आप सबको अभिमान है और उसके लिये हर हालत में आप सब मेरी यह छोटी सी विनती अविलम्ब पूरा करेंगे ।"

किन्तु खेद है कि डा० पंजाबराव देशमुख जैसे चोटी के विद्वान तथा राष्ट्रीय स्तर के राजनेता की विनती का भी कुरमियों पर कोई असर न हुआ, और वे एक रुपया प्रति व्यक्ति भी महासभा को न दे पाये और स्वाभाविक था कि न इच्छित जातीय सुरक्षित कोष एकत्र हुआ और न महासभा के पास अपना नियमित काम करने वाला कार्यालय भवन बन पाया ।

सुधी पाठकों को यह जानकर और आश्चर्य एवं खेद होना चाहिए कि इटावा अधिवेशन (सन् 1944) के और आगे 50 वर्ष के अन्तराल के बाद भी अब महासभा सन् 1994 में शताब्दी-स्मृति समारोह मनाने की योजना बना रही है, किन्तु अभी भी न इसका अपना स्थायी कार्यालय हो पाया है और न कहने योग्य कोष संचित हो पाया है । कुरमियों के इस विचित्र रवैये को देखते हुये यह प्रश्न उठना उचित ही है कि जब लोगों की मनोधारणा गत् 100 वर्षों में न बदल सकी, तो क्या महासभा के अधिवेशन आगे करने का कोई औचित्य है, जबकि पिछले 37 महाधिवेशनों में पारित अनेकानेक प्रस्तावों में से चाहे एक दो ही पर ईमानदारी से अमल किया गया हो अन्यथा ऐसा लगता है कि कुरमीजनों का उनकी ओर ध्यान भी नहीं जाता । कुछ बातें समाज और देश की तरक्की के साथ स्वयं हो रही हैं । जैसे शिक्षा प्रसार, विवाह-सम्बन्धी वर-वधू की आयु वालिगों की होना, शाखान्तर भेद-भाव, अन्धविश्वास में कमी तथा अन्तर उपजातीय विवाह सम्बन्ध आदि । महासभा का कितना योगदान इसमें रहा है यह तो सुधी पाठकगण् ही आंक सकते हैं । कुछ चीजें चिन्ताजनक रूप में समाज में बढ़ी हैं जैसे दहेज, मदिरा-सेवन आदि । आज तो समाज के जिम्मेदार पदाधिकारी होने के नाते मदिरा-सेवन को रोकने का प्रयास करने पर, पीने वाले नाराज होते हैं, दुश्मन बन जाते हैं और अनेक लोग तो यह तक राय देने में संकोच नहीं करते कि जाने दो, मदिरा-पान तो आजकल सभी करने लगे हैं । बड़े-बड़े मंत्रीगण निजी जीवन में तथा कभी-कभी तो खुल्लम-खुला पीने में संकोच नहीं करते । आज गांधी का भारत 46 वर्षों में मदिरापान में जितना आगे बड़ा है, उतना अन्य क्षेत्रों में नहीं । परिणाम स्वरूप देवत्व घट रहा है, असुरत्व बढ़ रहा है ।

इस लेखक का मत है कि महासभा या प्रादेशिक सभाओं के पदाधिकारियों का आचरण शुद्ध और अनुकरणीय होना चाहिये । यदि ऐसा नहीं होता तो, वे समाज से जुड़कर सुधार कम लाते हैं गन्ध तथा दुराचरण अधिक फैलाते हैं । सुधी पाठकगण् इस बुनियादी प्रश्न पर अपना स्पष्ट मत बनायें, अन्य कुरमियों में उसका प्रचार-प्रसार करें और महासभा के पदाधिकारीगण् यदि गलत परम्परायें स्थापित करने में या आचरण करने में बाज नहीं आते, तो आगे आकर सबसे पहले उनको सुधारने के लिये आवश्यक कदम उठायें । महासभा और समाज का सुधार कार्य तभी तेजी से चल सकता है । ऐसा मेरा विश्वास है तभी आगे महासभा चलाने का तथा खर्चीले अधिवेशन आयोजित करने का औचित्य है अन्यथा यह समय और धन दोनों की बर्वादी मात्र बन कर रह जायेगा । महासभा से जुड़ने वाले अन्य पटेल, मराठे, रेड्डी, नायडू आदि तभी आयेंगे अन्यथा दूरियां बढ़ेंगी घटेंगी नहीं ।

जब हम सारे देश में अपने लोगों की संख्या आंकते हैं तो करोड़ों में बताते हैं फिर भी इस महासभा का 100 वर्षों में मूलभूत दोनों चीजें, अपना स्थायी कार्यालय तथा पर्याप्त केन्द्रीय कोष, स्थापित नहीं हो पाया है। प्रमुख दोष महासभा के पदाधिकारियों के साथ-साथ कुरमी जाति के लोगों का भी है, जो कि महासभा या प्रादेशिक/स्थानीय सभाओं से अपेक्षायें तो बहुत कुछ रखते हैं, छोटी-छोटी बातों में महासभा के कार्यक्रमों में बात का बतंगड़ बनाने मे बड़े माहिर हैं पर तन-मन धन से महासभा के कार्यक्रमों को सुचारु रूप से तथा समयावधि में पूरे करने के अपने कर्तव्यों को नहीं निभाते । यही कारण है कि कुरमियों के अखिल भारतीय संगठन ने अपनी स्थापना के सौ वर्ष पूरा कर लेने पर भी जैसा विशाल स्वरूप व उपलब्धियाँ होनी चाहिये थी वैसी अभी तक नहीं हो पाई हैं ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस प्रारम्भ के 50 वर्षों में देश को आजाद कराने में सफल हो गई थी और अगले 50 वर्षों में इस देश में विकास एवं निर्माण के अनेक कार्य हुये हैं, और आज विश्व के राष्ट्रमंडल में इसने अपना सम्माननीय स्थान बना लिया है । आज भारत को विश्व की पांचवीं महानतम आर्थिक शक्ति माना जाता है । अमेरिका की खोज पांच सौ वर्षों पूर्व हुई । दो सौ वर्ष वहां के पहुंचे लोगों ने पहले मूल निवासी रेड-इंडियनों तथा बाद में अन्य उपनिवेशवादी शक्तियों के साथ गृह-युद्ध कर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की स्थापना की । उसने गत् 100 वर्षों में विशेष रूप से इतनी उन्नति कर ली है, कि दो विश्वयुद्धों में विजयी राष्ट्र की प्रमुख भूमिका निभाते हुये आज वह विश्व की एकमेव महान शक्ति के रूप में उभरकर आया है । और विश्व की प्रथम दो महाशक्तियों में गिना जाने लगा है । एक अन्य देश रूस गत 100 वर्षों से भी कम समय में अपने लिये उच्च स्थान बना सका था किन्तु आज वह महासंघ टूटकर अनेक छोटे-छोटे राष्ट्रों में बिखर गया है। और आपसी कलह और युद्ध जैसी परिस्थितियां उभर रही हैं । उधर अमेरिकी एटम बमों द्वारा अपने नगरों हिरोशिमा और नागाबसाकी पर विध्वंस हो जाने पर द्वितीय युद्ध में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के सम्मुख आत्मसमपर्ण करने वाला देश जापान आज विश्व का सबसे धनाढ्य राष्ट्र बनकर विश्व-कुबेर बन बैठा है । कहा जाता है कि चाहें आज अमेरिका विश्व की महानतम शक्ति बन बैठा है पर उसके देश में ज्यादातर कम्पनियों में जापानी धन लगा हुआ है । और उनका संचालन उनके हाथों में पहुंच चुका है । जर्मनी जो द्वितीय विश्वयुद्ध में बटकर दो राष्ट्रों में विभक्त होकर बर्लिन की दीवार द्वारा विभाजित हो गया था आज बर्लिन की दीवार को तोड़कर एकीकृत हो गया है। इस दीवार के कुछ अंश पर्यटक लोग अपने ड्राइंग रूम की शोभा बढ़ाने के लिये टुकड़ों के रूप में विश्व भर में ले गये । यह सब बिश्व की प्रमुख घटनायें तभी सम्भव हुई जब उसकी प्राप्ति के लिये सारा राष्ट्र कमर कस के काम में जुट गया । आशा है कि इन चन्द उदाहरणों से प्रेरणा लेकर कुरमीजन अपने को, अपने समाज को तथा अपने देश को अगले 50 वर्षों में इतना अधिक विकसित कर दिखायेंगे जितना उनकी महासभा अपने प्रथम सौ वर्षों में प्राप्त नहीं कर पाई । ऐसा प्रण हम सब कुरमी जन कर लें तो यह महासभा की प्रथम शताब्दी वर्ष की महान उपलब्धि होगी ।

इस 23 वें अधिवेशन में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव **"कुरमी क्षत्रिय पाठशाला, लखनऊ"** (वर्तमान में रामाधीन सिंह इण्टर कालेज) के सम्बन्ध में भी पास हुआ था, जिससे उसको स्वजाति की प्रतिनिधि संस्था का रूप दिया जा सके । पर खेद है कि इस प्रस्ताव पर किसी ने भी उचित ध्यान नहीं दिया और स्वर्णिम अवसर पाकर भी एक सौ वर्षों में, पाठशाला की प्रबन्ध समिति उसे इण्टर कालेज से आगे बढ़ाने में सफल न हो सकी ।

द्वितीय विश्वयुद्ध युग

परिस्थितियाँ एक बार पुनः भारत को ब्रिटिश-शासन से मुक्त कराने के लिये अन्तिम रूप से संघर्ष करने हेतु कांग्रेस पार्टी को मजबूत कर रहीं थीं । पाठकगण जानते होंगे कि द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ते ही ब्रिटेन ने राष्ट्रवादी भारत की जनता की सम्मति लिये बिना ही उसे उस युद्ध में सम्मिलित घोषित कर दिया था । भारत में नेताओं ने तथा जनता ने भी इकतरफा ऐलाने जंग सुनकर उसकी तीव्र आलोचना की, भर्त्सना भी की तथा अपने-अपने तरीकों से विरोध भी ज्ञापित किया । विरोध स्वरूप देश के प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने त्यागपत्र दे डाले और भारतीय जनता ने व्यक्तिगत् सत्याग्रह आरम्भ करने की घोषणा कर दी थी । वे गिरफ्तारियां देने लगे । लोकगीतों के माध्यम से वीर-रस के गीत गाकर गायक-वृंद जहाँ-तहाँ देश भर में, वहां की भाषा में, जनसमूह के मनोरंजन के साथ-साथ उत्साह वर्धन भी कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर युवा वर्ग सस्वर गीत और गजलें सुनाता फिरता था :-

सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाजुए-कातिल में है ।

जापान के युद्ध में कूद पड़ने तथा सिंगापुर मलाया तथा वर्मा में जापानी सेनाओं के पहुंच जाने से वह ब्रिटिश सेनाओं के और निकट आ गया । नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में इण्डियन नेशनल आर्मी (आई० एन० ए० - I.N.A.) का तत्काल गठन हुआ, उन्हें प्रारम्भिक सफलतायें भी मिलीं । नेताजी के भाषण की प्रमुख बातें, सारे देश में लोगों की जवानों पर थीं, जैसे-**"तुम मुझे खून दो, हम तुम्हें आज़ादी देंगे"**, ये सर्वत्र राष्ट्रीय भावना के प्रचार-प्रसार में उत्प्रेरक सिद्ध हो रहे थे । गांधी-नेहरू के न चाहते हुये भी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का मान-सम्मान सब नेताओं से अधिक फैलता नज़र आया था । नेताजी का नाम वास्तव में नेताओं में सर्वोपरि हो चुका था । वे इस देश के महान सपूत सिद्ध हुये ।

गांधी जी ने उस दौरान कहा था-"मेरा दृढ़ मत है कि अंग्रेजों को अब व्यवस्थित ढंग से भारत छोड़कर वापिस अपने मुल्क को जाना चाहिये और जिस तरह उन्होंने सिंगापुर, मलाया और वर्मा को जापानियों के हाथ सौंप दिया, उसकी पुनरावृति भारत के साथ नहीं होना चाहिये । मेरा अंग्रेजों से कहना है कि भारत को जापानियों के हाथ में न सौंपकर व्यक्तिगत् रूप से भारतवासियों के हाथ में सौंप दें ।"

बम्बई में 7 अगस्त 1942 के दिन कांग्रेस का अधिवेशन आरम्भ हुआ । जनता अहिंसात्मक आन्दोलन के लिये तैयार हो गई और अंग्रेजों के लिये चारों ओर ललकार उठी **"अंग्रजो भारत छोड़ो ।"**

सन् 1943 में बंगाल का भीषण अकाल पड़ा । मुट्ठी भर अर्थ-पिशाचों ने खाद्यान्न बाज़ारों से गायब कर ब्लैक में बड़े ऊँचे दामों पर बेचना प्रारंम्भ किया । जो गरीब जनता की क्रय-शक्ति से बाहर की बात हो गई । नतीजा यह निकला कि विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के **"आमार सोनार बंगला"** वाले प्रदेश में पैंतीस लाख लोग असमय काल के मुँह में चले गये । अकारण और मात्र मनुष्य द्वारा लोभवश मानवरचित इस नर-संहार से सारा देश कंपित हो उठा । बंगाल के अकाल की बड़ी भयंकर तथा अमानवीय घटनाओं की दर्दनाक और हृदय विदारक खबरें मिल रही थी ।

भविष्यवक्ता नास्त्रेदाम्स और हिटलर

सोलहवीं शताब्दी के विश्वविख्यात भविष्य वक्ता फ्रांस में जन्में और वहां के नागरिक नास्त्रेदाम्स ने सैकड़ों ही भविष्यवाणियां की थी जिनमें से आधी से अधिक सत्य सिद्ध हुई ये सब भविष्यवाणियां एक पुस्तक में प्रकाशित की गई । नास्त्रेदाम्स की उन सैकड़ों महत्वपूर्ण और आश्चर्यजनक भविष्यवाणियों में से एक हिटलर और नात्सीबाद के सम्बन्ध मे थीं । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि लगभग 4 शताब्दियाँ पूर्व ही नास्त्रेदाम्स ने संसार को हिटलर के बारे में सावधान कर दिया था । हिटलर के सम्बन्ध में नास्त्रेदाम्स की भविष्यवाणी इस प्रकार थी।

"हाइन के निकट उन्नीसवी सदी के अन्त में एक महान नेता जन्म लेगा । इस नेता का जन्म स्थान नोरिफ आल्प्स के क्षेत्र में ही कहीं होगा ।"

उक्त भविष्यवाणी के संदर्भ में यहां इस तथ्य का उल्लेख आवश्यक है कि हिटलर का जन्म स्थान भी नोरिफ आल्प्स के अन्तर्गत आने वाला ब्राउनो नामक कसबा था ।

हिटलर के सम्बन्ध में नास्त्रेदाम्स एक दूसरे ढंग से भी भविष्यवाणी करता है । उसका कथन था - "पश्चिमी यूरोप के पूर्वी क्षेत्र में कहीं एक बालक का अत्यन्त साधारण परिवार में जन्म होगा । वह बालक विलक्षण तथा असाधारण गुण-सम्पन्न होगा । और उसमें नेतृत्व करने और विशाल जनसमूह को अपनी तरफ आकर्षित कर लेने की अद्वितीय एवं अद्भुत क्षमता होगी । वह बालक पूर्वी दुनिया की शक्ति को रण में ललकारेगा, परिणाम स्वरूप विकट युद्ध होगा ।"

इतिहास साक्षी है कि नास्त्रेदाम्स की भविष्यवाणी की सत्यता को साकार करता हुआ 4 शताब्दी बाद हिटलर का जन्म आस्ट्रिया में हुआ था, जो कि पश्चिमी यूरोप के पूर्वी क्षेत्र में स्थित था। हिटलर आगे चलकर रूस का प्रबल विरोधी बना, जो पूर्वी दुनिया का महानतम् शक्तिशाली देश समझा जाता था।

हिटलर और जर्मनी के सम्बन्ध में भी एक अन्य भविष्यवाणी करते हुये नास्त्रेदाम्स आगे कहता है "बड़ा होने पर उस बालक के नेतृत्व में जर्मनी की शैन्य शक्ति पौलैंड पर आक्रमण कर उस पर कब्जा कर लेंगी। तत्पश्चात् जर्मनी की सेनाएं उसके (हिटलर) नेतृत्व में रूस पर भी धावा बोल देगी। इससे एक लम्बा युद्ध शुरु हो जाएगा।"

ज्ञातव्य हो कि हिटलर द्वारा अचानक पोलैंड पर हमला करके उस पर कब्जा करने और फिर रूस पर धावा बोलने के कारण ही दूसरा विश्व महायुद्ध शुरु हो गया था।

हिटलर के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करते हुये नास्त्रेदाम्स ने कहा था कि "अपनी 56 वीं वर्षगांठ मनाने के बाद ही इस (हिटलर) शक्तिशाली नेता की मृत्यु हो जाएगी मगर उसकी मृत्यु के पूर्व लाखों इन्सानों को काल के गाल में चले जाना होगा।

पाठकगण जानते हैं कि हिटलर की मृत्यु 56 वीं वर्षगांठ मनाने के बाद ही हुई पर तब तक लाखों लोग महायुद्ध में मारे गये थे।"

डा० पंजाबराव श्यामराव देशमुख का जीवन वृत्त

आपका जन्म 27 दिसम्बर 1898 को महाराष्ट्र के अमरावती जिले में पपड़ नामक ग्राम में एक साधारण मराठा कृषक के घर हुआ था। उनके पिताजी श्री श्यामराव जी बड़े पुरुषार्थी व्यक्ति थे। पंजाबराव प्रारम्भ से ही बड़े मेधावी विद्यार्थी रहे और उन्होंने सभी परीक्षायें अति उत्तम अंकों में उत्तीर्ण की। फलतः आगे की शिक्षा के लिये उन्हें छात्रवृत्ति मिल जाती थी। इस प्रकार उन जैसे साधारण मराठा खेतिहर परिवार में जन्में बालक के लिये उच्च से उच्चतर शिक्षा प्राप्त करना सम्भव हो सका। उन्होंने पूना के प्रसिद्ध फर्गुसन कालेज से बी० ए० की परीक्षा उत्तम परीक्षा-फल के साथ उत्तीर्ण की।

आपको उच्च शिक्षा के लिये इंगलैंड भी छात्रवृति पर भेजा गया। वहां आपने एडिनवर्ग विश्वविद्यालय से एम० ए० किया तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से डाक्ट्रेट की डी० फिल० डिग्री प्राप्त की। उनके डाक्ट्रेट शोध-ग्रंथ का विषय था "The Origin and Development of Religion in the Vedas."

इस बीच सन् 1927 में आपका विवाह कुमारी विमला वैद्या से हो गया जो स्वयं ब्राह्मण जाति में जन्मी थी। विवाहोपरान्त श्रीमती विमला देशमुख ने बी० ए० तथा एल-एल० बी० की परीक्षायें भी पास की। बाद में श्रीमती देशमुख राज्यसभा की सदस्या भी चुनी गई। आप सन् 1958 में कलकत्ता में सम्पन्न हुये अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के रजंत जयन्ती अधिवेशन की अध्यक्षा थी। आपने अपने पति के साथ तथा उनके निधन के पश्चात् जन-कल्याण सम्बंधी कार्यों में बड़ी लगन से काम किया।

डा० पंजाबराव देशमुख ने राजतंत्र ने अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कुशलता एवं दक्षतापूर्वक कार्य किया। वे मध्य प्रान्त के शिक्षा मंत्री भी रहे। देवास राज्य (द्वितीय श्रेणी) के पोलिटिकल मेम्बर रहे। डा० देशमुख का सामाजिक जीवन सन् 1928 से प्रारम्भ हुआ, जब वे अमरावती जिला परिषद के चेयरमैन चुने गये जो वे सन् 1930 तक रहे। इसी कार्यकाल में आपने अमरावती जिले के सार्वजनिक कुँए हरिजनों के उपयोग के लिये खुलवा दिये। आपने प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य घोषित कर दी। आप लोकसभा के सदस्य बने और पंडित जवाहर लाल नेहरू के प्रथम मंत्रिमंडल में कृषि मंत्री और सहकारिता मंत्री बनाये गये। आप अनेक संस्थाओं के जन्मदाता संस्थापक और अध्यक्ष थे, जिनमें कुछ इस प्रकार प्रमुख हैं :-

1 श्री शिवाजी एजूकेशन सोसायटी, अमरावती,

2 अखिल भारतीय दलित संघ,

3 भारत कृषक समाज, दिल्ली,

4 इटावा (संयुक्त प्रान्त) में सम्पन्न, अखिल भारतीय कू० क्ष० महासभा के 23वें अधिवेशन के अध्यक्ष ।

5 डा० पंजाबराव उर्फ भाऊ साहेब देशमुख मेमोरियल मेडिकल कालिज, अमरावती (महाराष्ट्र) ।

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया ने समस्त भारतवर्ष में सन् 1994 की अपनी घोषणा में जिन 123 मान्यता प्राप्त मेडिकल कालिजों की सूची प्रकाशित की उसमें महाराष्ट्र के मराठों एवं कुनबियों की संस्था, श्री शिवाजी एजूकेशन सोसायटी, अमरावती के सतत् प्रयासों से निर्मित उपर्युक्त डा० पंजाबराव ऐलियास भाऊ साहेब देशमुख मेमोरियाल मेडिकल कालिज, अमरावती भी एक है । इसी प्रकार गुजरात में चारोतार क्षेत्र में बल्लभभाई पटेल मेमोरियल मेडिकल कालिज भी शीघ्र कार्यरत हो जायेगा । जो कि मात्र पाटीदार/पटेलों की दानराशि से स्थापित किया जा रहा है । अतः बिहार, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश आदि हिन्दी भाषी प्रदेशों के कुरमी जनों को चाहिये कि इस शताब्दी वर्ष सन् 1994 में वे अपने प्रयासों से विविध सामान्य विषयों के कालिजों इंजीनियरिंग एवं मेडिकल कालिजों की स्थापना करने का दृढ़ संकल्प जरूर लें, अन्यथा वे अपने मराठों-कुनबी, पाटीदार-पटेल, रेड्डी-कम्मा-कापू बन्धुओं से इस क्षेत्र में पीछे रह जायेंगे ।

चौबीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 24 वाँ अधिवेशन दिनांक 7,8 एवं 9 मई 1948 को, भारत के स्वतंत्र हो जाने के तुरन्त बाद कानपुर जनपद में दूसरी बार, दूर देहात के हारामऊ ग्राम पुखराया में रायपुर (मध्य प्रदेश) के प्रसिद्ध समाजसेवी तथा राजनेता डा० खूबचन्द बघेल एम० एल० ए० (बाद में राज्यसभा सदस्य बनें) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

कानपुर में इससे पहले सन् 1919 ई० में महासभा का 14 वाँ अधिवेशन **कर्नल सर साहू छत्रपति कोल्हापुर महाराज** की अध्यक्षता में बड़ी धूम-धाम से सफलतापूर्वक आयोजित किया गया था। इस 24वें अधिवेशन में देश की आजादी के परिवेश में हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर बिचार, शिक्षा-प्रसार एवं राजनीतिक अधिकारों आदि बिन्दुओं पर चर्चायें हुई। महासभा के प्रारम्भिक काल में वकील, बैरिस्टर ही अध्यक्ष पद पर आसीन किये जाते रहे, तत्पश्चात् राजे-महाराजों को भी अध्यक्ष पद ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होने लगा। इस अधिवेशन से राजनेताओं और समाजसेवियों को भी अध्यक्ष बनने की परम्परा प्रारम्भ हुई। इस अधिवेशन के स्वागतमंत्री प्रसिद्ध समाजसेवी तथा कर्मठ कार्यकर्ता **कुँवर शंकर सिंह जी** थे। पहले से चले आये **श्री श्यामसिंह** ने वृद्धावस्था के कारण महामंत्री (जिसे तब प्रधानमंत्री कहा जाता था) पद से अवकाश ग्रहण किया और उनके स्थान पर इस अधिवेशन में **श्री गुप्तनाथ सिंह** को निर्वाचित किया गया और तब से यह पद भी महामंत्री कहा जाने लगा।

अध्यक्ष डा० खूबचन्द बघेल ने अध्यक्षीय अभिभाषण में उपस्थित प्रतिनिधियों और दर्शकगणों को बताया :-

"भाइयो और बहिनों,

मुझे अध्यक्ष पद के दायित्वपूर्ण और दुर्वह भार को वहन करने में एक विचित्र संकोच का अनुभव हो रहा है। मैंने स्वागतमंत्री कुँवर शंकर सिंह जी से प्रार्थना की थी कि वे मुझे इस भार से मुक्त करें और किसी काबिल और प्रभावशाली व्यक्ति को यह सम्मान दें, परन्तु उन्होंने मुझपर यह प्रेमपूर्ण जबरदस्ती की है। मेरी अल्पज्ञता जातीय क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवाओं का अभाव, साधन शून्यता और अनुभव हीनता, ये सब ही मेरे संकोच के कारण हैं। इस विशाल रत्नगर्भा कूर्मि क्षत्रिय जाति में एक से एक लक्ष्मीपुत्र और सरस्वती के पुजारी पड़े हुये हैं। मैं तो अपने आपको कांग्रेस का एक विनम्र स्वयंसेवक ही मानता हूँ। परन्तु मेरे स्वागतमंत्री कहते हैं कि राजा, महाराजा, बैरिस्टर और विद्याभूषणों की परम्परा हमें मिटानी है। हमें स्वेच्छापूर्ण लादी हुई गरीबी और कर्मठ देशभक्ति को तेजस्वी विकासोन्मुख बनाकर युग-प्रतिष्ठित गुणों को जगाने की आवश्यकता है।"

"मैं हृदय ये चाहूँगा कि आप लोग यदि मुझे सभापति मानते हो तो मुझे भिक्षा दें कि आज और इसी घड़ी से हम कम से कम उपजातीय भेदभावों को, रोटी-बेटी की भिन्नता के मामले को, हरगिज़-हरगिज़ न मानेंगे, हजार विघ्न बाधायें-आयेंगी तो भी हम उन्हें तोड़ फेंकेगे रूढ़िवाद की कच्ची दीवाल को हम एक ही धक्के में फोड़ गिरायेंगे।"

अध्यक्ष महोदय ने आगे उद्गार प्रकट करते हुये कहा -"और यदि मैं आपसे कह दूँ कि उपजातियों का भेद-भाव मिटाना गांधी-युग का एक छोटा से छोटा, हल्के से. हल्का कदम होगा, अनुचित न होगा। सही मायने में तो हमको और आपको समस्त हिन्दू जाति के अन्दर रहने वाली जाति-पांति की सड़ी व्यवस्था को ही पहले दूर करना होगा। हिन्दू समाज के वर्णव्यवस्था-रूपी शरीर में जाति व्यवस्था एक कोढ़ है जो सारे हिन्दू-शरीर को नष्ट कर रहा है।" गांधी जी ने पूरी ताकत के साथ ये ऐलान कर दिया है कि यदि जातियां जीवित रहीं तो हिन्दूधर्म को मरना पड़ेगा ओर यदि हिन्दू धर्म को जिन्दा रहना है तो संकीर्ण जातीयता अथवा साम्प्रदायिकता को नष्ट करना पड़ेगा। वर्ण-व्यवस्था अपने शुद्ध संस्कृत रूप में न केवल हिन्दू समाज वरन् सारे मानव समाज की

प्रगति के लिये जहां एक महारसायन का कार्य करती है, वहीं वह विकृत रूप में समाज रूपी शरीर की हड्डी में जहर के रूप में फूट निकलती है । जाति-व्यवस्था वास्तव में वर्ण-व्यवस्था की विकृति है । इस विकृति के परिणाम-स्वरूप भारतीय समाज आज अट्ठारह हजार जातियों में विभक्त हैं । इन जातियों में रोटी-बेटी का व्यवहार बन्द है । हम अपनी उपजाति को अन्य उपजातियों से श्रेष्ठ कहते हैं । फलस्वरूप सामने वाला स्वतः को हमसे ऊँचा समझता है, विभेद और फूट की दीवाल खड़ी हो जाती है । इस वर्ण-व्यवस्था की विकृति से ही छुआछूत का भयंकर भूत हिन्दू समाज के पीछे लग गया है ।"

डा० बघेल ने आगे बताया, "मैंने कृषक देश के युवकों का सारे देश को चकाचौंध करने वाला नज़ारा हमारे देश-गौरव सरदार पटेल के नेतृत्व में, बारडोली में देखा था । सरदार पटेल के नेतृत्व में प्रत्येक नौजवान एक ही स्वर से गाता था :-

"क्या हुआ गर मर गये, अपने वतन के वास्ते ?
बुलबुले कुरबान होती हैं, चमन के वास्ते ।।"

कोई गाता था :-

स्वर्गालय के लिए, आत्म-बलि हम न करेंगे ।
जिस 'स्वदेश' में जिए, उसी पर सदा मरेंगे ।।

अपने लम्बे भाषण के अन्त में उन्होंने कहा "मैं इस विराट आयोजन के साथ सम्मानित किया गया, इसके लिये एक बार मैं पुनः आभार मानता हूँ और अन्त में कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ टैगोर की वाणी के गौरव में शुभ कामनाओं को दुहराते हुये में अपना भाषण समाप्त करता हूँ :-

"चित्त जहां भय विहीन,
शीर्ष जहाँ उच्च रे,
ज्ञान जहाँ मुक्त रे,
भेद की प्रभेद की कुंचित दीवारों से,
घिर-घिर कर जगत् जहां नहीं खंड-खंड रे,
अनवरत परिश्रम निज अति प्रचंड भुजादंड,
सर्वदा उठाता हो अखिल पूर्णता की ओर,
मेरे रूढ़ि-बन्धन के सूखे मरु प्रान्तर में,
खो नहीं गयी कि विमल धारा सुविवेक की,
प्रेरित करता ही तू मन को उस ओर जहां,
निर्मल विचार का शाश्वत विस्तार हो,
अविरल प्रवाहित निर्बाध कर्मधार हो,
प्रभू हे ! पिता हे ! इस विगत बन्ध्य स्वर में,
उन्नत कर जाग्रत कर मेरी इस जाति को ।।"

"अथर्ववेद (7/52/8) की ऋचा की भी उद्घोषणा है :-

"कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो में सव्य आहित ।"

(अर्थात्)- "कर्म मेरे दाहिने हाथ में है तो विजय बाएँ हाथ में ।"

कानपुर शहर को श्रेय है कि यहां अनेक साहित्यकार यथा स्व० गणेश शंकर विद्यार्थी जी जैसे निर्भीक

पत्रकार हुये जिन्होंने हिन्दू-मुसलमान सौहार्द्र की वेदी पर अपनी जान भी न्यौछावर कर दी । इस नगर के कवियों में पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन का हिन्दी काव्य-साहित्य में विशिष्ट स्थान है । एक बार 'नवीन' जी ने किसी गरीब बच्चे को किसी दावत के बाद की फेंकी गयी जूठे खाने की पत्तलें आदि में से उठाकर कुछ खाते देखा, उनका कवि हृदय भाव-विभोर होकर चीत्कार कर उठा :-

"अरे चाटते जूठे पत्ते,
जिस दिन देखा मैंने नर को ।
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ,
आज आग इस दुनिया भर को ।।
यह भी सोचा क्यों न टेटुंआ,
घोंटा जाय, स्वयं जगपति का ।
जिसने अपने ही स्वरूप को,
रूप दिया इस घृणित विकृति का ।।"

डा० खूबचन्द बघेल का जीवनवृत्त

डा० खूबचन्द बघेल का जन्म 19 जुलाई 1900 को मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ अंचल के रायपुर जिले के पथरी ग्राम में एक कूर्मि क्षत्रिय मनवा उपजाति में हुआ । पिताजी, श्री जुड़ावन सिंह वहां के मालगुजार थे और उनकी माता का नाम था श्रीमती वोकती बाई, जोकि धर्म-परायण और राष्ट्रीय विचारधारा वाली निडर स्वभाव की महिला थीं और आगे चलकर वृद्धावस्था के बावजूद भी स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के परिणाम स्वरूप कारावास की सजा भी सहर्ष भुगत चुकी थी ।

खूबचन्द बचपन में बड़े नटखट तथा विनोदी स्वभाव वाले पर पढ़ने में तेज तथा होनहार थे । "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"-वाले लक्षण रखते थे । रायपुर से मैट्रिक पास करके नागपुर मेडिकल कालेज से एल० एम० पी० की शिक्षा पूरी करके मध्यप्रदेश के सरकारी अस्पताल में डाक्टरी के पद के लिये चुन लिये गये।

समाज सुधारक और राष्ट्रीय भावना वाले डा० खूबचन्द बघेल ने 19 से 21 अप्रैल 1930 में रायपुर में अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के 18 वें अधिवेशन में स्वयंसेवकों के प्रधान के रूप में अनुशासित ढंग से कार्य करते हुये उसे सफल बनाया था । सन् 1930 में महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ किया, उससे प्रभावित होकर अगले वर्ष सन् 1931 में डा० बघेल अस्पताल के डाक्टर की सरकारी पक्की नौकरी से त्यागपत्र देकर देश-सेवा में तन-मन से जुट गये ।

स्वाधीनता आन्दोलन में जंगल सत्याग्रह में प्रमुख रूप से भाग लेने पर उन्हें जेल भेज दिया गया । जेल से मुक्त होने के पश्चात छत्तीसगढ़ कूर्मि क्षत्रिय समाज संगठन को स्थापित कर जातीय जागृति का गौरव मुख्यतः डा० बघेल को ही जाता है । सन् 1942 में स्वाधीनता संग्राम आन्दोलन में छत्तीसगढ़ क्षेत्र में प्रमुख रूप से भाग लेने पर इन्हें तीन वर्ष का कारावास भोगना पड़ा । सन् 1945 में कारावास से मुक्त होकर फिर और जोश के साथ समाज, प्रदेश तथा देश-कार्यों में सक्रिय रूप से जुट गये । सन् 1946-47 में डा० बघेल को प्रदेश कांग्रेस शासन में संसदीय सचिव बनाया गया । सन् 1950 में वे विधायक निर्वाचित हुये और सन् 1967 में राज्यसभा के सदस्य चुने गये । आप सरल और परोपकारी स्वभाव के थे । और गांधीवादी विचारधारा से ओत-प्रोत, प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले थे । वे छत्तीसगढ़ के गांधी के नाम से भी जाने जाते थे ।

डा० बघेल ने छत्तीसगढ़ी बोली में अनेक रचनायें की और उनका सफल मंचन किया, जिनमें (1) करम

छड़हा (2) जनरेल सिंह तथा (3) ऊँच-नीच ने सर्वाधिक प्रसिद्धि पायी। मातृभाषा छत्तीसगढ़ी के माध्यम से उन्होंने सृजनात्मक साहित्यक अभिव्यक्ति भी की।

डा० बघेल उन लोगों में से थे जिनकी करनी एवं कथनी में अन्तर नहीं होता है। अपने मनवा कूर्मि समाज के कड़े विरोध के वावजूद भी उन्होंने अपनी पुत्री का शाखान्तर-विवाह बिहार प्रदेश के जयसवार उपजाति के कुरमी श्री राजेश्वर पटेल से किया, जो कि बाद में सांसद भी बने। मध्य प्रदेश के इस समय के कट्टरपंथी 'मनवा समाज' ने इसके लिये डा० खूबचन्द वघेल को जाति से बहिष्कृत करने तक का प्रस्ताव किया पर वह पारित न हो सका, क्योंकि तब तक 'मनवा समाज' रायपुर (मध्यप्रदेश) का संचालन दकियानूसी रूढ़िवादियों के हाथों से निकलकर प्रगतिशील विचारों वाले नवयुवकों के हाथों में आ चुका था। पर डा० खूबचन्द बघेल इस विरोध से विचलित नहीं हुये। हैदराबाद में 12, 13 जून 1993 को अ० भा० कू० क्ष० महासभा की कार्यकारिणी समिति के सम्मुख इस लेखक ने वहाँ उपस्थित रायपुर (मध्यप्रदेश) के डा० हरिप्रेम वघेल पूर्व एम० एल० ए० तथा स्व० डा० खूबचन्द्र के भतीजे और श्री धनीराम वर्मा, महासभा के पूर्व अध्यक्ष एवं संरक्षक से जब इस प्रसंग का जिक्र किया तो उन्होंने उपर्युक्त बातों की पुष्टि की थी। ये दोनों महानुभाव मनवा कूर्मि क्षत्रिय उपजाति के सदस्य भी हैं।

डा० खूबचन्द बघेल की प्रेरणा से ही एक विशाल छात्रावास खम्हीं ग्राम के श्री मुखीराम चन्द्रवंशी तथा खिरौनी ग्राम के श्री चतुरसिंह चन्द्रवंशी जैसे दानवीरों द्वारा निर्मित किया गया, जहाँ 60-70 विद्यार्थियों की आवासीय व्यवस्था है।

डा० बघेल जीवन भर छत्तीसगढ़ क्षेत्र की कुरमी जाति की तरक्की, रूढ़िवादिता के परित्याग, सारे समाज और देश की समसामयिक समस्याओं के सुलझाव में अपना योगदान देते रहे। छत्तीसगढ़ी साहित्य एवं राजनीतिक जीवन पर वे अपनी अमित छाप छोड़ गये हैं। जब डा० खूबचन्द बघेल राज्य सभा सदस्य थे तभी दिल्ली में 22 फरवरी सन् 1969 को हृदय गति रुक जाने से उनकी मृत्यु हो गई। उनकी पुत्री का परिवार अभी भी दिल्ली में रहता है। उनके दामाद श्री राजेश्वर पटेल सांसद का उनकी मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही देहावसान हो गया। डा० खूबचन्द बघेल के निधन से न केवल छत्तीसगढ़ अँचल ने, या मनवा कूर्मि क्षत्रिय समाज ने या समस्त कूर्मि क्षत्रिय जाति ने ही नहीं बल्कि इस देश ने भी एक देशभक्त, परोपकारी, साहित्यकार व सच्चा सपूत खो दिया है।

देश आज़ाद हुआ पर किस कीमत पर ?

इस चौबीसवें अधिवेशन से लगभग आठ माह पूर्व ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में 4 जुलाई 1947 को भारत स्वतंत्रता बिल पेश किया गया और 12 दिनों के अन्दर पारित कर दिया गया। 14 अगस्त 1947 को इंडिया (प्राविजनल कॉन्स्टिट्यूशन) केन्द्रीय धारा सभा के सभी सदस्यगण 14,15 अगस्त् 1947 की मध्य रात्रि को जैसे ही बारह बजने का अन्तिम घंटा बजा दिल्ली के वर्तमान संसद भवन के केन्द्रीय हाल में खड़े हो गये और सबने देश सेवा का संकल्प लिया। उससे पहले 11.00 बजे रात्रि में श्रीमती सुचेता कृपलानी द्वारा उसी हाल में सबके साथ खड़े होकर सस्वर राष्ट्रीय गीत 'बन्दे मातरम' का गायन किया गया। फिर धारा सभा के अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद ने हिन्दुस्तानी में भाषण किया। उसके पश्चात् सबने खड़े खड़े होकर 2 मिनट का मौन रखते हुये उन दिवंगत आत्माओं की शान्ति के लिये प्रार्थना की, जिन हजारों-हजारों नर-नारियों, बालक-बालिकाओं की जानें स्वतंत्रता संग्राम या अन्य देशहित कार्यों में गयीं थीं। फिर पं० जवाहर लाल नेहरू का प्रसिद्ध भाषण हुआ। अन्त में डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने बधाई देकर उस अति विशेष आयोजन का समापन किया।

देश स्वतंत्र हुआ, पर भारत और पाकिस्तान, दो स्वतंत्र देशों, के रूप में बाँट दिया गया। देश के विभाजन के कारण सरहद के आर-पार जो तबाही मची और उसके परिणामस्वरूप दोनों ओर के लोगों को लाखों की संख्या में जान-माल की अपार क्षति झेलनी पड़ी थी। वह इस काल की बड़ी मार्मिक, हृदय-दहलाने वाली त्रासदी थी। लाखों की संख्या में इंसानी काफिले एशिया में पहली बार नयी घोषित सीमा से इस-पार और उस-पार आये

गये। पहले मुल्क का राजा बदलता था, निजाम बदलता था, पर रिआया नहीं बदलती थी और उसके रोजमर्रा की जिन्दगी पर भी ज्यादा फर्क नहीं पड़ता था, पाकिस्तान और भारत विभाजन के रूप में, बड़ा बीभत्स रूप प्रकट हुआ। दोनों देशों के शीर्षस्थ-नेताओं ने तो अलग-अलग प्रकार के देश के लिये अमन-चैन कायम करने की बातें सोचीं थीं। वे तो 'क्षमा करो और भूल जाओ' की नीति अपनाना चाहते थे। महात्मा गांधी की स्वतंत्रता-दिवस के बाद करांची-यात्रा प्रस्तावित थी उन्होंने बन्धुता पूर्ण सम्बन्धों की परिकल्पना की थी और नई दिल्ली सरकार की नाराज़गी के बावजूद गांधी जी ने पाकिस्तान को 60 करोड़ रूपया देने को बाध्य किया था। कायदे-आजम मोहम्मद अली जिन्ना ने भी प्रतीत होता है कि दोनों नये बने मुल्कें के रिश्तों में नए अध्याय का सृजन करते हुये उन दिनों कहा था-"आप देखेंगे कि समय के साथ-साथ न हिन्दू-हिन्दू रहेगा और न मुसलमान-मुसलमान। दोनों देशों के दुर्भाग्य से दोनों नेताओं महात्मा गांधी तथा कायदे आजम मोहम्मद अली जिन्ना के जीवन का विभिन्न परिस्थितियों में शीघ्र ही अन्त हो गया। महात्मा गांधी 31 जनवरी 1948 को एक सिर-फिरे हिन्दू की गोली का शिकार बना दिये गये, उधर जिन्ना की मृत्यु किसी सख्त बीमारी से यकायक हो गयी। दोनों जंन्म से गुजराती थे बैरिस्टर थे, उनमें से एक हिन्दू था तो दूसरा मुसलमान था जिसके पूर्वज हिन्दू से ही मुसलमान बने थे। 15 जनवरी सन् 1949 को जनरल बाद में फील्ड मार्सल के० एम० करियप्पा ने अंग्रेज जनरल सर एफ० आर० आर० बूचर से भारतीय सेना का प्रथम भारतीय कमांडर-इन-चीफ पद ग्रहण करने का श्रेय प्राप्त किया।

भारतवर्ष 26 जनवरी 1950 से एक जनतंत्र राष्ट्र

हमारे संविधान की प्रस्तावना में हमारे लोकतंत्र के मूल्यों के सौष्ठवपूर्ण विन्यास का प्रेरक उद्घोष इस प्रकार है :-

"हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण

प्रभुता-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने को लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को : सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिये, तथा उन सब में,

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने, बंधुता बढ़ाने के लिये दृढ़-संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

इस प्रकार तब से अब तक हम सब भारतवासी 45 गणतन्त्र समारोह, राजपथ नई दिल्ली पर, बड़े भव्य रूप से मना चुके हैं।

इस संविधान में समय-समय पर जनता के हित में या अन्य राष्ट्रीय आवश्यकता को देखते हुये संशोधन होते रहे हैं जिसके लिये संविधान के जन्मदाताओं ने ही प्रावधान कर दिया है। इसमें परिवर्तन किस प्रकार किया जाए? क्योंकि वे दूरदृष्टा जानते थे कि ज्यों-ज्यों इस देश में सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति का उद्घोष तीव्रतर रूप धारण करेगा त्यों-त्यों दरिद्रता, अज्ञानता, बीमारी, सामाजिक असमानता, ऊँच-नीच की भावना दलितों, पिछड़ों और कमजोर वर्गों का उत्पीड़न और शोषण को समाज से निकाल फेंकना होगा और यह तभी संभव होगा जब संविधान में संशोधन कर वैसे प्रावधान कर दिये जाऐं जिससे वे पूर्व केन्द्रीय मंत्री भारत सरकार तथा साहित्यकार भागवत झा आजाद द्वारा व्यक्त इन भावनाओं को समझकर परिवर्तन लाने के समुचित उपाय कर सकें :-

"नहीं मानेंगे यह कानून,
जो मुझको गरीबी का पट्टा लिखाता है,

मिटाकर झोंपड़ी मेरी,
जो महलों को रिझाता है ।
खा-खा कर मरें वे,
मौलिक अधिकार उनका है,
बिना खाये मरें हम, यह अधिकार मेरा है ।"

यह माना कि हिन्दुओं और मुसलमानों की तहजीबोतमद्दुन में जमीन-आसमान का अन्तर है । मुसलमान हिन्दुओं को बुतपरस्त कहता है और अपने का बुतशिकन कौम । हिन्दू पूरब में प्रातःकाल सूर्य-नमस्कार करता है, मुसलमान पश्चिम की ओर काबा-शरीफ की ओर श्रद्धा से सिर झुकाता है । लार्ड मिन्टो वाइसराय महोदय ने मुसलमानों-हिन्दुओं में अपने शासन काल के दौरान उनके अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्र (Separate Electorates) घोषित करके इन दो कौमों के आपसी बचे बन्धन को और भी शिथिल कर दिया था । इसके अनुसार तीन हजार रुपया सालाना आमदनी पर मुसलमान और तीन लाख रुपया सालाना आमदनी पर टैक्स देने वाले गैर-मुसलमान (जैसे हिन्दू, सिख, पारसी आदि, चुनाव में वोट देने के हकदार बनाये गये थे यही शायद 'आला' और 'अदना' का फिसाद अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच खड़ा कर डाला था ।

उस जमाने में दोनों ओर की कौमों के नेक नियत लोगों ने भाई-चारे को और मजबूत बनाने की बहुत कोशिश की, जैसे हिन्दू-मुसलमानों में एका और मजबूत करने वाले 'हम' शब्द की नयी तरह से व्याख्या प्रस्तुत कर रहे थे - उनके अनुसार 'ह' अक्षर से हिन्दू और 'म' से मुसलमान, पर दोनों कौमों के इसके विपरीत सोचने वाले भी काफी लोग थे । सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना मुसलमानों के अंग्रेजी सरकार के प्रति वफादारी प्रदर्शित करने के उद्देश्य से हुई थी । और हालात कुछ ऐसे बनते चले गये कि देश दो नये राष्ट्रों में बंटकर ही स्वतन्त्र हो सका ।

इतिहास के अवलोकन से पता चलता है कि पाकिस्तान की आवाज इंडियन मुस्लिम लीग से पहले इंगलैंड में रहने वाले एक डा० लतीफ नाम के मुसलमान ने सन् 1932 या 1933 में पहली बार बुलन्द की थी । वहीं कैम्ब्रिज में रहने वाले एक रहमत अली नामक व्यक्ति ने इस सुझाव को तर्कपूर्ण ढंग से विस्तार से प्रस्तुत किया। रहमत अली ने पाकिस्तान मूवमेन्ट की योजना पेश की । जिसके अनुसार ईस्ट बंगाल यानी बंगिस्तान, निजाम हैदराबाद रियासत यानी उस्मानिस्तान और राजस्थान एवं सिन्ध वगैरह को मिलाकर पाकिस्तान बनाने की बात कही गयी थी। उर्दू के विख्यात शायर डा० मोहम्मद इकबाल भी उन दिनों में इंगलैंड में रह रहे थे और उन्होंने भी रहमत अली के उपर्युक्त मूवमेंट में शामिल होकर लिख डाला था :-

"या रब दिले, मुस्लिम को वोह जिन्दा तमन्ना दे,
जो कल्ब को गरमा दे जो रूह को तड़पा दे ।।"

सुधी पाठकगण् जानते हैं कि इन्हीं तथाकथित महाकवि इकबाल ने यह गीत भी रचा था, जो आज भी भारत भर में अक्सर गा लिया जाता है :

"सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा,
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसतां हमारा,
हिन्दी हैं हम वतन हैं, हिन्दोस्तां हमारा ।"

डा० इकबाल के पूर्वज दो चार पुश्त पहले तक कश्मीरी ब्राह्मण थे, जिसे वे बड़े फख्र से बयान करते थे । इसी तरह के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जैसे मोहम्मद अली जिन्ना के पूर्वज या जुल्फिकार अली

भुट्टो की मां हिन्दू थीं । पाकिस्तान के प्रथम प्रधानमंत्री नवाबजादा लियाकत अली खां, जो कि मेरठ जिले के निकट खतौली के पास के इलाके के ताल्लुकेदार थे और उनकी एक बेगम लियाकत अली के नाम से पाकिस्तान की प्रसिद्ध राजदूत कई मुल्कों में रहीं वास्तव वे यू० पी के पहाड़ी क्षेत्र में एक ब्राह्मण पंत परिवार में जन्मी थीं, बड़ी हुई थीं । इसी तरह नेपाल के मौजूदा प्रधान मंत्री श्री कोइराला जो कि नेपाली ब्राह्मण हैं उनकी सगी बहिन विजय लक्ष्मी कोईराला ने एक मुसलमान से विवाह किया था, जो कि कई मुल्कों में पाकिस्तान के राजदूत थे । व्यक्ति हिन्दू से मुसलमान होने पर बहुधा बड़े कट्टर सिद्ध हुये ।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि बंगाल में काला पहाड़ (असली नाम कालीपद मुखर्जी) नामक ब्राह्मण की दर्दनाक सत्य-कथा से होती है । कालीपद मुखर्जी नामक युवक ने काले रंग का होते हुये भी बंगाल के तत्कालीन नवाब की इकलौती बेटी का मन ऐसा जीत लिया कि हर हालत में वे एक दूसरे के साथ विवाह करने पर दृढ़ संकल्प हो गये थे । नवाब ने अनेक प्रयत्न किये जिससे यह ब्याह न हो सके, पर ऐसा हुआ और उसके लिये हिन्दुओं की रुढ़िवादिता के कारण उसे काला पहाड़ मुसलमान बनना पड़ा । वह बड़ा कट्टर मुसलमान सिद्ध हुआ । बंगाल में मुसलमानों की संख्या उसके जमाने में ही सर्वाधिक बढ़ी ।

वैदिक काल में कश्यप ऋषि के नाम पर कश्मीर नामक प्रदेश का नाम पड़ा । कश्मीर के मूल निवासी आर्य ऋषियों की ही सन्तानें थी । 'कल्हण' वहीं के विख्यात कवि थे और राजतरंगिनी की रचना उनकी ही सुप्रसिद्ध कृति है । बाद में हालात ऐसे बने कि वे कश्मीरी मुसलमान बन गये । आज वही कश्मीर के मुसलमान जो कि आर्यों की संतति है, खुल्लम-खुल्ला भारत से ज्यादा पाकिस्तान से अपनत्व प्रदर्शित करते हैं ।

लेकिन सब मुसलमान भी एक से नहीं हैं और न सब हिन्दू । स्व० एम० सी० चागला पूर्व मुख्य न्यायाधीश बम्बई उच्चन्यायालय तथा पूर्व विदेश मंत्री भारत सरकार ने जैसे ही एक हिन्दू स्त्री से विवाह किया इस्लाम धर्म छोड़ दिया था यद्यपि उस बात का खुलासा पब्लिक में नहीं किया । उनके मरने पर विद्युत श्मशान गृह में उनका अन्तिम संस्कार किया गया । इस तरह की बात भारत के पूर्व उपाध्यक्ष तथा पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एम० हिदायतउल्ला के साथ भी कही जाती है । इन दोनों की सेवायें इस देश के लिये सदैव अनुकरणीय और प्रशंसनीय रहेगी ।

"बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध ले" आधुनिक नीति

युग प्रवर्तक महात्मा गांधी के बलिदान को भी अब लगभग 45 वर्ष बीत चुके हैं आश्चर्य इस बात का है कि इस अल्पकाल में ही उनके अनन्य अनुयायियों ने भी गांधीजी की प्रमुख बातों तक को लगभग भुला दिया है क्योंकि उन बातों का आचरण उनके द्वारा नहीं किया जाता है । आज गांधी जी के सिद्धान्तों के सच्चे अनुयायी विरले ही कहीं मिल जायें वैसे मिलना मुश्किल है और मिलेंगे तो विदेशों में जैसे नेलसन मंडेला और स्व० मार्टिन लूथर किंग । गांधी जी के सम्पर्क में आये उनके अनुयायी गणों में ज्यादातर का निधन हो चुका है । आज गांधी जी वास्तव में इतिहास के पृष्ठों में सिमटकर रह गये हैं ऐसा देश में कोई पहली बार नहीं हुआ । हमने वैदिक देवताओं के साथ भी ऐसा ही किया, अन्य वैदिकोत्तर देवी-देवताओं में भी रद्दोबदल करते रहते हैं । बुद्ध, महावीर और गांधी तो इंसान थे ।

आर्यों के वंशजों ने अपने वैदिक देवताओं जैसे इन्द्र, वरुण, वायु को भुलाकर उनकी जगह अन्य देवताओं को पूजना शुरू कर दिया था । महात्मा बुद्ध को इस देश के लोग लगभग भुला ही चुके थे, यदि डा० अम्बेडकर का प्रादुर्भाव न हुआ होता । पर गांधी जी के कार्यकलाप, सिद्धान्त और उपलब्धियां भुलाने पर भी भुलाई नहीं जा सकेगी । यह कालचक्र है जैसे महात्मा बुद्ध फिर इस देश में लौटते नजर आ रहे है । जैन धर्म सबके लिये था इसके 24 तीर्थंकार सभी इक्ष्वाकु वंशी क्षत्रिय थे पर धर्म सिमट कर महज वैश्य जाति के कुछ लोगों तक ही सीमित रह गया है ।

गांधी जी ने पुराने विचारों को नया रूप ही नहीं दिया बल्कि पुरानी सड़ी-गली रूढ़ियों पर भी उन्होंने निर्ममता से चोट की । एक ओर उन्होंने आत्म-संयम और धन को परमार्थ में लगाने के पुराने आदर्शों का प्रचार किया, दूसरी ओर इन्होंने जाति-पांत और ऊँच-नीच के भेदभाव को अस्वीकार किया । शारीरिक श्रम को छोटा अथवा नीचा तथा दिमागी काम को उत्कृष्ट समझने का उन्होंने खंडन किया । वे नहीं मानते थे कि मनुष्य को सामाजिक या सांसारिक कर्तव्यों को तिलांजलि देकर अपनी आत्मा के कल्याण अथवा मोक्ष में लग जाना चाहिये और गरीबी को पूर्व-जन्म के कर्मों का परिणाम समझकर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहना चाहिये । सार्वजनिक जीवन की जो कमियां उन्हें नज़र आयीं, जैसे नागरिक कर्तव्य और सामूहिक सार्वजनिक भावना का अभाव, उसे उन्होंने दूर किया। सादा-जीवन, स्वदेशी का प्रयोग, लघु और कुटीर उद्योगों की महत्ता को देशवासियों को भलीभांति समझाया । दरिद्रनारायन की सेवा सुश्रूषा उन जैसा या मदर टेरैसा जैसी महान् विभूतियां ही कर सकी हैं । जो उन्होंने कहा वैसा ही उन्होंने आचरण में किया । वे युग पुरुष थे ।

महात्मा गांधी से उनकी हत्या के कुछेक सप्ताह पूर्व एक विदेशी पत्रकार ने उनसे पूछा था, "आपके अनुसार ऐसी कौन-सी सबसे बड़ी समस्या है- जिसका आपको सामना करना पड़ रहा है ? क्या यह लोगों की कमर-तोड़ गरीबी, लाखों भारतीय युवकों की बेरोजगारी, धार्मिक और जाति-पाति की कुभावना या घृणा?

महात्मा गांधी जी का उत्तर बहुत स्पष्ट था । उन्होंने कहा -"इनमें से कोई भी मेरे लिये अधिक चिन्ता का विषय नहीं है । उन्हें हल किया जा सकता है । मैं केवल भारतीय बुद्धिजीवियों की अपनी जाति के प्रति उदासीनता और उनकी भीरुता से चिंतित हूँ ।"

आज से करीब 46 वर्ष पूर्व महात्मा जी ने भारतीय बुद्धिजीवियों की उदासीनता और साहसहीनता के सम्बन्ध में जो चिन्ता व्यक्त की -आज वही हमारी दुःखद स्थिति का एक प्रमुख कारण है । यह तो विवेचना हुई देश का सामाजिक स्थिति की । यदि हम कुरमी जाति विशेष की बात लें, तो उसके पिछड़ेपन का मुख्य कारण भी उसके बुद्धिजीवियों की अपनी जाति के प्रति उदासीनता तथा अपनी जाति के उज्ज्वल इतिहास को सिद्ध करने की साहसहीनता ही आंकी जायेगी । यह वर्ग सदा न जाने किस कुंठा से अपनी असलियत को औरों से छिपाता रहा । स्वयं कुछ जातीय सेवा नहीं करना चाहता पर आलोचक अव्वल दरजे का है ।

अपनी इतनी बड़ी संख्या होते हुये भी कुरमी जाति का बुद्धिजीवी वर्ग एक तो उच्च पदों पर, बहुत कम संख्या में हैं, और जो हैं भी वे बहुधा अपनी जाति के प्रति उदासीन पाये जाते हैं । जितने ऊँचे पद पर आसीन हुये होते हैं उतने ही उदासीनता वे अपने सजातीय लोगों के प्रति प्रदर्शित करते हैं। यहां तक वे अपनी जाति कुरमी तक बताने का साहस नहीं कर पाते । कुरमी जाति का अति प्राचीन काल से चला आया पुश्तैनी व्यवसाय कृषि है । कृषि कार्य क्या निकृष्ट है? जिससे उसका कर्त्ता भी निकृष्ट माना जाये । समाज के अन्य वर्ग के लोग उन्हें ऐसा न भी समझें पर वे स्वयं हीनता की ग्रंथि संजोये कभी अपने को ठाकुर या राजपूत कहते हैं या मात्र क्षत्रिय कहकर प्रश्नकर्ता या जिज्ञासु से पीछा छुड़ाने का प्रयास करते हैं । उनसे विनम्र निवेदन है कि शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सिर घुसाकर छिपाने से समस्या का समाधान कभी न हो सकेगा । वे स्वयं पहल करें और मौका मिलते ही अपनी कुरमी जाति स्पष्ट बतायें । यदि कोई व्यक्ति कुरमी जाति के सम्बन्ध में किसी प्रकार की भ्रान्ति रखते हों तो उसका सहज रूप से स्पष्टीकरण दे दें । कुरमी जाति, क्षत्रिय वर्ण की होने के साथ-साथ मंडल कमीशन की सूची में पिछड़े वर्ग में आती है और इसके काफी लोग रामानन्द प्रसाद कमेटी के तथा भारत सरकार की 8 सितम्बर 1993 की 27 प्रतिशत आरक्षण लागू करने की घोषणा के अन्तर्गत क्रीमीलेयर अथवा चिकनी परत वर्ग में आ गये हैं । इस स्पष्ट बात को बताने से उनका मनोबल बढ़ेगा, मानसिकता प्रबल होगी और समाज के लोगों की निगाहों में उनके प्रति आदर बढ़ेगा, बीच के फासले कम होगें ।

उदाहरण के लिये कायस्थ बन्धुओं के बारे में सोचिये । एक शताब्दी से पूर्व कायस्थों को 'शूद्र वर्ण' का कहा जाता था । कहा जाता है कि कलकत्ता उच्चन्यायालय तथा अन्य उच्चन्यायालयों ने इस आशय के निर्णय

भी दिये थे । स्वामी विवेकानन्द सन् 1893 में विश्व सर्वधर्म परिषद् में शिकागों में भाग लेकर, हिन्दू धर्म का कीर्तिध्वज सर्वत्र फहराकर जब कलकत्ता लौटे और देश में फिर उनके भाषण के कार्यक्रम जगह-जगह आयोजित होने लगे । कलकत्ता में ब्राह्मणों ने स्वामीजी को वेद मंत्रों को उच्चारण करने के लिये विरोध प्रकट करना शुरू किया, क्योंकि वे कायस्थ (शूद्र) थे । अतः उनके अनुसार ऐसा करना उन्हें वर्जित था । स्वामी जी ने पहले उसको वेसुना कर दिया, पर जब सहनशीलता की हद को दम्भी लोगों का विरोध लाँघने लगा, तब उनको उत्तर देना पड़ा । उन्होंने कहा कि वे उन चित्रगुप्त महाराज की सन्तति हैं जिनकी स्तुति करते हुये पुरोहित वर्ग प्रातः से शाम तक थकते नहीं । और द्विज वर्ण को चेतावनी भी दी कि वे सावधान हो जायें अन्यथा उनकी संतति को उनके उस दम्भ के दण्ड स्वरूप निकट भविष्य में अनेक तरह से बुरा समय झेलना पड़ेगा ।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि डा० हरवंशराय बच्चन ने अपनी आत्मकथा के रूप में एक पुस्तक लिखी है, उसका शीर्षक है **"क्या भूलूँ क्या याद करूँ"** उसमें अनेक बातें समाज द्वारा कायस्थों को घोर अपमानित करने की लिखी हैं कि कायस्थ होने के कारण जब वे बालक थे इलाहाबाद में एक शादी की दावत में परसी पत्तल से उन्हें उठाकर लोगों ने उन्हें उनकी जाति के लोगों की पंगत में बैठकर भोजन करने को कहा । कलकत्ता में कायस्थ रानी रासमणि देवी ने दक्षिणेश्वर में काली माँ का बड़ा भव्य मन्दिर बनवाया । माँ की मूर्ति स्थापित की गई पर कोई पुरोहित पूजा कर्म के लिये उनकी नौकरी करने को तैयार न हुआ । क्योंकि वे पुरोहित लोग कायस्थ स्त्री की नौकरी करना नहीं चाहते थे । वे तब ही वह करने को तैयार हुये , जब दक्षिणेश्वर मन्दिर-परिसर सहित रानी रासमणि देवी ने काली माँ के नाम दान दे दिया । अब मन्दिर का स्वामित्व कायस्थ स्त्री से निकलकर काली माँ पर पहुँचते ही पुरोहित वर्ग मन्दिर में पूजा कार्य का दायित्व लेने को सहर्ष तैयार हो गया ।

ऐसे अपमानजनक दौर से गुजर कर यही कायस्थ बन्धु अपनी मेहनत और शिक्षा के कारण आज उच्च पदों पर औरों से पीछे नहीं है बल्कि बहुत आगे है संख्या कम होने के कारण राजनीति को छोड़कर शहरी जीवन के हर क्षेत्र में अग्रणी हैं । द्विज न होते हुये भी वे समाज के अगाड़ी वर्ग में आज गिने जाते है । उनकी तरक्की का कारण शिक्षा के क्षेत्र में हर कायस्थ का उच्च शिक्षा ग्रहण करने का लक्ष्य है । इस लेखक के एक कायस्थ मित्र ने बताया कि उनकी जाति में शिक्षा को अधिक प्राथमिकता देते हैं । वे अपने बच्चों को बताया करते हैं - **"कायस्थ का बच्चा पढ़ा अच्छा, नहीं तो मरा अच्छा"** । इससे स्पष्ट पता चलता है कि कायस्थ लड़के-लड़कियों के जीवन में शिक्षा पर सर्वाधिक जोर दिया जाता है । और वे कामयाब भी होते हैं, गांवों में कृषक रूप में वे जरूर नहीं मिलेगें । हां वे पटवारी (आजकल लेखपाल), अमीन, आदि जरूर मिलेंगे व्यापार में भी बड़े उद्यमियों में बहुत कम हैं छोटे व्यापार में हो सकते हैं । अब देखने की बात है कि चाहें मनु की वर्ण-विभाजन व्यवस्था में प्रथम तीन स्थान इनके लिये न भी हो, चाहें एक शताब्दी पूर्व न्यायालयों ने इस जाति को शूद्र घोषित क्यों न किया हो, पर आज न ये अनुसूचित जातियों की सूची में हैं और न अब मंडल कमीशन की अन्य पिछड़े वर्गों की सूची में हैं । उन्हें स्वयं को कायस्थ बताने में लेशमात्र भी संकोच नहीं होता है । क्यों न कुरमीजन उपर्युक्त उदाहरणों से सीखें और आगे अपने जाति के सम्बन्ध में सतत मेहनत कर सही मार्ग का अनुकरण करें । जब तक जियें, शान से जियें, मान से जियें और समाज-देश हित में जियें ।

सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में अवध के कुरमी किसान अन्य लोगों को साथ लेकर कह उठे थे :-

"रिपु बलवंत देखि नहीं डरहीं,
एक बार कालहु सन लरहीं ।"

पच्चीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 25 वाँ अधिवेशन और रजत-जयन्ती महोत्सव 25, 26, 27 और 28 दिसम्बर 1958 ई० को महानगरी कलकत्ता के वेलिंगटन स्क्वायर नामक विशाल हरे-भरे पार्क में कलात्मक ढंग से सज्जित भव्य पंडाल बनवा के, श्रीमती विमला देवी देशमुख की अध्यक्षता में तथा कलकत्ता के प्रसिद्ध समाजसेवी श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह तथा पं० बंगाल कूर्मि क्षत्रिय समाज के अनेक पदाधिकारियों के सतत् प्रयत्नों तथा सहयोग से बड़ी धूम-धाम से सफलतापूर्वक आयोजित किया गया । महासभा के इतिहास में यह पहला अवसर था कि इसके अध्यक्ष पद को एक विद्वान महिला ने सुशोभित किया । वे महासभा के पूर्व अध्यक्ष डा० पंजाबराव देशमुख की पत्नी थी और महाराष्ट्र से राज्यसभा की सदस्या चुनी गई थी । इस अधिवेशन के महामंत्री श्री गुप्तनाथ सिंह थे ।

इस अधिवेशन में अधिकतर प्रतिनिधि और दर्शकगण् पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा और असम से आये थे किन्तु देश के अन्य प्रदेशों से भी काफी लोग पहुँचे थे । पंड़ाल में पच्चीस हजार व्यक्तियों के एक साथ बैठने की व्यवस्था की गयी थी । चारों दिन अधिवेशन के समय पंडाल खचाखच भरा रहा । कार्यकर्त्ताओं का अनुमान था कि लोगों की लगभग इतनी ही संख्या कलकत्ता भ्रमण पर निकली रहती थी । श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष तथा श्री लल्लन प्रसाद सिंह प्रधानमंत्री थे । इस अधिवेशन में भाग लेने स्त्रियां भी कलकत्ता के बाहर से सैकड़ों की संख्या में आस-पास के प्रदेशों से आयीं थीं । उनके स्वागतार्थ तथा आवास की व्यवस्था आदि के लिये जो सुशिक्षित स्त्रियों की समिति बनी थी, उसमें श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह की भतीजी, तथा इस लेखक की पत्नी, श्रीमती गीता जयसवार और पुत्री श्रीमती रमासिंह ने भी सक्रिय योगदान दिया था । ये दोनों उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय की छात्रायें थीं । इस पच्चीसवें महा-अधिवेशन का कार्यालय 40 गणेशचन्द्र एवेन्यू कलकत्ता में स्थित था ।

अध्यक्षीय भाषण में श्रीमती बिमला देवी देशमुख ने प्रतिनिधियों को बताया - "इस विशाल देश में भारत में कूर्मि क्षत्रिय समाज बहुत बड़ी संख्या में चारों ओर फैला हुआ है । स्थान, भाषा और परिस्थितियों की भिन्नता के कारण इस समाज के लोगों को भिन्न-भिन्न जातीय नामों से सम्बोधित किया जाता है । महाराष्ट्र में उन्हें मराठा, कुनबी, कुम्बी, कुलम्बी, कुलबन्दी कहते हैं । गुजरात में कणबी या कण्बी, कुलमी अथवा पाटीदार कहते हैं, मैसूर में वक्कलिगर, आंध्र में रेड्डी और मद्रास में कप्पू अथवा तैलंग कहते हैं । मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम और राजस्थान आदि स्थानों में कहीं-कहीं कुनबी, कहीं मल्ल और कुरमी आदि कहते हैं, पुराने जमाने में ये लोग देश की रक्षा का काम भी करते थे । जब लड़ाइयां कम हुई देश रक्षा का कार्य भी कम हुआ, तब ये लोग अधिकतर खेती करने लगे और अधिकांश लोग देहातों में रहने लगे । इसी प्रकार मुख्यतः यह समाज देहात में रहने वाला समाज बन गया है । देहात में रहने के कारण उनका पिछड़ापन, शिक्षा सुविधा के धन्धों में लगे रहने के कारण ही हुआ है । सभी देशों के कृषकों की यही हालत हैं । जिस कूर्मि क्षत्रिय समाज में बीर शिरोमणि-छत्रपति शिवाजी महाराज, विश्व विख्यात् कूटनीतिज्ञ माधव जी (महादजी सिन्धिया), महान देश भक्त और विश्वविख्यात प्रजातान्त्रिक प्रणालीविद् माननीय विट्ठलभाई पटेल (तब कहे जाने वाले प्रेसीडेन्ट पटेल), भारत के महान नेता और निर्माता लौहपुरुष सरदार बल्लभभाई पटेल एवं अन्य पुरुष पुंगवों का जन्म हो, उसके किसी भी अंग को किसी भी बात में पिछड़ा रहना कदापि उचित नहीं है । उसे अविलम्ब समुन्नत हो जाना चाहिए ।"

श्रीमती बिमलादेवी देशमुख ने आगे कहा-"हम आगे बढ़ें, पर दूसरे से ईर्ष्या-द्वेष करके अथवा उन्नति में बाधा पहुँचाकर या उनके पैर पीछे खींचकर नहीं । सब प्रकार के द्वेष-भावों को हटाकर सबके साथ मिलकर, सभी समाजों के साथ सौहार्द्र स्थापित कर अपने समाज की उन्नति करते हुये समूचे देश को भी सब प्रकार से उन्नत और मजबूत बनाने के लिये आगे बढ़ना चाहियें, और कल्याण के साथ दूसरों के उत्कर्ष और कल्याण की कामना करनी चाहिये यही हमारा भारतीय आदर्श है ।"

अध्यक्ष महोदय ने कुरमी-कृषकों को यह कहते हुये सचेत किया "कृषि-कर्मी को अब संभल जाना चाहिये। उनकी खेती की भूमि सरकार द्वारा शहरीकरण के नाम पर और पूँजीपतियों द्वारा औद्योगीकरण के वास्ते अधिकृत की जा रही है । खाद, पानी, डीजल की उचित व्यवस्था नहीं रहने के कारण मूल उद्योग कृषि अब स्वावलम्बन का व्यवसाय नहीं रह गया है ऐसी दशा में कृषकों को सहायक धन्धे में लग जाना चाहिए । अभी कृषि पर अधिक भार है । और उसका आधा भार उद्योग-धन्धों द्वारा कम होना आवश्यक है, तभी कृषकों को कुछ राहत मिल सकेगी । कृषि-उत्पादन से उदर-पूर्ति की मूल समस्या हल होती है, तो वाणिज्य-व्यापार और उद्योग-धन्धों से धन की उत्पत्ति होती है, जिससे मानव-जीवन सुखमय बीतता है । इसी से कहा जाता है कि व्यापार में लक्ष्मी बसती है । आज 10 बीघे वाला किसान दो जून भोजन भी अच्छी तरह से नहीं खा पाता , किन्तु चालीस हजार रुपये की पूँजी वाला व्यवसायी पंखे के नीचे इच्छानुसार मौज से खाता-पीता, सोता है ।"

श्रीमती देशमुख महोदया ने उपस्थित प्रतिनिधियों को प्रेरित करने के उद्देश्य से बताया "गुजरात के पाटीदार कूर्मि कृषि कला में जितने प्रवीण हैं, व्यवसाय में उतने ही पटु हैं । मफतलाल गगनभाई व्यवसाय संस्थान ने वस्त्रोद्योग के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की है । फेरी करके कपड़ा बेचते-बेचते मफ्तलाल करोड़पति हो गये । श्री भाईलाल दयाभाई अमीन ने बड़ौदा में कांच-उद्योग का कारखाना लगाकर काफी धन और ख्याति अर्जित की ।"

अध्यक्ष महोदया ने अपने भाषण में उपजाति-भेद की भर्त्सना करते हुये कहा- "हमें सब उपजातियों का अन्त करना है । और सिर्फ कूर्मि क्षत्रिय नाम की एक जाति रखनी है यह तभी हो सकता है कि जब हम अपनी सब उपजातियों में विवाह-सम्बन्ध करने लगें ।"

पाठकगण् ! इस पुस्तक में पहले पढ़ चुके हैं कि श्रीमती बिमलादेवी देशमुख विवाह से पूर्व ब्राह्मण-कन्या कुमारी बिमला वैद्या थीं, किन्तु अमरावती (महाराष्ट्र) के मराठा-कूर्मि कुल में जन्में, डा० पंजाबराव देशमुख से विवाह करके -'मनसा-वाचा-कर्मणा' वे भी पूर्णतः कूर्मि क्षत्रिय जाति की अभिन्न सदस्या बन गयी, और अपने पति के साथ-साथ और उनके निधन के पश्चात् भी वे इस जाति की उन्नति के लिये कितना सुन्दर सुझाव प्रतिनिधियों के सम्मुख प्रस्तुत कर रही थीं । उन्होंने संसद सदस्या के रूप में भी विशिष्ट ख्याति अर्जित की थी ।

इस अधिवेशन में कई प्रस्ताव पारित किये गये, उसमें सबसे महत्वपूर्ण था जातीय पत्रिका प्रकाशन को सर्वसम्मति से स्वीकृति मिलना । उसी समय प्रकाशन स्थापित करने के लिये प्रचुर राशि भी पंड़ाल में उपस्थित प्रतिनिधियों से तुरन्त एकत्र हो गयी, जो कि दस हजार के लगभग थी । इस 25 वें अधिवेशन के अवसर पर 'रजत जयन्ती-स्मृति-ग्रंथ' महासभा के महामन्त्री श्री गुप्तनाथ सिंह के प्रधान सम्पादकत्व तथा स्वागताध्यक्ष श्री लक्ष्मणचन्द्र सिंह जी द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से प्रकाशित किया गया । इस ग्रन्थ का लोकार्पण तथा विमोचन, श्रीमती बिमला देवी देशमुख द्वारा किया गया ।

श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह जी के निवास स्थान, 41-सी०, डायमण्ड हारबर रोड कलकत्ता-700027 से ही महासभा की मुख्य मासिक पत्रिका का 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' प्रकाशन प्रारम्भ किया गया । श्री गुप्तनाथ सिंह यद्यपि स्थायी तौर पर बनारस रहते थे, पर वे कलकत्ता आते-जाते रहते थे । वे इसके प्रधान सम्पादक बने, वैसे बाकी सारा कार्य श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह और उनके कई सहयोगी समय से पूरा करते रहते थे । पत्रिका इस प्रकार बड़ी रोचक बनी और उसने पाठकों की प्रशंसा अर्जित की, और अनेक वर्षों तक बिना रुकावट वह कलकत्ता से निकलती रही । श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह के ज्येष्ट भ्राता और इस लेखक के ससुर, श्री लक्ष्मी नारायण सिंह के परिवार का भी पास में निवास है । उनके पुत्र श्री बद्रीनारायण सिंह का निधान हो चुका है, एक मात्र पौत्र राजीवसिंह इंजीनियर हैं ।

जब श्री गुप्तनाथ सिंह महासभा के महामंत्री पद से हट गये और उनका स्थान भंजनगर (गंजाम) उड़ीसा में हुये 31वें अधिवेशन में, पटना निवासी श्री सिद्धेश्वर प्रसाद जी ने ले लिया, उसी अधिवेशन में पारित प्रस्ताव के परिणामस्वरूप 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' 18 वर्ष अपने जन्म स्थान कलकत्ता से निकलने के बाद सन् 1976 में नये महामंत्री के निवास से पटना से निकाला जाने लगा । वहां से इन पत्रिका को विशेष आग्रह करके श्री राजेन्द्र कुमार, गीता प्रिंटिंग प्रेस, हरदेवगंज, कन्नौज ले गये, पर वे भी ज्यादा दिन इसे चला न पाये । सन् 1983 में

बनारस-वासी डा० बलिराम सिंह बम्बई अधिवेशन में महासभा के नये महामन्त्री निर्वाचित हुये । तब से यह पत्रिका कन्नौज छोड़ कर वाराणसी से डा० बलिराम सिंह के प्रधान सम्पादकत्व में "सरदार पटेल स्मारक एवं निवास संस्थान" वाराणसी से निकाली गयी । उसके सम्पादक मंडल में इस लेखक का नाम भी रहा था । फिर जब सन् 1991 के पटना अधिवेशन के बाद से महासभा के महामन्त्री फिर बदले गये, वर्तमान महामंत्री श्री जगदेव प्रसाद कनौजिया हैं, अतः वर्तमान में यह पत्रिका उनके निवास स्थान : 118/4 साइट न० 1, किदवई नगर, कानपुर-20811 से प्रकाशित हो रही है । "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" का अब तक का स्वर्णिम काल 18 वर्ष के निरन्तर कलकत्ता से हुये प्रकाशन का रहा है, उसके बाद वह यायावर-रूप में यहां से वहां, और वहां से कहीं और के अनिश्चित जीवन से गुजर रही है । गत् 36 वर्षों में भी अब तक इसका कोई स्थायी प्रकाशन केन्द्र नहीं बन पाया है । और न अपना मुद्रण प्रेस है । श्री कनौजिया जी ने इसके स्थायी कोष के लिये पत्रिका आजीवन सदस्यता के 300/- लेकर काफी आजीवन सदस्य बनाये हैं । पांच लाख रुपये इक्टठे करने का उनका लक्ष्य शीघ्र पूरा होने की आशा है। यह कोष राष्ट्रीयकृत बैंक में जमा होना चाहिए उसका वे बराबर उल्लंघन करते आ रहे हैं जबकि महासभा की नियमावली में इस बिन्दु पर स्पष्ट आदेश दिया हुआ है तथा कार्यकारिणी समिति की बैठकों में उन्हें उसके पालन करने पर जोर दिया जाता रहा है । पत्रिका में इस समय हरेक लेखक के भेजे लेख नहीं छापे जाते हैं, यह चिंता की बात है । पत्रिका सारे कूर्मि समाज का दर्पण है ।वे महासभा के विधान का उल्लंघन करते रहते हैं ।

राष्ट्रीय गतिविधियां

इस अधिवेशन के दशक में राष्ट्रीय स्तर पर दूरगामी परिणाम वाली अनेक राजनैतिक घटनायें घटी । आन्ध्र प्रदेश की मांग के समर्थन में पोत्ती श्रीरामुलु ने अनशन करके प्राण दे दिये । इससे सरकार को यह मांग स्वीकार करनी पड़ी और अक्टूबर 1953 में तेलुगुभाषी आन्ध्रप्रदेश का विधिवत् निर्माण हुआ । इससे भाषावार राज्यों की मांग ने जोर पकड़ा । इन मांगों पर विचार करने के लिये सरकार ने दिसम्बर 1953 में, "राज्य पुनर्गठन आयोग" की नियुक्ति की । इसने खूब-जाँच-पड़ताल के बाद सन् 1955 में अपनी रिपोर्ट दी । इसने भाषा के आधार का सिद्धान्त स्वीकार किया और राज्यों के तदानुसार पुनर्गठन की सिफारिश की । कुछ हेर-फेर के साथ ये सिफ़ारिशें स्वीकार की गई, और सन् 1956 में इसके अनुसार राज्यों का पुनर्गठन हुआ, किन्तु कुछ बहुभाषी राज्य तब भी छूट गये थे । वहां भी आन्दोलन चले, जिसके परिणामस्वरूप सन् 1960 में द्विभाषी बम्बई राज्य को तोड़कर महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों की स्थापना की गई और सन् 1966 में पंजाब और हरियाणा को अलग राज्य कर दिया गया । इस प्रकार क्षेत्रीय भाषा को आधार मानकर नये राज्यों की सीमाओं के निर्धारण करने से क्षेत्रीय वाद को बहुत बढ़ावा मिला । उत्तरी अमेरिका का मानचित्र देखिये । राज्यों की सीमायें मानों स्केल रखकर सीधी खेंच दी गई हैं । इस तरह वहां क्षेत्रीयवाद उत्पन्न न हो सका ।

रूस में एक शताब्दी से भी काफ़ी पूर्व ज़ार (Czar) का जमाना था, उनसे कहा गया कि रेलगाड़ी की ईजाद के बाद रूस में रेल लाइन पूर्व के समुद्र तट पैसेफिक महासागर से मध्य रूस से गुजरते हुये सीधे पश्चिम में सीमा तक पहुँचानी है उसके लिये ज़ार से राय पूछी गयी, रूसी सम्राट ने रूस के मानचित्र पर पूर्व-पश्चिम एक सीधी लकीर खींच दी, वही मानकर विश्व की सबसे सीधी और लम्बी रेल लाइन बिछाई गई ।

श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह का जीवन वृत्त

आपका जन्म सन् 1906 ई० में पश्चिमी बंगाल के चौबीस परगने के मीठापुकुर क्षेत्र (आज यह कलकत्ता नगर निगम के अन्तर्गत है) के भद्रासन नामक स्थान पर हुआ था । आपके पिताजी का नाम श्री रामनरायन महतो था ।

श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह के पितामह श्री परमेश्वरी महतो, बिहार के दीघाघाट नामक स्थान से, अपनी पत्नी श्रीमती झुमिया देवी के साथ लुटिया-सत्तू गमछे में बांधकर, उज्जवल भविष्य के सपने संजोये, उन्नीसवीं सदी के मध्य में, जाब चारनॉक (Job Charwack) की बसाई नगरी कलकत्ता में अपना भाग्य आजमाने जा पहुंचे । वे

छब्बीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 26 वाँ अधिवेशन 25, 26, 27 और 28 फरवरी 1960 को उड़ीसा राज्य के मयूरभंज जनपद के अन्तर्गत रायरंगपुर नामक स्थान पर, श्री रामदीन गौर, आई० ए० एस० (सेवानिवृत्त), तत्कालीन मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी नगर निगम जबलपुर (मध्य प्रदेश) तथा भूतपूर्व रेवेन्यू कमिश्नर (म. प्र.) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। उड़िया कुरमी जनों एवं नारी-शक्ति ने बड़ा उत्साह प्रदर्शित कर काफी बड़ी संख्या में अधिवेशन में भाग लिया। इनके अतिरिक्त कलकत्ता के प्रसिद्ध समाजसेवी, श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह के नेतृत्व में पश्चिमी बंगाल से बहुत बड़ी संख्या में प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया था । बिहार, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश से भी स्नेही कुरमीजन लम्बी-लम्बी यात्रायें करके उस अधिवेशन में भाग लेने पहुँचे थे ।

अधिवेशन की उद्‌घाटनकर्त्ती, पूर्व अध्यक्षा श्रीमती बिमला पंजाबराव देशमुख, राज्य सभा सदस्या थीं । अमरावती (महाराष्ट्र) से वहां पहुँचकर उन्होंने मराठों का कुरमियों के प्रति भ्रातृभाव का प्रत्यक्ष साक्ष्य प्रस्तुत किया । इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष स्थानीय सामाजिक कार्यकर्त्ता, झूमर संगीत-सम्राट, श्री गिरीशचन्द्र महान्तो थे। स्वागताध्यक्षीय भाषण में श्री महान्तो ने रायरंगपुर और आस-पास के अंचल के कुरमियों के बारे में तथा उत्कल कूर्मि क्षत्रिय संघ के इतिहास और कार्य-कलापों पर विस्तार से प्रकाश डाला । उन्होंने प्रतिनिधियों की करतल ध्वनि के मध्य यह घोषित किया कि उत्कल के विभिन्न अँचलों में लगभग दस लाख कूर्मिक्षत्रिय बास करते हैं । उद्‌घाटनकर्त्री श्रीमती बिमला देशमुख ने कहा कि कुरमियों की उपजातियों को संगठित होकर एक सूत्र में सम्बद्ध होने का समय अब आ गया है । और उन्हें शीघ्रातिशीघ्र संगठित हो जाना चाहिये । इस अधिवेशन में महिला सम्मेलन की अध्यक्षता श्री रामदीन गौर की धर्मपत्नी श्रीमती भगवती देवी ने की और छात्र सम्मेलन एवं युवा-सम्मेलन की अध्यक्षता क्रमशः श्री रामचन्द्र जी पटेल बड़ौदा एवं रामचन्द्र देशमुख ने की ।

अध्यक्ष माननीय श्री गौर जी को स्वजाति से अगाध प्रेम था । ज्ञात हुआ कि अधिवेशन को सफल बनाने के लिये उन्होंने स्वयं अन्य प्रदेशों के प्रमुख कुरमियों से पत्राचार द्वारा सम्पर्क स्थापित किया था, कर्मठ कार्यकर्त्ताओं के घर जाकर उनसे मिले थे और उन्हें लेकर उनके क्षेत्र के स्वजनों को बताया कि "यदि हमें अपना एक उन्नत और सम्पन्न समाज बनाना है तब हमें क्या-क्या करना होगा । और क्या त्यागना होगा । हम जागृत हुये संगठित हुये और उन्नति की तो हम राष्ट्रीय उत्कर्ष में महान योगदान देंगें । हमें एक अच्छा नागरिक भी बनना है । हमें कुरमियो में उपजातियों का अन्त करना है और सिर्फ कूर्मि क्षत्रिय नाम की एक ही जाति रखनी है । यह तभी हो सकता है जब हम अपनी सब उपजातियों में विवाह सम्बन्ध करने लगें ।"

विविध प्रसंग

प्रसिद्ध इतिहासकार बी० सी० मजूमदार ने "औरिया इन मेकिंग" नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि कूर्मि जाति के लोग मौजूदा उत्कल प्रान्त के वामिन घाटी के रायरंगपुर अँचल में बास करते थे । वे लोग इस इलाके के अधिनायक की तरह प्रतिष्ठित थे ।

"भारतेन्दु के निबन्ध" लेखक केसरी नारायण शुक्ल प्रकाशक नन्द किशोर एंड संस चौक, वाराणसी में पृष्ठ 164-166 पर 'कश्मीर कुसुम' निबन्ध के अन्तर्गत भारतेन्दु हरीशचन्द जी ने लिखा है :-

(क) कश्मीर के इतिहास में कल्हण कवि की 'राजतरंगिनी' ही मुख्य है । कल्हण ने जयसिंह के काल में सन् 1148 ई० में राजतरंगिनी लिखी ।

(ख) बहुतों का मत है कि काश्मीर शब्द कश्यप मेरु का अपभंश है । ये लोग कछवाहे हैं । जयपुर प्रान्त में सूर्यदेव-नाम के एक राजकुमार ने आकर आबू में राज्य का आरम्भ किया ।

(ग) पृष्ठ 120 पर लिखा है :-
कन्व ऋषि से कुनबी कहलाये ।

(घ) पृष्ठ 161-162 पर **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने आत्म-चरित्र सम्बंधी लेख में एक पात्र का उल्लेख करते हैं** :-
"इन सबों में से एक मनुष्य को आप लोग पहचान रखिये इससे बहुत काम पड़ेगा । यह एक नाटा-खोटा अच्छे हाथ-पैर का सावंले रंग का आदमी है, बड़ी मोंछ छोटी आंखे, कछाड़ा कसे, लाल पगड़ी बाधी, हरा दुपट्टा कमर में लपेटे, सफेद दुपट्टा ओढ़े हुये हैं । जात का **कुनबी है** इसका नाम होली है । होली आजकल मेरे बहुत मुँह लग रहा है । इसी से जो बात किसी को मुझ तक पहुँचानी होती है, वह लोग उससे कहते हैं ।"

उपर्युक्त उद्धरणों में दो जगह **'कुनबी'** शब्द का जातिवाचक रूप में प्रयोग किया गया है । एक जगह लिखा कि **कन्व ऋषि से कुनबी** कहलाये विद्वत पाठकगण् इससे स्वयं निष्कर्ष निकाल सकते हैं। पर इससे एक बात स्पष्ट पता चलती है कि उस अत्यन्त रुढ़िवादी तथा दकियानूसी जमाने के होते हुये भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे सम्भ्रान्त परिवार के व्यक्ति की निगाह में **'कुनबी'** जाति के प्रति हेय धारणा नहीं रही थी । अन्यथा न वे **"कन्व ऋषि से कुनबी कहलाये"** का उल्लेख करते तथा न **होली कुनबी** को अपना **मुँह-लगा** बताते और यदि किसी कारण वह बन भी गया था तो सबको उसका ढिंढोरा पीट-पीटकर उसका महत्व अपने उपर्युक्त **'आत्म चरित्र'** में कभी न करते । इससे भारतेन्दु जी के जमाने में जातीय-आधार पर **'कुनबी'** के बारे में वाराणसी के लोगों की जो मानसिकता रही थी उसे किसी भी प्रकार हेय नहीं कहा जा सकता ।

(ङ०) बाम्बे गजेटियर में अंग्रेज इतिहासकार सर जे० केम्पवेल के० सी० आर० ई० ने बताया है कि
1 महाराष्ट्र की शक्ति संस्थापन के मूल शिवाजी तथा उनके बहुत से सरदार थे ।
2 मराठा शब्द मूलतः संस्कृत के महाराष्ट्र शब्द का अपभ्रंश है । जिसका अर्थ है, महा=बड़ा+रथा = योधा, अर्थात् बड़ा योधा । **प्राचीनकाल में जो क्षत्रिय या कुर्मी दशसहस्त्र योद्धाओं के साथ संग्राम करने में समर्थ होते थे, वे महारथ प्राप्त अर्थात् महारथी कहलाते थे । उन्हीं महारथियों के वंशधर महाराष्ट्र में अब मराठा, कुरमी, कुनबी कहलाते हैं ।**

(च) सर यदुनाथ सरकार ने स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है कि **मराठे वास्तव में ऊँचे दरजे के कुनबी हैं । (दी इन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका,** वाल्यूम 13, पृष्ठ 5, 7, 13)

सत्ताईसवाँ अधिवेशन

ये अधिवेशन दो भिन्न स्थानों पर आयोजित हुए अतः दोनों का उल्लेख नीचे किया गया है ।

(क) दिनांक 26, 27, 28, 29 मई 1961 को होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में बैतुल के सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्री कृष्णकुमार देशमुख की अध्यक्षता में महासभा का 27 वाँ अधिवेशन आयोजित किया गया । महासभा के प्रधान मन्त्री श्री गुप्तनाथ सिंह थे और अधिवेशन के उद्घाटनकर्ता पूर्व अध्यक्ष, श्री रामदीन गौर, आई० ए० एस० (सेवा निवृत) थे, जिन्होंने कुरमी समाज के सर्वांगीण विकास के लिये बड़े लाभप्रद उपाय सुझाये । अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष श्री नन्दकुमार देसाई थे । इस अधिवेशन में छात्र सम्मेलन तथा किसान सम्मेलन भी बड़े सुचारु ढ़ंग से सम्पन्न किये गये । नये-नये लोगों को अपने विचार रखने का अवसर मिला।

(ख) इस अधिवेशन में लगभग 6 माह पूर्व 27 और 28 दिसम्बर 1960 बिहार राज्य के तत्कालीन दरभंगा जिले और अब मधुबनी के सौरठ ग्राम में, "कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर" पत्रिका के सम्पादक श्री शिवराम सिंह, निवासी चुप्पेपुर, बाराणसी कैण्ट की अध्यक्षता में कुछ लोगों ने उसे महासभा का 27 वाँ अधिवेशन कहकर आयोजित किया। इस अधिवेशन में पटना के डा० बटेश्वर प्रसाद, बाद में एम० एल० सी० (बिहार) प्रधानमंत्री मनोनीत किये गये। कूर्मिक्षत्रिय बन्धुओं के अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण भी इस अधिवेशन में सम्मिलित हुये । स्वजातीय विद्वान श्री युगुल किशोर जी ने अपना अभिभाषण संस्कृत में दिया ।

डा० बटेश्वर प्रसाद के प्रधानमंत्री चुने जाने को लेकर आपस में मनमुटाव उत्पन्न हो गया । बात यहां तक बढ़ी कि कलकत्ता के कुछ व्यक्तियों ने प्राणपण से विघ्न डालने की कोशिश की किन्तु अनेक उत्साही भाइयों ने इसे सफल बनाने में कुछ उठा नहीं रखा जिससे महासभा का अधिवेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सका ।

यहाँ यह अत्यन्त महत्वपूर्ण और विचारणीय बिन्दु है कि महासभा के मंच से अनेक पदाधिकारीगण अपने दीर्घ भाषणों में बड़ी-बड़ी बातें और नसीहतें देते हैं, पर वे स्वयं अपने आचरण में उसका उल्लंघन निःसंकोच करते हैं, इसलिये उनके कथन पर लोग उचित ध्यान नहीं देते । ऐसे समाज-सेवकों के लिये ही फारसी में कही गयी एक कहावत प्रसिद्ध है - "ख़ुदरा फजीहत, दीगरा नसीहत," जिसे हिन्दी में इस चौपाई द्वारा स्पष्ट किया गया है :-

"पर उपदेश कुसल बहुतेरे,
जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।"

महासभा का अपना पंजीकृत विधान है और नियमावली है पर हाल के कुछ वर्षों से उसका पालन होते कम देखा गया है । और उल्लंघन अक्सर किया जाता है, विशेष करके जब महासभा के पदाधिकारियों का चुनाव, मनोनयन तथा कार्यकारिणी समिति का गठन किया जाता है । एक लॉबी बन गई है जो अपने को किंग-मेकर होने का दावा करते हैं वे महासभा के अधिवेशन से पूर्व ही किसको क्या बनाना है या क्या बनना है यह बारा बांट कर डालते हैं फिर अपने हथकंडों से उसे महासभा की भौचक्की जनसभा से चतुरता से पारित कराकर अपने मनमाने ढ़ंग से महासभा पर अपना नियन्त्रण कायम रखते हैं । स्वजातीय जरा गौर करें तो उन्हें स्वयं गत अधिवेशनों के कार्यकलापों से उपर्युक्त कथन की सच्चाई महासभा के सम्बन्ध में पता चल सकती है ।

समाज के जागरूक शुभ चिन्तकों को चाहियें कि वे संगठित होकर महासभा के अधिवेशन के चुनाव सहित सभी कार्यक्रम, उसके विधानानुसार तथा नियमावली के अनुरूप होने दें, और परदे के पीछे किंग मेकर लॉबी, जो पहले ही से पदाधिकारियों को अपने हितानुसार निश्चित कर लेती है, उनको भविष्य में अपने हथकंडों में कामयाब न होने दें ।

महासभा के पदाधिकारियों को पहले अपनी "कथनी और करनी" के अन्तर को दूर करना होगा, तभी उनकी बात या सलाह को समाज के लोग मन लगाकर सुनेंगे और उस पर आचरण करने को प्रेरित होंगे। इस प्रकार जैसे 27 वाँ अधिवेशन दो गुटों ने, दो भिन्न-भिन्न स्थान पर आयोजित किया भविष्य में उसकी पुनरावृत्ति भी रोकी जा सकेगी। और महासभा पर कुछ अवांछित तत्वों के वर्चस्व पर अंकुश भी लगाया जा सकेगा। इस सतर्कता के बरतने से, महासभा के भावी अधिवेशनों में अनुशासन कायम हो सकेगा और समारोह के दौरान बदमिजाजी या गुटबाज़ी को रोका जा सकेगा, जिससे अधिवेशन भली-भांति सम्पन्न हो सकेंगे। जिन कुरमियों ने हाल के अधिवेशनों में भाग लिया है उन्होंने इस गड़बड़ी को जरूर देखा होगा और वे इस उपचार से सहमत होंगे।

सौरठ ग्राम (वर्तमान में मधुबनी जिला, बिहार) में इस अधिवेशन का श्रीगणेश बड़े आकर्षक ढंग से हुआ था। पहले दिन अध्यक्ष महोदय श्री शिवराम सिंह जो को सजे हाथी पर आरूढ़ कराके मधुबनी से लगभग 9 किलोमीटर तक बड़े धूम-धाम से हज़ारों स्वजातियों की भीड़ के साथ लम्बे जुलूस में ले जाया गया। रास्ते भर बैंड बाजे मधुर धुनें बजाकर अधिवेशन में आये प्रतिनिधियों और दर्शकों का, मनोरंजन करने के साथ-साथ, कार्यक्रमों की विस्तृत सूचना भी देते जाते थे।

इस अधिवेशन में शाखान्तर विवाह का प्रस्ताव पारित किया गया और यह भी घोषणा की गयी कि दरभंगा शहर में एक छात्रावास बनाया जायेगा। स्वजातीय पत्रिका के संचालनार्थ शेयरों के विक्रय से एक प्रेस खोलने की भी स्वीकृति अधिवेशन में प्राप्त हो गई। सहरसा (बिहार) में अगला अधिवेशन आयोजित करवाने का निमंत्रण भी आया जिसे सहर्ष एवं सधन्यवाद स्वीकार कर लिया गया।

अध्यक्षीय भाषण में बाबू शिवराम सिंह ने, अपने हिन्दी में दिये भाषण में कृषि-कार्य में आधुनिक तरीकों को अपनाने तथा राजनीति में अधिकाधिक संख्या में अपना स्थान सुदृढ़ बनाते हुये, उसमें ऊपर के पदों पर आने का लक्ष्य बनाकर कार्य करने पर बल दिया। उनकी सलाह थी कि बिना राजनीति में अपनी पहचान बनाये और उस पर पकड़ मजबूत किये वगैर हमारी सामूहिक प्रगति तेज नहीं हो सकती। अधिवेशन के अन्त में डा० बटेश्वर प्रसाद को महासभा के प्रधानमंत्री चुने जाने को लेकर प्रतिनिधियों और पदाधिकारियों में आपस में बड़ा तीव्र मन-मुटाव उत्पन्न हो गया। बवंडर इतना बढ़ा कि कलकत्ता के कुछ प्रतिनिधियों तथा तत्कालीन प्रधानमंत्री, श्री गुप्तनाथ सिंह ने 27 वें अधिवेशन को पुनः मई 1961 में होशंगाबाद में आयोजित करने की घोषणा की। उन्होंने वह अधिवेशन आयोजित किया जिसका विवरण पहले ही दिया जा चुका है। स्व० श्री ध्रुव नारायण सिंह ने 5 नवम्बर 1983 को डा० बटेश्वरप्रसाद, भूतपूर्व सदस्य बिहार विधान सभा, पशुपति निवास, बन्दर बाग, फ्रेजर रोड, पटना-1 को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि 'उक्त अधिवेशन' का पूर्ण विवरण तथा प्रधानमंत्री के रूप में अपने क्रियाकलापों का पूर्ण विवरण मेरे पास भेजने की कृपा करें।

डा० बटेश्वर प्रसाद, अध्यक्ष, **बिहार राज्य कूर्मि क्षत्रिय सभा** (पटना) ने अपने 20 नवम्बर 1983 के उत्तर में स्व० श्री ध्रुव नारायण सिंह (देखिये इनकी लिखित लघु पुस्तिका, **"महासभा का कार्यालय"**, प्रथम संस्करण, मई 1984, प्रकाशित **सत्य प्रकाशन, आगरा**-282002 द्वारा) को लिखा था कि - सत्यता यह है कि अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा का 27 वाँ महाधिवेशन बिहार राज्य के दरभंगा जिले (तत्कालीन और अब मधुबनी जिला के सौराठ ग्राम में बहुत ही धूम-धाम से हुआ था। यह स्वर्गीय ठाकुर शिवराम सिंह (मोहल्ला चुप्पेपुर पोस्ट वाराणसी कैण्ट, जिला वाराणसी) की अध्यक्षता में 27 और 28 दिसम्बर 1960 को सम्पन्न हुआ था और उसमें मैं सर्वसम्मति से प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुआ। किन्तु कलकत्ता वालों और स्वर्गीय श्री गुप्तनाथ सिंह, तत्कालीन प्रधान मंत्री, आदि में बहुत ही मतभेद हो जाने के कारण महासभा दो दलों में विभक्त होने लगी और दूसरा दल 27 वाँ महाधिवेशन अलग करने लगा, जिसका सही रिकार्ड उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। अतः मैंने बीच-बचाव करके सभी को आपस में मिलाया और स्वेच्छा से बहुत दिनों बाद प्रधानमंत्री-पद से त्यागपत्र भी दिया। दूसरे दल ने

अधिवेशन को कहाँ मनाया, कब मनाया, कैसे मनाया, इसकी खोज मैं कर रहा हूँ। जुलाई 1975 में पटना में प्रलयांकारी बाढ़ में सामान की बहुत क्षति हुई और हम लोगों का निजी रिकार्ड भी उस बाढ़ में नष्ट हो गया। अतः इतना पुराना अभिलेख प्रस्तुत करना संभव नहीं है। महासभा के समानान्तर अधिवेशन करने, 'मतभेद की खाई बढ़ाने और 'महासभा' को दो दलों में बाँटने" के लिये कौन-कितना जिम्मेदार है इसका आकलन तत्कालीन अभिलेखों की समीक्षा करने पर ही सम्भव है। पर वे अभिलेख दुर्भाग्य से अब तक उपलब्ध नहीं हो पाये हैं।"

बाद में यह सोचकर कि कहीं महासभा विभिन्न दो खेमों में विभाजित न हो जाय, पटना के डा० बटेश्वर प्रसाद ने बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होंने, दोनों दलों को आपस में मिलकर महासभा का सुदृढ़ संगठन बनाने के उद्देश्य से स्वयं निर्वाचित प्रधानमंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया। इस प्रकार महासभा में जो दो दल बन गये थे वे फिर एक हो गये और आपसी मनमुटाव भी समाप्त हो गया। डा० बटेश्वर प्रसाद की महान सेवाओं के लिये कुरमी जाति सदैव उनकी कृतज्ञ रहेगी।

इस प्रकार महासभा के प्रधानमंत्री, **श्री गुप्तनाथ सिंह** ही बने रहे। और होशंगाबाद में मई 1961 में आयोजित 27 वें अधिवेशन को मान्यता प्रदान कर दी गई। श्री गुप्तनाथ सिंह का प्रधानमंत्रित्व काल महासभा के 31 वें अधिवेशन [23 से 25 मई 1976 को भंजनगर, जिला गंजाम (उड़ीसा)] तक चल पाया जहां वे बीमारी के कारण से उपस्थित न हो सके और **प्राचार्य श्री सिद्धेश्वर प्रसाद (पटना निवासी)** नये महामंत्री चुने गये। अब प्रधानमंत्री पद का नाम बदलकर महामंत्री कर दिया गया। और आगे उसी रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है। वर्तमान में श्री जे० पी० कनौजिया, बिना महासभा की स्वीकृति लिये, स्वतः अपने को महासचिव लिखने लगे हैं। श्री कनौजिया के कार्यकाल की एक उपलब्धि यह भी है कि **महासभा के विधान एवं नियमावली** का पंजीकरण, **सोसाइटी के रजिस्ट्रार उत्तर प्रदेश, के कानपुर कार्यालय के, पत्र सं०** 2484 दिनांक 10 अगस्त 1994 द्वारा किया गया। इस प्रकार **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** का अपनी स्थापना के प्रथम शताब्दी वर्ष में **नवीनतम पंजीकरण संख्या** 43/1994 तथा संलग्न फाइल संख्या आई बी (IV)-4552 है।

जून 1976 के मासिक **'कूर्मोदय'** में प्रकाशित और डा० के० के० वर्मा द्वारा अपनी पुस्तक में उद्धृत सन् 1948 में जारी किये गए उपयुक्त परिपत्र में श्री गुप्तनाथ सिंह ने अपनी 'इच्छाओं के विरुद्ध' प्रधानमंत्री-पद के 'कार्यभार के वहन करने के लिये राजी' होना प्रदर्शित किया था। शायद 28 वर्षों तक लगातार वे अपनी इच्छाओं के विरुद्ध ही मई 1961 में होशिंगाबाद में समानान्तर अधिवेशन कर महासभा को दो भागों में विभक्त तक करने के लिये राजी हो गए। श्री ध्रुव नारायण सिंह वर्मा अपनी लघु पुस्तक 'महासभा का कार्यालय' के पृष्ठ 21 पर लिखते हैं "भंजनगर अधिवेशन सन् 1976 के अवसर पर यदि बीमारी के कारण चलने-फिरने में असमर्थ न हुए होते, तो शायद वे (श्री गुप्तनाथ सिंह) अपनी इच्छाओं के विपरीत पुनः प्रधानमंत्री का कार्य भार सम्भालने के लिये राजी हो जाते और अन्तिम सांस तक महासभा की सेवा करते। अपने प्रधानमंत्री-पद से मुक्त होने के 14 माह बाद 16 जुलाई 1977 को श्री गुप्तनाथ सिंह का देहान्त हो गया, लेकिन उन्होंने अपने कार्यकाल के 28 वर्षों तक महासभा के खर्चे पर इकट्ठे किये गये आल्मारियों भरे अभिलेखों में से 'कागज का एक टूक' भी नव-निर्वाचित महामंत्री प्राचार्य श्री सिद्धेश्वर प्रसाद को नहीं दिया। महासभा के अभिलेखों को न देने का बहाना खोजने के उपाय रूप में ही उन्होंने छल-छद्म की भाषा से परिपूर्ण उपर्युक्त परिपत्र को सन् 1948 में जारी करने का मिथ्या प्रचार किया था।" महासभा के तथा उसके पदाधिकारिओं के बारे में स्व० श्री ध्रुव नारायण सिंह वर्मा की लघु पुस्तकों में काफी चर्चा की गई है। और उसमें दोनों की खामियों पर दो टूक शब्दों में प्रकाश डाला गया है। जो महासभा के शुभचिन्तक हैं उन सब लोगों को श्री वर्मा की पुस्तकों का गम्भीरता से अध्ययन करना चाहिये, जिससे महासभा का कार्य सुचारु रूप से संचालित किया जा सके और पदाधिकारीगण अपने कार्य-कलापों में महासभा की नियमावली का उल्लंघन भविष्य में न कर सकें।

अट्ठाईसवाँ अधिवेशन

महासभा का 28 वां अधिवेशन 10, 11 और 12 दिसम्बर 1966 को नागपुर (महाराष्ट्र) में पूर्व काल के चौबीसवें अधिवेशन, हारामऊ (पुखरावाँ) - कान्पुर के अध्यक्ष डा० खूबचन्द बघेल जी सदस्य राज्यसभा की अध्यक्षता में आयोजित हुआ । अधिवेशन के उद्घाटक माननीय श्री अशोक मेहता जी, तत्कालीन योजना मंत्री भारत सरकार थे ।

यह महासभा का 28 वां तथा अखिल कुणबी समाज का पहला संयुक्त अधिवेशन था । अन्य गणमान्य उपस्थित व्यक्तियों में उल्लेखनीय नाम पूजनीय संत तुकड़ोजी महाराज, वंदनीय श्री गुलाब बाबा, स्वामी आत्मानंद जी महाराज तथा स्वागत समिति के अनेक सम्माननीय सदस्यगण के हैं । इन दोनों संयुक्त अधिवेशनों के स्वागताध्यक्ष श्रीमान मारोतराव विठोबाजी उपाख्य बाबासाहेब निकम, एडवोकेट, नागपुर उच्च न्यायालय थे ।

अध्यक्ष डा० खूबचन्द बघेल जी ने बताया कि देश की बदलती परिस्थितियों में किस प्रकार हिन्दी भाषी कुरमियों, महाराष्ट्र के मराठा बन्धुओं एवं कुणबियों, गुजरात के पाटीदार-पटेल, रेड्डी, नायडू आदि कम्मा, वक्कलिगर बन्धु संगठित होकर अपनी-अपनी उन्नति करें साथ में समाज की तथा महासभा की उपयोगिता को बढ़ाने में भी सहयोग दें । उद्घाटनकर्ता प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री अशोक मेहता ने स्वतंत्र भारत की उन्नति समाजवाद द्वारा कैसे हो सकती है, इसके आवश्यक बिन्दुओं पर प्रकाश डाला । सबको मानवीय मूल्यों में वृद्धि तथा आचरण और दृष्टिकोण में अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता रहित होने के लाभों को समझाया। 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' को ध्यान में रखकर यदि हम आगे बढ़ेंगे, तब हमारे बढ़े कदम राष्ट्रहित में होंगे, सही दिशा में होंगे । इस अधिवेशन में जो भी प्रस्ताव आये उनका सारांश था कि मौजूदा परिस्थितियों में जबकि लगता है कि जातिवाद अपने दीर्घ जीवन की अंतिम सांसे ले रहा है, क्यों न कुरमी समाज राष्ट्रीयता के आदर्श को सम्मुख रखकर क्षुद्र जातीयता से विशाल जातीयता की ओर, "वसुधैव कुटुम्बकम्" की ओर, बढ़ने का संकल्प लेकर उस दिशा की ओर अग्रसर हो । इस अधिवेशन में मराठा बन्धुओं की संख्या इसलिये भी अधिक थी कि यह अ० भा० कू० क्ष० महासभा के 28 वें अधिवेशन के साथ अखिल कुणबी समाज का प्रथम अधिवेशन के रूप में संयुक्त आयोजन था ।

स्वागताध्यक्ष श्रीमान बाबासाहेब निकम का भाषण बड़ा सारगर्भित तथा हिन्दीभाषी कुरमियों के लिये अतिप्रेरक सिद्ध हुआ । उनके लम्बे भाषण के मुख्य अंश नीचे उद्धृत किये गये हैं :-

"हमारे देश में बारह मास में कोई न कोई त्यौहार मनाया जाता है लेकिन इन सब त्यौहारों में दशहरा और दीपावली का विशेष महत्व एवं स्थान है । इन्हीं त्यौहारों की उपमा देकर मराठी में एक कहावत प्रचलित है- "साधु संत ये ती धरा, तोचि दिवाली-दशहरा"-सार यह है कि हमारे घर जब भी साधु-संत आवें तभी हम दीपावली एवं दशहरा अनुभव करते हैं । मैं आशा करता हूँ कि आज का यह शुभ दिन, जैसे ये दोनों त्यौहार आज ही आये हों, अखिल कुणबी समाज तथा अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा ।

स्वागताध्यक्ष के नाते अपना भाषण शुरु करने से पूर्व इस जाति के उत्थान के लिये जिन महान विभूतियों ने अपना सारा जीवन व्यतीत किया, उनके आकस्मिक निधन से हुये दुःख को व्यक्त करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ । अपने आयुष्य का प्रत्येक क्षण जिसने कृषक-कुणबी-कूर्मि समाज के कल्याण के लिये खर्च किया ऐसे अमरावती निवासी डा० पंजाबराव देशमुख, एम० ए०, पी-एच० डी, बार-एट-लॉ, पूर्व मंत्री भारत सरकार तथा नागपुर के निष्ठावान कार्यकर्ता गोपलराव देशमुख को निर्दयी काल ने हमसे छीन लिया । इसलिये बड़े दुःख के साथ मैं उन्हें श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ ।

अब जिस नगर में यह संयुक्त अधिवेशन हो रहा है, उस नागपुर शहर के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी आप लोगों को करा देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ । रामायण काल में यह प्रदेश दण्डकारण्य था और भरतखंड की 'सुवर्णभूमि' के नाम से उल्लिखित होता था । सम्राट अशोक के काल में इस प्रदेश पर बौद्धधर्मी लोगों का आधिपत्य था । दण्डकारण्य में प्रवेश करने से पूर्व मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु रामचन्द्र ने जिस स्थान पर कुछ समय विश्राम किया ऐसा माना जाता है वाह 'रामटेक' नामक स्थल नागपुर से 25 मील दूर स्थित है । राजा नल की पत्नी दमयंती, श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मणी, अगस्त ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा, महाभोज, कुंति भोज, विदर्भ, ये सब इसी प्रदेश की संतान हैं, ऐसा उल्लेख मिलता है ।

ईसवी सन के पूर्व काल में इस प्रदेश पर नागवंशीय लोगों ने अपनी सत्ता स्थापित की । उनकी राजधानी 'नंदीवर्धन' नामक नगर में थी । वर्तमान नागपुर नगर और उसके समीपस्थ 'नागवर्धन' (नागार्जुन तालाब जो रामटेक के पास है) नाग लोगों के अस्तित्व का साक्षी है । नागपुर शहर में से बहने वाली नाग नदी और नागपुर शहर नाग राजाओं की स्मृति ही है । कालान्तर में इन नाग लोगों का विनाश हो गया और उनके बाद कमशः राष्ट्रकूट, कलचुरी, चालुक्य, परमार (पवार) लोगों ने इस देश पर राज्य किया । कवि कुलगुरु कालिदास ने रामटेक नामक स्थान पर कई दिन व्यतीत किये थे । और इस प्रदेश के इर्द-गिर्द जो निसर्गजन्य वनश्री है, उसे देखकर ही उन्हें 'मेघदूत' नामक काव्य-रचना की प्रेरणा मिली, ऐसी संशोधकों की राय है ।

सोलहवीं सदी से परमार (पवार) वंश का अस्त होने पर इस प्रदेश पर "गोंड" वंशीय राजाओं की सत्ता प्रस्थापित हुई । इस गोंड जमात को आदिवासी समझा जाता है । और इसी कारण इस प्रदेश को 'गोंडवन' या गोड़वाना के नाम से भी जाना जाता है । "गोंड आणि वाघाचे तोंड" ऐसी मराठी में प्रचलित एक कहावत है, जिसका अर्थ यह है कि गोंड लोग शेर के समान शूरवीर हैं । इस वन्य प्रदेश पर गोंड लोगों ने सैकड़ों वर्ष राज्य किया । उनकी सत्ता और शक्ति जब कमजोर हो गयी तो अन्त में मराठा-भोंसलों ने गोंड राजाओं से नागपुर की गद्दी ले ली । आज भी काफी संख्या में गोंड़ जाति के जमींदार इस प्रदेश में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

"सेना साहेब सूबा" इस खिताब से इतिहासकारों ने जिनका उल्लेख किया है ऐसे रघोजी भोंसले नागपुर वासी भोंसलों के पूर्वज थे । वे इस प्रदेश पर सन् 1731 से 1755 तक राज्य करते रहे । उनकी राजधानी नागपुर ही थी । वे स्वयं बड़े शक्तिशाली थे । उनके पश्चात् जानोजी, (सन् 1755 से 1772), रघोजी द्वितीय (1772 से 1816), परसोजी (1816 से 1817), मुधोजी (1817 से 1818), रघोजी तृतीय (1818 से 1853) और जानोजी द्वितीय आदि ने इस नागपुर प्रदेश पर शासन किया । जानोजी के काल में नागपुर शहर का काफी सुधार हुआ। वे कुशल शासक थे । परन्तु सन्तान न होने से तत्कालीन भारत के वाइसराय लार्ड डलहौजी ने यह राज्य 26 जनवरी 1854 को हस्तगत कर लिया । भोंसलों का करोड़ों रुपयों का खज़ाना, अलंकार, कागज़ात, और बहुत सा अन्य कीमती सामान अंग्रेज जबरन लूटकर ले गये । जाते समय उन्होंने राजमहल को भस्मीभूत कर दिया ताकि भोंसला वंशज कभी भी उनके खिलाफ सर न उठा सकें । सन् 1861 में महारानी विक्टोरिया ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से भारत की सत्ता अपने हाथ में ले ली ।

इस प्रदेश का काम-काज सुव्यवस्थित ढ़ंग से चलाने के लिये तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों ने नागपुर, छत्तीसगढ़ एवं निमाड़ तथा उसके इर्दगिर्द का नाग प्रदेश बनाकर उस पर चीफ कमीश्नर की नियुक्ति की । सन् 1903 में अस्सी लाख रुपयों के कर्ज़ में हैदराबाद के निजाम ने विदर्भ के छः जिले अंग्रेजों को दे दिये जो इस प्रदेश में शामिल कर दिये गये तथा उसे मध्य प्रदेश नाम दिया गया । सन् 1954 तक यह नाग-विदर्भ प्रदेश मध्य प्रदेश में शामिल था । तदुपरांत भाषानुसार प्रान्त पुनर्रचना के आधार पर सन् 1955 में इस प्रान्त का विभाजन हुआ तथा हिन्दी बहुभाषी महाकौशल के चौदह जिले बंबई प्रान्त में शामिल किये गये । महाराष्ट्र और गुजरात के अलग-अलग गठन के बाद नागपुर महाराष्ट्र की उपराजधानी बना दी गयी ।

विदर्भ शब्द के दो अर्थ किये जाते हैं । वि+दर्भ अर्थात् 'वि' याने विशेष अधिक और 'दर्भ' याने (तृण) घास अर्थात "जिस देश में घास अधिक मात्रा में पैदा होती है, ऐसा प्रदेश याने विदर्भ" लेकिन अर्थ सही नहीं है । इस प्रदेश में विदर्भ नाम का एक राजा हो गया । वास्तव में उसी के नाम पर इसका नामकरण 'विदर्भ' हुआ । इसी नाग-विदर्भ प्रदेश में कृषि की सेवा-सुश्रूषा करने वाला कृषक (कुलंबी-कुणबी) वर्ग बहुसंख्य है । कूर्मि याने कुणबी-कुलंबी (हिंदी में इसे ही कूर्मि कहते हैं) ।

कूर्मि याने तेज, बल प्राण, रस वीर्य, शुक्र, प्रभाव, शक्ति, क्षत्रिय, पृथ्वी, भगवान विष्णु का दूसरा अवतार याने "कूर्मावतार", दिवस, स्वर्ग, ब्रह्म देव और कश्यप । इन्हें इनु ये प्रत्यय लगाकर 'कूर्मिन' शब्द बना । यही सही माने में आद्य क्षत्रिय जाति है । कूर्मिः अर्थात् पृथ्वी और भूः अर्थात् "इससे युक्त वा इसका स्वामी", ऐसा "कूर्मि" । महाराष्ट्र, नाग-विदर्भ, खानदेश, कोंकण, मराठवाड़ा प्रदेशों में इसे ही कुलंबी-कुणबी कहते हैं । "कुलबीजं" इस संस्कृत शब्द से यह शब्द बना है तथा उसे आर्य क्षत्रिय के अर्थ में दक्षिण में उपयोग में लाया जाता है । लेकिन उत्तर भारत में इसे "कूर्मि" संज्ञा प्राप्त हुई । "सारे बीजों का कुल उदगम स्थान" ऐसा कुलंबी या कुणवी शब्द का अर्थ होता है । कोंकण और पश्चिम महाराष्ट्र कुलंबी, नाग-विदर्भ में कुणबी और खानदेश में "लेवा कुणबी" ऐसा हर जगह अलग-अलग नामाभिधान दिया गया है । इन्हें ही 'मराठा', 'देशमुख' और "पाटील (पटेल)" ऐसा भी कहते हैं । लेकिन वे कोई अलग जातियाँ नहीं हैं । कृषि व्यवसाय करने वालों को कुलंबी-कुणबी, युद्ध के मैदान में लड़ने वाले वीरों को "मराठा", विदर्भ के वासियों को "देशमुख" (याने देश का मुख) ऐसे नामाभिधान दिये गये । अर्थात् यह एक प्रकार की सनद या ख़िताब है । परन्तु अंग्रेजों का राज्य प्रस्थापित हो जाने पर सर्वत्र स्थिरता एवं शांति का वातावरण हुआ । परिणामतः लड़ाइयां बंद हुई । तदनंतर ईनामदारी, जागीरदारी ऐसे ख़िताब जिन घरानों को मिले ऐसे धनिकों ने खुद को "मराठा" कहलवाकर एक अलग ही जाति निर्मित की। परन्तु मराठा, देशमुख और पाटिल (पटेल) ऐसे नाम से आज जिन्हें जाना जाता है वे सब कुलंबी वा कुणवी ही हैं।

इस कूर्मि-कुण्बी जाति के बारे में वैदिक काल से ही अनेक पुरातन ग्रन्थों में साभिमान उल्लेख किया गया है, "कोटि चले कुलंबी के पीछे, कुलंबी नहीं काहू के पीछे ।।"

यह हिन्दी कहावत क्या बताती है ? करोड़ों लोग कुणवियों के पीछे दौड़ते हैं, लेकिन कुणवियों को किसी के पीछे दौड़ने की जरूरत नहीं । यह जाति स्वयं में पूर्ण है । हमारे मराठी भाषी प्रदेश में भी "बैलवाला सब दुनियां पालनवाला" ऐसा जो कहा गया है उसे कौन असत्य कहेगा ?

कृषि में कठिन परिश्रम करके धन, धान्य और दूसरी जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण करने वाला यह कूर्मि-कुणबी वर्ग कृषि में तल्लीन हो जाने के कारण शैक्षणिक क्षेत्र में अग्रगण्य नहीं हो सका । बारहों मास उसे खेती में ही परिश्रम करना पड़ा, इसीलिये उसे शिक्षा की ओर ध्यान देने का समय नहीं मिला । परिणामतः वह अशिक्षित एवं अज्ञानी रहा । अन्य कई जातियों ने उसके इस अज्ञान का मनमाना लाभ उठाया । एक ओर बुद्धिजीवी एवं सफेद पोश वर्ग ने उसे धार्मिक बंधनों में जकड़ लिया और दूसरी ओर बनिया तथा अन्य सेठ साहूकारों ने उन्हें आर्थिक संकट में डाला । अर्थात अन्य समाज का वह भक्ष्य ही बन गया । दरिद्रता मानों उनकी राशि में ही लगकर आई हो । खलिहान में अनाज आया रे आया, कि हुई मांगने वालों की मांग चालू । हर एक को जैसा जितना मांगा वैसा और उतना दिया तो- "कुणबी जैसा दाता नहीं" और जरा सी भी आनाकानी की तो- "मांगे बगैर देता नहीं" ऐसी बोलने की सभों की तैयारी । यह कहां का न्याय है ।

दाँव पेंच, चालकी, धूर्तता आदि ग्रामीण कूर्मि-कुलंबी-कुणबी समाज को मालूम ही नहीं हो पाये । जो बाहर है वही भीतर भी और जो भीतर वही बाहर भी । इसीलिये वह सबका शिकार बनता चला गया । अज्ञानवश तथा दरिद्रता के कारण उसकी अपनी सारी जमीन सेठ-साहूकारों के अधिकार में चली गई और एक समय कृषक काश्तकार कहलाने वालों को भूमिहीन होना पड़ा । ऐसे असंख्य कुटुंब इस प्रदेश (नाग-विदर्भ) में आपको देखने को मिलेंगे । कुणवियों की वाणी बहुत ही मधुर, तथा बताई हुई बातें श्रवणीय हैं । इसीलिये तो कहा गया है

कि **"धार बैठे कुणबी, उनकी बात बड़ी उमदी"**- यह कहावत असत्य है ऐसा कोई भी नहीं कह सकता।

अंग्रेजी साम्राज्य में इस जाति की बड़ी अवहेलना हुई। इसलिये मराठी में एक कविता लिखी गई जो इस प्रकार है :-

"शेतकरी दुःखी संसारी, तुज ठावे ईश्वरा।
बोलती भटें टोंचुनि, शब्द तें मनी, सुरीच्या धारा।।"

सारांश यह कि, हे **"प्रभो, तुझे मालूम है कि कृषक का संसार बहुत ही दुःखी एवं दरिद्र है और ब्राह्मण समाज बोली के बाण से उसके हृदय को टोंच-टोंच कर छननी बनाये जाता है।"** ऐसा उस काल में इस जाति की स्थिति का वर्णन आया है। सरकारी अधिकारी वर्ग गाँव में आया कि बिगारी (बेगार) के लिये काश्तकार कुणबी को तैयार रहना होता था। काश्तकारी के काम छोड़ दिन-दिन भर उनकी सेवा-सुश्रुषा में रहना, इसके बावजूद बैलगाड़ी भी अधिकारियों की खिदमत में रखना, ऐसी प्रथा हो गई थी। इसके खिलाफ़ काफ़ी असंतोष फैल गया और उसके विरोध में आवाज उठाई गई, परिणामतः यह प्रथा बंद हो गई।

स्वातंत्रतोत्तर काल में भारतवर्ष के संस्थान नष्ट किये गये। परिणामतः जमीनदारी जहागीरदारी-ईनामदारी-मालगुजारी आदि भी नष्ट हुये। नागपुर प्रदेश की मालगुजारी, जंगल और विदर्भ प्रदेश की पटेली के बहुतांश उन्हीं लोगों के ताबे में थे। इसलिये मालगुजारी आदि भी नष्ट हो जाने से कृषि-उत्पत्ति भी घटती गयी। केवल काश्तकारी से खर्च पूरा नहीं होता था। परिणामतः बहुत से कुणबी मालगुजारों को बच्चों की शिक्षा के लिये नागपुर जैसे शहर का आश्रय लेना पड़ा। इससे कुणबी समाज में शिक्षा का अच्छा प्रसार हुआ। आज इस समाज के बहुत से युवक पदवीधर हैं। उनमें कई वकील,, डाक्टर, प्राध्यापक और बहुत से सरकारी अधिकारी हैं।

कृषक वर्ग यदि सहयोग न दे तो पांचों उगलियां घी में रखने वाले ठेकेदार और दलालों की हालत क्या होगा। मराठी में एक कविता है। **"पेरील जै शेतकारी न कांहीं तै खावयाला मिलणार नाहीं"** भावार्थ यह है कि - **"यदि काश्तकार कुछ नहीं बोयेगा तो खाने के लिये किसी को कुछ भी नहीं मिलेगा।"** लेकिन **किसी को इस बात की जरा भी चिन्ता है क्या ? हृदय को चुभने वाली और एक बात है कि कुणबी-कूर्मि-कृषक वर्ग जो दिन रात खेतों में परिश्रम कर वर्षा, आंधी, तूफान, धूप आदि से लगातार जूझकर, मानव को जीवित रहने के लिये आवश्यक, अनाज और अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करता है, तथा जब इन्हें लेकर बाज़ार में पहुंचता है तो उसके पल्ले लाचारी और निराशा ही पड़ती है।**

मेरे देखने में आया है कि कुणबी समाज के कुछ सुशिक्षित युवक अपने आपको कुणबी के बजाय मराठा ही कहलवाते हैं। उन्हें ऐसा क्यों महसूस होता है कि यह मेरी समझ से परे है। इस बाबत मेरा तर्क यह है कि ऐतिहासिक कहानियां, उपन्यास और ड्रामा आदि में इस वर्ग का कुलंबी याने श्रीमंतो के यहां हल्के काम करने वाला **"रामागढ़ी वर्ग"** ऐसा उल्लेख करने में आया है। परिणामतः कुछ सुशिक्षित युवकों को अपने आपको कुणबी कहलवाने में लज्जा लगती है। लेकिन उनका ऐसा अनुभव करना गलत है। हमारे सुशिक्षित भाई कितने भी ऊँचे हो गये हों तो भी उन्हें अंग्रेजी कवि **"वर्डसवर्थ"** के काव्य में **"स्कॉय लॉर्क"** के समान होना चाहिये। कुणबी शब्द का सही अर्थ क्या है, उसकी परिभाषा क्या है, यह आप सुन चुके हैं। अतः आप कोई भी इसके बाद अपने आपको "कुणबी" कहलवाने में हिचकिचाहट न महसूस करें। हमारी जाति कनिष्ठ नहीं श्रेष्ठ है। नीच नहीं ऊँच है, अपवित्र नहीं पवित्र है। इतिहास काल में ऐतिहासिक कहानियों, उपन्यास, नाटक आदि में इस जाति को 'हलका काम करने वाला' ऐसा कहा गया है। केवल इसीलिये हमारी जाति कनिष्ठ नहीं कहलायी जा सकती। हल चलाना कोई खराब काम नहीं है। अब बुद्धिजीवी लेखक वर्ग ने ऐसा व्यंग्य चित्र खींचकर अपनी विद्वता का दुरुपयोग किया है। उनकी ये कल्पनाएं निराधार हैं। अतः उनकी ओर कोई ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है।

दोस्तो! आज जो यह कुणबी-कूर्मि समाज का अधिवेशन हो रहा है वह प्रान्तीय न होकर अखिल भारतीय

स्तर पर ही रहा है । वस्तुतः कुणबी-कूर्मि वर्ग भारतवर्ष के हर एक राज्य में बिखरा पड़ा है । और उसे प्रान्त, काल और भाषा के आधार पर अलग-अलग नाम दिये गये हैं । नाग-विदर्भ प्रदेश, मराठवाड़ा, पश्चिम महाराष्ट्र, खानदेश यहां जिन्हें कुलंबी-कुणबी, मराठा-देशमुख पाटील कहते हैं । उन्हें ही दूसरे राज्यों में कूर्मि, कुलवाड़ी, कापू, कट्टीगरा, रेड्डी नायडू, बक्कलिगर, विकालजीया, पाटीदार, पटेल इस नाम से जाना जाता है । यह समाज सारे भारतवर्ष में फैला हुआ होगा ऐसी हम महाराष्ट्र के समाज बंधुओं को जरासी भी कल्पना नहीं थी । देर से ही क्यों न हो, इस बात की अब हमें जानकारी हो गई, यह बड़े हर्ष की बात है ।

हम अपने पूर्वजों की ओर ध्यान दें । उन्होंने मुगलों को जड़ से उखाड़ फेका, इस बात का इतिहास साक्षी है । इस सिलसिले में सर यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित **"मराठों का इतिहास"** नामक पुस्तक का अध्ययन करें । उन्होंने स्पष्ट कहा है कि यदि इस समाज में हिसाब-किताब एवं लेखा-जोखा की क्षमता होती तो भारत का नक्शा ही बदल गया होता । सारांश यह है कि यदि हममें आत्म निरीक्षण तथा शैक्षणिक क्षमता होती तो हम भारत का स्वरूप ही बदल देते ऐसी शक्ति हमारे पूर्वजों में थी । उसी प्रकार आज भी अपनी प्रखर देश भक्ति और त्याग की प्रज्वलित भावनाओं से राष्ट्रोन्नति के काम में हमारा भी बहुत बड़ा हिस्सा है । यदि हमारी धमनियों में हमारे पूर्वजों का रक्त बहता हो तो आइये सामने, हम अपने कुशल संगठन से अपनी और देश की प्रगति में लग जायें । हमारे सामने, देश की प्रगति का महान कार्य पड़ा है ।

जो समाज परिस्थिति और समय को देखकर अपने में सुधार करने का इच्छुक नहीं है, वह पिछड़ा रह जायेगा । इसीलिये हर काल में समाज के प्रतिष्ठित विद्वान, विवेकी एवं दूरदर्शी लोग समाज को संगठित कर समाज में सुधार करने में प्रयत्नशील रहते हैं । इसी प्रकार हमारे समाज के विद्वान एवं प्रगतिशील विचार वाले लोगों में सन्त-शिरोमणि श्री तुकाराम महाराज के अनुसार- **"एकमेका सहाय करू, अवघे धरूं सुपंथ"** अर्थात एक दूसरे की मददकर हम सही मार्ग अपनायें, के तत्व के अनुसार **"सभी कुणबी एक"** यह उदात्त एवं विशाल ध्येय सामने रखकर, सभी उपशाखीय कुणबी बंधुओं को एकत्रित करके एक मजबूत संगठन निर्माण करने के उद्देश्य से **'अखिल कुणबी समाज'**. इस नाम की एक संस्था नागपुर में सन् 1945 ई० में स्थापित की गई । तब से यह संस्था नाग-विदर्भ क्षेत्र में कुणबी समाज के संगठन का कार्य कर रही है और इसी संस्था के तत्वावधान में यह अधिवेशन हो रहा है ।

सन्त-शिरोमणि तुकाराम जी महाराज

सन्त तुकाराम जी 1608 ई० में पूना के पास इन्द्राणी नदी के तट पर देहू ग्राम में पैदा हुये थे । वे जाति के मराठा-कुणबी थे । पिताजी का नाम बोल्होबा और माताजी का कनकबाई था । तुकाराम के पिता किसानी के अतिरिक्त महाजनी का व्यवसाय भी करते थे । एक बार उस क्षेत्र में दो वर्ष तक वर्षा न होने से भंयकर दुर्भिक्ष पड़ा । महाराष्ट्र में उस समय त्राहि-त्राहि मच गयी । लोग भूखों मर रहे थे। तुकाराम जी के पास जो भी खाद्यान्न था वह वे लोगों को भूख से बचाने के लिये बाँटते रहे । उनके घर में खाद्यान्न समाप्त हो गया । कहा जाता है कि उनकी पत्नी रुखमा ने भूख से 'रोटी-रोटी' कहते--कहते प्राण छोड़े थे । सारा धन भी तुकाराम ने जनता के दुःख दूर करने में बाँट दिया था । इसके बाद वे पूर्णतः वैराग्य की ओर बढ़ते चले गये । तुकाराम जनता के कवि और भक्तगायक बन गये । इसीलिये ग्रामीण जनता उन्हें अपना वाचस्पति मानने लगी ।

संत तुकाराम के ईष्ट, 'विट्ठल और रुकमणि' थे और उनकी भक्ति में लीन होकर वे अभंग और कीर्तन की रचना करते, जो उनके भक्तजन लिख लेते । उन्हीं अभंगों और कीर्तनों द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान का मधुर रस-संचार अपने अपार भक्तों में करते । साथ ही वे जनता को शूरवीर बनाने, जनहित के निमित्त त्याग बलिदान करने, दुष्ट, दुराचारियों का दमन करने तथा देश और धर्म की रक्षा के लिये मर मिटने की भी शिक्षा देते थे

वे अपने अभंगों (एक प्रकार का मराठी छन्द) द्वारा आह्वान करते :-

"तुकाम्हणे रणीं, जीव देतां लाभ दूणी मैं,"

(तुकाराम के अभंग 767)

अर्थात् "रण-भूमि में जो प्राणों की बलि देता है उसे दूना लाभ होता है।" उधर छत्रपति शिवाजी महाराज संत तुकाराम का बड़ा सम्मान करते थे। वे मुगलों तथा अन्य दुष्टों और आक्रमणकारियों से जूझकर 'मराठा स्वराज्य' स्थापित करने में जी-जान से लगे थे। संत तुकाराम अपने धार्मिक तरीके से शिवाजी महाराज को सफलता सुलभ कराने के लिये जनता को उनके प्रति वफ़ादारी रखने तथा रणबाँकुरे बनने की प्रेरणा देते थे। ब्राह्मण उनसे बहुत चिढ़ते थे। संत तुकाराम एक अभंग में प्रभु से कहते है - "नाथ अच्छा किया कि मेरा कुणबी कुल में जन्म हुआ, यदि ब्राह्मण कुल में जन्म ले लेता तो दम्भ से मर जाता।" ब्राह्मणों ने संत तुकाराम का बढ़ता मान-सम्मान देखकर उन्हें तरह-तरह से परेशान किया। उनके अभंग और कीर्तन लिखी पुस्तकों को चुराकर इन्द्राणी नदी में फिंकवा दिया। पर वे फिर संत तुकाराम को वापिस मिल गयी। कहते हैं कि इस चमत्कार से विरोधी ब्राह्मण भी उनके अनन्य भक्त बन गये।

महाराष्ट में संत तुकाराम के पद गाँव-गाँव में बड़ी श्रद्धा से गाये जाते हैं जैसे उत्तरी भारत में रामचरित मानस की चौपाइयां। उनकी मृत्यु बड़ी आश्चर्यचकित ढंग से होना बतायी जाती है। मराठी साहित्य को संत तुकाराम ने बहुत अलंकृत किया। मराठी उपन्यासों और नाटकों के नाम संत तुकाराम की प्रसिद्ध कहावतों पर रखे जाते हैं।

महासभा के 29वें अधिवेशन से पूर्व देश में कई महत्वपूर्ण घटनाएं घटी। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का निधन सन् 1964 के मध्य में हुआ। उनके मंत्रिमंडल के मंत्री और पूर्व गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री का एक बड़े साधारण कायस्थ परिवार में जन्म हुआ था। पिताजी की छाया कम उम्र में ही उनके ऊपर से उठ चुकी थी, मामा के घर मुगलसराय में रहकर उनकी प्रारंभिक शिक्षा हुई थी, शास्त्री जी की शिक्षा काशी विद्यापीठ वाराणसी में भी हुई। यू० पी० सरकार के प्रथम मुख्यमंत्री पं० गोविन्द वल्लभ पंत के विधान सभा सचिव के रूप में जीवन प्रारम्भ कर कुछ अरसे बाद पुलिस विभाग के मंत्री (गृहमंत्री) बने। पं० नेहरू इन्हें केन्द्र की मंत्रि परिषद में ले आये।

श्री लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बनने के बावजूद भी विनम्रता की मूर्ति बने रहे। उनकी वाणी मीठी और उनकी भाषा और भाव अहिंसामयी थे उनकी आंखों में विनय, आचरण में अपरिग्रहता झलकती थी। कुछ कुबुद्धि लोग उनके छोटे कद और नम्रता पर हँसते थे, पाकिस्तान रेडियो उन्हें धोतीप्रसाद कहकर परोक्ष रूप से उनकी खिल्ली उठाता था। कौन जानता था कि वह धोतीप्रसाद कहे जाने वाला विनम्र व्यक्ति सन् 1965 में पाकिस्तान के साथ ताल ठोंककर लड़ाई लड़ेगा। मरते-मरते भी सन् 1962 में चीनियों के हाथों नेहरू जी के जमाने में भारत की गिरी मूछों को शास्त्रीजी ऊँचा कर गये। कौन कह सकता था कि भारत को संकट में घिरा देखकर चीन जब भारत को अल्टीमेटम देगा, तब अपनी विधवा मां का प्यारा मुन्ना, शास्त्री जी गर्जन कर उस चुनौती को स्वीकार करेंगे और दोनों शत्रुओं से एक साथ भिड़ने को ललकारेंगे। मगर यह अतिशयोक्ति नहीं बल्कि सन् 1965 की सत्य एवं ऐतिहासिक घटनाएं हैं।

भुट्टो ने जब राष्ट्रसंघ के मंच से भारत को गालियां सुनायी - "इंडियन डोग्स हैव गॉन फ्राम हेयर,. ....." शास्त्री जी ने कहा, हम गालियों का जवाब गोलियों से देंगे, गालियों से नहीं। अमरीका ने भारत पर दबाव डालने के लिये पी-एल 480 के अन्तर्गत अन्न देने से आनाकानी करनी चाही तो शास्त्री जी के आह्वान पर जनता ने सप्ताह में एक शाम उपवास रखने का अनुसरण किया। भूखा रहना पसन्द पर हम अपने स्वाभिमान पर आँच न आने देंगे राष्ट्र का सिर भी झुकने न देंगें। चाहें कुछ भी त्याग करना पड़े कष्ट झेलने पड़े। अमरीका ने जब शास्त्री जी को दिया अपने यहाँ आने का निमंत्रण रद्द करके अपमान किया तो शास्त्री जी ने तुरन्त कनाडा के निमंत्रण पर जाकर वहां अमेरिका कनाडा सरहद पर स्थित विश्व विख्यात नियाग्रा जलप्रपात (झरना)

देखने गये । उन्होंने अमेरिका के अपमान का उचित जवाब देने के लिये कहा "कि उस झरने को हम उतना ही देखेंगे, जितना वह कनाडा की भूमि से दिखायी पड़ता है अमरीका की जमीन पर वे अपना कदम नहीं रखना चाहते।" पाठ्कगण जानते होंगे कि नियाग्रा जलप्रपात अमेरिका-कनाडा सीमा पर स्थित है । कनाडा की ओर से ज्यादा अच्छा नज़र आता है । इस लेखक ने नवम्बर 1990 में नियाग्रा जलप्रपात को अमेरिकन दिशा से देखा है ।

कहते हैं जब चीन का अल्टीमैटम दिल्ली सरकार के पास पहुँचा, किसी पश्चिमी देश के एक राजदूत श्री लालबहादुर शास्त्री जी के पास आये कि चीन की चुनौती को देखते हुये भारत को पाकिस्तान से कुछ ले देकर समझौता करने में ही भारत का हित निहित है । शास्त्री जी ने उस राजदूत को तपाक से उत्तर दिया कि क्या आप भी भारत को चुनौती देने आये हैं ? वह राजदूत चुप हो गया, कुछ कह नहीं पाया ।

इतिहास साक्षी है कि भारत ने सन् 1965 में पाकिस्तान को युद्धक्षेत्र में जान-माल की काफी क्षति पहुँचायी पर विजयी भारत की ओर से ताशकन्द में समझौता करके भारत की शान्ति में कितनी आस्था है यह अपनी जान देकर उन्होंने सारे विश्व को दिखा दिया । समझौते पर हस्ताक्षरों के बाद ताशकन्द में रात्रि में शास्त्री जी को दिल का दौरा पड़ा और कोई उपचार उन्हें दिया जाये उसके पूर्व उनके प्राण पखेरू उड़ चुके थे ।

ताशकन्द में पाकिस्तानी, भारत और रूसी सभी खेमों में शास्त्री जी के यकायक निधन से सब शोक में डूब गये । उनकी शवयात्रा में विश्व के शीर्षस्थ नेताओं, पाकिस्तान के भुट्टो और फील्ड मार्शल अयूब खाँ ने शव को कन्धा दिया । उसी दौरान एक पाकिस्तानी विदेश सेवा अधिकारी ने अपने स्तर के भारतीय विदेश सेवा अधिकारी से सच्चे मन से कहा था - काश ! पाकिस्तान को मरहूम जनाब लालबहादुर शास्त्री जैसा सदरे मुल्क मिलता, जोकि मरने पर अपनी निजी कार के लिये लिया कर्जा अपने परिवार को चुकाने को छोड़ गये, तो वह भी तरक्की शुदा मुल्कों में आगे निकल जाता ।" उनका इशारा शास्त्री जी की ईमानदारी और सादगी भरे जीवन की ओर था जोकि आज के राजनेताओं में सरहद के न इस पार मिलता है और न उस पार ।

आदर्श मनुष्य शान्ति और सद्भावना का ही सेवक होता है, मगर शरीर से इरादों में कमजोर नहीं होता, जो शरीर से भी तथा मनोबल से ही हीन है वे सही मानों में आदर्श पुरुष नहीं बन सकते ।

इस देश का लगभग दो सौ वर्षों का इतिहास मराठों का इतिहास है । इतिहास का ठीक से अवलोकन करने पर पायेंगे कि अंग्रेजों ने मुगलों से नहीं हिन्दुओं (मराठों) से भारत जीता था । यह निर्णायक युद्ध दिल्ली के बादशाह अथवा उनके विद्रोही सूबेदारों से नहीं, दो हिन्दू राज्याधीशों से हुआ था । वे राज्याधीश थे मराठा तथा सिक्ख । मराठों से अंग्रेजों का अन्तिम युद्ध सन् 1818 में तथा सिक्खों से सन् 1849 में हुआ था जिसका इतिहास साक्षी है ।

ग्रांट डफ ने मराठों को भारत विजय में अंग्रेजो का पूर्ववर्ती कहा है । छत्रपति शिवाजी ने अन्ततः एक बृहत् हिन्दवी राज्य की स्थापना की । मराठों का इतिहास शिवाजी महाराज के निधन के पश्चात जरूर उनकी गिरावट को बतलाता है जिसके कई कारण हैं उनमें प्रमुख है पेशवा, जो, मराठों के सेवक होते हुये, चालाकी से सत्ता हथियाकर स्वयं मराठा राज्य के शासक बन गये । परिणाम क्या निकला जो ब्राह्मण पेशवा शास्त्रों में पटु थे वे युद्ध कला और शस्त्रों के प्रयोग में पटु कैसे होते? अतः उनकी सरदारी में लड़े पानीपत के तीसरे युद्ध में, वे तो मारे ही गये साथ में मराठा फौज के लाखों सिपाही भी, गाजरमूली की तरह, काट डाले गये । उसी गम में पूना की गद्दी पर आसीन पेशवा का शीघ्र निधन हो गया । यद्यपि महादजी सिंधिया ने पुनः मराठा वीरत्व और शौर्यत्व की पुनर्स्थापना काफी हद तक कर दी थी फिर भी पानीपत की करारी हार की कालिमा शेष रह गयी । पर आज़ादी के बाद महाराष्ट्र में मराठा शक्ति का बोलवाला वहां सर्वत्र नजर आता है । जितने भी मुख्यमंत्री वहां बने अधिकतर मराठे जाति के ही थे ।

इस समय महाराष्ट्र प्रदेश के मुख्यमंत्री, **श्री शरद पवार हैं** जोकि बारामती जिले के मराठा हैं । फरवरी-मार्च १९९५ में वहा विधान सभा चुनाव होने जा रहे हैं । **महाराष्ट्र की मराठा महासंघ** के वर्तमान अध्यक्ष, **श्री किशनराव बारखिन्दे हैं**, जोकि **मराठों के गरीब वर्ग कुनबियों** का विशेष प्रतिनिधित्व करती है । उसने **शिव सेना-भारतीय जनता दल संयुक्त मोर्चे** को आने वाले चुनाव में अपना समर्थन देने का निर्णय लिया है ।

महात्मा ज्योतिबा फुले

चौद्रहवीं, पन्द्रहवीं और सौलहवीं शताब्दी में **मराठा** वस्तुतः **शासक** नहीं थे बल्कि **शक्तिमान भूपति** थे। तब ये जमींदार **'वतनदार'** कहे जाते थे। **'वतनदार' उपहार में मिली भूमि का स्वामी।** बाद में उन्होंने अनेक उपाधियाँ धारण कर ली, जैसे **पाटिल, राजे, सरदार, देशमुख, मोरे** (जावाली के), **सामंत,** (बारी के), **घोरपदे** (मुधौल के), **निम्बलकर** (फलटन के), **जाधाव** (शिन्द खेड़ के), **सिरके, घाटे** आदि। उन दिनों के ये शक्तिशाली मराठा परिवार थे और बीजापुर, अहमदनगर, बीदर और गोलकुंड़ा आदि सुल्तानों के दरबारों में ओहदेदार थे, या मित्र थे। अन्य मराठा परिवारों जिन्होंने प्रसिद्धि पायी वे थे, **माने, जेथे, दफली** और **पँवार।** **साधारण मराठों** दो भेद प्रचलित हैं। जो गरीब कृषक मात्र है वह कुणबी या कुनबी कहलाता है और सम्पन्न होने पर वही मराठा कहा जाता है। यह जातीय नाम –भेद उसकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति मात्र पर निर्भर करता है। **शिवाजी महाराज** के पौरुष और वीरत्व प्रदर्शन के पश्चात् **औरंगजेब** की मुगलिया फौजे या **निजामशाही** और **विजयपुर** के शासक गण् भी मराठों का लोहा मानने लगे थे और मराठों की गणना देश के सर्वश्रेष्ठ सैनिकों और रणबांकुरों में होने लगी थी। एक समय इस देश में ऐसा भी आया जब लगभग सारा देश मराठा शक्ति के सम्मुख नतमस्तक हो गया था।

पर **शिवाजी** की अकाल मृत्यु से और मराठा राजकुल की आन्तरिक षड़यन्त्रपूर्ण नीतियों और व्यवहार से मराठा शक्ति केन्द्र बलहीन होता गया। जिसके ऐसे होने में मराठा दरबार के कुछ सरदारों जिनमें **पंच प्रधान** अर्थात् **पेशवा** का भी प्रमुख हाथ रहा। क्योंकि उनका निजी स्वार्थ और लाभ वैसा होने में ही निहित था। **शाहू जी** की मृत्यु के उपरान्त **पेशवा** ही कमो–वेश रूप में **मराठा राज्य** के वास्तविक शासक बन बैठे। **पूना दरबार** में और **शिवाजी** के असली वंशज़ **सतारा, कोल्हापुर** और **नागपुर** में एक पेशन–याफ़्ता जैसा जीवन सीमित राज्याधिकारों सहित जीने लगे। मराठों और जिसमें महाराष्ट्रियन ब्राह्मणों में रंजिश बढ़ती गयी। **शनैः शनैः पेशवा इतने शक्तिशाली बन बैठे कि उन्होंने मराठों को क्षत्रिय तक मानने से इंकार कर दिया।** इन पेशवाओं ने मराठा राज्य में कट्टर और रूढ़िवादी मुन स्मृति की धाराओं का दृढ़ता से पालन शुरू कर दिया। ब्राह्मण खासकर देशस्थ महाराष्ट्रियन ब्राह्मण **मराठों को अक्षत्रिय अथवा शूद्र तक कहने लगे।** ये लगभग वही जमाना था जबकि **युरोप** में **रोमन कैथोलिक पोप स्वर्ग** के टिकट भक्तों में बाँट रहे थे **भारत में भी हिन्दू धर्माचार्य भी मन चाहे ढंग से किसी हिन्दू की जाति को ऊँची और अन्य किसी की नीची घोषित कर रहे थे। कोई उनका विरोध नहीं कर सकता था क्योंकि सत्ता में भी उनकी ही तूती बजती थी।**

पर सदा सबके दिन एक से नहीं रहते, कट्टर ब्राह्मणवाद का सूर्य भी अस्ताचल को शीघ्रगामी हुआ। जिसका प्रमुख कारण था अंग्रेजों के हाथ में इस देश का शासन–तंत्र चला जाना। अंग्रेज शासक वर्ग इनके चंगुल में फंसने के वजाय इसकी अवरोधक होते गये। अंग्रेजो के राज्य में मराठा पटेल या पाटिल तो महाराष्ट्र के गाँव का एक तरह से स्थानीय शासक होता था तो पटवारी का काम कुलकर्णी (ब्राह्मण) करते, जो कि पढ़े–लिखे होते थे। अन्त में वे पाटिल से भी ऊँचे हो गये। मराठों ने शासन–शक्ति के महत्त्व को समझा और उसमें प्रवेश के लिये शिक्षित होने की अनिवार्यता को जाना। उन्हें यह भी पता चल गया कि शिक्षा उन्नति की कुंजी है। यह सन् 1930 का जमाना था, एक **महात्मा ज्योतिबा फुले** नामक मराठा समाज सुधारक और उनके **'सत्य शोधक समाज',** तथा बहुजन समाज आदि सामाजिक संस्थाओं और समाज उद्धारकों के सतत् प्रयत्नों से महाराष्ट्र प्रदेश में जन–सत्ता पुनः मराठों तथा आम लोगों के हाथों में आ गयी। यह सब **ज्योतिबा फुले** जैसे जाति सुधारक तथा समाज–सचेतकों के कठिन प्रयासों से ही सम्भव हो सका। हाल ही में राजधानी दिल्ली में भी **महात्मा ज्योतिबा फुले राष्ट्रीय संस्थान** को स्थापित किया गया है जहां से उनके आदर्शों का सतत् प्रचार–प्रसार किया जा सके।

ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र में स्त्री-शिक्षा और अछूतोद्धार के अग्रदूत थे। इनके पूर्वज सतारा के कलगुट गाँव में

खेती करते थे उनके पिता का नाम **गोविन्द राव** और माता का **चिमणाबाई** था, उनका जन्म सन् 1827 में हुआ। साहूकार ने इनके परिवार की जमीन छीनकर उन्हें गाँव से मार भगाया। ज्योतिबा तब बालक थे तभी वे पूना के अपने एक निकट सम्बन्धी के यहाँ आकर रहने लगे, जो फूलों के व्यवसाय करने के कारण **'फूले'** कहलाते थे। माँ एक वर्ष की उनकी अवस्था में मर चुकी थी। फूल के व्यवसायी परिवार में पले-बड़े हुये होने के कारण इनके नाम के साथ **'फुले'** प्रत्यय लोगों ने जोड़ दिया। वे बड़े होने पर भी **ज्योतिबा फुले** कहलाने लगे। **ज्योतिबा फूले** के **'सत्य सोधक आन्दोलन'** की सफलता और सामाजिक उपयोगिता से **कोल्हापुर नरेश श्रीमंत सर शाहू छत्रपति जी महाराज** भी बड़े प्रभावित हुये और उस आन्दोलन का प्रचार-प्रसार अपने राज्य में करवाया और उन कार्यों को राजकीय प्रोत्साहन भी प्रदान करते रहे।

ज्योतिबा फुले बड़े कुशाग्र बुद्धि थे, पर वे अपने प्रदेश में सदा ब्राह्मणों के कोप-भोजन बने। उनकी स्कूली शिक्षा एक मिशन स्कूल में हुई। वहाँ उनकी गणना योग्य विद्यार्थियों में की जाती थी। वे नियमित व्यायाम करते, सदाचारी थे जिससे वे शारीरिक रूप से मजबूत थे। उनको ब्राह्मणों द्वारा महाराष्ट्र में अब्राह्मण जातियों के साथ घोर घृणापूर्ण व्यवहार होता देख बड़ा दुःख होता था। तब तक वे मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर चुके थे। दलितों और पिछड़ों के साथ दम्भी ब्राह्मणों का अमानवीय व्यवहार होता देख उन्होंने दृढ़ संकल्प किया कि वे आजीवन उन दीन-दुखियों की सेवा करेंगे ओर उनके कष्टों को दूर करने के उपाय खोजेंगे। वे स्त्री शिक्षा पर बड़ा वल देते थे। इसीलिये उन्होंने लड़कियों की शिक्षा के लिये एक स्कूल खोला, जिसमें अपनी पत्नी, **सावित्री बाई** को भी पढ़ने के लिये दाखिल करवाये।

इस तरह स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह और अछूतोद्धार आदि क्षेत्रों में बहुत कार्य किया। इन सब सुकार्यो का लोगों के मन पर अच्छा प्रभाव पड़ा और उनके रूढ़िवादी एवं जड़ विचारों में मूलभूत समयानुकूल परिवर्तन होते नजर आये। इसीलिये ज्योतिबा फुले की गणना देश के चोटी के सुधारकों में की जाती है। उनका निधन 62 वर्ष की आयु में सन् 1889 में हुआ। वे आज महात्मा ज्योतिबा फुले के नाम से श्रद्धापूर्वक स्मरण किये जाते हैं।

महात्मा ज्योतिबा फुले के बाद उनकी पत्नी **श्रीमती सावित्री फुले** ने उनके आन्दोलन और समाज-सुधार संस्थानों की बागडोर संभाली। **क्रान्ति ज्योति सावित्री बाई फुले** की मृत्यु के बाद महाराष्ट्र में **''सत्य शोधक आन्दोलन'' का कारवाँ सही मार्ग पर चलाने लायक कोई नेता तब नहीं रहा था। महात्मा ज्योतिबा फुले जाति-प्रथा और मनुवादी अमानवीय वर्ण-व्यवस्था के घोर विरोधी थे और इतने साहसी इंसान थे कि उन्होंने 19वीं सदी की विषम परिस्थितियों में अछूतों और महिलाओं को शिक्षा, किसान मजदूरों को उचित कीमत और समाज में सम्मान से जीने का मानवीय अधिकार दिलाने के लिये सफल संघर्ष किया।**

मराठी के मशहूर दलित लेखक सन् 1990 में **पद्मश्री** से सम्मानित **श्री दया पवार** के अनुसार -**'दलित'** शब्द का अर्थ किसी जाति विशेष से नहीं है वह तो एक क्रान्ति का सूचक है। **अब दलितों में भी एक मध्य वर्ग उभर कर सामने आ रहा है जो खुद लोगों का शोषण कर रहा है।** यह टिप्पणी **श्री पवार** ने 6 अक्टूबर 1994 साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा आयोजित **''लेखक से भेंट''** कार्यक्रम में व्यक्त की।

सत्तर के दशक में महाराष्ट्र में शुरु हुए जबर्दस्त दलित आंदोलन के अग्रणी लेखक **श्री दया पवार** का कहना है कि दलितों के भी अलग-अलग खेमे हैं और लेखकों का उनका पर्दाफाश करना चाहिए। लेखक का शुत्र मनुष्य नहीं होता। उसके लिये तो शत्रु अदृश्य है इसलिये उसे समाप्त करना मुश्किल है। वह शत्रु, श्री दया पवार के अनुसार, हर जगह व्याप्त है। वह धर्म, कर्मकांड तथा व्यवस्था में छिपा हुआ है लेकिन लेखक को यह भी समझना चाहिए कि साहित्य से क्रान्ति नहीं होती। लेखक हमेशा एक मानसिकता तैयार करता है। मार्क्स, बुद्ध और अंबेडकर को अपना प्रेरणा-स्त्रोत मानने वाले श्री दया पवार ने स्वीकार किया कि आज भी समाज में ऊँच-नीच और जात-पात के खाने बने हुये हैं। **एक जाति दूसरी जाति का दमन करती आ रही है।** यह यथार्थ जो श्री दया पवार ने दलितों के बारे में प्रकट किया, ऐसा ही शोषण और अन्यान्य पिछड़े वर्गो में एक दूसरे के प्रति हो रहा है।

उन्तीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 29 वाँ अधिवेशन दिनाँक 27,28 फरवरी और 1 मार्च 1970 को नाज़िरा (असम) में कलकत्ता के प्रसिद्ध समाजसेवी, तथा वहाँ आयोजित 25 वें अधिवेशन के स्वगताध्यक्ष, तथा उस समय प्रकाशित 'अ. भा. कू. क्ष. महासभा' के 'रजत-ज़यन्ती-स्मृति-ग्रंथ' के प्रकाशक एवं 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' मासिक पत्रिका के जन्मदाता और 18 वर्ष तक प्रकाशक, स्वनामधन्य श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह, पार्षद कलकत्ता नगर निगम, की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

इस अधिवेशन में असम–बासी कुरमियों में जातीय संगठन से जुड़ने के लिये भावना जागृत हुई, क्योंकि महासभा के 75 वर्ष के इतिहास में पहली बार यह अधिवेशन उनके प्रदेश में आयोजित किया गया था।

अध्यक्ष महोदय, श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह ने अपने भाषण में तत्कालीन उपजातियों में भेद–भाव, ऊँच–नीच की भावना का अन्त करने और अन्तर–उपजातीय विवाह का प्रचलन तेज़ी से शुरू करने के लिये सलाह दी। उन्होंने यह भी कहा कि उन सारे विभाजक और अलग–थगल करने वाले तत्त्वों को समूल नष्ट कर देना चाहिये, जिसमें कूर्मि जाति मजबूत बन सके और देश के विभिन्न अंचलों में बसे इसके घटक उन्नति कर सके। राष्ट्रोत्थान में भी यह हमारा महान् योगदान रहेगा। इस अधिवेशन के प्रमुख आयोजक थे, **श्री गुरू चरण कूर्मि,** वे. इस पुस्तक के लेखक के निवास पर दिल्ली में, अपने पुत्र की नेत्र–चिकित्सा करवाने 24 दिसम्बर 1993 को आये थे बड़े परिश्रमी एवं मृदुल स्वभाव के व्यक्ति हैं। **'असम प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय सभा'** के वर्तमान मे महासचिव हैं।

श्री गुरूचरण कूर्मि का जीवन वृत्त

उनका जन्म 1 सितम्बर 1939 ई. को असम के दरांग जिला के वराजुली ग्राम, डाकखांना बडेटी में श्री नन्दलाल कूर्मि के घर हुआ था। आपकी शिक्षा–दीक्षा वहीं पर सम्पन्न हुई। आपने विश्वनाथ कालेज से बी. ए. पास करके सन् 1965 में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से 'विशारद' की परीक्षा उत्तीर्ण की।

आपने शिक्षक के पवित्र व्यवसाय को अपनाया। आप सन् 1970 में, **'असम कूर्मि क्षत्रिय सभा'** के उपप्रधान मंत्री थे जबकि महासभा का 29 वाँ अधिवेशन आपने नाज़िरा (असम) में आयोजित करवाया था। साहित्य सृजन में आपकी विशेष अभिरूचि रही है। आप असम–साहित्य सभा के **'पूर्व विहालि'** शाखा साहित्य के सम्पादक, **"सदौ असम मईना बाल समिति"** के आजीवन सदस्य हैं।

असम कूर्मि क्षत्रिय समाज

सत्रहवीं शताब्दी में अंग्रेज सरकार द्वारा चाय बागान, खनिज तेल और कोयला क्षेत्रों में कृषकों और मजदूरों को देश के अन्य भागों से ले आये, जिनमें **कुर्मी** भी थे। बाद में वे सब असमवासी बन गये और यहाँ की भाषा, भेष–वूषा ग्रहण कर ली। सन् 1939 के बाद दूसरे महायुद्व के दौरान असमवासी कूर्मि विभूतियों के दिल में प्रदेश मे **कूर्मि क्षत्रिय जाति**–समाज तथा वंश की खोज करने की जिज्ञासा उठी। भारत की स्वाधीनता आन्दोलन में भी वे भागीदार रहे हैं और सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त स्वतन्त्रता सेनानियों की, जो कि कुर्मी थे, एक लम्बी सूची है। ज्यादातर ये कुर्मी अपने नाम के साथ **'महतो'** या **चौधरी'** आस्पद लगाते थे।

सन् 1945 में पुरूलिया (पं. बंगाल), ग्राम कुटलई निवासी स्व. हजारी लाल महतो के नेतृत्व में असमवासी कूर्मि क्षत्रिय समाज" का गठन किया गया। सन् 1960 में विश्वनाथ चारालि के निवासी,स्व. सहदेव महतो, के पास भवन

शलमारी में **असम प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय सभा** का दसवाँ अधिवेशन आयोजित किया गया।

परिवार परिकल्पनाओं के आधार पर प्रत्येक कूर्मि क्षत्रिय परिवार में यज्ञ, पात्र–स्थापन, उपासना–कक्ष, सेनिटेशन तथा ग्रहाश्रम की रीति विधिवत् पालन अनिवार्य किया जा रहा है। इसी वर्ष 1994 में चौदहवाँ प्रादेशिक अधिवेशन जोरहाट जिले में राजई, ऊमावारी चाय बागान नामक जगह में अप्रैल 8 और 9 तिथियों को सम्पन्न हुआ और वर्तमान प्रधान श्री राई मोहन कूर्मि तथा महासचिव श्री गुरूचरण कूर्मि तथा 39 अन्य पदाधिकारियों और सदस्यों की कार्यसमिति गठित की गई। जिला स्तर पर कूर्मि क्षत्रिय हरि मन्दिर (नामघर) के साथ प्राक् पाठ्यक्रम लागू करने का विशेष ध्यान दिया गया है। इसमें शोणितपुर कूर्मि क्षत्रिय हरि लक्ष्मीपुर, कूर्मि क्षत्रिय हरिमन्दिर गोलाघाट, कूर्मि क्षत्रिय हरिमन्दिर दरांग, कूर्मि क्षत्रिय हरिमन्दिर प्रमुख हैं।

असम कूर्मि क्षत्रिय सभा, कार्यकारिणी समिति-1994 की सूची

क्रमांक	नाम एवं पद	पता
1.	सर्वश्री राईमोहन कूर्मि, अध्यक्ष	सिंगारी बरित होजाई, नगाव, असम
2.	" महादेव कूर्मि, उपाध्यक्ष	लेंगरी गाँव, डिब्रूगढ़,असम
3.	"पिताम्बर कूर्मि, उपाध्यक्ष	डागावस्ति, ढेकियाजुनि, तेजपुर, असम
4.	" शोभान कूर्मि, उपाध्यक्ष	टिबस्ति, दिसिरिगयाँ सत्र, का॰ आ॰
5.	"गुरुचरण कूर्मि, महासचिव	बराजुलि कूर्मि गाँव, वेदिति, शोणितपुर
6.	"गोपाल मेहता, सहसचिव	सोनारी, शिवसागर,असम
7.	"सोनाराम महतो, सहसचिव	ऊमाबारी, राजै, जोरहाट, असम
8.	"दुर्गाप्रसाद महतो, कोषाध्यक्ष	कचूपयार, गोलाघाट, असम
9.	" लक्ष्मी राम कूर्मि, संगठन सचिव	काछमारी, डिमौ, शिवसागर, असम
10.	"शुकदेव कूर्मि, संगठन सचिव	दिरिंग पथार, पाभई, शोणितपुर
11.	"जीवन चन्द्र कूर्मि, संगठन सचिव	माकुमाजं, तिनिचुकिया, असम
12.	" श्रीकांत कूर्मि महतो, कृष्टि सचिव	माकुमाजं, तिनिचुकिया, असम
13.	" सीताराम महतो, कृष्टि सचिव	नबिल, बरपथार, गोलाघाट, असम
14.	"दुलाल कूर्मि, कृषि सचिव	कुरूवा बाही, गोलाघाट, असम
15.	" शशि कूर्मि, प्रचार सचिव	लेंगेरी बस्ति, डिब्रूगढ़ असम
16.	" तनुराम कूर्मि, प्रचार सचिव	लेंगेरी बस्ति, डिब्रूगढ़ असम
17.	श्रीमती आशा कूर्मि, संयोजिका, महिला समिति	सोनारी शिवसागर, असम
18.	" आलोचना कूर्मि, संयोजिका महिला समिति	बेदितिपुर, बेदेति, शोणिपुर

इनके अतिरिक्त 23 और पदाधिकारी गणों के नाम इस 41 सदस्यीय कार्यकारिणी समिति में दिये गये हैं। महासभा के शुभाकांक्षी कूर्मि क्षत्रिय पुरुष, महिला एवं युवा–छात्र संगठन जारी रखे गये थे। असम राज्य का कूर्मि क्षत्रिय समाज 'महतो' प्रधान है। यहाँ मुखिया को कूर्मि समाज में महत्व मानकर चलते हैं। असम कू॰ क्ष॰ समाज में जाति स्वजनों के मेहमान तथा अतिथि को जल–घटि (गगरी) द्वारा पद–प्रच्छालन करने का नियम अनिवार्य रूप से प्रचलित है। असमवासी कूर्मि क्षत्रियों में आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही सर्वोपरि है।

तीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 30 वाँ अधिवेशन दिनांक 30 अप्रैल, 1, 2 और 3 मई 1971 को पटना के प्रसिद्ध गांधी मैदान में राष्ट्र निर्माता, लौह पुरूष, भारत-रत्न सरदार वल्लभभाई पटेल के सुपुत्र माननीय श्री डाह्या भाई पटेल, पूर्व सांसद (गुजरात) की अध्यक्षता में प्रतिनिधियों और दर्शकों की अपार मौजूदगी में बड़ी शालीनता और हर्षोल्लास के वातावरण में सम्पन्न हुआ था।

बिहार प्रदेश को भारत के सांस्कृतिक इतिहास का मेरूदंड़ भी कहा जाता है। जिस तरह **एथेंस**, प्राचीन काल मे , पूरे **यूनान** की शिक्षा–संस्कृति का केन्द्र था उसी तरह **बिहार** प्रदेश भी उस काल में मात्र भारतवर्ष का ही नहीं, समस्त **एशिया** का शिक्षा–केन्द्र बन जाने का गौरव प्राप्त कर चुका था। यहाँ **नालन्दा, विक्रम शिला, बोध गया** और **औदंतपुरी** जैसे महान विश्वविद्यालय थे, जोकि अपने समय में शिक्षा और संस्कृति की पराकाष्ठा पर ख्याति अर्जित कर चुके हैं। सांस्कृतिक इतिहास के उसी मेरूदंड़ बिहार की राजधानी **पटना** (पुरातन नाम पाटलिपुत्र) के ही निकट विश्व **प्रसिद्ध** वैशाली है।

जैनधर्म के 24 वें एवं अन्तिम तीर्थकर **वर्धमान महावीर** का जन्म ईसा से 527 वर्ष पूर्व इसी **वैशाली नगरी** के बाहरी क्षेत्र में हुआ था। वे बाईस वर्ष तक वैशाली में रहे। पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने पर **महावीर 'निर्ग्रथ'**, ग्रंथियों अथवा बंधनों से सर्वदा मुक्त अर्थात निर्ग्रथ या बन्धन रहित, गाँठ रहित, के नाम से जाने गए। इसी वैशाली नगरी में ईसा की तीसरी सदी में **सम्राट अशोक** ने अपने **प्रसिद्ध कीर्ति स्तम्भ** का निर्माण किया। कपिलवस्तु से **बोध-गया** जाने के लिये क्रम में **राजकुमार सिद्धार्थ** यहाँ कुछ दिनों तक ठहरे थे। **''आत्मदीपो भव''** का अमर संदेश देने वाले **महात्मा बुद्ध** का **वैंशाली** से निकट का सम्बन्ध रहा है। विश्व के प्राचीनतम गणतन्त्रों में **वैशाली** भी एक रही है।

वैशाली नगर कोई ढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व का एक वैभवशाली एवं समृद्ध नगर रहा है जोकि **लिच्छिवियों** के **वज्जीसंघ** की राजधानी भी रहा है। **विदेह राज्य** के विघटन के बाद **वज्जी** अस्तित्व में आ गया। इस संघ में **वज्जी, उग्र, भोज, लिच्छिवि, क्षत्रिक, विदेह, कौरव** और **इच्वाकु** जैसे आठ कुलों का समावेश है। ये सारे कुल अष्ट कुलों के नाम से प्रसिद्ध थे। खेद है कि वर्तमान में वही **वैशाली** एक छोटा सा कसबा मात्र रह गया है जिसके आस–पास केले और आमों के वृक्षों की कतारें नज़र आती है। इस लेखक को अपने समधी, **प्रसिद्ध गणितज्ञ प्रो॰ लालजी प्रसाद, पूर्व विभागाध्यक्ष गणित, बी॰ एन॰ कालेज, पटना विश्वविद्यालय** के सहयोग से यह सब क्षेत्र देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सच यह है कि वर्तमान वैशाली पर दृष्टिपात करने पर विश्वास नहीं होता कि कभी इस पवित्र भूमि का अतीत इतना उज्ज्वल और गौरवमय रहा होगा। वैशाली से अब अपना ध्यान फिर पटना नगर पर केन्द्रित करें, जहाँ के **गांधी मैदान में अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा का** 30 वाँ अधिवेशन आयोजित होने जा रहा था।

अधिवेशन के प्रथम दिन गांधी मैदान में ध्वजारोहण के पश्चात् अध्यक्ष महोदय, माननीय **श्री डाह्या भाई पटेल** का विभिन्न प्रकार के वाहनों, के साथ दो–तीन किलोमीटर लम्बा जुलूस पटना राजधानी की प्रमुख सड़कों से निकाला गया। अधिवेशन का पंड़ाल साज–सज्जा, बैठने की समुचित व्यवस्था, जनसुविधाओं का पर्याप्त प्रबन्ध तथा प्रतिनिधियों और स्थानीय कार्यकर्त्ताओं का उत्साह, जन–समुदाय की उपस्थिति, व्यापक कार्यक्रम आदि की दृष्टि से, बिहार की पवित्र भूमि पर अब तक हुये महासभा के अधिवेशनों में यह अधिवेशन इसलिये भी अधिक महत्त्वपूर्ण था, कि इसमें **स्वतंत्र भारत** के बदलते सामाजिक परिवेश में, वर्तमान प्रमुख राजनैतिक और राष्ट्रीय बिन्दुओं पर खुलकर विचार–विनिमय भी किया गया। जातीय समस्याओं और उनके समुचित निराकरण हेतु उपाय अपनाने पर भी विचार हुआ।

बिहार के कुछ बन्धु **'कूमि'** शब्द के साथ **'क्षत्रिय'** जोड़ना व्यर्थ समझते थे और वे इसके हटाने के पक्ष में थे।

हटाने के पीछे यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि कूर्मि शब्द स्वयं क्षत्रियत्व का पर्याय है, अतः इसके साथ फिर क्षत्रिय जोड़ना भाषा–विज्ञान के अनुसार सही नहीं होगा। यह तर्क तो ठीक है। पर बिहार के अन्य बन्धुओं का मत है कि हम क्षत्रिय हैं ही नहीं, और एक **कूर्मि विद्वान का इस लेखक को कहना था कि कूर्मि कब तक क्षत्रिय रूपी सिंह की खाल ओढ़े, सिंह अर्थात् क्षत्रिय बने रहेंगे। लगता है कि उन बिहार वासी कूर्मि विद्वान के अनुसार कूर्मि वास्तव में क्षत्रिय है ही नहीं, तब क्या हैं? कृपया यह तो बिहार के कुरमी बन्धु ही अपने श्रीमुख से बतायें?** हरनौत में सन् 1933 में हुये अधिवेशन के समय जातीय वर्ण सम्बन्धी जो मत वे रखते थे, तब से अब तक मात्र 6 दशकों में उनका पूर्ण कलावाजी लगाना ही कहा जायेगा **यदि वे आज यह कहें कि वर्ण-विभाजन-व्यवस्था में कूर्मि क्षत्रिय-वर्ण के है ही नहीं।** यदि यह निष्कर्ष उनके प्रति ठीक है तब उनकी इस बात से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, असम, गुजरात, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा के कुरमीजन तो सहमत होने वाले हैं नहीं और यही मान्यता इन प्रदेशों के कुरमियों के पूर्वजों की भी रही है। वे वास्तव में बिहार प्रदेश में भी सबको साथ लेकर अक्षत्रिय घोषित कर नहीं सकते। कुछ मंच पर शायद अपने को अक्षत्रिय कह दें पर घर में और व्यवहार में अनेक कट्टर क्षत्रिय का आचरण करते हैं।

बिहार के कुरमी बन्धुओं ने मुजफ्फरपुर के सन् 1929 के महासभा के अधिवेशन से मात्र चार वर्ष बाद सन् 1933 हरनौत (पटना) अधिवेशन में मंच पर अन्य महानुभावों के साथ कुर्सी पर बैठे बाढ़ (पटना) के 52 गाँव के जमींदार परिवार के **श्री हरिहर नाथ सिंह** भी थे, जोकि कुरमियों की जयसवार उपशाखा के थे। उनका मंच पर बैठना अन्य तथाकथित उच्च उपशाखाओं वालों को इतना चुभा, कि वे चाहते थे कि जयसवार धानुक इस अधिवेशन स्थल से बाहर चले जायें। तू–तू, मैं–मैं मच गयी, पंड़ाल में भगदड़ होने लगी, जिसमें दो कुरमी बन्धु, कुरमियों के पैरों तले, कुरमियों के अपने ही अधिवेशन में कुचल कर मर गये। इसका पूरा वर्णन सन् 1933 की हरनौत अधिवेशन की कार्यवाही के साथ दिया गया है। कृपया गम्भीरता के साथ विचार करें। क्या हरनौत में व्यर्थ के दम्भ का नग्न प्रदर्शन नही हुआ? मुख्यतः उन्हीं उपशाखाओं के लोगों द्वारा इस पटना अधिवेशन (सन् 1971) में यह कहना कि महासभा के नाम के अंश **'कूर्मि क्षत्रिय'** में से **'क्षत्रिय'** शब्द को तुरन्त हटाने की जोरदार माँग करने में कितना विरोधाभास छिपा है, यह तो सुधी पाठकगण् स्वयं निर्णय लें।

यदि बिहार के कुरमी बन्धु अपने झारखंडी कुड़मि बन्धुओं की बात करते हैं तो उनकी समस्या दूसरी है और उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत होना स्वाभाविक है। पर यदि बिहार के वे कुरमी जो अपने पूर्वजों को **अवध** से आया, या **मराठों की एक विशेष शाखा,** या महाराष्ट्र के **'कोंकन-घाट-महता'** इलाके से, या अपने को **ययाति-देवयानी** की संतान, या महाराष्ट्र के किसी **'समसपुर'** नामक स्थान से या गुजरात के **'पटनपुर'** नामक स्थान से बिहार में आ बसे बताते हैं, यदि वे आज अपने को क्षत्रिय नहीं कहना चाहते तो बिहार से बाहर के कुरमियों को सुनकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। क्योंकि लगभग सन् 1933 को हरनौत अधिवेशन में इन उपजातियों के नेताओं की ओर से ही अपने को क्षत्रिय होने का दावा किया गया था और कुछ कुरमियों को इस आधार पर कि वे उनकी तरह कूर्मि क्षत्रिय नही हैं, पंड़ाल से बाहर जाने को कहा गया। यहाँ तक कि जैसा ऊपर वर्णित है कि सभास्थल पर भगदड़ मच गयी और दो कुरमी महासभा के अधिवेशन के दौरान अपने बन्धुओं के पैरों नीचे कुचल कर दम तोड़ गये। अब वे कहते हैं हम क्षत्रिय नहीं है अतः इसे कूर्मि शब्द के साथ मत जोड़ो यह आज कितना आश्चर्यजनक लगता है।

कुड़मियों के बारे में विस्तार से पीछे लिखा जा चुका है। उनकी आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक स्थिति में देश के, और यहाँ तक उत्तरी बिहार के कुरमियों से काफ़ी भिन्नता है। ये लोग शताब्दियों से मूल कुरमी जनाधार से बिल्कुल अलग–थलग रहे और जीवनोन्नति के लगभग सभी आवश्यक साधनों से वंचित रहे चले आने के परिणाम स्वरूप वे जीवन के हर क्षेत्रों में औरों से पिछड़ गये। अभी भी असलियत यह है कि इन कुड़मियों के, देश में अन्य प्रदेशों या उत्तर बिहार में बसे हुये कुरमियों से रोटी–बेटी के आम रिस्ते कायम नहीं हो सके हैं। इक्का–दुक्का यदि

हुए भी वे मात्र स्वार्थवश हुये हैं और आम प्रचलन का प्रारम्भ उसे नहीं माना जा सकता। कुड़मियों की अपनी प्राचीन और विकसित स्वतंत्र भाषा है, जिसे कुरमाली के नाम से जाना जाता है। इसके रीति रिवाज़, खाना–पीना, बिधवा विवाह का प्रचलन, विवाह के कम खर्चीले, सरल–सहज तरीकों आदि बातों में उनकी भिन्नता तथाकथित अन्य कुरमियों से स्पष्ट दिखती है। बड़ी सुन्दर चीज कुड़मियों में यह है कि अन्य कुरमियों की तरह उनमें अनेक उपजातियाँ न होकर मात्र एक है और वे सब महतो लिखते हैं। जमशेदपुर से निर्वाचित श्री शैलेन्द्र महतो ने इस लेखक को बतलाया कि उनके कई गोत्र हैं यथा गंगवार, कटियार, जयसवार आदि। यह जानकर आश्चर्य होना स्वाभाविक था। शिक्षा प्रसार उनमें पहले से काफ़ी बढ़ा है और औरों की तुलना में न्यूनतम है।

बिहार के 17 वें अधिवेशन में जो सन् 1929 में मुजफ्फरपुर में आयोजित किया गया था, वहाँ छोटानागपुर से तीन कुड़मि प्रतिनिधियों को बुलवाकर उन्हें यज्ञोपवीत धारण करवा कर सार्वजनिक घोषणा कर दी गयी कि मानभूम और अन्य वर्तमान झारखंड़ क्षेत्र के सभी कुडमि बन्धु , कुरमी महतो हैं तथा उनमें एवं बिहार के अन्य कुरमियों में जातीय स्तर पर किसी प्रकार का अन्तर नही है, दोनों एक ही समान हैं। उस समय तो करतल ध्वनि के मध्य उन तीन कुड़मि प्रतिनिधियों को यह सब सुनते अच्छा ही लगा होगा। पर बाद में उन्हें और उनके लोगों को आभास हुआ कि उनके गले में मुसीबत पड़ गयी है।

सन् 1931 में भारत सरकार ने जन गणना में झारखंड़ के कुरमियों की प्रार्थनानुसार उन्हें **'कूर्मि क्षत्रिय'** घोषित कर उन्हें अनेक वर्षो से उपलब्ध अनुसूचित जन–जाति की सारी सुविधाओं और सुरक्षाओं से वंचित कर दिया। वे तब से अपने पुराने हक़–हकूकों को पुनः पाने के लिये जनजाति की अनुसूचित सूची में जाने के लिये संघर्षरत हैं। उपर्युक्त सब बातों की ध्यान में रखते हुये यदि देखा जाय तो झारखंड के कुड़मि बन्धुओं का संघर्ष न्यायोचित है, मानवीय दृष्टिकोण से भी उचित है, तथा उनकी सफलता के लिये हरेक को उनकी मदद करनी चाहियें, और वे शीघ्र वे अपनी पहले मिलने वाली लाभप्रद तथा सुरक्षित स्थिति पुनः प्राप्त कर सकें।

प्रख्यात इतिहासकार **प्रोफेसर रोमिला थापर** का मत है कि भारत के मूल निवासियों के सम्बन्ध में मुख्यतः दो प्रकार के मत हैं– एक हिन्दू राष्ट्रवादी मत है, जिसके अनुसार आर्य यहीं के मूल निवासी थे, यह मानना उनके अनुकूल नहीं बैठता कि वे उस समूह के वंशज है ज़ो विदेशी था। उनका तर्क यह था कि भारतीय राष्ट्र–राज्य में विदेशियों का दर्जा नीचे हैं। इस मत को बहुधा भारतीय जनता पार्टी व उस जैसी विचार धारा वाले राजनैतिक दल प्रतिपादित करते हुये इसमें आस्था रखते हैं, इसके विरोध में **ज्योतिबाफुले** और ब्राह्मण विरोधी आन्दोलनों के विचारकों तथा उन दिनों के दलित चिंतकों का मत था कि आर्य विदेशी थे और उन्होंने यहाँ मूल निवासियों को बेदखल किया, जिन्हें आज, बतौर निम्न, अस्पृश्य और अनुसूचित जनजाति के नामों से जाना जाता है। तो एक तरह से हर किसी ने इस सिद्धान्त को अपने लाभ के लिये इस्तेमाल किया और अपनी 20 वीं सदी की वैचारिक स्थितियों को उस सब में फिट करने की कोशिश की जिसकी वे अतीत से व्याख्या कर रहे थे।

प्रोफेसर रोमिला थापर के अनुसार अब इस बिन्दु पर स्थिति और जटिल हो गयी हैं और अगर अब कोई पीछे लौटे तो एक तरफ तो बहुत संवेदनशील, जटिल, सतर्क ऐतिहासिक लेखन है तो दूसरी तरफ प्रचारित दृष्टि कोण जो पहले से अलग है। इतिहास के राजनैतिक दुरूपयोग का यह उदाहरण, आर्य समस्या से प्रगट होता है। पुरातत्वविदों, भाषा वैज्ञानिकों और इतिहासकारों में इस बात को लेकर मतैव्य हो रहा है कि वृहत् पैमाने पर आर्यो का आक्रमण या व्यापक प्रवास नही हुआ। पर इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि पश्चिम एशिया की ओर से इंडो–आर्यन भाषा यहाँ आयी। यहाँ तक कि वैदिक ग्रंथों के प्रमाण स्वयं भी इस बात का निर्देश देते है कि यह भाषा उत्तर पश्चिम से पंजाब में और वहाँ से गंगा–घाटी और पूर्वी भारत में फैली। सवाल यह है कि इतिहासकार किस प्रकार से इस प्रश्न का हल निकालेगें कि यह भाषा यहाँ किस तरह फैली और इस भाषा में बाद मे क्या परिवर्तन हुए तो अब विचार बिन्दु दूसरा ही है समस्या का मर्म एक समाज और भाषा–परिवर्तन और परिवर्तन की प्रकृति जोकि वैदिक संस्कृति से मिलती है सम्बधित है इनमे अनार्य भाषा के शब्द और रूपों का समावेश है। यह कैसे हुआ? क्या लगातार प्रवासियों

के दल आते रहे या उनका यहाँ लम्बे समय तक सम्पर्क रहा? ये प्रवासी व्यापारी थे या पशुचारी? क्या धार्मिक–विधान परिवर्तन के उपकरण बने? क्या आरंभिक संस्कृति से उनका सातत्य बना रहा या साथ–साथ परिवर्तन भी जारी रहा? आदि वे प्रश्न हैं जिन पर गूढ़ता से विचार करके, शोध करके तथा नयी उपलब्ध पुरातत्व और भाषा–विज्ञान सम्बन्धी जानकारियों का अनुशीलन कर भावी इतिहासकार अपना मत व्यक्त करेंगे।

सन् 1971 के पटना अधिवेशन में तथा बाद में भी यह **'क्षत्रिय'** शब्द 'कूर्मि' के साथ हटाने की भरसक चेष्टायें केवल बिहार प्रदेश में की गयीं। वे असली मन्तव्य को साफ–साफ न कहकर कभी व्याकरण का सहारा लेकर कहते, कि कूर्मि शब्द क्षत्रिय का पर्याय हैं, अतः उसके साथ क्षत्रिय शब्द जोड़ने से पुनरोक्ति का बोध होता है, अतः क्षत्रिय शब्द को हटा दिया जाय। पर यह मात्र बहाना है, क्योंकि अनेक हिन्दी के शब्दों में पुनरोक्ति होने के बावजूद उनका प्रचलन और प्रयोग धड़ल्ले से होता है। उदाहरण एक का बहुवचन **'अनेक'** है। बहुवचन का आगे बहुवचन करना त्रुटिपूर्ण है पर **'अनेक '** का भी बहुवचन करके **'अनेकों'** का प्रयोग किया जाता है। इस संदर्भ में अनेक अन्य उदाहरण पाठकगण स्वयं जानते होंगे। अतः भाषा की शुद्धता के लिये पर्याय लेकर शोर–गुल मचाने पर किसी कवि ने ठीक कहा है:–

''शब्द का सही उपयोग योग है,

और कल्याणकारी है योग की तरह।

शब्द का गलत उपयोग भोग है

और विनाशकारी है भोग की तरह।।''

हिन्दी के दो मुहावरों का उदाहरण इस सम्बन्ध में दिया जा रहा है, एक है **'जले पर नमक'** और दूसरा हैं **'कटे पर नमक'** छिड़कना। ये दोनों अलग–अलग मुहावरे हैं। एक विद्वान का कथन है कि जले पर नमक तो एक प्रकार से दवा का काम देता है, पर इधर अक्सर देखा गया है कि शायद भूल से **'जले पर नमक'** ही चल पड़ा है जबकि कहने का तात्पर्य **'कटे पर नमक'** मुहावरे से ज्यादा सही ॅ मन चाहा अर्थ निकलता है। यहाँ तक कि गोस्वामी तुलसीदास जी जैसे परम सुविज्ञ भी भूल से कह गये हैं :–

''अति कटु बचन कहति कैकेई।

मानहु लोन जरे पर देई।।''

पर **'कटे पर नमक'** की उक्त परम्परा देखते हुये यह तर्क कुछ ठीक नहीं जंचता। जान पड़ता है कि **'जले पर नमक'** भ्रम से ही जब चल पड़ा है तब सभी उसका प्रयोग करते है। फिर बाल की खाल खींचने से क्या फायदा। हमारे यहाँ का संस्कृत भाषा का पुराना प्रयोग भी **'क्षत पर क्षार'** ही है, **'दूध पर क्षार'** नहीं। महाकवि राजशेखर ने कर्पूर–मंजरी (2-11) में **''क्षत क्षारं''** का प्रयोग किया है।

उपर्युक्त उदाहरण को देखते हुये यदि कोई **'कूर्मि क्षत्रिय'** लिखता है तो व्याकरण की दृष्टि से बात का बतंगड़ बनाना सार रहित रहेगा। **'कूर्मि क्षत्रिय'** शब्दों का प्रयोग यदि करना चाहता है करने दीजिये, जैसे **'जले पर नमक'** का मुहावरा आप–सब भाषा विज्ञ तो बिना संकोच करते ही हैं। इस पर भी सन्तोष न हो तो दो और मुहावरों के उदाहरण देखिए :–

(1) ''ऊँट–पटाँग'' मुहावरा वास्तव में विशेषण **'ऊँट पर टाँग'** से बना है यदि आपसे कोई कहे–''मैं जमीन पर एक टाँग से खड़ा था, और मेरी दूसरी टाँग पास खड़े ऊँट (या उसकी पीठ) पर थी।'' यह बात सुनने में कितनी बेढ़ंगी और असम्भव जान पड़ेगी। जब इस प्रकार की कोई बेढ़ंगी या बेतुकी बात सामने आती है, तब उसके लिये 'ऊँट–पटाँग' का विशेषण के रूप में प्रयोग होता है।

(2) संस्कृत का **'एकत्र'** शब्द वस्तुतः अव्यय है, अर्थात इसमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता। हिन्दी में इसका प्रयोग विशेषण के समान होता है, पर **'एकत्र'** रूप में नहीं बल्कि 'एकत्रित' ही लिखता दिखाई देता है, जैसे-उन्होंने बहुत सी पत्रिकायें एकत्रित कर ली।

(3) हिन्दी के विद्वान जानते होगे कि शब्द मिश्र गुप्त, शुक्ल आदि पुर्ल्लिंग हैं और स्त्रीलिंग में ये मिश्रा, गुप्ता, और शुक्ला बन जाते हैं जिन आस्पदों का पुरूषों द्वारा प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण हैं। पर सब करते हैं, चलता है। पर एक बार कोई व्यक्ति बनारस में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक व विद्वान **श्री शिव प्रसाद गुप्त 'सितारे हिन्द'** के पास मिलने गये। उन्होंने घर के अन्दर जो पर्ची मिलने हेतु भेजी, उस पर नाम लिखा **'श्री शिव प्रसाद गुप्ता'** जिनसे मिलना था। अन्दर से तो श्री गुप्त ने उत्तर उसी पर्ची पर लिख भेजा कि वे (गुप्ता जी) यानी पत्नी कहीं गयी हैं, फिर आवें उनसे मिलने। आगन्तुक को अपनी भूल का आभास हो गया उसने क्षमा याचना के साथ श्री गुप्त से भेंट की। जब ये जमाने के बड़े -बड़े विज्ञान पुरूष गुप्ता जी, मिश्रा जी और शुक्ला जी को अपने नाम में ये स्त्रीलिंग आस्पद के प्रयोग से आपति नहीं है तो **'कूर्मि बंधु'** आप क्यों **'कूर्मि क्षत्रिय'** के प्रयोग के पीछे हाथ धोकर पड़ गये हैं। इन उदाहरणों से तो अब आप शान्त हों, इसे स्वीकार करें।

आशा है कि अब **'कूर्मि क्षत्रिय'** शब्द व्याकरण की कसौटी पर आगे नहीं घिसा जायेगा। और भाषा की शुद्धता के लिये पर्याय लेकर बिहार के कुरमी बन्धुओं की आपत्ति बिहार से बाहर के कुरमियों को प्रभावित नहीं करती। एक अन्य उदाहरण 'हिन्दू' शब्द का लीजिये। प्राचीन काल में सिन्धु नदी (Indus River) के इस पार रहने वालों को उस पार के विदेशियों ने **सिन्धू** कहना चाहा। उनके यहाँ **'स'** अक्षर को **'ह'** करके उच्चारित किया जाता था अतः सिन्धू न कह कर हम लोगों के पूर्वजों को **हिन्दू** कहने लगे। ऐसा कहा गया है कि उनकी भाषा में **हिन्दू** शब्द के अर्थ अपमान जनक है। पर फिर भी कमाल देखिये कि विदेशियों द्वारा गलत अर्थ सोच कर भी दिया हुआ अपना नाम हिन्दू हम बड़ी शान से बोलते हैं और तब व्याकरण, पर्याय आदि का विचार पीछे छोड़ देते हैं।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, उड़ीसा के कुरमियों में इस मुद्दे पर सदा समान विचार रहा है। यह विचार उनके पूर्वजों ने धर्म-शास्त्रों में उपलब्ध जातीय इतिहास का अवलोकन कर बनाया था कि कूर्मि जाति वर्णाश्रम-व्यवस्था में क्षत्रिय वर्ण में आती है। उनका अतीत बड़ा उज्ज्वंल और प्रेरणा प्रद था, पर जब सारा देश पतन के गर्त में गिरा तो यह जाति भी उस गिरावट की चपेट में आ गयी। सन् 1857 के असफल सिपाही विप्लव के कारण, अंग्रेजो के कोपभाजन बनकर वे सामाजिक रूप से औरों से पिछड़ते गये। अब आजादी के बाद जब पिछड़े वर्गो की पहचान कराने तथा उनकी उन्नति के लिये समुचित उपाय सुझाने के लिये पहले **काका कालेलकर कमीशन,** फिर **मंडल कमीशन** का गठन किया गया। उनकी रिर्पोट आदि और भारत सरकार ने प्रथम बार 8 सितम्बर 1993 से पिछड़े वर्गो जिनमे कुरमी भी हैं के उम्मीदवारों को सरकारी और अन्य नौकरियों में कुछ समुन्नत वर्ग (क्रीमी लेयर) को वंचित करते हुये 27% आरक्षण लागू घोषित किया। इन प्रदेशों में कुरमी क्षत्रिय अभी भी अपने को क्षत्रिय वर्ण का ही मानते हैं। और जब तक जातियाँ वजूद में रहती हैं वे यही धारणा रखेंगे। हाँ अपने बिहारी बन्धुओं की सहमति प्राप्त करने के लिए वे लोग आगे कुरमी शब्द में क्षत्रिय प्रत्यय का प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से केवल स्वतः धीरे-धीरे समाप्त कर रहे हैं। पर इसलिये नहीं कि कूर्मि जाति क्षत्रिय वर्ण की नही है। खास तौर से इस लेखक ने अपनी पुस्तकों के शीर्षको में कुरमी के साथ क्षत्रिय प्रत्यय का प्रयोग नही किया है पर कूर्मि जाति का वर्ण क्षत्रिय ही है यह अपनी सारी कृतियों में लिखा है।

महासभा का इतिहास साक्षी है कि उसके नाम में से **'क्षत्रिय'** शब्द सन् 1980 के झालदा (पं॰ बंगाल) अधिवेशन में हटा दिया गया था, पर अगले वर्ष सन् 1981 में रायपुर अधिवेशन में पहला प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित कर पुनः **'क्षत्रिय'** शब्द जोड़ दिया गया। दस वर्ष बाद सन् 1991 के पटना अधिवेशन में इस क्षत्रिय शब्द को लेकर इतना बवंड़र उठा कि महासभा की कार्यकारिणी समिति ने पहले उस अधिवेशन को मान्यता तक न दी, पर बाद में सन्

1992 में **शान्ति कुंज (हरिद्वार)** की कार्यकारिणी समिति की बैठक में बड़ी गर्मा–गर्मी के बाद नयी कार्यकारिणी समिति के पदाधिकारियों का बिना जनसभा के अनुमोदन के वहाँ गठन कर लिया गया और कुछ अस्पष्ट कारणों से उस कार्यकारिणी ने पटना में **''अखिल भारतीय कूर्मि महासभा''** का अधिवेशन बिहार प्रदेश कूर्मि सभा द्वारा आयोजित किया गया था, उसे मान्यता दे दी गयी। कहा नहीं जा सकता, कि भविष्य में होने वाले महासभा के अधिवेशनों में प्रदेश, स्थानानुसार महासभा के नाम के साथ समय–समय पर **'क्षत्रिय'** शब्द के योग–वियोग की प्रकिया की पुनरावृति होती है या नहीं।

महासभा या कूर्मि जाति के नाम में **'क्षत्रिय'** शब्द के प्रत्यय प्रयोग से लगता है कि विशेष चिढ़ कुछ स्वजातीय राजनीतिज्ञों को है। ऐसा आभास होता है कि दलितों के नेता या मसीहा बनने के लिये वे अपनी कुरमी जाति को हर दृष्टि से उस श्रेणी का बनाकर ले जाना चाहते हैं। कूर्मि के साथ यह **'क्षत्रिय'** प्रत्यय उन्हें कवाब में हड्डी लगता है, अतः निकाल फेंकना चाहते हैं। पर आज के नेताओं का क्या भरोसा आज इस दल में, कल उछलकर उस दल में चले जायें और बड़े सहज रूप से अपनी अन्तरात्मा की पुकार की आड़ में वे अपनी राजनैतिक विचारधारायें और मान्यातायें में भी समयानुकूल तुरन्त परिवर्तन कर लेते हैं। राजनीति में **आयाराम-गयाराम** बनने का प्रचलन सम्भव है पर वर्णाश्रम–व्यवस्था के अन्तर्गत नीचे उतरने वाले को शायद कोई सिरफिरा समझ कर आपत्ति न करे पर यदि उसने अपने से ऊंचे वर्ण की ओर अग्रसर होने को पैर बढ़ाये तक सब अवरोध बनकर आ उपस्थित होंगे और वह वर्णोन्नति सम्भव न हो सकेगी और न समाज उसे मान्यता देगा।

बिहार के एक प्रबुद्ध स्वजातीय महानुभाव ने उपर्युक्त कथन से कभी सहमति नहीं प्रगट की। उनका कथन है–"पर विडम्बना यह है कि कुर्मियों की ही उपेक्षा को लेकर जन्मी अ॰ भा॰ कुर्मि क्षत्रिय महासभा के कुछेक अधिकारियों और पदाधिकारियों की नजर में यह **बिहारी कुर्मी समाज** की मतिमारी गई है, जो रोटी, कपड़ा और मकान पाने के लिए अपने को द्रविड़ या जनजाति का मानते हैं। और अनुसुचित जाति का बन जाने को तैयार हैं। वर्तमान महज कपड़ा, रोटी और मकान तक ही अपने चिंतन को सीमित करने वाला व्यक्ति तथा समाज पशुता को बढ़ाता है, मानवीय उच्च गुणों की अनदेखी करता है। उनकी इस दृष्टि से भारत का कूर्मि समाज दो भागों में बटा हुआ है। एक है वह अंचल जिसके अंतर्गत उ. प्र., म. प्र., राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और महाराष्ट्र आते हैं और दूसरा अंचल है बिहार का जो बिल्कुल अकेला है। बिहार का यह अकेलापन ही उसकी विशेषता है क्योंकि बिहार आँखे मूंदकर चलनेवालों की जमात में कभी नहीं रहा है। बिहार महात्मा बुद्ध के पथ का अनुगामी आज भी कई मानों में है, जो उनके अमर संदेश **''आप दीपो भव''** के सिद्धात पर चल रहा है। किसी के उधार खाते संदेश पर नहीं।"

पद-चिह्नों पर अंधानुगमन न करके ''आत्म दीपोभवः''

इस अन्तिम वाक्य **''आत्म दीपोभव''** से यह लेखक, उपर्युक्त विद्वान से, जिसे वह अपने अन्तर्मन में सदैव गुरू और लेखन विधा में प्रेरयिता मानता आया है, सहमत है कुछ अन्य बातों से नहीं। इस **अमर वाक्य** का क्या इतिहास है?

महात्मा बुद्ध जब मृत्यु शय्या पर पड़े थे तो उनके एक व्याकुल शिष्य ने उनसे प्रश्न किया–"आपके न रहने पर हम सब किससे प्रेरणा लेवें?" उत्तर में तथागत् ने कहा था–**''आत्म दीपो भवः''**, अर्थात् अपना जीवन मार्ग स्वयं खोजो, अपने मार्ग को स्वयं प्रकाशित करो और उस पर आगे बढ़ते जाओ। किसी कवि ने ठीक ही कहा है :–

"लीक लीक कायर चलैं, लीकहि चलै कपूत,

लीक छोड़ि तीन चलैं, शायर, शेर, सपूत।।

अतः दूसरों के पदचिह्नों अथवा मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को उपर्युक्त कवित्त में कायर कहा गया है, यही

नहीं उसे कपूत तक की संज्ञा दी गई है। सपूत उन्हें कहा गया जो ऐसे मार्ग प्रशस्त करें जिस पर स्वयं चलकर अपने साथ चलने वालों का एक कारवां भी बना लें। यदि गम्भीरता से सोचें और समझें तो पायेंगे कि प्रत्येक संस्कृति में जितने भी महापुरूष हुये हैं वे सब एक ही बात की पुनरावृति नहीं करते। अपने–अपने दृष्टिकोण से समयानुकूल अथवा युगानुरूप उस बात की उपादेयता समझते हुए वे भिन्न–भिन्न सिद्धातों, आदर्शों का प्रतिपादन करते हैं।

आज हमें जो सांस्कृतिक सम्पदा विरासत में मिली है वह महापुरूषों अथवा युग पुरूषों के मात्र पद–चिह्नों पर चलने मात्र से नहीं संग्रहीत हुई है। इस बिन्दु पर गम्भीरता से ध्यान कीजिए तो ऐसा स्पष्ट नज़र आयेगा कि जोभी हमारे समाज के पास सांस्कृतिक सम्पदा हैं, वह महापुरूषों के पद–चिह्नों पर चलने से नहीं अपितु सत्य यह है कि न चलने से ज्यादा अर्जित और संचयित हुई है।

यदि **संत तुलसीदास, महर्षि बाल्मीकि** के पद–चिह्नों पर चलते तो संस्कृत में **रामचरित मानस्** को लिखते, जिससे मौजूदा उनकी कृति का इतना प्रचार–प्रसार न होता और मानस–प्रेमी उससे वंचित रह जाते। यदि **संत कबीरदास** अपने **गुरु रामानंद जी** के ही पद–चिह्नों पर चलते रहते तो अवश्यमेव वे सामाजिक क्रान्ति का विगुल न बजा पाते जो अभय रुप से उन्होंने अपनी सोच–समझ से, नवीन अपनी विचार धारानुसार बजाया। और कस के बड़े जोर से बजाया जिससे साधारण व्यक्ति से लेकर मुल्ला–बामन पांड़े तक के कानों को गुंजा दिया। यदि **स्वामी रामानुज** अपने पूज्य गुरु यादव प्रकाश के पद–चिह्नों पर चलते तो आज हम विशिष्टाद्वैत के सिद्धान्त से वंचित रह जाते। यदि **आद्य शंकाराचार्य** अपने **दादागुरु गौड़पाद** के पद चिह्नों पर ही चलते रहते तो वे न समस्त भारत का भ्रमण कर पाते और न चारों दिशाओं में चार धामों की स्थापना कर पाते, जोकि इस देश से बौद्धधर्म को उखाड़–फेंकते और सनातन धर्म को पुनर्स्थापित करते हुए आज भारत की हिन्दू समाज की भावनात्मक एकता के मूलाधार बने हुए हैं।

यदि हम अपने दौर का ही अवलोकन करें तो देखेगे कि गांधी जी यदि मात्र महात्मा बुद्ध के पद–चिह्नों पर चलते तो वे सत्य और अंहिसा की आध्यात्मिक सीमा के अन्दर ही रह जाते, देश को परतन्त्रता से मुक्ति दिलवाने के लिए सत्याग्रह का नवीन प्रयोग न कर पाते। स्वयं **गौतम बुद्ध** भी यदि **वैदिक ऋषियों** और वैदिक ऋचाओं या पूर्वार्ती जैन तीर्थकरों के पद–चिह्नों पर चलते तो बौद्ध–धर्म जो उन्होंने स्थापित किया एवं वैकल्पिक मोक्ष–मार्ग की खोज की, उससे सारा विश्व अपरिचित तथा अनन्त सुख, चैन आदि लाभों से वंचित रह जाता। **हजरत ईसा** यदि **हजरत मूसा** के चरण–चिह्नों पर चलते रहते तो ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार दुनिया में न हो पाता। **कार्ल मार्क्स** यदि **हीगेल** के ही पद–चिह्नों पर चलकर उनकी विचारधारा का ही प्रचार–प्रसार करते रहते तो न **''दास कैपिटल''** नामक पुस्तक की संरचना सम्भव होती और न फिर विश्व का आधे से अधिक भूभाग साम्यवाद को ग्रहण करता उस पर अनुगमन करता। यह बात दूसरी है कि इसी वीसवीं शताब्दी में वह जन्मा, पनपा तथा इसी के अन्त में अब वह पतनोन्मुखी है, वह भी इसलिये कि **कार्ल मार्क्स, लेनिन** तथा **स्टालिन** आदि के नक़्शे–कदम पर भावी पीढ़ी ने आगे चलना समाज हित में न समझा। पर यह भी सच है कि जब किसी महापुरुष की जयन्ती अथवा अन्य कोई स्मृति–समारोह होती है तो सदैव यही वक्ताओं को कहते सुना जाता है कि हमें **उनके पद-चिह्नों या नक़्शे-कदम पर चलना चाहिए।** इसमें असली अनुकरणीय तत्त्व निहित है कि इंगित महापुरुष के गुणों और विशेषताओं को मन में धारण करने हुये हम स्वयं अपनी बुद्धि से **'आत्म दीपो भव'** का पालन करें। उसे **'लीक छोड़ि'** चलने का आवश्यकता नज़र आने पर वैसा करना पड़ेगा, उसे शेर अथवा सिंह जैसा बनना पड़ेगा। फिर बिंहार के कुरमी बंधुओं को **'सिंह'** बनने से चिढ़ क्यों?

स्मरण कीजिए उन कठिनाईयों को और पुरोहितों–पंडितों के उस प्रबल विरोध, को जब हिन्दू स्वराज्य तथा मराठा–राज्य के **संस्थापक शिवाजी महाराज** को अपने राज्याभिषेक के समय झेलनी पड़ी थी, और उन्हें भयंकर

मानसिक कष्ट सहना पड़ा था। अतः हमारे बन्धुओं को उन ऐतिहासिक घटनाओं से पाठ लेना चाहियें और उनसे अनुरोध है कि उन्हें अपने क्षणिक लाभ के लिये स्वयं को वर्णदलित करके तथा अपनी सन्तति और उनकी सन्तति तक के लिये जमाने और समाज के कटुवचन तथा दम्भ भरे अपमान और अवहेलना सुनने के लिये, उन सबका भविष्य न बिगाड़ें। अंग्रेजी की कहावत हैं – "Wise learn by examples while fools learn by experience" अर्थात – **"चतुर दूसरों के उदाहरण से सीख जाते हैं और मूर्ख अनुभव करके समझते हैं।"** यदि समस्या का स्थायी समाधान करना है तो पहले जाति–प्रथा को मूलतः समाप्त करो। अन्यथा जब तक जाति–प्रथा प्रचलित रहती है तब तक किसी भी सन्तुलित दिमाग वाले व्यक्ति का अपने वर्ण से नीचे के वर्ण में उतरना जान–बूझकर अक्षम्य भूल करना होगा।

उपर्युक्त विचारधारा के विरोध में बिहार के हमारे श्रद्धेय आलोचक महोदय जी का कथन है–"ऐसी भावना का ज्वार विगत 80 के दशक में बम्बई में आयोजित अ. भा. कू. क्षत्रिय महासभाधिवेशन के मंच से फूट पड़ा था, जब **'जग में कूर्मि क्षत्रिय जाति महान'** का वंदना गीत गाने के बाद पुरूषोत्तम कौशिक के पिछड़ा वर्गीय समर्थक भाषण पर उनका कुर्त्ता खींचा गया था और बिहार के **कूर्मोदय संपादक** के लिये सभाभवन प्रवेश निषेध था। उनका समादर भारतीय कुर्मी समाज ने अपने तत्कालीन अधिवेशन में किया, सन् 1971 के तीसवें अधिवेशन का आयोजन जो पटना में हुआ था, वह भी महीने भर की बहस के बाद **'कुर्मी महासभा'** के बैनर तले ही हुआ था। क्षत्रिय नामधारी सिंह समूह छाती पीट कर रह गया था। और विगत पटना अधिवेशन ने तो मंच से बाजाप्ता प्रस्ताव पारित कर क्षत्रिय शब्द के निरर्थक जोड़ का विलोपन ही कर दिया था। आज भी बिहार में **''बिहार राज्य कुर्मी सभा''** ही कार्यरत है; जो आश्चर्य है कि अ. भा. कूर्मि क्षत्रिय महासभा से केवल संबद्ध ही नहीं, उसकी कार्यकारिणी समिति में भी घुसा हुआ है।"जमाना जो न कराये थोड़ा" कटाक्ष तो स्पष्ट है पर कौन ठीक कह रहा है और कौन अनर्गल यह पाठक स्वयं निर्णय ले लेंगे

श्री डाह्या भाई पटेल का जीवन वृत

श्री डाह्या भाई पटेल का जन्म सन् 1905 को गुजरात के कणबी–पाटीदार परिवार में हुआ था। उनके पिता लौहपुरूष, राष्ट्रनिर्माता भारतरत्न श्री वल्लभ भाई पटेल थे। डाह्या भाई जब दो वर्ष के थे उनकी माता का एक लम्बी बीमारी में निधन हो गया था। उनकी एक बड़ी बहन थी, उन्होंने कुमारी मणिबेन पटेल के नाम से बाद में, त्याग, तपस्या, पितृ–सेवा, दया–करुणा, सादगी आदि अनेक गुणों के लिये ख्याति अर्जित की। विधुर पिता ने फिर दूसरा ब्याह नहीं रचाया। पिता श्री वल्लभ भाई पटेल को राजनीति के चक्कर में जेल–यात्रा पर अक्सर जाना पड़ता था तो इन दोनों की देखभाल ताऊ **श्री विट्टल भाई पटेल** बार–एट–लॉ के यहाँ बम्बई में होती थी। वे निस्संतान थे अतः डाह्या भाई की पढ़ाई–लिखाई और बहुत कुछ अपने ताऊ–तायी जी की देख–रेख में बम्बई में हुई।

पिता श्री वल्लभ भाई पटेल, गांधी जी के सम्पर्क में आकर पूरे गांधीवादी बन गये थे, अतः अपने दोनों बच्चों की शिक्षा हेतु उन्हें सरकारी विद्यालय छोड़कर, राष्ट्रीय विद्यालय **गुजरात विद्यापीठ** की शिक्षा पूर्ण करके सन् 1929 ई॰ में डाह्या भाई ने राजनीति में प्रवेश किया और सन् 1939 ई॰ में **बम्बई नगर निगम** के चुनाव में **पार्षद** चुने गये। सन् 1949 से 1954 तक आप बम्बई नगर निगम में कांग्रेस पार्टी के नेता रहे, तदपश्चात् सन् 1964 से 1970 तक उसके **महापौर (मेयर)** तथा सन् 1970 में आप **राज्य सभा के सदस्य** चुन लिये गये।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के साथ डाह्याभाई पटेल ने **स्वतंत्र पार्टी** का गठन किया। आप इस पार्टी के पार्लियामेन्टरी बोर्ड के **चेयरमैन** बनाये गये। आपकी असामयिक मृत्यु 11 अगस्त् सन् 1973 में हो गई। सन् 1971 अ॰ भा॰ कू॰ क्ष॰ महासभा के पटना में आयोजित 30 वें अधिवेशन के अध्यक्ष पद को श्री डाह्याभाई पटेल ने ही सुशोभित

किया था। उनकी बड़ी बहिन मणिबेन पटेल कई बार गुजरात से लोकसभा की सदस्या चुनी गई थी। कुछ वर्ष पूर्व ही उनकी मृत्यु बड़ी परिपक्व आयु में हुई । वे सादगी, सदाचार, भारतीय नारी का आदर्श स्वरूप आदि सब कुछ थीं। उनका सब बड़ा आदर करते थे।

आजादी से 45 वर्ष बाद भारत सरकार को सरदार बल्लभ भाई पटेल को भारत रत्न से अंलकृत करने की सुध आयी तक इन्हीं स्व. डाह्याभाई पटेल के पुत्र ने अपने पितामह की ओर से, अलंकरण समारोह में, **अशोक हाल, राष्ट्रपति भवन** में उपस्थित होकर **"भारत रत्न"** तत्कालीन राष्ट्रपति **श्री आर. वी. वेंकटरमन** के कर कमलों से ग्रहण किया ! **यह इतिहास ही बतायेगा कि इस अलंकरण से क्या सरदार बल्लभ भाई का नाम अलंकृत हुआ या यह सर्वोच्च नागरिक सम्मान पदक सरदार पटेल के नाम से जुड़कर स्वयं गौरवान्वित हुआ? अभी हाल में पूर्व वित्त मंत्री** भारत सरकार श्री एच. एम. पटेल के संरक्षण में एक ट्रस्ट द्वारा **'सरदार बल्लभ भाई पटेल'** पर एक फिल्म बनायी गयी, जिसे राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल शर्मा द्वारा राष्ट्र को अर्पित किया गया । डा. एच. एम. पटेल का निधन हाल में ही हो गया।

भारतवर्ष विश्व संस्कृति का उद्‌गम केन्द्र

प्रख्यात विद्वान जर्ममी के **मैक्समूलर** ने सन् 1858 में एक परिचर्चा में **ब्रिट्रेन की सम्राज्ञी विक्टोरिया** से कहा था–**"यदि मुझ से पूछा जाय कि किस देश में मानव मस्तिष्क ने अपनी मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों को विकसित करके उनका सही अर्थों में सदुपयोग किया है? जीवन के गंभीरतम प्रश्नों पर गहराई से चिन्तन किया है और समाधान ढूँढ़ निकाले हैं?** तो मैं **भारतवर्ष की ओर इंगित करूँगा, जिसकी ओर प्लेटो और काण्ट जैसे दार्शिनिकों के दर्शन के अध्ययन कर्त्ताओं का ध्यान भी आकृष्ट होना चाहिए।"**

"यदि कोई पूछे मुझसे कि किस साहित्य का आश्रय लेकर सैमैटिक युनानी और रोमन विचारधारा में प्रवाहित योरोपीय अपने आध्यात्मिक जीवन को अधिकाधिक विकसित कर सकेंगे? जो इहलोक से ही संबद्ध न हो, अपितु शाश्वत एवं दिव्य हो, तो फिर मैं भारत की और संकेत करूँगा।"

उन्नीसवीं के अन्तिम दशक में भारत आए प्रसिद्ध विद्वान **लार्ड विलिंगटन** ने इस देशवासियों के प्रति अपना अनुभव व्यक्त करते हुए लिखा है–**"समस्त भारतवासी चाहें महलों में रहने वाले राजकुमार हों या झोपड़ों में रहने वाले गरीब लोग, वे सब संसार के सर्वोत्तम शील-सम्पन्न लोग हैं मानों यह उनका नैसर्गिक धर्म है। उनकी वाणी एवं व्यवहार में माधुर्य तथा शालीनता का अनुपम सामंजस्य दृष्टि गोचर होता है। वे सहिष्णुता, दयालुता एवं सहानुभूति के किसी कर्म को करने में न चूकते।"**

भारतीय संस्कृति की महत्ता पर उद्‌गार व्यक्त करते हुए पेरिस विश्व विद्यालय के **प्रख्यात दार्शनिक प्रो. लई टिनाऊ** ने एक बार कहा था–**"जीने की तथा परस्पर मानवी संबंधों की इतनी सुन्दर सर्वांगपूर्ण आचार संहिता विश्व के किसी भी अन्य धर्म अथवा संस्कृति में नहीं है, जो कि भारतीय संस्कृति में विद्यमान हैं। वह आज भी विश्व को मार्गदर्शन प्रदान करने में सक्षम है।"**

पश्चिमी विचारकों पर भी भारतीय तत्वज्ञान की स्पष्ट छाप नज़र आती है। **गणितज्ञ पाइथागोरस** उपनिषद की दार्शिनिक विचारधारा से विशेष प्रभावित था । गणित विद्या का आविष्कारक भारत ही है। **शून्य का अंक** तथा संख्याओं के लिखने की आधुनिक प्रणाली मूलतः भारतवर्ष की ही देन है। भारतीय विद्वान **आर्य भट्ट** ने वर्गमूल, घनमूल जैसी गणितीय विधाओं का गवेषण किया, जो वर्तमान में भी दुनिया भर में प्रयोग में आ रहा है। अरब निवासी अंकों को **'हिंदसा'** कहते थे, क्योंकि उन्होंने इस ज्ञान को **हिन्द** से ग्रहण किया था। ऐसे अगणित प्रमाण विश्व के विभिन्न देशों, **चीन, जापान, तिब्बत, कोरिया, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड** तथा **श्री लंका** आदि में बिखरे पड़े हैं, जो

यह प्रमाणित करते हैं कि भारतवर्ष समय–समय पर अपने **भौतिक** एवं **आध्यात्मिक ज्ञान-सागर** से इस बसुन्धरा को अभिसिंचित करता रहा है। भविष्य में यह बीज पुनः अंकुरित होंगे और सारे विश्व को पुनः शाश्वत ज्ञान से लाभांवित करेंगे। वास्तव में **बुद्ध** के **'धर्म चक्र प्रवर्तन'** का वह उत्तरार्ध होगा, इतिहासकार उसे क्या नाम देते हैं। इसका उत्तर भविष्य में ही दिया जा सकेगा।

''कुर्मी महारैली लखनऊ की उपलब्धियां''

डा॰ सोनेलाल पटेल के साहस, दृढ़–संकल्प,परिश्रम, अध्यवसाय व लगन की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। पहली बार कुर्मी जाति के किसी समाजसेवी ने यह अभूतपूर्व हिम्मत दिखाई है और खुलकर कुर्मी नाम का प्रयोग किया।

19 नवम्बर 94 को उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ कुर्मीमय हो गयी थी। प्रमुख सड़कें, स्थल, बाजार आदि कुर्मी रैली के पोस्टों, द्वारों, झंडियो आदि से पट गए थे। दीवालें रैली के विज्ञापनों से रंग गई थीं।

इस रैली की प्रथम उपलब्धि तो यह है कि जो लोग अपने कुर्मी कहने का साहस नहीं जुटा पाते थे, अपने को ठाकुर/राजपूत बताते थे उनमें से अधिकांश के मन से वह झिझक दूर हो गई। अब उन्हें अपने को कुर्मी कहने से हिचक न होगी। यह संकोच भारत–गणराज्य की स्थापना के बाद दूर हो जाना चाहिए था। कौन नहीं जानता कि भारत राष्ट्र के महान शिल्पी सरदार बल्लभ भाई पटेल कुर्मी थे। वर्तमान समय में इस जाति में ऐसे युग पुरूष नेता के होते हुए भी लोग अपने को कुर्मी बताने में हिचकते रहे। वास्तव में ऐसे लोगों की आत्मा कितनी कमजोर थी चाहे वे कितने ही उच्चपदस्थ हों या वैभवशाली हों।

अंग्रेजी राज्य की एक बड़ी देन यह थी कि समान अपराध के लिए सबको समान दण्ड मिलता था। मुस्लिम काल में दण्ड देने में हिन्दू–मुसलमानों में भेद किया जाता था। एक ही अपराध के लिए ब्राह्मण को सबसे कम, उससे कुछ अधिक क्षत्रिय को क्षत्रिय से अधिक वैश्य को और सबसे अधिक शूद्र को दण्डित किया जाता था। अब सबको संविधान के द्वारा समान अधिकार प्राप्त हैं। यदि कोई वर्ग किसी वर्ग या जाति को उसके अधिकारों कि वंचितों को संगठित करके उनके अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष करें।

दूसरी उपलब्धि यह रही कि रैली की अपार भीड़ ने राजधानी–वासियों को यह अहसास करा दिया कि कुर्मी भी कोई हैं और उनकी जनसंख्या उत्तर प्रदेश में नगण्य नहीं है।

तीसरी उपलब्धि यह थी कि कुर्मी बन्धुओं ने यह सिद्ध कर दिया कि उनमें भी राजनैतिक चेतना का अभाव नहीं है। उसे सिद्ध करने के लिए इतनी बड़ी संख्या में लारियों, ट्रैक्टरों, जीपों, कारों, मोटर साइकिलों स्कूटरों और बाइसिकिलों में अपना पैसा खर्च करके प्रदेश के विभिन्न अंचलों से रैली में उपस्थित हुए।

चौथी उपलब्धि यह थी कुछ स्वजातीय वर्तमान एवं भूतपूर्व मंत्री, सांसद एवं विधायक मंच पर उपस्थित हुए और अपने विचार भी व्यक्त किये। विधायक श्री रामदेव पटेल अपवाद थे। वह तो इस आयोजन के सह–संयोजक ही थे।
प्रस्तुतिः देवी प्रसाद वर्मा, दुन्द पर, रूझेई–उन्नाव (उ.प्र.)

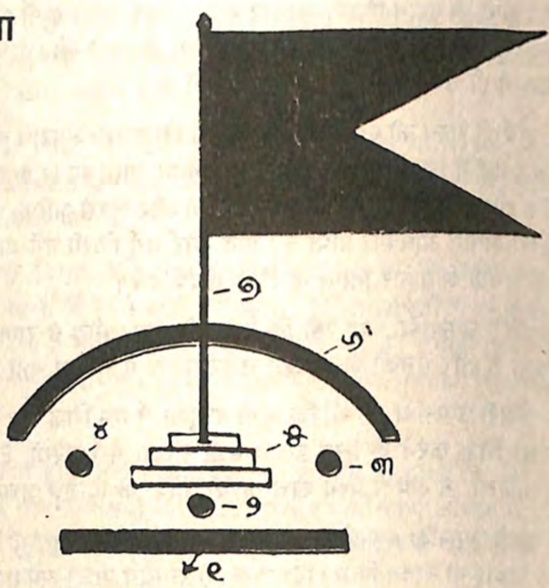
इक्तीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 31 वाँ अधिवेशन 23,24 और 25 मई सन् 1976 को भंज नगर, जिला गंजाम (उड़ीसा) में, मद्रास से बच्चों के लिये प्रकाशित होने वाली, 'चन्दा मामा', हिन्दी मासिक पत्रिका के सम्पादक, श्री बालशौरि रेड्डी की अध्यक्षता में बड़े धूम-धाम से आंचलिक वातावरण में सम्पन्न हुआ था।

इस अधिवेशन को सफल बनाने में उत्कल बन्धुओं ने अपने सामर्थ्यानुसार खूब धन भी एकत्र किया, पर उससे कहीं अधिक तन–मन से प्रफुल्लित चित्त से सबने कार्य किये। यद्यपि उनकी आर्थिक सम्पन्नता अन्य प्रदेशों के स्वजातीयों की तरह उन्नत नहीं है, पर भावना, लगन और कर्तव्य–परायणता में, जातीय–संगठन के कार्य में, वे अन्य प्रदेशों के लोगों से कम नहीं। वहाँ के आयोजकों ने लगभग 5000 लोगों के भोजन की दोनों समय की व्यवस्था कर रखी थी। सारा खाना वहाँ की स्वजातीय माताओं और बहिनों ने बनाया था।

प्रथम दिन पहले एक बड़े अनुशासित ढ़ंग से साज–सज्जा के साथ अध्यक्ष, **श्री बालशौरि रेड्डी** के सम्मान में एक लम्बा जलूस उनको लेकर प्रतिनिधियों और दर्शकों की विशाल भीड़ के साथ, लगभग 3 मील लम्बे सजे हुये मार्ग से निकाला गया। जलूस अधिवेशन स्थल पर जाकर समाप्त हुआ। माननीय अध्यक्ष जी ने झंड़ा आरोहण किया, और उत्कल युवा छात्र–छात्राओं ने सस्वर निम्न गीत गया :–

कूर्मि क्षत्रिय जाति की ध्वज-बन्दना



नमो नमो गैरिक पताका नमो नमो ।।०।।

कूर्मि कुल गौरव वैभव,

कूर्मि जीवन नमो नमो ।।१।।

गौ-मानव प्रतिपालक शिवाजी,

विजय वैजयंती नमो नमो ।।।२।।

क्षत्रिय रूधिर प्रकंपक संकेत,

धर्म विवर्धक नमो-नमो ।।३।।

जाति-प्रणति नन्दिघोष निकेतन,

शान्ति मैत्री प्रीति नमो-नमो ।।४।।

चिर वन्दनीय गैरिक पताका,

जातिका निशान नमो नमो ।।५।।

प्रस्तुति :- कीर्ति प्रधान, जिलुंडि, भंज नगर (गंजाम), उड़ीसा।

ध्वज–वन्दना का भावार्थ :–

(1) अपने सामने वेद, पुराण और शास्त्रादि के सिद्धान्तों को रखकर

हे गेरूये (भगवा) रंग की पताका ! मैं तुझे बार–बार प्रणाभ करता हूँ।

(2) तू कूर्मि कुल का गौरव है। कूर्मि जाति का जीवन है,

इसीलिये मैं तुझे बार–बार प्रणाम करता हूँ।

(3) गौ–प्रजाति, मानव जाति के प्रतिपालक, कूर्मि भास्कर वीर शिरोमणि छत्रपति शिवाजी महाराज की तू विजय वैजयन्ती (पताका) है, इसलिये मैं तुझे बार–बार प्रणाम करता हूँ।

(4) तू सदा ही क्षत्रिय जाति का क्षत्रियत्व उद्दीपक और क्षत्रिय धर्म का विवर्धककारी है, इसलिये मैं तुझे बार–बार प्रणाम करता हूँ।

(5) अभी कूर्मि क्षत्रिय जाति का जो प्रणति नन्दि घोष चला है, तू

उनकी पताका है, और शान्ति, मैत्री एवं प्रीति का प्रतीक है,

इसीलिये मैं तुझे बार–बार प्रणाम करता हूँ।

(6) यह पताका भगवा (गैरिक) रंग की दो सम्मुख कोणों वाली हैं, जिसमें चन्द्रमा तथा सूर्य के चिह्न अंकित है, यह संकेत के लिये कि कूर्मि क्षत्रिय, सूर्य और चन्द्र वंशी होते हैं।

(7) इसलिये भी तुझे बार–बार प्रणाम करता हूँ कि तू चिरकाल (सदा–सदा) के लिये इस जाति की नमस्य और वन्दनीया है। इस जाति का गौरव–रक्षा करें।

इस झंडे की संवैधानिक मान्यता नियमावली

(क) इस गैरिक पताका को कूर्मि क्षत्रिय जाति ने परमादरणीय सांकेतिक चिह्न के रूप में ग्रहण किया था।

(ख) मंड़ल, जिला और प्रादेशिक कूर्मि क्षत्रिय कार्यालय में इस पताका को सदैव फहराते रखना चाहिये।

(ग) प्रत्येक बैठक अथवा सभा से पूर्व इस पताका को आदर पूर्वक फहराकर अवश्य सस्वर वन्दन–गान होना चाहिये और उस कार्यक्रम के अन्त में सम्मान पूर्वक उसको उतार कर, समेट लेना चाहिए।

(छ) ध्वजारोहण समय तथा पताका वन्दना के समय सबको सावधान की शारीरिक स्थिति में इसे सम्मानपूर्वक सामूहिक रूप से गाना चाहिये।

गैरिक ध्वज का संक्षिप्त इतिहास

उत्कल कूर्मि बन्धुओं ने जो चार पृष्ठ की अपनी लघु–पुस्तिका झंड़ा–गान, झंड़ा–वन्दना नियम, तथा झंड़ा–वन्दना के भावार्थ व उसके संक्षिप्त इतिहास आदि देते हुये लिखी है, उसमें झंड़े का चित्र भी अंकित है, तथा झंड़ा–वन्दना के समय कूर्मि क्षत्रिय समाज के पदाधिकारियों और अन्य बन्धुओं को कहाँ–कहाँ कैसे अनुशासन पूर्वक खड़े होना चाहिये, यह सब बताया गया है। उसके अनुसार कूर्मि क्षत्रिय गैरिक झंड़े का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है :–

कूर्मि क्षत्रिय कुलावतंस, आर्य संस्कृति रक्षक वीर शिरोमणि **छत्रपति शिवाजी महाराज** ने गैरिक (भगवा) ध्वज को अपने परम सम्माननीय संकेत चिह्न के रूप में ग्रहण किया। त्याग शान्ति, मैत्री और प्रीति के प्रतीक के स्वरूप में सब सांस्कृतिक संस्थाओं के द्योतक के रूप में युगों–युगों से विभिन्न हिन्दू धर्मानुष्ठानों में गैरिक पताका का प्रचलन रहा है। कूर्मि क्षत्रिय जाति की गौरवमय गरिमा का वर्णन वेद एवं पुराण–शास्त्रों में मिलता है। कूर्म क्षत्रियों के मूल वंश, सूर्य तथा चन्द्र वंश हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकार **श्री जयचन्द विद्यालंकार** ने अपने **'इतिहास-प्रवेश'** ग्रन्थ के पृष्ठ 28 पर लिखा है कि प्राचीन शास्त्रों के अनुसार हमारे देश में दो वंशों के राजा हुये। एक मानव या सूर्य वंश के, दूसरे इला से चन्द्र वंश। मानव वंश के राजा इक्ष्वाकु से सूर्य वंश आगे चला और वे सूर्य पौत्र थे। ऐल वंश में राजा पुरूरवा हुये, उन्हें चन्द्र का पुत्र

कहा गया है। इस प्रकार क्षत्रिय जाति के लोग सूर्य एवं चन्द्र दो वंशों में विभक्त हो गये। शनैः शनैः ये दो वंश विभिन्न शाखाओं उपशाखाओं में परिवर्तित हो गये। कूर्मि क्षत्रिय जाति के मूल वंश, सूर्य और चन्द्र दो ही हैं। इसलिये उत्कल कूर्मि क्षत्रिय समाज की द्विकोणी गैरिक पताका पर सूर्य और चन्द्र के चिह्नों द्वारा कुरमियों की दो प्रमुख वंशगत् शाखाओं को प्रदर्शित किया गया है।

इक्तीसवें अधिवेशन में स्वागत भाषण **श्री जनार्दन दलबहेरा** ने दिया। उनके आत्मीय अभिवादन से उपस्थित जनसमूह विशेष करके उत्कल के बाहर से आये सैकड़ों प्रतिनिधियों को यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि वहाँके स्वयंसेवकों ने इस अधिवेशन को सफल बनाने के लिये, प्रदेश भर में, गाँव–गाँव, शहर–कसबे आदि धूम–धूमकर प्रचार किया, जिससे ज्यादा से ज्यादा उत्कल कूर्मिजन, जोकि सब उड़िया भाषा–भाषी हैं, देश की कुरमियों की मुख्यधारा से सक्रिय रूप से सम्बद्ध हो सकें। **''भंज नगर (गंजाम) उत्कल कूर्मि क्षत्रिय सभा''** के पदाधिकारियों और सदस्यगण दूर–दूर तक, गाँव–गाँव धूमकर स्वजातीयों के इस अधिवेशन में भाग लेने के लिये सूचना दे आये थे। फलतः नर–नारियों की हजारों की भीड़ स्थानीय स्वजातीयों की थी।

तेलगु भाषी होते हुये भी **श्री बाल शौरि रेड्डी** हिन्दी के प्रख्यात लेखक, उपन्यासकार और कथाकार हैं। उनका सारगर्मित भाषण हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम देश के विभिन्न नामों से जाने वाली कूर्मि विशाल जाति के सदस्यों का आह्वान किया कि इस महासभा से सम्बद्ध होकर इसे सुदृढ़ बनायें जिससे नामानुसारं अखिल भारतीय स्तर पर अपनी सब शाखाओं और उपशाखाओं के उत्कर्ष और संगठन के लिये कार्य हो सकें। उन्होंने अपने भाषण में कूर्मि बन्धुओं के सम्मुख बीस–सूत्री योजना रखी, जिसके आस्थापूर्वक क्रियान्वयन से समाज को सही दिशा की ओर ले जाया जा सकेगा और सब कूर्मियों को अपने शैक्षिण, सामाजिक, राजनैतिक, व्यावसायिक आदि हर दृष्टि से उन्नति का मार्ग प्रशस्त्र हो सकेगा। **श्री बाल शौरि रेड्डी** का जीवन वृत्त इस पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।

प्रो. रामवुझावन सिंह पटना के बी. एन. कालिज के हिन्दी विभागाध्यक्ष का बड़ा विद्वतापूर्ण भाषण हुआ। अधिवेशन के दूसरे दिन नारी सम्मेलन मध्यप्रदेश की **श्रीमती सत्य भामा आडिल** की अध्यक्षता में आयोजित हुआ उसमें स्थानीय **श्रीमती महन्ता** तथा अध्यक्ष महोदया के सारगभित भाषण हुये। तीसरे दिन युवा–सम्मेलन कन्नौज के **श्री राजेन्द्र कुमार,** गीता प्रिन्टिंग प्रेस, हरदेवगंज, कन्नौज वालों की अध्यक्षता में आयोजित हुआ, जिसमें अनेक युवाओं ने जातीय संगठन को मजबूत करने के लिये तथा जातीय–उत्थान के लिये अनेक महत्वपूर्ण सुझाव रखे। इस अधिवेशन में प्रधानमंत्री **श्री गुप्तनाथ सिंह** अस्वस्थता के कारण भाग नहीं ले सके। सर्वसम्मति से पटना वाले श्री सिद्धेश्वर प्रसाद को नया महामंत्री निर्वाचित किया गया। श्री बालशौरि रेड्डी ने दक्षिण के बन्धुओं के बारे में जानकारी इन शब्दों में दी :–

'' दक्षिण में कृषक वर्ग को 'कापु' नाम से सम्बोधित किया जाता है। कापु शब्द इतना व्यापक है जिस में सारे कृषक वर्गों का समावेश हो जाता है। रेड्डी, कम्मा, नायडू प्रधानतः कृषक वर्ग है। सम्पन्न वर्ग भी हैं। रेड्डी वंश ने आन्ध्र देश पर सन् 1324 से 1434 तक शासन किया था। रेड्डी राजाओं के समय में आन्ध्र ने कला,संस्कृति, कृषि, व्यापार, भाषा, साहित्य आदि क्षेत्रों में स्पृहणीय उन्नति की थी।''

"The History of the Reddy Kingdom" जो **आन्ध्र विश्वविद्यालय वाल्टेयरं (विशाखा पटणम्)** द्वारा प्रकाशित पुस्तक है। तेलुगु के प्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय **सुखरमु प्रताप रेड्डी** ने अपने **''आन्ध्र का सामाजिक इतिहास''** में सौ पृष्ठों में रेड्डी राज्य की अत्युन्नति का विशद विवेचन किया है। यह ग्रन्थ हिन्दी में भी साहित्य एकाडेमी दिल्ली के द्वारा उपलब्ध है। ये रेड्डी वंशज न केवल आन्ध्र के अनेक जिलों में फैले हैं अपितु कर्नाटक तथा तमिलनाडु में भी जा बसे हैं। ये ही लोग तमिलनाडु में रेड्डी या नायडु नाम से अभिहित हैं।

कापू कम्मा और रेड्डी बन्धुओं का प्रभाव चित्रपट जगत् में भी, विशेषकर आन्ध्र प्रदेश में अत्यधिक छा गया है

जैसा कि 24 जनवरी 1994 के दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक "दि हिन्दुस्तान टाइम्स" और नीचे उद्धृत समाचार से स्पष्ट पता चलता है:–

CINE-POLITICS

The star-crossed politics of Andhra Pradesh will see the entry of another matinee idol, Chiranjeevi, in the election campaign for the State Assembly scheduled for November this year.

Reportedly getting a signing amount of Rs one crore for a film, the Telugu superstar who had delivered some super box office hits like Pratibandh, will be a match for the ageing NTR who seems to be in the come back trail.

The macho hero has been roped in by the Congress and recently had a meeting with top Congress leaders.

In the complex caste equation of the State, Chiranjeevi belongs to the influential Kappu community which ranks after Reddys and Kammas. NTR belongs to the Kammas community, while the Congress claims the support of the Reddys.

The Congress desperately needs an impressive poll performance in the home state of the Prime Minister as a setback could make **Mr Narsimha Rao** vulnerable at the national level.

Even in second rung positions like government pleaders in districts, public prosecutors, assistant government pleaders, additional prosecutors etc. it is the Reddys who call the shots.

When the congress returned to power in November 1989 little did the partymen realise that this will lead to something like this. The then chief minister, **M. Channa Reddy,** had sought to dispel notions that his government would favour one section of the society like the Congress predecessor Telugu Desam was alleged to have done.

He was succeeded by **Janardhana Reddy**, who too, did little to whitle down the growing importance being given to this community. Plum posts, cushy jobs and important portfolios went to members of the Community and when **Vijay Bhaskar Reddy** formed his Cabinet in October 1992, it was the same story.

All important portfolios like, Home, Revenue, Roads and Buildings, Panchayat Raj, Civil Supplies, Agriculture, Excise and Cooperation went to the Reddys.

According to a list compiled by the group of legislators belonging to the backward classes, at least 30 of the 70-odd government undertakings and corporations are headed by Reddys. Both the Lok Ayukta and Up-Lok Ayukta belong to this caste. Most of the 13 Universities and deemed Universities in the state have Reddys as Vice-Chancellors. Government pleaders in district too, have been picked up on the basis of caste.

All the three Chief Ministers-**Channa Reddy, Janardhana Reddy** and **Vijay Bhasker Reddy**-gave important portfolios to people belonging to their own community, thus reserves for the others. In the selection of candidates for the 1989 Assembly election too, **Channa,** who was Andhra Pradesh Congress Committee President then, gave the maximum number of tickets to Reddys and 68 of them were elected.

Confronted with the charge that Reddys were getting a lion's share, Chief Minister **Vijaybhaskar Reddy** says that 22 members of his Cabinet belong to the weaker sections.

When the major chunk of the Congress Legislative Party comprises of Reddys, how can this group be ignored? he asks. He denied a castiest bias and maintained that the community has played a prominent role in bringing the congress back to power.

But, **Subba Rao,** insists, the Reddys have always been opposed to the Congress. In 1978, they sailed with the Congress (R) of **Brahmananda Reddy** and **Vijaybhaskar Reddy** himself was President of the Andhra Pradesh unit of the Congress-R, he says.

The Congress party has accused Telgu Desam Party Supremo N. T. Rama Rao of projecting Kammas but it now stands exposed by its own partyman. In this news article "A Reddy Reckoner" of Reddys was also given.

उत्तर प्रदेश नवम्बर 1993 के बाद कांशीराम–मुलायम सिंह गठबन्धन के बाद आन्ध्र प्रदेश में पिछड़े वर्ग के नेता गणों ने मिल जुलकर जनवरी 94 को कांशीराम को आमंत्रित किया वहाँ 40 प्रतिशत पिछड़े वर्ग के लोग हैं। कापू (Kapus) में अनेक पिछली जाति को मिलाकर जो कृषक हैं आती हैं और कम्मा (Kammas) केवल रेड्डी नायडू हैं। इसलिये सब पिछडीं कापू जातियों को मिलाकर कापू नाडू बनाने में चर्चा चल रही थी।

स्वतन्त्रता पश्चात् गवर्नर अथवा राज्यपाल

1. **हिज एक्सेलेंसी राइट आनरेबिल इ॰ राधवेन्द्र राय नायडू, मध्य प्रान्त के लाट साहब (गवर्नर) रहे।**
2. **हिज एक्सेलेंसी सर कूर्म रमण रेड्डी, मदरास हाता के लाट साहब (गवर्नर) थे।**

इस झंडे की संवैधानिक मान्यता नियमावली

3. **भारत कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू - प्रथम गवर्नर -उत्तर प्रदेश**
4. **डाक्टर वेजवाड़ा गोपाल रेड्डी - सन् 1967 से उत्तर प्रदेश के राज्यपाल**
5. **डाक्टर एम॰ चन्ना रेड्डी - राज्यपाल उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान**
6. **डाक्टर सत्यनारायण रेड्डी - राज्यपाल उत्तर प्रदेश**
7. **डा॰ ब्रह्मानन्द रेड्डी - राज्यपाल कई प्रदेशों के।**

भारत के महामहिम राष्ट्रपति (सन् 1977 से 24 जुलाई सन् 1982 तक): श्री नीलम संजीवा रेड्डी

श्री नीलम संजीवा रेड्डी – आप जुलाई 1977 से सर्वसम्मति से राष्ट्रपति बनाये गये। वे 19 मई, 1913 को आन्ध्रप्रदेश के अनन्तपुर जिले के अन्तर्गत इल्लस गाँव में एक कापू (रेड्डी) कृषक परिवार में जन्में थे। वे कोस्टिटुयन्ट

असेम्बली के सदस्य, मद्रास सरकार में मंत्री, आन्ध्रप्रदेश के पहले उपमुख्यमंत्री फिर मुख्य मंत्री बने। केन्द्रीय सरकार में कैबिनट मंत्री थे तब वे लोकसभा के स्पीकर चुने गए।

आन्ध्र और कर्नाटक में भावी विधानसभा चुनावों के लिये राजतीतिक दलों में हलचल तथा जातीय जागरूकता भड़की। कई नेतागण् आन्ध्र प्रदेश में कापू समुदाय के समर्थन पर उम्मीदें लगाये बैठे है। कापू कई उपजातियों में विभक्त हैं। यह जाति कुल प्रादेशिक जनसंख्या का 20 प्रतिशत है। तेलगाना में उन्हें मुन्नूक कापू कहा जाता है। रायल सीमा में उन्हें तेलंगाना या वालजिगा भी कहते हैं। कापू अपने को पिछड़े वर्ग में घोषित किये जाने की मांगकर रहे हैं। पिछड़े कुछ वर्षो से सामाजिक और राजनैतिक उत्थान की मांग कर रहे ये कापू **कांशीराम** की बहुजन समाज पार्टी के साथ जायेंगे इसमें संदेह हैं। जनसंख्या का पांचवां हिस्सा होने के बावजूद, किसी बड़ी राजनैतिक शक्ति के साथ जुड़ना उनकी नियति प्रतीत होती है। ये ताकतें राज्य मे दो ही है–कांग्रेस और तेलुगुदेशम राज्य के खान मंत्री और कापू नेता हरिराम जोगैया कहते हैं, "आन्ध्र में दो ही राजनैतिक ताकतें हैं पिछड़ी जातियां, रेड्डी, कापू, कम्मा आदि और दलित (अनुसूचित) जातियाँ कांग्रेस की रीढ़ की हड्डी हैं।"

जातीय समीकरण

सन् 1952 के पहले आम चुनाव में ही विभिन्न दलों ने निर्वाचन क्षेत्रों में जातीय समीकरण को ध्यान में रखकर प्रत्याशियों का चयन किया था। लेकिन वास्तव में राज्य में जातीय उन्माद की लहर एन टी आर (एन टी रामाराव) के मुख्यमंत्री बनने पर उठी थी, जोकि स्वयं **कम्मा** उपजाति के हैं। एन टी आर को अपदस्थ करने के लिये कांग्रेस ने विभिन्न जातियों को उनके खिलाफ भड़काना शुरू किया था। कांग्रेसी नेताओं ने कृषक व्यवसाय से सम्बंधित **'कापू'** जाति को एक जुट किया। **'कापू' जाति** तब तक बिखरी हुई थी। कांग्रेस की इन करतूतों से तटवर्ती आंध्र में **'कम्मा'** और **'कापू'** जाति, जिसमें **'रेड्डी** भी आते हैं, की मदद से कांग्रेस पुनः सत्ता में आ गयी। इस दौरान **'कापू'** लाबी एक मजबूत ताकत उभर कर आयी जो अपने को अन्य पिछड़े वर्गो में सम्मिलित किये जाने की जोरदार मांग करने लगी उसी समय कांग्रेस में भी पिछड़े वर्ग के नेताओं में तीव्र अंसतोष पन लगा। जल्दी ही में विभिन्न समुदायों को संतुष्ट करने के क्रम में पिछड़े वर्ग के दो व्यक्तियों का राज्यसभा के लिये चयन किया गया।

एन टी आर ने इससे दो कदम आगे बढ़कर अकेले **'कापू'** उपजाति के दो नेताओं को राज्यसभा में, निर्वाचित करवाकर पहुँचवा दिया। एन टी रामाराव के इस उपकार की 'कापू' उपजाति ने आन्ध्र प्रदेश में तहे दिल से उनकी प्रशंसा की। उन्होंने मुख्यमंत्री विजय भास्कर रेड्डी की 'कापू' उपजाति के लोगों की उपेक्षा करने के लिये निंदा भी की। फिलहाल कापूओं का एक बड़ा वर्ग एन टी रामाराव को समर्थन देने पर विचारधीन है। **कापूनाडू** के एक गुट के नेता **मुद्रागडा पदननाभम** अभी कांशीराम के साथ जाने के इच्छुक नज़र नहीं आते।

सन् 1994 में **आन्ध्र प्रदेश** के कांग्रेसजनों ने, विशेषकरके पिछड़े वर्गो के सदस्यों ने अपने नेताओं से प्रदेश की सत्ता में **रेड्डी लोगों के वर्चस्व** के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुये अपनी प्रादेशिक जनसंख्या के अनुपात में आगामी विधान सभा चुनावों में अपने–अपने उम्मीदवारों के लिये टिकटों की मांग रखी है। यहाँ तक कि कम्मा लोग कुल 294 विधान सभा सीटों में से 15 प्रतिशत टिकटों की मांग कर रहे हैं। इस प्रकार अन्य पिछड़े वर्गो में आने वाली जातियाँ कम से कम 100 सीटों पर अपने उम्मीदवार खड़ा करना चाहती हैं।

आन्ध्र प्रदेश के समुद्र तटीय क्षेत्रों में संख्या के आधार पर कापू लोगों की बहुलता हैं और इसीलिये उन्होंने भी 80 सीटों के लिये दाबा पेश किया है।

सन् 1987 के विधान सभा चुनाव में कांग्रेस ने 87 रेड्डी उम्मीदवार खड़े किये जिनमें 66 विजयी हुए। 31 कम्मा उम्मीदवारों में 19 जीते और 26 कापू उम्मीदवारों में 18 सफल हो सके। इस प्रकार रेड्डी, कम्मा और कापू

मिलाकर 103 विजयी हुये, जब कि विधान सभा की कुल सीटें 249 हैं।

अगर पार्टी नेता ज्यादा सीटों के लिये कम्मा और कापू लोगों की माँगे जिस हद तक स्वीकार करते हैं, उसी के अनुसार रेड्डी लोगों को कुछ सीटें खोनी पड़ेगी। यह सर्वविदित है कि रेड्डियों का रायसीना क्षेत्र की राजनीति और प्रादेशिक सत्ता पर अपना वर्चस्य सर्वत्र फैला हुआ है। यहाँ तक कि प्रधानमंत्री श्री पी॰ वी॰ नरसिंह राव के अपने नादयाल संसदीय क्षेत्र की सातों विधान सभा सीटों पर रेड्डी विधायक चुने गये है जिनमें 5 कांग्रेस टिकट से तथा दो तैलगू देशम पार्टी के चुनाह चिह्न पर। आन्ध्रप्रदेश की राजनैतिक रस्साकशी में एक और रेड्डी लोग हैं और दूसरे सिरे पर कम्मा, कापू तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लोग सक्रिय नज़र आते हैं।

"Kapus Sore Over Congress Betrayal"

नई दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक ''दि हिन्दुस्तान टाइम्स'' के 22 मार्च 1994 के अंक में उपर्युक्त शीर्षक से लेख प्रकाशित किया गया, जिसक कुछ अंश साभार नीचे उद्‌घृत किये गए हैं :-

The ruling Congress in Andhra Pradesh is faced with a virtual revolt by Kapus over the issue of not according them the Backward Classes status as promised during the 1989 elections.

The Kapus, who are variously known as Balijas, Telegas and Ontari in different regions of the State, account for nearly 17 per cent of the population. Over the years they have progressed from landless to land owning community, acquiring economic prosperity and aspiring for political power. The brutal murder of the Congress Kapu MLA, Vangaveeti Mohan Ranga Rao, allegedly by TDP men, rallied them around the Congress during the 1989 elections.

The Kapus are sore today because they feel that the Congress has betrayed them. For the past few weeks, the entire Godavari delta, where they are concentrated in large numbers, was witnessing sustained agitation in support of their demands. The movement took a militant turn following police lathi-charge on Kapus demonstrating against Chief Minister K. Vijaya Bhaskar Reddy at a meeting at Ravulupalem in east Godavari district on Feb. 26, 1994.

The meeting organised by some Kapu ministers aimed at convincing the community about the Government's sincerity in tackling their problems. the incensed Kapu's then and there formed a Kapu struggle committee to further their agitation and teach the Congress a lesson. The Telugu Desam Party, which is always in the lookout for opportunities, promptly extended help to the movement.

The Government subsequently regretted the police lathi charge and ordered a judicial inquiry, but the Kapus organised a counter meeting on March 20 at the same venue at Ravulapalem, where majority of the speakers served an ultimatum on the State Government to announce before March 25 the inclusion of Kapus in BCs. A ruling party MLA Mudragada Padmanabham presided over the meeting and announced that if by the noon of March 25 the announcement did not come, he would submit his resignation from the Assembly. Another ruling party MLA Jakkampudi Rammohan Rao declared that he would submit his resignation

on March 24 if the demand was not met. While Mr Padmanabham urged the crowd to resort to 'rasta roko' and 'rail roko' and 'jail bharo' agitations, Mr Rammohan Rao advocated boycott of the forthcoming Assembly elections. Another ruling party MLA Mrs Ratna Kumari (wife of the late Ranga Rao) threatened to immolate herself for the Kapu cause.

The meeting was ample proof that the movement has slipped out of the hands of senior Kapu leaders, most of whom are allied with ruling party. Militant youth were in the vanguard of the agitation and often shouted down senior leaders who advocated a dialogue approach for settling their issue.

The only consolation for the Congress is the sharp differences among the Kapu leaders that came to the fore at the meeting. The Ministers hailing from the community, Mr Ch. Harirama Jogaiah, Kanna Laxminarayana, B. Satya Rao and Sangitam Venkat Reddy boycotted the meet. Similarly the MLAs and other leaders who participated in the meeting spoke in divergent voices. Assembly Deputy Speaker D. Vadavyas, MLAs K. V. Ch. Mohan Rao and Mrs Ratna Kumari refused to bow to the demand to resign their Assembly seats. The three declared that while they fully endorsed the demand for inclusion of Kapus in BC, they asked the crowd to wait for the outcome of BC commission, recently appointed by the State Government to examine the issue of community-wise reservation for the BCs. They said that it was only the Congress which can give the Kapus their due.

The struggle has also suffered a setback with no support coming from TDP. The committee members met TDP general secretary N. Chandrababu Naidu and urged him to agree to their demand and in turn they would extend their support to TDP in the coming election. But Mr Naidu remained non-committal on the issue.

Meanwhile some Kapu leaders have taken the initiative to bring the warring factions together and find an agreeable solution to the problem. Ultimately the Andhra Pradesh Govt. announced the inclusion of Kapus in the reservation list of OBCs.



बत्तीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 32 वाँ अधिवेशन दिनाँक 10 और 11 जून सन् 1978 को प्रथम बार देश की राजधानी दिल्ली में सुप्रसिद्ध रामलीला मैदान में गुजरात के लोकसभा के सदस्य प्रोफेसर आर. के. अमीन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। दिल्ली कूर्मि क्षत्रिय समाज के सभी पदाधिकारियों विशेष करके अध्यक्ष, श्री श्याम नारायण कूर्मि, सतीश चन्द्र गंगवार, महामंत्री, चन्द्रभान सिंह, श्री बालकृष्ण उमराव, श्री मुखनाथ राही, श्री बालकृष्ण जी आदि अनेक लोगों के सतत प्रयास से यह महाधिवेशन सफलता पूर्वक आयोजित हुआ। इस अधिवेशन के उद्घाटनकर्ता तत्कालीन दूर-संचार मंत्री, भारत सरकार, माननीय श्री बृजलाल वार्मा जी थे तथा स्वगताध्यक्ष, इस पुस्तक के लेखक, डा. दिलावरसिंह जयसवार थे। अनेक संसद सदस्य, यू.पी. तथा बिहार से विधायकगण् एंव अनेक प्रमुख सामाजिक हस्तियों ने इस अधिवेशन में भाग लिया।

उस समय केन्द्र तथा अनेक राज्यों में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकारें शासन कर रही थीं, अतः सर्वत्र देश में जनता पार्टी का बोल वाला था। इस अधिवेशन के कार्य कलापों पर भी जनता पार्टी का वर्चस्व नज़र आता था। कांग्रेस के **श्री जयराम वर्मा** जैसे प्रसिद्ध नेता भी एक तरफ मंच पर नगण्य से बैठे थे। केन्द्रीय सरकार में प्रथम बार कैबिनट स्तर के कुरमी मंत्री बनाये गये थे, कुरमियों को विशेष करके अपने जातीय लाभ के लिये उस जनता सरकार से बहुत आशा बन गयी थी। उसी से प्रेरित होकर देश के कोने–कोने से कूर्मि बन्धु इस अधिवेशन में पधारे थे।

सर्वप्रथम **श्री महादेव वर्मा** राज्य सभा सदस्य फैजाबाद (यू.पी.) द्वारा ध्वजारोहण किया गया, जोकि 'उत्कल कूर्मि क्षत्रिय सभा' के प्रतिनिधियों द्वारा **श्री वंशीधर नायक** के नेतृत्व में लाया गया था। इस ध्वज तथा इसकी वन्दना सम्बन्धी विवरण पाठकगण् 31 वें अधिवेशन की कार्यवाही के अन्तर्गत पढ़ चुके होंगे। मंच पर सजे हुये **छत्रपति शिवाजी** एवं **सरदार बल्लभ भाई पटेल** के चित्रों पर नेतागणों और महासभा के पदाधिकारियों ने माल्यार्पण किया।

स्वगताध्यक्ष डा. दिलावरसिंह जयसवार ने मंच पर विराजमान सभी महानुभावों एवं महिला विशिष्ट अतिथियों का माल्यार्पण कर अपनी और कूर्मि क्षत्रिय समाज, दिल्ली की ओर स्वागत किया। **स्वागताध्यक्ष, डा. दिलावरसिंह जयसवार** ने दिल्ली कूर्मि क्षत्रिय समाज के कार्य कलापों पर प्रकाश डाला कि मात्र एक दशक पूर्व स्थापित संस्था ने महासभा का 32 वाँ अधिवेशन राजधानी दिल्ली में आयोजित करने का इतना बड़ा कदम उठाया है। इसकी सफलता आप सबके सक्रिय सहयोग से ही सम्भव हो सकी है। उन्होंने कहा कि वर्तमान परिस्थितियों में जब सामाजिक असमानता मिटाने के प्रयास चल रहे है कूर्मि जाति के सर्वांगीण प्रगति का मार्ग प्रशस्त करने का पूरा दायित्व महासभा के कन्धों पर है। वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात तो हो चुका है पर संस्कारगत रूढ़वादिता अभी भी बाधक बनकर जगह–जगह तरह–तरह के अवरोध पैदा करती रही है। यह निर्विवाद है कि शिक्षा के क्षेत्र मे उन्नति सभी क्षेत्रों की प्रगति का मूल है। कूर्मि जाति के सम्मुख जो भी जटिल समस्यायें है, उन पर इस अधिवेशन मे समुचित विचार कर उसका कोई तुरन्त समाधान या उपाय खोजा जायेगा, और कार्यान्वयन के लिये तदानुसार निर्णय लिये जायेंगे।

यद्यपि **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** का मंच सिद्धान्तानुसार प्रत्येक राजनैतिक पार्टी के स्वजातीय नेताओं तथा कार्यकर्ताओं के लिये समदर्शी होना चाहिये था पर दुर्भाग्य से इस अधिवेशन के मंच पर, अन्य अधिवेशनों की तरह, उस समय की केन्द्र में शासक **जनता पार्टी** का बोलबाला आद्यान्त बना रहा। फलतः जनता पार्टी के नेता गणों ने अधिवेशन के हर कार्यक्रम पर अपना वर्चस्व बनाये रखा।

दो दिवसीय अधिवेशन का बड़ा व्यस्त कार्यक्रम था, जिसमें महिला सम्मेलन की अध्यक्षा **श्रीमती इन्दुमती पटेल** ने की और महिलाओं के सम्मुख का बड़ा ओजस्वी भाषण हुआ। उसके पश्चात् युवा–सम्मेलन में कुर्मी युवकों सम्बन्धी समस्याओं पर सविस्तार विचार किया गया।



स्व. स्वामी आत्मानन्द जी, अध्यक्ष विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (म. प्र.)



स्व० श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह जी, कलकत्ता के प्रसिद्ध समाजसेवी, पूर्व अध्यक्ष महासभा तथा "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" के जन्मदाता



डा० दिलावर सिंह जयसवार, स्वागताध्यक्ष महासभा के 32 वें अधिवेशन, रामलीला मैदान, दिल्ली के आयोजन में, गणमान्य अतिथियों माननीय बृजलाल वर्मा, तत्कालीन संचार मंत्री, भारत सरकार तथा उनकी पत्नी, श्री महादेव प्रसाद वर्मा सांसद, आदि मंच पर बैठे हुओं का मालार्पण द्वारा स्वागत करते हुए।



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के रजत-जयन्ती अधिवेशन (कलकत्ता) के स्वागताध्यक्ष तथा रजत-जयन्ती स्मृति-ग्रंथ के प्रकाशक

श्री लक्ष्मणचन्द्र सिंह।



अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के प्रधान मंत्री और रजत-जयन्ती स्मृति-ग्रंथ के सम्पादक

श्री गुप्तनाथ सिंह।

अध्यक्षीय भाषण में अहमदबाद के सांसद **प्रोफेसर आर. के. अमीन,** ने कुरमी जाति के लोगों के लिये उन्नति के मार्ग पर तेजी से बढ़ने के लिये अनेक उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किये। पर जिस प्रकार महासभा के पंचम अधिवेशन के अध्यक्ष मैसूर के बैरिस्टर बी॰ नागप्पा ने घोषणा की थी–''**मुझे अपने वक्कलिगर कुरमी होने पर गर्व है.......**।'' या तेरहवें अधिवेशन के अध्यक्ष हिज हाईनेस कर्नल सर छत्रपति महाराजा कोल्हापुर ने दो टूक शब्दों में निस्संकोच घोषणा की थी–'' **प्रिय क्षत्रिय बन्धुओं, मैं आप लोगों मे से ही हूँ। या तो मुझे मजूर समझो, या खेती करने वाला समझो, मेरे बाप-दादा यही काम करते थे...**।'' उसी प्रकार इस 31 वें इस अधिवेशन के अध्यक्ष प्रोफेसर आर, के, अमीन के मुखार बिन्द से सुनने को, दिल्ली के रामलीला मैदान पर उपस्थित कुरमियों की अपार भीड़ लालायित थी कि वे बोलेंगे– ''**हम गुजरात के कणबी, पाटीदार और पटेल और आप हिन्दी भाषी कुरमीजन एक ही विशाल कुरमी जाति के अभिन्न अंग हैं।**'' पर अफसोस के साथ लिखना पड़ रहा है कि अमीन साहब अपने नपे–तुले शब्दों में नेताई लहज़े में और बातों पर धुआं धार बोलते रहे, पर ऐसा कुछ भी दो टूक न कहा जिसमें दुनिया जान पाती अन्य जाति वाले भी समझ पाते कि गुजरात के पाटीदार–पटेल और दोआबा, गंगा–जमुना के मध्य और आस–पास के भू–भाग पर बसे करोड़ो की संख्या में कुरमी जन एक ही विशाल कूर्मि जाति के घटक हैं वे सब एक ही जाति के हैं। ऐसा कुछ उनसे न सुनकर उपस्थित प्रतिनिधियों में घोर निराशा होना स्वाभाविक था।

अनेक बार महासभा के मंचों से तथा उसकी मुख्य पत्रिका ''**कूर्मि क्षत्रियं जागरण**'' से कुरमियों को आह्वान किया जाता रहा है कि सब एक ही आस्पदों का प्रयोग करें, जैसे अहीर, ग्वाला व गोप आदि सब **यादव** आस्पद करते हैं, वैसे सब कुरमी जन '**पटेल**' आस्पद को अपनाये। फिर भी थोड़ों को छोड़कर ज्यादातर कुरमियों ने '**पटेल**' को नहीं अपनाया। इसका क्या कारण हो सकता है? इसका प्रमुख कारण यही लगता है कि आज़ादी बाद गुजरात के पटेलों ने सही माने में कुरमियों से जातीय स्तर पर कोई घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। कभी गुजराती पटेलों ने खुल्लम–खुल्ला यह नहीं कहा कि हिन्दी प्रदेश के कुरमी और वे मूलतः एक ही जाति के हैं। हिन्दी भाषी कुरमी उनके अपने आस्पद तब तक खुशी–खुशी नहीं अपनायेंगे जब तक गुजराती पटेल अपने को मनसा–वाचा कर्मणा कुरमी जाति का एक अंग तथा कुरमियों को अपना सहोदर नहीं मानते।

इस अधिवेशन में महासभा की सदस्यता वृद्धि, केन्द्रीय स्थायी कोष स्थापित करने के अभियान चलाने के निश्चय लिये गये। ग्रामों में सभा का कार्य पहुँचाने का, पिछड़ी जातियों के संगठन एवं देश के नवनिर्माण में सक्रिय सहयोग की अपील की गयी। विभिन्न प्रदेशों में संगठन के प्रचार–प्रसार कर महासभा का वास्तविक अखिल भारतीय स्वरूप स्थापित करने का तथा महासभा के विधान तथा नियमावली में समुचित संशोधन करने हेतु निर्णय लिये गये।

अधिवेशन के उद्घाटनकर्ता, **माननीय श्री बृजलाल वर्मा** ने अपने सारगर्भित भाषण में अनेक लाभप्रद बातें बतायीं। उनमें से प्रमुख थी कि राजनैतिक मंच पर सब संगठित होकर अपना स्थान और मजबूत बनाते जायेंगे, तो हमारे भाइयों को उन्नति करने के कई मार्ग खुल जायेंगे, सुलभ भी हो जायेंगे। बदलते जमाने में अन्धविश्वास, रुढ़िवादिता तथा संकुचित विचारधारा का कोई स्थान नहीं हैं। हमें शीघ्रातिशीघ्र अपने को उठाते हुये राष्ट्रीय मूलधारा में सम्मिश्रित होकर राष्ट्रोत्थान में अपना पूरा योगदान देना है। स्त्री–शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, नौकरियों के अतिरिक्त व्यवसांय और उद्योग–धन्धों में अपना स्थान बनाना पड़ेगा। अब पूरा परिवार मात्र कृषि, पर निर्भर रखकर हमारे कुरमीजनों की समुचित उन्नति सम्भव नहीं हैं। हमें नयी दिशायें तथा नये व्यवसाय/साधन खोजनें होगें। और उन्नति के नये आयाम स्थापित करने होंगे। पर इसका यह अभिप्राय नहीं समझना चाहियें कि पारम्परिक कृषि–व्यवसाय को बिलकुल तज़ दिया जाये।

महासभी के नये पदाधिकारीगणों तथा कार्यकारिणी समिति के सदस्यों का मनोनयन/चयन जो किया गया, उसकी सूची नीचे दी गयी हैं:

1. अध्यक्ष · प्रोफेसर आर॰ के॰ अमीन, सांसद

2. उपाध्यक्ष : (1) श्री मोहन लाल वर्मा, पूर्व एम॰एल॰ए॰ (उ॰प्र॰)
(2) श्री धनीराम वर्मा, रायपुर (म॰प्र॰)
(3) श्री भागीरथी महन्ता, एडवोकेट (उड़ीसा)
(4) डा॰ ए॰ पी॰ एस॰ प्रकाश, चिकित्सक (बिहार)

3. महामंत्री : (1) श्री सिद्धेश्वर प्रसाद, वरिष्ठ उपाध्यक्ष,
(2) श्री देश राज कटियार (उ॰ प्र॰)
(3) श्री श्याम नारायन कूर्मि, एडवोकेट, सुप्रीम कोर्ट
(4) श्री सत्यनारायन चौधरी, रायबरेली (उ॰ प्र॰)

टिप्पणी : यद्यपि महासभा की नियमावली में केवल एक महामंत्री का प्रावधान था पर उसकी अवेहला कर चार बनाये गये। इस पद के लिये प्रथम दो पदाधिकारीगण् वरिष्ठता के दावेदार रहे पर अन्ततः श्री सिद्धेश्वर प्रसाद जी ने यह दायित्व निभाया।

4. संगठन मंत्री : श्री गोपाल शरण सिंह, नालन्दा (बिहार)

5. प्रचार मंत्री : (1) श्री देव नारायण वर्मा, इटावा (उ॰ प्र॰)
(२) श्री कैलाश सिंह पटेल (बिहार)
(3) डा॰ राम सेवक निरंजन, जालौन (उ॰ प्र॰)

6. कोषाध्यक्ष : श्री गोवर्धन भाई पटेल, फरीदाबाद (हरियाणा)

7. सदस्यगण : कार्यकारिणी समिति के 54 सदस्य सारे देश से मनोनीत किये गये, जिनमें दिल्ली से चार थे (1) डा॰ दिलावर सिंह जयसवार (2) श्री मुखनाथ राही (3) श्री बाल कृष्ण उमराव (4) श्री चन्द्रभान सिंह,

एक लाख का स्थायी कोष

26 नवम्बर 1978 को **श्री महादेव वर्मा,** सदस्य–राज्यसभा के नयी दिल्ली आवास पर अध्यक्ष **श्री आर॰ के॰ अमीन,** सदस्य–लोकसभा की अध्यक्षता में हुई, महासभा की कार्यसमिति की बैठक में **'एक स्थायी कोष** के संग्रह पर विचार हुआ। तत्काल बिहार को 40 हजार रुपये और उत्तर प्रदेश को 60 हजार रुपये संग्रह करने का भार दिया गया। अगले 6 माह के भीतर वह राशि एकत्र की जायेगी। दिल्ली में खाता खोलकर उसके ब्याज से महासभा का खर्च चलाया जायेगा। इसी प्रकार सभी प्रदेशों को अपना लक्ष्य निर्धारित करना है और स्थायी कोष को पुष्ट करना है। लेखा, महासभा के नाम से खोला जायेगा। इससे धननिकासी अध्यक्ष और अध्यक्ष द्वारा प्रतिनियुक्त एक महामंत्री तथा कोषाध्यक्ष (इन दोनों में से किसी एक) के संयुक्त हस्ताक्षर से होगी।" (मासिक **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण',** पटना अंक दिसम्बर 1978, पृष्ठ 29)।

कोष-संग्रह की जिम्मेदारी

रामपुर, जिला आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) में 10 फरवरी 1979 को कार्यसमिति के गैर–सदस्य, **श्री महादेव प्रसाद वर्मा,** सदस्य–राज्यसभा की अध्यक्षता में महासभा की कार्यसमिति की बैठक हुई, जिसमें स्थायी–कोष–संग्रह का निर्णय किया गया। उत्तर प्रदेश के लिए 60,000 रुपयों की राशि–संग्रह के लिये निम्नलिखित व्यक्तियों को जिलों के

आधार पर भार सौंपा गया –

"सर्वश्री डा॰ बलिरामसिंह (वर्तमान अध्यक्ष तत्कालीन महामंत्री) वाराणसी 5000 रुपये, शोभ नाथ सिंह, मिरजापुर 5000 रुपये, यशवन्तसिंह कटियार एवं देशराज कटियार (तत्कालीन अध्यक्ष), दोनों फरूखाबाद 5000 रुपये, रामदेववर्मा (वर्तमान में विधायक बसपा, अयोध्या), फैजाबाद 5000 रुपये, रामपति लालगोंज 501, हरगोविन्द वर्मा सदस्य–लोक सभा, सीतापूर 2000 रुपया, नेरश चंद्र वर्मा, सदस्य–विधानसभा एव मुंशी लाल वर्मा, दोनों खीरी लखीमपूर – 3000 रुपया, विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, कानपुर 5000 रुपये, सुरेन्द्रपाल सिंह, शाहजहाँपुर–5000 रुपये, आधीशरण चौधरी, बस्ती 505 रुपया, अभिमन्यु सिंह, रामनिहोर सिंह अभिवक्ता एवं रामरूप पटेल, तीनों इलाहाबाद 5000 रुपये, राम अधारसिंह, लखनऊ – 2000 रुपया, अवध बिहारी शरण, गोरखपुर 501 रुपया, प्रतापसिंह कनौजिया और रणवीर सिंह वर्मा, दोनों हरदोई 2000 रुपया, देवनारायण वर्मा (प्रचारमंत्री), एवं लाला हजारी लाल दोनों इटावा 2,000 रुपये। कुल जोड़ 47,000 रुपये। उत्तर प्रदेश के शेष जिलों के लिये शेष 13,000 रुपयों की जिलेवार राशियां निश्चित न हो सकी। "बिहार के लिये 40,000 रुपयों की राशि निश्चित की गयी। उसके लिये सर्वप्रथम जिला समितियाँ बनाने का निश्चय हुआ और जहाँ जिला संगठन नहीं है, वहां के लिये तदर्थ समितियों के गठन का निश्चय हुआ। इसका भार श्री सिद्धेश्वर प्रसाद, महामन्त्री पर सौंपा गया।"

"मध्य प्रदेश के लिए मई 1979 में अखिल भारतीय सम्मेलन से पूर्व श्री महादेव प्रसाद वर्मा, सदस्य राज्यसभा, डा॰ गोपाल शरण सिंह (वर्तमान में नालन्दा विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के साथ तदर्थ समितियों के गठन एवं निधि–संग्रह की कार्यवाही हेतु, अप्रैल 1979 में जायेंगे।"

"गुजरात के लिये श्री गोवर्धन भाई पटेल, कोषाध्यक्ष, डा॰ गोपाल शरण सिंह, संगठन मंत्री एवं श्री महादेव प्रसाद वर्मा, सदस्य राज्य सभा निधि–संग्रह–अभियान के लिये जायेंगे।"

"इसी प्रकार अन्य राज्यों के लिये श्री महादेव प्रसाद वर्मा सांसद (राज्यसभा) निधि संग्रह अभियान का कार्यक्रम निश्चित करेंगे।"

(मासिक, "कूर्मि क्षत्रिय जागरण", पटना, मई–जून 1979, अंक पृष्ठ 9 और 10)

पूर्व संचार मंत्री स्व॰ माननीय श्रीबृजलाल वर्मा

श्री बृजलाल वर्मा का जन्म पलारी ग्राम में 16 मार्च 1919 को हुआ था, उनके पिताजी का नाम श्री काली राम वर्मा था। वे नागपुर विश्वविद्यालय के स्नातक थे और उन्होंने एल॰एल–बी॰ की डिग्री भी वहीं से प्राप्त की थी। श्री वर्मा ने सन् 1942 के आन्दोलन में भी भाग लिया था, वहीं से उनमें देश–प्रेम और देश–सेवा का बीजांकुरण हुआ। सन् 1948 में वे लोंदा बाजार जनपद के अध्यक्ष चुने गये। **श्री बृजलाल वर्मा** ने प्रारम्भ में डा॰ खूब चन्द बघेल के साथ छन्तीस गढ़ में कांग्रेस में रहते हुये, काफ़ी कार्य किये। सन् 1960 में श्री वर्मा कांग्रेस का परित्याग कर **श्री जे॰बी॰ कृपलानी जी** की **कृषक मजदूर पार्टी** में सम्मिलित हो गये। सर्वप्रथम सन् 1952 में कसडोल विधान सभा क्षेत्र से चुने गये तथा बाद में सन् 1957 से 1972 तक वे लगातार चुनाव में विजयी होकर विधान सभा में जाते रहे। सन् 1964 में पुनः कांग्रेस में ही जो राजनैतिक लहर आई थी, उसमें **श्री बृजलाल वर्मा** ने कांग्रेस का विरोध कर 36 विधायकों का साथ दिया था और मध्य प्रदेश में **संविद शासन** काल में वे सिंचाई, जेल, योजना एवं विकास मंत्री बने। सन् 1975 को आपात् स्थिति लागू होते ही आप **श्री मधु लिमये** आदि नेताओं के साथ रायपुर में गिरफ्तार कर लिये गये। **रायपुर कूर्मि बोर्डिंग** में उसी दिन **श्री मधु लिमये** ने विरोधी पार्टी के नेताओं की विशिष्ट बैठक बुलाई थी। फिर डेढ़ दो वर्ष का कठिन कारावास भोगा। चूँकि आप उस समय **मध्य प्रदेश जनसंघ** के **प्रदेशाध्यक्ष** थे अतः आप पर अधिक अंकुश लगा रहा। **मीसा** में बन्दी होने के दौरान दो बार गुर्दे का बड़ा आपरेशन हुआ जेल यातना

ने आपके स्वास्थ्य को बहुत खराब कर दिया।

सन् 1977 में आप जनता पार्टी के टिकट पर **महासमुन्द संसदीय क्षेत्र** से **लोक सभा** के लिये निर्वाचित हुये। **श्री मुरारजी देसाई** के प्रधान मंत्रित्व काल में आप केन्द्रीय सरकार में **कैबनेट स्तर के मंत्री**, पहले **उद्योग मन्त्रालय** में और बाद में **संचार मंत्रालय** में नियुक्त हुये। दिल्ली में सन् 1978 में आयोजित **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** के **32वें महाधिवेशन** के आप **उद्घाटनकर्ता** थे। अनेक स्थानों जैसे उत्तर प्रदेश के नगर सराय–प्रयाग आदि में आयोजित **कूर्मि क्षत्रिय सभाओं** को उद्घोषित किया और उनके नेतृत्व के परिणामस्वरूप उस समय समस्त **कूर्मि क्षत्रिय समाज** में आशा और नवचेतना की लहर फैल गयी। उनसे आशायें थीं और **कूर्मि जाति** को तथा विशेष रूप से देश को भी पर काल के क्रूर हाथो ने उन्हें सन् 1989 को अहमदाबाद यात्रा के दौरान इस दुनिया से उठा लिया जब उन्हें दिल का दौरा पड़ा और उनकी हृदय–गति रुक गयी।

पूर्व केन्द्रीय उड्डयन मंत्री श्री पुरुषोत्तम लाल कौशिक

श्री पुरुषोत्तम लाल कौशिक का जन्म सितम्बर 24 सन् 1930 को मध्य प्रदेश के महासमुन्द में एक प्रतिष्ठित कुर्मी परिवार में हुआ था उन्होंने सन् 1947 में **रायपुर से पालम हाई स्कूल** से **मैट्रिक** की सन् 1951 में **सागर विश्वविद्यालय** से बी॰ ए॰ की उपाधि प्राप्त की एवं सन् 1953 में नागपुर विश्वविद्यालय से **एल. एल-बी.**, करने के पश्चात् वकालत प्रारम्भ कर दी। विद्यार्थी जीवन से गांधीवादी विचारधारा से ओत–प्रोत हो चुके थे अतः **गांधी स्वावलम्बन समाज** की स्थापना की थी। वे महासमुन्द ग्राम पंचायत के अध्यक्ष चुने गये। सन् 1954 से सक्रिय राजनीति में भाग लेते हुए अन्ततोगत्वा सन् 1965 में वकालत छोड़ दी। सन् 1965 से 1967 तक मध्य प्रदेश समाजवादी पार्टी के मंत्री रहे और सन् 1970 में पार्टी के केन्द्रीय पार्लियामेन्टरी बोर्ड के मंत्री तथा सन् 1971-72 में राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति एवं स्टेट पार्लियामेन्टरी बोर्ड के सदस्य रहे। पार्टी विलीनीकरण के बाद मध्य प्रदेश के विधायक दल के उपनेता चुने गये थे।

श्री कौशिक जी महासमुन्द तहसील की विभिन्न सामाजिक एवं जिले की संस्थाओं से सम्बंधित रहे। महासमुन्द्र विधान सभा के चुनाव में सन् 1957 तथा 1967 में उन्होंने अपने प्रतिद्वंदी एवं **'राइस किंग' सेठ नमी चन्द श्रीमाल** को लगभग 11 हजार वोटों से हराया। जिससे उन्हें जनता की ओर से **'राइस किंग'** का खिताब मिला। जब सन् 1977 में आपने **श्री विद्या चरण शुक्ला** को रायपुर लोकसभा चुनाव में पराजित कर दिया तो वे अकस्मात अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के राष्ट्रीय स्तर के राजनेता बन गये। ये पुराने समाजवादी सिद्धान्त की राजनीति के तपे हुए व्यक्ति हैं। सुविधा और लाभ की राजनीति से कोसों दूर हैं।

आप **श्री मुरारजी देसाई** के मंत्रिमंडल में **उड्डयन मंत्री** बनाये गये। तथा **श्री चरण सिंह जी** के मंत्रिमंडल में आप **केन्द्रीय संचार मंत्री** बनाये गये। सन् 1978 में दिल्ली में आप **अ॰भा॰कू॰क्ष॰ महासभा** में सम्मिलित हुये थे।

अ॰भा॰कू॰क्ष॰ महासभा की प्रांतीय संयोजिका **"मातृ शक्ति मण्डल में"**, **सुश्री सुधा पटेल** का लेख **"हमने क्या खोया पाया विधान सभा चुनाव में"** सागर (म॰प्र॰) से प्रकाशित होने वाली पत्रिका **"कूर्मि क्षत्रिय जागृति"** के जनवरी 1994 अंक में छपा। इसमें नवम्बर 1993 में सम्पन्न हुए विधान सभा चुनावों मे मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के कुरमी उम्मीदवारों की सफलता–असफलता पर प्रतिक्रिया व्यक्त की गई। मध्य प्रदेश के चुनाव–फल के सम्बन्ध में वे लिखती हैं :–

"मध्य प्रदेश के विधान सभा चुनाव में कांग्रेस के पराजित उम्मीदवारों मे राष्ट्रपति(डा॰ शंकर दयाल शर्मा) के निर्वाचन क्षेत्र उदयपुरा से **रामप्रसाद** बड़े वीर इसी क्षेत्र से सटे सागर जिले की सुरखी सीट से वोटो के लिये कुर्मी बनने वाले **विट्ठल भाई पटेल**, पूर्व राजस्व मंत्री **राजमणी पटेल**, सिगमौर से, पूर्व विधायक **बैजनाथ चन्द्राकर**, लोरमी

से एवं ग्राम से लेकर जिला स्तर के जातीय संगठनों के कार्यक्रम में मुंह छिपाने वाले मध्य प्रदेश **कुर्मी क्षत्रिय समाज** के संगठन मंत्री, **भरत चौधरी**, सागर जिले की रहली सीट से पराजित हुए।

भारतीय जनता पार्टी के प्रत्याशियों में **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** की संगठन सचिव, **निरूपमा चन्द्राकर** खैरथा से **श्याम बैस**, मंदिर हसोद से, **रामकृष्ण पटेल** मैहर से, **रामलाल पाटीदार**, जावद से, **लक्ष्मी नारायण पटेल** (पाटीदार), शाजापुर से, **गजानन भाई पाटीदार**, कसराबाद से पराजित हुए; कांग्रेस एवं भाजपा से जावद खेरथा एवं मैहर सीट एवं जनता दल के सभी कुर्मी प्रत्याशी, प्रचार सामग्री एवं आर्थिक एवं निष्क्रिय संगठन के कारण पराजित हुए, जनता दल के विधायक दल के नेता, **पूर्व मंत्री रामानन्द सिंह**, चित्रकूट से, **गोविन्द वर्मा** बलौदा बाजार से, **श्वेत कुमार पटेल**, सरायपाली से, **द्वारक पटेल**, रहली से, **डा. बलदाऊ चन्द्राकर** अमनपुर से, **नरेन्द्र चन्द्राकर** खल्लानी से, **विसन चन्द्राकर** महासमुन्द से, **रतिभान पटेल**, चुरहुट से, **लाल बहादुर सिंह**, मनगवां से, **शिवनारायण पाटीदार**, नीमच सहित जनता दल के राष्ट्रीय महासचिव एवं पूर्व केन्द्रीय मंत्री **पुरुषोत्तम कौशिक** के पुत्र **दिलीप कौशिक**, पाटल से पराजित हुए। बहुजन समाज पार्टी से पराजित उम्मीदवार मऊगंज से **इन्द्रमणि पटेल**, सिहोरा से **दुर्जन पटेल**, मझोली से **रामबुझाभन सिंह**, सरायपाली से **हरिकृष्ण पटेल** भाटापारा से **कुंभराज वर्मा**, चन्द्रपुर से **श्यामादेवी चन्द्राकर** कुर्मी समाज के 64 लोगों ने स्वतंत्र चुनाव लड़कर अपनी किस्मत आजमायी एवं कहीं–कहीं अपने ही दलीय प्रत्याशियों के लिए नुकसान पहुंचाया। **राजेन्द्र पटेल** ने मनगवा सीट पर 908 मत लेकर बहुजन पार्टी के **रामसुशील पटेल** को नुकसान पहुंचाया। इस सीट पर **राम सुशील** को 21358 मत मिले और वर्तमान विधानसभा अध्यक्ष, **श्री निवास तिवारी** मात्र 1547 मतों से विजयी हुए।

राजनैतिक दलों द्वारा शाखान्तरों में बँटे हमारे समाज की उपेक्षा की जाती है, जिसका सबूत मिला होशंगाबाद जिले की इटारसी सीट का जहाँ भारतीय जनता पार्टी ने **दुष्यन्त गौर** को अपना प्रत्याशी घोषित किया, परन्तु पूर्व विधायकों **सीताशरण शर्मा**, इटारसी से **प्रेमशंकर वर्मा**, सिवनी मालवा से **मधुकर हर्णे**, होशंगाबाद से बुन्देल खण्ड विदर्भ महाकौशल एवं नर्मदा अंचल में एकलौते कुर्मी को प्रत्याशी बनाये जाने पर आंख में कंकड़ की तरह अखरा। तीनों ने शाखान्तर जयचन्दों के साथ विरोध कर पुनः **सीताशरण शर्मा** को प्रत्याशी घोषित करवाकर जितवा दिया। पार्टी द्वारा अधिकृत प्रत्याशी **दुष्यंत गौर** को बनाए जाने की मांग को लेकर प्रदेश के (**सागर, विदिशा, रायसेन, बेतल, हाशिगाबाद, देवास। इन्दौर**) कुर्मियों ने 31 अक्टूबर 1993 को प्रदेश पूर्व मुख्य मंत्री **सुन्दर लाल पटवा** के निवास स्थान पर प्रदर्शन किया। प्रत्याशी बदलने पर **जिला कूर्मि क्षत्रिय समाज** ने प्रमुख गांवों में बैठक कर कूर्मि क्षत्रिय समाज का यह अपमान याद कराया। कमल निशान; नारा लगाया। **मध्य प्रदेश से कुल 11 कुर्मी विधायक इस बार चुने गये।''**

कोष-संग्रह शून्य

बिहार शरीफ़, जिला नालन्दा (बिहार) में 5 अक्टूबर 1979 को उपाध्यक्ष डा॰ ए॰ पी॰ एस॰ प्रकाश की अध्यक्षता में महासभा की कार्यसमिति की बैठक हुई, जिसकी कार्यवाही के पैरा 8 में लिखा है कि **"केन्द्रीय कोष** के संग्रहण की प्रगति की सूचना इस पटना स्थित कार्यालय को नहीं है। प्रान्तीय कोष भी प्रायः शून्य ही है। यदि कुछ हुआ भी हो, तो उसकी विधिवत सूचना नहीं है।

(मासिक **"कूर्मि क्षत्रिय जागरण"** पटना नवम्बर–दिसम्बर 1979, पृष्ठ 12)

कोष-विहीन कोषाध्यक्ष

झालदा, जिला पुरुलिया (पं बंगाल) में 8 व 9 मार्च 1980 को महासभा के 33वें अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए तत्कालीन अध्यक्ष, **श्री धनी राम वर्मा**, रायपुर (मध्य प्रदेश) ने अपनी करुण कहानी सुनायी– **"पाँच-छः साल पूर्व पटना महाधिवेशन में मुझे कोषाध्यक्ष बनाया गया था पर कोष में एक पैसा नहीं मिला। इतने बड़े पटना**

अधिवेशन में लाखों रुपये की आमदनी के बाद भी कोषाध्यक्ष के पास एक पैसा नहीं रहता है। क्या कहा जाए? इसके बाद भंजनगर (उड़ीसा) और महानगरी दिल्ली में महाधिवेशन होने के बाद भी महासभा के कोष में सन् 1980 तक, अर्थ का अत्यन्त अभाव हैं।

(मासिक "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" पटना,फरवरी–मार्च 1980 पृष्ठ 32)

अब जबकि महासभा की स्थापना का सन् 1994 का **शताब्दी** वर्ष प्रारम्भ हो चुका है। जहाँ तक **इस पुस्तक** के लेखक को जानकारी है कि वर्तमान कोषाध्यक्ष श्री के. के. वर्मा के पास न महासभा का कोष है और न उसकी कोई प्रमाणित जानकारी है। सन् 1993 में हैदराबाद में हुई कार्यकारिणी समिति में महासभा के कोष के सम्बन्ध में वर्तमान महामंत्री ने बताया कि पिछले हिसाब का ब्यौरा उन्हें डा. बलिराम सिंह जी पिछले **महामंत्री** से अब तक नहीं मिल पाया है दयनीय स्थिति महासभा की रही है। गत् 10 सितम्बर 1994 को लखनऊ में हुई कार्यकारिणी समिति की बैठक में महामंत्री जी ने जो हिसाब प्रस्तुत किया उससे ज्ञात हुआ कि पहली बार 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' था महासभा अपना–अपना सम्मानजनक कोष सदस्यता शुल्क द्वारा **एकत्रित** कर पाया है।

दिल्ली नगरी की प्राचीन विशेषताएं

महासभा के 32वें अधिवेशन की स्थली–**दिल्ली नगरी** देश के अति प्राचीन शहरों में से है। पुराणो के आधार पर दिल्ली का पूर्व नाम **खाण्डवी** कहा गया हैं। कहते हैं कि **खाण्डव वन** को साफ़ करवाकर **चन्द्रवंशी राजा सुदर्शन** ने इस नगर को बसाया था। दिल्ली का प्राचीन तथा बहुचर्चित नाम **इन्द्रप्रस्थ** भी है। पर **खाण्डवी** का हमजोली होने के दावेदारों में **निगमबोध घाट** भी है। दिल्ली भारत का दिल है। आन–बान और शान है कहीं भी चले जाइये दिल्ली की अपनी पहचान है।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि समस्त विश्व के साथ–साथ **ब्रह्मा जी** भी वेद, जो उस काल में **श्रुति** अवस्था में थे, भूल गये थे, पर एक दिन यमुना में स्नान करने हेतु जैसे ही **ब्रह्मा जी** ने डुबकी लगायी, उनके ज्ञान–कपाट खुल गये। यमुना–जल की डुबकी ने **ब्रह्मा जी** को सारे वेद पुनः स्मरण करा दिये। यमुना स्नान करके दिल्ली में जिस यमुना तट पर ब्रह्मा जी के चरण पड़े, वह **निगम बोध घाट** (वेदों के ज्ञान का पुनः बोध कराने वाला) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आज भी वह इसी नाम से जाना जाता है। **खाण्डवी** एवं **निगमबोध** जमाने का एक अन्य साक्ष्य प्राचीन **हनुमान जी** का मन्दिर आज भी यमुना तट के सम्मुख सड़क के उस पार विद्यमान है, जहाँ हर मंगल वार को श्रद्धालुओं और भक्तों की अपार भीड़ हाथों में पूजा–सामग्री की थालियाँ लिये दीर्घ–पंक्ति में चलती नजर आती हैं।

महरौली जिसका प्राचीन नाम **महा अरावली** अथवा **मिहिरावली** था, उसके आप पास के 27 जैन–हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त करवा कर उनकी जगह **कुब्वतुल इस्लाम मस्जिद** खड़ी कर दी गई। उन मन्दिरों की मूर्तियों और अन्य सामान को इस मस्जिद बनवाने में इस्तेमाल कर लिया गया। इस मस्जिद के द्वार पर लगे पत्थर पर, **कुतुब मीनार** जिसने बनवायी, उस **कुतुबुद्दीन एबक** ने जो कहर बरपा उसे उत्कीर्ण कराया हैं, जिसके अर्थ है कि –

"हिजरी 587 में उस किले (किला पिथौरा) को एबक ने फतह किया और इस मस्जिद को तामीर करवाने में न केवल 27 मन्दिरों की मूर्तियां और अन्य सामान लगा, बल्कि अल्तमश द्वारा उज्जैन से लाई हुई शिव मूर्ति भी खपा दी गई, अलाउद्दीन खिलजी.सोमनाथ के मन्दिर से जो मूर्ति लाया·वह टुकड़े-टुकड़े करके मस्जिद के फ़र्श में बिछा दी गई।''

कुतुब के परिसर में **लाल-कोट** नामक किले के भग्नावशेष अभी भी देखे जा सकते हैं, जिसे **तोमर राजाओं** में से अन्तिम **अनंगपाल** ने बनवाया था। लाल–कोट मे ही **किला राय पिथौरा** के भी कुछ अंश यत्र–तत्र मौजूद हैं। विग्रहराज चतुर्थ ने जो कि शाकम्भरा (वर्तमान में सम्भर) का राजपूत योद्धा था दिल्ली को जीता। यह **फिरोजशाह**

कोटला स्थित **अशोक स्तम्भ** में उत्कीर्ण है। उसमें वर्णित है कि विग्रहराज ने विन्ध्य और हिमालय के मध्य का भूभाग सन् 1136 (या 1164) ईसवीं में विजय किया। इनका पौत्र **पृथ्वीराज तृतीय राय पिथौरा** के नाम से इतिहास प्रसिद्ध है।

लाल कोट को इस प्रकार बनवाया गया था कि वह मुसलमान आक्रमणकारियों से सुरक्षित रखा जा सके। इसमें कहा जाता है कि 13 विशाल द्वार बने थे, जिसमें से **हौज़रानी** एक द्वार था। **कुतुबमीनार** का इतिहास भी कई अस्पष्ट और स्पष्ट तथ्यों से मिश्रित है। ये हिन्दू और मुसलमान वस्तु कला का एक प्रशंसनीय नमूना है। ऐसी भी किंवदन्ती है कि यह मीनार वास्तव में पृथ्वीराज ने अपनी पुत्री के प्रतिदिन ऊपर चढ़कर यमुना दर्शन करने हेतु बनवायी थी। उसी पर रद्दो बदल कर, बाहरी नक्काशी आदि के पत्थर लगवाकर उस स्तंभ को कुतुब मीनार में तब्दील करने की चेष्टा की गयी। पर मीनार के ऊपरी पत्थरों के नीचे स्तम्भ का साक्ष्य समय–समय पर प्रकट होता रहता है। कुतुब परिसर में एक लौह स्तम्भ खड़ा है।

पास में ही **योगमाया** देवी का मन्दिर है। ऐसी मान्यता है इसे कि **पाण्डव सम्राट युधिष्ठिर** ने **श्री कृष्ण** की बहिन **योगमाया** की स्मृति में बनवाया था। पैदा होते ही कंस ने जब पत्थर पर उसे पटककर मारना चाहा, तो वह उसके हाथ से छूटकर भविष्यवाणी करती हुई आकाश में विलीन हो गई थी। पास ही में जैन पवित्र स्थल **दादावाड़ी** है और सूफ़ी संतों की मज़ारों के साथ **हौजे शम्सी** है। छतरपुर में भारत के आजाद होने के बाद **सद्‌गुरू नागपाल जी महाराज** के सतत प्रयासों से बना विशाल **श्री माता कात्यायनी देवी** का मन्दिर बना है और बहुत कुछ बनता जा रहा है। यह मन्दिर परिसर तथा कालका जी मन्दिर के सम्मुख बना **बहाई** (Bahai's) मतावलम्बियों का **लोट्स टेम्पिल** (Lotus Temple) आधुनिक भव्य इमारतें और पूजा स्थल दिल्ली के प्रमुख धार्मिक एवं पर्यटक स्थल बन चुके हैं।

कहा जाता है कि पांड़वों ने युद्ध टालने के लिये कौरवों से जो 5 गाँव मागे थे, वे थे–**सोनीपत, पानीपत, बागपत, तिलपत** और **इंदरपत**। प्रथम दो सोनीपत और पानीपत तो अब वर्तमान हरियाणा के प्रसिद्ध नगर हैं, बागपत, मेरठ जनपद में है, तिलपत फरीदाबाद जनपद में है जहाँ **भारतीय वायु सेना** प्रतिवर्ष अपना वार्षिक **हवाई शो** आयोजित करती है तथा पाँचवा **इन्दरपत** है जिसका तत्सम शब्द है **'इन्द्रप्रस्थ'**। ईसा से लगभग 3100 वर्ष पूर्व पाण्डु–पुत्र युधिष्ठिर ने **'इन्द्रप्रस्थ'** नगरी बसायी थी। लगभग 45 वर्ष पूर्व तक कुतुब–महरौली के निकट **'इन्द्रपत'** नाम का गाँव था, जिसे नई दिल्ली निर्माताओं की भूमि–सम्बन्धी हबिस ने नेस्त–नावूद कर उस पर नई कालोनी का निर्माण करवा दिया। सम्भवतः प्राचीनतम महाभारत कालीन **'इन्द्रप्रस्थ'** नगरी की इस युग में वही पहचान बची हो। **यही पाण्डवों की इन्द्रप्रस्थ, राजपूतों की इंदरपत, हुमायूं की दीनपनाह और शेरशाह सूरी का शेरगढ़ हैं।**

इस लेखक का **सफदर जंग एन्कलेव, नई दिल्ली-29 स्थित कोठी** के पास ही **हौज़ खास ड्रिस्ट्रिक पार्क** है, जिसमें ऐतिहासिक महत्व के हौजख़ास के प्राचीन भग्नावशेष हैं, हौजखास के नाम का विशाल तालाब है, जिसें पानी छोड़ने और वोटिंग आदि की सुविधायें प्रदान करवाने की सरकारी योजना कई वर्षो से सुनी जा रही है। यह हौज खास **सुलतान अलाउद्‌दीन ख़िलजी** का बनवाया हुआ कहा जाता है और तब इसे **हौज़-अलाई** कहा जाता था.और इससे **सल्तनत** के जमाने में ब़सी **सीरी शहर** को पानी पहुँचाया जाता था, यह उस समय का **वैज्ञानिक अजूबा** था।

कशमीरी गेट के पास सन् 1826 ई॰ में बना हुआ **सैन्ट जेम्स गिरजाघर** आज भी मौजूद है सन् 1857 के सिपाही विप्लव के दौरान मरे **जेम्स फ्रेज़र** की कब्र यही पर है, जो कि उस समय दिल्ली के सेशन जज थे। इस गिरजाघर के पास ही सामने पुनारा **स्टीफेन्स कालिज** है, जिसके ऊपरी कमरे में सन् 1915 से 1929 तक **महात्मा गांधी** आकर ठहरते थे जब कालेज के प्राध्यापक तथा बाद में प्रधानाचार्य **फादर सी॰ एफ॰ एन्डूरूस** थे।

आज भी दिल्ली की पहचान कुछ लोग इस प्रकार से करते हैं, जहाँ **लाल किला** है और **कुतुबमीनार** है उसी

का नाम **दिल्ली है।** कहीं **गुरूद्वारा सीसगंज, बंगला साहिब, रकाब गंज, निजामुउद्दीन औलिया की मजार** और कहीं **बिरलामन्दिर, कालका जी, झन्डे वाली देवी का मन्दिर,** तथा हाल के बने **लोटस टेम्पिल** तथा **छत्तरपुर** का प्रसिद्ध **बाबा नागपाल जी द्वारा** स्थापित **श्री 108 कात्यायनी देवी का विशाल मन्दिर परिसर** –ये सब दिल्ली के धार्मिक विचारधारा और सद्भावनाओं के पुराने और नये गवाह हैं। कहीं खरीद–फरोख्त के शोर शराबे व भीड़ की रेल–पेल से भरपूर **कनाट प्लेस, सदर बाज़ार, करोल बाग** और कहीं **चांदनी चौक** के अनेक कटरे उर्दू के प्रसिद्ध शायर जौक की वह गलियाँ–जिनके बारे में शायर ने फरमाया **''कौन जाये जौक अब दिल्ली की गलियाँ छोड़कर'',** जैसी चहल–पहल के स्थान ये सब आज दिल्ली को तेजी प्रदान कर चुके हैं। और इनके खास नुक्कड़ कोनों और दरवाजों तक में सदियों पुराना इतिहास छिपा है। कहीं हिन्दी के जन्म दाता **अमीर खुसरो** की कब्र है तो कहीं **बेगम रजिया सुल्तान** की या कहीं आम–आदमियों में से **मामा-भानजे** की कब्रे हैं। **'नमक हराम की कोठी'** धोखा देकर बहादुर शाह जफर को पकड़वाने वाले उसके समधी की कोठी, **'मजनू का टीला** है कही **मटका पीर** की मजार है, जहाँ जिन–जिन की मिन्नतें पूरी हो जाती है वह उस मजार के पास वाले पेड़ पर मटका टंगवा कर अपना शुक्रिया अदा करता है। वर्तमान नई दिल्ली में कई पुराने नामों में थोड़ा बहुत परिवर्तन करके उन्हें नया नाम दे दिया गया है। आगे आने वाली पीढ़ियों को आश्चर्य अवश्य होगा जब कि वे उनके पुराने सैकड़ों वर्षों से चले आये नामों को जानेंगे, जैसे **करोल बाग** का पुराना नाम **करोली बाग** था और उसी नाम का पास ही **करोली** गाँव था जिस पर यह आधुनिक बाज़ार और आवासीय भवन बने हैं। इसी प्रकार **जोर बाग** का पुराना नाम **चोर बाग** था, **मोती बाग** का **मोची बाग,** ये तो वर्तमान रहने वालो ने सरकार से कह कर बदलवाये हैं कि पुराने नाम ठीक न थे पर परिवर्तन ऐसा किया गया कि कुछ न कुछ पुरानी बात भी उनमें प्रतिबिम्बित होती है। कहने का मतलब है कि दिल्ली में ऐतिहासिक इतना कुछ है कि उसे ब्यान करते–करते अलग एक किताब का पूरा मजमून बन जाये। **मुगल युवराज दारा शिकोह** का पुस्तकालय है जिसमें उसने मुकद्दस वेद–पुराणों आदि अनेक ग्रंथों के **अरबी-फारसी** आदि भाषाओं में तर्जुमें करवाकर रखे थे। वह स्वयं बहुत बड़ा विद्वान था तथा उन सब ग्रन्थों का परम प्रशंसक था। **दाराशिकोह** के उस पुस्तकालय वाले स्थान पर **दिल्ली इंजीनियरिंग कालिज** स्थित है, यद्यपि वह भी चन्द वर्षो में रोहणी में बनने वाले अपने विशाल परिसर में स्थानान्तरित होने वाला है। दाराशिकोह इतना नेक इंसान था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मावलम्बी उसका पूरा आदर करते थे। उसका अंत बड़े दर्दनाक ढ़ंग से हुआ।

शालामार गाँव का **शीशमहल, बारादरी, फब्बारे, हरम, खुइयां** और **बाग** अब सब खंड़हर बन चुके हैं तथा पुरातत्व विभाग के अफसरों को चुनौती दे रहे हैं। शाहजहाँ ने अपनी **बेगम आज्जुनिसा** के लिये सन् 1647 में इसे बनवाया था। **'शाहजहाँ'** शालामार बाग को **कश्मीर** के **शालीमार** बाग की हू–बहू नकल बनाना चाहते थे। कहते हैं कि यह उससे भी खूबसूरत बन गया। **''शालामार''** के मायने है **शाला-ए-इमारत 'शाला' का अर्थ है** घर या **इमारत। अरबी में 'इमारत' लफ्ज़ के मायने है हुकूमत, मालदारी या धन दौलत। एक साल के 365 दिनों के आधार पर शाहजहाँ ने तीन सौ पैंसठ बीघे रकबे में शालामार बाग बनवाया था।**

मुगल बादशाह और उनके सरदार तथा अन्य मेहमान यहाँ हवाखोरी के लिये डेरे डाले रहते थे। घुड़साल तथा हाथी खाना भी यहीं था। ऐतिहासिक महत्व की बात यह है कि **औरंगजेब** की यहाँ ताजपोशी हुई थी। अपने बाप शाहजहाँ को कैद में डालने के बाद जब औरंगजेब दाराशिकोह का पीछा करता हुआ दिल्ली के लाल किले में घुसने लगा तो दिल्ली के कोतवाल **रोहिल्ला खाँ** ने उसे खदेड़ दिया। वह **नीमड़ी, वजीरपुर, रजापुर** और **सडौरा कलां** होता हुआ जल मार्ग से **शालामार बाग** के लिये चला। तब यहाँ यमुना, साहबी और नाग नदियों का संगम था। उन दिनों यमुना नदी बादली गाँव के पास बहा करती थी। बताते हैं कि ज्योतिषियों ने औरंगजेब की ताजपोशी के लिये 21 जुलाई 1658 का दिन तय किया था। वक्त बहुत कम था और औरंगजेब ने आलमगीर कहलवाने के लिये जहाँ लिवास बदला, उसी गाँव का नाम आज भी **लिवासपुर** है। यहाँ एक बहुत बड़ा टीला था जिस पर बैठकर उसने ताज अपने सिर पर रख लिया और फिर वहीं शमा जलाई गयी। उस जगह का नाम **समयपुर बादली** हो गया। इसके

6 दिन बाद तक यहाँ खूब जश्न मनाया गया और 28 जुलाई 1658 को **औरंगजेब** ने **आलमगीर** की उपाधि के साथ ही लाहौर की ओर प्रस्थान किया। ताजपोशी का विधिवत कार्यक्रम तत्कालीन परिस्थितियों के कारण टाल दिया गया और असली ताजपोशी तथा आलमगीर उपाधि का खुतबा सन् 1659 को पढ़ा गया, बताया जाता है।

आज़ादपुर सब्जी मंडी के पास **बादली** की तरफ रेलवे लाइन के किनारे बंसा **शालामार** गाँव भारत का इतिहास अपने दामन में समेटे हुये है। जैसा ऊपर बयान किया जाता है **शालामार** में **औरंगजेब** की **ताज़पोशी** हुई थी, यह ताज पोशी इसके **शीशमहल** में हुई थी। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का गवाह भी यह **शालामार** बाग रहा है।

औरंगजेब जब अपने पिता (**शहंशाह शाहजहाँ**) के विरुद्ध तख्त पाने हेतु की गयी बगावत में कामयाव हो गया तो पिता को आगरे के लाल किले में कैद में डाल दिया। वली अहद मुगल तख्त, बड़े भाई दाराशिकोह, की दोनों आँखों को बड़ी बेरहमी से फोड़कर उन्हें हाथी पर बैठाकर चाँदनी चौक और आस–पास की सड़कों पर अपनी दहशत स्थापित करने के लिये, घुमाया गया। वैसे उन सड़कों पर पहले **दाराशिकोह** हाथी पर सवार निकलता था और दोनों ओर इकट्ठे फ़कीरों और गरीबों को दौलत और कपड़े–लत्ते आदि बाँटता जाता था। जरूरत मन्द लोग दाराशिकोह की सवारी का बड़ी वेसब्री से इतंज़ार करते थे।

उस दिन अन्धा किया गया दाराशिकोह हाथी पर बैठा सड़क से निकल रहा था पर वह किसी को देख न पा रहा था। एक फकीर, जिसे असलियत का पता न था, उससे खामोश न रहा गया, वह हाथी के पास आकर मुँह ऊपर करके ज़ोर से बोला–

''ऐ साहबे आलम, शहंशाह के लाडले, संतों की संगत में बैठने वाले, गरीबों की सुनवाई करने वाले, आज तुझे क्या हुआ है? बोलता क्यों नहीं? देख मेरी तरफ़। मैं वही हूँ जो हर रोज़ तुझसे मुट्ठियाँ भर-भर कर दान पाता था। आज तू क्या कुछ भी नहीं देगा? क्या खाली हाथ लौटना होगा?"

दाराशिकोह कुछ न बोला। अपने बदन पर लिपटा हुआ शाही दुशाला फकीर की आवाज़ जिधर से आ रही थी, उधर फैंक दिया। यह हृदय द्रवित कर देने वाला नज़्जारा देखकर पास खड़े दिल्ली वालों की आँखे तर हो गयी। वे अपने को रोक न सके अपने प्यारे **शहजादे दारा** को इस दुर्दशा तथा बेइज्जती से मुक्त कराने उसके हाथी की ओर दौड़े। लेकिन सतर्क मुगलिया सिपाहियों ने उन्हें मौत के घाट उतार दिया। फिर **दाराशिकोह** को एकान्त बन्दीग्रह में बिना खाना–पानी दिये डाल दिया गया। एक दिन **दाराशिकोह** का सिर काटकर, तश्तरी पर रखकर किसी सिपाही ने उसके अनुज **औरंगजेब** के सम्मुख पेश किया और उससे काफी इनाम–इकराम प्राप्त किया। इन्हीं **शहजादे दाराशिकोह** ने कहा था।

हम ना जाने कैसी मसजिद,

कैसा ठाकुर—द्वारा,

हम तो उन्हें ही सीस नवावें,

जो है अपना प्यारा।।

दाराशिकोह के **गुरू रामानन्द** ने उसकी दुर्दशा देखकर कहा था–

''दाराशाह विपत्सु हो, कथम हो प्राणान्त गच्छन्त्यमी''

अर्थात–हाय! दाराशाह की विपत्ति से हमारे प्राण क्यों नहीं निकल जाते।

दिल्ली वालों को आज दाराशिकोह की कब्र का भी पता न होगा। शायद इसी तरह के बदनसीब शहजादों और

शहजादियों की मौजूदा कब्रों की दुर्दशा देखकर किसी शायर ने ठीक अर्ज किया है–

''जिनके महलों में हजारों रंग के फानूस थे,

ख़ाफ उनकी कब्र पर है और निशां कुछ भी नहीं।''

''नहीं मालूम, दिल्ली जल्वा गाहे, नाज़ है किसकी?

हज़ारों उठ गये, रौनक वही है, इसकी महफ़िल की।

दिल्ली की गलियों के बारे में **मुगल बादशाह बहादुर शाह जफ़र** के उस्ताद और उर्दू के चोटी के शायर **ज़ौक साहब** ने कहा था :–

''कौन जाए ज़ौक अब दिल्ली की गलियाँ छोड़कर''

दिल्ली की जिन गलियों को छोड़ जाने के लिए **उस्ताद ज़ौक** का जी नहीं करता था, उस दिल्ली की गलियों की हालत आज क्या हो गई है? गरचे आज **ज़ौक साहब** उसका मुलाहज़ा करते, अपने कानों पर हाथ रखते और मुमकिन है कि अब वे जाने को तैयार हो जाते।

सन् 1857 से पहले दिल्ली कें दो मशहूर बाज़ार थे। एक **बड़ा दरीबा** और दूसरा **छोटा दरीबा**। दोनों अभी भी हैं। **लाल किले** के सामने **चाँदनी चौक** से शुरू होते हैं। अनेक नये नामों से बाज़ार मशहूर होकर आज वजूद में आ चुके हैं। पुराने जमाने का **छोटा दरीबा बाज़ार–बड़े दरीबे** से **पराठे वाली गली के तिराहे** तक फैला था। अब तो **किनारी बाज़ार, माली बाड़ा,** आदि उस पुराने छोटे बाज़ार के ऐवज़ में न जाने कौन–कौन नये नाम प्रसिद्ध हो गये हैं।

दिल्ली पर अन्तिम हिन्दू राजपरिवार, **राय पिथौरा** का शासन रहा था, जिसे **पृथ्वीराज चौहान** भी कहते थे। वह अपने वंश का तथा हिन्दू राजाओं में से दिल्ली का अन्तिम राजा था। कुतुबमीनार परिसर में जो मस्जिद के प्रांगण में विश्व प्रसिद्ध लौह स्तम्भ है जिसको चौथी शताब्दी के गुप्त कालीन युग का ढ़ाला हुआ बताया जाता है। प्राकृत में जो गुप्तकालीन लिपि में उस स्तम्भ पर उत्कीर्ण है उससे ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की स्मृति में उसे भगवान विष्णु की ध्वजा के रूप में स्थापित किया गया था।

इस लौह स्तम्भ के सम्बन्ध में एक और किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि दिल्ली के राजा **अनंगपाल (बीलनदेव)** ने अपने कौतूहल की शान्ति के लिये उसे उखड़वाकर देखना चाहा कि प्राचीन मान्यता अनुसार क्या उसका निचला भाग **शेष नाग** के फन पर टिका है कि नहीं? कहा जाता है उसें उखाड़ने में अनंगपाल के करीगरों को काफी परिश्रम करना पड़ा। उखड़ जाने पर स्तम्भ के निचले सिरे पर खून जैसे दाग़ देखकर **अनंगपाल** भी घबरा गया। उसने स्तम्भ को पुनः गढ़वाने की पूरी कोशिश करवायी पर वह कुछ ढ़ीला रह गया। इस पर उस काल के किसी कबि के कवित्त रचा:–

''किल्ली तो ढ़िल्ली भई, तोमर भया मतिहीन,

तोमर तब चौहान और थोड़े दिनों में तुरक पठान।''

अनंगपाल का वंश आगे न चला, उसका एक कारण हो सकता है कि मनाही वाले स्तम्भ उसने उखड़वाने की नादानी की थी। कुछ लोगों का मत हैं **'ढ़िल्ली'** शब्द से **दिल्ली** बना और उससे इसका नामकरण शनैः शनैः होता गया।

पिथौरा वंश के पाँच राजाओं ने 85 वर्ष 8 मास 23 दिन राज्य किया। इनके पीछे दिल्ली में मुसलमानों का

राज्य आ गया, जिसके कुल 51 सुल्तानों, बादशाहों ने **बहादुशाह 'जफर'** तक 778 वर्ष 2 मास 11 दिन राज्य किया। फिर अंग्रेज बहादुर व्यापारी बनकर इस मुल्क में घुसे फिर शासक बन गये। वे भी दिल्ली पर सन् 1803 से 14 अगस्त् 1947 मध्यरात्रि तक शासन कर गये। अब सन् 15 अगस्त् 1947 से स्वतंत्र होकर इस देश पर अपनी प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली चलते हुये भी 47 वर्ष पूरे हो गये हैं।

इतिहास की दृष्टि से दिल्ली में अट्ठारह बार परिवर्तन हये. जिसकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है:–

हिन्दू काल में तीन परिवर्तन

(1) पांडवों की दिल्ली — इन्द्रप्रस्थ

(2) राजा अनंगपाल की दिल्ली : अनंगपुर अथवा अड़ेपुर

(3) राय पिथौरा की दिल्ली : महरौली अथवा महाअरावली

मुसलमान काल में बारह परिवर्तन

(1) किला राय पिथौरा (महरौली) : गुलाम बादशाहों की दिल्ली

(2) किलोखड़ी या नया शहर : कैकदबाद की दिल्ली

(3) सीरी : अलाउद्दीन खिलज़ी की दिल्ली

(4) तुगलकाबाद : गयासुद्दीन की दिल्ली

(5) जहाँपनाह : मोहम्मद आदिलशाह की दिल्ली

(6) फिरोजाबाद : फीरोजशाह की दिल्ली

(7) खिजूराबाद : खिजरखाँ की दिल्ली

(8) मुबारकबाद अथवा कोटला मुबारकपुर : मुबारकशाह की दिल्ली

(9) दीनपनाह : शेरशाह सूरी की दिल्ली

(10) शेरगढ़ : शेरशाह सूरी की दिल्ली

(11) सलीमगढ़ : सलीमशाह सूरी की दिल्ली

(12) शाहजहाँनाबाद : मुगल सम्राट शहंशाह शाहजहां की दिल्ली

बिट्रिशं काल की दो दिल्ली

(1) सिविल लाइन्स - कश्मीरी गेट से निकलकर जो इलाका आजादपुर तक चला गया।

(2) नयी दिल्ली - सर लूट्येनस द्वारा नवनिर्मित देश की राजधानी नई दिल्ली

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक दिल्ली में ग्रामीण जनता की आबादी लगभग शहरी आबादी के बराबर थी, जोकि सन् 1951 में घटकर 17.5 प्रतिशत, सन् 1981 तक 7 प्रतिशत तथा वर्तमान में 5 प्रतिशत से कम हो चुकी है। यह सब परिवर्तन गांवों के शहरीकरण हो जाने के परिणाम–स्वरूप आया। इस शहर के दक्षिणी भाग पर **हजरत निजामुद्दीन औलिया** की भी एक बद्दुआ है–"**या रहे उजाड़ (उज्जर) या बसे गुज्ज़र।**"

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक दिल्ली की आबादी दो लाख के करीब थी। अंग्रेजों ने इसे देश की राजधानी बनाया तो आबादी बढ़ी जोकि सन् 1921 में 3 लाख थी और सन् 1931 मे साढ़े चार लाख हो गयी आजादी बाद सन् 1951 में जनसंख्या लगभग 15 लाख थी। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार दिल्ली की आबादी बढ़कर लगभग 94 लाख हो चुकी थी और जब कि 1981-91 के दशक के बीच जनसख्या वृद्धि दर 50.64 प्रतिशत थी. अतः स्वाभाविक है कि 1991-2001 के दशक में भी यह वृद्धि–दर 50 प्रतिशत भी रही तो सन् 2001 तक दिल्ली की जनसंख्या 1 करोड़ 40 लाख तक बढ़ने की सम्भावना है।

दिल्ली का एक पुराना क्षेत्र **'बाड़ा हिन्दूराव'** कहलाता है। **मराठा सरदार हिन्दूराव** का असली नाम **जयसिंह राव** घाटे था। ग्वालियर के **महाराजा दौलतराव सिन्धिया** की पत्नी **बैजावाई** उनकी बहिन थीं। अपने भानजे **महाराजा जनकोजी** से रुष्ट होकर **हिन्दूराव** स्वयं ही ग्वालियर छोड़कर दिल्ली चले आये थे। दिल्ली आने पर उन्होंने ब्रिटिश रेजीडेन्ट से 10 रूपये मासिक की पेंशन स्वीकृत करा ली थी। दिल्ली में उन्होंने तत्कालीन सेशन जज मि. फ्रेज़र से 20 हज़ार रूपये में जो जायदाद खरीदी थी, बाद में वही **''बाड़ा हिन्दूराव''** के नाम से जानी जाती है।

आज़ादी के बाद दिल्ली मुनिस्पेलिटी का दर्ज़ा बढ़ाकर दिल्ली नगर निगम का कर दिया गया। नयी दिल्ली के लिये अलग से नई दिल्ली म्युनिस्पल कमेटी सब व्यवस्था करती है। सन् 1952 से 1960 तक दिल्ली विधान सभा थी, जिसमें 40 विधायक होते थे। उनमें एक बार एक कुर्मी, **राणा जंग बहादुर सिंह** स्वंत्रत रूप से विधायक चुने गये थे। दिल्ली में कभी ट्रामें चला रही थीं, शहर के बुजुर्गों को यह अच्छी तरह याद होगा। सन् 1960 के दशक में ये बन्द कर दी गयीं। बढ़ती शहर की आबादी को देखते हुए बसों और भूतल–रेल सेवा में कोई भी बढ़ोत्तरी उस पर काबू पाने वाली नहीं हैं। फिर भी यातायात की जबरदस्त किल्लत बनी रहने वाली है। आप चौंके नहीं यह सच है कि दिल्ली प्रदेश में सड़को पर रोजमर्रा इतने वाहन चलते हैं कि उसका अन्दाज़ा एक बात से लगाया जा सकता है। सिर्फ **मोटर गाड़ियां**, जिन्हें **कार** कहते हैं जितनी **बम्बई** और **कलकत्ता महानगरियों** में कुल मिलाकर हैं उससे अधिक महज **दिल्लीवासियों** के पास हैं। **कारों** में कई गुनी बढोत्तरी तब से हुई जब से **संजय गांधी** द्वारा स्थापित गुरूगांव में **मारुति फैक्टरी** ने कार उत्पादन प्रारम्भ किया। फैक्टरी लगने के दौरान आलोचकों की **संजय गांधी** और उनकी माताश्री **श्रीमती इन्दिरा गांधी**, तत्कालीन प्रधान मंत्री को अनेक प्रतिक्रियायें सुननी पड़ती थी। संजय का वायदा जनता कार बनाने का था जो कि **जनता को लगभग 25,000 रूपयों में उपलब्ध होती**। इस बीच **संजय गांधी** एक हवाई दुर्घटना में मारे गये। आलोचकों ने कहा कि यह **'मारुति'** नहीं **'मां रोती'** है। खैर जब पहली मारुती सड़क पर बनकर आयी तो कीमत लगभग 45,000 रूपये थी। आज सादा से सादा मॉडल वाली भी लगभग 1,80,000 रूपये की हो चुकी है। इन कारों से अब दिल्ली परिवहन व्यवस्था या **जनता** रोती है। आवासीय कालोनियों में इतनी कारें हो चुकीं हैं कि उन्हें रखने को पर्याप्त स्थान नहीं हैं।

दिल्ली प्रदेश के वर्तमान मुख्य मंत्री, **श्री मदन लाल खुराना** इसी जटिल समस्या का समाधान ढूढ़ने अक्टूबर 94 माह में विदेश–भ्रमण कर लौटे हैं और घोषणा की है कि शीघ्र ही योजनावद्ध ढंग से आधुनिक ट्राम सेवा का प्रारम्भ दिल्ली में होने वाला हैं। **केन्द्रीय सरकार** ने तो कई वर्ष पूर्व योजना बना ली थी। जिसके क्रियान्वयन पर हजारों करोड़ रूपया व्यय होगा पर कलकत्ता की तरह यहां भी **भूमिगत रेल सेवा** स्थापित की जायेगी। वेशक इन सबके पूर्ण होने से दिल्ली शहर की परिवहन जन सुविधायों में आशातीत वृद्धि हो सकेगी। पर **दिल्ली महानगरी** में आने वाले सैलानियों तथा अन्य लोगों को तो उसका इंतजार नहीं है, वे तो अधिकाधिक आते जाते ही रहेंगे, क्योंकि वे जानते हैं।

सैर कर दुनिया की गाफ़िल, जिन्दगानी फिर कहां
जिन्दगानी गर कुछ रही तो, नौजवानी फिर कहां

तैतीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 33 वाँ अधिवेशन 8 और 9 मार्च 1980 को श्री धनीराम वर्मा, रायपुर (मध्य प्रदेश) निवासी की अध्यक्षता में देवेन्द्र नगर, झालदा (जिला पुरुलिया -पं. बंगाल) में सम्पन्न हुआ। अधिवेशन से कुछ माह पूर्व झालदा में महासभा की कार्य कारिणी समिति की बैठक हुई थी, उसमें इस लेखक ने भी भाग लिया था और अधिवेशन को सफल बनाने के लिये आवश्यक मुद्दों पर विचार-विमर्श हुआ तथा निर्णय लिये गये। महाधिवेशन स्थल का नाम 'देवेन्द्र नगर' स्थानीय पूर्व सांसद तथा सामाजिक महान विभूति, स्व. श्री देवेन्द्र नाथ महतो की याद में रखा गया था। इस अधिवेशन के उद्घाटन कर्ता, पूर्व ऊर्जा मंत्री, भारत सरकार, प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद जी थे।

प्रोफेसर सिद्धेश्वर प्रसाद जी ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा :-

"**कूर्मि समाज का इतिहास** बड़ा ही शानदार और गौरवमय रहा है। पर इस अवसर पर इस संबंध में विस्तार से न कह कर मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की दो बोलियों का नाम इस जाति से संबंधित है। एक है **कुर्माली** और दूसरी है **अवधी**। यह ठीक है कि अवधी, अवध प्रदेश की भाषा है पर कूर्मि जाति की एक उपशाखा के अवधिया कहे जाने की सार्थकता पर भी इस सन्दर्भ में गहराई से विचार किया जाना चाहिए।

डा. काशी प्रसाद जायसवाल और **डा. लक्ष्मीनारायण सुधांशु कुर्माली** को **मैथिली, मगही** और **भोजपुरी** की तरह एक स्वतंत्र बोली मानते हैं। यह खेद की बात है कि कुर्माली भाषा और साहित्य पर जितना काम होना चाहिये अभी तक उसका दशांश भी नहीं हुआ है। फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि **कुर्माली** इस समाज के स्वतंत्र एवं गौरवमय अस्तित्व का द्योतक है।

इस जैसी जातीय महासभाओं की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है जब जाति को संगठित कर इसकी कमजोरियों को दूर करने में मदद मिले। संगठन की दुर्बलता हमारी सबसे बड़ी कमजोरी रही है। **कूर्मि समाज** अभी अनेक शाखाओं उप-शाखाओं में बँटा हुआ है। इतना ही नहीं, इस समाज के कुछ लोग अपने को **पिछड़ा वर्ग** का और कुछ अपने को **क्षत्रिय** मानते हैं। सच बात तो यह है कि **काका कालेलकर** की अध्यक्षता में गठित **पिछड़ा वर्ग आयोग** की रिपोर्ट के पहले **कूर्मि समाज में अपने को क्षत्रिय के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिये बड़ा जोरदार आन्दोलन चला था।** लेकिन इस आयोग के बाद कम से कम उत्तरी भारत में, यह आन्दोलन प्रायः समाप्त है। मुझे ऐसा लगता है कि कूर्मि समाज की एकता को कायम रखने के लिये यह आवश्यक है कि **मराठों, रेड्डियों** और **पटेलों** की तरह **कूर्मि** की अन्य जातियाँ भी अपने को **कूर्मि क्षत्रिय** के रूप में संबोधित करें। इससे इस जाति को अपने खोये हुये गौरव और संस्कार को प्राप्त करने के लिये मनौवैज्ञानिक शक्ति प्राप्त होगी।

जो जाति भारतीय कृषि का मेरूदण्ड है, जो शिक्षा और व्यवसाय में अपना सर्वतोमुखी विकास करने में सफल हुई है और जिसने **छत्रपति शिवाजी** और **लौह पुरूष सरदार बल्लभाई पटेल** के रूप में भारतीय राजनीति को सर्वथा नया आयाम प्रदान करने में आगे बढ़कर पहल की है और जिसके वंश में उत्पन्न व्यक्ति ने राष्ट्रपति (**श्री नीलम संजीव रेड्डी**) का पद सुशोभित किया हो, **वह अपने को पिछड़ा कहकर अपनी हीनता की भावना को क्यों पनपने दे? अतः इस हीनता की मनोग्रंथि को काटना होगा और भारतीय समाज के इस मेरूदण्ड को सीधा रखकर चलना होगा।**

हमारा समाज परिश्रम सेवी है, परजीवी नहीं। हमारे समाज के लोग गाढ़े पसीने की कमाई खाते है और न काम को छोटा समझते हैं और न उससे जी चुराते हैं। ऐसा लगता है कि हमारा समाज सहज रूप से गीता के कर्म योग का अभ्यासी है।"

डा. नन्द किशोर सिंह ने **कुड़मि** नाम से सम्बोधित झारखंड के कुरमियों, की बोली **'कुरमाली'** पर एक शोध-ग्रंथ लिखा था, जिस पर **विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्ति निकेतन** से डाक्ट्रेट की डिग्री प्राप्त हुई थी। बाद में वे उसी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक पद पर कार्यरत रहे। डा. सिह के अनुसार **"झारखंड़ के कुरमियों"** के पूर्वज़ 12वीं या 13वीं

शताब्दी में बिहार के मगध क्षेत्र से हजारीबाग होते हुये छोटा नागपुर अँचल में आ बसे। ये कुड़मिजन वहाँ की जनजातियों के साथ **मानभूम** (पुरूलिया), **मिदनापुर, दिनाजपुर, मुर्शिदाबाद**, **मालदा, बाकुड़ा, नडिया** में रहते हैं। इस सम्बन्ध में यह मान्यता है कि झारखंड और इसके आस–पास के प्रदेशों के अंचल में कुड़मि लोग कछारी भूमि–खंड़ों में जनजातियों के आने से बहुत पहले आ बसे थे। **मुन्डा** और **सन्थाल** जनजातियों की तरह **राँची, हज़ारी बाग** तथा **मानभूम** अंचलों में **कुड़मियों के 22 परगने हैं।**

भारत के राष्ट्रीय तथा अन्य उत्सवों में प्रदर्शित बिहार के लोक गीतों में झारखंड के **छऊ नृत्य** तथा **झूमर संगीत का प्रमुख** स्थान है। उनमें से अधिकांश कलाकार **कुड़मि** जाति के हैं। वे लोक गीतों, लोक संगीत तथा लोक **नृत्य के माध्यम से भारत** वर्ष का गौरव विश्व भर में फैला रहे हैं। **छऊ लोक नृत्य** के क्षेत्र में **'पद्मश्री'** अलंकार से विभूषित **नेपाल महतो** तथा **झूमर संगीत सम्राट श्री गिरीश चन्द्र महान्तो** है। **कुड़मि** जन जीवन में **'धरम पूजा'** तथा **'करम पूजा'** का **विशेष स्थान है। उसके** वारे में विस्तार से अन्यत्र इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। **करम राजा** पर एक चलचित्र, धनबाद में **गिरडीह से निर्वाचित** लोकसभा सदस्य **श्री राज किशोर महतो** की संरक्षकता में **श्री विपिन माहन्तो** ने नवम्बर, 1993 में **बनाने का श्री गणेश किया** है।

उत्तर बिहार के **कुरमियों** तथा झारखड़ क्षेत्र के **कुड़मियों** में मुख्यतः निम्नलिखित अन्तर दृष्टिगोचर होते हैः– (ख)

(1) झारखंड के **कुड़मि गोरट चिह्नवादी** वंश के हैं। कुरमियों में अनेक उपजातियाँ हैं, जबकि कुड़मियों में ऐसा नही है।

(2) झारखंड के कुड़मि कन्यादान नहीं करते हैं, तिलक दहेज नहीं देते हैं बल्कि उन्हें उल्टे कन्या–पक्ष को वर–पक्ष वाले सामर्थ्यानुसार मूल्य देने का रिवाज़ है। वे विधवा विवाह भी करते हैं और इनके विवाह के रीति–रिवाजों में कुरमियों से बहुत अन्तर है, क्योंकि वे बड़े आसान हैं और बहुत कम खर्चीले हैं।

(3) कुड़मियों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें उपजाति या गोत्र भेद अथवा ऊँच–नीच का अन्तर नहीं है। सभी कुड़मि कहलाते हैं और उन सबका एक मात्र आस्पद **महतो** है।

(4) किसी भी **'कुड़मि'** को **'महतो'** कह देना काफी होता है, पूरी पहचान उसकी उसी आस्पद से है। जाति–बिरादरी का होने के नाते बिना प्रश्न किये सामर्थ्यानुसार दिल से पूरी खातिर करेगा। परन्तु इसके विपरीत उत्तर बिहार में कुरमियों की अनेक उपजातियाँ है, और ऊँच–नीच की तथा सह–उपजाति की भावना चाहे छिपे रूप में है पर अभी भी रोजमर्रा के सम्बन्ध में भी उसका सीधा प्रभाव महसूस किया जा सकता है।

(5) झारखंड़ के कुड़मि जन्म, मृत्यु अथवा अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में ब्राह्मण पुरोहित को नही बुलाते, जबकि कुरमियों में सभी कार्य अभी भी ब्राह्मण–पुरोहितों द्वारा ही सम्पन्न कराये जाते हैं।

डा॰ उदयनारायण तिवारी लिखित पुस्तक, **''भोजपुरी भाषा और साहित्य''** में उल्लेख मिलता है– **''कुर्मी और कुड़मि में एक अन्तर हैं, कुडमि द्रविड़ वंश के अनार्य हैं। बिहार के कूर्मि सम्पूर्ण रूप से इन कुड़मियों से भिन्न है।'' ''झारखंड के कुर्मी''** पुस्तक के लेखक **श्री केदार महतो** का मानना है– "हड़प्पाकाल से ही जो जातियाँ वनों जंगलों में यहाँ से वहाँ भटकते हुये भी अब तक जीवित रह सकी है, आज उन्हें अपने अस्तित्व के लिये अपनी पहचान के लिये याचकों की तरह मुँह जोहना पड़ रहा है, सिर्फ इसलिये कि सम्यता के विकास–क्रम में उनमें संचय शीलता तथा चालाकी के वे गुण न आ पाये, जिस कारण वे शोषित हो रहे हैं। और स्वाधीनता के बाद भी उन्हें अपने देशवासियों से संविधान के मानवाधिकार, (जीने का अधिकार और समानता के अधिकार) की याचना करनी पड़ रही है।" यह पुस्तक श्री केदार महतो ने झारखंड के **मसीहा शहीद निर्मल महतो** के स्मृति मे समर्पित की है और इसका लोकार्पण सांसद **शैलेन्द्र महतो** द्वारा शिवाजी नगर, गांधी मैदान, पटना में 16 और 17

मार्च 1991 को **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** के 37 वें अधिवेशन के अवसर पर किया गया था।

झालदा के इस अधिवेशन में कुड़मि वक्ताओं की यही शिकायत थी कि सन् 1929 में मुजफ्फरपुर (बिहार) में महासभा के सत्रहवें अधिवेशन में मानभूम (वर्तमान पुरुलिया) में कुड़मि–महतो प्रतिनिधियों को आमंत्रित कर यह घोषणा कर दी कि छोटानागपुर पठार के कुड़मि–महतो और उत्तर बिहार के अन्याय कुरमियों में कोई अन्तर नही है वे सब कूर्मि क्षत्रिय वर्ण के हैं। **महासभा में ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा तीन कुड़मि-महतो प्रतिनिधियों का यज्ञोपवीत** कराकर ही उन्हें अपने क्षेत्र में वापिस भेजा गया। इसका दुष्परिणाम यह निकला कि छोटा नागपुर के कुड़मियों को जो सन् 1930 तक **अनुसूचित जनजाति की सूची में सूचीवद्ध थे,** उन्हें सन् 1931 जनगणना से अंग्रेज सरकार ने **'कूर्मि क्षत्रिय'** वर्ग में शामिल कर दिया। परिणाम स्वरूप कुड़मियों को अनुसूचित जनजाति वर्ग की सूची से हटाकर उस वर्ग विशेष की सारी सुविधाओं और संरक्षण से वंचित कर दिया गया। उधर कूर्मि क्षत्रिय वर्ग ने भी अब तक खुलकर कुड़मियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नही किया है। और सामाजिक स्तर में भी कुड़मियों के, इस **वर्ण-कल्प** से कोई सुधारात्मक अन्तर नहीं आया, उनका शोषण नहीं रुका और ऊपर से क्षति यह हुई कि उनकी बाप–दादों से चली आयी भूमि की जो संरक्षण तथा सुरक्षा विधिवत् उनके हाथ में थी, वह भी समाप्त हो गई।

स्वतंत्र भारत में विकास के नाम पर बिहार में **छोटा नागपुर के कुड़मियों** पर भूमि अधिग्रहण की जबरदस्त मार पड़ी। उनकी जमीनें बांध बनाने और जलाशय के लिये हड़प ली गई। किन्तु क्षतिपूर्ति या पुनर्वास समुचित और न्यायपूर्ण रूप से नहीं किया गया। भूमि की लूट–खसोट से जब कुडमिजन असहाय हो गये तो उस अन्याय के विरूद्ध उन्हें जनान्दोलन का सहारा लेना पड़ा। जनान्दोलन की सफलता के लिये, वे अपनी जी–जान की बाजी लगाने में न हिचकिचाये। उनके आन्दोलन को विफल करने के लिये बड़े अमानवीय जुल्म ढाये गये। उनके एक प्रिय नेता **शहीद निर्मल महतो** की जमशेदपुर में दिन दहाड़े गोली मार कर हत्या कर दी गई। **दामोदर घाटी नदी योजना, कंसावती नदी योजना, सुवर्ण रेखा खारकोई परियोजना** की भी मार इन्हीं **कुड़मि-महतो** पर अधिक पड़ी। **खदानों, शहरी विकास, रेल, नहर, सड़कें** आदि शहरीकरण अथवा उद्योगीकरण के लिये जितनी जमीने झारखंड क्षेत्र में ली गयी अधिकांश जमीनों के स्वामी ये अभागे कुड़मि ही थे। परियोजनाओं मे **कुड़मियों** की 25,000 एकड़ भूमि कौड़ी के दाम हड़प कर दामोदर घाटी परियोजना के सरोवर में जलमग्न कर दी, जिसमें 90 प्रतिशत जमीन का रकबा मात्र कुड़मियों का था। झारखंड क्षेत्र मे जितनी खदानें हैं, उनके स्वामी अब गैर बिहारी पूंजीपति बन बैठे हैं, जबकि मूलतः खदानों की जमीनें मूलतः कुड़मियों की ही थीं। हर प्रकार से उनका शोषण–दोहन होता आ रहा है जबकि झारखंड क्षेत्र में कुड़मियों की आबादी 44 प्रतिशत के लगभग अनुमानित है। जमशेदपुर से **झारखंड मुक्ति मोर्चे** से दशमी लोकसभा के कुड़मि-जातीय सदस्य, **श्री शैलेन्द्र महतो** हैं। श्री महतो ने इस लेखक को बतलाया कि कुरमाली भाषा पर प्रथम डाक्ट्रेट डिग्री प्राप्ति कर्ता **डा. नन्द किशोर सिंह** वास्तव में **कुड़मि** है और **महतो** आस्पद की जगह **'सिंह'** का प्रयोग करने लगे हैं।

झालदा अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में से सबसे महत्वपूर्ण **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** के नाम से **क्षत्रिय** शब्द हटाना था। इस अधिवेशन में कुडमि–महतो बन्धुओं ने हजारों की संख्या में भाग लिया और इसे सफल बनाने में अनेक स्थानीय कार्यकर्ताओं जैसे **श्री भोलानाथ महतो, श्री किंकर महतो, कुमारी मोहनी महतो** स्वतंत्रता सेनानी, पूर्व सांसद **स्व. चितू महतो** आदि का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुमारी मोहनी महतो कई बार इस लेखक के दिल्ली निवास पर आयी थी।

झारखंड को भौगोलिक रूप से **"छोटा नागपुर प्लेटो"** के नाम से भी जाना जाता है। **'झारखंड'** नाम भी प्राचीन समय से आता है। प्राचीन भारत के मानचित्र पर जिस–जिस अँचल को **कर्ण-सुकर्ण** नाम से संबोधित किया जाता था, वही कालान्तर में **झारखण्ड** नाम से पहचाना जाने लगा। **जनरल कनिंघम** के अनुसार पूर्व में **मेदिनापुर,** पश्चिम में **सरगुजा राज्य,** उत्तर में **दामोदर नदी** का उद्गम और दक्षिण में **वैतरणी नदी** के उद्गम स्थनों मे मध्य–भाग को **'कर्ण-सुकर्ण'** का क्षेत्र कहा जाता है। जब चीन के **प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसांग** ने इस क्षेत्र का भ्रमण किया था, तब उसने भी अपने यात्रा–वृतान्त में विस्तार से इस क्षेत्र

के बारे में भी लिखा था। **चैतन्य महाप्रभु** सोलहवीं सदी के दूसरे दशक में इस क्षेत्र में **वैष्णव धर्म के प्रचारार्थ** पधारे थे और उन्होंने भी अपने उल्लेखों में सदैव इस क्षेत्र को **'झारखंड़'** के नाम से सम्बोधित किया।

यद्यपि बिहार के अन्य क्षेत्रों में **कुर्मी** अथवा कूर्मि जाति वाचक शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु **"झारखंड़ क्षेत्र"** में अधिकांश लोग अब भी अपनी **'कुरमाली'** बोली में **'कुड़मि'** शब्द का प्रयोग करते हैं। महान भाषा–शास्त्री **सर जी.ए. ग्रियर्सन** के **"लिगुंइस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया"** के 5वें अनुच्छेद के अनुसार छोटानागपुर प्लेटो के **'कुड़मि' द्रविड़ प्रजाति के आदिवासी है,** जो **'र'** का उच्चारण सिर्फ़ **'ड़'** से करते हैं, अतः **'कुरमी'** का उच्चारण **'कुड़मि'** करते है, लेकिन प्रादेशिक सरकार इस तथ्य की ओर ध्यान न देकर अभी भी कुर्मी शब्द का प्रयोग करती हैं।



श्री बाळशौरि रेड्डी
अ.भा.कू.क्ष. महासभा के 31वें अधिवेशन के अध्यक्ष



श्री महेन्द्र सिंह, पूर्व डाइरेक्टर जनरल यू.पी. पुलिस
अ.भा.कू.क्ष. महासभा के 37वें अधिवेशन के अध्यक्ष



श्री धनीराम वर्मा
अ.भा.कू.क्ष. महासभा के 33वें एवं 34वें अधिवेशन के अध्यक्ष, वर्तमान संरक्षक



डा. देशराज कटियार
अ.भा.कू.क्ष. महासभा के 36वें अधिवेशन के अध्यक्ष



डा. बलिराम सिंह

अ.भा.कू.क्ष. महासभा के 38वें अधिवेशन के अध्यक्ष



सन्त कवि
बाबा बैजनाथ कुर्मी बाराबंकी



સ્વ. પટેલ રતનશી ખીમજી વિરાણી મોટીવાળા

मदरास हाता के लाट साहब



श्री नीलम संजीव रेड्डी

आपका जन्म, आँध्र प्रदेश के, अनन्तपुर जिले के इल्लस गाँव में १९ मई १९१३ ई० को, एक कापू (रेड्डी) किसान परिवार में हुआ। आप राजनीति के मर्मज्ञ विद्वान् एवं तपे तपाये नेता हैं। आप जुलाई १९७७ में सर्वसम्मति से राष्ट्रपति बनाये गये। आपके राष्ट्रपति पद ग्रहण करने से बापू का सपना साकार हो गया।



हिज [illegible] सर कूर्मा [illegible]

चौंतीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 34वाँ अधिवेशन दिनाँक 29, 30 और 31 मई 1981 को रायपुर (मध्य प्रदेश) में श्री धनीराम वर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। उद्घाटन भाषण माननीय श्री जयराम वर्मा, तत्कालीन लोक सभा सदस्य, फैजाबाद (उ. प्र.), बाद में कैबिनेट स्तर के मंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार, द्वारा किया गया। इस अधिवेशन में महिला एवं युवा-वर्ग के सम्मेलन भी अलग-अलग समय में हुये। राष्ट्रीय एकता, सामाजिक उत्थान, दहेज-प्रथा का निवारण अथवा उसपर अंकुश, रूढ़ियों तथा अन्ध-विश्वासों का उन्मूलन, नारी-शिक्षा आदि विषयों पर अनेक प्रतिनिधियों के सारगर्भित भाषण हुये। अन्तरजातीय विवाह, आदर्श सामूहिक विवाह, कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग आदि के सम्बन्ध में इस अधिवेशन में प्रस्ताव पारित कर निर्णय लिये गये।

इस अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए, **श्री जयराम वर्मा**, सदस्य लोकसभा (फैजाबाद) ने कहा कि **"मुझे दुःख है कि प्रसिद्ध छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सम्मेलन होने में भी हमारी उपस्थिति इतनी न्यून है। इससे हमारे सभी दावे खोखले साबित होते हैं। हमें बड़ी-से-बड़ी संख्या में उपस्थित होना चाहिए। तभी हम अपने साथ न्याय किये जाने की माँग कर सकते हैं। मेरी खास तौर पर अपील है कि इस शैक्षिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी जाति की सभी शाखाओं को एक जुट होकर संगठित होने के लिए प्रयास करने होगें, तभी हम अपने लक्ष्य को पा सकेंगे।"** (मासिक, **"कूर्मि क्षत्रिय जागरण"**, कन्नौज, सितम्बर–अक्टूबर 1981, पृष्ठ 35)

आरक्षण के लिये इसी अधिवेशन के **'युवा सम्मेलन'** का उद्घाटन करते हुए **श्री नरेन्द्र सिंह सचान**, सदस्य–राज्य सभा (कानपुर) ने कहा कि **"कुछ लोग हमारे समाज को पिछड़ा समाज घोषित करने के इच्छुक है, किन्तु मेरा विचार इसके विपरीत है। 'पिछड़ा' कहने से हीन-भावना आती है – कमजोरी आती है। हमारा देश अन्य विकसित देशों को देख कर विकसित बनने की इच्छा करता है। तब फिर हम लोग शेष समाज को आगे बढ़ते देख कर 'पिछड़ा समाज' कहलाना क्यों मंजूर करते है?" आपने आगे कहा कि --" आरक्षण इसलिये उचित नहीं है कि वीर शिवाजी और सरदार पटेल के वंशज के रूप में हम अपने-आपको गौरवान्वित करना चाहते है। .... पुरूलिया में 'क्षत्रिय' शब्द हटाने की बात की गयी, यह कार्यकारिणी के गलत तरीके से कार्य करने का प्रमाण है।"** (देखिये मासिक "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" कन्नौज, अंक सितम्बर–अक्टूबर 1981, पृष्ठ 37, 38)।

श्री नरेन्द्र सिंह उत्तर प्रदेश में **कांग्रेस सरकार में कृषि मंत्री** रहे थे। नवम्बर 1993 में वे उत्तर प्रदेश विधान सभा के चुनाव में राजपुर (कानपुर) से चुन लिये गये। इस समय कांग्रेसियों की संख्या विधान सभा में 450 सदस्यों में घटकर 29 रह गयी। इसलिये **संयुक्त समाजवादी पार्टी** तथा **बहुजन समाज पार्टी** की संयुक्त सरकारें बनी है और श्री मुलायमसिंह यादव मुख्य मंत्री बनाये गये है। उनकी सरकार के वरिष्ठता के अनुसार दूसरे स्थान पर जो कैबिनेट मंत्री हैं उनका नाम **श्री बेनी प्रसाद वर्मा** है। जो कि बाराबंकी के कुरमी परिवार से आते हैं। इस समय उत्तर प्रदेश विधान सभा में कुरमी जाति के 39 सदस्य हैं। बहुजन समाज पार्टी के विधान सभा में नेता तथा उत्तर प्रदेश सरकारें **पंचायतराज मंत्री, श्री राम लखन वर्मा** हैं। वे भी कुर्मी है और अयोध्या जनपद से तीसरी बार विधायक चुने गये हैं।

महासभा के केन्द्रीय कार्यालय के निर्माण की योजना

श्री ध्रुव नारायण सिंह वर्मा अपनी लघु पुस्तक (महासभा का कार्यालय, प्रकाशित मई 1983, सत्य प्रकाशन, आगरा–282002) के पृष्ठ 27 पर लिखते हैं –– "दिल्ली में 28 फरवरी 1981 को उपाध्यक्ष, श्री श्याम नारायण कूर्मि, एडवोकेट की अध्यक्षता में हुई बैठक में महासभा की कार्य समिति ने महासभा के स्थायी कोष संग्रहण की योजना को दिल्ली में प्रधान कार्यालय के निर्माण की योजना से जोड़ दिया ओर कोष–संग्रहण के लिए छपने वाले कूपनों के प्रारूप में शब्द **"केन्द्रीय कार्यालय निर्माण**

एवं महासभा के उद्देशों की पूर्ति हेतु" छापने का निर्णय लिया।

इसके बाद कितना धन इक्ट्ठा किया गया, कार्यालय क्यों अब तक बन न सका इसकी प्रमाणित जानकारी न मिलने के कारण आगे कुछ विचार प्रकट करना उचित न रहेगा। पर यह सत्य है कि अब तक बाते खूब की गई हैं काम कम हुए हैं।

कूर्मि वर्ण-व्यवस्था में क्षत्रिय हैं - एक अटल सत्य

इस अधिवेशन की विशेष उल्लेखनीय घटना यह भी थी कि पहले ही दिन उपस्थित प्रतिनिधियों द्वारा इस बात पर रोष प्रकट किया गया कि महासभा के नाम से **क्षत्रिय** शब्द क्यों हटाया गया। कुरमियों को यदि **मनु की वर्णाश्रम-व्यवस्था** की दृष्टि से देखा जाय, तब वे क्षत्रिय हैं, और सदैव ही हमारे पूर्वजों की भी यही मान्यता थी, और यही अवधारणा **'कुरमी सदर सभा'** के सन् 1894 में स्थापना से निरन्तर अब तक इस महासभा तथा इसके सभी पदाधिकारियों की सदा रही है। अनेक उपलब्ध जातीय इतिहास ग्रंथ इसके साक्षी है। कूर्मि जाति क्षत्रिय है या नहीं इस बात पर कुछ कुरमियों द्वारा अब प्रश्न चिंह्न क्यों लगाया जा रहा है? ये प्रश्न अधिकतर बिहार के उन कुरमियों द्वारा उठाया जाता रहा है जिनके पूर्वजों से जाने–अनजाने में निम्नलिखित भूलें हुई थीं :–

1. सन् 1933 के हरनौत अधिवेशन में एक विशेष उपजाति के कुरमियों को नीचा समझकर उन्हें सभा मंडप से चले जाने पर जोर, फिर आपस में धक्कम-धक्का और दो कुरमियों का अपने पैरों तले कुचलकर मौत के घाट उतार देना।

2 झारखंड के कुड़मि जोकि अपने को द्रविड़ वंशज मानते है उनका यज्ञोपवीत करके क्षत्रियकरण करना, जिससे वे प्राचीन काल से उपलब्ध अनुसूचित जनजाति की सुविधाओं से वंचित कर दिये गये। और अब वे कमर कस कर कुरमियों का शूद्रीकरण करने पर उतारू हो गये हैं। और यह उनकी तीसरी भूल है, जिससे अन्य जगह के कूर्मि सहमत नहीं है। विचित्र–विचित्र तरह की दलीलें पेश करते है जैसे कि हम आर्य हैं ही नहीं। पर बिहार में इन दलीलों को आप खूब सुनेगें पर शाखा भेद तथा ऊंच–नीच की भावना जितनी अभी भी वहाँ के कुरमियों में है वैसी अन्य प्रदेशों के लोगों में न पायेगें। इस बात के प्रमाण के लिये पटनावासी श्री सिद्धेश्वर के विचार, उनकी पुस्तक **"बिहार के कुर्मी"** पहला खण्ड, प्रथम संस्करण मई, 1993, पृष्ठ 50–51 से साभार उद्धृत हैं —

"यह बात ठीक है की कुर्मी समाज की अवधिया शाखा के हमारे बन्धुवर अपने को सिरमौर मानते हैं, बल्कि यहाँ तक कि कई क्षेत्रों में वे अपने को कुर्मी कहते भी नहीं, कहलाना चाहते भी नहीं। और तो और हमें कई बैठकों तथा सभाओं में लोगों से यह कहते सुनने को मिला है कि वे भी कुर्मी जाति के हैं, यह उन्हें पता भी नहीं था। यह हाल केवल अशिक्षित तथा सुदूरवर्ती गाँवों के लोगों का ही नहीं है, बल्कि शिक्षित अध्यापकों-प्राध्यापकों का है। सचमुच यह मंडल, आयोग धन्यवाद का पात्र हैं, जिसने अपनी सिफारिशों में आरक्षण की सूची में कुर्मी, कुर्मी महतो तथा धानुक शब्दों का ही इस्तेमाल किया है, 'अवधिया', 'कौचेसा', 'धमैला' का नहीं अन्यथा स्थिति इससे भी भयानक और बदतर होती। मंडल आयोग ने कुर्मी जाति के 'पंड़ितों' को यह अहसास कराया है कि वे 'कुर्मी' हैं, और यही कहने पर उन्हें आरक्षण का लाभ मिलेगा, अन्यथा नहीं।"

जहाँ तक **'क्षत्रिय'** शब्द को **'कूर्मि'** के साथ प्रत्यय रूप में प्रयोग करने में कुछ बन्धुओं को इसलिये एतराज है कि कूर्मि शब्द स्वयं में क्षत्रियत्व का द्योतक है और उसे लगाने से मात्र पुनरावृति होती है, अंतः उसे तजना व्याकरण की दृष्टि से उचित रहेगा, यह बात तर्क संगत है और मानने योग्य है। इस लेखक ने भी अपनी पुस्तकों के शीर्षकों में मात्र कुर्मी या कुरमी शब्द का प्रयोग किया है। उसके संस्थापक–अध्यक्षीय काल में एक संस्था का पंजीकृत कराया गया, 500 वर्ग मीटर भूखंड दिल्ली के गाजीपुर एक्सटेंशन में खरीदा गया, उसका नाम इसी दृष्टि से **'कूर्मि विकास संस्थान'** रखा गया। परन्तु **'क्षत्रिय'** शब्द के पीछे कुछ **कुर्मी बन्धु** ऐसे हाथ धोकर पीछे पड़ गये हैं, **जोकि एक विशेष राजनीतिक विचारधारा वाले हैं। वे आजकल दलितों**

की राजनीति चलाते हैं और वे सम्भवतः कुरमियों का दलितीकरण कर अपनी पार्टी विशेष में अपनी चौधरायत सुदृढ़ करना चाहते हैं। झारखंड के कुड़मियों का क्षत्रियकरण इन्हीं जैसे लोगों के पूर्वजों ने बड़े जोश–खरोश में किया था पर उन्हें कूर्मि क्षत्रियों की सामाजिक मूल धारा में सम्मिलित करने की तरफ लेश मात्र भी ध्यान न दिया। अतः कुड़मियों का पछताना आज भी तर्क संगत है अब कुरमियों का अक्षत्रियकरण या साफ–साफ कहा जाये दलितीकरण का प्रयास बिहार के बाहर कहीं सफल होने के आसार नज़र नही आते। बिहार से बाहर के हिन्दी भाषी कुरमियों का मत है, जोकि उन्होंने अपने पूर्वजों से ग्रहण किया है। **जब हिन्दू समाज की वर्ण-व्यवस्था के आधार पर विभाजन स्वीकार किया गया था, उस आदि काल से कुर्मी क्षत्रिय थे, अतीत में क्षत्रिय रहे और आज भी वे क्षत्रिय हैं, और जब तक जाति प्रथा प्रचलित रहती है, वे क्षत्रिय रहेंगे। यह अटल और ध्रुव सत्य है, इससे खिलवाड़ बंद होना चाहिए।**

अतः इस 34वें अधिवेशन मे विधिवत बहुमत से प्रस्ताव पारित किया गया कि झालदा अधिवेशन में महासभा के नाम से क्षत्रिय शब्द हटाने का जो निर्णय लिया गया था, उसे निरस्त करके सम्पूर्ण नाम **'अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा"** दिया गया और आशा व्यक्त की गई कि यह **'क्षत्रिय'** शब्द को जो महासभा के नाम का अभिन्न अंश है, भविष्य में हटाने हेतु किसी कुप्रयास की पुनरावृत्ति न की जाय।

पिछड़े वर्ग पर प्रस्ताव खारिज

इसी रायपुर अधिवेशन में 31 मई 1981 को हुए खुले सत्र में **श्री यशवन्त सिंह कटियार** द्वारा प्रस्तावित, **डा. देशराज कटियार** द्वारा समर्थित और बहुमत से खारिज प्रस्ताव संख्या 4 में कहा गया है कि **"पिछड़े वर्ग को नीति के आधार पर आरक्षण दिया जाये। आरक्षण का प्रतिशत आबादी का आधार मानकर किया जाय। अनुसूचित जातियों की भाँति सम्पूर्ण भारत में केन्द्रीय राज्य की नौकरियों तथा अर्द्ध-सरकारी और अन्य संस्थाओं के प्रवेश में आरक्षण दिया जाय। बी.पी. मंडल रिर्पोट को शीघ्र प्रकाशित और कार्यान्वित किया जाय।"**

महासभा के नाम में शब्द **'क्षत्रिय'** जोड़ने का प्रस्ताव महासभा की नियमावली के नियम 1 में संशोधन था, जिसमें महासभा का नाम दिया गया है और नियमावली के किसी नियम में संशोधन नियम 15 में दी गयी नियम–संशोधन की शर्तों का पालन करते हुए ही किया जा सकता था। इस नियम के अधीन अधिवेशन से एक माह पूर्व प्रतिनिधियों को नियम–संशोधन की सूचना देना अनिवार्य था रायपुर–अधिवेशन के लिये दो निमंत्रण–पत्र जारी किये गये थे– एक महासभा की कार्यसमिति एवं अधिवेशन की स्वागत समिति द्वारा संयुक्त रूप से तथा दूसरा अधिवेशन की स्वागत समिति द्वारा प्रथक रूप से। दोनों निमन्त्रण पत्र मासिक –'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' कन्नौज के मई एवं जून 1981 के अंकों में प्रकाशित हुए थे, लेकिन किसी निमंत्रण–पत्र में नियमावली के किसी नियम के संशोधन की कोई सूचना नहीं दी गई थी। महामंत्री श्री श्यामनारायण कूर्मि ने अधिवेशन स्थल पर 29 मई 1981 को महासभा की कार्यसमिति की बैठक बुलायी थी, लेकिन उसकी सूचना में भी किसी नियम संशोधन का कोई विषय सम्मिलित न था।

नियमावली के नियम 14 (ग) के अधीन अधिवेशन हेतु एक विषय निर्धारण समिति का बनाना अनिवार्य था और इस समिति द्वारा विचारित प्रस्ताव खुले सत्र में विचारार्थ रखे जा सकते थे, लेकिन रायपुर–अधिवेशन मे विषय निर्धारक समिति नहीं बनायी गयी और किसी प्रस्ताव के प्रारूप पर कोई विचार नहीं हुआ।

महासभा नियमावली के अनुसार कार्य कर सके , इसलिये भविष्य में इनके पदाधिकारियों की इस सम्बन्ध में हुई पिछली गलतियों की पुनरावृत्ति को रोकना होगा। **"अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा"** की अगली नियमावली, रजिस्टर्ड संख्या 220 दिनांक 17 मई 1984 में प्रधान कार्यालय : एस. 14/83, सरदार वल्लभ भाई पटेल स्मारक, तेलिया बाग, अन्धरापुर, वाराणसी (उ.प्र.) में प्रकाशित हुई, जिस का मुद्रण श्री गंगा प्रसाद सिंह, प्रिंस प्रेस ,के. 66/1-9, नरहरपुरा, ईश्वरगमी, वाराणसी द्वारा किया गया।

इस अधिवेशन में एक अन्य स्मरणीय उपलब्धि थी छतीसगढ़ (मध्य प्रदेश) के रायपुर नगर में स्थित प्रसिद्ध आध्यात्मिक केन्द्र **"श्री विवेकानन्द आश्रम"** के संस्थापक श्रीमत् स्वामी आत्मानन्द जी का अध्यात्म–दर्शन पर शिक्षाप्रद और सारगर्भित भाषण।

स्व. स्वामी आत्मानन्द जी का जीवन-वृत

यहाँ प्रारम्भ में ही यह बताना असंगत न होगा कि स्वामी आत्मानन्द जी 27 अगस्त 1989 को 3 बजे राजनन्दगाँव के पास जीप पलट जाने से असमय में ब्रह्मलीन हो गये, जबकि उनकी आयु 60 वर्ष के लगभग थी। स्वामी जी इस 34वें अधिवेशन के अध्यक्ष, **श्री धनीराम वर्मा जी** के ज्येष्ठ पुत्र थे, उनका सन्यास पूर्व नाम **श्री तुलेन्द्र सिंह वर्मा** था।

सन् 1951 में युवक तुलेन्द्र ने एम.एस–सी. की परीक्षा में सर्वोत्तम अंको में उत्तीर्ण हो स्वर्ण–पदक और अन्य पुरस्कार प्राप्त किये तथा आई.ए.एस. और आई.एफ.एस. दोनों में भी उच्च स्थान प्राप्त किया। विद्याध्ययन पूर्णकर वे अपने घर रायपुर आ गये। रात्रि–समय अपनी पूज्य माता जी, **श्रीमती भाग्यवती देवी से,** घूमने जाने के बहाने से अपरोक्ष रूप से तीन बार **'हाँ'** करवाकर आज्ञा प्राप्त कर ली और चुपचाप घर से निकल गये। घर से सीधे नागपुर के **श्री रामकृष्ण** आश्रम जा पहुँचे। वहाँ वे ब्रह्मचर्य–व्रत में दीक्षित हो गये।

आगे के आठ वर्षों में **नागपुर रामकृष्ण आश्रम** में रहते हुये **धर्म-शास्त्रों** का बड़ी बारीकी से अध्ययन कर, तपस्या के लिये **देवभूमि हिमालय** चले गये। वहाँ **वशिष्ठ गुफा** में महात्माओं के सान्निध्य मे रहकर साधना–तपस्या में लीन रहे। फिर वहा से वे तपोभूमि **अमर-कंटक** चले गये। वहां नर्मदा के उद्‌गम स्थान पर सन्यास–दीक्षा ग्रहण की। उसी समय से वे **स्वामी आत्मानन्द महाराज** के नाम से प्रसिद्ध हुये।

सन् 1961 में उन्हें रायपुर जाकर **''विवेकानन्द आश्रम''** की स्थापना करने को कहा गया। उन्होंने रायपुर जाकर आश्रम स्थापित किया। वहाँ स्वामी जी के लघुभ्राता **देवेन्द्र सिंह वर्मा** ने सन्यास ग्रहणकर **स्वामी निखिलात्मानन्द** नाम प्राप्त किया है। स्नातकोत्तर उच्चशिक्षा श्रेष्ठ अंकों में पूर्ण की। **राजेन्द्र** (बाद में हुये स्वामी त्यागात्मानन्द के नाम से प्रसिद्ध) ने केमिकल इंजीनियरिंग में बी. ई. परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की वे भी सहगामी बनकर, सहयोग देने के लिये आश्रम में रह गये। स्वामी जी ने विवेकानन्द सम्बन्धी आध्यात्मिक विषयों पर देश भर में जगह–जगह भाषण दिये और समय–समय पर अनेक लेख आश्रम की पत्रिका में अथवा अन्य आध्यात्मिक साहित्य में प्रकाशित करवाये। देश–विदेश में स्वामी आत्मानन्द जी की प्रतिभा और प्रभावोत्पादक ओजस्वी भाषण से लोग मन्त्र–मुग्ध हो जाया करते थे। देश के अनेक संत–महात्माओं ने **स्वामी आत्मानन्द जी** को **स्वामी विवेकानन्द जी का अवतार माना है। स्वामी आत्मानन्द जी के आकस्मिक देहावसान से केवल छत्तीसगढ़ अंचल में ही नहीं, कूर्मि समाज में या श्री रामकृष्ण आश्रण में ही नहीं, अपितु समस्त आध्यात्मिक जगत में तथा देश के अनेकानेक आध्यात्मिक केन्द्रों में गहरा शोक फैल गया। एक अध्यात्मिक ज्योति अपना अस्तित्व समाप्त कर महाज्योति में विलीन हो गई।**

महासभा के संरक्षक 86 वर्षीय श्री धनीराम वर्मा जी के इस लेखक को लिखे पत्र दिनांक 20 मई 1993 के अनुसार उनके द्वितीय पुत्र तथा **स्व. स्वामी आत्मानन्द जी** के अनुज **स्वामी निखिलानन्द जी इलाहाबाद के समकृष्ण आश्रम के अध्यक्ष हैं।** उनका प्रवास भी देश के विभिन्न भागों में प्रवचन देते हुये होता रहता है। श्री धनीराम वर्मा जी के चौथे पुत्र **स्वामी त्यागात्मानन्द जी** अपने पूज्य अग्रज स्व. स्वामी आत्मानन्द जी महाराज द्वारा स्थापित विवेकानन्द आश्रम का सचालन कर रहे हैं। पाँचवें पुत्र, **डा. ओइमप्रकाश** वर्मा रायपुर विद्यालय मे मनोविज्ञान विषय के प्राध्यापक हैं। श्री धनीराम वर्मा जी के तृतीय पुत्र भी प्राध्यापक थे, किन्तु कुछ वर्ष पूर्व उनका असमय निधन हो गया।

ऐसे विद्वान, योग्य, सुशिक्षित, सुसंस्कारित, प्रतिभावान, साधु–प्रकृति वाले पाँच–पाण्डवों तुल्य ये पाँचों पुत्र–रत्न पाकर ऋषि तुल्य **श्री धनी राम वर्मा** और उनकी पत्नी **स्व. श्रीमती भाग्यवती देवी,** मात्र अपने को धन्य मानते हैं, अपितु सारी की सारी

कूर्मि जाति, जिनमें वे जन्में तथा सारा समाज एवं समस्त देश भी अपने को गौरवान्वित मानता है। **ऐसे प्रज्ञावान, आध्यात्म रूप से ओत-प्रोत तथा पूर्णतः जाग्रत परिवारों के उदाहरण, मात्र कुरमी जाति में ही नहीं, अपितु सारे हिन्दू-समाज में नहीं हैं। और यह दैव-संयोग से ही सम्भव है।**

श्री धनी राम वर्मा

इनका जन्म सन् 1907 में मध्यप्रदेश के रायपुर जिले के अन्तर्गत कपसदा नामक ग्राम में हुआ था। इसके पिता जी वहाँ के मालगुजार थे।

छात्र–जीवन में इनकी प्रतिभा मे प्रकाश प्रारम्भ हुआ। ये विद्यार्थी जीवन में छात्रों में सदा अग्रगण्य रहे। इनका विवाह सन् 1926 में **श्रीमती भाग्यवती देवी** के साथ हुआ था। श्री वर्मा जी सन् 1928 में अध्यापक बने। इनका अध्यापन कार्य बहुत प्रशंसनीय रहा। कई वर्षों तक जिले की व्यायाम प्रतियोगिता में ये सर्वोत्तम विजेता घोषित किये गये, जिसके फलस्वरूप इनको चाँदी की भीमायुध गदा, शील्ड और स्वर्ण पदक प्राप्त हुये थे। मध्य प्रदेश सरकार ने भी प्रंशसा–पत्र द्वारा इन्हें सम्मानित किया।

सन् 1938 में ये **महात्मा गांधी** के सान्निध्य में अध्यापकीय कार्य के लिये **वर्धा** बुलाये गये। वहाँ आप गांधी जी द्वारा संस्थापित विद्या मन्दिर ट्रेनिंग स्कूल के अध्यापक नियुक्त हुये। सन् 1940 तक इनका अध्यापन कार्य उत्तमगति से सम्पन्न हुआ। वहाँ **पं॰ जवाहर लाल नेहरू** ने अध्यापन कार्य के लिये उनकी प्रशंसा की।

श्री वर्मा जी ने सन् 1940 से 42 तक रायपुर जिले मे **बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा** के प्रसार के लिये संचालक के पद पर कार्य किया। 10 अगस्त् 1942 के **''अंग्रेजों भारत छोड़ो''** आन्दोलन में भाग लेने के कारण अप्रैल 1943 तक कारावास की सजा काटी। 9 अगस्त 1943 को आप पुनः गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये। कारावास से मुक्ति के बाद परिवार के पालन–पोषण हेतु **"श्रीराम स्टोर्स"**, सत्ती बाजार, रायपुर में पुस्तकों की दुकान खोल ली, साथ में कूर्मि क्षत्रिय समाज की सेवा में भी समर्पित भाव से लग गये। सन् 1946 में डा॰ खूब चन्द वघेल जी की अध्यक्षता में **''छत्तीसगढ़ कूर्मि क्षत्रिय समाज''** की स्थापना की। वर्मा जी उसके मंत्री बनाये गये।

मध्य प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय समाज ने बहुत कार्य किया। रायपुर में **'कूर्मि क्षत्रिय छात्रावास'** के निर्माण में प्रमुख भूमिका अदा की। सन् 1971 में पटना में **अ॰ भा॰ कू॰ क्ष॰ महासभा** के **कोषाध्यक्ष** चुने गये और सन 1979 के दिल्ली महाधिवेशन में **महासभा के उपाध्यक्ष** निर्वाचित हुये। सन 1980 के झालदा (जिला पुरूलिया, पं॰ बंगाल) अधिवेशन में अध्यक्ष मनोनीत किये गये। सन 1981 के रायपुर और सन 1983 के बम्बई अधिवेशनों में वे **अध्यक्ष** रहे। वर्तमान में वे महासभा के माननीय संरक्षक हैं। इस उम्र में भी उनका स्वास्थ्य उत्तम है और ये बड़े सक्रिय हैं।

मध्य भारत की महान कूर्मि क्षत्रिय विभूतियाँ

महाकवि कपिल नाथ कश्यप

छत्तीसगढ़ी भाषा के महाकवि, कूर्मि कुल प्रकाश पुज, **स्व॰ कपिल नाथ कश्यप** की 87 वी जयन्ती 6 मार्च सन् 1993 को **पं॰ रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय** रायपुर के कुलपति **डा॰ रामलाल कश्यप** की अध्यक्षता में, रायपुर के सभाभवन **राघवेन्द्र** में सम्पन्न हुई। **श्रीमती कैलाश बाई कश्यप** ने अपने पति **महाकवि कपिलनाथ कश्यप** के चित्र पर माल्यार्पण किया।

''छत्तीस गढ़ी के महाकवि कपिल नाथ कश्यप'' शीर्षक से उनके पुत्र **श्री गणेश प्रसाद कश्यप** द्वारा लिखित अपने पूज्य पिताजी का जीवनवृत्त **''कूर्मि क्षत्रिय जागरण''** के जनवरी 1993 अंक में प्रकाशित किया गया है। उससे ही कुछ अंश, पाठकों के सूचनार्थ, उक्त पत्रिका एवं दोनो का आभार प्रकट करते हुये, नीचे उदधृत किया जा रहा है :–

"घटना को घटे 60 वर्ष से भी अधिक हो गये। एक आकर्षक से दिखने वाले छत्तीस गढ़ी ग्रामीण छात्र ने इलाहाबाद

विश्वविद्यालय में बी. ए. के अध्ययन के लिये प्रवेश लिया। पूर्व में संस्कृत विषय न होने के कारण छात्र ने हिन्दी विषय का चयन किया । **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने कहा– **''हिन्दी को सरल समझकर ग्रहण न करो।''** छात्र ने हिन्दी के प्रति अपने विशेष आकर्षण का कारण बताया और बाद में अपनी प्रतिभा से उसे सिद्ध कर दिखाया। उसके आचार्यों में **पं. रामचन्द्र शुक्ल** के सिवाय **डा. धीरेन्द्र वर्मा** और **डा. राम कुमार वर्मा** भी थे। डा. धीरेन्द्र वर्मा भाषा विज्ञान पढ़ाते थे। एक दिन कक्षा में अवधी, ब्रज, बुन्देली, बघेली, भोजपुरी और छत्तीस गढ़ी आदि भाषाओं का वे उदाहरण दे रहे थे। छत्तीस गढ़ी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुये जब उन्होंने कहा कि – **''एक ब्राम्हन मन हाटले''** तब इस छात्र, ने कहा कि छत्तीसगढ़ी में **''ब्राम्हन हर''** होगा। कारण ''मन'' बहुवचन बोधक है।''

''किसे मालूम था कि यही छात्र **कपिल नाथ कश्यप** आगे चलकर छत्तीसगढ़ी का **''महाकवि''** होगा। कश्यप जी का जन्म बिलासपुर जिले के अन्तर्गत ग्राम पोना में एक सामान्य कुर्मी –कृषक परिवार में 6 मार्च 1906 को हुआ था। राजस्व विभाग के अन्तर्गत उन्होंने पटवारी के पद से नौकरी प्रारम्भ की और सहायक अधीक्षक भू–अभिलेखक पद से सेवा निवृत्त हुये। यह उन्होंने अपने तथा अपने परिवार के भरण–पोषण के लिये किया। **स्वान्तः सुखाय** वे काव्य रचना करते रहे। दुनियादारी से निर्लिप्त रहते हुये **महाकाव्य** और **प्रबन्ध काव्य** की पाण्डुलिपियों के ढ़ेर लगा गये। जीवन के अन्तिम क्षणों तक वे लिखते ही रहे और 2 मार्च 1985 को जन्मस्थली ग्राम पौना में ही गोलोकवासी हुये।''

''कश्यप जी महान थे और उन्होंने छत्तीसगढ़ के हिन्दी और विशेषतया छत्तीसगढ़ी साहित्य को समृद्ध करके महत योगदान दिया। वे धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। **राम** और **कृष्ण** उनके **आराध्य** थे और रचनाकारों के पोषक **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** इनके आचार्य थे। उनके आराध्य देव ही इनके कवि कर्म के मूलाधार थे जो इनकी अधोलिखित रचनाओं से स्पष्ट प्रतीत होता है'' :–

छत्तीस गढ़ी साहित्य :– **अब तो जागो** रे (काव्य संग्रह), **श्री राम कथा** (महाकाव्य), **गजरा** (काव्य संग्रह), **श्री कृष्ण कथा (महाकाव्य), सीता की अग्नि परीक्षा (खण्ड काव्य), डहर के कांटा (कथा संग्रह), हीरा कुमार (कथा संग्रह), अंधियारी रात** (एकांकी), **डहर के फूल** (कथा संग्रह), **नावा विहीन** (एकांकी), **निबन्ध निसेनो** (निबंध संग्रह) एवं **श्रीमद् भगवत गीता** (भाषानुवाद)

हिन्दी साहित्य

वैदेही विछोह, बावरी राधा, युद्ध आमंत्रण, सुलोचना विलाप, सीता की अग्नि परीक्षा, स्वतंत्रता के अमर सेनानी, कंस कारागार, आह्वान (सभी खण्ड काव्य), **पुरुषार्थ प्रेम, पीयूष एवं बिखरे फूल** (काव्य संग्रह), **न्याय, भ्रान्त, श्री राम चन्द्र** एवं **चित्रलेखा।**

महाकवि कपिल नाथ कश्यप जी की उपरोक्त अजर–अमर कृतियों में **तीन छत्तीसगढ़ी** में तथा एक हिन्दी में अब तब प्रकाशित हुई हैं। शेष अप्रकाशित ग्रंथों की पांडुलिपियाँ उनके पुत्र, **श्री गणेश प्रसाद कश्यप** के पास सुरक्षित हैं। जो विद्वान हिन्दी के शोध कार्य का निदेशन करते हैं, ऐसे व्यक्तियों का ध्यान इस बहुमूल्य आँचलिक साहित्य रूपी खजाने की ओर अवश्य जाना चाहिये। उस पर कार्य करवाकर **श्री कश्यप जी** की **साहित्य-साधना** का ज्ञान लाभ सभी हिन्दी भाषी एवं छत्तीस गढ़ी बोली प्रेमियों को हो सकेगा और उसके फलस्वरूप कुछ छात्रगण उनकी कृतियों पर शोध –ग्रन्थ लिखकर या इनके साहित्य का मूल्यांकन करके डाक्ट्रेट की उपाधि भी पा सकते हैं।

डा. श्रीमती रजनी पाठक अपने शोध लेख में महाकवि **कपिल नाथ कश्यप** द्वारा प्रयुक्त ग्रन्थों का उल्लेख करते हुये लिखती हैं कि कपिल नाथ का साहित्य छत्तीसगढ़ी भाषा में अद्वितीय है और वह सदैव छत्तीसगढ़ी भाषा की गरिमा से पूरे देश को सुवासित करता रहेगा। महाकवि द्वारा रचित **''अंधियारी रात''** एकांकी के सम्बन्ध में समीक्षात्मक लेख प्रस्तुत किया गया। विद्वानों ने **महाकवि कपिलनाथ कश्यप** द्वारा लिखित आत्मकथा को एक अनूठी कृति बताया है। श्री कश्यप जी द्वारा **श्रीमद् भगवत गीता** का छत्तीसगढ़ी भाषा में भावानुवाद एक मौलिक कृति है। महाकवि के अप्रकाशित ग्रन्थों के प्रकाशन हेतु

योजनावद्ध एवं समयवद्ध कार्यक्रम की आवश्यकता व्यक्त की गई।

डा. विनय पाठक ने प्रचार से परांमुख महाकवि कश्यप के कृतित्व को साहित्य में रेखांकित करके उनके सम्पूर्ण साहित्य पर सार्थक प्रकाश डाला तथा अपने ग्रंथ **''कपिल नाथ कश्यप : व्यक्तित्व-कृतित्व''** के माध्यम से सराहनीय कार्य किया है और छत्तीसगढ़ी भाषा का मानवर्धन किया है। इस प्रकार **'महाकवि कपिलनाथ कश्यप जयन्ती समारोह समिति'** द्वारा आयोजित महाकवि कपिलनाथ जी की 87 वीं जयन्ती बडे उल्लासपूर्ण तथा गरिमामय ढ़ंग से सम्पन्न हुई।

छत्तीसगढ़ी भाषा एवं ललित कलाएँ

छत्तीसगढ़ अंचल में **कुर्मी जाति का इतिहास** तीन या चार सौ वर्ष पुराना है। उस क्षेत्र में कहा जाता है कि कुर्मी लोग 17 वीं सदी में मुख्यतः उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्तों से आकर बसे थे। उन्हें अच्छे कृषक होने के कारण तत्कालीन सत्ताधीशों ने विशेष सुविधायें देकर बुलाकर बसाया था।

वे छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश के सात जिलों, **राजनंदगाँव, रायपुर, बिलासपुर, सरगुजा तथा बस्तर** एवं तीन संभागों **रायपुर, बिलासपुर** तथा **बस्तर** में बसे हैं। उत्तर तथा दक्षिण में रीवा सम्भाग, उत्तर–पूर्व में उड़ीसा–बिहार, दक्षिण में आन्ध्रप्रदेश और पश्चिम में महाराष्ट्र इसका भौगोलिक सीमांकन निश्चित करते हैं।

झारखंड के कुड़मियों को नाज है कि उनकी अपनी बोली **'कुरमाली'** की गणना उसके देश की मान्यता प्राप्त भाषाओं में की जाती हैं। इस भाषा में लिखी पुस्तकें बिहार के विश्वविद्यालयों के कई पाठ्यक्रमों में सम्मिलित हैं और इन पर भाषा सम्बन्धी कई शोध प्रबन्ध भी लिखे जा चुके हैं और शोध कर्ताओं को डाक्ट्रेट उपाधियां भी प्राप्त हो चुकी हैं; उसी तरह छत्तीसगढ़ वासी कुरमियों को इस बात का नाज है कि छत्तीस गढ़ी भाषा के गद्य, पद्य, नाटक आदि में इनकी अपनी जाति के बड़े ख्याति प्राप्त साहित्यकार हुये हैं।

स्व. **डा. खूबचन्द वघेल,** पूर्व सांसद, विधायक छत्तीसगढ़ी भाषा के प्रतिष्ठित साहित्यकार, नाटककार तथा अन्याय विधाओं के सृजन कर्ता हुए हैं। छत्तीसगढ़ के **महाकवि कपिल नाथ कश्यप जी** ने, जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है, हिन्दी के लोक–साहित्य क्षेत्र में अपना उच्च एवं विशिष्ट स्थान बना लिया है। छत्तीसगढ़ की पीड़ा को, साहित्य के माध्यम से, व्यक्त करने में **स्व. महाकवि कपिल नाथ कश्यप** एवं **डा. नरेन्द्र देव वर्मा** के नाम उल्लेखनीय है। **जोगेश्वर वर्मा** ने **"छत्तीसगढ़ सेवक"** पत्रिका के माध्यम से छत्तीसगढ़ की सेवा की हैं। **सुशील वर्मा** ने **"मयारू माटी"** निकालकर छत्तीसगढ़ भाषा साहित्य को संवर्धित किया है। **टिकेन्द्र नाथ टिकरिहा** एवं **टीका राम वर्मा** ने विशुद्ध छत्तीसगढ़ी में नाटक लिखे। **परदेशी राम वर्मा** के कथन–साहित्य ने छत्तीसगढ़ परिवेश को ऊँचाई दी।

कुमारी ममता चन्द्राकर एवं **कुमारी ऋतु वर्मा** ने **पंडवानी गायन** द्वारा लोक–जीवन को समृद्ध किया है और सर्वत्र ख्याति अर्जित की है। दूरदर्शन पर उनके कार्यक्रम कई बार प्रस्तुत किये गये है। **मनु नायक** एवं **डोभार सिंह वर्मा** ने फिल्म भी बनायी है। इन सब साहित्यक, कलात्मक विधाओं में छत्तीसगढ़ के कुरमियों ने बड़ा प्रशंसनीय एवं सम्माननीय स्थान बना लिया है। अनेक कुरमी जनसाहित्य अर्चना में लगे हुये हैं और निकट भविष्य में प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर वे अपनी पहचान एवं हस्ताक्षर स्थापित करनै वाले हैं।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र की भाषा छत्तीसगढ़ी कहलाती है, यह सरस, प्रवाहमयी और लचीली होने के कारण ब्रजभाषा की तरह मधुर है। इसे पूर्वी हिन्दी की उपभाषा भी कहते हैं। यह 85 प्रतिशत जनता द्वारा बोली जाती है। कुरमियों को गौरव प्रदान करने वाला छत्तीसगढ़ी का प्रथम व्याकरण उनके ही एक विद्वान **श्री हीरा लाल काव्योपाध्याय** नामक व्यक्ति ने रचा था, जिसका अनुवाद प्रसिद्ध अंग्रेज लोकभाषा शास्त्री **डॉ. जी. ए. ग्रियर्सन** द्वारा किया गया था।

छत्तीसगढ़ के कुरमियों में कबीर पंथ तथा सतनाम पंथ के अनुयायियों की भारी संख्या है। इसके अलावा स्वजातीय जनों की भारी संख्या सनातन धर्म, आर्य समाज तथा गायत्री परिवार और प्रज्ञा मिशन से सम्बंधित है।

रविशंकर विश्वविद्यालय, विलासपुर (म॰ प्र॰) के कुलपति डा॰ रामलाल कश्यप

डा॰ रामलाल कश्यप का 1933 के प्रारम्भ में **रविशंकर विश्वविद्यालय** के कुलपति के पद पर नियुक्ति का समाचार न केवल मध्य प्रदेश के कूर्मि क्षत्रीय समाज के लिये वरन सारे देश के कुरमियों के लिये सुखद और प्रेरक है। **डा॰ कश्यप बिलासपुर कूर्मि क्षत्रिय समाज के अध्यक्ष** रह चुके हैं। डा॰ कश्यप को कृषि विज्ञान के क्षेत्र में अनेक अन्वेषणात्मक उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं, और कृषि विज्ञान के शोध कार्य संचालन में तथा अध्यापन में उन्होंने बड़ी ख्याति अर्जित की हैं। **कूर्मि जाति आदि काल से कृषि व्यवसाय से जुड़ी रही है और इस जाति ने कृषि विज्ञान की समृद्धि में अनेक अन्तराष्ट्रीय ख्याति के कृषि वैज्ञानिक** दिये हैं। **काशी विश्व विद्यालय के प्रो. संत सिंह** और **आस्ट्रेलिया** में उनके पुत्र **डा. रवि प्रकाश सिंह (वैज्ञानिक Cimmyat), डा॰ राम सी॰ चौधरी इण्टरनेशनल राइस रिसर्व इंसटीट्यूट (कम्बोडिया प्रोजेक्ट), पूसा इंस्टीट्यूट में डा॰ आर॰ पी॰ सिंह, डा॰ आर॰ एन॰ कटियार तथा मध्य प्रदेश के डा॰ रामलाल कश्यप आदि अनेक उच्चकोटि के कृषि वैज्ञानिक इस जाति में जन्मे हैं।**

कूर्मिवंश की अमूल्य रत्न, कु॰ ऋतु वर्मा-एक प्रसिद्ध पंडवानी गायिका

पंडवानी गायन, की **छत्तीसगढ़ी** कला समवेत स्वरों में प्रस्तुत की जाती है। यह महाभारत की घटनाओं से सम्बंधित होती है और गायन वादन और अभिनय के साथ प्रस्तुत की जाती हैं। गायक अपने हाथ में एकतारा लेकर गायन आरम्भ करता है और शेष गायक और वादक उसमें संगत देते हैं। छत्तीसगढ़ क्षेत्र की भिलाई स्टील फैक्टरी में दिहाड़ी पर काम करने वाली कर्मकार **तीजन बाई** ने भी पंडवानी के गायन में अमिट छाप छोड़ी है। **राष्ट्रपति जी** ने इस विधा की पारंगत कलाकार होने के नाते उन्हें कुछ वर्ष पूर्व **"पद्मश्री"** अलंकरण से सम्मानित किया था।

यह **कूर्मि जाति** का सौभाग्य है कि उसमें जन्म लेकर मात्र 16 वर्ष की अल्प–आयु में **कुमारी ऋतु वर्मा,** जोकि प्रकृति की अद्‌भुत देन मानी जाती हैं, छत्तीसगढ़ अंचल के एक छोटे से गाँव में **श्री लखन लाल वर्मा** के घर जन्म लेकर, **पंड़वानी गायन विद्या** के पारंगत गुरु, **श्री वसंत राम नायक** की शिष्या बनकर कठोर अभ्यास कर, आज पंडवानी जैसे लोक गायन के माध्यम से भारतीय संस्कृति की इस विधा को देश–विदेश में लोकप्रिय बनाकर छत्तीसगढ़ आँचल या कूर्मि क्षत्रिय समाज का ही नहीं वरन् सारे राष्ट्र के मान–सम्मान की पताका-अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर फहरा रही है। **मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् तथा पंडवानी गायन शैली के गुरु श्री वंसत राम नायक ने इस बालिका को खोजने, तराशने, निखारने के पश्चात् राष्ट्रीय-अन्र्तराष्ट्रीय स्तर की प्रतिभा बनाने में किये गये परिश्रम तथा सहयोग के लिये साधुवाद के पात्र हैं।**

कुमारी ऋतु वर्मा ने इस पंडवानी शैली में अपनी साधना से चार चाँद लगाये हैं और अपने अभिनय कौशल से, क्षमता की चपलता से उस ऊँचाई तक पहुँचाने में लगी है जिस को पद्मश्री तीजनबाई ने प्रथम बार खूब साधा, तथा पंड़वानी की वेदमती शैली के लिए **रावन झीपन वाले, मामा-भांजा** से परंम्परा शुरू हुई वह **झाडूराम देवांगन, पुनाराम निषाद, चेतन देवांगन** द्वारा निखार लेती गयी है।

कुमारी ऋतु वर्मा ने इतनी कम उम्र में, **साधना के बल पर, तथा अद्‌भुत कला के दम पर, जो सफलता अर्जित की है छत्तीसगढ़ अंचल और देश के कूर्मि क्षत्रिय समाज में वैसा दूसरा उदाहरण नजर नहीं आता। शहरों और महानगरों से पहले कु॰ वर्मा ने छत्तीसगढ़ के गंवई गांव के मंचो पर पंडवानी कला का अपना कौशल स्थापित किया था।** सरकार ने ऋतु वर्मा को रहने के लिये मकान हेतु जमीन दी है लेकिन **पुरस्कार** अभी तक नहीं मिले हैं। **तीजनबाई** के साथ, उसे भी कई स्थानों पर सम्मानित एवं **पुरस्कारित** किया गया है। **ऋतु वर्मा** को दु:ख है कि उनकी **पंडवानी गायन** की रूचि के विरोध में पुरूष प्रधान समाज, विशेष पर कुर्मी समाज के लोगों ने सैकड़ों रोड़े डाले। यहाँ तक कि ऋतु वर्मा और उनके परिवार का गुपचुप बहिष्कार भी किया परन्तु बाद में जैसे–जैसे उनकी ख्याति फैलती गयी, गाँव एवं समाज का नाम रोशन होने पर ऋतु वर्मा को सम्मानित भी किया गया और हर प्रकार का सहयोग दिया गया। ऋतु

वर्मा अपने गाँव के एक किराना व्यापारी का आभार व्यक्त करती है, जिन्होंने प्रारम्भिक दिनों में उनके गायन को निखारने हेतु उनके पिता जी को समझाया तथा उस अभावपूर्ण पारिवारिक जीवन में आवश्यक मदद भी की। कम उम्र से ऐतिहासिक **महाभारत कथा** के 18 पर्वो को स्वरवद्ध कर **पाण्डवों की वाणी पंडवानी में वेदमती शैली** को एक तारा एवं करताल के साथ गाकर श्रोताओं को मन्त्र–मुग्ध कर देने वाली अन्तर्राष्ट्रीय बाल कलाकार का गायन के क्षेत्र में इतना निपुण हो जाना अपने आप में आश्चर्यजनक हैं। **छतीसगढ़ की इस प्रतिभावान गौरवशाली कुर्मी पुत्री कु॰ ऋतु वर्मा** ने अपनी **बाल** अवस्था में इतनी प्रसिद्धि पा ली है कि विदेशों में भी लोग इसकी वाणी के दीवाने हो गये हैं। ऋतु वर्मा का जन्म 10 अगस्त् 1978 को हुआ था। परिवार में एक बड़ी बहन एवं एक भाई के बाद ऋतु वर्मा अपने पिता **श्री लखनलाल वर्मा** की सबसे छोटी लड़की है। **ऋतु वर्मा** ने अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त **कपाली शैली** की गायिका **तीजनबाई,** (पत्नी **श्रीतुलसी राम देशमुख) के साथ मध्य प्रदेश लोक कला परिषद** के द्वारा आयोजित कई कार्यक्रमों में भाग लिया हैं। **तीजन बाई** और इस बाल कलाकार में माँ–बेटी का स्नेह एक दूसरे के प्रति स्पष्ट झलकता है। **ऋतु वर्मा, तीजन बाई** को जहाँ एक ओर माँ–तुल्य समझती है वही दूसरी ओर **तीजन का ऋतु** के प्रति पुत्री प्रेम जग जाहिर है।

34वें अधिवेशन रायपुर (म॰ प्र॰) में पारित प्रस्ताव

(इनका मूल्यांकन आवश्यक हैं)

प्रस्ताव संख्या 1

क्षेत्र, जनपद एवं प्रान्त स्तर पर कूर्मि क्षत्रिय सभा की कार्य कारिणी समिति का गठन महासभा की नियमावली के अनुसार किया जावे। सभी स्तरों की इकाइयों को केन्द्रीय महासभा से सम्बद्ध माना जावे।

34 वाँ भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा अधिवेशन इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार करता है

समर्थक– प्रस्तावक–

किंकर महतो, पं॰ बंगाल वंशीधर नायक

प्रस्ताव संख्या 2

अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय जाति को, संगठित करने के लिये अन्तर्उपजातीय विवाह को हम क्रियाशील बनायें।

महासभा का 34 वाँ अधिवेशन इसकी स्वीकृति करता है।

समर्थक– प्रस्तावक

श्रीमती सत्यभाभा आडिल भगवती प्रसाद चन्द्रवंशी

प्रस्ताव संख्या 3

अखिल भारतीय कूर्मि महासभा में क्षत्रिय शब्द जोड़ा जाय एवं नाम को पूर्ववत् किया जाये ''अधिवेशन इस प्रस्ताव को बहुमत से स्वीकृत करता है

समर्थक– प्रस्तावक

ज्ञान राम बन्छोर दिनेश चन्द्र वघेल

प्रस्ताव संख्या 4

सरदार पटेल राष्ट्रीय नेता हुये हैं। उनका जन्म पाटीदार किसान परिवार में हुआ था। उन्होंने भारत के प्रथम उपप्रधान मंत्री पद को सुशोभित किया। अतः उनको उचित सम्मान देने के लिए उनका जन्म दिन 31 अक्टूबर को प्रति वर्ष किसान दिवस के रूप में समाज एवं शासन के स्तर पर मनाया जावे और राष्ट्रीय स्तर पर शासन अवकाश घोषित करे तथा उनका चित्र हर सरकारी कार्यालय में लगाया जावे।

34 वाँ अधिवेशन इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकृति प्रदान करता है।

समर्थक — प्रस्तावक

देव नारायण वर्मा, इटावा — राजेन्द्र कुमार

संयुक्त मंत्री अ॰ भा॰ कू॰ क्ष॰ महासभा — सम्पादकः– कूर्मि क्षत्रिय जागरण

प्रस्ताव संख्या 5

लम्बे समय से इस बात की अत्यधिक आवश्यकता महसूस की जा रही है कि अपना कोई एक ऐसा प्रतीक हो जिससे हम स्वजाति बन्धु सरलता से एक दूसरे को पहचान सकें इस हेतु आपको सेवा में यह परिचय चिह्न प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस प्रतीक का आशय इस प्रकार है– **प्रस्तुत तलवारें और गेहूं की बालियां इस बात की प्रतीक है कि हम रक्षा और पोषण दोनों में सक्षम है। तलवार हमारे जातीय शौर्य और गेहूँ की बालियां हमारे कृषक होने को प्रदर्शित करती हैं और बीच की ज्योति मानव जीवन का प्रतीक है। सम्पूर्ण आशय है कि हमारी शक्ति तथा पोषण सम्पन्न दोनों भुजायें मानव जीवन की सुरक्षा और पोषण में सतत प्रयत्नशील हैं। हम इस मानव जाति के रक्षक और पालक दोनों हैं।**

34 वाँ महाधिवेशन सर्वसम्मति से इसे स्वीकृति प्रदान करता है

समर्थकः — प्रस्तावः

मनहर आडिल म॰ प्र॰ — सम्पादक, कूर्मि क्षत्रिय जागरण

नियमावली का रजिस्ट्रेशन

श्री ध्रुव नारायण सिंह अपनी लघु पुस्तक **''महासभा के बदलते नाम''** प्रथम सरकरण, मई 1984, **सत्य प्रकाशन 35/306 नौबस्ता, आगरा**– 282002 के पृष्ठ 18 पर 19 पर लिखते हैं–

"हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) में 25 दिसम्बर 1982 को अध्यक्ष श्री धनीराम वर्मा की अध्यक्षता में हुई बैठक में महासभा की कार्य समिति में **'अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** की नियमावली में संशोधन सर्वसम्मति से पारित हुआ। श्री राधवराम सिंह तथा श्री मुखनाथ राही को अधिकृत किया गया कि वे संशोधित नियमावली का रजिस्ट्रेशन करायें।"

(मासिक 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' कन्नौज, अक्टूबर नवम्बर 1982, पृष्ठ 14)

जिलुण्डि, भजनगर, जिला गंजाम (उड़ीसा) में 26 दिसम्बर 1982 को अध्यक्ष, **श्री धनीराम वर्मा** की अध्यक्षताग्में हुई बैठक में महासभा की कार्य–समिति की कार्यवाही निम्न लिखित है–

"संशोधित महासभा की नियमावली का रजिस्ट्रेशन कराने के लिये दो सदस्यों को अधिकृत किया गया था। परन्तु न तो वे इस बैठक में सम्मिलित हुए और न इस सम्बन्ध में कोई प्रतिवेदन ही प्रस्तुत किया। अतः अगली बैठक तक उनको समय दिया गया कि वे अवश्य उस समय तक रजिस्ट्रेशन करवा लें।" (मासिक 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण, कन्नौज, दिसम्बर 1982 से

जनवरी 1983 पृष्ठ 6)

महासभा की कार्य समिति की बैठक उज्जैन (मध्य प्रदेश) में 23 अप्रैल 1983 को हुई, जिसमें श्री राघवराव सिंह और श्री मुख नाथ राही मौजूद थे, लेकिन बैठक की कार्यवाही में नियमावली के रजिस्ट्रेशन का कोई जिक्र नहीं था। अतः नियमावली रजिस्टर्ड हुई अथवा नहीं, इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं है। इस प्रकरण से यह स्पष्ट हो गया कि महामंत्री श्री कूर्मि कार्य समिति द्वारा नियमावली में किये गए संशोधन को ही अन्तिम पारण मानते थे और नियम 15 में दी गयी शर्तों का जान बूझकर उल्लघंन करते थे।

स्तीफे और विघटन :– **महामंत्री, श्री श्याम नारायण कूर्मि** ने 24 अगस्त 1983 को महामंत्री पद से स्तीफा दे दिया। **अध्यक्ष श्री धनीराम वर्मा** ने 1 अक्टूबर 1983 को अध्यक्ष–पद से स्तीफा दे दिया और कार्य समिति को भी विघटित कर दिया।

मध्य प्रदेश में पिछड़े वर्ग के लिये आरक्षण आदेश

मध्य प्रदेश राज्य शासन की घोषणा के अनुसार प्रदेश में पिछड़े वर्ग के उम्मीदवारों को शासकीय सेवाओं में 14 प्रतिशत आरक्षण दिये जाने के सम्बन्ध में सामान्य प्रशासन विभाग द्वारा आदेश जारी कर दिये गये हैं। महाजन आयोग की अनुशसा के सन्दर्भ में, ऐसी 82 जातियों की सूची पहले की जारी कर दी गयी है।

गत 20 जनवरी 1994 को जारी आदेश के अनुसार, **पिछड़े वर्ग** के उम्मीदवारों को भी सीधी भरती से नियुक्ति के लिये निर्धारित उच्चतम आयु सीमा, सामान्य उम्मीदवारों की तुलना में पाँच वर्ष अधिक रखी गयी है।

पिछले वर्ग में 82 जातियां शामिल हैं। इसमें कुरमियों की ये उपजातियां निम्न क्रमांक के अन्तर्गत है :–

क्रम संख्या 39 : **कुरमी, कुरमार, कुनबी, पाटीदार, कूर्म वंशी, चन्द्राकर, चन्द्रनाह, कुर्मी गवेल (गमैल), सिरवी।**

क्रम संख्या 76 : **कुड़मी**

पैतीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 35 वाँ अधिवेशन दिनांक 30 सितम्बर, 1 एवं 2 अक्टूबर 1983 को महाराष्ट्र सेवा संघ सभागार, मुलण्ड, बम्बई में श्री धनीराम वर्मा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन के मुख्य अतिथि, श्री नरेन्द्र तिड़के थे तथा महिला सम्मेलन की अध्यक्षा, श्रीमती इन्दुमती त्रिभुवन पटेल, पार्षद बम्बई नगर निगम थी। युवा सम्मेलन , तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार के कृषि मंत्री, श्री नरेन्द्र सिंह की अध्यक्षता में आयोजित किया गया।

बम्बई नगर वासी, **श्री रामचरित्र रामभजन सिंह** [जोकि मूलतः मिरजापुर (उ॰ प्र॰) में जन्मे तथा बम्बई को अपनी कर्म भूमि बनाकर वहाँ तरक्की करते– करते बम्बई नगर निगम में कांग्रेस दल के नेता बने फिर अप्रैल 1993 से महापौर निर्वाचित हुये], प्रसिद्ध उद्योगपति **श्री जगदीश शरन कश्यप, श्री राम जी भाई,** भाभा आणविक संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक **श्री हरीश चन्द्र कटियार,** बम्बई उच्च न्यायालय के एडवोकेट, **श्री नन्दलाल सिंह** आदि अनेक स्वजातीय समाज सेवियों के सतत् प्रयासों और साधारण कार्य कर्ताओं के निस्स्वार्थ तथा अथक परिश्रम से यह अधिवेशन बड़ी धूम–धाम एवं सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ था।

इस अधिवेशन की एक महान उपलब्धि यह भी है यहाँ ध्वज गीत, **''जागो कूर्मि महान्''** की रचना करवा ना है। यह अत्यन्त सटीक तथा प्रेरणा दायक है, और प्रथम् बार यहीं उसका सस्वर सामूहिक गान किया गया था, गीत वह इस प्रकार है :–

ध्वज गीत

"जागो कूर्मि क्षत्रिय महान''

हे कूर्मि क्षत्रिय जाति महान, हे राष्ट्र, धर्म धरती की शान।

हे शौर्य शक्ति के महामान, हे कर्मठ धरती के किसान।।

-जागो कूर्मि क्षत्रिय महान''

रघुवंश सूर्य के ज्योति-पुंज, तुम रणभेरी की महागुंज।

हे वीर शिवा के महावंश, हे लौह के लौह अंश।

हे इतिहासों के महासपूत, हे देश धरा के क्रान्तिदूत।।

-अपनी गौरव -गरिमा को जान

-जागो कूर्मि क्षत्रिय महान

है शस्त्र तुम्हारा सहज धर्म, हल थाम लिया है कृषि कर्म।

युग-युग तक देश की शक्ति बन, तुमने ही दिया जीवन का मर्म।

हे वसुन्धरा के महाक्षत्र, हे इतिहासों के स्वर्ण-पत्र।।

तुम देश-धरा के महाप्राण,

-जागो कूर्मि क्षत्रिय महान

अब जागो हमें करना विकास, त्यागो रूढ़ि सब अन्ध विश्वास।

नवयुग की इस नववेला में, हमको करना स्वजाति विकास।

नवजागृति की अब ले मशाल, जागो जागो हे नौनिहाल।।

आगे बढ़ना है सीना तान,

जागो कूर्मि क्षत्रिय महान

उपर्युक्त गीत कैसा सुन्दर और प्रेरणा जनक है, पर बिहार के एक विद्वान आलोचक, को जो स्वजन भी हैं, **'क्षत्रिय'** शब्द का **'कूर्मि'** के साथ योग वैसे ही भड़काने वाला होता है, जैसे स्पेन के प्रसिद्ध सांड़–क्रीड़ा में मेटाडोर (Matador) के हाथ का लाल कपड़ा देखकर सांड़ उत्तेजित हो उठता है। इन महानुभाव ने एक पत्रिका में उपर्युक्त गीत के बारे में,अपने विचार इन शब्दों में प्रकट किये हैं–**"ऐसी भावना का ज्वार विगत 80 के दशक में बम्बई में आयोजित अ. भा. कू. क्ष. महासभा के मंच से फूट पड़ा था, जब "जग में कूर्मि क्षत्रिय जाति महान" का वंदना-गीत गाया गया।** बड़ा अच्छा होता कि यदि यह गीत ठीक नहीं है तो अन्य बेहतर गीत सुझाया जाता। इतिहास बताता है कि 'वन्दे मातरम' के विरोधियों ने भी उस गीत के विरोध के साथ–साथ **कवीन्द्र रवीन्द्र टैगार** के मूल गीत में कुछ फेर–बदलकर **"जन मन गण अधिनायक"** गीत को राष्ट्रीय गीत बनवा दिया। आलोचना सहज है और सृजनकार्य कठिन, शायद इसीलिये दुनिया में सृजनकारों के स्मारक, प्रतिमायें आदि लोगों ने अनेक स्थलों पर स्थापित किये किन्तु महज आलोचकों का स्मारक या प्रतिमा विरले ही कहीं दिखाई पड़े।

अध्यक्ष श्री धनीराम जी वर्मा ने, अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रतिनिधियों और अधिवेशन में उपस्थित हजारों दर्शकों को बताया कि दस करोड़ से ज्यादा जनसंख्या वाली **कूर्मि क्षत्रिय जाति** की महासभा के पास अर्थ का अत्यन्त अभाव है। महासभा की एक मात्र मासिक पत्रिका, **"कूर्मि क्षत्रिय जागरण"** की अवस्था भी धनाभाव के कारण डाँवा-डोल रहती है और पत्रिका के अँक पूरे या समय पर नहीं निकल पाते। इस अधिवेशन में **श्री जगदीश शरन कश्यप,** बम्बई वालों ने, **अ.भा.कू.क्ष. महासभा का केन्द्रीय स्थायी कोष** स्थापित करने की योजना प्रस्तुत की। इस अधिवेशन में भी पिछले अधिवेशनों की तरह शाखान्तर विवाह, दहेज-रहित विवाह, शिक्षा–प्रसार, विशेष करके स्त्री–शिक्षा प्रचार–प्रसार, कृषि, तकनीकी, उद्योग–स्थापना, राजनीति में अधिकाधिक योगदान आदि मुद्दों पर विभिन्न प्रस्तावकों ने प्रस्ताव रखे, उन पर आवश्यक चर्चा भी हुई। बाद में महासभा द्वारा, इनके क्रियान्वयन के लिये स्वीकृति प्रदान कर दी गई।

अधिवेशन का समापन–अभिभाषण **माननीय श्री वसन्त दादा पाटिल**–तत्कालीन **मुख्यमंत्री, महाराष्ट्र** द्वारा हुआ, जिसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि –– ***"भारत के समस्त कुर्मी एक हैं, अन्तर केवल उपनाम अथवा आस्पद का है। खेती हम सबका प्राचीन काल से चला आया धन्धा है। मैंने खुद अपने हाथ से हल चलाया हैं। कृषि तो श्रेष्ठ धन्धा है। हमको एक दूसरे से परिचय स्थापित करना चाहिये, आम जनता की बात दूर हम राजनेता लोग भी एक दूसरे को नहीं पहचानते, कि हम सब कूर्मि हैं।***

माननीय मुख्यमंत्री जी ने **बम्बई कूर्मि क्षत्रिय समाज** की माँग को स्वीकार करते हुये घोषणा की तथा कूर्मि क्षत्रिय समाज के सभासदों से पूछा कि वे उन्हें बतायें कि बम्बई शहर के किस इलाके में उन्हें भूमि चाहिये, वे उसको रियायती दाम पर या बहुत सस्ते दर के पट्टे पर आवंटित करवा देंगे। बाद में यह पता नहीं चल पाया कि **कूर्मि क्षत्रिय समाज,बम्बई** के पदाधिकारियों ने बाद में **माननीय श्री वसंत दादा पाटील** के **मुख्य मन्त्रित्व काल** में उनसे मिलकर सस्तीदर के पट्टे पर समाज के लिये आवश्यक भूमि–खंड का आवंटन, उनके वायदे के अनुसार करा भी पाया या नहीं।

अधिवेशन में भाषणों का कार्यक्रम एवं अन्य औपचारिकतायें पूर्ण हुई और जब विशिष्ट अतिथिगण सभा–स्थल से प्रस्थान कर गये, तब बड़े जोश–खरोश के साथ महासभा की **नयी कार्यकारिणी समिति के गठन और उसके लिये जन सभा के नये अध्यक्ष तथा महामंत्री के चुनाव का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। उसके समर्थन के होते ही चुनाव प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी और जिसके संचालन का भार सभाध्यक्ष पर डाल दिया गया यकायक सभा-स्थल के वातावरण में इधर-उधर एकत्रित प्रतिनिधियों के अलग-अलग गुटों में अजीब सरगर्मी दृष्टि गोचर होने लगी।** देखते ही देखते अधिवेशन–पंडाल में जो पूर्व अनुशासन

से कार्यक्रम चले थे वह अनुशासन तथा बातचीत में शालीनता और उपस्थित बुजुर्गों की शर्म–लिहाज़, इन सबको नज़रान्दाज़ करके, जो जिसके मन में आया, वह बिना सभापति से बोलने की अनुमति की प्रतीक्षा किये, स्टेज़ पर आया, माईक को काबू किया और अपना मन्तव्य भावी अध्यक्ष और महामन्त्री के नामों के सम्बन्ध में पेश कर दिया। तुरन्त दूसरा व्यक्ति आया और किसी पदाधिकारी विशेष का नाम ले, उसकी बखिया धड़ल्ले से सरे आम उधेड़ने लगा, और निम्नस्तर की छीटाकशी में अपनी महारत का डटकर प्रदर्शन करने लगा। लाचार प्रतिनिधिगण और आमंत्रित आगन्तुकगणों का उन सब के इस वाकय–युद्ध को देख-सुनकर, आश्चर्यचकित रह जाना स्वाभाविक ही था। इसी अधिवेशन में ही नहीं पिछले कई अधिवेशनों में यही शोर–गुल हँगामा मचाकर कुछ लोग मनमाने ढ़ंग से अपने चहेतों को अध्यक्ष और महामंत्री बनवाकर पूरी कार्यकारिणी पर अपना वर्चस्य स्थापित कर लेते हैं। यही बम्बई अधिवेशन में हुआ। ये मुख्यतः वे लोग हैं जोकि रोजमर्रा राजनीतिज्ञों के इर्द–गिर्द चक्कर लगाते हैं, और इस सान्निध्य का वे तरह तरह से लाभ उठाते हैं। इसके लिये वे महासभा पर अपना वर्चस्य सही–गलत तरीकों से जमाये रखते हैं। महासभा की नियमावली का इन्हें लेशमात्र भी न आदर है और न उसका पालन करते हैं। कुरमियों के युवा बुद्धिजीवी इस नौटंकी को मूक दर्शक की तरह प्रत्येक महासभा में चुनाव के दौर देखते रह जाते हैं। आगे उन्हें अपना दायित्व निभाते हुये इस गलत परम्परा पर अंकुश लगाकर स्वस्थ परंपरा स्थापित करनी पड़ेगी।

अगर जो लोग वास्तव में महासभा के शुभचिन्तक हैं और चाहतें है कि महासभा सशक्त बने, जिससे समाज के हर वर्ग के लोग, शिक्षित, कम–शिक्षित, सम्पन्न–गरीब, पैसे वाले और बुद्धिजीवी सभी प्यार और स्नेह के बन्धन में बंध कर इससे क्षेत्रीय, नगरीय, प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर जुड़ सकें उन्हें गम्भीरता से इस समस्या पर विचार कर आवश्यक कदम उठाने पड़ेंगे। बुद्धिजीवी क्यों महासभा से ज्यादा संख्या में जुड़ नहीं पाता? क्योंकि जिस प्रकार आज की राजनीति में अवाँछनीय तत्वों तथा अर्थ पिशाचों का बोलवाला होता जा रहा है, वैसे तत्व ही महासभा पर वर्चस्व स्थापित करने के लिये अपने हथकंड़े अपनाते हैं। और उस पर छा जाते है। बुद्धिजीवी स्वाभाविक है उनसे दूर रहकर ही अपने मान–स्वाभिमान को सुरक्षित रख सकेगा। राजनीति पर अपराधी वर्ग का वर्चस्य काफी बढ़ गया हैं, सामाजिक संस्थायें यदि ठीक प्रकार से चलना चाहती हैं तो उनसे अपने को बचाकर रखें।

गत् 34वें अधिवेशन में प्रस्ताव संख्या–1 का विवरण जो उड़ीसा के **श्री वंशीधर नायक** ने रखा था, पीछे दिया हुआ है, जिसे महासभा ने सर्वसम्मति से स्वीकृत किया था। इसके अनुसार क्षेत्र, जनपद एवं प्रान्त स्तर पर कूर्मि क्षत्रिय सभा की **कार्यकारिणी समितियों** का गठन महासभा की नियमावली के अनुसार किया जावे। कितनी बड़ी विडम्बना है कि महासभा के पदाधिकारियों के चुनाव में नियमावली और विधान का पालन नहीं किया जाता है और इकाइयों से उसकी अपेक्षा की जाती है। यहाँ तक कि तदर्थ कमेटियों को महासभा के नियमों के विरुद्ध कार्य करते देखा गया है, जबकि तदर्थ समिति के अधिकार बहुत सीमिति होते हैं। सबसे विचित्र बात तो महासभा के सैंतीसवे अधिवेशन, जो 16 और 17 मार्च 1991 में पटना में आयोजित हुआ था, में घटी। तब जनसभा से अध्यक्ष और महामंत्री के नामों का अनुमोदन न हो सका। बाद में जो कार्यकारिणी समिति कुछ लोगों ने हरिद्वार में एकत्रित हो बना ली थी तथा पूर्णतः तदर्थ थी वही पूरे तीन वर्ष तक अनियमित रूप में चलती रही है। ये कारण ही महासभा को अनेक प्रकार से कमजोर बनाये रखते हैं। अधिवेशन में जो भी प्रस्ताव पारित हों उनका आगे के अधिवेशनों में मूल्यांकन होना अति आवश्यक है कि उनका कितना कार्यान्वयन हुआ है, और जिसका नहीं हो सका है उस अवरोध को दूर कर उसका भी क्रियान्वयन शीघ्र कराया जावे।

अगर निष्पक्ष रूप से इस बिगड़ी अवस्था पर विचार करें तब पायेंगे कि कुछ लोग योजनवद्ध रूप से दलबल सहित महासभा के अधिवेशनों में भाग लेते हैं; मात्र इस उद्देश्य से कि महासभा की कार्यकारिणी में कौन–कौन से पद उन्हें अपने लिये तथा अपने गुट वालों के लिये हथियाने हैं। **इधर के कुछ अधिवेशनों में पदाधिकारियों के चयन के लिये तथा कार्यकारिणी समिति के गठन हेतु महासभा की नियमावली और विधान में चुनाव-सम्बन्धी प्रावधानों की सरासर अवहेलना स्पष्ट देखी गयी है। यदि विधान या नियमावली में कोई वास्तविक त्रुटि है, जो उसका विधिवत् संशोधन हो जाना चाहिये न कि उसकी अवहेलना कर गुटबाजी और हंगामा करके अर्थ पिशाचों की मदद से अवैधानिक तरीकों से महासभा के शीर्षस्थ पदों को हथिया**

लिया जाना चाहिये। यदि महासभा का अखिल भारतीय रूप बनाये रखना है तो भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अधिवेशन आयोजित किये जाने चाहिये और विभिन्न क्षेत्रों की कूर्मि समाज की सामाजिक विभूतियों को भी उतनी ही महत्ता दी जानी चाहिये जितनी राज-नेताओं को दी जाती है, आजकल के विधानसभा तथा लोकसभा के चुनावों में बूथ–लूटने की घटनायें आम बनती जा रही है। महासभा के सब शुभचिन्तकों को अधिवेशन के दौरान मूक दर्शक न होकर, संगठित होकर ऐसा प्रयास करना चाहिये कि महासभा के चुनाव में इस प्रकार की कोई अनियमित, अनैतिक तथा अवैधानिक गतिविधि अपनाकर गलत लोग पदासीन न हो सकें। कूर्मि समाज की युवा–शक्ति और नारी शक्ति को आगे आकर महासभा के कार्य–कलापों में अपनी भागीदारी प्राप्त करनी चाहिए, जिससे माहौल काफी सुधरेगा।

स्व. ध्रुव नारायण सिंह वर्मा, पूर्व सदस्य, विधान परिषद (उ.प्र.) ने अपनी पुस्तक **'महासभा का संगठन', प्रकाशक सत्य प्रकाशन,** 35/38 नौबरता आगरा–282002, के पृष्ठ 34 पर बम्बई अधिवेशन के सम्बन्ध में चश्म दीद गवाह के रूप में यों वर्णन किया है:—

"खुले अधधिवेशन में चुनाव--चखचख"

"खुले अधिवेशन में विघटित कार्यसमिति का निश्चय सुनाया गया और महासभा के अध्यक्ष–पद के लिये **श्री धनीराम वर्मा** का नाम प्रस्तावित किया गया, लेकिन इस निश्चय के दो हस्ताक्षरकर्ता, **श्री रामजी सिंह** और **डा. देशराज कटियार** मुकर गए और **श्री वर्मा** के मुकाबले में उम्मीदवार बन बैठे। **श्री वर्मा** ने **श्री सिंह** के पक्ष में अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली। **डॉ. कटियार** को बैठाने के पुरजोर प्रयास हुए, लेकिन वह अड़े रहे। अन्त में **श्री सिंह** ने अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली और **डॉ. कटियार** निर्विरोध महासभा के अध्यक्ष चुने गये। महामंत्री–पद के उम्मीदवार **डॉ. बलिराम सिंह** वाराणसी से 75 लोगों का जत्था बनाकर बम्बई पहुँचे थे। यह जत्था प्रतिनिधियों में उनका निरन्तर प्रचार कर रहा था। अतः इस माहौल में उनके मुकाबले आने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। इस तरह **डॉ. बलिराम सिंह** निर्विरोध महासभा के महामंत्री चुने गये।"

बम्बई अधिवेशन में इन्ही सब खराब बातों ने सिर उठाया। वहाँ चुनाव–प्रक्रिया के सम्बन्ध में काफी तर्क–वितर्क तथा शोर–गुल के पश्चात् डॉ. देशराज कटियार (फर्रूखाबाद – उ. प्र.) अध्यक्ष और डॉ. बलिराम सिंह (वाराणसी) महामंत्री चुने गये। उन दोनों ने फिर कार्यकारिणी समिति का गठन कर लिया। **अगले तीन वर्षों में शायद ही किसी बैठक में अध्यक्ष डा. देशराज कटियार आये हों, फिर उन्हें चार वर्ष बाद सारनाथ (वाराणसी) में फरवरी 1987 में महासभा के 36वें अधिवेशन के बीच देखा गया। उसके बाद वे आज तक महासभा के किसी भी कार्यक्रम में दिखाई नहीं पड़े।** पूर्व अध्यक्ष, डा. देशराज कटियार, मार्च 1994 में कानपुर में होने वाली कार्यकारिणी की बैठक में भाग लेने पहुँचे। समिति ने अनेक वर्ष पूर्व सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित **किया था कि महासभा का इतिहास डा. दिलावर सिंह जयसवार, द्वारा लिखा जाये।** उसको महासभा द्वारा प्रकाशित कराने का जब विचार हो रहा था तब डा. कटियार ने आपत्ति पेश की और महामंत्री भी उनसे सहमत हो गये। इस प्रकार महासभा के इन पदाधिकारियों ने अपने पूर्व पारित प्रस्ताव का विरोध किया।

सन् 1910 ई में प्राप्त **अ.भा. कू. क्ष. महासभा का रजिस्ट्रेशन और रजिस्टर्ड नियमावली** कालातीत हो चुकी थी उसे नये महामंत्री **डा. बलिराम सिंह** ने समयानुकूल बनाकर वाराणसी में पुनर्निबन्धित करवाया। आशा की गई कि अब भविष्य की हरेक कार्रबाई उसके अनुसार सामान्य वातावरण में सम्पन्न की जायेगी। नियमावली की उपयोगिता तभी सिद्ध हो सकेगी।

मराठा और कुनबी (कुरमी)

मराठा शब्द सस्कृत के दो शब्दों 'महा'+'रथ या रथी' महान योद्धा के अर्थ में बना है। महारथी का अपभ्रंश कालान्तर में महारट्ठा, मरहठा, मराट्ठा और मराठा हो गया।

सर डब्ल्यू हंटर के अनुसार, **"मराठे केवल दो व्यवसाय जानते हैं देश पर शासन करना और भूमि पर हल चलाना।** जब वे राज करना छोड़ देते हैं तब कृषकों की स्थिति में आ जाते हैं। इतिहास में मराठों के शासन करने वाले बहुकुलों जैसे

चालुक्य, शिलाहार, कदम्ब, यादव और **चौहान** आदि के वर्णन भरे पड़े हैं।"

महाराष्ट्र के गज़ट, भाग 16 पृष्ठ 436 पर कहा गया है। :—

"महाराष्ट्र देश मरहठों का है, जो वहाँ की जनसंख्या में 30 प्रतिशत हैं। यह नाम (मरहठा) केवल उस प्राचीन युद्धप्रिय परिश्रमी और बलवान समुदाय के वंशजों के लिये सुरक्षित हैं, जिसका भय एक समय सम्पूर्ण भारतवर्ष में व्याप्त था। अब वे अधिक संख्या में कृषक रूप में परिवर्तित होकर कुनबी नाम से प्रसिद्ध हैं। ...... यह सम्भव है कि तेलगू के रेड्डियों के साथ मरहठों का सम्बन्ध हो।"

कोल्हापुर गज़ट के भाग 15 में वर्णन मिलता है:—

"हिन्दू लोगों में मराठे अधिक संख्या में है और कृषक हैं और अपने को कुनबी कहते हैं।"

इम्पेरियल गजेटियरस, नवीन संस्करण में कहा गया है।—

"कूर्मि दक्षिण भारत के आर्य उपनिवेश के संस्थापक हैं। जो अपने पेशों के अनुसार मराठा और कुनबी दोनों कहे जाने लगे। सुप्रसिद्ध वीर अपने को मराठा कहते थे और खेती करने वाले अपने को कुनबी या कुम्बी कहते थे। वस्तुतः वे एक ही जाति के हैं।"

"शिवाजी की सेना मुख्यतया मराठा और कुनबी जातियों के कृषक वर्ग में से संघटित हुई थी। कुनबी **एक सीधी-सादी** साफ दिल, स्वतंत्र, बहादुर और कष्ट सहिष्णु जाति हैं।"

सर यदुनाथ सरकार कृत **"शार्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब"** का हिन्दी अनुवाद **"औरंगजेब**, पृष्ठ 180, **द्वितीय संस्करण** — 1954 **"कुनबी जाति में ऐंठ भरी है। यह कौटुम्बिक** प्रथा सम्पूर्ण भारत में आज भी विद्यमान है। इसलिये उनमें सम्पूर्ण **संगठन का अभाव पाया जाता है। कुछ परवर्ती इतिहासकारों ने उनका सम्बन्ध राजस्थान के राणा वंश से जोड़ना चाहा हैं। किन्तु वह एक जाति विशेष का नायक छीनकर उसे निरतेज़ बना देने का ब्राह्मणवादी ईर्ष्यालु एवं प्रतिक्रियावादी षड़यन्त्र मात्र लगता है। ऐसे इतिहासकारों को शिवाजी की शिक्षा और राज्याभिषेक की समस्या पर ध्यान देना चाहिए।"**

—**"शिवाजी"**—लेखक, **भीम सेन विद्यालकर**, पृष्ठ 1

छत्रपति शिवाजी और मराठा राज्य

क्षत्रिय कुलावतंस छत्रपति शिवाजी महाराज ने **अष्ट प्रधानों** की योजना अपने राज्य कार्य को सुचारू रूप से चलाने हेतु की थी। वे अष्ट प्रधान इस प्रकार थे — **1. पन्त प्रधान, 2. पन्त अमात्य, 3. पन्त सचिव, 4. मन्त्री, 5. सेनापति, 6. सुमन्त, 7. न्यायाधीश, 8. पण्डितराव।** पन्त प्रधान को उर्दू में **'पेशवा'** कहते हैं। पन्त प्रधान मुख्य प्रधान होते थे तथा **छत्रपति** की अनुपस्थिति में मुख्याधिकार प्राप्त होते थे।

न्यायाधीश और **पण्डितराव** युद्ध निपुण नहीं होते थे, शेष सबको अवसर आने पर लड़ाई के लिये तैयार रहना पड़ता था लगभग 1648 में **शिवाजी ने छत्रपति की उपाधि धारण की।**

महत्व के कागज-पत्रों पर **छत्रपति शिवाजी** की जो मोहर लगायी जाती थी, उस पर संस्कृत में उत्कीर्ण रहता:—

'प्रतिपच्चं द्ररेखेव वर्धिष्णुर्विश्व वंदिता।

शहासूनोः शिवस्मैया मुद्रा भद्राय राजते।।

(अर्थात्) **शहा के पुत्र शिव की यह मुहर** (जनता के) **कल्याणकारी कार्य में लगाई जाती है। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान इसकी वृद्धि होगी और सारे संसार में इसका आदर होगा।**

शिवाजी का राज्याभिषेक शनिवार ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी शक 1569 अर्थात् 5 जून 1674 को रायगढ़ किले में बड़े धूम–धाम से विधिवत हुआ और रायगढ़ को ही राजधानी घोषित किया गया। शिवाजी के सिंहासन पर विराजते ही तोपों ने गरज कर सलामी देना प्रारम्भ किया। सारे सुप्त पड़े देश को जगाने के लिये रायगढ़ की इस सलामी को सभी किलों ने अपनी तोपों से दुहराया। शिवाजी की उपाधि **"क्षत्रिय कुलावतंस श्री राजा शिव छत्रपति सिंहासनाधीश्वर** हुई" और राज्याभिषेक के वर्ष से उन्होंने नया शका चलाया। यह राज्याभिषेक संवत्सर उनके बाद भी बहुत वर्ष तक प्रचलित रहा। फारसी और उर्दू के स्थान पर मराठी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करायां।

छत्रपति शिवाजी के दो पुत्र थे। बड़ा पुत्र **सम्भा जी** था। सम्भा जी की माँ का नाम **सईबाई** था। छोटा पुत्र **राजाराम** था। राजाराम की माँ का नाम **सोयराबाई** था। जिस समय रायगढ़ पर शिवाजी का निधन हुआ वह समय सम्भा जी पन्हालगढ़ पर था। सम्भाजी कुछ दरबारियों के व्यवहार से चिढ़ कर एक बार मुगलों से जा मिला था। परिणामतः कुछ मराठा सरदारों ने सम्भा जी के छोटे और सौतेले भाई राजाराम को गद्दी पर बैठाने का षड़यन्त्र किया जो सफल नहीं हुआ, अतः सोयराबाई ने आत्म हत्या कर ली। सम्भा जी ने रायगढ़ की गद्दी पर अधिकार कर लिया तथा विरोधियों को दण्ड देना प्रारम्भ किया।

सन् 1689 में औरगजेब ने सम्भा जी का क्रूर वध करवा दिया। उस समय सम्भा जी का लड़का शाहू नौ वर्ष का था। इसलिये सम्भा जी की पत्नी येसूबाई ने राजाराम को गद्दी पर बैठाया। राजाराम ने राजधानी रायगढ़ से हटाकर सतारा कर दी। सन् 1700 में राजाराम की मृत्यु हो गयी। राजाराम की मृत्यु के बाद राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी सम्भा जी का पुत्र **शाहू** गद्दी पर बैठना चाहिए था, किन्तु वह **औरंगजेब** की कैद में था। इधर **राजाराम** की स्त्री **ताराबाई** अपने दस वर्षीय पुत्र **शिवाजी (द्वितीय)** को गद्दी पर बैठाना चाहती थी उसी को राजा बनाया गया।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र **बादशाह शाह आलम** ने सम्भा जी की पत्नी और पुत्र **शाहू** को कैद से छोड़ दिया। जिससे मराठों में राज्य के लिये संघर्ष उत्पन्न हो गया। **शाहू** नर्मदा नदी पार कर दक्षिण में **सतारा** की ओर चला। अनेक मराठा सरदार **ताराबाई** का पक्ष छोड़कर शाहू के साथ हो गये। **शाहू** की सब प्रकार से सहायता करके उसे विजय दिलाने में प्रमुख भूमिका **बालाजी विश्वनाथ भट्ट** ने अदा की

महारानी ताराबाई और **शाहू महाराज** में सन् 1707 में सतारा की गद्दी के सम्बन्ध में झगड़ा शुरू हुआ, **खेड़** नामक स्थान पर युद्ध भी हुआ और उसमें विजय पाकर सन् 1708 में शाहू सतारा में आकर गद्दी पर बैठे। इसी बीच **महारानी ताराबाई** ने **कोल्हापुर** में स्वतंत्र मराठा गद्दी स्थापित कर नवीन **अष्ट प्रधान** नियुक्त किये। यहीं से **कोल्हापुर** और **सतारा** के **भोंसले** की ओर से **पेशवा** का मनोमालिन्य शुरू हुआ और वह **सतारा** का राज्य नष्ट हो जाने तक रहा। उन दिनों **पेशवा** के शत्रु **कोल्हापुर महाराज** के कृपा पात्र थे और **कोल्हापुर राज्य** के शत्रु से **पेशवा मित्रवत** व्यवहार करते थे। **निजाम, पेशवा** के शत्रु होने के कारण **कोल्हापुर महाराज** के मित्र थे।

शाहू महाराज ने **बालाजी विश्वनाथ भट्ट** की कर्तव्य निष्ठा देखकर उसको सन् 1713 ई. में पेशवा पद प्रदान किया। सन् 1720 में **बालाजी** की मृत्यु हो गयी। **पेशवा बाला जी विश्वनाथ** की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र **बाजीराव** को पेशवा बनाया गया। **बाजीराव** के छोटे भाई का नाम **चिमाजी अप्पा** था। बाजीराव पेशवा का कर्तव्य'इतिहास प्रसिद्ध है। सन् 1740 ई. में **बाजीराव** की मृत्यु हो गयी। बाजीराव पेशवा के चार पुत्र थे–– **वाला जी** उर्फ **नाना साहेब, रघुनाथ, जनार्दन** तथा मुसलमान प्रेमिका मस्तानी से उत्पन्न एक **शमशेर बहादुर,** जोकि बाद में **बाँदा के नवाब** के नाम से इतिहास प्रसिद्ध हुये। **चिमाजी अप्पा** के पुत्र का नाम **सदाशिवराव भाऊ** था। पूना के प्रसिद्ध **'शनिवार-भवन'** का निर्माण **बाजीराव पेशवा** के द्वारा हुआ था तथा उसके **उत्तरीय-द्वार** का नाम **दिल्ली-दरवाजा** रखा गया। बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त उनके ज्येष्ठ पुत्र **नाना साहेब** को पेशवाई प्राप्त हुई।

शाहू महाराज अब वृद्ध हो चुके थे। किसी समय **बाला जी बाजीराव पेशवा** ने सतारा और कोल्हापुर राज्यों का एक मराठा बहुल राज्य बनाने का प्रयत्न किया था। **शाहू ने बाला जी बाजीराव** को एक पत्र लिखा। उस पत्र का सारांश था:––

(1) **कोल्हापुर के सम्बन्ध में प्रयत्न मत करो।**

(2) **पेशवा समस्त राजमंडल (मराठा राज्य) में वरिष्ठ होकर राजकार्य देखें।**

(3) **शाहू के बाद आने वाला छत्रपति रामराजा भी पेशवाओं का ऐसा ही सम्मान करेगा।**

अब तक मराठा राज्य दरबार में **पेशवा** अन्य सरदारों, जैसे **दाभाड़े, प्रतिनिधि, भोंसले**—की तरह ही एक सरदार था, पर उपर्युक्त पत्र (घोषणा) के परिणाम स्वरूप पेशवा सब सरदारों में श्रेष्ठ हो गये। सन् 1749 में शाहू का निधन हो गया।

सन् 1761 में पानीपत के युद्ध में **सदाशिवराव भाऊ** की मृत्यु हो गयी तथा मराठों की बुरी तरह पराजय हुई। सदाशिवराव भाऊ के निधन का तीव्र आघात **नाना साहब पेशवा** सहन न कर सके। वे भी कुछ दिन ही जिन्दा रह सकें। **नाना साहब** के निधन के पश्चात् उनके बड़े बेटे **माधवराव** को पेशवा बनाया गया, उस समय उनकी आयु 16 वर्ष की थी।

शाहू के निधनं के पश्चात् सतारा के महाराज निर्माल्यवत् हो गये थे, इसलिये आगे इनसे अग्रेंजों को कोई काम नहीं पड़ा। शाहू महाराज के समय में अंग्रेजों की हैसियत एक प्रार्थी जैसी थी। पर जब शाहू जी ने पत्र लिखकर राजकार्य पेशवा को सौंप दिये तब आगे अंग्रेजों को जब भी व्यापार के लिये आज्ञा और सुभीते प्राप्त करने होते थे तो वे सीधे पेशवा से प्रार्थना करते। केवल **सतारा-महाराज** का सम्बन्ध **बाजीराव द्वितीय** के शासन काल के अन्त में हुआ, जबकि वे उस समय बाजीराव की कैद में थे, और वह कारावास उन्हें तथा उनके मित्रों को असहय होने के कारण महाराज ने अंग्रेजों की सहायता से छूटने का प्रयत्न किया।

सतारा के महाराज निर्माल्यवत हो गये थे, तो भी उनका मान—सम्मान राजगद्दी के स्वामी के ही योग्य था। सतारा के छोटे से राज्य की सीमा में सम्पूर्ण अधिकार और शासन—तंत्र महाराज के हाथों में था। जब भी पेशवा बदलते थे तो नये होने वाले पेशवा को अधिकारों के वस्त्र सतारा—महाराज द्वारा ही दिये जाते थे, और जब तक वस्त्र प्राप्त न हों तब तक पेशवा के अधिकारों को तात्विक दृष्टि से नियमानुकूलता प्राप्त नहीं होती थी।

यद्यपि **अंग्रेजों** ने **बाजीराव द्वितीय** को **पेशवा-गद्दी** पर बैठाया था, पर वस्त्र उन्हें सतारा राज्य से ही प्राप्त करने पड़े थे। पेशवा पूना में राजा बन बैठे थे, परन्तु सतारा की सीमा में वे नौकर के नाते का स्मरण कर उसी के अनुसार चलते थे। यदि पेशवा सेना सहित सतारा को जाते तो उसकी सीमा में प्रवेश करते ही उनकी नौबत बजनी बन्द हो जाती थी और पेशवा हाथी या पालकी पर से उतरकर राजमहल की ओर पैदल चलते थे। महाराज के दर्शनों के लिये हाथ बांधकर जाते और महाराज के सम्मुख नजराना देते थे तथा उनके पैरों पर सिर रखकर प्रणाम करते थे (इसी प्रकार अपने हाथ में चँवर लेकर सतारा—महाराज पर डुलाते थे और महाराज के सामने सादी बैठक पर या खवासखाने पर बैठते थे। (**"मराठे और अंग्रेज", नरसिंह चिन्तामणि केलकर** द्वारा लिखी मराठी पुस्तक **"मराठे आणि अंग्रेज"** का हिन्दी अनुवाद, प्रकाशकः इतिहास प्रकाशन संस्थान, 492 मालवीय नगर, इलाहाबाद)

सन् 1809 के लगभग बाजीराव की कैद से महाराज सतारा को छुड़ाने के अनेक प्रयत्न असफल रहे और महाराज की कैद और सख्त कर दी गई। सतारा के नरेश, महाराजा प्रतापसिंह स्वभाव से सीधे और शान्त थे, परन्तु उनकी माताश्री बड़ी चतुर और महत्त्वाकांक्षी थी। अतः उन्होंने अपना प्रतिनिधि गुप्त रूप से **अंग्रेजो** के पास भेजकर अपने पुत्र को कैद से मुक्त कराने का प्रयास आरम्भ कर दिया। अंग्रेज़ तो ऐसे मौके की तलाश में थे और **बाजीराव द्वितीय** के विरुद्ध यह बहुत अच्छा कारण मिल गया था। अंग्रेजों ने राजमाता को सूचित करवा दिया कि जब पेशवा से उनका युद्ध हो तो महाराज को उनका साथ देना होगा।

सन् 1817 में जब युद्ध का निश्चय हो गया। तब **बाजीराव द्वितीय** ने **महाराज-सतारा** को अपने हाथ से न जाने देने

के लिये महाराज से कहवाया कि––**"मैं आपका केवल नौकर हूँ, राज्य सब आपका है, यह आप ही को शासन करने को प्राप्त होगा"**। बाजीराव ने उन्हें अपनी सेना में लाकर भाग–दौड़ में आष्टी के युद्ध तक साथ में रक्खा। आष्टी के युद्ध में अंग्रेज़ों से पहले से ही ठहरे हुये संकेत के अनुसार महाराज के अनुयायियों ने लाभ उठा लिया।

तदोपरान्त महाराजा प्रतापसिंह को अंग्रेजों ने सतारा की गद्दी पर आसीन करवाया और उनके लिये एक स्वतंत्र राज्य पृथक कर दिया। अंग्रेज आफीसर ग्रान्ट डफ (Grant Duff) उसके रेजीडेन्ट बनाये गये। सतारा–नेरश का यह नवीन राज्य मांत्र 30 वर्ष तक टिक सका। सन् 1839 में महाराज प्रतासिंह पर अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह करने का आरोप लगाया गया और उन्हें काशी भेज दिया गया, जहाँ उनका बाद में निधन हो गया। प्रतापसिंह के काशी–वास के दौरान उनके दत्तक पुत्र **शाह जी** राजगद्दी पर बैठाये गये, परन्तु वे भी निःसन्तान रहे, अतः उन्होंने **बैंको जी** को गोद लिया और वे ही रेजीडेन्ट द्वारा सतारा महाराज घोषित किये गये। पर बाद में ऊपर से रेजीडेन्ट के पास यह आज्ञा आने से कि अब दत्तक–विधान की आज्ञा नहीं है सन् 1848 में सतारा राज्य को समाप्त कर अंग्रेजों ने अपने राज्य की सीमाओं में उसका विलय कर लिया। इस प्रकार मराठों के सतारा राज्य के इतिहास पर सदा के लिये पटाक्षेप हो गया।

मराठाशाही का वास्तविक अन्त कब हुआ ?

मराठाशाही अथवा **मराठा-स्वराज्य** का वास्तविक अन्त किस दिन हुआ, इस सम्बन्ध में विभिन्न मत होना स्वाभाविक हैं। कितने ही विद्वान 12 फरवरी 1794 को मराठाशाही के अन्त का दिन मानते हैं, क्योंकि उस दिन **मराठा वीर महादजी सिंधिया** की मृत्यु हुई थी।

पानीपत की तीसरी और आखिरी लड़ाई ने रही–सही मराठा शक्ति को भी नष्ट कर दिया था। महान् कूटनीतिज्ञ **महाद जी (माधव जी) सिन्धिया** उस समय संबलहीन होने पर भी साहस के साथ आगे बढ़े। अपनी अद्‌भुत प्रतिभा के बल पर चमत्कार कर दिखलाया, न सचिव, न सैन्यदल ही पास में था। उनका लोहा बड़े–बड़े कूटनीतिज्ञों और इतिहासकारों को भी मानना पड़ा है। **"माधव राव सिन्धिया"** नामक ग्रंथ में उसके लेखक **'कीन'** का मत वर्णित है–– **"एशिया के लोक नायकों में कोई भी नाम माधव राव सिन्धिया के जोड़ का नहीं मिलता।"** तत्कालीन पेशवा नाना फड़नवीस में भी उसी तरह देशभक्ति और ईमानदारी होती तो मराठा राज्य का इतिहास ही कुछ और होता और यह देश अंग्रेजों के हाथों में नहीं चला जांता। ब्राह्मण पेशवाओं ने छल से राज्य सत्ता हथिया ली, और जातीय स्तर पर मराठों को हीन कंह–कह कर और आम जनता की उनके प्रति श्रद्धा और आदर पर करारी चोट की। ब्राह्मणों ने यह बहुत भयंकर अपराध किया। **छत्रपति शिवाजी** के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में ब्राह्मणों का विरोध और मराठों को नीचा बताना इतिहास की दृष्टि में सदैव उनका अक्षम्य अपराध रहेगा। पूना स्थित पेशवा सरकार के किसी प्रकार की, सैनिक या अन्य, सहायता न मिलनें एवं **नाना फड़नवीस** की ओर से सदा विरोध रहने पर भी **महादजी सिंधिया** ने अपनी प्रतिभा, परिश्रम और पुरुषार्थ के बल पर भारत विरोधियों को ही नहीं अपितु अंग्रेजों को **तलेगाँव** नामक स्थान पर बुरी तरह मात दी थी। **महादजी सिंधिया** की छत्रछाया में **मुगल सम्राट शाह आलम** चैन से लाल किले में रह सका और उन्होंने ही गुलाम कादिर और उसके लुटेरे सहयोगियों से **सम्राट शाह आलम** को मुक्त कराया था। **माधवजी सिंधिया** का विशाल स्वप्न भारत की सारी देशभक्त शक्तियों को अंग्रेजों के विरुद्ध एकता के सूत्र में पिरोने का था। फिर भी इस मराठा वीर, महादजी सिन्धिया, ने मराठा शक्ति को नर्मदा से सतलुज तक शनैःशनैः स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। पर महादजी सिन्धिया के 12 फरवरी 1794 ई के यकायक निधन से सारी आशाओं पर पानी फिर गया।

कितने ही लोग मराठा शाही के अन्तिम दिन को 13 मार्च सन् 1800 मानते हैं, क्योंकि उस दिन चतुर राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीस पेशवा का निधन हुआ था। कितने ही लोग इस दिन को 31 दिसम्बर 1802 मानते हैं, क्योंकि उस दिन बसई की सन्धि हुई थी। और बाजीराव पेशवा अंग्रेजों का गुलाम बन गया था। इसके अलावा अंग्रेजों की मध्यस्थता से मराठी राज्य के केन्द्रीय भाग के टुकड़े–टुकड़े हो गये थे। कुछ लोग इस दिन को 17 नवम्बर सन् 1817 मानते है। इस का कारण यह है कि उस दिन पूना के पेशवाओं के राजप्रसाद **'शनिवार भवन'** पर अंग्रेजों का झन्डा फहराया गया था। कुछेक विद्वानों ने 3 जून

सन् 1818 को ही इसकी मान्यता दी है, क्योंकि उसीदिन **बाजीराव** ने आसीरगढ़ के निकट ढोल कोट में **जनरल मैलकम** को आत्म–समर्पण कर दिया था। कितने ही विद्वान उस दिन को 26 मई सन् 1848 को मानते है जब दत्तक विधान की आज्ञा न होने से सतारा के दत्तक महाराज को न मानकर सतारा राज्य को अंग्रेजों ने अपने पूर्ण अधिकार में ले लिया। पर इन तिथियों मे कौन सी तिथि ठीक तथा मानने योग्य है, यह विचारणीय विषय हैं।

शिवाजी के राज्याभिषेक के समय ब्राह्मणों की आपत्ति

प्राचीन भारतीय संस्कृति का परम भक्त होने के नाते शिवाजी ने वैदिक विधि से स्वयं अपना राज्याभिषेक करा कर विलुप्त सांस्कृतिक प्रक्रिया को पुनर्जीवित करने का निश्चय किया। **शिवाजी महाराज** के सहायक, समर्थक और सैनिक वर्ग सभी राजकीय समारोह के पक्ष में थे। उधर **शिवाजी** की प्रजा भी बड़ी कठिनाई में पड़ गई थी क्योंकि जब तक **शिवाजी** स्वाधीन राजा न कहलाते तब तक प्रजा नियमानुसार **शिवाजी** का हुक्म मानने को बाध्य न थी। इसी प्रकार **शिवाजी** का भूमिदान और सनद आदि भी नियमानुसार प्रमाणित नहीं माने जाते। इसलिये राज्याभिषेक की आवश्यकता पड़ गई थी।

गुण, कर्म, औरं स्वभाव सभी प्रकार से शिवाजी क्षत्रिय थे और राज्याभिषेक के पूर्ण अधिकारी थे। देश में जब मन्दिर–मठ तोड़े जाते थे, तथाकथित राजपूत राजे अपने कुल की बेटी और बहिनें मुगल सम्राट के हरम में भेजकर बड़ी ऐंठ के साथ अपने महलों में बैठे अपनी मूछें बट रहे थे, तब पीड़ित हिन्दू जनता ने **शिवाजी** जैसे धर्म रक्षक वीर महापुरुष का सहारा पाकर अपने आँसू पोछे थे। वे सहर्ष **शिवाजी** को शिव का अवतार मानकर स्तुति करने लगे थे। **महाकवि भूषण** की **'शिवा बावनी'** इस तथ्य का ज्वलंत साक्ष्य है। **पर अदूरदर्शी और लम्पट ब्राह्मण शिवाजी को क्षत्रिय मानने को तैयार न थे। इन्हीं के कारण हिन्दुओं में से अनेक धर्म छोड़कर मुसलमान और ईसाई बने और हज़ारों वर्ष तक हिन्दुओं का बहुजन वर्ग पीड़ित और उपेक्षित रहा। इनके ही कारण देश कमजोर हुआ और हिन्दू धर्म खोखला और ओजहीन होकर रह गया।**

इस समस्या का हल बड़ी चतुराई से **शिवाजी** के सचिव **बालाजी आव जी, चिटणीस** ने निकाला, **जो प्रभु कायस्थ** थे। बालाजी आवजी ने कई तरह से कोशिश कर बनारस निवासी **विश्वेश्वर भट्ट उर्फ गागा भट्ट** नामक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, से महाराष्ट्र आकर राज्याभिषेक के अवसर पर सहर्ष प्रधान पंड़ित बनना स्वीकार करवा लिया।

बालाजी आव जी चिटणीस की चतुरता का एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है। वे प्रभु कायस्थ' जाति के थे और अपने पुत्र का वेदमंत्रों से यज्ञोपवीत–संस्कार कराने के कारण महाराष्ट्र के ब्राह्मणों द्वारा जातिच्युत कर दिये गये थे। उसका कारण था कि **'शूद्राचार शिरोमणि'** नामक पुस्तक में **कृष्ण नरसिंह शेष** नामक ब्राह्मण ने कायस्थों को शूद्रों से भी अधम लिख दिया था। स्वाभिमानी चतुर व्यक्ति वालाजी आवजी ने अपनी कायस्थ जाति पर लगायी कलंक कालिमा ब्राह्मण के ही हाथ धुलवाई। कहावत है **"साँप काटे का जहर साँप से ही चुसवाना"** उसे चरित्रार्थ कर दिखाया। मौका हाथ में आया जान उन्होंने गागा भट्ट जैसे सर्वमान्य महाराष्ट्रीय ब्राह्मण से **"कायस्थ धर्म प्रदीप"** नामक पुस्तक लिखवा कर **कृष्ण नरसिंह शेष** कृत **"शूद्राचार शिरोमणि"** में प्रतिपादित कायस्थों के शूद्रत्व का खंड़न कराकर उन्हें क्षत्रिय घोषित करवाने की चतुराई की। गागा भट्ट को मोटी रकम मिल ही गई थी और शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर दान–दक्षिणा में विपुल राशि मिलने की बात सुनिश्चित हो ही गई थी। इस तरह वे 5 जून, 1674 के **शिवाजी महाराज** के राज्याभिषेक के साथ मराठा जाति के ऊपर लगी कलंक–कालिमा को धो देने में समर्थ हुये।

राज्याभिषेक में उस सस्ते–जमाने में भी साढ़े पाँच करोड़ रुपये से अधिक धन व्यय किया गया। रायगढ़ को नये भवनादि बनवाकर, राजधानी के योग्य बनाया गया। देश के हर अंचल से विद्वान ब्राह्मणों को आमंत्रित किया गया। रायगढ़ तक पहुँचने का पथ दुर्गम होने पर भी कहते है कि पचास हज़ार ब्राह्मण सपरिवार वहाँ जा पहुँचे थे। वे रायगढ़ के किले में राज्याभिषेक के पश्चात भी चार माह तक रहकर **शिवाजी महाराज** के खर्च पर मिष्ठान्न और नाना तरह के पकवान उड़ाते रहे।

मराठा इतिहास के उद्भट विद्वान और लेखक **जी. एस. सरदेसाई** ने **'मराठों का नवीन इतिहास'**—मूल पुस्तक **"न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज"** के पृष्ठ 212 पर लिखा है— **"प्रधान पुरोहित गागा भट्ट ने मूल्यवान वस्त्र और आभूषणों के अलावा एक लाख रुपये नकद पाये, दूसरे सहायक पुरोहितों ने अपने ओहदों के मुताबिक पाँच हजार से पचीस हज़ार रुपये नकद पाये। इतना होने पर भी ब्राह्मणों ने वैदिक मंत्रों का प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने पौराणिक श्लोकों मात्र से काम चला लेने की चाल चली। उपनयन संस्कार द्वारा जनेऊ पहनाकर गागा भट्ट (विशेश्वर भट्ट) ने शिवाजी और उनके युवराजों को क्षत्रिय बनाया। मराठों के द्विज हो जाने पर भी ब्राह्मणों ने विद्रोह करना शुरू किया कि कलियुग में क्षत्रिय जाति लुप्त हो गई हैं, अब ब्राह्मणों को छोड़कर दूसरा कोई द्विज नहीं हैं। ब्राह्मणों और शिवाजी के वंशजों का यह मतभेद और द्वेष आगे भी चलता रहा। फलतः ब्राह्मणों से चिढ़कर कोल्हापुर राज्य में लाभप्रद पदों से ब्राह्मण हटाकर उनके स्थानों पर प्रभु कायस्थों को बहाल किया गया।"**

शिवाजी ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र को संगठित करने की योजना बनायी थी। उन्होंने हिन्दू राष्ट्र निर्माण एवं हिन्दू धर्म के पुनरोद्धार के लिये हिन्दू समाज के सभी वर्गो को एक ध्वज के नीचे लाकर खड़ा कर दिया। धन्य थे, वे मावले सैनिक और सरदार जो पूरे 25 वर्षों तक शिवाजी के साथ कन्धो से कन्धा मिलाकर, बड़े से बड़े जोखम उठाते हुए शत्रु सेना से जूझते रहे। **शिवाजी** का सबसे बड़ा खतरा घरेलू शत्रु थे –– अपनी ही मराठा–कुनबी जाति के सरदार जिन्हें शिवाजी का उत्कर्ष फूटी आँख नहीं भाता था और जो किसी न किसी प्रकार धोखा देकर, हत्या करने के लिए घात लगाते रहते थे। शिवाजी के हितैषी निम्नवर्ग के ही लोग थे। अपने पिता जी शाह जी का सान्निध्य शिवाजी को नहीं मिला, क्योंकि वे तो सैकड़ों मील दूर बीजापुर दरबार में सेनानायक थे वहाँ दूसरी पत्नी के साथ ग्रहस्थी बसाकर रहते थे, **अतः धार्मिक प्रवृत्ति और अपने लक्ष्य के लिए सुदृढ़ आस्था के लिए वे एकमात्र अपनी माताश्री के ही ऋणी थे।**

यदि ठीक से विचार करें तो पायेंगे कि हिन्दू धर्म और हिन्दुओं पर मुसलमानों के द्वारा ढाये जाने वाले जुल्मों के जिम्मेदार परोक्ष या अपरोक्ष रूप में, अधिकतर ब्राह्मण ही थे। स्वयं **शिवाजी** को छलपूर्वक **अफजल खाँ** द्वारा जिन्दा या मुर्दा पकड़वाये जाने के षड़यन्त्र में **कृष्णजी भास्कर** नामक बीजापुर दरबार का एक वफ़ादार ब्राह्मण था। विषय से हटकर जरा सोचिये कि इस देश से बौद्ध धर्म और उसके अनुयायियों को कभी यहाँ लगभग समाप्त कर दिया गया था, कौन थे वे लोग? और किसके निर्देश पर वह नर संहार किया गया। वे मुसलमान जरूर नहीं थे। वह ब्राह्मणवाद का सबसे मजबूत काल था और उन्होंने चुन–चुन कर इस देश से बौद्ध भिक्षु साफ़ कर दिये थे, जो हिमालय (लद्दाख) और तिब्बत में चले गये वे ही बच गये। मुसलमानों ने दूसरी तरफ़ पाँच सौ वर्ष के लगभग शासन किया यदि उनका दृष्टिकोण इस देश के हिन्दुओं के प्रति वही होता जो सनातन कट्टर ब्राह्मणों का बौद्धधर्म, बौद्ध भिक्षुओं, बौद्ध बिहारों और बौद्ध आम जनता के प्रति था तो क्या कोई हिन्दू उनसे बचता। जो हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये उनकी संख्या उस संख्या की तुलना में नगण्य थीं जो ब्राह्मणों के अमानवीय व्यवहारों से बचने के लिये मुसलमान बने। जिन करोड़ों की संख्या में बौद्धजन थे, उन्हें ब्राह्मण मरवा न सके तो फतबा दे दिया कि वे शूद्र हैं, उन्हें जिन्दा मारने से बदतर व्यवहार उनके साथ किया। वे आज भी हिन्दू समाज में नारकीय और अपमानित जीवन जी रहे हैं। यह ठंड़े दिमाग से तथा ईमानदारी से सोचने का विषय हैं। आज प्रजातांत्रिक गणतन्त्र प्रणाली में इन दलितों, पिछड़ों और शोषित वर्ग के बहुजनों को सरकार की ओर से जब भी कुछ लाभ की घोषणा जाती है तो इसी द्विज समाज को सबसे ज्यादा चिढ़ होती है और दिल जलता है।

"शिवाजी उत्सव और गणेशोत्सव"

उत्तर भारत में मगल अवसरों पर आरम्भ में गणेश पूजन किया जाता रहा है, परन्तु दक्षिण भारत में, विशेष करके महाराष्ट्र में गणेश को कुलदेवता की भाँति पूजे जाते है। **गणेश पेशवाओं के कुलदेवता** थे। इसलिये **बाल गंगाधर तिलक** ने सन 3 सितम्बर 1895 को मराठा दैनिक में एक लेख लिखकर सब लोगों को सामाजिक स्तर पर एकत्रित होकर अंग्रेज सरकार से टक्कर लेने हेतु दो उत्सव मनाने की सलाह दी, वे उत्सव थे **'शिवाजी उत्सव'** और **'गणेशोत्सव'**।"

गणेशोत्सव 10 दिन तक बड़े जोश–जश्न के साथ धार्मिक वातावरण के अनुरूप मनाया जाता हैं। **यह प्रति वर्ष** न केवल महाराष्ट्र में अपितु देश के अन्य नगरों में भी जहाँ भी महाराष्ट्रवासी रहते हैं श्रद्धा पूर्वक सार्वजनिक स्तर पर मनाया जाता हैं जैसे दुर्गा–पूजा को बंगाली बन्धुगणों द्वारा। **आचार्य चतुरसेन** ने अपनी पुस्तक–''**वैदिक संस्कृतिः प्रौराणिक प्रभाव**'', प्रथम संस्कण 1986, प्रकाशकः सन्मार्ग प्रकाशक, दिल्ली-7 पृष्ठं 29) में लिखा है– ''**पेशवा चितपावन ब्राह्मण आर्य नहीं है।। मिस्र से आये यहूदी हैं। इसी से चितपावन के रोटी-बेटी के व्यवहार महाराष्ट्र के ब्राह्मणों जैसे नहीं हैं। महाराष्ट्रीय ब्राह्मण देशस्थ कहाते हैं और चितपावन कोंकणस्थ। इनका उत्कर्ष शिवाजी के कारण हुआ। शिवाजी ने जब राजा पद धारण करना चाहा तब महाराष्ट्र के ब्राह्मणों ने उन्हें शूद्र (कुर्मी) होने के कारण राजा मानने से इंकार कर दिया। पीछे चितपावनों (गागा भट्ट और उनके साथी पुरोहितों) ने उनका पौरोहित्य किया, जिससे उनको पेशवा की पदवी मिली। और राजा के बाद सब सैनिक और राजनैतिक अधिकार उनके हाथ में आ गये। बाद में पेशवा ही महाराष्ट्र के कर्ता-धर्ता बन गये। इसी से चितपावनों के अभ्युदय के साथ गणेश भी महाराष्ट्र के जन देव बन गये।**''

बाल गंगाधर तिलक ने **केसरी** में अपने लेख में बताया कि किसी भी हिन्दू को जो वैदिक रीतियाँ अपनाना चाहता है उनसे वर्जित नहीं किया जा सकता। अब जब कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का ही स्वयं वेदों पर एकाधिकार नहीं रह गया हैं और मुसलमान तथा ईसाई भी मुक्त रूप से उनका अध्ययन कर सकते हैं तब शूद्रों और अन्त्यजों को कैसे वर्जित किया जा सकता है? उन्होंने इस पर सनातनी ब्राह्मणों के किसी भी विरोध को बचपना और अवरोधक कहकर उसकी उपेक्षा की। तिलक ने यह भी इंगित किया कि वैदिक रीतियों में अब कोई बड़ी पवित्रता नहीं रह गयी है। ब्राह्मण स्त्रियों के पूजा पाठ और उत्सव वैदिक रीतियों के अनुसार नहीं होते लेकिन इस कारण से ही वे ब्राह्मण परिवारों में नीची दृष्टि से नहीं देखी जातीं। फिर अगर वैदिक मन्त्रों के पाठ के बीच विवाह और उपनयन संस्कार कर मराठे स्वयं को प्रसन्न करना चाहें तो वे खुशी से ऐसा करें (''**बाल गंगाधर तिलक**'', **लेखक टी. बी. पर्वते**, अनुवादक, **भगवानदास**, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी)। बालगंगाधर तिलक ने सन् 1875 में यह प्रश्न केसरी में उठाया था।

एक अंग्रेज वन अधिकारी ने जब रायगढ़ के किले पर सन् 1818 में अंग्रेज़ी ध्वज प्रथम बार फहराया था उस समय **पेशवा पूना शहर से** तथा **शिवाजी के वंशज सतारा** से राज–काज चलाते थे। अतः रायगढ़ शासन का केन्द्र नहीं रह गया था। जब वहाँ से मराठा सैनिक नागरिक और सैनिक अधिकारी भी चले गये तो वहाँ जंगली वनस्पति ही सर्वत्र फैल गयी थी। यहाँ तक कि शिवाजी महाराज की समाधि इस जंगली वनस्पति से ढ़क गयी थी। समाधि के चारों ओर झाड़–झकार उग आया था। **बालगंगाधर तिलक** की अध्यक्षता में **शिवाजी स्मारक समिति** का गठन किया गया। जिससे **तलेगाँव** के **सरदार दमड़े** तथा **कुरुन्द वाड** के **मराठा राजा** भी सम्मिलित थे। तार द्वारा **कोल्हापुर नरेश** ने भी अपना समर्थन ज्ञापित किया। **तिलक** ने **गवर्नर लार्ड सैंडहर्स्ट** से प्रार्थना की और रायगढ़ किले में उत्सव मनाने की आवश्यक अनुमति प्राप्त कर ली। ख़तरनाक गढ़ की सीधी चढ़ाई और अन्य अनेक असुविधाएँ होने पर भी सैकड़ो लोग रायगढ़ के किले पर ऊपर जा पहुँचे। वहाँ लोगों में अपार उत्साह था। जो भी वहाँ तीन दिन तक रहा वह जीवन पर्यन्त उन आनन्दमय क्षणों को भुला न सका। अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों के भाषण हुये। रायगढ़ दुर्ग में कई प्राचीन स्थलों का निरीक्षण किया गया। शिवाजी महाराज का चित्र जलूस में सब ओर ले जाया गया। **मालुसरे** और **येसाजी काक** के वंशजों का, जिन्होंने **मराठा राज्य** की स्थापना में **शिवाजी** से सहयोग किया था, सम्मान किया गया और तीन दिन पश्चात् इन समारोहों का अन्त **शिवाजी की जय** के मध्य हुआ। इस समारोह में **बाल गंगाधर तिलक** ने कहा था कि जिस प्रकार अंग्रेजों द्वारा **ऑलिवर क्रामवेल** और फ्रांसीसियों द्वारा **नैपोलियान बोनापार्ट** का स्मारक बनाया गया उसी प्रकार **शिवाजी महाराज** का स्मारक निर्माण करवाया जाये। इस तरह रायगढ़ मे शिवाजी की समाधि का जीर्णोद्धार किया गया और तब से हर वर्ष **'शिवाजी उत्सव'** मनाया

जाता है। पर खेद है कि महाराष्ट्र के लोग जिस जोश–खरोश से गणेश–उत्सव मनाते है उस तरह शिवाजी–उत्सव नहीं। **महाराष्ट्र में आज भी मराठा-कुनबी समूह प्रदेश की कुल आबादी का 30 प्रतिशत है।**

राजदीप सरदेसाई का लेख "Wooing the Backwards- **''वूइंग दि बैकवर्ड्स''** नई दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक **'दि टाइम्स आफ इंड़िया''** के 10 जनवरी 1994 के अंक में जो आवश्यक अंश हैं उसे यहाँ उद्धृत कर रहे हैं,

"For a start, caste mobility has meant that the backward-forward caste divisions in Maharashtra have been blurred. Yesterday's backward castes are today's ruling elite. The Marathas, for example, achieved social recognition through the non-Brahmin movement of the 19th Century and later grabbed political power through adult franchise.

Consequently Kanshi Ram's Bahujan Samaj Party in the State lacks a homogeneous identity. The intra OBC conflicts are sharp enough to stymie Mr. Sharad Pawar's entire project (to forge a broad, cross-region alliance that would include Dalits, Muslims and Backward castes in addition to his Maratha base). For example, the dense Maratha Kunbi caste clusters, which form over 30 per cent of the state population, are sharply divided on economic and social lines. While the kunbis of the Konkan are genuinely backward, their land-owning counter parts in Vidharbha and Marathawada see themselves as ritually superior. The fractured kunbi peasant identity means that there is no equivalent in Maharasthra of the Yadavs of U.P." इससे यह स्पष्ट होता है कि महाराष्ट्र में **यादव** जाति के लोग नहीं हैं और **'जाधव'** जो कि मराठा होते है उन्हें उच्चारण दोष समझ कर यादव समझना भी ठीक न होगा। जैसे सरदार पटेल के जाति वालों का कण्बी होने के नाते कुनबी, कुरमी और कुलमी से सीधा सम्बन्ध है, और वे सब गूजर जाट लोग भ्रम में हैं, जो अपनी जाति का सम्बन्ध पटेलों से जोड़ने की असफल चेष्टा करते हैं। जिसे फिर भी इस मुद्दे पर भ्रम हो वे कृपया पढ़े **डा. मंगुभाई रामदास पटेल** की पुस्तक **''कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास''** सन् 1994 गुजरात से प्रकाशित । महाराष्ट्र के कुनबी और मराठे तथा उत्तर प्रेदश के कुरमी दोनों सजातीय समान जन हैं इस पुस्तक में यह तथ्य पहले भी अनेक साक्ष्यों–सहित प्रस्तुत किया गया है। अब नवीनतम साक्ष्य नई दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र **''दि हिन्दुस्तान टाइम्स''** दिनांक 20 जनवरी 1994 के अंक में पत्रकार **सुश्री लक्ष्मी अय्यर** की एक विस्तृत रिपोर्ट, जिसका शीर्षक "VP- Kanshi move attracts dissidents" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ है। उस लेख से कुछ महत्वपूर्ण 'अंश साभार उद्धृत किये गये है:–

"Bombay, January 14, 1994: The coming together of the Janta Dal leaders Shri Vishwa Nath Pratap Singh and Shri Kashi Ram at the Bahujan Samaj Party rally hereon Sunday (19 Jan-94), last has positive response from the anti-Pawar faction in the State Congress as well as the Maharashtra Unit of the Dal.

"The response that I have been receiving after the rally from various people in the Congress and other parties is quite surprising. I had to extend my stay in the city for the past three days only to handle this, Mr. Kanshi Ram said.

The Janta Dal move has been initiated on the suggestion of Mr. V.P. Singh, Mr. B.G. Kholse Patel, a former High Court judge and a Dal member said :

Mr. Singh has told the State Dal leaders they should not repeat the mistake the party had made in U.P. during the recent Assembly elections (November 1993). In that State, the Janta Dal had failed to reach an understanding with the Bahujan Samaj Party and gave importance to the Jats and consequently was routed at the hustings.

The Janta Dal leaders, who are steering the party towards the Bahujan Samaj Party, are incidently all high caste Marathas, namely the former State unit president, Mr. S.Sambhajirao Kakade, the former Ahmedanagar M.P., Mr. Balasaheb Vikhe-Patil and Mr. Kolse-Patil himself.

Mr. Kanshi Ram's rejoinder to this was that Marathas who constituted about 25 per cent of the State's population were mostly Kunbis. "The Kunbis are like the kurmis of U.P. Now, the Kunbis who had socially moved upwards calling themselves Marathas will now move down ward socially." By this reckoning Marathas, the OBCs (Other Backward Classes, who constitute 50 per cent of population) and SC/STs would constitute a single block. " We will include the Marathas, but we will continue to lead them"

Mr.Kanshi Ram said.

Inclusion of the upper caste Marathas and Kayastha Prabhus in the Bahujan Samaj Party is not a new phenomenon in the State's political history. The first non-Brahman movement in the state in the 18th Century led by reformist Mahatma Jyotiba Phule himself a kunbi included the Marathas. So did the second movement early this Century. In fact the second one was lead by Marathas like Shahu Maharaj (Ruler of the Kolhapur State) and Keshavrao Jedhe.

The inclusion of tne Marathas by Mr. Kanshi Ram in Bahujan Samaj would of course come as great relief to the anti-Pawar faction in the State Congress, as they mainly come from that community.

छत्तीसवाँ अधिवेशन

महासभा का 36वाँ हीरक जयन्ती अधिवेशन एवं 14 और 15 फरवरी सन् 1987 ई. को सारनाथ वाराणसी में बड़े धूमधाम से डा. देशराज कटियार की अध्यक्षता में मनाया गया। पूर्व केन्द्रीय संचार मंत्री, माननीय श्री बृजलाल वर्मा को विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया था।

सारनाथ हिन्दुओं की परम पुनीत सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक राजधानी वाराणसी के निकट स्थित जगत प्रसिद्ध बौद्ध धार्मिक तथा ऐतिहासिक स्थल हैं। गया में बोधिवृक्ष (एक पीपल का वृक्ष) के नीचे ध्यानमग्न अवस्था में **गौतम** को ज्ञान प्राप्त हुआ, और गौतम उसी दिन से बुद्ध हो गये।, बोध गया में ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त सर्वप्रथम वे इसी प्रसिद्ध स्थान सारनाथ में आये थे। इसी स्थान पर बुद्ध ने अपने प्रथम पाँच शिष्यों को धर्मोपदेश दिया। उन्होंने इन शिष्यों को चार सत्यों का उद्घाटन किया। इसी प्रक्रिया को बौद्ध साहित्य में, **"धर्म चक्र परिवर्तन"** कहते हैं। वे चार सत्य हैं, **दुःख, समुदय (कारण), निरोध** और **मार्ग**। काशी वासी प्राचीन काल से ही इस शहर के प्रति बड़ा लगाव और महत्व रखते थे जो इस कथन से प्रकट होता हैः——

"चना-चबैना गंगाजल, जो पुरवै करतार।

कासी कभी न छोड़िये, विश्वनाथ दरबार।।"

इतिहास साक्षी है कि वाराणसी क्षेत्र के कूर्मि बन्धु, काशी विश्वविद्यालय के कारण शिक्षित चिन्तनशील, कर्मठ, लगनशील तथा निष्ठावान व्यक्ति बने । समाज में पिछड़े वर्ग की स्थिति से चिन्तित हो, निराकरण एवं जागृति हेतु, आज से लगभग 5 दशक वर्ष पूर्व, **श्री शिवराम सिंह** द्वारा सम्पादित **'कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर'** मासिक पत्रिका तथा उन्हीं द्वारा लिखित **"कूर्मि क्षत्रिय इतिहास"** पुस्तक प्रकाशित एवं प्रसारित कर कूर्मि जात्योत्थान का महत्वपूर्ण कार्य किया गया था। कालान्तर में इसी क्षेत्र के कुरमियों ने अथक परिश्रम से **'पटेल स्मारक समिति'** गठित कर तेलियाबाग वाराणसी में एक बृहद् विशाल भव्य भवन, **"सरदार बल्लभ भाई पटेल स्मारक अतिथि निवास"** निर्मित कर समाज में कूर्मि जाति को उच्चासीन कर गौरवांवित किया तथा सम्पूर्ण कूर्मि समाज को मार्ग दर्शन प्रदान किया।

इस अधिवेशन में वाराणसी एवं मिरजापुर जनपदों से आये कई हजार में प्रतिनिधि गणों तथा दर्शक गणों के अतिरिक्त सैकड़ों के समूहों में प्रतिनिधि गण दूर–दराज़ के स्थलों से जैसे बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के अन्य जनपदों से आये थे। ठहरने की व्यवस्था सारनाथ के अतिथि निवास एवं अनेक धर्मशालाओं में बड़े उत्तम ढ़ंग से की गई तथा भोजन की सामूहिक व्यवस्था, अधिवेशन स्थल पर लगे विशाल पंड़ाल के बराबर के कक्ष में बड़े समुचित रूप से की गई थी, जिसकी देख–रेख बड़े अनुभवी व्यक्तियों को सौंपी गयी थी। गत कई अधिवेशनों की तरह यहाँ भी जातीय इतिहास सम्बन्धी, बडी महत्वपूर्ण जानकारी के साथ रायबरेली के **श्री सत्य नरायन चौधरी** द्वारा, एक विशेष कक्ष में एक प्रदर्शनी लगवायी गयी थी।

हीरक जयन्ती के अवसर पर इस 36वें अधिवेशन में महासभा की ओर से एक सुन्दर रोचक तथा पठनीय **स्मारिका-ग्रंथ** भी प्रकाशित हुआ, जिसके **प्रधान सम्पादकत्व का दायित्व इस पुस्तक के लेखक को महासभा द्वारा सौंपा गया**। अधिवेशन के दोनों दिन भाषणों के कार्यक्रम के अनुसार सत्र संचालित किये गये। महिला सम्मेलन तथा युवावर्ग का सम्मेलन भी काफी प्रभावशाली रहा। बीच–बीच में तथा रात्रि में प्रतिनिधियों के मनोंरजन के लिये स्थानीय कलाकारें द्वारा कई रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। जिनसे प्रतिनिधियों का काफी मनोंरजन हुआ।

प्रतिनिधियों ने अपने भाषणों में जो विचार रखे, उसका सार था कि **हमारी कूर्मि क्षत्रिय जाति इस देश, संस्कृति और जन-जीवन की महापरिश्रमी, पराक्रमी, स्वावलम्बी और पुरातन यशस्वी जाति है।** परन्तु देश में आये

अन्धेरे युग के कारण जहाँ सबको अवनति का सामना करना पड़ा, वहाँ हमारा समाज भी उसके कुपरिणामोंसे बच न सका। परन्तु अभ्युत्थान आने पर जहाँ अन्य जातियाँ जाग उठी और तेज़ी से आगे बढ़ रही हैं वहाँ हमारी निद्रा और तन्द्रा अभी भी पूरी तरह दूर नहीं हो सकी है। यह चिन्ता की बात है। तेजी से तरक्की करती हुई दूसरी जातियों को देखकर कोई-कोई लोग अपनी मन्द गति से होने वाली प्रगति का कारण बताने में समय बर्वाद करते हैं और पुरुषार्थी की तरह कर्मरत नहीं होते। यही कारण है कि महासभा के 92 वर्ष के कार्यकाल पूरा हो जाने पर भी कूर्मि समाज दिग्भ्रान्त, दिशाहीन, कुण्ठा और अकर्मण्यता की स्थिति से उबर नहीं सका है।

विभिन्न प्रदेशों से आये प्रादेशिक सभाओं के अध्यक्षों तथा महामन्त्रियों ने अपने–अपने प्रदेशों में **कूर्मि क्षत्रिय समाज** के कार्य–कलापों तथा उपलब्धियों से सभासदों को अवगत कराया। विशिष्टि अतिथि, **माननीय श्री बृजलाल वर्मा जी, पूर्व संचार मंत्री, भारत सरकार** का भाषण बड़ा सारगर्भित रहा। अन्य महानुभावों द्वारा दिये भाषणों को भी श्रोताओं ने खूब सराहा। भाषाणों की श्रंखला तथा महिला सम्मेलन एवं युवा–सम्मेलन के अन्तराल में सारनाथ के बौद्धकालीन ऐतिहासिक दर्शनीय पर्यटक स्थलों का भी सामूहिक रूप से प्रतिनिधियों को दिखलाने का आयोजन किया गया। प्रथम दिन रात को जमालपुर के **शिवाजी संघ** के महामंत्री, **श्री देवकी मंडल** ने मोमबत्ती के प्रकाश में, जो हरेक नर–नारी के हाथ में थीं, एक काफ़ी लम्बा जलूस **सारनाथ परिसर** में निकाला, जिससे अधिवेशन में आये प्रतिनिधिगणों और दर्शकों में काफ़ी जोश बढ़ा। तिलक–दहेज की सामाजिक कुरीतियों पर प्रायः प्रत्येक सम्मेलन की तरह इसमें भी भाषण तथा प्रस्ताव भी पारित हुये, किन्तु उस प्रस्ताव को कार्यान्वित कर ठोस कदम उठाने का कोई निर्णय नहीं लिया गया और न भावी कार्यक्रमों की कोई रूप–रेखा सोची गयी।

अधिवेशन के अन्त में महासभा के नये अध्यक्ष और महामंत्री के चयन का विषय जनसभा के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। फिर वही, कम या बढ़, पिछले बम्बई अधिवेशन में इसी बिन्दु पर घटित घटनाओं की पुनरावृति यहाँ भी बड़े जोर–शोर से हुई। अब महासभा के अधिवेशनो में यह बड़े शर्मनाक तथा अवैधानिक घटनाक्रम का आवश्यक अंग सा बन गया है। ऐसा आभास होता है कि इन चुनावों के लिये ही बहुत से उम्मीदवार अपने दल–बल से आकर, इच्छानुसार चुनाव–परिणाम जनसभा पर रोपित करके, अपना मनोरथ पूरा करके निश्चित होकर विदा हो जाते हैं।

सुधी पाठकगण तथा महासभा के उज्जवल भविष्य के लिये जागरूक शुभचिन्तकों को चाहिये कि वे महासभा में नियमावली का कदापि उल्लंघन न होने दें। **अध्यक्ष** तथा **महामन्त्री** के चुनाव महासभा के चुनाव सम्बन्धी नियमानुसार ही होने दे। यदि कोई जबरदस्ती निय्रमों का उल्लंघन करता हैं उसको रोकें, भर्त्सना करें और प्रतिनिधि के तौर पर महासभा के हित में अंकुश लगायें। **महासभा एक सामाजिक संस्था है इसमें हर राजनैतिक विचारधारा वालों का समान आदर होना चाहिये, किसी विशेष राजनैतिक विचारधारा के लोगों को महासभा पर हावी नहीं होने देना चाहिये। सामाजिक एवं बुद्धिजीवी विशिष्ट व्यक्तियों का महासभा के मंच पर राजनीतिज्ञों से कम सम्मान नहीं होना चाहिये।** महासभा के चुनाव सम्बन्धी मर्ज का इलाज जरूर खोजा जाये और चुनाव हेतु स्वस्थ तथा नियमानुकूल प्रणाली ही अपनायी जाये, ऐसा हो इसके लिये हरेक भाग लेने वाले का दायित्व बनता है; और यदि ऐसा फिर भी नहीं होता है तो इन खराबियों के लिये सभी दोषी हैं। **इस चेतावनी को गम्भीरता से लेना होगा, नहीं तो यह चुनाव-नासूर लगभग एक शताब्दी पुरानी महासभा की शक्ति को क्षीण करके, आपसी फूट को बढ़ावा देगा, संगठन को दुर्बल, निष्क्रिय करता चला जायेगा। जिस समाज की बागडोर बड़े-बड़े समाजसेवी तथा आदर्श पुरुषों ने संभाली है उसे आगे बढ़ाया जाये। आज खोटे-सिक्के, खरे सिक्कों को महासभा में अपमानित तक करने से बाज नहीं आते, अपना वर्चस्व किसी न किसी हथकंड़े को अपनाकर स्थापित कर लेते हैं, पर महासभा को अपने उल्टे-पुल्टे कार्यकलापों द्वारा दिशा भ्रमित कर कमजोर ही करते रहते हैं।**

इस अधिवेशन में जब चुनाव का नाटक समाप्त हुआ तक फिर मंच पर शान्ति स्थापित हुई और तब जनसभा ने जाना कि पूर्व **डायरेक्टर जनरल आफ पुलिस यू॰पी॰, माननीय श्री महेन्द्रसिंह जी आई॰पी॰एस॰ (सेवानिवृत्त)**

महासभा के नये अध्यक्ष चुने गये, और **डा॰ बलिराम सिंह,** महामंत्री बनाये गये। इन दोनों पदाधिकारियों का पुष्पमालाओं से स्वागत किया गया, बधाईयाँ दीं गयीं, और इन दोनों ने कार्यकारिणी समिति के अन्य पदाधिकारीगण तथा सदस्यों को मनोनीत किया। महासभा के चार उपाध्यक्ष मनोनीत किये गये, जिसमें यह लेखक, **वरिष्ठ उपाध्यक्ष** बनाया गया।

श्री महेन्द्र सिंह, आई॰पी॰एस॰ (सेवा निवृत्त), पूर्व डायरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस, यू॰पी॰

श्री महेन्द्र सिंह का जन्म 9 नवम्बर 1923 को, उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जनपद की कायमगंज तहसील के अन्तर्गत **लहरा** नामक ग्राम में, एक साधारण गंगवार–कुरमी परिवार में हुआ था। इनके पिता **श्री प्रह्लाद सिंह** तथा पितामह **श्री केहरी सिंह** साधारण कृषक थे। प्रह्लाद सिंह खेती–कार्य को देखने के अतिरिक्त अपने जनपद में सहायक सहकारी अधिकारी भी रहे।

महेन्द्र सिंह जी सन 1939 में हाई स्कूल प्रथम श्रेणी में तथा कई विषयों में विशेष योग्यता प्राप्त कर तथा उत्तर प्रदेश में प्रथम स्थान पाकर उत्तीर्ण हुये। तदोपरान्त आपने कानपुर के बी॰एन॰एस॰डी॰ कॉलेज में उच्च शिक्षा के लिये प्रवेश लिया और सन् 1941 में इण्टरमीडियट तथा सन् 1943 में बी॰ए॰ डिग्री परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् 1945 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ (इतिहास) **प्रथम श्रेणी तथा प्रथम स्थान प्राप्त** करते हुये उत्तीर्ण किया। सन् 1945 से 1947 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शोध कार्य तथा अध्यापन भी किया। सन् 1947 में **वे आई॰पी॰एस॰ परीक्षा में प्रथम प्रयास में ही चुनकर पुलिस ऑफीसर बन गये।**

अपने पुलिस अधिकारी कार्यकाल में आप पहली सीढ़ी से सर्वोच्च पद पर तरक्की करते–करते पहुँचे। वे उत्तर प्रदेश के **डायरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस** पद से सेवानिवृत्त हुये। उसके बाद वे **यू॰पी॰ पब्लिक सर्विस कमीशन** के **सदस्य** बनाये गये। सारे दायित्वों को बड़ी योग्यता से निभाया। आप महासभा के 36वें अधिवेशन में सारनाथ में अध्यक्ष चुने गये। सन् 1991 के लोक सभा के आम चुनाव में आप पीलीभीति से जनता 'दल के टिकट पर खड़े हुये पर असफल रहे, यद्यपि विजयी उम्मीदवार भारतीय जनता पार्टी के कुरमी जाति के **डा॰ परशुराम गंगवार** थे और हारने वालों में पूर्व केन्द्रीय पर्यावरणं मंत्री, **श्रीमति मेनका गांधी** भी थीं।

इनके परिवार में अनेक लोग ऊँचे–ऊँचे पदों पर हैं चाचा, **बाबू कालीचरन** जनरल मैनेजर सदर्न ईस्टर्न रेलवे से सेवानिवृत्त हुये जिनका हाल ही में निधन हो गया। पुत्र **श्री पंकज गंगवार** यू॰पी॰ में पी॰सी॰एस॰ आफीसर हैं। बड़ी बेटी श्रीमति रंजना सिन्हा तथा दामाद **श्री अनिल सिन्हा**, दोनों आई॰ए॰एस॰ आफीसर हैं। दूसरी बेटी निधि तथा उनके पति अमेरिका में कार्यरत हैं। इसके अलावा, अनेक इंजीनियर, डाक्टर या उच्च सरकारी अधिकारी इनके परिवार के सदस्य हैं।

सैंतीसवां अधिवेशन

महासभा का 37वाँ अधिवेशन 16 और 17 मार्च, 1991 को सम्राट अशोक की ऐतिहासिक नगरी पटना के प्रसिद्ध गांधी मैदान (शिवाजी नगर) में पूर्व डायरेक्टर जनरल आफ पुलिस; उत्तर प्रदेश, श्री महेन्द्रसिंह आई.पी.एस. (सेवा निवृत्त) की अध्यक्षता में बड़े धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। पटना नगर को वर्तमान में बिहार प्रदेश की तथा प्राचीन काल में मगध गणसंघ की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है।

बिहार राज्य का इतिहास सदैव गौरवशाली रहा हैं। **भगवान बुद्ध** और 24वें तीर्थकर भगवान महावीर की जन्म स्थली होने का गौरव इसी प्रदेश को है। आधुनिक पटना, बिहार की मात्र राजधानी ही नहीं है बल्कि प्रसिद्ध प्राचीन नगर पाटलिपुत्र की प्रतिनिधि भी हैं। इसको **मगध के नन्द, मौर्य, शुंग और गुप्त साम्राज्य की राजधानी** होने का गौरव भी मिल चुका है। **भारत देश में पटना जैसे विरले नगर हैं जो लगभग 2500 वर्षों से अपनी महत्ता और गरिमा बनाये हुये हैं।**

मध्यकाल में मुसलमान शासकों ने **नालन्दा** और **उदंतपुरी** के निकट अनेक **बौद्ध बिहारों** की बहुलता देखकर ही इस क्षेत्र को **बिहार** कहना शुरू कर दिया था। अनेक बौद्ध बिहारों वाला नगर **उदंतपुरी** आज भी बिहार शहर **'बिहार शरीफ'** कहा जाता है जो वर्तमान **नालन्दा** जिले का मुख्यालय है। अतः इन बौद्ध बिहारों के कारण इस प्रदेश का नाम कालान्तर में **बिहार** रखा गया था। आजादी बाद जब दिल्ली महानगरी का विस्तार होने लगा तो बौद्ध बिहारों से प्रभावित होकर या प्रेरित होकर इसके निर्माणकर्त्ताओं ने नयी–नयी कालोनियों का नामकरण **'बिहार'** शब्द प्रत्यय लगा कर किया है जैसे **बसंत बिहार, विवेक बिहार, पुष्प बिहार, सरिता बिहार, आनन्द बिहार, सर्वप्रिय बिहार, मौसम बिहार, प्रीति बिहार** आदि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

मुसलमानों के शासन काल में बिहारों का स्वतंत्र और पृथक अस्तित्व बना रहा पर सन् 1764 में बक्सर के किला मैदान में बंगाल के नवाब, **मीर कासिम, अवध के नबाव शुजाउदौल्ला** और मुगल सम्राट **शाह आलम** की संयुक्त सेनायें **ईस्ट इण्डिया कम्पनी** की सेना से निर्णायक युद्ध हार गई। परिणाम स्वरूप **मुंगल बादशाह शाह आलम ने. बंगाल, बिहार** और **उड़ीसा** की **दीवानी ('राजस्व') ईस्ट इंडिया कम्पनी** को सौंप दी और उसने इस क्षेत्र को **बंगाल प्रेसिडेन्सी 'महाप्रान्त'** नाम दिया। **बैरिस्टर सच्चिदानन्द सिन्हा** तथा **बैरिस्टर अली इमाम** और अनेक लोंगों के प्रयासों के बाद **12 दिसम्बर 1911** के दिल्ली में आयोजित **शाही दरबार में अंग्रेज सम्राट** ने **बिहार, उड़ीसा** को मिलाकर एक नया प्रान्त बनाने की घोषणा की, जोकि **1 अप्रैल 1912** को विधिवत उद्घाटिक हुआ। सन् 1936 में उड़ीसा को बिहार प्रान्त से अलग कर दिया गया। सन् 1956 में भारत में राज्यों की सीमा में भी परिवर्तन आया। फलस्वरूप पूर्णिया जिले के कई थाने बंगाल प्रान्त में शामिल कर दिये गये और उधर मानभूम 'पुरूलिया' का अधिकांश भाषा के आधार पर बंगाल प्रान्त में चला गया।

इसी पटना महानगरी में **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** का **तीसवाँ अधिवेशन** सन् 1971 में आयोजित हुआ था। उससे पूर्व भी बिहार प्रान्त में **एखलासपुर (वर्तमान में जिला रोहतास)** में 1909 में तथा **मुजफ्फरपुर** में सन् 1929 और **हरनौत** (पटना जिला) में सन् 1933 तथा **छपरा** में सन् 1936 में भी अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के तत्वावधान में अधिवेशन हो चुके थे।

आयोजकों ने इस 37 वें अधिवेशन को पहले 3 एवं 4 फरवरी 1991 को सम्पन्न करना निश्चित किया था। लेकिन 15 जनवरी 1991 से यकायक **खाड़ी युद्ध** पूरे वेग से भड़क पड़ने से, रेल–व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गई और अधिवेशन के आयोजकों ने पटना से बाहर तथा देश के दूर–दूर प्रदेशों से आने वाले प्रतिनिधियों की यात्रा–असुविधायों को ध्यान में रखकर, उसकी तिथियाँ बदलकर 16 एवं 17 मार्च 1991 कर दीं।

इस अधिवेशन में अन्य कई प्रकार के व्यवधान भी पड़े, जैसे **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** के अध्यक्ष/महामंत्री से पटना में अधिवेशन बुलाने के लिये **प्रादेशिक सभा** द्वारा महासभा के विधान एवं नियमावली के अनुसार समय से स्वीकृति पाने की प्रक्रिया को पूरा न कर पाने पर और इसी प्रकार इन सब का उल्लंघन कर बिना महासभा की जनसभा की सहमति के स्वतः प्रादेशिक सभा का नाम **'बिहार राज्य कुर्मी सभा'** तथा महासभा तक का नाम अपने आप बदलकर **'अखिल भारतीय कुर्मी महासभा''** कर दिया गया अर्थात् उन नामों से **'क्षत्रिय'** शब्द को निंकाल फेंका तथा **'कूर्मि'** शब्द का अपभ्रंश 'कुर्मी' करके नाम बदल दिया। 37 वें अधिवेशन की प्रचार–सामग्री तथा प्रकाशित स्मारिका तक में इन बदले नामों का ही धड़ल्ले से प्रयोग किया गया। देश के अन्य प्रदेशों वाले कुरमियों ने महासभा के पदाधिकारियों तथा कार्यकारिणी समिति के सदस्यों ने इसे महासभा के विधान तथा नियमावली की और महासभा की भी अवहेलना समझा। जिससे महासभा के पदाधिकारियों तथा सदस्यों में निराशा और क्षोभ उत्पन्न होना स्वाभाविक था। कई तरह के प्रश्न उठे और पदाधिकारियों ने महासभा की ओर से भाग न लेने का भी निर्णय ले लिया और संरक्षक, महामंत्री तथा अनेक पदाधिकारी एवं सदस्य पटना अधिवेशन में भाग लेने नहीं पहुँचे। केवल वे पदाधिकारी और सदस्यगण ही पहुँच पाए जिन्हें कार्यकारिणी समिति के अधिवेशन में भाग न लेने के निर्णय की सूचना नहीं दी जा सकी थी। इस निर्णय के एक घटक होने पर भी **अध्यक्ष महोदय** समय से पटना जा पहुँचे। यह लेखक, जोकि महासभा का **वरिष्ठ उपाध्यक्ष** था, उसे कार्यकारिणी समिति के अन्तिम समय में ली गयी पटना जाने के निर्णय की सूचना नहीं मिली, अतः वहाँ वह समय से पहुँच गया। लाजपत भवन में ठहरे उत्तर प्रदेश और दिल्ली के प्रतिनिधियों सहित यह लेखक भी ठहर गया।

अ. भा. कू. क्ष. महासभा की **कार्यकारिणी समिति** तथा **अध्यक्ष/महामंत्री** आदि निम्नलिखित आपत्तियों के कारण, **पटना अधिवेशन** को अपने **सार्वदेशिक संगठन** के **महाधिवेशन** की मान्यता देने को तैयार न थे :–

1. पटना अधिवेशन का आयोजन महासभा का असम्बद्ध विषय मानकर स्वतंत्र रूप से किया गया था। उसके वाराणसी कार्यालय से या अध्यक्ष महोदय, **श्री महेन्द्र सिंह,** से कोई समुचित सम्पर्क नहीं रखा गया।

2. अधिवेशन के आयोजन में न तो महासभा के पदाधिकारी वर्ग को विश्वास में लिया गया और न उन्हें सहज भूमिका निभाने का मौका दिया गया।

3. अधिवेशन का सूचना–पत्र भी महासभा की ओर से अध्यक्ष, महामंत्री एवं कोषाध्यक्ष के हस्ताक्षरों के बिना अनाधिकारिक और अप्रमाणिक तौर पर प्रसारित किया गया।

4. अखिल भारतीय स्तर पर स्वजातीय प्रतिनिधियों और श्रद्धालु जनों को आमन्त्रण न देकर अधिवेशन की सार्वदेशिक सीमा घटाकर प्रादेशिक, संकुचित तथा स्थानीय बना दिया गया।

5. अधिवेशन के **सूचना-पत्र** में महासभा के नाम से स्वतः **'क्षत्रिय'** शब्द हटाकर, रायपुर (मध्य प्रदेश) के सन् 1981 के 34 वें अधिवेशन के **'क्षत्रिय'** शब्द सम्बन्धी सर्वसम्मति से पारित जनसभा के प्रस्ताव का घोर अनादर **उच्छृंखलता, नासमझी** और **सरासर अवैधानिकता का अनुकरण करने का, अनुशासनहीनता पूर्ण प्रदर्शन किया।**

6. सूचना–पत्र के अनुसार **'अखिल भारतीय कुर्मी महासभा'** का उसे 37 वाँ महाधिवेशन होना कहा गया, जबकि इस नाम की विधिवत् कोई भी संस्था तब तक अस्तित्व में न थी।

'अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा' नियमानुसार निबन्धित संस्था है जिसका लगभग 97 वर्ष का पुराना इतिहास है। गत् 36 महाधिवेशनों की गौरवशाली परम्परा है। देश के अधिकाश भागों में महासभा से सम्बद्ध शाखायें कार्यरत हैं। इसका प्रचार–प्रसार, **''कूर्मि क्षत्रिय जागरण''** नामक इसकी मुख्य मासिक पत्रिका द्वारा सन् 1958

से होता चला आया है। **फिर भी इन्हीं मर्यादाओं की सरासर अवहेलना करके मनमाने ढंग से पटना सम्मेलन को महासभा का अपना अधिवेशन कह के रोपित करना किसी भी माप दंड़ या साधारण व्यावहारिकता की दृष्टि से भी उचित न था।**

अब पटना अधिवेशन पर दृष्टिपात किया जाये पटना के गांधी मैदान में पंड़ाल, मंच तथा अनेक द्वार **'शिवाजी नगर'** नाम देकर उस परिसर को, बड़े कलात्मक तथा मनोरंजक ढंग से **राजरंजन डेकोरेटर्स,** हीरापुर, **धनवाद (बिहार)** के मालिक तथा स्वजातीय समाजसेवी, **श्री राजमंगल सिंह,** द्वारा सजावट के साथ बनाया गया। **छत्रपति शिवाजी महाराज** के चित्र **'शिवाजी नगर'** के द्वारों पर खूब सजावट के साथ लगाये गये थे। अधिवेशन के हर विभाग का कार्य सुचारू रूप से, निर्विघ्न चले, इस हेतु अनेक आवश्यक समितियों तथा उपसमितियों का गठन कर संयोजकों के नेतृत्व में समस्त दायित्व का विभाजन कर दिया गया था, जैसे उन समितियों के अध्यक्ष, संयोजकों आदि के

नाम इस प्रकार थे :–

1. परामर्शदाता समिति : अध्यक्ष, **श्री भोला प्रसाद सिंह** पूर्व मंत्री बिहार सरकार
2. स्वागत समिति : स्वागताध्यक्ष, **श्री उपेन्द्र वर्मा**, मंत्री बिहार सरकार
3. अर्थ समिति : अध्यक्ष, **श्री नारायण सिह,** अध्यक्ष कूर्मि क्षत्रिय समाज, बिहार
4. आवास समितिः संयोजक, **प्रो॰ राम प्रवेश सिंह**
5. पर्यटन समितिः संयोजक, **मेहता नगेन्द्र सिंह**
6. महिला समितिः संयोजिका, **प्रो॰ उषा सिंह**
7. केन्द्रीय प्रचार एवं अभियान समितिः संयोजक, **श्री सिद्धेश्वर**
8. पंडाल समितिः संयोजक, **श्री राजमंगल सिंह,** राजरंजन डेकोरेटर्स, हीरापुर, धनवाद
9. विषय समितिः अध्यक्ष, **श्री यू॰ एन॰ सिन्हा,** आई॰ ए॰ यस॰ (सेवानिवृत्त)
10. स्मारिका सम्पादक मंडल : संयोजक, **प्रो॰ राम बुझावन सिंह,** सह–संयोजक, **श्री सिद्धेश्वर** और **श्री जे॰ पी॰ सिंह**
11. भोजन समितिः संयोजक, **श्री सुशील कुमार सिन्हा**
12. पटेल ब्रिगेड़ः संयोजक, **श्री सुशील कुमार**

37 वें महाधिवेशन का सूचना पत्र तथा दो दिनों के विस्तृत कार्यक्रम का व्यौरा प्रसिद्ध आयुर्विज्ञान के प्रोफेसर एवं **डा॰ मोहन सिंह** जी के नाम से **'केन्द्रीय संचालन समिति' बिहार राज्य कूर्मि सभा** की ओर से जारी किया गया था और इन इश्तहारों में अन्य किसी भी पदाधिकारी का नाम प्रकाशित नहीं किया गया था।

बिहार का बड़ा रोचक तथा प्राचीन इतिहास है। बिहार के वर्तमान प्रदेश में मिथिला, मगध, भोजपुर और झारखंड़ के ज्यादातर जनपद शामिल है। इस सब की अपनी–अपनी संस्कृति तथा इतिहास है। बिहार प्रान्त को कायम हुए 76 वर्ष बीत चुके हैं। पर अब तक इन संस्कृतियों का कोई समन्वय नहीं हो पाया है। इसी प्रकार बिहार के कुरमियों में विभिन्न उपजातियें या शाखायें हैं, जैसे **अवधिया, घमैला, कौचेसा, जयसवार, समसवार, पटनवार, चन्देल, रमैया, तैलंग, दोजवारा धानुक** आदि, पर यहाँ अब बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में भी भयकर ऊँच–नीच की भावना

विद्यमान है बिहार में वर्तमान में चालीस जिले हैं यहाँ से 54 सासंद और 324 विधायक क्रमशः लोक सभा और विधान सभा के सदस्य हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि बिहार की वर्तमान आबादी 9 करोड़ है और इस आबादी के लगभग 14% कुरमी हैं। इतनी बड़ी जनसंख्या के बावजूद हमारी कुरमी जाति की दशा प्रदेश मे अच्छी क्यों नहीं? निःसंदेह **इसका एक मात्र कारण नजर आता है पुराने जमाने से चली आ रही जाति की विभिन्न शाखाओं, उपजातियों में एकता की कमी तथा रोटी-बेटी के सम्बन्ध का अप्रचलन**। मुँह से सभा मंचों से तो समता, एकता, भाई चारे की बातें करेंगे पर उनकी कथनी करनी में अभी भी अन्तर है। तीन उपजातियां यथा **अवधिया, घमेल (धमैला)** और **कौचेसा** अभी भी पूर्ण रूपेण कुरमियों की मूलधारा में अपने को आत्मसात् नहीं कर पाई हैं। बिहार की प्रमुख कुरमी जातियों का सँक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :-

अवधिया : मुख्यतः ये कुरमी **छपरा, सिवान, गोपालगंज, चम्पारण, वैशाली, पटना, नालंदा, रोहतास, भोजपुर, औरंगाबाद** एवं **जहानाबाद** जिला में एवं कुछ **पलामू, नबादा, गया, मधुबनी एवं दरभंगा** जिलों में बसे हैं। इस शाखा के पूर्वज **'अवध'** के आने के कारण **'अवधिया'** कहलाये। इनकी कुल जनसंख्या बिहार में लगभग 21 लाख हैं।

इस शाखा में विशिष्ट व्यक्ति हैं, **श्री नीतिश कुमार** पूर्व केन्द्रीय कृषि राज्य मंत्री एवं सांसद (बाढ़), **स्व. श्री देवशरण सिंह** पूर्व मंत्री, **स्व. श्री धर्मवीर सिन्हा**, पूर्व केन्द्रीय मंत्री, **स्व. श्री जनकधारी लाल**, प्रसिद्ध कूर्मि जातीय समाजसेवी, महासभा के पूर्व अध्यक्ष स्व. **श्री दासूसिंह** अधिवक्ता, प्रसिद्ध चिकित्सक एवं चिकित्सा विज्ञान शास्त्री **डा. मोहन सिंह** वर्तमान अध्यक्ष बिहार प्रदेश कुरमी महासभा एवं प्रान्तीय भाजपा उपाध्यक्ष, **डा. श्याम नारायण आर्य, प्रो. रामबुझावन**, पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, बी. एन. कालेज, पटना विश्वविद्यालय। इनके अतिरिक्त एक लम्बी सूची डाक्टरों, इंजीनियरों, प्राध्यापकों, अधिवक्ताओं शिक्षा शास्त्रियों, राजनीतिज्ञों तथा जीवन की अन्यान्य विधाओं में सुख्याति प्राप्त नामवर लोगों की बन सकती है।

जयसवार : इस शाखा के लोगों के पूर्वज वर्तमान उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र के अन्तर्गत रायबरेली जिले की **'जायस'** तहसील से आने के कारण **जयसवार** या **जैसवार** कहलाते हैं। इस नामकरण के अन्य कारण इस पुस्तक में अन्यत्र विस्तार से दिये गये हैं। **इस उपजाति को बिहार के कुरमियों की रीढ़ समझा जाता है।** झारखंड क्षेत्र को छोड़कर बिहार के प्रत्येक जनपद में जयसवार कुरमी बसे हुए हैं। अच्छी खासी आबादी हैं। और जीवन के हर क्षेत्र में ये आगे बढ़ रहे हैं।

जयसवार उपजाति के लोग बिहार के पूर्वी चम्पारण, वैशाली, सीमीमढ़ी, मधुवनी, दरभंगा, पुर्णिया समस्तीपुर, खगड़िया, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, मधेपुरा, सहरसा, गया, नवादा, रोहतास, गोपालगंज तथा छपरा जिलों में बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। इस शाखा की जनसंख्या यहाँ के अवधिया कुरमियों से कम नहीं है और लगभग 21 लाख की ही है। इस जाति पर कुरमियों के तथाकथित एवं स्वजातीय बड़े भाइयों ने बड़े अपमानजनक व्यवहार किये हैं पर अब और तब के जयसवारों में जमीन और आसमान का अन्तर है। हर क्षेत्र में वे अग्रसर हो रहे हैं। हरनौत अधिवेशन के जमाने की मनोवृत्ति लोग भूल जाएं और तज दें तो अच्छा है नही तो अब मुँह की खानी होंगी। जो कि सबको अहितकर होगा। इस उपशाखा की एक विशेषता यह है कि इनकी उपशाखा के कुरमियों की उत्तर प्रदेश में अग्रिम उपजातियों में गणना होती है, अन्य उपशाखाओं के कुरमी बिहार से बाहर बहुधा मिलेंगे ही नहीं।

इस उपजाति के विशिष्ट व्यक्तियों में वर्तमान सांसद, मुंगेर लोकसभा क्षेत्र के श्री ब्रह्मानन्द मंडल (सी. पी. आई), स्व. डा. वटेश्वर प्रसाद, पूर्वविधायक एवं पूर्व अध्यक्ष, बिहार प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय महासभा, श्री राम बालक महतो, महाधिवक्ता बिहार, प्रो. लाल जी प्रसाद, पूर्व विभागाध्यक्ष, बी. एन. कालिज, पटना विश्वविद्यालय, डा. मेहता नगेन्द्र सिंह, स्व. श्री रामचन्द्र सिंह, प्रख्यात चर्मरोग विशेषज्ञ डा. जे. एन. सिन्हा एवं डा. बी. एस.

भोंसले तथा अनेक डाक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक, अधिवक्ता, तथा अन्याय सरकारी और गैरसरकारी एवं निजी व्यवसायों में प्रसिद्धि प्राप्त जयसवार कुरमी जन हैं।

समसवार : इस शाखा को समस्तवार, समराज आदि नामों से भी जाना पहचाना जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है कि घोड़े की सवारी करने वाला जो कि समार्थी जयसवार का है, पर ये उनसे अपने को भिन्न मानते हैं। अपने पूर्वजों का उद्‌गम स्थान महाराष्ट्र का **'समसपुर'** नामक स्थान मानते हैं। इस उपजाति के कुरमीजन विशेष करक बिहार के मुंगेर, दरभंगा, सीतामढ़ी, वैशाली, मुजफ्फरपुर, मधुबनी और मधेपुरा एवं सहरसा जिलें में बसे हुए हैं। इस उपजाति की कुल आबादी 10 लाख के लगभग है।

इनके विशिष्ट व्यक्तियों में दो मंत्री वर्तमान **श्री लालू प्रसाद यादव जी के मंत्रिमंडल में हैं,** ये **श्री उपेन्द्र प्रसाद वर्मा,** मंत्री, संसदीय कार्य एवं वाणिज्य कर तथा **श्री गजेन्द्र प्रसाद सिंह,** राज्यमंत्री सूचना एवं प्रसारण। **स्व. श्री जोगेश्वर मंड़ल,** पूर्व मंत्री। समसवार कुरमियों की दो स्टेट्स थीं, (प्रथम) **ब्रह्मज्ञानी स्टेट** (द्वितीत) **अमरपुर स्टेट,** मुंगेर जिलें में इसके अतिरिक्त अनेक बुद्धिजीवी, समाज सेवी, राजनीतिज्ञ और विभिन्न व्यवसाय अथवा पुश्तैनी खेती में लगे सम्पन्न व्यक्ति हैं।

घमैला : बताया गया है कि इस शाखा के पूर्वज, महाराष्ट्र और गुजरात के सीमान्त प्रदेश में स्थित **'घामर'** नामक स्थान के निवासी थे, वे मराठी सेना में सैनिक और सामन्त पदों पर कार्यरत थे। 18 वीं सदी तक, दिल्ली सल्तनत का अधःपतन हो गया तब मराठी सेना के अनेक मराठा सरदार अपने राजा सहित बिहार आये और यही के होकर रह गये, अपने मूल उद्‌गम स्थान से कालान्तर में कट गये। युद्ध समाप्ति के पश्चात् कृषि कार्य में जुट गये जो कि उनका पैतृक व्यवसाय था। पर अब वे पूर्णतः बिहार वासी कुरमी के रूप में हैं। इस शाखा के लोग मुख्यतया **नालन्दा, पटना, मुंगेर, नवादा. एवं कुछ गया एवं जहानाबाद** जिलों में बसे हैं। इनकी आबादी 6 लाख से ज्यादा है। इनमें काफी शिक्षा और सम्पन्नता है और उसमें तेजी से वृद्धि हो रही है। J.C. Nesfield ने उत्तर प्रदेश के गम्हेला कुरमियों को और बिहार के घमैला दोनों को एक माना है पर लगता है दोनों भिन्न हैं।

इस शाखा में **श्री गुरू सहाय लाल** प्रसिद्ध समाज सेवी, स्व. **श्री लालसिंह त्यागी** पूर्व मंत्री, **प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद** पूर्व केन्द्रीय मंत्री और प्रसिद्ध साहित्यकार, **स्वं. रामशरण सिंह,** पूर्वमंत्री एवं अध्यक्ष, बिहार प्रदेश कांग्रेस (इ) **श्री परमेश्वर दयाल,** पूर्व कुलपति , पटना एवं मगध विश्वविद्यालय, प्रसिद्ध चिकित्सक, **डा. लखनलाल सिन्हा,** वर्तमान विधायक, **श्री सतीश प्रसाद सिंह** आदि है। इसके अतिरिक्त सैकड़ों बुद्धिजीवी, व्यवसायी, समाजसेवी, राजनीतिज्ञ एवं सम्पन्न तथा कुशल कृषक हैं।

कोचैसा : मान्यता है कि 1660 ई. के आस–पास, जयपुर राज्य के **'कोचस'** क्षेत्र के अनेक मराठा कुरमी परिवार, दो विशाल दलों में दो बार में सामूहिक रूप से उखड़कर बिहार में उपयोगी भूमि मिलने पर जहाँ–तहाँ बसते गये। अपने उद्‌गम स्थान **'कोचस'** को उन्होंने अपने उपजातीय नाम से जोड़कर उसे अमरत्व प्रदान किंया और कालान्तर में वे **कौचेसा कुरमी** नाम से जाने पहचाने जाने गये। इनकी मुख्य आबादी **नालन्दा, पटना, मुंगेर, औरंगाबाद, जहानाबाद एवं गया** जिलों में है। इनकी कुल आबादी 5 लाख है।

इस शाखा के प्रमुख व्यक्तियों में **स्व. श्री दुन्नीलाल जी** प्रसिद्ध समाज सुधारक, **स्व. रामराज प्रसाद सिंह,** पूर्व मंत्री, वर्तमान कृषि राज्य मंत्री, **श्री हरिनारायण सिंह,** प्रसिद्ध जातीय इतिहास लेखक **श्री रामकृष्ण मेहता,** प्रसिद्ध चर्म रोग विशेषज्ञ **डा. ए. पी. एस. प्रकाश** का यहाँ जिक्र किया जा रहा है। इनके अतिरिक्त हजारों की संख्या में ये लोग डाक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक, अधिवक्ता, सफल व्यवसायी, राजनेता और सम्पन्न कृषक हैं।

चंदेल (चनऊ) : इस उपजाति के कुरमी मुख्यतः बिहार के **रोहतास, भागलपुर, साहेबगंज, गोड्डा एवं चम्पारण** जिलों में काफी संख्या में बसे हैं। ये लोग अपने को चन्द्रवंशी क्षत्रियों की सन्तति मानते हैं, परन्तु उत्तर प्रदेश के चन्देल कुरमियों की ऐसी आस्था रही है कि प्राचीन काल में **चन्द** नामक एक अति प्रतापी राजा हुए, उन्हीं के वंशज **चन्देल** कहलाये। दशवीं शताब्दी के मध्य काल में इसी वंश के **'नानुक'** नामधारी सामन्त ने महोबा में अपना राज्य स्थापित किया, जो आगे चलकर उत्तर भारत का विशाल राज्य बन गया। इस वंश के प्रायः सभी राजा अपने नाम के साथ **'वर्मन'** आस्पद का प्रयोग करते थे। यह राज्य तो इतना विशाल और वैभवपूर्ण हो गया था कि इतिहासकार उनका स्वतः राजपूतीकरण करके उन्हें राजपूत कहने लगे। मध्य काल में, दक्षिण भारत के **छत्तरपुर** तथा **खजुराहों** के आस–पास के विशाल राज्य उन्हीं **चन्देलों** के थे। — बेलगाम के आस–पास चन्देल कुरमी वर्तमान में भी आबाद हैं। **जगत् प्रसिद्ध खजुराहो के मन्दिर की भी काम-शास्त्र की दृष्टव्य बारीकियों, कलाओं के साथ-साथ मन्दिर निर्माण के लिये चन्देल राजाओं को जग जानता हैं। उन्हीं चन्देल राजाओं के कुरमी वंशज आज भी महोबा अंचल में मिलते हैं।** साथ–साथ बड़ी संख्या में इलाहाबाद प्रभाग के जिलों में भी बसे हुये हैं। **चन्देल** के अपभ्रंश या स्थानान्तर के कारण विभिन्नता वाले जातिबोधक नाम जो प्रचलित हो गये वे हैं, **चन्द्रावल, चन्दौल, चनाऊ, चनऊ** इत्यादि।

बिहार में इस उपजाति के कुरमी लगभग दो लाख है। इसमें ज्यादातर लोग शिक्षित, सम्पन्न और समाज में प्रमुख स्थान बनाये हुये हैं। इनमें **श्री रामधनी सिंह** विधायक एवं अध्यक्ष बिहार राज्य आवास बोर्ड, **श्री सदानन्द सिंह** पूर्व मंत्री, **श्री अवध बिहारी सिंह**, पूर्व मंत्री एवं **श्री ठाकुर प्रसाद सिंह** प्रमुख हैं।

धानुक :– कुरमी जाति की यह शाखा भी अत्यन्त पिछड़ों की सूची में आती है यह जयसवार शाखा के कुरमियों की ही एक उपशाखा है, जो **मोकामा टाल** क्षेत्र में एवं उत्तरी बिहार के **मधुबनी, पूर्णिया, सहरसा, मधेपुरा, दरभंगा, खगड़िया** जिलों में बड़ी संख्या में बसी हुई है। **डा. बुकानन** ने धानुकों के सम्बन्ध में लिखा है–

"For any Jaiswar kurmi, who from poverty sells himself or his children, is admitted among the Dhanuks, who are not essentially different from kurmis."

इस शाखा के विशिष्ट व्यक्ति है हरियाणा के राज्यपाल **श्री धनिक लाल मंडल**, पूर्व रक्षा राज्य मंत्री भारत सरकार एवं **श्री मंगनीलाल मंड़ल**, मंत्री बिहार सरकार आदि हैं।

रमैया : इस उपजाति के कुरमी अपने को **श्री रामचन्द्र जी** का वंशज मानते हैं। एक तरह से उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र से ही इनके पूर्वजों का आगमन हुआ होगा और वे बिहार प्रदेश में बस गये। ये लोग अपनी उपजाति **'रमैया'** बताते हैं। और नाम में **राम** शब्द भी प्रयोग करते हैं जैसे **श्री शिवनारायण राम**, जिनके नाम पर सरकार ने एक रेलवे स्टेशन (उनके जन्म स्थान के निकट में) का नाम रखा हैं, **स्व. डा. के. पी. राम** भागलपुर के इस जाति के बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति हुये। इनके परिवार में अनेक पुरुष और स्त्री डाक्टर हैं। इस परिवार के एक व्यक्ति **श्री पी. वी. सिंह** का विवाह पीलीभीत के प्रसिद्ध मुख्तयार **बाबू डोरीलाल** जी की पुत्री से हुआ है, जोकि **स्व. वीर चन्द पटेल** पूर्व मंत्री बिहार की **पत्नी श्रीमती श्यामा पटेल**, पूर्व एम. एल. सी. की छोटी बहिन हैं और ये दोनों स्त्रियाँ पीलीभीत (उ. प्र.) के **जयसवार कुरमी उपजाति** की हैं।

तैलंग : इस उपजाति के लोग दक्षिण भारत के तेलंगाना क्षेत्र से आये थे। इस उपजाति के कुरमी मुख्यतया **वैशाली, मुजफ्फरपुर, सीतागढ़ी** एवं **समस्तीपुर** जिलों में से हैं। इनकी जनसंख्या लगभग 1 लाख है। विशिष्ट व्यक्तियों में स्व. **श्री चन्द पटेल**, पूर्व स्वारथ्य मंत्री, **श्री वृषिण पटेल** वर्तमान लोकसभा सदस्य (सिवान) जनता दल और **श्री बृजराम सिंहा** आदि हैं। कृषि व्यवसाय अभी भी इनका पुश्तैनी पेशा है।

पटनवार : ये उत्तर प्रदेश और बिहार दोनों प्रदेशों में बड़ी संख्या में बसे हुये हैं। पटनवार कुरमियों के सम्बन्ध में अनेक धारणायें हैं। उनमें से एक है कि ये वे मराठे कुरमियों की सन्तति हैं। जो महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर के निकट **'पाटन'** अंचल में बसे सरदारों और सैनिकों के रूप में मराठा फौजों के साथ आये थे। अनेक वर्षों वे फौजें उत्तर भारत में रही अतः अनेक सरदारों ने बिहार और उ॰ प्र॰ की भूमि जो पाटन से अधिक उपजाऊ और भूजल सुलभ पाकर यहीं बस जाने का विचार बना डाला। **पाटन** आज भी **पाटन साड़ियों** के लिये सारे देश में **प्रसिद्ध** है परन्तु औरंगाबाद, पाटन व दौलताबाद के पूरे क्षेत्र में पानी की किल्लत है। जमीन भी समतल नहीं है। ट्यूब वैल से हजारों फुट नीचे से पानी प्राप्त हो पाता है। **मोहम्मद तुगलक** राजधानी को **दिल्ली** से **पाटन** के निकट **दौलताबाद** ले गया था पर पानी की भयंकर कमी देखकर वह फिर लोगों को **दिल्ली** वापिस ले आया। इस उल्लेख का तात्पर्य है कि जब **पाटन** के मराठा कुरमियों ने दोआबा (गंगा व यमुना के मध्य वाला भू–भाग और बिहार का समतल इलाका देखा तब बसने का मन बनाने में देर न लगी होगी। इस लेखक का **पाटन औरंगाबाद** और **दौलताबाद** आदि देखा हुआ है क्योंकि इनकी अमेरिका में बसी पुत्री, **श्रीमती सुनीता सिंह,** की ससुराल **औरंगाबाद** शहर में ही स्थित है।

बिहार प्रदेश में **पटनवारों** की आबादी मुख्यतया **रोहतास** एवं कुछ पश्चिमी **चम्पारण** और **गोपाल गंज** जिलों में और उत्तर प्रदेश से सटे सीमान्त अंचलों में है। रोहतास जिले में पटनवार कुरमियों के साठ गांव एक ही जगह आस–पास आबाद हैं। बिहार में इस शाखा की आबादी लगभग एक लाख से थोड़ी ही कम होगी। इसमें भी शिक्षा और सम्पन्नता में कमी नहीं है। इसके गिनाने के लिये प्रमुख नाम है **स्व॰ श्री गुप्तनाथ सिंह,** पूर्व विधायक व पूर्व महामंत्री (28 वर्ष तक) **अ॰ भा॰ कू॰ क्ष॰ महासभा** तथा संस्थापक सम्पादक **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'**, **श्री केशरी सिंह** अधिवक्ता, **श्री भान प्रताप सिंह** (एखलास पुर) आदि इस शाखा के लोग बड़े प्रतिष्ठावान और समाज में अग्रणी महानुभाव रहे हैं। सफल एवं सम्पन्न कृषक तो ये सदा से ही।

सैंथवार :– बौद्ध कालीन भारत में **संस्थागार** (सभा भवन) होते थे, जहाँ बैठकर बौद्ध बुद्धिजीवी गण सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक विषयों पर सामूहिक विचार–विमर्श करते थे। संस्थागारों की सुरक्षा और व्यवस्था जिस सैनिक वर्ग के हाथों में रहती थी वे लोग संस्थागारक या संस्थागार भी कहलाते थे। ऐसा अनुमान है कि संस्थागार का अपभ्रंश सैंथवार हो गया। इलाहाबाद विश्वविधालय में **डा॰ सत्यव्रत सिन्हा** के डाक्ट्रेट डिग्री के शोधग्रंथ में इसी बात को बड़े तर्क पूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया है। बौद्ध कालीन भारत में शस्त्रधारी सुरक्षाकारी मल्ल खत्रिय कुल के थे। **(डा॰ उदयनारायण तिवारी-'ओरिजन ऐंड डेवलेप्मेंट आफ भोजपुरी")।**

सैंथवार कुल के मल्लों की नौ शाखाएँ हैं। इन नौ मल्लों में इतिहासकारों ने सिर्फ पाँच शाखाओं **पावा एवं कुशीनारा के मल्लों , रामग्राम के कोलियों, पिप्पली वन के मोरायों** एवं **कपिलवस्तु के शाक्यों** का खूब उल्लेख किया है। बौद्ध ग्रन्थों से प्रमाणित हो चुका है कि ये समस्त कुल प्राचीन खत्रिय (क्षत्रिय) कुल हैं। क्योंकि वे वैदिकधर्म या ब्राह्मणधर्म को अस्वीकार करके बौद्ध एवं जैन धर्म के अनुयायी हो गए थे, अतः ब्राह्मणग्रन्थों में इन्हें **ब्रात्य** कहा गया है।

सैंथवारों या नौ **मल्लों** को समस्त समाज पूर्वकाल से **कुर्मी** कहता है बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ अवधियों की तरह वे भी अपने को **ठाकुर** या **राजपूत** कहते थे। पर वास्तव में ये समस्त कुर्मी समाज प्राचीन गणराज्यों के प्राचीन खत्तिय समाज के प्राचीन कुलीन घराने से हैं। प्राचीन काल में (ई॰ पू॰ 600) उत्तरी भारत के पूर्वी भाग में नौ गणराज्य **शाक्य, भग्ग, बुली,** कालाम, **कोलिय, मल्ल, मोर्य, विदेह** तथा **लिच्छवी थे।** ये सब गणराज्य वर्तमान में उत्तर प्रदेश के **बस्ती, गोरखपुर** तथा **बिहार** में उनके उत्तर–पूर्व **मुजफ्फरपुर** तथा आस–पास के अंचल में फैले हुये थे।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री (''भारतीय **संस्कृति का इतिहास**''–पृष्ठ 578 -582) तथा अन्य इतिहासज्ञ **पावा**

कोदेवरिया का पड़रौना बताते थे जहाँ के स्व. श्री सी. पी. एन सिंह सैंथवार कुरमी राजपरिवार के सदस्य थे जोकि पूर्व सांसद एवं केन्द्रीय मंत्री भारत सरकार रहे थे। पड़रौना स्टेट सैंथवार कुरमियों की रही है यह सर्वविदित है। अपने कथन की पुष्टि में उनका कहना है कि **पावा** (आधुनिक **पड़रौना**) के **मल्ल, भगवान बुद्ध** के परम भक्त थे; **बुद्ध** अपने **महा परिनिर्वाण** के कुछ पूर्व **पावा** में थे। **और अस्वस्थ थे; अस्वस्थता की ही दशा में वे पैदल चल कर कुशीनारा (पहले का कुशावती और आज देवरिया जनपद का कसया तक गये थे।** अतः **पावा** को **कुशीनारा** के समीप ही होना चाहिए, सो हैं। अतः वर्तमान पड़रौना की स्थानीय स्थिति, उसकी प्राचीनता तथा उस क्षेत्र में आज भी प्राचीन वंशों के कुरमियों का निवास आदि बातें स्पष्ट रूप से बतातें हैं कि **पड़रौना** प्राचीन काल का **पावा** ही है।

बिहार के शहरों में लगता है कि नई रोशनी का प्रकाश पहुँचा है और जात–पाँत की संकुचित भावना से कुछ मुक्ति मिली है, क्योंकि ध्यान देने से पता चलता है कि यहाँ धन से जाति की ऊँचाई आँकी जाने लगी है। वहाँ के लोग बताते हैं कि अब गाँवों में भी सजातीय वर्गो में पहले जैसी ऊँच–नीच की भावना नहीं है और सहभोज आदि से परहेज़ नहीं रहा है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कुरमियों में ऊँच–नीच का भेद–भाव अब बिलकुल समाप्त हो गया है। कुरमियों में शाखान्तर विवाह का प्रचलन आम नहीं हो पाया है। बिहार के कुरमी अन्य प्रदेशों के लोगों से ज्यादा स्नेह एवं आदरभाव प्रदर्शित करते हैं।

कुर्मी-कुशवाहा एकीकरण

बिहार प्रदेश में दूसरी ओर कुर्मी–कुशवाहा एकीकरण की दिशा में भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। ऐसा कोई भी प्रयास उत्तर–प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि में इन दो जातियों के एकीकरण की दिशा में अब तक नहीं हुआ है। बिहार से प्रेरणा लेकर दोनों जातियों की ओर से निकट आने का, भाई–चारा स्थापित करने का तथा रोटी–बेटी के रिश्तों को कायम करने का शीघ्र प्रयास अन्य प्रदेशों में भी होना अति आवश्यक है।

इसी से सम्बधित **'लव-कुश'** संघ तथा **कुर्मी, कोयरी तथा यादव** बन्धुओं को बिहार प्रदेश में साथ लेकर **''त्रिवेणी-संगम''** बनाने की चर्चायें भी सुनने को मिली हैं, किन्तु अपरिहार्य कारणों से ये प्रयास अभी तक सफल नहीं हो पाये हैं, पर इसमें लगे भगीरथ--जन फिर प्रयत्नशील हैं और प्रशंसा और साधुवाद के पात्र हैं। ये सब प्राचीन क्षत्रिय जातियां है परन्तु सनातनी ब्राह्मणों के कोप से वर्ण–व्यवस्था में नीचे ढकेल दी गई हैं। उनका उच्च्य स्तरीय प्राचीन इतिहास विस्मृत और गायब कर दिया गया है।

जैसे पहले कहा जा चुका है कि 37 वें अधिवेशन के लिये **शिवाजी नगर, गांधी मैदान** में भव्य विशाल मंड़प तथा मंच सुसज्जित किया गया था जिसमें लगभग एक लाख व्यक्तियों की एक साथ बैठकर सभा करने की, और बिजली माइक आदि सब चीजों की व्यवस्था भी की गई थी। कूपन वितरण, प्राथमिक चिकित्सा, स्वजातीय इतिहास एवं पत्र–पत्रिकाओं के अनेक स्टाल लगे थे। उत्तर प्रदेश के **श्री सत्यनारायन चौधरी** की **प्रसिद्ध प्रदर्शनी, कुर्मी समाज के** विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सांख्यकी के मानचित्रों तालिकाओं तथा सारणियों के माध्यम से प्रदर्शित की गयी, स्वाभाविक रूप से वह दर्शकों के आकर्षण का प्रमुख स्थल बना हुआ था। पचास रूपये के कूपन पर भोजन एव जलपान की सुविधा प्रदान की गई थी। **पटेल ब्रिगेड़** के युवा कार्यकर्त्ता बड़े उत्साह के साथ प्रतिनिधियों की सहायता करने में तथा अधिवेशन को सफल बनाने में जी–जान से लगे हुये थे।

झण्डोत्तोलन के पश्चात् लगभग 10 बजे प्रातः **गाँधी मैदान** से एक **विशाल शोभा यात्रा** प्रारम्भ हुई। लगभग 1 कि॰ मी॰ लम्बा जलूस पटना के मुख्य मार्गो से होता हुआ **शहीद स्मारक** की ओर चला। आगे–आगे बैंड़ बाजे थे,

साथ में सजी हुई झांकियां, हाथी, घोड़े, ऊँट, मोटरों, गाड़ियों, जीपों, ट्रेक्टरों, मोटरों साइकिलों, स्कूटरों आदि का सर्पाकार लम्बा **जलूस था। 'शिवाजी की जय', ''सरदार पटेल जिन्दाबाद'' ''कुरमी एकता मजबूत हो'' के** जोशीले नारे हज़ार–हज़ार कंठों से निकलकर बिहार की राजधानी पटना के वातावरण में एक अनोखा गुंजन पैदा कर रहे थे।

पटना सचिवालय के पास 11 अगस्त् 1942 को स्वतन्त्रता–संग्रामं में अंग्रेज सरकार की गोली से शहीद हुये भारत माँ के 7 अमर पुत्रों का हाथों में तिरंगा लिये स्मारक है। इन सात में से **सर्वश्री रामानन्द सिंह, राजेद्र सिंह और राम गोविन्द सिंह कुरमी थे,** जिनकी आयु उस समय 18 से 19 वर्ष के मध्य रही होगी। इस ऐतिहासिक एवं परम श्रद्धास्थल पर पुष्पांजलि अर्पित करने के बाद शोभा यात्रा, प्रारम्भ के स्थल **'शिवाजी नगर'** गांधी मैदान वापिस लौट आयी।

अपराह्न 1 बजे के लगभग बालिकाओं द्वारा **स्वागत्-गान के सामूहिक प्रस्तुतिकरण से अधिवेशन का शुभारम्भ हुआ।** मुख्य अतिथि **श्री राम पूजन पटेल,** सांसद तथा पूर्व मंत्री ने दीप प्रज्वलित कर तथा कूर्मि कुल भूषण **'छत्रपति शिवाजी महाराज'** तथा **''लौह पुरूष, भारत रत्न सरदार बल्लभ भाई पटेल",** के चित्रों पर माल्यार्पण कर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये। अधिवेशन की अध्यक्षता **श्री महेन्द्र सिंह जी,** पूर्व डाइरेक्टर जनरल आफ पुलिस उत्तर प्रदेश, आई॰ पी॰ एस॰ (सेवा निवृत्त) ने की।

अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष, **श्री उपेन्द्र प्रसाद वर्मा,** मंत्री बिहार सरकार ने देश के विभिन्न भागों से आगे प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करते हुये सभा के उद्देश्यों तथा समाज की समसामयिक समस्याओं पर विस्तार से प्रकाश डाला। **श्री उपेन्द्र प्रसाद वर्मा** ने भाषण में कहा –**''हम इस अधिवेशन के विभिन्न आयोजनों के मंचों से -यथा युवा मंच और महिला मंच से, उन दोषों को दूर करने पर विस्तार से विचार विमर्श करेंगे। पर सबसे बड़ा दोष और कमजोरी हमारे समाज की यह है कि हम सिद्धाततः एक कहलाकर भी व्यवहारतः अनेक बने हुये हैं। अखिल भारतीय स्तर की तो बात ही मत पूछिये, अकेले इस बिहार प्रदेश में हमारा समाज तेरह शाखाओं में बटा हुआ है। चुनावों के दिनों में सारा वातावरण दूषित हो जाता है।**

आगे उन्होंने झारखंड के कुड़मियों की इस बात के बारे में प्रशंसा करते हुये कहा :– **''इस दृष्टि से हम झारखंड के भाइयों की सराहना करते हैं, जिनके बीच इतना मतवैभिन्न नहीं है क्योंकि वे सब केवल महतो, ही हैं। हमें एकता और एक जुटता का पाठ उन्हीं महतों भाइयों से सीखना है।''**

छोटा नागपुर में कुड़मियों के पूर्वज कुर्मियों के बसने से सम्बंधित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर यह कहा गया है कि हजारीबाग के दक्षिणी–पश्चिमी क्षेत्र से होकर कुर्मियों ने मानभूम की समतल भूमि में प्रवेश किया था। वहाँ से वे लोग दामोदार नदी के किनारे–किनारे आगे बढ़ते गये एवं धीरे–धीरे **''दामोदर''** एवं **''कांसावटी''** नदियों की घाटियों में जमा होकर असंख्य ग्रामों में बस गए। कालक्रम में उन कुर्मियों ने जीविका उपार्जन के उद्देश्य से स्वर्णरेखा नदी के किनारे से दक्षिण दिशा की तरफ बढ़ने का प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप कई नये ग्रामों का जन्म हुआ जो बाद में काफी समृद्ध बन गए।

हजारी बाग के नवगठित जिला **''गिरिडीह''** के बगोदर थाने में **''बेको''** सबसे बड़ा गाँव है यह गाँव ग्रैंड ट्रंक रोड पर 207 मील के फासले पर उत्तर की ओर तथा **बगोदर** से 8 मील पूरब में स्थित है। **बेको ग्राम के दयाल चौधरी** संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) से आकर सबसे पहले **रामगढ़** में बसे थे, किन्तु **रामगढ़ के राजा दलेल सिंह** ने उन्हें **'लेदा घटवार'** से अपने राज्य पर आक्रमण से बचाने के लिये **बेको-ग्राम** की ओर भेजा था। हजारी

बाग निवासी **धर्मनाथ चौधरी** का कथन है कि सन् 1709 ई. **बक्सर** (वर्तमान शाहबाद जिला) में उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश से आकर बसे। **मुगल बादशाह औरंगजेब** ने अत्याचार करना प्रारम्भ किया तो चित्तरपुर (हजारी बाग) में आकर बस गए।

सन् 1872 का उल्लेख करते हुये **मिस्टर डब्लू. डब्लू. हण्टर** ने लिखा है कि संथाल परगना में भी 2,20,206 कूर्मि कृषक एवं व्यवसायी हैं। उनके विचारों से सहमति प्रकट करते हुये सन् 1938 में संथाल परगना में कुमियों के जमाव एवं पेशों का उल्लेख करते हुए **राय बहादुर एस. पी. मुखर्जी** ने **डिस्ट्रिक्ट गजेटियर** संथाल परगना में इसे सत्य बताया है। तत्पश्चात् **श्री पी. सी. राय चौधरी** ने लिखा है कि संथाल परगना के कूर्मि बन्धु जिनकी जनसंख्या 1931 में 34,858 थी मुख्यतः बिहार के **सारण, आरा, पटना जिलों** तथा **यू. पी.** के **गाजीपुर** और **बलिया** जिलों से आकर बसे थे।

कुड़मि गणराज्य

छोटानागपुर में ''**कर्ण-सुवर्ण**'' नामक एक कुर्मी गणराज्य था जिसका उल्लेख प्रसिद्ध चीनी यात्रियों **हुयेन सांग** एवं **फाहियान** ने भी किया है। **पंचकोट-महाराजा** मूलतः **प्रमुख कुर्मी कुल के चौधरी** थे जिसका वर्णन **मानभूम डिस्ट्रिक्ट** गजेटियर में भी है। सन् 1929 में थी **अजीत प्रसाद सिंह देव, पंचकोट महाराजा** ने **कुर्मियों के एक स्थानीय सम्मेलन का सभापतित्व भी किया था।** इसकी पुष्टि सन् 1931 में **मिस्टर डब्लू. लेसी** ने सविस्तार की है।

कुड़मियों के परगने

जिस प्रकार –**'मुण्ड़ाओं'** एवं **'संथालों'** के परगने थे उसी प्रकार कुर्मियों के भी स्वशासित 22 परगने **रांची, हजारी बाग**, एवं **मानभूमि** जिलों में अवस्थित थे जिनके नाम थे।—**रामपुर, राहे, तमाड़ सिल्ली, झालदा, सीखर, कसाईपाट, पालगंज, रोड़गडीह, होलग, जेगसट, पलनी, कर्णपुरा, देतर, झंड़, लाली पैंका, खुरवारा, गोला और वनगढ़ा।** प्रत्येक परगना में एक–एक मुखिया होता था जो कि **परगनैत** कहा जाता था। ग्राम प्रधान ''**महतो**'' के नाम से जाने जाते थे। उनके ऊपर ''**देश मंड़ल**'' थे और ''**परगनैत**'' जो उनसे उच्च पदाधिकारी थे, सभी **देश मंड़लों** एवं **महतो** पर शासन करते थे।

स्वागताध्यक्ष के भाषण के पश्चात् अधिवेशन के मुख्य अतिथि, **श्री रामपूजन पटेल,** सांसद तथा पूर्व केन्द्रीय राज्य मंत्री, बिहार के पूर्व मंत्री तथा वरिष्ठ नेता **श्री भोला प्रसाद सिंह,** बिहार के ग्राम्य विकास मंत्री **श्री बृषिण पटेल, श्री गजेन्द्र प्रसाद सिंह** राज्य मंत्री बिहार तथा दूसरे राज्य मंत्री **हरिनारायण सिंह** के अतिरिक्त अनेक वक्ताओं ने और देश के दूर–दूर स्थानों से आये प्रतिनिधियों ने सभा को सम्बोधित किया। अधिवेशन में केन्द्रीय सरकार के अनेक वक्ताओं ने **मंड़ल आयोग की सिफ़ारिशों** का शतप्रतिशत पालन करने की जोरदार शब्दों में माँग की। पिछड़ी जातियों की सत्ता में भागीदारी उचित अनुपात में दिये जाने का प्रस्ताव भी पारित किया गया। साथ ही प. बंगाल, मध्य प्रदेश तथा कुछ अन्य प्रदेशों में जहाँ कुरमियों की काफी आबादी है, उनकी जाति को भी अन्य प्रदेशों की तरह पिछड़ी जाति की सूची में सम्मिलित किये जाने का प्रस्ताव भी पारित किया गया।

अगले दिन, 17 मार्च 1991 को प्रातः काल के सत्र में युवा–सम्मेलन का उद्घाटन झारखंड़ मुक्ति मोर्चे के युवा नेता **श्री शैलेन्द्र महतो** ने किया। मुख्य अतिथि, केन्द्र में जनता दल सरकार के दौरान पूर्व राज्य मंत्री, **श्री नितीश कुमार** ने युवा–प्रतिनिधियों का आह्वान करते हुये उनके उत्कर्ष के लिये अनेक उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किये और सामाजिक एवं राजनैतिक क्रान्ति लाने के लिये युवकों से आगे आने की अपील की।

राजनीति को त्याग और सेवा का आदर्श प्रस्तुत करने की जगह स्वार्थ सिद्धि का मुख्य जरिया मात्र बना लिया

गया है। फलतः इसमें प्रबुद्ध वर्ग के युवक, सुचिंतक, निष्ठावान और समर्पित भावना वाले व्यक्ति प्रवेश नहीं कर पाते हैं और उनकी जगह इन दिनों वैसे लोग प्रवेश कर रहे हैं, जिन्हें या तो कहीं नौकरी नहीं मिल पाती या फिर जिन्हें राजनीतिज्ञों का पारिवारिक सदस्य या कृपापात्र होने का गौरव प्राप्त है। या फिर जो राजनीति को व्यापार का माध्यम बनाकर उसका दुरुपयोग करते हैं। इसी तरह के तत्व सामाजिक संस्थाओं में घुस पैंठ कर रहे हैं। कम पढ़े और अनपढ़ों के हाथ में यकायक धन–शक्ति आ जाने पर समाज में मान्यता प्राप्त करने हेतु वे भी सामाजिक संस्थाओं में स्वतः प्रवेश करते हैं।

मई 1993 में प्रकाशित **'बिहार के कुर्मी'** –– परिचयात्मक निबंध–संग्रह के प्रथम खण्ड के पृष्ठ 43 पर विद्वान लेखक, **श्री सिद्धेश्वर** जी लिखते हैं, **''कुर्मी समाज में तो इक्के-दुक्के लोग ही राजनीति में प्रवेश करते दिखाई देते हैं। कुर्मियों के गढ़ नालन्दा तथा पटना में भी राजनीति में प्रवेश करने वालों का सर्वथा अभाव रहा है क्योंकि कूर्मि समाज प्रारम्भ से ही अखिल भारतीय स्तर पर कृषि से जुड़ा होने के कारण आत्मसम्मानी और आत्मविश्वासी रहा हैं। ये लोग बहुत नीचे गिरकर, आत्म-सम्मान को खोकर कुछ बनना या करना पसन्द नहीं करते हैं। खुशामद या चमचागिरी उनके वश की बात नहीं है जबकि आज राजनीति में वही सर्वोपरि है जो लोग खुशामद कर सकते हैं, चमचागिरी के पेशे को अपना सकते हैं, गुण्डागिरी को अपना सकते हैं वे ही आज की राजनीति में सफल होते हैं।"** जब इस प्रकार के स्वार्थी तत्व सामाजिक संस्थाओं में प्रवेश पा जाते हैं वे वहाँ का वातावरण दूषित कर देते हैं। **अ॰भा॰कू॰क्ष॰ महासभा के अधिवेशन में दिल्ली के सन् 1978 के 32वें अधिवेशन से इसी प्रकार के तत्वों ने घुस-बैठ मचाकर महासभा का सारा माहौल आसामाजिक कर रखा था। समाज के प्रवुद्ध वर्ग का दायित्व है कि वे आगे आवें और महासभा के ऐसे तत्वों पर अंकुश लगाकर महासभा का संचालन अपने हाथों में लें।**

37वें अधिवेशन में **युवा सम्मेलन** के बाद **महिला सम्मेलन** की कार्यवाही शुरू की गयी। महिला समिति की संयोजिका **प्रो॰ उषासिंह**, तथा अन्य सह–संयोजिकाओं यथा **प्रो॰ विमला चौधरी, श्रीमती धर्मशीला चौधरी** तथा **श्रीमती मंजु कुमारी** ने अपने भाषणों में समाज के उत्थान के लिये महिलाओं के समुचित योगदान का विस्तार से उल्लेख किया और तिलक, दहेज, अन्यान्य सामाजिक कुरीतियों तथा महिलाओं में शिक्षा का प्रचार–प्रसार भेदभाव तथा अन्य असमानतायें दूर करने हेतु तुरन्त उचित कदम उठाने की माँग रखी। दोपहर के भोजन के अवकाश के पश्चात् अपराह्न 3 बजे से **सामाजिक न्याय सम्मेलन** की कार्यवाही प्रारम्भ की गई। अधिकतर वक्ताओं ने वहीं बातें कहीं और प्रस्ताव पारित करवाये जैसा कि जनता दल के चुनाव घोषणा–पत्र के प्रमुख मुद्दे रहे हैं। यह त्रासद विडंबना ही है कि अब तक अधिवेशनों में इस पुरुष प्रधान समाज में स्त्री सम्बन्धी अनेकानेक समस्याओं का समुचित विचार भी नहीं करते, मात्र महिला सम्मेलन के लिये कुछ समय दे देते हैं। पर महिला समस्याओं पर पुरुषों का चिन्तन और योगदान शून्य तुल्य ही रहता हैं।

सांयकाल **सामाजिक न्याय सम्मेलन** के मुख्य–अतिथि पूर्व केन्द्रीय मंत्री, **चौधरी अजीत सिंह** मंच पर पहुँचे और उनके साथ आये थे सांसद **श्री राजमोहन गांधी**, जनता दल के महामंत्री **श्री पुरूषोत्तम कौशिक**, बिहार जनता दल के अध्यक्ष, **श्री राम सुन्दर दास** तथा अधिवेशन के प्रमुख आकर्षण केन्द्र, बिहार के युवा मुख्य मंत्री **श्री लालू प्रसाद यादव**। सारा पंडाल इन राजनेताओं के आगमन से पूर्व ही खचाखच भर चुका था तथा हज़ारों की संख्या में श्रोता और दर्शक गण पंडाल से बाहर खुले गांधी मैदान में खड़े हुये मंच से संचालित कार्यवाही पर कान लगाये हुये थे। एक के बाद एक राजनेताओं ने अपने विचार बड़ी सफ़ाई से तथा जोरदार शब्दों में प्रस्तुत किये।

अन्त में मुख्यमंत्री, **श्री लालू प्रसाद यादव** ने अधिवेशन को सम्बोधित किया। उनका अपना वक्तव्य ऐसे चुटकुले भरी बातों से होता है कि वे अपनी बात भी कह जाते हैं और श्रोताओं में बात–बात पर हसी के फौब्बारे फूट निकलते हैं। हास्य–व्यंग तथा कटाक्ष द्वारा श्री यादव ने अपने मन्तव्य को स्पष्ट रूप से तथा जोरदार तरीके से प्रस्तुत किया।

उनका मुख्य प्रहार कांग्रेस सरकार की खामियों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों को मौजूदा हालत में क्या करना चाहिये इन बिन्दुओं पर था। भाषण समाप्त करने से पूर्व **श्री यादव** ने चक मुसल्लहपुर, पटना–6 स्थित **सरदार पटेल छात्रवास** को 8 कट्ठा जमीन को मामूली दर के वार्षिक पट्टे पर सरकार की ओर से उपलब्ध कराने की मंच से घोषणा की, जिसका सबने करतल–ध्वनि से स्वागत किया। मुख्य मंत्री के उद्बोधन के पश्चात् सामाजिक न्याय सम्मेलन की कार्यवाही समाप्त हुई।

पटना के चक मुसल्लहपुर में **कूर्मि हितकारिणी न्यास, बिहार** की ओर से 20 अक्टूबर 1969 को **सरदार पटेल छात्रावास** का शिलान्यास महासभा के पूर्व अध्यक्ष, **श्री दासूसिंह अधिवक्ता** द्वारा किया गया। अभी इस छात्रावास में 152 छात्र रह रहे हैं। इस छात्रावास में बिहार के वर्तमान मुख्यमंत्री माननीय **श्री लालू प्रसाद यादव** भी अपने विद्यार्थी जीवन काल में रह चुके हैं। हाल ही में उन्हें याद दिलाने पर उन्होंने एक सुन्दर वाचनालय बनवाने एवं भवन कक्ष को सुसज्जित करवाने का आश्वासन दे रखा हैं। इस दिशा में उनका सहयोग प्रारम्भ हो गया है और विश्वास है कि उनके सहयोग से उनकी याद में बना वाचनालय इस छात्रावास के छात्रों के अध्ययन का एक बहुत बड़ा उपयोगी आधार बन सकेगा। इस छात्रावास को बिहार की राजधानी पटना में 17 कट्ठा लगभग 3 डिसमल भूमि उपलब्ध है, जहाँ **पटना साइंस कालेज, पटना अभियंत्रण कालेज, पटना लॉ कालेज, पटना मेडिकल कालेज** एवं **बी॰ एन॰ कालेज** से मात्र 15-20 मिनट पैदल चलकर पहुँचा जा सकता हैं। इस छात्रावास में रहने के लिये प्रथम श्रेणी कम से कम 60 प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक है, इस प्रकार समाज के मेधावी छात्रों को निवास की सुविधा प्रदान कर समाज को आगे बढ़ाने एवं सुशिक्षित करने का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इस छात्रावास के चार मंजिले भवन के कुल 63 कमरे हैं। आशा है कि समाज के दानदाताओं के सहयोग से इसका और विस्तार होता रहेगा। प्रसिद्ध समाज सेवी तथा **'बिहार राज्य कुर्मी सभा'** के **अध्यक्ष, डा॰ मोहन सिंह** ही **कुर्मी हितकारिणी न्यास** के भी **अध्यक्ष** हैं।

महासभा के 37वें अधिवेशन के मंच से विषय समिति की ओर से दो प्रस्ताव विशेष रूप से प्रस्तुत किये गये; एक तो कुर्मी सभा की राज्य स्तरीय संगठन से **'क्षत्रिय'** शब्द को विलोपित करने का प्रस्ताव और दूसरा झारखण्ड क्षेत्र के अपने कुर्मी बन्धुओं को पहले की भाँति पुनः अनुसूचित जनजाति की कोटि में लाने का प्रस्ताव था। 'कूर्मि' के साथ 'क्षत्रिय' शब्द के विलोपन के समर्थकों का तर्क था कि **'कूर्मि'** शब्द अपने आप में सम्पूर्ण हैं। उसमें **'क्षत्रिय'** शब्द जोड़कर विशेषण लगाने की कतई आवश्यकता नहीं हैं। कुरमी शब्द के अनेक प्रकार से अर्थ करके वे यह कहना चाहते हैं कि **'कूर्मि'** के आगे **'क्षत्रिय'** जोड़ने का कोई औचित्य नहीं दिखता बल्कि उसे जोड़कर **'कूर्मि क्षत्रिय'** कहलाने में कहीं–न–कहीं अपनी हीन भावना छिपी नज़र आती है। पर उपर्युक्त मन्तव्य बिहारी कुरमी बन्धुओं का ही है और उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, दिल्ली, उड़ीसा और राजस्थान के ज्यादातर कुरमी उससे बिलकुल सहमत नहीं हैं।

इस विषय में इस पुस्तक में पहले भी काफ़ी विस्तार से वर्णन किया गया हैं। इस विषय पर आदरणीय **प्रो॰ रामबुझावन जी**, पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, बी॰ एन॰ कालेज, पटना विश्वविद्यालय के सागर (म॰ प्र॰) से **'कूर्मि क्षत्रिय जागृति'** पत्रिका से अंक, जनवरी 1994 में प्रकाशित लेख **"बिहार का कुरमी समाज"** से कुछ अंश नीचे साभार उद्धृत किये जा रहे हैं, उन पर दृष्टिपात कीजियेः––

1. बिहार राज्य कुर्मी सभा से **'क्षत्रिय'** शब्द का विलोपन अकारण और आकस्मिक नहीं है, बल्कि इसके बड़े ही तर्कयुक्त कारण रहे हैं जो इसकी विशिष्टता के द्योतक हैं। **क्योंकि कुरमी शब्द का अभिधेय अर्थ स्वयं क्षत्रिय वाचक है, जिससे इसके जुड़ाव से पुनरुक्ति दोष आ जाता है।**

2. कालक्रम से राजनीतिक लाभ की यह प्रवृति इस हद तक बढ़ी कि अब तक की सवर्ण नामधारी पूजित और सम्मानित जातियाँ भी अपनी सामाजिक श्रेष्ठता की केंचुल उतार फेंक कर आरक्षितों की श्रेणी में आने

को आकुल-व्याकुल हैं, इसी क्रम में कुर्मी समाज ने भी यदि 'क्षत्रिय' शब्द का विलोपन प्रारम्भ कर दिया तो यह आश्चर्य की बात नहीं है। युग की मुख्य धारा आज इन्हीं भेदभूलक शब्दों के विलोपन की ओर हैं। जिस ओर प्रादेशिक महासभा के स्तर पर सबसे पहला साहसी कदम बिहार के कुर्मी समाज ने उठाया है।

सुधी पाठक गण, उपयुर्क्त दोनों तर्कों पर विचार करें तो लगेगा कि पहला तर्क तो यों ही दे दिया है असली तात्पर्य तो दूसरे से हीं है–**यानी सामाजिक श्रेष्ठता की केंचुल (क्षत्रिय वर्ण होने का कुरमियों का अनादिकाल से चला आया यथार्थ) उतार फेक कर आरक्षितों की श्रेणी में आने को आकुल-व्याकुल हैं। बिहार प्रदेश में लगता है कि केचुल उतार फैकना पुरानी आदत है, हरनौत में सन् 1933 अधिवेशन में भ्रातृभाव की केंचुल उतार फेक दी थी फलतः दो अभागे बन्धु महासभा के प्रांगण में पैर-तले कुचल कर मारे गए। 22 वें अधिवेशन में महासभा के अध्यक्ष स्व. श्री दासू सिंह ने अपने भाषण में कूर्मि शब्द की केंचुल ही महासभा और जाति के नामों से उतार फेंक महज क्षत्रिय वाली पहननी चाही** (इस पुस्तक में आगरा के **स्व. श्री ध्रुव नारायन सिंह वर्मा** पूर्व एम. एल. सी. की अन्वेषणा को पढ़िये) **और उन्होंने अब 'क्षत्रिय' की केंचुल आरक्षण के लिये उतार फेंकी।** कुड़मि बन्धुओं का उदाहरण दूसरा है। उनकी बात यहाँ नहीं हो रही है। आरक्षण को बिहार के बन्धुओं ने सही नहीं समझा है यह सामाजिक और शैक्षिक पिछड़े वर्गो के लिये है, इसमें शूद्र वर्ण का केंचुल दिखलाने की आवश्यकता कहाँ है? इसी लिये भारत वर्ष के अन्य प्रदेशों, जैसे उत्तर प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, उड़ीसा तथा गुजरात (कृपया पढ़िये **डा. मंगुराम आर. पटेल** का **''कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास")** आदि महज बिहार राज्य में भी सब नहीं महज कुछ दलितीकरण के मसीहा बन बैठे हैं जो अपनी ढ़पली इस मुद्दे पर अलग बजा रहें हैं, इन को छोड़कर सब अपने–अपने पूर्वजों के मतानुसार अपने को क्षत्रिय वर्ण का मानते हैं। **''कूर्मि'' या 'कुरमी' शब्द का अभिधेय अर्थ स्वयं क्षत्रिय वाचक है इसलिये पुनरुक्ति दोष से बचने के लिये 'क्षत्रिय' शब्द का प्रयोग न किया जाय' विद्वान प्रोफेसर साहिब के इस तर्क से यह लेखक सहमत है और यही कारण है इन भाषाविद् के तर्क को मानते हुए लेखक ने इस पुस्तक का शीर्षक चुनते समय इस बात का ध्यान रखा है। केंचुल बदलने की प्रक्रिया सर्प को छोड़कर किसी के हित में नही है इस बात का ध्यान रखा जाए। कभी इन विद्वान महोदय की तरफ से तर्क दिया जाता है कि 'सिंह' की खाल ओढ़कर भेड़िया सिंह नहीं बन पाता। कूर्मि जाति की कभी 'सर्प' और कभी 'भेड़िया' आदि जानवरों से तुलना करना एक हीनता ग्रसित मानसिकता का प्रगटीकरण नहीं तो और क्या है?**

पक्ष–विपक्ष दोनों तरह के मतों को दिया जा चुका है। फिर भी इस असहमति को महासभा की मुख्य पत्रिका, **''कूर्मि क्षत्रिय जागरण''** के अप्रैल 1991 अंक में सम्पादकीय लेख के अन्तर्गत **''महासभा का पटना महाधिवेशन-कसौटी पर''** में विद्वान अधिवक्ता **श्री संकठा प्रसाद सिंह** ने अपना मत इन शब्दों में व्यक्त किया :–

''जहाँ तक हमारी जाति या जातीय संगठन के नाम से क्षत्रिय शब्द के बहिष्कार का प्रश्न है यह मुद्दा भी विवादास्पाद है जो हममें फूट का कारण बन सकता है, क्योंकि जहाँ हमारे बिहारी बन्धु 'क्षत्रिय' शब्द के प्रयोग के विरूद्ध हैं, वहीं उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, आदि के लोग इसके पक्ष में हैं, जो क्षत्रिब नाम के साथ और सिंह आस्पद के अभ्यस्त हो चुके हैं। इन दो शब्दों के प्रयोग की अपनी लम्बी कहानी है। इसके समर्थन में अनेक कूर्मि क्षत्रिय इतिहास लिखे गये हैं, कूर्मि क्षत्रिय पत्रिकाएँ निकाली गयी हैं तथा इसी नाम से अनेक संस्थायें भी अस्तित्व में आ चुकी हैं। सिंह आस्पद का प्रयोग भी व्यापक बन चुका है तथा हमारे बिहारी बन्धु भी इसके दायरे में आ चुके हैं। भूतकाल में इसी बिहार के महाधिवेशन (झालदा, पुरुलिया, सन् 1980) में क्षत्रिय शब्द का बहिष्कार का प्रस्ताव पास हुआ था, जिसे तत्पश्चात् रायपुर (मध्य प्रदेश) के सन् 1981 के अधिवेशन में निरस्त कर दिया गया था। बार-बार उसी मुद्दे को उठाना उचित नहीं होगा, हमें बहुमत का आदर करना होगा तथा संयम से काम लेना होगा, इसे मुद्दा और प्रतिष्ठा का विषय बनाकर संगठन में फूट लाने से बचाना होगा।'' आशा है कि ''कूर्मि

क्षत्रिय जागरण'' में छपे उपर्युक्त सम्पादकीय को ठीक से समझते हुये भविष्य में ऐसा कुछ भी न करेंगे जिससे उनके कारण संगठन कमजोर हो या भावी अधिवेशनों में हरनौत अधिवेशन जैसी शर्मनाक और मानव अधिकारों के हनन जैसी बातों की पुनरावृति हो।

बिहार के कुरमी बन्धुओं को सन् 1933 के हरनौत अधिवेशन में बाढ़ (पटना जिले) के 52 गाँव के ज़यसवार उपजाति के कुरमी **जमींदार बाबू हरिहर नाथ सिंह**, को सभामंच की कुर्सी पर बैठा देखना अपने को कुरमियों का कुलीन वर्ग समझने वालों को फूटी आँख नहीं भाया। बाबू हरिहर नाथ सिंह को मंच की कुर्सी से उठाने की उस **दम्भी वर्ग** ने बड़ी चेष्टा की पर सभा के संचालक, बनारस के **श्री शिवरामसिंह** उनके इस कुकृत्य में शामिल नही हुये। पूरा वृतान्त इस पुस्तक में पहले भी दिया जा चुका है। सभा में भगदड़ मच गई, बकौल दानापुर वासी, **श्री श्याम प्रीत सिंह- दो व्यक्ति कुचलकर मर गये थे। गोली नहीं चली थी। मैं तेरह साल का बालक था। भगदड़ में मेरी चादर -कश्मीरी दोशाला' गायब हो गया। धानुक (जयसवार) कुरमी भाइयों को कहा गया था कि वे सभा छोड़कर चले जायें। वे आज तक इस दुःख को नहीं भूले हैं। कूर्मि सभा में वे भाग नहीं लेते हैं। अभी हाल में (फरवरी 1993 में) धानुक कुरमियों ने गांधी मैदान पटना में अपनी अलग सभा बुलाई। उन्होंने सरकार से आग्रह किया कि उन्हें अनुसूचित जनजाति घोषित किया जाय।**'' हरनौत अधिवेशन में जो भी जयसवार (धानुक) कुरमियों के साथ घटा और बाद में भी बिहार के कुरमियों ने झारखंड के कुड़मियों की तरह उन्हें भी मूल धारा में मान-सम्मान सहित सम्मिलित नहीं किया। धानुक (जयसवार), कुरमी यदि अपना अलग स्थान चाहता है तो उसके लिये ऐसा करने में दोषी कौन है। आज बिहार के कुरमी भाई इसी तरह की मांग के लिये झारखंड के कुड़मियों की माँग को कैसे गलत ठहरायगें? कुरमियों की इन उपजातियों को उनके मानव अधिकारों से आज स्वंतत्र भारत में कोई भी महासभा वंचित नहीं रख सकती।

इसी संदर्भ में उपर्युक्त '*कूर्मि क्षत्रिय जागरण*' के अप्रैल 1991 के अंक में पटना अधिवेशन के सम्बन्ध में सम्पादकीय था-''**हमें अपनी कुर्मी जाति को पिछड़ा मानने में भी कोई आपत्ति नहीं है। वह पिछड़ी है, उसे संवैधानिक सुविधायें मिलना चाहिये। किन्तु जब हमारे बिहारी बन्धु जो अपने नामों के साथ 'सिंह' आस्पद जोड़े हुये हैं, शादी-ब्याह और तिलक-दहेज आदि , के लेन-देन में लाखों का वारान्यारा करते हैं तथा धनाढ्य किसान के रूप में अभी भी सामन्ती प्रवृत्ति का परिचय देते हुये, गरीब हरिजनों, खेतिहर, मजदूरों, आदि, पर जुल्म ढ़ाने में किसी से पीछे नहीं रहते, वे अपने को पिछड़ा होने की बात करते हैं तो सुनकर हंसी आती है। यह उनकी अवसरवादिता नहीं तो क्या है? अपने जातीय स्वाभिमान को ऊँचा किये बिना तथा जातीय चरित्र का निर्माण किये बिना कोई जाति तरक्की नहीं कर सकती। हमें इस मूल मंत्र को याद रखना होगा। इसी मूल मन्त्र का अनुसरण कर हममें छत्रपति शिवाजी तथा सरदार पटेल जैसे नररत्न पैदा हुये। यदि हम अपनी अवसरवादिता की नीति का परित्याग कर सिद्धान्तों पर अटल रहें तो भविष्य में भी हममें अनेक शिवाजी और सरदार पटेल पैदा होंगे।**''

बिहार के धानुक कुरमियो सावधान

जयसवार आस्पद प्रयोग करने वाले बिहार के धानुक कुरमी बन्धुओं से भी निवेदन हैं कि वे शनैः-शनैः वहाँ की कुरमियों की मूल धारा में आत्मसात हो चुके हैं, **वे यदि किसी बड़े नेता के बहकावे में आकर या निकृष्ट अवसरवादिता से ग्रसित होकर, अपनी ढपली अलग बजाने का निर्णय करके अनुसूचित जनजाति में अपनी इस उपजाति को ले जाना चाहते हैं तो वह अत्यन्त हानिकारक तथा आत्मघाती कदम होगा। कुछ बहकाने वाले धानुक कुरमी चाहे बिहार सरकार में मंत्रिपद पा जायें या किसी सरकारी संस्था के चेयरमैन बनकर आर्थिक लाभ और सुविधायें पा जायें पर इस उपजाति विशेष के साथ उनका यह अक्षम्य अपराध होगा। धानुक कुरमियों की वह अवस्था नहीं है जैसी झारखंड के कुरमियों की है जो पहले जनजाति में थे अतः वहाँ पुनः उसी वर्ग में पहुँच जाते हैं**

वह हर दृष्टि से उनके लिये उचित ही होगा। पर धानुक कुरमी अपने को अपने जातीय स्वाभिमान को ऊँचा रखते हुए जातीय चरित्र का निर्णय करते हुये जीवन के हर क्षेत्र में आगे आवें। श्री शिवराम सिंह ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **''कूर्मि क्षत्रिय इतिहास''**, प्रकाशित सन् 1974 के पृष्ठ 47 पर धानुक शब्द को ''धानुष्क'' के अर्थ इस प्रकार किये हैं :–

'धानुष्क' :– **''धनुः''** के आगे कर्ता के **'क'** जोड़ देने से **'धानुष्क'** हुआ है तथा जिसका अर्थ धनुष चलाने वाला होता है और धनुष चलाना विशेषतः क्षत्रियों का ही कार्य है। धनुष्क से समान अपत्य और सम्बन्ध रखनेवाला अर्थ में धानुष्क शब्द सिद्ध होता है और व्याकरण के पारिभाषिक सूत्र **''अर्द्ध मात्रा लाघवेन''** से धानुक हो गया है परन्तु शुद्ध शब्द धानुष्क ही है। **धनुर्विधा में जो प्रवीण होता था वह पहले धानुष्क बोला जाता था। महाराज श्री रामचन्द्र जी धनुर्विधा में प्रवीण थे।** रामचरित मानस में लिखा है कि –**बहु धनुही तोरेऊ लरिकाई,** अर्थात लरिकाई (बचपन) में श्री रामचन्द्र जी ने अभ्यास के समय बहुत सी धनुही तोड़ी है। तभी वे इस विधा में निपुण हुये थे। अतः धानुष्क क्षत्रियों को पूर्व काल से ही यह उपाधि दी गई है। धानुष्क कुर्मियों के कुल सम्बन्धी 320 नाम हैं और यह सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं।'' **देवराज इन्द्र** से सम्बन्धी **इन्द्र धनुष** प्रसिद्ध है। चार उपवेदों में से एक **धनुर्वेद** भी है। इसके धारक को **धनुर्धर** अथवा **धनुधरी** भी कहा जाता था। **भार्गव** का **'आदर्श हिन्दी शब्दकोश''** में धानुक और धानुष्क के अर्थ दिये हैं– **धनुर्धर, धनुष** चलाकर अपनी जीविका निर्वाह करने वाला। **अर्जुन को धनुर्धर** नाम से भी जाना जाता था। तो फिर **धनुर्विधा** कैसे निकृष्ट विद्या हो गयी? और **इसका पारगंत व्यक्ति कैसे नीच जाति का हो सकता है?**

धानुक कुरमी करके उत्तर प्रदेश या मध्य प्रदेश में कोई उपजाति नहीं है और इस प्रदेशों में बिल्कुल अगल जातियां स्वयं को धानुक मानती हैं इसलिये इस लेखक की जानकारी के अनुसार यहाँ धानुकों और कुरमियों का विशेष करके **''जयसवार कुर्मियों''** का किसी प्रकार का निकट सम्बन्ध अब तक सुनने में नहीं आया है।

यहाँ अवसरवादी जातीय नेताओं के सूचनार्थ **बहुजन समाज पार्टी** के अध्यक्ष **श्री कांशी राम** का नई दिल्ली से प्रकाशित **''द टाइम्स आफ इण्डिया''** के 5 अक्टूबर 1993 के अंक में उनका आरक्षण कोटा नीति (Quota Policy) पर वक्तव्य छपा है। वे अनिश्चित काल तक आरक्षण को लागू रखने की नीति के खिलाफ है उससे इसे पाने वाले इन सुविधाओं पर निर्भर होकर रह जायेंगे। उनके शब्द थे– "Crutches are meant for feeble and incapacitated persons and those who wish to stand on their own feet should avoid it." अर्थात् **बैसाखियाँ कमजोर तथा विकलांग व्यक्तियों के लिये होती हैं और जो स्वावलम्बी बनना चाहते हैं उन्हें इनका सहारा नहीं लेना चाहिये।'' यह एक दलित नेता की अपने वास्तविक दलित वर्ग के लिये सम्मति है।** पर कुछ कुरमी नेता जो कुरमियों में दलितीकरण का प्रचार–प्रसार करते हैं। स्वयं वे तो ऐसे ही वर्ग के लगते हैं जैसे बम्बई की सैकड़ों लोगों से भीख मंगवाने का आयोजित व्यवसाय चलाकर उनके पैसों से स्वयं 'कारों' में 'बगलें' में आधुनिक सुख–सुविधाओं का मज़ा लूटते रहते वाले कुछ सम्पन्न **दादा** लोग। भिखमंगे जीवन भर भिखमंगे ही रहते हैं और मरने के बाद भिखमंगों की नयी जमात फुट–पाथ पर छोड़ जाते हैं। यहाँ कुरमियों के दलितीकरण करने वाले नेताओं को भले ही छोटा–बड़ा मंत्री पद मिल जाता हो, चेयर मैन बन कर जीवन के कुछ सुख–साधन बटोर लेते हों पर जाने–अनजाने में वे एक विशाल जाति के कुछ भाग को स्वावलंबी तथा परिश्रमी न बनाकर विकलाँग, पंगु और गिरी मानसिकता का बुझा–बुझा सा व्यक्ति जरूर बना डालते हैं। धानुक कुरमियों को इन सब विषयों पर अन्तिम निर्णय करना होगा। अगर गलत निर्णय लेंगे तो आगे आने वाली सन्तति उन्हें क्षमा नहीं करेंगी, धिक्कारेगी। जैसे झारखंड के कुड़मि अपने उन बुजुर्गों के बारे में सोचते हैं जो कि मुजफ्फरपुर के महासभा की अधिवेशन में जाकर वहाँ के लोगों के कहने में आकर अपना यज्ञोपवीत संस्कार करवा डाला था और **'कुड़मि'** से **'कूर्मि क्षत्रिय'** बनने की बात सहर्ष स्वीकार कर ली थी। पर दुष्परिणाम क्या निकला वे आज भी अपने पूर्वजों की उस भूल के लिये पछता रहे

हैं।वे अपने जनजाति के मूल अधिकारों से वंचित कर दिये गये थे।

इस 37वें **अधिवेशन** में लम्बे तर्क–वितर्क के बाद **जनसभा** से **महासभा** के नाम से **'क्षत्रिय'** शब्द हटाकर उसे **'अखिल भारतीय कुर्मी महासभा'** रखने का प्रस्ताव पारित करवा लिया। इसमें एक विचित्र परिवर्तन और दृष्टिगोचर होता है, कि महासभा के नाम में जो **'कूर्मि'** शब्द का प्रयोग पचासों वर्षो से चला आ रहा था उसके स्थान पर उसका अपभ्रंश **'कुर्मी'** कर दिया गया। 17 मार्च 1991 को रात्रि से सांस्कृतिक कार्यक्रम पूर्व निश्चित था पर उस समय महासभा के नव–पदाधिकारियों के चयन की कार्यवाही बड़ी उत्तेजना के वातावरण में प्रारम्भ हुई। पहले कार्यकारिणी समिति की बैठक जो दिन में हुई थी उसके निर्णयों को **उत्तर प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय समाज** के अध्यक्ष **श्री सोने लाल पटेल** ने सभा के अनुमोदन के लिये मंच के माईक से सुनाया, विशेष करके उन व्यक्तियों के नामों को जिन्हें कार्यकारिणी समिति ने भंग होने से पूर्व सर्वसम्मति से स्वीकार किया था :–

1. **श्री जगदेव प्रसाद कनौजिया, कानपुर - महामंत्री**

2. **डा. दिलावर सिंह जयसवार, दिल्ली - उपाध्यक्ष**

3. **श्री राजेन्द्र कटियार, गाजियाबाद- कोषाध्यक्ष**

प्रतिनिधिगणों और जनसभा ने पंडाल में शान्ति रखते हुये जब अन्य कोई नाम न आये तो उपर्युक्त नामों के प्रति अपने अनुमोदन को व्यक्त किया। पर अध्यक्ष पद के लिये **श्री महेन्द्र सिंह** जी के नाम का प्रस्ताव रखा गया, किसी ने तुरन्त दूसरा नाम धनवाद के **श्री राजमंगल सिंह** का प्रस्तावित किया जो दूसरे ने अनुमोदन कर दिया। बात उठी कि दो में से एक उम्मीदवार अपना नाम वापिस ले ले जिससे यह पद भी सर्वसम्मति से बिना चुनाव कराये भरा जा सके। पर दोनों में से कोई भी अपना नाम वापिस लेने को तैयार नजर न आता था। यकायक अशोभनीय बातें भी उम्मीदवारों के विरोध में मंच के माईक से कहीं गयीं। जब कोई सर्वमान्य हल अध्यक्षपद के लिये न निकलता दिखाई पड़ा तब किसी ने **श्री राम पूजन पटेल** सांसद (फूलपुर–इलाहाबाद) का तीसरा नाम प्रस्तावित कर दिया। चट से दूसरे ने अनुमोदन कर दिया। परन्तु **श्री रामपूजन पटेल** के इस आग्रह पर कि यदि आप लोग मुझसे कुरमी समाज की सेवा कराना चाहते हैं तो मुझे राजनीति के क्षेत्र से हटना पड़ेगा। लोगों ने **श्री पटेल** का राजनीति के क्षेत्र में रहना समाज के लिये अधिक उपयोगी समझा, फिर उनकी अस्वीकृति को देखते हुये उनके नाम का प्रस्ताव निरस्त हुआ।

फिर पूर्व के दो उम्मीदवारों के नामों को लेकर शोर–शराबा प्रारम्भ हुआ, कई नाटकीय दृश्य मंच पर देखे गये जो महासभा की तथा इस पद की, जिस पर कभी बड़ौदा नरेश के अनुज **श्रीमंत सम्पतराव जी गायकवाड़, श्री बिट्ठल भाई पटेल, देवास महाराज, महाराजा कोल्हापुर श्रीमन्त सर छत्रपति शाहू, डा. पंजाब राव देशभुख** आदि जैसे राष्ट्रीय स्तर की महान विभूतियाँ आसीन हुई थीं, गरिमा के एकदम विपरीत थी। बिहार राज्य के पूर्व मंत्री, **श्री भोला प्रसाद सिंह** ने जैसे ही उठकर पुष्पमाला **श्री महेन्द्र सिंह जी** के गले में डाली पुनः दूसरे उम्मीदवार तथा उनके पक्षधरों ने चुनाव को चुनौती देते हुये सभा में **मत-गणना** कराने पर जोर दिया। **अन्त में काफी गरमा-गरमी और धक्कम-धुक्का के बाद यह घोषणा कर अध्यक्षपद के चुनाव की प्रक्रिया वहीं रोक दी गयी कि निकट भविष्य में इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय महासभा के वरिष्ठ नेताओं के ऊपर छोड़ दिया जाये।**

इस पटना अधिवेशन के कुछ नकारात्मक पहलू भी थे जोकि बिहार के बाहर से आये प्रतिनिधियों को विशेष करके बड़े खराब लगे, जैसे :–

1. यद्यपि यह **अखिल भारतीय कुर्मी महासभा** का अधिवेशन घोषित किया गया था पर वास्तव में उसका प्रारूप

जनता दल के एक चुनावी सम्मेलन जैसा था। यहाँ तक कि अधिवेशन के विभिन्न शोभाद्वारों और **'शिवाजी नगर'** गांधी मैदान के चारों ओर लगे बैनरों पर जनता दल के प्रादेशिक सांसदों, मंत्रियों एवं विधायकों के केवल नाम तथा उनकी ही वहाँ उपस्थिति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही थी।

2. अधिवेशन **'अखिल भारतीय कुर्मी महासभा'** के नाम पर आयोजित किया था, लेकिन कूपन वगैरह **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** के नाम के ही चलाये गये, जो कि स्पष्टः परस्पर विरोधाभास का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

3. **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'** सन् 1958 में कलकत्ता से निकलना प्रारम्भ होकर 18 वर्ष तक वहाँ से निकलकर फिर यायावरी जींवन जीता हुआ निकल रहा है। यह महासभा की एक मात्र एवं मुख्य मासिक पत्रिका है परन्तु उसके प्रचार–प्रसार तथा स्तरोन्नयन् के सम्बन्ध में न कोई चर्चा की गई और न इस अधिवेशन में इससे संबंधित कोई प्रस्ताव ही रखा गया। इस अधिवेशन में **''कूर्मि क्षत्रिय जागरण''** पत्रिका को तो मानों अधिवेशन के आयोजक भूल ही गये थे।

4. अन्य प्रदेशों और दूर–दूर के अंचलों से कष्ट उठाकर आये प्रतिनिधियों, सामाजिक पदाधिकारियों, कार्यकर्ताओं और बुद्धि जीवियों तथा युवा नेताओं को सभामंच पर अपने विचारों को प्रस्तुत करने का पर्याप्त समय और अवसर प्रदान नहीं किया गया। केवल जनता दल के केन्द्रीय या प्रादेशिक स्तर के राजनैतिक व्यक्तियों का ही मंच पर बराबर वर्चस्य बना रहा और हर कार्यकलाप में उन्हीं का राग अलापा गया।

5. महासभा के विधान और नियमावली के अनुसार यह पूर्णतः सामाजिक संस्था है। इसके अधिवेशनों में सामाजिक महानुभावों और राजनैतिक व्यक्तियों को समभाव से मान–सम्मान तथा कार्यक्रमों में बराबर का महत्व देना चाहिये था। पर पिछले अनेक अधिवेशनों में यह देखा गया है, कि आयोजक लोगों का ध्यान मात्र सत्ता वाले राजनीतिज्ञों पर केन्द्रित रहता है उनकी ही आव्–भगत, और यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाय, कि चापलूसी में वे पूरा ध्यान देते रहे हैं और सामाजिक महानुभाव चाहें कितना भी आदरयोग्य क्यों न हो, इस तरह के जमघट में उनकी अवहेलना ही होती देखी गयी है। **महासभा के शुभचिन्तकों को गंम्भीरता से सोचना होगा और उचित कार्यवाही करनी होगी, जिससे इन त्रुटियों की पुनरावृति आगे के अधिवेशनों में रोकी जा सके और एक स्वस्थ, सर्वहितकारी, समाजोत्कर्षी परम्परा की स्थापना की जा सके।**

यदि उपर्युक्त कमियों को न होने दिया जाता तो यह अधिवेशन अपने में बहुत सफल सिद्ध हो सकता था। तैयारी वैसे बड़े परिश्रम से तथा एक बहुत बड़े आयोजन के अनुरूप ही की गयी थी। जिन व्यक्तियों की बिहार में रिश्तेदारियाँ या मित्रगण हैं वे सब इस बात से सहमत होंगे कि बिहार के कुरमियों की आत्मीयता, मेहमान–नवाजी अद्वितीय है। वे लोग हर सुविधा का ध्यान रखते हैं। इस अधिवेशन में भी कांफी बड़ी संख्या में लोग रात–दिन एक कर बड़े परिश्रम से कार्यों में जुटे रहें, जो कि वास्तव में प्रशंसनीय था और वे सब साधुवाद के पात्र थे।

महासभा के नये पदाधिकारियों के चयन की विचित्र चुनाव प्रक्रिया

ज्ञातव्य हो कि 21 अक्टूबर 1991 को शान्ति कुंज हरिद्वार में **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** की कार्य कारिणी समिति की बैठक हुई। इस बैठक की अध्यक्षता उपाध्यक्ष **श्री हरिप्रेम बघेल** (मध्य प्रदेश) ने की। पिछली कार्रवाई की सम्पुष्टि के पश्चात् मुख्य रूप से अध्यक्ष, **श्री महेन्द्र सिंह** के लिखित पद त्याग पत्र पर विचार हुआ। काफी बाद–विवाद के पश्चात् कार्यकारिणी ने उनके त्यागपत्र को स्वीकार कर लिया। इस बैठक में काफ़ी कम उपस्थिति थी और वह एक तदर्थ कमेटी समान थी।

नये अध्यक्ष पद के लिये **श्री कृष्ण कुमार वर्मा** रायपुर (म॰ प्र॰) ने इस संस्था के **महामंत्री डाक्टर बलिरामसिंह** का नाम प्रस्तावित किया जो सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। इसी सन्दर्भ में **श्री जगदेव प्रसाद कनौजिया** का नाम **महामंत्री पद** के लिये तथा **श्री कृष्ण कुमार वर्मा**, रायपुर (म॰ प्र॰) के नाम को **कोषाध्यक्ष** पद हेतु प्रस्तावित होने पर निर्विरोध चुनाव सम्पन्न हो गया। अध्यक्ष और महामंत्री ने नयी कार्यकारिणी समिति का गठन भी कर लिया। यह अपने में विचित्र चुनाव प्रक्रिया थी। जब **अध्यक्ष महेन्द्र सिंह ने पटना अधिवेशन में 17 मार्च 1991 को कार्यकारिणी समिति की बैठक करके उसे भंग करने की घोषणा वहीं पर कर दी थी जिससे उसी दिन जनसभा से नये पदाधिकारियों का चुनाव विधिवत अनुमोदित कराया जा सके। फिर लगभग 7 महीने बाद, 21-10-91 को शान्ति कुन्ज हरिद्वार में भंग कार्यकारिणी समिति को किस नियम के अन्तर्गत पुनर्जीवित किया गया? यदि उसको इस प्रकार पनुर्जीवित करने का कोई विधान या नियम नहीं है तो नये पदाधिकारियों का चुनाव उसके द्वारा कहां तक वैध है?** विद्वत पाठक गण ही विचार कर इस चुनाव की वैधता पर निर्णय लें सकते हैं। **दूसरे इन नये पदाधिकारियों का जब तक जन-सभा अनुमोदन नहीं कर देती, जो कि वे अगले तीन वर्ष अर्थात् 21-10-94 तक भी न करा पाये हैं, ये चुनाव॰ या इन द्वारा की गयी इस बीच की सारी कार्यवाहियाँ वैध कैसे ठहरायी जा सकती है? इसके तुरन्त बाद एक पत्र भेजकर सबको नियमावली में पूर्ण आस्था और उसको प्रतिष्ठित करने हेतु लिखित शपथ लिखकर भेजने को कहा गया था।** लिखित शपथ लेकर चन्द लोगों की उपस्थित में हरिद्वार में, तदर्थ कार्यकारिणी समिति का गठन मनोनीत अध्यक्ष और महामंत्री ने किया। यह पूरी प्रक्रिया महासभा के चुनाव–सम्बन्धी नियमावली के अनुसार न थी। **इसके वावजूद इसके महामंत्री ने महासभा की नियमावली का लगातार और कदम-कदम पर उल्लंघन किया, जिसकी दूसरी मिसाल महासभा के सौ वर्ष के इतिहास में ढूढ़ें नहीं मिलती।** महासभा के अंग नियमावली के नियम 7 के अनुसार केन्द्र, राज्य एवं जिला स्तर, संस्था **(अ.भा.कू.क्ष. महासभा)** की मौलिक अधिकार सम्पन्न साधारण सभायें होगी जो केन्द्रीय, प्रादेशिक एवं जिला के नाम से जानी जायेंगी। महज **कूर्मि क्षत्रिय समाज दिल्ली** और शायद ही एकाध अन्य दूसरे प्रादेशिक सभा का कार्यकाल समाप्त होने पर वहाँ की जनसभा द्वारा नवनिर्वाचित पदाधिकारी गणों तथा कार्यकारिणी समिति का गठन इन गत् 3वर्षो में हुआ हो। और तो और उत्तर प्रदेश जहाँ से वर्तमान अध्यक्ष तथा महामंत्री दोनों हैं वहाँ की प्रादेशिक सभा का कार्य काल समाप्त हुये वर्षो हो गये पर महासभा वहां चुनाव नहीं करवा सकी। केन्द्रीय कार्य कारिणी समिति में महामंत्री जी ने अबांछनीय लोग सदस्य बना रखे है जोकि अपनी प्रादेशिक सभाओं द्वारा मनोनीत नहीं किये गये। दिल्ली समाज के विधिवत मनोनीत सदस्यों का महासभा की केन्द्रीय कार्यकारिणी में स्थान नहीं दिया है। इसके विपरीत अन्य संस्थाओं को सम्बद्धता शुल्क लेकर सदस्यता दे दी है जब कि इस प्रक्रिया का महासभा की नियमावली में कोई प्रावधान नहीं है और न इसे जनसभा से अनुमोदित करवाया है। क्षेत्रीय इकाइयों की सम्बद्धता का विवरण 'कू.क्ष॰ जागरण' के फरवरी 13, 1994 अंक में दिया है जोकि .बिल्कुल महासभा की नियमावली के विरूद्ध है। परिणामतः महासभा की प्रदेश और जिला स्तर की सभायें तो लगभग निरस्त्र हो गई और इधर–उधर के नये संस्थानों को सम्बद्धता प्रदान कर नियमावली का मूलभूत ढांचा बदल दिया गया है। महासभा के शुभचिन्तकों को इन मुद्दों पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

महासभा के 37 वें अधिवेशन की स्मारिका

इस अधिवेशन के अवसर पर **प्रो॰ राम बुझावन सिंह, श्री सिद्धेश्वर जी** तथा **डा॰ जे॰ पी॰ सिंह** के सम्पादक मण्डल की देख–रेख में बड़ी सुन्दर तथा पठनीय एक स्मारिका प्रकाशित की गई। इस स्मारिका के प्रमुख आवरण पृष्ठ पर पटना सचिवालय के सम्मुख स्थित **''शहीद स्मारक''** में 11 अगस्त् 1942 को **'अंग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन'** के समय सात युवा दीवानों को अंग्रेजों की गोली का शिकार बनाया जाना, सामूहिक मूर्तियों द्वारा दर्शित किया गया

है, जिनमें 18-19 वर्ष की आयु वर्ग के तीन कुरमी युवा जनों, **सर्वश्री रामानन्द सिंह राजेन्द्र सिंह, और राम गोविन्द सिंह** ने अपनी शहादत देकर, अपना, परिवार का, कुरमी जाति का और यहाँ तक कि राष्ट्र का नाम उज्जवल किया। स्मारिका में **बी. एन. कालिज पटना** के **प्रो. राम प्रवेश सिंह** को आह्वान करते हुये संदेश दिया, **अपने एक और अधिकार के लिये आगे बढ़ो।**

ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर चोट करो।

आगे बढ़ो, और नौकर शाही और राजसत्ता

पर अधिकार करो, अधिकार करो।।

प्रो. विमला चौधरी, पटना अपने लेख **''वक्त की आवाज़ मिलकर चलें''** में कहती हैं – **''निष्कर्षतः कुरमी जाति में आपसी सहयोग, संघ-भावना, एकता और सहकारिता का पूर्णतः अभाव ही इसकी उन्नति में बाधक है. ..... इसलिये इस संघर्ष पूर्ण धरती पर जीने के लिये आवश्यक हो जाता है कि हम संघवद्ध हों एवं एक दूसरे का अधिकाधिक सहयोग करें, सहकारिता का अर्थ समझें और उसे अपने जीवन में उतारें। क्योंकि-**

''जिन्दगी का राज़ है कि मिलकर चलो।

वक्त की आवाज़ है कि मिलकर चलो।।

इस प्रकार इन सुखद–दुःखद, खट्टे–मीठे अनभुवों के साथ महासभा का 37 वाँ अधिवेशन सम्पन्न हुआ था।

स्वर्गीय श्री धर्मवीर सिन्हा का जयन्ती समारोह

पटना के भारतीय नृत्य कला मंदिर में **स्व. धर्मवीर सिन्हा**, पूर्व उपमंत्री भारत सरकार के जयन्ती–समारोह का उद्घाटन 12 जून 1993 को बिहार के मुख्य मंत्री माननीय **श्री लालू प्रसाद यादव** ने दीप प्रज्ज्वलित कर किया। स्वर्गीय धर्मवीर सिन्हा को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मुख्य मंत्री जी ने कहा कि स्वर्गीय सिन्हा ने पिछड़ों को सिर्फ जगाया ही नहीं उन्हें मान–सम्मान प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि ऐसे महान नेता को विस्मृत कर कुछ खास–खास नेताओं का जन्म दिवस तथा पुण्य तिथि धूमधाम से मनायी जाती रही है। उन्होंने आगे कहा कि **धर्मवीर सिन्हा** का व्यक्तित्व आज के राजनीतिज्ञों से अलग था। उन्हीं के पिता **श्री देवशरण सिन्हा** ने सर्वप्रथम **पिछड़ा वर्ग संघ** की स्थापना की थी।

जनता दल सांसद **श्री नीतिश कुमार**, पूर्व राज्य मंत्री भारत सरकार ने अपनी भावभीनी श्रद्धाँजलि अर्पित करते हुए कहा कि **स्व. सिन्हा** सदा दबे–कुचले लोगों में आत्म–सम्मान की भावना पैदा करने के लिए प्रयत्न शील रहे। उनके पिता आजादी की लड़ाई में अपनी भागीदारी के कारण वर्षो तक जेल में रहे। पर आज कांग्रेसी नेता उन्हें भूल गए हैं। **धर्मवीर सिन्हा जी पहले छात्र थे, जो पटना विश्वविधालय में एक छात्र नेता के रूप में उभरे। उन्होंने कहा कि धर्मवीर बाबू दस वर्षीय बालकों का नेतृत्व करते हुए बाढ़ से हजारी बागं गयें थे।**

मुख्यमंत्री जी ने इस बात पर दुःख प्रकट किया कि उन्होंने विगत वर्ष ही **छज्जूबाग** का नाम बदलकर **देवशरण नगर** बनाने की घोषणा की थी, पर राजस्व विभाग ने अभी तक इस आशय की अधिसूचना जारी नहीं कीं है। उन्होंने आश्वस्त किया कि 2-4 दिनों के अन्दर ही अधिसूचना जारी कर दी जायेगी और **धर्मवीर सिन्हा** का जहाँ निवास स्थल था, वहाँ **सामुदायिक भवन** का निर्माण कर **स्व. सिन्हा को समर्पित्त किया जाएगा।** उन्होंने सभामच से यह भी ऐलान किया कि सन् 1942 के सात अमर शहीदों, जिनका स्मारक पटना सचिवालय के सम्मुख बना है और

जिनमें से 3 कुरमी जाति के थे उन्हें याद करने वाला भी आज कोई नहीं है। **अब ऐसा नहीं चलेगा और शीघ्र ही उन तीन शहीदों के नाम पर सड़क एवं किसी संस्थान का निर्माण कराकर उन्हें अमरता प्रदान की जायेगी।**

धर्मवीर सिन्हा स्मारक समिति के सचिव **श्री राम देव प्रसाद** ने उनके बहुआयामी व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। प्रारम्भ में **प्रो. राम बुझावन सिंह** ने आगत अतिथियों का स्वागत किया और धर्मवीर बाबू के भतीजे **संजय सिंहा** ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

सिंहावलोकन

सारे देश मे कुरमी जाति लगभग 1448 उपशाखाओं में विभक्त है। प्रत्येक ने संगठन और सामाजिक बुराइयों को दूर करने का अपने–अपने ढ़ंग से अथक परिश्रम किया हैं। लब्ध प्रतिष्ठ **बाबू जनक धारी लाल जी** ने समाज सुधार के प्रयास में सन् 1870 ई. में एक सभा दानापुर में तथा सन् 1890 में दूसरी विशाल सभा **हरिहर क्षेत्र (सोनपुर)** के मेले में बुलाई थी, जो क्षेत्रीय थी तथा अपनी **शाखा अवधिया** से अधिक सम्बंधित थी। इस जातीय सभा की कड़ी में नालन्दा निवासी **बाबू टुन्नीलाल जी** का नाम स्मरणीय है, जिन्होंने **बैठकपुर (पटना)** में समाज सुधार के प्रयास में संगठन का कार्य, सन् 1879 में सभा बुलाकर, शुरू किया था। उन्होंने इस सभा का आयोजन अपने खर्च से किया था। यह भी अपनी **शाखा ''कौचेसा''** तक ही सीमित रहा। उस सभा ने अमीरों के लिये तिलक के लिये अधिकतम राशि 81 रूपये मात्र निश्चित कर दी तथा यह भी तय किया गया कि एक लड़का और एक लड़की रहते हुये दूसरी शादी नहीं होनी चाहिए। किन्तु सन् 1925 ई. में उपर्युक्त सभा के निर्देश के विरोध में **तिलैया (नालन्दा)** के **श्री चिन्तामन महतो** नामक व्यक्ति ने दूसरी शादी, एक लड़का और एक लड़की के रहते हुये भी, करने की ठानी। **सभा के सभापति तथा महामंत्री ने समझा-बुझाकर शादी रोकने की,भूरपूर कोशिश की लेकिन नीमा में चिन्तामन महतो की शादी होकर ही रही। सभा के कार्यकर्त्ताओं ने विवाह के शामियानो में आग लगा दी। उन पर मुकदमा चला। बाइस व्यक्तियों को मुद्दालेह बनाया गया। पटना हाईकोर्ट से सात व्यक्तियों को नौ-नौ महीने तथा दो को छः-छः महीने की सजा हुई, क्योंकि दरोगा जी ने सामाजिक सभा को राजनैतिक रंग चढ़ाकर इनके खिलाफ खूब बढ़ा-चढ़ाकर लिख दिया था। परिणाम स्वरूप सभा का कार्य ठप्प ही हो गया।**

उधर **संयुक्त प्रान्त में 2 फरवरी सन् 1894 को** ब्रिटिश सरकार ने, **कतिपय कुरमी-विरोधी** ईर्ष्यालु लोगों के दुराग्रह पर, **एक परिपत्र निकालकर कुरमी तथा कुछ अन्य जातियों को पुलिस विभाग की नौकरी से वंचित कर दिया था।** इसका एक कारण यह भी था कि सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में अतरौलिया के **राजा जयलाल सिंह नुसरत जंग** के नेतृत्व में कुर्मियों ने स्वतंत्रता–संग्राम में खुलकर अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ाई लड़ी थी। देहातों में कुरमी–कृषक खुशहाल थे कुरमी विरोधियों ने अंग्रेजों के कान भर दिये कि **'सिपाही - विप्लव'** के जमाने में यही लोग चुपके – चुपके विद्रोहियों को रसद आदि पहुँचाते थे और वक्त आने पर उन्हें अपने यहाँ छिपाकर, खतरे से बाहर तक पहुँचवा देते थे। यह सब सुनकर अंग्रेज सरकार के आफीसर जल–भुन गये।

उपर्युक्त सरकारी परिपत्र के कारण कूर्मि क्षत्रियों में खलबली मचना और रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था। यद्यपि कुरमियों को सरकारी नौकरी की या किसी अन्य की नौकरी की चाह नहीं रहती थी, फिर भी पुलिस के पक्षपातपूर्ण परिपत्र को चुनौती समझकर वे तिलमिला उठे और प्रतिकार के लिये तत्पर हो गये। कुछ नौजवान जैसे **लखनऊ के बाबू रामाधीन सिंह** तथा बाराबंकी के **चौधरी देवी प्रसाद सिंह** आगे आये और इन सबके अथक परिश्रम से 29 और 30 दिसम्बर 1894 को **'कुरमी सदर सभा'** का गठन हुआ और उसका पहिला अधिवेशन **बाबू गेंदन लाल कटियार** की अध्यक्षता में लखनऊ में सम्पन्न हुआ। बाबू रामाधीन सिंह के सम्पादकत्व में **'कुरमी समाचार' पत्रिका** का प्रकाशन तभी से शुरू कर दिया गया, पर वह ज्यादा समय तक न चल सकी। सन् 1908 से **''कूर्मि क्षत्रिय हितैषी''**

पत्रिका का सम्पादक **चौधरी दीप नारायण सिंह** ने मेड़िया, चुनार (मिरजापर) यू.पी. से किया।

'कुरमी सदर सभा' के प्रयास और आंदोलन से सरकार झुकी और अपना परिपत्र निरस्त करते हुये आदेश दिया– आदेश क्र. 251/ आठ– 186 , ए 6 दिनांक 21 मार्च 1896– **''गवर्नर की राय में कुरमी एक सम्मानित समुदाय है जिसे शासकीय सेवा से बाहर रखना अनुचित है।''** उसके बाद तो महासभा के अधिवेशन आयोजित होने लगे और अब तक 37 अधिवेशन हो चुके हैं। सन् 1994 का वर्ष लगभग समाप्त होने को है और यह महासभा की स्थापना का प्रथम शताब्दी जयन्ती वर्ष है।

लगभग इसी समय सन् 1894 के आस–पास गुजरात में भी एक महान जात्योद्धारक **राय बहादुर सेठ बेचर दास अम्बाई दास लश्करी** का आविर्भाव हुआ। इन महान पुरूष के सद्प्रयत्नों से **पाटीदार - पटेलों** में संगठन बना और अनेक कुरीतियाँ दूर हो सकी। आज गुजरात के बन्धु प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी हैं, यह उनके तथा उन जैसे अनेक महापुरुषों के सतत प्रयासों और अथक परिश्रम से सम्भव हुआ। उन्होंने आरक्षण जैसी वैसाखियों की तरफ न ताककर प्रतिस्पर्धा में अपने को योग्य से योग्यतर बनाकर लक्ष्य प्राप्त करने का साहस बनाये रखा।

इतिहास में **'मराठा'** शब्द पहले–पहल तेरहवीं शताब्दी के अन्तर्गत यत्र–तत्र मिलता है। उस काल में **हवेनसांग** ने, अपनी भारत– यात्रा के दौरान मराठों का तेजोमय वीर रूप अपनी आखों से देखा था जिसका विशद चित्रण उसने अपने यात्रा वृतान्त में किया है। **उत्तर भारत में राजपूतों का शक्ति-सूर्य बारहवीं शताब्दी के अन्त में मोहम्मद गोरी के आक्रमण के कारण अस्ताचल को चला गया था, पर उसका पुनरोदय दक्षिण में मराठों के रूप में हुआ था। मराठों के प्रताप का यह नवोदित सूर्य आगामी तीन सौ वर्षों में अर्थात् सत्रहवीं शती ई. के आरम्भ तक अपने प्रखरतम रूप में चमका। मराठों ने ही हिन्दुओं की अस्मिता को पुनः स्थापित किया , जब कि अफीम और शराब के नशे में डूबे राजपूत राजघराने अपनी बहिनों और बहुओं और लड़कियों को मुगल और अन्य मुसलमान बादशाहों के महल में भेजकर 'बकरे की माँ की तरह अपनी खैर मनाते हुये' तिरस्कृत हो रहे थे।**

डा. ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं कि औरंगजेब के शुत्रओं में मराठे सबसे अधिक धुन के पक्के और वेढ़ब शत्रु थे। मराठों से निरन्तर 25 वर्ष तक युद्ध करके **आलमगीर औरंगजेब** को पराजय, अपमान और सर्वनाश के सिवा और कुछ प्राप्त न हो सका। इस समय मराठों के नेतृत्व के लिये जिस अपूर्व शक्तिमान लोकनायक के आविर्भाव का जमाना बेचैनी से इन्तजार कर रहा था, वह **महाराज छत्रपति शिवाजी** के रूप में अवतरित हुआ और यही समय मराठों के उत्कर्ष का था।

देश के दुर्भाग्य से काफी कम आयु में **शिवाजी महाराज** का यकायक निधन हो गया। जिससें पारिवारिक षड़यंत्र में दरबारियों के हाथ की सम्भावना को भी नकारा नहीं जा सकता। पारिवारिक एकता कायम न रह सकी। मराठा शक्ति विभाजित हो गयी। पेशवाओं ने शिवाजी के वंशजों को पंगु बनाने में कूटनीति का सहारा लिया। उन्हें राजा से पेन्शन याफ्ता बनाकर रख दिया, राज–काज के सारे अधिकार अपने हाथों में ले लिये। पर अंग्रेजों ने उन्हें भी मात दे दी और सारा भारत उनके शासन–तंत्र के आधीन चला गया। **मराठों को लगा कि शिक्षा की कमी के कारण वे पेशवाओं के हाथ की कठपुतली बन कर रह गये थे। ''मराठा शिक्षण परिषद'' जैसी संस्थाओं ने मराठों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ाने में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। उसी पर जोर भी दिया गया। आज फिर महाराष्ट्र के जन-जीवन में चाहें राजनीति हो, कृषि उत्पादन, सहकारिता हो मराठों में उनके कम सम्पन्न कुनबी बन्धुओं का वर्चस्व स्थापित हो गया। जिन क्षेत्रों में वे शीर्षस्थ स्थान अभी नहीं बना पाये हैं वे प्रयत्नरत है। पटेल-पाटीदारों** की तरह **मराठों** ने अपना सामाजिक स्थान प्रथम पंक्ति में सुनिश्चित कर लिया। पेशवाओं ने उनकी आखें खोल दी थी पर शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा स्वराज्य को भी, उन्होंने टुकड़ों में विभाजित कर नष्ट कर डाला था। आज उन्हीं में से **यशवन्त राव चाह्वाण, वसन्त दादा पाटिल, एस. बी. चाह्वाण, शरद पवार** आदि देश सेवा में

अपना नाम स्थापित कर चुके है। अब मराठे किसी अन्य पेशवा के भ्रम में न फंसेगे। शिवाजी की तरह देश सेवा में वे अपना सर्वस्व अर्पित कर देगे।

बोकालिगर संघ को 1 अप्रैल 1906 ई. में संगठित किया गया था। संस्था ने पंजीकृत होकर मैसूर प्रान्त के प्रसिद्ध नगर बंगलौर में अपना मुख्यालय बनाया। बोकालिगर संघ को भाग्य से एक माननीय संरक्षक **हिज हाइनेस श्री कृष्ण राजेन्द्र बाडेयार बहादुर जी. सी. एफ. आई, मैसूर के महाराजा** मिल गये, जिन्होंने **बोकालिगर संघ** को हर प्रकार से सहयोग देकर सुदृढ़ एवं सक्षम सुधारवादी जातीय संस्था बना दिया था। **धारवाड़** में बोकालिगर छात्रों के लिये छात्रावास खोला गया। उसके मंत्री **के. एच. रमैया** थे। कर्नाटक की राजनीति तथा सामाजिक गति विधियों में यद्यपि वे पिछड़े वर्ग में हैं पर वे उन्नतिशील हैं और आगे बढ़ रहे हैं।

महासभा के शुरू के अधिवेशनों में दक्षिण भारत महाराष्ट्र तथा गुजरात के अपने संमय के अत्यन्त प्रसिद्ध महानुभावों ने अध्यक्षता की थी और प्रतिनिधियों के तौर पर अनेक भाषा–भाषी बन्धु विभिन्न प्रान्तों से आते थे पर शनैः – शनैः यह एक त्रिवर्षीय जलसा जैसा होता जा रहा है और भाग लेने वाले लगभग सभी कुरमी जन हिन्दी भाषी ही होते हैं। और इसका अखिल भारतीय रूप लुप्त सा होकर प्रादेशिक सीमाओं में हिन्दी भाषी अंचल तक सिमटा गया हैं। संस्था अभी किसी तरह कार्यरत है। 35वें, 36वें एवं 37वें अधिवेशनों में महासभा के अध्यक्ष और महामंत्री दोनों शीर्षस्थ पदों को उत्तर प्रदेश के कुरमियों ने हथियाये रखा, जोकि स्वस्थ परम्परा नहीं कही जा सकती।

महासभा को तीन बार सख्त झटका लगा है। पहली बार आपस के मनमुटाव के कारण महासभा के सत्ताइसवें अधिवेशन दो बार करना पड़ा। सत्ताइसवें अधिवेशन के नाम पर 27 और 28 दिसम्बर 1960 को बिहार राज्य के दरभंगा जिले के सौराठ गाँव में ''**कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर**'' के पूर्व सम्पादक **श्री शिवरामसिंह** की अध्यक्षता में सभा हुई। दूसरा 27 वाँ अधिवेशन कलकत्ता के कुछ लोगों तथा तत्कालीन प्रधान मंत्री **श्री गुप्तनाथ सिंह** ने अलग से होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में 28 मई 1961 में आयोजित किया, जिसकी अध्यक्षता **श्री कृष्ण कुमार देशमुख** ने की। **दूसरी घटना** मंत्री पद की प्राप्ति के लिये घटी। महासभा के 32 वें अधिवेशन, दिल्ली में, **चार व्यक्ति महामंत्री पद के लिये इच्छुक** हो गये। उस अधिवेशन में **चार उपाध्यक्ष** तथा **चार महामंत्री** मनोनीत किये गये **यद्यपि नियमावली में केवल एक महामंत्री का प्रावधान है। तीसरा झटका** पटना के 37 वें अधिवेशन में लगा, जो महासभा के पूर्व अनुमति के बिना आयोजित किया गया था। **उसमें महासभा के विधान तथा नियमावली की अनेक तरह से अवहेलना की गयी थी।** यदि महासभा के नाम से कभी **'क्षत्रिय'** शब्द झालदा अधिवेशन में निकालना, रायपुर अधिवेशन में पुनः जोड़ देना तथा पटना अधिवेशन में फिर निकाल देना तथा **'कूर्मि'** शब्द का रूपान्तर ''**कुर्मी**'' करके नाम में जोड़ देना भी गम्भीरता से लिया जाय तो यह **चौथा झटका** होगा, पर अगले अधिवेशन में महासभा के नाम में पुनः क्षत्रिय शब्द जोड़ा जाता है कि नहीं, यह तो समय ही बतायेगा कि अन्ततोगत्वा इस मुद्दे पर आखिर ऊँट किस करवट बैठता है पर नाम में जो भी परिवर्तन लाया जाए निमयानुरार उनकी प्रक्रिया पूरी करके लागू करना न्यायसंगत होगा, अन्यथा नहीं। **10 सितम्बर 1994** की लखनऊ में हुई **महासभा** की **कार्यकारिणी समिति** की बैठक में यह अन्तिम निर्णय लिया गया कि **महासभा** का **38वां अधिवेशन** तथा **शताब्दी समारोह** दिसम्बर 1994 के अन्तिम सप्ताह में उसके **स्थापना नगर लखनऊ** में ही आयोजित किया जायेगा। अधिवेशन स्थल के लिये लखनऊ नगर निगम की आवश्यक स्वीकृति लेकर अधिवेशन की तिथियाँ और प्रोग्राम **"कूर्मि क्षत्रिय जागरण"** के अगले अंक में सबके सूचनार्थ प्रकाशित कर दिया जायेगा।

कुरमी समुदाय (कुन्बी, कणबी, कुलंबी, कुलमी, कुरमी, कम्मा, कापू, पाटीदार, पटेल, मराठे, रेड्डी, नायडू आदि) सम्पूर्ण भारतीय हिन्दू जन समुदाय के लगभग पाचवें भाग अर्थात् 13-14 करोड़ जनसमूह का प्रतिनिधित्व करने वालों के वंशज एवं जाति को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों **(सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक**

आदि) में समुचित स्थान प्राप्त क्यों नहीं है? इसका मुख्य कारण है हम विघटित हो गये हैं, बिखर गये हैं। दुर्दशा से **भाषा, वेश-भूषा, खान पान** विभिन्न होते हुये भी हम संगठित होकर एकता के सूत्र में बंधकर सफलता पा सकेंगे, तभी हमारी आवाज़ बुलन्द होगी और ससम्मान हरेक द्वारा सुनी जायेगी, उस पर ध्यान दिया जायेगा। हमको अपनी उपजाति के दायरे से बाहर निकल कर सामाजिक रूढ़ियों तथा कुरीतियों को त्यागना होगा।

अन्य जातीय संगठन विकास की और दिनानुदिन अग्रसर हो रहे हैं किन्तु हमारा संगठन अपेक्षाकृत अन्य संगठनों से सुव्यवरिस्थत, संगठित और जागरूक होकर भी उनकी तुलना में अपने लक्ष्य की प्राप्ति में उतनी सफलता नहीं प्राप्त कर सका है, जितनी उससे अपेक्षा की जाती है। इसका एक मात्र कारण चतुर्दिक विकास और जागरूकता तथा सजगता की कमी ही बतायी जा सकती है। कुछ बन्धुओं ने इसके निराकरण के लिये विचारणीय बिन्दु प्रस्तुत किये हैं, जैसे–

1. **संगठनात्मक इकाइयों की स्थापना,**
2. **पदाधिकारियों का समयबद्ध कार्यक्रम,**
3. **जातीय साहित्य का प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार,**
4. **राजनैतिक चेतना की परमावश्यकता,**
5. **पिछड़ेपन की हीन एवं कुत्सित भावना का त्याग।**

6. राजनैतिक नेतृत्व, सामाजिक नेतृत्व को समान सम्मान देकर उनमें समन्वय स्थापित करते हुए महासभा की बागडोर सामाजिक लोगों के हाथों में रहना चाहिए इस सन्दर्भ में इस मूल, मंत्र का स्मरण रखना चाहिये–"**एकता ही बल है और संगठन ही शक्ति है। बिना सामाजिक एकता के, बिना संगठन के, राजनैतिक चेतना की बात महज एक थोथी दलील मानी जायेगी। शिक्षा समाज की रीढ़ है।**" अतः अपने पुत्र और पुत्रियों, दोनों को, अधिक से अधिक तथा उच्च से उच्चतम शिक्षित बनाने की नितान्त आवश्यकता है। बच्चों की विचारधारा आधुनिक हो, रूढ़िवादी न हो। वे संस्कारित हों उनकी जड़ें भारतीयता में होनी चाहिए।

इसके लिये परमावश्यक है कि 21 वीं शताब्दी प्रारम्भ होने से पूर्व स्वच्छ और विकसित विचार धारा के कूर्मि पुत्र–पुत्रियाँ आगे आयें। गाँव–गाँव, तहसील–तहसील और जनपद–जनपद में शाखा–उपशाखा के भेदों का भुलाकर कूर्मि समाज का नीचे से ऊपर चोटी तक मजबूत संगठन स्थापित करें, जिनके माध्यम से शिक्षा प्रसार का, प्रगतिशील विचारों का तथा व्यापक भाई चारे का सतत प्रयास हो। हर मोर्चे पर, हर बुराई, रूढ़ियों और अन्ध–विश्वासों से लड़ें और **बीसवीं शताब्दी के अन्त होने तक समयबद्ध कार्यक्रम बनाकर इन सब पर पूर्ण विजय प्राप्त करें, जिससे अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर एक उन्नत और बृहत कूर्मि समाज 21 शताब्दी में प्रवेश करके नये उच्च आयामों में अन्य प्रगतिशील भारतीयों के साथ कदम से कदम मिलाकर बढ़ते काफ़िले की अग्रिम पंक्ति में नज़र आवे।**

कूर्मि जाति के इतिहास–सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों के विद्वान लेखक श्रद्धेय **श्री रामकृष्ण मेहता जी** का मत है– **"महासभा के इतिहास में तीन महापुरुषों के नाम चिरस्मरणीय रहेंगे, प्रथम महासभा के, विशेष करके 'कुरमी सदर सभा' के जनक लखनऊ के बाबू रामाधीन सिंह, द्वितीय महासभा के अनेक वर्षो तक पोषक तथा अध्यक्ष, देवास नरेश श्रीमन्त सर तुकोजी राव पँवार तथा तृतीय कलकत्ता के प्रसिद्ध समाज सेवी, दानवीर तथा 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' के जन्मदाता तथा महासभा के पूर्व अध्यक्ष, श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह। वैसे तो अनेक अन्य नाम भी हैं, जिन महानुभावों का सदैव श्रद्धा से स्मरण किया जाता रहेगा, पर ये तीनों विभूतियाँ जब तक चन्द्र, सूर्य**

रहेंगे, कूर्मि जातीय इतिहास-गगन को सदैव प्रकाशित करती रहेंगी।''

यहाँ यह बताना असंगत न होगा कि जातीय संगठन के बारे में कुरमियों को सन्तोष नहीं है। महासभा के 100 वर्ष तक कार्यरत होने पर भी उनकी बहुत सी अपेक्षायें पूरी नहीं हो पायी हैं, वैसे ही जैसे **उपन्यास सम्राट श्री प्रेम चन्द** जी भी अपनी जातीय संस्था **''कायस्थ कान्फ्रेस''** की उपलब्धियों से खुश न थे। **श्री प्रेमचन्द जी** का सम्पादकीय **'जागरण'** पत्रिका का, 2 जनवरी 1933 को प्रकाशित शीर्षक **"कायस्थ कान्फ्रेंस"** से कुछ अंश नीच उदधृत किये गये हैं, जिससे कुरमी बन्धुजन प्रेरणा लेकर उन्नति कर सकें :

"प्रयाग में कायस्थ कान्फ्रेंस हुई। चालीस वर्ष से इसी प्रकार व्याख्यान, प्रस्ताव पास होते रहते हैं। ऐसा हृदय-हीन समाज, जिसके कर्म और वचन में मेल नहीं, जो स्वार्थ-हेतु आत्मा भी बेच सकता है कभी उठ नहीं सकता। जिस घर में दो-तीन कन्यायें हैं, समझ लो उनका सर्वनाश हो गया। सारे कायस्थ समाज में विवाह के समय लेन-देन का घृणित व्यापार होता है। अब तो लड़कियाँ ही इस अनीति को समाप्त कर सकती हैं। वे तब तक विवाह न करें, जब तक कोई युवक प्रेम-भाव से उनके सामने माथा न टेके। लड़कों और उनके बापों से आशा करना व्यर्थ है।"

श्री प्रेमचन्द जी ने उपर्युक्त बात लगभग 61 वर्ष पूर्व अपनी **कायस्थ जाति** में तब **प्रचलित कुरीतियों,** विशेषकर **दहेज प्रथा** को देखकर एक **सच्चे शुभचिन्तक** के तौर पर **बड़े दुःखी मन से व्यक्त की होगी। कुरमी-समाज** में कमों-वेश यह सभी कुरीतियाँ आज भी विद्यमान है। दहेज कुप्रथा दिनानुदिन बद से बदतर होती जा रही है। इसके रोकने के लिये **उपन्यास सम्राट श्री प्रेमचन्द जी** ने ठीक कहा था, जो आज भी सार्थक है कि लड़कों और उनके बापों से आशा करना व्यर्थ है। कुरमी लड़कियां अधिकाधिक शिक्षित होकर स्वावलम्बी बनें और यदि जीवन-साथी के चयन में दहेज अवरोध बन कर आता है तो उसके निराकरण के लिये **श्री प्रेमचन्द जी की उपर्युक्त सलाह पर विचार करें और अनुकरण करने का साहस जुटायें। नारी अबला नहीं सबला है, दहेज-कुप्रथा की वलि-वेदी पर उसके सुखमय भविष्य का सर्वनाश करके कोई जाति उन्नति नहीं कर सकती।**

श्री राम स्वरूप वर्मा

जब कोई सांस्कृतिक या सामाजिक व्यवस्था दोषपूर्ण हो जाती है तो **क्रान्ति द्रष्टा व्यक्ति** उस पतनोन्मुख व्यवस्था को त्यागने की सलाह देकर वैकल्पिक व्यवस्था भी प्रस्तुत करता है। **श्री राम स्वरूप वर्मा** जी ऐसे ही **बहुचर्चित समाज सुधारक और क्रान्ति द्रष्टा है।** इनका जन्म 22 अगस्त 1923 को उत्तर प्रदेश के जनपद कानपुर देहात के गौरीकरन गाँव में एक कुरमी कृषक परिवार में हुआ था। किसी प्रकार अभावों का सामना करते हुए **श्री रामस्वरूप वर्मा** ने सन् 1947 ई॰ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ और सन् 1949 में आगरा विश्वविधालय से विधि स्नातक की डिग्रियाँ प्राप्त की।

अपने छात्र-जीवन से ही समाजवादी विचारों से ओत-प्रोत रहने के कारण वर्मा जी ने **डॉ॰ राममनोहर लोहिया** जी के नेतृत्व में सामाजिक विषमता का उच्छेदन कर समाज में मनुवादी-व्यवस्था के स्थान पर मानववादी व्यवस्था स्थापित करने का मुख्य उद्देश्य अपनाया। जिसके लिये वे निरन्तर प्रयत्नशील रहे चाहें परिस्थितियाँ कितनी भी विषम रहीं।

जहाँ समतापरक मानववादी सामाजिक व्यवस्था होती है वहाँ आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था सही रहती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये श्री वर्मा जी ने जून 1968 को **'अर्जक संघ'** की स्थापना की तथा **'अर्जक'** नाम से उसका मुख-पत्र प्रकाशित किया। खासकर उत्तर प्रदेश एवं बिहार में इनके भाषणों तथा लेखों से 1972 मे फैजाबाद

में दिये गये भाषणों पर उन पर अलग–अलग दो अभियोग चलाये गए किन्तु वर्मा जी के विधि सम्मत् अकाट्य तर्कों से चार्ज लगाने के स्तर पर ही खारिज कर दिये गये।

श्री वर्मा जी का कथन है कि हमें पहले ब्राह्मणवादी विचारधारा, संस्कृति, मर्यादा, परम्परा एवं रीति रिवाजों का परित्याग करना होगा। भाग्य, भगवान, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा के सम्बन्ध में श्री वर्मा जी के काफ़ी तर्क पूर्ण विचार हैं। उनका कहना है कि इनमें से कोई एक भी हमारे दिल — दिमाग में कब्जा बना ले तो हम कहीं न कहीं ब्राह्मणवाद के शिकंजे में फंस जाते हैं और अपना हित, अपना विवेक खोकर इस जन्म को व्यर्थ समझकर, अगले जन्म के चक्कर में फंसकर, इस जन्म को बिना जागरूकता के गुजार देते हैं, तथा जग को मिथ्या मान बैठते हैं।

वर्मा जी सन् 1957, 1967, 1969, 1980 और 1989 में उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य निर्वाचित होते रहे तथा सन् 1967 की सरकार में वित्तमंत्री के महत्वपूर्ण पद पर कार्यरत रहे। **वर्मा जी की मान्यता है कि देश के सभी अखिल भारतीय कहे जाने वाले राजनैतिक दल ब्राह्मणवादी है। ब्राह्मणवाद के विकास और देश की गुलामी और समाज के पतनोन्मुखी होने में एक दूसरे का चोली-दामन का साथ है। ऐसा भारतीय सामाजिक इतिहास से विदित होता है। पतनकारी ब्राह्मणवाद अपने लक्ष्यों और सिद्धान्तों को कभी लेखबद्ध करके प्रकाशित नहीं करता है। यह सदैव छद्म रूप धारण कर सामने आता है जिससे निम्नवर्ग उसकी असलियत को नहीं पहचान पाता। यह सब कुछ जनतंत्र से ही सम्भव है। जनतंत्र प्रायः समता का पर्यायवाची है परन्तु भारत में अभी जनतंत्र नहीं है बल्कि उच्चवर्ग का कुलीन तंत्र है। देश स्वतंत्र होने के बाद इसीलिए अमीरी और गरीबी की बीच का अन्तर समाप्त होने के बजाए और बढ़ता ही जा रहा है। तथा तानाशाही प्रवृत्तियाँ सबल हो रही हैं। चुनाव भी निष्पक्ष नही हो पाते। माफिया, मीडिया और मनी के बढ़ते प्रभाव से जनमत ठीक प्रकार से उभर कर नहीं पनप पाता।** नवम्बर 1993 के विधान सभा चुनाव में श्री वर्मा जी सजातीय श्री नरेन्द्र सिंह सचान पूर्व मंत्री उ॰ प्र॰ से कानपुर के राजपुर क्षेत्र से पराजित हो गए।

इस कुलीन तंत्र का सबसे बड़ा प्रमाण अखिल भारतीय स्तर के समस्त राजनैतिक दलों का उच्चवर्गीय नेतृत्व है। दिखाने के लिये किसी निम्न जाति के व्यक्ति को कहीं पदासीन कर दिया तो वह व्यक्ति उनका अनुगत दास और झोला टाँगू हो जाता है। अतः वर्मा जी ने उच्चवर्गीय नेतृत्व उखाड़ फेंकने और उनके स्थान पर निचले वर्ग के करोड़ों लोगों का नेतृत्व सृजित करने का संकल्प लिया क्योंकि कुलीनतंत्रीय शासन में भ्रष्टाचार, आलस्य, असत्य और अय्याशी एवं उदासी के बीच देश का राजनैतिक वातावरण बोझिल और शिथिल हो गया है। प्रशासन में उच्चवर्गीय बहुलता के कारण काम के स्थान पर नाम, आराम और सलाम का बोलबाला है।

शोषित समाज दल, तुलसीदास कृत **'रामचरित मानस'** को घोर साम्प्रदायिक और ब्राह्मणवादी ग्रंथ मानता है। इसके कई चौपाइयों के भावों पर उन्हें घोर आपत्ति है, विशेष करके उस चौपाई के सम्बन्ध में जिसमें कि स्त्रियों, शूद्रों एवं यवनों (मुसलमान, ईसाई आदि अहिन्दू लोगों) को अधर्मी, पापी और ताड़ना का अधिकारी बताकर अपमानित किया गया है। एक अन्य चौपाई के अनुसार हिन्दू की कुछ जातियों के दर्शन मात्र से छूत और पाप लगता है। **आज का शिक्षित ब्राह्मण जो ब्राह्मणवाद की जड़वादिता से मुक्त हो चुका हैं वह इन सब अवधारणायें से सहमत नहीं है। पिछड़ेपन का कारण गरीबी नहीं मानसिक हीनता है। मंडल कमीशन की पिछड़े वर्गो के उत्थान के लिये आरक्षण सम्बन्धी सिफ़ारिशों को सरकार द्वारा अब लागू कर देने से अगले कुछ वर्षो में सुधार होने के लक्षण नजर आने लग जायेंगे। वर्मा जी ने अनेक पुस्तकें इसी दृष्टिकोण से लिखी हैं। जो वर्मा जी ने वर्षो पूर्व कहा** और अब तक कहते आ रहे हैं उसका **राष्ट्रीय मीडिया ने उतना प्रचार नहीं किया किन्तु यही बातें इन्हीं शब्दों, में अब श्री कांशीराम अध्यक्ष बहुजन समाज पार्टी के कहने पर खूब प्रचारित किया जा रहा हैं।**

अध्याय-5

पाटीदारों की गौरवगाथा

मालवाधिपति विक्रमादित्य

सम्राट कनिष्क की मृत्यु के उपरान्त अवन्ती (मालवा) में वीर विक्रमादित्य नामक बड़ा पराक्रमी, प्रतापी राजा हुआ। उसने शकों को बुरी तरह पराजित कर उन्हें गुजरात, मालवा, सिंध तथा सप्तसिन्धु (पंजाब) प्रदेशों और देश की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं से खदेड़ बाहर किया। इस पराक्रम-प्रदर्शन के लिये विक्रमादित्य को शकारि (शक+अरि=शकों का शत्रु) के विरुद से अलंकृत किया गया। सन् 1951 में उज्जैन में "विक्रम कीर्ति मन्दिर" का शिलान्यास किया गया तथा वहीं विक्रम विश्वविद्यालय प्राच्य शिक्षा शोध प्रतिष्ठान की स्थापना की गई।

भारतीय इतिहास की इस अति महत्वपूर्ण घटना और उपलब्धि की चिर-स्मृति में एक नये विक्रम सम्वत् का जन्म हुआ जिसका प्रवर्तक सब लोग इन्हीं मालवाधिपति विक्रमादित्य को मानते हैं। इन्हीं ने परीक्षित के वंशज दिल्ली के शासक को युद्ध में हराया था। शकों से इस देश से भली-भांति मुक्त कर देने की महान उपलब्धि के परिणामस्वरूप शान्ति और समृद्धि का युगारम्भ हुआ। इसी को आलंकारित भाषा में कृत (सत्ययुग-स्वर्णयुग) भी कहा गया। बाद में यह संवत् - 'मालवगणू-संवत्' के नाम से जाना गया। समय के गुजरते अन्ततोगत्वा लगभग नवीं शती के मध्य से इस संवत् को मात्र 'विक्रम संवत्' कहा जाने लगा।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कविता, जोकि उन्होंने संवत-प्रवर्तक सम्राट विक्रमादित्य की द्विसहस्राब्दि के अवसर पर विशेष रूप से लिखी थी, इस प्रकार है :

दो सहस्त्र संवत बीते हैं,
हम निज विक्रम बिना आज फिर मरे-मरे से जीते हैं,
नित्य नये शक-हूण हमारा जीवन-रस पीते हैं,
होकर भी क्या हुए आज हम उनके मनचीते हैं।
आपस में सम्बन्ध हमारे कहुए हैं-तीते हैं,
भरे-भरे हैं हाय हृदय पर हाथ हमारे रीते हैं।

शकारि विक्रम के पश्चात् शकाब्द के प्रतिष्ठाता गौतमी पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय एवं स्कंदगुप्त आदि ने भी शकों-हूणों को परास्तकर अपने-अपने समय में 'विक्रम' विरुद धारण कर अपने को गौरवांवित अनुभव किया था, ऐसा उनकी मुद्राओं से स्पष्ट है।

गत दो हजार पचास वर्ष तो भारतीय इतिहास के उत्तरकाल के ही अंश है। विक्रमादित्य के उद्‌भव तक विशुद्ध वैदिक संस्कृति का काल, रामायण और महाभारत का युग, महावीर और गौतम बुद्ध का समय, पराक्रम का काल, अंततः पुष्यमित्र शुंग द्वारा बौद्ध धर्मी शासन तंत्र की समाप्ति। इन दो हजार पचास वर्षों में शिवनागों, समुद्रगुप्त, यशोधर्मन, विष्णुवर्धन आदि के बल और प्रताप के सम्मुख विदेशी शक्तियों को थर-थर कांपते देखा गया, भारत के उपनिवेश बसते गए। कृत और मालव-संवत् के प्रयोग-काल के देश में अनेक उत्थान-पतन हुये, शासनों में महान् परिवर्तन हुए, गुप्त साम्राज्य की नींव भी सुदृढ़ बनी, परन्तु काल-गणना की लोक-प्रियता में 'विक्रम संवत्' को छोड़ किसी अन्य को न केवल उस समय ही, किन्तु दो हजार पचास वर्ष बाद भी वह सम्मान, स्मृति स्थान अर्पित नहीं किया जा सका।

विक्रम संवत् 78 के आस-पास, क्षत्रप राजा कनिष्क के समय में गुजरात एवं उसके निकटवर्ती प्रदेशों से बहुत से गुर्जर बाहर निकले, उनके साथ-साथ कितने ही कणबी (कुर्मी) भी निकले, जो मथुरा की ओर बढ़े और जहां-जहां भी उन्हें अच्छा लगा बस गये । कुछ और आगे बढ़ते गये और अवध क्षेत्र में पहुंचकर, अपने आदिपुरुष लव-कुश के उत्तराधिकारियों द्वारा शासित राज्य की राजधानी अयोध्या पहुँचकर परम पवित्र भूमि को प्रणाम कर उसके आस-पास जहां खेती योग्य भूमि उपलब्ध हो सकी, वे सामूहिक रूप से बस गये । प्रारम्भ में वे लघु-गुजरात के रूप में संगठित रहते रहे, आपस में शादी-विवाह करते रहे । फिर धीरे-धीरे स्थानीय कुरमी बन्धुओं से करीबी रिश्ते बनाते हुये, कालान्तर में वे यहां के कुरमी समाज में आत्मसात हो गये । फिर भी आज भी उत्तर प्रदेश के कई जनपदों में हिन्दी भाषी गुजराती उपजाति बताने वालों की जनसंख्या लाखों में है । वर्तमान उत्तर प्रदेश में श्री मुलायमसिंह यादव की सरकार में, बहुजन समाज पार्टी के टिकट पर अयोध्या से तीसरी बार निर्वाचित श्री राम लखन वर्मा, पंचायत राजमंत्री हैं और वे गुजराती-कुरमी उपजाति के कुरमी हैं । इस कथन के साक्ष्य में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

गुजरात से जब इनके पूर्वज उखड़े तो एक बड़े दल ने धीरे-धीरे आनर्त प्रवेश अथवा आजनों प्रवेश में अपना डेरा डाला उन्हीं आनर्त प्रदेश अथवा आजनों में जा बसे कणबियों को आजनो या कालान्तर में अंजणा कणबी या अंजणा कलबी के नाम से जाना गया । ऐसा पता चलता है कि विक्रम सम्वत् की पहली शताब्दी से पांचवीं शताब्दी तक आजन प्रदेश अथवा आनर्त प्रदेश में, जिसके अन्तर्गत इडर, मालवा आदि उपद्रव रहित क्षेत्र आते थे, कणबी (कलबी) क्षत्रियों ने अपना नया बसेरा बसाया और पुश्तैनी कृषि कर्म के द्वारा खूब खाद्यान्न उपजाये, अपनी समृद्धि की ओर कभी बंजर और तबाह रहने वाला इलाका अपने परिश्रम से उपजाऊ और खुशहाल बना डाला ।

विक्रम संवत 212 में कलबी (कणबी) क्षत्रियों ने ऊमापुर, पट्टन परगने में ऊंझा नगर की स्थापना की । ऊंझा के आस-पास के इलाके पर कलबी क्षत्रियों का शासन विक्रम सम्वत् की सातवीं शताब्दी तक सुरक्षित रहा । कलबियों के भाटों के कथा वर्णन अनुसार पहले वे राजस्थान के भीनमाल क्षेत्र में आये, बाद में कुछ अरसे वहां निवास करने के पश्चात् वे गुजरात के पट्टण (पट्टन) की ओर प्रस्थान कर गये । इस तथ्य के समर्थन में सन् 1891 ई0 में जो जनगणना हुई थी, उसकी सेन्सस रिपोर्ट, भाग - 2 के पृष्ठ 41 पर इस प्रकार वर्णन मिलता है :-

" The Original home of Kalbi in Marwar was Bhinmal now amalgamated with Jaswantpura, where from they proceeded to Patan, Gujrat."

अर्थात् -**"कलबियों का मूल निवास मारवाड़ में भीनमाल था जो अब जसवंतपुरा के साथ जोड़ दिया गया है, जहां से यह लोग पाटण (पाट्टन), गुजरात चले गये ।"**

दो तरह के कलबी वर्तमान में विद्यमान हैं, एक देशी कलबी तथा दूसरे मारवाड़ी कलबी । जो गुजरात में बसे रहे वे देशी कलबी कहलाये । मारवाड़ से जाकर गुजरात में बसने वाले आज भी मारवाड़ी कलबियों के नाम से जाने जाते हैं। आजनों के मारवाड़-प्रदेश में रहने के कारण उनकी संज्ञा मारवाड़ी हुई और जो लगातार गुजरात प्रदेश के ही निवासी बने रहे, अतः उनको देशी आंजणा की संज्ञा प्राप्त हुई। अतीत में राजस्थान में कभी भयंकर सूखा पड़ने से इन लोगों को गुजरात प्रदेशों में आना पड़ा ।

गुजराती भाषा में लिखित पुस्तिका **'श्री उमिया माताजी संस्थान, ऊंझा'** के पृष्ठ 1 में इस काव्यकृति का उल्लेख मिलता है :-

"के गुजरातमांना घणा खरा खेडूतो कलबी छे,
छतां ते ओनी उत्पत्ति क्षत्रिय मांथी थंयली छे ।"

17 नवम्बर 1948 को **पुष्कर और शाहपुरा** में **'क्षत्रिय धर्म सम्मेलन'** हुआ, उसमें आमन्त्रित अन्य क्षत्रियों की तरह आंजणा शाखा वाले कलबी लोगों को भी क्षत्रिय मानते हुए आमंत्रित किया गया था (देखिये अजमेर से प्रकाशित **"दैनिक दरबार"** पत्र, तिथि 29 नवम्बर 1948)। उपर्युक्त सम्मेलन के अतिरिक्त दिनांक 5-6 मार्च 1949 को वर्तमान मध्य प्रदेश (तत्कालीन मध्यभारत) के **रतलाम** नगर में **'राजपूत सेवा-संघ'** का अधिवेशन किया गया था । उसमें भी कलबी

(कणबी) को शुद्ध क्षत्रिय मानते हुए आमंत्रित किया गया था । इन दोनों सम्मेलनों में कलबी जाति बन्धुओं को आमन्त्रित करने से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि कलबी, कुलबी, कणबी, कुनबी, कुलमी, कुरमी, आदि विभिन्न नामों से भिन्न-भिन्न स्थानों पर जानी जाने वाली एक ही जाति है, वह क्षत्रिय वर्ण की है, अन्य किसी वर्ण की नहीं ।

सन् 1985 के '**भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार**' से अलंकृत गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार **स्व. श्री पन्नालाल पटेल** का जन्म सन् 1912 में राजस्थान के एक छोटे से ग्राम माहुली में आंजणा कलबी कृषक श्री नानालाल पटेल के घर हुआ था । बाल्यकाल में ही घर त्यागकर वे एक साधु के साथ गुजरात चले गये थे । श्री पन्नालाल पटेल को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार की घोषणा से समस्त आंजणा कलबियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी ।

इतिहास साक्षी है कि राजस्थान और मालवा में हूणों का राज्य समाप्त होने पर स्थानीय राजाओं ने उन्हें अपनी राज्य सीमाओं से बाहर खदेड़ दिया । उसी दौरान जिन हूणों का हिन्दूकरण हो गया वे वापिस अपने मूल देशों को नहीं लौटना चाहते थे । उन हूण-हिन्दुओं के तीन वर्ग या भाग हो गये थे । प्रथम वर्ग में वे हूण थे जो नये विजयी राजाओं से भयभीत होकर जान-माल बचाकर कश्मीर घाटी की ओर पलायन कर गये । द्वितीय वर्ग में उन हूणों की गणना की जा सकती है जिन्होंने हिन्दू धर्म में पहले ही प्रवेश ले लिया था । तृतीय भाग उन हूण-हिन्दुओं का कहा जा सकता है, जो राज्य करने की अभिलाषा तजकर, शान्तिपूर्ण कृषक-जीवन का अनुसरण कर कालान्तर में कलबी-क्षत्रियों में आत्मसात हो गए । उक्त प्रकार के हूणों के कलबी (कुनबी) क्षत्रियों के साथ जा मिलने का उल्लेख '**राजपूताने का इतिहास**' नामक ग्रंथ के पृष्ठ 130 पर प्रसिद्ध इतिहासज्ञ **राय बहादुर पं० गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा** ने इन शब्दों से किया है :-

"अब हूणों का कोई राज्य नहीं रहा । राजपूताना और गुजरात आदि के कुनबी लोग, जिनकी गिनती अच्छे कृषिकारों में है, हूण जाति के अनुमान किये जाते हैं ।"

भारतवर्ष में मानव-समाज शास्त्रियों ने अब तक लगभग 22 हजार विभिन्न जातियों-उपजातियों और उप-उपजातियों का पता लगाया है । इसी प्रकार पूर्व जातीय इतिहास लेखकों ने सारे देश में विभिन्न नामों से ज्ञात वृहत **कूर्मि क्षत्रिय** समाज में अनुमानतः 1440 उपजातियों की गणना की है । फिर आंजणा कलबियों में 232 शाखाओं का पता लगना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं होनी चाहिए। आंजणा कलबी ज्यादातर वैष्णव हैं, वे विष्णुधर्म के अनुयायी होते हैं । आंजणा हिन्दू धर्म के त्रिदेवों (**ब्रह्मा, विष्णु और महेश**) को शक्ति-प्रतीक मानकर उनकी पूजा-उपासना करते हैं । आंजणा कलबी यज्ञादि में भी विश्वास करते हैं, किन्तु वे पशु-बलि और अन्य किसी हिंसाजनक पूजा-पद्धति में लेश-मात्र भी आस्था नहीं रखते । कुछ गुजरातवासी आंजणा कणबी तो जैन धर्म के भी अनुयायी हैं, जोकि हिन्दू-धर्म का ही एक अंग है । आंजणा कलबियों के जैन धर्म के मतावलम्बी होने के साक्ष्य-स्वरूप एक उल्लेख '**हिन्दू फैमिलीज इन गुजरात**" नामक एक अंग्रेजी पुस्तक के पृष्ठ 182 पर इस प्रकार वर्णित है -

·" Thus some members of the Leva Kunbi Bhawaser, Anjana Kunbi and such other castes who have adopted Jainism as their religion continue to be member of their castes."

अर्थात् - "इस प्रकार कुछ लेवा कुनबीजन भवसर, आंजणा कुनबी और अन्य इसी प्रकार की जातियों ने, जिन्होंने जैन धर्म स्वीकार किया और अपनी जाति में भी बने रहे । "

विद्वान लेखक **श्री खेमाराम सोलंकी** ने आंजणा कलबियों के बारे में विस्तृत जानकारी देते हुये एक पत्र इस लेखक को लिखा है जिसका उल्लेख अन्यत्र इस पुस्तक में दिया गया है तथा उनकी अपनी लिखित पुस्तक **"आंजणा कलबियों का इतिहास"** में भी इस विषय पर साक्ष्यसहित बड़ी विस्तृत जानकारी दी हुई है । उनका यह ग्रंथ प्रत्येक कुरमी, कलबी, कुलमी, कणबी, कुनबी जातीय जिज्ञासुओं के लिये पठनीय तथा ज्ञानवर्धक है । इस पुस्तक से यह पता चलता है कि आंजणा के **जैन धर्म** अथवा **वैष्णव धर्म** अनुयायी होने के अतिरिक्त मारवाड़ में निवास करने वाले कुछ आंजणा कलबी **कबीरपंथी** भी हैं । सांचोर परगना के आंजणा कलबी **स्वामीनारायण पंथ** के भी अनुयायी हैं । गुजरात प्रदेश में कलबी/कणबी जाति के अनेक लोग कृष्ण-भक्त कहे जाते हैं और **कानजी की अष्ठमी (कन्हैया अष्ठमी)** का

उत्सव बड़े धूम-धाम से तथा हर्षोल्लास पूर्वक मनाते हैं । यादव खाप वाले (यदुवंशी), अथवा नखोंवाले आंजणा कलबी भगवान श्रीकृष्ण की अपने कुलदेव की तरह बड़ी श्रद्धापूर्वक उपासना करते हैं ।

श्री खेमाराम सोलंकी का जन्म स्थान, आंजणा क्षेत्र समवड़ी, जिला बाड़मेर, राजस्थान है । आपका मत है कि हम राजस्थानी कलबी, कुनबी, कणबी, या कुरमी एक ही कूर्मि क्षत्रिय जाति के वंशज है । स्थानान्तर से तथा विभिन्न परिस्थितियों से गुजरने के कारण नामों में थोड़ा बहुत अंतर जरूर आया है पर मूल पहचान सुरक्षित है । उनके विचार से राजस्थानी आंजणा कलबी का अपने अन्य जाति बन्धुओं से सम्बन्ध विच्छेद हुए लगभग 12 या 13 शताब्दियां गुजर चुकी है । भयंकर अकाल और सूखा तथा विधर्मी-विदेशी आक्रमणकारियों से जान-माल और धर्म बचाने के लिये तथा उनके अत्याचारों से बचने के लिये आंजणा कणबियों को गुजरात प्रदेश की धरती मजबूरन छोड़नी पड़ी थी । वहां से वे लाचारीवश खानावदोशों की तरह मंदसौर होते हुए उत्तरी गुजरात के उस अंचल में पहुँचे जो उस समय अंजाणाय (अनजान-बिना जाना-पहचाना) कहलाता था । **'अंजाणाय'** - अर्थात् जो किसी का भी जाना हुआ न होवे, या 'अंजानों' शब्द का अपभ्रंश होकर 'आंजणा' जातिवाचक शब्द बना है । इस प्रदेश में हमारे पुरखों का लगभग 400 वर्ष तक पड़ाव रहा और हमने अपने पूर्वकाल के क्षत्रिय कर्म को त्यागना शुरु कर दिया । उसके पश्चात् उत्तरी गुजरात के इस अजाण्य देश में राजनैतिक दवाब आया जिसको सहन न कर सकने के कारण पुरखे आजाण्या प्रदेश छोड़कर भीनमाल (श्रीमाल) की ओर आये जो कभी भारतवर्ष का प्रसिद्ध नगर था और वहां पर अपना राज्य स्थापित किया, जिसका पतन महमूद गजनवी द्वारा किया गया । भीनमाल के पतन के बाद हमारे पुरखों ने क्षत्रिय कर्म त्यागकर पूर्णरूपेण हल (अर्थात् कसबा) कर्म अपना लिया । इसी कारण हमारी जातीय बोधक संज्ञा **'कलबी'** क्षत्रिय बन गई और आजाण्या प्रदेश से आने के कारण कालान्तर में क्षत्रिय शब्द हटकर केवल **'कलबी'** संज्ञा से जाना जाने लगा । तत्पश्चात् आंजण कलबी हो गई ।

श्री खेमाराम सोलंकी आगे बताते हैं - "राजस्थान में हमारी आंजणा जाति की काफी इज्जत है । प्रत्येक जाति के लोगों में हमारा आदर है । गांवों में कलबी जो बात करता है वह गम्भीरता से सुनी और मानी जाती है । राजस्थान में आंजणा कलबियों की जनसंख्या लाखों में है पर पढ़े-लिखे नहीं के बराबर हैं । दो-तीन राजस्थान विधान सभा में विधायक भी हैं सरकारी पदों पर हमारे काफ़ी लोग हैं, पर छोटे स्तर पर हैं और बहुधा शिक्षक हैं । उच्च पदों पर आसीन कलबियों की संख्या राजस्थान में नगण्य है । आंजणा कलबी समाज के सर्वांगीण विकास, उत्थान और समृद्धि के लिये बहुत कुछ करना परमावश्यक है ।"

श्री सोलंकी के अनुसार राजस्थान के यह आंजणा कलबी अपना उद्गम तो गुजरात के कणबियों से ही बताते हैं । अब जरा विचार किया जाये कि इतिहास के आइने में वे कैसे दिखते हैं ? **"द प्रिंसिपल नेशंस ऑफ इंडिया"** में जो लिखा है उसका अर्थ है - **"कणबी अपनी स्वतंत्रता पाने के शौकीन हैं । उनकी निम्नप्रकार की कुछ कहावतें गुजरात में प्रसिद्ध हैं :-**

'ज्यां गाजबीज थाय छे, त्यां कणबियों जमीनवार छे ।'

अर्थात् - **"जहां मेघ गरजते हैं वहां कणबी जमींदार हैं"**

या

"कणबी वांसे क्रोड कणबी कोई केडे नहीं"

अर्थात् - **'कणबी के पीछे करोड़ों लोग हैं, जबकि कणबी किसी के पीछे नहीं'**

1. **"इंडिया का इम्पीरियल गजेटियर"** (न्यू एडीशन), भाग 5, पृष्ठ 97-98 पर **'अहमदाबाद डिस्ट्रिक्ट'** के अन्तर्गत वर्णन दिया है-

"यहां के हिन्दुओं में कृषकों का मुख्य वर्ग **कणबी, राजपूत** और **कोली** है । उसमें अन्यों से अधिक महत्वपूर्ण वर्ग कणबी हैं। कुछ सरकारी नौकरी में उच्च पदों पर आसीन है, कुछेक ने व्यापार से धन कमाया है । किन्तु बड़ा हिस्सा गुजरात में **कृषक (खेडूत)** के रूप में खेती करता है । हालांकि पाटीदार और कणबी आपस में ब्याह नहीं करते, फिर भी दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, तथापि **कणबी राजपूतों से बढ़कर हैं"**

2. गुजरात के इतिहास के प्रसिद्ध लेखक **फार्बस साहब** के अंग्रेजी ग्रंथ **"रासमाला"** के भाग 2 के पृष्ठ 286-93 **के अनुसार** - "गुजरात के ज्यादातर किसान **कणबी हैं** । उनकी उत्पत्ति क्षत्रियों से हुई है । उनमें से अधिकतर प्रायः क्षत्रियोचित विशेषणों से पहचाने जाते हैं । उनमें अन्य जो निर्धन किसान हैं, उन्हें भी ईश्वर ने जिस स्थिति में रखा है, उसी स्थिति में उन्होंने अपने आपको आश्चर्यजनक रूप से ढाल दिया है ।" गुजरात में कृषक को 'खेडूत' भी कहते हैं ।

3. **'बोम्बे गवर्नमेंट गजेटियर'-भाग 4, अहमदाबाद, पृ० 369** पर वर्णन मिलता है - "कुछ कणबी कारीगर हैं, कुछ सरकारी नौकरी में उच्च पदाधिकारी है, कुछ ने व्यापार में काफी धन कमाया है । किन्तु दूसरे कई खेतिहर कृषक हैं । फिर भी वे बड़े सद्‌गुणी, शर्मीले, उद्यमी, शादी और मरणोपरान्त के व्यय को छोड़कर वैसे सादे पर मितव्ययी, अपराधवृत्ति एवं कुलक्षणों से दूर रहने वाले तथा संस्कारी उत्तम किसान हैं । पहले जब भी गांव में डाकुओं के गिरोह लूटने आते, तब या तो उनसे वे समाधान करते अथवा ये वीर कणबी तथा राजपूत मिलकर जान की बाजी लगाकर उनसे भिड़ जाते और उन्हें मार भगाते ।"

4. इसी प्रकार **"बोम्बे गवर्नमेंट, खंड, भाग 1, पृ० 4** में प्रमाणित किया है - "The main Gujarat under-layers are the Levas and Kadvas, the two leading divisions of the important class of Gujrat Kunbis."

अर्थात् - **"गुजरात में आकर बसे गुर्जरों का अधिकतर हिस्सा कडवा तथा लेउवा का है, जो गुजरात की कणबी जाति के दो महत्वपूर्ण वर्ग हैं ।"**

गरीब, कम अमीर और अमीर तो हिन्दुओं की अनेक जातियों का सामाजिक वर्गीकरण है और वह गुजरात के कणबियों में भी है जोकि कणबी, पाटीदार तथा पटेल के नाम से है, महाराष्ट्र में कुनबी और मराठा के रूप में हैं ये उसी प्रकार है जैसे प्रसिद्ध कहावत है - **"पैसा (सम्पन्नता) के हैं तीन नाम, परसा, परसु, और परसुराम** । यहां तक कि अनेक सम्पन्न कुरमी राजपूत बन गये जैसे जयपुर-अम्बर के कूरमवंशीय राजा जो अपने को रघुवंशी क्षत्रिय कहने लगे । उत्तर प्रदेश के जनपद देवरिया के अन्तर्गत अंग्रेजों के शासनकाल में अतरौलिया के कुरमी राजा (श्री सी० पी० एन० सिंह, पूर्वमंत्री भारत सरकार के पिता) ने अपनी मंत्रियों की सलाह से अपने राज्य में **राजपूत सभा** बुलायी और उसके सम्मेलन में चांदी वाले एक लाख रुपये सभा के हितार्थ दान देकर अपने तथा अपने परिवार को राजपूत घोषित करवाया पर इतिहास साक्षी है कि राजपूतों ने उन्हें पूर्णरूपेण राजपूत नहीं माना ।

कूर्मि क्षत्रिय जाति का सौभाग्य है कि अब जब कूर्मि समाज को इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करने में मात्र 6 वर्ष बचे हैं इसके लेखन कार्य पर स्वाजातीय विद्वानों, जैसे इतिहासज्ञ और गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद में इतिहास के रीडर, डाक्टर भंगुभाई रामदास पटेल ने कलम उठाई है । डॉ० पटेल ने बड़े शोध और गूढ़ अध्ययन तथा कणबी बहुल क्षेत्रों में घूम-घूम कर स्वजातीय इतिहास और महत्वपूर्ण जानकारी इकट्ठी कर - **"कुलमी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास"**-448 पृष्ठीय ग्रंथ, मूल्य 180/-, प्रथम संस्करण सन् 1991 में, **'पाटीदार संशोधन और प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद'**6, **गुजरात** द्वारा प्रकाशित किया । इस पुस्तक के अनुशीलन से **कुरमी, कलमी, कणबी, पाटीदार पटेल** के बारे में, वे सभी भ्रम, मिथ्या धारणायें दूर हो जाती हैं, जोकि स्थानाधार से एक ही जाति के विभिन्न नाम हो जाने से बनी । ये भ्रम और मिथ्या धारणायें असावधानतावश अथवा कलुषित मन से समय-समय पर उठाये जाते रहे हैं । डॉ० पटेल के उपर्युक्त ग्रंथ को प्रत्येक कुरमी को भलीभांति पढ़ना चाहिये, अपितु उनकी एक प्रति हर सम्पन्न परिवार में रहनी भी चाहिए । इस ग्रंथ के पश्चात् डा० पटेल का अगला 256 पृष्ठीय ग्रंथ - **"पाटीदारानी गौरवगाथा"** हाल में ही **"पाटीदार संशोधन और प्रकाशन केन्द्र"**, अहमदाबाद-380006, गुजरात द्वारा गुजराती भाषा में प्रकाशित हुआ है । उसमें डा० पटेल ने इस लेखक की पूर्व प्रकाशित तीनों पुस्तकों से विस्तृत शोधपूर्ण जानकारी को अनेक स्थानों पर उद्‌धृत किया है, जिसमें विशेष उल्लेख पृष्ठ 11, 13, 66, 75 एवं 255 पर हैं । इस प्रकार इस लेखक की जाति सम्बन्धी खोज को डा० भंगुभाई पटेल ने मान्यता प्रदान करते हुये, उनका विस्तार से उल्लेख अपने इस ग्रंथ में किया है ।

कणबी और कलमी शब्दों की व्युत्पत्ति

डॉ. भंगुभाई रामदास पटेल अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ 27 पर लिखते हैं - "कणबी" शब्द कहां से आया होगा इस बारे में दो प्रकार के खुलासे किये गये हैं । प्रथम खुलासा यह है कि 'कुटुम्बी' शब्द से अपभ्रंश होते-होते 'कणबी' शब्द बना होगा । 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के विद्वान लेखक भी किसानों के लिये 'कुटुम्बी' शब्द प्रयोग करते हैं। दूसरा खुलासा वास्तविक और उपयुक्त लगता है कि '**कृषि कर्मी**' शब्द ही से कुरमी, कणबी ऐसा अपभ्रंश हुआ होगा। डा. पटेल उक्त पृष्ठ की पाद-टिप्पणी में लिखते हैं कि ऐसा भी कहा जाता है कि चावल के लिये गुजरात में '**कलम**' शब्द का प्रयोग होता है और चावल उत्पन्न करने वाले के लिये इसी कारण '**कलमी**' शब्द प्रयोग हुआ हो ।

जिस प्रकार **श्री खेमाराम सौलंकी** ने आंजणा कलबियों द्वारा उत्तरी गुजरात जाकर ऊँझा क्षेत्र में प्रवेश कर वहाँ श्री उमिया माताजी का मन्दिर स्थापित किये जाने का विवरण लिखा है, वह इसमें पूर्ण विस्तार से दिया जा चुका है । उसी ऐतिहासिक घटना को डॉ. भंगुभाई रामदास पटेल अपनी उक्त पुस्तक में पृष्ठ 48 पर इस प्रकार व्यक्त करते हैं ।

"मौर्यों की मुख्य नगरी मगध प्रान्त की राजधानी कुशावती (पट्टणा) थी और उनकी ओर से भेजे गये सूबेदार सौराष्ट्र के गिरिनगर (गिरनार) में रहकर शासन करते थे । आज हम जिस प्रदेश को '**गुजरात**' के नाम से जानते हैं उसके उस जमाने में **आनर्त** (आनर्तपुर-बडनगर), **सौराष्ट्र** (द्वारिका-गिरिनगर) तथा **लाट** देश (भरुच-भडौंच)- ऐसे तीन खण्ड थे । मौर्य वंश के शासन एवं सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके सरदारों ने वे देश बांट लिये, जिसमें पंजाब आदि देश ग्रीकों के हाथों में आए । इस प्रकार **क्षत्रप** राजाओं के गुजरात पर सत्तारूढ़ होने के पूर्व **ग्रीक, बाक्ट्रियन, पार्थियन, स्त्रीथियन, हूण** तथा **शक लोगों** का गुजरात पर शासन रहा होगा । यह अनुमान मध्य गुजरात तथा काठियावाड़ में से मिले उनके प्राचीन सिक्कों तथा कुओं, बावड़ियों, इमारतों और देवालयों के लेखों और खंड़हरों से ही सही जान पड़ता है ।" उक्त विवरण में विद्वान लेखक से एक चूक हो गई है अतः उसको यहां सुधार कर देना असंगत न होगा । मौर्यों के मगध प्रदेश की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी कुशावती, नहीं । मल्लगण राज्य की राजधानी कुशावती (अपभ्रंश कसया) वर्तमान उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद के पड़रौना कसबे के निकट स्थित थी ।

डॉ० भंगुभाई आर० पटेल अपनी उक्त पुस्तक में लिखते हैं कि "बाद में आवन्ती (मालवा) के बारे में **विक्रमादित्य** ने गुजरात, मालवा तथा पंजाब से उन्हें भगाकर उन देशों पर कब्जा कर लिया था । इसके पश्चात् मगध प्रदेश के क्षत्रप राजाओं ने ईसवी सन की पहली सदी में मालवा जीतकर वहां अपना सूबेदार नियुक्त किया । फिर उसी देश के तीसरे राजा जयदामा ने ईसवी सन् 140 में सौराष्ट्र प्रदेशों में आकर गिरिनगर को राजधानी बनाकर उसके इर्द-गिर्द के प्रदेशों पर स्वयं शासन किया था । उस काल में ईडर तथा बांसवाड़ा प्रदेशों में से कणबियों ने आकर आनर्तपुर के शान्त इलाके में वड़नगर तथा श्रीस्थल (सिद्धपुर) के आस-पास की उपजाऊ खाली जमीन पर निवास किया।"

[redacted]

इस 18वीं शताब्दी के प्राचीन मन्दिर के सम्बन्धं में **डॉ. भंगुभाई रामदास पटेल** अपनी उक्त पुस्तक में लिखते हैं :-

"क्षत्रप राजा जयदामा के समय में माधावती के **कुर्मी राजा व्रजपालजी** का महेत देश के राजा चन्द्रसेन से युद्ध हुआ । उसमें वे हार गये । अतः माधावती छोड़कर अपनी धन-सम्पत्ति और एक छोटा-सा रिसाला लेकर वे आनर्त-गुजरात की ओर आये तथा सिद्धपुर में भातृ-गया श्राद्ध किया । भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आकर बसे हुये जाति भाइयों से वहां मिलन हुआ और उनके बड़े आग्रह के कारण फिर व्रजपाल जी वहीं रह गये । ईसवी सन् 156 में शुभ मुहूर्त देखकर **ऊँझा ग्राम** बसाया तथा **श्री शंकर-महादेव** के परम भक्त होने के कारण अपनी **कुलदेवी** के रूप में शंकर जी की पटरानी **श्री उमियाजी** की स्थापना की ।"

डॉ० पटेल जी के पुस्तक के अनुसार गुजरात के उस क्षेत्र पर चौथी शताब्दी के अंत तक क्षत्रिय राजाओं का शासन रहा। फिर गुप्त वंश के सम्राटों ने सन् 410 से 470 ई0 तक शासन किया, जिनके राज्य की राजधानी वर्तमान उत्तर प्रदेश का शहर कन्नौज था। वे अपने सूबेदार को नियुक्त कर गुजरात का शासन करते थे। उस सयम गुजरात प्रदेश की राजधानी गिरिनगर थी, सूबेदार वहीं रहता था। आनर्त और ऊँझा वाले, गुजरात के उस क्षेत्र में आबादी कम होने के कारण गुप्त सम्राट के सूबेदार का ध्यान वहां पर नहीं गया था। अतएव आनर्त और ऊंझावाले अंचल में बसे कणबियों (कुरमियों) के दिन-प्रतिदिन के जीवन में शासन-तंत्र की कोई दखलनदाज़ी नहीं थी। जिससे वहां बसे लोग शान्तिपूर्वक अपने व्यवसाय में लगे रहते थे। और भगवत-भजन भी करते थे, और उन्हें कोई असुविधा न थी। इसी प्रकार माधावती के कुर्मी राजा व्रजपाल के वंशजों को भी वहां स्वतंत्र रूप से रहने पर किसी भी प्रकार की असुविधा का सामना नहीं करना पड़ा।

पांचवी शताब्दी के बाद सन् 509 से सातवीं शताब्दी के अंत तक सौराष्ट्र पर वल्लभी राजाओं का शासन चला। उनकी राजधानी वर्तमान भावनगर के निकट वल्लभीपुर थी। यद्यपि वे वल्लभी राजा भी गुजरात में रहते थे, फिर भी राजधानी वल्लभपुर बहुत दूर होने के कारण उन्होंने वहां बसे हुये कुर्मियों के छोटे से राज्य ऊंझा आदि स्थलों, पर नजर न उठाई - ऐसा इतिहास से ज्ञात होता है। इसी जमाने में भड़ौच, नांदोद तथा नवसारी आदि इलाकों मे चालुक्यों तथा गुर्जरों के प्रथक-प्रथक राज्य स्थापित हुये थे। किन्तु वे अपनी शासन-सीमा खेड़ा ग्राम से आगे न बढ़ा सके थे।

इसी दौरान ऊंझा में बसे हुये पूर्व कुर्मी राजा व्रजपाल के वंशजों के साथ वहां के गोधा पटेल के पुत्र शिवसिंह जी पटेल से किसी कारणवश इतना मन मुटाव हो गया, जिससे ईसा सन् 556 में वे अपने सम्बंधी कुर्मियों और अन्य लोगों के साथ गुजरात के मध्य-खण्ड में भीलनगर, आशावल्ली (असारवा) में आकर बस गये। किन्तु राजा व्रजपाल के वंश में अब तक ऊंझा में ही वड़वीर, नंदजी, जीवाराज, रघुजी, लखुजी, जोगजी, वड़वीर द्वितीय तथा हरिकिरण जी-देसाई पटेलों की उपलब्ध वंशावली के अनुसार बसे हुये थे और वे स्वतंत्र रूप से ऊंझा में रहते रहे। इन देसाई पटेलों का इतिहास बड़ा लम्बा है और सबका सब यहां देना सम्भव नहीं अतः इतना उल्लेख करना ही पर्याप्त है कि ईसा सन् 746 में विपरीत परिस्थितियों के कारण ऊंझा में बसे राजा व्रजपाल जी कुर्मी के वंशज, श्री व्रजपालजी द्वितीय ने, चावड़ा वंश के नये शासक, वनराज ने नया राज्य बसाया, उसकी निगाह ऊंझा के स्वतंत्र इलाके पर पड़ी, और उसकी सर्वोपरिता न मंजूर कर अपनी धन-सम्पत्ति और सगे-सम्बन्धियों सहित/ऊंझा छोड़कर ईडर की ओर चल पड़े और वहां कावर नामक ग्राम बसाकर वे स्वतंत्र रूप से रहने लगे।

चावड़ा वनराज शासक के मंत्री चंपराज ने जब देखा कि कुशल कणबी कृषक ऊंझा और आस-पास की जमीन छोड़कर दूर-दूर के स्थानों में देश में और यहां तक कि विदेश में जा रहे हैं तो लगा कि इनके कारण ही सदियों से पड़ी बंजर जमीन उपजाऊ बन सकी और इनकी मेहनत के बल पर ही वह हरी-भरी हो सकी, यदि ये कणबी ऊंझा छोड़कर दूर कहीं और जा बसे तो यह फिर बंजर और अनोपजाऊ हो जायेगी। अतः उसने इन कृषक कणबियों को ऊंझा में रोक रखने की एक चाल चली। उसे पता चला था कि ऊंझा में स्थित श्री उमिया माता के मन्दिर को कड़वा उपजाति के कणबी-पाटीदार अपनी कुलदेवी मानकर पूजा-उपासना करते हैं। उस मंदिर का पुजारी एक नागर ब्राह्मण था। मंत्री चंपराज ने उस नागर पुजारी को काफी धन का प्रलोभन और राज्याश्रय का आश्वासन देकर उसके जरिये एक धार्मिक 'षड़यंत्र' रचा। नागर पुरोहित राजकृपा अर्जित करने के लिए एवं कणबियों को शादी-ब्याह के लिये विदेश जाने से रोकने में अधिकतम दानदक्षिणा मिलने के प्रलोभन में आकर मंत्री चंपराज की इच्छा के अधीन हो गया।

कुछ अरसे बाद चैत्र महीने में ऊंझा की श्री मां उमिया माता जी के मन्दिर में वार्षिक मेला प्रारम्भ हुआ। मन्दिर के पुरोहित, नागर जी, चंड़ीपाठ पर बैठे। प्रभात की वेला थी, हजारों की संख्या में माताजी के दर्शनार्थ उपस्थित श्रद्धालु कणबियों की उपस्थिति में, नागरजी ने ऐसा समां बांधा कि पुजारी जी स्वयं तथा भक्तजन सभी भक्तिभाव से झूमने लगे। पुजारी जी शिक्षित थे सद्चरित्र थे अतः वे सभी कणबियों के श्रद्धापात्र थे और उनके बारे में एक आस्था

बैठा दी गई थी कि भक्तिभाव में लीन नागरजी में मां उमा स्वयं कुछ क्षणों को प्रविष्ट होती हैं और जो कुछ आदेश उन्हें अपने श्रद्धालुओं को उनके हित में, देना होता था, उसी परम साधना की स्थिति में वे पुजारी नागरजी के माध्यम से प्रकट करती हैं । अतः सभी अग्रणी लोग संपूर्ण श्रद्धा और भक्ति के साथ निर्मल मन से करबद्ध मां से विनती करने लगे - "मां आवेश, मां आवेश ।" उधर नागर पुजारी जी ने उग्र रूप धारण करने की कोपायमान मुद्रा में फटे नेत्रों से श्रद्धालुओं की आस्था अपनी ओर केंद्रित की । वह वास्तव में ओझे का नाटक कर रहा था ।

ऐसे में वहां संकेतानुसार मंत्री चंपराज जी भी आ उपस्थित हुये, और जब नागर पुरोहित जी ने जाना कि सभी लोग अब आ चुके हैं और उसके झूमने का पूर्ण प्रभाव उन पर हो रहा है, तब गरजते स्वर में बोले :-

"अरे अपकारी कणबियों । मैं तुम लोगों पर कुपित हुई हूं । तुम लोग मेरे आश्रय में ही समृद्ध हुये हो। हैजा, महामारी, आदि बीमारियों से मैं तुम लोगों की सतत् रक्षा करती हूं फिर भी शादी-ब्याह जैसे शुभ कार्यों के लिये तुम लोग बार-बार विदेश (गुजरात के बाहर प्रदेशों में) चले जाते हो । इससे मुझे लग्न-निमित्त की मेरी बलि नहीं मिलती है । इसलिये मेरी आज्ञा है कि मेरी पवित्र ऐसी गुजरात की धरती को छोड़कर, किसी भी हालत में बाहर मत जाना.........यहीं रह लो और सुखी हो जाओ । प्रति नौ या दस वर्ष बाद जब मेरे वाहन सिंह का वर्ष बीत जाये तो तुम अपने बच्चों का ब्याह मेरी छाया में ही करो । वह वर्ष तुम लोगों के लिये अच्छा बनाया गया है । इसलिये सब मिलकर अक्षय तृतीया को पहला ब्याह अपने बाल-बालिकाओं का करो । मेरा पुत्र वनराज (स्थानीय राजा) तुम्हारी भलीभांति रक्षा करेगा तथा उचित सहायता भी करेगा । मैं स्वयं चारों दिशाओं से अंबिका, काली, बहुचरा, दुर्गा, आदि रूप से तुम्हारी रक्षा करूँगी । मेरा आशीष है कि तुम गुजरात में ही रहकर समृद्ध होगे तथा दसों दिशाओं में अपनी कीर्ति फैलाओगे । मेरा सेवक पुजारी नागरजी तुम लोगों को जो भी सलाह देगा उसके अनुसार चलकर उसकी श्रद्धापूर्वक सेवा करना । मैं तुम्हारा कल्याण करूँगी ।"

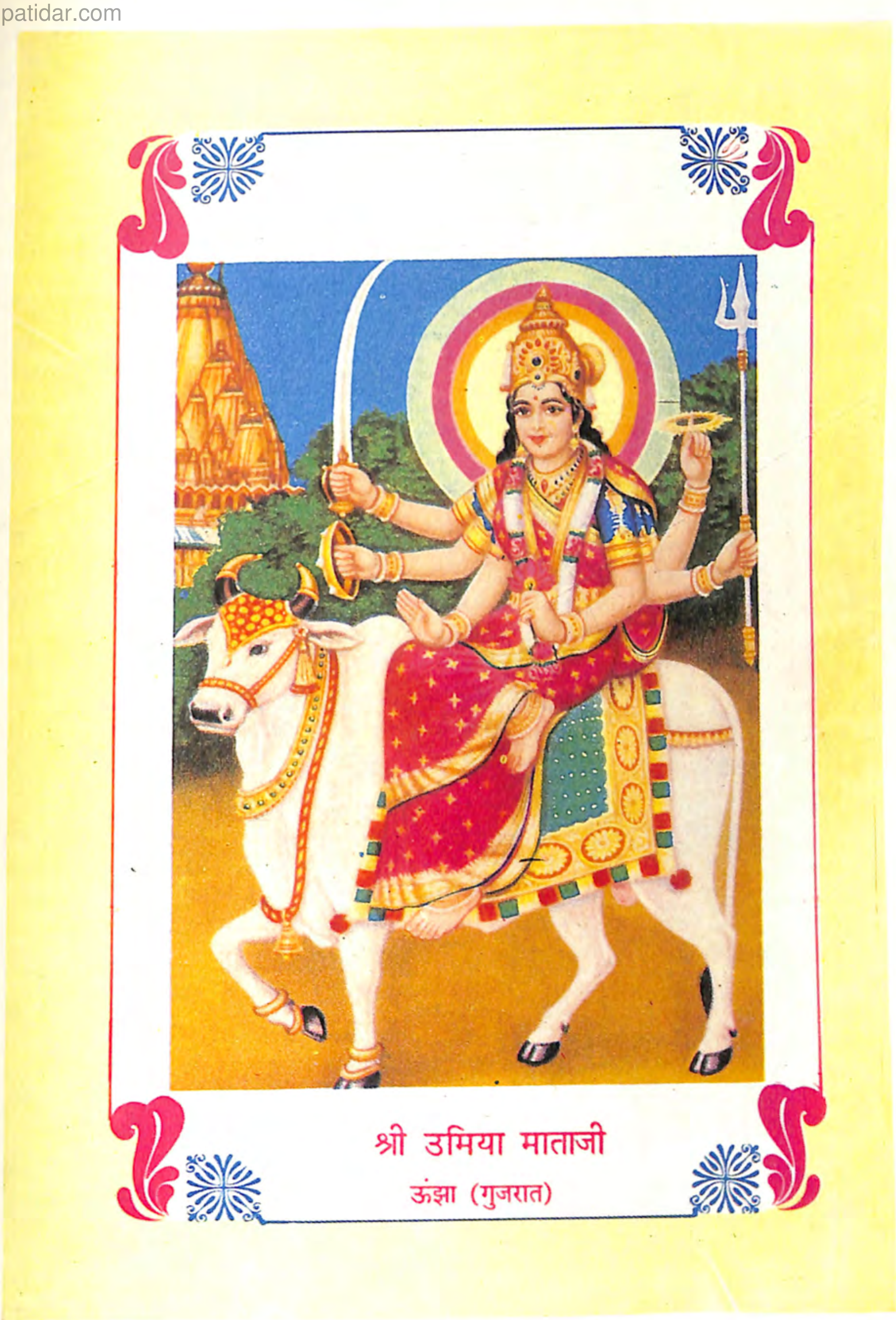
इतना कहकर देवी-स्वरूप का आवेश मिटने पर नागरजी गोर पुनः अपने आपे में आकर शान्त हो गये ।

विचित्र विवाह-लग्न निकालने की विधि का प्रचलन

सभी उपस्थित दर्शक कणबी 'उमिया माता की जय, अंबे माता की जय' के जयनाद के साथ मंदिर के पुजारी नागर गोर को श्रद्धा से प्रणाम करने लगे । मंत्री चंपराज ने भी नागर गोर के चरण छुये । और फिर उनसे कणबियों की बाल-बालिकाओं हेतु ब्याह-लग्न विधि आदि जानना चाही ।

नागर गोर ने बताया - "कणबी परिसर के जितने अग्रणी हों वे सभी साफ-स्वच्छ होकर प्रायश्चित करके उपवीत धारणकर माताजी के सान्निध्य में यज्ञ करें । फिर अपने कुंवारे पुत्र-पुत्रियों के ब्याह रचावें । अक्षय तृतीया के दिन मैं उन सभी के ब्याह कराऊंगा ।"

इस ब्याह-विधि पर अमल करने के लिये विभिन्न बावन गावों से आए बावन परिवारों के अग्रणी मिलकर, विचार-विमर्श करके आपस में सगाई सम्बन्ध स्थापित करके समधी बन गए । अक्षय तृतीया के पवित्र दिन को मंत्री चंपराज की उपस्थिति में एक ही मुहूर्त में उन सब बच्चे-बच्चियों का ब्याह सम्पन्न किया गया । राज्य की ओर से सभी वर-वधूओं को पगड़ी तथा साड़ी क्रमशः भेंट देकर प्रसन्न किया गया । दूसरे दिन अणहिलपुर पाटण राज्य की ओर से सामूहिक ब्याह में सम्मिलित कणबियों को भोजन दिया गया । इस शुभ अवसर पर कणबियों के भूमि-लगान में भी छूट घोषणा करके उनकी कृतज्ञता और स्नेह अर्जित किया गया । इस प्रकार सब भेंटों को प्राप्तकर तथा आत्मीय व्यवहार से प्रभावित होकर, तथा सर्वोपरि माता श्री उमियाजी के आवेश को ध्यान में रखकर, सभी कणबियों ने पुनः वहीं ऊँझा में और आस-पास गुजरात में बसे रहने का दृढ़ निश्चय किया । जो कणबी गुजरात के बाहर जा बसे थे वे भी यह सब जान-सुनकर खिंचे हुये वापिस लौट आये और, जहां उन्हें रुचिकर लगा बस गए । इस प्रकार ब्याह-लग्न की प्राचीन प्रथा को नया रूप दिया गया । लोगों ने फिर ऊँझा छोड़कर अन्य स्थानों में बसने की बात मन से निकाल दी । कुछ ही वर्षों में वे वहां बहुत-बड़ी आबादी में सुखी सम्पन्न रूप से रहने लगे थे । ऊँझा जो कभी एक गांव था अब बड़ा नगर बन


श्री उमिया माताजी
ऊंझा (गुजरात)



મા ઉમિયાનું અદ્દભુત પાવન સ્વરૂપ
माँ उमिया का अद्‌भुत पावन स्वरूप

गया। आस-पास की बंजर भूमि भी उपजाऊ बनाकर कणबी लोग बसते गये । आज देश में सबसे अधिक जीरा ऊँझा में ही उत्पन्न होता है और वह भी कणबी कृषकों के द्वारा । गुजरात की हरित क्रान्ति (खाद्यान्न उपज) तथा श्वेत क्रान्ति (दुग्ध मक्खन तथा घी के उन्नत उत्पादन) के लिये यही कणबी-पाटीदार कृषक मुख्यतया श्रेय के पात्र हैं ।

चावड़ा-वंश के प्रथम राजा वनराज के समय में कणबियों की लग्न-पद्धति का मंत्री चंपराज ने उल्लिखित नाटकीय तथा चमत्कारित ढंग से रूपांतर कराकर उन्हें गुजरात का स्थायी निवासी बनाया । इससे कणबियों को अधिकतम जमीन जोतने का निश्चित रूप से लाभ मिलने से उनकी आय में भी काफी सुधार हुआ और राज्य को भी महसूल की आय ज्यादा प्राप्त होने लगी । राज्य में इन कणबियों के कारण सर्वत्र खुशहाली आ गई ।

कड़वा पाटीदार कुलदेवी एवं आद्यशक्ति श्री उमिया माताजी संस्थान, (ऊँझा, पाटण, उत्तरी गुजरात) पिन : 384170 (प० रेलवे)

उपर्युक्त देवी के ऊँझा (उ. गु.) स्थित संस्थान से बहुत सुन्दर सचित्र पुस्तिका प्रकाशित हुई है, जिसमें माँ का एक रंगीन चित्र इस पुस्तक में प्रकाशित किया गया है । इस "परिचय पुस्तिका" की दो प्रतियां 'उमिया दर्शन" मासिक पत्रिका के सम्पादक, माननीय श्री जयन्ती लाल पटेल ने अहमदाबाद से इस लेखक के पास भेजी हैं । 'उमिया दर्शन' पत्रिका का यह लेखक आजीवन सदस्य भी है । अन्य चित्रों के विवरण उपर्युक्त 'परिचय पुस्तिका' के अनुसार इस प्रकार है :-

1. मां उमिया का शिखर-ध्वज सहित भव्य मन्दिर,
2. मां उमिया का अद्‌भुत पावन स्वरूप,
3. मां के सप्ताह के सात पावन स्वरूप-रविवार को सिंहासनारूढ़ मां-जगत के मलिन तत्वों पर रोष,
4. सोमवार को नंदी पर मां की सवारी - भगवान शिव के प्रिय गण पर कृपा बरसा मां उमिया ने पाटीदारों (पटेलों) को, समृद्ध बनाया ।
5. मंगलवार को मां की मोर पर सवारी - मां उमिया कहती हैं, "मैं ही सरस्वती हूँ । जगत् को ज्ञान-बोध देकर सुखशान्ति देती हूँ ।"
6. बुधवार को सिंह सवारी के मां के अपूर्व दर्शन "मां उमिया कहती हैं, शक्तिदात्री मैं हूँ,"
7. गुरुवार को गजराज पर आरूढ़ मां-उमिया कहती हैं, नित्य व्यवहार में उदारता और सूक्ष्म अवलोकन करो गजराज जैसा करो,
8. शुक्रवार को कुकुट सवारी माँ उमिया की, "मां कहती हैं, जीवमात्र के लिये समभाव, समदृष्टि, दया रखना"
9. शनिवार को मां विराजे-ऐरावत हाथी पर - भक्तों का कल्याण ही मां की आज्ञा,
10. माताजी के उच्च्व शिखर व गुंबदयुक्त मंदिर का सुंदर विहंगावलोकन,
11. प्रवेशद्वार पर नक्काशीदार चांदी की भव्य कमान,
12. मंदिर का कलात्मक भव्य प्रवेशद्वार,
13. जाज्वल्यमान शिवालय,
14. गर्भद्वार पर विघ्नहर्ता गणेशजी विराजमान हैं ।
15. मां उमिया के मंदिर के प्रवेश द्वार पर बटुक भैरव, विराजमान हैं।
16. मां उमिया के मंदिर की सुंदर दिव्य, गगनचुम्बी भव्य टावर, मानसरोवर कुंड़ आदि
17. उमिया माता संस्थान कार्यालय, विश्रामगृह, अतिथिगृह, भोजनशाला आदि । कुर्मियों को चाहिये कि जब वे तीर्थयात्रा पर निकलें तो ऊंझा (उत्तरी गुजरात) स्थित श्री उमिया माता के मंदिर का अवश्य दर्शन करें । सभी सुविधायें वहां

उपलब्ध हैं। दूसरे उत्तर भारत में जहां कहीं कुर्मीजन मंदिर बनायें उसमें श्री उमिया माता की मूर्ति स्थापित करें, इससे आपस का प्रेम बढ़ेगा। वैसे श्री उमिया माता, पार्वती स्वयं हैं और शिव-पार्वती के मन्दिर उत्तर भारत में सर्वत्र मिलेंगे फिर भी "श्री उमिया माता" नाम से भी अलग मूर्ति मन्दिरों में स्थापित करना चाहिये। इस माध्यम से हिन्दी भाषी कुरमी तथा गुजराती पाटीदार बन्धु और निकट आ सकेंगे। जब बड़ी संख्या में देश के अन्य क्षेत्रों से कुरमी जन तीर्थाटन करते हुये ऊँझा की माँ उमिया जी के मन्दिर में आने लगेंगे, इससे परोक्ष रूप से गुजरात के पाटीदारों से उनकी घनिष्टता और अपनत्व बढ़ेगा। इसके वैसे ही लाभकारी प्रभाव कुरमी जाति को होगा जैसा बाल गंगाधर तिलक के सुझाव पर 'गणेशोत्सव' तथा 'शिवाजी जयन्ती' मनाने का प्रचलन देश में तेज़ी से फैला। जिससे मराठी संस्कृति का उत्कर्ष हुआ। सामाजिक समारोहों के अतिरिक्त धार्मिक दृष्टि से ये मेल-मिलाप कुरमियों और पाटीदार बन्धुओं को शीघ्र निकट ला सकेगा।

ईसवीं सन् 1094 में सिद्धराज जयसिंह का शासनकाल चल रहा था। तब उसने मालवा के राजा यशोवर्मा पर आक्रमण करके राजनगर को घेर लिया। यह संघर्ष 12 वर्ष तक चला। खाद्य सामग्री, तथा जल आदि की जब भयंकर रूप से कमी महसूस होने लगी, तब यशोवर्मा महल से बाहर आकर लड़ा, पर वह उस युद्ध में मार डाला गया। इस युद्ध के परिणाम स्वरूप मालवा प्रदेश में बसे हुये कुर्मीजनों के गाँव के गाँव आ जाने के कारण वे सब कुर्मी विजेता राजा सिद्धराज की शरण में पहुंचे और अपने उजड़ने और बरबादी की आपबीती दास्तान बतायीं। सिद्धराज जयसिंह की फौज द्वारा मालवा के हरे-भरे प्रदेश को उजाड़कर रख दिया गया था। अतः उस शासक ने गुजरात के अपने राज्य में बंजर जमीनों को उनमें आबंटित करके उन्हें उस भूमि का स्वतंत्र स्वामी बना देने का आश्वासन देकर उन सबको सपरिवार गुजरात भेज दिया। इस तरह मालवा से आये 52 गाँवों के परिवार ऊँझा के आस-पास बस गये। इनसे कालान्तर में कणबियों की 43 शाखायें (उपजातियां) निकली।

डा० भंगुभाई आर० पटेल अपनी उक्त पुस्तक में इसी संदर्भ में आगे लिखते हैं - "उपर्युक्त कुर्मियों के प्रत्येक परिवार को चरोतर तथा दशकोशी भाल की उपजाऊ जमीन में, उन्होंने जो भी पसन्द की उस जगह पर गांव बसाकर आस-पास की जितनी भी जमीन चाही उसका उन्हें स्वतंत्र मालिक बना दिया गया। सिद्धराज जयसिंह ने इस प्रकार गुजरात में सैकड़ों वर्षों से उजाड़ पड़े उस प्रदेश के कानम, वाकल, चरोतर, भाल आदि हिस्सों को बसाकर उस इलाके को समृद्ध किया, जिससे राज्य की उपज में भी वृद्धि हुई। सिद्धराज का कुमारपाल से पुराना बैर था। एक बार राजा सिद्धराज के सेनापति ने कुमारपाल को घेर लिया था और जब वह पकड़ा जाने वाला था वह वहां के कणबियों की शरण में चला गया। उनकी शरण में आये कुमारपाल को कणबियों ने सिद्धराज के सैनिकों के आक्रमण से बचा लिया। कुमारपाल कणबी कृषकों के इस उपकार के लिये उनका कृतज्ञ हो गया। सिद्धराज की मृत्यु के पश्चात जब कुमारपाल राजा बना तो उसने इस उपकार के बदले में प्राण बचाने वाले भीमसिंह पटेल को अपना अंग रक्षक बनाया तथा दूसरे कणबियों को भी अच्छे ओहदे दिये (देखिये फार्बस की प्रसिद्ध पुस्तक रासमाला)। इस प्रकार कुमारपाल के शासनकाल में कुर्मी गुजरात के कई हिस्सों में जमींदार बन कर सुख-चैन से रहते रहे।

कुलमी पाटीदारों का राजवंश कभी पाटडी (उत्तर गुजरात) में शासन करता था। पाटडी प्रशासन को अंग्रेजों ने फोर्थ स्टेट (चतुर्थ राज्य) का दर्जा दिया था। पंद्रहवीं सदी के अंत तथा सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में पाटडी और वीरमगाम आदि गांव झालाओं के अधीन थे, तब वीरमगाम किसी वीरमदेव नामक बहादुर झाला डकैत की अधीनता में था। वीरमगाम का किला सैनिक दृष्टि से बड़े ही महत्व का था। बाद में वीरमगाम पर पाटीदार देसाईयों का कब्जा हो गया। फिर भाग्य ने पलटा मारा। भावसिंह देसाई ने जब वीरमगाम छोड़ा तो पाटडी को अपने राज्य की राजधानी बनाया तथा अपने सारे कुटुम्बी जनों को भी वहां ले आये। इस प्रकार वीरमगाम और पाटडी दोनों राज्यों पर इसी देसाई पाटीदार राजवंश के परिवार के लोगों का शासन रहा।

एक बार पारिवारिक झगड़े के फैसले के लिये एक देसाई सदस्य ने दिल्ली के बादशाह जहांगीर के दरबार में पहुँचकर हुये अन्याय की फरियाद की जिस पर बादशाह जहांगीर ने उन्हें नयी सनद लिख दी, (वीरमगाम के मरफतियां



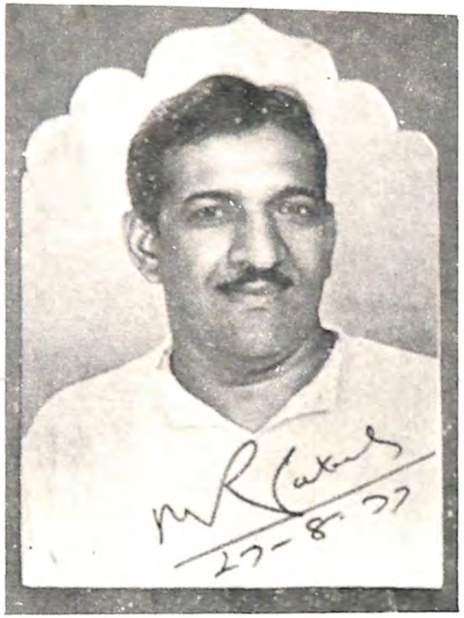
रावबहादुर गोविंदभाई हाथीभाई देसाई, बी.ए., एल एल. बी., एफ.आर.ए.आई.
सुबेदार साहब, कडी प्रांत, बरोडा स्टेट

आपश्रीने पाटीदार जातिमें से बुरे रीति–रिवाजदूर करने के लिये शिक्षा के प्रचार के लिये और जाति संगठन के लिये कार्य किया था। किसानसभाकी भी स्थापना की थी. अखिल भारतीय कूर्मी परिषद के सभापति के लिये आपको न्यौता दिया गया था. आप द्वितीय पाटीदार परिषद के प्रमुख रहे थे. बादमें श्री सयाजीराव गायकवाडने आपको 'राजरत्न' की पदवी दी थी. आप बरोडा स्टेट के दीवान भी थे.



शेठ श्री केशवलाल वि. पटेल

अध्यक्ष * उमिया माताजी संस्थान
ऊंझा (गुजरात)



डॉ. मंगुभाई पटेल पी. एच. डी.

उत्तर गुजरात में स्थित कंथोई नामक गांव में ११३७ में जन्म हुआ। पिताजी रामदास और माताजी शिवकोर बा से संस्कार पाए इतिहास विषय के साथ साथ एम. ए. युनि. में प्रथम आए। कुछ समय के लिये गुजरात विद्यापीठ में प्राध्यापक रहे। अभी गुज. युनि. में प्राध्यापक है। आपके कई शोध निबंध एवं पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। गुजरात राज्य के राज्यपालने आपकी नियुक्ति सीनेट सदस्य के पद पर की हैं। गुज. राज्य की कई कमिटिओ में आप सलाहकार भी हैं। समाज सुधारकके रुप में भी कार्य कर रहें हैं। आप जाने माने कलाकार और दिग्दर्शक भी हैं। आपके "बेचरदास लश्करी शेठ के जीवन" परके संशोधन निबंधको स्वीकार करके गुजरात युनिवर्सिटीने आपको पी. एच. डी. की उपाधि प्रदान की है।



श्री चंदुलाल मणीलाल देसाई (गुजरात)

१९१८ मे आपश्री निमाड अधिवेशन के अध्यक्ष थे.
श्री कडवा पाटीदार परिषद दशम् महोत्सव के भी अध्यक्ष थे.
आप जानेमाने समाज सुधारक थे.

realpatidar.com

देसाइयों के मूल फारसी सनद का हिन्दी रूपान्तर) निम्न प्रकार है :-

मुंहम्मद नूरुद्दीन बादशाह जहांगीर गाज़ी

मुहर राजचिह्न फरमान

गणेश वल्द मेगल तथा भीमजी वल्द मेगल देसाई

निवासी झालावाड़ परगना ।

हुकूमत की ओर से लिखा गया है कि अब तक उक्त परगने पर आप देसाईगीरी का कब्जा रखते थे, इसी प्रकार अब भी आपका कब्जा कायम है । इस फरमान से सभी अमलदारों, चौराडेदारों, काज़ी-अमीरों, कानूनगों तथा कारिंदों जो सभी काम करते हैं, वे तथा जो अब के बाद हुकूमत की ओर से नियुक्त होंगे - उन्हें विदित किया जाता है कि इन देसाइयों के साथ बराबर मेल रखना तथा उनके हुकुम और देसाईगीरों की कार्यवाही में किसी प्रकार की दखलंदाज़ी मत करना, बाकी रैयत तथा छोटे-बड़े सभी अमलदार आदि भी इन देसाइयों के साथ सम्बन्ध बनाए रखना तथा उनके कामों में सहयोग देना । (दिनांक 9 असफेदी आर. सने 5 इलाही)

कणबियों मे दहेज प्रथा का भयंकर जोर, परिणामस्वरूप बाल-हत्या जैसे सामाजिक कलंक का प्रारम्भ

सन् 1799 में जब कणबियों की बाल-बालिकाओं की विवाह की शुभ-तिथि ऊँझा स्थित माता श्री उमिया जी के मंदिर से घोषित हुई तो दहेज की मांग मात्र 51 रूपये थी, सन् 1809 में वह राशि बढ़कर 101 रूपयों तक पहुँच गई । पेशवाई के अन्तर्गत मराठा-शासन की अराजकता का 60 वर्ष का दौर गुजरात में भी चला । सन् 1817 में बाजीराव पेशवा को हराकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सारे देश के साथ गुजरात का शासन भी अपने हाथों में लिया। गुजरात में पिंडारियों के तथा अन्यथा भी लूट-खसोट के दिन समाप्त हुये और चारों ओर अमन-चैन पुनः स्थापित हो गया । यही नहीं आबादी में वृद्धि हुई, उद्योग-धंधे-व्यापार खूब बढ़े, परिणाम स्वरूप लोगों में सम्पन्नता और समृद्धि भी आई । पर इससे चाल्ले के रूप में कन्या के पिता को वर के पिता को दहेज-राशि में 201 रूपया देने पड़ते थे, जोकि उस जमाने के अनुसार काफी बड़ी रकम थी (देखिये रायबहादुर शेठ बहेचर दास अंबाई लश्करी की सरकार को रिपोर्ट)।

विवाह की अगली लग्न सन् 1830 ई0 में निकली । इस बार वर-पक्ष ने कन्या के माता-पिता से 200 से 450 रूपये तक दहेज (चाल्ले) के रूप में ऐंठे । इसके अलावा विवाह के अन्य खर्चों और लेन-देन में काफी वृद्धि कर दी गई । मजबूरन कणबी कन्या के मां-बाप को वर-पक्ष वालों की सुरसा के मुंह जैसी बढ़ती दहेज (चाल्ले) की राशि की किसी तरह पूर्ति करनी पड़ती थी चाहे उसे जान से प्यारी खेतिहर भूमि ही क्यों न गिरवी रखनी पड़े ।

जैसे भारत में जनगणना दस वर्ष बाद होती आयी है वैसे ही गुजरात के कणबी बन्धुओं में यह प्रथा पड़ी कि प्रत्येक 10 वर्ष बाद ऊँझा के कणबियों की कुलदेवी श्री उमिया माता के मन्दिर को लग्न की चिट्ठियां डालकर, पुरोहित नागर जी के माध्यम से देवी स्वयं विवाह-तिथियां घोषित करती थीं । यह तिथि जब सन् 1840 ई0 में निकाली गयी तो वर के दहेज की मांग बढ़कर 600 रुपये तक पहुँच गई। आज 600 रुपयों की राशि छोटी लगती है पर सन् 1840 ई0 में इतनी राशि की क्रय--शक्ति का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि तब सोना 10 रूपया तोला से कम ही रहा होगा । अतः 600 रूपयों से तब 60 तोला सोना बड़ी आसानी से खरीदा जा सकता था जोकि अब सन् 1994 में मौजूदा दर से 3,00,000 (तीन लाख) रुपयों के बराबर होता है । सन् 1840 में 600 रुपये

का दहेज पाकर भी लोभी वर-पक्षवालों का अत्याचार बधुओं पर बढ़ता जाता था उनके साथ जो अमानवीय और अभद्र व्यवहार किया जाता था, वह बड़ा असहनीय हो जाता था।

उपर्युक्त कारणों से गुजरात में कणबी बन्धु उस जमाने में, कन्या-जन्म को सुनकर, विशेष करके उसके मां-बाप कांप उठते थे, परिवार में पुत्र-जन्म की खबर सुनने के आतुर सभी स्वजनों को पुत्री-जन्म की खबर पाकर मुख पर निराशा झलकने लगती थी। परिणामतः किसी-किसी कणबी परिवार में कन्या-जन्म होने पर निर्दोष प्रसूता स्त्री को तरह-तरह के लांछन, खरा-खोटा, सुनना और प्रताड़ना सहनी पड़ती थी। जन्मी हुई पुत्री की परवाह भी कम या बेमन से की जाती थी जबकि पुत्र-जन्म पर प्रसूता मां के साथ व्यवहार ज्यादा आत्मीयता से, स्नेहपूर्ण ढंग से किया जाता था। पाठक लोग ध्यान दें कि उत्तर प्रदेश के भी कई कुरमी परिवारों में नियम था कि पुत्र जन्म की खबर दाई (प्रसाविका) द्वारा परिवार जनों को घोषित करते ही, परिवार की बुजुर्ग स्त्रियां प्रसन्नता जाहिर करने के लिये किसी चीज से थाली बजाती थी पर पुत्री-जन्म पर कटोरी को बजाने की प्रथा थी। सन्तान जन्म की खुशी में नौकर-चाकर और अन्य सेवकों को नेग और इनाम-इकराम भी पुत्र होने पर पुत्री की तुलना में बहुत ज्यादा देने पड़ते थे, कुछ हद तक अभी भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। अतः समाज जन्म समय से ही पुत्र-पुत्री में अन्तर मानता आया है, जो नहीं होना चाहिये। चाहे यह गुजरात के कणबी परिवार की बात हो या यू. पी., बिहार के कुरमियों की, कुनबी-मराठों की, रेड्डी, कापू, कम्मा, की या उड़ीसा के कूर्मा अथवा झारखंड के कुड़मि परिवारों की, पुत्र-जन्म उन्हें पुत्री-जन्म से ज्यादा सुखद और मनोवांछित प्रभु-कृपा लगती है। यह मानसिकता अन्य जातियों में भी विद्यमान है जो उचित नहीं है।

गुजरात के कणबी परिवारों में कन्या के साथ यह भेदभाव इस स्तर तक निकृष्ट हो गया कि उसका सही चित्रण विद्वान लेखक डा. भंगुभाई आर. पटेल की उक्त पुस्तक में इस प्रकार दिया है - "जन्मी हुई पुत्री की कोई परवाह भी नहीं करता था। लड़की पत्थर समझकर उसकी अच्छी तरह देख-भाल भी नहीं होती थी। कई कुओं से ताज़ा जन्मी बच्चियों की लाशें मिलने लगी, अथवा अक्सर सुनने को मिलता है कि अमुक घर में जन्मी-बेटी कल तो भली चंगी थी और आज मर भी गई। इस प्रकार बालिका-हत्या की सूचनायें अंग्रेज सरकार को मिली है उन्होंने जांच करवायी। इस प्रकार अहमदाबाद के दशक्रोई भाल के प्रमुख गांवों के नेताओं को तथा शहर के मोहल्लों के नेताओं को बुलवाकर उनके बयान लेकर जांच पड़ताल कर उनसे हस्ताक्षर लेकर पूरी रिपोर्ट, श्री ठाकर सी भाई मजिस्ट्रेट ने, जोकि इस जांच के लिये सरकार द्वारा नियुक्त हुये थे, अहमदाबाद के कलेक्टर मिस्टर एडवर्ड गार्डिन फोसेट साहब के पास भेज दी।

मजिस्ट्रेट की ठाकुरसी भाई की बालिका-हत्या पर रिपोर्ट

कणबियों की जाति में प्रति दस वर्ष बाद एक ही मिती को लग्न निकालते हैं। तब सभी को अपने कुंवारे बच्चों को ब्याहना पड़ता है। उनमें से हर एक का एक कन्या पीछे 250 से 600 रुपये तक खर्च आता है। किसी को दस सालों में तीन-चार पुत्रियां हुई हों। उन सभी के ब्याह में 1600 रुपये तक दुल्हों के बापों को ही देना पड़ता है और बरातियों की खातिर भोजन आदि का खर्च अलग से होता है ये लोग गरीब कृषक हैं, लेकिन बड़े आबरूवाले हैं अतः लग्न आने पर सभी बेटियों की शादी करनी ही चाहिए, बनी आबरू चली जायेगी ऐसा उनका दृढ़ विश्वास है। एक ओर पैसों का अभाव पहले से होता है, ऊपर से इन शादियों में भारी खर्चा करना पड़ता है। इसीलिये उन्हें बेटियों पर अधिक ममता नहीं होती..........यह सत्य है कि माननीय सरकार की सहायता के बिना यह प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। अतः बच्चियों पर तरस खाकर उनकी सहायता करनी चाहिए; क्योंकि अधिक खर्च वे लोग सहन नहीं कर सकते। पिछड़ी जनगणना को देखते हुए अगर तुलना करें तो अहमदाबाद जिले के आबादी में 21 प्रतिशत लड़कियां कम हुई हैं, अतः यह संदेह अवश्य पुष्ट होता है कि लड़कियों को बेपरवाही से मार डाला जाता है। यह रिपोर्ट मिस्टर एडवर्ड गार्डिन फोसेट, कलेक्टर महोदय, अहमदाबाद को भेजी गई, जिसके आधार पर सभी जगह कानून पालन करने

के सम्बंध में दिनांक 30 अक्टूबर सन् 1850 ई0 को गुजरात के पुलिस अधिकारियों को हिदायत कर दी गई ।

कणबियों के लिये लग्न-खर्च कम करने के लिये जो सरकारी आदेश निकला वह इस प्रकार था :

हुक्म-नामा एक्टिंग मजिस्ट्रेट अहमदाबाद का

सरकार, एडवर्ट लाइट जेंकिंस साहब, एक्टिंग मजिस्ट्रेट अहमदाबाद की ओर से कड़वा कणबी जाति के सभी लोगों को सूचित किया जाता है कि तुम्हारी जाति में ब्याह की ऐसी रस्म है कि पाटण परगने के ऊँझा गांव में तुम्हारी कुलदेवी के समक्ष प्रतिदस-ग्यारह साल बाद लग्न-मिति के लिये चिट्ठियां डाली जाती हैं । उसमें जो मिति निकलती है उस वर्ष में ब्याह करना निश्चित किया जाता है । ये चिट्ठियां प्रतिवर्ष नहीं डाली जाती । अतः एक महीने से लेकर ग्यारह साल की उम्र की सभी बच्चियों को ब्याह करना अनिवार्य हो जाता है । अभी लग्न का मौसम निकट आ रहा है । सन् 1846 में मजिस्ट्रेट फोसेट साहब के समय में तुम लोगों ने जो निवेदन लिखित रूप से दिया है उससे लगता है कि जाति में पुत्रियों के साथ बहुत भारी अन्याय हो रहा है । संवत् 1901 - 1902 में तुम्हारी जाति की जो जनगणना हुई उसमें कुलपुरुष 3,29,601 हैं तथा स्त्रियां 2,62,408 हैं । अर्थात् पुरुषों के अनुपात में स्त्रियां 69,193 कम हैं । तात्पर्य यह है कि इन दो वर्षों में नये जन्में हुए बच्चों में लड़कियां कम मिली हैं, जिससे इस संदेह की स्पष्ट पुष्टि होती है कि हो न हो लड़कियों की परवरिश यथोचित ढंग से नहीं होती है । उन्हें या तो मौत के मुंह में जान-बूझकर ढकेल दिया जाता है या उन्हें मरने से बचाने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है और इसी कारण कन्याओं की संख्या प्रतिवर्ष कम होती चली जा रहा है ।

अतः इस हुक्मनामें द्वारा सभी लोगों को इत्तला दी जाती है कि तुम लोगों ने सन् 1848 में जो निवेदन लिखकर दिया था उसी के अनुसार मानने योग्य जो बातें तय हुई उनका पालन करना होगा (इसका विस्तृत ब्यौरा डॉ भंगुभाई आर0 पटेल की पुस्तक के पृष्ठ 100-101 पर विस्तार से दिया है) । यह इकरारनामा तुम्हारी जाति के अग्रणी लोगों ने लिखकर दिया है, उसके अनुसार तुम्हारी जाति के सभी लोग चलेंगे, जिससे आपके हानिकारक रिवाज़ बंद हो जायेंगे । शेष आप लोग चैन से रहें तथा अपनी बेटियों के पालन में सभी प्रकार की सावधानी रखें । हुक्मनामा में वर्णित दहेज आदि जो बताया गया है उससे कम लेने-देने में आप लोगों को पूरी छूट है, लेकिन उससे ज्यादा नहीं लेना है । इसके अनुसार न चलकर यदि कोई इसकी अवहेलना करेगा, तो उसे सन् 1827 ई0 के कानून 14 की धारा के अर्न्तगत वर्णित नियम, के अनुसार गुनाहगार मानकर सजा दी जायेगी ।

तारीख 30 अक्टूबर 1850 — हस्ताक्षर

रजू- हर्षदराय मेहताबराय चिटनीस — जेंकिन्स साहब एक्टिंग मजिस्ट्रेट, अहमदाबाद

उपर्युक्त हुक्मनामे का इसके बाद के दस-दस वर्ष बाद में आने वाली लग्न-मितियों का कन्या-वर के पिताओं पर थोड़ा बहुत अच्छा प्रभाव अवश्य हुआ । कुछ नियम तोड़ने वालों की सजा भी हुई । पर धीरे-धीरे हुक्मनामे को लोग भूल गये और यह विवाह समस्या उभरकर और अधिक विकराल हो गयी । जिससे कन्या पक्ष-वालों का जीवन नारकीय हो गया ।

कड़वा कणबी जाति की बेटियों की सुरक्षा हेतु वैवाहिक नियम

कणबी-पाटीदार जाति के दो राजवंश गुजरात में हुये हैं - वीरमगाम और पाटडी में कडवा कणबियों का राज्य था, जबकि बसों में अमीनों का यानी लेवा कणबियों का इसी बसों के अमीन घराने के वीरात्मा दरबार गोपालदास ने अपनी तमाम जागीरी आय छोड़कर महात्मा गांधी के शिष्य बनने में कृतकृत्यता का संतोष पाया था।

लगभग 135 वर्ष पूर्व ऐसा देखा गया है कि कडवा-कणबी समाज की जनसंख्या काफी अधिक होने पर भी लड़कियों की बड़ी कमी हो गई थी इससे समाज के प्रमुख लोगों का चिंतित हो उठना स्वाभाविक था। अतः पाटडी राज्य के देसाई श्री जोरावर सिंह जी कुबेरसिंह द्वारा सन 1859 ई0 में समस्त कडवा-पाटीदारों को इस जातीय समस्या पर बिचार-विमर्श और समाधान के लिये निर्णय लेने के लिये आमंत्रित किया गया, जिससे विवाह-दहेज पर अंकुश लगाने के लिये लगभग चालीस हजार लोगों की विराट सभा बुलाई, जिसमें पाटडी, बणोद, मोरबी, दसाडा, बजाणा, लखतर, धांग्रंधा, वढवाण, लींबडी, काठियावाड, मूली तथा बांकानेर आदि परगने एवं गांवों के कडवा कणबी जाति के मोटी चद्दर (जाड़ी पछेड़ी) वाले पटेलों ने समस्त समाज और संपूर्ण होश-हवास में तथा सर्वसम्मति से हस्ताक्षर करके लिखित निर्णय लिये। पर दुर्भाग्य है कि इस सामूहिक दस्तावेज पर किये गये हस्ताक्षरों की स्याही सूख भी न पायी कि अगली लग्न निकलने से पहले फिर सम्पन्न कडवा कणबी वर्ग, दहेज-राशि के संबंध में सर्वमान्य नियमावाली का उल्लंघन करने लगे। देखा-देखी एक से अनेक नियम भंजक कणबी समाज में नज़र आने लगे। इससे इस समाज के कर्मठ सुधारकों को बड़ा दुःख हुआ, विशेष करके अहमदाबाद नगर के प्रमुख उद्योगपति रईस रायबहादुर सेठ बहेचरदास लश्करी को। उन्होंने पहले पाटडी के दरबार श्री (राजा साहब) को जाकर इस परिस्थिति की जानकारी करायी। फिर कणबियों में जन-जागृति पैदा कर जन-आंदोलन का आह्वान किया। जगह-जगह सभायें की और समझाया कि क्या उनके जातीय हित में है, और क्या नहीं और विशेष करके शादी-ब्याह को अधिकाधिक खर्चीला बनाने में जोकि बढ़ते दहेज-राशि के कारण होता है। कन्या विवाह परिवार की आर्थिक दुर्दशा कर डालता है। 23 मार्च 1869 को बुलायी एक विशाल सभा में 50 रुपयों के स्टाम्प पेपर पर एक नया दस्तावेज सर्वसम्मति से तैयार किया गया, जिस पर उपस्थित प्रमुख-प्रमुख कणबियों के हस्ताक्षर कराये गए। इन सब प्रयासों के परिणाम स्वरूप "दीकरीना संरक्षण नियमों" को लागू करवाया गया।

राय बहादुर सेठ बहेचरदास लश्करी बड़े निर्भीक तथा सम्मानित व्यक्ति थे, उन्होंने गुजरात में जहां कणबी बसे हुये हैं वहां जा-जाकर, जातीय सभाएं करके जन-चेतना का बिगुल बजा दिया। सर्वसम्मति से पारित उपर्युक्त नियमावली का पालन करवाया और उल्लंघन करने वालों की तरह-तरह से भर्त्सना तथा दंड का भी निस्संकोच प्रयोग किया। इस प्रकार कणबी समाज में दहेज-प्रथा पर अंकुश लग सका।

उन्हीं दिनों भारत सरकार की केन्द्रीय धारा सभा में बालिका हत्या रोकने के लिये एक विधेयक रा० ब० सेठ बहेचरदास लश्करी जैसे अग्रणी एवं कर्मठ समाज सुधारकों के सतत प्रयासों से प्रस्तुत हुआ, जोकि सन् 1870 ई० में कुछ संशोधनों के साथ पारित हुआ। भारत के गर्वनर जनरल ने 18 मार्च सन् 1870 को इसे कानून का रूप दे दिया तथा 1870 के बम्बई सरकार के गज़ट में सन् 1870 के ऐक्ट संख्या VIII के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया।

उधर बड़ौदा राज्य के महाराजाधिराज हिज़ हाईनेस ने अपने राज्य में कानून बनाकर लागू किया जिसके अनुसार विवाह के लिये वर की आयु 16 वर्ष तथा वधू की 12 वर्ष का होना अनिवार्य कर दिया गया। कणबी बन्धुओं को स्वजातीय मराठा कुल में उत्पन्न बड़ौदाधिराज द्वारा पारित इस प्रकार के ऐक्ट से, उनकी विवाह-संबंधी जटिल समस्याओं के समुचित समाधान में बड़ी सहायता मिली। तत्पश्चात कणबी समाज से दसवर्षीय एक ही तिथि में विवाह रचाने की प्रथा, ऊलजलूल दहेज की मांग से बचने के लिये प्रारम्भ में शिशु अवस्था में बालिका-हत्या कर देना आदि जैसे महाकलंक समाज से मिट गये। पर इसके लिये अनेक सुधारकों ने तथा युवा-पीढ़ी ने सहयोगकर घोर प्रयत्न किये तब ही यह सामाजिक कोढ़ दूर हो सका। यही नहीं आज गुजराज के पाटीदार-पटेल बन्धुओं के शादी-विवाह बड़ी सादगी से, दोनों पक्षों की रजामंदी और आनन्दोल्लास के बीच सम्पन्न होते हैं। सारे देश के हिन्दी भाषी कुरमीबन्धु, आज अपने गुजरात के कुणबी बन्धुओं के शादी विवाह की आचार-संहिता का पालन और अनुसरण करें। इससे शादी-विवाह सादे, सस्ते और दोनों

पक्षों के लिये कल्याणकारी बना सकें ।

गुजरात कड़वा पाटीदारों के सामाजिक इतिहास में वर्ष सन् 1909 भी बड़ा महत्वपूर्ण है । क्योंकि सन् 1910 में विवाह लग्न तिथि पूर्वतः ऊँझा से **कडवा पाटीदारों की कुलदेवी श्री उमिया माताजी के मन्दिर से** पुरोहित नागर जी के माध्यम से माता द्वारा घोषित होती थी । अनेक पाटीदार नौजवानों के सहयोग से **"कडवा पाटीदार शुभचिंतक समाज"** की स्थापना की गई । इस नवगठित समाज की प्रथम बैठक वीरमगाम में अहमदाबाद के प्रसिद्ध **डाक्टर पीताम्बरदास कुबेरदास पटेल** की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई । समाज ने निर्णय लिया कि बाल-विवाह बंद होना चाहिए और दस वर्ष के अन्तराल से मात्र एक लग्न तिथि हेतु मंदिर से घोषणा जारी करने की प्रथा रोकनी होगी । **जिज्ञासुओं ने पता लगाया कि ऊँझा वाले मन्दिर से पुजारी नागर जी माता का आदेश स्वयं कर अपना निर्णय श्रद्धालु कणबी लोगों पर थोपते आये थे । यह असलियत पता होते ही बहुत से लोगों ने उस प्रथा का पालन करना छोड़ दिया । जिसके लिये उन्हें काफी सामाजिक कोप भी सहना पड़ा ।** नवयुवक पाटीदारों के अटल निश्चय के कारण यह दस-वर्षीय लग्न-प्रथा शिथिल पड़ी और शनैः शनैः लुप्त हो गयी । पर उससे पहले **रायबहादुर शेठ बहेचरदास लश्करी** के वंशजों ने दस वर्ष की जगह पांच वर्ष की अन्तर वाली दो लग्न तिथियें सन 1910 व सन 1915 में घोषित करके पुरानी परंपरा को भंग किया था । पर आगे सब कणबियों को ये तिथियां इच्छानुसार तय करने की स्वतंत्रता मिल गयी, जो वर्तमान में भी जारी है ।

[redacted]

पाटीदार जाति के सम्बंध में उत्तर भारत के कूर्मि बंधु **श्री नारायण शेठ** ने सर्वप्रथम **'कुलमी कुलादर्श'** ग्रंथ प्रकाशित किया । सन 1906 में **श्री डाह्या भाई लक्ष्मण भाई पटेल** ने **'वडनगरा कणबी क्षत्रिय उत्पत्ति'** नामक ग्रंथ की रचना की थी ।

[redacted] । [redacted] । उस जमाने में हजारों की संख्या में कणबी **पीराणापंथी** हो गये थे, कहने को मुसलमान थे पर आचरण में पूर्णतया हिन्दू । **श्री नारायणजी मिस्त्री** ने छः मित्रों के साथ (उन सप्तवीरों ने) **पीराणापंथी कणबियों** को पुनः हिन्दू धर्म में वापिस लाने की प्रतिज्ञा की, उन्हें अनेक सामाजिक कष्ट, यहां तक कि बहिष्कार भी झेलना पड़ा । पर अन्ततोगत्वा वे अपने हजारों पीराणापंथी कणबी परिवारों को पुनः हिन्दू धर्म में वापिस ले आये । श्री नारायणजी मिस्त्री ने जो महान समाज सुधार कार्य किया उस पर एक पुस्तिका [redacted] प्रकाशित की गई **डा० मंगुभाई रामदास पटेल** ने सन् 1985 में प्रसिद्ध कणबी जाति गौरव एवं महान सुधारक **'रायबहादुर बहेचरदास अंबाईदास लश्करी (जन्म सन 1818 मृत्यु सन 1889 ई०) ने औद्योगिक अपने सामाजिक नेता तरीकेनुं जीव वृतान्त"** नामक शोधपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किया, जो ग्रंथ डाक्ट्रेट का अध्ययन विषय होने से एक महत्वपूर्ण प्रामाणिक ग्रंथ है और यह गुजरात के कणबियों के संदर्भ में समकालीन सामाजिक जीवन का ताना-बाना जानने के लिये एक बहुत ही उपयोगी ऐतिहासिक कृति है । इसके बाद सन् 1991 का प्रकाशित डा. पटेल का ग्रंथ [redacted] तत्पश्चात सन् 1993 में अपनी गुजराती, मातृ-भाषा में प्रकाशित **"पाटीदारोनी गौरवगाथा"** न केवल कूर्मि क्षत्रिय जाति के गुजराती बन्धु पाटीदारों का बृहद् ग्रंथ है अपितु हर एक कुरमी परिवार के लिये पठनीय तथा संग्रहणीय रचना है और इतिहास के प्राध्यापक के शोधकार्य पर आधारित कृति है । **डा० पटेल** की उपर्युक्त पुस्तकों की समीक्षा, **श्री प्रदीप मल्लिक** ने की है अहमदाबाद से प्रकाशित होने वाले **अंग्रेजी दैनिक "दि टाइम्स ऑफ इंडिया"** के 29 अगस्त 1994 के अंक में **'सिटी एनकाउंटर'** कालम के अन्तर्गत प्रकाशित हुई है, जिसे साभार नीचे उद्धृत किया जा रहा है ।

Origins of the Patidars

BY PRADEEP MALLIK



DR. M. R. PATEL

AHMEDABAD. August 28, 1994

"All those who believe the Patidars to be just a class of toiling masses without a history moving up the social ladder by virtue of hard work, would do well to revise their beliefs. Patidars are Kshatriyas, according to **Dr. M.R. Patel,** reader in the department of history at **Gujarat University.** And, he has evidence, both historical and logical, to buttress his theory.

He has authored two books on this theory. One of them, in fact, proclaims Patidars to be Kshatriyas on the cover itself : **Kulmi Kshatriya Patidaron Ka Itihas.** The other, **Patidaroni Gaurav Gatha,** was published recently.

The purpose of writing these books was to place matters in the right perspective. Mr. Patel said. Historical explanations regarding the origin of the Patidars were far from satisfactory. Even stalwarts like **Dahyabhai Patel** and **Uttamramji** relied on hearsay evidence. The legend that they came from the 52 dhinglis (dolls) created by Goddess Parvati or 105 dolls received prominence over reasoning and logic, he said.

Mr. Patel accepts that his interpretations regarding the **varna** affiliations of the Patidars are not final. New explanations which stand the test of reason may spring up. "A historian should always be ready to accept refutals to his history. After all, society is built and rebuilt on healthy debates."

He recalls the public debate organsied to determine the caste of the **Kulmi Patidars** way back on May 25 and 26, 1906. Deep Narayan Singh and Pandit Damodar Shastri, the latter quoting from the Skandapurana, asserted that **"Kunbis"** were Kshatriyas. Pandit Madan Mohan Pathak of Varanasi objected, saysing that the **Kulmis** were not marrying into other Kshatriyas, they were tillers, their customs were different and , and most importantly, they were not sporting the sacred thread.

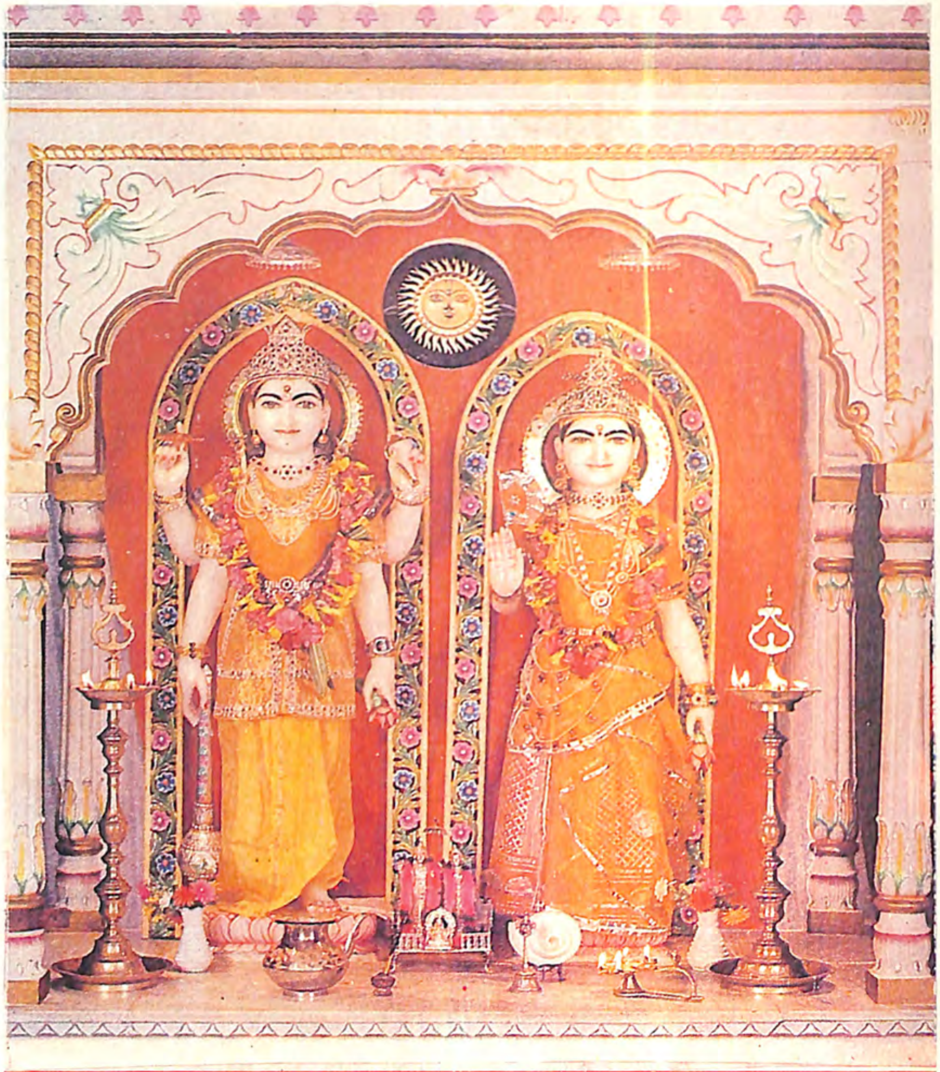
However, Pandit Rajaram Shastri clarified that agriculture was not a mean profession and that the ancient texts allowed members of the higher classes to till the soil in emergency. The Manusmriti (Chapter 10) and Parasharsmriti (Chapter 2) allowed Brahmans and Kshatriyas to adopt the Vaishayas' calling • agriculture, trade and commerce and animal husbandry - during **apad kaal** or the moment of crisis.

He also argued that divided as the castes were into subcastes, Hindus did not marry even outside their subcastes. **Kunbis** were not exception to this practice.

They have to discard the sacred thread, just as many other **dwijas** (twice-born) Hindus had to do, to evade persecution during periods of strife in the medieval times.

Mr. Patel holds that **Kulmi, Kunbi** are all the impure or polluted forms of **Kurmi** which, in turn, owes its origin to the name of sage **Kurma** considered to be the ancestor of the **Patidars.**


कुलदेवी श्री ऊमीया माताजी कादीया (मोटा) कच्छ, गुजरात.



भगवान श्री लक्ष्मी नारायण. कादीया (मोटा) कच्छ, गुजरात.

He said that Sukta 55 of the eighth mandala and Sukta 37 of the third mandala of the Rig Veda testified to **Kurmis being of a Kshatriya descent.** The Shatapatha Brahmana, the Yajur Veda and the Atharva Veda, too, supported this. Even in the Sayana Bhashya the term, **Kurmi,** was used in reference to **Kshatriyas** and to qualities traditionally attributed to them.

Prof. William in his **Sanskrit-English** dictionary said, **"Kurma"** means power, powerful person, bravery, brave person.

The **Kunbis, Mr. Patel** asserted, rose to become land-owners during the post-Siddharaja days under the reign of Kumarpal. He quotes from Hunter's "Statistical Account of Bengal," **"Kurmis** though generally engaged in agriculture, make good soldiers and were good-deal employed as such before the Mutiny. Mr. Magrath suspects that **Kurmis** are found in Madras, Chhota Nagpur, Orissa and among the Marathas. **Sivaji was a Kurmi and the Rajas of Gwalior and Satara are said to be of the same race."**

According to Reverend Sherring's "Tribes and Castes," **"The Kurmis** and **Kunbis** are in reality one class of people, and yet under them are subdivisions.... some of which do not intermarry."

The Imperial Gazetteer of India (New Edition, Volume V) records : "The **Kunbis** who number 1,01,000 are an important class. Some have risen to high positions in Government service or have acquired wealth in trade but the majority are engaged in agriculture and , form the greater part of the peasant proprietors in Gujarat. There is no real difference of caste between **Kunbis** and **Patidars** though **Patidar** will not now intermarry with ordinay **Kunbis.** The latter are divided into three classes - **Levas, kadvas, Anjanas."**

Mr. Patel's attempt to write the history of a caste should not be treated as characteristic of a medieval mind set in a modern world fast approaching the 21st century. "It could be treated as an effort to write the history of a **'people without history.'** It is important to point out abhorent customs in a society. These are aplenty among the **Patidars.** In fact, they have stunted their social growth in Gujarat, Rajasthan and Madhya Pradesh."

Besides, even if **we talk of the 21st century, caste still plays a dominant role in our society. It is part of our culture,"** he added."

प्रदीप मल्लिक का उपयुक्त यह कथन सही नहीं है कि इस जाति का इतिहास नहीं है । इतिहास है, बड़ा उज्जवल है, उसे पूर्णतया खोजा नहीं गया और न लिखा गया । इस लेखक का इस ग्रन्थ द्वारा इसी दिशा में साहसिक प्रयास है । जितना अधिक कूर्मि क्षत्रियों का प्राचीन एवं प्रामाणित इतिहास उपलब्ध है इतना विरलों का है ।

[redacted] से हिन्दुस्तान का सफर करता-करता गुजरात में आया और अहमदाबाद के निकट गीरमथा गांव की सीमा पर उसने एक स्थान पर अपना डेरा डाल दिया । खुदा की इबादत में सारा वक्त गुजारता था और अपने मुरीदों के दुःख-दर्द दूर करने के लिये दुआयें करता था । सैयद इमामशाह पीर-की शोहरत चारों ओर फैलने लगी । उनका करिश्मा कर दिखाने के हुनर से भी कुछ प्रभाव बढ़ता गया । एक बार अहमदाबाद

[redacted] । सैयद इमामशाह के कुटीर पर जब सुलतान आया तो उन्हें कोई ऐसा करिश्मा कर दिखाया कि वह भी उनकी आध्यात्मिक शक्ति से इतना प्रभावित हुआ कि उसने [redacted] । सुलतान का दामाद बनते ही सैयद इमामशाह की एक पहुँचे हुये पीर जैसी शोहरत चारों ओर फैलने लगी ।

इसी दौरान काशी से तीर्थाटन करके लौटते समय सूरत-नवसारी के गांवों के कुछ लेउवा-कणबी गीरमथा गांव में रुके । उन्हें भी पीर इमामशाह ने चमत्कार दिखाया । अतः वे सब भी उनके मुरीद बन गए । इन पीर के नाम से पीराणा-पंथ चला जिसके अनुयायी अनेक कच्छी-कणबी भी बन गए । कच्छी पाटीदार रामानी, शांखला, सुरानी, मावानी, लींबाणी, पोकार, चोपड़ा जैसे शाखों में विभाजित थे जिन्होंने पीराणापंथी मत को स्वीकार किया था । ईसा बाद 15वीं शताब्दी में इन पीराणापंथी कच्छवासी कणबियों ने अपना मूल धर्म त्यागकर मुस्लिम मत स्वीकार कर लिया था । परिणामस्वरुप अपने हिन्दू बचे परिवारों, स्वजनों, जातिवालों एवं अन्य गांव वालों से उनकी रंजिश होना स्वाभाविक था । अतः अपनी अनुकूलता के लिये सभी पीराणापंथी कणबी मुसलमान क्रमशः गुजरात के भिन्न-भिन्न स्थानों से निकलकर सामूहिक रूप में बागड़ (कच्छ) में शीकरु नामक ग्राम में आ बसे और वहां अपने स्वजनों तथा सहधर्मियों से मिलकर एक नई जाति का गठन किया । बाद में वे शीकरु से अपनी अनुकूलता अनुसार पृथक-पृथक अंचलों के गांवों में जा बसे। क्योंकि वे पुश्तैनी कुशल कृषक थे अतः जहां वे गये, कृषि क्षेत्र में खूब उन्नति हुई । सम्मान के साथ-साथ उन्हें कृषि-भूमि भी वहां बसने के लिये तत्कालीन शासकों द्वारा उपहार के रूप में दे दी गई ।

कालान्तर में उन पीराणापंथी कणबियों की आबादी इतनी बढ़ी कि उत्तम कृषक के रूप में 25 से 30 गांवों में उनका बाहुल्य और वर्चस्व स्थापित हुआ । किसी लग्न-प्रसंग पर पीराणा-पंथ के एक धर्मगुरु 'प्रागजी काका' आए और उन्होंने मुसलमान हुये कणबियों को हिन्दुओं के विमुख पीर इमामशाही का कट्टर अनुयायी बनाने की भरपूर कोशिश की जिसका कुछ प्रभाव भी पड़ा और उनके हिन्दू पूर्व संस्कारों के स्थान पर कट्टर धार्मिक कठमुल्लापन का बीजारोपण होने लगा । अब तक उनका रहन-सहन, खाना-पीना हिन्दुओं जैसा था पर वे वार्षिक भेंट के रूप में पीराणा राशि भेजते थे अन्यथा उनमें मुसलमानों के कोई भी चिह्न नज़र न आते थे ।

[redacted] से रेवापर गांव के 'केसरा पटेल' को अपने पूर्वजों द्वारा हुई इस भयंकर भूल का अहसास कराया । उसने साहस बटोरकर सर्वप्रथम पीराणापंथ को त्यागकर अपने पूर्वजों के धर्म में वापिस लौटने का ऐलान किया । इस एकमात्र 'केसरा भक्त' पर तत्कालीन लोगों ने बहुत अन्याय किये, किन्तु वे अडिग रहे और उनका साहस और दृढ़ संकल्प देखकर सैकड़ों पीराणापंथी कणबी उस पंथ को तजकर स्वामीनारायण सम्प्रदाय में प्रविष्ट होकर सच्चे हिन्दू भक्त बन गए । फिर स्वामीनारायण सम्प्रदाय के परमहंस ज्ञानानंदजी के प्रयासों और अन्य प्रचारकों के सतत प्रयासों से एक के बाद एक कणबियों के गांव पीराणापंथ के चंगुल से मुक्त होते गये और यह प्रक्रिया जारी रही जब तक कि आखिरी कणबी भी पीराणापंथ के चंगुल से छुड़ाकर पुनः हिन्दूधर्म में लौट नहीं आया ।

श्री स्वामीनारायण सम्प्रदाय के स्वामी परमहंस ज्ञानानन्द जी महाराज जब विदेश धर्म-प्रचार को बुलाये गये तो उनके पीछे मौका पाकर पीरणापंथ के संस्कारों से ओत-प्रोत कुछ शरारती और कट्टर तत्वों ने फिर उन कणबियों को सनातन-धर्म विमुख करने की चेष्टा की । तब तक श्री नारायणजी रामजीभाई लींबाणी (मिस्त्री) (जन्म सन् 1818 मृत्यु सन् 1941, मूल निवासी गांव वीराणी, ताल्लुका नखत्राणा कच्छ, गुजरात) का प्रादुर्भाव हुआ । वे मिस्त्री के नाम से बम्बई में अपने ठेकेदारी के कारोबार में विख्यात थे । इनके बारे में पूर्व उल्लेख किया गया है कि इन्होंने तथा इनके छः कणबी मित्रों ने अर्थात इन सात कर्मवीरों ने प्रतिज्ञा ली थी कि वे पीराणापंथ में चले गये समस्त कणबी समाज को अपने मूल सनातन धर्म में वापिस ले आयेंगे । इन सप्त नरवीरों ने आपस में विचार-विमर्श किया कि अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति की कार्य शैली और कार्यनीति क्या होनी चाहिये । पहले वे सातों नासिक तीर्थ स्थान पर आये और कुछ काल तक पीराणापंथ में रहने का विधिवत प्रायश्चित किया और तत्कालीन सनातनी परंपरानुसार यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण कर अपना पूर्ण शुद्धिकरण कर डाला । वैसे श्री नारायण जी मिस्त्री कटट्र आर्य समाजी थे । इन सप्त नरवीरों ने फिर

अपने प्रयासों से उन कणबियों को पीराणापंथ के प्रभाव से मुक्त कराकर श्री स्वामीनारायण सम्प्रदाय का अनुयायी बनाने पर बड़ा परिश्रम किया, अपमान झेले, बिरादरी से बहिष्कृत होकर नाना प्रकार के विरोध का डटकर सामना किया, जहां समझाने से काम चला वहाँ उन्हें अपनी कणबी क्षत्रिय जाति के गौरव का बोध करवाया, पर अन्ततः अपना लक्ष्य और प्रतिज्ञा पूर्णकर दिखायी । सन् 1917 में निमाड (कुवाँ) में आयोजित पाटीदार सभा के सभापति श्री नारायणजी रामजी भाई मिस्त्री ही थे । आपने बम्बई (घाटकोपर) पाटीदार परिषद का भी आयोजन अपनी देख-रेख में सफलतापूर्वक करवाया था, जिसमें मालवा-निमाड अंचल से भी पाटीदार बंधुओं ने भाग लिया था । आप अपने समय के पाटीदार युवाशक्ति के सशक्त पथ प्रदर्शक थे । जिस पाटीदार जाति में रावबहादुर बहेचरदास अंबाईदास लश्करी (सन् 1818 से 1881ई0) सी एस० आई० जैसे प्रौढ़ सुधारक और पथ प्रर्दशक एवं श्री नारायणजी रामजी भाई मिस्त्री जैसे कर्मठ युवाशक्ति के रहनुमा उत्पन्न हुये हैं, वह अपनी जातीय खामियों को तजकर आज देश की सम्पन्न, सुशिक्षित, संस्कारित एवं अग्रणी जाति के रूप में मानी जाती है, जानी जाती है ।

कच्छ प्रदेश सत्रहवीं-अठारहवीं सदी तक बहुत पिछड़ा था । अतः जब गुजरात के कुशल कृषक-कणबी जनों को तत्कालीन 'राव' ने वहां बसाया तो इन्होंने वह भूमि भी तरह-तरह की पैदावार से हरी-भरी कर दी । जिससे उन्हें बड़ा सम्मान मिला तथा उन पर सदैव शासकीय कृपा-दृष्टि रही । उन्हें जमीने देकर पुरस्कृत किया गया । बाद में आबादी बढ़ने पर तथा अधिक उन्नति की लालसा से वे शिकरु से अपनी अनुकूलता अनुसार अलग-अलग गावों में जाकर बस गये । कुछ कच्छ प्रदेश के कणबी बन्धु बम्बई और देश के अन्य नगरों में जा बसे । कहा जाता है कि बम्बई का अनाज का ज्यादातर थोक व्यापार कच्छी पाटीदारों के हाथों में है । मध्यप्रदेश में तम्बाकू तथा अन्यान्य व्यवसाय में पाटीदारों का वर्चस्व बहुत पहले ही स्थापित हो चुका था ।

[redacted]कदीया कच्छ मोटा (गुजरात) कडवा पाटीदार समाज के इष्टदेव

लगभग 50/52 वर्ष पूर्व, विक्रम [redacted]रात के कच्छ कडवा पाटीदार सभा में धर्म की जागृति आई और शिक्षा का प्रचार बढ़ा । कच्छ के कडवा पाटीदारों ने कर्मठ समाज सेवकों द्वार[redacted] के युगल स्वरूप को अपना इष्ट देवता मानते हुये गांव-गांव में उनके प्रति आस्था और भक्तिभाव का प्रचार-प्रसार किया शिक्षा के प्रचार-प्रसार, अज्ञानता और अन्धविश्वासों को तजकर पुरुषार्थ में विश्वास रखने से इस[redacted] आज यह समाज हर क्षेत्र में साधन सम्पन्न और अग्रणी है और उसने काफी उन्नति की है । कडवा पाटीदारों द्वारा श्री लक्ष्मीनारायण पाटीदार सनातन सभा, स्थापित की गई है जिसका मुख्य कार्यालय श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर, कादीया (मोटा) कच्छ, गुजरात-370670 है ।

श्री लक्ष्मीनारायण की युगल जोड़ी, कच्छ मूल के कडवा पाटीदारों के इष्टदेव हैं । जहां भी गांव-गांव नगर-नगर में वे अधिक संख्या में जा बसे हैं उन्होंने भगवान श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर अवश्य स्थापित कर लिया है । उनकी अटूट आस्था है कि इन्हीं इष्ट देव की अनुकम्पा से वे जीवन के हर क्षेत्र में प्रगति करते गये जैसा ऊपर वर्णित है कि कच्छ के कडवा पाटीदारों पर सन 1449 में इमामशाह नामक एक ईरानी सैयद के वहां आ बसने से, इनका धार्मिक प्रभाव बढ़ा और कच्छी पाटीदार, रामानी, शांखला, धुरानी, भावानी, लींबाणी, पोकार, चोपड़ा जैसे शाखाओं में विभाजित कणबियों ने पीराणापंथ को, स्वीकार कर लिया । बाद में पीराणापंथ से कडवा पाटीदार समाज को मुक्ति दिलाने में व्यवस्थित एवं र[redacted]ने छः निर्भीक और कर्मठ साथियों ने, अनेक प्रकार के कष्ट सहते हुए किया । इन सप्तवीरों के प्रयास वे पीराणापंथ तजकर हिन्दू सनातन धर्म में वापिस लौट आये । श्री नारायणजी रामजी भाई मिस्त्री



ब्रह्मलीन श्री [redacted] [redacted]रिद्वार वाले)

का जन्म कच्छ में सन 1883 में और निधन सन 1941 में हुआ। उनका ज्यादा जीवन बम्बई में बीता वे सन 1917 में कुवां (निमाड़) में आयोजित पाटीदार सभा के सभापति रहे ।



ब्रह्मलीन श्री बालदास जी महाराज (हरिद्वार वाले)

कच्छी कडवा पाटीदारों को भगवान श्री लक्ष्मीनारायण के प्रति अगाध आस्था और भक्ति भाव जागृति करने में दो महानुभावों का उल्लेखनीय महान योगदान रहा है। एक थे कच्छ कडवा पाटीदार समाज के धर्मगुरुदेव परम पूजनीय प्रातःस्मरणीय ब्रह्मलीन [redacted] स्थित है)। दूसरे [redacted] समाज सुधारकों ने लगभग अर्ध-शताब्दी पूर्व कच्छ पाटीदारों (पटेलों) के गांव-गांव में जाकर रूढ़िवादी समाज के अनेक विरोधों का डटकर सामना करते हुए उन्हें भगवान श्री लक्ष्मीनारायण का अनन्य भक्त बनाया । [redacted] । कच्छ कडवा पाटीदार समाज इन दोनों महान समाज सुधारकों को बड़ी श्रद्धापूर्वक स्मरण और नमन् करता है।

श्री लक्ष्मीनारायण भगवान (सनातन धर्म) को कडवा पाटीदार समाज में और बढ़ाने के लिये, उनसे सम्बंधित अध्यात्म ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिये ब्रह्मलीन संत श्री ओधवरामजी के पटु शिष्य ब्रह्मलीन संत श्री बालदास जी महाराज (कच्छी लाल रामेश्वर आश्रम, हरिद्वार वाले) ने भी बड़ा प्रशंसनीय कार्य कर अपने गुरुदेव के कार्य को काफी आगे बढ़ाया। कच्छ कडवा पाटीदार समाज इन तीनों महान विभूतियों का सदैव ऋणी रहेगा और सच्चे मन से अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता रहेगी ।

वर्तमान में यह कच्छी कडवा पाटीदार समाज गुजरात के कच्छ तथा सांबरकाठा जिलों में बसा हुआ है । और इनकी आबादी लगभग 5 लाख है । सब श्री लक्ष्मीनारायण भगवान को अपना इष्ट देव मानते हैं इनका संगठन मजबूत होता जा रहा है । यही कारण है कि कच्छी कडवा पाटीदार (पटेल) देश और विदेश में जहां भी सामूहिक रूप में बसे हैं हर क्षेत्र में उन्नति कर रहे हैं आपस में रोटी-बेटी का व्यवहार रखते हैं और उसके लिये भगवान लक्ष्मीनारायण की अनुकम्पा ज्ञापित करते हैं । इसके साथ वे अपनी आबादी में जगह-जगह कुलदेवी श्री उमिया माता जी के मन्दिर स्थापित करते जा रहे हैं श्री उमिया माताजी का प्राचीनतम और मूल मन्दिर ऊँझा, उत्तर गुजरात में स्थित है । यह सब जानकारी मुख्य[redacted] । पाटीदार-पटेल बन्धुओं में से राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त नरपुंगवों में से कुछ प्रमुख नाम जो ज्ञात हो सके नीचे दिये गये हैं :-

1. श्री विट्ठलभाई झवेरभाई पटेल, विश्वप्रसिद्ध संविधानविद एवं प्रेसीडेन्ट केन्द्रीय धारा सभा दिल्ली,
2. लौहपुरुष भारतरत्न सरदार बल्लभभाई पटेल, स्वतंत्र भारत के प्रथम उप-प्रधानमंत्री तथा देशी रियासतों के भारत में विलय के कर्णधार,
3. श्री एच. एम. पटेल, आई० सी० यस०, पूर्व वित्तमंत्री भारत सरकार, पूर्व गवर्नर रिज़र्व बैंक आफ इंडिया,
4. श्री चिमनभाई पटेल, पूर्व मुख्य मंत्री गुजरात राज्य,
5. डा० आई० सी० पटेल, पूर्व गवर्नर रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, प्रेसीडेन्ट लंदन स्कूल ऑफ इकानोमिक्स,
6. श्री रजनी पटेल, विख्यात धाराशास्त्री, समाज सेवी बम्बई,
7. डा० ठाकुरभाई पटेल, विख्यात चिकित्सक, महापौर बड़ोदरा, गुजरात,
8. डा० शान्ति पटेल, भूतपूर्व नगरपति बम्बई (महाराष्ट्र), ट्रेड यूनियन नेता,
9. बाबूभाई जसभाई पटेल, प्रधान सरदार सरोवर परियोजना, गुजरात, वरिष्ठ राजनेता,

10. विख्यात साहित्यकार श्री पन्नालाल पटेल भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित, गुजराती साहित्यकार,
11. श्री भाईलाल पटेल, संस्थापक वल्लभ, विद्यानगर परिसर करमसद, चरोतार, गुजरात,
12. श्री ईश्वर पेटलीकर, विख्यात वार्ताकार,
13. श्री ब्रिजेश पटेल, विख्यात क्रिकेट खिलाड़ी,
14. श्री जशु पटेल, प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी,
15. श्री पिताम्बर पटेल, लेखक और फिल्म पत्रकार,
16. श्री रंगीला जयन्ती पटेल, प्रसिद्ध कलाकार,
17. श्री प्रागलाल पटेल, प्रसिद्ध एवं पारितोषिक प्राप्त फोटोग्राफर,
18. श्री मफतलाल गगलभाई कपड़ा उद्योग के जनक,
19. श्री अरविंद मफतलाल-पौत्र श्री मफतलाल गगलभाई, मफतलाल उद्योग के वर्तमान चेयरमैन,
20. श्री मोहनभाई ईश्वरभाई पटेल, हैवी इंजीनियरिंग उद्योग के मालिक,
21. श्री करसनभाई पटेल-'निरमा' साबुन उद्योग के संस्थापक, प्रसिद्ध उद्योगपति,
22. मेसर्स मोहनलाल हरगोविन्द (म.प्र.) शेर छाप और अन्य ब्रान्डों की बीड़ी की प्रख्यात उद्योगफर्म
23. रायबहादुर शेठ बहेचरदास अम्बाईदास लश्करी, विख्यात समाजसेवी एवं उद्योगपति
24. श्री रतनसीभाई खीमजी भाई पटेल, समाज सुधारक, कच्छ (बीराणी-मोटा),
25. श्री महादेवभाई देसाई, महात्मा गांधी के प्रसिद्ध निजी सचिव,
26. पाटडी के स्व० दरबार श्री जोरावरसिंह जी कुबेरसिंह जी,
27. श्री पुरुषोत्तमदास लल्लुभाई पारीख (वीरमगाम)-संपादक 'कडवा विजय',
28. श्री चंदुलाल मणीलाल देसाई (गुजरात)-अध्यक्ष, कडवा पाटीदार परिषद-दशम महोत्सव,
29. आशा पारीख, प्रसिद्ध फिल्म कलाकार,

[redacted] (ग्राम बीराणा, मोटा नखत्राणा, गुजरात),

31. नामदार दरबार श्री सूर्यमलजी साहब (पाटडी कुलमी संस्थान, गुजरात),
32. त्यागमूर्ति दरबार गोपालदास अंबाईदास देसाई-तालुकेदार रायसांकणी, इनामदार जाबला, मुकाम बसो (गुजरात),
33. श्री डाह्याभाई वल्लभभाई पटेल, सांसद (सरदार पटेल के पुत्र),
34. कुमारी मणिबहन पटेल,सांसद (सरदार पटेल की पुत्री),
35. श्रीमती रुड़कीबाई- "खेडूतना बार मास" प्रसिद्ध कवियत्री,
36. श्री आर. के. अमीन सांसद-पूर्व अध्यक्ष अ० भा० कू० क्ष० महासभा, दिल्ली अधिवेशन, सन् 1978,
37. श्री विट्ठलभाई एम० पटेल, सांसद (राज्यसभा) गुजरात, वरिष्ठ पत्रकार,
38. श्री चन्द्रेश पटेल सांसद (जामनगर-गुजरात),
39. डा० ए० के० पटेल, सांसद (मेहसाना-गुजरात),
40. श्री शिवलाल वेकारिया, सांसद (राजकोट-गुजरात),
41. श्रीमती भावना चिखालिया, सांसद (जूनागढ़-गुजरात),
42. श्री दिलीप भाई संघानी, सांसद (अमरेली-गुजरात),
43. श्री हरीभाई पटेल, सांसद (पोरबन्दर गुजरात),
44. श्री हरीलाल एम० पटेल, सांसद (कच्छ गुजरात),
45. श्री जयन्ती लाल पटेल, सम्पादक 'उमिया दर्शन', अहमदाबाद,
46. श्रीमती इन्दुमती त्रिभुवन पटेल, पूर्व पार्षद, बम्बई नगर निगम तथा, अ० भा० कू० क्ष० महासभा के 35वें (बम्बई) अधिवेशन की, महिला सम्मेलन की अध्यक्षा,

47. उद्योगपति श्री बी० बी० पटेल, चेयरमैन अहमद नगर फोर्जिंग लिमिटेड, अहमदाबाद,
48. उद्योगपति श्री एन० पी० पटेल, पाटन स्थित अण्डीतेल व्यवसाय की प्रसिद्ध फर्म एन० के० इंडस्ट्रीज के चेयरमैन,
49. श्री दिनेश बी० पटेल, फिल्म निर्माता-हिन्दी फिल्म, "बहारों की बाहों में",
50. श्री रामेश्वर पटेल, सांसद, खंडवा (मध्य प्रदेश),
51. श्री श्रवणकुमार पटेल, सांसद, जबलपुर (म. प्र.), प्रसिद्धबीड़ी उद्योग फर्म मेसर्स मोहनलाल हरगोविन्द से सम्बन्धित
52. स्व० श्री खंडू भाई देसाई, राजनेता एवं प्रसिद्ध कर्मकार आन्दोलन के संचालक,
53. श्री त्रिभुवनदास के० पटेल, 'रैमन मैगसेसे' पुरस्कार से सम्मानित, विश्व प्रसिद्ध 'अमूल दुग्ध सहकारिता योजना' के जनक,
54. श्री जयकृष्णदास हरिवल्लभदास, प्रसिद्ध उद्योगपति बम्बई,
55. श्री धर्मेन्द्रसिंह देसाई तकतावाला, उद्योगपति,
56. श्री सेठ केशवभाई विट्ठलभाई पटेल (केशुभाई), उद्योगपति और दानवीर,
57. श्री भेरूभाई पाटीदार, अध्यक्ष-मध्य प्रदेश विधान सभा,
58. श्री कवि (करसन विश्राम) पटेल, दिल्लीवाला कच्छ (गुजरात), (कादीया-मोटावाला) कवि,
59. श्री अरुणभाई पटेल, इंग्लैण्ड के उद्योगपति, (सन् 1988 में इंग्लैण्ड के सर्वाधिक 200 सम्पन्न व्यक्तियों में उनका स्थान 88वां था) आज उनकी सम्पत्ति 1000 करोड़ रुपयों के मूल्य की है,
60. डा० मंगुभाई रामदास पटेल, रीडर, इतिहास विभाग, गुजरात यूनीवर्सिटी, अहमदाबाद,
61. श्री जयराम भाई ए० पटेल, अध्यक्ष, गुजरात खनिज विकास निगम, अहमदाबाद प्रसिद्ध इतिहासकार,
62. श्री रामेश्वर पाटीदार पूर्व सम्पादक "पाटीदार लोक", नीमच (बघाना), म० प्र०,
63. डा० सी० डी पटेल, उपमुख्यमंत्री, गुजरात सरकार,
64. श्री भीखूभाई पटेल, मानद मंत्री, 'कडवा पाटीदार ट्रस्ट', रिलीफ रोड़ अहमदाबाद,
65. श्री भाईलाल पटेल, प्रेसीडेन्ट, शिकागो-स्थित संस्था IAFT (Indian Aboard For Truth) निवास : 8410, W Bryan Maur Avenue, Suite 300, Chicago, Ilinois, U.S.A.,
66. श्री श्यामजी भाई पटेल, श्री करमसी पटेल, तंत्री-"पाटीदार सन्देश" मासिक पत्रिका, अहमदाबाद,
67. श्री रामूभाई पटेल, तंत्री-"कडवा पाटीदार परिवार", मासिक पत्रिका, अहमदाबाद,
68. डा० मफतलाल पटेल, तंत्री-"धरती" मासिक पत्रिका, अहमदाबाद,
69. श्री जमुनादास के० खिरसरिया, तंत्री-"उमिया परिवार", मासिक पत्रिका, अहमदाबाद,
70. श्री सी० के० पटेल, तंत्री-"पाटीदार सौरभ", मासिक पत्रिका, अहमदाबाद,
71. श्री मणीलाल पूंजा पटेल, प्रमुख-अखिल भारतीय कच्छ कड़वा पाटीदार समाज, बम्बई,
72. डा० बी० एच० पटेल, उपप्रमुख-अ० भा० कच्छ कडवा पाटीदार समाज, भुज (कच्छ)
73. श्रीमती भानुबहन बी० पटेल, अध्यक्षा, अ० भा० कच्छ कडवा पाटीदार महिला समाज भुज (कच्छ),
74. श्री वीरेन्द्र भाई एस० पटेल, प्रथम बैरिस्टर, कच्छ कडवा पाटीदार समाज,
75. श्री लक्ष्मीबेन आर० पटेल, कच्छ कडवा पाटीदार समाज की प्रथम महिला मेट्रीकुलेट (मद्रास से) होनसूर (तमिलनाडु),
76. श्री बच्चूभाई एन० पटेल, टिम्बर मर्चेंट, पाटीदार समाजसेवी, जबलपुर (म० प्र०),
77. श्रीमती बकुल पटेल, चेयरपर्सन, महाराष्ट्र स्टेट फाइनेंस कारपोरेशन, बम्बई,
78. श्री ईश्वर ह० पटेल, सलाहकार, 'धरती पत्रिका', अहमदाबाद,
79. श्री हरेश पटेल, सम्पादक, 'उमिया दर्शन', अहमदाबाद,
80. श्री श्यामजी भई पटेल,आई० ए० एस०, डिप्टी सेक्रेटरी, रेवेन्यु विभाग, गुजरात सरकार,
81. श्री खेमजी भाई नागजी भाई पटेल (मास्टर जी), जे० पी० मतथल, कच्छ, सौराष्ट्र,

82. श्री प्रेमजी भाई पूंजा, पूर्व अध्यक्ष, कडवा पाटीदार समाज, कच्छ, गुजरात,
83. श्री नारायण भाई रामजी पटेल, कच्छ (भुज), डाइरेक्टर, सहकारी विभाग, गुजरात सरकार,
84. श्री शिववास भाई गोविन्द भाई पटेल, पूर्व जिला पंचायत प्रमुख, भुज (कच्छ)
85. श्री वालजी भाई नारायण, महामंत्री, अ० भा० कच्छ कडवा पाटीदार समाज, नखत्राणा,
86. डा० कुमारी अमृता पटेल, मैंनिजिंग डाइरेक्टर, नेशनल डेयरी डवलेपमेन्ट बोर्ड, (सुपुत्री स्व. श्री एच. एम. पटेल, I.C.S., पूर्व वित्तमंत्री, भारत सरकार)
87. [redacted] पूर्व अध्यक्ष, कच्छ कडवा पाटीदार युवक संघ, उपाध्यक्ष अ० भा० कच्छ कडवा, पाटीदार समाज, कलकत्तावासी,
88. [redacted] उद्योगपति, टिम्बर व्यवसायी, समाजसेवी एवं दानी, बम्बई,
89. [redacted] उद्योगपति स्वास्तिक एस्बेस्टेस प्रोडेक्ट्स प्रा० लि० पूना (महाराष्ट्र),
90. श्री लवूवाभाई विश्राम पटेल (उर्फ एल-बी), प्रसिद्ध बिल्डर्स, बम्बई, समाजसेवी, दानी,
91. श्री विष्णुभाई पटेल, चेयरमैन क्लैरिसिस आर्गेनिक्स लि, बड़ौदा, गुजरात तथा प्रेसीडेंट फेडिरेशन ऑफ गुजरात मिल्स एंड इंडस्ट्रीज,
92. श्री सुनील भाई विष्णुभाई पटेल, मैनेजिंग डाइरेक्टर, क्लैरिसिस आर्गेनिक्स लि० बड़ौदा,
93. डा. सी. बी. पटेल, डाइरेक्टर, गुजरात स्टेट फर्टिलाइजर्स क. लि. तथा पूर्व चेयरमैन बी. एस. आर. बी., बड़ौदा,

कवि पटेल 'दिल्लीवाला'



भगवानदास मित्त पटेल एंड कम्पनी,
शाखा : 4/3 डब्लू. एच. एस.
फर्नीचर ब्लाक, कीर्तिनगर,
नई दिल्ली - 110015
दूरभाष : 537936
31 मार्च 1994

आदरणीय डा. जयसवार साहब,

आपके द्वारा लिखा गया **'कुरमी जाति, अतीत से आज तक, एक विहंगम दृष्टि'** इतिहास मुझे मिला। पढ़कर बहुत खुशी हुई। आपने भारत भर में रह रहे कुरमी (पटेल, पाटीदार) जाति का उल्लेख उसमें बहुत अच्छी तरह किया गया है। आपके इतिहास को पढ़कर मालूम हुआ कि हमारे कुरमी भाई भारत भर में किन परिस्थितियों में हैं और राज्यवार उनकी दशा क्या है? मुझे कुरमियों (पटेलों) का इतिहास जानने का बहुत शौक है। डा. भंगुराम रामदास पटेल, रीडर इतिहास विभाग, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद की अपनी पुस्तक **'कुलमी क्षत्रिय पाटीदार का इतिहास'** में मुझे मध्य प्रदेश और गुजरात के पाटीदार भाइयों की जानकारी मिली, मगर आपके द्वारा लिखा यह इतिहास पढ़कर पूरे भारत भर में रह रहे कुरमी समाज की जानकारी मिली।

आपसे मिलने की मेरी बड़ी इच्छा है। मैं दिल्ली में तीस साल से रह रहा हूँ। मैं इतिहास और लोक-सेवा में बहुत रुचि रहता है। मुझे कविता, लेख, संस्मरण वगैरह लिखने का बहुत शौक है। मेरी कविता, लेख वगैरह हमारी गुजराती पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। यह पत्रिकाएं अहमदाबाद. से प्रकाशित होती है। मैं इस पत्र के साथ गुजराती में अपना संक्षिप्त परिचय और अपना फोटो भेज रहा हूँ। बाकी बातें आपसे मुलाकात होने पर करूँगा।

मैं मध्यप्रदेश और गुजरात के पाटीदार समाज से सम्बन्ध रखता हूँ। संस्था द्वारा आयोजित मीटिंग में मेरा आना-जाना रहता है और हमारी **कुलदेवी उमा माताजी** का प्रतिष्ठान गुजरात में ऊँझा नामक नगर में स्थित है। मेरा अपना समाज (पाटीदार-पटेल) भी दिल्ली में बसा हुआ है, मैं उसका दस साल तक मंत्री रह चुका हूँ और मेरा कई अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ सम्बन्ध है। बाकी परिचय मुलाकात के वक्त होगा। अहमदाबाद में एक वक्त **"कुरमी के इतिहास"** के बाबत आपके नाम का जिक्र हुआ था।

हमारी एक पत्रिका अहमदाबाद से निकलती है नाम **"पाटीदार संदेश"** उसका मैं व्यवस्थापक सदस्य हूँ और उत्तरी अंचल (नार्थ जोन) का मुझे चेयरमैन बनाया गया है। और आपसे पत्रोत्तर की अपेक्षा रखता हूँ। आपके विचारों से सहमत हूँ।

सुझाव

1 भारत भर में, तथा विदेश में भी, कुरमी समाज को **'पटेल'** के नाम (आस्पद) से चलाया जाय जैसा कि गुजरात और मध्य प्रदेश में पाटीदार बन्धु करते हैं, ताकि हम लोग अपनी एक पहचान अलग से बना सकें और हमारा संगठन मजबूत हो सके।

2 भारत में **प्रथम शताब्दी अधिवेशन** एक ही छत्रछाया के नीचे हो जिसमें देशभर के कुरमी, कुनबी,

 कण्बी, कुलमी, पाटीदार-पटेल आदि सभी सम्मिलित होवें ।

नमस्कार

आपका बन्धु

कवि पटेल 'दिल्लीवाला'

श्री कवि पटेल 'दिल्लीवाला' ने कडवा पाटीदारों की 52 शाखा, पेटाशाखा तथा गोत्र आदि को बड़े खोजपूर्ण तरीके से पता लगाकर उन्हें सूचीबद्ध किया है । गुजराती पाटीदार बन्धुओं के सुविधा के लिये उसे मूल गुजराती भाषा में यहां नीचे दिया जा रहा है :-

श्री कवि पटेल दिल्लीवाला के अनुसार

गुजरातमां वस्ता बावन शाखना कडवा पाटीदारनी शाखो असल स्थानो पंजाब अने उत्तर हिन्दमांना गामो उपर पड़ी होय तेवु जणाई आवे छे। जे मूण वतन ते स्थल नुं हेकाणु पण नीचे दर्शाववामां आवेल छे । साथे मूल शाखनी पेटा शाखा ने गोत्र पा आपेल छे, जे गोत्र आगण जणावेल लेख मुजब जेबावन रुषीना नामों परथी आवे छे:-

	शाख	मूलवतन	स्थल नू ठेकाणु	पेटा शाख	गोत्र
1	रुशात	रोहतगढ	जेलम नदी के किनीरे	दडगा	कार्तिक ऋषि
2	मांडलोत	मांडलेह	मेवाड नी उत्तरे	लींबाणी, आणदाणी	भृगुऋषि
3	मात	भाम	होशियारपुर पासे	रामाजीयाणी	यमदंगजी
4	डाकोत्तर	-	-	सेंगाणी	अगस्त्यऋषि
5	मुंजात	मुंज	गुजरानवाला पासे	वेलाणी	असित ऋषि
6	गामी	गम्बार	माऊंट गोमरी पासे	रामाणी, खाणी सेंगाणी राजाणी, वालाणी, धनाणी दानाणी, नाथाणी, रुमाणी भोजाणी, मेपाणी, लालजीवाणी डोसाणी, सुराणी, छमांणि सैयाणी, कमाणी, तेजाणि पदमाणी	वशिष्ठ ऋषि
7	विजायत	वजीरपूरा	आग्राप्रदेश पासे	कच्छमां नथी	अंगीरस ऋषि
8	गोढी	गोढ	शरीफपुरा पासे	माकाणी	अर्पमा-सर्पमा
9	मोखात	......	....	नाकराणी, पांचाणी, सोमजीयाणि मेघाणी, मोनाणी, जादवाणी	भारद्वाज ऋषि
10	फोक	फूक	लारखाना पासे	कच्छमा नथी	दिवक्ष ऋषि
11	अमृतीया	अमृतसर	पंजाब मां	रंगाणी	शौनक
12	टीलाना	टियालु	शाहबाग पासे	मावणी, सवाणी, लालाणी मेपाणी, बंधुकीया	सौभारी
13	मुंगला	मंगलपुरा	लाहोर पासे	कच्छमां नथी	फुवार्स ऋषि

14 भुत	भुतना	लुधियाणा पासे	कच्छ मां नथी	पुलह ऋषि
15 कडवातर	--	--	मीकाणी	रोमेश ऋषि
16 पद्दाण	पान	गोडपाबल रामपुरा पासे	डाकारणी	दधिमी ऋषि
17 भूवा	भोवा	लाहोर पासे	सुराणी, भगत, पदमाणी भोजाणी, नायाणी सामाणी पालाणी, सेंगाणी, पेथाणी मानाणी, रतनाणी, खेताणी	कश्यप ऋषि
18 चेचांट	-	-	कच्छमा नथी	वेरशीरा ऋषि
19 जुवातर	जुवा	इटावा पासे	जबुवाणी, वागडीया	त्वष्ठा ऋषि
20 सोरठा	सानिया	युर्नीयल पासे	कच्छमां नथी	पतंजलि ऋषि
21 लारी	लार	गोरखपुर	पाडीया	उतंग ऋषि
22 लोकाडा	लाखोतर	लाहोर पासे	कच्छमा नथी	श्रतिदेव ऋषि
23 गुगडा	गोघा	लावलपुर पासे	गोरीणी, हलपाणी, डोसाणी मानकुवाइ, रावराणी	यवख ऋषि
24 साकरीया	-	-	मैयात, वासाणी, मादाणी	श्रृंगी ऋषि
25 मजीडीया	मजीदमंडी	अमृतसर पासे	खाणी गोगारी	मार्कंडेय ऋषि
26 मनवर	-	-	सांखला, प्रेमजीयाणी	देवलऋषि
27 कनवर	कातना	मथुरा पासे	कच्छमा नथी	आसुरी ऋषि
28 दाणी	दाणावल	जलंधर पासे	भावाणी	शांडिल्य ऋषि
29 चोंडीया	-	-	कच्छ मां नथी	गालव ऋषि
30 चपला	चपल	महुवा पासे	कच्छ मां नथी	आम्यान्तरम् ऋषि
31 होती	होती	पेशावर पासे	चौधरी	वाल्मिकि ऋषि
32 हराणीया	हर	गेदनीपुर पासे	कच्छ मां नथी	बोध्यऋषि
33 चंपलाया	-	-	पजवाणी	मारतंड ऋषि
34 शेदीया	-	-	भीमाणी	पुलत्स्य ऋषि
35 लहुओट	लाहोर	पंजाब मां	भगत	रुचिक ऋषि
36 कलारी	काल	जेलम पासे	कच्छमां नथी	हिरण्यलाभ ऋषि
37 कालपुछा	कालसाया	लुधियाणा पासे	कच्छमां नथी	कौशल्य ऋषि
38 वगदा	-	-	कच्छमां नथी	यागवल्क्य ऋषि
39 गोदाल	गोन्दा	अलीगढ़ पासे	चौहाण	कौशिक ऋषि
40 शीखी	-	-	रुडाणी, पांचाणी, डायाणी मेद्याणी, सवजीयाणी वस्ताणी	च्यवन ऋषि
41 [अ] भडका	मक्का	गोपाल गंज पासे	पारसीया	कपिल ऋषि
[ब] भडका		-	कालरीया	पाराशर ऋषि
42 फुवारा	-	-	कच्छ मां नथी	कृपाचार्य ऋषि
43 ढानटोउवा	दानापुर	गोंडा बलरामपुरा पासे	कच्छ मां नथी	करग्य ऋषि
44 ढांकणीया	-	-	कच्छ मां नथी	जातुर्ण्य ऋषि

45 करणावत	करंडा	घासीपूरा पासे	उकाणी, भोजाणी, खीमाणी लाखाणी, नरसींगाणी	मैत्रीय ऋषि
46 घोलु	घोल	मुजफ्फरपुर पासे	खेताणी, नाथाणी	पीपल्य ऋषि
47 दिवाणी	-	-	कानजीयाणी, कानाणी	गौतम ऋषि
48 ढोकाण	ढेबाल	फरीदपुरा पासे	कच्छ मां नथी	आदित्य ऋषि
49 पोकार	-	-	बाथाणी, नरसींगाणी सेंगाणी, पेथाणी, केसराणी रतनाणी, लखाणी, सुराणी दानाणी, भीमाणी, उदेडाइ उकेडाई, लधाणी, धनाणी सागाणी, सामाणी, अजोरीया पडवाली जालवाला	
50 चोपडा	-	-	-	कृतु ऋषि
51 कोदाल	-	-	कच्छ मां नथी	मीतृदेव ऋषि
52 मांडपीया	मांडी	पंजाब मां	पारेख, छाभैया, केसराणी	अंगीरा ऋषि

ब्रिटेन में सर्वाधिक धनाढ्य प्रथम 200 व्यक्तियों में श्री अरुणभाई पटेल का 88 वाँ स्थान

यद्यपि यह बात 6 वर्ष पुरानी है, जबकि गुजरात में जन्में **श्री अरुणभाई पटेल** ने मार्च 1988 में **ब्रिटेन** में एक अंग्रेजी पत्रिका द्वारा सर्वाधिक धनाढ्य प्रथम 200 पुरुषों और महिलाओं की सूची में 88 वाँ स्थान प्राप्त किया। **महारानी एलेज़ाबेथ (द्वितीय)** उस सूची में प्रथम स्थान पर थीं । वास्तव में श्री अरुणभाई पटेल की लगभग 1000 करोड़ रुपये मूल्य की सम्पत्ति आंकी गई जिसमें धनाढ्यों की सूची में उनका स्थान 88वां आंका गया । मिस्टर पटेल ने सन् 1987 में हैनशन ट्रस्ट (Hanson Trust) की एक घाटे में चल रही **282 सॉफ फिनले** नामक नई एजेन्सी का लगभग 50 करोड़ रुपयों में अधिग्रहण किया और अपने तिज़ारती तजुर्बे से उसे काफ़ी नफ़ा कमाने वाला व्यवसाय सिद्ध कर दिखाया । इसी प्रकार अमेरिका में मोटल्स का ज्यादातर व्यापार गुजरात से गये पटेलों के हाथों में है । उगान्डा के डिक्टेटर **आदि अमीन** ने वहां बसे भारतीय मूल के, विशेषकर पटेल समाज के लोगों को जो उस समय सर्वाधिक सम्पन्न व्यापारी थे चन्द घटों में मात्र दस पौंड की कुल राशि लेकर सारे सामान को वहीं तज़कर मुल्क छोड़ने का तानाशाही हुक्म जारी किया कि अवधि बीतने पर जो भारतीय उगान्डा में देखा गया वह जेल की काल कोठरी में डाल दिया जायेगा। **श्री उमिया मां** के ये सच्चे, वीर पटेल स्त्री-पुरुष उसी अवधि में उगान्डा छोड़ ब्रटेन चले गये, क्योंकि उनके पास वहां की दूसरी नागरिकता थी । वहां भी उन शारणार्थियों का ठीक से स्वागत न हुआ । पर मजबूरन उन्हें लीस्टर (Leister) नामक स्थान पर बसा दिया गया । चंद वर्षों में वह इलाका इतना सम्पन्न हो गया कि इंग्लैण्ड को आज उनकी परिश्रमशीलता पर नाज है ।

राजधानी दिल्ली में कच्छी और अन्य गुजराती पाटीदार-पटेल बन्धुजन

दिल्ली में गुजरात प्रदेश, के विशेषकर कच्छ के इलाके के सैकड़ों पाटीदार-पटेल परिवार बास करते हैं । उनमें ज्यादातर व्यवसायी है । कुछ केन्द्रीय सरकार के उच्च्व अधिकारीजन पाटीदार-पटेल जाति के हैं । जो सरकारी आवासीय खण्डों में रहते हैं । जो स्वजातीय सांसद हैं वे सरकारी नार्थ एवेन्यु अथवा साऊथ एवेन्यु या आस-पास के बंगलों या बहुमंजिली इमारतों में रहते हैं । गुजरात से आये जो कुछ परिवार दिल्ली में बसे हुये हैं उनमें से कुछ कई दशकों

से लकड़ी के सुन्दर फर्नीचर का थोक व्यवसाय करते चले आ रहे हैं और उनकी बाज़ार में बहुत अच्छी साख़ स्थापित हो चुकी है । ऐसी ही एक फर्म का नाम है, **मेसर्स भगवान सॉ मिल्स पटेल एंड कम्पनी;** जिनका **मुख्य कार्यालय** 3067, **देशबन्धु गुप्ता रोड़, पहाड़गंज, नई दिल्ली** 110055 पर है और **शाखा कार्यालय** का पता है 4-3 **डब्लू० एच० एस० कीर्तिनगर, फर्नीचर ब्लाक, नई दिल्ली** - 110051 यह फर्म हर प्रकार के सागवान (टीक) लकड़ी के फर्नीचर जैसे सोफ़ा सेट, डाइनिंग टेबिल, डबल बेड, विभिन्न प्रकार की मेजों, कुर्सियों और आफिस फर्नीचर का थोक व्यवसाय करते हैं।

उपर्युक्त फर्म के एक मालिक श्री करसन विश्राम पटेल हैं । इनका लघु नाम श्री क० वि० पटेल भी हुआ जिसके कारण यह लघु नाम **"श्री कवि पटेल"** से अधिक प्रसिद्ध है । क्योंकि ये गुजराती भाषा में कविता करते हैं और **'दिल्लीवाला'** इनका तखल्लुस है । अतः गुजराती साहित्य जगत में ये श्री कवि पटेल दिल्लीवाला नाम से जाने-पहचाने जाते हैं ।

इन्हीं **कवि पटेल दिल्लीवाला** ने इस लेखक को अपने स्वजातीय कच्छी कणबियों के समाज के बारे में तथा स्थानीय पाटीदार-पटेलों के बारे में बहुत महत्वपूर्ण जानकारी दी । मेरे आग्रह पर उन्होंने गुजरात जाकर पाटीदार-पटेलों सम्बन्धी बहुत सुन्दर रंगीन चित्रों की पुस्तकें लाकर दीं, जिसमें कुछ चित्र साभार इस पुस्तक में प्रकाशित किये गये हैं। सन् 1976 में 25 से 29 नवम्बर तक **कडवा-कणबी कुलदेवी श्री उमिया माताजी** के मन्दिर-स्थापना के **"अठारहवीं शताब्दी महोत्सव" विशेषांक तथा** अनेक गुजराती स्वजातीय पत्रिकाओं की प्रतियां भी श्री कवि पटेल 'दिल्लीवाला' ने इस लेखक को दीं । बड़ा खेद है लेखक ठीक से गुजराती भाषा न समझने के कारण उपर्युक्त पुस्तकों, पत्रिकाओं का पूरा आनन्द नहीं उठा पाया और न उसका सही सारांश पाठकों के सूचनार्थ तथा लाभार्थ इस पुस्तक में दे पाया । पर गुजराती भाषा पढ़ने और उसका ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा हो रही है । जिससे मूलभाषा में उपलब्ध पाटीदारों-पटेलों सम्बंधित सारी प्रकाशित सामग्री को स्वयं पढ़कर उसका प्रचार-प्रसार हिन्दी भाषी कुरमी बंधुओं में किया जा सके ।

श्री कवि पटेल "दिल्लीवाला"

श्री **कवि (करसन विश्राम) पटेल** जी और उनके पूर्वज गुजरात के कच्छ प्रदेश में **कादिया (मोटा)** नामक स्थान के मूल निवासी थे । **कादिया (मोटा)** में **करसन विश्राम पटेल** का जन्म हुआ और वहीं प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। बहुत कम उम्र में आप अपने पिताजी, **श्री विश्राम शिवदास पटेल जी** के साथ रोटी-रोज़ी (व्यवसाय) की तलाश में **दिल्ली** आ गये और **पहाड़गंज क्षेत्र** में लकड़ी के फर्नीचर का व्यवसाय साझे में प्रारम्भ किया । साथ में घर पर पढ़कर सन् 1960 में एफ० एस० सी० (पंजाब मैट्रिक) की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली । मन में आशा संजोए बैठे कि एक दिन वकील बनूँगा, पर बन गये लकड़ी के फर्नीचर के थोक व्यवसायी । प्रारम्भ में लकड़ी वाला फर्नीचर, डनलप तथा क्वाइर के गद्दे और कुशन का व्यवसाय शुरू किया । फिर इस क्षेत्र के अन्यान्य सामानों को बनवाना-बेचना भी शुरू किया । आरा मशीन भी थी । और मेहनत एवं लक्ष्मी की कृपा से ये व्यापार में कामयाब होते गये।

श्री करसन विश्राम पटेल के पिताजी, श्री विश्राम शिवदास पटेल जब से दिल्ली में आ बसे, वे गुजराती समाज के संगीत आयोजनों में तथा संगीत-गान स्पर्धाओं में भी भाग लेते थे । एक बार तो उन्होंने संगीत-स्पर्धा में सर्वप्रथम स्थान अर्जित किया । वे मुख्यतः गुजराती भजन गायन में पारंगत हैं । श्री करसन विश्राम पटेल को उनसे ही सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक कार्यों की प्रेरणा मिली और श्री कवि पटेल 'दिल्लीवाला' को इसी नाम से प्रसिद्धि मिली ।

श्री कवि पटेल का भावुक मन मानवीय सद्भावना, पीड़ा और वेदना के प्रति बड़ा समवेदनशील रहा है । उनकी कविताओं में ये सब उनके चारित्रिक गुण परिलक्षित होते हैं । समाज-सुधार के लिये कुरीतियों और रूढ़िवादिता को समूल नष्ट करने के लिये **श्री कविपटेल दिल्लीवाला** कभी कविता द्वारा आह्वान भी करते हैं और जब आवश्यक समझा तो वार्ता और कविता के माध्यम से निर्भीकतापूर्वक ताड़ना करने में भी नहीं चूकते । वे 13-14 वर्ष की अल्प आयु से सामाजिक कल्याण-कार्यों में हाथ बंटाने लग गये थे और अपने विचारों को स्पष्ट रूप से रखने में निष्णात हैं।

अपने वतन **कादिया (मोटा) कच्छ** से हज़ारों कि0 मी0 दूर दिल्ली में बैठकर वे दिल्ली की चकाचौंध में अपने

पैत्रिक स्थानीय परिवेश को नहीं भुला सके । साथ में पाटीदार-पटेल समाज का इतिहास, इनके महापुरुषों की जीवन-गाथा, रीतिरिवाज, परंपरायें और कुरीतियां तथा उनके निवारण के तौर-तरीके खोज निकालने और उस पर आचरण करने में भी उन्होंने बड़ी दिलचस्पी दिखाई है ।

श्री कविपटेल ने **साहित्य-सृजन** के क्षेत्र में 35 **कविताओं भजनों** आदि की रचना की । 7-8 भेंट-वार्तायें लिखी जोकि गुजराती भाषी पत्रिकाओं **'जागृति'**, **'आजाद कलम मां'** में समय-समय पर प्रकाशित होती रहीं और पाठकों ने उन्हें खूब सराहा भी है । इसके अतिरिक्त **'पाटीदार संदेश,'** **''पाटीदार सौरभ''** तथा गुजरात की कडवा पाटीदारों की जातीय पत्रिकाओं में भी श्री कवि पटेल 'दिल्लीवाला' की कविताएँ प्रकाशित होती रहती हैं । श्री कवि पटेल की साहित्यिक कृतियों को पढ़ने से लगता है कि 'दिल्लीवाला' तो वे हैं ही, साथ में भावुक दिल भी रखते हैं । कविता मानों श्री कवि पटेल के जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है ।

श्री कवि पटेल दिल्लीवाला अनेक वर्षों तक दिल्ली के **गुजराती समाज** (कच्छ कड़वा पाटीदार समाज) के महामंत्री रहे । गुजरात प्रदेश में कार्यरत कई पाटीदार संस्थाओं से आप सक्रिय रूप से जुड़े हुये हैं । और बैठकों और सामूहिक कार्यक्रमों में भाग लेने गुजरात जाते रहते हैं । अभी हाल में कच्छ गये थे, इस लेखक की पूर्व पुस्तिकाओं का स्वजातीयों में प्रचार-प्रसार किया । दिल्ली लौटने पर अपने एक पुत्र, **श्री नरसिंह करसन पटेल,** के साथ वे इस लेखक के बी-6/57 सफदरजंग एन्कलेब निवास पर पधारे थे । अनेक प्रकार की जानकारी दी, गुजराती भाषा में प्रकाशित पत्रिकाओं की प्रतियां दीं, जिसका उन्हें हार्दिक धन्यवाद तथा आभार प्रकट किया जा रहा है ।

कूर्मि क्षत्रिय समाज, दिल्ली के गत् 8 वर्षों से **अध्यक्ष** होने के नाते मैं अपने समाज की ओर से श्री कवि पटेल दिल्लीवाला का हार्दिक अभिनन्दन भी करता हूँ । और उन्हें उनके परिवार के सदस्यों को तथा अन्य सभी पाटीदार-पटेल दिल्ली में बसे बंधुओं को सादर आमंत्रित करता हूँ कि **वे कूर्मि क्षत्रिय समाज दिल्ली** से सक्रिय रूप से जुड़ें । इस प्रकार गुजरात के पाटीदार-पटेल बन्धुओं और हिन्दी भाषी कुरमियों को निकट लाने में, उनमें ऐक्य स्थापित करने में वे एक सेतु का काम कर सकेंगे । दिल्ली महानगरी स्वयं में एक मिनी भारत है और यहाँ बसे समाज में हिन्दी भाषी कुरमी, गुजराती पाटीदार-पटेल, मराठे, कुनबी, कुर्मा, कम्मा, कापू, रेड्डी, वक्कलिगर आदि सभी को संगठित कर एक बृहत कूर्मि समाज संरचना करनी है ।

पटेल-कुरमी में वैवाहिक संबंध का एक प्रेरणादायक उदाहरण

पाठकगणों को यह जानकर, आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि अर्ध-शतक वर्ष पूर्व **गुजरात के पटेल** तथा **उत्तर प्रदेश के कुरमी परिवारों** में **विवाह सम्बन्ध** दोनों पक्षों के समाज की स्वीकृति एवं आशीर्वाद के साथ हुये थे । गुजरात के **श्री गोवर्धन भाई पटेल** बनारस में आ बसे और साड़ी की थोक व्यापार की आढ़त खोली पर गुजरात से भी पारिवारिक संबंध रखा । उनका विवाह बाढ़ (बिहार) के बाबू अमरनाथ सिन्हा, जमींदार और रईस की भान्जी उत्तर-प्रदेश के जनपद गोरखपुर के भीटी नामक ग्राम में **जयसवार कुरमी परिवार** में जन्मी कुमारी अनुसुय्या देवी से दोनों पक्षों की सहमति से विधिवत् हुआ था । कुछ वर्षों बाद **श्री गोवर्धन भाई पटेल** ने अपने अनुज का विवाह अपनी साली, कुमारी सावित्री देवी से करा दिया । यह दोनों युगल जोड़ी बड़ी सुखी रहीं, व्यापार भी अच्छा चला । **श्री गोवर्धन भाई पटेल एवं श्रीमती अनुसुय्या देवी** से कोई सन्तान न हुई पर उन्होंने अपने **अनुज** और **श्रीमती सावित्री देवी से** उत्पन्न पुत्र, **श्री रमेश पटेल** को पुत्रवत पाला-पोसा और व्यापार में लगाया । श्री गोवर्धन भाई पटेल वृद्ध होने पर बनारस में साड़ियों की आढ़त बंद कर सपरिवार अहमदाबाद गुजरात चले गये और वहां बाद में उनका निधन हो गया ।

उनके भतीजे **श्री रमेश पटेल** अहमदाबाद में बड़े सफल व्यापारी हैं । उनकी फर्म का नाम है **मेसर्स पटेल रतीलाल बहेचर दास** और उनका आवासीय पता है सारंगपुर दौलत खाना, कागड़ा शेरी, अहमदाबाद (गुजरात) । यह परिवार कलकत्ता के हाल में ब्रह्मलीन हुये, बहुचर्चित **श्री बालक ब्रह्मचारी महाराज** का अनन्य भक्त है । उनके दर्शनार्थ यह परिवार अहमदाबाद से कलकत्ता लगभग हर वर्ष वायुयान से आता था और इस लेखक के कलकत्ता स्थित ससुराल में उनके रिश्तेदार होने

के कारण ठहरा करता था। वास्तव में **श्रीमती अनुसुय्या पटेल** और **श्रीमती सावित्री पटेल** इस लेखक की पत्नी की मौसी हैं।

यह उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि जब 50-60 वर्ष पूर्व गुजरात के पटेल और उत्तर भारत के कुरमी आपस में सफल विवाह कर सकते थे तो अब क्यों नहीं ?

श्रम करने में शर्म नहीं, मेहनत, प्रमाणिकता और साहस

डा० मंगुभाई रामदास पटेल के अनुसार - "पाटीदार जाति अपनी महत्ता के लिये विश्व भर में विख्यात है, इस यथार्थ को कोई भी असत्य अथवा अतिशयोक्ति सिद्ध नहीं कर सकता। हम कुलमी-पाटीदारों के पूर्वज अपने भुजबल से **'हलपति'-'भूपति' तथा कुशल कृषक (खेडूत)** होकर स्वाभिमान, आत्मगौरव और निज़ी व्यक्तित्व से अपनी गति-प्रगति में वृद्धि करते गए। हमारे कई पूर्वज अपनी बल-बुद्धि के कारण विभिन्न रजवाड़ों, राज्यों और ब्रिटिश साम्राज्य में विशिष्ट राजपद पर आसीन किये गये और अपने अद्वितीय तथा प्रशंसनीय कार्यों के लिये पुरस्कृत किये गये अनेक प्रकार के 'खिताबों' से अलंकृत किये गए, जैसे कि **'अमीन', 'देसाई', 'दीवान'**, आदि। ब्रिटिश-शासन काल में भी ऐसे ही 'खिताब' प्राप्त किये जैसे **'सर', 'रायबहादुर', 'रावबहादुर'** आदि।

सद्गुण सच्चे पाटीदार की पहचान है। **पाटीदार श्रेष्ठ कृषक (खेडूत) रहा है।** उसने कृषि क्षेत्र में सुधार किये। **हरित क्रान्ति के साथ-साथ श्वेत क्रान्ति (दुग्ध उत्पादन)** में विशिष्ट उन्नति की। **श्री त्रिभुवनदास के० पटेल** ने विश्व प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक **डा० वी० कोरियन** के साथ लगभग 40 वर्ष कार्यकर **"अमूल दुग्ध सहकारिता परियोजना"** को आनन्द (गुजरात) में सफल कर दिखाया, जिसके लिये ये दोनों महापुरुष **रैमन मैगसेसे** (Ramon Magaysay) पुरस्कार से सम्मानित किये गये। इसी वर्ष श्री त्रिभुवनदास पटेल का लम्बी आयु में आनन्द (गुजरात) में **'अमूल परिसर'** में देहावसान हो गया है। इस शताब्दी के मध्य से पाटीदार लोगों का कृषि से हटकर ऐसे विभिन्न व्यापारों की ओर ध्यान गया जिनकी वे उपज करते थे, जैसे तम्बाकू कपास, मूंगफली, अण्डी (अरण्डी), दूध से बनने वाली जीवनोपयोगी चीजों का बड़े स्तर पर उत्पादन, बीड़ी उद्योग, मूंगफली तथा अण्डी का तेल, दूध से पाउडर, घी मक्खन आदि। इसके अतिरिक्त कपड़ा उद्योग **(मफतलाल)**, साबुन उद्योग **(निरमा वाले)** अण्डी (अरण्डी) का तेल उद्योग **(मेसर्स एन० पी० पटेल)**, अमूल दूध उद्योग में अग्रणी पाटीदार उद्यमी हैं। उनके आर्थिक और सामाजिक स्तर में आश्चर्यचकित कर देने वाली उन्नति हुई है। हां पाटीदारों को **राजकीय संगठन** एवं सक्रिय राजनीति की दिशा में काफी कुछ करना है।' विदेशों में बहुत बड़ी संख्या में पटेल बन्धु अनेक देशों में बसे हुये हैं। सन् 1988 में **ब्रिटेन में सर्वाधिक सम्पन्न नागरिकों** की सूची बनायी गई, जिसमें प्रथम स्थान पर नाम था **क्वींस एलिजाबेथ द्वितीय** का और 88वाँ स्थान पर नाम था **श्री अरुण भाई पटेल** का। **उस समय उनकी निजी सम्पत्ति** वहां की पौण्ड मुद्रा में **1,000 करोड़ रुपयों** के बराबर आंकी गई।

सन् 1990 में **इस लेखक की अमेरिका में बसे श्री भाईलाल पटेल** से भेंट हुई। वे शिकागों शहर में रहते हैं व्यापारिक तथा निजी बीमा सम्बन्धी मसलों के **प्रसिद्ध** परामर्शदाता है। वैसे वे सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में **अमेरिका में IAFT (Indians Abroad For Truth) संस्था के प्रेसीडेंट हैं। पूर्व प्रधान मंत्री श्री मोरारजी भाई देसाई** पर अमेरिकन पत्रकार सेम्योर हर्ष (Seymour Hersh) ने यह चार्ज लगाया कि **"वे अमेरिकन खुफिया एजेन्सी (CIA) के एजेन्ट रहे हैं"**। अमेरिकन न्यायालय में श्री देसाई को अपने मानहानि के दावे वाले केस में इन्हीं **श्री भाईलाल पटेल** ने हर प्रकार से सहयोग प्रदान किया था। **'निरमा'** साबुन के **संस्थापक श्री करसन भाई पटेल** ने बहुत कम पूँजी लगाकर यह व्यापार स्वयं प्रारम्भ किया था। सब जानते हैं कि **निरमा पाउडर** ने कितनी जल्दी बड़ी साबुन कम्पनियों के हाथ से काफ़ी मार्केट छीन लिया। आज उनकी **निरमा लिमिटेड** कम्पनी ने देश में अपनी बड़ी ऊँची साख और शोहरत स्थापित कर ली है। **सन् 1993-94 में निरमा कम्पनी की कुल बिक्री 248 करोड़ रुपये थी। और उसे टैक्स देकर शुद्ध 23 करोड़ रुपये का लाभ हुआ।** अब यह कम्पनी साबुन और डिटरजेंट बनाने के अलावा अन्य व्यवसायों में प्रवेश करने की सोच रही है। **श्री करसन भाई पटेल** साधारण आर्थिक स्थिति से प्रारम्भ कर इतना कुछ मात्र अपने

जीवन में काल अर्जित कर देश के चोटी के उद्यमी और पूँजीपति बन गए यह प्रत्येक पाटीवार, कुर्मी, कनबी आदि सजातीय के लिये सदैव प्रेरणाप्रद उदाहरण रहेगा ।

श्री विजय बिहारी सिन्हा



जनरल मैनेजर (खान)
गुजरात खनिज विकास निगम लि0
अहमदाबाद (गुजरात)
(गुजरात सरकार उद्यम)
खनिज भवन, आश्रम रोड़, अहमदाबाद-380009
दूरभाष आफिस : 420559, आवास : 432889
निवास : नेपचून हाउस नं0 2, मीठाखाली सिक्स रोड, अहमदाबाद 3800096

श्री विजय बी० सिन्हा उन कुर्मी बुद्धिजीवियों में से हैं जोकि ऊँचे से ऊँचे सरकारी पदों पर कुशलता एवं निर्भीकता से कार्य करते हुए, अनेक बाधाओं-निराशाओं का डटकर सामना करते हुये, आगे बढ़ते रहे और समाज में, अपने देश में उच्च स्थान बनाया । वे यद्यपि कई वर्षों से अहमदाबाद (गुजरात) में कार्यरत हैं, जोकि उनके जन्म-स्थान पटना बिहार से लगभग 1000 कि० मी० दूर है, पर वे न अपने कूर्मि समाज को भूले और न उसके प्रति अपने दायित्व को, जोकि दुर्भाग्य से इस जाति के ज्यादातर प्रबुद्ध वर्ग द्वारा भुलाया जा रहा है । इस लेखक से दिल्ली निवास पर वे आकर मिल भी चुके हैं और निरंतर स्नेहपूर्ण व्यवहार रखते रहे हैं । समय-समय पर वे काफ़ी उपयोगी जानकारी भी इस पुस्तक में प्रकाशनार्थ भेजते रहे हैं । उदाहरण के तौर पर आपने ही सूचित किया था उसे इस पुस्तक में सुश्री मनीबेन पटेल के सम्बन्ध में जो उल्लेख किया गया है । उनके ही शब्दों में :-

"शायद आप जानते होंगे कि सुश्री मनीबेन पटेल ने अपने पिता, सरदार बल्लभभाई पटेल के निधन के उपरान्त 55 लाख रुपये पंडित जवाहरलाल नेहरू को देते हुये कहा था - "शायद यह कांग्रेस का पैसा है और मैं आपको सौंप रही हूँ ।" अब उसका मूल्य 10 करोड़ से ज्यादा ही होगा जबकि लोग (नेतागण) आज एक करोड़ रुपये से कुछ ज्यादा ही में बिक रहे हैं किन्तु सुश्री मनीबेन पटेल को वह विशाल धन अपने कर्त्तव्य और ईमानदारी के पथ से विचलित न कर सका । अपने स्वजातीय श्री जयरामभाई ए० पटेल, जो हमारे गुजरात खनिज विकास निगम के अध्यक्ष हैं और गुजरात सरकार के पूर्व मंत्री भी रहे हैं, ने कहा कि अगर सुश्री मनीबेन की जगह आज का कोई अन्य नेता होता तो वह अपने घर में 10 करोड़ की राशि चुप-चाप रख लेता । "यह है जातीय मानदण्ड ।" सम्पर्क करने के लिये श्री सिन्हा ने दो स्वजातीय महानुभावों के पते भेजे :-

1. **श्री प्रेमशंकर कटियार**
   डाइरेक्टर (टेक्नीकल),
   दि सिंगारेरी कोलरीज लिमिटेड,
   भद्राचलन रोड, स्टेशन दक्षिण-मध्य रेलवे, (आन्ध्र प्रदेश),

इनसे पूर्व परिचय है । इनकी पत्नी पीलीभीत के एक जयसवार कूर्मि परिवार की हैं । इस लेखक के घर सपत्नीक आ चुके हैं । अपनी पुत्री का विवाह भी दिल्ली के खेलगांव में स्थित श्री कटियार की कम्पनी के गेस्ट हाउस से किया था । जिसमें भी यह लेखक सपत्नीक सम्मिलित हुआ था।

2. डा० चन्द्र भूषण सिंह, प्रसिद्ध चिकित्सक,
रूचा अपार्टमेंट,
उदयन मार्ग रोड, लॉ गार्डन के निकट,
अहमदाबाद - 380009 (गुजरात),
आपकी गणना अहमदाबाद के बड़े सफल डाक्टरों में की जाती है ।

जब श्री विजय वी० सिन्हा को ज्ञात हुआ कि यह लेखक "कुरमी चेतना के सौ वर्ष, राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में" लिखकर उसे प्रकाशित करने वाला है तो बिना मांगे, उन्होंने स्वतः पांच सौ एक रुपयों की राशि बैंक ड्राफ्ट से सहायता राशि के रूप में भेज दी। अतः दान-रूप में कोई भी राशि इस लेखक को स्वीकार नहीं है, श्री सिन्हा को इस राशि के मूल्य की पुस्तकें दी जायेगी । अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव के अनुसार उपर्युक्त 'महासभा शताब्दी स्मृति ग्रंथ' की पांडुलिपि तैयार की गई थी, किन्तु माननीय महामंत्री जी के कारण उसकी कार्यकारिणी समिति की फरवरी 1994 को कानपुर में हुई बैठक में इस ग्रंथ के छपवाने के दायित्व को अस्वीकार करवा दिया गया । यही नहीं "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" में इधर इस लेखक के भेजे कई लेख व कूर्मि क्षत्रिय समाज, दिल्ली के कार्यकलापों को प्रकाशित नहीं किया; जबकि यह लेखक इस पत्रिका का संरक्षक सदस्य है और इनके सम्पादक होने से पूर्व उसके अनेक लेख गत 20 वर्षों में प्रकाशित हो चुके हैं । इस लेखक का अंग्रेजी में लिखा वही पत्रोत्तर दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक "द टाइम्स ऑफ इण्डिया" ने भी तुरन्त प्रकाशित किया था, जिसको गिरवर, सागर (केन्ट) मध्य प्रदेश से निकलने वाली द्विमासिक पत्रिका "कूर्मि क्षत्रिय जागृति" के अप्रैल-जुलाई 1994 - महारैली अंक में पृष्ठ 10-11 पर प्रकाशित कर दिया पर 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' ने प्रकाशित नहीं किया । वैसे "कूर्मि क्षत्रिय जागृति" पत्रिका बड़ा सराहनीय कार्य कर रही है । "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" में क्या प्रकाशित हो रहा है और किसके लेख प्रकाशित हो रहे हैं उसके बारे में यहां न कहना ही उचित रहेगा, इसके पाठकगण उसके बारे में स्वयं अपने, निष्कर्ष निकाल सकते हैं। क्या ऐसे कुंठित व्यवहार से महासभा का कार्य सुचारु रूप से चल सकेगा? इन सब मुद्दों पर कूर्मि जाति के सभी सदस्यों को विचार करना होगा और निसंकोच जातीय-हित में निर्णय लेने होंगे, चाहें वे कितने भी कटु क्यों न हों । अन्यथा महासभा चलाने का क्या औचित्य रह जाता है? मुख्य विषय पर लौटते हुये श्री सिन्हा का जीवन-परिचय संक्षिप्त रूप में उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :-

श्री विजय बिहारी सिन्हा का जीवन वृत्त

जन्म भूमि : भरवरा, पत्रालय-हंसीडीह, जिला - पटना (बिहार)

परिवार : जन्म अवधिया कुर्मी सम्पन्न कृषक परिवार में हुआ ।

शिक्षा : प्रारम्भ से अन्त तक सदैव प्रथम श्रेणी तथा उच्च अंकों में सभी परीक्षायें उत्तीर्ण की । Indian School of Mines धनवाद से स्नातक अभियंत्रण परीक्षा खनन विषय में सन् 1959 में उत्तीर्ण की तथा अनेक विशेष प्रशिक्षण के प्रमाणपत्र अर्जित किये।

नौकरी
(1) लगभग 1963 से 1973 तक भारत के नेशनल मिनरल डेवलपमेंट निगम में हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी खानों, किरिबुरू, बैलाडीला, कुद्रेमुख, मसूरी (देहरादून) की फॉस्फेट खानों में काम किया ।
(2) सन् 1973-1978 तक उन्होंने बिहार सरकार के बिहार राज्य खनिज विकास निगम में मुख्य आयोजन पदाधिकारी के पद पर कार्य किया । ईमानदारी के साथ कुरमी जैसा काम करने से मुझे व्यावहारिक रूप से नौकरी से हटा दिया गया ।
(3) बाद में जगह-जगह की ठोकरें खाता हुआ, अभियंत्रण कालेजों में पढ़ाते हुए, बिरला जी की एक

सीमेंट कम्पनी के Captive Mine (आधीन खान) में पहुंचा । वहां मैंने करोड़ो करोड़ रुपये व्यर्थ खर्च किये गये थे, जिससे मेरी उपेक्षा की गई ।

(4) भगवान की कृपा से कि इस समय श्री सिन्हा **गुजरात खनिज विकास निगम लि0** में हैं और वहां भी हर वर्ष इस निगम के 3-4 करोड़ रुपये बचाते हैं । इससे यहां भी उनकी नौकरी जाने का उन्हें आतंक बना हुआ है । श्री सिन्हा का दावा है इस तरह वे अब तक विभिन्न प्रादेशिक सरकारों के 50 करोड़ रुपयों से अधिक बर्बाद होने से बचा चुके हैं ।

श्री सिन्हा का कथन है कि मुझे भगवान ने देश की गरीबी एवं वित्तीय अनियमिताओं से मुक्ति दिलाने की लड़ाई **महात्मा गांधी, सरदार पटेल, कुमारी मणिबेन पटेल के जन्म प्रदेश** में लड़नी है जो मेरी कर्म भूमि है **ताकि इन महापुरुषों के कर्ज को चुका सकूँ । देखें इस कर्मयुद्ध में भगवान मेरी कितनी मदद करते हैं और आप सबका आर्शीवाद कैसे फलीभूत होता है ।**

आज का कुलमी क्षत्रिय-पाटीदार समाज

आज का कुलमी-पाटीदार समाज काफ़ी समृद्ध हो चुका है, फिर भी इसमें मध्यवर्ग एवं निम्न मध्यवर्ग के लोग अभी भी बड़ी संख्या में हैं । वे भी अपनी योग्यता तथा शक्ति के अनुसार सम्पन्न होने के लिये तरह-तरह के व्यवसायों में लगे हुये हैं । पर यदि वह नौकरी करना भी चाहता है तो उच्च शिक्षा प्राप्त कर डाक्टर, इंजीनियर, वकील, प्राध्यापक या चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट या केन्द्रीय सरकार अथवा सरकार की उच्च पदों वाली नौकरियां पाना उसका लक्ष्य रहता है।

जैसे कुरमी और कृषक एक दूसरे के पर्याय तथा अभिन्न शब्द बन गये हैं, वैसे ही गुजरात का कल तक कहलाने वाला कणबी और आज का पाटीदार-पटेल जब कृषि कार्य अपनाता है तब उसके सम्मुख और कौन जाति वाले महारत रखेगें । परिणामतया उसने गुजरात भर में तम्बाकू की फसल, चरोतर में मूंगफली की फसल, सौराष्ट्र में आलू और अफीम तथा अन्य फसलों में जैसे ऊँझा, पाटण तालुका, उत्तरी गुजरात में जीरा और बारीख सौफ की सर्वाधिक फसल सारे देश में उगाने में नाम कमाया है और इन फसलों को उगाने वाला पाटीदार-कृषक (खेडूत) ही है । गुजरात के बाहर आलू, अफीम और लहसुन की उत्तम उपज के लिये मालवा-निमाड़ क्षेत्र के कुलमियों-पाटीदारों को श्रेष्ठ माना जाता है। पाटीदार-पटेल विदेशों में भी जाकर खूब सफल व्यवसायी सिद्ध हुये हैं, स्वयं भी सम्पन्न बने और अपने कर्मक्षेत्र वाले देश की आर्थिक अवस्था सुधारने में उनकी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इस पुस्तक में विदेश में बसे पटेल बन्धुओं की सम्पन्नता के सम्बंध में अन्यत्र विवरण दिया गया है । अमेरिका में ज्यादातर मोटल्स, इस व्यवसाय के प्रतिष्ठित पटेलों के हाथों में हैं ।

गुजरात के सम्पन्न कणबी-पाटीदारों की एक लम्बी सूची पहले दी जा चुकी है जिनमें प्रमुख नाम हैं **रावबहादुर शेठ बहेचरदास अंबाईदास लश्करी, मफतलाल व्यापारिक संस्थान के मफतलाल गंगलदास, जयकृष्ण हरिवल्लभ दास, धर्मेन्द्र सिंह देसाई, तक्ताबाला, करसन भाई पटेल ('निरमा' साबुन वाले), सेठ केशवलाल विट्ठलदास पटेल (केशुभाई)** । सेठ श्री **केशुभाई** केवल गुजरात प्रदेश मे ही नहीं मालवा-निमाड़ क्षेत्र में बसे पाटीदार बन्धुओं के कल्याण एवं उत्कर्ष सम्बन्धी किसी भी सामाजिक कार्य के लिये धन से सहायता करने को सदैव तत्पर रहते हैं तभी पाटीदार समाज के लोग उन्हें अपने समाज का **'भामाशाह'** कहते हुये गर्व अनुभव करते हैं । कहा जाता है कि प्रसिद्ध कपड़ा उद्योग **'मफतलाल ग्रुप'** के संस्थापक **श्री मफतलाल गंगलदास पटेल,** अपना नाम निजी तौर पर **चौधरी मफतलाल सिंह** लिखते थे और चौधरियों की तरह पगड़ी धारण करते थे, जैसा उत्तर भारत के कुरमी बन्धु भी कभी करते थे । चौधरी मफतलाल सिंह के पुरुषार्थ का ज्वलंत उदाहरण है, जो व्यक्ति कपड़े की गठरी कंधे से लटकाकर हाथ में नापने के लिये लोहे का गज़ लेकर दर-दर कपड़ा बेचता था उसने अपने जीवनकाल में **'मफतलाल गंगलदास'** फर्म स्थापित कर दी जिसे परिवार वालों ने बहुत आगे बढ़ाया । वर्तमान चेयरमैन श्री अरविन्द मफतलाल उनके पौत्र हैं । पाटीदार-पटेलों में अनेक उच्च कोटि के विद्वान हुये हैं । प्रख्यात डाक्टरों, बैरिस्टरों, वकीलों, वैज्ञानिकों, मैनेजमेंट विशेषज्ञों, चार्टर्ड एकाउन्टेन्टों की इनमें भरमार

है । अंग्रेजों के जमाने में अनेक प्रसिद्ध आई० सी० एस० आफीसर हुये जैसे सर एच० एम० पटेल, पूर्व वित्तमंत्री भारत सरकार, श्री आई० डी० पटेल पूर्व गवर्नर रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया तथा लंदन स्कूल ऑफ इकानोमिक्स में डाइरेक्टर, इसके अतिरिक्त अनेक आई० ए० एस० और आई० एफ० एस० आफीसरों की लम्बी सूची है ।

गुजरात के पूर्व मन्त्री श्री बाबूभाई जसुभाई उनके पूर्व मुख्यमंत्री स्व0 श्री चिमनभाई पटेल थे । श्री बाबूभाई जसुभाई मंत्री पद के बाद नर्मदा परियोजना से प्रारम्भ से अब तक सम्बद्ध हैं । बम्बई महानगर में स्व0 रजनी पटेल एक राजनेता और सामाजिक व्यक्ति हुए । बड़ौदा के मेयर श्री ठाकुर भाई पटेल हुये जोकि अखिल भारतीय महापौर परिषद के अध्यक्षपद को भी सुशोभित कर चुके हैं । श्री शान्ति भाई पटेल ट्रेड यूनियन के नेता तथा बम्बई के नगरपति भी मनोनीत हुए । गुजरात में सदैव अनेक पटेल बन्धु राज्य सरकार में मंत्री रहे, और इसी प्रकार सदैव अनेक विधायक एवं सांसद रहे, जिन सबकी सूची यहां देना सम्भव नहीं है जिस समय सरदार पटेल ने राजनैतिक जीवन प्रारम्भ किया था और वे अहमदाबाद में ट्रेड यूनियन का नेतृत्व कर रहे थे तभी एक अन्य पाटीदार श्री खंडू भाई देसाई भी मजदूर आन्दोलन में आये और बाद में प्रसिद्ध ट्रेड यूनियन नेता के रूप में जाने जाने लगे । स्व० बाबूराव पटेल ने गिरनार, गुजरात से प्रसिद्ध पत्रिका, 'मदर इंडिया' कई दशकों तक निकाली ।

महात्मा गांधी के निजी सचिव, स्व० श्री महादेव भाई देसाई जिन्हें वे पुत्र-समान समझते थे, पाटीदार थे । यहां भ्रमित न हों देसाई पाटीदार भी होते हैं और ब्राह्मण भी जैसे श्री मुरारजीभाई देसाई । देशमुख मराठा-कुनबी भी होते हैं जैसे महासभा के पूर्व अध्यक्ष डा० पंजाबराव देशमुख तथा ब्राह्मण भी जैसे पूर्व वित्तमंत्री केन्द्रीय सरकार डा० चिन्तामणि द्वारिकादास (सी० डी०) देशमुख । विगत जमाने के प्रसिद्ध ट्रेड यूनियन नेता श्री खंडू भाई देसाई भी पाटीदार थे ।

देश-विदेश में अनेक चोटी के उद्योगपति पाटीदार पटेल हैं । एलुमिनियम उद्योग में श्री मोहनभाई ईश्वर भाई पटेल, लेवा-पाटीदार हैं । इसी प्रकार एलकान (Elecon) नाम से गुजरात में हैवी इन्डस्ट्रीज़ ग्रुप के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री भानुभाई ईश्वर भाई पटेल हैं । श्री पन्नालाल पटेल जैसा चोटी का साहित्यकार इसी जाति में जन्मा जिन्हें "भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार" से भी सम्मानित किया गया, वहीं श्री ईश्वर पटलीकर प्रसिद्ध वार्ताकार और समालोचक भी हुये । आशा पारिख जैसी चलचित्र जगत की प्रसिद्ध अभिनेत्री हुई तो प्रसिद्ध कलाकार रंगीला जयन्ती पटेल, श्री प्रागलाल पटेल एक अति प्रसिद्ध फोटोग्राफर तो क्रिकेट के मैदान में श्री ब्रजेश पटेल और श्री जसु पटेल ने चिरस्मरणीय खेल का प्रदर्शन किया । श्री जसु पटेल ने कानपुर में खेली गई इस शताब्दी के पांचवे दशक में भारत-आस्ट्रेलिया मैच में ग्यारह विकेट लेकर अटूट कीर्तिमान स्थापित किया । भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया । फिल्म पत्रकार और लेखक के रूप में श्री पीताम्बर पटेल ने भी काफ़ी ख्याति अर्जित की है । अनेक महान् विभूतियाँ पाटीदार समाज में हुई हैं जिन्होंने जीवन में विभिन्न विधाओं को अपनाकर उच्च कीर्तिमान स्थापित किये । उन सबका उल्लेख करना स्थानाभाव के कारण यहां सम्भव नहीं है ।

राष्ट्रीय नेता-भारत रत्न सरदार बल्लभभाई पटेल, प्रेसीडेन्ट श्री विट्ठलभाई पटेल, कु० मणिबेन पटेल, डाह्या भाई पटेल आदि पाटीदार विभूतियां

राष्ट्रीय स्तर के नेता के रूप में गुजरात के कणबी बन्धुओं में सर्वप्रथम नाम आता है बैरिस्टर श्री विट्ठलभाई झवेरभाई पटेल का, जिनकी सुकीर्ति प्रेसीडेन्ट केन्द्रीय धारा सभा के रूप में अजर-अमर रहेगी । उन्हीं के अनुज सरदार बल्लभभाई पटेल की गणना तो अब तक हुये तीन शीर्षस्थ नेताओं में, यथा महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल, में की जाती है । नवोदित स्वतंत्र भारत के एकीकरण की सरदार पटेल की महानतम उपलब्धि से द्रवित हो राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ने इस कविता द्वारा उद्गार व्यक्त किये थे

'मातृभूमि के सौ-सौ खंड़ों को,
जोत कलम नामक हल से,
किया स्ववश से, कौशल से,
अटल पुरुष अपना पटेल,
वह तृप्त आप निज कृषि फल से,
उपल कठिन सी मंजुल-जलमय,
है तुलनीय हिमालय से ।

13 नवम्बर 1949 को जूनागढ़ के प्रभात पट्टण में स्थित **सोमनाथ के सुप्रसिद्ध देवालय के** जीर्णोधार की घोषणा जब **सरदार पटेल** ने की तब लगभग 10 शताब्दियों बाद मुक्त कंठ से **'जय सोमनाथ'** के प्रचंड नाद का स्वर पुनः फैलना आरम्भ हुआ था । महाकवि **हरवंशराय 'बच्चन'** की दृष्टि में **सरदार पटेल** ऐसे थे :-

यही प्रसिद्ध लौह का पुरुष प्रबल,
यही शक्ति की शिला अटल,
हिला इसे सका न कभी शत्रुदल,
पटेल पर स्वदेश को, गुमान है ।

इन महान विभूतियों के वंशजों ने भी अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया है । बड़े भाई **श्री विट्ठलभाई पटेल** के कोई संतान नहीं हुई । सरदार पटेल के कु० मणिवेन पटेल और डाह्याभाई पटेल दो संताने थीं । पुत्री मणिवेन आजीवन अविवाहित रही और बड़ा सादा जीवन जिया । ये दोनों अनेक बार सांसद रहे । डाह्याभाई का निधन बहिन मणिवेन से पहले हुआ जो काफी वृद्धावस्था में मरी । किसी से कोई मदद नहीं स्वीकार की, सदैव दोनों स्वावलम्बी रहे । राजधानी दिल्ली में पटेल परिवार की कोई सम्पत्ति नहीं है । क्या किसी अन्य राजनेता का ऐसा परिवार है ?

सरदार पटेल की मृत्यु-उपरान्त कु० मणिवेन पटेल ने पं० नेहरू को 55 लाख रुपये लौटा दिये थे । है कोई राजनेता या उसकी सन्तान जो राजनीति में है, जिन्होंने इन जैसा उदाहरण अब तक प्रस्तुत किया हो । इस महान कृत्य के साक्ष्य के रूप में स्वजातीय **श्री विजय बी० सिन्हा, जनरल मैनेजर (माइन्स)। गुजरात मिनरल डेवलपमेंट कार्पोरेशन लि०, नैप्चून हाऊस -2, मीठाखाली सिक्स रोड, अहमदाबाद - 380009,** ने इस पुस्तक के लेखक को निम्नलिखित जानकारी भेजी है :

CONGRESS BULLETIN NO.1

January- February 1951

Page No. 64 :

"Maniben Patel returned all funds of **"Punjab Relief Fund"**, **"Bengal Relief Fund"**, **"Vithal Bhai Trust Fund (Indian National Army)**, **"I. N. A. Enquiry & Relief Fund (Indian National Army"**, **"I. N. A. Film Fund"** and **"Election Fund"** of President of Congress Party"

उपर्युक्त तथ्य की पुनः पुष्टि **श्री विजय बी० सिन्हा** ने **''सरदार मेमोरियल ट्रस्ट"** के ट्रस्टी **श्री अशोक देसाई** से दूरभाष 079-867027 पर भी की । अभी गत वर्ष तक गुजरात के मुख्यमंत्री श्री चिमन भाई पटेल थे । यकायक उनका निधन हो गया । कई पटेल गुजरात सरकार में सदा मंत्री रहे । इसी तरह कई पाटीदार-पटेल सदा सांसद भी रहे हैं । इन पाटीदार-पटेलों पूर्व विधायकों एवं सांसदों की सूची भी इसी कारण नहीं दे पा रहे हैं ।

आज भ्रष्टाचार राजनीति में सर्वत्र उफान ले रहा है पर इसी शताब्दी में ये उच्च कोटि के राष्ट्रीय नेता पटेल बन्धु और उनकी सन्तानें काफ़ी अरसे तक सांसद रहीं पर कैसा निष्कलंक जीवन वे जिये और सब कुछ राष्ट्र को अर्पित

कर दिया । कुछ उससे चाहा नहीं । ऐसे महापुरुष के वंशज हम उनसे प्रेरणा लेते हुये अपने सुकार्यों से राष्ट्रीय जीवन में सम्माननीय स्थान बनायें । सरदार पटेल ने 540 देशी रियासतों का भारत में विलय और सोमनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार बड़ी सुगमता से कर दिखाया, जबकि अन्य ये बड़े-बड़े नेता न कश्मीर समस्या सुलझा पाये हैं और न अयोध्या में राम मन्दिर का निर्माण करवा सके हैं । हां उन्होंने ये दोनों समस्यायें जटिल जरूर बना डाली हैं । सरदार बल्लभभाई पटेल को सही रूप में "भारत का लौह पुरुष" एवं 'विस्मार्क' नाम से भी जाना जाता है ।

विख्यात साहित्यकार पन्नालाल पटेल

गुजराती भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार स्व० पन्नालाल पटेल को वर्ष 1985 का **'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार'** उनके उपन्यास **'मानवीनी भवाई'** पर दिया गया । श्री पन्नालाल पटेल जी को **'गुजराती साहित्य का प्रेमचन्द्र'** कहा जाता है। उनका जन्म सन् 1912 ई0 में राजस्थान के **सीमलवाड़ा** पंचायत समिति के छोटे से गांव **मांडुली** में हुआ। पिता **श्री नानालाल पटेल** साधारण **आंजणा कणबी कृषक** थे । श्री पन्नालाल जी स्वतंत्र तथा मस्त स्वभाव के थे ।

श्री पन्नालाल पटेल बाल्यकाल में ही एक साधु जयशंकरानन्द से प्रभावित होकर, घर त्यागकर उनके साथ गुजरात चले गये । आठवीं कक्षा तक किसी तरह पढ़े फिर आर्थिक कारणों से पढ़ाई छोड़ दी । पुनः ज्ञान-पिपासा उन्हें मूर्धन्य साहित्यकार **श्री उमाशंकर जोशी** के सान्निध्य में ले गयी । लेखन की लगन वहीं से लगी । साहित्य-जगत में उन्होंने अपने को एक सफल कहानीकार के रूप में स्थापित किया पर वे उतने ही अच्छे उपन्यासकार भी थे । **उनकी तुलना गुजराती साहित्य जगत के प्रेमचंद कहकर की जाती है** । उनके 34 से अधिक उपन्यास प्रकाशित हुये । उन्हें राजस्थान सरकार, गुजरात सरकार तथा कई अन्य साहित्यिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत किया गया और अनेक संस्थाओं ने उनका अभिनन्दन किया। इस धरती के इस लेखक का निधन 5 अप्रैल 1989 को हो गया । सारे कुरमी, पाटीदार, पटेल, मराठा समाज को गर्व होना चाहिये कि उनके इस स्वजन को **'भारतीय ज्ञानपीठ'** पुरस्कार से अलंकृत किया गया । अभी उनके साहित्य का उचित साहित्यिक मूल्यांकन नहीं हुआ है ।

गुजरात में दुग्ध सहकारिता आन्दोलन के जनक पद्म विभूषण श्री त्रिभुवनदास के० पटेल

गुजरात प्रदेश में **खेड़ा** जनपद में **आनंन्द** नामक नगर में भारत के दुग्ध सहकारिता आन्दोलन के जनक और विश्व प्रसिद्ध अमूल दुग्ध सहकारिता के संस्थापक, श्री त्रिभुवनदास के० पटेल का 3 जून 1994 को लम्बी बीमारी के बाद 90 वर्ष से ऊपर की आयु में निधन हो गया । यद्यपि वे जनजीवन से काफी पहले सन्यास ले चुके थे परन्तु बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के गुजरात में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में प्रवेश को रोकने के लिये उन्होंने स्वेच्छा से **दुग्ध सहकारिता आन्दोलन** का सूत्रपात किया । उन्होंने अनेक कार्यकर्त्ता उत्पन्न किये । 40 वर्ष पूर्व आज के **विश्वविख्यात भारतीय कृषि एवं दुग्ध उत्पादन** के क्षेत्र के **डा0 वी0 कूरियन** की असीम क्षमताओं को पहचानकर उन्हें सदैव सहयोग देकर उनके लक्ष्य-प्राप्ति में प्रोत्साहन दिया। संयोग देखिये कि सन 1963 में **श्री त्रिभुवनदास के0 पटेल** और डा0 वी0 कुरयन को संयुक्त रूप से एक करोड़ डालर का विश्वप्रसिद्ध **रैमन मैगासेसे पुरस्कार** (Ramon Magsaysay Award) एवं प्रशस्ति-पत्र मिले ।

श्री त्रिभुवनदास पटेल का जन्म 22 अक्टूबर 1903 में **आनन्द** तालुका के एक कुलमी पाटीदार-पटेल परिवार में हुआ था । जिनका पारिवारिक व्यवसाय महाजनी था । श्री त्रिभुवनदास प्रारम्भ से ही स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लेने लगे थे जबकि वे 19 वर्ष के भी नहीं हुए थे । वे सन् 1931 में 28 वर्ष की आयु में स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के कारण कारावास में डाल दिये गये ।

सन् 1943 में **श्री त्रिभुबनदास पटेल** ने आनन्द तालुका में **क्रय-विक्रय संघ** खोला । वही सन् 1946 में बढ़कर खेड़ा जिले के आनन्द तालुके में **दुग्ध सहकारिता शाखा** बनी जिसने, विशाल **अमूल संस्थान** का रूप ले लिया। आज अमूल मक्खन को बच्चा-बच्चा जानता हैं । इस **श्वेत क्रान्ति** से गुजरात के ग्रामीण जीवन की अर्थव्यवस्था में

बड़ा सुधार हुआ । वे गुजरात प्रदेश के कांग्रेस के अध्यक्ष बने । सन् 1967 से 1974 तक राज्यसभा सदस्य मनोनीत हुये तथा सन् 1964 में सार्वजनिक सेवाओं के लिये पद्म विभूषण उपाधि से राष्ट्रपति द्वारा अलंकृत किये गये । वे पाटीदार थे अतः गुजरात के कृषक (खेडूत) वर्ग के मसीहा माने जाते थे । सादा जीवन उच्च विचार वाली इस महान पाटीदार विभूति ने दो दुग्ध सहकारिता केन्द्रों से 200 लीटर दूध से कार्य प्रारंभ करके 80 लाख सदस्यों का सहकारिता दुग्ध संघ बना कर दिखाया ।

कडवा पाटीदार की कुलदेवी श्री उमिया माताजी संस्थान, ऊँझा, पाट्टण (उ. गुजरात) पिन : 384170

ऐसा कहा जाता है कि जहां वर्तमान में श्री उमिया माताजी का मन्दिर है, वह स्थान अतीत में कभी उमियापुरी के नाम से भी जाना जाता था । समय बीतता गया और उमियापुरी का अपभ्रंश होते-होते ऊँझा पर आ रुका। अतः वह स्थान जोकि उत्तरी गुजरात के पाटण परगने का अंग रहा है और जो गुजरे जमाने में कभी उमियापुरी नाम से जाना जाता था आज ऊँझा नाम से सुविख्यात है और उसने एक सम्पन्न नगर का रूप ले लिया है, जोकि मध्य रेलवे पर स्थित है ।

दूसरा आधारपूर्ण उल्लेख यह मिलता है कि सन् 156 ई0 में देसाई पटेलों के पूर्वज ब्रजपालजी माधावती के राजा थे । क्षत्रप राजा बृजपाल जी का महेत देश के राजा चन्द्रसेन से युद्ध हुआ । जिसमें उनको पराजय का मुंह देखना पड़ा । अतः ऐसी स्थिति में राजा ब्रजसेन जी माधावती छोड़कर अपनी धन-सम्पत्ति और छोटा सा रिसाला लेकर आनर्त प्रदेश (गुजरात) की ओर आये । भिन्न-भिन्न प्रांतों से आकर बसे हुये जाति भाइयों से वहां मिलन हुआ और उनके आग्रह पर कूर्मि राजा ब्रजपाल जी ने अपने सगे-कुटुम्बियों सहित वहीं स्थायी रूप से बसने का विचार बना लिया। उसी वर्ष सन् 156 ई0 में 'शुभ मुहूर्त में ऊँझा नाम से ज्ञात ग्राम स्थल पर एक नया गांव बसाया गया और अपनी कुलदेवी के रूप में, भगवान शंकर-महादेव के परम भक्त होने के नाते अपनी कुलदेवी पार्वती जी अर्थात् उमाजी या उमियाजी के मन्दिर की स्थापना की । स्थान का नाम भी पहले उमियापुरी और फिर कालान्तर में ऊँझा हो गया।

आस--पास के सभी कुरमीजन कुलदेवी माता श्री उमिया देवी के प्रतिष्ठान में जाकर बार-बार दर्शन मनोकामना की पूर्ति के लिये भिन्नतें, पूजा, अर्चना यज्ञादि करने हेतु आते थे । राजा ब्रजपाल जी का पुरोहित नागर स्वयं देवी मां की पूजा करता था । तब से नागर वंश के ब्राह्मण ही मन्दिर के पुरोहित बनते चले आये थे । अतः प्रारम्भ से कणबी भक्तों के मन में, उस मन्दिर के पुरोहित नागर जी के लिये बड़ा आदर और अगाध श्रद्धा रही है । प्रारम्भिक काल में ही, एक जमाने के नागर पुरोहित ने चावड़ा वनराज के समय में उनके मंत्री चंपराज के षडयंत्र में सम्मिलित होकर कणबियों की लग्न-प्रथा दस वर्ष के अन्तराल में एक बार निकालने की प्रथा बड़े चमत्कारिक ढंग से रोपित की थी जिसका विवरण पहले दिया जा चुका है । और उससे उत्पन्न बाल-विवाह जैसे दोषों, ऊंची और बढ़ती जाती दहेज राशि की दरों तथा लाचार मां-बापों द्वारा न दे पाने में असमर्थों द्वारा बालिका हत्याएं गुप्त रूप से किये जाने का दौर चला। बड़ी कठिनाई से रावबहादुर सेठ बहेचरदास अंबाईदास लश्करी जैसे समाज सुधारकों तथा पाटडी के दरबार साहब और वीरमगाम राज्य के कुलमी राजवंशी देसाई पटेलों के सतत् प्रयासों और कुलदेवी श्री उमिया माताजी की स्वयं की अनुकम्पा से यह महाकलंक मिट सका । यह सब विवरण भी इस पुस्तक में पहले दिया जा चुका है ।

भाई परमानन्द जी पटेल विधायक और पूर्वमंत्री, पनागर जबलपुर (म. प्र.)

जबलपुर के प्रसिद्ध बीडी उद्योग की फर्म मेसर्स सेठ मोहनलाल हरगोविन्द के उत्साही मालिकों में से इस समय सबसे प्रसिद्ध वरिष्ठ पुरुष, भाई परमानन्द जी पटेल हैं वे पनागर, जबलपुर विधान सभा से कई बार विधायक भी चुने गए और मध्य प्रदेश सरकार में कदीना स्तर के मंत्री भी रहे ।

स्वजातीय सहयोग के अतिरिक्त सभी वर्ग एवं जातियों के सहयोग एवं उपकारार्थ मुक्तहस्त दान भाई परमानन्द पटेल की स्वाभाविक विशेषता है । प्राय; शिक्षण संस्थाएं तथा गरीब शिक्षार्थी उनके आर्थिक सहयोग से लाभान्वित होते रहते हैं । उक्त भावना से ही जबलपुर में बड़े अच्छे स्तर पर एक कन्या डिग्री कालेज चल रहा है । इसके अतिरिक्त अनेक तीर्थ-स्थानों पर, सार्वजानिक हित को ध्यान में रखते हुए धर्मशालाएं निर्मित करवाई हैं । दसवीं लोकसभा में **श्री श्रवण कुमार पटेल,** जबलपुर (म. प्र.) लोकसभा संसदीय क्षेत्र से संसद सदस्य चुने गये । उनका शुभ सन्देश इस पुस्तक के अन्त में दिया गया है ।

जबलपुर के भाई विट्ठलभाई पटेल जी कवि तथा एक अच्छे साहित्यकार भी है । उनके कविरूप की झलक तो फिल्मी दुनिया के उस प्रसिद्ध गीत-**"काले कऊए से डरियो......... नहीं मैं मैके चली जाऊँगी"** से ही प्रकट होती है। वैसे वे अपनी प्रखर योग्यता एवं अध्ययनशीलता से कई पुस्तकों की रचना कर चुके हैं । आप योग्य विद्वान तथा सज्जन व्यक्तियों का सदैव समुचित आदर-सत्कार करते हैं ।

श्री उमिया माताजी का ऊँझा में प्रथम मन्दिर निर्माण फिर उसमें विस्तार

ऐसा विवरण मिलता है कि कूर्मि राजा ब्रजपाल जी ने सन् 156 ई0 में अपनी कुल देवी श्री उमिया माता का प्रथम मन्दिर ईट-चूंने से बनवाकर उसकी देखभाल के लिये समुचित प्रबन्ध कर दिया था । उसी मन्दिर को मरम्मत आदि करवाकर किसी तरह उसे सन् 1850 तक बनाये रखा गया । तब तक उसका नवीकरण अति आवश्यक हो गया था और मां के सारे कणबी भक्तों की अभिलाषा भी यही थी । भक्तों ने सोचना शुरू किया कि मन्दिर का नवीकरण कैसे किया जाय । अहमदाबाद के **रा० रा० रामचन्द्र मनसुखराय** नामक कणबी ने स्वजातीयों की सभा बुलाई जिसमें अपनी कुलदेवी के मन्दिर के पुनर्निर्माण हेतु समस्त कणबी जाति से चंदा एकत्रित करने का एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया । तदनुसार **पाटडी, वीरमगाम, अहमदाबाद, बड़ौदा, भड़ौच, सूरत, कड़ी प्रांत दक्षिण में बराड और खानदेश** तथा **निमाड़, काठियाबाड़** आदि जिन-जिन इलाकों में स्वजातीय काफी संख्या में बसे थे, उन क्षेत्रों से चन्दा इकट्ठा किया गया। लगभग 1,00,000 रुपया तो चन्दे द्वारा तुरन्त हो गया । **रा० रा० रामचन्द मनसुखराव** की देख-रेख में पत्थर का देवालय, ईट-चूंने के गुम्बदवाली चौकियां, मंडप तथा तहखाना आदि भी सन् 1865 तक भलीभांति निर्मित हुआ। फिर भी जो निर्माण कार्य होना रह गया था उसे **राव बहादुर सेठ बहेचरदास अंबाईदास लश्करी** ने पूरा करवाया । अन्य कणबियों से भी मन्दिर नवनिर्माण हेतु जगह-जगह जाकर चंदा एकत्रित किया गया । जिससे सन् 1865 में इस अधूरे देवालय को पूरा किया गया ।

इसी प्रकार एक 61 खंड की विशाल धर्मशाला यात्रियों को ठहरने की सुविधा प्रदान करने के लिये बनाई गई। फर्श पर चौरस पत्थर लगवा दिये गये । मुख्य धर्मशाला के अतिरिक्त एक छोटी धर्मशाला भी बनाई गई । उनमें नीचे के पांच कमरों का उपयोग दुकानों के रूप में किया जाता है । बाकी में **पुजारी नागर जी** तथा मंदिर के **स्वस्थान प्रबंधक** रहते हैं । सन् 1887 ई0 तक देवालय की धर्मशाला आदि का निर्माण कार्य सम्पन्न किया जा चुका था ।

नये देवालय भवन के उद्घाटन के लिये **बड़ौदा नरेश महाराजाधिराज हिज हाईनेस गायकबाड़ जी** को सस्नेह आमंत्रित किया गया था किन्तु उन्होंने अपनी ओर से बड़ौदा राज्य के पाटीदार जाति के **कड़ी प्रान्त के सूबेवार रायबहादुर गोविंदभाई हाथीभाई देसाई** को यह विधि सम्पन्न करने की आज्ञा दी । 6 फरवरी सन् 1887 ई0 को हजारों भक्त कणबियों की उपस्थिति में कड़ी प्रान्त के सूबेदार साहब द्वारा यह उद्घाटन विधि सम्पन्न हुई ।

बड़ौदा स्टेट के अन्तर्गत कड़ी प्रांत के **सूबेवार रायबहादुर गोविंद भाई हाथीभाई देसाई साहब** स्वयं पाटीदार थे । अतः आपने अपनी जाति में बुरे रीति-रिवाज दूर करने के लिये, शिक्षा के प्रचार के लिये और जाति-संगठन के लिये भी कार्य किया था । किसान सभा की भी स्थापना की थी । आपको **अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा** का अध्यक्ष पद सुशोभित करने का आमंत्रण भी मिला था जिसे वे निजी कारणों से स्वीकार न कर सके थे । आप **द्वितीय पाटीदार परिषद के प्रमुख** मनोनीत किये गये । **बड़ौदा महाराज हिज हाईनेस श्री सयाजीराव गायकवाड़** ने आपको **'राजरत्न'** की विशिष्ट पदवी से अलंकृत किया था । आप **बड़ौदा स्टेट** के बड़े सफल **दीवान** भी रहे ।

फिर यह देखा गया कि इस **विशाल श्री उमिया माता धाम** में तथा आस--पास भी पीने हेतु मीठे पानी की कोई भी सुविधा न होने से गर्मियों में यात्रियों को भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ता था । अतः 1 अप्रैल 1887 को सेठ रा० ब० बहेचरदास लश्करी के प्रयत्नों से विशाल जलाशय बनाने का निश्चय करके सभी कणबियों के आर्थिक सहयोग से कड़ी प्रान्त के सूबेदार के हाथों उसी दिन जलाशय का शिलान्यास कर दिया गया । जलाशय का आकार, 120 फीट लम्बा, 120 फीट चौथा और 56 फीट गहरा, रखा गया और उसमें यात्रियों को उतरने के लिये चारों ओर पत्थर की सीढ़ियां बनायी गयीं । जब तक वह बनकर तैयार हुआ, तब तक गुजरात के **कणबीरत्न रा० ब० सेठ बहेचर भाई लश्करी** का निधन हो गया । रा० ब० सेठ बहेचरदास लश्करी जी के सुपुत्र **सेठ शंभुप्रसाद जी** ने 13 फरवरी 1895 को यज्ञादि-पूजन करवाकर **'देवालय नवनिर्माण समिति'** की सलाहानुसार मानसरोवर नामक जलाशय, कुंआ, शिवालय आदि का उद्‌घाटन सम्पन्न कराया ।

इस प्रकार ऊँझा का **श्री उमिया माताजी का भव्य मंदिर** तथा आस-पास के भवन, कुंआ, जलाशय, शिवमन्दिर आदि का निर्माण सम्पन्न हुआ । इसके लिये दानी और भक्त कणबियों ने **'उमिया मां'** के प्रति श्रद्धा स्वरूप द्रव्य, आभूषण और भूमि मकान आदि दान किये । **यह क्रम रुकने वाला नहीं है ।** कणबी (पाटीदार) अपनी उदारता एवं दानशीलता के लिये सदा प्रसिद्ध रहे हैं । इसके समर्थन में एक किंवदंती डा0 मंगुभाई पटेल ने अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ 23 पर दी है :

कणबियों (पाटीदारों) की उदारता

कणबी, पावशाह और हाथीमल्ल क्यों कहलाए, इसके बारे में एक किंवदंती है । एक बार मुगल बादशाह अकबर का दरबार लगा हुआ था । नृत्य-गान चल रहा था, किसी बात पर प्रसन्न होकर **मुगले आज़म अकबर अदाकारों** को अपने हाथ से कोई बहुमूल्य पुरस्कार दे रहा था । **अकबर** को घमण्ड ने आ घेरा । उसने **बीरबल** से पूछा - **"मेरी सारी बादशाहत में कोई मुझ जैसा दरियादिल देनहार है?"** बीरबल कब खामोश रहने वाले थे, बोले, **"जहांपनाह, सेर पर सवा सेर तो होता ही है ।"** बादशाह अकबर के **गरूर को यह सुनकर धक्का लगा । गुस्से में आकर बोला - 'दिखाओ तो जाने'।** बीरबल ने कहा - **'गरीब-परवर, गुजरात में कणबी (पाटीदार) की शोहरत एक बड़े दाता की है, जिसकी शानी आप भी नहीं हो सकते । वे जरूरतमंदों और गरीब-गुर्बा के बड़े सरपरस्त हैं ।'** बादशाह ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। बीरबल भी उसके लिये तैयार थे ।

शहंशाह अकबर, बीरबल और कवि गंग यात्रियों के भेष में गुजरात के साबरमती नदी के तट पर एक कणबी कृषक के घर जा पहुंचे। उसने स्नेहपूर्वक उन सबका स्वागत किया । बैठने को आसन दिये और कुशलक्षेम पूछे । अपने खेत में उगी उत्तम साग-सब्ज़ियों की स्वादिष्ट रसोई बनवाई और बड़े आदर से उन्हें भोजन कराया । फिर कवि गंग को सुन्दर शाल, पगडी, सोने के तोड़े, बारह सौ रुपये नकद और अपने पास जो भी था - वह सब पुरस्कार स्वरूप दे डाला । उसके परिवार वाले क्या कहेंगे इसकी भी लेशमात्र चिन्ता न की । ऐसी ही परीक्षा अकबर बादशाह ने दूसरे पाटीदार कृषक की ली वह अपनी विशिष्ट उदारता में खरा उतरा । **बादशाह ने बीरबल ने कहा - 'तुम ठीक ही कहते थे, कणबियों (पाटीदारों) के बारे में' - अकबर बादशाह** ने पाटीदारों को उनकी दानशीलता के लिये **पादशाह-बादशाह** का खिताब अता फरमाया। कहा जाता है कि **बादशाह औरंगजेब** ने भी पाटीदारों की उदारता को परखा और उसने भी महसूस किया कि उन्हें दिया गया **पादशाह-बादशाह** का खिताब उचित ही दिया गया था । इस किंवदंती की ऐतिहासिकता कुछ भी रही हो पर कणबियों (पाटीदारों) की उदारता काबिले तारीफ है ।

कृषक की उपज और उससे होने वाली आय बड़ी मेहनत, कष्टों और प्राकृतिक प्रकोपों को झेलने के पश्चात् होती है । इसका चित्रण बखूबी इस काव्य में किया गया है :-

दया करो भगवान, कृषक पर दया करो भगवान,
सता रही निशि घोर, दरीद्री, तड़प रहा हा प्राण........कृषक पर दया०

दिन दूना, निशि चार गुना दुःख, बढ़ता है भगवान........कृषक पर दया०
रातोंदिन अविराम परिश्रम, करता कृपानिधान ....कृषक पर दया०
तो भी तन पर वस्त्र कहां है? दुःख हैं आठों जाम ....कृषक पर दया०
सालों साल उपज कम होती, भूमि थकी सी जान........कृषक पर दया०
दीन कृषक पर दया करो प्रभु ! तुम हो दया निधान ....कृषक पर दया०
मुंह बाये दुर्भिक्ष सतत प्रति, खड़ा निगलता प्राण ....कृषक पर दया०
'राम' कहे युग हाथ जोड़कर, हे, पुरुष प्रधान ....कृषक पर दया०

(डा. मंगुभाई रामदास पटेल की पुस्तक के पृ0 201 से साभार उद्धृत)

अतः इन दानी और उदार कणबी (पाटीदार) लोगों द्वारा समय-समय पर दान देकर ऊँझा का उनकी कुलदेवी श्री उमिया माताजी का देवालय परिसर वर्ष प्रतिवर्ष अधिक विस्तृत, भव्य, सुन्दर और यात्रियों के लिये सुविधाओं से परिपूर्ण होता जा रहा है। माताजी का सिंहासन सेठ शंभु प्रसाद बहेचरदास जी लश्करी के समय से बना था। जामदखाने (सुरक्षित संग्रह कक्ष) में कई बहुमूल्य वस्तुएं, माताजी के विभिन्न प्रकार के गहने, मां के श्रृंगार के वस्त्रादि कणबी भक्तजनों द्वारा समय-समय पर भेंट से प्राप्त हुये हैं। पाटीदार-पटेल केवल देश में ही नहीं विदेशों में और भी अधिक उन्नति करते जा रहे हैं। वे प्रवासी भारतीय पटेल जब भी देश आते हैं तो अपनी कुलदेवी श्री उमियामाता के दर्शनार्थ जरूर ऊँझा आते हैं और मां के चरणों में श्रद्धा सुमन और भेंट अर्पित करते हैं।

श्री उमिया माताजी के देवालय संस्थान का प्रबन्ध एक कार्यकारी समिति के द्वारा संचालित होता है सन् 1931 से सन् 1956 ई० तक निम्नलिखित पदाधिकारियों की समिति ने संचालन किया था :-

प्रमुख : श्री दुर्गाप्रसाद शंभुप्रसाद लश्करी, अहमदाबाद
(रा0 ब0 सेठ बहेचरदास अंबाईदास लश्करी के पौत्र)
उपप्रमुख : श्री लालसिंह रायसिंह जी देसाई
मंत्री : पटेल नंदुलाल मद्दाराम, अहमदाबाद

मन्दिर में नवनिर्माण तथा सज्जा-सजावट और यात्री सुविधाओं पर बराबर ध्यान दिया जाता हैं। अब तक जो मुख्य-मुख्य निर्माण कार्य हुये हैं, वे इस प्रकार हैं :-

1. सन 1943-44 में देवालय कर्मचारियों के लिये 7 कमरे, किराये पर देने के लिये 5 दुकानें निर्मित की गई।
2. सन् 1945-46 में बिजलीघर के दो कक्ष बनवाए गए, जो पुजारी एवं व्यवस्थापकों के उपयोग में आते रहे। दो मंजिला धर्मशाला, एक बंगला भी धर्मशाला की तरह आवासीय उपयोग हेतु बनवाया गया। दो नये कक्ष पुजारी जी और व्यवस्थापक जी के उपयोग हेतु बनाये गये। धर्मशाला को प्राथमिक पाठशाला के लिये भाड़े पर दिया गया।
3. सन् 1953-54 में 5 कक्ष वाली दुमंजिला धर्मशाला बनबाई गई।
4. सन् 1962-63 में एक विशालकाय टावर बनवाया गया जिससे माताजी का देव-स्थल दूर से दिखलाई पड़ता है।
5. सन् 1971-72 में एक कमेटी-हाल का निर्माण किया गया। एक दो मंजिला भवन बनाया गया जोकि हाईस्कूल चलाने पर भाड़े पर उठा दिया गया। 1 लाख 7 हजार रुपयों से देवालय का जीर्णोद्धार किया गया। उसकी सीढ़ियाँ, दीवारें आदि ठीक करके उन पर संगमरमर पत्थर जड़ा गया। एक नया शिवालय बनाया गया।
6. सन् 1977 में श्री उमिया माता जी के मंदिर में जोधपुर के लाल पत्थर जड़े गये हैं। साथ ही बटुक-भैरव के और श्री गुरु महाराज के दो छोटे मंदिर पत्थर के बनवाए गये हैं। सन् 1977 में मन्दिर की शोभा-वृद्धि

हेतु भीतर एक चांदी की जाली बनवाई गई । सन् 1978 में एक चांदी की गोलक (पेटी) बनवाई गई। और एक वर्ष बाद चांदी का कठेरा मन्दिर के गृह-कक्ष में बनवाया गया ।

7 इसी संस्थान की ओर से अम्बाजी में जाति जनों की सुविधा के लिये चार बीधा जमीन के साथ 500 वर्ग गज पर बना एक विशाल बंगला खरीदा गया, जो 'श्री उमिया माताजी पथिकाश्रम' नाम से जाना जाता है ।

8 सन् 1981 में श्री उमिया माता जी के मंदिर में जोधपुर के लाल पत्थर जड़े गये हैं । साथ ही बटुक-भैरव के और श्री गुरु महाराज के दो छोटे पत्थर के मंदिर बनवाए गये हैं ।

श्री उमिया माताजी के संस्थान का प्रबन्ध जो समिति चला रही है उसके वर्तमान अध्यक्ष सेठ श्री केशव लाल विट्ठलदास पटेल हैं । मंत्री (जिन्हें गुजराती भाषा में घंटी कहते हैं) इस समय श्री मणीभाई पटेल हैं ।

कड़वा पाटीदारों की कुलदेवी मां उमियाजी की स्तुति

(राग : ओ३म जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे)

ओ३म जय उमिता माता, मां जय उमिया माता ;
तुजको निशदिन सेवत, गुण तारां गाता ।
ओ३म जय ....

दुःख मां स्मरण सौ करे, मां मन करे अभिलाषा,
सुखमां स्मरण जे करे, ते नर तर जाता ।
ओ३म जय ....

नर-नारी ने बाल तारां मां गुण गातां,
मन मंदिरमां तारां दर्शन सौने थातां
ओ३म जय ....

रोज मंदिरे आरती थाती, मां पूजा थाती घरघरमां;
प्रसाद लइने पावन थाते दरद मटी जाता ।
ओ३म जय ....

दिन दुखियाने अभागा, मां मंदिर मां जाता ;
दर्शन तारां करीने, मन पावन थातां,
ओ३म जय ....

ऊंझा मां तारो वास, मां नंदीनी सवारी,
पगपाणा तारे दर्शन आवे, पावे पुनित प्रसादी,
ओ३म जय ....

कुरमी-पाटीदार अमोमां दुखियाना दाता,
कुलदेवी तुं आभारी, आमो तारां थाता,
ओ३म जय ....

सेवक तारो अरज करे मां सांभणजो करुणा;
जन्म जन्ममां साथे रहीने, दया करो रमणां ।
ओ३म जय ....

मां उमियानी स्तुति, मा जे भावे गाशे ;
कहे 'कवि' कर जोड़ी, जीवन सफल थाशे ।
ओ३म जय ....

-कवि पटेल दिल्लीवाला

महादेवभाई देसाई

सर्वविदित है कि गांधीजी के निजी सचिव महादेवभाई देसाई थे और वे गांधीजी के साथ उनकी जेलयात्रा में भी रहते थे। इनका जन्म गुजरात के एक कन्बी/पाटीदार परिवार में हुआ था। उन्होंने 25 वर्ष तक गांधीजी की हर प्रकार से सेवा की। महादेवभाई गांधीजी के विश्वासपात्र निजी सचिव थे। बड़ी लगन और वफ़ादारी से वे दिन-प्रतिदिन का हवाला देते हुए सदैव गांधीजी की विस्तृत डायरी लिखते रहे। 3 दिसम्बर 1925 को जब गांधीजी ने गुजराती में अपनी आत्मकथा लिखना शुरू किया तो महादेवभाई देसाई ने उसका अंग्रेजी अनुवाद "My Experiments with Truth" शीर्षक से लिखा और उसे क्रमवार यंग इंडिया पत्रिका में प्रकाशित करवाया। पूना के आगाखां पैलेस में 15 अगस्त 1942 को अल्पकालीन बीमारी के बाद महादेवभाई का निधन हो गया। वहीं 20 फरवरी 1944 को कस्तूरबा ने भी गांधीजी की बाहों में अन्तिम सांस ली।

परिजनों और मित्रों की राय थी कि कस्तूरबा की अन्त्येष्टि पैलेस से बाहर की जाय। पर गांधीजी ने पैलेस के अन्दर ही होने दी। वहीं कस्तूरबा और महादेवभाई की समाधियाँ हैं। गांधीजी के आग्रह पर आगाखां ने अपना पैलेस राष्ट्र के नाम दान कर दिया।

इन्हीं महादेव देसाई ने अपने एक लेख, "The Story of Bardoli" के पृष्ठ 7 और 8 पर गुजरात के कणबियों का वर्णन इन शब्दों में किया है -

"Possibly no other taluka has got a population, which is so ameneable to healthy influences as are the **Kanbis** of **Bardoli. The industry, skill and thrift of the Kanbi agriculturists of Bardoli are proverbial. The women of the kanbi community do not disdain to work with the men in the fields, and are genuine partners in their pledges and vows. Their caste organisation has stood the ravages of the modern civilization and make them a community more closely knit than any other in Gujrat.**"

रेव शेरिंग ने अपनी पुस्तक "हिन्दू ट्राइब्स एंड कास्ट्स", वाल्यूम-1 में उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में भारत में प्रचलित जाति प्रथा पर कुरमी, कणबी की अवस्था और इंग्लैंड के अन्य वर्गों की तुलनात्मक समीक्षा से इन शब्दों में व्यक्त की है।

"**KUMBHI**, the great agricultural class of India is known by various designations appertaining to different locatilies. One of the most extensive tribes of cultivators is **Kumbhi**, otherwise called **Kunbi** and **kurmi**, which is found over a large portion of Hindustan proper, and in Central India."

बम्बई प्रेसीडेंसी गजेटियर वाल्यूम -X, भाग-1

"**Kunbis** including the four divisions of **Anjana, Kadva, Lava** and **Matia** with a strength of 14,10,422 form 14.26 per cent of the Hindus of Gujrat. They claim to be of **Kshatriya stock** according to one story they are the descendants and according to another the followers of **Lava** and **Kush**, children of **Ram** and **Sita**, who were driven out of Ayodhya and settled in **Mathura**, again forced to move, passed through **Marvar** into **Gujrat** their arrival in **Gujrat** is supposed to have taken place about two thousand years ago. **Ram Chandra** had two sons, one **Lava** and another **Kush.** From Lava formed Levas and from Kush the Kadvas."

"श्री उमिया माताजी के ऊँझा मन्दिर स्थापना का अठारहवां शताब्दी महोत्सव"

यह महोत्सव सम्वत् 2033 माग सर सुदी 4 गुरुवार ता0 25-11-1976 को प्रारम्भ हुआ और पूर्णाहुति सम्वत् 2033 माग सर सुदी 8 सोमवार ता0 29.11.1976 को हुई।

ऊँझा स्थित श्री उमिया माताजी के मंदिर की संस्थापना के 1800 वर्ष पूरे होने पर बड़े धूम-धाम, हर्षोल्लास के वातावरण में देश-विदेश और गुजरात के कोने-कोने से आये लगभग दस लाख कणबी (पाटीदार-पटेल) बंधुओं ने उपर्युक्त तिथियों पर **'अठारहवां शताब्दी महोत्सव'** मनाया।

महोत्सव में सुव्यवस्था सुनिश्चित करने के लिये कई समितियां बनायी गई थी, जिसमें कणबी बन्धुओं के साथ बहिनों ने भी आगे बढ़कर सेवा-कार्य में हाथ बंटाया था। यात्रियों के लिये विशेष रेलगाड़ियां और बसों की व्यवस्था, ठहरने स्नानादि, भोज-अल्पाहार की तथा अन्य सुख-सुविधाओं की व्यवस्थाएं सुचारु रूप से हो पाई - इसमें माता श्री का बरदहस्त एवं आर्शीवाद ही कार्य कर रहा था। उत्सव के दौरान मंदिर परिसर का वातावरण यज्ञादि से सुगंधित द्रव्यों, से आपूरित और आध्यात्मिक प्रवचनों से तथा दूर-दूर के कणबी पटेल-बन्धुओं का कष्ट सहकर बड़ी उत्कट भावना से मां श्री के दर्शनार्थ आने से आत्मीयता एवं स्नेहपूर्ण बन गया था। शायद ही किसी एक स्थान पर इतने अधिक कणबी बन्धु इससे पूर्व इकट्ठे हुये थे। इससे ज्यादा कुरमी बन्धु शायद 12 फरवरी 1994 को गांधी मैदान पटना को **"कुरमी चेतना महारैली"** के अवसर पर इकट्ठा हुये थे। देश के प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं के अनुसार विराट महारैली में 15 से 17 लाख लोगों ने भाग लिया था। उसकी चर्चा से बिहार से लेकर दिल्ली के पत्र भरे पड़े हैं। यहां तक कि उसका धमाका बी० बी०, सी० टी० वी० तक भी पहुंच गया था। उस महारैली का विवरण पुस्तक में आगे दिया है।

ऊँझा के इस सम्मेलन रूपी पाटीदार महोत्सव की सुन्दर व्यवस्था तथा संचालन की न केवल सर्वत्र बड़ी प्रशंसा हुई अपितु इससे पाटीदार-पटेलों में नवचेतना का उदय हुआ और गुजरात के बाहर रह रहे अपने जातीय बंधुओं को भी अपने जातीय संगठन में सम्मिलित करके अपने समाज का विस्तार करके गुजरात से बाहर इस देश में ही नहीं विदेशों में रहने वाले पाटीदार-पटेलों को अपने स्नेह-पाश में बांध लिया। **श्री उमिया माताजी** के कुछ फोटो इस पुस्तक में दिये गये हैं।

पाटीदार-पटेलों का पूर्व जातीय नाम केवल कणबी था

जिस प्रकार **कर्नल जैम्स टॉड** ने राजस्थान का इतिहास बड़े सुन्दर ढंग से लिखकर उजागर किया, उसी प्रकार **ग्रांट डफ्फ** ने मराठों का विस्तृत इतिहास लिखा, पर उन दोनों से भी ज्यादा खूबी से गुजरात का सही इतिहास, एक अन्य अंग्रेजी इतिहासकार **अलैक्जेंडर किनलोच फोर्बस,** ने रास माला नाम से, अंग्रेजी भाषा में, दो खंड़ों में सन् 1856 में लिपिवद्ध किया। उस ऐतिहासिक पुस्तक का पूरा शीर्षक है- "Ras Mala Hindoo Annals of The Province of Goozerat In Western India", जिसे सन् 1856 में प्रथम बार प्रकाशित करवाया गया। बाद में सन् 1927 में ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस द्वारा इसे पुनर्मुद्रित किया गया।

अलैक्जेंडर किनलोच फोर्बस ने इस पुस्तक के पृष्ठ 237 पर कृषक (Culivators) शीर्षक के अन्तर्गत स्पष्ट शब्दों में लिखा है :

"The most usual cultivators in Goozerat are the Koonbees, who are divided into three great branches of Lewa, Kuruwa (Kadawa)] and Anjana" They assert themselves to be of

Kshutreeya (Kshatriya) descent, and many of them even use the surnames of the Rajpoot clans",

अर्थात् - गुजरात में सर्वाधिक विशिष्ट कृषक वर्ग कणबियों का है जोकि तीन विशाल शाखाओं-लेवा, कड़वा एवं आंजणा में विभक्त हैं । वे अपने को क्षत्रिय वंशज होने का भी जोरदार दावा करते हैं और इनमें से बहुत से तो राजपूत वंश के उपनाम भी प्रयोग करते हैं ।"

इतिहासकार फोर्बस साहब ने, सन् 1843 में आई० सी० एस० बनने पर, ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेवा में, भारत आकर सर्वप्रथम अहमदाबाद में सहायक कलैक्टर पद ग्रहण किया फिर वहीं कार्य करते-करते सहायक जज बनाये गये । सन् 1852 में गुजरात के 'महि कान्ता'-(Mahi Kanta) का फोर्बस साहब को पोलिटिकल एजेन्ट्स बनाया गया तथा 25 वर्षों तक वे गुजरात की न्यायपालिका-सेवा में पदोन्नति करते हुये कार्यरत रहे । इसी दौरान उन्हें मुख्य राजपूत शासकों से या अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से, निकट सम्बन्ध स्थापित करने के काफी अवसर मिले । इतिहास का शौक उन्हें भारत-भूमि पर कदम रखते ही शुरू हुआ जो जीवनान्त तक उन्हें गुजरात को विषय बनाकर, हर पहलु से अध्ययन करने में व्यस्त रखे रहा ।

सन् 1854 में फोर्बस साहब अपने देश इंग्लैंड जाकर, अपने गुजरात में 17 वर्षों के परिश्रम से एकत्रित ऐतिहासिक विवरण तथा लंदन की इंडिया हाउस लाइब्रेरी से संकलित अन्य आवश्यक सामग्री से सन् 1856 में 'रासमाला' शीर्षक से दो खंडों में ग्रन्थ प्रकाशित करवाया । गुजरात सम्बन्धी उस काल का यह अत्यन्त विश्वसनीय ऐतिहासिक ग्रंथ है जिसके लेखक ने अभारतीय होते हुये भी एक सच्चे शोधक की तरह समकालीन घटनाओं और विवरणों का निष्पक्ष रूप से अध्ययन करते हुये अपने ग्रंथ में प्रस्तुत किया ।

यहां दृष्टव्य है कि फोर्बस साहब का रासमाला ग्रंथ सन् 1856 में इंग्लैण्ड में प्रकाशित हुआ और इस पूरे ग्रंथ के दोनों खंड़ों में गुजरात के वर्तमान नामों, पाटीदार और पटेलों, से जाने वाली जाति का मात्र "कणबी" संज्ञा से हर स्थान पर उल्लेख किया गया है । यह बात पाटीदार एवं पटेल बन्धुओं को भी सदा के लिये अपने दिलों-दिमाग में साफ कर लेनी चाहिए कि उनकी जाति का प्राचीन नाम जो उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रचलित था और जिसे रासमाला ग्रंथ में फार्बस साहब ने उल्लेख किया है, वह कणबी है अन्य कोई जातिसूचक नाम नहीं । फिर भी किसी को इस बिन्दु पर सन्देह हो तो वे रासमाला ग्रंथ का जरूर अनुशीलन करें । इससे स्पष्ट हो जाता है कि पाटीदार-पटेल का जाटों और गूजरों से कभी जातीय सम्बंध नहीं रहा है ।

डेनमार्क के एक विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान के पूर्व प्रोफेसर जान ब्रेमन ने सन् 1983 में आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस से अपना एक ग्रंथ प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक है - MIGRANTS AND PAUPERS, जिसके पृष्ठ 95 पर विद्वान लेखक लिखता है -

"Shortly after the turn of the century a movement for emancipation, beginning among the younger generation, put an end to the localized existence of the **Kunbis** and freed them from the stigma of backwardness accompanying that isolation. The derogatory term **'Kunbi'** gradually fell into disuse and by dissociating themselves from the villified Bhasha behaviour - a term referring to the coarse and simple life style of the peasant-and by adopting the new caste name of **Patidar** they gave themselves the respect they thought due to them and compelled others to follow suit."

अर्थात - शताब्दी के अन्त में नई पीढ़ी में जो मुक्ति का आन्दोलन प्रारंभ हुआ उसने कुनबियों के स्थानीय अस्तित्व का अन्त करके उन्हें पृथकत्व और पिछड़ेपन से मुक्ति दिला दी । कुनबी शब्द का असम्मान सूचक प्रयोग धीरे-धीरे समाप्त

 हो गया और किसानों के अपरिष्कृत और सामान्य जीवन शैली को प्रकट करती हुई दुर्भावना पूर्ण भाषा से अपने को हटाकर उन्होंने अपने को पाटीदार जाति नाम दिया जिससे उन्हें वैचारिक सम्मान प्राप्त हुआ और अन्य लोगों ने भी इसी भाव का अनुकरण किया ।

जोन ब्रेमन अपने इस ग्रंथ के पृष्ठ 96 पर लिखते हैं । "In the 1931 census the Kunbis of Kheda District themselves officially registered as Patidars, and from then on the members of the dominant caste in Surat District also wanted to be known by this name. At the beginning of the twentieth Century the word Patidar hardly even occured in south Gujrat, and even in school registers they were recorded as Kunbis, as custom to which the Patidar Yuvak Mandal put an end (Anil Bhatt, 1970:318).

अर्थात वर्ष 1931 की जनगणना में खेड़ा जिले के कुनबियों ने अपना अधिकाधिक पंजीकरण पाटीदार नाम से करवाया। इसके बाद सूरत जिले की प्रमुख जातियों ने भी इसी नाम को स्वीकारा । बारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में दक्षिणी गुजरात के विद्यालयों के रजिस्टरों में भी पाटीदार शब्द कठिनाई से मिलता था । पाटीदार युवक मंडल ने इस प्रथा का अन्त कर दिया । (अनिल भट्ट, 1970:318) ।

इस सब परिवर्तन का श्रेय **"पाटीदार युवक मंडल"** के सुधारवादी आन्दोलन को है । **'पाटीदार हितेच्छु'** जैसी सामाजिक संस्थाओं को है । शिक्षा की ओर प्रमुख ध्यान दिया गया । बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुजरात के जिन-जिन शहरों के आस-पास कणबी बहुल क्षेत्र थे वहां पाटीदार छात्रावास स्थापित किये गये । उपदेशक नियुक्त किये गये जो स्थान-स्थान जाकर कणबियों-पाटीदारों को शिक्षा का महत्व, अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता त्यागने के लाभ आदि का प्रचार-प्रसार कर समाज को उन्नतोंर्मुखी बनायें । अनिल भट्ट अपनी पुस्तक **"कास्ट क्लास एंड पोलिटिक्स"**, 1975 मनोहर बुक सर्विस दिल्ली, के पृष्ठ 71 पर लिखते हैं :-

The Patidars also show a notable exception to the "Higher the caste, higher the socio-economic status pattern." The Patidars were traditionally regarded as shudras in Gujrat and were once known as kanbis, but now as Patels. Not only are they industrious and progressive farmers but they have gone into trade and industry and many of them have gone to other parts of India and even in service. In modern Gujrat the Patidars are in the forefront socially and politically.

अर्थात् **"जितनी ऊँची जाति होती है उतना ही ऊँचा सामाजिक आर्थिक स्तर भी होता है"** पाटीदार इस लोकोक्ति का अपवाद है । गुजरात में पाटीदारों की गणना शूद्रों में की जाती थी और पहले उन्हें **कणबी** कहा जाता था किन्तु अब उन्हें **पटेल** कहा जाता है । वे परिश्रमी और उन्नतिशील कृषक हैं किन्तु अब वे व्यवसाय और उद्योग में भी अधिकार जमा चुके हैं और उनमें से बहुसंख्य लोग भारत के अन्य भागों में और विदेशों में भी व्यापार, उद्योग और सेवा के लिये जा रहे हैं । आधुनिक गुजरात में पाटीदार सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र की पहली पंक्ति में हैं ।

गुजरात के पाटीदार और पटेलों का कथन है कि वहां **वीरमगाम** तथा **पाटडी** ये दो उनकी अपने जाति के परिवारों की जागीरें थीं । **फार्बस साहब** ने भी **रासमाला**, भाग 2, पृष्ठ 290 पर लिखा है - " The Chief of Patree, though a koonbe......., अर्थात **"पाटडी-राजा"** को कणबी कहा गया अन्य किसी जाति का नहीं बताया ।

फार्बस साहब ने उक्त पुस्तक के पृष्ठ 242 पर **कणबी कृषकों की दक्षता, मेहनती स्वभाव आदि का विस्तार से वर्णन इस प्रकार किया है :-**

"The Koonbee, though frequently all submission and prostration when he makes his appearance in a revenue office, is sturdy and bold enough among his own people. He is fond of asserting his independence, and the helplessness of others without aid, on which subjects he has several proverbs as:

(1) 'Wherever it thunders, there the koonbee is a land -holder'
(ii) 'Millions follow the Koonbee, but the Koonbee follows no man'
iii. The Koonbee and his bullocks are inseparable.

(अर्थात)- "कणबी, यद्यपि कि मालगुजारी कार्यालय में अक्सर बड़ी नम्रता से झुककर बंदगी करता नज़र आता है, पर वह अपने लोगों के बीच दृढ़ और निर्भीक होता है । उसे अपनी स्वतंत्रता तथा स्वछंदता जाहिर करने का बड़ा शौक है और बिना इसके सहयोग के अन्य लोग निस्सहाय अनुभव करते हैं, इस विषय पर अनेक कहावते हैं :-

(i) जहां-जहां मेघा गरजे, वहां-वहां कणबी भूपति ।

(ii) कणबी पाछल करोड़, कणबी कोईनी नहीं पूठे ।
कोटि चले, कुरमी के पीछे, कुरमी नहीं काहू के पीछे ।।

(iii) कणबी-कृषक और उनके बैल-जोड़ी अविच्छेद होते हैं ।

विद्वान लेखक का डा. मंगुभाई रामदास पटेल ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 15 पर लिखा है - "कृषक" शब्द 'द्विज' का अभिधान है । फिर भी कि ऐसा प्रतीत होता है कि पंड़ितों ने उसे 'शूद्र' का विशेषण लगाकर वास्तव में पंड़िताई को हज़ारों हाथ गहरे कुएं में ढकेल दिया है वर्ना जिस काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऐसे चार ही वर्ण मौजूद थे ऐसे युग में लेउवा, कडवा आदि जाति भेद पैदाकर उनमें शूद्रता की जो कल्पना की है, यही उनके वर्णन की असफलता स्पष्ट कर देती है । इन ब्राह्मणों ने अनर्गल कथायें रचकर इस जाति की छवि खराब करने के अतिरिक्त और क्या किया है? दृष्टव्य हो :

श्री हरिकृष्ण व्यंकटराम शर्मा ने "ब्राह्मणोत्पत्ति-मार्तण्ड" में जो गप्प हाकी है इस जाति के लोगों द्वारा उसका आज या आगे जरूर खंडन होना स्वाभाविक है । उस ग्रंथ के कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :

1 "रामजी के पुत्र लव और कुश यात्रा हेतु सिद्धपुर गए । वहां से पांच कोस दूर उमा देवी के दर्शनों के लिये वे ऊंझा गए । वहां देवी की सेवा में रहनेवाले निर्धन कृषकों से उन्होंने सम्पर्क किया, जिससे वे 'लेउवा' तथा 'कडवा' कहलाये ।"

2 "कडवा लोग देवी की गायें चुराने गये थे, इसी दौरान ब्याह का मुहूर्त आया । अतः लेउवा ब्याह दिये गये और कडवा रह गए । जब कडवा लोगों ने असंतुष्ट होकर माताजी से अनुरोध किया, तब देवी ने कहा 'तुम्हारा ब्याह 12 वर्ष पश्चात् होगा ।"

3 "ऊंझा में उमादेवी के द्वारा जब तक कि बारह वर्ष पश्चात् कणबियों के ब्याह का समय न आ जाय तब तक सदैव बंद रहते थे । ब्याह के समय पर पुजारी जी को सपना आता और द्वार खुल जाते ।"

डा. भंगुभाई रामदास पटेल लिखते हैं - "हमारी उन्नति के बारे में "ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड" के कर्त्ता (श्री हरिकृष्ण व्यंकटराम शर्मा) ने भी अकारण एक गप्प हांकी है ।" अतः यहां अवलोकन करना इसलिये आवश्यक है कि यही है वे लोग जिन्होंने धर्म ग्रन्थों के नाम पर गप्प हांककर, कीचड़ उछालकर इस जाति विशेष को नीचा सिद्ध करने की कुचेष्टा की । आज इन जातियों के पढ़े लिखे इन पोंगा रचनाकारों की धज्जियां उड़ाते हैं तो किसी को बुरा क्यों लगता है। भृगु ने विष्णु जी के सीने पर लात मार दी, परशुराम ने 21 बार इस पृथ्वी को क्षत्रिय रहित किया आदि, यह सब गप्पें हैं, जिसे दम्भी और विवेकहीन लोग उचित ठहरायेंगे, औरों को शर्म आयेगी कि ऐसे कुकृत्यी व्यक्ति उनकी जाति में जन्म ले चुके हैं । यदि परशुराम की गरिमा को बचाना है तो 21 बार क्षत्रिय-हन्ता होने की बात को नकारना होगा ।

श्री हरिकृष्ण शर्मा ने तो कणबियों के लिये उपर्युक्त अंट-संट बाते रच दी और तुलना कीजिये अंग्रेज विद्वान फार्बस साहब अपने ग्रंथ रास-माला के भाग-2, पृष्ठ 286-93 पर लिखते है ।

"गुजरात में ज्यादातर कृषक (खेडूत) कणबी हैं । फिर भी उनकी उत्पत्ति क्षत्रियों से हुई । उनमें से अधिकतर प्रायः क्षत्रियोचित विशेषणों से पहचाने जाते हैं । उनमें अन्य जो निर्धन कृषक हैं, उन्हें भी ईश्वर ने जिस स्थिति में रखा है, उस स्थिति में उन्होंने अपने आपको आश्चर्यजनक रूप से ढाल लिया है ।"

गुजराती की प्रसिद्ध कहावत है - "पाटीदार, भाई को मारे, ठाकरवां खा के मारे, और राजपूत कहकर मारे"। मध्य प्रदेश (प्राचीन का मालवा) में यह मुहावरा काफी प्रचलित है :-

"कुलमी को सात गांठ"
या
कुलमी को कुलमी मारे........दूसरो मारे करतार" ।
पर अब मानसिकता ऐसी बदलनी होगी कि सब लोग कहने लगे :-
"कुलमी को कुलमी तारे"
या
"पाटीदार भाई-भाई को तारे"

पाटीदारों का ही नहीं सारे देश में विभिन्न नामों से ज्ञात कुरमियों का अपने-अपने चले आये जयघोषों के साथ-साथ 'जय-अंबे' और 'जय श्री उमिया माता' भी होना अति आवश्यक है । यदि सारे कुरमी 'पटेल' आस्पद को ग्रहणकर आगे से अपने नामों में प्रयोग करने लगें तो हमारी सही जन-शक्ति का आभास देश-विदेश सबमें हो जायेगा। कम से कम स्कूल में अपने बच्चों को भरती कराते समय 'पटेल' आस्पद उसके नाम के साथ जरूर लिखायें। कुछ दशकों में आप देखेंगें कि सर्वत्र देश में पटेल ही पटेल नज़र आयेंगे । कुरमी कृषक अपने कृषि-यंत्रों में एक अन्य साधारण यंत्र, 'पटेला' है, जिससे वे अपने जुते खेत को समतल करते हैं । यह कृषि कार्य में बड़ा लाभप्रद है । इसी तरह 'पटेल' आस्पद कुरमियों की सभी 1440 उपजातियों में एकता और समता स्थापित करते हुये देशस्तर पर अपनी विशिष्ट जातीय पहचान बनाते हुये, कुर्मी समाज में सम-स्तरता स्थापित करने में उपयोगी सिद्ध होगा ।

लेवा पाटीदारों की वीरता की गाथा

श्री डी. वी. तहमानकर ने "सरदार पटेल" शीर्षक ने एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी है जिसे जार्ज एलन अनविन लि०, लंदन ने प्रकाशित किया । उसमें उल्लेख किया गया है :-

"This probably explains the **Leva Patidar's** fame as a fighting community. They were always in the fore-front of militant opposition to the conquest of **Gujrat** by the **Moghuls**. **General** after **General** was sent by the emperor from Delhi to pacify the **Patels,** who would not easily capitulate. When they had to accept defeat to an enemy superior in arms and numbers, they would lie low for a time only to rise again to regain freedom when the **Marathas** began attacking the **Moghuls** power in **Gujrat** the **Patidars** made common cause with them.

बड़ौदा स्टेट गजेटियर के अनुसार बहुत हद तक पाटीदारों के कारण ही मराठा सरदार पिलाजीराव गायकवाड़ अपनी जागीर, बड़ौदा स्टेट के रूप में स्थापित कर पाये । उन वीर पाटीदारों ने पिलाजीराव की धन और सैन्य बल दोनों से पूरी मदद की थी जिसके कारण ही वह उस इलाके के मुगल गवर्नर हुसेन-दीन-बाबी को खदेड़ बाहर कर सका। गजेटियर में उल्लेख किया गया है :-

"**Patidars** and **Marathas** worked together to defeat the moslem rulers. Historians agree that the **Patidar's** share in the extension of **Maratha empire** beyond **Surat**, and in the defence of **Hindu religion and culture**, materially influenced the political social and economic developments of Gujrat today. The Marathas on their part recognized the help rendered by The **Leva patidar** community and showed their appreciation by confirming **jagirs** on several prominent families."

ब्रिट्रिश मानव-विज्ञानी डेविड एफ. पोकॉक ने पापुलर बुक डिपो, बम्बई द्वारा सन् 1954 में प्रकाशित अपनी अंग्रेजी पुस्तक " The Hypergamy of the Patidars" में पाटीदारों की जीवन प्रणाली के सम्बन्ध में इन शब्दों में कहा है :

"The perpetual defining process in **Patidar** life was, a constant interplay of integrative and differentiative Government." Till the 1931 Cinsus of India, the Patidars were known as **Kanbis** (agriculturists). The words **"Patidar"** and **"Patel"** were initially used to distinguish certain **Kanbis** as superior by virtue of their land rights. Gradually, however the two names were adopted by all the **Kanbis** and this differentiating feature became an integrative one."

"It is also said that those **Kanbis of Gujrat,** who were granted **Patta (title) of land** holdings in villages were later on known as **Pattadar** or **Patidar,** which became name of identity of their caste too."

मीनाक्षी जैन का एक लेख दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक "दि टाइम्स ऑफ इंडिया" के 3 अगस्त 1985 के अंक में प्रकाशित हुआ था । इनके अनुसार मुगल और मराठा सत्ता के दौरान, कुछ कणबी गुजरात में राजस्व अधिकारी नियुक्त किये गये । उन्हें राजस्व वसूली के लिये रखा गया था और उन्हें देसाई, अमीन और पटेल के टाइटल प्रदान किये गए । बाद में यह पद जन्मजात कर दिये गये और अनेक अधिकारियों ने काफी धन-दौलत भी एकत्रित कर ली थी। उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ कणबी ग्रामों में उन्हें पट्टेदारी के हक भी प्रदान किये गये । ब्रिट्रिश सरकार ने जब कृषि योग्य भूमि का रकबा बढ़ाया तो उससे सबसे अधिक लाभ पाटीदारों ने ही उठाया । फिर वे अपनी मेहनत-मशक्कत के लिये अंग्रेज अधिकारियों द्वारा प्रशंसित भी किये जाते थे ।"

The **Patidars** and **Patels** have no caste equation with **Gujars.** The **Gujars** sometimes back filed a writ petition in **Supreme Court of India**. According to their writ petition, they were black listed by the **English rulers,** because of their participation in the **1857 revolt.** Severe

restrictions on their movement were imposed through two laws in 1911 and 1924, called the **Criminal Tribes Act**. They had to take to **crime**, because they were barred from **education** and were asked to report to police stations at regular intervals. Their prints of hand and foot were taken. Though the **Constitution**, guaranteeing equality in field of life, came into force in 1950, The Gujars were still treated as criminals.

किंग्सले और डेविस ने, अंग्रेजी में एक पुस्तक "दि पापुलेशन ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान", शीर्षक से अमेरिका की प्रिंसटन यूनीवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन से सन् 1951 में प्रकाशित की। उस पुस्तक में पाटीदारों के बारे में पृष्ठ 460 पर जो वर्णन दिया हुआ है उसका कुछ अंश नीचे साभार उद्‌धृत किया जाता है :-

"The term Patidar, meaning land owners, who had a particular kind of tenure, became the name of the jati-cluster. For several generation's Patidars proclaimed as Kshatriyas; they argued that like the local Rajputs they weilded political power, like Rajputs, they supported genealogists to create and keep ancestral records and they became fond of the blood-and thunder recitation of the bards. But in recent generations a good many Patidars have been giving up the genealogies and their tall tales. They now prefer to have the same stands as local Baniyas. When the **Kingley Model** was dominant in their region they adhered to it, but it seems a bit obsolete to them now that many **Patidars** have been successful in trade. Both Baniyas and Patidars took to English education, at an early date, both have prospered and, in general, have adopted to modern conditions more successfully than have people of the traditional Kshatriya jatis of Gujarat. Hence a number of Patidars see little gain by clinging to the old **Kingley Model**, which is now more suitable, realistic, and profitable {Shah and Shroff (1958), The Vahavana Barots of Gujarat : **"A Caste Of Genealogists And Mythographers," Journal of American Folklore** 71:246-276}.

करमसद ग्राम, चरोत्तर स्थित बल्लभ विद्यानगर

गुजरात में करमसद वह प्रसिद्ध गांव है यहां इस देश के महान सपूत, पटेल बन्धु, श्री विट्ठलभाई पटेल, सरदार बल्लभभाई पटेल और **पूर्व वित्तमंत्री भारत सरकार, श्री एच. एम. पटेल, आई० सी० एस (सेवानिवृत्त)** आदि ने जन्म लिया था। करमसद और इसके आस-पास के अनेक पाटीदार-पटेलों ने अनेक विधाओं में अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित की और अनेक विदेशों में जा बसे हैं।

विदेशों में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो वर्षों 1899 एवं 1903 में जाने का प्रमुख कारण लगातार कई वर्ष तक गुजरात के काफ़ी बड़े क्षेत्र पर वर्षा न होना और भयंकर अकाल था। उनकी फसलें नष्ट हो गयीं चारे आदि की कमी के कारण खेती वाले जानवर भूख से मर गये। जब आदमियों के पास भूख से मरने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन या आशा न बची तब गुजरात से पलायन के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता शेष नज़र न आया। काफ़ी लोग देश के अन्य प्रदेशों **राजस्थान, सैण्टल प्राविंसेस** तथा **संयुक्त प्रान्त** में चले गये, पर बहुत सारे **अफ्रीकन देशों** में सामूहिक रूप से जा बसे। उन देशों में प्रारम्भ में जो भी छोटा और बड़ा व्यापार उनके हाथ लगा उसे अपनाया और शीघ्र उन्नति पथ पर अग्रसर होते गये। फिर देखा देखी अन्य पाटीदार भी गुजरात से उन विदेशों में जाने लगे, जहां उनके सगे सम्बन्धी पहले ही जा बसे थे। **करमसद गांव** के प्रत्येक पाटीदार परिवार से एक या अनेक सदस्य

विदेश में जा बसे हैं । खूब धन अर्जित करके वहां खुशहाल रहने के अतिरिक्त अपने मूल स्थान को भी धन भेज कर वहां के परिवेश को सम्पन्नता की ओर अनेक रूप में बढ़ाया है ।

वल्लभ विद्यानगर नाम के नये नगर की स्थापना चरोतार में करमसद गांव के समीप हुई थी । इस नये नगर-निर्माण की स्थापना के पीछे सरदार वल्लभभाई पटेल की प्रेरणा विशेष रूप से थी । इस परिकल्पना को विशाल विद्या परिसर बनाने में दो महानुभावों का विशेष योगदान उल्लेखनीय है, एक श्री भाई लाल भाई पटेल तथा दूसरे श्री भीखा भाई पटेल का । दोनों हीं पाटीदार जाति के थे । उनमें एक इंजीनियर तथा दूसरे शिक्षा शास्त्री थे । इस विद्या परिसर को बाद में चरोतार विद्या मन्दिर नाम से प्रसिद्धि मिली । इसी नाम से एक सोसायटी का गठन किया गया था । इसनें चार गांवों ने 800 बीघा भूमि, जिसमें से 300 बीघा भूमि पर शिक्षा संस्थान तथा बाकी पर पटेल बन्धुओं के लिये आधुनिक ढंग की आवासीय इकाइयां बनाने की योजना बनायी गई । अब तक अधिकतर निर्माण कार्य पूरा हो चुका है ।

भारत के वित्त मंत्री श्री एच० एम० पटेल, आई० सी० एस० सेवानिवृत्त होकर सन 1959 में अपने ग्राम वल्लभ विद्यानगर में आ बसे और पिछले वर्ष अपनी मृत्यु तक वे इस चरोतार विद्यामन्दिर के चेयरमैन रहे। पहले तीन कालिज ही बन पाये थे पर श्री पटेल के दौर में वे बढ़कर 26 हो गये और एक आधुनिक मेडीकल कालिज भी स्थापित हो गया । यह विद्या परिसर वल्लभ भाई विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कार्यरत है । चरोतार विद्या मन्दिर सोसायटी के प्रयासों से हाल ही में सरदार पटेल पर एक चलचित्र भी में बनकर तैयार हुआ है । दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक "पंजाब केसरी" में 27 अक्टूबर 1994 को "सरदार पटेल पर बनी फिल्म गुजरात में कर मुक्त न हुई" शीर्षक से जो समाचार छपा वह साभार यहाँ उद्धृत है :

"गुजरात ने वह काम किया है कि जिससे कहना चाहिए कि मेरा गुजरात महान । प्राप्त विवरण के अनुसार गुजरात सरकार ने गुजरात के महान सपूत और लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की जीवनी पर बनी फीचर फिल्म 'सरदार' को संपूर्ण कर मुक्त घोषित करने से इन्कार कर दिया है । 'सरदार' फिल्म को अन्य राज्यों ने कर मुक्त घोषित किया है । गुजरात सरकार के इस रवैये से सरदार पटेल के अनुयायियों में रोष व्याप्त है । और उन्होंने इस फिल्म को कर मुक्त घोषित करने की मांग की है ।"

जातीय इतिहास लेखन कितना दुरूह और निराशापूर्ण

इस लेखक का पत्राचार गुजरात के स्वजातीय बन्धुओं से होता रहता है । इस सम्बन्ध में जातीय इतिहास के मूर्धन्य लेखक तथा प्रतिष्ठित इतिहासज्ञ तथा प्राध्यापक गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद का दिनांक 10 अक्टूबर '94 का पत्र स्वजनों के विचारार्थ नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे शुभेच्छुक स्वजनों से जातीय इतिहास लेखन को पर्याप्त प्रोत्साहन उपलब्ध हो सके :-

अहमदाबाद,
10 अक्टूबर, 1994

श्रद्धेय बंधु जी दिलावर सिंह जी,

सादर नमस्कार !

आपका ता० 20-9-94 का पत्र श्री जयंतिभाई के द्वारा प्राप्त हुआ । पढ़कर आनन्द हुआ । आपके द्वारा लिखित "कुर्मी चेतना के सौ वर्ष (1894-1994) राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में" सम्पूर्ण होने की तैयारी में है । आपके

इस भगीरथ कार्य से समग्र कुर्मी समाज निःसन्देह ऋणी रहेगा। आपके इस सराहनीय कार्य की प्रशंसा में मेरे पास शब्द नहीं हैं। संशोधन कार्य कितना दुरूह है, यह इतिहास का प्राध्यापक होने के नाते मैं भली प्रकार से जानता हूँ! मैंने अपनी "पाटीदारों की गौरव गाथा" नाम की पुस्तक में 'अखिल भारतीय कुर्मी महासभा' का सौ वर्ष का इतिहास एवं भारत भर में फैले हुए कुर्मियों के विस्तार तथा महासम्मेलनों का उल्लेख किया है।

आपके पत्र का गुजरातीकरण करके 'उमिया दर्शन' में प्रकाशित करने का मन होता है लेकिन इस विषय में मेरे द्वारा लिखे हुए लेख एवं पुस्तकें प्रकट हो ही चुके हैं। राय बहादुर बहेचर दास लश्करी पर लिखित मेरा यह (शोध) महानिबंध युनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन ने युनिवर्सिटी को आर्थिक सहायता देकर प्रकाशित किया था, जो मैं आपको निकट भविष्य में भेजूँगा।

अपने ये दोनों महत्वपूर्ण ग्रंथ अन्यान्य भाषाओं में अनुवादित होवें यह तो उचित ही है, परन्तु इसकी आर्थिक जवाबदारी लेने के लिये कोई सामाजिक या धार्मिक संस्था तैयार होती नहीं लगती है। दाता लोग धर्म के लिये दान देने को तो तत्पर हो जाते हैं, परन्तु अपने पूर्वजों का नष्ट प्रायः इतिहास बचाने को तत्पर नहीं होते। मेरी पुस्तकें व्यक्तिगत रूप से कितने ही शुभेच्छुक एवं कुर्मी जाति के हितेच्छुओं के दान से प्रकट हुई हैं।

गुजरात में हिन्दी भाषा को पढ़ने वालों का वर्ग न के बराबर है। यहां के पाटीदारों में कुर्मी शब्द प्रचलित भी नहीं है। अब अपने प्रयत्नों से इसका प्रसार-प्रचार हो रहा है। गुजरात के पाटीदार पढ़ने के बजाय पैसा किस प्रकार पैदा करें, इसका ज्यादा शौक रखते हैं। पुस्तकें खरीदने में भी रुचि कम रखते हैं। गुजरात के पाटीदारों में भी एक दूसरे के पैर खींचने की दूषित प्रवृत्ति तो है ही। कडवा, लेउवा, आंजणा भी एक मंच पर एकत्रित नहीं होते। तीनों अपने-अपने संगठनों में इकट्ठे होते हैं जबकि अपने पूर्वजों ने एक मंच पर एकत्रित होते रहने के अनेक उदाहरण एवं आदर्श पेश किये थे।

आपकी उमिया माताजी के दर्शनों की इच्छा जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। इसके लिये योग्य समय पर आपको आमंत्रित करेंगे।

हमने 'कुर्मी क्षत्रिय पाटीदारों का इतिहास' की एक प्रति संपादक 'कूर्मी क्षत्रिय जागरण' को अवलोकनार्थ भेजी है। इस पुस्तक को अच्छा न्याय मिले इस हेतु आप संपादक जी को अवश्य सूचित करावें।

आपके परिवार-जनों, कवि पटेल एवं अन्य आदरणीय बन्धुओं को हमारी स्मरण कराना। पत्रोत्तर चालू रखें!

आपका

डा० मंगुभाई आर० पटेल
रीडर, स्कूल ऑफ सोसल साइन्स
गुजरात यूनीवर्सिटी, अहमदाबाद
पिन : 380009, फोन (आ०): 442385

समाजोत्कर्ष पर अब तक आयोजित कडवा पाटीदार समाज परिषद

परिषद संख्या	परिषद स्थल	परिषद के मनोनीत महाप्रमुख	तिथि, माह एवं	वर्ष
पहली	विरमगाम	स्व० डा० पीताम्बर दास कु० पटेल	28, 29, 30 दिसम्बर	सन 1909
दूसरी	वडोदरा	श्री करशन दास जेसींग भाई देसाई	24, 25, 26 दिसम्बर	सन 1911
तीसरी	खावला	श्री रतिलाल केशवलाल सीतवाला		सन 1913
चौथी	विरमगाम	प्रो० जेठाभई चीमनलाल स्वामीनारायण	23, 24 25 जनवरी	सन 1915
पांचवीं	धाग्रंध्रा	दरवार श्री लालसिंह जी रायसिंह जी		सन 1917
छठी	पादरा	शेठ श्री दुर्गाप्रसाद शंभुप्रसाद लश्करी		सन 1918
सातवीं	शेरथा	दरवार श्री लालसिंह जी रायसिंह जी		सन 1919
आठवीं	मुंबई	श्री पोपटलाल शिवलाल पटेल		सन 1919
नवीं	सोखासण	डा. पीताम्बर दास कुबेरदास	29 दिसम्बर	सन 1919
दसवीं	कड़ी	शेठ श्री चंदूलाल मणिलाल देसाई	13, 14 दिसम्बर	सन 1924
ग्यारहवीं	सोखासण	शेठ श्री चुन्नीलाल वनमालीदास		सन 1930
बारहवीं	उरण	श्री अमीन रामचन्द्रभाई जमनादास		सन 1934
तेरहवीं	साणंद	शेठ श्री नंदुलाल मंछाराम (शेर दलाल)		सन 1936
चौदहवीं	पाटडी	शेठ श्री नंदुलाल मंछाराम (शेर दलाल)	5, 6, 7 नवम्बर	सन 1937
पन्द्रहवीं	ऊंझा	डा० गणपतराम गोपालदास पटेल	14, 15 मई	सन 1949
सोलहवीं	जेटाणा	शेठ श्री जयकृष्णभाई हरिवल्लभदास	22, 23 अप्रैल	सन 1950
सत्तरहवीं	कड़ी	शेठ श्री मणिलाल हरभुवनदास	29, 30 अप्रैल	सन 1951
अठारवीं	लांभा	शेठ श्री मणिलाल हरभुवनदास	19, 20 मई	सन 1955

गांधी-पटेल सम्बन्ध अगाध-अटूट थे - आभाबेन

लोगों के मन में **गांधी-पटेल सम्बन्ध,** के संदर्भ में एक प्रश्न बार-बार उबरता रहता है कि जब इन दोनों महान नेताओं में अभिन्न एवं बड़े निकट के सम्बन्ध थे, तो फिर क्या कारण और मजबूरियां थीं कि आजादी-आगमन की पुण्य बेला पर जन-आवाज के विपरीत **गांधी जी** ने भारत के **प्रथम प्रधान मंत्री, सरदार पटेल** की जगह **पं० नेहरु** के बनने के लिए अपनी इच्छा क्यों बनायी, जिसका आभास मिलते ही उनके आज्ञाकारी अनुयायी सरदार पटेल ने खुशी-खुशी नेहरू जी को **प्रथम प्रधानमंत्री** बन जाने की औपचारिकता भी स्वयं बखूबी निभाई ।

अभी तक इस जिज्ञासा का पूर्ण संतोषजनक कारण कोई बता नहीं पाया है । पाठक जानते है कि **गांधी जी** के जीवन में अन्तिम वर्षों में **आभाबेन** और **मनुबेन** दो शिष्यायें थीं । इन दोनों के कंधों पर ही हाथ रखे **बिड़ला भवन, दिल्ली में 30 जनवरी 1948** की शाम **गांधी जी** अन्तिम बार प्रार्थना सभा में जाते समय, **नाथूराम गोंडसे** की पिस्तौल का निशाना बने । **गांधी जी** जमीन पर गिरे पर तुरन्त उन्हें हाथों-हाथ उठा लिया गया और इन्हीं **आभाबेन** की गोद में **'हे...... राम'** कहते-कहते बापू के प्राण-पखेरू उड़ गए थे । इन आभाबेन का जन्म 1928 में रंगपुर जिला (वर्तमान में **बंगलादेश**) में हुआ था । बाल्यावस्था में उन्हें उनके पिता ने सेवाग्राम आश्रम में भेज दिया था । वहीं उनकी परवरिश हुई । गांधी जी ने उनका विवाह **कनू गांधी** के साथ कर दिया था । गांधी हत्या के बाद से अब तक वे उनके बताए रास्ते पर चलती रही हैं ।

अब लगभग 56 वर्षीय आभाबेन गांधी सौराष्ट्र के नगर राजकोट में राष्ट्रीयशाला में कार्यरत हैं । उनके साथ गौरीक बाल सिंह का लिया हुआ एक साक्षात्कार "Recalling Life with Gandhi" के अन्तगर्त, 28 नवम्बर 1994 के दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक 'वि हिन्दुस्तान टाइम्स" में प्रकाशित हुआ । गांधी-पटेल-नेहरू सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए आभाबेन ने जो कहा वह उनके ही शब्दों में, मूल भाषा में, साभार नीचे उद्धृत किया गया है :

"It is wrong to suggest that Bapu loved Jawaharlal Nehru more than Sardar Patel. According to Abhaben the relationship between Sardar Patel and Mahatma Gandhi was that of "pati our patni" (पति और पत्नी-husband and wife)."But it is very difficult to say who was husband and who was wife" she says. And to Pandit Nehru he used to treat like a child.

उपर्युक्त रहस्य उद्घाटन गांधी जी के उन ऐतिहासिक दिनों के अत्यन्त नजदीकी अनुयायी द्वारा किया गया है जो विचारणीय और यहाँ उल्लेखनीय है ।

अध्याय - 6

भावी संकल्प

किसी भी समाज का, जातीय इतिहास उसके लिये दर्पण का कार्य करता है, जिसमें उसकी वर्तमान और भावी पीढ़ी अपना सही स्थिति-बोध कर सकती हैं। सन् 1994 का वर्ष अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा की स्थापना का शताब्दी वर्ष है, क्योंकि 100 वर्ष पूर्व 29 दिसम्बर 1894 को लखनऊ शहर के मोहसिनगंज मोहल्ले में प्रारम्भिक नाम 'कुरमी सदर सभा' के नाम से इसकी स्थापना की गयी थी, और तभी उसका प्रथम सम्मेलन आयोजित किया गया था। तब से देश के विभिन्न प्रदेशों, नगरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अब तक 37 अधिवेशन सम्पन्न किये जा चुके हैं। अन्य परिवर्तनों के साथ-साथ इस संस्था के नाम में भी कई परिवर्तन हुये, और वर्तमान में इसका नाम है "अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा"। इसके सदर को पहले प्रेसीडेन्ट या सभापति और प्रबन्धक को पहले प्रधानमन्त्री कहा जाता था। वर्तमान में प्रबंधक को महामंत्री कहते हैं। अत: इस सुअवसर के महत्त्व को ध्यान में रखते हुये, महासभा का शताब्दी -वर्ष देशभर में सुचारु रूप से तथा सुव्यवस्थित तथा योजनाबद्ध ढ़ंग से, प्रादेशिक स्तर पर तथा केन्द्रीय स्तर पर आयोजित होना चाहिये और उनमें अधिकाधिक स्वजनों को, शाखा-उपजाति के सारे भेद मिटाते हुये, महासभा की परिधि में, विशेष करके ऐसे लोगों को भी जो किन्हीं कारणवश अब तक जुड़ नहीं सके हैं, साथ लेकर, भाग लेना चाहिए।

जैसा पीछे वर्णन किया जा चुका है कि प्रथम अधिवेशन के अवसर पर सन् 1894 में लखनऊ में आयोजित 'कुरमी सदर सभा' के सभापति फर्रुखाबाद के सुप्रसिद्ध वकील, बाबू गेन्दनलाल जी कटियार के इस सुझाव पर अमल करना होगा :-

"जब तक हम लोग हर एक गाँव और मुहल्ले में, जहाँ भी बिरादरी के लोग अधिक रहते हैं, सभाएं स्थापित न करेंगे, तब तक हमारी जाति में मेल और प्रेम का होना कठिन है। इसलिये हम लोगों को उचित है कि बहुत जल्द यत्न करके स्थान-स्थान, पर सभाएँ स्थापित करें, जिससे हमारा पृथक-पृथक बल एकत्र होकर बड़े-बड़े कार्यों के करने में समर्थ हो सके।" बल्कि आज के आधुनिक परिवेश में और क्या-क्या करना आवश्यक है, उसके लिये महासभा के माध्यम से समुचित प्रयास करना भी अति आवश्यक है।

सभा के प्रथम मंत्री बाबू रामाधीन सिंह ने अद्भूत उत्साह दिखलाया, इसके स्थापन में, नियमावली के बनाने में, प्रथम सफल समारोह आयोजित करने में और कुरमी जन-जन तक कल्याणकारी सन्देश पहुँचाने के लिये 'कुरमी समाचार' मासिक पत्रिका के प्रकाशन का शुभारम्भ भी किया। तब से अब तक सौ वर्षों में महासभा के 37 अधिवेशनों के मंच से जातीय-उत्कर्ष के लिये समय-समय पर समाज सुधार, शिक्षा प्रसार, आर्थिक उन्नति, रूढ़िवादिता और अन्ध विश्वास परित्याग, राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति आदि अनेक अत्यन्त उपयोगी प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुये। इन प्रस्तावों में से कुछ तो अवश्य ही क्रियान्वित हुये, किन्तु यह भी नकारा नहीं जा सकता है कि अधिकांश प्रस्ताव जातीय इतिहास के पृष्ठों पर ही लिखे रह गये। पारित होने के पश्चात् आगे के अधिवेशनों में उनके क्रियान्वयन का मूल्यांकन भी नहीं किया गया। सच्चाई यह है कि उनका ईमानदारी से पालन नहीं किया गया। उन प्रस्तावों को क्यों अमली-जामा नहीं पहनाया गया, इसका विचार विशेष रूप से महासभा के शताब्दी समारोह में होना चाहिये। उन कारणों को पहले ठीक से पहचानना होगा। फिर निकट भविष्य में महासभा के कौन कार्यक्रम चलाने उचित होंगे, और कैसे उनका समयबद्ध रूप से कार्यान्वयन हो सकेगा उस बारे में मिल-जुलकर सबकी सम्मति से निर्णय लेने होंगे।

मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के कुरमी पात्र

बीसवीं सदी के भारत का जितना व्यापक यथार्थवादी चित्र 'गोदान' में उपन्यास सम्राट श्री प्रेमचन्द जी द्वारा किया गया है, किसी अन्य कलाकृति में नहीं मिलता। श्री प्रेमचन्द की रचनाओं में 'होरी कुर्मी' कृषक की दीन-दशा देखकर या 'बड़े घर की बहू' कहानी में कुर्मियों का जिक्र एक स्थान पर हीनता प्रकट करते हुये आया है, उससे कुर्मी बहिन-भाइयों को निराशा अथवा हीन भावना ग्रस्त नहीं होना चाहियें। लेखक ने अपने परिवेश में जो देखा, जहाँ देखा वैसा ही बिना किसी दुराग्रह के शब्दवद्ध किया है। इसी प्रकार लोक-काव्य "आल्हा-ऊदल" की भी वह पंक्ति "कुरमी-काछी का ना बेटा......................" भी उसी दृष्टि कोण से लेना चाहिये।

गोदान के पात्र-आधुनिक राजनीति में गत् 50 वर्षों में आये अनेक उलट-फेरों के बाबजूद भी 'गोदान' (रचनाकाल सन् 1936) का भारत पुराना नहीं लगता। क्योंकि विकास की तमाम उद्घोषणाओं के बाबजूद पूर्वी उत्तर प्रदेश के गरीब किसानों और

मजदूरों के बुनियादी हालात आज भी लगभग वहीं हैं। भारतीय समाज में, ख़ासतौर से ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी **'धनिया'** *जैसी औरतें घुटती रहती हैं, पुलिस का दमन बढ़ा है और ज्यादा अमानवीय हुआ है। गरीब लोगों पर नये-नये* ***झिंगुरी सिंहों का भारी कर्ज बढ़ा*** है। खेत-मजदूरों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। **'गोबर' जैसे युवक प्रतिदिन शहर की ओर बेहताशा भाग रहे हैं।** मिल-मालिक मधुर-शोषण के आधुनिकतम हथियारों से लैस है। चुनाव-प्रक्रिया पर पूंजीवाद की पकड़ और मज़बूत होती जा रही है। **इस सबके फलस्वरूप खेतों में जूझते होरी की पीढ़ी अपनी पराजयों, लालसाओं और संघर्षों के साथ एक बार फिर सामने हैं। उन जैसे लोग अपने को आज के मनी, मसल और मीडिया (Money, Muscle and Media) के सम्मुख उतना ही विवश पाते हैं जितने कि वे फिरंगियों के जमाने में जमींदार या साहूकार के सम्मुख पाते थे। पूरे परिवार के दिन भर खटने के बाबजूद उसके पास खाने के लिये अन्न और पहनने के लिये वस्त्र नहीं मिल पाता।** महाजनी सभ्यता के जाल में फंस कर लगान चुकाने, बैल खरीदने, फ़सल बोने के लिये बीज खरीदने अथवा पिछला सूद चुकाने के लिये कर्ज़ लेना पड़ता है। लगान और सूद के भुगतान के लिये उनकी ईख की खड़ी फसल बहुत कम कीमत पर बिक पाती हैं। किसान को अपने पेट की भूख शान्त करने के लिये बाज़ार से बहुत अधिक कीमत में अपना उपजाया हुआ अन्न खरीदना पड़ता है। इधर गन्ना मिलों से किसानों को उनके गन्ने के मूल्य का भुगतान कभी-कभी तो अगले साल किया जाता है। किसान का गन्ना मिलों पर तुलाई के समय कम तोला जाता है, मजबूरन किसान अपना गन्ना बहुत कम कीमत पर, तुरन्त दाम मिल जाने के लिये, निजी प्राइवेट क्रशर वालों के हाथ बेच देता है। कृषि-व्यवस्था के उपनिवेशवादी-सांमतीकरण के कारण ग्रामीण स्वनिर्भरता का विनाश हुआ है।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर, अपनी पुस्तक **"संस्करण और श्रद्धांजलियाँ"** प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली के पृष्ठ 156 पर लिखते है ".. काम और क्षुधा की जिस समस्या से नयी सभ्यता उलझ रही है, उसका ज्ञान प्राचीनों को भी था। जिस मनुष्य के अस्तित्व से समाज का गौरव बढ़ता है, लोगों को ऊँचा उठाने की प्रेरणा मिलती है, उसके स्खलनों के प्रति प्राचीन सभ्यता भी उदार थी, और नहीं तो पंच कन्याएं पूजनीया कैसे मान ली गयी ? और अगर क्षुधा की बात लीजिए, तो गांधारी ने भगवान कृष्ण से कहा था :-

" वासुदेव जरा कष्टं, कष्टं निर्धन जीवनम्,
पुत्रशोक महाकष्टं कष्टातिकष्टं क्षुधा।"

भावार्थ-"हे वासुदेव, वृद्धावस्था का कष्ट, गरीबी का कष्ट तो जीवन के कष्ट हैं ही पर पुत्र का शोक महा कष्टदायक होता है, किन्तु भूख की तकलीफ़ या कष्ट वास्तव में कष्टों में से सबसे प्रबल कष्ट है।"

ये कष्ट पहले भी थे, और आज भी हैं, मात्र थोड़े व्यक्ति इन दुःखों से पीड़ित होते है। कभी-कभी-आम जनता का बहुत बड़ा अंश, विशेष कर क्षुधा के कष्ट से पीड़ित होता है। परन्तु अन्य प्रकार के कष्ट भोगने से सम्पन्न वर्ग के लोग भी कभी वच न पाये।

श्री प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास, **'गोदान'** में **'होरी कुर्मी'** पात्र और अपनी एक कहानी **"बड़े घर की बेटी"**, में बहू के मुँह से कूर्मि-जाति पर हीनता का कटाक्ष करते हुये एकाध बात कहलवायी गयी है, जिससे कुर्मी पाठकों में बड़ी निराशा होती है। हीनता का बोध होता है। उसी परिवेश के लमही गाँव के कुरमियों का जिक्र, कुछ अरसे बाद प्रेमचन्द जी के सुपुत्र श्री अमृतराय अपनी पुस्तक **'प्रेमचन्द, कलम के सिपाही"**, प्रकाशित हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, के पृष्ठ 1 पर निम्नलिखित शब्दों में करते है :-

"बनारस से आज़मगढ़ जाने वाली सड़क पर शहर से करीब चार मील दूर एक छोटा-सा गाँव है, लमही, मौज़ा मढ़वाँ। पन्द्रह बीस घर कुर्मियों के, दो-एक कुम्हार, एकाध ठाकुर, तीन-चार मुसलमान और नौ-दस घर कायस्थों के-यही इस गाँव की कुल आबादी हैं।

अपनी पढ़ाई की काबिलयत के बल पर अभी कुछ बरस पहले तक कायस्थ गाँव पर राज करते रहे हैं। मगर अब, कुछ तो कुर्मियों में शिक्षा के साथ अपने अधिकारों की चेतना जागने के कारण और कुछ कायस्थों की आपसी फूट के कारण, उनके राज्य की चूलें हिल गयीं हैं, और उनका दबदबा काफ़ी कम हो गया है।"

प्रेमचन्द जी का कुरमियों के बारे में निकट का अनुभव उन्हें अपने गाँव लमही का था, और उस काल में लमही गाँव के कुरमियों की खस्ता हालत रही होगी, उसी का चित्रण, गोदान उपन्यास में तथा अन्य एकाध कहानियों में हो गया हैं। वहीं लमही के कुर्मियों में चेतना, जागृति तथा विकास जब आया तो **प्रेमचन्द जी** के सुपुत्र अमृतराय को बाद में जैसा नज़र आया वैसा उन्होंने बयान किया। आज के जमाने में **"होरी के पूत हीरो बने"** की कहावत चरितार्थ हुई है। पर अभी वास्तविक उन्नति करने के लिये कुरमियों को बहुत कुछ सोच विचार करना है। तब वे समाज की मूल उन्नत धारा के समस्तर हो जीवन में चल सकेगें।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में रूड़की (उ० प्र०) के श्री हीरालाल गुप्ता ने एक पुस्तक प्रकाशित करायी, जिसका शीर्षक था **"विलायती चीनी से धर्मनाश होता है।"** उस जमाने में चीनी विलायत से आती रही होगी, तब तो खांड और बूरा का जमाना था। उस परिप्रेक्ष्य में वह पुस्तक कुछ न कुछ बिकी जरूर होगी, और उस समय कुछेक की मानसिकता भी उसी के अनुकूल रही होगी, पर आज तो चीनी सभी खा रहे हैं हालाँकि शक्कर भी चलती है। और पूरा विश्वास है कि उपर्युक्त लेखक, स्वनामधन्य श्री हीरालाल गुप्ता, के मौजूदा वंशज भी चीनी-सेवन से कोई परहेज न कर रहे होंगे हालाँकि चीनी अब देश में बनती है और विलायत भेजी जाती है। समय के साथ-साथ लोगों के ख्यालात कैसे बदल जाते हैं, यह उदाहरण यहाँ इसी के सम्बन्ध में दिया गया है। चीनी खाने से धर्म का नाश कितना हुआ इसका उत्तर यदि कोई दे सके तो सबका ज्ञानवर्धन होगा।

श्री प्रेमचन्द जी जात-पात के पक्षधर न थे, वे तो गरीबों, दलितों और शोषित वर्ग के महान शुभ चिन्तक थे और ऐसी विचार-धारा का प्रतिपादन उनकी लेखनी द्वारा उनके साहित्य में स्पष्टतः हुआ है। 'काया कल्प' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने पुनर्जन्म के सिद्धान्तों के बारे में चक्रधर की जिज्ञासा के संदर्भ में इस प्रकार उल्लेख किया है :-

"ईश्वर ने ऐसी सृष्टि की रचना ही क्यों की जहाँ इतना स्वार्थ, द्वेष, और अन्याय है ? क्या ऐसी पृथ्वी नहीं बन सकती थी जहाँ सभी मनुष्य, सभी जातियाँ प्रेम और आनन्द के साथ संसार में रहती ? यह कौन-सा इंसाफ है कि कोई तो दुनिया के मज़े उड़ाये, कोई धक्के खाये, एक जाति दूसरी का रक्त चूसे और मूछों पर ताव दे, दूसरी कुचली जाय और दाने-दाने को तरसे ! ऐसा अन्यायमय संसार ईश्वर की सृष्टि नहीं हो सकता। पूर्व-संस्कारों का सिद्धान्त ढोंग मालूम होता है, जो लोगों ने दुखियों और दुर्बलों के आँसू पोंछने के लिए गढ़ लिया है।"

वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वजाति का प्यार नहीं ?

हमें गम्भीरता पूर्वक विचार करके, देखना होगा कि कूर्मि जाति के संगठन और उत्कर्ष के लिये जिन समाजसेवियों और कर्मवीरों ने **"अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा"** की स्थापना जिन उद्देश्यों को लेकर की थी, क्या हम वास्तव में उन्हें सफल बनाने में अपना योगदान दे पा रहे हैं या नहीं ? या हम सिर्फ एक निष्क्रिय दर्शक की तरह गाल-बजाने का ही कार्य कर रहे हैं, कि **"महासभा को तथा इसके पदाधिकारियों को यह करना चाहिये था और वह नहीं करना था।"** **"पर उपदेश कुशल बहुतेरे"** वर्ग के लोग अपनी जाति से तथा जातीय नेताओं से तरह-तरह के अपने काम निकलवाने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करते हैं, किन्तु जातीय कार्यों के लिये न वे तन से, न मन से और न धन से ही मदद करेंगे। अतः कूर्मिजनों को, सभी को, इस बिन्दु पर आत्म-विश्लेषण करना चाहिये, और उस समय राष्ट्रकवि श्री मैथलीशरण गुप्त के निम्नांकित काव्यमय उद्‌गार को सच्चे अर्थों में हृदयगम भी करना चाहिये :-

"जिसको न निज गौरव तथा,
निज देश का अभिमान है।
जिसको न अपनी जाति के,
उत्थान का अरमान है।
जिसको न अपनी हीनता का,
कष्ट शोक महान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है,
और मृतक समान है।

किसी कवि ने ठीक कहा है :-

जो भरा नहीं है, भावों से,
जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है, पत्थर है,
जिसमें स्वजाति का प्यार नहीं।

उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों से हमें एक प्रेरक संदेश प्राप्त होता है तथा अपनी जातीय जागरूकता एवं कर्मठता के प्रति स्नेहिल भावों का उद्‌गार होता है।

प्रसिद्ध इतिहासविद डा० काशीप्रसाद जायसवाल

भारतीय इतिहास जगत् में स्व० डा० काशीप्रसाद जायसवाल का नाम अति दैदीप्यमान है। डा० जायसवाल पटना हाई कोर्ट में बैरिस्टर और इतिहास और पुरातत्त्व के गंभीर विद्वान थे। पटना विश्वविद्यालय ने उनकी इतिहास तथा पुरातत्त्व के क्षेत्रों में अमूल्य खोजों और लेखन के लिये उन्हें डाक्टरेट की मानद उपाधि भी प्रदान की गयी थी। उन्होंने ही भार शिवों का लुप्त इतिहास और 'भर' जाति का अस्तित्व खोज निकाला था नहीं तो वे भुलाये जा चुके थे। प्राचीन इतिहास के रूसी मर्मज्ञ और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान प्रोफेसर शेरवास्की उन दिनों जीवित थे और जायसवाल जी से उनका बराबर पत्राचार चलता था। एक पत्र में शेरवास्की ने डा० जायसवाल को लिखा था कि आप भारत के सभी कालों का इतिहास, सुसंबद्ध रूप में लिखें, क्योंकि आपके बाद कोई ऐसा इतिहासज्ञ नज़र नहीं आता जो इस महान कार्य को सफलतापूर्वक पूरा कर सके। प्रारम्भ में आर्थिक कारणों से वे यह काम शुरू कर न सके। बाद में जब आर्थिक समस्या से राहत पायी तो डा० साहब का निधन हो गया। डा० जायसवाल, राहुल सांकृत्यायन जैसे अनेक इतिहास जिज्ञासुओं को इस विधा में काफी प्रोत्साहित किया करते थे। विंसेंट स्मिथ ने भारत का जो इतिहास लिखा था, उसके बाद के संस्करणों में लगातार कुछ-न-कुछ नये तथ्यों के साथ परिवर्तन होते गए, क्योंकि इसी बीच डा० जायसवाल के अनुसंधानों का क्रम जारी था और वे विश्व के सम्मुख, बराबर कुछ ऐसे नये तथ्य उद्घाटित करते जा रहे थे जो बिल्कुल नूतन और विश्वसनीय थे। बिंसेंट स्मिथ की उक्त पुस्तक में अंतिम बार संशोधन मिस्टर ई० एडवर्ड ने किया था। इस संशोधित इतिहास की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि इतने बड़े संशोधन की आवश्यकता इसलिये हो गयी कि डा० जायसवाल ने जो बातें इस बीच खोज निकाली हैं, वे पहले किसी भी इतिहासकार को पता नहीं थी। पत्रकारिता के क्षेत्र में आपकी देन अनुपम और अनन्य थी। सन् 1906 में आपने पटना से अपनी जाति पत्रिका **"कलवार गज़ट"** का सम्पादन किया और सन् 1914 से प्रकाशित 'पाटलिपुत्र' पत्रिका के वे प्रथम सम्पादक भी रहे।

उपर्युक्त उदाहरण प्रस्तुत करने का एक ही तात्पर्य है कि डा० काशीप्रसाद जायसवाल पेशे से एक प्रसिद्ध बैरिस्टर थे। स्वाध्याय तथा अथक लगन एवं स्वयं के प्रयासों के परिणामस्वरूप उनकी गणना देश के चोटी के इतिहासज्ञ तथा पुरातत्त्व -शास्त्रियों में होती थी, फिर भी उस महान व्यक्ति ने इतना व्यस्त जीवन रहते हुये जातीय-उत्कर्ष के लिये जातीय पत्रिका **"कलवार गजट"** निकालने में भी संकोच न किया और अपना बहुमूल्य समय भी उसके लिये दिया। पाठकगण जरा गौर करें, कितने हैं कुरमियों में इतिहासकार या पुरातत्त्व शास्त्री जिनकी तुलना डा० काशी प्रसाद जायसवाल जी से की जा सके ? खेद इस बात का नहीं है कि अब तक शायद कोई भी उस कोटि का नहीं है, वास्तव में खेद इस बात का है कि कुरमी जाति में जन्मे इतिहासकारों में बिरला ही मिलेगा जो डा० जायसवाल की तरह जातीय पत्रिकाओं के सम्पादन आदि में रुचि प्रदर्शित करता हो और अपना समय देता हो। अब तक कुरमी जाति सम्बन्धी जितनी पुस्तकें उपलब्ध हैं या लिखी जा रही है, उनके अधिकतंर लेखकों को इतिहास लेखन का शैक्षणिक तर्जुबा कुछ भी नहीं है फिर भी, वे अन्य विषयों में शिक्षा ग्रहण किये हुये लोग, समर्पित भाव से जातीय इतिहास लेखन में लगे हुये हैं। स्वजातीय इतिहासकारों से विनम्र निवेदन हैं कि वे इस विधा के प्रकाश-पुंज डा० काशीप्रसाद जायसवाल का अनुकरण करते हुये अपनी शिक्षा-दीक्षा से जातीय इतिहासं की नयी-नयी जानकारी खोजकर समाज के सम्मुख इतिहासी-भाषा में रखें। उनके इस कृत्य से इस जाति में उनका जन्म सफल होगा और वे साधुवाद के पात्र होंगे।

मिरजापुर (उ० प्र०) के स्व० डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, का जन्म बिहार के झालदा में सन् 1881 ई० में हुआ था। जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राज्यों के पुनर्गठन के बाद अब प० बंगाल में आ गया है। उन्होंने आक्सफोर्ड से इतिहास में एम० ए० किया था तथा इंग्लैंड में उन्होंने बैरिस्टरी भी पास की थी। देश लौटने के पश्चात् उन्होंने कानून की प्रैक्टिस सन् 1907 ई० में कलकत्ता हाई कोर्ट में शुरू की। कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति आशुतोष मुखर्जी ने उनके इतिहास के अद्भुत ज्ञान के कारण शीघ्र ही कलकत्ता विश्वविद्यालय में उन्हें नियुक्त कर लिया। जहाँ वे साल भर भी न टिक सके। जायसवाल जी, स्वभाव से स्वाभिमानी तथा आरम्भ से ही तेजस्वी देश-भक्त थे, अतएव अंग्रेजों ने उनका बंगाली नौजवानों के बीच कलकत्ता विश्वविद्यालय में रखा जाना पसन्द नहीं किया। पटना हाई कोर्ट की स्थापना के बाद जायसवाल जी पटना आ गये। वहाँ जीविका के लिये कानून की प्रैक्टिस और शौकिया इतिहास की साधना वे अन्त तक करते रहे। डा० जायसवाल के अनुसंधानों ने इतिहास के क्षेत्र में क्रांति मचा दी। उन्होंने खारवेल के शिलालेखों को सफलतापूर्वक पढ़ डाला। उस अनुसंधान के परिणामस्वरूप मौर्य और गुप्त वंशों के बीच का इतिहास उजागर हुआ। परन्तु उनका सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक कार्य हिन्दू-राज्यतंत्र का अनुसंधान माना गया है। डा० जायसवाल जी हिन्दी के बड़े प्रेमी थे और उन्होंने सन् 1933 ई० में भागलपुर में सम्पन्न हुये बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व भी किया था।

महान इतिहासज्ञ और कानूनविद् होने के साथ-साथ डा० जायसवाल श्रेष्ठ मजाकिया भी थे। अग्नि गिरि जायसवाल जी का

छद्म नाम था। व्यंग्य वे इसी नाम से लिखते थे। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक "संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ", प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज दिल्ली में "पुण्यश्लोक जायसवाल जी" के अन्तर्गत पृष्ठ 7 पर जिस मजाक का उल्लेख किया है, वह नीचे साभार उद्धृत है:-

एक रात हम दोनों (दिनकर जी और जायसवाल जी) चाँदनी में बैठे गप्पें लड़ा रहे थे कि उन्होंने पूछा, "बेटा, कभी अगिन गिरि की वह भगवान वाली गप भी सुनी है या नहीं ?" मैंने कहा, "अगर बाबा अगिन गिरि कृपा करें तो अभी सुन सकता हूँ।"
जायसवाल जी बोले, "एक बाबा अगिन गिरि ने मुंशी अजमेरी से कहा, "अजमेरी, एक बात जानते हो ?"
अजमेरी बोले, "कौन-सी बात महाराज ?"
अगिन गिरि ने कहा, "यही कि भगवान ने कहा-अरे मैं मछली हो जाऊँगा; अरे, मैं कछुआ हो जाऊँगा; अरे मैं सुअर हो जाऊँगा, किंतु ब्राह्मण तो मैं नहीं बनूँगा।
अजमेरी ने शंका उठायी, "क्यों, परशुराम तो ब्राह्मण ही थे।"

अगिन गिरि ने कहा, "बिल्कुल गलत बात। जब रामावतार मौजूद है तब परशुराम अवतार कहाँ से होगा ? एक समय में एक ही अवतार बड़ी मुश्किल से होता है। फिर एक ही समय दो-दो अवतार कैसे हो सकते हैं ? और यह भी याद करो कि राम और परशुराम में लड़ाई हुई थी। तो क्या भगवान, भगवान से लड़ने को अवतार लेता है ? ना भाई, परशुराम वाज ए प्रिटेंडर (परशुराम बनावटी अवतार थे)।"

डा० काशीप्रसाद जायसवाल यदि भारत का सभी कालों का इतिहास लिख जाते, तो वह कार्य अत्यन्त प्रामाणिक एवं विलक्षण होता; किन्तु जितना काम वे कर गये हैं वह उनके नाम को अमरता प्रदान करने में यथेष्ट है। वे न तो पटना हाई कोर्ट के जज बन सके और न पटना विश्वविद्यालय के वाइस चासंलर। वे अत्यन्त स्वाभिमानी व्यक्ति थे और चाटुकारिता उन्हें पंसन्द न थी।

भारतीय जन-गणना और जातिगत् आँकड़ें

देश को स्वतंत्र हुये लगभग 47 वर्ष होने को आये पर जाति-प्रथा हिन्दुओं में आज भी पूरी तरह प्रचलित है। स्वतंत्रता से पूर्व जो जातियाँ उदासीन थीं, अब उनमें भी सक्रियता आ गई है। कांग्रेस पार्टी ने अंग्रेज सरकार से सन् 1930 में जोरदार लिखित अपील की थी कि जनगणना के समय भारतीयों की जाति, उपजाति आदि का उल्लेख न करें, उन ऑकड़ों से जातिवाद को बढ़ावा मिलता है। वे तब बड़े जोश में थे कि जाति-पाँति को समाप्त करके ही दम लेंगे। उस जमाने के नेताओं ने अपने नाम के साथ आस्पद-प्रयोग बन्द कर दिया, जैसे सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, लाल बहादुर शास्त्री, डा० सम्पूर्णनन्द, राज नारायन, चन्द्र शेखर, राम बुझावन आदि। अंग्रेजों ने सन् 1901, 1911, 1921 तथा 1931 की जनगणना जातीय-उपजातीय सारी जानकारियों के साथ करायी पर कांग्रेस तथा अन्य भारतीय नागरिकों के अनुरोध को मानते हुये सन् 1941 की जनगणना में जाति-उपजाति आदि का ब्यौरा इकट्ठा नहीं किया गया। अत: तब से ये आँकड़े उपलब्ध नहीं है।

देश में आजादी के बाद जब भी चुनाव आयोजित हुये तो देखा गया कि उम्मीदवार के चयन, चुनाव परिणाम पर किस जाति का कितना प्रभाव पड़ सकता है। अमुक जाति के पार्टी नेता को अमुक चुनाव-क्षेत्र का दौरा करवाना, यह सब छोटी-बड़ी बातें जातियों को मद्दे नज़र रखकर किया जाता था। प्रादेशिक अथवा केन्द्रीय मन्त्रिमंडल बनाते समय किस प्रदेश या जिले का कोई मंत्री बना है या नहीं, उससे ज्यादा यह विचार किया जाता है कि किस जाति का कौन है।

अक्सर यही होता है कि यदि दक्षिण का राष्ट्रपति बनता है तो प्रधानमंत्री उत्तरभारत का होना चाहिये, आदि अनेक बातें हैं जोकि देश की एकता, सुख-शान्ति तथा भाई-चारे के लिये अहितकर होती हैं। जब आज की राजनीति में जाति ने एक महत्त्वपूर्ण स्थान ले लिया है। जातियों के उम्मीदवारों को उनकी राजनैतिक शक्ति के अनुसार प्रतिनिधित्व देने या पा जाने की घटनायें आज आम और आवश्यक होती जा रही हैं। स्वाभाविक है कि जिन जातियों ने अपनी शक्ति वृद्धि करने के लिए अपने संगठनात्मक स्वरूप को मज़बूत कर लिया है। वे ही राजनीति में भी आगे बढती नजर आ रही हैं।

उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के चयन में राजनैतिक तथा कार्यपालिका के हस्तक्षेप पर अंकुश लगाने हेतु सर्वोच्च न्यायालय की 9 न्यायाधीशों की संविधानिक खण्डपीठ ने, जिसके प्रमुख न्यायाधीश न्यायमूर्ति एस० आर० पांडियन थे, 7 : 2 के अनुपात में बहुमत से 6 अक्टूबर 1993 को फैसला दिया कि इन सब मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की राय को प्रमुखता दी जायेगी। खण्डपीठ के प्रमुख न्यायमूर्ति पांडियन का 202 पृष्ठों का फैसला, बहुमत की सहमति से था, उन्होंने अपनी टिप्पणी में कहा –

"On the basis of his 40 years' experience as a practising lawyer and later a judge of the high court and

the Supreme Court, I had the opportunity to notice that on a few occasions, the candidates have been initiated for judgeship either on regional or caste or communal basis or on extraneous consideration."

जब सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त फैसले में खण्डपीठ के मुख्य न्यायमूर्ति ने अपनी टिप्पणी में जाति तक के आधार पर ये कुछ न्यायाधीशों तक का नियुक्त किया जाना माना है, तब अन्य प्रमाण या साक्ष्य इस सम्बन्ध में देने की आवश्यकता नहीं है।

अब ज्यादा दिनों तक खेत-खलिहानों से, फैक्टरी-फार्मों से, सर्वहारा किसान और मज़दूरों से, पिछड़ों एवं दलितों से तथा अन्याय प्रकार के उत्पीड़ित वर्गों से (जिनमें स्त्रियाँ भी हैं) ज़ोरदार आवाजें उठनेको नजरान्दाज़ करना समाज-व्यवस्था की जड़ें हिलाकर रख देगा।

धरती के सौन्दर्य से अभिभूत होकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का कवि-हृदय फट पड़ता है, उनका भारत-भूमि और कृषकों के प्रति असीम अनुराग दृष्टव्य है :-

"निधि खोल किसानों के धूल सने,
श्रम का फल भूमि बिछाती जहाँ,
चुनके, कुछ चोंच चला करके
चिड़िया निज भाग बँटाती जहाँ,
कगरों पर काँस की फैली हुई,
धवली अवली लहराती जहाँ,
मिल गोपों की टोली कछार के बीच,
है गाती और गाय चराती जहाँ।"

(साभार उद्धृत "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का चिन्तन -जगत" –डा० कृष्णदत्त पालीवल, पृ० 90)

आज देश में सर्वत्र आवाज उठ रही है कि देश के किसान मजदूर तथा अन्याय श्रमजीवी वर्ग अब मात्र चन्द प्रतिशत अभिजात्य वर्ग का वर्चस्व, शोषण, दोहन और पकड़-जकड़ हरगिज सहन नही करेंगे। उनके निस्सहाय पूर्वज हजारों वर्षों से चली आयी असमानता तथा अन्याय की पोषक व्यवस्था सहते रहें, पर वे इसे न सहेंगे और इसको समता-न्याय आधारित, शोषण-दोहन रहित सर्वहितपूर्ण व्यवस्था में बदल देंगे। पर अब तक उन्हें सही दिशाऔर सही लोगों का नेतृत्व नही मिल पाया है। फिर भी वे प्रयत्नशील हैं। औरों को अच्छा लगे या बुरा पर उनके नारे तेजी पकड़ते जा रहे –"कमाने वाला खायेगा, बोल किसान हल्ला बोल, बोल मजूरा हल्ला बोल"। अभी बीसवीं सदी सिमटने में छः वर्ष शेष हैं। और इस अल्प अवधि में भी अभूतपूर्व सामाजिक उथल-पुथल होने के पूर्व संकेत नज़र आ रहे हैं।

अध्याय - 7

उन्नीसवीं सदी और भारतीय समाज

भारतवर्ष के इतिहास में ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी कई प्रकार से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टियों से इस शताब्दी में ऐसे अनेक परिवर्तन हुये जो उसे पिछली शताब्दियों से अलग करते हैं।

एक प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि मनुष्य आज दुःखी क्यों है जबकि उसके पास सुख-साधनों के अंबार लगे हैं ? एवं पुरातन काल के सतयुग के मानव-हमारे ऋषिगण् सन्तुष्ट और सुखी क्यों कैसे थे। जबकि वे अरण्यों में रहकार कंदमूल खाकर अभावग्रस्तता भरी जिंदगी जीते थे ? इस रहस्य को जानना हो तो उस मूल स्रोत को जानना होगा जिसका नाम है मनुष्य की विचार करने की शैली। उन्नीसवीं और वीसवीं शताब्दियों की वैज्ञानिक प्रगति के कारण सभी प्रकार की सुख-समृद्धि होते हुये भी क्लेश, अशान्ति, दुःख, उद्विग्नता से भरी जिंदगी का अर्थ यह है मनुष्य ने मन:स्थिति के स्थान पर परिस्थिति को तो बदला पर अपने चिंतन पर अधिक ध्यान नहीं दिया। विचारों में अपार शक्ति निहित हैं। वे सदैव कर्म की प्रेरणा देते रहते हैं। विचार शक्ति यदि अच्छे कर्मों में लग जाय, अच्छे मार्ग की ओर प्रवृत्त हो जाय तो अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। जितने भी संसार में श्रेष्ठ कार्य हुये हैं, चन्द व्यक्तियों या एक व्यक्ति के उत्कृष्ट विचारों की परिणत के रूप में सम्भव हो पाये हैं। भारतीय होने के नाते, हमारी शक्तिशाली सम्पदा विचार संस्थान के होते हुये भी हम क्यों अकारण दुःखी संतप्त बने रहते हैं, क्यों नहीं अपना भाग्य और भविष्य स्वयं बना महामानवों की गिनती में स्वयं को सम्मिलित करते, इस प्रश्न के उत्तर में ही हमारी अधिकांश समस्याओं का हल निहित है। ऐसा विचार हमें विरासत में मिला है।

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत की प्रमुख-प्रमुख घटनाओं पर दृष्टिपात करें, तो सन् 1857 का सिपाही विप्लव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में सर्वोपरि नज़र आता है। राजनीतिक दृष्टि से, उपर्युक्त सिपाही विप्लव के असफल हो जाने से बड़ी तेज़ी से भारत का शासन-सूत्र इसी शताब्दी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी बहादुर के हाथ में चला गया, और उनसे ब्रिटेन के मंत्रिमंडल ने भारत का शासन-तंत्र स्वयं संचालित करने के लिये अधिग्रहण कर लिया। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के परिणामस्वरूप देशभर में नवीन और आधुनिक शिक्षा का प्रचार हुआ, जिसके लिये मदरसे और पाठशालायें पूर्णतः असक्षम बन गयी थीं; दूसरे इससे आम जनता तथा जो शिक्षित होने के इच्छुक थे हर जाति के लोग शिक्षा प्राप्त कर सके। अनेक मूलभूत वैज्ञानिक आविष्कार हुये और उनके फलस्वरूप रेल, तार, डाक-व्यवस्था, हवाई जहाज, प्रेस आदि ने उन्नीसवीं शताब्दी के जीवनक्रम, विचार-पद्धति और सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण में अभूतपूर्व परिवर्तन लाकर वैज्ञानिकता को जन्म दिया और उसे विकसित किया। परिणामस्वरूप मध्य युगीन पौराणिकता, अन्धविश्वासों, रूढ़िवादिता और अन्ध परम्पराओं को करारी चोट पहुँची। उन्नीसवीं शताब्दी की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी पंडों-पुरोहितों की समाज पर जकड़ का शिथिल हो जाना, और उनके एकाधिपत्य का अन्त हो जाना। सन् 1857 के सिपाही विप्लव के असफल होने के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनेक कारण थे, जिनका यहाँ विवेचन असंगत रहेगा पर इसमें कोई शक नहीं उससे समाज के ढाँचे में और चिन्तन में मूलभूत परिवर्तन आये।

अंग्रेजी माध्यम से नवीन शिक्षा के फलस्वरूप, चाहें उसके प्रतिपादक, लार्ड मैकाले, के अनुमान कुछ और रहे हों, पर उसके विपरीत जिस नये शिक्षित मध्य वर्ग का जन्म हुआ, वह पुरातनत्व का बन्धन तोड़कर आगे आया और अपने कार्यकलापों से तथा चेतना द्वारा उसने नवोत्थान या नव-जागरण की भावना को विकसित किया। अपने युग की अस्मिता को आलोकित किया। प्रेस-मुद्रण के प्रचलित हो जाने से प्राचीन साहित्य तथा सांस्कृतिक धरोहर जोकि हस्तलिखित पांडुलिपियों के बंडलों में बंधी पड़ी थी वह भी प्रकाश में आई और उससे साधारण जिज्ञासुओं का भी ज्ञानवर्धन हुआ और कुल मिलाकर देश ने शैक्षिक, मानसिक एवं सांस्कृतिक रूप से उन्नति की।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज़ सिविलियन अधिकारी साहित्य और संस्कृति का गूढ़ अध्ययन करते-करते उसके परम प्रशंसक और उनके प्राचीन गौरव के लोक-परिचालक बन गये थे। और जो कुछ अच्छा-बुरा अंग्रेज़ों के राज में हुआ वह यहाँ विवेचना का विषय नहीं है, परन्तु इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं कि हम भारतवासी अंग्रेज जाति के अनेक नरपुंगवों के प्रति सदैव कृतज्ञता का अनुभव करते रहेंगे। जैसे व्हीलर साहब ने भी भारत के प्राचीन इतिहास को समझने के लिये बड़ी ईमानदारी, लगन और सहानुभूति से एक सच्चे जिज्ञासु होकर श्रम किया था। इन जिज्ञासुओं की श्रृंखला में अनेक नाम हैं जिनमें से कुछ जैसे विलियम क्रुक्स, पादरी शेररिंग, सर डब्ल्यू हण्टर, इलियट, डा० बुचानन, सर जार्ज कैम्पवल, कारनेगी, डाल्टन हैं। अनेक विद्वानों ने अथक परिश्रम एवं

सहानुभूति पूर्ण लगन के साथ कुरमी जाति के सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी खोजकर उजागर की, जो कि कुरमी जाति का अत्यन्त उज्ज्वल इतिहास प्रमाणित करने के लिये अकाट्य साक्ष्य हैं। कुरमी जाति के घटक उन सबकी खोज़ों और लिखित विवरणों के लिये सदैव उनके कृतज्ञ रहेंगे और साधुवाद करेंगे। अगरचे की वे गैर थे, हमवतन भी न थे और न हम-जवान पर उन विदेशियों के अलावा कुरमियों के बारे में हिन्दू इतिहासकारों ने जो थोड़ा-बहुत लिखा है, नगण्य है, भ्रान्तिपूर्ण है अथवा उनके अपने जातीय दम्भ ने उन्हें सही चित्रण नहीं करने दिया। सिर्फ कुरमियों का ही नहीं अन्य पिछड़ी जातियों के बारे में हमारे उच्च जातीय हिन्दू इतिहासकारों ने कुंठित मन से ही लिखा है। उन जातियों के लोगों को भी बड़ा खेद है।

भारतीय इतिहासकारों में एक ने कुरमियों के बारे में बड़ी खोज के पश्चात् विस्तृत और सही जानकारी लिखी है, वे हिन्दू न होकर एक मुसलमान सज्जन थे। खुदा उनकी रूह को जन्नत बख्शे। उनका नाम था, सयैद सिराज-उल-हसन जो कि हिज हाईनिस निजाम हैदराबाद स्टेट के जनगणना कमिश्नर नियुक्त किये गये थे। उनके सामने हैदराबाद में बसे कुरमियों के आँकड़े और उनके सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी उनके कर्मचारियों ने बड़ी मेहनत से एकत्रित की थी। वे स्वंय पेशे से जज थे, उन्होंने जनगणना कमिश्नर के तौर, जहाँ हैदराबाद में बसी अन्य जातियों का यथार्थ वर्णन और विवेचन किया, वहीं कुरमियों के बारे भी में किया। बाद में उन्होंने एक पुस्तक लिखी-"The Castes and Tribes-Vol.I, of H.E. The Nizam's Dominions" जिसको सन् 1920 ई० में दि टाईम्स प्रेस, बम्बई' ने प्रकाशित किया था। उस पुस्तक से कुरमियों संबंधी अंश, इस पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट-1 के अन्तर्गत साभार उद्धृत हैं।

जाने मन, नवाब वाजिद अली शाह के शासन-काल में अवध के अंग्रेज रेजिडेन्ट, कर्नल सर डब्ल्यू० एच० स्लीमेन ने अवध के देहातों का विस्तृत दौरा किया और हर जगह की प्रजा का हाल-चाल, शासन की बदइंतजामी की रिपोर्ट बनाकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी, कलकत्ता भेजा। कहा जाता है कि इसी रिपोर्ट के आधार पर अंग्रेजों ने अवध का संयोजन अपने राज (Annexation of Oudh in English Diwani) में कर लिया था।.कर्नल स्लीमन ने सन् 1851 में अपनी प्रसिद्ध डायरी "ए जर्नी थ्रू द किंगडम ऑफ अवध"-(A Journey Through The Kingdom of Oudh) लिखी जो बाद में प्रकाशित हुई और बहुचर्चित रही, उसमें भी कुरमी कृषकों का जिक्र अनेक बार किया गया, क्योंकि अवध में कृषकों में कुरमी प्रमुख जाति रही है। उस पुस्तक में कुरमियों को कहा गया है-'वे बड़े परिश्रमी, कृषि कार्य में निपुण, सम्पन्न, शान्तिप्रिय स्वभाव के, समय से लगान अदा करने वाले कानून का पालन करने वाले हैं। जहाँ-जहाँ ये कुरमी गाँवों में बसे हैं, इलाका खुशहाल है।"

सन् 1857 का सिपाही विप्लव असफल होने पर मुगल बादशाह बहादुर शाह 'जफ़र' भी अंग्रेजों द्वारा नज़रबन्द किये गये। उन पर लालकिले में राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। अदालत बैठी। 27 जनवरी से मार्च 1858 तक मुकदमें की सुनवाई हुई और अन्त में अंग्रेज कोर्ट ने बादशाह को देश-निर्वासन का दण्ड सुनाया। बादशाह को रंगून ले जाया गया। अपने वतन से दूर एकान्त में कैद बादशाह के दिल के गुबार जो उनकी शायरी में फूटे, उसका एक उदाहरण, नीचे उद्धृत है :-

" न किसी की आँख का नूर हूँ,
न किसी के दिल का करार हूँ,
जो किसी के काम न आ सके,
मैं वह एक मुश्तगुबार हूँ।।"
-'जफ़र'

"मैं वह कुशाता हूँ कि मेरी लाश पर ऐ दोस्त,
एक जमाना दीद-ए-हसरत से तकता जायेगा।"
- 'जफ़र'

मिर्जा गालिब , सन् 1857 के सिपाही विप्लव की असफलता के बाद अंग्रेजों ने दिल्ली की जनता पर जो कुफ्र वरपा, उसके वे चश्मदीद गवाह थे। दिल्ली की तबाही को 'गालिब' ने इन शब्दों में इजहार किया :-

"बजाय अब्रे करम, मुफ़लिसी बरसती है,
बतंग जीने से हैं, ऐसी तंगदस्ती है।
गजब में आयी रय्यत बला में शहर आया,
यह पूरबी नहीं आये, खुदा का कहर आया।।"

मैकाले की शिक्षा-नीति से ही जनमे थे आज़ादी के प्रसिद्ध दीवाने

स्कूल के दिनों में यह शिक्षा दी जाती रही है कि मैकाले द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी को भेजे गये सुझावों ने गुलाम भारतीय नागरिकों को जन्म दिया। मैकाले वास्तव में भारतीयों को गहरी नफ़रत भरी नज़र से देखता था, लेकिन वह यह भी जानता था कि उन्हीं भारतीयों में से एक ऐसा वर्ग तैयार किया जा सकता है जो दिल और दिमाग से ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति पूर्ण समर्पित रहे। वेलिंटन शिरोल की पुस्तक 'इंडियन अनरेस्ट' की भूमिका में आल्फ्रेड लायल ने सांस्कृतिक अभियांत्रिकी के इस पक्ष पर रोशनी डालते हुए लिखा था–

"हम ऐसे भारतीय नागरिक चाहते हैं, जो पश्चिमी शिक्षा पाये हुए हों .... । हमें इस बात पर गौर करना चाहिए कि वह (भारतीय नागरिक) पश्चिमी शिक्षा का बेहतरीन नमूना बने। हमें ऐसे भारतीय नहीं चाहिए जो धारा-प्रवाह अंग्रेजी बोलकर भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की वकालत पेश करें।"

मैकाले की तरह लायल ने भी ब्रिटेन के मिशन को स्पष्ट रूप से सामने रखा था। वह चाहता था कि शिक्षा-प्रणाली ऐसे भारतीय पैदा करे, जो किसी भी कोने से ऐंग्लो-सैक्सन संस्कृति से अलग नहीं दिखायी देते हों। मगर कुछ दिनों बाद लायल ने निराश मन से यह स्वीकार भी किया कि भारतीय नागरिक अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर भी अपनी देशी संस्कृति का मोह नहीं त्यज पा रहे हैं। वह अपने संकेतों से यह स्वीकार करता भी दिखाई देता है कि मैकाले का शिक्षा-मिशन भारत में फेल हो गया।

बेशक, मैकाले और लायल जैसे अंग्रेज शिक्षाविद् अपनी कोशिशों से जो कुछ प्राप्त करना चाहते थे, नहीं कर पाये, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास के इस तथ्य का अक्षर-अक्षर साक्षी है, कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध राष्ट्रीय संग्राम का नेतृत्व उसी वर्ग ने किया, जिसने मैकाले की नीति के अन्तर्गत अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी।

अंग्रेजों की दिलचस्पी अंग्रेजी शिक्षा के जरिये ऐसे क्लर्क पैदा करने में थी, जो ब्रिटिश साम्राज्य के मशीन रूपी ढाँचे में नट-वोल्ट का काम बड़ी कुशलता से करते रहें। यही कारण है कि आज़ादी से पहले की पीढ़ियों के पढ़े-लिखे भारतीय नागरिक अंग्रेजी संस्कृति में घुलने-मिलने में अड़चन महसूस नहीं करते थे।

असली समस्या स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद प्रारम्भ हुई। देश के कर्णधारों ने पूंजीवादी विकास और ऋणों पर आधारित उन्नति का मार्ग अपनाया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने "वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले आधुनिक भारतीय" की रचना पर तो जोर दिया, लेकिन पूंजीवाद और सामन्ती परम्परा के मौका परस्त तालमेल ने पं० नेहरू की घोषणाओं को खोखला साबित करके छोड़ा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधुनिक लोगों का समाज नहीं बन पाया। इस भटकाव के लिये अथवा सामाजिक पतन के लिये लार्ड मैकाले को जिम्मेदार ठहराना अनुचित होगा। इस पतन के वास्ते हमारी विकास नीति के रचनाकार जिम्मेदार थे, जिन्होंने देशी प्रणालियों को छोड़कर अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी शक्तियों के भरोसे पूंजी के वर्चस्व पर आधारित विकास की रूपरेखा तैयार की थी और देश में लागू की।

सुधारवादी आन्दोलन

उन्नीसवीं सदी में हिन्दू-धर्म के महान सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् 1824 में और देहावसान सन् 1883 में हुआ। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने भारत की दुर्गति के रोग का कारण पहचान लिया था। उन्होंने देखा कि धर्म-कर्म में, वेदों के अर्थ करने में, सामाजिक रचना में, जात-पात और ऊँच-नीच की कट्टर भावना से ग्रस्त हो, हर क्षेत्र में भारतीय समाज रूढ़ियों का शिकार हो गया है। उन्होंने इस रूढ़िता पर ऐसी चोट की, जो उन जैसा महापुरुष ही कर सकता था। ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर फिर रूढ़िवाद और बहुत हद तक बेतुके ब्राह्मणवाद का उन्होंने पर्दाफाश किया, यही उनकी और भी महानता की बात थी। हालाँकि उनसे बहुत पहले कबीरदास जी ने जो दो टूक शब्दों में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों में रूढ़िवादिता, धर्मान्धता तथा ऊल-जलूल मान्यताओं की बखिया उधेड़ी थी, वह तो अपने में बेमिसाल और लाजवाब था और आज भी प्रबुद्धवर्ग की जवान पर कबीर का नाम किसी न किसी सन्दर्भ में आ जाता है। इसी दिशा में तथा इसी शताब्दी के अन्तिम दशक में एक तीसरे महान समाज सुधारक, स्वामी विवेकानन्द का प्रार्दुभाव हुआ। उनका समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

महर्षि दयानन्द के प्रवचनों, सत्यार्थ-प्रकाश तथा आर्य-समाज आन्दोलन के प्रचार-प्रसार से उन्नीसवीं सदी में हिन्दू समाज के चिन्तन में काफ़ी परिवर्तन आये। और भी सुधारवादी आन्दोलन उन्नीसवीं शताब्दी में चलाये गये पर उनका कार्य क्षेत्र समाज में सीमित या प्रादेशिक ही रहा, जैसे सन् 1828 में बंगाल में श्री केशव चन्द्र सेन आदि महाशयों ने ब्रह्म समाज की स्थापना की थी। महर्षि दयानन्द की यह मान्यता थी कि वेदों का मंत्र भाग ईश्वरकृत और स्वत: प्रमाण हैं, राम-कृष्ण, अवतारी पुरुष नहीं, महापुरुष हैं। मूर्ति-पूजा अवैदिक है। जातिभेद जन्म से नहीं गुण-कर्मानुसार और परिवर्तनशील है।

इस शताब्दी में अनेक ऐसे महापुरुष हुये, जिन्होंने समाज-सुधार के नाम पर कोई मत-मतान्तर या आन्दोलन नहीं चलाये

पर व्यक्तिगत् रूप से वे बहुत कुछ कर गये, अपने समय में बहुतों को सुधार गये। जो वे सदा मानव जाति के उच्च आदर्शों के लिये प्रेरणा स्रोत रहेंगे। ऐसे महापुरुषों में एक दैदीप्यमान नाम है ईश्वरचंद विद्यासागर का, जो अत्यन्त कठिनाई और अभावग्रस्त जीवन में पढ़ कर इतने बड़े विद्वान बने, सादे इतने की एक रेलवे स्टेशन पर कुली के लिये परेशान अपने ही विद्यार्थी का छद्म वेष में निःशुल्क उसके लिये कुछ क्षण के लिये कुली कार्य सम्पन्न कर देना, उन जैसे महान व्यक्ति के लिये ही सम्भव है। ईश्वरचंद विद्यासागर ने बड़ी कठिनाइयों में रहते हुये विद्याध्ययन किया था, अतः उन्हें अन्य निर्धन छात्रों की कठिनाइयों का भी ध्यान सदा बना रहा। वे उनकी सहायता के लिये सदा प्रयत्नशील रहे।

उन्हें उस सस्ते के जमाने में, अध्यापक कार्य के लिये 500 रुपये मासिक वेतन मिलता था। उसमें से मात्र 50 रुपये से अपना परिवार खर्च चलाते और शेष धनराशि प्रति माह निर्धन छात्रों की सहायता के लिये खर्च करते रहते। वे विद्यासागर ही नहीं सही अर्थों में करुणासागर भी थे।

सौ वर्ष पूर्व-सन् 1893 में विश्व धर्म संसद के उद्घाटन पर स्वामी विवेकानन्द ने, शिकागो, अमेरिका में, तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उद्बोधन करते हुये कहा था, **"अमरीकी बहनों एवं भाइयों मुझे इस बात पर गर्व है कि मैं एक ऐसे धर्म से जुड़ा हूँ जो संसार को सहनशीलता तथा विश्वव्यापी स्वीकृति की शिक्षा देता है। हम विश्वव्यापी सहनशीलता में ही विश्वास नहीं करते, बल्कि सभी धर्मों को सच्चा भी समझते हैं।"**

तिलक महाराज तथा 'शिवाजी उत्सव' और "गणेश चतुर्थी उत्सव"

बहुत से विद्वानों का यह मत है कि बाल गंगाधर तिलक ने सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में एक व्यापक उदार दृष्टिकोण अपनाया था। जन-चेतना जागृत करने के लिये सामूहिक सम्बन्ध और भाईचारा मजबूत करने के लिये उन्होंने ही दो उत्सवों, **"गणेश चतुर्थी उत्सव"** तथा **"शिवाजी जयन्ती समारोह"** की शुरूआत करायी थी। माण्डले जेल से मुक्त होकर देश लौटने पर उस समय की उदार विचारधाराओं को स्वीकार करने में उन्होंने जरा भी संकोच नहीं किया। उन्होंने इंगलैंड़ जाते समय दलित और पिछड़े वर्गों के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की थी। उस समय तक उनमें एक परिवर्तन और आया कि वे किसी भी जाति वाले या धर्मवाले के साथ सहर्ष सहभोज कर लेते थे। सम्भवतः उनका यही परिवर्तित स्वरूप ऐसे लोगों के मस्तिष्क में था। इस मानवीय सहानुभूति को तिलक ने बड़ौदा के महाराजा की अध्यक्षता में हुये दलित वर्गों के सम्मेलन में एक प्रस्ताव पर बोलते हुये प्रकट किया था। **तब तिलक ने उद्घोषित किया था कि यदि भगवान यह कहे कि अस्पृश्यता उन्होंने ही चलायी है तो वे निसंकोच उस भगवान को भगवान नहीं मानेंगे।** (टी० वी० पर्वते, "बाल गंगाधर तिलक", अनुवादक भगवानदास गुप्त, अध्यक्ष इतिहास विभाग, बुन्देलखंड़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झांसी, पृ० 45)

डा० अम्बेडकर का अन्तिम निर्णय

हिन्दू धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करके डा० भीमराव अम्बेडकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जाति-व्यवस्था हिन्दू जाति की एक ऐसी अनिवार्य बुराई है जिसे किसी भी सुधारवादी आन्दोलन से दूर नहीं किया जा सकता और तब उन्होंने घोषणा की, **"हिन्दू धर्म में जन्म न लेना मेरे बस में न था, पर मैं हिन्दू के रूप में मरूंगा नहीं, क्योंकि यह मेरे बस में है। अति शीघ्र मैं हिन्दू धर्म तज़ दूँगा।**

वे घुट-घुट कर, ब्राह्मणवादी व्यवस्था से कदम-कदम पर अपमानित होते हुये और हिन्दू रह कर मरना नहीं चाहते थे। शायद वे प्रसिद्ध विद्वान **राहुल सांकृत्यायन** के इस कथन से सहमत हों कि **–"क्षणं प्रज्वलिंत श्रेयं नच धुमायते चिरं।"**

(भावार्थ) :- चिरकाल तक सुलगते रहने की अपेक्षा क्षणमात्र के लिये प्रज्वलित होना श्रेयकर है।

भारतीय दर्शन के अनुसार सब पदार्थों का आदि मूल परमेश्वर है, जो सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, अजन्मा, दयालु, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यमी आदि है और उसी की उपासना करनी चाहिए। उनकी उपासना का आधार चिन्तन है। मन का मैल तो चिन्तन उतारता है। भारतीय समाज में समाई खराबियों को दूर करना समाज सुधारकों का मुख्य लक्ष्य बन गया था। उस परिस्थिति को राष्ट्रकवि **श्री मैथिली शरण गुप्त** ने निम्नांकित कविता द्वारा व्यक्त किया है :-

" हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।"

कठोपनिषद में कहा गया है :-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्त वरोन्निबोध:
क्षुरस्य धारा निमिता दुरत्यया,
दुर्गम् पथस्तत् कवयो वदन्ति।।

(अर्थात्) हम जिस पुनर्जागरण जिस क्रान्ति की अपेक्षा कर रहे हैं उस पर पहुँचने का कोई छोटा रास्ता नहीं है, लेकिन सभी कठिनाईयों और खतरों के वावजूद हमें बड़ी हिम्मत और धीरज से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होना है।

राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त ने अपने शरीर त्यागने से कुछ घण्टे पूर्व रचित कविता द्वारा यह सत्योद्घाटित किया था

प्राण, न पागल हो तुम यों,
पृथ्वी पर है वह प्रेम कहाँ,
मोहमयी छलना भर है,
भटको न अहो, तुम और यहाँ,
स्वर्ग वही उपवर्ग वहीं,
सुख-सर्ग वहीं, निज वर्ग वहीं।।

उपर्युक्त पद से प्रतीत होता है कि महाकवि गुप्त जी ने प्राण-त्यागने से पूर्व यह भलीभाँति अनुभव कर लिया था कि हर प्राणी इस पृथ्वी पर परदेशी है, सच्चा प्रेम यहाँ अब कहाँ रखा है जहाँ उनका (आत्मा का) चिर स्थान है जो कि चिरगाँव (जहाँ जन्मे) नहीं है, वहीं जाने को, सारी दुनियावी माया-मोह तज़कर, वे आतुर हो उठे थे। वे एक तरह से अन्दर से टूट चुके थे।

भारतीय गणतंत्र के लिये संसदीय प्रणाली सर्वोत्तम

वर्तमान संसदीय प्रणाली हमारे देश के लिये सबसे अधिक उपयुक्त है, यदि राजनीति में देशभक्तों को ही सम्मान मिले और चुनाव प्रणाली साफ-सुथरी और निष्पक्ष हो। भारत जैसे बड़े राष्ट्र की रंग-बिरंगी क्षेत्रीय विविधताओं के लिए, उसकी एकता और अखंड़ता के लिये संसदीय प्रणाली ही सर्वोत्तम समझी गई है। भारत सार्वभौमिक सत्ता प्राप्त लोकतंत्रीय गणराज्य है। धर्म-निरपेक्षता, समाजवाद और राष्ट्र की अखंड़ता इसके प्रमुख स्तम्भ हैं जिस पर यह सब कायम हैं।

मतदाता मन-ही-मन सोचता है, उसने आजादी पाने से अब तक कितनी बार वोट दिया ? क्या इस बार का मतदान उसे स्वच्छ और समाजोपयोगी शासन-व्यवस्था वास्तव में दे पायेगा, ताकि उसकी छिनी जमीन, उसकी लुटी फसल और नई नौकरी उसको वापस मिल सकें। क्या उसका मत देश की रेल, जहाज, बस, दफ्तर, बैंक, स्कूल तथा अन्य कार्यालयों को नियमित और समय पर चलने को बाध्य कर देश के लाखों-लाख व्यक्तियों के समय-साधन को बचा पायेंगे और आत्मीय व्यवहार की अपेक्षा की जा सकेगी।

दृष्टिगोचर है कि भारतीय गणतंत्र के सभी प्रमुख आदर्श विकृत हो रहे हैं—समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, गुटों से अलग रहने की नीति, आत्मनिर्भरता, वर्ग-वर्ग और जाति-जाति में समता की निर्मल भावना आदि। और उन्हें रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य और शिक्षा के रूपों में ही लिया जाता है। वहाँ राष्ट्र और राज्य समानार्थी माने जाते हैं। उसका अस्तित्व राज्य सत्ता पर निर्भर करता है। अब उसे तकनीकी-आर्थिक (टैक्नो इकॉनॉमिकल) इकाई भी माना जाने लगा है। यही कारण है वहाँ सभी ओर स्वार्थपूर्ण स्पर्धा, संघर्षपूर्ण वातावरण ही पनपता रहता है।

भारत में राष्ट्र सदैव से एक सांस्कृतिक इकाई रही है। राष्ट्र उपास्य है, इष्ट है। सैकड़ों राज्यों, विभिन्न उपासना पद्धतियों, विभिन्न भाषाओं एवं विभिन्न वेष-भूषाओं के होते हुये भी भारत 'एक राष्ट्र' रहा है। हमारे ऋषियों ने संसार की प्रकृति प्रदत्त विविधताओं को बहुत सहज भाव से स्वीकार किया। किन्तु मनुष्य के अन्तःकरण में स्थित परिष्कृत चेतना को लक्ष्य करके सांस्कृतिक एकता के भाव भरे। 'मानवीय चेतना विज्ञान' के मर्मज्ञ ऋषियों ने अनुभव किया कि केवल भौतिक आधारों पर बनाये गये सम्बन्ध टिकाऊ-चिरजीवी नहीं हो सकते। मात्र भौतिक आधारों को प्रधानता देखकर चलने से स्वार्थ, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, शोषण आदि का समावेश देर-सवेर हो ही जाता है। इसीलिये उन्होंने अवधारणा को कालजयी बनाने के लिये सांस्कृतिक आधारों को ही प्राथमिकता दी। सांस्कृतिक सूत्रों को उन्होंने जन-जन के भावनात्मक स्तर तक गहराई से बिठाने में सफलता पायी। 'भारतभूमि' निर्जीव भूखंड़ नहीं है, एक चेतन सत्ता है, स्वर्गादपि गरीयसी है। यह सांस्कृतिक अवधारणा हर भारतीय की रगों में रक्त की तरह सतत् प्रवाहित है। इस अवधारणा का धारक ही इस देश का सच्चा नागरिक है चाहें उसका धर्म कुछ भी हो इन्हीं समस्याओं का अभी तक सरकार पूरी तरह शहरों में भी हल नहीं कर पायी है तभी गांवों, कस्बों और दूर-दराज़ के रेगिस्तानों वन-खण्डों और पर्वतीय इलाकों में तो यह और भी वीभत्स रूप लिये हुये हैं।

हमें फिर भी हिम्मत नहीं हारनी है। स्वच्छ नेतृत्व को ही अपना मत और प्रोत्साहन देना है। देश हित के सभी आवश्यक

राष्ट्र को अपने त्याग, बलिदान सहयोग के द्वारा सबल बनाना है, राष्ट्र को महानतम् बनाना हरेक नागरिक का लक्ष्य हैं। किसी कवि की इन पंक्तियों से प्रेरणा लेकर उसे अपना दायित्व निभाना है :-

उद्घोषणा किन्तु सुनो हे बन्धु,
मैं स्वयं ही भाग्य का निर्माता रहा हूँ,
न किसी का का दास न दासता को स्वीकार करता हूँ।

सर विलियम जान्स, लार्ड क्लाइब, वारेन हेस्टिग्ज़ और महाराजा नन्दकुमार को फांसी

सन् 1757 में प्लासी का निर्णायक युद्ध बक्सर में हुआ, जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत की अधिराज हो गई। खासकर सम्पूर्ण बंगाल अंग्रेज़ों की अधीनता में चला गया : सन् 1783 में कलकत्ते में फोर्ट विलियम उपनिवेश में एक प्रधान न्यायाधीश आये, उनका नाम था सर विलियम जॉन्स। उन्हें संस्कृत पढ़ने और सीखने में बड़ी दिलचस्पी थी। वे संस्कृत सीखने में लग गए। वे संस्कृत के इतने ज्ञाता हो गये कि महाकवि कालिदास के अति प्रसिद्ध काव्य नाटक **'अभिज्ञान शाकुन्तला'** की और मनुस्मृति का अंग्रेजी में अनुवाद किया। यह घटना सन् 1794 के आस-पास की है। इसी वर्ष इस विद्वान, **सर जॉन्स** का स्वर्गवास भी हो गया।

जिस समय **लार्ड राबर्ट क्लाइव** ने देहली के **मुगल सम्राट, शाह आलम से बंगाल की दीवानी** की सनद पायी थी उस समय उसके द्वारा मुगल सम्राट को बंगाल की सूबेदारी की आय से तीन लाख पौंड दिये जाते थे। इतिहास लेखकों का मत है कि **'क्लाइब'** ने इस देश में, **'ईस्ट इंड़िया कम्पनी'** के साम्राज्य की नींव रखी तो **'वारेन हेस्टिंग्ज़'** ने उसे सुदृढ़ बनाया।

वारेन हेस्टिग्ज़ ने कलकत्ता में **प्रधान दीवानी** अदालत स्थापित की और उसका नाम रखा **'सदर दीवानी'** अदालत। **'सदर दीवानी'** के मातहत प्रत्येक जिले में भी एक-एक फौज़दारी एवं दीवानी अदालतें खोली गई। 'सदर दीवानी अदालत' का अंग्रेज़ी समानार्थी नाम था स्प्रीम कोर्ट, जो उस समय कलकत्ता में स्थित थी, और वहीं अंग्रेज़ों ने सर्वप्रथम अपने शासन क्षेत्र की राजधानी बनाई। **फौज़दारी मामलों में प्राणदण्डाज्ञा की मंजूरी प्रत्येक ज़िले की फौज़दारी** अदालत को **"सदर दीवानी अदालत"** अथवा स्प्रीम कोर्ट, कलकत्ता से लेनी पड़ती थी। उस समय जिले के दीवानी मुकदमों की अपीलें भी कलकत्ता ही में दायर की जाती थीं।

पहले ब्राह्मण को भारत में प्राणदंड़

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की अमलदारी में एक ब्राह्मण, को जिनका नाम महाराज नन्द कुमार था जाली दस्तावेज़ आदि बनाने **के आरोप में, लार्ड राबर्ट क्लाइब के शासन काल में, प्रथम बार फांसी लगी थी। महाराज नन्द कुमार को** 5 अगस्त् 1775 को फांसी लगी थी। इससे सारे देश के प्रबुद्ध ब्राह्मण समाज में **'जो कभी न होता था वह अंग्रेजों ने कर दिखाया'** देखकर-सुनकर बड़ी उत्तेजना पैदा हुई थी। पर यह उत्तेजना दूध में आये उबाल जैसी थी। उस जमाने के पत्र-पत्रिकाओं में ब्राह्मणों के नेताओं ने यहाँ तक लिखा कि भात खोर बंगाली ब्राह्मणजन विप्र श्रेष्ठ महाराज नन्दकुमार को फांसी की रस्सी पर लटकते देखकर फूट-फूट कर रोये अवश्य, पर वे इतना साहस न जुटा पाये कि सामूहिक रूप से एक ब्राह्मण की प्राण-रक्षा के लिये मिलकर आत्मोत्सर्ग कर देते। पर बंगाल के ब्राह्मण उस समय मान-मर्यादा को भूलकर धनदास बन चुके थे। यहाँ तक कि लार्ड मैकाले ने क्लाइब के महाभियोग के दौरान कहा था-**"वहाँ तब वास्तव में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो कि अपने देशवासियों के लिये संघर्ष की एक भी चोट करता-**"There was indeed not a single person to strike one blow for their countrymen." उस समय तक ब्राह्मणों की मानसिकता बन गयी थी कि चाहे उसने कितना भी घोर दण्डनीय अपराध क्यों न किया हो, कोई भी ब्राह्मण को फांसी पर चढ़ाने की शासन इस देश में जुर्रत नहीं कर सकता। वह फिर ब्रह्म-कोप से नेस्तनावूद हो जायेगा, पर ईस्ट इंड़िया कम्पनी का शामियाना इस काण्ड के बाद घटने के बजाय फैलता गया और अगले 70-75 वर्षों में उसका इतना विस्तार हुआ कि सारे देश का शासनतंत्र अंग्रेजों के हाथों में चला गया। यह फांसी एक व्यक्ति विशेष की नहीं थी। वास्तव में उस काल के ब्राह्मण-दम्भ को फांसी पर लटकाया गया था। ऐसा महाराज नन्दकुमार के सजातियों ने अनुभव किया था। अभी भी नेपाल में हर जाति के अपराधी को प्राणदण्डनीय अपराध करने पर फांसी की सजा दी जाती है पर यदि वह ब्राह्मण है तो उसे फांसी का दण्ड नहीं दिया जाता है।

जब जाति का हृदय सरोवर सूखता है तो वह रचना को छोड़कर आलोचना में जा फँसती है। हिन्दुओं का भी यही हाल हुआ। महर्षि अरविन्द घोष के अनुसार छठी सदी के बाद रचना कम आलोचनायें ज्यादा हुई, तथा समाज का सर्वांगीण पतन होता चला गया।

पृथ्वी भर के मनुष्यों की जाति एक है। शास्त्रकार कहते हैं-**"समान प्रसवात्मिका जाति", अर्थात्** जिसका एक ही रीति **से प्रसव हो वही एक जाति है। वास्तव में विश्वभर के मानव एक जाति के हैं। उनमें** अन्यान्य वर्गीकरण **मनुष्यकृत हैं।**

अध्याय – 8

बीसवीं सदी का हिन्दू समाज

विश्व इस बीसवीं सदी में बड़ी विषम परिस्थितियों से होकर गुजर रहा है। इस सदी में दो विश्व महासमर हो चुके हैं और विश्व में कहीं न कहीं छोटे-मोटे अन्य युद्ध हो ही रहे हैं। समूची मानव जाति प्राकृतिक एवं स्व-निर्मित विभीषिकाओं के बीच जी रही है। गंभीरतापूर्वक खोजने पर पता चलता है कि नीति-नियमों की मर्यादा का उल्लघंन ही व्यक्ति के निजी एवं सामाजिक जीवन में अनेकानेक आधि-व्याधियों, क्लेश-कलहों, विक्षोभ-विद्रोहों, अभाव, अतिक्रमण का निमित्त बना हुआ है। शरीर का असंयम,मस्तिष्क का असंतुलन, आलस्य का उत्कर्ष समृद्धि का अपव्यय, अनुदारता एवं अनाचार सहयोग-सद्भाव का मार्ग अवरुद्ध करता है।

संकटों और विग्रहों के मूल में साधनों की कमी कारण लगती है पर वस्तुत: व्यक्तियों का पिछड़ापन एवं निकृष्टता गरीबी, बेकारी आदि समस्यायें जितनी जल्दी हल की जा सकें उतना ही अच्छा है किन्तु साथ ही एक बात और भी ध्यान में रखी जानी चाहिये कि मात्र इनका निराकरण कर देने पर भी व्यक्ति या समाज के सुखी-समुन्नत होने की आशा नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिये फ्रांस, अमेरिका, ब्रिटेन जैसे समृद्ध देशों को लिया जा सकता है। वहाँ भौतिक सुख-साधनों की प्रचुरता रहते हुये भी कुत्सायें और कुण्ठायें पिछड़े देशों की तुलना में कहीं अधिक ही हैं। इसके विपरीत जापान जैसा छोटा देश अपनी नैतिक विशिष्टता के कारण स्वल्प साधनों से ही समुन्नत जीवन जी रहा है। अत: साधनों की बहुलता को महत्त्व देते हुये भी यह भुलाया नहीं जाना चाहिये कि अन्तत: मनुष्य ही उपार्जन और उपभोग का मुख्य हेतु है। यदि उस केन्द्र में पिछड़ापन घुसा बैठा रहा तो भ्रष्ट चिन्तन एवं दुष्ट आचरण के नज़ारें दीखते रहेंगे और मानव-सामर्थ्य का अवांछनीय प्रयोजनों में उपयोग होने से अनेकानेक संकट उत्पन्न होते रहेंगे। देश-विदेश में आज अशान्ति का यही प्रमुख कारण है।

एक ऐसे राष्ट्र के स्थान पर जिसमें लोग देने से सुख की अनुभूति करते थे, जिनके मन शान्त थे इच्छायें मन के वशीभूत थीं, आज जबकि हम 21 वीं सदी के प्रवेश द्वार तक चन्द वर्षों में पहुँचने वाले हैं, एक अत्यंत असुरक्षित और लालची लोगों का देश बनते जा रहे हैं। हमने धन और सत्ता से प्रेरित उन राजनीतिज्ञों और उन नवधनाढ्य लोगों की जीवन-पद्धति पर चलना प्रारम्भ कर दिया है जो अनुचित ढंग से कमाए धन का प्रदर्शन करते हैं। जब गलत तरीके से पैसा कमाया और जोड़ा जाता है तो लोग तरह-तरह की बातें भी करते हैं जिनसे मन को दु:ख होता है और यह डर भी बना रहता है कि कहीं कोई रिश्तेदार, पड़ौसी या कर्मचारी कोई शिकायत न कर दे और सरकार का शिकंजा उस शिकायत के आधार पर कस न जाए। ये सब बातें मन पर बोझ बनती हैं और हृदय रोगों को निमंत्रण देती है। यह बात भूली नहीं जानी चाहिए, यद्यपि लोग इसे भुलाने पर लगे हैं, कि लालच ही हर बुराई की जड़ है। भारतीय नीतिकारों ने तो लालच को 'पाप का बाप' कह कर सम्बोधित किया है और हमारे महापुरुषों ने लालच के दुष्परिणामों को ध्यान में रखकर ही यह सूक्ति कही है कि :

माखी गुड़ में गड़ रही पंख रहे लपटाय।
हाथ मले और सिर धुने लालच बुरी बलाय।।

यह लालच या लोभ-रोग इधर एक-दो दशकों में कैंसर की भाँति हमारे राष्ट्र-शरीर में तेजी से फैला है। परिणामस्वरूप हमनें अपनी कर्मसंहिता को तज़कर अपने कर्मक्षेत्र में उत्कृष्टता की खोज को छोड़ दिया है। हम आज अनैतिक तरीके से कमाये धन को ठिकाने लगाने और वैसे भी प्रभावित होकर प्रश्चिमी उपभोक्तावाद का पूर्णतया शिकार हो गए हैं। इस प्रकार हमारे पास हमारी सामाजिक और सार्वजनिक जीवन पर प्रभाव डालने वाली समस्याओं के हल के लिए सोचने की न तो मनोवृत्ति है और न ही समय। यह लिखना ही असंगत न होगा कि आज ऐसा लगता है कि देशद्रोह की परिभाषा आजकल बहुत सीमित होकर किताबों वाली नहीं रह गई है। देश को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से तोड़ने की कोशिश करना देशद्रोह नहीं है। बल्कि नशीली दवाओं, सोने-चाँदी और हथियारों की स्मगलिंग, महत्त्वपूर्ण सूचनाएं शत्रु को लोभ वश पहुँचाना, अपने सच्चे नागरिक दायित्व का ईमानदारी से पालन न करना और टैक्सों की चोरी करना, चुनाव प्रक्रिया में तरह-तरह का गोलमाल करना आदि भी देशद्रोह और देशघात की परिधि में आते हैं।

दर्शन युग के परिवेश में बदलाव लाता है

'दर्शन' एक ऐसी समृद्ध चिंतन प्रणाली प्रस्तुत करता है, जिससे समाज एवं समस्त विश्व का समग्र विकास हो सके। सुकरात की 'दर्शन शास्त्र' की यही परिभाषा थी। सन् 1896 में हॉवर्ड विश्वविद्यालय की स्नातक दर्शन परिषद के सम्मुख देते हुये भाषण में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि जिसमें व्यावहारिकता हो, जिसमें समाज को मार्गदर्शन प्रदान करने का सामर्थ्य हो, जो सम्पूर्ण जीवन-शैली को प्रभावित करता हो, सही अर्थों में वहीं सच्चा दर्शन है, शेष सभी विचारधारायें हैं।

सिर्फ गांधी जी के अनुयायीगण् ही दोषी नहीं है बल्कि ईमानदारी से देखा जाय तो हम सब भी उस दोष से मुक्त नहीं हैं। आज के भारत के हालात पर गौर करके बड़ा आश्चर्य होता है। कोई नया व्यक्ति यकायक इस देश में बाहर से आकर, यह सब देखे तो उसे आश्चर्य होना स्वाभाविक है कि क्या इसी देश में लगभग एक अर्ध सदी पूर्व तक गाँधी जी कार्यरत थे और यही उनकी कर्मभूमि रही,यहीं उनकी रहनुमाईमें अंग्रेज़ों से स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी गई। क्या इस धरती के पूत रवीन्द्रनाथ टैगोर, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार बल्लभभाई पटेल तथा अरविंद जैसे थे ? क्या सचमुच इसी भूमि पर बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त कर सारे विश्व को नये प्रकाश से अवगत् कराया था ? चौबीसों तीर्थंकर सहित महावीर क्या इसी भूमि पर अहिंसा का मार्ग प्रशस्त करने में सारे जीवन लगे रहे ? क्या इस देश की अस्मिता सुरक्षित रखने के लिये गुरू गोविन्द सिंह ने अपने बच्चों को जिन्दा दीवार में चुनवा दिया था ? वीर शिवाजी का शौर्य और देश के अधिकतर भाग को विदेशियों के चंगुल से स्वतंत्र करा लेने वाले अनेक कीर्तिमान क्या इसी माँ-वसुन्धरा से सम्बंधित थे ? किसे-किसे गिनाया जाये एक से एक बढ़कर इस माँ के बेटे-बेटियों ने समय-समय इस माँ के आँसू अपने सुकृत्यो से पोंछे हैं और उसका सिर अभिमान से ऊँचा करने के ऐतिहासिक अवसर प्रस्तुत किये हैं।

पर अब क्या हो गया है ? क्यों हम अपने आदर्शों से विचलित होकर दिशा भ्रमित हो गये हैं ? **हमको मनुष्यता से देवत्व की ओर बढ़ना था, हम क्यों मनुष्य से भी अधम होते जा रहे हैं ? हत्याएँ करते है, बहुओं को दहेज के लालच में जला डालते हैं। मासूम बच्चियों तक से पशुता प्रदर्शित कर उनकी हत्या कर डालते हैं। नफ़रत और स्वार्थ का सर्वत्र बोल बाला है ईमानदारी और शुद्धता अतीत की बातें हो गई हैं। हमनें अपने मन को गन्दा किया है, फिर बाहर गन्दगी फैलाने के क्रम नगर-कालोनी में अपना परिवेश, नदी-नाले सबमें गंदगी ही छोड़कर उन्हें इतना प्रदूषित कर दिया है कि जन-जीवन खतरे में पड़ गया है।** जंगलों के रूप में वातावरण को स्वच्छ रखने की ईश्वरीय देन भी हम बड़ी बेरहमी से काटते जा रहे हैं। घास लगाने, अन्न उपजाने, घर बनाने आदि के लिये प्रतिदिन भारी संख्या में डालर ऋण में ले रहे हैं। कोई देश के कर्णधारों से पूछे कि कर्ज़ लेकर भला कोई सम्पन्न कैसे होगा ? बेटका सा जवाब देते हैं—**"इंतजार करो और देखो।"**

कतिपय नवीन चिंतन देकर दार्शनिक बन बैठना-यह पश्चिम की पद्धति और देन है। भारत जैसे पूर्वी देशों में तो दर्शन समाज परिवर्तन का सुनिश्चित आधार माना जाता है। **गाँधी जी ने ग्रामोद्योग पर आधारित जो दर्शन दिया था और कहा था कि हर हाथ को काम और हर पेट को अन्न, इसी के अनुसरण से सच्ची देशोन्नति सम्भव है।** आज गांधी जी के राजनैतिक उत्तराधिकारी चाहे इस दर्शन का पालन पूर्णतया नहीं कर रहे हैं या यों कहें कि नही कर पाये पर विद्वानों का मत है कि इस देश की परिस्थितियों को तथा अन्याय समस्याओं को देखते हुये इसका आर्थिक स्वावलंबन इसी के द्वारा प्राप्त किया जा सकेगा। आज गांधी का उत्तराधिकारी देश की हर समस्या के समाधान हेतु इण्टरनेशनल मानेटरी फंड के दरवाज़े पर कटोरा लिये खड़ा हैं। डन्कल प्रस्ताव, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर निर्भर होता जा रहा है। इस समय गर्म-चर्चा का विषय बना हुआ कि भारत सरकार, धातुओं की कतरन और टूटन (Metal Scraps), प्लास्टक छीजन (Plastic Wastes) और गोबर (Cow dung) का विदेशों से आयात करने की सोच रही है। खैर प्रथम दो वस्तुयें वे निर्यात कर लें, पर गोबर को लेकर कृषक-जगत में तहलका मच गया है। इसकी क्या कमी है देश में ? हरियाणा के किसान तो यहाँ तक सोच रहे हैं कि वे अपने जानवरों के टनों गोबर का ढ़ेर संसद भवन के प्रवेश द्वार पर लगा देंगे, जिससे वे संसद सदस्यों और वित्त विभाग के मंत्रीगणों और अधिकारियों के ज्ञान-चक्षु खोल सकें, और विदेशी गोबर का देश में आना रोक सकें। एक समय था, जब संपूर्ण विश्व में मार्क्सवाद की बड़ी धूम थी। उसने अर्थतंत्र से सम्बंधित ऐसी सशक्त विचारधारा दी थी कि विश्व के आधे से अधिक देशों में उसकी तूती बोलती रही। इसने एक नयी समाज व्यवस्था का प्रतिपादन किया था जोकि **'समाजवादी समाज-व्यवस्था'** के नाम से प्रसिद्ध हुई। अनेक समाजवादी देश विश्व पटल पर उभर कर आये। पर रूस में जो कुछ दो वर्षों से घटा है, संयुक्त सोवियत सोशलिस्टिक रिपब्लिक टुकड़े-टुकड़े होकर सत्ता के अधिग्रहण हेतु ग्रह-युद्ध में फंस कर अत्यन्त दुर्बल राष्ट्र बनकर रह गया है। इतनी तेजी से मार्क्सवाद का सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ रहा है कि इसका आगे क्या दयनीय हाल होगा अभी अन्दाज़ा लगाना त्रुटिपूर्ण हो सकता है। आज एक अमेरिकन डालर से रूस के एक हजार छः सौ रूबल्स भी कम पड़ते है। इतनी खराब अर्थव्यवस्था तो चीन में चांग काई शेक के जमाने में भी न हुई थी।

ईसा के दर्शन को या मोहम्मद साहब के दर्शन को जब लोगों ने हृदयंगम किया तो दुनिया में क्रमशः ईसाइयत और इस्लाम

धर्म फैले। दार्शनिक रूसो एक मौलिक चिंतक थे। अपने जमाने की राजशाही की तानाशाही, निरंकुशता और शोषण पर आधारित व्यवस्था देखी तो उनका दार्शनिक हृदय हाहाकार कर उठा। उन्होंने 'डेमोक्रेसी' का दर्शन दिया। आज वह 'डेमोक्रेसी' या प्रजातन्त्र का दर्शन सारे विश्व पर छाया हुआ है। अमेरिका के शहर गेटिसवर्ग के उस ऐतिहासिक स्थान को इस लेखक ने भी देखा है जहाँ पर तात्कालिक अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अमर भाषण में 'डेमोक्रेसी' की परिभाषा देते हुये कहा था-"It is a government of the people, for the people and by the people."

बुद्ध अपने काल के युग प्रवर्तक मनीषी थे। उन्होंने जब समाज के जरा-जीर्ण कलेवर को देखा, उनका हृदय द्रवित हो गया। बुद्ध ने जब उस दुःखपूर्ण परिवेश में अपने को देखा तो वे घोर वितृष्णा से ग्रसित हुये। दर्शन ऐसी गहरी चोट से ही उत्पन्न होता है। उस काल की विसंगतियों से गौतम बुद्ध को इतनी घृणा हुई कि उन्होंने समाज को एक अभिनव सूत्र दिया-"बुद्धं शरणं गच्छामि"-"बुद्धि की, विवेकशीलता की, समझदारी की शरण में आओ।" "संघं शरणं गच्छामि।" अर्थात्-"संघबद्ध होकर कार्य करो-अपनी डफली, अपना राग मत गुनगुनाओ, समाज की सेवा संगठित होकर करना और सुलभ है-यह उदपीड़ित जनता को उनका प्रथम पाठ था। "धम्मं शरणं गच्छामि"-आज का जो सर्वोपरि धर्म-समाज सेवा है, उसे समझो और ग्रहण कर लो-इसका उपदेश दिया। बुद्ध के बाद भी कई दर्शन इस भारत-बसुन्धरा पर प्रतिपादित हुये पर बुद्ध-दर्शन की तुलना में वे सब बहुत हल्के बैठते हैं, परिणामतया बौद्ध दर्शन ने देश-विदेश में प्रभाव छोड़ा वह आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। डाक्टर बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के कारण इस देश में बौद्ध साहित्य में दलितों का प्रवेश प्रारम्भ हो चुका है। यदि सनातन ब्राह्मणों ने अपनी रुढ़िवादिता और हठधर्मी न तजी और उनकी ऊँच-नीच वाली चत्वर वर्ण व्यवस्था चालू रही तो देश का बहुजन समाज भी 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का जयघोष करते उसी दिशा में चल पड़ा तो देश फिर बुद्धमय हो सकता है। यह होना या न होना फिलहाल ब्राह्मणों के भावी दृष्टिकोण पर निर्भर करेगा। पर यह निश्चित है कि हिन्दू समाज के एक बड़े वर्ग का शोषण और अपमान अब ब्राह्मण आगे सहज रूप से न कर सकेंगे जैसा हज़ारों वर्षों से करते चले आये हैं।

वर्तमान में सर्वत्र अराजकता और अव्यवस्था का बोलवाला इसलिये नज़र आ रहा है, क्योंकि आज दर्शन के नाम पर वितंड़ावाद का बर्चस्व मज़बूत होता जा रहा है। वस्तुतः भारतीय आध्यात्म में ही इतनी शक्ति है कि वह जीवन के अंतिम ध्येय तक व्यक्ति को पहुँचा सकने में सक्षम है। पर आज भारतीय आध्यात्म इसलिए असहाय प्रतीत होता है क्योंकि इन दिनों पूर्वी आध्यात्म कथन, श्रवण एवं मानसिक क्रीड़ा जैसा विषय बन कर रह गया है। इसलिये भारतीयों को अपनी समस्याओं के समाधान के लिये भारतीयता को आध्यात्म-मुखी होना होगा। इतिहास साक्षी है कि भारतीय आध्यात्म में जो सद्भाव से जितना गहरा उतरता है उतना ही अधिक उसे अपने जटिल प्रश्नों के हल मिल जाते हैं और समस्याओं के निराकरण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

भारतवर्ष में, विशेष करके हिन्दू समाज में बीसवीं शताब्दी के दौरान काफ़ी कुछ बदलाव आया है, जितना कि पूर्व की अनेक शताब्दियों में कुल मिलाकर न हो सका था, फिर भी अभी इसमें समता स्थापित करने के लिये, समान अधिकार और आपस में सद्भाव आदि कायम करने के लिये बहुत कुछ तब्दीली होना बाकी है। अब्राह्मण जातियों को अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में ब्राह्मण-वर्ग द्वारा कदम कदम पर ऐहसास कराया जाता था कि वे हर बात में ऊँचे हैं, समाज में सर्वश्रेष्ठ हैं और अब्राह्मण जातियाँ उनसे नीची हैं, उनके अधिकार कम हैं और सीमित हैं। उपरोक्त कथन का भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् अब 46 वर्ष बाद कठोरता से अमल काफ़ी कुछ घटा है, पर यह कहना त्रुटिपूर्ण होगा कि ये बातें बिलकुल समाप्त हो गयी हैं और वे आगे किसी अन्य नये रूप या कलेवर में सिर न उठायेंगी। लगभग 10 प्रतिशत ब्राह्मणों को जमाने के अनुसार बदल जाना चाहिये और औरों का अनादर करना शीघ्र बन्द कर देना चाहिये अन्यथा कदम-कदम पर उन्हें बहुसंख्यक वर्ग से उनकी गलती के कारण अपमानित होना पड़ेगा।

कहने का तात्पर्य है कि जो बातें आठ-नौ दशकों पहले समाज में आम बातें थीं, आज वे दोहरायी नहीं जाती। उदाहरणतया लगभग एक शताब्दी पूर्व लोकमान्य तिलक को, जो स्वयं कोंकणस्थ ब्राह्मण थे, बनारस जाकर प्रायश्चित करना पड़ा था, नहीं तो वे समाज से बहिष्कृत कर दिये जाते, क्योंकि उन्होंने एक ईसाई धर्म संघिनी (Nun) के हाथों से चाय का प्याला लेकर चाय पी ली थी, और वह चाय वास्तव में एक ऐसे व्यक्ति द्वारा बनायी गई थी जोकि उस जमाने की रुढ़िवादिता के अनुसार नीची 'महार' जाति में जन्मा था। इसी प्रकार श्री गोविन्द रानाड़े को इसी तरह के किसी अन्य नियम-उल्लंघन के लिए 1। रुपया का दंड़ प्रायश्चित स्वरूप एक तत्कालिक शंकराचार्य ने तय किया था, अन्यथा वे जातिभ्रष्ट घोषित कर दिये जाते (अमूल्य गाँगुली, पेरिलस ऑफ रिलीज़न' 'दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली)।

विज्ञान की एक से एक आश्चर्यजनक नवीनतम खोजों के परिणामस्वरूप यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि दुनिया ने जितनी उन्नति इस बीसवीं सदी के दौरान की है, उतनी उन्नति तो सब मिलाकर गत् उन्नीस शताब्दियों में भी नहीं की होगी। वायुयान के सम्बन्ध में की गई नयी-नयी खोजों का उदाहरण देखिये कि कई सदियों पूर्व कोलम्बस को नई दुनिया तक पहुँचने का गन्तव्य स्थान (इंडिया) भारतवर्ष था पर वह पहुंच गया अमेरिका, और वह उसी को इंडिया समझकर वहाँ के मूलनिवासियों को उनके

शरीर के वर्ण (रंग) के आधार पर उन्हें रेड-इंडियन नाम दिया। वहीं आज के जमाने में कान्कोर्ड विमान द्वारा लंदन से घर से नाश्ता करके चलने वाला यात्री अमेरिका में पहुँचकर दोपहर का भोजन करके एवं किसी आवश्यक मीटिंग आदि में भाग लेकर रात का भोजन फिर अपने घर लंदन में अपने परिवार के साथ करने लगे। विज्ञान के टेलीविज़न -कार्यक्रम ने दुनिया को एक माने में मानव के लिये काफ़ी छोटा कर दिया है।

उपग्रहों की सहायता से आज विश्वभर का टेलीविज़न कार्यक्रम दुनियाँ के किसी भी कोने में, यहाँ तक कि बिहार प्रदेश की झुमरी तलैया में भी एक साथ देखा जा सकता है। उपग्रहों की मदद से हम मौसम विभाग की स्थानीय मौसम खराब होने की पूर्व जानकारी समय रहते पा सकते हैं। कम्प्यूटर के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन और खोजें होती जा रही है।

चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में भी आयुर्वैज्ञानिक ऐसी-ऐसी कामयाबी प्राप्त करते जा रहे हैं जिन पर दृष्टिपात करने पर आश्चर्य का कोई पारावार नहीं रहता। अंधों के स्वस्थ आँखे लगाई जा रही हैं, शरीर के नाकारा अंग जैसे गुर्दे, खास-खास शरीर की हड्डियाँ आदि तक बदल कर इन स्वस्थ अंगों को सफलतापूर्वक बदलना आम बात होती जा रही है। यहाँ तक कि गत् माह भारतवर्ष में प्रथम बार दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्था-में डाक्टर कुंडू के नेतृत्व में डाक्टरों की एक टीम ने सफलतापूर्वक एक रोगी मनुष्य का दिल एक दुर्घटना में तत्काल मरी किसी स्त्री के दिल से बदला है। आप्रेशन के बाद वह मनुष्य पूर्णत: स्वस्थ और साधारण जीवन के सभी आनन्द का भोग कर रहा है।

यह जानकर आश्चर्यचकित होने की जरूरत नहीं है, कि जापान में आजकल सड़कों की सफ़ाई और ट्रैफिक कंट्रोल अब आदमियों की बजाय रोबोट (Robots) करने लगे हैं। सड़कों की सफ़ाई करके, कूड़ा-कचरा इकट्ठा करते हैं। और ट्रक में डालते हैं। यही नहीं अस्पताल की नर्सें भी रोगियों और उनके बिस्तरों को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने के लिए रोबो की ही मदद लेती हैं। केवल इतना ही नहीं जापान में कुछ पावर स्टेशनों में विशेष करके न्यूकिलर पावर प्लांटों में विद्युत उत्पादन तथा कठिन समझा जाने वाला जोखिम भरा काम भी रोबो से करवाया जाता है।

पाठक यह जानकर हैरान न होंवे कि चार लाख डालर की लागत से तैयार किया गया "रोबो सान" नामक रोबो अब जापान के योकोवामा नामक नगर की श्मशान भूमि में वह एक बौद्ध-भिक्षु की तरह मृत जापानियों का अंतिम संस्कार प्रचलित पद्धति के अनुसार भी कराने लगा है। यह रोबो होंठ, नेत्र और हाथ सभी का आवश्यकतानुसार प्राकृतिक बौद्ध भिक्षु की तरह प्रयोग करता है और वैसा ही आभास मृत-जापानी व्यक्ति के उपस्थित परिजन, स्वजन एवं दर्शकों को होता है। इस तरह 16 विभिन्न मुद्राओं में विधिवत अंतिम संस्कार सम्पन्न करा सकता है।

इससे भी अधिक चकित कर देने वाला समाचार यह हैं कि जापानी विशेषज्ञ अब ऐसे रोबो को तैयार करने में लगे हुये हैं जो इक्कीसवीं सदी में पहुँचते-पहुँचते घर के दिनानुदिन के सारे काम-काज भी वह स्वयं कर सके। ये सब आविष्कार इसलिये भी करना आवश्यक समझे जा रहे हैं कि जापान में अभी भी कर्मकारों (लेबर) की बड़ी कमी है। आगे यह लेबर की कमी और अधिक होने वाली है। एक तरफ भारी संख्या में लोग बूढ़े होते जा रहे हैं ओर दूसरी तरफ स्वत: परिवार नियोजन को सख्ती से पालन करने से देश की जन्म दर दिनों दिन गिरती जा रही है और अत्यधिक कम हो चुकी है। युवाओं की संख्या स्वाभाविक रूप से घट रही है। इसलिये जापान में ऐसी वैज्ञानिक विधियों को खोजा और अपनाया जाना आवश्यक महसूस किया जा रहा है जो नई-और युवा पीढ़ी का विकल्प सिद्ध हो सकें, युवाओं की जगह उन जैसा या उनसे बेहतर काम कर सकें।

किन्तु अपने देश भारत की स्थिति जापान से कई बातों में भिन्न है। यहाँ जन्म दर बहुत अधिक है, मृत्यु दर काफ़ी घट चुकी है, परिणामतया यहाँ हाथ तो बहुत बढ़ते जाते हैं, मगर उन सबके लिये रोजगार, अन्य काम उपलब्ध नहीं है। देश के बँटवारे के समय साझे भारतवर्ष की आबादी 40 करोड़ के करीब थी, विभाजित भारत की सन् 1947 की लगभग 30 करोड़ की आबादी अब मात्र 47 वर्षों के उपरान्त बढ़कर 90 करोड़ की जनसंख्या के आकड़े को भी पार कर गई है। यही जन्म दर कायम रही तो इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करते-करते इस देश की आबादी 100 करोड़ को जरूर पार कर चुकी होगी। इस जनसंख्या विस्फोट का कुपरिणाम सबके सम्मुख है सब देख रहे हैं। आज देश के 60 प्रतिशत लोग गरीबी-रेखा के नीचे रहकर नारकीय जीवन जी रहे हैं। अत: जनसंख्या विस्फोट पर अंकुश लगाना परमावश्यक है। भूखे-नंगे, अशिक्षित, अस्वस्थ तथा अभावों से ग्रस्त नागरिकों से शान्ति, उच्च मानव-मूल्यों का जीवन में आचरण करने की अपेक्षा करना मृगतृष्णा मात्र होगा। कुरमी जाति के लोग जो इस देश की कुल जनसंख्या के लगभग 10 प्रतिशत तक हैं उन्हें उपर्युक्त खतरों से सर्तक रहते हुये उनके समाधान पर दृढ़ता से आचरण करते हुये उन्नति करना है। यही उनके हित में है और यही देश हित में भी है।

सांस्कृतिक धरोहर का बचाव एवं देखरेख

यह सर्वविदित है कि प्रसिद्ध सम्राट हर्षवर्धन के शासन-काल में, सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के दौरान मशहूर चीनी बौद्ध यात्री

ह्येनसांग (Hieun-Tsang) ने भारत के अधिकाधिक उत्तरी एवं उत्तरी पश्चिमी भाग और पूर्वी अँचलों का भ्रमण किया था। उसका इस भ्रमण का मुख्य अभिप्राय था कि उन सब पवित्र स्थलों पर जहाँ पर भगवान बुद्ध को समर्पित पूजा स्थलों, बिहारों या संस्थागारों आदि का निर्माण किया गया है, वहाँ वे स्वयं जाकर अपने तथा चीनी देशवासियों की ओर से श्रद्धा सुमन अर्पित कर सकें और उन स्थानों तथा वहाँ के बौद्ध धर्मावलम्बियों के बारे में अधिकाधिक जानकारी एकत्रित कर अपने देश लौटकर वहाँ के बौद्धजनों और जिज्ञासु श्रद्धालुओं को उससे अवगत् करा सकें। ह्येनसांग के पश्चात् भी कई चीनी बौद्ध यात्री भारत पधारे और भ्रमण, श्रवण एवं बौद्ध विद्वानों की गोष्ठी में भाग लेकर वे भी अपने संस्मरणों एवं विवरणों में बौद्ध धर्म की महत्त्वपूर्ण जानकारी अंकित कर गये हैं।

बौद्ध धर्म तो सारे देश के अतिरिक्त आस-पास के देशों तक में तथा दूर चीन, जापान, कोरिया आदि तथा सुदूर पूर्व के अनेक देशों तक में स्वतः धार्मिक मूल्यों के बल पर फैला, किसी जोर-जबरदस्ती अथवा तलवार के बल-प्रदर्शन से नहीं, जैसा कि मुख्यतया इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार का तौर-तरीका रहा है।

ढ़ाई हजार वर्ष बाद भी पुरातत्त्व खोज में लगे खोजार्थियों को भारतवर्ष में आज भी हरेक क्षेत्र में बौद्ध धर्म या बौद्ध शासकों सम्बन्धी पुरातात्त्विक महत्त्व की वस्तुएं जैसे महात्मा बुद्ध की मूर्तियां, बौद्ध विहारों, स्तूपों के भग्नावशेष या लकड़ी, तांबें की प्लेटें अथवा शिलालेख मिलते हैं, यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। पहले से सारा देश इन बिहारों, स्तूपों, संस्थागारों आदि से भरा पड़ा था कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं समझी जायेगी। हाल ही में सुभाषिनी आर्य ने सम्राट अशोक का उत्कीर्ण कराया एक शिलालेख चंड़ीगढ़ के निकट परवानू में सुखना नाले में खोज निकाला। इससे पुरालेखनशास्त्र में अशोक कालीन जानकारी से ज्ञान वर्धन होगा। कहा जाता है कि सम्राट अशोक महान ने लगभग 84,000 से अधिक स्तूपों और शिलालेखों का निर्माण करवाया था, जिनमें भगवान बुद्ध के अमर सन्देश जन-जन तक तथा दूर-दराज स्थल तक पहुँचाने का उद्‌देश्य निहित था जिससे बौद्ध, भिक्षु, धर्मावलिम्बयों तथा प्रजाजन लाभांवित हो सकें।

इस बहुमूल्य आध्यात्मिक ज्ञान साक्ष्य और ऐतिहासिक धरोघर का कलाकृति-ध्वसंक बर्बर लोगों के कुकत्यों से बहुत कुछ नष्ट हो चुका है, जो बचा है उसे ही बचा लिया जाय तो भावी पीढ़ी के लिये बड़ा उपकार होगा।

राजाजी चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के दलितोद्धार कार्य

स्वतंत्र भारत के गर्वनर जनरल और सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता, पूर्व मुख्य मंत्री मद्रास राज्य, चक्रवर्ती राजगोपालचारी, अपने आरम्भिक सामाजिक जीवन में सेलम म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष चुने गये थे। वे कुलीन ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे, पर रामानुज संप्रदाय के श्रीवैष्णव थे। श्री वैष्णवों में आठ प्रमुख भक्त या संत कवि हुये हैं जिनमें एक श्रीशठकोप अन्त्यज थे, किन्तु अपने संतत्व गुणों के कारण उनकी गणना प्रमुख श्री वैष्णव महात्माओं में होती है।

उन दिनों आदि-द्रविड़ों को अन्त्यज माना जाता था और वे स्कूल-कालेजों में भर्ती नहीं हो सकते थे और समाज के अनेकानेक उन्नति के साधनों और सुख-प्रसाधन के उपयोग से वंचित रहते थे।

राजाजी ने उन्नीसवीं शताब्दी में कट्टर पंथियों के कड़े विरोध के बाबजूद उनको सेलम म्युनिसिपल स्कूलों में भर्ती करने और पढ़ने की आज्ञा देकर एक बड़ा क्रान्तिकारी कदम उठाया। यही नहीं उन्होंने आदि द्रविड़ों को म्युनिसिपैलिटी के जल-कल विभाग में नौकरी देकर उनको पानी के नलों और पाइप लाइनों की मरम्मत के काम पर भी लगाया। राजा जी के इन कार्यों के प्रति कट्टर-पंथियों ने कड़ा विरोध प्रदर्शित किया, लेकिन राजा जी ने उसकी जरा भी परवाह नहीं की। हरिजन-उद्धार का यह कार्य राजाजी ने भी महात्मा गांधी के प्रारम्भ किये हरिजन-उद्धार से बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था।

यहाँ स्वाभाविक है कि एक प्रश्न सबके मन में उठे कि राजाजी के स्वयं ब्राह्मण होते हुये किस बात ने उनके दृष्टिकोण को हरिजनों और अन्त्यजों के प्रति इतना सहानुभूतिपूर्ण और उदार बना दिया था ? इसका उत्तर है क्योंकि वे रामानुज सम्प्रदाय के श्रीवैष्णव थे जोकि वर्ण भेद को न मानकर गुणों के आधार पर संत कवि श्री शठकोप जैसे अन्त्यज की भी गणना श्री वैष्णव महात्माओं में करते थे। इसी धार्मिक प्रभाव के कारण उनका दृष्टिकोण हरिजनों और अन्त्यजों के प्रति बड़ा उदार तथा सहानुभूतिपूर्ण था। इसलिये रुढ़िवादी ब्राह्मणवाद की आलोचना करना चाहिए नही हर एक ब्राह्मण व्यक्ति की। वे भी उतने मान-सम्मान एवं सामाजिक सुरक्षा के हकदार हैं जितने हिन्दू धर्म के अन्यान्य घटक।

परम सिद्ध संत योगिराज देवरहा बाबा

ऐसा कौन हिन्दू होगा जो उत्तर भारत के परम सिद्ध संत श्री देवरहा बाबा से परिचित न हो, बहुतों ने उनके अनेक बार दर्शन भी किये होंगे, उनका आशीर्वाद प्राप्त किया होगा, जिनमें यह लेखक भी है और उसके उनके प्रति अटूट आस्था स्थापित करने

वाले अनेक अनुभव भी हैं। प्रातः स्मरणीय श्री देवरहा बाबा स्वेच्छा से योगिनी एकादशी, 19 जून 1990 को वृन्दावन के यमुना तट पर बनी अपनी कुटी में ब्रह्मलीन हुये। ऐसा भी नहीं सुना कि वे अस्वस्थ थे। सिद्ध संत देवरहा बाबा जी रामानुज सम्प्रदाय के महान योगी थे।

देश के जाने-माने महान सन्त, अष्टांग योगी और साधक, ब्रह्मर्षि देवरहा बाबा को 21 जून 1990 को वृन्दावन स्थित उनके अस्थायी निवास (कुटिया) के निकट अनेक संतों, सन्यासियों देश के गणमान्य महानुभावों और अपार भक्तों, श्रद्धालुओं ने अश्रु पूर्ण नेत्रों से अपरान्ह तीन बजे के लगभग यमुना की गोद में जल-समाधि दी। जल समाधि देने से पूर्व पंचामृत स्नान करा कर बाबा के शिष्यों ने जल-समाधि की क्रिया सम्पन्न की।

इसके साथ ही सर्वधर्म समभाव के और प्राणि मात्र में परम ब्रह्म के दर्शन के प्रणेता के मचान से उठने वाले आशीर्वाद के स्वर सदा-सर्वदा के लिये शान्त हो गये। इन लेखक ने भी उनके अनेक बार दर्शनों का लाभ उठाया था। वे बड़े सहजभाव से भक्तों की बात सुनकर उन्हें सान्त्वना देते थे। बाबा के आशीर्वाद से इस लेखक को बहुत कुछ प्राप्त हुआ, जिसके लिये जीवान्त तक वह कृतज्ञ रहेगा। असंगत न होगा कि यहाँ यह तुच्छ लेखक उन्हें हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करे। यह पुस्तक भी उनके श्री चरणों में सादर समर्पित की गई है।

बाबा राम जन्मभूमि- बाबरी मस्जिद विवाद से अत्यन्त व्यथित थे। बाबा चाहते थे कि सबकी रजामंदी से खुशी, खुशी भगवान रामचन्द्र जी का भव्य मन्दिर उसी स्थान पर बने। उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी को घंटे भर की बहस में यही कहा कि मंदिर बनाने में विघ्न डालने वाले का अकल्याण होगा। मंदिर वहाँ अवश्य बनेगा।

परमसिद्ध संत एवं ब्रज अकादमी वृंदावन के संस्थापक संत श्रीपाद बाबा जी ने कहा कि ब्रह्मलीन संत देवरहा बाबा नर न होकर साक्षात नारायण थे। उनके अनुसार ब्रह्मलीन संत देवरहा बाबा एक ऐसे नारायण थे जो अपनी अपार करुणा के वशीभूत हो भू-भार हरण करने और मानव मात्र के दोष और पाप के हरण के लिये युगों-युगों में कभी अवतरित होते हैं।

संत श्रीपाद बाबा ने उनसे अपने सतत सान्निध्य और अपने प्रति उनकी असीम अनुकम्पा का उल्लेख करते हुये स्पष्ट किया कि बाबा के समान आध्यात्मिक शक्तियां अतीत और अनागत के मध्य एक ऐसे दिव्य सेतु का कार्य करती हैं जो मानवीय आदर्शों एवं आस्था को काल कवलित नहीं होने देती।

सभा की अध्यक्षता करते हुये संत मथुरादास जी ने कहा कि स्वर्गीय संत देवरहा बाबा एक ऐसी विभूति थे जिनका अवतरण इस भू-लोक पर यदा-कदा ही होता है।

प्रसिद्ध विद्वान व्यासनंदन शास्त्री ने पातंजलि योग के मर्मज्ञ संत देवरहा बाबा की वांग्मयी प्रतिभा का उल्लेख करते हुये उनकी उस अपार कृपा की चर्चा की जो सामान्य से लेकर आसामन्य व्यक्तियों को सहज ही होती थी। बाबा के महाप्रस्थान से एक विराट शून्य की सृष्टि हो गई है। श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुये उन्होंने कहा कि बाबाकी पंचभूत रचित देह लुप्त हो जाने के बाद भी उनकी सूक्ष्म उपस्थिति मानव मात्र को प्रेरणा देती रहेगी। उनकी आयु के बारे में सही अन्दाज़ा लगाना कठिन था। लोग उन्हें कई सौ वर्षों की आयु का बताते थे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी जीवनी में लिखा है कि 14 वर्ष की आयु में अपने पिताजी के साथ उन्होंने देवरहा बाबा को देखा था। उनके बाल काफी सफेद हो चुके थे। कुछ भक्तों का कहना है कि उनका जन्म पूर्वी उत्तर प्रदेश में देवरिया जनपद के आस-पास एक कुरमी कृषक परिवार में हुआ था। पर इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण प्राप्त नहीं हो सका है। बाबा ने पूछने पर कभी अपनी आयु नहीं बतायी फिर उनसे जाति पूछने की हिम्मत किसको होती। देवरिया में सरयू तट पर उनका आश्रम है। पर वे बहुधा हरिद्वार, काशी अन्यथा वृन्दावन में नदी-जल में ऊँची कुटिया बनवाकर उस पर रहते थे। वहीं से वे भक्तजनों को दर्शन देते थे। अनेक विभूतियाँ जैसे इंगलैंड के सम्राट एडवर्ड अष्टम भी उनके प्रशंसक थे।

दिव्य मचान : योगिराज देवराहा बाबा महाप्रयाग स्थल

श्री देवरहा बाबा ने वृंदावन में यमुना-तट पर जिस मचान पर स्वेच्छा से महाप्रयाण किया अब उस पुण्य स्थल पर एक समाधि स्थल स्मारक के रूप में निर्मित किया गया है भक्तों का विश्वास है कि यह सम्पूर्ण परमयोगी का मचान क्षेत्र, उनकी दिव्य तरंगों से ओत-प्रोत है। श्री देवरहा बाबा ने अपने वृंदावन-आश्रम के चारों ओर एक रेखा खिंचवा दी थी और वे कहते थे कि भगवान शंकर का प्रभाव जाग्रत रूप से उस स्थल विशेष में विद्यमान है। बाबा के दो सेवक श्री देवदासजी और श्री रामसेवकदास जी वृंदावन में योगिराज की समाधि स्थल का बिस्तार-विकास कार्य भी देख रहे हैं। और समय-समय पर देश भ्रमण कर बाबा के सन्देह और अमरवाणी को जन-मानस में प्रचार-प्रसार में भी लगे हैं।

इन दो,बाबा के निकटतम सेवकों ने जो जानकारी पत्र-पत्रिकाओं को साक्षात्कार के दौरान दी उससे बड़ा प्रेरणाप्रद नई बातें ज्ञात होती हैं। इन दोनों ने इस दावे या विज्ञापन का खण्डन किया कि देवरहा बाबा का पुनःस्थापन हो गया है। और वे दिल्ली में छत्तरपुर क्षेत्र में मंचासीन होकर जन कल्याण कार्य कर रहे हैं। उन्होंने यह भी बताया कि बाबा की स्मृति को जागृति रखने के लिए ऊपर उल्लेखित समाधिस्थल बनाया जा रहा है।

जब बाबा वृंदावन आये और यमुना तट पर भूमि के उस पवित्र भाग पर मचान लगवाया तो बाबा ने आश्रम के चारों ओर रेखा खिंचवाते समय एक स्थान से उसे बढ़वा दिया। बाबा ने कहा था कि उस स्थान विशेष पर भगवान शंकर का प्रभाव जागृत रूप से विद्यमान है। आश्रम में पहुँचकर भक्तगण, दर्शनार्थी जन विलक्षण अनुभूतिमय भावनाओं को स्वयं में उद्दीप्त होता-सा अनुभव करते हैं। यह लेखक भी जब भी वहाँ गया कुछ ऐसा ही अनोखा अनुभव हुआ, जोकि शब्दबद्ध पूर्णतः करना कठिन है

बाबा के सेविकों ने यह भी बताया कि पुण्यात्मा श्री देवरहा बाबा ने जिस मचान पर शरीर त्यागा था, ठीक उसी स्थान पर यह पुण्य स्मारक उनकी स्मृति में तथा भक्तों के लाभार्थ बनाया गया है। श्री बाबा के श्री मंचभूत शरीर को जल - समाधि जहाँ दी गयी थी वह यमुना जल में स्थान मचान से दूर बीचों-बीच धारा में था। लगभग 1 वर्ष तक मचान में कोई गतिविधि नही हुई किन्तु धीरे-धीरे यमुना नदी ने कटाव किया और अपने किनारे का फैलाव और विस्तार बढ़ाते हुए मचान से एकदम सटकर बहने लगी और वहीं कटाव भी तब तक रुक गया। इस प्राकृतिक स्थिति को दैवी संकेत स्वीकार कर एक पुण्य समाधि स्थल का निमार्ण किया गया। वहाँ के आश्रम में एक गऊशाला की स्थापना की गई है। गऊ-दूध का ही सेवन आश्रम का नियम है। उससे बने घी से बाबा द्वारा प्रज्ज्वलित ज्योति को साकार रखा जा रहा है। बाबा का गऊ-प्रेम विशेष था अतः वे सदा बाबा के साथ रहीं।

उस समाधि स्थल के दैवी प्रभाव के बारे में पूछने पर उन्होंने बताया कि कोई वहाँ आकर ध्यान लगाये तो स्वयं ज्ञात हो जायेगा या अनुभूति हो सकेगी कि यहाँ योगिराज के परमाणु विकसित हुये हैं। बाबा आश्रम के मुख्य-घेरा क्षेत्र के सम्बन्ध में बताते थे वह लक्ष्मण-रेखा से सीमित है। जो भी उनके अन्दर आ जाएगा उसके ऊपर उनकी विशेष कृपा भगवत् चिंतन करने से सदा बनी रहेगी।

बाबा की आयु लेकर अनेक अटकलें बहुचर्चित हैं। अतः उनकी आयु के विषय में सदैव भक्तों के मन में एक जिज्ञासा बनी रही। कई पत्रकारों ने उनकी आयु 700 - 800 वर्ष कहकर उन्हें 'ऐन्जल संत' कहा तो कुछों ने उनकी आयु दो हजार एक सौ वर्ष तक आँकी। बाबा ने अपनी उत्पत्ति के बारे में कुछ विशिष्ट शिष्यों को बताया था कि- "बच्चा, ये शरीर चिन्मय है, हमारी उत्पत्ति गर्भ से नही, हमारी उत्पत्ति जल से है"

हरिद्वार में कुम्भ के दौरान बाबा का साक्षात्कार दूरदर्शन के लिए रेकार्ड हो रहा था जो कि श्री महेन्द्र महर्षि (वर्तमान में सहायक केन्द्र निदेशक, दूरदर्शन समाचार विभाग) द्वारा किया जा रहा था। उपस्थित जन समुदाय के जोर देने पर मजबूरन इन्होंने यह बात घुमाकर पूछी- बाबा, आप कृपया हमें बताएँ कि महाभारत काल में आपके साथ के कौन-कौन से महापुरुष और विभूतियां आज भी विद्यमान हैं।" बाबा अभिप्रांय समझ गये अतः बड़ी सहजता से बताया कि ये पेड़-पौधे, पहाड़, वृक्ष आदि सभी संत, महात्मा और महापुरूष अब भी मौजूद हैं।"

योगिराज देवरहा बाबा का हृदय सुख-दुःख, ईष्या-द्वेष, शत्रु-मित्र आदि द्वन्दों से पूर्णतया असंपृक्त था। वे आत्मदर्शी थे इसलिये उनके श्रीमुख से निकली वाणी क्रूर-कुटिल मानव-हृदय को भी अपनी ओर आकर्षित करने की असाधारण शक्ति रखती थी। उनके श्रीमुख से वाणी निःसृत सात्विक, तपःपूत व्यक्तित्त्व के संस्पर्श से ऊर्जास्वित होती थी। अतएव उनसे सम्पर्क प्राप्त मानव-हृदय पर, उनका मंत्रवत् प्रभाव पड़ता था। श्री देवरहा बाबा ने सामान्यतः जनमानस को विस्तार में उपदेश नही दिये। बाबा केवल संकेत रूप में भक्तों की जिज्ञासाओं के उत्तर में बोल दिया करते थे। महासिद्ध संत के अनुभव और ज्ञान राशि से उनके मुखारबिन्दु से निकले कुछ वचनामृत नीचे उद्धृत हैं :-

आनन्द : आनन्द का स्रोत अपने अंदर ही है क्योंकि आत्मज्ञान ही हृदय को सच्चा आनन्द प्रदान करता है। आनन्द का मूल सन्तोष है।

आराधना : भगवान पर विश्वास करके गंध, पुष्प, धूप, दीप आदि से श्रद्धा के साथ भगवान के श्रीविग्रह की पूजा करना ही आराधना है। भगवान के साथ प्रेम करना, उनके सम्मुख आत्म-समर्पण करना, उन्हें प्राप्त करने की अभीप्सा जाग्रत करना, उनका नाम जपना, प्रार्थना करना आदि भी आराधना के अन्तर्गत आते हैं।

आवागमन : जन्म और मृत्यु जगत के दो निर्विवाद सत्य हैं। आवागमन की समस्या इन्हीं दो सत्यों को स्पर्श करती है। जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाने का सरल साधन है-भगवन्नाम स्मरण और जप।

आशा : भगवतप्राप्ति के लिए मृत्यु क्षण उपस्थित होने तक आशा को न छोड़ो। भगवान की आशा सदा सफल और सुखमयी है जबकि संसार की आशा सदा विफल तथा दुःखदायिनी होती है।

आस्तिक : आस्तिक वह है जो कभी चाह, चिन्ता और दुःखों में नहीं फंसता वह हृदय में स्थित भगवान पर और स्वयं पर विश्वास करता है।

आहार-शुद्धि : शुद्ध आहार से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और अन्तःकरण की शुद्धि से स्मृति जागृत होती है और स्मृति की प्राप्ति से सारी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

इन्द्रियाँ : इन्द्रियों का स्वभाव ही बहिर्मुखता है। वे अपने विषयों में स्वभाव से ही आसक्त होती हैं। इन्द्रियाँ जिसके वश में है मुर्ख उसकी बुद्धि स्थिर है। वही विद्वान और पंडित है।

ईश्वर : ईश्वर न मंदिर में है, न तीर्थ स्थानों में। वह हर हृदय में स्थित है और समस्त विश्व में व्याप्त है और समस्त संसार का एक मात्र स्वामी है। ईश्वर की कोई परिभाषा नहीं दी जा सकती। उसका केवल आत्मा के द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

ईश्वर पूजन : ईश्वर की सत्ता मानकर विष्णु या अन्य किसी इष्ट देव का भक्तिपूर्वक पूजन करना ही ईश्वर पूजन है।

ईश्वर दर्शन : ईश्वर की कृपा से ही उनके दर्शन होते हैं। वे जितने हमारे सन्निकट हैं उतनी कोई वस्तु नहीं, लेकिन माया, अविद्या और अहंकार रूपी मेघ के आच्छादन से उनके दर्शन नहीं हो पाते। साधन, भजन, प्रार्थना आदि के वायुवेग से वे मेघ उड़ जाते हैं और वे प्रकाशित हो जाते हैं।

ईश्वर प्राणिधान : यह योग दर्शन के अनुसार पाँचवाँ नियम है। मन, कर्म, वाणी से ईश्वर की भक्ति, नाम, रूप, लीला, गुण , आदि का श्रवण कीर्तन, मनन करके सब वृत्तियों को ईश्वर में अर्पण कर देना ईश्वर प्राणिधान है। ईश्वर पर मन की एकाग्रता और ईश्वर को समस्त क्रियाओं और उनका फल समर्पित करने से समाधि-अवस्था की प्राप्ति सम्भव है। **व्यासदेव जी ने लिखा है कि 'ईश्वर प्राणिधान'अर्थात् भक्ति विशेष द्वारा प्रसन्न होकर ईश्वर इच्छा मात्र से ही भक्त पर अनुग्रह करते हैं, केवल मात्र उनकी इच्छा से ही योगी को समाधि-लाभ और उसका फल अति शीघ्र प्राप्त हो सकता है।**

ईश्वर प्राप्ति : ईश्वर प्राप्ति का पहला चरण है स्मरण-मनन, दूसरा चित्त वृत्तियों का निरोध, तीसरा ध्यान और अन्तिम समाधि।

ईश्वरी भाव : भक्ति, ज्ञान, पवित्रता, वैराग्य, व्याकुलता ये सब ईश्वरीय भाव है।

ईश्वर का न्याय : इस जन्म में जो भी सुख-दुःख, संयोग-वियोग, हानि-लाभ हो रहा है, वह सब पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार हो रहा है। इसलिए ईश्वर के न्याय पर सब्र करना चाहिए।

उपदेश : संतों की साधारण बातें भी महान उपदेश होती हैं, लेकिन उपदेशक की वाणी तभी प्रभाव करेगी जब निर्दिष्ट मार्ग पर वह स्वयं आचरण करे और भाव उपदेशक द्वारा स्वयं अनुभूत हों।

ओंकार : इस शरीर में सारा ब्रह्मांड है। इसकी अनुभूति ओंकार के जप से हो सकती है। ओंकार ही चित्त स्वरूप है। वही विराट है, वही हिरण्यगर्भ (सूक्ष्म शरीर धारण करने वाली आत्मा) है और वही विश्व है।

कर्म : कर्म चित्त की शुद्धि के लिये ही है। इसलिये इस जगत में कर्मों को करते हुये सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना करो, लेकिन केवल कर्म करो और उसके फल की कामना न करो। कर्म तो हम सभी करते हैं लेकिन कर्मयोग की साधना नहीं करते, इसलिये कर्मों में बद्ध होते हैं और दुःख भोग करते हैं। जो भी कर्म करो उसे निस्वार्थ भाव से, निर्लिप्त और निष्काम भाव से करो। ईश्वर की प्रेरणा से कर्म करना-ऐसा मानने से अशुभ कर्म नहीं हो पायेंगे, वह कर्म, सत्य कर्म, मंगल कर्म हो जाएगा।

जाति : आत्मा की कोई जाति नहीं होती। मनुष्य किसी भी जाति में पैदा हो वह यदि सदाचारी है और भगवतभक्त है तो वही उसके लिये वंदनीय है और श्रेष्ठ है। कसौटी जाति नहीं, कसौटी है साधुता-भगवद्भक्ति, उसके गुण और कर्म।

नाड़ियाँ तथा स्वर : - मनुष्य शरीर भी एक विचित्र देव मन्दिर है, जिसमें भगवान का निवास है और यहाँ नाड़ियों द्वारा वायु का संचार होता रहता है। मनुष्य शरीर में असंख्य (72,000) प्राण वाहिनी नाड़ियां है। जिनमें 14 मुख्य है। 1. सुषम्ना, 2. इड़ा, 3. पिंगला, 4. गान्धरी, 5. हस्तिजिह्वा, 6. कूहू 7. सरस्वती, 8. पूषा, 9. शंखिनी, 10. पयस्विनी, 11. वारूणा, 12. अलम्बूषा, 13. विश्वोदरी, 14. यशस्विनी। योग साधना के लिये तीन ही प्रमुख नाड़ियाँ, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना हैं। इड़ा नाड़ी (बांयी) को गंगा, पिंगला (दांयी) को यमुना और मध्य नाड़ी सुषुम्ना को सरस्वती भी कहते हैं। मध्य भाग में ये मिल जाती है और इसका संगम ही त्रिवेणी कहलाता है। इड़ा को चन्द्र नाड़ी और पिंगला को सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। इड़ा तमः प्रधान है, पिंगला रजः प्रधान और सुषुम्ना सत्वः प्रधान है। बाएँ स्वर को इड़ा या चन्द्र स्वर और दाएँ स्वर को पिंगला या सूर्य स्वर कहते हैं। जब दोनों नथुनों से समान गति से स्वर चलता है तो उसे सुषुम्ना स्वर कहते हैं। जब बायाँ स्वर चले तो दूध, दही, जल, आदि हल्के पदार्थों का सेवन करना चाहिए, दायां स्वर चलने पर कठिन कार्य, भोजन, शौच, स्नान और शयन आदि करना चाहिए। जब सुषुम्ना स्वर चले तो

योग साधन अथवा भजन करना चाहिए। याद रखें :-

दहिने स्वर भोजन करे, बायें पीवे नीर,
ऐसा संयम जो करे, तब सुख पाय शरीर।। 1 ।।
बायें स्वर भोजन करे, दहिने पीवे नीर,
दस दिन भूला यों करे, पावै रोग शरीर।। 2 ।।

इच्छानुसार स्वरों को बदला जा सकता है। जो स्वर चलाना हो उस नथुने पर ध्यान करने से वह स्वर चलने लगता है, या उस स्वर के विपरीत वाली कुक्षि में घुटना लगाने से अभीष्ट स्वर चलने लगता है। मानव जीवन में स्वर ज्ञान का बड़ा महत्त्व है और स्वर साधन करने पर अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जैसे परदेश गमन और भोजन, लघुशंका और दीर्घशंका अथवा मल का निर्हरण, लक्ष्मी की उपलब्धि, कीर्ति और सुख की प्राप्ति आदि, आदि। इन नाड़ियों के आश्रित पाँच वायु और पाँच उपवायु है :-

पाँच वायु :- 1 प्राण (हृदय में), 2 अपान (गुहा में), 3 समान (नाभि में), 4 उदान (कंठ में) और व्यान (सर्व शरीर में रहता है।)

पाँच उपवायु :- 1 नाग (डकार लेना), 2 कर्म (पलक झपकना), 3 ककर (छींक लेना) 4 देवदत्त(जमाइ लेना)और 5 धनंधय है। धंनधय सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है और मृत शरीर को भी नहीं छोड़ता।

नास्तिक :- इस संसार में नास्तिक कोई नहीं है। पूर्वजन्मों के पापों के कारण भगवान में मन नहीं लगता, इसी से नास्तिकता का ढोंग करते हैं।

पवित्र भोजन :- पवित्र भोजन के बिना एकांत में भी साधना नहीं हो सकती और ईश्वरार्पण किए बिना कोई भी वस्तु पवित्र नहीं हो सकती।

प्रायश्चित :- प्रायश्चित के लिये तीन सीढ़ियों पर चढ़ना आवश्यक हैं-
1. आत्म ग्लानि, 2. फिर न पाप करने का दृढ़ निश्चय, 3. आत्म शुद्धि,

प्रपंच :- पंच इन्द्रियों द्वारा अनुभूत पंच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का नाम प्रपंच है।

प्रार्थना :- अपने अंतर्यामी के निकट अपने अंतर की वेदना और अभाव को भाषा या भाव द्वारा ज्ञापित करना, और उसे नष्ट करने के लिये कातरतापूर्वक उनकी दया याचना करना प्रार्थना है। ये दो प्रकार की होती हैं-(1) मैं धन, जन, दिव्य स्त्री तथा विद्या कुछ भी नहीं जानता। मेरी यही प्रार्थना है कि जन्म जन्मांतर तुम्हारे चरणों में मेरी अहेतु भक्ति हो यह है निष्काम प्रार्थना।
(2) हे ईश्वर ! संसार के दुःख, रोग, शोक, अभाव अब और सहन नहीं हो सकते, तुम इन सब का निवारण करो- यह है सकाम प्रार्थना।

प्राणायाम :- यह अष्टांग योग का चौथा अंग है। श्वास (बाहरी वायु का भीतर प्रवेश) और प्रश्वास (भीतर की वायु का बाहर निकालना) की गति के अवरोध हो जाने को ही प्राणायाम कहते हैं। किसी-किसी आचार्य के विचार में रेचक, पूरक और कुम्भक तीन भेद प्राणायाम के हैं। प्राणायाम के सिद्ध होने पर ब्रह्म के प्रकाश (ज्ञान) को आवरित करने वाला जो अज्ञान रूपी अंधकार है वह दूर हो जाता है, तथा साधक का मन स्थिर होकर धारणाओं की योग्य सामर्थ्य हो जाती है, जिससे वह ऐसे कार्यों को करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है जिन्हें साधारण मनुष्य कदापि नहीं कर सकता। प्राणायाम से वीर्य की निश्चलता प्राप्त होती है जिसके कारण साधक जरा मरण से बचकर अमरत्व को प्राप्त होता है।

फकीर :- **चाह सभी को खा गई, चाह सभी की पीर,**
चाह को फेंका जो करे, सो ही असल फकीर।।

भजन :- जिस दशा में जीव का मन, वाणी और शरीर भगवन्मय हो जाय, मन से प्रभु का सतत् स्मरण हो, वाणी से निरंतर उनके गुणों का गान हो, शरीर से उनका स्पर्श (पूजा हो), उसी का नाम भजन है। चित्त पर विजय प्राप्त करने का सबसे उत्तम साधन भजन हैं।

जिनको भजन करने में तरह-तरह के व्यवधान का सामना करना पड़े उनके लिये **गुरुदेव महाराज** कहते थे :-

जब मार्ग पर चलो तो जान लो कि मैं भगवान की परिक्रमा कर रहा हूँ। प्यास लगे और पानी पीओ तो ऐसा भाव रक्खो कि भगवान का चरणामृत पान कर रहा हूँ। भूख लगे और भोजन पायो (न कि खाओ क्योंकि वह कठोर शब्द है) तो भाव करो कि भगवान का प्रसाद पा रहा हूँ। तुलसी दल छोड़कर भोजन पाया जाय तो अति उत्तम है, यदि ऐसा अवसर न लगे तो भगवान का ध्यान करके ही पाया जा सकता है।

नींद लगे और सो जाओ तो भगवान का नाम जप करते सो जाओ और ध्यान रखो कि मैं भगवान को साष्टांग दंड़वत कर रहा हूँ और इस शरीर में जीवन है तो ऐसा सोच लो कि मैं भगवान का चिंतन करने के लिये जीता हूँ। इस प्रकार सारा जीवन भगवान को अर्पण हो जाएगा और सदैव भी होता रहेगा।

मन्त्र :- जो शब्द या नाम अविद्या से मन को बचावे उसे ही मंत्र कहते हैं। अत: मन्त्र के प्रभाव और प्रेरणा से मनुष्य का जीवन अपने आप तदनुरूप बनता है। परमसिद्ध संत योगिराज देवरहा बाबा द्वारा बतलाये मंत्र हैं :-

(1) "रां रामाय नमः"
यह छः अक्षर का मंत्र धर्म, अर्थ, काम मोक्ष को देने वाला है।

(2) **ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने,**
प्रणतः क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।

(3) "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"
यह द्वादशाक्षर मंत्र जप करने में सर्वोत्तम है।

(4) "ओउम् नमोः नारायणाय"
यह अष्टाक्षर मंत्र समस्त पापों को हर लेने वाला है, समस्त यज्ञों का फल देने वाला, सब प्रकार की शान्ति प्रदान करने वाला एवं परम शुभ है।

वेद :- वेद में कोई साम्प्रदायिकता अथवा संकीर्णता का भाव नहीं है। वेद तो विश्व का विज्ञान है जिसे ऋषियों ने आषु चक्षु से देखा है।

हिन्दू कौन है ? 1. ओंकार को मूल मंत्र मानने वाला, 2. पुर्नजन्मविश्वासी, 3. गोभक्त, 4. जिसका प्रवर्तक भारतीय हो और 5. हिंसा की निन्दा मानने वाला।

हिन्दू संस्कृति :- जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त सनातन परम्परा से चली आई आध्यात्म प्रदान, धर्ममय, सुसंस्कृत है।

हिन्दू जाति के रूढ़िवादी वर्ग और शोषित जातियाँ

भारतवर्ष में ईसाई धर्म या इस्लाम धर्म फैला, उसके मूल में मुख्य कारण था, रूढ़िवादी और कट्टर ब्राह्मणवाद की हठधर्मी और अदूरदर्शी मिथ्या दम्भ भरी नीतियाँ, जिसने इस देश में न केवल अनेक हिन्दुओं को अपने पैतृक धर्म तज़कर अन्य धर्म अपनाने पर मज़बूर कर दिया गया था; अपितु हिन्दुओं के बहुसंख्यक वर्ग को मानसिक रूप से हीन बनाने में तथा समाज में पिछड़ा बनाने में कोई कोर-कसर उठा न रखी। यह सत्य है कि हिन्दू समाज को बाहर के अन्याय धर्मावलम्बियों से अधिक, विरासत में मिली जन्माधारित वर्णाश्रम-विभाजन व्यवस्था और उससे उत्पन्न रूढ़िवादिता और अन्याय के प्रतिपादक दीमक और घुन, जिन्होंने अन्दर ही अन्दर इसे खोखला और जर्जर बना डाला है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पिछली राजनीतिक गुलामी की वजह से आज हमारे शिक्षित वर्ग के चित्त में एक प्रकार की हीनता की ग्रन्थि पैदा हो गई।

प्रसिद्ध उद्योगपति श्री रामकृष्ण बजाज, सुपुत्र स्व० सेठ जमुनालाल बजाज़, दिल्ली से प्रकाशित रविवार, 30 मई 1993 के दैनिक समाचार पत्र 'इंडियन एक्सप्रेस' के पृष्ठ 8 पर 'कमैन्ट' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं कि-"भारत रत्न डा० भीमराव अम्बेड़कर के उनकी विद्वता, ज्ञान और सेवा व कुर्बानी भरे जीवन के लिये मैं सदैव उच्चतम आदर करता हूँ। मुझे अच्छी तरह स्मरण है जब वे वर्धा में महात्मा गांधी से मिलने हमारे बजाजबाड़ी में आये थे।" बजाज़ आटो लिमिटेड के चेयरमैन, श्री राम कृष्ण बजाज़ का, जो स्वयं वैश्य हैं, कथन है,-अब मुझे यकीन हो गया कि मेरी समझ उनके बारे में गलत थी। डा० अम्बेडकर हिन्दू-दर्शन अथवा हिन्दू-धर्म के विरोधी नहीं थे, वे एक प्रोटेस्टेन्ट हिन्दू थे। वास्तव में वे हिन्दू रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था और व्यवहार के विरोधी थे, जिसने समाज के एक बड़े हिस्से को सामाजिक न्याय से वंचित कर दिया था। उन्होंने धर्म-परिवर्तन की चेतावनी के तौर पर पूर्व सन् 1935 में धर्म परिवर्तन की घोषणा यह सोचकर की थी कि इससे शायद उच्चवर्गीय हिन्दू सचेत होकर हरिजनों को बराबर का सामाजिक दरज़ा और हक़-हकूक दे देवें। लेकिन जीवन के अन्तिम चरण में, यह देखकर कि रूढ़िवादी हिन्दुओं का द्विज-वर्ग टस-से-मस नहीं हुआ है और नहीं निकटतम भविष्य में होने वाला है, उन्हें मजबूरन बौद्ध-धर्म ग्रहण करना पड़ा।"

आगे श्री बजाज़ कहते हैं-"इस तरह हिन्दुओं ने ही डा० अम्बेडकर के लिए हिन्दू धर्म छोड़ने के अलावा कोई दूसरा उपाय नहीं छोड़ा।" डा० अम्बेडकर यदि वास्तव में हिन्दू-धर्म विरोधी होते, तो बौद्ध होने के बजाय मुसलमान बनकर, बंगाल के काला पहाड़ (मुसलमान होने से पूर्व नाम कालीपद मुखर्जी की) की तरह अपने अनुयाइयों द्वारा इन दम्भी हिन्दुओं से, गिन-गिन कर बदला लेते रहते, जब तक कि या तो ये घुटने टेक देते या कश्मीर घाटी की तरह ये सदा के लिये, वहाँ की तरह, नेस्तनाबूद

कर दिये जाते। खेद है कि श्री रामकृष्ण बजाज़ का भी निधन 72 वर्ष की आयु में बम्बई में 22 सितम्बर 1994 को हो गया।

स्वामी विवेकानंद तथा कई अन्य विद्वानों ने उस समय ठीक ही कहा कि ऊँची जातियों वाले हिन्दुओं के अंहकार ने बंगाल की बड़ी संख्या में पिछड़ी और अनुसूचित जातियों के लोगों को इस्लाम की शरण में जाने को विवस किया था।

इसी तरह के दम्भ से पीड़ित और सदियों से शोषित आदि द्राविड़ों और द्रविड़ों ने तामिलनाडु में रामास्वामी नायकर परियार और उनके चेलों, अन्नादुराई, रामचन्द्रन, करुणानिधि आदि ने जब से द्रविड़ आन्दोलन जोरों से चलाया और तब से सत्ता वहाँ के द्विज वर्ग के हाथ से निकल गयी और बहुत से द्विज वहाँ से चुपचाप पलायन कर उत्तरभारत में आकर नगरों में बस गये और अनेक डाक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक अमेरिका, इंग्लैंड जा बसे। महाराष्ट्र में मराठा वर्ग की जो राजनीति इधर कुछ दशकों में वहाँ छा गयी थी उसकी प्रतिक्रिया उस मराठा-अस्मिता को घायल करने की है, जो महाराष्ट्र के देशस्थ ब्राह्मणों ने छत्रपति शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक के समय उनकी मराठा/कुनबी जाति को लेकर अनेक प्रकार की घटिया स्तर की आपत्तियाँ उठाकर प्रकट की थी और बाद में पेशवा शिवाजी के वंशजों में फूट डलवा कर स्वयं पूना के शनिवार-भवन में शासक बन बैठे थे तथा असली शासकों को पेन्शन आफ़्ता बनाकर रख दिया था। एक पेशवा ने तो सतारा नरेश को बन्दी भी बना कर रखा था।

दलित वर्ग के प्रति लोकनायक जयप्रकाश नारायण के उद्‌गार

पटना के श्रीकृष्ण स्मारक भवन में, 29 सितम्बर 1977 को बाबू जगजीवन राम जी को उनके संसदीय जीवन के चतुर्दशक पूर्ण होने पर एक भव्य समारोह आयोजित किया गया था। उस अवसर पर प्रकाशित बाबू जी के "चतुर्दशक संसदीय जीवन सम्बन्धी ग्रन्थ" का स्वयं लोकनायक जयप्रकाश नारायण जी ने लोकार्पण करते हुये एक प्रति बाबू जी को भेंट की थी। इस समारोह में लोकनायक ने समाज को आह्वान करते हुये कहा था कि वह नीचे दबाकर रखे गये लोगों को मौका दे, जिससे कि वे लोग आगे बढ़ सकें। भगवान ने तो जाति के आधार पर बुद्धि का बटवारा नहीं किया है। भगवान् के प्रति आदर प्रकट करने का सही तरीका होगा, उनको गौरवान्वित करना, जिनको आज तक दबा कर रखा गया है।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण की निश्चित राय उस शोषित वर्ग के लिये थी कि, "नीचे के लोगों को स्वयं संगठित होना पड़ेगा। उनको संघर्ष करना पड़ेगा। कोशिश तो यह होगी कि वह अहिंसात्मक तरीके से गांधी जी के बताये हुये मार्ग, सत्याग्रह, का सहारा लेकर आगे बढ़ें। पर यह उच्च वर्ग के लोगों पर निर्भर रहता है कि सत्याग्रह शान्तिपूर्ण रह सकेगा या नहीं।"

लोकनायक जी ने आगे कहा, "जाके पाँव न फटी बेवाई, सो क्या जाने पीर परायी।" बाबू जी का पाँव फटा है, इसीलिये वे दर्द को जानते हैं। अगर समाज के 85 प्रतिशत लोग दयनीय स्थिति में रह जाते हैं तो एक अच्छे समाज की कल्पना ही अधूरी रह जायेगी।

अपने प्रति प्रकट किये उद्‌गारों के आभार को स्वीकारते हुये बाबू जगजीवन राम जी ने कहा-"आज हमें चातुर्वर्ण्य- व्यवस्था का अन्त कर ब्राह्मणों को भी मुक्त करना होगा। उनका भी पतन हुआ है। जातियां निकली हैं वर्ण- व्यवस्था से और वर्ण-व्यवस्था ने ही अस्पर्श्यता को जन्म दिया है। मैंने गाँधी जी से कहा था कि अगर जाति-व्यवस्था नहीं मिटी तो अस्पर्श्यता भी मात्र मखौल बनकर रह जायेगी। इसलिए आज हिन्दू धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों पर प्रहार करना है, जातीयता से मुक्ति में ही प्रत्येक व्यक्ति की मुक्ति निहित है।"

बाबू जगजीवन राम ने बड़े दर्द-भरे लहजे में कहा-"अजब है यह हिन्दू समाज ! विद्रोहियों को ऊँचे आसान पर बिठा दिया जाता है। भगवान् के खिलाफ़ विद्रोह करने वाले गौतम बुद्ध को ही ब्राह्मणों ने भगवान बना दिया। आज भी जब कभी किसी अछूत की प्रतिभा कबूलनी पड़ती है तो यह कह दिया जाता है कि वह पूर्व जन्म का ब्राह्मण था" कबीर के बारे में ब्राह्मण बाद में कहने लगे कि वह अविवाहित ब्राह्मणी पुत्र थे। बाबू जी ने आगे कहा कि-भगवान समदर्शी होता है या नहीं-यह तो मुझे नहीं मालूम, पर भूख तो समदर्शी होती है। आभिजात्य का प्रभाव, बिरादरी का भय उच्चवर्ग के लोगों को वर्ण-व्यवस्था से निकलने नहीं दे रहा है। आज हिन्दू समाज की गन्दगी एक बोतल की पेंदी में जमा हो गयी है। अगर उसे स्वाभाविक तरीके से निकालना है तो ऊपर के मुख को, ऊपर के लोगों को थोड़ा नमित बनाकर ही निकाला जा सकता है। दूसरा तरीका है नीचे से ही पेंदी को तोड़कर गंदगी निकालना। मैंने अब तक इस संघर्ष को बचाने की कोशिश की है। अब भी यही चाहेंगे। परन्तु अब यह उच्च वर्ग के लोगों पर निर्भर करता है कि वे क्या चाहते हैं। आखिर कब तक 15 प्रतिशत लोग 85 प्रतिशत निम्नवर्ग के भाग्य का फैसला करते रहेंगे।" (सूर्य नारायण चौधरी-'बिहार की अस्मिता'', साहित्य केन्द्र प्रकाशन, दिल्ली, साभार उद्धृत, पृष्ठ 103 से 105 तक)

दूसरे को निकृष्ट तथा अपने को सर्वश्रेष्ठ समझना : अपने मुँह मियाँ मिट्ठू ?

ब्राह्मणों ने अपने वर्ण की उच्चता तथा श्रेष्ठता किस चतुराई से महाभारत जैसे ग्रन्थ में प्रविष्ट कर दी है, वह स्वयं अपने विषय में उद्घोषित करता है :-

"जैसे दही में मक्खन, मनुष्यों में ब्राह्मण, वेदों में आरण्यक, औषधियों में अमृत, जलाशयों में समुद्र और चतुष्पदों में गौ श्रेष्ठ है, उसी प्रकार इतिहास में यह 'भारत' ग्रन्थ श्रेष्ठ है।"

पाठक जानते होंगे कि 'महाभारत' महाकाव्य एक व्यक्ति की रचना नहीं है। मूल ग्रन्थ से ही इस बात के प्रमाण खोजे गये हैं कि इस ग्रन्थ का सम्पादन एकाधिक बार किया गया है, और उसी दौरान क्षेपक के रूप में, अपनी सन्ततियों के हित में किसी ब्राह्मण सम्पादक ने उसमें बड़ी चतुराई से इसे सम्मिलित कर दिया। **मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है यह दावा तो आज विज्ञान की कसौटी पर शत-प्रति-शत अनर्गल सिद्ध किया जा सकता है।**

'महाभारत के बारे में ऐसी भी मान्यता थी कि महर्षि व्यास श्लोक बोलते जाते थे, और गणेश जी अपनी लेखनी से लिखते जाते हैं। कहा जाता है कि महाभारत का अन्तिम श्लोक पूर्ण हुआ, तो गणेश जी की अनवरत चलने वाली लेखनी को विश्राम मिला।

महर्षि व्यास जी ने मुस्कराते हुये गणेश जी से पूछा-"भगवान ! मैं इतने श्लोक बोलता रहा। अनेक प्रसंग तथा अनेक व्यवधान बीच में आये पर आप मौन ही रहे। इसका क्या रहस्य है ?"

गणेश जी हँस पड़े, उन्होंने कहा-"व्यास जी ! जानते नहीं शक्ति का स्रोत संयम ही तो है। मौन रहकर ही तो मैंने इतना बड़ा महाभारत शब्दबद्ध करने का कार्य किया है। मौन की महत्ता किससे छिपी है। वाणी का संयम सबसे बड़ा संयम माना जाता है। जो मौन रहता है, कम बोलता है, वहीं तो कुछ कर गुजरता है।"

व्यास और गणेश दोनों ही इस तथ्य से सहमत थे। महाभारत की रचना दोनों से इसी आधार पर हो सकी।

कोई भी कर्म निकृष्ट नहीं, बीसवीं सदी का क्रांतिकारी सन्देश

कोई भी कर्म निकृष्ट नहीं है, यह भी व्यावहारिक रूप से इसी शताब्दी ने सिद्ध कर दिखाया है। उदाहरणतया पटना (बिहार प्रदेश) के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त, डा० बिंध्येश्वरी पाठक सुलभ इन्टरनेशनल के संस्थापक हैं, वे देश में नगर-नगर में अपनी डिजाइन पर स्वच्छ शौचालयों की स्थापना कराते जा रहे हैं। इस नये डिजाइन के प्रचार-प्रसार से, शौचालयों की स्थापना करके उस क्षेत्र में, स्वयं ब्राह्मण होते हुये भी, इस पारम्परिक अछूतों के कार्य को हाथ में लेकर, उन्होंने क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है। इससे शौचालयों में सुधार हुआ है, जिसके लिये डा० पाठक की ख्याति और मान देश-विदेश में सर्वत्र फैला। भारत सरकार ने डा० पाठक को इसी कार्य के लिये पदम् भूषण के उच्च अलंकरण से सम्मानित किया तथा अनेक विश्वविद्यालयों ने डाक्ट्रेट की मानक डिग्री से सम्मानित किया। पर क्या एक शताब्दी पूर्व भी **डा० बिंन्ध्येश्वरी पाठक** जैसा कोई ब्राह्मण देश के शौचालयों में सुधार करने का कार्य इतने बड़े स्तर पर लेता तो क्या समाज वहीं मान दे पाता जो आज सहर्ष उन्हें दे रहा है ? यह सामाजिक एवं व्यक्तिगत् मानसिकता में मूलभूत आये परिवर्तन का ज्वलन्त उदाहरण है। डा० विन्ध्येश्वरी पाठक जैसे साहसी विद्वान की जितनी प्रंशसा की जाय वह कम है। डा० विन्ध्येश्वरी पाठक ने व्यक्तिगत् स्वच्छता तथा सामाजिक स्वच्छता (Community Hygiene) में क्रान्ति ला दी है। वे बिहार प्रदेश के वैशाली जनपद के रामपुर पोहूजार नामक गाँव में 2 अप्रैल 1943 को एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में पैदा हुये थे। समाज का सेवा-भाव उन्हें पैतृक देन हैं। डा० पाठक का क्रान्तिकारी कथन उनके ब्राह्मण मुखारबिन्द से इस प्रकार निकला हैं :-

"Temples and toilets are both for Shudhi. While the former is for shudhi of atma (आत्मा) the latter is for the shudhi (शुद्धि) of the body (शरीर) . He tells his co-workers that these toilets are temples for them. So keep them clean."

मन्दिरों में हरिजन पुजारियों का समावेश

पटना रेलवे स्टेशन के निकट जो महावीर जी का प्रसिद्ध मन्दिर है, उसमें हाल ही में एक पुरोहित अयोध्या जी के किसी रामानन्द पंथी मन्दिर से लाकर नियुक्त किये गये हैं एक वे हरिजन जाति में जन्मे थे। समाज इसे स्वीकारता है। वह वास्तव में बड़ा प्रंशसनीय और अन्यत्र अनुकरणीय परिवर्तन है।

इसी तरह **'दि हिन्दुस्तान टाइम्स'** दैनिक समाचार पत्र, दिल्ली के 8 जुलाई 1993 के अंक में एक समाचार विस्तार से प्रकाशित हुआ। उसके अनुसार कांचीपुरम स्थित शंकराचार्य-मठ, प्रारम्भ से ही सवर्ण हिन्दुओं की रूढ़िवादिता के प्रतिपादन, प्रचार-प्रसार

प्रमुख धार्मिक केन्द्र रहा हैं, उसने निर्णय लिया है कि अपने से वह पाँचवीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध तमिल जाति के संत का मन्दिर निर्माण करने जा रहे है। यह समाचार समाज की मानसिकता और चिंतन में अभूतपूर्व क्रान्तिकारी परिवर्तन के शुभागमन का पूर्व संकेत प्रस्तुत करता है।

जुलाई 1993 के प्रथम सप्ताह में काँचीपुरम-मठाधीश, शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती जी ने मद्रास के दक्षिण में, प्रसिद्ध चिदाम्बरम् मन्दिर-नगरी के निकट आधानूर नामक स्थान पर, दलित जाति में उत्पन्न संत नन्दानार जी के मन्दिर-निर्माण हेतु स्वयं भू-पूजन कर शिलान्यास सम्पन्न किया। शंकराचार्य जी ने उस ऐतिहासिक अवसर पर घोषणा की कि उनका मठ, उस मन्दिर निर्माण का सारा व्यय वहन करेगा जिससे सामाजिक बराबरी और समता स्थापना करने हेतु संत नन्दानार जी के महान त्याग और आध्यात्मिक उत्कर्ष से सब लोग लाभान्वित हो सके।

पाँचवीं शताब्दी में आधानूर में सन्त नन्दानार एक दलित जाति में जन्मे थे। बड़े हुये तो उनमें शिव भक्ति जागी। वे शिव-साधना में एकाग्र चित हो जुट गये। दलित होने के कारण आस-पास में जो शिव-मन्दिर थे, उसमें वे शिव-दर्शन करने अन्दर घुस नहीं सक्ते थे। वे मन्दिर के बाहर से ही शिव-स्तुति के श्लोक रचकर बड़े आत्मविभोर हो गाते थे, और गाते-गाते नृत्य मुद्रा में लीन हो जाते थे। इस बीच उनसे सम्बंधित कई चमत्कार हुये। मन्दिर के बाहर खड़े होने से दर्शकों और शिव-मूर्ति के बीच, मन्दिर के खम्बे या नन्दी की मूर्ति आदि जो भी अवरोध थे वे अदृश्य शक्ति द्वारा यकायक थोड़ा सा खिसका दिये गये, जिससे बाहर खड़ा व्यक्ति स्पष्ट दर्शन कर सके। यह मनुष्यकृत न होकर दैवी-अनुकम्पा ही समझी गयी। इन सब घटनाओं से मन्दिर के तमिल पुरोहितों ने भी उनमें विशिष्ट शिवसाधना शक्ति का होना स्वीकार कर उनसे मन्दिर प्रवेश का आग्रह किया। वे बाद में तमिल के 63 सन्तों में दलित जाति में जन्मे संत नन्दानार भी है, जिनकी सब पूजा-वन्दना करते हैं।

ब्रह्म ऋषि पं० राम नारायण आचार्य विश्व धर्म संत दिल्ली, सी-121 कीर्ति नगर, दिल्ली-110006, 5 फरवरी 1994 को मुंगेर के स्वजातीय श्री ओउम् कुमार सिंह के साथ इस लेखक के गीताजंलि भवन, बी-6/57 सफदरजंग एन्कलेव नई दिल्ली-29, निवास स्थान पर पधारे। जाति सम्बन्धी विषयों पर काफी वार्तालाप हुआ।

पण्डित जी का कथन है कि कलकत्ता के पास गंगा-सागर का मेला प्रतिवर्ष लगता है वहाँ कपिल मुनि की पूजा-स्तुति भी होती है और जो श्लोक पढ़े जाते हैं उसमें से एक इस प्रकार है–

"कूर्म वंश नरः शुस्तया सर्वपाप प्रमुच्यते"

इससे प्रमाण मिलता है कि कपिल मुनि कूर्मि वंश में जन्मे थे। इसे सप्रमाण देखना हो तो पढ़िये "सांख्य शास्त्र" गीता प्रेस, गोरखपुर, क्योंकि इस ग्रंथ के अन्य स्थानों के प्रकाशनों में उपर्युक्त "कूर्मवंश नरः .... जो कपिल मुनि को सम्बोधित किया गया है ईर्ष्यालु ब्राह्मणों ने छोड़ दिया है।

ब्रह्मऋषि पं० रामनारायण आचार्य जी ने निम्नलिखित कवित्त भी उसी समय लिखकर इस लेखक को दिया–

"कपिल मुनि थे, कौन जाति ? जो सांख्य शास्त्र बनाये कि ना।
गुरु वशिष्ठ थे कौन जाति ? जो शुद्ध रघुवंशी गुरु कहलाये कि ना।
बाल्मीकि जी थे कौन जाति ? जो शुद्ध रामायण बनाये कि ना।
विश्वामित्र जी थे कौन जाति ? जो ब्रह्मऋषि पदवी पाई कि ना।
विद्यमति राजा भोज की लड़की, कालीदास (जाति से नीच) से विवाही कि ना।
बनिया कुल के गांधी बाबा, सबसे पैर पुजाई कि ना।
कर्म प्रधान विश्व करि राखा, अबहू समझ में आई कि ना।

महर्षि कपिल का नाम भारतीय दर्शन के लिये कोई नया नहीं है। परम्परा इस तथ्य से सहमत है कि परमर्षि कपिल ही सांख्य दर्शन के आदि उपदेष्टा है।

ऋ० (10/27/16) में सर्वप्रथम कपिल का उल्लेख मिलता है। सायण आदि भाष्यकारों ने इसका अर्थ प्रसिद्ध कपिल किया है। ऐतरेय ब्राह्मण 'कापिलेय' शब्द का उल्लेख है। इससे कुछ विद्वानों का मत है कि कपिल की सत्ता ब्राह्मण ग्रंथ पूर्व सिद्ध है। श्री कृष्ण कपिल मुनि को सिद्ध स्वीकार करते हैं। महाभारत के मोक्ष प्रकरण में कपिल मुनि को सांख्य-प्रवर्तक के रूप में स्मरण किया गया है।

भारतीय साहित्य में कपिल का नामोल्लेखन ब्रह्मसूत्र, कपिल, अग्न्यावतार कपिल तथा विष्णु अवतार कपिल के रूप में हुआ है। गरूण पुराण में कपिल को विष्णु का पंचम अवतार कहा गया है।

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक तक में हिन्दू नारी का घोर अपमान

(साभार इंडियन एक्स्प्रेस, दैनिक नई दिल्ली के 18 जनवरी 1994 अंक से उद्घृत)

दिनाँक 16 जनवरी 1994, रविवार शाम का समय, कलकत्ता महानगरी में "माँ शारदा" का शारदेश्वरी आश्रम का प्रथम शताब्दी समारोह का आध्यात्मिक वातावरण। मुख्य अतिथि, जगतगुरु पुरी के शंकराचार्य के आगमन की तीव्रता से प्रतीक्षा। कार्यक्रम शाम 5.00 बजे से प्रारम्भ होना था। शारदेश्वरी आश्रम केवल सेविकाओं द्वारा संचालित है अत: वे ही इस आयोजन की कर्त्ताधिर्ता थीं। कुछ विलम्ब के बाद शंकराचार्य जी महाराज का आश्रम में आगमन हुआ। उनके स्थान ग्रहण करने के पश्चात् आश्रम की सेविका, श्रीमती अरुन्धती राय चौधरी ने मंच पर आकर शताब्दी-समारोह के मंगल-चरण के रूप में वेद मन्त्रों का सस्वर गान प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया ही था कि यकायक पुरी के शंकराचार्य ने उपस्थित जन-समूह के सम्मुख ही आपत्ति प्रगट की कि वेद-मन्त्र गायन रोका जाए, क्योंकि स्त्री को वेद पठन-पाठन का अधिकार नहीं है। कुछ क्षणों के लिये सभी स्तब्ध रह गये।

स्वाभाविक था कि श्रीमती अरुन्धती राय चौधरी, मंच से नीचे हताश, पूर्णत: अपमानित और मर्म-आहत हो उतर आयीं। सारे दर्शक भी स्तब्ध हुये पर बाद में वे शंकराचार्य जी की आपत्ति पर धीमे स्वर में प्रतिवाद करने लगे। किसी को भी यह उम्मीद नहीं थी कि इस जमाने में भी हिन्दू स्त्री के वेद पठन-पाठन पर भी कोई आपत्ति कर सकता है, वह भी हिन्दूधर्म के एक शीर्षस्थ आचार्य, शंकराचार्य जी महाराज। शंकराचार्य जी के इस दुर्व्यवहार को आश्रम की सारी सेविकाओं और साध्वियों के प्रति घोर अनादर के रूप में लिया गया।

धर्माचार्य ने इस यथार्थ की भी अवहेलना की कि नर और नारी समता की अवधारणा प्राचीनकाल से वैदिक संस्कृति एवं वैदिक साहित्य में रही है। प्राचीनकाल से ही नारी को नर की भाँति वेद पढ़ने और सुनने का अधिकार प्राप्त था। वैदिक ऋचाओं की दृष्टा नारियाँ रही है। जैसे "अस्य सूक्ता वाग ऋषि" (यहाँ वाग एक नारी ऋषि का नाम आया है)। अनेक उदाहरण वैदिक नारी, ऋषियों के दिये जा सकते हैं। जो नारी वैदिक काल में मन्त्र-दृष्टा हो सकती है। उनको कोई रूढ़िवादी ही 20 वीं सदी में वेद मंत्र पाठन के अधिकार से वंचित करेगा। इतिहास में वेदों की प्रकांड विदुषियां गार्गी, तारा, मैत्रेयी, द्रौपदी, मंदोदरी, शकुन्तला आदि का वर्णन है फिर ये पाखंड क्यों ?

स्त्रियों की एक अन्य संस्था 'सुचेतना' की कार्यकारी सदस्या, श्रीमती राजेश्वरी दास गुप्ता बड़ी उत्तेजित थीं। वे कहने लगी कि इन शंकराचार्य से इससे ज्यादा क्या उम्मीद की जा सकती है, ये वहीं शंकराचार्य है जिन्होंने 'रूप कुँवर' के सती होने को भी धर्मसंगत एवं उचित ठहराया था। श्रीमती दास गुप्ता का कथन था कि देश की नारियों को शीर्षस्थ संस्था की इस घटना पर समुचित विचार कर स्त्रियों के प्रति अपमानजनक बातों पर जबरदस्त विरोध तुरन्त प्रदर्शित करना चाहिये विशेष करके इन धर्माचार्यों का स्त्री जाति के प्रति अपमानजनक तथा निसंकोच का दुव्यर्वहार नया नहीं है यह तो मनु के काल से ही निरन्तर चला आया है। आश्रम की सेविकाओं का कथन था कि **"माँ शारदा ने यह शिक्षा दी है कि शान्त और सहनशील रहो। अपने कटु से कटु विरोधी को भी क्षमा करो। हम उस शिक्षा को नहीं तज़ सकते। बस इसी लिये शान्त हैं।"**

कलकत्ता के, शारदेश्वरी आश्रम के परिसर में, खुलकर पर धीमी आवाज़ में पुरी के शंकराचार्य जी की अति अनुचित आपत्ति और अभद्र व्यवहार की निन्दा की गई। शालीनता के कारण वे सारे उद्गार प्रेस को खुलासा नहीं किये गये। सबका एक ही प्रश्न था कि क्या वेदों का पठन-पाठन स्त्रियों के लिये वर्जित है ?, तब गायत्री मन्त्र का क्या अभिप्राय और तात्पर्य है ? हम (बंगालवासी) क्यों शक्ति की उपासना करते हैं ? ये महानुभाव (पुरी के शंकराचार्य) उन सब (शक्ति देवी) से भी क्या ऊपर हैं ? उनका कथन था कि स्त्री और पुरुष मानो पक्षी के दो पंख हैं, यदि तुम उसका एक पंख काटना चाहो, तो वह पक्षी कैसे उड़ सकेगा ? आश्रम की नन्दिता माँ, ने दर्द भरे शब्दों में कहा कि शंकराचार्य जैसे व्यक्ति को स्त्री समाज के साथ ऐसा दुर्व्यव्यवहार करना शोभनीय नहीं है, जबकि यह आयोजन उन्हीं सेविकाओं का है।

पर शंकराचार्य कैम्प के लोगों ने खेद प्रकट करने के स्थान पर फिर भी उन्हीं के व्यवहार को ठीक सिद्ध करने की चेष्टा की। शंकराचार्य के करीबी किसी, पंडित सी० के० पाठक ने इण्डियन एक्सप्रेस के सम्वाददाता, श्री अभिजीत दासगुप्ता, को बताया कि "नरसिंहा तातोपनिषद् में स्पष्ट वर्णित है कि स्त्रियाँ कभी भी वेदों को न पढ़ सकती है और न उनके मंत्रों का उच्चारण कर सकती हैं। पाठक जो अपने को दर्शनशास्त्र मे पी-एच. डी. बताते हैं उनका अन्त में यहाँ तक कहना था कि क्या स्त्रियों की प्रगति का मापदण्ड उनके वेदों के पठन-पाठन करने से ही है ? उन्हें इस घटना से लेशमात्र भी चिन्तित नहीं है। वह तो सब कुछ वंश परम्परागत है, सही माना गया है और सर्वदा ऐसा ही होता आया हैं। अंग्रेजी में मूल शब्द जो कहे वह हैं-"We are not bothered. This has been held true for generations, for all time. And anyway, why are they cribbing ? Does progress of women mean reading of Vedas ?"

नई दिल्ली के दैनिक 'दि टाइम्स आफ इण्डिया' दिनांक 20-1-1994 में प्रकाशित समाचार के अनुसार पुरी के शंकराचार्य,

स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती ने 19 जनवरी को कलकत्ता में प्रेस कांफ्रेस बुलाकर बताया कि फरवरी 1994 में श्रृंगेरी, कर्नाटक में चारों शंकराचार्य तथा छ-सन्त मिलने वाले है जिस बैठक में अयोध्या में राममन्दिर बनाने की योजना निश्चित की जायेगी। कांफ्रेंस के बाद कुछ स्त्रियों ने खड़े होकर जगत्गुरु के प्रति विरोधाभास प्रकट किया कि उन्होंने क्यों एक स्त्री को वेदमंत्र उच्चारण से रोका ? जगतगुरु पहले तो रोष में भड़क पड़े। बाद में उनके दो प्रतिनिधियों को फिर यहाँ समझाने की चेष्टा की कि शास्त्रों में उनको इसके लिये मना किया गया है।

16 जनवरी सन् 1994 को कलकत्ता में पुरी के शंकराचार्य ने एक आश्रम की विदुषी हिन्दू स्त्री के वेदमंत्र गायन पर खुले आम आपत्ति की और रोका, संयोग देखिये कि उसी शहर कलकत्ता में एक शताब्दी पूर्व 1894 में शिकागों के विश्व धर्म सम्मेलन से वापस लौटकर जब स्वामी विवेकानन्द ने वहाँ अपने उपदेश देने प्रारम्भ किये ही थे, तब भी ब्राह्मणों ने उनके कायस्थ जाति का (तब उन्हें शूद्र माना जाता था) होने के कारण वेद-मंत्र उच्चारण करने पर घोर आपत्ति की थी। इससे क्या यह नहीं लगता कि इन सौ वर्षों के बावजूद भी तथा देश स्वतन्त्र होने के बाद भी ब्राह्मणवाद की रूढ़िवादिता और हठधर्मी समाप्त होने के बजाय ज्यों की त्यों आज भी प्रकट हो जाती है। जो द्विज वर्ग के आलोचक जातिवाद के नाम पर हिन्दू स्त्री समाज के इस अपमान की घड़ी में उन्हें किस शब्दों में सान्त्वना देंगे, क्या उपाय सुझायेंगे कि वे फिर भविष्य में इस प्रकार अपमानित न की जा सके :-?

विद्वत् पाठक गण, विशेष करके वे जो ब्राह्मण हैं वे मानेगे कि शंकराचार्य की स्त्रियों के सम्बन्ध में वेद पठन-पाठन में उठाई गयी आपत्ति सर्वदा अनुचित है, उनका घोर अपमान है तथा इसकी रोकथाम तुरन्त करना आवश्यक है।

पुरी के जगत्गुरू शंकराचार्य, श्री निश्चलानन्द के सर्वदा अनुचित तथा स्त्रियों के प्रति घोर अपमानजनक इस दुर्व्यवहार के विरोध में देश में सब तरफ से तीव्र प्रतिक्रिया, विशेष कर नारी हित संरक्षक संस्थाओं की ओर से हुई है। इस संदर्भ में उन दिनों नित्य ही दैनिक समाचार पत्रों में कुछ न कुछ नयी बात प्रकाशित होती रही। जैसे भारतीय जनता पार्टी की प्रवक्ता, सुश्री सुषमा स्वराज ने 20 जनवरी 1994 ने अपनी पार्टी की ओर से वक्तव्य में स्पष्ट किया कि यदि शास्त्रों में कहीं कुछ ऐसा लिखा हुआ है या ऐसा प्रावधान है जोकि भारतीय नारियों को तिरस्कृत करता है, तो वह तुरन्त तजने योग्य है। उनका यह भी कहना था कि शंकराचार्य जैसे धर्माचार्यों को अपनी मर्यादा के अनुसार हिन्दू समाज की भेदभाव और ऊँच-नीच का चलन शीघ्र समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। आर्य समाज के नेता स्वामी अग्निवेश ने पुरी के शंकराचार्य के इस रवैये को दकियानूसी तथा महिला विरोधी बताया है।

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव सतयुग में इस वसुन्धरा पर अवतरित हुए थे। उनको भगवत्गीता एवं वेदों में भी अष्टम अवतार माना गया हैं उनके पुत्र भरत इस धरती के प्रथम चक्रवर्ती राजा हुए। उन्हीं के नाम पर हमारे देश का नाम "भारतवर्ष" पड़ा ऐसा जैनधर्म के अनुयायियों की मान्यता है। उन्हें प्रथम तीर्थंकर होने के कारण भगवान आदिनाथ कहा जाता है। भगवान ऋषभदेव जी ने 'नारी शिक्षा' को भी अपने युग में प्राथमिकता प्रदान की है जिसका जीवन्त उदाहरण हैं-ब्राह्मी और सुन्दरी अपनी दो पुत्रियों को निज मुखारबिन्द से विद्याध्यन कराना। फिर क्यों आज पुरी के शंकराचार्य को नारियों के वेद-पाठन पर आपत्ति है।

भगवान ऋषभदेव को आदि ब्रह्मा माना गया है, किन्तु जैनधर्म के अनुसार उन्होंने सृष्टि की रचना नहीं की, सृष्टि तो अनादिकाल से प्राकृतिक रूप में चली आ रही थी। इसलिये जैन सम्प्रदाय, जिसमें हमारे राजस्थान के आँजणा कण्बी बन्धु हैं ईश्वर का अस्तित्व सदैव स्वीकार करते हैं, किन्तु उसे सृष्टि का कर्त्ता कदापि नहीं मानते।

इसी बीच अखिल भारतीय महिला कांग्रेस (All India Women's Congress) ने 20 जनवरी 1994 को पुरी के शंकराचार्य के नारियों द्वारा वेद-मंत्र पठन-पाठन को एक सप्ताह पूर्व एक समारोह में न करने देने सम्बन्धी उनकी आपत्ति और विचारों की कड़े शब्दों में भर्त्सना की इस संस्था के पदाधिकारियों ने कहा कि उनकी जानकारी के अनुसार मनुस्मृति सहित सभी वेद शास्त्रों में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि उनके मंत्रों का उच्चारण करना स्त्रियों को वर्जित है। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि यह शंकराचार्य शाही इमाम के प्रतिरूप हैं। (देखिये दि टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली, अंक 21 जनवरी 1994)। गोरखपुर के गोरक्षपीठाधीश्वर और सांसद महन्त अवैद्यनाथ ने कहा है कि पुरी के शंकराचार्य ने एक विदुषी महिला को वेद पाठ करने से रोक कर महिला समाज का अपमान किया है। महन्त जी ने कहा कि वैदिक इतिहास में अनेक विदुषी महिलाओं का वृतान्त मिलता है जो न केवल वेद पाठी रही है बल्कि शास्त्रों में पारंगत रही है। फिर महिलाओं के प्रति ऐसे अपमानजनक भाव उन्होंने क्यों प्रकट किये ?

"नारी उत्पीड़न के आयाम-"एक ब्राह्मण-श्री आनन्द मोहन उपाध्याय का "जनसत्ता" दैनिक हिन्दी दिल्ली, अंक दिनांक 2 फरवरी 1994 से साभार उद्घृत :-

महिलाओं को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं होना चाहिये। (16 जनवरी 1994 को **शारदेश्वरी आश्रम कलकत्ता के शताब्दी** अवसर पर अरुन्धती राय चौधरी को वेद मंत्र पाठ करने से रोकने पर) **कह कर पुरी के शंकराचार्य** जी ने स्वयं को उसी इमारत की ईंट साबित किया जिसके ध्वसांवशेष ही रह गया है। शोषण और चालाकी की इस इमारत के अन्दर ही हमारे इतिहास में महिलाओं की अस्मिता के खिलाफ़ ऐसा रचा गया कि जिसके सदमें और प्रभाव से आज तक वे उबर नहीं पायी है। इस षडयंत्र के रचयिता हमारे कथित धर्माचार्य ही रहे हैं। हर युग में राजाओं की मिली भगत ने उनका काम आसान किया है। उत्तर वैदिक काल से जो एक-एक कर अधिकार छीनना शुरू हुआ उससे औरत विलासिता का एक अंग भर बन गई। यही वे लोग उसे बनाना चाह्ते थे। यह तब तक सम्भव नहीं था जब तक वह अपने अधिकारों और अस्तित्व की सही भूमिका से वाकिफ रही। इसलिये उनका पठन-पाठन कम कर दिया गया और उसकी शादी जल्दी किये जाने पर बल दिया गया ताकि उसे अध्ययन आदि का कम से कम बोध हो।

इन्हीं शोषणों की एक-एक ईंट जोड़कर प्रताड़ना का वह महल बनाया गया, जिस के अन्दर कभी कन्या-भ्रूण हत्या, फिर नवजात बालिका का गला घोटकर या अफीम चटाकर हत्या करने की चीखें गूंजी तो कभी जवान विधवा के सती होने की लपटें चमकी और वीभत्स चीखें उठीं, तो कहीं-कहीं उनसे राजनर्तकी के घुँघुरू खनके तो कहीं देवदासियाँ सजाई गई। क्या इन सबकी किसी को कानों-कान खबर नहीं थीं ? बिल्कुल थी। लेकिन यह सब कुछ उस इमारत पर लहरा रहे हिन्दू धर्म की पवित्रता के परचम के प्रभाव से महिमा मंड़ित था। धर्म के हाथ में यह सबसे धारदार हथियार रहा है कि जब किसी पाप से अपनी क्षुद्र स्वार्थ सिद्धि हो तो उसे इस तरह पुण्य की चाशनी में सराबोर कर दो कि वह चारों तरफ़ से पुण्य ही नज़र आए।

देवदासियाँ बनीं तो इसलिये कि वे देवता को समर्पित हों न कि भ्रष्ट पुरोहितों की मुक्त अंकशायिनी बनें। औरतें जला दी गई तो इसलिए कि उनका स्त्रीधन हड़प जाना है, बल्कि इसलिये नहीं कि पतिव्रता होकर स्वर्गारोहण करेंगी। ऐसे-ऐसे प्रपंच रचे हैं हमारे कथित पंड़ितों ने। और उस पर दम्भ कि हिन्दू धर्म बड़ा उदार और लचीला है। और इस्लाम पर इसी मुँह से हँसते हैं कि वहां तो बड़ी संकीर्णता है। छि ! बेशर्म हंसी।

शुक्र है कि आज वे ही औरतें हवाई जहाज़ उड़ाती हैं। ट्रैफिक नियंत्रण करती हैं। वर्दी पहनकर सीमा पर लड़ने को तैयार होती हैं और देश के भाग्यविधाताओं में अग्रणी हैं। उनकी प्रगति के हथौड़े ने उस कुमति और शापित इमारत को खंड़हर में बदल दिया है। हथौड़े की धमक जारी है और यह धमक जैसी **औरतों को वेद पढ़ने से रोक दो**, उपर्युक्त प्रकार की खबरों की बौखालट से पैदा हुई है।"

जहाँ एक तरफ पुरी के शंकराचार्य की नाराज़गी सम्बन्धी उपर्युक्त प्रकार की खबरें बराबर आ रही हैं, दूसरी तरफ तुलना कीजिये एक अन्य शंकराचार्य की उदारता, हृदय विशालता तथा उनकी गुरुता से। लगभग 100 वर्ष की आयु में काँची काम कोटि पीठ के चन्द्रशेखरानन्द सरस्वती जिनका स्वर्गवास हो गया था और 10 जनवरी 1994 को उनकी भूसमाधि के रूप में विधिपूर्वक उनके उत्तराधिकारी संत और शंकराचार्यों द्वारा उनकी अन्त्येष्टि की गई। दिवंगत महापुरुष के सम्बन्ध में **'दि टाइम्स ऑफ इण्डिया'** दैनिक समाचार पत्र के 21 जनवरी 1994 अंक में "LETTERS" कालम के अन्तर्गत (Great Saint) **"महान् संत"** नाम शीर्षक से अबु साकिब नामके एक मुसलमान प्रशंसक का पत्र प्रकाशित हुआ है। उसके उद्‌गारों के कुछ अंश मूल अंग्रेजी भाषा में नीचे साभार उद्‌धृत हैं :-

GREAT SEER

The fact that your editorial (January 12, 1994) touched the core of a Muslim heart speaks volumes for the catholicity of the seer's mind and heart. May I share an incident with you. A Muslim driver once brought a few pilgrims for a 'darshan' of Swamiji. This driver, drawn by the sheer radiance of Swamiji's humanity, also stood in the queque but felt a little uncomfortable as he was a stranger to the place and to its rituals. But Swamiji, almost as though he had read his mind, came up to him and spoke to him. He said all taboos and restrictions were man-made. The important thing was the search for inner peace. The Swami pleased him and the Muslim went back, serene and contended.

This incident proves that souls like Swamiji's came into the mortal world only once in a century and no particular ideology or religion can confine them. They belong to humanity at large. That is why Swamiji remained above all mundane controversies in which lesser mortals like us are enmeshed.

—ABU SAQIB

बाल्मीकि रामायणं के अध्याय 20 के श्लोक 15 में माता कौशल्या का 'अग्नि होत्र' यज्ञ-अनुष्ठान करना वर्णित है जब श्री रामचन्द्र वन-गमन से पूर्व अपनी माँ की चरण रज लेने आये थे। स्त्री होकर वेद-मंत्रों द्वारा ही कौशल्या माता द्वारा वह यज्ञ सम्पन्न

करना प्रमाण है। वेदों की स्त्री मन्त्र द्रष्टाओं को ऋषिकाएन (ऋषि की पत्नी) कहा जाता है। केवल ऋग्वेद में 16 नारियाँ मन्त्रदृष्टा हुई हैं जिनमें लोपामुद्रा, रोमशा, सर्मा, जूहू, पोलोमी शची, उर्वशी, घोषा, उपाला और अग्निशरी आदि हुई। क्या ये सब बातें श्री पुरी वाले श्री शंकराचार्य भुला देना चाहते हैं ?

एक ही काल और समय में, दो विभिन्न शंकराचार्यों के कैसे भिन्न विचार हैं। एक के भेदभाव और संकीर्णता पूर्ण स्वजातीय जननी समाज के प्रति और दूसरे के कितने विशाल, "वसुधैव कुटुम्बकम" को साकार करने को लालायित सब के कल्याण के लिये और सबके लिये, चाहें विधर्मी तक क्यों न हों अपने हृदय कपाट सदैव खोले आलिंगन करने को मानों दोनों हाथ फैलाये, उसकी ओर वात्सल्य पूर्ण नेत्रों से देखते, उनके बढ़ते कदम।

पाठक गणों को विदित होगा कि 16 जनवरी 1994 को कलकत्ता के शारदेश्वरी आश्रम से श्री जगतुगुरु पुरी के शंकराचार्य द्वारा श्रीमती अरुन्धती राय चौधरी को वेद-मंत्र पाठ करने से रोक दिया था, हमारे देश में बड़ी जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। नित्य समाचार पत्रों में पत्रिकाओं में हिन्दुओं के इन शीर्षस्थ धर्माचार्य की स्पष्ट शब्दों में भर्त्सना की गई। पुरी के शंकराचार्य जी की तरफ से अनेक सफाइयाँ पेश की गई जैसे कहा गया कि काँचीपुरम के शंकराचार्य जी महाराज तो कभी किसी नारी से भेंट नहीं करते। क्यों उन्होंने केवल श्रीमती इन्दिरा गांधी तत्कालीन प्रधानमंत्री से मिलने की आज्ञा दी थी पर बीच में परदे की व्यवस्था की गयी थी कि सीधा दृष्टिपात श्रीमती गांधी न कर सकें। तब नारी अधिकार वालों ने नारी के प्रति इस विभेदन पर आपत्ति क्यों नहीं उठायी ? क्यों ही सब उनके पीछे पड़ गये। इसके पीछे कुछ लोगों विशेषकर राजनीतिज्ञों का हाथ है।

चारों ओर से निन्दा होने का यह प्रभाव हुआ कि भुवनेश्वर (उड़ीसा) में 4 फरवरी 1994 को पुरी के शंकराचार्य ने सारे विवाद का दोष राजनीतिज्ञों और मीडिया पर डाला कि यह सब उनके द्वारा तूल बाँधा गया है, अन्यथा उन्होंने यह कहा कि नारियां वेदपाठ में कहीं भी वर्जित नहीं हैं। चलो सुबह का भटका शाम घर आ जाये तो भटका नहीं समझा जाता। अत: इस विवाद पर पटाक्षेप हो जाना चाहिए। वर्तमान समय में भारतीय नारी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार, जबकि दूसरी ओर नारी को देवी बनाकर अतीत काल से उनकी स्तुति में पुरोहित वर्ग मंत्रोच्चारण करते नहीं थकता है।-

"या देवी सर्व-भूतेषु, जाति-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्ये, नमस्तस्ये, नमस्तस्ये नमो नम:।"

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की दृष्टि में जाँत-पाँत समस्या का उपचार :

आचार्य चतुरसेन जी ने अपनी पुस्तक "राष्ट्र का नवनिर्माण", (प्रकाशित सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-7 प्रथम संस्करण 1986 से साभार लेकर हिन्दू धर्म के जाँत-पाँत समस्या के निवारण हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जा रहे हैं :-

1. मेरी यह खुली राय है कि जब तक ब्राह्मणत्व को सबसे श्रेष्ठ समझा जायेगा, तब तक राष्ट्र का संगठन किसी भी भाँति सम्भव नहीं है।
2. मैं कहूँगा कि इस समय और भविष्य में भी हिन्दू समाज को ब्राह्मणत्व की बिल्कुल जरूरत नहीं है।
3. अकेले ब्राह्मणत्व का सुधार करके ही हिन्दुओं का उद्धार नहीं होगा। ब्राह्मणत्व ही इस जात-पात के बखेड़े की जड़ है, यह तो स्पष्ट है, परन्तु जात-पात ने स्वयं भी एक ऐसा कुसंस्कार हिन्दू जाति में उत्पन्न कर दिया है कि जो उसे पनपने नहीं देता।
4. मैं ब्राह्मणत्व के विनाश का पक्षपाती हूँ उसमें आप समझ गये होंगे कि मैं वर्ण-विभाग का भी उसी भाँति नाश कर देना चाहता हूँ, जिस भाँति ब्राह्मणत्व का और जाति का।
5. केवल 'पुरुष सूक्त' में बहुचर्चित 'ब्राह्मणेशय मुखमासीत्' मंत्र है। यह पुरुष सूक्त ऋग्वेद का बहुत पिछला भाग है।
6. वैदिक ऋषियों की न कोई प्रथक जाति या वर्ण था, न 'ऋषि' शब्द साधारणतया काम में लाया जाता था और न ऋषि गण संसार से विरक्त होकर, तप, ध्यान, ज्ञान आदि में समय व्यतीत करते थे, बल्कि वे संसार में साधारण मनुष्यों जैसे ही रहते थे। वे ग्रहस्थी रखते थे। खेती करते थे। युद्ध करते थे। अपने खेतों, पशुओं, शत्रुओं के नाश, शस्त्रों के लिये प्रार्थनाएं करते थे। प्रत्येक कुटुम्ब का एक मुखिया होता था और वहीं अपने घर में समस्त धर्म -कृत्य और संस्कार आदि करता था।
7. वैदिक काल में एक ही घर में कई वर्ण रहते थे, उसका उदाहरण देखिये, ऋग्वेद, मंडल 1, सूत्र 112 ऋचा 3 में :-
"मैं सूक्त रचना करता हूँ, मेरा पिता वैद्य है, मेरी माता पत्थर का काम करती है। हम सब प्रथक-प्रथक कामों में लगे हुये हैं। जैसे गौएं चरागाह में आहार के लिये घूमती है, वैसे ही हे सोम ! हम भिन्न-भिन्न रीति से धन संचय करते हैं।

8. विश्वामित्र प्राचीन वैदिक ऋषि हैं। और वे प्रसिद्ध गायत्री मंत्र के दृष्टा हैं, जिसे ब्राह्मण अत्यन्त पवित्र और गोपनीय गुरुमंत्र समझते हैं। वे योद्धा ऋषि थे। पीछे पुरोहित का कार्य करने लगे थे। पर पौराणिक उपाख्यान में इनके प्रथम क्षत्रिय तथा पीछे ब्राह्मण होने की मनोहर कथा गढ़ दी गई है, हालाँकि यथार्थ यह है कि वे न ब्राह्मण थे, न क्षत्रिय प्रत्युत उस काल के ऋषि थे, जबकि तब ब्राह्मण और क्षत्रिय उत्पन्न ही नहीं हुये थे (अर्थात् समाज का वर्णाश्रम-विभाजन तब तक नहीं किया गया था।)

विद्वानों का सही मत है कि हिन्दू धर्म को जीवित रखने के लिये ब्राह्मणवाद को समूल नष्ट करना पड़ेगा नहीं तो हिन्दू धर्म नष्ट होने से बच नहीं सकता। यदि इस ब्राह्मणवाद को शीघ्र समूल नहीं उखाड़ फेंका गया तो यह फिर बढ़ कर पहले से भी भयंकर रूप धारण कर सकता है। यह जिद्द या रूढ़िवादिता का प्रदर्शन सिर्फ ब्राह्मणों की ओर से है क्षत्रियों की ओर से नहीं। हिन्दू स्त्री को वेदमन्त्र पढ़ने पर किसी भी क्षत्रिय और नवक्षत्रिय (राजपूतों) को भी आपत्ति नहीं प्रतीत होती। ब्राह्मणवाद को ब्राह्मण जितनी जल्दी तज देगा, इस हिन्दू जाति के अभिशाप का अन्त उतनी जल्दी होगा, और ब्राह्मण बने रहेंगे। हिन्दुओं के अन्य वर्गों के समान वे अधिकारी वर्ग के रूप में होंगे, अन्यथा ब्राह्मणवादी कैंसर के साथ मरीज़ का अन्त अब खतरे में पड़ता जा रहा है। बात को स्पष्ट करने हेतु कि ग्रामीण जीवन में ताल-तलैया के महत्वपूर्ण विचार करें। बीसवीं सदी में किसी विदेशी पौधे के साथ अनजाने में चली आयी जल कुम्भी (Hyasynth) आज सारे देश के ताल-तलैयों के जल पर लगभग छा गयी है। कृषक को जल कुम्भी के कारण उनके (ताल-तलैयों के) अनेक लाभों से वंचित रहना पड़ता है। भारतीय ताल-तलैयों को जलकुम्भी (Hyasynth) से मुक्त कराना है तो एक बहुत बड़ा अभियान वनस्पति वैज्ञानिकों की सलाह पर चलाना होगा। इसे पूर्णतः नष्ट करने के लिये ताल-तलैयों के पानी से उन्हें शत प्रतिशत निकालकर, सुखाकर, गड्ढे में गाड़ना होगा या जलाकर राख कर देना होगा। जो भी उचित बताया जाये वह सब कुछ करना होगा। तब हमारे गाँव-देहात के परिवेश के ताल-तलैयों को इस परजीवी, अनुपयोगी वनस्पति से मुक्त करके स्वच्छ जल का सब उपयोग कर सकेंगे।

तथागत् ने बुद्ध धर्म को अपने दीर्घ जीवनकाल में सबल संरक्षण प्रदान किया। अपने उपदेशों द्वारा रूढ़िवादी ब्राह्मणवाद को उन्होंने और जैन तीर्थंकरों ने लगभग निस्तेज एवं अप्रभावी कर दिया था, पर कहीं पर उसके जीवाणु-तत्त्व बच रहे होंगे। जैसे बात को और स्पष्ट करने के लिये उदाहरण देखिये कि परशुराम ने एक मिथ-कथा के अनुसार 21 बार पृथ्वी को क्षत्रिय रहित करने का दावा किया है, उसमें कुछ ऐसा कहा जाता है कि कुछ क्षत्रिय सरसों के दानें के रूप को धारण कर कामधेनु गाय के खुरों में बीच में छिप गये। अतः वे ही परशुराम की दृष्टि और फरशे से शेष बचे। बाद में उन छिपे क्षत्रियों से ही उत्पन्न संताने इस धरा पर विद्यमान है। उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अपने जीवन के आखिरी समय में बहुत अनुनय-विनय करने पर अपने बौद्ध विहारों के नियमों में एकाध शिथिल कर दिये। बुद्ध के देहावसान के उपरान्त बौद्ध-भिक्षुओं में ब्राह्मणों ने तेज़ी से घुस-पैठ की। नियमों को और ज्यादा शिथिल किया। फिर ब्राह्मणवादी बातों का प्रवेश बौद्ध धर्म में हो गया। परिणाम क्या निकला कि बौद्धधर्म 'हीनयान' और 'महायान' दो मतों में विभक्त हो गया। फिर शनैः शनैः इस देश से बौद्ध धर्म को समूल उखाड़ फेंका गया। और तब से अब तक 2500 वर्षों में सनातन हिन्दू धर्म ने अपनी जड़ें मजबूत कर ली हैं।

समाज से इस जलकुम्भी रूपी आज के जमाने में अत्यन्त हानिप्रद रूढ़िवादिता समाप्त करने की अनेक समाज सुधारकों ने चेष्ठा की। कुछ हद तक वे अपने जीवन में सफल भी हुए पर उनके जाते ही मर्ज़ वहीं पुराने रूप में पुनः प्रकट हो गया। यह जलकुम्भी की तरह ब्राह्मणवाद का भी एक गुण है। अब कांशीराम अपनी बहुजन समाज पार्टी के साथ इसी उद्देश्य से हिन्दू समाज से ब्राह्मणवाद रूपी जलकुम्भी हटाने में कार्यरत हैं। उनके नये तरीके हैं, नये नारे हैं, जैसे एक नारा हाल में सुनने को आया, "तिलक, तराजू, कलम, तलवार, मारों इनको जूते चार। यह नारा सुनने में अच्छा नहीं लगा। इन नारे की जगह बहुजन समाज पार्टी का दूसरा नारा "जात तोड़ो, समाज जोड़ो" ज्यादा सार्थक रहेगा।

नैपोलियन बोनापार्ट की कब्र पर कर्नल टाड के उत्कीर्ण उद्‌गार

फ्राँस के सेंट हेलेना में सम्राट नैपोलियन बोनापार्ट की कब्र है जहाँ पर, वह सन् 1821 ईसवी में दफ़नाया गया था। पट्टिका पर, भारत से सदा के लिये इंगलैंड लौटते समय 'राजस्थान के इतिहास' के लेखक प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टाड के मुख से 28 अक्टूबर 1845 ई० को निकले शब्दों को उत्कीर्ण किया गया है जिसके अर्थ हैं :-

"तुम्हारी वह महत्त्वाकाँक्षा कितनी विशाल थी, और आज वह तंग होकर किस कदर सिकुड़ गई है। जब इस शरीर में प्राण थे तो, एक विशाल और विस्तृत साम्राज्य भी उसके लिये कम था, लेकिन प्राण निकल जाने पर, एकान्त की दो कदम ज़मीन ही काफ़ी हो गई है।"

(कर्नल जेम्स टाड कृत पुस्तक 'ट्रैवेल्स इन वेस्टर्न इण्डिया" से साभार उद्धृत)

अध्याय - 9

कुरमी समाज अब भी ऊँच-नीच की भावनाओं से ग्रस्त

कुरमी समाज में अभी भी ब्राह्मणवादी, ऊँच-नीच की भावना से ग्रसित कुछ रूढ़िवादी और कट्टरपंथी बन्धुजनों का दृष्टिकोण पूर्णतया बदला नहीं है। देश के कुरमी बहुल प्रदेशों में ऐसे लोग अभी भी अपने दम्भ में चूर मिल जायेंगें। इसी प्रकार की मनोवृत्ति रखने वालों के पूर्वजों को हरनौत (पटना) महासभा (सन् 1933) के अधिवेशन में अपने अन्य उपजाति वाले एक सम्पन्न कुरमी तक मंच की कुर्सी पर उपजातीय-आधार पर साथ-साथ बैठना काँटे की तरह चुभा था। वह व्यक्ति यदि सर्वहारा-अभागा होता, तब तो वह उनको फूटी आँखों भी न भाता। उस उपजाति वाले लोग संख्या में सर्वाधिक हैं और न्यूनाधिक बिहार के हर प्रदेश में मिलेंगे। हरनौत अधिवेशन में उस उपजाति के लोगों को जब सभा स्थल तक छोड़ने को कहा गया, तब फिर तू-तड़ाक मचा, भगदड़ हुई, जिसके परिणाम स्वरूप दो कुरमी, अपने कुरमियों की सभा में, अपने कुरमियों द्वारा अपमानित किये गये और उन्होंने कुरमियों के ही पैरों तले कुचले जाकर अपनी जान गंवायी।

रायपुर (मध्य प्रदेश) में डा० खूबचन्द बघेल, बाद में सांसद तथा पूर्व अध्यक्ष अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा को अपनी बेटी का शाखान्तर विवाह कर देने पर उनके मनवा समाज ने, उस प्रगतिशील, कदम की प्रशंसा और अनुकरण करने के स्थान पर उन्हें मनवा कूर्मि क्षत्रिय समाज से बहिष्कृत कर दिया था। बाद में श्री घनीराम वर्मा वर्तमान संरक्षक महासभा तथा डा० बघेल के भतीजे श्री हरिप्रेम बघेल, एम० एल० सी० आदि के सतत् प्रयास से स्व० डा० बघेल के बहिष्कृत परिवार को पुन: मनवा समाज ने अपनी बिरादरी में सम्मिलित कर लिया था।

पाठकगणों को यह जानकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है कि सन् 1924 के महासभा के खीरी (यू० पी०) के 14 वें अधिवेशन में सभापति (वर्तमान में अध्यक्ष) हिज हाइनेस सर तुकोजी राव पंवार, महाराजा देवास के विशेष आग्रह पर और अन्य विशिष्ट महानुभावों के समझाने-बुझाने पर विभिन्न उपजातियों के कुरमियों ने प्रथम बार एक पंगत में साथ-साथ बैठकर सहभोज का श्री गणेश किया था। फिर तो अन्याय उपजातियों के कुरमी प्रतिनिधिगणों में आगे के होने वाले अधिवेशनों में सहभोज चल पड़ा तथा महासभा में इस मुद्दे को लेकर भविष्य में कोई हंगामा, उठा हो, ऐसा सुनने में नहीं आया।

हाँ ! अनेक वर्ष पूर्व इस पुस्तक के लेखक को 'कूर्मि क्षत्रिय दिवाकर' के सम्पादक तथा महासभा के पूर्व अध्यक्ष एवं महामन्त्री, वाराणसी निवासी स्व० श्री शिवराम सिंह ने हरनौत महासभा की दुर्घटना के अतिरिक्त एक और हास्यास्पद और शर्मनाक घटना बताई। यह देश के स्वतंत्र होने से काफी पहले की है। उस काल में बहुधा महासभा के अध्यक्ष पद के लिये या आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिये कुरमी समाज सेवीगण् सामूहिक रूप से राजाओं, महाराजाओं, रजवाड़ों आदि में विशेष रूप से जाया करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर, वे ही थे स्वजातीय कार्यकर्त्तागण् , किसी कुरमी महाराजा के पास गये। इन विशिष्ट व्यक्तियों के आगमन का तात्पर्य जानकर महाराजा के आदेश पर उनकी काफी आव-भगत की गई। उनकी पूरी सुविधाओं का ध्यान रखा गया।

महाराजा से जब भेंट हुई, उन्होंने इस शिष्ट-मंडल की बात बड़े गौर और आत्मीयता से सुनी और ऐसा आभास हुआ कि उनके दोनों निवेदन, आर्थिक सहयोग और महासभा की अगले अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिये स्वीकृति मिल जायेगी। इस बीच दोपहर के भोजन का समय हुआ। भोजन कक्ष में सबके लिये एक साथ भोजन के थाल लगाये गये। संकेत मिलते ही महाराजा ने कहा कि उठिये सज्जनों पहले हम सब भोजन कर लें। उनमें से कुछ तो सहभोज को तैयार थे पर कुछ नहीं थे, वे एक दूसरे की बगले झाँकने लगे। बड़ी हिम्मत करके उनमें से एक ने मुँह खोला और असलियत बयान की कि यदि वे यहाँ सहभोज कर लेते हैं, घर लौटने पर उनकी उपजाति वाले बुरी तरह उनकी बखिया उधेड़ेगें, अत: उनकी असमर्थता के लिये उन्हें क्षमा किया जाये।

महाराजा साहब का क्रोधित होना स्वाभाविक था, पर मेहमान समझ कर वे अपना क्रोध-दबाते हुये बोले कि जब अपने को एक ही जाति के कहने वाले आप सब लोग एक साथ उठ-बैठ और खान-पान भी नहीं कर सकते तब फिर आप लोग जातीय संगठन, रूढ़िवादिता-अन्ध विश्वास निवारण आदि कैसे कर पायेंगे; मुझे तो इस बारे में सन्देह उत्पन्न हो गया है। आपकी माँगी गई महासभा को आर्थिक मदद आपको दे दी जायेगी। आप लोग जिस प्रकार भोजन करना चाहें मेरे कर्मचारियों को बता दीजियेगा। पर मुझे आप अपने समाज की अध्यक्षता ग्रहण करने के लिये क्षमा करें। मैं आपके दकियानूसीपन को देखकर अब आपके समाज

का सरदार नहीं बनना चाहूँगा। जब आप लोग इस जाति के रहनुमा और अगुआ जैसे लोगों की यह हालत है तो आम लोग तो और भी ज्यादा कूप-मण्डूप होंगे।

आज लगभग 50-60 वर्ष बाद उस घटना का उल्लेख करने का एक ही औचित्य है कि आज की पीढ़ी जान सके कि बीते कल तक हमारे लोग कितने रूढ़िवादी थे, और आज भी हम इससे पूर्णरूपेण मुक्त हो चुके हैं ऐसा सीना ठोक कर दावा भी नहीं कर सकते। समय तेज़ी से बीतता जा रहा है, जमाना भी साथ-साथ ब्रह्म महूर्त वाली करवटें बदल रहा है, मानवता नवोदय की बाट जोह रही है। अगर हम जमाने के साथ-साथ अग्रणी लोगों की पंक्ति में रहते हुये, कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ते रहना चाहते हैं तो तुरन्त हमें अपने चिंतन, व्यवहार और करनी-कथनी में समयोचित परिवर्तन करते रहने होंगे। हमें सुप्तावस्था या आलस्य त्याग कर एक सच्चे कर्मवीर की तरह कमर-कस के प्रगति-पथ पर अग्रसर काफ़िलों के साथ अपने जातीय काफ़िले को लेकर चलना होगा। देखो जमाना बड़ी तेज़ी से प्रगति करता जा रहा है। स्पेशलाइजेशन (विशेषज्ञता) का जमाना है। वक़्त से पिछड़ा बहुत त्रस्त होता है।

हम अपनी वर्तमान अवस्था पर खुले दिमाग से विचार करें। कब तक हमारा बहुत बड़ा वर्ग कूप-मण्डूक बना रहेगा। कब तक हम अपनी टर्र-टर्र में मस्त समय गँवाते रहेंगे। बहुत समय रह लिये, अब आगे रहना आत्मघाती होगा। हमें अब भी सचेत हो जाना चाहिये, और समझ लेना चाहिये कि दुनिया बहुत बड़ी है, हमारा प्यारा भारत देश भी बहुत बड़ा है; हम हरेक के जीवन का समय सीमित है। इस सीमित समय को हम क्यों व्यर्थ के वाद-उपवाद, दुश्मनी आदि में गंवायें ? क्यों न हम इसे जाति, समाज देश परमार्थ आदि के लिये लगावें। हम जो भी कार्य करना चाहते हैं, उसमें साफ़ दृष्टि तथा साफ़ मन से, व्यापक प्रगतिशील दृष्टि-कोण रखते हुये, बिना किसी लाभ-फलादि की कामना करते हुये, सतत् प्रयत्न करते जायें, जिससे हम अपने इस अमूल्य जीवन की सार्थकता तो स्थापित कर जायें। अपने को जन्मजात पितृ-ऋण से भी मुक्त कर सकें। साथ में आने वाली पीढ़ियों के अपने जीवन के कार्य-कलापों और उपलब्धियों से प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत कर जाएं। जीवन वह सार्थक है, जिसका कार्य काल समाप्त होने पर कबीर का यह दोहा लागू होता हो :-

कबिरा जब हम आये थे, जगत हँसा हम रोये,
ऐसी करनी कर चलो, हम हँसे जग रोये।।

किसी जाति जो विशेष कर कोई अतीत उज्जवल होते हुये भी सदियों से सुप्तावस्था में पड़ी रही हो, उसकी एकता, भ्रातृ-भाव, सबल जातीय संगठन, समयोचित जागृति और चुस्ती, प्रगति-पथ पर तेज़ी से अग्रसर होने की चाह आदि सब कार्य केवल महासभा के अवसरों पर दिये जाने वाले लच्छेदार, भाषणों, जातीय लेखों, पत्रिकाओं और पुस्तकों से पूर्ण होना सम्भव नहीं है। हाँ ये मात्र उत्प्रेरक का कार्य कर सकते है। अंग्रेजी की कहावत है-"One can lead a horse to water, but can not make him drink." अर्थात्-"किसी न किसी तरह से घोड़े को पानी तक ले जाया जा सकता है, पर उसे जबरदस्ती पानी पिलाना मुश्किल है।" यहाँ समाज को घोड़े के उदाहरण से चित्रित किया गया है उसके अन्यथा अर्थ न निकालें।

रही समाजोद्धार तथा समाजोत्कर्ष की बात सो घोड़ा जब खुद पानी पीना चाहेगा, तब वह स्वत: पानी पीने लग जायेगा। समाज स्वत: उपरोक्त तरक्की की बातें करने को तैयार हो जाये, यहीं सब कुछ संगठन, भाषण-लेख तथा जातीय पत्रिकाओं-पुस्तकों आदि के माध्यम से करना होगा। समझाना होगा कि कुम्भकरण जी अब अपनी निद्रा और तन्द्रा तजिये, उठिये और जमाने के तेवर देखिये और सब कुछ कीजिये, जिससे आप भी समाज के सम्माननीय घटक बन सकें। भाई-चारा और सजातीयता के साथ-साथ उठना-बैठना बड़ा लाभप्रद और सुखदायी होता है। अपने लोगों का स्नेह या सामीप्य कितना रुचिकर होता है यह बौद्ध-कालीन इस आख्यान से अनुभव करिये :-

"कहते हैं कि एक बार पत्रहीन बरगद के वृक्ष के नीचे, ग्रीष्मकाल की कड़ी दोपहरी में, बैठे भगवान् बुद्ध को देखकर शाक्यों के खून के प्यासे कौसलराज ने उनसे पूछा : भगवन् ! पास ही हमारी राज सीमा के भीतर घनी छाया वाला वह बरगद का वृक्ष है, तथागत् आप उसके नीचे क्यों नहीं बैठते ?

महात्मा बुद्ध (जिनका जन्म शाक्य (खत्तिय) वंश में हुआ था) ने सहज भाव से उत्तर दिया, **"बन्धुओं की छाया शीतल होती है, यह शाक्य गणराज्य की भूमि पर खड़ा बरगद है। मैं यहाँ ज्यादा शीतलता अनुभव करता हूँ।"**

यदि लोगों ने जातीय उत्थान एवं उत्कर्ष की महत्ता समझाने का मन, बना लिया तो फिर समुचित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उनके पैर स्वत: सही दिशा की ओर, सही मार्ग पर तेज़ी से चल पड़ेगे। समाज की मन-स्थिति समयानुकूल ठीक प्रकार की बनाते हुये, उनके मनोबल को ऊँचा रखते हुये, सामाजिक कार्यकर्तागण जो भी पूरी लगन से निष्काम और निस्वार्थ भाव से करेंगे, उससे उन्नति, प्रगति और सर्वांगींण विकास सुनिश्चित हो सकेगा। फिर भी यदि किसी बन्धु के मन में निराशा व्याप्त होने लगे, तब उसे कवि,

पंड़ित रूपनारायण पाण्डेय की ये पंक्तियाँ स्मरण कर लेनी चाहिए :

वे उठते भी अवश्य हैं जो गिरते हैं,
दुर्दिन के ही बाद सुदिन सबके फिरते हैं।
देखे दारुण दुःख वही नर फिर सुख पावै,
अवनति के उपरान्त घड़ी उन्नति की आवै।।

रवि रात बीतने पर प्रकट होता प्रात: समय में,
बस यही सोचकर आप भी, धीरज धरिये हृदय में।

जीव मरण के बाद जन्म पाता है देखो,
चलती है हेमन्त हवा जब ज़ोर दिखाती।

तब होता पतझड़ पत्ती ना रहने पाती,
फिर वही वृक्ष होते हरे, नव-पल्लव शोभित सभी,
बस इसी तरह होंगे सुखी, उन्नतियुत हम भी कभी।।

आज समय की पुकार है कि सारे देश में बसे विभिन्न नामों से जाने वाले कुरमी समाज को एक महासभा के अन्तर्गत संगठित करें, लोगों से मिलें-जुलें, एक दूसरे नगरों और प्रदेशों में आयोजित जातीय समारोहों में आयें-जायें और उन्हें निकट से जाने-पहचानें, एक दूसरे के रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, रीति-रिवाज़ तथा उनकी सांस्कृतिक धरोहर से परिचय स्थापित करें, अपनी अच्छी बातें उन्हें बतायें और उनकी हम सीखें, तो अवश्य शीघ्र ही पारिस्परिक प्रेम बढ़ेगा, एक दूसरे के निकट आयेंगे और जाति-उपजाति, क्षेत्रीय, आँचलिक एवं प्रादेशिक विभिन्नताएँ मिट सकेगी। सिद्धेश्वर जी ने अपनी रचना **'बिहार के कुर्मी'** में ठीक कहा है:-

" हम हैं भारती कुर्मी, हमें रहना है इस तरह,
गुलदस्ते में सजाते हैं फूल जिस तरह।
आओ मिल-जुल के रहें ऐ कुर्मी बन्धुओं,
एक ही हार में गुंथे हुए फूलों की तरह।।

कुरमियों के बारे में एक लोक मत है कि वे बहुधा स्वतंत्र प्रकृति के और स्वाभिमानी होते हैं। उन्हें अपने जीवन के प्रति उच्च अभिलाषायें रखना चाहिये, तभी उनकी प्राप्ति के लिये सक्रिय होकर सुचारू रूप से प्रयत्न करने की प्रेरणा मिलेगी। अपने-अपने इष्ट देवता में सच्ची आस्था रखते हुये, स्वच्छ जीवन-प्रणाली अपना कर, संस्कारित ढ़ंग से कठोर और अथक परिश्रम से जुट जाना होगा, वे अवश्य एक दिन अपने लक्ष्य तक पहुँचने में कामयाब होंगे और उनकी यह सफलता जीवन में सुखदायनी और स्थायी होगी। उन उन्नतिपथ के पथिकों को इन शब्दों को मन में उतारना होगा-**"हाथ में काम, मुख में राम, हिरदे में सांची प्रीत।"** उन्हें मार्टर लूथर किंग की प्रसिद्ध कविता के निम्नलिखित भावों की सत्यता पर विश्वास कर प्रगति-पथ पर अग्रसर रहना होगा :-

हम होंगे कामयाब,
हम होंगे कामयाब,
हम होंगे कामयाब एक दिन,
दिल में है दृढ़ विश्वास,
हम होंगे कामयाब एक दिन .... ।

ऐतरेय ब्राह्मण (मंत्र 7/15) में भी कहा गया है-**"इन्द्र इच्चरत: सखा"**- (भावार्थ)- **इन्द्र परिश्रमी व्यक्ति की ही सहायता करते हैं।**

यदि जाति में, समाज में, या देश में स्वर्ग का सुख लाना है तो हम सबको अपने विचारों को हिमालय की तरह उच्च बनाना होगा तथा उससे निकलने वाली गंगा से पवित्रता की प्रेरणा लेकर भेदभाव को त्यागना होगा। सच्चे समाज सुधारक सुई की तरह समाज को जोड़ने का काम करते हैं, कैंची की तरह काटने-छांटने का नहीं। साधना और पूजा का अर्थ है अपने जीवन में पवित्रता और समदृष्टि को आत्मसात करना और लोक कल्याण के लिये प्राण-पण से जुट जाना।

मानसिकता तथा दृष्टिकोण में समयानुकूल परिवर्तन आवश्यक

हम सब स्वतंत्र देश के नागरिक हैं उन्नति के अनेक मार्ग हमारे सम्मुख हैं, हमें उनमें से कोई एक चुनना होगा, उसके योग्य बनकर अथक परिश्रम से बुद्धि का समुचित उपयोग कर जीवन को भौतिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर उठाकर सफल बनाना है। समय लग सकता है, प्रयत्न करते जायें, उसकी चिन्ता यह सोचकर न करें-"सहज पके सो मीठा होय।"

कुरमी जनों को इस बात पर गर्व होना चाहिये कि वे हिन्दू हैं और उस बृहत् समाज का महत्त्वपूर्ण घटक है जो कि आदि काल से आज भी चला आ रहा हैं। हिन्दू धर्म के आधुनिक चिन्तन में काफी परिवर्तन हुये हैं और होते जा रहे हैं, जो इस धर्म की विशेषता है। पूर्व केन्द्र मंत्री और भारतीय दर्शन के महाविद्वान डा० कर्ण सिंह के शब्दों में-" हिन्दू धर्म की महान् सामर्थ्य में एक विशेषता यह रही है कि ग्रंथ विशेष अथवा रूढ़ि विचार के स्थान पर आध्यात्मिक साक्षात्कार पर आधारित होने के कारण तथा किसी विशेष प्रकार के चर्च सदृश ढाँचे से मुक्त होने की वजह से, यह धर्म सर्वदा सृजनात्मक पुनः प्रतिपादन की क्षमता रखता है। सहस्त्रों वर्ष पूर्व के वैदिक युग से आज तक, उपनिषदों के मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर, बदलते समय की आवश्यकताओं के अनुरूप हिन्दू धर्म की पुनर्व्याख्या की जाती रही है। हमारी सदी में शाश्वत सत्यों के स्वामी विवेकानन्द और रमण महर्षि, श्री अरविन्द और महात्मा गांधी जैसे संतों ने सजीव पुनर्व्याख्या कर समाज को एक नयी चेतना दी है।"

जहाँ तक आध्यात्मिक चिन्तन का सम्बन्ध है, हिन्दू धर्म इस दृष्टि से बड़ा अनूठा धर्म है कि इसमें ईश्वर तक पहुँचने के विविध रास्तों को अपनाने की न केवल अनुमति है बल्कि उसको प्रोत्साहन दिया जाता है। इसमें मानवता की बौद्धिक और आध्यात्मिक विविधता और प्रवृत्तिओं को स्वीकार किया गया जिससे आराधक को जो भी माध्यम पसन्द आये उसी का प्रयोग करके वह ईश्वर प्राप्ति की चेष्टा करे। इस कारण इसमें बहुत अधिक समुत्थानशीलता और परिवर्तनशीलता है, जो उसकी शक्ति का स्रोत है। आध्यात्मिक चिन्तन को धन-सुविधा संचय से सदैव प्रधानता दी गई है और कहा गया है कि व्यावसायिकों की जाति रेशम के कीड़े की तरह होती है। अपनी ही लार से वे लोग स्वयं को जीवन भर के लिये कैदी बना लेते हैं।

राहुल सांकृत्यायन की दृष्टि में वर्णाश्रम -व्यवस्था

राहुल सांकृत्यायन का स्पष्ट मत था कि भारतीय समाज का सबसे बड़ा अंतर्विरोध यहाँ की वर्णाश्रम-व्यवस्था है। इस व्यवस्था के कारण प्रत्येक धारणा, प्रत्येक सामाजिक कार्य रूढ़ि बनता रहा है और इसके फलस्वरूप प्रसिद्ध "भारतीय दम्भ", अथवा चाहें उसे पाखण्ड भी कह लीजिये, की सृष्टि होती आयी है। इस विश्व में सबसे पाखण्डी व्यक्ति भारतीय हैं। राहुल जी इस कटु सत्य को जानते थे और उन्होंने निःसंकोच होकर कहा था। इसलिये उन्होंने स्वयं ब्राह्मण परिवार में जन्मे होने पर भी "ब्राह्मणवादी" सामाजिक व्यवस्था, नैतिकता, दर्शन, परम्परा और रूढ़ि आचार आदि पर, आक्रान्ता सिद्धों का क्रान्तिकारी पक्ष साक्ष्यों सहित उभार कर प्रस्तुत किया है। यह भी यथार्थ है कि हिन्दी में अधिकांशतः लेखक "ब्राह्मणवादी" दृष्टि से ग्रस्त रहे हैं, जाने या अनजाने में वे, 'भारतीय संस्कृति' के नाम पर "ब्राह्मण संस्कृति" का ही प्रचार-प्रसार करते रहे हैं और उन्हीं लेखकों को महत्त्व दिया है जो उक्त सामाजिक व्यवस्था और संस्कृति के समर्थक थे ("राहुल सांकृत्यायन, व्यक्तित्व और कृतित्व", सम्पादक डा० ब्रह्मानन्द, अक्षर प्रकाशक प्रा० लि० दरियागंज, दिल्ली से साभार)।

राहुल सांकृत्यायन कहा करते थे-"क्षणं प्रज्ज्वलितं श्रेयं, नच धुमायते चिरं" अर्थात् :- "चिरकाल तक सुलगते रहने की अपेक्षा क्षणमात्र के लिये प्रज्ज्वलित होना श्रेयस्कर है।"

राहुल जी भगवान बुद्ध के इस आदेश पर पूरी लगन से चलते रहे, जो भगवान ने कालामों को दिया था कि -'हे कालामो ! सन्देह ही ज्ञान का जनक है। किन्तु कालामों ! तुम किसी भी बात को इसलिये मत मानो कि वह तुम्हारी श्रुति है। इसलिये भी सत्य न मानों कि यह तुम्हारे पिटक (धर्मशास्त्रों द्वारा अनुमोदित)है । इसलिये भी सत्य न मानो कि कहने वाला तुम्हारा श्रद्धाभाजन आचार्य है। कालामो ! जब तुम्हारा अपना विवेक कहे कि यह बात सदोष है, तो उसे सदोष मानो और जिसे तुम्हारा विवेक सत्य तथा निर्दोष माने, उसे स्वीकार करो और उस पर आचरण करो।"

संस्कारित जीवन तथा चरित्र-निर्माण परमावश्यक है

प्राचीन काल से ही भारत की सीख चरित्र-निर्माण करना रहा है। भारत का सन्देश ऐसे युवकों का निर्माण करना था जो संसार के बड़े-से बड़े प्रलोभनों के सामने भी न डिगें-"चरित्र शिक्षेरन्"-वे जो कुछ भी जीवन में करे, ऐसे व्यक्ति जिसके चरित्र पर कोई आँच नहीं आ सकती, तब किसी व्यक्ति, धर्म,जाति या देश में कोई समस्या बनी नहीं रह सकती। जब व्यक्ति संस्कारित होकर चरित्र का निर्माण करता है तो उससे उस व्यक्ति, उसकी जाति, समाज और देश का निश्चित उत्कर्ष होता है।"

आज तरह-तरह की तरक्की होने की बड़ी-बड़ी गप्पें हांकी जाती है, परन्तु वह तरक्की कृत्रिम है। वास्तव में उसके साथ-साथ

समाज और व्यक्तियों के चरित्रों में स्पष्ट गिरावट आयी है। आज बहुधा देखा जाता है कि समाज तथा देश के नवयुवकों में, जो देश की भावी पीढ़ी का निर्माण करने वाले हैं, उनमें स्पष्टतया उच्छृंखलता और चरित्रहीनता बढ़ती जा रही है। इस गिरावट को रोक कर युवकों को सही दिशा की ओर अग्रसर करना समाज के प्रबुद्ध वर्ग का दायित्व है। अन्यथा जब राष्ट्रीय चरित्र में गिरावट आती है तो समाज, उसकी जाति और वह व्यक्ति भी पतनोन्मुखी होते हैं।

वेदों का आदेश था-"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"। वैदिक विचारधारा के अनुसार किसी देश या समाज का सबसे पहला काम है देश की जनता को 'आर्य' बनाना-'आर्य' अर्थात् शुद्ध चरित्र का व्यक्ति।'आर्य शब्द से बिदकना नहीं है, यह तो वैदिक शब्द है; फिर हमने ईरानियों द्वारा सिन्धु नदी के उस पार रहने वालों दिया हुआ हिन्दू शब्द सहर्ष स्वीकारा है। वे सप्त सिन्धु (पंजाब) को हफ्त-हिन्दू बोलते थे, उनका उच्चारण अर्थात् 'स्वर'(अपभ्रंश-सुर) खराब था, वे 'स' अक्षर को 'ह' बोलते थे तभी वे 'असुर' कहलाये गये। बात 'आर्य' शब्द की चल रही थी, उसी को आगे बढ़ाया जाय। आज यद्यपि हमारे पास अपने पूर्वजों की तुलना में बहुत कुछ है, परन्तु हम सब सही परिभाषा के अनुसार "अनार्य" बन गये हैं। व्यक्तिगत स्वार्थों में इतने लिप्त हो गये हैं कि सब कुछ होते हुये भी भाई-भाई की प्रगति नहीं देख सकता। भाइयों में अटूट और सच्चा प्यार तो अतीत की बात बन कर रह गयी है। बड़ों को चाहिये की अपने छोटों को स्नेह से जीतें।

अब्दुल 'रहीम' खानखाना ने ठीक कहा है :-

" छिमा बड़न को चाहिए, छोटिन को उत्पात।"
"का 'रहीम' हरि को घट्‌यो, जो भृगु मारी लात।"

यह देश पहले ऐसा न था। कभी यहाँ के आम लोगों का चरित्र भी बड़ा ऊँचा होता था, उसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है। ह्वेन्त्सांग एक प्रसिद्ध चीनी यात्री हुआ है। राजा हर्षवर्धन के राज्य के समय, सन् 630 ई० में वह भारत आया था। बारह वर्ष भारत रहकर, उसने प्रसिद्ध बौद्ध तथा अन्य धार्मिक स्थलों का भ्रमण किया, और यहाँ के बौद्ध धर्म सम्बन्धी बहुमूल्य ग्रन्थों का संग्रह किया था, जिन्हें वह अपने देश चीन ले जा रहा था। जब वह बंगाल की खाड़ी के समुद्र से गुजर रहा था तब उसके साथ जहाज में दो बौद्ध भिक्षु भी यात्रा पर थे- उनका नाम था भिक्षु ज्ञान गुप्त और त्यागराज। इस समुद्र-यात्रा में एक दिन भयंकर तूफान उमड़ पड़ा। जहाज़ तूफान के थपेड़ों से बुरी तरह डांवाडोल हो रहा था। जहाज़ के कप्तान ने आदेश दिया कि यात्रियों की जान बचाने के लिये जहाज़ के बोझ को हल्का करना होगा। जिस-जिसके पास जरूरत से ज्यादा बोझ हो, वे उसे तुरन्त समुद्र में फेंक दें। ह्वेन्त्सांग के पास सैकड़ों बहुमूल्य पुस्तकें थीं, जिन्हें वह अपने देश चीन ले जा रहा था। वह उन सब बहुमूल्य पुस्तकों को मजबूरन समुद्र में फेंकने वाला था कि दोनों भारतीय बौद्ध भिक्षु बीच में पड़ गये। उन्होंने ह्वेन्तसांग को कहा कि इन ग्रन्थों को समुद्र में मत फेंको। इनमें जो ज्ञान भरा पड़ा है वह हज़ारों-हजारों आत्माओं को जीवन का सन्देश दे सकता है। इसके बजाय कि इन ग्रन्थों को समुद्र में फेंक कर जहाज़ का बोझ हल्का किया जाय, बेहतर होगा कि वे दोनों अपने को समुद्र की लहरों के हवाले कर दें। ह्वेन्त्सांग इस प्रस्ताव को नकारने ही वाला था कि दोनों बौद्ध-भिक्षु "बुद्धं शरणं गच्छामि" का उच्चारण करते हुये छलांग लगाकर समुद्र की लहरों में विलीन हो गये। चीनी यात्री ने भारतभूमि को झुक कर नमन किया, जिसने ऐसे साहसी नर-रत्नों को उत्पन्न किया था, जो कि विश्व को शान्ति का तथागत् का अमर सन्देश गुंजा देने के लिये, उनके बहुमूल्य बौद्ध ग्रन्थों के एवज़ में अपनी जान पर भी स्वत: खेल गये थे।

पर आज का भारत वह नहीं है जो स्वतंन्त्रता प्राप्ति से काफ़ी पूर्व का था, जब स्वतन्त्रता के लिये तरह-तरह के आन्दोलनों में युवा वर्ग स्वत: तथा सहर्ष भाग लेता था, उसी तरह के देश-भक्ति के गाने उनकी जुबान पर होते थे, जैसे "माँ, रंग दे बसन्ती चोला।' अब जमाना बदल चुका है। आज के युवा के ओठों पर 'चोला' की जगह 'चोली' के बोल हैं। न जनता अब पहले जैसी रही हे और न नेता वर्ग। सच कहा जाय तो हरेक आदमी धीरे-धीरे चरित्रहीन और बेईमान बनता जा रहा है। या यों भी कहा जा सकता है कि जीवित रहने के लिए, परिस्थितियों द्वारा बनाया जा रहा है। आज का भारतीय समाज में अपना ऊँचा स्थान बनाये रखने के लिये उन बुराइयों से समझौता करता जा रहा है।

लगभग 100 वर्ष पूर्व सन् 1893 को शिकागो के विश्व धर्म संसद के सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द ने जब अपनी वाणी से सब प्रतिनिधियों और श्रोतागणों को चमत्कृत कर दिया तो लोग उनके ओजस्वी भाषण को सुनने तथा गैरिक वस्त्रों में उनकी एक झलक देखने को लालायित हो उठे थे। तब सारे पश्चिम जगत ने निर्विवाद रूप से यह घोषणा की कि जिस देश में स्वामी विवेकानन्द जैसे दिव्य पुरुष हैं, उस देश में धर्मप्रचार हेतु किसी -मिशनरी' को भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी सम्मेलन में स्वामी जी ने कहा था :-

"मैं ऐसी किसी भी शिक्षा प्रणाली की कल्पना भी नहीं कर सकता जिसमें 'धर्म' का कोई स्थान न हो। भारतवर्ष की

इस शिक्षा प्रणाली का ही परिणाम है कि हमारे देश में संघमित्रा, लीला, अहिल्याबाई जैसी महान नारियों की परम्परा रही और यह परम्परा सदियों तक कायम रहेगी, क्योंकि ऐसी शिक्षा भारत की देवियाँ प्रभु के चरणों के प्रसाद स्वरूप सर्वदा प्राप्त करती रहेगी।"

आज एक शताब्दी बाद क्या हम पश्चिम को इस बात से आश्वस्त करा सकेंगे कि हमने इस अंतराल में नारी को अधिक मर्यादा दी है ? क्या हमें इस बात का नैतिक अधिकार है कि हम कह सके कि **स्वामी विवेकानन्द** की अपेक्षा के अनुरूप आज भी हमारे देश भारत में यह परम्परा जीवित है। 16 जनवरी 1994 को, शिकांगो विश्वधर्म संसद से लगभग 100 वर्ष बाद कलकत्ता में **'शारदेश्वरी आश्रम'** में माँ शारदा प्रथम शताब्दी समारोह के अवसर पर जैसे ही सेविका **श्रीमती अरुन्धती दास गुप्ता** ने सस्वर वेद-मंत्र पाठ प्रारम्भ किया ही था कि मुख्य अतिथि पुरी के शंकराचार्य, **श्री निश्चलानन्द सरस्वती** ने उसे इस घोषणा के साथ तुरन्त रुकवा दिया कि शास्त्रों में स्त्रियों का वेदमंत्र पठन-पाठन वर्जित है। कलकत्ता के उस आश्रम का वातावरण निराशा से स्तब्ध हो गया। भारतीय समाज को इस एक घटना ने अनेक शताब्दी पीछे ढकेल दिया। अब तक की सारी प्रगति पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। इसकी सर्वत्र आलोचना और प्रतिक्रिया हुई जिसकी रिपोर्ट अन्यत्र इस पुस्तक में विस्तार से दी गई है।

धर्म न तो अवैज्ञानिक है और न ही अनुपयोगी

जो धर्म सदा से प्रजा की अपने अनुयायियों की रक्षा करता आया है, **"धर्मो रक्षति रक्षितः"** वह कैसे कभी विपत्ति में फंस सकता है ? हमारा तो प्राचीन सच्चा धर्म है उसकी आधार शिला अति सुदृढ़ है। उसके सिद्धान्त और मान्यताएँ शाश्वत-सनातन हैं। नृतत्व विज्ञान की दिशा धाराओं को समझकर, गूढ़ चिन्तन करके हमारे वैदिक ऋषि गणों, तत्वदर्शियों ने उसे इस प्रकार बनाया है कि उसकी उपयोगिता में, प्रासंगिकता में किसी प्रकार की कमी नहीं है। उसे इतना विज्ञान सम्मत बनाया है कि कहीं से भी वह प्रतिगामी-पिछड़ा अथवा, असमीचीन कह जाने योग्य नहीं है। **वस्तुतः व्यक्तिगत समष्टिगत सुख-शान्ति, प्रगति और समृद्धि का एकमेव आधार धर्म ही है। धार्मिकता का अवलंबन कभी भी किसी के लिये भी घाटे का सौदा न रहा है और न रहेगा।**

हमारी प्राचीन और सनातन धार्मिक मान्यताएँ न तो अवैज्ञानिक हैं, न ही काल्पनिक हैं। किन्हीं सांप्रदायिक रीति-रिवाजों तत्कालीन प्रचलनों -कथा किंबदंतियों को धर्म का परिवर्तनशील कलेवर कहा जा सकता है, उसमें सतत युगानुकूल परिस्थितियों के अनुसार सुधार-परिष्कार होता रहता हैं किंतु इस कर्मकांडी कलेवर को ही धर्म का पर्याय मान लेना गलत है फिर हमारा धर्म ज्ञान, श्रुति या लिखित रूप में जो स्वार्थी ब्राह्मणों के कब्जे में हजारों वर्षों रहा, उन्होंने इसके शाश्वत-सिद्धान्तों में अपनी जातीय स्वार्थपूर्ण अनर्गल बातें क्षेपक के रूप में वेदों में **(जैसे पुरुष सूक्त), पुराणों, ब्राह्मण ग्रंथों, रामायण और "रामचरितमानस"** में इस प्रकार मिश्रित कर दी, मानों वे उसका अभिन्न अंश हों। धार्मिक ग्रंथों तथा तथ्यों में हजारों वर्षों से होती आयी मिलावट, खाद्यान पदार्थों में आज की होने वाली मिलावट से कहीं अधिक घृणित और दंडनीय है। एक न एक दिन निकट भविष्य में धर्माचार्य इस बिन्दु पर सहमत होकर इन उपर्युक्त धर्मग्रंथों से छाँट-छाँट कर मिलावट वाले अंश निकाल फेंकेंगे, तब ही हम कह सकेंगे कि इनमें अब शाश्वत-सनातन सत्य है और वह पुनः सर्वमान्य हो सकेगा। जब तक ऐसा न होगा हमारी आने वाली पीढ़ियाँ पूर्णरूपेण न ऐसे क्षेपक मिश्रित धर्म में और न धार्मिक ग्रंथों, आख्यानों, कथाओं और मान्यताओं में आस्था रख सकेगी।

सच्चे 'धर्म' की परिभाषाँनुसार वह सदा से सदाचरण, सज्जनता, न्यायशीलता, संयमशीलता, करुणा और सेवा परायणता जैसे सद्गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए। मानव में ये तत्व समाविष्ट रहें, इसके लिये धर्म का अवलंबन जरूरी है। मानवजाति की प्रगति इसी प्रवृति के कारण संभव हो सकी है। ऐसा विद्वानों का मत है।

समाज का अस्तित्व तब ही खतरें में पड़ा है, या पड़ता रहा है, जब व्यक्ति अधार्मिक और अनैतिक बना है तथा उसने उद्धत मान्यताओं को अपनाया है। अतः धर्म (कठमुल्लावाद नहीं-बल्कि शाश्वत-सनातन) किसी भी समाज-समूह या राष्ट्र की एकता-अखंड़ता समृद्धि और शान्ति के लिए नितान्त अनिवार्य है।

उच्छृंखल महत्त्वाकांक्षा एक मनुष्यकृत विपत्ति

विद्वानों का मत है कि अपनी निजी आवश्यकताओं को, बड़प्पन की महत्त्वकांक्षाओं को जितना कम किया जा सके उतना अवश्य करना चाहिए, अन्यथा लोभ, मोह, और अहंकार की खाई इतनी चौड़ी और गहरी प्रतीत होगी जिसमें सारी क्षमता से सारा जीवन जूझते रहने पर भी पार कर सकना संभव नहीं होगा। यदि आवश्यकताएं सीमित तथा आवश्यक मात्र होती हैं तो वे प्रयत्न करने से पूरी हो सकती हैं। पर तृष्णा तो सुरसा के समान है, उसका मुँह फैलता ही जाता है और एक मिथक के अनुसार हनुमान जैसा महाबली भी उसके मुँह में छोटा पड़ा था। मनुष्य कितना भी सम्पन्न क्यों न हो, तृष्णा-ग्रस्त होने से वह अपने को सदैव तुच्छ और अभाव ग्रस्त ही अनुभव करेगा। तृष्णा एक प्रकार की मानसिक दरिद्रता है, एक प्रकार की जलन है जिसका किसी भी, कितने भी साधनों से शमन नहीं किया जा सकता।

आवश्यक नहीं कि हर प्रतिभावान व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी ही बने। महामानवों में से प्राय: सभी प्रतिभावान थे। पर उन्होंने उस विशेषता का प्रयोग अहं की पूर्ति के लिये नहीं वरन् परमार्थ प्रयोजनों के लिये किया। वे अनीति से भिड़ते हैं और नीति की प्रतिष्ठापना में अपने सर्वस्व को दाँव पर लगा देते हैं। सिद्धान्तों के लिये-आदर्शों के लिये वे जीवन पर्यन्त निष्ठावान रहे और पालन करते-करते मर-खप गए। वसुधा को कुटुम्ब समझा और सब में अपने को विभक्त कर दिया। 'आत्मवत सर्वभूतेषु' की मान्यता अपनाने की परिणति यही होती है। अपनी विशेषताओं का महज अपने लिये अपने परिवार के लिये सीमित लाभ न उठाना, वरन उसे लोकहित के लिए न्योछावर कर देना यही संत, सुधारक और शहीदों की रीति-नीति चली आयी है। तभी वे अपनी ज्ञानरूपी नाव में बिठाकर भव-सागर से अनेकों को अपने जीवन में, पार कराने में, सार्थक सिद्ध हुये है, पीछे वालों के लिये अनुकरणीय तथा अभिनंदनीय बने हैं।

देश की वर्तमान राजनैतिक स्थिति पर विहंगम दृष्टि

देश की वर्तमान राजनीति को **'आयाराम और गयाराम'** जैसे राजनीतिज्ञों के आये दिन होने वाले नामों ने गन्दा बना डाला हैं जिस जाति और राजनैतिक दल के लोग सिद्धान्तहीन हो माल से भरे सूटकेस से प्रभावित होकर, दल-बदल कर डालते हैं, उनकी हरकतों से दलों की बुनियादें तो हिल ही जाती हैं, साथ में उनकी अपनी तथा अपनी जाति की अस्मिता को भी भारी क्षति पहुँचती है। इन दल बदलू आया-गया रामों को हंस के निम्नलिखित कृत्य पर गम्भीरता से बिचार करना चाहियें और सबक लें, और सुधी पाठकगण भी सोच कर देखें, कि हंस का ऐसा करना कहां तक उचित या अनुचित है :-

ताल सूख पत्थर भयो, हंस कहीं ना जाय।
पिछली प्रीत के कारणे, कंकर चुन-चुन खाय।।

-कबीर

हंस की अटूट प्रीत का यह उदाहरण भारतीय राजनीति के "आयाराम-गया राम-जनों" के ज्ञान चक्षु खोल सक्ता या वे ईमानदारी से ऐसी परिस्थितियों में अपनी अंतरात्मा के निर्देश सुनकर अमल कर सकते ? जो राजनीतिज्ञ अमल करते हैं, और जिन्हें धन तथा अन्य सुख-सुविधाओं का प्रलोभन अपने कर्तव्य-पथ से पथभ्रष्ट नहीं कर पाता जो सच्चे देश-सेवक हैं, प्रजांतत्र के सतर्क प्रहरी हैं वे ही इतिहास के पृष्ठों पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं, अन्य दलबदलुओं को जमाना जल्दी भुला देता हैं। उन्हें भुलाना ही आने वाली पीढ़ी को इनके कुसंस्कारों से बचाकर रखने के हित में रहेगा। आज जहाँ राजनीति में भागीदारी तथा ज्यादा सक्रिय होने की बात कही जाती है वहाँ उनके नेताओं का चरित्रवान होना जाति के हित में आवश्यक है। आयाराम-गयाराम वर्ग के नेता तो बदनाम होते ही हैं, उनकी जाति को भी बदनामी उठानी पड़ती है। जो जातियाँ समाज में उठना चाहती हैं वे अपने चरित्रवान नेताओं को हर तरह का प्रोत्साहन और सहयोग दें।

आज विश्व में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका एक मात्र महाशक्ति बन गया है और यह सुनिश्चित है कि वह अन्य कमजोर राष्ट्रों को किसी न किसी तरह से अपनी इच्छाअनुसार चलाने की कोशिश करता रहेगा। नवीनतम उदाहरण है भारतीय हितों के विपरीत अमेरिका का पाकिस्तान की ओर झुकाव, तथा भारत को बेचने को तैयार रूस से विशेष प्रकार के राकेट-इंजनों और उसके प्रोद्योगिकी ज्ञान का विक्रय रूकवा देना आदि। अनेक विशेषज्ञों का मत है कि यदि भारत में राजनीति इतनी विकृत नहीं होती, जितनी गत कुछ वर्षों में हुई है तो शायद अमेरिका समय-समय पर भारत विरोधी रुख नहीं अपना पाता। एक संकल्पबद्ध केन्द्रीय सत्ता और एक संगठित तथा सबल देश ही इस बारे में आश्वस्त हो सकता है कि दूसरे देश, चाहें कितने भी अधिक मजबूत क्यों न हों वे उसके अन्दरूनी मामलों में तथा उसकी अस्मिता-सम्बन्धी कार्यों में कोई दखलनदाज़ी न कर सकेंगे।

क्या भारतीय राजनीतिज्ञों को यह अनुभूति है कि कुछ को छोड़कर ज्यादातर की छवि सामाजिक मानस-पटल पर विकृत हो चुकी है। क्या कभी उन्होंने सोचा है कि आज भारतीय घरों में इन राष्ट्रीय स्तर तक के राजनेताओं के चित्र दीवारों पर लगे न मिलेंगे, जबकि कुछ दशक पूर्व तक, गांधी, नेहरू, पटेल, सुभाषचन्द बोस, भगतसिंह आदि अनेक महापुरुषों के चित्र और कलेन्डर आदि मिलते थे। लोग अपने नवजात् शिशुओं का नाम भी इन राजनेताओं के प्रारम्भिक नामों पर रखते थे, पर इधर ऐसे उदाहरण नज़र नहीं आते हैं। आज के ज्यादातर नेता वर्ग अभी तक व्यक्तिगत् और पार्टी की शान-शौकत के भोंड़े प्रदर्शन में लिप्त हैं, मस्त हैं, उन्हें लगता है ऐसी प्रतिक्रिया की कि मानों लेशमात्र भी चिन्ता नहीं। इस राजनैतिक प्रणाली के खिलाफ़ जनता का बढ़ता हुआ गुबार विस्फोटी स्थिति की ओर बढ़ रहा है। आम जनता का यह सोच प्रबल होता जा रहा है कि **आज का राजनीतिज्ञ, कुछ सज्जनों को छोड़कर, ज्यादातर येन-केन-प्रकारेण स्वयं को ही आगे बढ़ाने के प्रयास में जाति हित, समाज हित और यहाँ तक कि देश हितों को अनदेखा कर, उसे पीछे छोड़ते हुये, अपनी निजी तरक्की में व्यस्त है।**

हिन्दुस्तान के इतिहास के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि अतीत में कई बार ऐसा माहौल बना कि लगा कि देश को विदेशियों

से मुक्ति मिलने वाली है, परन्तु हमारी आदतों ने, हमारे अहम और झूठे दम्भ ने अवरोध खड़े कर दिये, और वैसा न हो सका। **शेरशाह सूरी** के राजमंत्री वीर हेमचन्द्र ने एक बार सैनिक कार्यवाही कर, दिल्ली के तख़्त पर अधिपत्य जमा लिया, लेकिन राजपूतों ने उसे सहयोग देने के बजाय बनिया –**'हिमू वक्काल'** कह कर महज़ अपमानित ही नहीं उसका घोर विरोध भी किया। नहीं तो स्वतंत्रता की वह चिन्गारी, ज्वाला बनकर इस देश में विदेशियों को नष्ट कर स्वराज्य स्थापित करने में सफल हो सकती थी। यहाँ तक कि इतिहासकारों ने भी वीर राजा हेमचन्द्र की वीरगाथा को अपनी कृतियों में उचित स्थान नहीं दिया और उनके नाम को **'हिमू'** या **'हिमू वक्काल'** के अपमानजनक रूप में ही प्रस्तुत किया। अंग्रेजों ने **'प्लासी के युद्ध'** में बंगाल के नवाब को मात्र 3 घंटे में हरा दिया, देश में और सब तमाशा देखते रहे और देश अगले दो सौ वर्षों के लिये अंग्रेजों का गुलाम हो गया।

अंग्रेजों के हाथों जाने से पूर्व भारत में सबसे बड़ा साम्राज्य मराठों का था, जिसके संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज थे, लेकिन महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों को मराठों का उत्कर्ष फूँटी आँखों से भी न भाया। पेशवा ब्राह्मणों ने स्वयं पूना में मराठा राज्य का शासन अपने हाथ में लिया, शिवाजी के वंशजों को पेंशन याफ़्ता बनाकर सतारा और कोल्हापुर में रख दिया। एक पेशवा ने तो सतारा महाराज को अपनी कैद में भी डाल रखा था। **ब्राह्मणों ने मराठों को 'शूद्र' स्थापित करने में जितना अपनी बुद्धि और शक्ति का दुरोपयोग किया, उतना हिन्दू समाज को संगठित करने और देश को मजबूत करने में नहीं किया। अत: मराठा राज्य, ब्राह्मणों द्वारा फैलायी ऊँच-नीच की भावना के कारण, जनाधार की मानसिकता दूषित करके उसे कमजोर तथा चूर-चूर कर गया। शिवाजी के वंशजों से शासन हथिया कर पेशवा ज्यादा दिन शासन न कर सके और अंग्रेजों के हाथों उनकी भी बुरी तरह पराजय हुई, उससे पहले पानीपत के तृतीय युद्ध में तो मुसलमान आक्रमणकारियों से मराठा फौज इन्हीं पेशवाओं के नेतृत्व में बुरी तरह हारी थी और गाजर-मूली की तरह काट डाली गयी थी। अंग्रेजों को मराठा राज्य की ओर से सन्धि करके उसे अंग्रेजों के आधीन कराने वाला भी एक ब्राह्मण-पेशवा ही था। वह मराठा-कुनबी न था।**

किसी ने ठीक कहा है–**"पाप और पुण्य दोनों की सेवा एक साथ नहीं की जा सकती। जुडास और ईसा मसीह दोनों की सेवा एक साथ सम्भव नहीं है। पाँडव बंचना है और कौरव लोभ है। इन दोनों की पूजा एक साथ सम्भव नहीं है।" मराठा राज्य शक्ति समाप्त कर दी गई पर पेशवाई भी ज्यादा दिनों न चल सकी।**

अध्याय - 10

महासभा के सौ वर्ष और कुरमी चेतना

वर्ष 1994 के अन्त में, अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा अपनी स्थापना की पहली शताब्दी मना रही है। अत: सौ वर्ष पूरे होने पर महासभा के कार्यकाल का यह बड़ा ऐतिहासिक वर्ष है। महासभा द्वारा इन सौ वर्षों में देश के विभिन्न प्रदेशों, नगरों, अंचलों और ग्रामीण परिवेश में 37 अधिवेशन भी आयोजित किये जा चुके हैं, जिनमें विभिन्न अध्यक्षों, मुख्य अतिथियों, स्वागताध्यक्षों तथा अन्य विशिष्ट महानुभावों के द्वारा बड़े मर्मस्पर्शी उद्‌बोधन, अभिभाषण दिये गये, जिन्हें सुनकर या पढ़कर प्रतिनिधिगणों द्वारा बड़े आत्म विभोर होकर, निकट या दूरगामी लाभ तक के, अनेक रोचक प्रस्ताव पारित किये जाते रहे। तात्कालीन सामाजिक स्थितियों पर विभिन्न दृष्टि कोणों से विचार-विमर्श भी खूब किये जाते रहे, पर उन पर क्रियान्वयन हुआ कि नहीं, समाज की मानसिक्ता पर कहाँ तक और कितना बदलाव आया, समाज को व्याप्त, रूढ़िवादिता, कुरीतिओं और अन्धविश्वासों से कहाँ तक मुक्त करा पाये, इन सबका, हर अधिवेशन में गम्भीरता से, लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाना चाहिये था और अधूरे कार्यों को शीघ्र पूरा करने पर भी समुचित निर्णय होना चाहिये था। यही एक तरीका है योजनाबद्ध तरीके से महासभा के कार्यक्रम का क्रियान्वयन कम से कम समय पर किया जा सके, और समाज उससे लाभांवित होकर उन्नति के पथ पर तेज़ी से बढ़ सके।

महासभा के सौ वर्षीय इतिहास, का विवरण इस पुस्तक में पूर्व पृष्ठों पर दिया जा चुका है, उसके अवलोकन से यही ज्ञात होता है कि अब तक हुये 37 अधिवेशनों में सारे देश से आये प्रतिनिधिगण तथा स्थानीय दर्शकजन दो या तीन दिवस खूब जोश-खरोश का प्रदर्शन जरूर करते थे, पर तद्‌पश्चात अपने-अपने स्थानों पर वापिस लौटने पर जातीय गतिविधियों पर फिर सर्वत्र शिथिलता आ जाती थी। महासभा को बड़े से बड़े राष्ट्रीय स्तर के नेताओं, समाज की गण्यमान विभूतियों और समाज के श्रेष्ठ सेवकों और कार्यकर्त्ताओं का सतत सहयोग प्राप्त होने पर भी सभा-अधिवेशनों का नियमित अन्तराल से लगातार न होना बड़े आश्चर्य तथा खेद की बात है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, पर हमें उन सबका पता करके, विचार करके, भविष्य के होने वाले अधिवेशनों में उनकी पुनरावृत्ति न होने देने के सब उपाय अपनाने होंगे। यही इस इतिहास लेखन का अभिप्राय है और उद्देश्य है।

महासभा अब तक अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों की पूर्ति क्यों नहीं कर पायी है, उसके अनेक कारण बताये जा सकते हैं। कुरमी जाति के सम्मुख अब भी जटिल समस्या बनी हुई है कि यह सैकड़ों उपजातियों और शाखाओं में विभक्त है, जिसमें विशेष करके बिहार प्रदेश तथा उत्तरप्रदेश के पूर्वी जनपदों में ऊँच-नीच, छोटे बड़े और श्रेष्ठ-निम्न आदि का भेद-भाव अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया हैं। पुराने नासूर समय-समय पर फिर हरे हो जाते हैं। मध्यप्रदेश में अभी भी कुरमियों में शाखा-उपशाखा का भेदभाव विद्यमान है। अन्य स्थानों में अवश्य कुरमियों की मनोवृति में आशाजनक परिवर्तन आया है पर वह महानगरों में, छोटे नगरों और गाँवों की तुलना में सर्वाधिक है। अब तक दहेज बन्द नहीं हुआ है वरन् बढ़ा है और उससे सम्बन्धित सजावट, पंडाल, बैंड-बाजे, प्रकाश-संगीत पर ऊल-जलूल खर्चे भी बढ़ते जा रहे है। हाँ अब तक शाकाहारी भोजन ही शादी-विवाह में कराया जाता है, माँसाहारी भोजन का प्रचलन प्रारम्भ नहीं हुआ है, और न होने देना चाहिये। यह सतर्कता हर व्यक्ति को बरतनी चाहिये, नहीं तो खर्च और ज्यादा बढ़ जायेंगे। शराब पिलाने का प्रचलन या तो बड़े सम्पन्न वर्ग या गरीब निचले वर्ग में इक्का दुक्का हो चला है, उसे नकारना अनुचित होगा। समाज के कर्णधार चाहें तो सर्वसम्मति से जन मानस बनाकर इस कुरीति पर अंकुश लगा सकते हैं। एक सुधारवादी परिवर्तन जरूर आया है कि विवाह-समारोह की अवधि 3 या 4 दिन से घट कर 1 या 1-1/2 दिन तक आ गयी है। एक दो बरातें बिना बाजे व रोशनी के दिन में होती देखी गयी हैं। आज समाज में आपसी सहयोग और भाई-चारे के सम्बन्धों की विशेष आवश्यकता है। माना कि समाज में सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोल वाला है, पर बड़ी सादी सी बात मन में रख कर जीवन निर्वाह किये जाइये। "पाप मत करिये, गलतियों से बचते हुये जिन्दगी बिताइये, ध्यान रहे"-"हिम्मत न हारिये, प्रभु न विसारिये, हंसते मुस्कारते हुये जिन्दगी गुजारिये।"

कुरमी बन्धुओं से आशा की जाती है कि वे जाति-उपजाति, शाखा-उपशाखा के भेद-भाव को दूर करते हुये आपसी सहयोग और आपसी सद्‌भाव से सबको महासभा से किसी न किसी प्रकार सक्रिय रूप में जोड़ेंगे। वह होगा कैसे ? उसके लिये समाज के प्रबुद्ध वर्ग और अनुभवी समाज-सेवीजन, अपने अहम् और स्वार्थ को तजकर, एक मत होकर एक जगह बैठें , महासभा के भावी कार्य-कलापों को कूर्मि समाज के सर्वांगीण विकास के लिये खूब बिचार कर बनायें, क्रियान्वयन के लिये महासभा के 38 वें अधिवेशन

में जन सभा के सम्मुख अनुमोदन और स्वीकृति पाने के लिये प्रस्तुत करें।सबसे बड़ा लक्ष्य तो कुरमी, कुनबी, मराठे, कणबी, पाटीदार, पटेल, कम्मा-रेड्डी, वक्कलिगर, कापू, कुड़मि, कूर्मा आदि सबको जाति के एक सूत्र में बाँधना है।

दरअसल आज हर देश में, समाज में, मानव-विकास और उसकी उन्नति के लिये राजनीति सबसे सशक्त साधन सिद्ध हुआ है। कुरमियों को स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर कहीं भी राजनीति की उपेक्षा नहीं करनी है। जो भी जिसकी राजनीतिक विचार धारा पक्की हो, अवसरवादी न हों, उन्हें उसी दल में अपना स्थान, हर स्तर पर ऊँचे से ऊँचा बनाना होगा। उसके लिये कोई कोर-कसर न उठा रखना चाहिये। राजनीति में भी अपने चारित्रिक बल को प्रदर्शित करना होगा, जिससे वे अपना विशिष्ट तथा सब लोगों द्वारा सम्माननीय स्थान बना सकें। कुरमी-चरित्र की अलग और उत्तम पहचान होनी चाहिए।

महासभा के कर्णधारों को यह बात सदैव ध्यान में रखनी होगी, कि वे इसे फलते-फूलते और विकसित होते हुये देखना चाहते हैं। यह सामाजिक संस्था है कोई राजनैतिक मंच नहीं है। यहाँ विभिन्न विचारधारा वाले हर प्रकार के राजनीतिज्ञों के साथ तथा समाज के बुद्धि जीवियों के साथ समान व्यवहार होना चाहिये और वे समान सम्मान की अपेक्षा भी करते हैं। इनमें से बहुधा राजनीतिज्ञों के सम्मुख-समाज के बुद्धि जीवियों की खुलकर उपेक्षा कर दी जाती हैं, अत: उनका महासभा से खिंच जाना स्वाभाविक है। राजनेता गण तो भाषणा देकर चले जाते हैं और बुद्धिजीवी वर्ग ही महासभा के दिनानुदिन कार्य कलापों में तन-मन-धन से साथ देता है, तभी कार्य तेज़ी से आगे बढ़ता है, और उसे ही महासभा के अधिवेशन के योजनाकार पदाधिकारीगण उपेक्षित करते हैं और वे महासभा से दूर रहने में अपनी मर्यादा सुरक्षित समझने लगते हैं। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ऐसा क्यों होता है ? उत्तर है कि ये महासभा के कर्णधार, मात्र उन राजनेताओं को, व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु आगे उनका उपयोग करने के लिये, इतनी अधिक प्रधानता देते हैं और बुद्धिजीवी चाहें कितना भी प्रतिष्ठित क्यों न हों उसकी वे अवहेलना करते हैं, क्योंकि वह उनकी स्वार्थ-सिद्धि में उतना उपयोगी नहीं हो सकता। यह कटु सत्य है और इसके उपचार में ही महासभा का भविष्य निहित है। अन्यथा यदि इस मनोवृति तथा महासभा की कार्यप्रणाली में आवश्यक परिवर्तन नहीं हुये और वे पुराने ढर्रे पर ही चलते रहे तो इन भावी अधिवेशनों में पिछलों की पुनरावृत्ति होती रहेगी, समाज का विशेष भला होने वाला नहीं है सिर्फ इसके आयोजक और पदाधिकारीगण् राजनीतिज्ञों की चाटुकारिता से अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते रहेंगे। वे येन-केन प्रकारेण महासभा के पदाधिकारी बनकर उस पर अपना वर्चस्व स्थापित रखने में महारत रखते हैं।

इधर कुछ अधिवेशनों में देखा गया है कि नवधनाढ्य वर्ग, जो कि अभी सुशिक्षित तथा सुसंस्कारित नहीं हो पाये हैं वे भी अपने पैसे की गर्मी में तथा मंदबुद्धि होने के कारण बुद्धिजीवी वर्ग पर छाने की चेष्टा करते हैं, वे उनका तरह-तरह से उपहास तथा अवहेलना करने से भी नहीं हिचकिचाते। महासभा के आयोजकों को इस वर्ग से ज्यादा धन मिलता है। अत: वे इस वर्ग को अधिक महत्त्व देते हैं। बुद्धि जीवियों का महासभा का अधिक संख्या में सदस्य न बनने का यह भी एक कारण है। समाज के शुभ चिन्तकों और सच्चे हितैषियों को इस पर खुले दिमाग तथा निष्पक्ष भाव से विचार करना होगा, तभी महासभा के सम्मुख जो समस्यायें हैं उनका समाधान खोजा जा सकेगा, उनको दूर किया जा सकेगा, अन्यथा फिर भविष्य में वही होता रहेगा, जो अब तक होता रहा है।

इधर आज की राजनीति में तरह-तरह के दल बड़ी तेज़ी से उभर कर आते जा रहे हैं, कुछ पुराने लुप्त होते जा रहे है या उनका विलय होकर नये दल बन गये हैं। इनके सिद्धान्त और नीतियाँ भिन्न-होती हैं और उनमें वामपंथी, दक्षिणपंथी या साम्प्रादायिक वर्गीकरण के अतिरिक्त आपस में कोई संगति नहीं होती है। यदि उनमें से किसी दल का, मुख्यत: उस समय के शासक दल का महासभा के अधिवेशन पर वर्चस्व स्थापित हो जाता है, तो जैसा कि इस सम्बन्ध में पहले जिक्र किया जा चुका है, वे महासभा की सारी नीतियों और कार्य-कलापों को अपने दृष्टिकोण में ढालने में खींचा-तानीं करेंगे, परिणामस्वरूप महासभा का मौजूदा ताना-बाना भी जीर्ण-क्षीर्ण होकर नष्ट प्राय: हो जायेगा। एक बुद्धि जीवी के लिये राजनैतिक गुटों की उठक-पटक से जूझना सम्भव नहीं है, वह खुशी-खुशी इस नाटकीय-कृत्य को या कहिये विशेष परिस्थिति को न जातीय मंच पर, न सामाजिक मंच पर और न देश-स्तरीय मंचों पर भी स्वीकार करेगा।

युवा पीढ़ी में जागरण एवं नवचेतना

महासभा के उद्देश्यों के प्रचार के लिये और समाज में समयोचित जागृति लाने हेतु कुरमी नवयुवकों को स्वयं आगे आना चाहिये। उन्हें महासभा में स्वयं अपनी जगह बनानी होगी। पुराने घाघ लोग उनको आसानी से समाज के कर्त्ताधर्ता न होने देंगे। उन्हें निष्संकोच स्वयं महासभा में आना चाहिये। ऐसे नवयुवक जो कि समाज के हित चिन्तक हों, स्वप्नदर्शी हों, जो अपने लक्ष्य में अटल विश्वास रखते हों, और अपने स्वप्नों की कल्पनाओं को साकार करने में जी-जान से प्रयत्नरत रह सकें। जिस-जिस प्रदेश में कुरमी बसे हैं उन प्रदेशों, नगरों, अंचलों आदि को अपना कर्म क्षेत्र बनायें। प्रत्येक क्षेत्र के युवा कार्यकर्त्ता परस्पर

सहयोग करें और इस प्रकार संगठन को बढ़ाते जायें। महासभा के एक पूर्व अध्यक्ष ने ठीक कहा है कि संसार में जो कुछ काम हुआ है, उसे स्वप्नदर्शी व्यक्तियों द्वारा ही सम्भव कर दिखाया गया है। यह भी सच है-"जिस जाति में स्वप्नदर्शी नहीं होते वह नष्ट हो जाती है" तथा पहला लक्ष्य इस दिशा में होना चाहिये-"कुरमी जागृत हों, संगठित हों।"

कुरमी युवावर्ग को तथा अन्य कुरमी जनों को भी हताश नहीं होना चाहिये, और निर्मल मन से, अच्छे उद्देश्यों को सोचकर, कर्त्तव्यनिष्ठ होकर, बिना बेकार की बातों में समय गंवाये, बौद्ध-ग्रंथ-"धम्मपद'' के निम्नलिखित पाली भाषा के प्रसिद्ध बोध वाक्य के भावों से प्रेरणा लेते हुये अपने जातीय उत्कर्ष हेतु कार्यों में जुट जाना चाहिये :-

"यो च पूब्बे पमज्जित्वा पच्छासे न पामज्जति,
सो इमं पभा सेति अब भा मुत्तेव चन्दिमा।"

(अर्थात्)-" जो पहले प्रमाद करके फिर प्रमाद नहीं करता, वह इस लोक में इस प्रकार प्रकाशित होता है, जिस प्रकार बादलों से मुक्त चन्द्रमा।''

युवा-पीढ़ी को अपने बुजुर्गों का आदर करना चाहिये, जिससे हमें पूर्वज़ों से मिली स्वस्थ परम्परा, बरकरार रहेगी। सभा-सम्मेलनों में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये इधर कुछ अधिवेशनों में, विशेष करके चुनाव के मुद्दे के दौरान 37 वें अधिवेशन के अवसर पर पटना में, परम्परा का शर्मनाक तरीके से उल्लंघन होता नज़र आया था। जोश में होश नहीं खो देना चाहिये। मशहूर उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी ने ठीक फरमाया है :-

"मगर एक इल्तमास, इन नौ-जवानों से मैं करता हूँ।
खुदा के वास्ते, अपने बुजुर्गों का अदब सीखें।।

परिवार के, समाज के या देश के बुजुर्ग सदा रहने वाले नहीं हैं, अत: शीर्षस्थ हिन्दी कवि श्री रमानाथ अवस्थी ने निम्नलिखित मुक्तक में इस सत्य को ज्ञापित किया है :-

आज इस वक्त आप हैं, हम हैं,
कल क्या होगा कह नहीं सकते।
जिन्दगी ऐसी नहीं है जिसमें,
देर तक साथ वह रह नहीं सकते।।

अत: युवा वर्ग का यह फर्ज़ हो जाता है कि उसे स्वच्छ परम्परा का प्रतिपादन करना चाहिये, और ऐसा काम न करें जिससे आपसी सद्भाव और भाई चारे को ठेस पहुँचे। कोई भी जाति, समाज और देश आपसी सामंजस्य के बिना प्रगति नहीं कर सकता। प्रेम, करुणा और निस्वार्थ सेवा द्वारा समाज में अत्यन्त लोकप्रिय तथा प्रतिष्ठित बनें।

महासभा के कार्यों में महिलाओं की भागीदारी

युवा-वर्ग में कन्याओं की शिक्षा की ओर माता-पिता को पूरा ध्यान देना चाहिये। जमाना बदल चुका है अब योग्यता के आधार पर तथा रुचि-अनुसार लड़के और लड़कियों की शिक्षा में कोई फर्क न करते हुये अधिकाधिक प्रोत्साहन देना चाहिये। लड़की को सुशिक्षित करने का यह लाभ होगा कि उससे जो भावी परिवार बनेगा वह पूरा शिक्षित होगा। माँ का शिक्षित होना हर परिवार के लिये बहुत बड़ी उपलब्धि है। देखा यह गया है कि बहुधा कुरमी लड़कियों का परीक्षाफल लड़कों से अच्छा ही होता है। आज कुरमी लड़कियाँ उच्च परीक्षायें पा कर डाक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक, अधिवक्ता, एम० बी० ए०, आदि पदों पर देश-विदेश में कार्यरत हैं। इस लेखक की पुत्री सुनीता सिंह अमेरिकन विश्वविद्यालय से न्यूक्लियर इंजीनियरिंग में उच्चस्नातक डिग्री प्राप्त कर एक बहुत बड़ी अमेरिकी कम्पनी में कई वर्षों से न्युक्लियर इंजीनियर के पद पर कार्यरत है। कम से कम एक दर्जन कुरमी युवतियों को यह लेखक भलीभाँति जानता है जोकि अमेरिका या ब्रिटेन में उच्च शिक्षा पाकर बड़े सम्मानित पदों पर कार्यरत हैं। इस जाति के सैकड़ों युवक विश्व के विभिन्न देशों में या तो शिक्षारत हैं, अथवा शिक्षा पूर्ण कर बड़े सम्मानित पदों पर कार्यरत हैं। अमेरिका में सैम वर्मा और मित्तन लाल आर्य उद्योगपति जैसे सफल हैं जिन पर कुरमी इस जाति को नाज़ होना स्वाभाविक हैं। महासभा की एक अध्यक्ष डा० विमला देवी देशमुख रही हैं। फिर भी कुरमी स्त्रियों का जितना योगदान कार्यकारिणी समिति में सदस्य और पदाधिकारी होकर होना चाहिये उतना नहीं देखा जाता। इस लेखक की जानकारी में अब तक किसी भी प्रादेशिक सभा के अध्यक्ष और महामंत्री पद के लिये कभी कोई स्त्री नहीं चुनी गयी जिनकी लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या समस्त कुरमियों में हैं। और एक तरफ तो हम नारी-उत्थान की ऊँची-ऊँची बातें करते हैं और दूसरी ओर उनके हिस्सों के पदों पर पुरुष जम जाते हैं। यदि स्त्रियाँ महासभा की कार्यकारिणी में पदाधिकारियों और सदस्यों के रूप में लायी जायें, उन्हें प्रोत्साहित किया जाय, सब लोग उनके साथ सहयोग करें तो देखियेगा कि पुरुषों से भरी कार्यकारिणी समिति से यह मिश्रित समिति ज्यादा जोश से कार्य करेगी और जो नाटकीय दृश्य अधिवेशन के मंच

पर हाल के वर्षों में देखे गये, आशा की जा सकती है कि उनकी पुनरावृत्ति नहीं होवेगी। जब कानपुर की श्रीमती प्रेमलता कटियार उत्तर प्रदेश में श्री कल्याण सिंह के मुख्यमंत्रित्व वाले मंत्रीमंडल में सफल और योग्य कदीना स्तर की मंत्री सिद्ध हो सकती है तो महासभा की या प्रादेशिक सभा की कोई कुरमी स्त्री कुशल पदाधिकारी क्यों नहीं बन सकतीं ? पुरानी कहावत है कि हर सफल व्यक्ति के पीछे महिला होती है। कुरमी समाज क्यों न महिलाओं को महासभा के कार्यों में थोड़ी सी भागदारी सौंपे, आप देखेंगे कि परिणाम उत्साह वर्धक रहेंगे और समाज के सर्वांगीण विकास में यह कदम उचित ही ठहराया जायेगा। इस तरह कुरमी जाति के युवा–वर्ग एवं नारी–वर्ग की भारी शिरकत और नेतृत्व महासभा की केन्द्रीय और प्रादेशिक कार्यकारिणी समितियों में नवजीवन और नवस्फूर्ति उत्पन्न करेंगे। जो परदे के पीछे अशोभनीय नाटक और चुनावी दंगल हाल के कुछ अधिवेशनों से होने लगे है उस पर अंकुश लग सकेगा और अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा विघटन और निष्क्रिय बनी रहने से उबर सकेगी।

जवानी उम्र नहीं जिन्दादिली का नाम है

प्रसिद्ध साहित्य-शिल्पी पं० हरिशंकर परसाई के अनुसार–"असल में जवानी उम्र नहीं, 'स्पिरिट' है-ऐसी स्पिरिट जो हर सुबह उठती है तो ताज़ा होती है, चिरंतन जिज्ञासु होती है, नये विचार, अनुभव, संवेदन ग्रहण करती है, न्याय के लिये संघर्ष करती है, जिसमें जागृत होती है, समझौते नकारती है, विद्रोहिणी और साहसिक होती है। ऐसा न होता तो नब्बे वर्ष का बूढ़ा, मरणासन्न फ्रेन्च विद्वान बाल्येतर अपनी आत्मा की शान्ति के लिये प्रार्थना करने आये पादरियों को वैसा नहीं दुतकारता, जैसा जिन्दगी भर उनके साथ करता रहा। उसने पादरियों से कहा–

"ईश्वर के भेजे हुये आये हो तो ईश्वर का परवाना दिखाओ। मेरी आत्मा शान्ति में है तुम लोग अपनी आत्मा की चिन्ता करो।"

यह स्पिरिट न होती तो बूढ़ा कबीर मरने को काशी छोड़ मगहर नहीं जाता। उस रुढ़िवादी जमाने को चुनौती देते हुए व्यंगात्मक ढ़ंग से उनसे कहा था –

"जग मरिहै हम न मरव"
"जो कबिरा काशी मरे, रामहिं कौन निहोरा"

संत कबीरदास ने बड़े स्वाभिमान से उपर्युक्त बात कहते हुये प्राचीन काल से चली आयी काशी की सारी तीर्थ-गरिमा के समानान्तर उजड़े वीरान स्थान मगहर में एक नया तीर्थ खड़ा कर दिया। मगहर-वास के दिन उनके जीवन के अन्तिम दिन थे। वहाँ उन्होंने उस शोषित और पिछड़े समाज को अपने संबोधन का विषय बनाया जो कभी किसी धार्मिक अनुष्ठान में पास तक फटकने नहीं दिया गया था।

इसी जिन्दादिली या 'स्पिरिट' के भाव दिग्दर्शक संत कबीर दास जी ने अत्यन्त निर्भीक रूप से इस रचना द्वारा व्यक्त किये है।-

आठहु पहर मस्तान गाता रहे,
आठहु पहर की छाक पीवै,
कहै कबीर सोई संतजन सूरमा,
काल को निचोरिकै अमृत पीवे।।

मगहर 'कर्मनासा' नदी के तट पर वाराणसी से काफी दूर बसा है। लोगों का ऐसा विश्वास है 'कर्म नासा' नदी का जल छूते ही व्यक्ति के सब सुकर्म नष्ट हो जाते हैं और मगहर क्षेत्र में देह त्यागने से वह व्यक्ति नर्कवास करता है। रूढ़िवादी और अन्ध–विश्वास विरोधी व्यक्ति संत कबीरदास ने अपनी वाणी के अतिरिक्त अपनी करनी से भी उस पर गहरी चोट करने वाला कोई अन्य नहीं मिलता ? कबीर का अटूट भक्ति में विश्वास था, इसलिये वे कहते थे :-

तकिया और बिछौना क्या रे,
जब अंखियन में नींद घनेरी,
कहै कबीर प्रेम का मारग,
सिर देना तो रोना क्या रे।।

कबीर पंथ के दो प्रमुख स्थल है, एक वाराणसी में कबीर चौरा जो उनकी कर्मभूमि रही है। और दूसरा मगहर, जहाँ कबीर ने अपनी नश्वर देह त्यागी और वहीं उनकी समाधि बनी हुई है।

निरंजन कुरमी और निरंजन सम्प्रदाय

कुरमियों के जो लोग उत्तरप्रदेश के उरई, जालौन, झांसी, ललितपुर, आदि जनपदों के या उसके आस-पास के मूल निवासी हैं वे अपने नाम के साथ अपना आस्पद या टाइटिल 'निरंजन' का प्रयोग करते हैं। जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि आखिर इन कुरमियों ने निरंजन आस्पद अपने लिये क्यों चुना ? विद्वानों का मत है कि कबीर आदि संतों ने 'निरंजन' को परमब्रह्म परमेश्वर का पर्याय ही समझा।

ब्रह्म निरूपण के प्रसंग में द्वैत-विशिष्ट जगत् के अधिष्ठाता तथा नियंता के रूप में अवर-ब्रह्म की कल्पना की गई और उसके लिये संतों ने 'काल' और 'निरंजन'-शब्दों का प्रयोग किया जो उपनिषदों के प्रभाव का परिणाम है। श्री कृष्ण भगवान ने अपने आपको 'कालोऽस्मि' कहा है। संतो द्वारा सर्वप्रथम 'निरंजन' का प्रयोग इसी से हुआ था। श्री कृष्ण द्वारा परमब्रह्म के अर्थ में 'निरंजन' को कहा गया है। श्रेष्ठता की कबीर आदि संतों ने पूर्ण रक्षा की है। उनके द्वारा 'निरंजन' परंब्रह्म परमात्मा का ही पर्याय समझा जाता था, परन्तु आगे चलकर जिन संतों ने अपने आपको 'निरंजन-संप्रदाय' से ऊँचा सिद्ध करना चाहा, उन्होंने उसे गिराने की चेष्टा की और उसे 'काल-पुरुष' की पदवी दी।

'धर्म पुराण' में धर्म को शून्य का रूप, निराकार, और निरंजन कहा गया है। धर्माष्टिक नाम स्तोत्र में निरंजन का तात्विक-निरूपण की शैली में सुन्दर परिचय मिलता है। धर्म, कूर्म या कछुवा वाचक मूल शब्द निरंजन है। इसी कारण अब भी 'कबीर पंथ' में 'कूर्म जी' का सम्मान ("मध्यकालीन धर्म साधना"—आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी-पृष्ठ 6 देखिये)है।"कबीर : जीवन और दर्शन", लेखिका उर्वशी सूरती, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृष्ठ 113 शीर्षक "निरंजन-संप्रदाय"।

उपरोक्त विवेचना से यह धारणा बनती है कि सम्भव है कि कुरमियों का एक वर्ग, जो विशेषकर उत्तरप्रदेश के झांसी प्रखण्ड में बसा हुआ है, उसने "कबीर पंथी" धर्म साधना से प्रभावित होकर निकट अतीत से, अपने नाम में निरंजन' आस्पद का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है क्योंकि कूर्म वाचकमूल शब्द निरंजन है।

कूर्मि क्षत्रिय संगठन को किस प्रकार सुदृढ़ बनाया जाये

(प्रस्तुति : स्व० कुं ० शंकरसिंह, प्रो० घाटमपुर, कानपुर- 'कू० क्ष० जागरण' के अप्रैल 1962 के अंक से साभार उद्धृत)

मनोविज्ञान द्वारा यह स्पष्ट है कि हर एक संगठन को दीर्घ आयु प्राप्त करने के लिये उसे अपना एक आश्रम (Institution) बनाना पड़ता है। इसी के साथ-साथ एक साहित्यक संगठन का निर्माण करना भी आवश्यक होता है, जिसके द्वारा लोगों तक अपने विचारों को पहुँचाने के लिये साहित्य रूपी नौका में उन्हें (विचारों को) रखकर समय रूपी अथाह सागर में छोड़ देना होता है, जो सब जगह हर समय में पुस्तकों द्वारा लोगों को चेतना दिया करता है। साथ-ही-साथ एक कलापूर्ण पत्र चाहे वह साप्ताहिक हो या दैनिक, जैसी आवश्यकता आवे, निकाल कर लोगों के बिचारों में उथल-पुथल मचा कर अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करता रहता है और इसके अतिरिक्त आश्रम (Institution) तो योग्य कार्यकर्त्ता तैयार किया करता है। इन कार्यक्रमों में मिशनरी स्प्रिट (Missionary Spirit) दृष्टिगोचर होने लगती है, तब ही सबल संगठन जनप्रिय बनकर समाज को अग्रसर करने में सफल होता है। इन साधनों से सम्पन्न संगठन दीर्घ आयु प्राप्त करता है। हर एक संगठन के सामने ऐसी ही अड़चनें आ खड़ी होती है, जिनमें अक्सर मनचले अथवा निजस्वार्थ की भावना वाले व्यक्तियों से इस प्रकार संगठनों को धक्का पहुँचाया है, क्योंकि निज स्वार्थ तो एक व्यक्ति-विशेष की वस्तु होती है, जो उसके बाद निर्जीव हो जाती है। इस प्रकार के व्यक्तियों से संगठनों को सतर्क रहना भी जरूरी है।

'कू० क्ष० जागरण' के समस्त परिवार से मेरा अनुरोध है कि आप मेरे इस विचार को समझने तथा तर्क की कसौटी पर रखकर कसने के पहिले अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के इतिहास की ओर दृष्टि डालिये कि इसे संगठन की 65 या 70 वर्ष की आयु में कितने आघातों का सामना करना पड़ा है, जो इसे निर्बल बनाते चले आये हैं।

अब जो इस समय थोड़ी-सी शक्ति आई है और उसको सबल बनाने के वास्ते उपरोक्त विचारों के अनुकूल साधन उपलब्ध नहीं है, इस वास्ते इस संगठन के लिये जीवन-मरण का विषय है। इस प्रकार के तर्कों से यह सिद्ध हो जाता है कि एक साहित्यिक संगठन (Society) बनाया जाए, जो जातीय साहित्य का निर्माण करता रहे, इसी प्रकार एक आश्रम (Institution) जहाँ सुलभ हो खोला जाए, जिससे जातीय कार्यों के लिये कार्यकर्त्ताओं को समुयोचित प्रशिक्षण देकर, तैयार किया जा सके।

कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय अपनाना समयानुकूल

यह सत्य है कि प्रागवैदिक, वैदिक तथा बौद्धकालीन भारत में कृषि-कर्म को सदा उत्तम माना गया, उसे अन्य व्यवसायों में प्रधानता तथा अधिक सम्मान दिया गया। कुरमी जन जो कि इस भूखंड में, आर्यों में वर्णाश्रम-व्यवस्था की स्थापना से पूर्व भी, बसे हुये थे, कृषि कार्य में लगे हुये थे, नई-नई खोजों से तथा कार्यकुशलता अपनाकर कृषि-उत्पत्ति में वृद्धि करते रहे थे। तब से अब तक कुरमी जनों ने वर्णाश्रम-व्यवस्था के अन्तर्गत आने पर भी, कृषि-कर्म को अपनी जीविका के मुख्य साधन के रूप में अपनाये रखा। कूर्मि और कृषि एक दूसरे के साथ अटूट जुड़े माने जाने लगे। एक दूसरे के पर्याय बन गये। जहाँ कृषि कार्य होता है वहाँ कुरमी बसे हुये होंगे तथा जहाँ ग्रामों में कुरमी है वहाँ कृषि का होना जरूरी है। इस पुस्तक में पहले भी उल्लेख किया गया है, कुरमी स्थानान्तरण के कारण विभिन्न नामों से, जैसे कुनबी, कणबी, कुलमी, कुटम्बी, कापू, कम्मा, कूर्मा कुड़मि तथा पाटीदार, पटेल, मराठा, नायडू, रेड्डी आदि जाति सूचक नामों से जाना-पहचाना जाता है। वर्तमान काल में देश में कृषि-कर्मरत इन्हीं जाति के लोगों की संख्या अधिक है। पर इस कृषि-व्यवसाय में जितनी मेहनत है, खर्च है, प्राकृतिक कोप से क्षति होने की आशंकायें हैं, आमदनी उतनी नहीं है। अतः मौजूदा जमाने के हालात पर दृष्टिपात करते हुये, इस व्यवसाय के प्रति भावनात्मक आकर्षण को कुछ क्षण के लिये परे रखते हुये, पूर्ण विवेक से गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये। तब यही उचित लगेगा कि सारे परिवार को कृषि में लगे रहने की जगह उनमे से कुछ सदस्यों को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार तथा बुद्धिमतापूर्वक अन्य व्यवसायों या आय-साधनों का चयन करना चाहिये। जो कहीं और नहीं जा सकते या व्यवसाय नहीं चला सकते वे ही मात्र पारिवारिक कृषि-कर्म में जुटे रहें। इससे परिवार की सम्वृद्धि होगी, उनकी सन्तति का भविष्य और उज्ज्वल होगा और समाज में प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी।

आज अपने देश की आबादी लगभग 90 करोड़ और समस्त विश्व की 500 करोड़ को भी पार कर गयी है। इतनी बढ़ी हुई आबादी के बसाने के लिये, इसी अन्तराल में वन-अरण्यों को भी काट-छाँट कर, उससे प्राप्त खाली भूमि पर भी या तो खेती हो रही है या आवासीय बस्तियाँ, गाँव, कस्बे और नगर बस गये हैं या आधुनिकिरण की माँग को देखते हुये अन्याय उपयोगों में कल-कारखाने, जलाशय के लिये बड़े-बड़े बाँध या उद्योग स्थापित हो गये हैं आज भारत जैसे देश में प्रति कृषक आने वाले बहुत कम भूमि कृषि-कार्य करने के लिये बाकी बची है। फिर किसान के नसीब में कभी सूखा, कभी अकाल, बाढ़, फसल रोग, श्रमिक समस्यायें आने से खेती में प्रयोग होने वाले बीजों, उर्वरकों, औज़ारों, बैलों-ट्रेक्टरों, डीजल, बिजली आदि के मूल्यों में लगातार वृद्धि के परिणामस्वरूप आज मात्र खेती की आय और उपज पर निर्भर रहने वाले अधिकाँश कृषक परिवार ज्यादातर गरीबी रेखा के नीचे आते चले जा रहे हैं। इसके विपरीत छोटे-छोटे अन्य धन्धों में खेती से बहुत कम पूँजी लगाकर भी उससे ज्यादा कमा रहे हैं और साथ में गृहस्थ जीवन के सारे सुख भी भोग रहे हैं। ऐसी परिवर्तित स्थिति में कुरमीजनों को महज़ भावनात्मक कारण से, सारे परिवार सहित खेती में चिपके रहने, और अन्य कोई व्यापार, नौकरी या पेशा न अपनाने से, स्वाभाविक है कि वे परिवार को आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर होने देंगे और फलतः सामाजिक धरातल पर भी पतनोन्मुखी होते जायेंगे।

अतः कुरमियों को अपनी व्यवसाय सम्बन्धी मनोवृत्ति को भी मौजूदा परिस्थिति के अनुरूप बदल लेने में ही समझदारी है। व्यवसाय, अन्य पेशा या नौकरी के लिये अपना पैतृक गाँव, या नगर तज़ना पड़े तो मोह नहीं करना चाहिये। जहाँ चार पैसे ईमानदारी से ज्यादा कमाने के जरिये नज़र आयें और भविष्य उज्जवल हो तो उसे अपनाना चाहिये। प्रगति और सम्पन्नता इस दृष्टिकोण अपनाने वालों के पैर चूमेगी। हाँ इतना जरूर राय दी जाती है कि अपनी पुतैनी कृषि भूमि को बेचना नहीं है, हो सके और परिवार के हित में समझे तो उसे बढ़ायें भी। उस कृषि भूमि की देखरेख अपने परिवार के उस सदस्य को सौंप दीजिये जो कि किसी कारणवश दूर जाकर अच्छा न कर सकेगा। और जिसे कृषि कार्य में रूचि भी हो। इससे आपकी पैतृक कृषि भूमि भी सुरक्षित रहेगी और अन्य सदस्य अन्यान्य व्यवसायों या कार्यों से धन कमा कर परिवार की आर्थिक स्थिति खूब सुधार सकेंगे।

हाल की, लगभग 46 वर्ष पूर्व की घटना है। 15 अगस्त 1947 से देश भारत और पाकिस्तान विभाजित हो गया। परिणामतः लाखों-लाखों की संख्या में हिन्दू पंजाबी और सिक्ख बन्धु सपरिवार समूल उखड़कर और उजड़कर इधर भारत में आये। जिसे जहाँ सिर छिपाने को जगह मिली वह देश में कहीं भी जाकर बस गया। दूसरे दिन से मेहनत पर निकल पड़ा। स्वाभिमान के कारण भीख न माँगने, और निकृष्ट कार्य न करने का भाव लिये उसने धन्धा शुरू किया चाहें कितनी कम लागत का था, और कम से कम मुनाफे पर सामान बेचने लगा। बड़े-बड़े पूर्व सेठों ने यहाँ सब्जियाँ बेची या दुकान से एक बोरी चीनी थोक के भाव में लाकर चीनी बेचकर खाली बोरी मात्र बेचने से ग्राहकी जमायी। उसकी बिक्री और उसका व्यापार बढ़ता गया। लोगों ने फल बेचने की, फलों के जूस की दुकानें लगायी सिर पर या कंधे से लटका कर कपड़ों की गठरी और नापने का गज़ हाथ में लेकर मोहल्ले-मोहल्ले, कालोनी-कालोनी बेचने को फेरी पर निकल पड़े। आज उनकी सन्तानों की शहर के शीर्षस्थ सेठों, साहूकारों, उद्योगपतियों, बड़े-बड़े

कृषकों में (फार्म मालिको में) गणना होती है। देशी और स्थानीय लोग उनके यहाँ नौकरी करते हैं। उनका सामान उठाना -रखना करते हैं और वे बिक्री के नोट गिनते हैं और सबको हुक्म देते हैं। उनके पास पूँजी की कमी थी, शिक्षित भी ज्यादा नहीं थे, नई जगह पर परिवार लेकर आये थे जहाँ का खाना-पीना-वेष-भूषा और पहिनावा आदि सब भिन्न था। पर उन्होंने स्वाभिमान ऊँचा रखा, मेहनत की, लक्ष्य भी ऊँचे से ऊँचा बनाते गये और वे कुछ ही दशकों में देश के सबसे शिक्षित, सुखी और सम्पन्न वर्ग बन गये। तुलना कीजिये पिजड़े में बन्द सुरक्षित तोते से, वह टाइम से टुकड़ा मिलने पर खाता रहा और राम-राम या टांय-टांय करता रहा है। क्या यही जीवन है।

डंकेल प्रस्ताव क्या है ?

विश्व के 166 अन्य राष्ट्रों की तरह भारत ने भी 24 दिसम्बर 1993 को जिनेवा में डंकल प्रस्तावों के मसौदे का अनुमोदन कर दिया। समझौते पर आगामी अप्रैल 1994 में हस्ताक्षर किये जायेंगे। इसी के साथ वामपंथी एवं दक्षिण पंथी विपक्षी पार्टियों ने डंकेल प्रस्तावों का विरोध करने की घोषणा की है। **डंकेल प्रस्ताव "गैट" (जनरल एग्रीमेंट आन टैरिफ्स एंड ट्रेड) अथवा सीमा शुल्क और व्यापार पर सामान्य समझोते की उपज है। इस प्रकार की आशंकाएँ व्यक्त की जा रही है कि शीघ्र ही विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ देश की अर्थ-व्यवस्था पर छा जायेंगी। विदेशी प्रतियोगिता के कारण देशी कारखाने बंद होने लगेंगे परिणामतः मिल-मालिकों को बड़े पैमाने पर श्रमिकों की छंटनी करनी होगी। किसानों को अपनी जरूरत के बीज ऊँची कीमत पर विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से खरीदने पड़ेंगे। खाद्यान्नों के गगन-चुम्बी दाम बढ़ेंगे, देश में अपना स्वतंत्र वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य ठप हो जाएगा। और जीवन रक्षक दवाओं के दाम इतने गुना बढ़ जायेंगे कि वे आम आदमी की क्रय क्षमता से बाहर हो चुके होंगे।**

द्वितीय महायुद्ध के बाद सन् 1947 में विश्व अर्थव्यवस्था को गतिशील बनाने और बढ़ावा देने के लिये दो संघठनों का गठन किया गया। इनमें से एक था **"अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष"** जो विभिन्न देशों के केन्द्रीय बैंकों के बीच आपसी सम्बन्धों और उन देशों में वित्तीय और मुद्रा-सम्बधी समस्याएं होने पर उन्हें दी जाने वाली आपसी सहायता का नियन्त्रण करता है। जबकि "गैट" संघठन विभिन्न देशों के बीच बिना किसी बाधा के माल के आदान- प्रदान को बढ़ावा देने का प्रयत्न करता है।

"गैट" समझौते का अनुमोदन करने के बाद भारत ने क्या खोया, क्या पाया, उसका निश्चित पता कुछ समय बाद ही लगेगा। व्यापारिक सूत्रों और विश्व व्यापार में प्रतिवर्ष 200 से 270 अरब अमेरिकन डालर की बढ़ोत्तरी होगी, जिसमें भारत का लाभांश 2 से 3 अरब डालर हो सकता है।

भारत को अतिरिक्त आय समुद्री उत्पादों, कृषि उपज और अन्य वस्तुओं के निर्यात से होगी। भारत को "गैट" की व्यवस्थाओं के अनुसार अपने पेटेंट अधिनियम में संशोधन करना पड़ेगा। उसे कुछ किस्म की दवाओं और रासायनिक उत्पादों और अन्य वस्तुओं पर रायल्टी देनी पड़ेगी। **इसके परिणामस्वरूप जीवन रक्षक दवाओं और इन वस्तुओं के मूल्यों में दो से तीन गुनी वृद्धि हो सकती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा निर्मित नयी दवाएं तो और महंगी हो सकती है।**

मराकेश में 15 अप्रैल 1994 को 123 देशों के कदम से कदम मिलाकर "गैट समझौते" पर दस्तखत करके भारत लौटने के बाद केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री **श्री प्रणव मुखर्जी ने घोषणा की थी कि उससे भारत सहित सभी विकासशील देशों के लिये विश्व व्यापार में नयी चुनौतियों और संभावनाओं का द्वार खुल गया है।**

हस्ताक्षर के तुरन्त बाद भी मराकेश में श्री प्रणव मुखर्जी ने सफाई देते हुए कहा था कि जो राजनैतिक दल और उसके नेता गण **"गैट समझौता दिवस" को काला दिवस की संज्ञा दे रहे हैं उनसे पूछा जाना चाहिए कि 'गैट' के बाहर के अनेक देश उसका सदस्य क्यों होना चाहते हैं ?**

यहाँ तक कि प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हा राव ने भी भारत के "गैट समझौते" पर हस्ताक्षर किये जाने की जोरदार वकालत करते हुए कहा था, **"विपक्षी दलों द्वारा चलाये जा रहे दुष्प्रचार अभियान से जनता को गुमराह नहीं होना चाहिये। इस समझौते से वास्तव में देश की व्यापक स्थिति बेहतर होगी। देश के व्यापक हितों को मद्देनज़र रखते हुए 'गैट' में सम्मिलित होने के अतिरिक्ति अन्य कोई विकल्प नहीं है।"**

व्यापक संस्कृति में निहित गुलामी की बेड़िया और आर्थिक दोहन

व्यापारिक संस्कृति के परिणामों का इतिहास बहुत दुःखदायी और त्रासदीपूर्ण रहा है। "गैट समझौते" के बारे में जो आशंकाएँ उठती रही है, उनका केन्द्रीय मुद्दा यह रहा है कि पश्चिम के समृद्ध और विकसित देश, भारत की आत्मनिर्भरता के हर प्रयासों को नाकाम करने के लिये कटिबद्ध हैं। फिर उनका सम्बन्ध हमारे देश की चाहे हरित-क्रान्ति से हो, दुग्ध-क्रान्ति से हो अथवा

प्रक्षेपास्त्र-क्रान्ति से ?

दूध का जला, छाछ भी फूँक कर पीता है

इतिहास की पुनरावृत्ति की आशंका इस संबंध में उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह प्रश्न चूंकि आर्थिक मुद्दों से सम्बंधित है और उसके एक बड़े भाग का संबंध कृषि और इस देश के कृषकों से है। अत: इतिहास का अवलोकन आवश्यक हो जाता है, जिस पर व्यापारिक संस्कृति का खोल मढ़ा हुआ है। "गैट समझौता" कहीं और कभी उस इतिहास की पुनरावृत्ति का माध्यम तो नहीं बनने जा रहा है।

इतिहास के आईने में देखने से पता चलता है कि सन् 1930 के लगभग, पंडित सुन्दरलाल ने एक पुस्तक लिखी थी जिसका शीर्षक था, "भारत में अंग्रेजी राज" किन्तु अंग्रेज सरकार ने उसे जब्त कर दिया था। आखिर उसमें क्या था जिसके कारण सरकार ने उसे जब्त कर दिया था। आखिर उसमें क्या एतराज काबिले बात लिख दी गई थी ?

उस जब्त की गई पुस्तक के प्रारम्भ के दो उद्धरण काबिले गौर हैं।

सन् 1700 का भारत

यह हिन्दोस्तान एक अथाह गड्ढा है, जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चांदी चारों तरफ से अनेक मार्गों से लाकर जमा होता है और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता।

—फ्रांसीसी यात्री वरनियर

सन् 1900 का भारत

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में लगभग 10 करोड़ ब्रिटिश भारत में ऐसे हैं, जिन्हें किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिल सकता............... इस अध:पतन का दूसरा उदाहरण इस समय किसी भी सभ्य और उन्नतिशील देश में दिखायी नहीं दे सकता।

—विलियम डिगबी, सी आई ई एम पी

इतिहास साक्षी है कि सन् 1757 की पलासी की लड़ाई में लार्ड क्लाइव ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को चन्द घंटों में बंगाल के एक छोटे गाँव पलासी (टेसू के फूल को पलास कहते हैं, उसकी बहुतायत के कारण गाँव का नाम पलासी पड़ा था) में पराजित कर दिया............। वहीं से उत्तर भारत का दरवाज़ा ईस्ट इंडिया कम्पनी के हुक्मरानों के लिये खुल गया।.......... तभी से 'ट्रीटी नाट ट्रेड' (Treaty Not Trade) की नीति अंग्रेजों का तकिया कलाम बन गयी।

उसके बाद पाठकगण सन् 1857 का स्वतंत्रता संग्राम, उसमें भारतीयों की पराजय फिर 15 अगस्त सन् 1947 तक गुलामी के दौर से भलींभाति परिचित है। उपर्युक्त दृष्टान्त से एक ही सबक लिया जा सकता है कि काली मिर्च के एक पौंड वजन की कीमत में 5 शिलिंग की वृद्धि अंग्रेज व्यापारियों ने लंदन में न की होती, तो ईस्ट इंडिया कंपनी ही नहीं बनी होती और न अंग्रेज दीवान बहादुर और बाद में अंग्रेज सरकार लगभग दो सौ वर्षों तक इस देश पर शासन करके आर्थिक रूप से शोषण और दोहन न कर पाती। तब शायद इस देश का इतिहास कुछ और ही होता............। मगर चूँकि ये सारी बातें एक व्यापारिक मुद्दे को लेकर प्रारम्भ हुई थीं और गैट सम्बंधी समझौते भी व्यापारिक समझौता का एक दस्तावेज है। अत: मुड़कर इस देश के इतिहास में झांकना और उससे सीख लेना अनिवार्य हो जाता है।

अनेक कृषि वैज्ञानिकों की इस देश में राय है कि गैट समझौते की शर्तें, भारतीय कृषि को, कृषि सम्बन्धी अनुसंधान को और अंतत: किसान को पीछे धकेल देगी। कृषि क्योंकि कुरमी जाति का प्राचीन काल से अब तक प्रमुख व्यवसाय रहा है। अत: गैट समझौते की कुछ अजीब शर्तों पर विचार कर चिंता से उसका लोमाहर्षण होना स्वाभाविक है।

यहाँ एक अन्य पुस्तक 'फ्रीडम ऐट मिड नाइट' का उल्लेख करना भी प्रासंगिक है। उस पुस्तक को सन् 1975 में कॉलिंस और लैपियर नामक दो व्यक्तियों द्वारा लिखकर प्रकाशित किया गया था, जिसमें दिलचस्प तथ्य दिये हुये है कि "ईस्ट इंडिया कंपनी" की संरचना कैसे हुई ?

भारत से मसाले ले जाकर लंदन के बाज़ार में बेचने वाले बड़े व्यापारियों ने एक बार काली मिर्च की एक पौंड की कीमत 5 शिलिंग बढ़ा दी। अंग्रेज फुटकर दुकानदारों ने इस वृद्धि को अनुचित माना और आपस में तय किया कि उनसे नहीं खरीदेंगे। परिणाम क्या हुआ ? 24 सितंबर 1599 को लंदन के एक साधारण से घर में कुछ अंग्रेज़ लोगों की बैठक हुई। उस बैठक में लिये निर्णयानुसार 125 व्यक्तियों ने 72 हजार पौंड़ की मूल पूँजी लगाकर एक व्यापारिक कम्पनी का गठन किया। तत्कालीन ब्रिटिश सम्राज्ञी एलिजाबेथ (प्रथम) ने उस कम्पनी को 15 वर्षों के लिये केप आफ गुडहोप के दक्षिणी भाग में व्यापार करने

का अधिकार प्रदान किया। 500 टन भार के हेक्टर नाम के पहले जलपोत ने 24 अगस्त् 1600 को सूरत के बन्दरगाह पर लंगर डाला। जहाज़ के कप्तान विलियम हाकिंस ने आगरा में मुगल बादशाह जहांगीर से भेंट की, उन्हें नज़राने पेश किये गए। बादशाह सलामत ने प्रसन्न हो, उपहार में अन्य कीमती वस्तुओं के साथ हाकिंस को हरम की सर्वाधिक सुंदर कन्या भेंट की। वह आरमेनियाई ईसाई थी............. भारतीय जनता ने आमतौर पर अंग्रेजों का स्वागत किया। अंग्रेज निरन्तर आश्वस्त कराते रहे कि 'ट्रेड नॉट ट्रीटी" (Trade Not Treaty) उनकी नीति है।

कृषि अनुसन्धान और कृषि-उन्नति में कुरमी-वैज्ञानिकों का योगदान

कृषि के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए श्री गुप्तनाथ सिंह के सम्पादकत्व तथा प्रसिद्ध समाज सेवी श्री लक्ष्मण चंद्र सिंह द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' जून 1962 के अंक के पृष्ठ 11 पर छपे एक विज्ञापन के अनुसार "कू० क्ष० जागरण-कृषि अंक" भी निकाला गया था। जिसके सम्पादक मंडल में निम्नलिखित महानुभाव थे :-

1. श्री गुप्तनाथ सिंह एम० ए०, प्रधान सम्पादक
2. श्री रामलाल कश्यप एम० एस-सी० (एग्री) पी-एच० डी० (स्कालर) जबलपुर विश्वविद्यालय
3. प्रो० सुदामा स्वरूप गौर, एम० एस-सी० (एग्री)
4. श्री भरत सिंह चन्द्राकर, एम० एस-सी (एग्री)

तब से अब 32 वर्ष की लम्बी समयावधि के पश्चात् हम विचार करें कि हमारे कुरमी वैज्ञानिकों का भी कृषि-उन्नति में बड़ा प्रशंसनीय योगदान रहा है। उपर्युक्त डा० रामलाल कश्यप इस समय पं० रविशंकर शुक्ल कृषि विश्व विद्यालय के उपकुलपति हैं। डा० के० एन० कटियार पंत नगर स्थित गोविन्द वल्लभ कृषि विश्व विद्यालय के अल्पावधि के लिये कुलपति रहे थे। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो० संत सिंह के जीवन वृत के अन्तर्गत विस्तार से वहां के कृषि वैज्ञानिकों के बारे में दिया गया है।

1. प्रो० सन्तसिंह एवं उनके सुपुत्र डा० रवि प्रताप सिंह मेक्सिको (Mexico) में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक गेहूँ अनुसन्धान योजना CIMMYT में है।

2. डा० आर० एस० सचान, गोविन्द वल्लभ पंत विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और प्रसिद्ध Soil Scientist हैं।

3. जे० एन० कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर में जो स्वजातीय वैज्ञानिक एवं प्राध्यापक हैं उनके नाम हैं :-
   (क) प्रो० लालचन्द, स्टेटिस्टिटिक्स विभाग
   (ख) डा० ओ० पी० कटियार, इंटामोलोजी विभाग
   (ग) श्री वी० गौर, प्लान्ट ब्रीडिंग
   (घ) डा० अनिल गौर, डेरी फार्म
   (ड़) डा० एस० एस० गौर
   (च) डा० ज्ञान सनोरिया

4. डा० राम सी० चौधरी प्लांट ब्रीडर, आई० आर० आर० ई०-कम्बोडिया प्रोजेक्ट, कृते इण्टरनेशनल राइस रिसर्च इंसटीट्यूट, थाईलैंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश में जन्मे जयसवार कुरमी हैं।

5. भारतीय कृषि अनुसंधान इंस्टीटयूट, पूसा रोड, नई दिल्ली में :-
   (क) डा० के० के० वर्मा, इन्टोमोलोजी विभाग
   (ख) डा० आर० के० कटियार, जेनेटिक्स विभाग
   (ग) डा० रामहरि सिंह, माइकोलोजी विभाग
   (घ) डा० आर० एन० कटियार, इंटोमोलोजी विभाग (सेवा निवृत)
   (ड़) डा० आर० पी० सिंह, एग्रोइकानोमिस्ट
   (च) डा० जे० के० एस० सचान

उपर्युक्त सूची पूरी नहीं हैं क्योंकि अधिकांश कुरमी वैज्ञानिक चाहें कृषि के क्षेत्र में काफी ख्याति अर्जित कर गये हों पर वे न तो समाज से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखते हैं और न कोई पत्र-व्यवहार करते हैं, जिससे उनके बारे में आम जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाती। अत: ऐसे अनेक कुरमी कृषि वैज्ञानिक हैं जिनके नाम यहां नहीं दिये जा सके हैं। प्रो० सर्वासिंह कटियार, आई० आई० टी० कानपुर के रसायन शास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर को, उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति एवं राज्यपाल, श्री मोतीलाल वोरा ने कानपुर विश्वविद्यालय का हाल ही में कुलपति नियुक्त किया है। प्रो० सर्वज्ञसिंह कटियार का जीवन-वृत्त इस पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। प्रोफेसर कटियार के बहनोई, श्री ए० सी० कटियार, एक्जीक्यूटिव डाइरेक्टर, पंजाब कॉन-कास्ट स्टील लि०, लुधियाना में हैं जिनमें इस लेखक के घनिष्ठ सम्बन्ध अनेक वर्षों से हैं।

अध्याय - 11

मंडल जातियों के साथ विश्वासघात

10 अक्टूबर 1959 को डा० भीमराव अम्बेडकर ने पं० जवाहरलाल नेहरू सरकार से त्यागपत्र देते समय प्रेस को यह भी बताया था कि संविधान की धारा 340 के अन्तर्गत अन्य सामाजिक और शैक्षणिक वर्ग के प्रति नेहरू सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया था और न उनकी उन्नति के लिये कोई आयोग नियुक्त किया था। डा० अम्बेडकर के त्यागपत्र का एक कारण यह भी था।

इसका प्रभाव यह पड़ा कि अन्य पिछड़े वर्गों के लिये नेहरू सरकार को सन् 1953 में काका कालेलकर आयोग की स्थापना करनी पड़ी। सन् 1953 में काका कालेलकर आयोग ने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद को पेश की, जिसमें 2399 जातियाँ देशभर में पिछड़ी जातियाँ मानी गयी थीं और उसमें नौकरी और शिक्षा में आरक्षण की विविध सिफारिशें थीं। उस समय ब्राह्मणवाद का केन्द्रीय सरकार में वर्चस्व था। अत: जो ब्राह्मण थे वे इस रिपोर्ट से व्यथित हुये और नेहरू जी के सम्मुख अपना दुखड़ा रोया। नेहरू जी ने काका कालेलकर, को बुलाया। बाद में काका काललेकर ने, जो स्वयं ब्राह्मण थे 30 पृष्ठ का एक निजी पत्र, अपनी उपर्युक्त रिपोर्ट के विरोध में पंड़ित नेहरू को लिखा। इस पत्र में काका कालेलकर ने स्पष्ट लिखा, "इससे मुझे काफी धक्का लगा और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हमारे द्वारा सुझाये गये उपाय उस बुराई से भी बदतर हैं जिस पर हमें काबू पाना था।" (जयंतीलाल आर० मनाणी, प्रमुख, गुजरात प्रदेश मंडल समर्थन समिति, राजकोट (गुजरात)-"बहुजनों का बहुजन भारत" दिनांक 1 से 15 जुलाई 1994, पृष्ठ 3)। कालेलकर के पत्र का बहाना.नेहरू सरकार को आयोग-रिपोर्ट बस्ते में रखने को पर्याप्त था।

इतिहास साक्षी है कि सन् 1977 तक केन्द्र में जो भी कॉंग्रेस दल की सरकार रही, उसने अन्य पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिये कोई कारगर कदम नहीं उठाया। सन् 1977 में बनी जनता सरकार ने भी अपने चुनाव मैनीफैस्टो के अनुसार काका कालेलकर आयोग की रिपोर्ट पर अमल करने के बजाए सन् 1978 में बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री और सांसद श्री बी० पी० मंडल, की अध्यक्षता में अन्य पाँच सदस्यों का आयोग नियुक्त किया। सन् 1980 को मंडल आयोग ने राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट पेश की। उस समय केन्द्र में श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार थी। जैसा बाप, पंडित नेहरू ने किया वैसा ही बेटी, श्रीमती इन्द्रा गांधी ने किया। सन् 1982 और 1983 में लोकसभा में रामविलास पासवान, चिरंजीत यादव, नीतिश कुमार और रामपूजन पटेल जैसे कई सांसदों ने मंडल सिफारिशें लागू करने के लिये, समय-समय पर संसद में बहस की, पर बहरे कानों पर मानों कोई प्रभाव न पड़ा। जैसा माँ इन्दिरा गांधी ने किया, वैसा ही बेटे राजीव गांधी ने किया और मंडल आयोग की सिफारिशें सचिवालय की अल्मारी में सन् 1982 से 1989 तक,अर्थात सात वर्ष तक,धूल चाटती रही ।

सन् 1989 को जनता दल सरकार केन्द्र में आयी, उपर्युक्त तथा अनेक अन्य सांसदों के आग्रह पर वी० पी० सिंह सरकार ने केन्द्र की नौकरियों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण घोषित किया। सारे देश में ब्राह्मणवादी संगठनों तथा राजनैतिक दलों के उन तत्त्वों ने मंडल आयोग की सिफारिशों के विरोध में छात्रों का आन्दोलन भड़काया। कई विद्यार्थियों ने भावावेश में आकर आत्मदाह करके जीवनांत कर डाला। करोड़ों की सरकारी सम्पत्ति दिन-दहाड़े नष्ट कर दी गयी। उस समय मंडल कमीशन की 3143 जातियों में से 99 प्रतिशत को यह ज्ञात ही न था कि मंडल कमीशन की सिफारिशें उनके बच्चों के लिये ही हैं। इस गलतफहमी की आड़ में 15 प्रतिशत द्विज और अगाड़ी वर्ग ने देश के 53 प्रतिशत आबादी के मूलभूत हितों के विरोध में आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन के कारण देश की हालत को बद से बदतर होने से रोकने के लिये वी० पी० सिंह सरकार ने त्यागपत्र दे दिया।

मंडल आयोग की सिफारिशों को उच्चतम न्यायालय में भी ललकारा गया। राजीव गांधी की जघन्य हत्या के बाद सन् 1990 में केन्द्र में नरसिम्हा राव की कांग्रेसी सरकार आयी। प्रारम्भ में अदालती कार्यवाही में नरमी बरती गई।

मंडल आयोग की सिफारिशों के बारे में जब सुप्रीम कोर्ट ने सरकार से उत्तर माँगा तो केन्द्र सरकार नें आर्थिक पिछड़े व्यक्तियों के लिये 10 प्रतिशत सिफारिश के रखने की साजिश पेश की। उच्चतम न्यायालय का फैसला 19 नवम्बर 1992 को आया। मंडल आयोग की सिफारिशों को संवैधानिक बताया गया। फैसले में क्रीमी लेअर का जिक्र किया गया, तरक्की में सिफारिशें

लागू करने की पाबंदी लगाई गई, और कई तरीकों से मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को उच्चतम न्यायालय के फैसले से सीमित करने और बांधने की कोशिश नज़र आयी। मंडल आयोग की सिफारिशें में निम्नलिखित बयान ध्यान देने योग्य और उल्लेखनीय है:-

" It is a well known dictum of social justice that there is equality among equals. To treat unequals as equals is to perpetuate inequality"

वास्तव में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से सत्ताधारियों ने निस्संदेह अपने मनमोहक नारों और आश्वासनों से पिछड़ों और दलितों में मृग-तृष्णा उत्पन्न कर उनका उपयोग कुर्सी हथियाने और उस पर स्वयं को आरोहित रखने के लिये किया। हकीकत है कि ठीक-ठीक कभी भी सवर्ण नेताओं ने, श्री वी० पी० सिंह जैसा का उदाहरण छोड़कर, चाहें वे किसी भी राजनीतिक दल या विचारधारा विशेष के रहे हों कभी भी सच्चे दिल से और ईमानदारी से नहीं सोचा कि ये वर्ग भी हम वतन है या हम मजहब है तो क्यों न इन्हें सत्ता के महत्त्वपूर्ण पदों पर उनकी जनसंख्या के अनुसार लाया जाय। समय-समय पर देश में उमड़ती हलचलों, निरन्तर घोषणाओं, आश्वासनों के बावजूद सदियों से उपेक्षित, दलित एवं पिछड़े समुदाय को न्यूनतम भागीदारी भी नहीं मिली। इस देश में मूक जानवरों के प्रपीड़न की पहले चिन्ता हुई और "सोसाइटी फार क्रूयेलिटी टू ऐनीमल्स" (Society For Cruelty To Animals) की स्थापना पहले हुई पर अमानवीय जीवन जीने वाले समाज के लिए उच्च वर्ग द्वारा शोषित और शासित दलितों और पिछड़ों के हितार्थ संस्थायें और अन्याय कमीशनों का गठन मजबूरन बाद में किया गया यह ऐतिहासिक सत्य है। धन्य है तेरा इंसाफ और धन्य है यह देश महान।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, शिक्षा प्रसार से आज समाज का प्रत्येक वर्ग, हरेक व्यक्ति संविधान में निहित अपने मूलभूत अधिकारों के प्रति जागरूक होता जा रहा है, फलत: उनकी माँग भी कर रहा है। श्री सिद्धेश्वर जी अपनी नवीनतम कृति "कल हमारा है" सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, पटना, अक्टूबर 1994, के पृष्ठ 8 पर कहते हैं :-

"अब तक संविधान के मूलभूत अधिकारों अधिकांशत: संविधान के पन्नों तक सीमित रहे और एक वर्ग विशेष के कुछ ही लोगों को, ये अधिकार वास्तव में मिले। समाज का वर्तमान ढाँचा चरमराता दिखाई दे रहा हैं अब केवल वोट देने की स्वतन्त्रता नहीं, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता भी चाहिये। उसे बराबरी का हक भी होना चाहिए, कोरा आश्वासन नहीं। ठोस बराबरी जिसे वह महसूस कर सके। उन्हें अब लगातार एक सीधी और स्पष्ट भागीदारी का हक चाहिये। लोकतंत्र की मशीनरी की मार्फत अनुदान, छूट अथवा अनुग्रह राशि का झुनझुना वे नहीं चाहते उन्हें इंसानी गरिमा और लोकतांत्रिक प्रतिवाद का हक चाहिए जिसका सपना उनके बुजुर्गों ने अगस्त् 1942 में देखा था।"

फिर से, मंडल आयोग की सिफारिशें अखबारों की मुख्य पंक्तियां बनकर छपने लगी। सदियों से दबे और सोये अन्य पिछड़े वर्गों में हरकत होती नज़र आने लगी। अन्त में श्री नरसिम्हा राव की सरकार ने, कल्याण मंत्री श्री सीताराम केसरी द्वारा अपनी स्वीकृति केन्द्रीय नौकरियों में मंडल आयोग की सिफारिशों को उच्चतम न्यायालय के फैसलों की शर्तों को ध्यान में रखते हुये लागू कर दिया। फिर सभी राज्य भी एक के बाद एक इसे लागू करने की घोषणा करते गये।

सवर्णों का आरक्षण से बौखला उठना

हज़ारों-हज़ारों वर्षों से देश के अल्प संख्यक द्विज वर्ग समाज के सिरमौर बनकर उन्नति, और सुख-सम्पत्ति अर्जन के सभी साधनों पर एकाधिकार बनाये और उनका उपयोग करते चले आये थे, अन्य वंचित वर्गों के लिये, जो कि कुल जन संख्या का 80 प्रतिशत हैं सुविधा प्रदान करने के लिये इस वर्ग ने कभी चिन्ता नहीं की। मन्दिरों के पुजारी-पंड़ित बनने में लगभग शत प्रतिशत अलिखित आरक्षण से अनादिकाल से आज तक ब्राह्मण वर्ग ही लाभांवित होता आ रहा है। अन्य वर्गों को भी योग्यतानुसार और उन्हें प्रशिक्षित कर इन पदों पर भी नियुक्त किया जाय, ऐसा तो उनका प्रबुद्ध वर्ग अभी भी सोचता नज़र नहीं आता, आम ब्राह्मण तो कभी देने को तैयार भी न होंगे। पर अन्य पिछड़े वर्गों के लिये 27 प्रतिशत आरक्षण नीति को सरकार द्वारा लागू किये 12 महीने भी पूरे नहीं हुये हैं पर अनेक द्विजों को इसके दोष अभी से नज़र आने लगे हैं और वे तरह-तरह की शंकायें समाचार पत्र-पत्रिकाओं में व्यक्त करने लगे हैं।

जैसे सेवानिवृत्त मध्यप्रदेश के उच्च प्रशासक और ब्राह्मण, श्री एम० एन० बुच, 8 अक्टूबर 1994 के 'दि टाइम्स ऑफ इण्डिया' में " Reverse Discrimination Against Upper Castes" शीर्षक के लेख के अन्तर्गत लिखते हैं :-

"Recently, tne U. P. chief secretary, **Mr. T. S. R. Subramaniam**, was removed from his post, because BSP leader, **Mr. Kanshi Ram** insisted that no Brahmin could occupy that position. **Mr. Kanshi Ram** and

his followers hold Brahmins responsible for all the country's ills because according to them, they have oppressed people whom they consider as lower castes. If Indian society shows signs of imbalance because of caste it would be perfectly legitimate to remedy these deviations and move society towards castelessness and classlessness, but these steps have to be corrective and not acts of vengeance. The sins of forefathers can not be visited upon their progeny."

आज यदि द्विज वर्ग अपने पूर्वज़ों के जातीय आचरण को पाप कहने लगे हैं, तो यह भी आने वाले एक अच्छे पूर्व संकेत का द्योतक है। श्री बुच महोदय अपने लेख में आज के हालात के बारे में आगे कहते है :–

"In the old **Madras Presidency** the domination of **Brahmins** in politics and public office has been gradually eroded till a stage has been reached where no one born a **Brahmin** can expect a fair deal there. This, by and large is the position in other **Southern States** also. In **Maharashtra** it is the **Maratha** and the **Kunbi** rather than the **Brahmins** who dominate. In **Gujarat**, it is the **Patels**. Bihar has not had a **Brahmin Chief Minister** for many years and **Madhya Pradesh** has had alternative **Brahmin** and **Rajput** chief ministers, but with a very strong tribal lobby."

श्री बुच महोदय ने यह तो देखा और वर्णन कर डाला पर उन्हें क्या यह नहीं दिखाई देता की देश के शीर्षस्थ पदों पर आज भी किस जाति के महानुभाव विराजमान हैं। उन्हें पता जरूर है पर कहना नहीं चाहते कि इस समय राष्ट्रपति, डा० शंकर दयाल शर्मा, प्रधानमन्त्री श्री पी० वी० नरसिंह राव, मुख्य चुनाव कमिश्नर श्री टी० एन० शेषन, भारतीय थल सेना के कमान्डर एवं चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ जनरल बी० सी० जोशी, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश चीफ जस्टिस एम० एन० वेन्कटचलैया एवं अन्य न्यायाधीशगण आदि ब्राह्मण जाति के हैं। भारत में प्रजातान्त्रिक सरकार है जिसकी जन-कल्याणकारी नीतियाँ संविधानानुसार हैं तब बहुजन समाज के लोग कब तक और किस आधार पर उच्च पदों से वंचित रखे जा सकेंगे। श्री बुच महोदय को भय है :–

"With reservations in institutions of higher education, in many states not only are the so-called upper castes denied a place in public service, they are also prevented from gaining access to education. Since it is virtually impossible for a **Brahmin** boy or girl in **Tamil Nadu** to gain admission to an engineering or medical college, the student is forced to migrate. In **Maharashtra Brahmins** have increasingly turned to business, but it remains to be seen how long this will last."

कुनबी और कुरमी जाति के लोग वेतूल जिला (म० प्र०) में पिछड़े कैसे ?

सेवानिवृत्त भारतीय प्रशासनिक सेवा के पदाधिकारी, श्री एम० एन० बुच, पूर्व चेयरमैन राष्ट्रीय केन्द्र मानव पुनर्स्थापन एवं पर्यावरण ने 30 जनवरी 1994 की अंग्रेजी पत्रिका "दि संडे टाइम्स ऑफ इण्डिया" में गेस्ट कालम में "कॉस्ट एसपिरेशन्स" शीर्षक के अन्तर्गत एक विस्तृत लेख लिखा, जिसमें आरक्षण नीति को निरर्थक सिद्ध करने के लिये तरह-तरह की मुद्दे उठाये। प्रथम यह जानना जरूरी है कि श्री बुच, मध्य प्रदेश के रहने वाले हैं, और वे ब्राह्मण हैं। आगे के पृष्ठों में एक दलित परिवार में जन्में, दलितों पर होने वाले अमानवीय व्यवहार को स्वयं झेले हुये विद्वान प्रोफेसर (डा०) रामनाथ के विचार प्रस्तुत करने का मात्र यही उद्देश्य है।

श्री बुच का कहना है कि जिन जातियों की जन संख्या अधिक है प्रजातन्त्र में बिना आरक्षण नीति के हैं वे अंकों के खेल में उनके हाथों में सदैव शक्ति आ जाती है नियुक्त पदाधिकारियों के पास नहीं रहती। मध्य प्रदेश के वेतूल जिले में कुनबी और पवार इन दोनों जातियों का कृषि क्षेत्र में वर्चस्व है, सम्पन्न हैं और राजनैतिक शक्ति की कुंजी उनके पास है। तब ये जातियाँ किस आधार पर पिछड़ी हैं। इसी प्रकार वर्तमान बिहार में कुरमी और यादवों के हाथों में कुछ वर्षों से राज्य-शक्ति आ चुकी है भूमिहार, राजपूत या ब्राह्मण के पास नहीं। उनके उपर्युक्त लेख के मूल अंग्रेजी में कुछ अंश, उनके मन्तव्य की पुष्टि में नीचे साभार उद्धृत किये गये हैं :–

"What is the real motive behind the policy of reservation ? The most would be to bring into the mainstream of public life those who have been denied this opportunity, because the power equation was weighted in favour of upper castes. The virtual monopolisation of power by Brahmins, Rajputs and Kayasthas has been commented up by many authorities. Such a monopoly can survive under the feudal rule in which society is stratified. Democracy, however, is a game of numbers and as power politics would naturally be the

most numerous rather than the one which is highest in the social hierarchy.

Taking the example of Betul district in Madhya Pradesh, in Betul Tehsil it is the Kunbis, who predominate and in Multai Tehsil it is the Pawars. Both the Congress and BJP have fielded Kunbi and Pawar candidates respectively for assembly elections from these two tehsils, because it is the votes of the Kunbis or the Pawars which count most of all. These two communities dominate the agricultural landscape and also hold the key to political power. **How these communities can be termed as backward and why should the children of these two communities get preference in government service, regardless of merit? In Bihar it is Ahir and Kurmi rather than the Bhumiyar, Rajput or Brahmin, who have wielded political power for some years now."**

श्री एम० एन० बुच के 8 अक्टूबर 1994 के उपर्युक्त वर्णित तथा "दि टाइम्स ऑफ इण्डिया" नई दिल्ली दैनिक में प्रकाशित पत्र का उपयुक्त उत्तर नई दिल्ली के श्री प्रमोद कुमार कुरील ने बिन्दु-प्रति-बिन्दु दिया, जोकि इसी दैनिक के 19 अक्टूबर 1994 के अंक में "लेटर्स" कालम में "Caste Right" शीर्षक से प्रकाशित किया गया। उसे पाठकों के सूचनार्थ साभार यहाँ नीचे उद्घृत किया जा रहा है : –

Caste Right

Mr. M. N. Buch's article, **"Reverse Discrimination Against Upper Castes"** (October 8) was melodramatic to say the least. Even after 47 years since independence, it remains a bitter truth that the attitude of the upper castes towards the downtrodden remains that of concealed hatred. The upper caste mind simply refuses to come out of its fossilised attitudes inherited from forefathers. Whilst it is true that **Mr. Kanshi Ram's** ire is directed against the **Brahmins,** there is a strong logic behind it. **The caste system was invented and perpetuated by the Brahmins. The rest of the upper castes were just the tools to put the theory into practice.** The reason that the caste system has survived is that its ideological basis was never attacked. Any attack on Brahmins is in fact an attack on Brahminism, on which the system thrives.

Mr. Buch pleads that the **"sins of forefathers cannot be visited upon their progeny".** It reflects his sense of intellectual dishonesty. He very innocently assumes that it was only the forefathers who practised the caste system and that the **"progenies"** are pure at heart like the holy **Ganga.** But the facts are otherwise. Is not it true that **Jagjivan Ram was unjustly denied prime ministership,** which he so much deserved, just because of his birth in a lower caste and that this happened not in the 10th or 15th century but in the last quarter of the 20th century, the age of democracy and equality ? There are numerous examples of this kind against dalit civil servants and other government officials.

Even more amusing are his remarks about the denial of opportunity of education and government service to **Tamil Brahmins.** If this is true, how would he explain that a **Brahmin,** elected on the votes of millions of backwards and dalits, is the chief minister of a **'Brahminbaiter' state. The fact remains that Brahmins, or every upper caste for that matter, considers that it is his divine right to rule over others. It is time for them to do some introspection.** As far as the outburst of **Mr. Kanshi Ram** against the upper castes is concerned, he would learn in time to do it not so crudely. **But after all isn't it true that it has taken the upper castes more than 2,000 years to preach and practise casteism in a subtle and covert manner ? Time will teach this to Mr. Kanshi Ram also.**

PRAMOD K. KUREEL

New Delhi.

अभी आरक्षण नीति ठीक से लागू नहीं हो पायी है, इस नीति के अन्तर्गत पहले संघ सेवा आयोग से नियुक्त सफल परीक्षार्थी को श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह, पूर्व प्रधान मंत्री, भारत सरकार अपनी प्रतिज्ञानुसार जब मालार्पण द्वारा स्वागत कर लेंगे तभी वे दिल्ली राज्य सीमा में प्रवेश करेंगे। श्री वी० सी० सिंह काफी अस्वस्थ हैं, हिम्मत से फिर भी राजनैतिक दायित्व बखूबी निभाते आ रहे हैं, उनकी प्रतिज्ञा शीघ्र पूरी हो और वे दिल्ली-प्रवेश कर सकें। वे स्वयं राजपूत (क्षत्रिय) परिवार में जन्मे लेकिन उन्होंने अपना सर्वस्व अन्य पिछड़ी जातियों के हितार्थ अर्पित कर दिया है। यह उनका त्याग और कृतित्व क्या किसी से छिपा है।

पर देखिये कि आरक्षण नीति के लागू होते ही प्रथम वर्ष में द्विजों ही में कितनी बैचनी अभी से पैदा हो गयी है। अब उन्हें कुरमी और कुनबी जातियां अग्रणी नज़र आने लगी हैं। कल तक तो इनको नीचा अहसास कराने के लिये वे अनेक अनर्गल बातें किया करते थे। हजारों-हजारों वर्षों से हिन्दू समाज पर यह द्विज वर्ग, जिसमें ब्राह्मण विशेष करके 'अमरबेल' की तरह इस

पर फलते -फूलते रहे, इसका जीवन-रस चूसते रहे, कभी अन्य हिन्दुओं की सुध न आयी और अब मात्र अपने हितार्थ वे 'मरता क्या न करता' की तरह अपनी पूर्व मान्यताओं में सब कुछ उलट-फेर करने को तैयार होते नज़र आते हैं। यदि वे शीघ्र ठीक प्रकार परिवर्तन कर लेते हैं तो दलितों का एक बड़ा वर्ग जो बौद्धधर्म ग्रहण करने जा रहा है, रोका जा सकता है। इसी तरह हिन्दुओं का मुसलमान बनना और ईसाई बनना रोका जा सकता था और पाकिस्तान, बंगलादेश पृथक देश न बनते और कश्मीर जैसी जटिल समस्यायें उत्पन्न ही न होती।

आरक्षण का प्रश्न और बिहार के कुर्मीजन

आरक्षण का प्रश्न महज आर्थिक नहीं, सामाजिक प्रतिष्ठा का भी सवाल है। आरक्षण पिछड़े एवं दलित वर्गों के आर्थिक उत्थान तथा उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त करने, अपितु सदियों से शोषित, प्रपीड़ित और प्रताड़ित जन समुदाय को सामाजिक सम्मान दिलाने की एक विधि है। आरक्षण के कारण जो सरकारी नौकरी किसी को मिलती, आरक्षण के आभाव में यदि वह न भी प्राप्त हो, तब भी वह अपने जीवाकोपार्जन का कोई अन्य जरिया देर-सवेर ढूंढ़ ही लेता है, किन्तु भारतीय समाज-संरचना में सरकारी नौकरशाही के कारण उच्च सामाजिक रूतबे का जो भाव जो जुड़ा हुआ है, उससे बहुजन समाज को अनेक कारणों से इस रूतबे प्राधिकार की अनुभूति से वंचित होना पड़ा है। ऐसे वर्गों को जो कि देश की कुल जनसंख्या का लगभग आधा है को आरक्षण के द्वारा सरकारी नौकरियाँ और सामाजिक सम्मान दिलाना अत्यन्त आवश्यक है और यही देखते हुये भारत सरकार को मंडल कमीशन की सिफारिशें बिना आगे टाले, लागू करनी पड़ गईं।

पिछले वर्षों में, जब आरक्षण का प्रश्न उठा संयोगवश उसे कुछ ऐसा हुआ कि कुर्मी समुदाय को जान-बूझकर या किसी गुप्त षडयंत्र के अन्तर्गत बिहार सरकार की नौकरियों में सर्वप्रथम सन् 1991 में कुर्मी को आरक्षण की सूची में नहीं रखा गया। जब कुर्मी समाज आन्दोलन के कगार पर आ खड़ा हुआ और सर्वत्र उत्तेज़ना फैल गयी तब उसकी सफ़ाई देने की कोशिश की गई और साथ-ही-साथ तुरन्त कुर्मी जाति को आरक्षण की सूची में सम्मिलित कर लिया गया।

कुरमियों के साथ यह बात यहीं समाप्त नहीं हुई। फिर जब बिहार के पंचायती चुनावों में आरक्षण की चर्चा चली तब बिहार पंचायती राज अधिनियम 1993 की अनुसूची-1 में पिछड़ी जातियों की सूची में कुर्मी जाति को छोड़ दिया गया। मात्र छोटा नागपुर (झारखंड़) क्षेत्र के 'कुर्मी महतो' को क्रम संख्या 13 पर अंकित किया गया। इस पर कुर्मी समाज के कार्यकर्ताओं ने बिहार सरकार का ध्यान इस अन्याय की ओर खींचने की चेष्टा की। 13 दिसम्बर 1993 को गांधी मैदान के जे० पी० गोलम्बर पर एक ऐतिहासिक धरना आयोजित कर सरकार को सचेत कराया गया। फिर भी जब महसूस किया गया कि यह सरकार राज़ी-राज़ी कोई लाभ कुर्मियों को देने वाली नहीं है तब उसके युवा-वर्ग तथा छात्र-समुदाय सड़क की राजनीति अपनाने को तत्पर हो उठे, और संघर्ष का जयघोष बोल दिया। स्वाभाविक था कि उनके द्वारा पटना और अन्य स्थानों की सड़कें जाम की गईं, रेल सेवा भी बाधित हुई।

इसी बीच केन्द्रीय सेवाओं में आरक्षण से लाभांवित होने वाली अन्य पिछड़ी वर्गों की सूची में जब कुर्मी (अनुसूची-2) को शामिल नहीं किये जाने अथवा कुर्मी या कुर्मी (महतो) शब्द को लेकर बाबेला मचा। अतएव आरक्षण के प्रश्न ने बिहार के पूरे कुर्मी समाज को संगठित होने पर मजबूर कर दिया। और उनका गुबार और हुंकार "कुरमी चेतना महरैली" के रूप में 12 फरवरी 1994 को पटना में प्रदर्शित हुआ।

अन्य पिछड़े वर्गो की मंडल आयोग एवं 13 राज्यों की समान सूची

(रोजगार समाचार, दिल्ली 25 से 31 दिसम्बर 1993 से साभार उद्धृत)

कल्याण मन्त्रालय

अन्य पिछड़ें वर्गों (अ० पि० व०) के पक्ष में भारत सरकार के अधीन सिविल पदों तथा सेवाओं में 27% आरक्षण के सम्बन्ध में कल्याण मंत्रालय के दिनांक 10 सितम्बर 1993 के संकल्प को भारत के असाधारण राजपत्र में अधिसूचना के तहत प्रकाशित किया गया है।

संकल्प , नई दिल्ली, 10 सितम्बर 1993

संख्या 12011/68/93-बी० सी० सी० (सी) :-भारत सरकार के अधीन सिविल पदों और सेवाओं में अन्य पिछड़े वर्गों को 27% आरक्षण प्रदान किये जाने के सम्बन्ध में इंदिरा साहनी और अन्य (संख्या 1990 का 930) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 16-11-1992 को दिये गए निर्णय पर भारत सरकार विचार कर रही थी :-

2. भारत सरकार के कार्मिक लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय (कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग) द्वारा 8 सितम्बर 1993 के कार्यालय ज्ञापन संख्या 36012/12/93-स्थापना (एस० सी० टी०) के माध्यम से जारी किये गए आदेशों के अनुसार पूर्वोक्त आरक्षण के उद्देश्य से प्रथम चरण में अन्य पिछड़े वर्गों के अन्तर्गत उन जातियों और समुदायों को रखा जाएगा जो मंडल आयोग की रिपोर्ट और राज्य सरकारों की सूची दोनों में शामिल हों। यह सूची 8 सितम्बर 1993 से लागू है।

3. न्यायमूर्ति (सेवा निवृत्त) आर० एन० प्रसाद की अध्यक्षता में 'सम्पन्न वर्ग' (क्रीमी लेयर) सम्बन्धी विशेषज्ञ समिति की (स्थापना निम्नलिखित राज्यों के सम्बन्ध समान सूचियाँ अनुबन्ध संलग्न) तैयार करने हेतु की गई जिन्हें उच्चतम न्यायालय के निर्णय की तारीख तक राज्य सेवाओं में आरक्षण के उद्देश्य से अन्य पिछड़े वर्गों की सूची अधिसूचित कर दी थी :-

राज्यों के अन्य पिछड़े वर्गों (अ० पि० व०) की अनुबन्ध सारिणी

राज्य का नाम	सारिणी में क्रम संख्या	सामाजिक तथा शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की समान सूची में जातियों/समुदायों (उपजातियों/समान जातियों के नाम	राज्य सूची में प्रविष्टि क्रम संख्या	मंडल सूची में प्रविष्ट क्रम संख्या
बिहार	15	कुर्मी (महतो), कुर्मी, (महतो) केवल छोटा नागपुर (प्रभाग) में	1 (15)	101, 110
		कुशवाहा (कोयरी)	1(19)	120
गोवा	9	कुनबी	1	12
हरियाणा	33	कुर्मी	32	5
हिमाचल	33	कुर्मी	33	42
कर्नाटक	109	कानबी	बी-65	139
		कुलवादी	बी-65	139
	110	कुनबी	बी-65	139
		कुर्मी	बी-66	182
		कुर्मा	बी-66	182
		वोक्कालिगा	बी-119	126
मध्य प्रदेश	36	कुरमार	39	176
		कुरामी	39	176
		कुरमी	39	176
महाराष्ट्र	70	कुम्बी	39	176
		कुंबी (उपजातियां-लेवाकुनबी, लावा पाटिल, लेवा पाटीदार)	83	143
पंजाब	11	कुर्मी	9	52
उत्तर प्रदेश	13	कुर्मी	9	78

मंडल आयोग सिफारिशों के तहत पहली नियुक्ति

कल्याण मंत्री, श्री सीताराम केसरी ने राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त एवं विकास निगम में आसुला (सोनकर-सुनार) जाति के वी० राजशेखराचारी को, मंडल आयोग की सिफारिशों के तहत पिछड़े वर्ग के उम्मीदवार के रूप में, सहायक प्रबंधक का नियुक्ति-पत्र रविवार 20 फरवरी 1994 को प्रदान किया। इस ऐतिहासिक प्रथम नियुक्ति से पूर्व प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की स्वतः रोपित शर्त कि जब तक मंडल सिफारिश के अनुसार चुना पिछड़े वर्ग का प्रथम उम्मीदवार दिल्ली सीमा पर उन्हें सादर लेने आयेगा तब ही वे राजधानी में प्रवेश करेंगे अन्यथा नहीं, यह शर्त भी अब पूरी होने के लिये प्रथम उम्मीदवार का चयन विधिवत् हो चुका अतः अब कोई विलम्ब नहीं होना चाहिए।

श्री वी० राजशेखराचारी आंध्र प्रदेश के मेडक जिले के निवासी है। निगम ने बाकायदा विज्ञापन देकर आवेदन-पत्र मंगवाये थे तथा चयन हुआ। इस प्रक्रिया में चार माह लगे। श्री केसरी के अनुसार सरकार ने 8 सितम्बर 1993 को पिछड़े वर्गों को भारत सरकार की सेवाओं तथा सहकारी उपक्रमों में पिछड़े वर्गों में क्रीमी लेयर (साधन सम्पन्न लोगों) को अलग करने के बाद 27 प्रतिशत आरक्षण लागू किया जा रहा है।

श्री केसरी ने बतलाया कि पिछड़े वर्गों को आरक्षण का प्रावधान होने से हर साल लगभग 40 हजार नवयुवकों को नौकरियाँ मिल सकेंगी। पिछड़े वर्ग के लोगों को स्वरोजगार के लिये प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से 1992 में स्थापित राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त एवं विकास निगम की योजना के बारे में पूछे जाने पर श्री केसरी ने बताया कि अब तक निगम ने 311 परियोजनाओं के लिये 86 करोड़ रुपये ऋण के रूप में दिये हैं। जिससे पिछड़े वर्गों में गरीबी की रेखा से नीचे वाले करीब 69 हजार लोग लाभांवित होंगे। कल्याण मंत्रालय ने अन्य सरकारी विभागों, उपक्रमों तथा राज्य सरकारों से भी आरक्षण प्रावधानों पर कार्रवाई करने का आग्रह किया है।

श्री केसरी ने कहा कि 14 राज्यों से सम्बंधित पिछड़े वर्गों की सूचियां 10 सितम्बर 1993 को ही अधिसूचित की जा चुकी हैं। इन राज्यों में आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश शामिल है। हाल ही में ओडिशा और राजस्थान सरकारों द्वारा भी पिछड़े वर्गों की सूचियों को केन्द्र सरकार की नौकरियों के लिए अधिसूचित करने के लिये कार्रवाई की जा रही है।

कालचक्र तो अविरल चलता ही रहता है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिशों के तहत पहली नौकरी पाने वाले श्री वी० राजशेखराचारी को 2 अप्रैल 1994 को उनके घर, पूर्वी दिल्ली के मयूर विहार स्थित हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट में जाकर सम्मानित किया। श्री सिंह हाल में ही अपने इलाज के सम्बन्ध में विदेश रह कर दिल्ली लौटे थे। उनके साथ जनता दल के कई नेता गण जैसे, सांसद रामविलास पासवान, पूर्व जद अध्यक्ष एस० आर० बोम्मई, सांसद शरद यादव तथा द्राविड़ मुन्नेत्र कषगम के विद्रोही नेता श्री वी० गोपालस्वामी आदि अनेक नेताओं ने श्री राजशेखराचारी को माला पहनाकर सम्मानित किया। यह अन्य पिछड़ें वर्गों के लिये आरक्षण-नीति का प्रथम सफल एवं ऐतिहासिक अवसर था।

श्री वी० राजशेखराचारी पिछड़ी (स्वर्णकार) जाति के है। 1 अप्रैल 1994 को केन्द्रीय कल्याण मंत्री, श्री सीताराम केसरी के कहने पर राजशेखराचारी को श्री वी० पी० सिंह के घर जाने से रोक लगा दी गई। इसके बाद ही वी० पी० सिंह ने स्वयं उनके घर जाकर उनको सम्मानित करके, अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का फैसला किया था। सात महीने पूर्व श्री सिंह इस शपथ के साथ दिल्ली से चले गए थे कि वे वापस मंडल आयोग की सिफारिशों के तहत पहली नियुक्ति पाने वाले युवक या युवती को माला पहनाने के लिए ही आएंगे।

इस अभिनन्दन समारोह के मौके पर श्री सिंह ने कहा कि राजशेखराचारी को देखकर उन्हें एक नए जमाने की शुरुआत दिखाई दे रही है। उन्हें सम्मानित करके लग रहा है कि बरसों पुराना उनका सपना आज साकार हुआ। उन्होंने कहा कि घृणा इंसान को गिराती हैं। फिर भी इसे हमारा समाज हजारों सालों से मान्यता देता आ रहा है। पर आज हम जागे हैं और समाज के दबे कुचले लोगों को आदर देने की बात कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि राजशेखराचारी को आज सम्मानित करके हमने एक दबी हुई आत्मा को आजादी दी है। श्री सिंह ने कहा कि सामाजिक न्याय की हमारी यह लड़ाई यहीं खत्म नहीं होती; यह बहुत आगे तक जाएगी। राजशेखराचारी तो ग्रामोफोन रिकार्ड की एक सुई हैं। उन्होंने कहा कि हमारे देश के महान नेताओं ने जो कुर्बानियां दी हैं, हमारी यह जीत उसका ही नतीजा है। राजशेखराचारी को नौकरी मिलना सिर्फ एक युवक को नौकरी मिलना भर नहीं है। इससे उन तमाम तबकों को राज देने का रास्ता खुला है जो इस देश को सींचने के लिये अपना खून-पसीना बहाते हैं। उन्होंने इसे ऐतिहासिक मोड़' बतलाया। उन्होंने कहा कि इस ऐतिहासिक घटना में मैंने जनता की दी हुई ताकत से मात्र मंडल आयोग की सिफारिशों पर दस्तखत किये थे। यह लड़ाई हज़ारों सालों से चली आ रही थी।

मंडल मुद्दे पर श्री वी० पी० सिंह ने कहा कि चार सालों के संघर्ष के बाद जो सफलता मिली है उसे वे अपनी जीत-हार का मुद्दा नहीं मानते। बड़ा तथ्य यह है कि इस मुद्दे पर सभी दलों की स्वीकृति बन रही है। इन सबकी स्वीकृति सरकार की ताकत से अधिक होगी, क्योंकि सरकारें तो आती-जाती रहती हैं। उन्होंने भारतीय जनता पार्टी को परोक्ष रूप से आड़े हाथ लेते हुए कहा कि मंड़ल और कमंड़ल साथ निकले थे। मंडल वालों ने कमंडल की बात नहीं की। किन्तु कमंडल वाले अब मंडल की चर्चा करने लगे हैं।

समारोह में श्री वी० पी० सिंह की बीमारी (रक्त कैंसर) की भी चर्चा चली। उन्होंने अपनी बीमारी का जिक्र करते हुए कहा कि वे 63 वर्ष के हो चुके है। जिंदगी घंटों और सेकंड़ों में नहीं गिनी जाती। यह घटनाओं और अनुभूतियों में नापी जाती है। आज राजशेखराचारी को माला पहनाने के बाद जो अनुभूति हुई वह मेरी सारी जिंदगी के बराबर है।

जनता दल सांसद रामविलास पासवान ने कहा कि वी० पी० सिंह ने सात महीने दिल्ली से बाहर रहकर अपना वचन पूरा किया है। सामाजिक न्याय का उनका सपना आज साकार हुआ है। पिछड़ों के लिए हजारों सालों से बंद दरवाजा खुलने की श्री वी० पी० सिंह ने एक ठोस लड़ाई जीती है। पर यह लड़ाई काफ़ी लम्बी है। हमें अभी काफ़ी कुर्बानियाँ देनी होंगी। उन्होंने कहा कि सामाजिक न्याय की हमारी लड़ाई को नाकाम करने के लिये कांग्रेस ने 50 फीसदी का अड़ंगा और क्रीमी लेयर का बैरियर लगाया। पर धार के खिलाफ रहकर भी श्री वी० पी० सिंह ने यह लड़ाई जीत ली।

पूर्व जनता दल अध्यक्ष एस० आर० बोम्मई ने कहा कि सामाजिक न्याय दिलवाने का काम अभी पूरा नहीं हुआ है, यह लड़ाई एक लम्बी लड़ाई होगी। सामाजिक न्याय को जन-जन तक पहुँचाने के लिये हमें अभी काफी आगे तक जाना है। जद नेता मुफ्ती मोहम्मद सईद ने कहा कि वी० पी० सिंह की सामाजिक न्याय की इस लड़ाई में हम हमेशा उनके साथ हैं।

अन्त में श्री वी० राजशेखराचारी ने श्री वी० पी० सिंह को उनकी इस मुहिम की सफलता के लिये धन्यवाद दिया और अपने सरकारी अफसरों के प्रति कृतज्ञता प्रगट की। राजशेखराचारी को कल्याण मंत्री, श्री सीताराम केसरी द्वारा मंडल सिफारिशों के अन्तर्गत प्रथम नियुक्ति-पत्र प्रदान किया था।

मंडल आयोग की सिफारिशों के आधार पर सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान करीब-करीब सम्पूर्ण देश में लागू हो चुका है। अब करीबन सारे राजनीतिक दल किसी न किसी प्रकार इस सिद्धान्त को मानने लगे हैं। राज्यों में चाहें कांग्रेस की सरकार हो या भारतीय जनता पार्टी या फिर जनता दल की, पिछड़े वर्गों को आरक्षण देने का काम किसी न किसी स्तर पर आगे बढ़ रहा है। सांसद डा० जी० एल० कनौजिया ने इस लेखक को सूचित किया था कि हाल ही में उनके तथा अन्य कुछ सहयोगी सांसदों के सतत् प्रयासों से संघ सेवा आयोग, दिल्ली को उसकी चालू वर्ष की प्रतियोगिता-परीक्षाओं में भी पूर्णतया आरक्षण सिफारिशों का क्रियान्वयन करना मान गए, अन्यथा अन्य पिछड़े वर्गों के परीक्षार्थियों को आरक्षण के पूरे लाभ से वंचित रखा जा रहा था।

दक्षिण भारत में इस तरह का आरक्षण तो वर्षों से चला आ रहा है मंडल आयोग बनने से पहले से ही। दक्षिण के कई राज्यों में आरक्षण कुल मिलाकर 50 प्रतिशत से ज्यादा है। आरक्षण के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय का निर्देश है कि किसी भी तरह से वह पचास प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। अत: इन राज्यों में काफी दिनों से इस प्रकार की माँग उठ रही है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा संविधान में संशोधन करके, आरक्षण का प्रावधान 50 प्रतिशत की अधिकतम सीमा से आगे बढ़ाया जाए। इस तरह की माँग सबसे जोरों से तथा लगातार तमिलनाडु राज्य से उठ रही है। वहाँ की विधान सभा ने भी सर्वसम्मति से इसी उद्देश्य का प्रस्ताव पारित कर केन्द्रीय सरकार के पास क्रियान्वयन के लिये भेजा है।

दिल्ली को हाल ही में नया-नया राज्य का दर्जा मिला है। मंडल आयोग का सबसे मुखर और तीव्र विरोध भी इसी राज्य में हुआ था। सबसे ज्यादा हिंसा, आगजनी तथा राजीव गोस्वामी के आत्मदाह तक के असफल प्रयास भी राजधानी दिल्ली में बड़े मीडिया प्रचार के साथ किये गये थे। दिल्ली में भारतीय जनता पार्टी के अन्तर्गत मदनलाल खुराना सरकार को मंड़ल आयोग के तहत पिछड़ों को आरक्षण देने में परेशानी आ सकती थी पर अचरज यह जानकर हुआ कि खुराना सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू कर दिया है। गुजरात में भी काफी विरोध हुआ था पर वहाँ तो देश में पहली बार डाक्टरी और तकनीकी शिक्षा में आरक्षण लागू हो गया है। गुजरात में कणबी-पटेल आरक्षण से बाहर हैं किन्तु कई क्षत्रिय जातियें उसके अन्तर्गत हैं।

सारे देश में अभी तक मात्र पश्चिम बंगाल ने मंडल आयोग की सिफारिशों को नजरअंदाज किया है। वहाँ पिछले 19 वर्षों से वामपंथी, प्रगतिशील सी पी आई-एम की सरकार श्री ज्योति बसु के मुख्य मंत्रित्व में कार्यरत है। पं० बंगाल मात्र एक राज्य है जहाँ अभी तक शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लोगों को आरक्षण लाभ दिया जाना है। प० बंगाल में इस काम के लिये निगम की स्थापना के लिये किसी पिछड़े वर्ग की ओर से भी कोई आवाज़ नहीं उठायी जा रही है। परिणामस्वरूप केन्द्र की नौकरियों में पं० बंगाल के युवक-युवतियों की संख्या तो घटेगी ही, राज्य में भी उनके अपने रोजगार के अवसर कम होंगे। प०

बंगाल में मुसलमानों की सबसे बड़ी संख्या है, यही स्थिति आदिवासियों की है। लगभग यही स्थिति दलितों की है। ये सब मिलाकर 93 प्रतिशत होते हैं। इस प्रकार कुलीन वर्ग वहाँ 7 प्रतिशत से अधिक नहीं हैं।

इस सम्बन्ध में बड़ी तेज़ी से बचे हुये राज्यों द्वारा अन्य पिछड़े वर्गों को मंडल आयोग की सिफारिशों के अनुसार लाभ देने के लिये पिछड़ी जातियों की सूचियाँ घोषित की जा रही है। पश्चिम बंगाल की इन वर्गो की सूची में कुरमी जाति का नाम घोषित कर दी है। मध्य प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल सरकारों ने अपने-अपने राज्यों की अन्य पिछड़े वर्गों की सूचियाँ घोषित कर दिया गया हैं। अन्य राज्यों जैसे उड़ीसा में यह प्रक्रिया "उड़ीसा स्टेट कमीशन फॉर बैकवर्ड कमीशन" द्वारा जारी है। इस सम्बन्ध में इस कमीशन का पत्र क्रमांक 968/OSCBC दिनांक 15-9-94 का अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के जनरल सेक्रेटरी के नाम जारी हुआ, जोकि नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

By Registered Post

Government of Orissa
Orissa State Commission for Backward Classes
A-4, Unit-V, Bhubaneswar

No. 968/OSCBC — **Dated the 15th September, 1994**

To

Shri J. P. Kanaujia,
General Secretary,
All India Kurmi Kshatriya Mahasabha

At/PO 118/4 Site No-I Kidwai Nagar, Kanpur-208011 (UP)

Please take notice that I.C. No. 9/94 which was registered on your representation for inclusion of Kurmi caste in the State OBC list has been posted for hearing on 1. 10. 94 at 10.30 A. M. in the Commission Office. A-4, Unit-5 Bhubaneswar before the Division Bench consisting of **Sri Justice, P. K. Mohanti** and **Dr. Gangadhar Sahu,** Member.

Your are directed to produce your witnesses and relevant records in support of your representation on the said date time and venue.

Sd/-
(Administrative Office)
15. 9. 94

महासभा की ओर से श्री पी० सी० मेहन्ता जी को 'उत्कल कूर्मि क्षत्रिय समाज' की ओर से कमीशन के सम्मुख जिस खंडपीठ में न्यायमूर्ति श्री पी० के० मोहन्ती तथा न्यायमूर्ति श्री गंगाधर साहू सदस्य हैं, 1-10-94 को 10. 30 प्रातः पेश होना था, जो पत्र लिखा गया वह नीचे उद्धृत किया गया है और इसकी एक प्रति इस लेखक को भी सूचनार्थ भेजी गई है।

अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा

मुख्यालय:
118/4 साइट न० 1, किदवई नगर
कानपुर - 208011

No. K/KM/15/94 22- 9- 1994

My dear **Mohanta ji,**

Today, I have received a registered letter from the **commission for Backward Classes of Govt. of Orissa** for appearance before the bench commision of **Justice Shri P. K. Mohant and Dr. Ganga Dhar Sahu** on 1- 10-94 at 10.30 a.m. at A-4, Unit-V, Bhubaneshwar. Copy of the letter is enclosed for ready reference. Please make it convenient to arrange a meeting of eminent intellectuals of the community before above date preferably in the afternoon of 30-9-94 before presenting our case to the bench under a line of intimation to me. I shall be reaching Bhubaneshwar on 30-9-94 by Puri Express to educe my evidence on the date fixed.

With regards,

Enc. As above
Shri P. C Mohanta
VI- M-106, Sheilshree Nagar,
Bhubaneshwar.

Yours Sincerely
J P Kanaujia
Secretary General

Copy forwarded to **Shri Dr. Dilawar Singh Jaiswar** for information.

गौतम बुद्ध तथा अन्य धर्मप्रवर्तकों में मूल अन्तर

अन्य धर्म प्रर्वतकों से बुद्ध इसलिए मूल रूप से भिन्न थे कि उन्होंने बारंबार कहा कि वह न तो ईश्वर हैं, न उसके संदेशवाहक और न उसके परिवार के सदस्य अपितु वे एक सामान्य व्यक्ति हैं और जो वह कह रहे हैं वह ईश्वरीय संदेश नही वल्कि उनके चिंतन से प्राप्त निष्कर्ष हैं। उन्होंने यह भी कहा कि वह जो कुछ कह रहें हैं वह अंतिम नही है बल्कि आगे आने वाले बुद्ध (बुद्ध-चिंतक को कहते हैं, गौतम स्वयं 23 वें बुद्ध थे) इसे आगे बढ़ाएंगे।

प्रत्येक धर्म के पास ईश्वर द्वारा सृष्टि-सृजन की एक कथा है। ईसाई धर्म के अनुसार ईश्वर ने पृथ्वी छः दिनों में रची और सातवें दिन विश्राम किया (विश्राम का दिन रविवार था)। इसी प्रकार इस्लाम धर्म के अनुसार शैतान के बहकावे पर विषवृक्ष गंदुम खा लेने पर आदम और हब्बा को इस दुनियाई जिन्दगी का दण्ड मिला। आदम-हब्बा की औलादों से धरती बसी। किन्तु महात्मा बुद्ध ने अपने प्रवचनों में कहा कि जो लोग यह उम्मीद लगा कर दूर-दूर से मुझे सुनने आते हैं और उम्मीद करते हैं कि मैं उन्हें सृष्टि के सृजन की कोई कथा सुनाऊंगा, उन्हें निराश होना पड़ेगा। इसीलिए कि सृष्टि का एक दो या सप्ताह में निर्माण नही हुआ है अपितु यह एक लम्बे विकास का परिणाम है। पवन, आग्नि, जल, मृत्तका चार व्यक्त एवं आकाश रूपी एक अव्यक्त इन पंच महाभूतों से विश्व विनिर्मित हुआ है, यह सभी पदार्थ अपने से जड़ और निर्जीव हैं। सृष्टि-रचना सम्बन्धी महात्मा बुद्ध के कथन की पुष्टि विज्ञानवेत्ताओं की खोजों से भी होती है।

अध्याय - 12

बिहार के कुरमी द्रविड़ या आर्य, यदि आर्य तो किस वर्ण के ?

पटना के गांधी मैदान में सम्पन्न महासभा के 37 वें अधिवेशन, की कार्यवाही पर गम्भीरता से विचार करें तो लगता है कि बिहार के कुरमी बन्धुओं में बड़ा द्वन्द मचा हुआ है। इस प्रश्न को लेकर कि क्या हमारे पूर्वज द्रविड़ थे या आर्य, यदि आर्य थे तो वर्णाश्रम-विभाजन व्यवस्था के अन्तर्गत किस वर्ण के थे? यदि झारखंड क्षेत्र के प्राचीन कुड़मि लोगों का इतिहास जाना जाये तो उन्हें आर्यों से पूर्व उस क्षेत्र में बसे लोग कहा जाता है, उन्हें द्रविड़ भी कहा गया है। श्री केदार महतो ने अपनी पुस्तक "झारखंड़ में कुरमी" में कुछ इसी प्रकार का मन्तव्य प्रगट किया है। केदार महतो का मानना है कि सभी कुर्मी अथवा कुड़मि द्रविड़ मूल के हैं। आर्य जिन्होंने अफगानिस्तान के रास्ते भारत में प्रवेश किया असभ्य बर्बर और खूँखार थे और अपेक्षाकृत यहाँ के द्रविड़ों से बलिष्ठ थे। इन आर्यों ने द्रविणों को जंगलों में खदेड़ दिया और उनकी बस्तियों को लूटा, कत्ले-आम किया, यहाँ के मूल निवासी अपने बचाव के लिये घने से घने जंगलों में प्रवेश करते गये और इस प्रकार आदिम जातियों के मध्य बस गये और उनकी संस्कृति अपनाते गये। इसके विपरीत जो लोग घोर जंगलों में नहीं जा पाये वे ब्राह्मणवादी संस्कृति से प्रभावित क्षेत्रों में बस गये और ब्राह्मणवादी बन गये।

'अखिल भारतीय मूल निवासी कूर्मि सभा' के संगठन मंत्री, श्री श्याम प्रीत सिंह के अनुसार; अक्षरशः उन्हीं के शब्दों में :-

1. भारतवर्ष का अलिखित इतिहास मुट्ठी भर खानाबदोश आर्यों के आगमन से शुरु हुआ। जिन्होंने सिन्धु घाटी सभ्यता को बर्बाद किया। बाद में जो कुछ हुआ वह देवासुर संग्राम के नाम से जाना जाता है। असुर, अनार्य, दानव, द्रविड़ जो कहें आप, आज की पिछड़ी दलित जातियाँ उन्हीं की सन्तान हैं।

2. यहाँ के मूल निवासियों एवं बाहर से आये आर्यों एवं अनेक अन्य जातियों (शक, सिथियन, हूण, मंगोलियन इत्यादि) के बीच कितनी लड़ाइयाँ हुईं, कितनी शादी-विवाह हुये, वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राह्मण शब्द का प्रयोग उपनिषद् काल में शुरू हुआ, जब ब्रह्म विद्या का विकास हुआ। ऋग्वेद के मन्त्रों में न आर्य शब्द मिलेगा न ब्राह्मण। शिवजी किरात जाति के थे। काली एक अवतार में भिलनी थी। कृष्ण यादव थे। राम कूर्मि थे। इन बातों के अनेक प्रमाण हैं। एक मिश्रित सभ्यता बनी जिसमें क्षत्रिय ब्राह्मण बने, ब्राह्मण क्षत्रिय बने। असुर राज ययाति की शादी शुक्राचार्य की बेटी देवयानी से हुई। यह क्षत्रिय-ब्राह्मण शादी की एक मिसाल हैं। असुरराज ययाति की दूसरी पत्नी असुर कन्या शर्मिष्ठा भी थी। उनके पाँच पुत्र हुये। तुर्वसु और यदु देवयानी के गर्भ से पैदा हुये। पुरू सबसे छोटे थे। ययाति ने उन्हीं को राजा बनाया। उन्हीं के वंश में आगे चलकर कुरु हुये। हम लोग (बिहार व उत्तरप्रदेश के कुरमी) अपने को कुरु के वंश का मानते हैं। यदु के वंशज यादव कहलाये।

3. कुन्ती की शादी पाण्डु से हुई। यह पहला यादव-कूर्मि विवाह हुआ। कूर्मि-यादव दोनों एक वंश अर्थात्, असुरराज याति के वंश के हैं। महाभारत काल में जाति-प्रथा न थी। कूर्मि, यादव, कोयरी, लोधा यही लोग आदि अथवा प्राचीन क्षत्रिय थे। क्षत्रिय शब्द का अर्थ गलत लगाया जाता है। अक्सर लोग राजपूत समझ लेते हैं। वे तो ईसा बाद छठी शताब्दी में भारत आये। उन्होंने कूर्मि राजाओं से राज्य छीनें।

4. वैदिक काल में ब्राह्मणों की तो कोई हस्ती नहीं थी। सभी ऋषि ब्राह्मण कुल के थे भी नहीं। व्यास, वशिष्ठ, वाल्मीकि कोई भी ब्राह्मण नहीं थे। ब्राह्मण में रावण और परशुराम दो ही शक्तिशाली हुये। राम ने दोनों को नष्ट किया था।

5. मेरे लिये हिन्दू और आर्य दोनों शब्द टेबू (Taboo) हैं।

डब्ल्यू० क्रूक्स ने लिखा है-"कर्नल डाल्टेन बिहार के कुर्मियों को प्राचीन आर्य औपनिवेशकों में से समझते हैं जो कि सांवले, मध्यम कद के, सुडौल और अच्छे रूपवान होते हैं।"

बिहार के कुरमियों में से कुछ उपशाखाओं की मान्यता ऐसी है :-

(क) अवधिया : मूल स्थान् 'अवध' है और वंश सम्बन्ध 'सूर्य वंश' है।

(ख) घमैला : मराठों की एक विशेष शाखा, महाराष्ट्र से चलकर बिहार आ बसे।
(ग) कोचैसा : राजस्थान के जयपुर राज्य के 'कोचैस-गाँव, से विस्थापित होकर आये।
(घ) जयसवार : राजा ययाति की रानी 'देवयानी' की संतान कहे जाते थे।
(ङ) समसवार : ये लोग महाराष्ट्र के किसी 'समसपुर' नामक स्थान में निवास करते थे।
(च) पटनवार : वे गुजरात के 'पटनपुर' से मराठी सेना के साथ बिहार चौथ वसूल करने आये थे।
(छ) रमैया : राम के वंशज या रामभक्ति में अधिक अनुराग रखने के कारण वे 'रमैया' कहलाये।
(ज) तैलंग : इस शाखा के लोग दक्षिण भारत के 'तिलगांना' से आये थे। अत: 'तैलंग' कहलाये।
(झ) चन्देल : इनका सम्बन्ध उत्तर भारत के विशाल चन्देल राज्य से था।

श्री सिद्धेश्वर अपनी पुस्तक 'बिहार के कुर्मी' खण्ड 1, प्रथम संस्करण मई 1993 के पृष्ठ 15 पर लिखते हैं-" इस प्रकार कुर्मी जाति की शाखावार उपर्युक्त उत्पत्ति पर एक नज़र डालने से ऐसा प्रतीत होता है कि सभी शाखायें कमोवेश मराठा साम्राज्य के ही अंग रहे हैं। मराठा साम्राज्य के पतन के बाद वे भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बसने को विवश हो गये।"

उत्तर वैदिक काल में विद्या और ज्ञान के क्षेत्र में क्षत्रिय राजाओं का प्रमुख योगदान रहा है। वे विद्या के उपासक और संरक्षक थे। इनमें विदेह राजा जनक सर्वाधिक प्रसिद्ध थे। विश्व के प्राचीनतम क्षत्रिय राजा कूर्मि क्षत्रिय थे, उनकी छत्रछाया में कृषि क्रान्ति के साथ ही कूर्मि जाति ने प्रथम बार सामाजिकता का बीजारोपण करके मानवीय सभ्यता और ज्ञान की नींव रखी जिस पर बाद में अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों की आधार शिला रखी गई। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में जो सभ्यता-संस्कृति थी वह उसी में से एक थी। उत्तर वैदिक काल में राज्यारोहण के समय राजा से निवेदन किया जाता था-"तुम्हें यह राष्ट्र दिया जाता है-कृषि के लिये, जनता के क्षेम के लिये और सर्वविधि पोषणा तथा उन्नति के लिये" (यजुर्वेद 9/22)। उत्तर वैदिक काल में अनेक पेशों का उल्लेख मिलता है। ये पेशे मुख्यत: कृषि से ही उद्भूत हुये हैं। इसीलिये कृषक को मानवीय सभ्यता का जनक भी कहा जाता है। और ये आदि कृषक ही कूर्मि जाति के पूर्वज थे। बाद में आवश्यकता पड़ने पर श्रम के आधार पर आर्यों ने अपने आपको संगठित किया। इस प्रकार वर्णाश्रम-व्यवस्था का जन्म हुआ जो कि प्रारम्भ में श्रम (कर्म) पर आधारित थी पर बाद में स्वार्थी तत्त्वों ने उसे जन्म-जात कर दिया। वह व्यवस्था बदलते-बदलते वर्तमान में भी विद्यमान है।

अनियमित रूप से नाम में परिवर्तन

स्व० ध्रुव नारायण सिंह वर्मा ने अपनी लघु पुस्तक 'महासभा के बदलते नाम' के पृष्ठ 6 में उपर्युक्त लिखा है :-

"छपरा-महासभा (दिसम्बर 1937 ई०) में संशोधित नियमावली के नियम 54 में कहा गया है कि "इन नियमों में आवश्यक सुधार तथा संशोधन की इस सरल व्यवस्था के बावजूद महासभा के इतिहास में दो घटनाएँ ऐसी मिलती हैं, जिनमें नियम-संशोधन की प्रक्रिया का पालन किये बगैर महासभा के नाम में अनियमित रूप से परिवर्तन करने के प्रयास किए गए, जो कि निम्नलिखित हैं :-

1. झारग्राम, जिला मिदनापुर (बंगाल) में 7, 8, 9 अप्रैल 1939 को हुए महासभा के 22 वें अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए अध्यक्ष बाबू दासू सिंह, एडवोकेट-उच्च न्यायालय पटना ने महासभा और जाति के नाम से शब्द 'कुर्मी' को निकालने का अनियमित प्रयास किया, आपने अपने पूरे अध्यक्षीय भाषण में केवल 'कुर्मी क्षत्रिय समुदाय' शब्दों का प्रयोग एक बार किया, जबकि शब्दों 'क्षत्रिय महासभा' का चार बार किया। जाति का उल्लेख करते हुए आपने केवल दो बार 'कूर्मी क्षत्रिय समुदाय' का प्रयोग किया, जबकि बीस बार शब्द 'क्षत्रिय समुदाय' का और छ: बार शब्द 'क्षत्रिय बन्धु' का। कुल भाषण में तीन बार 'कुर्मी' शब्द का प्रयोग किया। या 'कुर्मी ' शब्द का शायद आपने प्रयोग किया ही न हो और "रजत जयन्ती स्मृति ग्रन्थ" के सम्पादक, श्री गुप्तनाथ सिंह ने इसे अपनी तरफ से जोड़ दिया हो।

2. पटना (बिहार) में 30 अप्रैल और 1, 2 और 3 मई 1971 को महासभा का 30 वाँ अधिवेशन, श्री डाह्या भाई वल्लभ भाई पटेल, सांसद (गुजरात) की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन की स्वागत समिति ने प्रतिनिधियों को आमन्त्रण-पत्र भेजे गये और पर्चे और पोस्टरों द्वारा जो प्रचार किया, उसमें महासभा के नाम से शब्द 'क्षत्रिय' को हटा दिया था। स्वागत समिति में हुए विवाद की चर्चा करते हुए प्रो० रामवृक्षावन सिंह (पटना) ने अपने 'शेर बनें, शेर की खाल मत ओढ़ें' शीर्षक लेख में कहा कि "जब पटने में महासभा का 30 वाँ महाधिवेशन हुआ, तो एक बार फिर बड़े जोर से यह विवाद चलता रहा और दोनों पक्ष अपने-अपने तर्कों पर अड़े रहे। अन्तत: 'क्षत्रिय' शब्द नहीं ही जुड़ा।" ('कूर्मि क्षत्रिय जागरण',

कन्नौज, फरवरी 1982, 4 पृष्ठ)

पाठकगण जानते हैं कि झालदा अधिवेशन (सन् 1980) में महासभा के नाम से 'क्षत्रिय' शब्द हटाया गया जो कि रायपुर अधिवेशन (सन् 1981) में तुरन्त फिर जोड़ दिया गया। बिहार के बन्धुओं ने पटना अधिवेशन (1991 ई०) में फिर क्षत्रिय शब्द हटा दिया और 'कूर्मि' शब्द को 'कुर्मी' कर दिया, पर महासभा का कार्यकलाप 'अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा' नाम से चल रहा है और उसकी मुख्य पत्रिका भी पूर्वत: 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' नाम से निरन्तर निकल रही है। **यह काटना-जोड़ना कब तक चलता रहेगा ?**

अत: बिहार के कूर्मि क्षत्रिय बन्धुओं को यह जान लेना जरूरी है कि महासभा का नाम उसकी नियमावली के नियम 1 का अभिन्न अंग है। और उसमें से किसी शब्द को नियम-संशोधन विधि के अनुपालन से ही हटाया जा सकता है अन्यथा गलत है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार को छोड़कर अन्य हिन्दी भाषी क्षेत्रों में बसे कुरमी में उनके बाप-दादों से यह मान्यता चली आ रही है कि वे क्षत्रिय वर्ण के हैं, पर आज लगता है कि बिहार के कुरमी इस बिन्दु पर एकमत नहीं हैं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ जनपदों को छोड़कर शेष प्रदेश में तथा मध्य प्रदेशों में कुरमियों को अपने पूर्वजों से उनका कभी बौद्ध होने के संस्मरण या अन्य कोई बातें नहीं बतायी गयी। अत: वे अपने को सनातन आर्य धर्म से जुड़े चले आये मानते हैं जबकि बिहार व पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुरमियों को पूर्ण विश्वास है कि उनके पूर्वजों में से अनेक अतीत में बौद्ध-धर्मावलम्बी थे।

बहरलाल इस विषय पर या मुद्दे पर बिहार के न्यायालयों ने क्या-क्या फैसले दिये हैं। इस संदर्भ में काफ़ी आधुनिक फैसला सन् 1981 का अंग्रेजी मूल में ही उद्धृत किया जा रहा है :-

In the Court of Shri Surendra Kumar Sinha,
Subordinate Judge, Chapra (Bihar)
Title Suit No. 98 of 1981
Mosammat Etwaria And Others
-Plaintiffs
Versus
Ram Chandra Mahato
-Defendants

Judgement.......................... **He** contended that **Brij Kumar** and the parties to the suit are **'Sudras'** and so the provision of Section 480 of **Hindu Law on adoption** are not applicable to the **Sudras**, and as such there is no bar in adoption of sister's son. He referred to **A.I.R., Bombay 1932** and **A.I.R. 1955** and **Rajasthan 1965** in reply to excerpts from pages 88 to 91 of the Chapter 9 of the **Manu-Smrity** and the pages 77, 223 and 230. **The history of Kurmis of Saran Gazetteer and on the basis of which he laid emphasis that Kurmis are not Sudras and therefore the provision of sister's son can not be adopted. He also referred to page 91 of Saran Gazette and on the basis of which he submitted that the Kurmis are not Sudras and further they are Cultivators as a class.**

The learned **Counsel** for the defendants further referred to the **Provisions of Section 480** (3) and according to this section, sister's son can not be adopted, because the boy to be adopted must be the son of a mother, with whom the adopting caste can legally marry. But the **Provisions**, however, do not apply to Sudras.......................... In support of this contention he cited **A.I.R. 1938, Bombay**, page 132, in which this was the point of determination, whether or not goldsmith was Sudras. **There is no specific mention about Kurmis in this decision and the learned Counsel for the plaintiffs ought to have shown a decision of the Hon'ble High Court or Supreme Court that "Kurmis" have been held to be "Sudras" ? Therefore, in absence of any specific ruling on this point I am not in a position to hold that "Kurmis" are "Sudras"** and therefore U/S 480 (3) of Hindu Law .... son could be adopted. **In my view "Kurmis" are not "Sudras" and as such ....".**

Sd/-

Subordinate Judge
Chapra (Bihar)

उपरोक्त न्यायालय के फैसले में सारन गज़ट का उल्लेख भी अपने प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने अपने पक्ष, में किया है। अत: पाठकगणों के सूचनार्थ अंग्रेजी भाषा में उसका सम्बंधित अंश ज्यों का त्यों नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

Bihar District Gazetteer of Saran, by P.C. Ray Chaudhary, Special Officer, **Gazetteer,** revision section, **Revenue Department, Bihar, Patna 1960.**

The first district Gazetteer of Saran was edited by Mr. L.S. S.O. Malley I.C.S. and was published in 1908. The book was revised by Mr. A. P. Middleton I.C.S., and reprinted in 1930. This rewritten District Gazetteer of SARAN in the fifth states, under heading "KOERIS AND KURMIS"- "The Koeris and Kurmis are essentially cultivators and as a class are industrious and peaceful. They form the back bone of the agricultural economy of the district."

कुर्मी-कुशवाहा एकता

बिहार में कुर्मी-कुशवाहा एकीकरण हेतु भ्रातत्वभाव तेज़ी से बढ़ रहा है, उसके उल्लेख करने के प्रलोभन से नहीं बचा जा रहा है। कुर्मी और कुशवाहा (कोयरी) जैसा उपरोक्त "सारन जनपद गज़ेटियर" भी बतलाता है और अन्य बहुत प्रमाण हैं उससे सत्य ज्ञापित होता है कि बिहार प्रदेश में दोनों की संस्कृति, रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, रीति-रिवाज, स्थानान्तर के भेद को छोड़कर सभी एक समान है। इधर दोनों जातियों के प्रबुद्ध जन प्रयत्नरत हैं और रक्षाबन्धन के पुण्य त्यौहार पर शीघ्र मात्र राखी, बाँधने से इस "लव-कुश" दूरी के सारे बन्धन शिथिल कर निकट भविष्य में दोनों जातियों का एकीकरण सम्भव है। उत्तर प्रदेश में कुर्मी और कुशवाहों के मध्य इस प्रकार का कोई प्रयास न अब तक देखने में आया और न सुनने में। इधर एक-दो कहावतें जरुर सुनने को मिली हैं, जिससे इस विषय को गूढ़ता से समझने की जिज्ञासा बढ़ी। कहावते हैं-

(1) **"सूत न कपास, कोरी से लट्ठम-लट्ठा"**

अथवा

(2) **"सूत न कपास, कोरी से लठामार"**

दोनों कहावतें समानार्थी हैं। अर्थ है कि जिस प्रकार बड़े लोग 'सूत कपास' न रहने पर भी कोरी (हिन्दू बुनकर) से झगड़ा करने लगते हैं।

"भार्गव-आदर्श हिन्दी शब्दकोश" के अनुसार 'कोरी' जाति हिन्दू बुनकर या जुलाहे की होती है और इसीलिये उपरोक्त मुहावरों में "सूत कपास" तथा "कोरी" शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसी शब्दकोश में एक अन्य शब्द "कोयर" दिया गया है, जिसके अर्थ किये हैं- "शाक-भाजी", "तरकारी" तथा "पशुओं को खिलाने का हरा चारा।" इसी 'कोयर' शब्द से 'कोयरी' बना है, जो कि एक जाति विशेष का नाम हैं। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि कोयरी जाति के लोगों का व्यवसाय "शाक-भाजी", 'तरकारी' आदि उपजाने से रहा है, जैसे कोरी जाति का पारम्परिक व्यवसाय कपास से सूत तथा उससे कपड़ा बुनना रहा है। अक्सर लोग 'कोरी' और 'कोयरी' जाति के लोगों को समझने में भूल कर बैठते है, अत: यह स्पष्ट जान लेना चाहिये कि 'कोरी' और 'कोयरी' हिन्दुओं की अलग-अलग जातियाँ हैं और जातिगत् इनका जो पारिवारिक व्यवसाय अथवा कर्म रहा है वह ऊपर विस्तार से दिया जा चुका है।

आरक्षण किसका और क्यों ? (प्रो० डा० रामनाथ, साभार उद्धृत "सद्भावदूत" कानपुर 23मार्च 1993 के अंक से)

एम० एस-सी०, पी० एच-डी०, एम० डी०, में प्रतियोगिता द्वारा प्रवेश की माँग सवर्ण विद्यार्थी क्यों कर रहे हैं ? लखनऊ विश्वविद्यालय की एम० डी० की सवर्ण डिग्री नकल के कारण अमान्य करार दे दी गई है। कृषि विश्वविद्यालय में 600 अँक के पी० ए० टी० टेस्ट में सवर्णों के लगभग 50 लड़के भर्ती किये गए जिनके नम्बर 90 से 100 के बीच में थे जबकि अनुसूचित जाति का सबसे कम मेरिट का छात्र 180 नम्बर पर भर्ती हुआ। अब इन्हीं 50 विद्यार्थियों का 'ए' ग्रेड आ रहा है। इंजीनियरिंग टेस्ट में जिन चार दलित छात्रों को फेल कर दिया गया था इलाहाबाद हाईकोर्ट ने उन्हीं की कम्प्यूटर उत्तर शीट की जब जाँच कराई तो उनके सवर्ण छात्रों से भी अधिक नम्बर निकले तथा उन्हें प्रवेश देना पड़ा। सवर्णों की हेल्थ बनाने के लिये करोड़ों रूपयों की लागत से स्टेडियम बनवाकर

करोड़ों रुपया डकारा गया। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिता में दो दलित लड़कियों (पी० टी० उषा तथा वलम्मा) ने स्वर्णपदक लेकर देश की इज्जत बचाई। यदि सवर्ण दक्ष योग्य और सक्षम हैं तो उन्हें कोई पदक क्यों नहीं मिला ?

मीठा-मीठा गप कडुआ-कडुआ थू

यदि जाति के आधार पर आरक्षण कर देने से प्रशासन का स्तर गिर जायेगा तो क्या गरीबी के आधार पर द्ररिद्र सवर्णों को भर्ती करने में प्रशासन का स्तर नहीं गिरेगा ? जब महिलाओं के लिये 30 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा हुई तो सवर्णों ने इसकी तारीफ की। क्या इससे प्रशासन का स्तर नहीं गिरेगा ? उनकी चुप्पी और खुशी का राज यह है कि इस आरक्षण में इन्हीं की महिलाएँ भर्ती हो पायेगी, क्योंकि बहुजन समाज में शिक्षित महिलाओं की भारी कमी है। मन्दिरों के मठाधीशों के पदों को आर्थिक योग्यता के आधार पर भरने का ब्राह्मण क्यों विरोध करते हैं ?

आरक्षण से प्रशासन की कार्य कुशलता बढ़ती है

यदि तामिलनाडु और कर्नाटक में उत्तर भारत की तरह ब्राह्मण, बनियां और लाला (कायस्थ) का 88 प्रतिशत नौकरियों पर कब्जा होता तो यहाँ भी घूसखोरी, गबन, निठल्लापन, हरामखोरी और लूटमार का आलम होता। इन राज्यों में दलितों का 20 प्रतिशत तथा पिछड़ों का 50 प्रतिशत आरक्षण है। इसीलिये वहाँ अमन चैन हैं। उच्चकोटि की शासन-प्रशासन व्यवस्था है जिस पर पूरे देश को गर्व है। यहाँ प्रशासन के लोग समाज के निर्बल और बहुसंख्यक समाज के प्रति निष्ठावान है तथा उनके दिल में आम जनता के लिये सहानुभूति और हमदर्दी है।

क्रान्तिकारियों और बुद्धिजीवियों की हत्या

प्रो० डा० रामनाथ की यह भी शिकायत है कि यहाँ क्रान्तिकारियों की कलियां खिलने के पहले ही मसल दी गई। सरदार भगतसिंह जी पंजाब की कम्बोज नामक पिछड़ी जाति के थे, उनको गाँधी जी आदि ने आराम से फांसी लग जाने दी। इरविन संमझोते में यदि एक शर्त और जोड़ दी जाती तो सरदार भगतसिंह बच जाते। पर गांधी जी ने लोगों के जोर देने पर भी ऐसा नहीं किया और अंग्रेजों ने बड़ी आसानी से भगतसिंह को फांसी पर लटका दिया।

क्या धर्म परिवर्तन योग्यता और दक्षता को बढ़ाता है ?

प्रोफेसर रामनाथ स्वयं दलित जाति में जन्मे है बड़े कष्टों से जीवन में कुछ बने हैं, उनके अनुभव और उद्गार उन्हीं के शब्दों में साभार प्रस्तुत है :-

(प्रो० (डा०) रामनाथ, "सद्भावदूत", कानपुर, अंक 23 मार्च 1993 से)

क्या धर्म परिवर्तन करते ही उस आदमी में योग्यता और दक्षता आ जाती है ? नब्बे प्रतिशत दलितों से धर्मान्तरित ईसाई और सवर्णों के मुकाबले आगे बढ़ चले हैं। जो दलित जूतों से रौंदे जाते हैं, उनका धर्मान्तरण होते ही वे खान साहब, सरदार जी तथा जान्सन साहब बन जाते हैं। धर्मान्तरित बौद्धों के हौंसले देखने हों तो महाराष्ट्र चले जाइये। मेरे गाँव का किस्सा है। जिन चमारों, धोबियों और धानुकों को ठाकुर लोग इन्सान नहीं समझते थे, उन्होंने जब सिख बनकर ड्रेस पहनी तथा तलवार धारण की तो ठाकुर साहब अब गाँव छोड़ने वाले हैं तथा पुलिस वालें इन्हीं सरदारों को झुककर सलाम करते हैं। सन् 1956 में मैं एक पंड़ित जी के ढ़ाबे में खाना खाता था। हम अछूतों को चौके के बाहर तथा मुस्लिम भाइयों को चौके के अंदर खाना खिलाया जाता था। अब मैं समझ पाया हूँ कि पंड़ित जी हमको धर्म परिवर्तन के लिये प्रेरित कर रहे थे।

लोग धनी किस प्रकार बने ? इसके बारे में प्रो० (डा०) रामनाथ जी का कहना है

बिना दूसरों का धन चुराए कोई धनी नहीं बन सकता। ब्रिटेन का प्रधानमंत्री जब कुर्सी से हटता है तो अपना बिस्तर और अटैची सर पर लादकर किसी होटल में शरण लेता है पर भारतवर्ष में यदि प्रधानमंत्री कुर्सी से हटने पर जिन्दा रहा तो जीवनान्त अनेक राजसी सुख-सुविधायें पाता रहता है और यदि वह प्रधानमंत्री पद पर आसीन मर भी जाता है तो दिल्ली के प्रसिद्ध राजघाट परिसर में कई एकड़ भूमि घेर कर इसकी चिरस्थायी समाधि बना दी हाती है, उसकी देखभाल की जाती है, सब सरकारी खर्च पर। ये बड़े भूखंड वे उस दिल्ली में सहज रूप से पा जाते है, जहाँ की पाक-जमीन के लिये अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह 'जफर' अपने दिल में एक ख्वाहिश का अफसोस पाले इस दुनिया से रूखसत हुआ कि-"दो गज़ जमीन भी न मिली, कूये यार में"। भारत में हाई ब्लड प्रेशर और ओवर वेट की बीमारी सवर्णों में ही मिलेगी। यह मोटापा और ब्लड प्रेशर हमारा खून चूसने के कारण हुआ है। टेलीविज़न में मोटी महिलाओं को झाडू लगाने की कसरत बताई गई है। ये महल अटारी और बैंक बैलेंस हमें लूट कर बनाये गये हैं लेकिन लुटेरे लूटते समय भाई-भाई होते हैं तथा लूट के माल के बंटवारे के समय एक दूसरे के दुश्मन बन जाते

हैं। आरक्षण का सवाल आया तो ये सब लुटेरे एक सुर में बोलने लगे।

गुजरात राज्य ने देश में प्रथम प्रदेश होने का श्रेय प्राप्त किया जहाँ पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों को शिक्षा संस्थाओं में भी 27 प्रतिशत आरक्षण मिला –

गुजरात प्रदेश में अब तक अन्य पिछड़े वर्गों के उम्मीदवारों को सरकारी नौकरियों में 10 प्रतिशत आरक्षण का लाभ और इतना ही शैक्षिक संस्थानों में विद्यार्थियों को प्रवेश पाने हेतु उपलब्ध था जोकि 1 अप्रैल 1978 से जनता मोर्चा सरकार द्वारा लागू किया गया था।

गुजरात के तत्कालीन मुख्य मन्त्री, श्री चिमनभाई पटेल ने 30 जनवरी 1994 को घोषणा की कि उपर्युक्त आरक्षण का प्रतिशत 10 से बढ़ाकर 27 प्रतिशत किया जा रहा है, जो सरकारी नौकरियों के लिये तथा शैक्षिक संस्थानों के प्रवेश प्राप्त करने हेतु और स्नातक उत्तरोत्तर शैक्षिक विषयों के लिए भी उपलब्ध होगा, पर इसका क्रियान्वयन 1 मई 1994 से अर्थात् गुजरात प्रदेश के अगले स्थापना दिवस से लागू होगा। इस प्रकार गुजरात प्रदेश ने अब देश में प्रथम राज्य होने का श्रेय प्राप्त किया, जहाँ 27 प्रतिशत आरक्षण सरकारी नौकरी के अतिरिक्ति शिक्षा संस्थानों में स्नातक उत्तरोत्तर विषयों के लिये प्रवेश पाने हेतु उपलब्ध अन्य पिछड़े वर्गों के प्रत्याशियों के लिये भी कराया गया है, जबकि मंडल कमीशन की सिफारिशें केवल सरकारी नौकरियों में आरक्षण देने की थी।

गुजरात सरकार की यह घोषणा प्रदेश कांग्रेस कमेटी द्वारा अन्य पिछड़े वर्गों की जातियों की अपार रैली आयोजित करके, उनके सम्मुख प्रदेश कांग्रेस के नेताओं की उपस्थिति में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चिमनभाई पटेल ने की थी। उच्च वर्ग के विद्यार्थियों की आहत भावनाओं को देखते हुये मुख्यमंत्री जी ने घोषणा की कि शैक्षिक संस्थाओं में विशेष करके इंजीनियरिंग तथा डाक्टरी प्रशिक्षण विषयों में इतनी सीटें बढ़ायी जा रही हैं जिससे एक वर्ष तक अतिरिक्त 17 प्रतिशत आरक्षित सीटों के कारण उनको पूर्ववत् सीटें मिलती रहें। उपलब्ध फैसले के मद्दे नज़र एक कैबनेट उपसमिति बनायी गई है जो कि "क्रीमी लेयर" के अन्तर्गत कौन-कौन सी श्रेणियों के लोग आते हैं जिन्हें आरक्षण के लाभों के हकदार न होने के कारण उसकी परिधि से बाहर रखा जायेगा।

"जाति तोड़ो-समाज जोड़ो" समय की पुकार

महाराष्ट्र के मराठवाड़ा विश्वविद्यालय का नामकरण डा० भीमराव अम्बेडकर के नाम पर रखने का प्रस्ताव सन् 1978 में महाराष्ट्र विधानसभा एवं महाराष्ट्र विधान परिषद् ने सर्व सम्मति से पारित किया था। कांग्रेस सरकार ने तुरन्त घोषणा की थी कि औरंगाबाद स्थित मराठवाड़ा विश्वविद्यालय का नाम बदल कर बाबा साहब के नाम पर रख दिया जायेगा। तब इसके खिलाफ़ महाराष्ट्र में पद्म विभूषण गोविन्द भाई सर्राफ ने आन्दोलन किया जो कि वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हा राव के निकट सहयोगी है। इसके बाद यह उग्र आन्दोलन देश भर में फैल गया। दलितों और सवर्णों के संघर्ष ने भीषण रूप धारण कर लिया। लगभग पाँच हजार मकान जलाकर राख कर दिये गये। एक लाख लोग बेघर हुए। उस समय क्षति का अनुमान 60 करोड़ रुपया लगाया गया। इसके बाद यह मसला खटाई में डाल दिया गया।

हाल ही में उत्तर प्रदेश में दलितों, पिछड़ों और मुसलमानों की विधान सभा चुनाव में विजय तथा उन्हें सरकार बनाने का मौका मिलने से इस मुर्दा आन्दोलन में फिर जान पड़ गई। दिसम्बर 93 में बंबई में 25 युवकों ने यह घोषणा कर दी कि यदि मराठवाड़ा विश्वविद्यालय का नाम न बदला गया तो वे आत्मदाह कर लेंगे। आत्मदाह की पहली घटना नवम्बर 93 में नदिड़ में हुई जहाँ दलित पैंथर नेता एवं छात्र नेता 24 वर्षीय गौतम वाघमारे ने जयभीम नगर में आत्मदाह किया। फिर 21 दिसम्बर 1993 को 18 वर्षीय छात्रा सुहासिनी पुंडलिक राव वसोड़ ने आत्मदाह कियां। और बुलढाणा जिला में 18 वर्षीय छात्रा प्रतिभा हरितयाडे ने विष पान कर इसी उददेश्य का नोट लिख कर आत्महत्या कर ली। तब श्री शरद पवार मुख्यमंत्री सचेत हुए और दिल्ली आकर प्रधानमंत्री की स्वीकृत लेकर औरंगाबाद में मराठावाड़ा विश्वविद्यालय का नाम डा० बाबा साहब अम्बेडकर मराठवाड़ा विद्यापीठ रखने की घोषणा की तथा सवर्ण हिन्दुओं में अहं की तुष्टि के लिये उन्होंने यह भी घोषणा की कि नदिड़ में स्वामी रामनन्द तीर्थ विश्वविद्यालय स्थापित किया जायेगा।

उक्त घोषणा के बाद ही मराठवाड़ा में जातिगत दंगे भड़क उठे। महाराष्ट्र भर में डा० अम्बेडकर की प्रतिमाओं का अपमान किया जाने लगा। शरद पंवार ने अपने राजनैतिक जीवन का सबसे बड़ा दाँव खेला है उपद्रवों के बीच पूर्व प्रधानमंत्री श्री वी० पी० सिंह और बहुजन समाज पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री कांशीराम ने पहली बार बम्बई में एक विशाल जनसभा को सम्बोधित किया। बम्बई के शिवाजी पार्क में "जाति तोड़ो-देश जोड़ो" रैली में बोलते हुये कांशीराम ने महाराष्ट्र के अम्बेडकर

वादियों की जमकर खिंचाई की है। कांशीराम ने अपने भाषण में हजारों सालों से चली आ रही अन्यायकारी जाति व्यवस्था को तोड़ने के लिये राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाने की जनता से अपील की कि इसी में इस समस्या का स्थायी उपचार निहित है।

बसपा अध्यक्ष ने कहा कि मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के नामांतर का विरोध इसलिये हो रहा है कि यहाँ के अम्बेडकरवादी नेताओं ने मराठा-कुनबी समाज सुधारक ज्योतिबा फुले और कोल्हापुर नरेश शाहू जी महाराज और बाबा अम्बेडकर की विचारधारा का अनुकरण करके स्वयं की शक्ति बनाने का कार्य नहीं किया। उन्होंने अम्बेडकरवादी संगठनों को कांग्रेस का जेबी संगठन बनाकर रखा। उन्होंने महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फूले, कोल्हापुर नरेश शाहू जी महाराज तथा डा० अम्बेडकर के अनुयायियों से अपील की कि वे अलग-अलग नहीं रहे यह एक वैचारिक धारा है। और इस विचारधारा से उभर रही ताकत से अन्य नेता घबरा गये हैं।

बहुजन समाज मारीशस से सबक ले

बम्बई से 4700 किलोमीटर दूर बसे मारीशस देश की कुल आबादी 11 लाख में 6 लाख भारतीय हैं। अंग्रेजों ने दसियों हज़ार दलित और पिछड़े वर्ग के बच्चों को बहकाकर लाकर मारीशस द्वीप में गन्ने की खेती करने के इरादे से बसाया था जिनकी आबादी अब 6 लाख हो गयी है। ये छः लाख तथाकथित हिन्दू मनुस्मृति और वर्ण व्यवस्था के हिन्दू नहीं हैं। ये भारतीय अपने को सतगुरु रविदास की सन्तान मानते हैं तथा अपना उपनाम रवि वेदी या रविदास लिखते हैं। इन 6 लाख भारतीयों में 3 लाख सत्तर हज़ार दलित हैं। बाकी यादव, कुर्मी, लोहार, बढ़ई, मुनिया आदि हैं। शेष 5 लाख में क्रियोल, ईसाई, मुस्लिम, फ्रान्सीसी और चीनी हैं। मारीशस को स्वतंत्र कराने वाले शिव सागर रामगुलाम रविवासी हैं। वे मारीशस के राष्ट्रपति तथा प्रथम प्रधानमन्त्री भी रहे हैं। मौजूदा प्रधानमंत्री अनिरूद्ध जगन्नाथ यादव समाज के हैं।" मारीशस की भारतीय मूल के लोगों की वर्तमान संतति मौजूदा सवर्ण हिन्दुओं से किसी माने में पीछे नहीं है।

भारतवर्ष में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों में गत 46 वर्षों में काफी जागृति आयी है और वे अपने संगठन को मजबूत करने में पूरा योगदान देने लगे हैं। अब देखना है कि पिछड़ा वर्ग जिसे संविधान में सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़ा कहा गया है। कब अपना कलंक धो पाता है, क्योंकि पिछड़ों को काटने छांटने एवं बांटने वाले अपनी कुल्हाड़ी में पिछड़े वृक्ष की ही लकड़ी काट कर बेंट डालते हैं और उन्हें काटते छाँटते एवं बाँटते हैं, जैसा कि उन्होंने मंडल आयोग की रिपोर्ट लागू करने से पूर्व ही 8 सितम्बर 1993 की सरकारी अधिसूचना से क्रीमी लेयर (उन्नत व सम्पन्न पिछड़े वर्ग) को काट, छाँट एवं बाँटकर अलग कर दिया, जिससे अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की भाँति उनके आरक्षण का कोटा पूरा न भरा जा सके और यह 15 प्रतिशत सवर्ण वर्ग के लोग 85 प्रतिशत लोगों का हिस्सा पूर्ववत् लूटते, हड़पते, खाते रहें एवं समाज के ठेकेदार बनकर राज्य सत्ता अपने हाथों में बनाये रखें। पिछड़े वर्ग के लोगों को संगठित होना चाहिये, राजनीति पर अपनी पकड़ मजबूत करें जिससे अनुशंसाओं को लागू करवा सकें, जिसमें क्रीमी लेयर जैसी अपात्रता का प्रावधान न्यायसंगत हो न कि एक हाथ से कुछ लाभ देकर दूसरे से उसे छीनना।

बहुजन समाज पार्टी के अध्यक्ष श्री कांशीराम का कथन, सवर्णों से कोई कटुता नहीं

बहुजन समाज पार्टी के अध्यक्ष एवं सांसद श्री कांशीराम का कथन है कि वह सवर्णों के खिलाफ नहीं हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि सवर्ण जातियों के प्रति उनके दिल में कोई ज़हर या कटुता नहीं है, बल्कि वे सामाजिक असमानता पर आधारित ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था को मिटाकर एक ऐसा समाज बनाना चाहते हैं जहाँ सभी जातियों और वर्गों के लोग बराबर की ऊँचाई पर खड़े हों। श्री काँशीराम ने यह विचार 11 दिसम्बर 1993 को प्रेस क्लब ऑफ इंडिया' दिल्ली द्वारा आयोजित प्रेस से मिलिये' कार्यक्रम में पत्रकारों से बातचीत में प्रकट किया। (नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली-12 दिसम्बर 1993)

जातिवाद और "बहुजन समाज पार्टी" के सवर्ण विरोधी नारों और रवैयों को लेकर पत्रकारों द्वारा पूछे गये सवालों का जवाब पूरे धैर्य के साथ देते हुये श्री कांशीराम ने कहा कि भारत की धरती पर सारे 'वाद' असफल हो गये, सिर्फ 'ब्राह्मणवाद' ही सफल हुआ। इसने इस देश में वर्तमान समाज-व्यवस्था स्थापित की। इसमें बहुजन समाज पार्टी के अध्यक्ष ने कहा कि मेरा उद्देश्य इस 'सोपानवादी समाज' को 'समानतावादी समाज' में बदलना है जिसमें सभी बराबर हों और कोई भी किसी के कंधे पर खड़ा न हो। आरक्षण के सम्बन्ध में बसपा की नीति के बारे में पूछने पर उन्होंने कहा कि हमारा उद्देश्य बहुजन समाज के लोगों को "सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सत्ता प्रदान करना है। मैं उन्हें आरक्षण पाने वाला नहीं बल्कि दूसरों

को आरक्षण प्रदान करने वाला बनाना चाहता हूँ। श्री कांशीराम के अनुसार-"आरक्षण एक बैसाखी है और पिछड़ा वर्ग बहुसंख्यक है, यदि बहुसंख्यक समुदाय बैसाखी के सहारे चलेगा, तो यह राष्ट्र के लिये नुकसानदेह होगा।" मेरे बहुजन समाज का एक ही वायदा है कि मैं उन्हें देश का शासक बना दूँगा। सरकार के भूमि सुधारों में मेरा विश्वास नहीं हैं, क्योंकि मैं पिछले 40 वर्षों से भूमि सुधारों की असलियत देख रहा हूँ।

श्री कांशीराम ने कहा कि जनता दल 'सामाजिक न्याय' का नारा देकर सत्ता पाना चाहता है जबकि बसपा का आधार सामाजिक अन्याय पर टिका है। क्योंकि बहुजन समाज पर होने वाले अत्याचार और उत्पीड़न ही इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ जागृति उत्पन्न कर रहे हैं और बसपा की ताकत बढ़ रही है। इसीलिये बहुजन समाज पार्टी का उद्देश्य सामाजिक न्याय नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन है। उन्होंने आगे कहा कि समाज की यथास्थिति बनाये रखने के लिये शासक वर्ग 'मनी, माफिया और मीडिया' का इस्तेमाल करता रहता है। मीडिया के प्रति अपने गिले-शिकवे रखते हुए भी बसपा नेता ने कहा कि लोकतांत्रिक समाज में मीडिया के महत्व और आवश्यकता से मुझे इंकार नहीं है।

बहुजन समाजपार्टी की महासचिव एवं सांसद मायावती द्वारा महात्मा गांधी पर आपत्तिजनक टिप्पणी

मायावती का कथन है कि गांधी जी ने भले ही देश की आजादी के लिये कुछ किया हो, लेकिन वे दलितों के सबसे बड़े शत्रु थे। उन्होंने कहा कि गांधी जी ने अछूतों के लिये हरिजन शब्द गढ़कर उनका अपमान ही किया अन्यथा तत्कालीन सवर्ण नेताओं -पं० जवाहरलाल नेहरू और पं० गोविन्द वल्लभ पंत ने अपने-अपने नामों के आगे हरिजन शब्द क्यों नहीं जोड़ा ? उनका सीधा सवाल है कि यदि दलित भगवान की संतान (हरिजन) हैं, तो क्या गांधी शैतान की औलाद थे। मायावती ने गांधी जी के विषय में और भी टिप्पणियां कीं।

इस संदर्भ में जनता दल-सांसद श्री रामविलास पासवान की पत्रिका 'न्याय चक्र' के प्रबंध संपादक कुंवरपाल सिंह का कथन है, "हो सकता है मायावती ने बात गलत तरीके से कही हो, लेकिन बात उसकी एकदम सही है।" दूसरी तरफ प्रसिद्ध लेखक और सामाजिक चिंतक, श्री यशपाल जैन मायावती के उपरोक्त बयान को निहायत भ्रामक और विकृत मानसिकता का प्रतीक मानते हैं। इसी प्रकार श्री काका कालेलकर के अनन्य मित्र और स्वंतत्रता सेनानी, श्री अवध बिहारी द्विवेजी ने बिलकुल विभिन्न ढंग से कहा, "हरिजनों को जो आज बोलने की स्वतंत्रता प्राप्त है वह मात्र गांधी जी की ही देन है। आज एक मायावती इस तरह की बात बोल रही हैं, कल हजारों मायावतियां इसी प्रकार की बातें कहेंगी।"

यह बात सच है कि जो बात अब मायावती ने कही है, वही बात श्री कांशीराम एक लम्बे अरसे से कह रहे थे। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि वे गांधी जी सम्बन्धी मायावती के उपरोक्त कथन से पूर्णत: सहमत हैं। वास्तव में उन्हीं के इशारे पर यह बात मायावती ने कही थी। श्री कांशीराम का कहना है कि वे काफी समय से "जाति तोड़ो, देश जोड़ो" आन्दोलन चला रहे थे पर इसको नाकामयाब करने के लिये लोग गांधी जी के नाम का एक ढाल की तरह प्रयोग कर रहे थे, जिसे हमने इन बयानों से जर्जर कर दिया है।

महात्मा गांधी में आस्था रखने वालों का कहना है कि गांधी का पूरा जीवन हरिजनों की सेवा-सुश्रूषा में बीता। वे उनकी बस्ती में जाकर उनके बीच रहे। उन्होंने 'हरिजन सेवक संघ' और 'आदिवासी सेवक संघ' की स्थापना की। फरवरी 1933 से साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। वे पहले इंसान थे जिन्होंने दलितों पर होने वाले अमानुषिक अत्याचारों के विरोध में आवाज़ उठायी, जनमत तैयार किया। किन्तु दलित नेताओं का आज कहना है, "बाल्मीकियों की बस्ती में ठहरना, उनके साथ खान-पान का व्यवहार करना, उनके काम में स्वयं हाथ बटाना अलग बात है। मूल मुद्दा यह है कि सैद्धान्तिक रूप से गांधी जी ने जातीय स्थिति में परिवर्तन लाने के लिये कभी जोर नहीं दिया।"

पूना पैक्ट क्या था ?

अंबेडकरवादी दलितों की आम राय है कि गांधी जी ने पूना पैक्ट का जबरदस्त विरोध किया था और पूना पैक्ट दलितों के हित में था। दरअसल पूना पैक्ट क्या था ? 10 अगस्त् 1932 को अंग्रेज़ों ने कम्युनल अवार्ड की घोषणा की थी, जिसमें ब्रिटिश सरकार ने 11 अल्प संख्यक वर्गों को मान्यता दी थी और उनमें दलित जातियां भी थी। यानी इस अवार्ड के अनुसार दलित वर्गों के लिए अलग निर्वाचन मंडल का प्रस्ताव था। 'पूना पैक्ट सन् 1932' के नाम से जाना जाता है।

डा० भीमराव अंबेडकर चाहते थे कि यह पूना पैक्ट लागू हो जाए। किन्तु गाँधी जी ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल का विरोध किया, जबकि मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन मंडल के प्रस्ताव पर वे सहमत थे। गांधी जी यह बात जानते थे कि पृथक निर्वाचन मंडल से दलितों का कोई विशेष भला न होगा। देश दो भागों में तो पहले ही से मुसलमानों को पृथक निर्वाचन मंडल देने बँट जायेगा। इसीलिए गांधी जी ने डा० अंबेडकर को समझाया कि दलितों को निर्वाचन क्षेत्रों में आरक्षण दिया जा सकता है, अन्त में डा० अंबेडकर इस बात से सहमत हो गए।

आज भारत में कुल आबादी का 24.56 प्रतिशत दलितों का है, जिनमें अनुसूचित और अनुसूचित जनजातियाँ दोनों सम्मिलित हैं। इसमें से मात्र 20 प्रतिशत ही शिक्षित है यानी आजादी के 47 वर्ष बाद भी 80 प्रतिशत दलित साक्षर न हो सके हैं। इसका क्या कारण है ? दलित नेता पूछते हैं कि गांधी जी ने कभी हरिजनों की शिक्षा का मुद्दा नहीं उठाया। उन्होंने सदा यही कहा कि कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता। उन्होंने स्वयं मैला ढ़ोने जैसे कार्य के लिये कहा कि जिस जाति का जो काम पारम्परिक है उसे उसी जाति के लोगों द्वारा किया जाना चाहिए।

कुछ गैर दलित लोगों का मानना है कि दरअसल गांधी जी के सामने संपूर्ण राष्ट्र था। वे सिर्फ दलितों के ही नेता नहीं थे। इसके बावजूद उन्होंने दलितोत्थान के लिये अनेक कार्य किये जिन्हें इतनी आसानी से भुलाया या नकारा नहीं जा सकता। लेकिन यह भी सच है कि वर्णाश्रम व्यवस्था का गांधी जी द्वारा सदैव समर्थन किया गया और एक युग प्रवर्तक नेता की तरह शास्त्रों के विरूद्ध इस सामाजिक गली-सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध जाने का उन्होंने कभी साहस नहीं दिखाया। रूढ़िवादी वर्णाश्रम विभाजन व्यवस्था का समर्थन करने से ही आज गांधी जी के नाम पर छींटाकशी होने लगी हैं। जिसके लिये वे ही इस अपयश के जुम्मेदार हैं। अभी तो यह विवाद प्रारम्भ हुआ है आगे-आगे इस सन्दर्भ में क्या-क्या कहा जाता है वह तो भविष्य ही बतायेगा।

भारत में 'भारतीयता छोड़ो' व्याप्त अभियान पर अंकुश लगे

सन् 1942 में, 9 अगस्त् से प्रारम्भ 27 अगस्त्, तक महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में एक राष्ट्रव्यापी जन-आन्दोलन चलाया गया था, जिसका एक ही नारा था "अंग्रेजों भारत छोड़ो", जिससे देश लाभांवित हुआ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की भारतीय राजनीति का सिंहावलोकन करने में अनेक आश्चर्यचकित कर देने वाले तथ्य सामने आते हैं। तब से अब तक भारत छोड़ो आन्दोलन की गूँज को उठे हुये, 52 वर्ष बीच चुके हैं- पर न जाने वह जनता में तड़प और दिल में कसक कहाँ विलुप्त हो गई है। अब तो स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि समस्त देश में चन्द दृढ़-संकल्प व्यक्तियों और उनकी संस्थाओं को छोड़कर, सर्वत्र भारतीयता को बाहर खदेड़ने जैसा षड़यंत्र किया जा रहा हैं आधुनिकीकरण के नाम पर वास्तव में देश के पश्चिमीकरण करने का योजनाबद्ध व्यवसाय-सा चल रहा हैं पश्चिमी-उपभोक्तावादी संस्कृति के तथाकथित आधुनिकतावादी लोगों को भारत की मिट्टी से, परम्पराओं से, रीति-रिवाजों से केवल औपचारिक सम्बन्ध मात्र रह गया है। इससे बड़ी त्रासदी क्या होगी कि नकलची बन्दर की तरह पश्चिमी तौर-तरीकों की नकल करने हेतु-हर सुअवसर पर दीप प्रज्ज्वलित करने वाले, अंधकार से प्रकाश की और गमन करने का, मंत्र उच्चारण करने वाले, हम भारतीय-बच्चे के जन्म दिवस पर उस मासूम से उससे जलती मोमबत्तियां बुझवाते हैं, तालियाँ पीट-पीट कर 'हैप्पी वर्थ डे टू यू' बड़े शान से गुनगुनाकर बधाइयां देते है। अंग्रेजी भाषा ज्ञान, कई बातों के लिये लाभप्रद है पर इसका तात्पर्य यह हरगिज़ नहीं कि हम महात्मा गांधी, महर्षि अरविन्द, स्वामी दयानन्द जैसे महापुरुषों जिन्होंने अपनी मातृभाषा में ही प्राथमिक शिक्षा देने की बात विशेष रूप से कही है कि राय ठुकराकर विदेशी भाषा में शिक्षा देकर विदेशी संस्कृति के रंग में ओत-प्रोत करने वाली अंग्रेजी संस्कृति के अनुयायी बन जायें और भारतीय संस्कृति से अनभिज्ञ रह जायें। यह 'भारतीयता छोड़ों' अभियान भारतीय नववर्ष विक्रमी सम्वत् बार-बार याद दिलाता है, पर विदेशी ईसवी सन् के नववर्ष पर लगभग सभी शिक्षित भारतीय झूम-झूम के बधाई देने लगते हैं। सरकारी दूरदर्शन भी उस दिन आधी रात एक अजीब हंगामा चालू रखता है। कितने भारतीय हैं जो अपनी-अपनी मातृभाषा में बारहों महीने के सही-सही भारतीय नाम बता सकते हैं। जबकि डिम्पल और रोबिन नामक भारतीय बच्चे अंग्रेजी के नाम महीनों के सही-सही बता देते हैं। देश के वे बुद्धिजीवी एवं शिक्षाविद् जो इस अन्याय तथा भारतीय संस्कृति के हनन को मौन-मूक रहकर सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं, वे भी बहुत दोषी हैं। ठीक से विचार करें तो हम सब भी इसके लिये उतने ही दोषी है, जितने अन्य पर एक सशक्त राष्ट्र एवं समाज की संरचना में ये बातें अधिक दिनों तक अनदेखी नहीं की जा सकती । स्वतंत्रता के पूर्व का कवित्त था :-

कौम दी पत्त दून सवाई,
कौमी रस्म रिवाजो ।।1।।

अपने घर की जुती चंगी,
ओपरेयां दे वाजों ।।2।।
अपने गुड़-शक्कर ने मिट्ठे,
परदेसी खंड़ कौड़ी ।।3।।

हमें भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र जी के इस आह्वान को सदा याद रखना होगा :-

भरा नहीं जो भावों से,
बहती जिसमें रसधार नहीं,
हृदय नहीं, वह पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।

महात्मा गांधी युग पुरुष थे

इस पृथ्वी पर यदा-कदा ऐसी महान विभूतियाँ जन्म लेती हैं जो अपने महान व्यक्तित्व और कृतित्व से न केवल विश्व को आश्चर्यचकित कर देती है अपितु एक अमिट छाप लोगों के मन और मस्तिष्क पर छोड़ जाती हैं, जिनकी सुकृतियाँ सदा-सदा के लिये इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों से अंकित हो जाती हैं। आगे आने वाली पीढ़ियाँ मन-ही-मन यह सोचने पर विवश हो जाती हैं। कि क्या वास्तव में इस प्रकार की कोई महान हस्ती इस धरा और इस देश भारत में कभी अवतरित हुई भी थी ? ऐसी ही महान् विभूतियों में सबसे ताज़ा नाम स्मरण आता है उस व्यक्ति का जोकि मोहनदास कर्मचंद गांधी नाम से सार्वजनिक जीवन में उतरा पर उनकी महान् उपलब्धियों के लिये इस कृतज्ञ राष्ट्र ने उसे स्नेह एवं आदर से 'बापू' और 'राष्ट्रपिता' सम्बोधन से पुकारा, विश्व भी उसे 'महात्मा गांधी' के नाम से स्मरण करके सम्मान करता है। बहुजन समाज पार्टी के नेता गांधी जी को क्या कहते हैं, यह संकेत आपको पूर्व वर्णन से मिल गया होगा, पर हम उस महापुरुष को अपने दृष्टिकोण से देखकर उनके कार्य-कलापों की समीक्षा करते हैं।

हम मानते हैं कि महात्मा गांधी हमारे स्वाधीनता संग्राम के महानतम नेता थे, जिनका सम्मान उनके 'दर्शन' और उनकी कार्य-शैली और आचरण के कारण विश्व भर में होता था, होता है और कोई कारण नज़र नहीं आता कि भविष्य में न होवे। महाशक्तिशाली अंग्रेजी साम्राज्य भी अन्ततः इस 'सत्य' और 'अहिंसा' के अग्रदूत महात्मा गांधी के सामने टिक न सका और उन्हें भारत को स्वाधीनता देनी पड़ी। माना कि इसे भी कोई भी इतिहास का विद्यार्थी नकार नहीं सकता, उसे स्वीकार करना होगा।

कौन है बीसवीं शताब्दी में इस देश में जन्मा महामानव जिसने 'दरिद्रनारायण' की सेवा अपने जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य बनाया, एक साधारण से साधारण भारतीय की तरह मनसा-वाचा-कर्मणा जीवन जिया, जो परम पिता परमात्मा के अस्तित्व में अटूट आस्था रहते हुये, सब धर्मों के प्रति, सब धर्मानुयायियों के भावों का सार संत नरसी मेहता के प्रिय भजन की इस पंक्ति "वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे," से परिलक्षित करता रहा ? ऐसा व्यक्ति महात्मा गांधी के अतिरिक्त अन्य कोई हुआ ही नहीं।

पर यह भी सच है कि गांधी जी के नाम को सर्वाधिक क्षति उनके अपने अनुयायियों ने पहुँचायी, जो उनका नाम बार-बार अपने भाषणों में लेकर और उनके चित्रों को अपने कार्य-कक्षों में टाँग कर, अब तक सत्ता पर "येन केन प्रकारेण" हावी होते रहे, चाहें कदम-कदम पर गांधी जी के सिद्धान्तों, उच्च आदर्शों का उल्लंघन करने में उन्हें लेश – मात्र भी संकोच न हुआ हो 'गांधी जयन्ती' का वार्षिक आयोजन अब इनके द्वारा आवश्यक औपचारिकता मात्र बन कर रह गया है। फलतः गांधी जी के विचारों, शिक्षाओं, आदर्शों और सिद्धान्तों से यह देश भारत, नित्य-प्रति दूर होता चला जा रहा है। इस संदर्भ में कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करना असंगत न होगा :-

1. गांधी जी ने 'राम राज' की 'कल्पना' की थी मगर देश में 'दाम राज' का ताँडव चल रहा है, कोई भी काम दाम खर्च किये बगैर हो नहीं सकता।
2. गांधी जी मद्यनिषेध की बात करते थे किन्तु मधुशालयों (शराब की दुकानों) की संख्या पहले से लगभग पचास गुनी अधिक हो गई हैं। भले ही पीने का पानी कहीं न मिले पर शराब पीने को वहाँ उपलब्ध होगी।
3. गांधी जी स्वदेशी के प्रचारक थे और उसका पालन सबसे करवाते थे। मगर अब खादी कांग्रेस जनों तक के लिये अनिवार्य नहीं- अब 'विदेशी' स्वदेशी पर सर्वत्र हावी है। आज की स्थिति यह है कि अपने देश में टमाटर का केचप,आलू के चिप्स, शीतल पेय, दंत-मंजन सभी कुछ विदेशी बहुराष्ट्रीय व्यापारिक कम्पनियों द्वारा लाये जा रहे हैं। और तो और नमक बनाने का भी काम अमेरिका की कारगिल कम्पनी को मिलने वाला था तब तक जनता को भनक पड़ गयी, नेताओं की जब भर्त्सना

सर्वत्र होने लगी, तब मसला फिलहाल रोक दिया गया है। इसी तरह 'डंकल प्रस्ताव' को राष्ट्र पर लादने के पूरे इंतजाम हो चुके हैं।

4. गांधी जी ने अहिंसा का संदेश समूचे विश्व को दिया मगर आज विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिये पंजाब में एक नया और बड़ा बूचड़खाना खुल गया। दिल्ली में ईदगाह के पास वाले बूचड़खाने के लिये जनता-हित में स्थानान्तरण के आदेश जारी हुये, कसाइयों ने हड़ताल कर दी, खादी-धारी नेताओं ने उनकी पीठ-थपथपाई और बूचड़खाना पूर्ववत बरकरार है।

5. गांधी जी त्याग, सादगी और सद्चरित्रता को जनसेवक के लिये अनिवार्य मानते थे, किन्तु सत्ता के मद में गांधी जी के तथाकथित चेले और दरचेले मदहोश हो गये हैं। आज सत्ता के गलियारे में सर्वत्र 'कुर्सी' के लिये दौड़ मची हुई है। लक्ष्य उन्हें प्राप्त करना है उसके लिये किस साधन का प्रयोग हो रहा है उसका लेशमात्र भी विचार नहीं। हर नेता 'जनसेवा' के लिये झंडी वाली कार' में विचरण करना आवश्यक समझता है हर मंत्री, सांसद, विधायक ठाट-बाट में अच्छे-अच्छे राजाओं और सम्राटों को भी मात दे रहा है।

6. गांधी जी ने कांग्रेस फंड में प्राप्त चवन्नी जो कस्तूरबा कहीं रख कर भूल गयी थीं, उनके पीछे-पड़कर ढूढ़वा ली थी पर आज इस देश की हजारों करोड़ो रुपयों की राशि 'बोफर्स' या 'शेयर घोटाले' में लोग हड़प जाते हैं पर सरकार सर्वशक्तिमान एवं साधन-सम्पन्न होते हुये भी उसका पता लगाकर वापिस नहीं ला सकी है। गांधी जी के दर्शन को सही अर्थों में देश के सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन में स्थान दिया जाना चाहिये।

Democracy Without values

The hallmarks of a functioning democracy are commitment to ideals, equality and dignity of all citizens and scrupulous adherence to the rule of law. The functioning of our democracy can be badly faulted on all these counts.

The antithesis of ideals is corruption, which has become rampant and all pervasive in our polity. Corruption may be a global phenomenon but, in India, it is thriving in a different manners than in the developed democracies. There only a small fraction of politicians are corrupt and those found involved in it are promptly dealt with. In India corruption is so widespread that only a very small fraction of our political leaders are not corrupt. And what is worse, No action is taken against any politician found corrupt. Every effort is made by the Government to shield them and to hush up matters. (Lt. Gen. S. K. Sinha (Retd.), The Hindustan Times, New Delhi, dated 15th Nov. 1994, excerpts from his article, with thanks).

अध्याय - 13

भारत में आधुनिकता और जातीय सुधार के आन्दोलन

भारत का इतिहास हजारों वर्षों का है। इस अवधि में इस देश में बड़े-बड़े और शक्तिशाली साम्राज्यों से लेकर छोटे राज्य और गणराज्यों, जैसी कई तरह की राजतन्त्र सत्तायें रही हैं। रजनी कोठारी ("भारत में राजनीति", अनुवादक अशोक जी, ओरियंट लांग्मैन, दिल्ली) का मत है कि जिसे हम हिन्दू युग कहते हैं वह ईसा से पहले 15 वीं शताब्दी के मध्य स्थिर हुआ। इसी अवधि में मध्य एशिया से आने वाली आर्य जातियों ने देश के उत्तरी और पश्चिमी भागों में अपनी बड़ी-बड़ी बस्तियाँ स्थापित की। उन्होंने यहाँ के आदिम-निवासियों को हराकर अपने अधीन कर लिया और बहुतों को दक्षिण की ओर ढकेल दिया।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के उत्खनन से सिन्धु घाटी की सभ्यता का अनुमान लगाया जाता है। खुदाई से जो भग्नावशेष मिले हैं, उनमें भग्न भवनों की पंक्तियां सड़क के दोनों ओर मिली है। दीवालों की ऊँचाई 25 फीट तक है। स्नानगृहों और नालियों की रचना सुन्दर ढंग से की गई हैं। अवशेषों से ज्ञात होता है कि किसी समय इनके स्थान पर भव्य भवनों की पंक्तियाँ रही होंगी। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो पूरे नगरों के अवशेष के रूप में प्राप्त हुये हैं। इन सबसे यही ज्ञात होता है कि वहाँ के लोग नागरिक सभ्यता से भी परिचित थे। सही जानकारी न मिल पाने से कहने को बहुत अधिक अभी नहीं है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व भी यहाँ एक काफी विकसित समाज विद्यमान था जिसने कृषि के आविष्कारों द्वारा "ग्रामीण सभ्यता" तथा कालान्तर में 'नागरी सभ्यता' का विकास किया। उसने प्रागैतिहासिक काल में मानवीय सभ्यता और संस्कृति की नींव रखी।

सृष्टि की रचना के पश्चात् मनुष्य धीरे-धीरे शिकारी अवस्था से पशुपालक अवस्था को पार करता हुआ कृषक की अवस्था में पहुँचा तभी वह श्रेष्ठ बना या 'आर्य' नाम से पुकारा गया था। वेदों में कृषि को पवित्र कर्म और कृषकों को समाज का सर्वोपरि आदरणीय व्यक्ति कहा गया है। शब्दकोश में लकड़ी के हल से भूमि का कर्षण करने अर्थात् उसे जोत कर बोने के लिये तैयार करने की क्रिया को 'अर्' कहते हैं, और 'अर' कार्य करने वाले को 'आर्य।' पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "हिन्दुस्तान की कहानी" में लिखा है कि 'आर्य' शब्द अर् धातु से बना, जिसका अर्थ होता है, जमीन को जोतना। इसलिये सभी आर्यों के पूर्वज कृषक थे। खेती करने के कारण उनका नाम आर्य पड़ा जैसा कि उसकी व्युत्पत्ति ऊपर बतायी गयी है। कुरमी या कूर्मि की व्युत्पत्ति 'कु' शब्द के माने धरती और 'रमी' का अर्थ रमण करने वाला अर्थात् वह व्यक्ति या जाति जिसका कर्मक्षेत्र भूमि है अर्थात कृषक। कुरमी जाति अति प्राचीन जाति है, दरअसल यह सभी भारतीय जातियों की जननी हैं, जैसे संस्कृत को सभी भारतीय भाषाओं की जननी कहा गया है। कुरमी समुदाय आदिकाल से चला आ रहा वह कृषक समाज है जो भिन्न-भिन्न दौरों से गुजरता हुआ, काल-चक्र के अगणित उतार-चढ़ाव देखता हुआ तथा परिस्थितियों से अनवरत जूझता रहा। उन आदि कृषकों ने यायावरी जीवन प्रणाली तज़कर अपने आर्य परिवारों के ग्राम बसाकर एक स्थान पर जमकर रहना प्रारम्भ किया। इन परिवारों को कुटुम्ब कहा जाता था और परिवार के सदस्यों की जाति-बोधक संज्ञा कुटुम्बिन बन गयी। कालान्तर में कुनबी समुदाय देश में अन्य-अन्य क्षेत्रों में जहाँ अन्य लोग बसे पहुँचे पर कृषि कार्य को अपनाये रखा और स्थानान्तरण के कारण भाषा भेद से प्रभावित होकर उनका जाति बोधक नाम कुनबी, कण्बी, कणबी, कुरमी, कुलमी, कुलंबी, कुम्मा, कापू, कूर्मा आदि होता चला गया। वर्तमान 'कुरमी' और 'कुनबी' शब्द प्राचीन 'कुटम्बिन' शब्द के अपभ्रंश हैं।

आर्यों का मूल उद्गम स्थान कौन सा था। इस पर मतभेद है। कुछ पुरातत्त्ववेत्ताओं का मत है कि आर्यों का मूलस्रोत मध्य एशिया था, दूसरे इसे कैस्पियन सागर का प्रदेश अथवा इसे दक्षिणी रूस, अथवा ईरान, सप्तसैन्धव (आधुनिक पंजाब) बतलाते हैं। बाल गंगाधर तिलक अपने ग्रंथ "Arctic Home in the Vedas"-"आर्कटिक होम इन दि वेदास" में वेद सूक्तों के आधार पर आर्यों का घर आर्कटिक (उत्तरी ध्रुव) प्रदेश को बताते हैं, जहाँ दीर्घकालीन उषा और एक वर्ष की अहोरात्रि होती है।

प्राचीनकाल का बड़ा लम्बा इतिहास मुख्यत: दो खण्डों में विभक्त किया जाना चाहिए क्योंकि महाभारत का युद्ध एक अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण और युग प्रवर्तनकारी महान घटना है, अतः प्राचीन भारत के सम्पूर्ण इतिहास को पूर्व महाभारत काल और उत्तरमहाभारत काल नाम से दो खण्डों में विभाजित कर उनका अवलोकन करना चाहिए। इस बारे में इस पुस्तक में प्रारम्भ में भी उल्लेख किया जा चुका है।

आर्य लोगों में प्रबुद्धजन संस्कृत में ही बोलते थे। वैदिक संस्कृति के बाद लौकिक संस्कृत का प्रादुर्भाव हुआ, साधारण जनता की बोल-चाल की भाषा का नाम प्राकृत था। प्राकृत भाषाओं में सर्वाधिक लोकप्रियता पाली भाषा को प्राप्त हुई। महात्मा बुद्ध के सारे उपदेश प्राकृत भाषा में होने के कारण बिना किसी भाष्यकार की मदद से जनता सब समझ लेती थी, सीधे तथागत् के मुखारबिन्द से निकली वाणी का पूर्ण आनन्द लेती थी। यह स्थिति संस्कृत भाषा के साथ नहीं रही। पाली भाषा संस्कृत के बहुत निकट है। अतः उसको संस्कृत का सरल रूप भी कह सकते हैं। परन्तु पाणिनि ने जिस व्याकरण ग्रन्थ की रचना की उस महान कृति का नाम 'अष्टाध्यायी' है, क्योंकि उसके आठ अध्याय हैं और यह व्याकरण शास्त्र का अनूठा और अद्वितीय ग्रंथ माना गया है।

वैदिक त्रिमूर्ति मित्र-वरूण-इन्द्र-इसमें मित्र 'सूर्य' ईरानियों के देवता भी थे और अवेस्था (Avestha) में उनकी पूजा-उपासना वर्णित हैं। मिस्र में इन सूर्य ने अखनातेन (Akhnaten) की शक्ल ले ली। कालान्तर में भारतवर्ष में वैदिक त्रिमूर्ति मित्र, वरूण, इन्द्र को ब्रह्मा-विष्णु-महेश की त्रिमूर्ति और परिकल्पना में बदल दिया गया। यहाँ यह भी विचारणीय बात है कि जब राम और श्याम, हिन्दूओं के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दो अवतार श्याम वर्ण के थे और आर्य गौर वर्ण, तब आर्यों का भारत का मूल निवासी जन होने पर प्रश्न चिह्न क्यों नहीं लगता ? जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है कि मानव-समाज में पहले श्रम आया था, बाद में चिन्तन आया। अतः पहले कृषक, क्षेत्रपति, क्षत्रिय बना उसके उपरान्त चिन्तक, विश्वात्मा ब्रह्म के जानने के दावेदार होकर ब्राह्मण बन बैठा। शारीरिक श्रम से बौद्धिक विकास में अवरोध पैदा होता है, किन्तु ब्राह्मण श्रम तो करते नहीं थे, चिन्तन में, पठन-पाठन में व्यस्त रहते में स्वाभाविक था कि उनका बौद्धिक विकास खूब हुआ। आदि मानवीय समाज को बाह्य संकटों से सुरक्षित रखने के लिये कृषक ने क्षात्र धर्म को अपनाकर शस्त्रों का आविष्कार कर क्षत्रिय के दायित्व को निभाया। अतः पहले क्षत्रिय का शस्त्र आया। फिर ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण का शास्त्र या अन्याय धार्मिक साहित्य। प्रथम शस्त्रबल से क्षत्रिय वर्ग द्वारा समाज का संचालन किया गया। बाद में समाज का संचालन शास्त्रादि ग्रंथों के बल पर ब्राह्मणों द्वारा किया जाने लगा। फलतः ब्राह्मणों और संचालकों में श्रेष्ठता के लिये संघर्ष तक चलता रहा। पाठकगण! इसी सन्दर्भ में क्षत्रिय विश्वामित्र और ब्राह्मण वशिष्ठ का झगड़ा हुआ। शूद्र शंबूक का वध तथा गुरु द्रोण द्वारा एकलव्य के दाहिने हाथ का अगूँठा कटवा कर माँग लेना ब्राह्मण की गरिमा पर नृशंस तथा स्वार्थपूर्ण कुकृत्यों के अमिट धब्बे हैं। शक्ति पाकर क्षत्रिय दयालु ही नहीं महादयालु बन गये जैसे बुद्ध, महावीर तथा 23 अन्य तीर्थंकर, किन्तु ब्राह्मण तो शक्ति पाकर निर्दयी बनकर बड़े हिंसक बन जाते हैं जैसे परशुराम ने अपनी माता रेणुका का सिर पिता ऋषि जगदग्नि के कहने पर तुरन्त काट डाला। दोषी, निर्दोष, बच्चे-वृद्ध, स्त्री आदि का विचार किये बिना कहा जाता है कि 21 बार क्षत्रियों को इस पृथ्वी से समूल नष्ट किया, जबकि हिलटर जब एक भी बार दुनिया के पूरे यहूदी न मार सका। ब्राह्मण शासक पुष्यमित्र शुंग था जो मौर्य वंश के अन्तिम शासक वृहद्रथ को मार कर गद्दी पर बैठा। उसने एक-एक बौद्ध भिक्षु के मस्तक पर काफी बड़ी पुरस्कार राशि देने की घोषणा करके बौद्ध भिक्षुकों को जो कि सदा निशस्त्र रहे, मार-मार कर इस देश से लगभग समाप्त कर दिया। महात्मा गांधी की हत्या भी एक ब्राह्मण द्वारा करना इसका हाल का ही ज्वलंत उदाहरण है। पहले के क्षत्रिय बौद्धधर्म के पश्चात् ब्राह्मणों द्वारा दलित घोषित कर दिये गये। उनके द्वारा बनाये नये राजपूत क्षत्रिय उनके चहेते थे। अतः आज के पिछड़े वर्ग के पुरातन क्षत्रियों और ब्राह्मणों के मध्य आज भी विरोधाभास समाप्त नहीं हुआ है।

मौर्यवंश के आखिरी वंशज तथा बौद्ध धर्म के अंतिम राजा बृहद्रथ की हत्या कर उनके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने अपने वंश का नाम रखा। जैसा ऊपर वर्णन किया गया है कि पुष्यमित्र ने बौद्ध भिक्षुओं के सिर काट कर लाने वाले को इनाम दिये। स्वाभाविक था कि अहिंसक बुद्ध भिक्षु जान बचाकर दूसरे देशों में प्रस्थान कर गये और वहाँ बुद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

मौर्यकाल 322 से 184 ईसा पूर्व में भारतीय जनता के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। बौद्ध धर्म पहले ही प्रारम्भ हो चुका था जो इस काल में सारे भारतवर्ष में फैला। यह इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है।

व्यवस्था परिवर्तन-एक मिशन-उसमें बुद्धिजीवी क्या करें ?

हिन्दू समाज में व्यवस्था परिवर्तन की चेष्टा हजारों वर्षों से हो रही है पर यह भी सत्य है कि आज तक इस लक्ष्य में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो पाई है। इसमें हजारों-हजारों महान लोगों ने प्रयास किये कुर्बानियां दी, शहीद हुये, पर सामाजिक व्यवस्था

में मूलभूत परिवर्तन लाकर उसे पूर्णतः बदल न सके। इसीलिये हिन्दू समाज-व्यवस्था में परिवर्तन लाना एक महान कार्य है, जो दुष्कर है, इसीलिये समाज सुधारकों के लिये एक मिशन के रूप में लेना है।

बुद्धिजीवी वर्ग का दायित्व है कि वे अपने समाज को संगठित करने का पूरा प्रयास करें, एक तटस्थ दर्शक की तरह निष्क्रिय न रह कर अपनी जाति-हित में संघर्ष करें, जातीय आन्दोलनों में समुचित योगदान दें क्योंकि बुद्धिजीवी वर्ग ही व्यवस्था परिवर्तन का आन्दोलन चला सकते हैं और वे इसको सफल बनाने के लिये महत्त्वपूर्ण साधन है। पिछड़ी जाति के बुद्धिजीवी जाग उठें। सामाजिक एवं जातीय ऋण से मुक्त होने की भावना उनमें अंकुरित होकर प्रस्फुटितहो उठे तब वे ज्योतिबाँ फुले, पेरियार रामस्वामी और डा० बाबा साहब अम्बेडकर एवं राजर्षि छत्रपति शाहू महाराज कोल्हापुर के रूप में समाज में आगे आकर अन्याय, शोषण और अमानवीय कृत्यों के स्रोतों को समूल उखाड़ फेंक कर समता और मानवीय मूल्यों पर आधारित एक स्वस्थ विचारधारा वाले समाज की संरचना कर सकेंगे।

विक्रमादित्य एक आदर्श राजा एवं विक्रम सम्वत्

देश के बहुरंगी इतिहास में शकों की पराजय एक ऐतिहासिक महत्त्व की घटना थी। इस सफलता का श्रेय कई गणराज्यों के सम्मिलित प्रयास को था। विजयी मालवाधिपति विक्रमादित्य को 'शकारि' (शक+ अरि अर्थात्) शकों का शत्रु (नाशक) की उपाधि प्रदान की गई। इस घटना से, वास्तव में, भारत में शान्ति और समृद्धि के युग का प्रारम्भ हुआ, जिसे आलंकारिक भाषा में कृत (सत्य युग-स्वर्णयुग) कहा गया। भारतीय इतिहास की राष्ट्रीय महत्त्व की उपर्युक्त घटना से एक नया सम्वत् भी चलाया गया। प्रारम्भ में इस संवत का नाम 'कृत' था। बाद में वह संवत 'मालवगण संवत' 'मालवों का सम्वत' कहा गया। अन्ततोगत्वा नवीं शती के मध्य में इस संवत को 'विक्रम-संवत' कहा जाने लगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि संवत की स्थापना का प्रमुख उत्तरदायित्व एवं श्रेय विक्रमादित्य को ही था। भारतवर्ष में गणतन्त्रों की परम्परा के मिट जाने के बाद भी विक्रमादित्य का नाम राम, कृष्ण और महात्मा बुद्ध की भाँति जीवित रहा तथा दशम शती के पश्चात् राजकीय कार्यों में भी उनका नाम संवत के साथ जुड़ कर प्रयोग होने लगा। श्री कृष्ण एक गणतन्त्र के नेता थे और भगवान बुद्ध के पिता यशोवर्द्धन भी एक गण प्रमुख थे।

विक्रमादित्य पूर्णतः ऐतिहासिक व्यक्ति थे किन्तु समयानुसार अपूर्व सफलताओं तथा सदगुणों के कारण वे अनुकरणीय आदर्श बन गये। प्रारम्भ में विक्रमादित्य व्यक्ति विशेष का नाम था, किन्तु बाद में वह विरुद बन गया। प्रारम्भिक विक्रमादित्य जिन्होंने शकों को पराजित कर इस देश से खदेड़ बाहर किया था, उनकी राजसभा में नवरत्न थे :-(1) धन्वन्तरि, (2) क्षपणक, (3) अमरसिंह, (4) शंकु, (5) वैतालभट्ट, (6) घटखर्पर, (7) कालिदास, (8) वराह मिहिरि तथा (9) वररुचि। एक धन्वन्तरि सुप्रसिद्ध देवताओं के वैद्याचार्य थे, जो पौराणिक आख्यानों के अनुसार समुद्रमन्थन से प्राप्त हुये थे। ये धन्वन्तरि विरुद धारण करने वाले अन्य व्यक्ति रहे होंगे। अमरसिंह प्रसिद्ध अमरकोश के रचनाकार थे और धार्मिक रूप से वे बौद्ध थे। वेतालभट्ट की 'विक्रम-वेताल' की कथाओं से पाठकगण परिचित होंगे जो आजकल दूरदर्शन पर भी प्रदर्शित की गई हैं, ये उन्हीं कथाओं के रचयिता थे। कालिदास उस युग की सर्वाधिक सृजनात्मक प्रतिभा थी, वे विक्रमादित्य की राजसभा के राजकवि थे। उनकी सुप्रसिद्ध कालजयी कृतियाँ हैं- (1) मेघदूत, (2) अभिज्ञान शाकुन्तल, (3) ऋतु संहार, (4) रघुवंश, (5) कुमार सम्भव, (6) विक्रमोर्वशीय आदि। बराहमिहिर एक विख्यात् ज्योतिर्विद और, वृहत्संहिता के प्रणेता थे।

कालान्तर में जब 'विक्रमादित्य' एक विरुद बन गया। 'शंकराचार्य' की तरह, तब कोई भी भारतीय शासक जो किसी विदेशी शासक/आक्रमणकारी को पराजित करके, एक कुशल तथा उदार शासन -व्यवस्था स्थापित करने तथा कला-संस्कृति की अभिवृद्धि करने में सफल हो जाता था तो वह विक्रमादित्य (विक्रम का सूर्य) की उपाधि धारण कर लेता था। इस प्रकार उज्जयिनी (मालव प्रदेश) के महान् विक्रमादित्य की स्मृति को आदर और सम्मान प्रदान करता था। हमारे देश में राजाओं की एक लम्बी सूची है जिन्होंने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। ऐसा करने वाला प्रथम नरेश समुद्रगुप्त था, जिसने शाहानुशाही शक-गुरुण्डों को अधीनस्थ किया था, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमार गुप्त, स्कन्दगुप्त, चालुक्य नरेश षष्ठ विक्रम तथा चोल नरेश विक्रम आदि ने भी ऐसा ही पराक्रम किया। आगे भी विक्रमादित्य की उपाधि हेमचन्द (मुसलमान लेखकों ने जिसे 'हिमू' या 'हिमू वक्काल' सम्बोधित किया है) तक बनी रही। हेमचन्द्र ने सन् 1555 में पानीपत के द्वितीय महासमर में मुगलों का प्रबल विरोध किया था तथा उस युद्ध में उसकी दुःखान्त परन्तु वीरतापूर्वक मृत्यु हुई। शायद राजा हेमचन्द्र अंतिम विक्रमादित्य विरुद धारक था। हरियाणा में, हाल ही में, उनकी जयन्ती मनाये जाने के समाचार अखबारों में छपे थे।

महापंड़ित राहुल जी तथा डा० काशीप्रसाद जायसवाल के सुधारवादी विचार

राहुल सांस्कृत्यान जी ("जिनका मैं कृतज्ञ हूँ" किताब महल, इलाहाबाद 1957, पृष्ठ 202) ने पटना के प्रसिद्ध बैरिस्टर तथा पुरातत्व वेत्ता, इतिहासज्ञ डा० काशीप्रसाद जायसवाल का संस्मरण इन शब्दों में व्यक्त किया :-

"सन् 1939 ई० में डा० काशीप्रसाद जायसवाल नेपाल गये थे। वह वहाँ किसी राणा के घर पर मिलने गये। वहाँ राजगुरु भी मौजूद थे। संयोग से जायसवाल जी के वहाँ पहुँचने ही राणा-कुमार राजगुरु के सामने उपस्थित हुये और प्रथा के अनुसार राजगुरु ने अपने चरण कमल को कुमार के सिर पर रख दिया। यह देखकर जायसवाल के देह में आग लग गई। उन्होंने पीछे मुझसे कहा-"इस देश का उद्धार नहीं हो सकता। यह राजकुमार राणावंश के प्रथम एम० ए० हैं। आज इस तरह के अभिनय दिल्ली और हरेक प्रदेश में होते रहते हैं। जो भी मन्त्री 60-70 वर्ष का हो गया है। वह भृगु की तरह विष्णु की छाती पर लात मारने का अधिकार रखता है।"

यहाँ राहुल जी स्वयं ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे पर ब्राह्मणवाद की जो भी बुराई जहाँ पर नज़र आई उसकी आलोचना और खंडन करने में वे सदा तत्पर रहे। अत: ऊल जलूल ब्राह्मणवाद और उसमें निहित पोंगापंथी रीति-रिवाज़ों की आलोचना करना चाहिए, ब्राह्मण परिवार में जन्मे हर व्यक्ति की नहीं। ऐसी बातों की विवेचना करते समय इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये। इस लेखक ने इसी बात को ध्यान में रखकर रूढ़िवादी ब्राह्मणवाद की आलोचना इस पुस्तक में की है नाकि हरेक ब्राह्मण की जो उस जाति में जन्मा हो। इस ग्रंथ की रचना में भी लेखक के परम मित्र एक उच्च ब्राह्मण कुल में जन्में तथा प्रकाशन विद्या के सुविज्ञ सज्जन का बड़ा सहयोग रहा हैं जो कि अपना नाम गुप्त रखना चाहते हैं। उनकी इच्छा पूरी करते हुये मैं फिर भी उनके प्रति, अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

एक सैंथवार कुरमी के इस लेखक को लिखे पत्रों के आधार पर

मेरी पुस्तकों के प्रशंसकों में एक श्री गिरीश चन्द्रसिंह, सहायक अभियन्ता, सिंचाई विभाग, ग्राम वर्डपुर (कोठी) डाकखाना वर्डपुर जिला सिद्धार्थ नगर (उत्तर प्रदेश) के हैं। जातीय इतिहास सही प्रकाशित हो इसके लिये वे बड़े लालायित हैं। चार-पाँच बड़े लम्बे-लम्बे पत्र भी मुझे लिखे हैं। ये सैंथवार (प्राचीन नौ मल्लों की कोलिय शाखा-रामग्राम के कोलिय) हैं। अपने को क्षत्रिय वर्ण के, नागवंशी तथा कश्यप गोत्र के मानते हैं। तीसरी पीढ़ी तक ये चौधरी और दास आस्पद का इस्तेमाल करते थे, वर्तमान पीढ़ी से ये लोग नाम के साथ सिंह लिखने लगे हैं। स्थानीय राजपूत इन सैंथवार कुरमियों को हँसी में नौका (नये) ठाकुर भी कहते हैं।

यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि भारतीय हिन्दू समाज को चार वर्णों में विभक्त किया गया था। आर्यों के वैदिककाल में पहले वर्ण कर्मानुसार थे फिर जन्मानुसार बना दिये गये। इसी जन्मानुसार वैदिक ब्राह्मण धर्म के विरोध में यहाँ शाक्य गणराज्य के आर्य क्षत्रिय भगवान बुद्ध द्वारा बौद्ध धर्म आया और वह अनेक शताब्दियों तक फूलता-फलता रहा। बाद में यहाँ ब्राह्मणों द्वारा बौद्ध धर्म को हटाकर पौराणिक ब्राह्मण धर्म लाया गया। पौराणिक ब्राह्मण धर्म ने आर्य वंशज क्षत्रिय को, "वैश्यों को शूद्र वर्ण में डाल दिया। कहा कि कलयुग में न क्षत्रिय हैं और न वैश्य। अब केवल ब्राह्मण और शूद्र दो वर्ण है। जैसे "कलौ न क्षत्रिया : संति कलौ न जातय:, ब्राह्मणश्च शूद्रश्च कलौ वर्ण द्वयं स्मृतम् शूद्राचार-शिरोमणि।"

श्री गिरीश चन्द्र सिंह के विस्तार से लिखे गये चार पत्रों में से कुछ सूचनायें मुझे ऐसी महत्त्वपूर्ण लगीं कि जिनमें से कुछ अपनी तरफ से भी जोड़कर मैं उन्हें अपने सुधी पाठकों को भी बताना चाहता हूँ, जिससे आगे के शोध कार्य में उनको भी ध्यान में रखकर जातीय इतिहास को और नये-नये तथ्यों से समृद्ध किया जा सके। चिन्तन-मनन के बिन्दु ये हैं :-

1. हमारे समाज का कोई भी व्यक्ति अपने को ब्राह्मण होने का दावा नहीं करता, शूद्र समझता नहीं, किसी भी प्रकार अपने को बनिया (वैश्य) समझता नहीं, दबे मन से क्षत्रिय ही कहता है, या फिर सिर्फ कुर्मी या कूर्मि क्षत्रिय।

2. आज हमारे देश के लोग बड़े गर्व से कहते हैं कि हमने दुनिया को प्राचीनतम संस्कृति एवं सभ्यता दी। भगवान बुद्ध के काल तक मात्र तीन वेद एवं कुछ उपनिषद प्रकाश में आये थे। अर्थ शास्त्र नामक ग्रन्थ जिसका रचनाकाल चन्द्रगुप्त मौर्य से 600 वर्ष पूर्व का प्रमाणित होता है, उसमें भी वैदिक धर्म को त्रयी धर्म कहा गया है। त्रयी का अर्थ है जो तीनों वेदों; ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद का मर्मज्ञ-ज्ञाता हो। इससे प्रतीत होता है कि भगवान बुद्ध के काफी अरसे बाद अथर्ववेद की रचना की गई थी। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि रामायण (बाल्मीकि कृत) भगवान बुद्ध के बहुत बाद की कृति है। सब जानते हैं कि महाभारत काव्य

ग्रंथ तो रामायण के बाद रचा गया। सब इतिहासकार यह भी मानते हे कि मनुस्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति आदि ग्रंथ ईसा से 200 वर्ष पश्चात रचे गये थे तथा समस्त पुराण गुप्त काल से लेकर उसके बाद की सदियों की रचनाएं हैं। विदेशों में आज से 100 वर्ष पूर्व या कुछ पहले तक इनकी कोई विशेष मान्यता न थी। भगवान बुद्ध को दुनिया की एक तिहाई जनता भगवान मानती है। फिर हमने किस सभ्यता एवं संस्कृति को दुनिया के समक्ष रखा है जिसको उसकी एक तिहाई आबादी श्रद्धा से नमन करती है, वह है वास्तव में बौद्ध धर्म आधारित सभ्यता और संस्कृति न कि वैदिक संस्कृति।

3. चन्द्रगुप्त मौर्य का काल आज से लगभग 2300-2400 वर्ष पूर्व का है। उसकी राज्य सीमायें आज के भारतवर्ष की लगभग दूनी थीं, जैसे उसके अन्तर्गत जो क्षेत्रफल था उसमें सम्मिलित थे मौजूदा बंगलादेश, भारतवर्ष, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, हिरात, काबुल, कांधार आदि। उनकी सेना में 6 लाख पैदल सिपाही, 50 हजार घुड़सवार, 9 हजार हाथी, 9 हजार रथ थे। इस प्रकार सम्पूर्ण सेना-वाहिनी में सात लाख योद्धा थे। इतने विशाल और विस्तृत मौर्य साम्राज्य के सुचारु संचालन के लिये कम से कम इतने ही, सात लाख उच्च पदस्थ राजकीय कर्मचारीगण भी रहे होंगे। अत: सैनिक और असैनिक वर्गों की संख्या 14 लाख रही होगी या यों कहिये कि 14 लाख परिवार। अर्थात् 4 व्यक्तियों का एक परिवार, यद्यपि परिवार-नियोजन का प्रश्न ही तब न उठा था, मान कर अनुमान लगाये तो वे 55-60 लाख व्यक्ति मौर्य-साम्राज्य से परोक्ष रूप से सम्बंधित थे। आज का समय लगभग उनकी 120 वीं पीढ़ी का है। कहाँ गये वे लोग या उनका इतिहास ? आप स्वयं विचार करें कि उनके वंशज अवश्य वर्तमान में होंगे, पर कहाँ हैं ? अवश्य वे गुमनामी का जीवन जी रहे होंगे। क्या हमारे पूर्वज भी उनमें से ही रहे होंगे, यह सच भी हो सकता है ? यह भारतीय इतिहास की बहुत बड़ी त्रासदी है कि एक वर्ण विशेष ने अपने विभिन्न मत-मतान्तरों या धार्मिक आस्था रखने वालों का योजनाबद्ध तरीके से इतिहास ही नहीं लिखा, जबकि लेखनी उनके ही हाथों में थी और लेखन कार्य का दायित्व भी उनका ही था। एक वृक्ष के कोई पत्ते तोड़ ले टहनियाँ काट ले तो वह बहुत बड़ी क्षति नहीं है, वृक्ष का अस्तित्व उससे नष्ट नहीं होता। किन्तु यदि किसी वृक्ष की सब जड़ें काट दी जायें तब वह नष्ट होने से बच ही नहीं सकता। मौर्य काल या यों कहें कि बौद्ध-जैन काल का या तो जानकर सही-सही इतिहास ही नहीं लिखा गया और लिखा भी गया, तो अनर्गल बातों सहित उनकी छवि बिगाड़ते हुये। किसी व्यक्ति की हत्या की जाती है तो जघन्य अपराध माना जाता है, जबकि लाखों-लाखों लोगों के इतिहास की हत्या की जाती है-नष्ट किया जाता है तो दुनिया के इंसाफ पसन्द लोगो, बोलो आप उसे क्या कहेंगे ? क्या दण्ड आप उन्हें देंगे और किस न्याय संहितानुसार ? ये प्रश्न बार-बार इन प्रपीड़ित जातियों के वंशज उन दोषी वर्ण के लोगों से पूछते रहेंगे और जब तक कि उनका ब्रह्मत्व और ज्ञानत्व का मुखौटा धूल रंजित होकर समय की ठोकरों से इधर-उधर फिंका न फिरेगा, यह प्रक्रिया रुकने वाली नहीं है। कहावत है सौ चोट सुनार की और एक चोट लुहार की। जो जैसा बोयेगा वह वैसा ही काटेगा।

4. इतिहासकारों का मत है कि पुराणों तथा स्मृतियों का रचनाकाल गुप्तकाल या उसके बाद का है । इनके सृजनकारों ने प्राचीनकाल के राजाओं की वंशावली को जो कि बहुधा मिथ पर आधारित हैं प्रारम्भ से आखिर तक इतिहास बना डाला और उसमें सत्यता भर दी। इतिहास और मिथ में बारीक अंतर है। इतिहास 'तथ्य' या 'घटित' होता है, जबकि मिथ पूर्णत: काल्पनिक, पूरी तरह गढ़े हुये आख्यान, पर वह किसी समाज की मान्यताओं के आधार पर गढ़ी हुई चीज़ें होती हैं। पर इन गुप्तकालीन इतिहासकारों या धार्मिक ग्रंथों के रचनाकारों ने उन गुप्त सम्राटों के, संरक्षण काल में उपर्युक्त ग्रंथों की रचना की और प्राचीन इतिहास लिखा, पर आश्चर्य है कि वे कहीं पर भी गुप्तों के पूर्वज़ों की वंशावली नहीं दे पाये हैं। जिसके कारण आज भी दुनिया इतिहास का गुप्तों की मूल उत्पत्ति के बारे में साक्ष्य के साथ बता पाने में असमर्थ है। आज तक किसी ब्राह्मण रचित ग्रंथ में यह लिखित नहीं है कि सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध में किस राजा से युद्ध किया था। जबकि भारतवर्ष के इतिहास में अशोक के राज्यकाल में कलिंग युद्ध से बढ़कर अन्य कोई महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक घटना नहीं घटी।

जिनको लिखने का अधिकार था वे बैठे-बैठे गुप्तकाल में, सैकड़ों पुराणों में बड़े विस्तार से प्रमाणित उल्लेख कर सकते हैं पर वे गुप्त सम्राटों के कुल-शील-उपलब्धियों के बारे में क्यों नहीं लिख पाये ? इसका कारण एक ही नज़र आता है कि वे समस्त सम्राट किसी न किसी प्रकार बौद्ध परम्परा या जैन परम्परा या धर्म के अनुयायी रहे होंगे, जोकि ब्राह्मण धर्म तथा वैदिक धर्म के विरोधी थे। या तो गुप्त सम्राटों का ब्राह्मणों ने इतिहास लिखा नहीं यदि राज्य की ओर से अन्य किसी ने लिखा होगा तो उसे नष्ट कर डाला होगा।

5. प्राचीन काल में मगध ही सांस्कृतियों का एवं राजनैतिक उथल-पुथल का स्थल था। महापद्म नन्द मगध का प्रथम राजा हुआ है, जिसने आज के भारत (जम्बूदीप) के समस्त छोटे-छोटे गणराज्यों, राजघरानों, गणराज्य संघों, महाजनपदों को तोड़कर

एक विशाल साम्राज्य की कल्पना की थी, तथा उसने सबको मिलाकर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। समस्त राजघराने खत्तिय (क्षत्रिय) कुलों के थे। महापद्म नन्द को जो कि विशुद्ध खत्तिय अथवा क्षत्रिय था, शिशु नाग वंश का था, उसे क्रोध में राज्यहरण के कारण शूद्र कहना, खत्रिय हन्ता कहना प्रारम्भ कर दिया गया। नन्द सम्राट मूलतः जिन (जैन) धर्म का अनुयायी था, वैदिक धर्म को नहीं मानता था, उसने अपना राज्याभिषेक भी किसी वैदिक परम्परा या विधि से नहीं कराया, इस कारण उस काल के वैदिक मतावलम्बियों को अवसर मिल गया, और उन्होंने नन्द सम्राटों को शूद्र कहकर अपने ग्रंथों में उसे लिखकर सुरक्षित कर दिया। जिससे आज तक किसी न किसी प्रकार नन्द वंशीय सम्राटों को शूद्र कहा जाता हैं। यह कैसी विडम्बना है कि नन्द सम्राटों को सहज रूप से शूद्रा माता के गर्भ से उत्पन्न बताकर उन सबको शूद्र घोषित कर दिया गया। उनके पिता को बदलना तो उनके बस की बात थी नहीं अतः उनकी माता शूद्रा हो गयी। वैदिक ब्राह्मण जबकि जानते थे :-

"सुतो व्यासस्य कैवत्यामि, शव पाक्याम् तु पराशर :।
वैश्या गर्भ सम्भूतो वशिष्ठस्यु महा प्रभु :।।"

उपरोक्त वर्णित समस्त ऋषि-मुनियों की उत्पत्ति शूद्रा माता से होने पर भी आज भी समाज में उनकी ब्राह्मण की मान्यता यह कह कर दी गयी कि उपर्युक्त सभी लोग पितृ-पक्ष से ब्राह्मण थे। यह दोहरी मानसिकता। इसी प्रकार अन्य प्रसिद्ध वैदिक ब्राह्मण जैसे कृपाचार्य, द्रोणाचार्य हों या महर्षि जमदग्नि (परशुराम के पिता) अथवा महर्षि ऐतरेय, इन सबकी उत्पत्ति उन्हीं ब्राह्मण ग्रन्थों में अप्सरा, गणिका, देवकन्या (उच्चकोटि की वैश्या ही तो वे थीं) से होना बताया गया है। फिर भी वे ब्राह्मण। पर नन्द सम्राट शूद्र क्योंकि उनकी माँ शूद्रा थी। कैसे दोहरे मापदंड इस हमारे महान् देश में रहे हैं।

बौद्ध कालीन ग्रन्थों में प्राचीन राजघरानों को खत्तिय कहा जाता है। यहीं खत्तिय पश्चिमी भारत में खत्री नाम से जाने जाते हैं, जिन्होंने प्राचीन काल में वाणिज्य व्यवसाय अपना लिया था। आज भी किसी खत्री (कपूर, टंडन, मेहरा, महरोत्रा, मल्होत्रा, खन्ना आदि आस्पद प्रयोग करने वाले) से उसकी जाति पूछिये वह खत्री बतायेगा और साथ में कहेगा पुराने जमाने के क्षत्रिय, और खत्री-खत्री में ही शादी करेगा नकि खत्री-क्षत्रिय या खत्री-बनियों में। सिक्खों के दसों गुरु खत्री जाति के थे। गुरु नानक जी का जन्म वेदी जाति के हिन्दुओं के यहाँ हुआ था।

ब्राह्मणों का उपनयन संस्कार भी समान रखा गया। कौन किस जाति का है, यह सदा पूछना कोई अच्छी बात तो हैं नहीं अतः ब्राह्मणों ने पहचान के लिये जनेऊ में अलग-अलग तन्तुओं का विधान बनाया। जैसे ब्राह्मण के लिये कपास का जनेऊ, क्षत्रिय को ऊन का तथा वैश्य के लिये सन (जूट) के रेशा का। अन्त में श्री गिरीश चन्द्र सिंह सैंथवार लिखते हैं-मैंने आपकी पूर्व पुस्तकों को ध्यान से पढ़ा, आपकी धारणायें स्पष्ट हैं, सत्याधारित हैं। आप पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप हमारे समाज के बहुत कुछ क्या खोये हुये पुराने गौरवमय-इतिहास को उजागर करने में सक्षम है, बशर्ते कि आप अपना इतिहास बौद्धों और जैनों के भारत के प्राचीन गण राज्यों, राजघरानों में खोजे।

सैंथवार एवं मल्ल कूर्मि क्षत्रिय

भगवान बुद्ध के काल से या उसके कुछ पूर्व से सोलह महाजनपद थे। उनमें एक 'मल्ल-जनपद' भी था। जैन कल्प सूत्रों में नौ मल्लों का उल्लेख मिलता है, किन्तु बौद्ध ग्रंथों में तीन मल्लों का उल्लेख मिलता है। ये सोलह महाजनपद थे-1. अंग, 2. मगध, 3. काशी, 4. कोसल, 5. बज्जी, 6. मल्ल, 7. चेती, 8. वंस, 9. कुरू, 10. पञ्चाल, 11. मच्छ, 12. शूरसेन, 13. अस्सक , 14. अवन्ती, 15. गन्धार एवं, 16. कम्बोज। ('बुद्धिस्ट इंडिया', 1917, पृष्ठ 18)

यह सोलह राज्य उत्तर, हिन्दुस्तान में वर्तमान अफगानिस्तान से बंगाल तक ईसा पूर्व 6 वीं सदी तक में फैले थे। इनके अलावा वर्तमान बिहार के उत्तर में कम-से-कम दस प्रजातन्त्र भी थे जिनके गणों और राजधानियों के नाम इस प्रकार हैं ("रिहजडेविड्स बुधिस्ट इंडिया" पृ० 23) :-

गण	राजधानी
साकिय (शाक्य)	कपिलवस्तु
बुलि	अल्लकप्प
भग्ग	सुसुमार
कोलिय	रामग्राम

कालाम	केसपुत्त
मल्ल	पावा
मल्ल	कुसीनारा
मोरिय	पिप्पलिबन
विदेह	मिथिला
लिच्छवि	वैशाली

जैन आचाराङ्ग सूत्र कहता है कि किसी-किसी गण में दो राजा थे और किसी किसी में एक भी नहीं। गण-राज्यों में संथागार होते थे, जहाँ लोग जमा होकर शासन के मामलों पर विचार और निर्णय करते थे और किसी अज्ञात रीति से अपना एक मुखिया-राजा चुनते थे।

तित्तिर जातक (1/217) में बुद्ध भिक्खुओं से पूछते हैं कि सबसे अच्छे स्थान, पानी और भोजन का अधिकारी कौन है ? कुछ भिक्खुओं ने उत्तर दिया कि वह जो भिक्खु होने के पहले क्षत्रिय था। औरों ने कहा कि नहीं, वह जो पहिले ब्राह्मण या गृहपति था। पर बुद्ध ने कहा कि इन सब मामलों में जाति-पाँत का भेद बिल्कुल निरर्थक है।

बौद्ध साहित्य में एक और मनोरंजक बात है। यहाँ वर्णों की गिनती में सदा क्षत्रियों का नाम पहिले आया है और उसके बाद ब्राह्मणों का; अभिप्राय यह है कि क्षत्रिय ब्राह्मण से ऊँचे हैं। दीर्घ निकाय और निदान कथा में तो साफ-साफ कहा है कि क्षत्रियों का पद ब्राह्मणों से ऊँचा है (दीर्घ निकाय 3/1/24/26, निदान 1/49) ।

इस समय क्षत्रियों की पदवी ब्राह्मणों से बहुधा ऊँची हो गई थी। ब्राह्मण धर्म का प्रभाव घट गया था, बुद्ध इत्यादि ने क्षत्रिय-कुल को विभूषित किया था। और विद्या का बल भी था। उनकी प्रतिष्ठा सदा ही रही। इस काल में उनकी प्रधानता हो गई। भद्रबाहु स्वामी के कल्पसूत्र में ब्राह्मणों की गिनती नीच कुलों में की गई है। तीर्थंकर कभी ब्राह्मण कुल में जन्म नहीं ले सकते। चौबीसों तीर्थंकरों के अलावा जैन बहुत से चक्रवर्ती, बलदेव और बसुदेव भी मानते हैं और उनको महापुरुष समझते हैं। ये भी ब्राह्मण कुल में जन्म नहीं ले सकते।

24 वें तीर्थंकर वर्धमान महावीर के जन्म के विषय में एक कथा है जो कुल सम्बन्धी जैन विश्वासों पर बहुत प्रकाश डालती है। कहा जाता है कि महावीर स्वामी एक ब्राह्मणी के गर्भ में आ गये; यह देखकर देवराज इन्द्र बड़े घबराये। कभी किसी शलाका पुरुष ने ब्राह्मण-कुल में जन्म नहीं लिया था; 24 वें तीर्थङ्कर क्षत्रिय न होकर ब्राह्मण हों यह कैसे हो सकता है ? अतएव इन्द्र ने महावीर को ब्राह्मणी के गर्भ से क्षत्राणी त्रिफला के गर्भाशय में पहुँचा दिया। (कल्पसूत्र 17) कोई-न-कोई ब्राह्मण मूर्ख या पाजी साबित होता है। (सम्भव ० 5 । , जुण्ह ० 4/96 ।। जातक (1/425/4/484)

मल्ल : मल्ल पूर्वी भारत का शक्तिमान गण था। भीम ने मल्लों को प्राचीन काल में जीता था। मल्ल कुसीनारा और पावा में बंट गये थे। मनु ने मल्लों को क्षत्रियों और व्रात्य क्षत्रियों की संतान माना है। ये अपने को राजा कहते थे। इनका संघ था। मल्ल योद्धा थे। कुश्ती के शौकीन थे अतः उसे मल्ल नाम मिला। तीन मल्ल जिनका उल्लेख मिलता है वे हैं क्रमशः कुशीनारा, पावा तथा अनुपिया। इनके अन्तर्गत अनेक प्रसिद्ध नगर थे जैसे, भोगनगर, अनुपिया तथा उरुवेलकप्प। कुशीनगर और पावा तथा अनुपिया देवरिया जिला (उत्तर प्रदेश) में हैं। कसया ही कुसीनारा है, सैंथवार कुरमियों का पड़रौना स्टेट का पड़रौना शहर ही 'पावा' नगरी है, कुछ लोग फाजिल नगर को पावा मानते है वह भी देवरिया जनपद में स्थित है। पड़रौना तो अब नया जिला बना दिया गया है।

इसी मल्ल गणराज्य में जिसकी मान्यता राजघराने में की जाती थी, भगवान बुद्ध ने जन्म लिया, जिन्होंने ब्राह्मण अथवा वैदिक धर्म की निरर्थकता को देखकर उनके विरोध में बौद्ध धर्म चलाया। इसी मल्ल गणराज्य संघ में विश्व प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त हुये हैं, जिनकी राज्य-सीमायें वर्तमान भारत से दूनी परिधि की थी, जिनका अन्तिम समय श्रवण वेलगोला (कर्नाटक राज्य, जहाँ बाहुबली, गोमटेश्वर की 57 फुट ऊँची विशाल प्रतिमा एक हजार वर्ष से खड़ी है) में बीता। इसी मल्ल कुल में सम्राटों अशोक जैसा विश्व विख्यात सम्राट हुआ। जिसकी तुलना विश्व के इतिहासकार अपने अपने देशों के शीर्षस्थ सम्राट से करते हैं। नौ मल्लों में से अनेक के वंशज, अपने प्राचीनकाल से अब तक अपने मूल स्थान पर बसे हुये है। वे प्राचीन खत्रिय वंश के है इसीलिये प्रत्येक सैंथवार व मल्ल अपने को अन्तर्मन से खत्रिय (क्षत्रिय) समझता है।

मल्ल जनपद दो भागों में विभक्त था, जिसकी राजधानियाँ कुशीनारा तथा पावा थीं। उत्तरप्रदेश के वर्तमान देवरिया जिले

realpatidar.com

के पूर्व में छोटी गंड़क नदी के तट पर स्थित कसिया कुशीनारा है और पावा को कसिया से बारह मील उत्तरपूर्व की ओर पड़रौना कस्बे से समीकृत किया गया है। मल्लों का शालवन जहाँ बुद्ध का निर्वाण (मृत्यु) हुआ था वह कुशीनारा या कसिया, सम्भवत: हिरण्यवती के समीप स्थित था। जब मल्लों का संविधान राजतंत्रात्मक था, तब उनकी राजधानी का नाम कुशावती था, किन्तु बुद्ध के समय में जब राजतंत्रात्मक संविधान की जगह उनका संविधान गणतंत्रात्मक हो गया तब उनकी राजधानी का नाम बदलकर कुशीनारा हो गया। मल्लों का संघ राज्य था। मल्लों एवं लिच्छवियों में कुल मिलाकर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। किन्तु कभी-कभी उनमें संघर्ष भी हो जाते थे। मल्लों में भी बौद्ध धर्म के अनेक अनुयायी हुए।

डा० सत्यव्रत सिन्हा ने "भोजपुरी लोक गाथा" नाम पुस्तक सन् 1957 में लिखी जिसे, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित कराया गया। यह रचना, डा० सिन्हा के प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० के लिये स्वीकृत शोध-प्रबन्ध, पर आधारित है। इस पुस्तक में 'विजय मल' भोजपुरी लोक गाथा का विशेष उल्लेख है। यह भी एक वीर गाथा है जिसमें मल्ल क्षत्रियों के एक युद्ध का वर्णन है। इस वीर गाथा का इस पुस्तक में अन्यत्र भी विस्तार से वर्णन दिया है। पृष्ठ 97 पर लेखक लिखता है-"विजयमल" के नाम में 'मल' शब्द से विजयमल का क्षत्रिय होना सम्भव हो सकता है। क्षत्रियों में 'मलक्षत्रिय' भी एक उपजाति है, परन्तु क्षत्रिय लोग (सम्भवत: राजपूत लोग) 'मलक्षत्रियों' को कुलीनवंश का नहीं मानते हैं।

संस्कृत के 'मल्ल' शब्द का अर्थ होता है, कुश्ती लड़ने वाला। विजयमल की वीरता इस अर्थ की पुष्टि करती है। डा० आपर्ट ने भारतवर्ष के आदिम निवासियों पर विचार करते हुए लिखा है कि मल्ल, मल, मालवा तथा मलाया इत्यादि शब्द द्राविड़ी भाषा से निकले हैं, जिसमें 'मल' शब्द का अर्थ होता है पर्वत (डब्ल्यू० कुक०-ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेस एंड अवध, भाग तीसरा, पृ० 451)। किन्तु एक बात और भी है। उत्तरी भारतवर्ष में, विशेष करके उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में तथा बिहार में 'मल' या 'मल्ल' नामक एक महत्त्वपूर्ण जाति निवास करती है। डब्ल्यू० कुक ने 'मल' जाति पर विचार करते हुए लिखा है कि 'मल' लोग कुर्मी जाति के होते हैं। ये अपनी उत्पत्ति ऋषि मौर्य भट्ट तथा कुर्मिन स्त्री के संयोग से बताते हैं। सरयू नदी के किनारे गोरखपुर जिले में 'कंकराडीह' नामक गाँव है। यहाँ मल्लों की बस्ती है। उनका कथन है कि कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के समय से उनको उक्त प्रदेश में राज्य करने की आज्ञा मिली थी। 'मल' लोगों में वैष्णव पंथी तथा शैव पंथी दोनों होते हैं। विशेष करके ये लोग काली तथा डीह (ग्राम देवता) की पूजा करते हैं। (डब्लू ० कुक-"ट्राइब्स एंड कास्टस आफ नार्थ वेस्ट, प्राविन्सेस एंड अवध," भाग 3, पृष्ठ 150)

जैसा पहले कहा गया है कि नौ मल्लों में पाँच को पहचाना जा चुका वे हैं-पावा एवं कुशीनारा के मल्ल, रामग्राम के कोलय, कपिलवस्तु के शाक्य एवं पिप्पलीवन के मोरिया। कपिलवस्तु के शाक्य गणराज्य में तथागत भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, जिन्होंने सारे संसार को ज्ञान का मार्ग प्रशस्त किया। विश्व की एक तिहाई जनता उनको भगवान मानकर पूजती है। भगवान बुद्ध की ननिहाल देवदह के कोलयों एवं ससुराल राम ग्राम के कोलयों में थी। इतिहासकारों के मतानुसार गोरखपुर मण्डल के मल्ल कुरमी 'दास' आस्पदधारी है, और प्राचीन खत्रिय है। अत: मल्लों, सैंथवारों का घराना सामाजिक और जातीय दृष्टि से सर्वाधिक सम्माननीय हुआ जिसमें भगवान बुद्ध स्वयं अवतरित हुये।

डा० रांगेय राघव अपनी पुस्तक "प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास" (प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली 1953) के इस देश में आर्य अपने अनार्य शत्रुओं में सबल लोगों को यदि हरा नहीं पाते थे तो उन्हें पतित बना देता थे जैसे 'पासी' और 'चन्डालों' की हालत हुई। बिहार की 'भर' जाति का भी यही बुरा परिणाम निकला। बयाना में पायी पुरातन मानव-खोपड़ी, बेहूदा किस्म की नहीं है। संभवत: यह 'भर' जाति की है, जो कि संयुक्त प्रान्त में रहती थी। कुछ लोगों का मत है कि भारत का नाम इसी भर जाति के कारण पड़ा। पं० राहुल सांस्कृत्यायन ने इसी भावना को 'सतमी के बच्चे' नामक कहानी संग्रह की एक कहानी में व्यक्त किया है।

यह विवरण भी मिलता है कि प्राचीन आर्यों (दिवों) के मुख्य कबीले थे, अथर्वण, आंगिरस, भृगु, जामदग्नि, अत्रि, वसिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, काश्यप, अगस्त्य, काण्व, अंगिरा इत्यादि। आरम्भ में आर्यों के अंगिरा, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु चार गोत्र थे, जिनमें एक गोत्र के प्रवर्तक कश्यप है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने इन्हीं 'कण्व' ऋषि के सम्बन्ध में अपने एक निबन्ध में लिखा है कि कहा जाता है कि कणवी (कुनबी) 'कण्व' ऋषि के वंशज हैं।

मल्ल गण राज्य: शाक्य गौतम गोत्र के क्षत्रिय थे। लिच्छवि और मल्ल वशिष्ठ गोत्री थे। आर्यों के अनुसार यहाँ भी क्षत्रिय का गोत्र उसके पुरोहित का गोत्र, वैसा ही होता था। कुशीनारा के एक राजा का बंधुल नामक पुत्र तक्षशिला पढ़ने गया था। वहाँ कोसल का राजकुमार पसेनदी तथा वैशाली के लिच्छवि राजकुमार महालि साथ पढ़ते थे। मल्ल दार्शनिक चिन्तन में

realpatidar.com

लगे रहते थे। लिच्छवियों की तरह मल्ल, बौद्ध और जैन धर्मों के पूर्व, चैत्य पूजक थे। मुकुटबंधन उनका एक चैत्य था। जैन धर्मों के कई अनुयायी मल्ल थे। पावा में तीर्थंकर भगवान महावीर की मृत्यु हुई थी। भगवान बुद्ध ने महावीर के निधन का दुःखद समाचार पावा में ही सुना था। बुद्ध के भी यहाँ अनेक अनुयायी थे। कुशीनारा के मल्लों के बीच बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। वे पावा से बीमारी की अवस्था में ही चले गये थे। मल्लों ने बुद्ध का अन्तिम संस्कार उसी प्रकार किया जैसे किसी चक्रवर्ती राजा का किया जाता था। दाह कर्म करके अपने संथागार में तथागत के अस्थि-अवशेष सम्मानपूर्वक रख लिए। उसके चारों ओर भालों और तीर-कमानों की बाड़ लगा दी।

पावा के मल्लों ने भी बुद्ध की अस्थि मांगी जो उन्हें सम्मानपूर्वक दे दी गई। कुशीनारा और पावा दोनों गणों के मल्लों ने बुद्ध की चिर-स्मृति में स्तूप बनाये। मल्ल और लिच्छवि लड़े पर वे मित्र थे। अजातशत्रु ने मल्लों को जीत कर मगध के राज्य में उनके राज्य मिला लिये।

सैंथवार : भगवान बुद्ध का निर्वाण (मृत्यु) कुशीनारा में हुआ था और उनका शरीर यहाँ के मल्लों के 'संस्थागार' में रखा गया था। जैसे ऊपर वर्णन किया गया है ये मल्ल पाली भाषा बुद्धयुग के प्राचीन क्षत्रिय थे जोकि उस युग में खत्तिय कहे जाते थे। गोरखपुर में एक जाति है जिसका नाम है 'सइंथवार'। इस शब्द की उत्पत्ति संभवतः 'संस्थागार' से ही हुई है। कदाचित् प्राचीन संस्थागार (सभाभवन) के ये लोग रक्षक रहे होंगे। (डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डी० लिट०, " ओरिजनएंड डेवलेपमेंट ऑफ भोजपुरी)।

पिपलीवन के मोरिय, कपिलवस्तु के शाक्यों की ही एक शाखा थी, जो कोशल नरेश प्रसेनजित के पुत्र विड़ूडभ के कपिलवस्तु पर हमला कर देने पर, जान बचाकर पिप्पलीबन जा बसे थे। इसी मोरिय कुल में विश्व प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य एवं सम्राट अशोक हुये हैं जिनकी तुलना विश्व के प्रसिद्ध सम्राटों से की जाती है। ऐसी महान विभूतियों द्वारा जिन जातियों की गौरव वृद्धि हुई मल्ल और सैंथवार कुरमी जन उनसे सम्बंधित हैं। भगवान बुद्ध के बाद जब इस देश में बौद्ध धर्म को ब्राह्मणवादी सनातन धर्म के अनुयायियों ने समूल उखाड़ फेंका तो उनके अनुयायी मल्ल और सैंथवार कुरमियों को शूद्र या व्रात्य कहा गया। दम्भ की सीमा उन्होंने उस समय पार कर दी जब महान सम्राट अशोक जिसको विश्व महान सम्राट मानता है उनकी प्रसिद्ध उपाधि "देवनाम प्रिय, प्रियदर्शी" को ब्राह्मण ग्रंथों में मूर्ख का पर्यायवाची के रूप में लिखा गया। सम्राट अशोक महान पर ब्राह्मणवाद द्वारा फेंका गये अपमान तथा असत्य का थूक और कीचड़ आज बीसवीं सदी के अन्त में ही लौटकर उन्हीं के मुँह पर गिर रहा है। इक्कीसवीं शताब्दी में अपने पापों का बहुत कुछ फल भोगना होगा ऐसे आसार देश में बनते जा रहे हैं। इतिहास करवट ले रहा है जो असत्य कहा गया वह प्रगट हो रहा है। और अब मल्ल और सैंथवार कुरमियों, को जबरदस्ती राजपूतों के पुनछल्ले बनने की आवश्यता नहीं है और न अपने को कुरमी मानते हुये कोई हीन भावना मन में लाना चाहिये। उनको केवल अपने को अधिकाधिक शिक्षित होकर अपने को बुराइयों से मुक्त करना होना। उनका भविष्य उज्जवल है यह निश्चित है।

राजपूतों की उत्पत्ति, बौद्ध राजा हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् सातवीं सदी के अन्त में सन् 647 ई० के बाद हुई। ब्राह्मणों ने कूर्मि और प्राचीन खत्तियों के समानान्तर 'राजपूतों' का सृजन आबू पर्वत पर अग्निकुंड से अन्य कबीली और लड़ाकू जातियों को शुद्ध करके अथवा हिरण्यगर्भ द्विज पद्धति द्वारा घोषित करके उनसे इस देश से बौद्ध धर्म समूल नष्ट कराया और बौद्ध विहार और बौद्ध भिक्षु इन्होंने ही समाप्त किये मुसलमान तब तक आये भी न थे। इन नव सृजित राजपूतों (क्षत्रियों) ने प्राचीन खत्रियों (बौद्ध कालीन क्षत्रियों) से अपना रक्त-सम्बन्ध स्थापित करने के सतत प्रयास किये। किन्तु संस्कारित प्राचीन क्षत्रिय मध्ययुग के परिवेश में कैसे अन्य नवसृजित तथाकथित असंस्कारित क्षत्रियों से, रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित कर सकते थे। अतः खत्रियों ने रक्त की शुद्धता कायम रखने के लिए नवसृजित राजपूतों से सम्बन्ध स्थापित भी नहीं किये होंगे।

नवसृजित राजपूतों के नये-नये राज्य स्थापित होते गये और उनकी सम्पन्नता बढ़ती गयी, वे शक्तिशाली होते चले गये। और पुराने क्षत्रिय अपनी मान-मार्यादा की रक्षा हेतु इधर-उधर जहाँ चैन पाया वहाँ सामूहिक रूप से जाकर बस गये और युद्ध- धर्म निभाने के अतिरिक्त कृषि-व्यवसाय को अपना जीवनोपार्जन का साधन बना लिया, जो कि उनका पुश्तैनी कार्य था। उत्तर प्रदेश के मध्य(अवध) तथा पूर्वी जिलों के गजेटियर्स को देखें तो पायेंगे कि ज्यादातर कृषि-भूमि का स्वामित्व कुरमी, लोध, कोयरी, भर आदि जातियों के पास था, कुरमियों की अनेक जागीरें थीं। वे सब मुसलमानों से पराजित होने पर मूल स्थानों से खदेड़े गये। राजपूत यू० पी० और बिहार में मूल भू-स्वामियों से छीनकर स्वयं भूपति, जागीरदार एवं ताल्लुकेदार और जमींदार बन बैठे।

जब राजपूतों की उत्तरभारत में तूती बोलने लगी तो स्वार्थवश कुरमियों की कुछ उपजातियों ने जैसे मल्ल, सैंथवार, सिंगरौर

चन्देल और अवधिया आदि ने प्राचीन काल में अपनी सम्पन्नता के बल पर राजपूतों में प्रवेश करने के प्रयास किये। ऐसे उदाहरण मिलते हैं। कुछ सफल भी हुये पर वे राजपूतों की दृष्टि में नोका ठाकुर या दोयम दर्जे के राजपूत रहने को तैयार न हुए। हताश हो इनमें से ज्यादातर अपनी मूल कूर्मि क्षत्रिय जाति में वापिस आ गये। यह प्रक्रिया जारी है। एक उदाहरण बुजुर्ग कुरमी तो जानते होंगे, युवापीढ़ी को जाननी चाहिये। देवरिया जिले में जो पड़रौना राज्य था वह सैंथवार कुरमियों का था जिसके श्री सी० पी० यन० सिंह अपने को कुरमियों के बीच कुरमी मानने लगे थे। उन श्री सी० पी० एन० सिंह की कुछ वर्ष पहले हत्या अपने क्षेत्र में कर दी गई। ये पूर्व सांसद और केन्द्रीय राज्यमंत्री भी रहे। इनके पिता जी पड़रौना के राजा कहलाते थे अपने राज्य के वैभवकाल में पड़रौना में राजपूत महासभा वालों ने सम्मेलन बुलाया, जिसके लिये राजा ने चांदी वाला, मल्का विक्टोरिया का, एक लाख रुपया नगद दान स्वरूप दिया। उसके उपलक्ष्य में उन्हें सार्वजनिक रूप से महासभा द्वारा राजपूत घोषित कर दिया गया। बाद में बड़े राजपूत परिवारों ने उन्हें राजपूत नहीं माना। छोटे और गरीब राजपूत ही उनसे रोटी-बेटी का सम्बन्ध करने को आगे गए। यहाँ तक कि युवराज श्री सी० पी० एन सिंह तक को किसी रजवाड़े के ठाकुर या राजपूत ने अपनी बेटी नहीं दी। मजबूरन उनका प्रेम विवाह एक पंजाबी चोपड़ा लड़की से हुआ। श्री सिंह के साले श्री चौपड़ा पत्रकार हैं और इस लेखक के निवास के निकट दिल्ली में रहते हैं।

अतः मल्ल, सैंथवार, सिंगरौर, पटनवार, चन्देल आदि उपजातियों को स्मरण रखना चाहिए कि उनके पूर्वजों का वैदिक काल में, उत्तर वैदिक तथा बौद्ध कालीन भारत में क्षत्रिय जनों के रूप में विश्व में जैन से बौद्ध धर्म के प्रवर्तक लेकर तथा सम्राट चन्द्रगुप्त और सम्राट अशोक से सीधा सम्बंध है जिसका जो स्वर्णाक्षरों से इतिहास लिखा है, जिनके अशोक की लाट पर अंकित चिन्हों भारतवर्ष का राष्ट्रपति एवं विभिन्न राज्यपाल अपनी पहचान कराते हैं, जिसका चिन्ह चक्र (धर्म प्रवर्तन चक्र) हमारे राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय मुद्रा पर अंकित है। हमें इन प्राचीन गौरवमय कूर्मि क्षत्रियों से अपने को जोड़ना है या 7 वीं सदी से नवसृजित राजपूतों के पुनछल्ले बनकर नोका (नये) ठाकुर कहलाना है।

किन्तु उसी समय मुगलों के विरुद्ध सुदूर दक्षिण में जहाँ कुनबी-मराठों ने मुगल बादशाह औरंगजेब को छब्बीस वर्ष चैन की नींद नहीं लेने दी, वहीं पंजाब में सिखों के नेता गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्द सिंह ने, मालवा के छत्रसाल ने, दिल्ली के आस-पास आगरा, मथुरा, अलीगढ़, बरणा और यमुना के पूर्वी तट के साथ मुगलों के नाक के नीचे जाटों ने भी उन्हें चैन से नहीं बैठने दिया। "दिल्ली की किल्ली" को साधने का अद्भूत गुर उनके पास था।

शिवाजी महाराज और उनके वंशज़ों के सतत प्रयासों से मराठे एक नयी शक्ति के रूप में उत्तर भारत में उभर आये थे। मुगलों के साथ राजपूतों का सितारा भी डूब चला था। जो दुर्दिन मुगलों ने देखे उसमें राजपूतों को मराठों से बड़ा उत्पीड़न मिला। उन्हें मराठा-शक्ति ने उजाड़ कर रख दिया, और उनकी सत्ता छिन्न-भिन्न हो गयी। उत्तर में जाटों और सिखों ने मराठों से लोहा लिया और जाटों की अप्रसन्नता की वजह से ही मराठा सरदार सदाशिव राव भाऊ पानीपत के मैदान में मोहम्मद शाह अब्दाली से इस बुरी तरह पराजित हुआ कि उसके साथ मराठा-शक्ति उत्तरी भारत से लुप्त हो गयी। मराठा सैन्य बल का संचालन पेशवाओं के हाथ में था, वे जाट-शक्ति के पुंज, राजा सूरजमल, का मन न जीत पाये। उनके जातीय दंभ (पेशवाओं का ब्राह्मण दम्भ) के सम्मुख जाट झुकना नहीं चाहते थे। बाद में महादजी सिन्धिया का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने क्षत-विक्षत मराठा शक्ति को पुनः संगठित किया, सबल बनाया और मराठा राज्य का विस्तार करते-करते दिल्ली में जमकर मुगल सम्राट शाह आलम के संरक्षक बने और उनके झंडे के साथ-साथ शिवाजी महाराज का भगवा ध्वज भी प्रथम बार दिल्ली के लाल किले पर फहराया गया था। इस पुस्तक में अन्यत्र महादजी सिन्धिया की सुकीर्ति तथा अंग्रेज़ों ने भारत की सत्ता मराठों से कैसे छींनी उसका उल्लेख विस्तारपूर्वक किया जा चुका है।

समाज सुधार के अनेकानेक आन्दोलन

इस देश को और हिन्दू जाति को ऊँच-नीच, छुआ-छूत की संकुचित विचारधारा ने जितनी क्षति पहुचायी है, उतनी, हूण, शक, मुसलमान और अंग्रेज़, डच, फ्रांसीसी और पुर्तगाली विदेशियों ने भी नहीं। वे आये, शासक बने, और समाप्त हो गये। निष्पक्ष दृष्टि से देखें तो उनकी मौजदूगी से स्वाभिमान तथा अन्य प्रकार की क्षतियाँ झेली गई पर साथ में वे अनेक सुधारवादी कार्य भी कर गये, जो यहाँ के पोंगापंथी धर्म के ठेकेदार लोग खुशी-खुशी होने न देते। उनकी संकुचित विचारधारा के कारण ही बहुत से लोगों को हिन्दूधर्म तक तज़कर इस्लाम या ईसाई आदि धर्मों में पनाह लेनी पड़ी। वे हिन्दूधर्म को कमज़ोर, और उसके एक बड़े वर्ग को पिछड़ा और दलित बना देने के दोषी हैं। इस देश में बाहर से मुसलमान बड़ी संख्या में नहीं आये, और जो आज नज़र आते हैं, या जिन्होंने पाकिस्तान और बंगलादेश बनाया उनके अधिकांश पूर्वज हिन्दुओं से ही मुसलमान बनाये गये थे। यही सच्चाई

देश में मौजूदा ईसाइयों की इतनी बड़ी आबादी के प्रति भी है। इतना कुछ खोकर भी हिन्दुओं में से आज भी ऊँच-नीच की न भावना समाप्त हुई है और न सुधार लाकर समान बनाने के प्रति ब्राह्मणवाद का दुर्योधन-हठ, जिसका एक उदाहरण है 9 जनवरी 1994 को कलकत्ता के शारदेश्वरी आश्रम में माँ शारदा के शताब्दी समारोह में एक भद्र महिला द्वारा वेद पाठ करना मुख्य अतिथि पुरी के शंकराचार्य, ने यह कहते हुये रूकवा दिया कि नारियों का वेद पठन-पाठन वर्जित है।

जबसे हिन्दु धर्म के स्वार्थी तत्त्वों ने अपनी सन्तति का भविष्य सुनिश्चित करने के लिये वर्णाश्रम-विभाजन व्यवस्था को "कर्मणा से जन्मना" बना डाला तब से हिन्दू धर्म तथा जाति व्यवस्था जड़-जड़ हो गयी, उस स्थिति को सुधारने के लिये तथा धार्मिक कट्टरता दूर करने के लिये बुद्ध और महावीर जैसे महापुरुष ने बहुत कुछ परिवर्तन लाये। समाज फिर जीवन्त बन उठा, समता और समानता पुन: स्थापित की गयी। पर पुराने घाघ क्या चुप बैठने वाले थे, जैन और बौद्ध धर्मों में घुसकर उन्होंने उनको अधोगति तक पहुँचा दिया और काल-चक्र ने करवट ली, ब्राह्मणवाद अपने अमानवीय तरीकों से उन धर्मों को मिटाने और घटाने में वे सफल हुआ। और सनातन धर्म अधिक जड़ता के साथ पुनरोपित कर दिया गया। महावीर-बुद्ध के काल से लेकर आधुनिक काल तक धर्म सुधारकों की एक अटूट परम्परा चली आयी है, जिनमें से कई कट्टर ब्राह्मण परिवार में जन्में सपूत भी थे। धर्म सुधार के इन अनेक आन्दोलनों ने और इनके परिणामस्वरूप स्थापित अगणित मतमतान्तरों ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के संवर्धन में ही नहीं उसको जीवंत बनाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनसे हिन्दू समाज की प्राण शक्ति बढ़ी है और नई बातों और विभिन्न विचारों को ग्रहण करने का सामर्थ्य वर्धन हुआ है। यह भी सत्य है कि इस दौरान कट्टर ब्राह्मणवाद की जबरदस्त पकड़ समाज पर से काफ़ी शिथिल हो चुकी है, फलत: हिन्दू समाज के बुनियादी ढ़ांचे में मजबूती और लचीलापन आता जा रहा है। अभिजात वर्ग को भी आभास हो गया है कि यह उसके हित में होगा कि उत्तर भारत में वे पिछड़े वर्गों के लिये अवरोध न बनें, अन्यथा उनका हाल भी दक्षिण भारत में उनके वर्ग जैसा हो सकता है।

पुरातन काल में पुरोहित वर्ग और शासक वर्ग की मिली-भगत से हिन्दू धर्म में जो कर्म कांड और व्यर्थ का आडम्बर आ गया था, उसके विरुद्ध इन सुधारकों ने आवाज उठायी। इन आन्दोलनों की श्रृंखला में आधुनिक काल के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण 'भक्ति' आन्दोलन था। इस आन्दोलन के नेता संत और भक्त थे, जिनमें अनेक बहुत नीची जातियों के भी थे। ये संत देश के सभी भागों में हुये। भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप अनेक नये पंथ और सम्प्रदाय चले, उनका मनोबल मजबूत हुआ और उन्हें अत्याचार सहने की शक्ति मिली। गुरु नानक, कबीर, संत रैदास, तुकाराम, दादू, मीरा आदि इन संतों की एक बड़ी लम्बी सूची है जिनका समय-समय पर सारे देश में प्रादुर्भाव होता रहा। इन्हीं संतों ने पिछड़े और दलित लाखों-करोड़ों लोगों के आँसू पोंछे थे जो कि अपरोक्ष या परोक्ष रूप से रूढ़िवादी ब्राह्मणवाद के प्रभाव स्वरूप निकलते थे।

मीरा ने तो सारे भारत के मनुष्यों का हृदय-मन्दिर भक्ति-भाव से भर दिया था। गीतों और सुरों से गिरधर गोपाल घट-घट वासी हो चुके थे। प्रेम के द्वारा ईश्वर को पाने की व्याकुल जिज्ञासा मध्ययुग के मनुष्य के मन में, अंगड़ाई लेकर मानो जाग उठी थी, मीरा ने उसी आनन्द, वेदना, चेतना और स्वप्न से उस अदृश्य प्रभु के मानो स्वयं दर्शन कर लिये थे और अन्य जनों को उस अद्भुत अनुभूति का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। मीरा उस काल में अकेली नहीं आयीं थी। उस भंयकर निराशाजन्य और संकट काल में बंग-भूमि में चैतन्य महाप्रभु और पश्चिम पंजाब में गुरू-नानक देव जी सद्गुरु की भक्ति और प्रेमधर्म का सन्देश लेकर देश विदेश में दूर-दूर स्थानों पर जाकर प्रचार-प्रसार कर रहे थे। काशी में निरक्षर कबीरदास ने सृष्टि में अपरूप लीला की खोज कर कहा :-

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
तात, मात, भ्रात, बन्धु आपन नहि कोई।।
प्रीतम को पतियां लिखूँ, जो कहूँ होय विदेश।
तन में, मन में, नैन में, ताको कहा सन्देश।।

दक्षिण में रामानुज सम्प्रदाय के अनेक संतों ने ज्ञान और भक्ति का एक अपूर्व समन्वय किया। महाराष्ट्र के एक से एक बढ़कर भक्त संतों ने भक्ति आन्दोलन से पीड़ित वर्ग के घायल मन पर मरहम लगाया उसे इहलोक से परलोक की तरफ प्रेरित किया। जिससे वे अपनी शारीरिक और मानसिक वेदना भूल सके। छत्तीसगढ़ (मध्य प्रदेश) के जनजाति अंचल में सतगुरु के भक्त बनकर सतनामी सम्प्रदाय में प्रवेश लेकर लाखों जनजाति वाले हिन्दुओं ने अपना धर्म और स्वाभिमान सुरक्षित रखा, अन्यथा वे अब तक किसी ईसाई मिशनरी द्वारा ईसाई बना लिये गये होते। कूर्मि जाति के रत्न स्वामी आत्मानन्द जी का यही कर्मक्षेत्र था और यहाँ पर राजनन्द गाँव के पासे जीप उलटने से वे अकाल मृत्यु के शिकार बने।

समाज सुधारक-युग पुरुष
कोल्हापुर नरेश राजर्षि सर छत्रपति शाहू महाराज

मराठा साम्राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज के अकस्मात् देहावसान के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र, शम्भू जी (सम्भा जी) राजा बनाये गए। पर वे कठिन परिस्थितियों के कारण, शिवाजी महाराज के शौर्य से विजित तथा स्थापित मराठा साम्राज्य, को सुरक्षित न रख पाये। मुगलों को मराठा राज्य सदैव आँखों में गिरे तिनके की तरह खटकता रहता था। अत: घात लगाकर मुगलों ने शम्भू जी को परिवार सहित कैद कर लिया। उन्हें दिल्ली ले जाया गया और वहाँ मुगल बादशाह औरंगजेब के हुक्म से घोर क्रूरता पूर्वक शम्भू जी की हत्या कर दी गई और उनके अल्पवयस्क पुत्र, शिवाजी द्वितीय को, शाहजादी फुएजुन्निसा बेगम के संरक्षण में पालन-पोषण के लिए रख दिया गया। शाहजादी ने उनका नाम बदलकर साहू रखा। साहू का बचपन दिल्ली में ही नज़रबंदी में कटा। औरंगजेब की मृत्यु होने पर दिल्ली में शाहजादा आजम, बहादुरशाह की उपाधि धारण करके मुगल साम्राज्य का बादशाह बना। उसने सन् 1707 ई० में साहू जी को सपरिवार स्वदेश (महाराष्ट्र) वापस जाने दिया।

इस बीच दक्खिन (महाराष्ट्र) में शम्भू जी के छोटे सौतले भाई राजाराम ने बड़ी योग्यता और वीरता के साथ मुगलों से डटकर संघर्ष करते हुये मराठा राज्य का सन् 1695 से 1698 ई० तक कार्यभार संभाला। वह इतना सत्यनिष्ठ एवं निर्लोभी व्यक्ति था कि जीवन पर्यन्त वह साहू का ही राज्याधिकार मानता रहा, किन्तु मराठों का दुर्भाग्य था कि केवल 3 वर्ष शासन करने के बाद सन् 1968 में यकायक राजाराम का निधन हो गया।

राजाराम महाराज की दो महारानियां थीं- महारानी ताराबाई और महारानी राजसबाई। महारानी ताराबाई का पुत्र शिवाजी था और महारानी राजसबाई का सम्भा जी द्वितीय। राजाराम महाराज के देहावसान के पश्चात् महारानी ताराबाई की देख-रेख में उनका पुत्र, शिवाजी द्वितीय के नाम से सिंहासनारूढ़ कराया गया। और उसने राज्य का शासन-तन्त्र संचालित किया। 9 वर्ष बाद जब साहू जी दिल्ली की नजरबंदी से स्वतंत्र किये गये तब वे सपरिवार महाराष्ट्र वापिस लौटे। और राज्य का अपना न्याय-संगत उत्तराधिकार हस्तगत करना चाहा। मगर महारानी ताराबाई अपने पुत्र की ओर से शासन सत्ता तज़ने को तैयार न थीं। परिणामस्वरूप राज्य में महारानी ताराबाई के विरूद्ध तथा महारानी राजसबाई के पुत्र युवराज सम्भा जी द्वितीय के पक्ष में एक जन-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और अन्त में महारानी ताराबाई को ही शासनाधिकार से अपने पुत्र सहित हट जाना पड़ा। तद्पश्चात् राज्याधिकार के दाबे के लिये साहू महाराज और सम्भा जी द्वितीय के सैन्य बलों में संघर्ष छिड़ गया। सन् 1730 ई० तक रुक-रुक कर युद्ध चलता रहा। साहू जी ने सम्भा जी द्वितीय को पराजित कर दिया। अत: सम्भा जी को साहू जी का राज्याधिकार मानना पड़ा। साहू जी अपने पराजित भाई के प्रति उदारता बरतना चाहते थे। साहू जी महाराज ने कोल्हापुर तथा वरुणा एवं कृष्णा नदियों के उत्तर का भू-भाग नये राज्य के रूप में अपने चचेरे भाई सम्भा जी को दे दिया। उस नये राज्य की राजधानी कोल्हापुर बनी। वरुणा और कृष्णा के उत्तर का शेष भू-भाग दूसरे नये राज्य के रूप में साहू जी महाराज ने अपने अधिकार में रखा और सतारा को अपने इस नये राज्य की राजधानी बनाया। इस प्रकार शिवाजी के वंशज़ों के सतारा और कोल्हापुर दो नये राज्य बन गये। महारानी ताराबाई भी कोल्हापुर चली गई जहाँ वे एक लम्बी आयु भोगकर सन् 1760 ई० को कैलासवासी हुईं।

नये राज्य कोल्हापुर के प्रथम राजा सम्भा जी द्वितीय हुए। दुर्भाग्य से उसी वर्ष सन् 1760 ई० में सम्भा जी का निधन हो गया। वे नि:सन्तान मरे थे। अत: सम्भा जी द्वितीय की विधवा महारानी ने एक नाबालिग मराठा बालक गोद लिया और उसका नया नाम शिवाजी तृतीय रखकर कोल्हापुर स्टेट का राजा बनाकर राज-काज स्वयं चलाया। पर वे बड़ी अयोग्य सिद्ध हुईं। राज्य में अशान्ति, अराजकता तथा लूट-खसोट की घटनाएँ घटने लगी। 18 वीं शताब्दी के अन्त तक इस कुशासन का दौर चलता रहा। दो बार अंग्रेजों के सैनिक अभियानों का सामना करना पड़ा और हर बार कुछ खोया और अंग्रेज हाबी होते गए। अन्त में कोल्हापुर की उन संरक्षिका राजमाता को ब्रिटिश सरकार का संरक्षण तथा उनकी श्रेष्ठता स्वीकार करनी पड़ी। सन् 1812 में शिवाजी तृतीय की मृत्यु हो गई उनके पुत्र युवराज सम्बा जी अब्बा साहब के नाम से प्रसिद्ध हुये। वे कोल्हापुर नरेश बनाये गये। जब उसी दौरान पूणे के पेशवाओं का अंग्रेजों से युद्ध हुआ तो तब अब्बासाहब ने अंग्रेजों का साथ दिया। इस मदद से प्रसन्न होकर अंग्रेजों ने, चिकोड़ी और मेनाउली के इलाके जो सन् 1812 ई० में पेशवा ने कोल्हापुर से छीन लिये थे, अब्बा साहब को वापस दिला दिये। पर सन 1821 में महल-षड्यंत्र का लक्ष्य बनाकर अब्बा साहब का उसी राजमहल में कत्ल कर दिया गया। उनका पुत्र अभी नाबालिग था जो अगले वर्ष ही चल बसा। तब महाराजा शिवाजी तृतीय के दूसरे पुत्र शाह जी (उर्फ बाबा साहब) को कोल्हापुर नरेश बनाया गया। पर वह बड़ा अनाचारी और अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। इन बाबासाहब का एक नाबालिग पुत्र शिवाजी चतुर्थ था। अत: राजतंत्र चलाने के लिये एक कांउसिल गठित की गई। सन् 1844 में भयंकर भ्रष्टाचार से पीड़ित प्रजा

में विद्रोह फैल गया। अंग्रेजों ने उस पर अंकुश लगाकर कोल्हापुर के प्रशासनिक ढांचे में पर्याप्त परिवर्तन कर अपने अनुकूल बनाकर कोल्हापुर का शासन फिर शिवाजी चतुर्थ को सौंप दिया। वे लगभग 12 वर्ष शासक रहे। अगस्त सन 1866 को उनका निधन हो गया। उनके भी कोई पुत्र न था। अत: ऐसी परिस्थिति में मरने से पहले उन्होंने नागू जी पाटनकर नाम के 16 वर्षीय मराठा बालक को गोद लिया था। उसको ही "राजाराम" नाम धारण करवाकर राज्य-प्रशासन सौंपा गया। राजा राजाराम ने सन् 1869 में योरोप की यात्रा की। कुछ ऐसी अनहोनी हुई कि महाराजा राजाराम का फ्लोरेंस (इटली) के भ्रमण के समय देहावसान हो गया। वहीं उनकी अन्तेष्ठि करके समाधि बना दी गई। राजाराम के भी अपना कोई पुत्र न था। अत: एक अन्य मराठा बालक गोद ले लिया गया। और उसका शिवाजी पंचम रखा गया। दत्तक पुत्र शिवाजी नाम से पोलिटिकल एजेन्ट की देख-रेख में शिक्षा-दीक्षा पाते हुये राज्य का संचालन चलाता रहा। इनके भी पुत्र न हुआ। अत: इनके निधन पर शाहू जी नाम से एक दत्तक पुत्र को कोल्हापुर नरेश बनाया गया, जोकि इस लेख का मुख्य पात्र है, राजर्षि सर छत्रपति शाहू महाराज।

कोल्हापुर राज्य के अंग्रेज पदाधिकारी कर्नल जी० बी० मालीसन सी० एस० आई ने अपनी पुस्तक "A Historical sketch of the Native States of India" में वर्णन किया है कि कोल्हापुर राज्य का विस्तार 184 वर्गमील में था। सन् 1875 में राज्य की जनसंख्या 5, 46, 156 थी। राज्य के उत्तर और उत्तर पश्चिम में सतारा, पूरब-पश्चिम में बेलगाम तथा पश्चिम में रत्नागिरि और सावन्तवाड़ी राज्य थे।

कोल्हापुर नरेश हिज हाईनेस सर शाहू छत्रपति जी महाराज

इनका जन्म 30 जनू 1874 में हुआ था। पिता का नाम था श्री जयसिंगराव उर्फ आबा साहेब घाटगे (कागल सीनियर) तथा माता का नाम था श्री राधाबाई साहेब जयसिंग राव घाटगे (कागल सीनियर)। नाबालिग अवस्था में शाहू जी को कोल्हापुर नरेश बनाने के लिये उन्हें वहाँ दत्तक पुत्र के रूप में जाना पड़ा था, अत: उनकी प्रारम्भिक शिक्षा, युद्ध कला और अन्यान्य विधाओं का प्रशिक्षण अपने समय के जाने माने प्राध्यापकों और प्रशिक्षकों के जरिये हुआ। अंग्रेज आफीसर उनके गुरु भी रहे जैसे सर एस० एम० फ्रेजर पर अन्य कई पदाधिकारी भी, जैसे कर्नल वुडहाऊस तथा कर्नल फेरीस उनके प्रशंसक एवं निकटतम व्यक्तियों में रहे।

सन् 1894 में 2 अप्रैल के शुभदिन जब वे 20 वर्ष के हुये उनको कोल्हापुर की गद्दी पर पूर्णाधिकार सहित नरेश बनाया गया। शारीरिक दृष्टि से वे लगभग 6 फिट 6 इंच ऊँचे, हृष्ट-पुष्ट, गठे हुये शरीर के स्वामी थे। वे मल्लयुद्ध में भी पारंगत थे। पहलवानी के अतिरिक्त वे अचूक शिकारी थे, घुड़सवारी में लाजबाव तथा कई प्रकार के खेलों एवं शरीरिक प्रदर्शन में वे विशिष्ट कुशलता रखते थे। सन् 1899 में उन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास कर ली थी। उनका स्वत: अध्ययन और प्रशिक्षण अंग्रेज़ विद्वानों की देखरेख में सदैव चलता रहा।

भारत में दलितोद्धार तथा समाजोत्कर्ष कार्यों के जनक

भारतवर्ष की राजनीति में महात्मा गाँधी का जब अवतरण भी नहीं हुआ था, उस काल में छत्रपति शाहू महाराज ने राजा होते हुये भी अछूतों के साथ बैठना तथा भोजन करना सार्वजनिक रूप से प्रारम्भ किया। उस समय की सामाजिक स्थिति का ध्यान कीजिये, तब तो अछूतों के साथ बैठना, भोजन करना तो दूर अछूतों की परछाई तक से सवर्णजन अपने शरीर को बचाते थे कि कहीं उससे वे अपवित्र न हो जाएं। संत तुलसीदास ने तो 'रामचरितमानस' के एक चौपाई में उन हिन्दू जातियों के नाम तक वर्णन कर डाले हैं, जिनके देखने मात्र से वह व्यक्ति अपवित्रता/अशौचय को प्राप्त हो जाता है। उसे पाप समझा जाता था। ऐसी विषम सामाजिक परिस्थिति में इस मराठा (कूर्मि) नरेश, शाहू जी महाराज के अदम्य साहस और मनोबल की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में शाहू जी महाराज का रुझान सामाजिक सुधार और दलित-दुखियों की समस्याओं के निवारण की ओर आकर्षित हुआ। अपनी हरिजन प्रजा के प्रति ब्राह्मणों का अमानवीय व्यवहार देखकर उनका हृदय उसी प्रकार द्रवित होता था जिस प्रकार कोई जुम्मेदार पिता अपने सन्तानों के प्रति किसी का अमानुषिक व्यवहार देखकर विचलित होता है और अपने सामर्थ्यानुसार उसके निवारण के उपाय तलाशता है।

कोल्हापुर नरेश ने इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम हरिजनों में शिक्षा प्रचार-प्रसार हेतु स्कूल और हरिजन छात्रावासों का निर्माण करवाया। महात्मा ज्योतिबा फूले के 'सत्य शोधक समाज' की कार्यशैली और कार्य प्रणाली का बड़ी गूढ़ता से अध्ययन किया गया और उससे प्रेरित होकर वे हरिजनोत्थान कार्यों में लग गये। हरिजनों की शिक्षा-व्यवस्था के अतिरिक्त समाज में उनको उचित और सम्माननीय स्थान बनाने के लिये उन्हें समाज में आगे बढ़ाया। गंगाराम काबले नामक एक हरिजन से अल्पाहार और चाय आदि

के लिये 'सत्य सुधारक होटल' खुलवाया और एक दिन कोल्हापुर नरेश ने अपनी शाही घोड़ा गाड़ी उस दुकान के सम्मुख रुकवाई और दुकान मालिक गंगाराम काबिले के हाथों चाय तैयार कराके उसके हाथों से ही सार्वजनिक रूप से ग्रहण कर ली। इससे दर्शक प्रजा पर बड़ा क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा और उससे प्रभावित होकर कुछ द्विज वर्ण के लोगों ने मिथ्या जातीय दम्भ तजकर अपने लोकप्रिय शाहू जी महाराज की तरह गंगाराम काबिले, हरिजन के हाथ से चाय का प्याला लेकर सबके सम्मुख पीने का साहस प्रदर्शित किया। कोल्हापुर नरेश ने अपने निजी सेवकों जैसे घोड़ों के साईस, हाथी के -फीलवान, शिकारी कुत्तों के सेवकों को हरिजन जातियों में से रखा। और राज्य प्रशासन को हुक्म जारी किया कि कम से कम पचास प्रतिशत चपरासी, क्लर्क आदि की भरती हरिजनों में से होना चाहिये। शाहू जी महाराज ने राजमहल में सहभोज का प्रचलन प्रारम्भ किया। जिसमें भोजन के समय महाराज से मिलने आये प्रजाजन और दर्शक, चाहें किसी भी जाति, धर्म के क्यों न हों सब महाराजा के साथ एक पंगत में बैठकर शाकाहारी भोजन करते थे। इससे महाराष्ट्र के ब्राह्मण समाज में बड़ा तहलका मच गया। किन्तु अच्छे-बुरे हर जाति, वर्ग और धर्म में होते हैं अत: अनेक प्रगतिशील ब्राह्मणों ने अपने जन-प्रिय महाराजा का इन समाज-सुधारक कार्यों में सहयोग दिया यद्यपि अधिकतर द्विज वर्ग अनेक कार्यों में तरह-तरह के अवरोध प्रस्तुत करता रहा पर वे व्यक्तिगत स्वच्छता तथा वातावरण को साफ-सुथरा रखने पर पूरी दृढ़ता से ज़ोर देते थे और हरेक को उन बातों का पालन करना पड़ता था।

मराठों में पिछड़ेपन को दूर करने के लिये कोल्हापुर नरेश ने जगह-जगह मराठा छात्रावास भी स्थापित करवाये। इसी प्रकार अपनी अन्यान्य धर्मावलम्बी प्रजा के शिक्षार्थियों के लिये कोल्हापुर राज्य में मुसलमान छात्रावास, जैन छात्रावास, वैश्य छात्रावास आदि खुलवाये। उन्होंने ज्योतिबा फूले के 'सत्य शोधक आन्दोलन' की उपयोगिता को अनुभव कर उसका प्रचार-प्रसार अपने राज्य में भी करवाया। डा० जी० एस० घुर्ये, प्रसिद्ध समाज शास्त्री के शब्दों में :

"Maharaja Infused New Life Into Jyotiba Phooley's Agitation" :-

Phooley's was a revolt against caste in so far as caste denied ordinary human rights to all the members of Hindu society, and not merely a non-Brahmin movement to cast off the domination of the Brahmins."

यह जानकर आश्चर्य होना चाहिए कि सन् 1891 से 1905 के दौरान एक प्रतिशत भी मराठा एवं अन्य समान जातियों के लोग बम्बई प्रदेश की विभिन्न नौकरियों में नहीं पाये जाते थे। किन्तु दूसरी ओर ब्राह्मण, आई० सी० एस० छोड़कर लगभग सभी ऊँची नौकरियों पर नज़र आते थे। वे ब्राह्मण शिक्षा के महत्त्व को जानते थे। अत: अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलवाने के लिये हर प्रकार के साधन और सुविधायें उपलब्ध कराते थे।

सन् 1884 में कोल्हापुर राज्य में सामान्य प्रशासन में 71 अधिकारी थे, जिनमें 61 ब्राह्मण थे। शिक्षा एवं राजकीय सेवाओं में केवल एक ही जाति का बोलबाला था इसके विपरीत सन् 1912 में कोल्हापुर राज्य में 95 अधिकारियों में 35 अधिकारी ब्राह्मण थे। शेष शूद्रों, पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित थे।

महाराष्ट्र के एक छोटे से राज्य कोल्हापुर में पिछड़े वर्गों, अछूतों के लिये वहाँ के नरेश, श्रीमंत शाहू छत्रपति महाराज द्वारा प्रेरित और संचालित अनेक समाज सुधारक अद्वितीय कार्य हुए थे। उन्होंने ही सबसे पहले अपने ब्रिटिश शासन काल में अपने राज्य में जो सामाजिक सुधार कार्यों का बीजारोपण किया वे उनकी संरक्षता में अंकुरित और पल्लवित हुये और आगे चलकर सारे भारत के लिये दिशा निर्देश बने। जबकि उस काल में कोई कमजोर वर्गों के आरक्षण का नाम ही नहीं जानता था, शायद 'आरक्षण' शब्द का प्रचलन ही न हुआ था, यहाँ तक कि रेल या बस द्वारा यात्रियों की बैठने और शयन-बर्थ का आरक्षण भी अस्तित्व में नहीं आया था। मोहनचंद कर्मचंद गांधी का भारतीय राजनीतिक पटल पर उदय भी न हुआ था, तब छत्रपति सर शाहू जी महाराज ने अपने ताज और तख़्त के छिन जाने तक की चिन्ता किये बिना सन् 1902 में अपने कोल्हापुर राज्य में शिक्षा तथा नौकरियों में शूद्रों के लिये 50 प्रतिशत आरक्षण का शुभारम्भ कर दिया था।

एक और विचित्र संयोग की बात है कि दलितों और पिछड़ों के अधिकारों के लिये लड़ने वाले प्रथम योद्धाओं में जिन नरपुंगवों का उल्लेख इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है वे कोल्हापुर नरेश श्रीमंत सर छत्रपति शाहू जी महाराज, बड़ौदा नरेश श्रीमंत सर सयाजी राव गायकवाड़ और 18 अक्टूबर 1906 में प्रथम स्थापित इंडियन डिप्रेस्ड क्लासेज़ मिशन के मंत्री, श्री विट्ठल राम जी शिन्दे थे। ये तीनों मराठे (कुनबी) कुर्मी थे। संत तुकाराम भी कुनबी थे। वे अपने इष्ट देवता-विठोबा की स्तुति में रचे हज़ारों

अभंगों द्वारा भक्ति-भाव का संचार कराके महाराष्ट्र की आम जनता के दुःखी मानस को संतुष्ट करने के प्रयास में लगे रहे। वस्तुतः **ये सब उदाहरण इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि महाराष्ट्र में छुआ-छूत मिटाने और अछूतों की सामाजिक स्थिति सुधारने में मराठा (कुनबी) जाति अग्रगण्य रही है।** ऊपर वर्णित तीन समाज सुधारको में दो महापुरुष तो राजकुल में जन्में थे स्वयं राजा थे पर तीसरे महापुरुष, श्री विट्ठल रामजी शिन्दे का जन्म एक निर्धन कुनबी (मराठा) परिवार में हुआ था और भीमराव अम्बेडकर की भाँति उन्होंने भी महाराजा बड़ौदा की आर्थिक सहायता से देश और विदेश में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। श्री भीमराव अम्बेडकर की भाँति श्री शिन्दे जातिगत भेदभाव के बहुत खिलाफ थे। इसीलिये उच्च वर्णीय हिन्दुओं द्वारा उन्हें तथा उनके परिवार को बहुत उत्पीड़ित किया गया किन्तु फौलादी इरादे के ये नर पुँगव हिम्मत हारने वाले वाले न थे और अछूतों और पिछड़ों में जागृति लाने के लिये जीवन पर्यन्त कमर कसकर लगे रहे।

डा० भीमराव अम्बेडकर ने अपने विद्यार्थी जीवन में दरिद्रता-ग्रस्त पारिवारिक अवस्था का उल्लेख करते हुये एक बार कहा था-**"मैं केवल एक लंगोटी पहनकर बचपन में स्कूल जाता था।" बड़े होने पर दसवीं कक्षा तक वे बम्बई में मजदूरों की बस्ती, परेल में एक कमरे वाली चाल में रहते थे। किन्तु पढ़ने में बड़े मेधावी थे।** सौभाग्य से **बड़ौदा नरेश, महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने मेधावी विद्यार्थी भीमराव अम्बेडकर की सहायता हेतु उन्हें** अपना संरक्षण प्रदान किया, उन्हें **शिक्षा सुलभ कराने के लिये वे आवश्यक आर्थिक मदद देते रहे। बड़ौदा नरेश** की आर्थिक सहायता पाकर उन्होंने अमेरिका की कोलम्बिया यूनीवर्सिटी से सन् 1915 में मास्टर्स डिग्री प्राप्त की। कोलम्बिया यूनीवर्सिटी ने सन् 1916 में उनके "भारत की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था" पर लिखे गये शोध-ग्रंथ पर डाक्ट्रेट की डिग्री भी प्रदान की। इसके पश्चात् वे इंगलैंड गये। वहाँ से पहले कानून में बैरिस्टरी की शिक्षा पूरी की और फिर लन्दन स्कूल ऑफ इकानोमिक्स में अर्थ-शास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। **तभी महाराजा बड़ौदा को अपने राज्य में उनकी सेवाओं की जरूरत पड़ गई।** अतः उनके आदेश पर अपनी पढ़ाई बीच में ही रोककर वे स्वतः तुरन्त बड़ौदा वापिस चले आये।

महाराजा बड़ौदा ने उन्हें राज्य का रक्षा-सचिव नियुक्त किया। उस पद का कार्यभार उन्होंने **सहर्ष ग्रहण किया। यह बड़ा ऐतिहासिक चयन था क्योंकि पहली बार श्रीमंत सर सयाजीराव गायकवाड़ ने किसी अछूत को बड़ौदा राज्य में ही नहीं सारे हिन्दुस्तान में इतना ऊँचा पद देकर सार्वजनिक सम्मान किया था।** पर उस जमाने का माहौल रूढ़िवादी और कट्टर मनुवादी था। परिणामस्वरूप भेदभाव, ऊँच-नीच की निकृष्ट भावना के कारण डा० भीमराव अम्बेडकर के सहयोगी पदाधिकारियों तथा नीचे के कर्मचारियों ने बड़ौदा राज्य में उनका रहना, काम करना दुष्कर कर दिया था। जबकि इसी राज्य के **महाराजा का राज्याश्रय** पाकर ही वे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके थे और उच्च पद पर भी प्रतिष्ठित किये गये थे। यह मनुवादी हिन्दू समाज की घोर अमानवीय त्रासदी है।

कोल्हापुर महाराजा भी शिक्षा पर बहुत जोर देते थे। उन्होंने अपने राज्य में प्राइमरी स्तर तक प्रत्येक गाँव में शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य कर दी थी तथा यह भी प्रावधान किया, कि विद्यार्थी चाहें किसी जाति का क्यों न हो सभी समान रूप से एक साथ एक स्कूल में ही साथ-साथ शिक्षा पायेंगे। स्मरण रहे ये वह जमाना था जबकि शूद्रों और अछूतों के लड़कों को उस समय पाठशाला और स्कूलों में भर्ती करने में बड़ी उपेक्षा बरती जाती थी, और ऊँची जाति के विद्यार्थी छोटी जाति के विद्यार्थियों के साथ बैठना तक भी पसन्द नहीं करते थे। उन्हें छुआ-छूत (अशौच) का भय रहता था।

छत्रपति शाहू महाराज की समता पर आधारित शिक्षा-नीति के स्पष्ट प्रेरक परिणाम कुछ ही वर्षों में सामने आने लग गए। जैसे कोल्हापुर राज्य के राजाराम कालेज में जहाँ सन् 1894 में कुल 79 विद्यार्थियों में मात्र 9 शूद्रों तथा अन्य पिछड़े वर्गों से सम्बधित थे, बाकी 70 ब्राह्मण थे; वहीं सन् 1922 तक राजाराम कालेज के **कुल 265 विद्यार्थियों में 100 (एक सौ) संख्या शूद्रों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों की हो गई थी। जब डा० अम्बेडकर एक सामाजिक नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुये तो उन्होंने भी शाहू महाराज के चरण-चिन्हों पर चलते हुये बम्बई और अहमदाबाद में सिद्धार्थ कालेजों की स्थापना करायी। यही नहीं यदि उनके कार्य कलापों का गूढ़ता से अनुशीलन करें तो पायेंगे कि जब वे केन्द्रीय संविधान निर्माणी समिति के अध्यक्ष मनोनीत किये गए तो उन्होंने शाहू महाराज जी द्वारा समय-समय पर सुझाये गये सुधार-कार्यों को संविधान में दिशा निर्देशक सिद्धान्तों का रूप दिया।**

छत्रपति शाहू जी महाराज विलक्षण प्रतिभा के महापुरुष थे। **राजसिंहासन पर बैठने पर उनके चिंतन पर ऐशो-आराम का लेशमात्र भी प्रभाव न था। उल्टे वे वीतरागी थे। तभी वे ज्यादातर हरिजनों और अन्य पिछड़े वर्गों की अपनी प्रजा के सदियों से शोषित, अपमानित, अवहेलना ग्रस्त, दुःखों के आँसू, अपने सर्वस्व तक को दाँव पर लगाकर, अपने हाथों से पोंछते रहे और वे दुखिया जन भी सुख का अनुभव कर सकें उसकी पृष्टि भूमि बनाने के लिये जीवन पर्यन्त प्रयत्नरत रहे। वे सही**

अर्थों में राजाओं के राजा, राजराजेश्वर थे। क्योंकि जहाँ उनके दौर के राजे, महाराजे और नवाब तरह-तरह के व्यसनों में अपना समय तथा राजकोष दोनों हाथों से व्यय कर रहे थें, वहाँ ये राजा अपनी गरीब से गरीब हरिजन प्रजा के अपमान के आँसू पोंछने में और उनके उत्कर्ष के चिन्तन, क्रियान्वयन में सदैव व्यस्त रहे। उनकी प्रिय प्रजा के उनके प्रति हार्दिक उद्‌गार थे कि शाहू राजा केवल राजा न थे, केवल छत्रपति न थे, वे इतिहास के उन महान समाज सुधारकों की कोटि के थे, जिनके सुकृत्यों से, दलितोद्धार तथा समाजोत्कर्ष हेतु कार्य किये गये, कृतज्ञ लाभार्थी उसके लिये उन्हें सदैव श्रद्धा से स्मरण करेंगे और उनका कृतित्व और यश इतिहास के पन्नों पर अमिट रहेगा।

शाहू महाराज की जीवनावधि मात्र 48 वर्ष की रही जिसमें 20 वर्ष की आयु में वे पूर्णाधिकार सहित राज्यारोहित हुये थे। इस तरह केवल 28 वर्ष उन्हें शासन करने को मिले। इस सीमित अल्प अवधि में भी, उस घोर रूढ़िवादी कट्टर मनुवादी और सामन्तवादी जमाने में, लोक-कल्याणार्थ तथा समाजोत्कर्ष हेतु हर क्षेत्र में कोल्हापुर राज्य में उन्होंने अनेक ऐतिहासिक कार्यों का श्री गणेश स्वयं अपने नेतृत्व और निर्देशन में कर दिखाया। विशेष करके शिक्षा प्रचार-प्रसार, अस्पृश्यता निवारण, हरिजनों, अंत्यजों और जनजातियों को राज्य की मूलधारा में आत्मसात कराना, कृषि कार्यों में सिचिंत कृषि, उत्तम बीज़, उर्वरक और आधुनिक कृषि विज्ञान का प्रयोग कराना आदि उनके बड़े साहसी, और बहुजन हित में उठाये कार्यक्रम थे, जो कि उन जैसा दृढ़-संकल्प, अदम्य साहस और जन-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत, दूरदर्शी दृष्टि रखने वाला उन जैसा महान व्यक्ति ही प्रतिपादित और क्रियान्वित कर सकता था।

शाहू महाराज के लघु जीवन का शायद एक कारण उनका प्रजा के प्रति अगाध वात्सल्य था और उनके उत्कर्ष के लिये, उन्हें जी-जान की फिक्र छोड़कर मसीहा बनना पड़ा। तत्कालीन ब्राह्मण समाज ने उनका घोर विरोध किया उन्हें शासन-च्युत करवाने तक के लिये, 'कुलकर्णी संघ' ने बिट्रिश सरकार से अनेक बार शिकायतें की। कदम-कदम पर उनके सामाजिक कार्यों में रोड़े अटकाये। इन सब कारणों से उनकी ऊर्जा और शक्ति क्षय होती गई और उनकी जीवन-लीला जल्दी समाप्त हो गई। और तो और बाल गंगाधर तिलक जैसे राष्ट्रीय स्तर के नेता भी अपने जातीय संस्कारों से ऊपर न उठ पाये, और अपने पत्र 'केसरी' के माध्यम से वे निरन्तर शाहू महाराज की लोकप्रिय छवि को धूमिल करने तथा अनर्गल लाँछन लगाने में अपनी पत्रिकारिता-पटुता का दुरुपयोग करते रहे। यदि तिलक ने उस जमाने में नारा बुलन्द किया-"स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" पर उस समय बिना कहे शाहूजी महाराज के कार्य कलापों से आभास होता था कि "समता जन्य मानवीय अधिकार हरेक मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है"। विचित्र विसंगति यह भी रही कि तिलक जहाँ शाहू महाराज के विरोधी थे वहीं उनके चिरंजीव श्रीधरपंत तिलक उनके अनन्य प्रशंसकों में से थे।

छत्रपति शाहू महाराज जब इन शिकायतों से काफी तंग आ गये, तब उन्होंने कट्टरपंथी ब्राह्मणों और उनके 'कुलकर्णी संघ' द्वारा कोल्हापुर दरबार के सम्मान के विरुद्ध निरन्तर प्रचार अभियान के बारे में कर्नल वुड हाऊस और सर एस० एम० फ्रेज़र को लिखा। शाहू जी ने इस कट्टर विरोधी वर्ग के कारनामों का पूरा चिट्ठा उन अंग्रेज आफीसरों को लिख भेजा कि ब्राह्मण और कुलकर्णी संघ दरबार और मेरी इज्जत पर हमला करने के अलावा मुझे बम से मार डालने को लोगों को उकसाते हैं। उन्होंने आगे लिखा कि मुझे अपने मारे जाने का क्लेश नहीं है दुःख इस बात का है कि वे मेरी सार्वजनिक प्रतिष्ठा और लोकप्रियता को नष्ट कर डालने का षडयन्त्र रचते रहते हैं। उन्हें आभास सा हो गया था कि वे ज्यादा दिनों जिन्दा रहने वाले नहीं है अतः वे अपने अधूरे कार्मों को तेज़ी से अपने जीवनकाल में पूर्ण करने में जुट गये। उन्हें मौत का लेश मात्र भी खौंफ नहीं सताता था।

जातिवाद के अमानवीय आंतक, संकीर्णता भरी सामाजिक व्यवस्था और प्रचलित कुरीतियों तथा मनुवादी ब्राह्मणों के ऊँच-नींच पर आधारित नारकीय अत्याचारों की श्रृंखला को सदा-सदा के लिये तोड़ डालने और बहुजन समाज को समता-आधारित मानवीय जीवन प्रदान करने हेतु उन्होंने अपने दरबार के ब्राह्मण-पुरोहितों और पंड़ा-पुजारियों के स्थान पर प्रशिक्षित मराठा तथा अन्य ब्राह्मणेतर जातियों के पुजारियों की नियुक्त की घोषणा की। फिर तो कोल्हापुर राज्य में सारे धार्मिक अनुष्ठान को ये मराठा एवं अन्य जातियों के आचार्य सम्पन्न कराने लगे। कर्मकांडी ब्राह्मणों की क्रोधाग्नि और अधिक उग्र होकर धधकने लगी। राव बहादुर डोंगरे को धार्मिक कृत्यों को कराने के लिये मराठा तथा अन्य जातियों के बालकों के प्रशिक्षण का कार्य सौंपा गया। मेहरबान बाबा को डोंगरे के इन कार्यों में सहायता के लिये लगाया गया। इस प्रकार कोल्हापुर राज्य में ब्राह्मणों का धार्मिक काम-काज में एकाधिपत्य समाप्त हो गया। 7 जुलाई 1920 को शाहू जी ने "शिवाजी वैदिक विद्यालय" खुलवाया जिसमें पूजा और पौरोहित्य के लिये दलित तथा पिछड़े वर्ग के युवकों को प्रशिक्षित किया जाता था। सन 1921 में पूना में मराठा राज्य के संस्थापक की स्मृति में "छत्रपति शिवाजी महाराज स्मारक" का शिलान्यास अपने कर कमलों से सम्पन्न किया। विदेश गमन से पूर्व सन् 1902 में

उन्होंने बम्बई के 'सरदारगृह' और 'माधवाश्रम' की स्थापना करवायी।

मराठा-धनगर अन्तर्जातीय विवाह

इन्दौर नरेश श्रीमंत सर तुकोजीराव होल्कर महाराज के युवराज श्रीमंत यशवंत राव होल्कर के विवाह हेतु कोल्हापुर नरेश शाहू छत्रपति जी ने अपने एक निकट सम्बन्धी कागल (जूनियर) के मराठा सरदार की कन्या से विवाह पक्का कराने में उन्होंने प्रमुख भूमिका अदा की। इस वैवाहिक संबंध की प्रमुख विशेषता यह थी कि यह अन्तर्जातीय विवाह था क्योंकि वर पक्ष इंदौर का राजवंश धनगर (पाल) था और कन्या पक्ष के कागल (जूनियर) सरदार मराठा (कुनबी) जाति के थे। शाहू महाराज दूरदर्शी थे, उनकी इच्छा थी कि इन दो जातियों के राजपरिवारों में वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने के पश्चात इन दो जातियों के आम लोग भी इस प्रकार के अन्तर्जातीय विवाह सहर्ष करने पर रज़ामन्द हो सकेंगे। जिसके परिणामस्वरूप मराठा-धनगर सम्बन्ध और घनिष्ठ और मधुर हो सकेंगे। पर विधि का विधान इस बारे में कुछ और ही था, शाहू महाराज यह आदर्श अन्तर्जातीय विवाह अपने सम्मुख होता न देख पाये क्योंकि 6 मई 1922 को इस सामाजिक क्रान्तिदूत का अन्त आ गया। पर शादी उनके सामने पक्की की जा चुकी थी।

विवाह तो होना ही था। शुभ तिथि का विचार कर इन्दौर में 9 फरवरी 1924 को विवाह होना निश्चित हुआ। राजसी ठाट-बाट के अनुरूप विवाह समारोह की सभी तैयारियाँ की गई। इन्दौर महाराज का निमन्त्रण पाकर दूर-दूर से राजे, महाराजे और नवाब लोग मय अपने अमले और ताम-झाम के विवाह समारोह में सम्मिलित होने इन्दौर आ पहुँचे। इन्दौर राज्य के सरदार, दरबारी, अधिकारी गण सब इस व्यवस्था को सफल बनाने में अपना-अपना दायित्व निभा रहे थे। विवाह का सारा प्रबन्ध तथा राज्य कर्मचारियों पर देखरेख इन्दौर शहर के नामी सेठ हुकमचंद जैन कर रहे थे।

विवाह मण्डप में कन्या पक्ष वाले कागल (जूनियर) के मराठा सरदार अपने रिश्तेदारों, मित्रगणों तथा स्वजनों के साथ कोल्हापुर से आये। वे बड़े मान-सम्मान के साथ ठहराये गये। वे विवाह में देने के लिए कोल्हापुर से अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ लाये थे। विवाह मण्डप में लोग यथा योग्य स्थान पर विराजे गये। दरबार प्रारम्भ हुआ। भेंट की चीज़ों में चाँदी के एक चौखूंटे फ्रेम में ढ़की एक प्रतिमा भी थी जब उस पर से कपड़ा हटाया गया तो सब दंग रह गये वह तो कोल्हापुर नरेश कैलाशवासी शाहू महाराज की प्रतिमा थी।

महाराजा इंदौर की जैसे उस प्रतिमा पर निगाह पड़ी वे अपने सिंहासन से उठ खड़े हुये। महाराजा, महारानी और युवराज तीनों ने प्रतिमा के सम्मुख आकर क्रमश: उनके सम्मान में मुजरा (प्रणाम) किया। वृंद-वादन और तोपों की गर्जना से कोल्हापुर नरेश की प्रतिमा को पूरी मान-सम्मान से इंदौर दरबार में प्रस्तुत किया गया, मानों वे स्वयं शारीरिक रूप से उपस्थित हुये हों। इस आवश्यक मान-मर्यादा की औपचारिकता प्रदर्शन के बाद 'शाहू महाराज की जय-जयकार' की गूँज दर्शक दीर्घाओं से तथा उपस्थित नागरिकों की भीड़ में काफी देर तक गूँजती रही। फिर बड़े आनन्द, हर्षोल्लास के साथ पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न किया गया। शाहू महाराज का धनगर-मराठा राजपरिवारों का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होना भी साकार हो गया।

हिज हाइनिस सर शाहू छत्रपति जी महाराज कोल्हापुर राज्य के ही महानतम महाराजा थे यह अतिश्योक्ति नहीं कही जायेगी कि बीसवीं शताब्दी में देश आजाद होने से पूर्व तक समस्त नरेश-मंडल के वे ही सर्वाधिक जनप्रिय, जनहितैषी, समाज-सुधारक, दलितों और शोषितों के बड़े उन्नायक थे। छत्रपति शाहू जी महाराज के शासन काल में कोल्हापुर राज्य का संचालन हर दृष्टि से संतोषजनक और प्रशंसनीय रहा। एक अच्छे शासक होने के अतिरिक्त उनमें व्यक्तिगत अनेक गुण थे जोकि उनकी महानता तथा श्रेष्ठता के द्योतक थे। शाहू जी महाराज उच्च कुशलता के मल्लयुद्ध में पारंगत थे। इसलिये कोल्हापुर को मल्लयुद्ध की गंगोत्री भी कहा जाता था। क्योंकि यहाँ के राज्याश्रम से विश्वप्रसिद्ध पहलवान गामा और इमाम वक्श हुये तो देश के अन्य नामी पहलवान बिन्दू ब्राह्मण, गणपत शिंदे और बाबू विरे आदि भी निकले।

शाहू जी महाराज संगीत, ड्रामा, तमाशा, चित्रकला तथा अन्य ललित कलाओं के भी आश्रयदाता और पोषक थे। तभी शास्त्रीय संगीत के उस्ताद अलाउद्दीन खाँ (पं० रविशंकर के ससुर), उस्ताद हैदरवक्श, उस्ताद अब्दुल करीम खाँ, बाल गंधर्व, महाराष्ट्र कोकिल कंठी शंकर राव सरनाईक, तबलावादक पं० कामता प्रसाद, पखवाज पटु साधलेबुबा, गायिका अंजनीबाई मालपेकर, साहेबजान, सोपीजान आदि कोल्हापुर दरबार के कला-रत्न थे। शाहू जी महाराज ने राज्य कला को बढ़ावा देने के लिये 'शिवराज नाटक मंडली' की स्थापना की थी। चित्रकारों में मशहूर नाम हैं आबा साहब पेन्टर, बाबूराव पेन्टर के। देश-विदेश में काफी ख्याति प्राप्त ये हस्तियाँ कला जगत में कोल्हापुर नरेश की ही देन कहना चाहिए।

शाहू राजा राजर्षि कैसे बने ?

सन् 1919 में संयुक्त प्रान्त के कानपुर नगर में दिनांक 19, 20 और 21 अप्रैल को अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा का 13 वाँ अधिवेशन हुआ, जिसके अध्यक्ष हिज हाईनेस कर्नल सर शाहू छत्रपति, महाराजा कोल्हापुर थे। इसका विस्तृत वर्णन इस पुस्तक में महासभा के 13 वें अधिवेशन के सम्बंध में दिया गया है। अत: उसकी पुनरावृत्ति यहाँ नहीं की जा रही हैं ।

इसी महासभा के कानपुर अधिवेशन में उपस्थित कूर्मि क्षत्रिय सभा सदों ने एक मत से कोल्हापुर नरेश को उनकी योग्यता, लोक-सेवा और दलित, पीड़ित और शोषित वर्गों के दुःख-दर्द दूर करने के सतत् प्रयत्नों में तत्पर रहने के लिये उन्हें 'राजर्षि' की मानक विरूद (उपाधि) से अंलकृत करने की सर्वप्रथम सर्वसम्मति से घोषणा की,जिसका महासभा के सभासदों से करतल ध्वनि से अनुमोदन किया गया। 'राजर्षि शाहू स्मारक, भवन उद्घाटन स्मारिका' पृष्ठ 57, "महाराज राजर्षि कैसे झाले ?–लेखक गणेश कृष्ण कुन्हाडे।

सन् 1902 में छत्रपति शाहू महाराज इंगलैंड के एडवर्ड अष्टम सम्राट के राज्यारोहण समारोह में भाग लेकर लौटते समय फ्लोरेन्स (इटली) में स्व० छत्रपति राजाराम महाराज की समाधि के दर्शन करने और कोल्हापुर के पूर्व महाराजा को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने गये थे। राजर्षि शाहू छत्रपति जी महाराज न केवल कोल्हापुर राज्य के सर्वाधिक ख्याति प्राप्त शासक थे बल्कि वे अपने जमाने के महान समाज सुधारक, दलितों, शोषितों और पिछड़े वर्गों के मसीहा के रूप में स्मरण किये जायेंगे। इक्कीसवीं सदी प्रारम्भ होने में मात्र 6 वर्ष बचे हैं। देश की राजनीति पर दलितों, शोषितों और पिछड़ों की पकड़ मजबूत होती जा रही है और वे प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं और उनकी तरक्की और सत्ता पर बढ़ती भागीदारी के साथ-साथ, बाबा डा० भीमराव अम्बेडकर और उनके संरक्षक राजर्षि शाहू छत्रपति महाराजा, ज्योतिबा फूले की कीर्ति और यश-गाथा का जन-जन में प्रचार-प्रसार बढ़ेगा और देश में जगह-जगह उनकी प्रतिमायें और स्मारक, स्मृति चिन्हों और प्रेरणा केन्द्रों के रूप में खुलेंगे। उन्हें युग पुरुष का मान-सम्मान मिलेगा।

शाहू जी महाराज की मात्र 48 वर्ष की आयु में 6 मई 1922 को मृत्यु हुई थी। सन् 1977 में कोल्हापुर में तत्कालीन मुख्यमंत्री महाराष्ट्र, श्री बसंत राव नायक ने "राजर्षि शाहू छत्रपति स्मारक" का शिलान्यास किया, जिसका उद्घाटन 3 फरवरी सन् 1981 में तत्काललीन मुख्य मंत्री महाराष्ट्र श्री ए० आर० अन्तुले द्वारा किया गया। कोल्हापुर के दसरा चौक पर राजर्षि शाहू जी महाराज की भव्य प्रतिमा स्थापित की गई। उसके निकट ही "राजर्षि शाहू स्मारक ट्रस्ट" ने महाराज की स्मृति में "राजर्षि शाहू स्मारक भवन" का निर्माण करवाया। 2 अप्रैल सन् 1994 के राजभवन 'नवा राजवाड़ा पैलेस' के दरबार हाल में 'लोक राज्य' राजर्षि श्री शाहू महाराज राज्यारोहण शताब्दी समारोह मनाया गया। शाहू महाराज की प्रतिमा की पूजा-अर्चना एंव राजगद्दी का अभिवादन वर्तमान श्रीमंत शाहू जी महाराज के कर कमलों से हुआ। उस समय दोनों युवराज श्रीमंत संभाजी राजे तथा श्रीमंत मालो जी राजे, मंत्री सदाशिव राव मंडलीक, अभयसिंह राजे भोसले, उदय सिंह राव गायकवाड़, सांसद, राजघराने के सदस्यगण, सम्भ्रांत-नागरिक "शाहू शोध संस्थान" के डाइरेक्टर डा० विलास सगवे अन्य दर्शकगण उपस्थित थे। अपराह्न 2 बजे, श्री शरद पवार, मुख्यमंत्री महाराष्ट्र तथा उस समारोह के मुख्य अतिथि द्वारा क़ोल्हापुर नगर के मध्य दसरा चौक पर निर्मित राजर्षि शाहू छत्रपति महाराज की 30 फुट ऊंचाई की कास्य प्रतिमा माल्यार्पण कर शोभा-यात्रा का शुभारम्भ किया,जिसमें लाखों लोगों ने भाग लिया। शोभा-यात्रा बड़ी भव्य थी वह सारे शहर से गुजारी गई। अन्त में यात्रा खाश बाग कुश्ती मैदान में पहुंची, वहां विशाल जन सभा में श्री शरद पंवार जी,अभयसिंह राजे भोसले, राजमंत्री आदि नेताओं ने राजर्षि शाहू के बहुआयामी चरित्र और उनके महान कृतित्व पर प्रकाश डाला।

"राजर्षि शाहू छत्रपति स्मारक भवन" के उद्घाटन के समय जो स्मारक स्मारिका प्रकाशित की गई थी उसकी एक प्रति और शाहू महाराज का एक अलग से चित्र माननीय कलक्टर कोल्हापुर और चेयरमैन, राजर्षि शाहू छत्रपति मेमोरियल ट्रस्ट, कोल्हापुर से इस लेखक को उनके पत्र संख्या 338/94 दिनांक 15-9-94 के साथ प्राप्त हुये। उनकी इस अनुकम्पा से शाहू छत्रपति जी महाराज तथा राज परिवार के अन्य सदस्यों के चित्र इस पुस्तक में दिए जा सके हैं और इस लेख को तैयार करने में काफी कुछ जानकारी उस स्मारिका से ली गई है। जिसके लिये हार्दिक आभार। स्मारिका का ज्यादातर अंश मराठी भाषा में था। अत: उसे समझने में कहीं यदि त्रुटि हो गई हो, इस लेखक को पर्याप्त भाषा-ज्ञान न होने का विचार करके क्षमा किया जाये। माननीय कलक्टर और चेयरमैन, "राजर्षि शाहू छत्रपति मेमोरियल ट्रस्ट, कोल्हापुर" का उपर्युक्त पत्र यहाँ पाठकों के लाभार्थ दिया जा रहा है। उससे पूर्व राजर्षि शाहू छत्रपति जी महाराज के महान व्यक्तित्व तथा कृतित्व को अब्दुल रहीम खानखाना के इन दोहों से सही समझा जा सकता है।

तरूवर फल नहि खात है, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर-काज-हित, सम्पति सँचहिं सुजान।।

अर्थात् :- वृक्ष की तरह, जो कि अपने फल स्वयं नहीं खाता, और नदी की तरह जो अपने तट से पानी नहीं पीती, उसी प्रकार एक सच्चरित्र महापुरुष भी अपना सब कुछ, अपने लिये नहीं, दूसरों के उपयोग और लाभार्थ संचित करता है। बिल्कुल ऐसे ही स्वभाव के थे राजर्षि शाहू छत्रपति जी महाराज।

राजर्षि शाहू छत्रपति मेमोरियल ट्रस्ट, कोल्हापूर

शाहू स्मारक भवन, दसरा चौक, कोल्हापूर 416 002 फोन 22373

पत्र क्रमांक : शामेट्र/338/94
दिनांक : 15/9/94

To,

Shri Dr. Dilawar Singh Jaiswar,
B-6/57, Safdarjung Enclave,
New Delhi-110 029.

Sub. :- H.E. CHHATRAPATI SHAHU JI MAHARAJ PHOTOGRAPH AND BIOGRAPHY

Sir,

Please refer to you letter dated 9th Sept. on the subject cited above. I am enclosing, herewith, a copy of the souvenir pertaining to life sketch of **Rajarshi Shahu Maharaj** and Photograph as requested by you. I hope this will serve your purpose so as to include the same in the Book which you are going to publish on the occasion of **Akhil Bhartiya Kurmi Kshattriya Mahasabha,** as its Centenary.

Recently we celebrated Centenary of **Rajarshi Shahu Chhatrapati Rajyarohan Mahostava,** and on the said occassion Shri C. B. Singh and Shri Raghavaram Singh from Delhi attended the said function. We have given them photographs and copies of souvenir. Please contact them for getting more information from them. Also send us invitations of the said celebration so that some of us also try to participate in the function.

Kindly acknowledge receipt of the same.

Thanking you

Yours faithfully
**Collector & Chairman
Rajarshi Shahu Chhatrapati
Memorial Trust, Kolhapur**

H.H. SHRI SHAHU CHHATRAPATI MAHARAJ'S SHIKAR & CONSERVATION OF WILD LIFE

H.H. Shri Shahu Chhatrapati Maharaj is well known for his interest and encouragement of sports specially **Wrestling,** Sathmari, **bull fights** and different kinds of **shikar.**

In the **Kolhapur State** territory about 1/3rd of the area was thick forest as the **Western Ghats** formed the **Western** boundary of the **State** on the **Decan Plateau.** Bisons,tigers, panthers, bears, sambars, chitals and the smaller herbivorous inhabited these jungles. Small game was also plentiful like the great Indian bustard, jungle fowls, the painted and grey partridges, quails and the usual migrated wintor visitor birds.

(Narrated by)
Maj. Gen. H.H. Chhatrapati Sahaji Maharaj

अध्याय - 14

पूर्वी भारतीय कुर्मी जाति की भाषा कुर्माली का एक अध्ययन

पूर्वी भारत विशेषत: उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश और आसाम में रहने वाले कुर्मी लोगों की भाषा 'कुर्माली' होने पर भी प्रादेशिक भाषा के प्रभाव से इसमें पठन-पाठन अथवा आलोचना नहीं होती है। यह लोक भाषा के रूप में संकुचित रह जाती हैं। कुछ वर्षों से बिहार के राँची विश्व-विद्यालय में इसके पठन-पाठन की सुविधा का सुयोग प्राप्त हुआ है।

कुर्माली-- यह शब्द अधिक प्राचीन नहीं है फिर भी कुर्माली या कुड़माली के शब्द तत्व, भाषा तत्व, रूप तत्व के द्वन्द तत्व और भाव तत्व का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि यह भाषा अति प्राचीन है। अनुमान किया जा सकता है कि कुर्मी लोगों में छोटा नागपुर अंचल में आने के बाद आंचलिक भाषा की नाम प्रक्रिया में कुर्मी लोगों की बोली जाने वाली भाषा कुड़माली नामित हुई। और इस भाषा का नामकरण जाति को लेकर हुआ जैसे मुंडा से मुंडारी, सन्थाल से सन्थाली, भूमि से भूमिज आदि।

कुड़माली भाषा का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि इसमें प्राचीन प्राकृत और पाली का विशेष अंश है। इसका प्राचीनतम रूप निम्न प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है।

1. **उच्चारण पद्धति**-- भाषाविद एवं ध्वनि तत्व के विद्वानों के मत से प्राचीन काल में किसी भी भाषा में अधिक शब्दों की सृष्टि नहीं हुई थी। कुछ शब्दों के उच्चारण भेद से भिन्न-भिन्न अर्थों में उनका प्रयोग किया जाता था। पृथ्वी की सभी भाषाओं की यह एक उल्लेखनीय विशेषता हैं। कुर्माली में यही विशेषता अभी भी गम्भीर रूप से देखी जाती है जैसे :-

(क) 'न' पूर्ण स्वर होने के अर्थ में होगा। प्रश्नवाचक, 'क्या' लेइ जाऊवे न नाई ? तुम जाओगे या नहीं ?

(ख) ऊँचे से निम्न स्वर-- 'न' नहीं (नकारात्मक)
"मोर घारे खुड़ाऊँ नाँई न अ्" हमारे घर में खुदी नहीं है।

(ग) समस्वर-नअ् = न जाना (झुक जाना)
"दुआरे नीचा आहेक तईन अ् नाइत् मुँडे बाजत।"
दरवाज़ा छोटा है तुम झुक जाओं नहीं तो सिर में लगेगा।

(घ) निम्न से उच्च स्वर-'न' = प्रश्नवाचक 'ना'
'तुई न कहि दिल एइटा नाई नेले छाड़वीस नाई।'
तुमने कहा था यह नहीं लेने से छोड़ूँगा नहीं, 'है' का विचार किया जाता है।

(क) उच्च से निम्न स्वर-- ह = खड़ा होना।
" हीं -ह बाएँ घूर" हाँ, रुको बाएँ घूमो।

(ख) सम स्वर-'हअ' = होगा। " तुई डाक्टर हअ, तर बापे एइटा चाई छे" तुम डाक्टर बनो तुम्हारे पिता जी यही चाहते है।

(ग) धीरे से उच्च स्वर-'ह'-- आहे = बुलाना, 'आ, ह भाया नाचे जाम' आओ भाई नाचेगें।

(घ) पूर्ण स्वर 'ह' अवज्ञा -(निम्न भाव से) 'ह' "उहार घर जाब, खताओ देयनाई" हाँ उसके घर जाएंगे खाना भी नहीं देगा।
इसी प्रकार ग, उ, क, ञ, छ, ड़, स, ल, त, व आदि अनेक शब्द विश्लेषित होते है।

2. **व्याकरणीय प्राचीन प्रयोग**-
भाषा-विद्कि गण करण कारक या तृतीया विभक्ति में 'न' का प्रयोग अधिकरण में हैं' का प्रयोग सम्बन्ध में 'न' के प्रयोग का प्राचीन भारतीय भाषा साहित्य में देखा जाता है। डा० सुकुमार सेन ने अपनी भाषा के इतिकृत 'पंचदश संस्करण' के 136 पृष्ठ में स्पष्ट मत दिया है कि कुड़माली में इस का प्रयोग वर्तमान में भी है।

(क) **करण कारक में 'न' का प्रयोग–** 'अति खने भाला कपीला कहने लागल गो सुने ईश्वर हमरो बचने गो।''

(ख) **सम्बन्ध कारक में न का प्रयोग–** "दूध जे खाई ईश्वरेक मनन खुशीग कहे लागल सुन मानवी लक गो।''

खार वेल के अनुशासन के समय में भी इस प्रकार के प्रयोग का लक्षण है।

" xxx अइरेन महाराजेन महामेय बाहनेन चेदीराज वंश वधनेन प्रस खसू तण खनेन। x —x —x ।

(ग) **अधिकरण कारक में 'हि' का प्रयोग:–** "काहोंहि उपजो लहो-लहो बाँस गो।'' कहाँ हरा-हरा बाँस उपजता है।

प्राचीन शब्द–कुर्माली शब्दों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है इस भाषा में अभी भी बहुत पाली-प्राकृत तथा प्राचीन भारतीय भाषाओं के शब्द प्रचलित है। सभी शब्दों का उदाहरण इस छोटे निबंध में देना सम्भव नहीं है।

केवल शब्द ही नहीं कुर्माली धातु से निष्पन्न पद गठन रीति भी अति प्राचीन है। इस भाषा के मूल धातु के साथ ई का योग करने से विशेष्य, आ या आल् योग करने से विशेषण और 'आई' योग करने से प्रेरणार्थक क्रिया होगी यह एक विशेष लक्षण है। मूलधातु – विशेष्य – विशेषण – प्रेरणार्थक क्रिया।

1. पट (मूल्य निर्धारण) पटी - पटाल या पटा –पटाँई (आपसी मिंमासा)
2. न अ् (झुक जाना) नअई – नया, न आता – न ओंई
3. सिर (समाप्त होना) सिरी – सिरा, सिराता – सिराँई
4. रा (बात बोलना) राई – राआता, राआ – राओंई

पाणिनी –के 'अष्टाध्यायी व्याकरण' में उल्लेख है प्राच्य एवं उदीच्य दोनों देशों की भाषाओं को सम्कृत करके संस्कृत बनती हैं भाषा को नियमबद्ध श्रृंखलित, सजाना से एक कुड़माली भाषा का अनुमान किया जाता है। पहले इस भाषा का नाम कुड़माली नहीं था। क्या था कहना अवश्य सम्भव नहीं है फिर भी कुड़माली कैसे नियमबद्ध की गई यह विचारणीय है।

संधि – संधि का पहला पद और दूसरे पद का अर्थ रहता है। पूर्व पद कैसे कुड़माली से लिया गया है यह लक्ष्य करने योग्य है।

जुह + त = युद्धं (जुह -जुह दादा छाती जखे काँड)
लह + त = लद (काहाँ ही उपजये लह-लह बाँस)
दह + त = दग्ध (तर कथाप दहये अन्तर)
च + ह + त = चढ़ (च = चटाना), ह = रहना, त सम्बन्ध पद।

संस्कृत शब्द गठन– संस्कृत व्याकरण के विसर्ग संधि के नियमानुसार स्वर वर्ण के तीसरा चौथा, पाँचवा अथवा य, र, ल, व, ह के बाद अ, आ विभिन्न स्वर वर्ण के पर-स्थित (स और र का विसर्ग स्थान में 'र' हो जाता है।

जैसे:- निः + धन = निर्धन, दुः + भाग्य = दुर्भाग्य।

इसी नियम के अनुसार अनेक कुड़माली शब्द को पाली तथा प्राक्वैदिक संस्कृत माध्यम में संस्कृत किया गया है।

जैसे :-धम्म। धःम। धर्म। चून्न। चूःन। चूर्ण।

इसी नियम के अनुसार जहाँ 'र' का आगमन होता है वह समय-समय पर हलन्त न होकर 'र' कार भाव में व्यवहृत होता है। जैसे :- पुतल। पुःत। पुत्र, अग्रग। अः ग। अग्र।

गच्छ माने दायें में प्रवेश अर्थात् गमन अर्थात् गंमन 'ति' प्रथम पुरुष एकवचन में स्त्रीलिंग वाचक।

संस्कृत– मसज् (To Sink) कुड़माली में ज्। मंजी। मंजाल। मंजाय के रूप में व्यवहृत होता है।

ठीक इसी प्रकार 'मृ' धातु कुड़माली मरई एवं मरइय से निर्मित बोली स्पष्ट मालूम होती है कारण संस्कृत के आत्मनैपदे एवं परस्मैपदी धातुओं का नियम कुड़माली में साधारण बात है।

ठीक इसी प्रकार रुध्, भुज्, भिनद, पृ, लिप, लिपि, मन, जअअ, ही, धिन्व, सा, आदि बहुत से धातु कुड़माली से सम्बंधित हैं। लिट् लकार हिंस मर, तृह, जागृ ठिकास, इ, एवं लट् लङ्ग, अव, खर, गद्, धा, हु, भृ आदि इसी पर्याय के अंतर्गत हैं।

बौद्ध एवं जैन साहित्य :– बौद्ध साहित्य के पिट्क, पेटक, शब्दों के बहुत से अव्यव शब्द कुर्माली भाषा के ज्ञात होते हैं। त्रिपिटक के कुछ मुख्य शब्दों को उदाहरण स्वरूप दिया जाता है।

निकाय–शास्त्र का मुख्य अध्याय जातक । जात + अक् कुर्माली जअअ, वाजवा शब्द ज तीर्थ। तेर + तह (तिइर = पार करना; तेर– स्थिति ठीक इसी प्रकार उवांग, पडनय, दय, चुननी आदि प्रत्येक अध्याय में कुर्माली विद्यमान है।

विसर्ग संधि के नियमानुसार अल्प प्राण और महाप्राण के उच्चारण में (ष) का आगमन होता है। यह समय विशेष पर तीनों (ष, श, स) हो सकता है।

हत्थ। ह: थ। हस्त, दुच्चरित। दु: चरित। दुश्चरित; जट्ठ। जे:ठ। ज्येष्ठ

फिर विसर्ग अनेक समय में उ और औ का प्रतिनिधित्व (वय: + अधिक = वयोधिक) करने के कारण पक्खर, पस्कर न होकर पुष्कर होता है। पक्खर। प:खर । पुष्कर 'ख' अनेक समय में पाली भाषा ष् + । क + षह् संस्कृत भाव में लिखा जाता है।

कुर्माली – पाली – संस्कृत

यक्ख । य:ख। यक्षक। यक्ष

यक्ख । द:खिन। दक्खिन। दक्षिण

चक्खू । च:खु । चख्खू । चक्षु।

पाणिनी आंचलिक, प्राच्य, उदीच्य, और ठार भाषा को नियमवद्ध करके अनेक शब्दों को संधिवद्ध किया गया है। उसे विश्लेषण करने पर मूल भाषा रूप क्या था प्रकट होगा।

संस्कृत –'गच्छति' शब्द को लेने पर गत + छ्य + ति अर्थात् गत् = प्रवेश, छ्य = छाया। यहाँ गत को त और छ्य को 'छ' संधि होकर 'छ' हुआ है। गत् + छ्य = गच्छ।

कुर्माली में गत शब्द गत्, गताल गताँई रूप में व्यवहृत होता है।

छन्द – कुर्माली में अभी भी विवाह और वंदना में सैकड़ों वैदिक छन्द लिटष्म गायत्री जगती एवं अनुसूप के गीतों का गान किया जाता है। इसके व्यतीत प्राक वैदिक मिश्र छंन्द बोधक पंचामर गम्, अतिगन्, चामर वसन्त तिलक्य, पंचामर कीरीट सतृेव्या, वंशस्त, मालीनी, सुन्दरी, सदेवया, दुर्मिक्त, सवैया, गीतीका, दोहा, कवित, पयार, लघु त्रिपदी, शार्दुल, बिक्रीडित आदि कुर्माली में वर्तमान है।

इसके अतिरिक्त एक पदी से चर्तुदशी तक पद, छंद एवं भाव छंद दोनों विद्यमान है। कारण कुर्माली पदे-पदे बाँधने से छन्द एवं पद के रूप में छिपा लेहिवा छंद होता है। 'छिपली माया' कुर्माली लोगों के लिए घृण्य है किन्तु स्त्रियों के लिए बहुत ही प्रिय है।

कुर्माली साहित्य में तत्व:–पुराण शास्त्रों का विश्वास तत्व कुर्माली लोक गीतों में मिलता है जो बहुत उच्चकोटि की बोली मालूम होती है इसलिए कुड़माली लोगों के द्वारा स्पष्ट पर अशिक्षित लोगों के द्वारा सम्भव नहीं हैं। इसका अर्थ यह है।

गीत

नहिछिल्, आगी, नहीं छिल पवन,
नहिं छिल आकाश रसातल गो।
सब देहि तिठ्ये बूढ़ा भगवान गो
वाली माई प्रथम श्री जल।
तार परे श्री जल ब्रह्मा-विष्णु-महेश
तीनी गुणे आपन विकारे।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश के करि दलाई भाग गो,
तीनी गुने तीनी अधिकार।

(भावार्थ) :– अग्नि नहीं थी और पवन भी नहीं था, आकाश पाताल भी नहीं था। शब्दों में भगवान विद्यमान थे, माँ काली से पहले पृथ्वी की रचना उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, महेश का आविर्भाव हुआ और तीनों गुणों का (सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) का प्रतिनिधित्व किया। इन्हीं तीनों गुणों के कारण तीनों लोकों के मालिक हुए।

इसलिए पुराण का बिन्दु – नाद – तीन गुण (सत्व, रज, तम) – आकाश – मारुत – तेज जल – पृथ्वी आदि विषयों का अच्छी तरह से गीत में विश्लेषण हुआ है। गीतों के दूसरे पदों में पदकरोण प्रजातियों का (स्वयंभू, स्वेदज, अंडज, जरायुज का) वर्णन अच्छी तरह से दिया गया है।

इस भाषा की अधिक गवेषणा होनी चाहिए एवं कुड़माली भाषा के पठन-पाठन का सुयोग मिलना चाहिए।

प्रस्तुतकर्त्ता : डा ० आदिकन्द महान्त
एम ० ए०, बी० एड०, पी-एच० डी०,
इचिन्दा स्कूल कालोनी,
रायरंगपुर -757 043
जिला - मयूरभंज (उड़ीसा)

स्थायी निवास : चिलड़ा रायरंगपुर
जिला : मयूरभंज (उड़ीसा)
पिन - 757 018

कुरमाली भाषा की विशेषता और उसके मुहावरे

कुरमाली (कुर्माली) भाषा के कतिपय अन्य पहलुओं का यदि हम विवेचन करें तो स्पष्ट निष्कर्ष सामने आता है कि इस बोली में कुछ ऐसे शब्द है जो न भोजपुरी में मिलते हैं, न मगही में और न नागपुरिया में। इसके मुहावरे, पहेलियाँ और लोकोक्तियां भोजपुरी, नागपुरी, तथा मगही से सर्वथा भिन्न है याने कुर्माली भाषा अपना स्वरूप विशिष्ट है। कुर्माली में विभिन्न भाषाओं के अनेक शब्दों का समावेश हो जाने के बावजूद यह अपने मूल अस्तित्व को बनाये हुये है। कुर्माली भाषा की व्यापकता, स्वरूप वैशिष्ट्य एवं सशक्तता सिद्ध करने में इसके मुहावरे, पहेलियां, लोकोक्तियां, शब्द-भंडार, लोक-कथा एवं लोकगीत काफी सक्षम हैं। जिन्हें इस भाषा को ठीक से समझना है वे इन सब चीज़ो का गूढ़ता से अनुशीलन करें। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है :-

मुहावरे

1.	जेंई सहेय बड़ड् हेकेइक।	=	सहनशील व्यक्ति ही महान होता है।
2.	कामियाक पहाड़े भात	=	परिश्रमी को पेट की चिन्ता नहीं रहती।

लोकोक्तियाँ

1.	आपन काथाई तरी, परेक काथाईं मरी	=	सुनो सबकी करो अपने मन की।
2.	आंगा गुने पांगा, लोहा गुने टांगा	=	जैसा बाप, वैसा बेटा।

पहेलियां (जान-केहनी) Riddles

1.	लक्-लक् डांढ़ी, चक-चक पात, खाइत के मधुरस, उलगेइत के कपास।	=	ईख (गन्ना)
2.	डूबी-डूबी जाय, पूंछे चारा खाय।	=	सुई

* * * * * * *

अध्याय - 15

कूर्मि जाति गौरव, साधक-सिद्ध, साधु-संत एवं महात्मा

भक्ति कालीन काव्य की सगुण और निर्गुण धारायें, भारतीय आध्यात्मिक मनीषा के अपार भंडार को समृद्ध करते हुए, उसे संजोकर रखते हुए वे अविरल बढ़ती रही है। इस सम्पूर्ण भक्ति कालीन काव्य-साहित्य तथा सन्तों के आध्यात्मिक प्रवचनों को भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण श्रृंखला के उत्तराधिकारी के रूप में श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जा सकता है।

सर्वप्रथम भक्त नामदेव ने सामान्य भक्तिमार्ग का निर्देश किया था। नागपंथियों ने जो भक्ति मार्ग अपनाया उसमें विद्वानों के मतानुसार प्रेम की कमी थी। सन्त कबीर ने उसमें प्रेम का बीज रोपित कर निर्गुण पंथ के रूप में खड़ा कर दिया। इस प्रकार इस देश में ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक सगुण और निर्गुण नाम से भक्ति-काव्य की दो धारायें समानान्तर प्रचलित रहीं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता रही है कि भारतीय पांडित्य, ईसा की एक सहस्त्राब्दी बाद आचार-विचार और भाषा के क्षेत्रों में स्वभावतः लोक की ओर झुक गया था।

इतिहास साक्षी है कि भारत में सातवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर सत्रहवीं शताब्दी तक आये तुर्क, मंगोल, अफगान, पठान तथा अन्याय मुसलमान आक्रमणकारियों की इस्लामी दोधारी तलवार ने हिन्दू-समाज को क्षत-विक्षत कर, उन्हें सत्ताच्युत कर अन्ततोगत्वा देश का अधिकांश अपने आधिपत्य में ले लिया था, पर परोक्ष रूप में साथ ही साथ उसने उन्हें धार्मिक स्तर पर आपसी ऊँच-नीच आदि के कृत्रिम भेदों को भुलाकर उस संकट की घड़ी में, 'मरता क्या न करता' को चरितार्थ करते हुए उन्हें संगठित और जागृत होने के लिए स्वतः प्रेरित भी होना पड़ा। राजनैतिक दृष्टि से इस देश के सन्मुख एक समय ऐसा आया कि उत्तर एवं मध्य भारत आदि क्षेत्रों में मुसलिम आक्रमणकारियों की सर्वत्र तूती बोलने लगी थी और जिसके परिणाम स्वरूप प्रभावित हिन्दू समाज श्री हीन हो गया था, किन्तु दक्षिण भारत में बच रहे हिन्दू नरेशों से और बाद में छत्रपति शिवाजी महाराज के प्रादुर्भाव से हिन्दुओं की गौरव पताका-भगवा इधर-उधर फहराती नज़र आती रही और साथ ही उनकी कीर्ति भेरी का गुंजन भी सुनाई पड़ता रहा। ईसा की ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में चोल राज्य में सिंहल (लंका), अंडमान, जावा और कम्बोज़ (कम्बोडिया) को अपने शासन-सूत्र में बाँध लिया था। परिणामतया दक्षिण भारत के हिन्दू नरेशों और उनकी प्रजाओं में हिन्दू धर्म देदीप्यमान था। वास्तविकता यह थी कि आठवीं से सोलहवीं शताब्दी के बीच के विपदापूर्ण समय में भारतीय धर्म और दर्शन के अधिकांश विद्वानों, संत-कवियों और विचारकों ने निस्तेज उत्तर भारत के हिन्दुओं सहित समस्त हिन्दू समाज का, समयोचित नेतृत्व किया। इस श्रेणी में संत-कवि-विचारक आदि आते हैं। दक्षिण भारत के शैव, आडियार और वैष्णव आलवार और वेदांती विचारकों ने भक्ति और ज्ञान की वह सतत् धारा प्रवाहित की जोकि हिन्दू धर्म की रंगों में प्रवाहित रक्त के समान है। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दों में, **"हिन्दू वह है, जो अपने जीवन और आचरण में वेदों के आधार पर भारत में विकसित हुई किन्हीं भी धार्मिक परंपराओं को अपनाता है।"**

इस तरह, आवश्यकता पड़ने पर, दक्षिण भारत में जन्मा, पल्लवित हुआ भक्ति आन्दोलन महाराष्ट्र होता हुआ उत्तर भारत में आ फैला। इस भक्ति-आन्दोलन का एक लम्बा इतिहास है, जब यह प्रारम्भ हुआ मध्य युग का दौर था। इस पंरपरा में अनेक असाधारण प्रतिभा वाले संत कवियों ने अपना-अपना योगदान देकर भक्ति-आन्दोलन को दिशा और गति प्रदान की। इन भक्ति मार्गीय कवियों ने अपनी आँचलिक भाषाओं में शाश्वत ईश्वरीय प्रेम और आनन्द की गाथा गाई। इससे पूर्व हिन्दुओं के सभी धार्मिक ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में की जाती रही थी, जिससे समाज पर ब्राह्मणों का वर्चस्व और उनका कट्टर रूढ़िवादी नेतृत्व चलता चला आ रहा था। किन्तु भक्ति आन्दोलन में संस्कृत का स्थान स्थानीय भाषाओं ने लिया और ब्राह्मणों के अतिरिक्त सभी जातियों के विद्वानों और संत-साधु भावनाओं और अनुभूतियों का प्रगतिकरण करने लगे। यद्यपि कुछ शताब्दियों पूर्व महात्मा बुद्ध ने भी संस्कृत में अपने उपदेश न देकर, तत्कालीन लोक भाषा पाली एवं प्राकृत में दिये और बौद्ध-भिक्षुओं और मनीषियों ने उन्हीं भाषाओं में बौद्ध धर्म साहित्य को लिपिबद्ध किया था। जैन मुनियों, जिनों और चौबीस तीर्थंकरों ने भी संस्कृत के स्थान पर अन्य भाषाओं के माध्यम से अपनी नीति, उपदेश और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया।

इस परिप्रेक्ष्य में संत कवियों ने पहली बार अपनी क्षेत्रीय भाषा मध्य युगी बोलियों के माध्यम से अपने धार्मिक उद्‌गार जनता तक पहुँचाये। इसका एक प्रभाव और हुआ कि तत्कालीन जाति-प्रथा की कठोर सीमाओं, निषेधों और रुढ़िवादिता के प्रति स्वतः आरुचि तथा विद्रोह की भावना जागी और प्रबलतर होती गयी, जो हिन्दू धर्म के नकारात्मक पहलू थे। इन हिन्दू संतों में आध्यात्मवाद के प्रथम महान संत रामानन्द जी थे, जोकि सन् 1370 से 1440 ई० तक इस संसार को अपने ज्ञान-प्रकाश से आलोकित करते रहे। यद्यपि वे महान् तामिल विद्वान सन्त रामानुज (जन्म सन् 1017 ई० में) के शिष्य थे, जोकि ईश्वरवादी थे, उनका विश्वास था कि ईश्वर के एक रूप की कल्पना एक सीमा तक ही की जा सकती है और उन्होंने कहा कि आराधना ही सर्वोत्तम पथ है। किन्तु संत रामानन्द परंपरागत व्यवस्था से परे हट गए। उन्होंने जाति-व्यवस्था को चुनौती दी और संस्कृत के स्थान पर हिन्दी में अपने विचार प्रकट किये। उनके सबसे प्रसिद्ध शिष्य, गुरु रविदास थे, जोकि जाति से मोची थे, अपनी आध्यात्मिक सिद्धि के कारण ही वे अपने युग के इतने बड़े धार्मिक नेता माने गए।

संत रामानन्द के शिष्य मुख्यतः निचली जातियों के थे और उनमें प्रमुख स्थान संत कबीर का है। संत कबीरदास का जीवनकाल, सन् 1440 से 1518 ई० तक माना गया है। यद्यपि संत कबीर के कई शिष्य थे पर उनमें से दो ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। प्रथम थे बाबा नानकदेव जी, जिन्होंने सिख-मत की नींव रखी और जिनका जीवनकाल सन् 1469 से 1538 ई० तक का माना गया है। दूसरे शिष्य थे महान् संत दादू, जीवनकाल सन् 1544 से 1603 ई० तक और जोकि दादू-पंथ के प्रवर्तक माने गये हैं। उसी काल में संत तुलसीदास जी भी हुए जिन्होंने अन्य ग्रन्थों के साथ 'रामचरित मानस' की रचना की थी, जिससे भक्ति आन्दोलन को बढ़ावा दिया। पर समाज सुधारकों और समाज शास्त्रियों का तब से ऐसा मत भी रहा है कि जहाँ उपर्युक्त वर्णित सन्तों-महात्माओं ने जहाँ, वर्णाश्रम व्यवस्था से ऊँच-नीच वाली जातियों और उपजातियों में विभक्त हिन्दू समाज को समता एवं समदर्शन के धरातल पर उतारने और उसके सभी घटकों को समान मानव बनाने का प्रयत्न किया, वही रूढ़िवादी ब्राह्मणों को मनुशास्त्र के पश्चात् कलियुग में 'रामचरित मानस' एक ऐसा अस्त्र मिल गया और फिर उसमें अनेक क्षेपक प्रविष्ट कर उसे इतना पैना और प्रभावजन्य बना डाला, जिससे पूर्व संतों-महात्माओं के प्रयासों के प्रतिफल को प्रभावहीन एवं नकारने की चेष्टा की गयी। 'रामचरित मानस' के जरिये न केवल ब्राह्मणों-पुरोहितों की रोटी-रोज़ी मजे से फिर चल निकली अपितु इसके प्रचार-प्रसार से हिन्दू धर्म में अनेक सुधारकों के सतत् प्रयासों के फलस्वरूप घटती अनावश्यक कर्मकाण्ड, रुढ़िवादिता, ऊँच-नीच की भावना और आपसी दुरव्यवहार पुनः बढ़ना शुरू हो गया। संत सूरदास भी भक्ति काव्य की दृष्टि से तुलसीदास से किसी माने में कम न थे पर सूरदास की कृष्ण भक्ति काव्य के प्रचार-प्रसार से ब्राह्मणों और पुरोहितों को शनैः शनैः स्वतन्त्र होने वाले हिन्दू समाज पर पुनः अपना वर्चस्व और सिक्का जमाने में वह कारगर नज़र न आया। अतः संत सूरदास केवल विद्यार्थियों के पाठ्य-क्रम में ही पठन-पाठन के लिये सीमित होकर रह गये। इसीलिये आज का यथार्थ यह है कि संत तुलसीदास की कृतियों के प्रशंसकों, अनुयायियों में भारत का द्विज वर्ग और अनपढ़ भक्तिभाव से प्रभावित अद्विज जनों का कुछ अंश है। आलोचकों और विरोधियों में ज्यादातर अद्विज वर्ग है जोकि अनुपात में पहले वालों से कहीं अधिक संख्या में है। जबकि भक्तिकालीन संतों के मात्र प्रशंसक और अनुयायी ही अधिकतर मिलेंगे। विरोधी और आलोचकों की संख्या नगण्य ही मानी जायेगी। समाज का मध्यम एवं निम्न स्तरीय वर्ग विशेष करके इन भक्तिकालीन संतों द्वारा चलाये विभिन्न मत सम्प्रदाय और पंथों के अनुयायी बने। जैसे दशनामी, सन्यासी, उदासी, वैरागी, रामानंदी, कबीरपंथी, दादूपंथी, नाथपंथी, वल्लभमार्गी आदि।

भारतीय भक्ति-साहित्य में निर्गुणियों सन्तों की अति महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हिन्दी भाषा में 'संत' शब्द का अर्थ निर्गुण साधकों के लिये रूढ़ हो गया है। हिन्दी साहित्य के सुविज्ञ जनों ने कबीर आदि निर्गुणियों को ही संत कहा है सूरदास और तुलसीदास को नहीं। मराठी साहित्य में भी संत और भक्त शब्द किसी समय में विशेष रूप से केवल उन भक्तों के लिये प्रस्तुत होता है जो विट्ठल या बारकरी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी। महाराष्ट्र के ये सन्त कवि थे ज्ञानदेव, तुकाराम, रामदास, एकनाथ, नामदेव आदि इनको 'भक्त' भी सम्बोधित किया जाता है। कर्नाटक प्रदेश में संतों का पर्याय शब्द अनुभावी है जो कि वहाँ के संत कवियों के लिये प्रयुक्त होता है। वैसे भी अनुभावी का शब्दिक अर्थ है-"साक्षात्कार अर्थात् आत्म-साक्षात्कार या आत्मानुभव करने वाला व्यक्ति।"

कबीरदास के अनुसार संत जनों को निर्वैरी, निष्काम, प्रभु का अनन्य प्रेमी और सांसरिक विषयों से विरक्त तथा विकारों से मुक्त होना चाहिए।

संत न बांधै गाठड़ी, पेट समाता लेइ।
सांई सूं संमुख रहै, जहाँ मांगै तहाँ देइ।।

अत: संत का विशेष लक्षण विरक्ति भाव से ओत-प्रोत होना है। वह पूर्ण संतोष से अपना जीवन-यापन करता है, क्योंकि उसे भलीभांति विदित है कि देनहार ईश्वर या सगुण-निर्गुण ब्रह्म तो उसके आगे-पीछे है। कबीर के वचनों को पहले लोगों ने उलटबाँसी का नाम दे दिया और कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी कहा जो सुसंस्कृत न थी।

आदि शंकराचार्य ने ब्रह्म को परिभाषित करते हुए कहा कि इस समस्त संसार में एक निर्विकार सत्ता सदैव विद्यमान रहती है उसे ही 'ब्रह्म' कहते हैं। उनके मतानुसार ब्रह्म के अर्थ दो दृष्टिकोणों से किये जा सकते हैं–एक व्यावहारिक दृष्टिकोण से और दूसरा स्वरूप-लक्षण के दृष्टि-कोण से। व्यावहारिक दृष्टि से जगत् को सत्य माना गया है। वह सर्वशक्तिमान है–इस रूप में वह ईश्वर या सगुण ब्रह्म है, जिसकी उपासना की जाती है। स्वरूप लक्षण की दृष्टि से, 'सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म' अर्थात् ब्रह्म सत्य और अनन्त ज्ञान-स्वरूप है। इसी को शंकराचार्य के अनुसार परब्रह्म कहा गया है। यही निर्गुण, निराकार, निर्विशेष ब्रह्म है। सगुण ब्रह्म मायिक हैं यही ब्रह्म सत्, चित और आनन्द है। सगुण और निर्गुण इसी ब्रह्म के दो पक्ष हैं, दोनों वास्तव में एक हैं किन्तु निम्न दृष्टिकोणों के पर्यावलोकन के कारण सगुण और निर्गुण का भेद माना जाता है।

कूर्मि जाति को इस बात का गौरव प्राप्त है कि उनमें जन्में अनेक साधक-सिद्ध पुरुषों, साधु-संतों एवं महात्माओं ने हिन्दू आध्यात्मिक मनीषा के अपार भंडार को सगुण और निर्गुण धाराओं अथवा साधना के अन्य माध्यमों से समृद्ध किया है और वर्तमान में भी कर रहे हैं, उनमें से कुछ प्रमुख दिव्य पुरुषों का परिचय और उनका योगदान भी है उसका उल्लेख नीचे किया गया है।

यह सत्य है कि जब कोई गैरिक-वस्त्र धारण कर साधु या सन्यासी बन जाता है तो हिन्दूधर्मानुसार उसकी जाति के संकुचित दृष्टिकोण से बिचार करना या उसका उल्लेख करना भी उस व्यक्ति विशेष के साथ अन्याय है, क्योंकि वे तो जात-पात के सारे सांसरिक बंधन मुक्त होने पर ही सही अर्थों में साधु-संत बन सकते हैं। इसीलिए कबीरदास ने कहा है :-

"जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तलबार का, पड़ा रहन दो म्यान।।"
(कबीर वचनावली, पृ० 151)

भावार्थ :– साधु की जाति नहीं पूछनी चाहिए, उसके पास जो ज्ञान है उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। कबीरदास ने यह भी कहा था।

"पंड़ित और मसालची दोनों सूझैं नाहिं।
औरन को करै चाँदना, आप अँधेरा मांहि।"

इसी तरह प्रसिद्ध एक अन्य भक्तिकालीन संत कवि पलटू साहब ने भी कहा है :-
" कोई जाति न पूछे हरि को भजै सो ऊँचा है।"

कुर्मी जाति में अनेक संत महात्माओं ने जन्म लेकर भारतीय आध्यात्मिक भण्डार को समृद्ध किया है उनमें कुछ जैसे– संत तुकाराम, संत बुला साहब कुर्मी (प्रमाण के लिये देखिये "सन्त बचनावली"- लेखक डा० राजेश्वर प्रसाद सिंह, अनुपम प्रकाशन, पटना-4), संत वेमना रेड्डी, मानस-टीकाकार बाबा बैजनाथ कुर्मी, श्री साहिब दुर्गादास, सदगुरु विशाल साहब, संत राम रविदास, गोविन्द साहब मठ जलालपुर (फैजाबाद), स्वामी आत्मानन्द जी तथा उनके दो सगे सुशिक्षित सन्यासी बन्धु आदि उच्चकोटि के साधु-संत हुये हैं। इनके बारे में संक्षिप्त विवरण आगे दिया गया है।

सन्त तुकाराम

इतिहासाचार्य राजवाड़े ने वाई नामक महाराष्ट्र के एक स्थान से प्राप्त 'वंशावली' के आधार पर तुकाराम का जन्म सन् 1568 ई० में पूना के निकट देहू ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम बोल्होबा और माता का नाम कनकाई था। वे कुनबी जाति में पैदा हुए थे, जिन्हें उस समय के ब्राह्मण, शूद्र मानते थे। जाति के प्रमाण में सन्त तुकाराम का प्रसिद्ध अभंग नीचे प्रस्तुत है :-

"बरें देवा कुणवीं केलों,
नाहीं तरि दंभे असतों मेलों।"
(सन्त तुकारामाचे अभंग)

(भावार्थ):– "अच्छा किया प्रभु कुणवी बनाया, ब्राह्मण नहीं, वर्ना उसके दम्भ से मर गया होता।" संत कबीर जैसे स्पष्टवादी और मुँह फट थे वैसे ही संत तुकाराम, तभी महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों ने उन्हें शूद्र घोषित करके उनकी वाणी का प्रभाव नष्ट करने की कुचेष्टा की थी, पर संत तुकाराम आज के महाराष्ट्र में जनवाणी के कवि है और उन्हें समाप्त करने वाले ब्राह्मणों का वर्चस्व तो चला ही गया, समाज में सम्मानीय स्थान पाने के भी लाले पड़ते दिखते हैं।

तुकाराम के पिता-माता धार्मिक और सात्विक वृत्ति के थे। वे वंश परंपरागत व्यवसाय ही करते थे। इनके तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम साबाजी, मध्य पुत्र का नाम तुकाराम तथा कनिष्ठ का नाम कान्हा था। साबा जी बाल्यावस्था से ही विरक्त थे। अतः उन्होंने पहले विवाह नहीं किया बाद में किया। तुकाराम के खानदान में परंपरागत भक्ति का वरदान प्राप्त था। पंढरपुर के बिट्ठल की भक्ति उनके परिवार में पिछली कई पीढ़ियों से चली आ रही थी। देहू ग्राम का परंपरागत महाजन का वतन (सनद) तुकाराम के खानदान में था। (तुकाराम के पौत्र द्वारा लिखित एक पत्र में तथा शिवाजी महाराज के एक आज्ञापत्र में इसका उल्लेख है- देखिये "महाराष्ट्र सारस्वत, वि० ल० भावे, पृ० 364) इनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। इनकी पहली पत्नी रखुमाबाई को दमा की बीमारी होने से तुकाराम की दूसरी शादी जीजाबाई नाम की कन्या से हुई। दूसरे विवाह के समय तुकाराम की आयु मात्र 13 वर्ष की थी। बाल्यावस्था में तुकाराम का जीवन सुख-शान्तिपूर्वक बीता। परन्तु परिवार का यह सुखी वातावरण स्थायी न था। तुकाराम जब 17 वें वर्ष में थे उनके माता-पिता का निधन हो गया। ज्येष्ठ भ्राता साबाजी की पत्नी की यकायक मृत्यु होने से दुःख से त्रस्त साबाजी घर छोड़कर तीर्थदर्शन के लिये चल पड़े। तुकाराम का जीवन ठीक-ठाक ही चल रहा था। खानदानी महाजनी का कार्य, समाज में प्रतिष्ठा, व्यापार में पर्याप्त लाभप्राप्ति, सेवा के लिये नौकर-चाकर, पशुधन, दो पत्नियाँ तथा सुलक्षणी पुत्र, इससे अधिक ऐहिक सुख का वे क्या करते ?

इक्कीस वर्ष की आयु आते-आते परिवार पर विपरीत समय छा गया। व्यापार में दिवाला निकल गया। भंयकर अकाल पड़ा। घर की एक-एक वस्तु उदर-पूर्ति के लिये बेच दी गई फिर भी अन्न के लाले पड़ गये। तथा प्यारा बेटा संतु "अन्न, अन्न" पुकार-पुकार कर भूखे पेट शरीर छोड़ गया। द्वितीय पत्नी जीजाबाई के कर्कशा स्वभाव के कारण तुकाराम का वैसे ही उठते-बैठते चैन समाप्त हो गया था। इस प्रकार अंतर्बाह्य परिस्थितियों से उद्विग्न तथा त्रस्त तुकाराम का मन शान्ति की राह ढूँढ़ने में लग गया। वे देहू ग्राम के निकट एक पहाड़ पर जाकर वहाँ एकान्त में भगवत्-स्मरण करने लगे। वहाँ ज्ञानेश्वरी तथा एकनाथ कृत भागवत- इन दो ग्रंथों का उन्होंने अनुशीलन और मनन बड़ी एकाग्रता से किया। देहू के बिट्ठल मन्दिर का जीर्णोद्वार कर वे बिना किसी संकोच के बिट्ठल कीर्तन करने में तल्लीन रहने लगे। इस प्रकार तुकाराम के जीवन का मोड़ आध्यात्मिकता की ओर हुआ, जिस मार्ग पर वे अग्रसर होते गये। इसी साधनाकाल में तुकाराम ने सहस्त्रावधि रसमय अभंगों की रचना की जो मराठी साहित्य में अमर हैं।

सामाजिक कार्य

तुकाराम ने विशेष रूप से अपने जीवन के दूसरे चरण में सामाजिक कार्य अनगिनित अभंग रचनाओं के माध्यम से किया। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा समाज के तथाकथित ठेकेदारों का ढ़ोंग, शास्त्रियों तथा पंड़ितों की रटन, शक्ति, नाथ और आदि धर्मपंथियों का आडम्बर जनता के सम्मुख प्रकट किया। इसके साथ-साथ उन्होंने धर्माभिमान, स्वामिनिष्ठा, धर्म नीति का श्रेष्ठत्व, धर्मकर्म की अपेक्षा शुद्धचित आदि का महत्त्व सामान्य जनता को करा दिया।

रचनाएँ :—तुकाराम का अधिकांश साहित्य फुटकर अभंग रचनाओं में ही बिखरा पड़ा है। ये रचनाएं आरती, अभंग, पद, ओवी, श्लोक के रूप में प्राप्त हैं। इनकी स्फुट रचनाओं में अभंग छंद में ही अधिक रचनायें हैं। अब तक संत तुकाराम की लगभग 5000 स्फुट रचनाएँ उपलब्ध हो सकती है। 'तुकाराम बावांच्या अभंगगांची गाथा' {संपा० पु० म. लाड मुबई सरकार प्र० (सन् 1955)}। तुकाराम कृत भगवद्‌गीता का अभंगात्मक अनुवाद 'मंत्र गीता' के रूप में श्री वा० सी० बेंद्रेजी ने सन् 1950 में प्रकाशित की है। इनके अतिरिक्त 'भानुदास चरित्र' और 'सुदामा चरित्र' को भी इनकी रचनाएँ माना गया है। अभी अन्य भी अज्ञात रचनायें यदि प्रकाश में आ जाती तो संत तुकाराम की साहित्य सम्पदा में वृद्धि होगी।

तुकाराम ने मराठी रचनाओं के साथ ही साथ हिन्दी भाषा में भी रचनाएं की है। हिन्दी रचनाओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। 1. गोपी प्रेम 2. पांखड उद्‌घाटन और 3. नीति और भक्ति-उपदेश। गोपी प्रेम का एक पद्य नीचे दृष्टव्य है :–

हरि बिन रहिया न जाए जिहिरा।
कबकी थोड़ी देखे राहा।
क्या मेरे लाल कवन चुकी भई।
क्या मोहि पासिती बेर लगाई।
कोई सखी हरि जावे बुलवान।
बारहि डारें उस पर ये तन।
तुका प्रभु कब देख पाऊँ।
पासी आऊँ फेर न जाऊँ।

तुकाराम कें पाखंड उद्‌घाटन' छन्दों पर कबीर का प्रभाव परिलक्षित होता हैं। इस प्रकार के तुकाराम कृत हिन्दी में छन्द द्रष्टव्य है :-

तुका बस्तर बिचारा क्या करे, ज्याको चीत भगवा (न) होये।
भीतर मैला कैउं मीटे जो परे उपर धोये।।

चीतसुं चीत जब मीले तब तनथंडा होये।
तुका मीलता जीन्ह सु यैसा वीरला कोये।।
(श्री तुकाराम चरित्र, पृ० 6, ल० रा० पागांरकर, सन् 1920, पृ० 203-204)

तुकाराम की हिन्दी रचनाओं में उपमा, अर्थांतिरन्यास, रूपक आदि अलंकारों का सहज ही समावेश हो चुका है। उदाहरण के लिये अर्थांतिरन्यास अलंकार का यह छन्द द्रष्टव्य है :-

चीत मीले तो सब मीले नहीं तो फोकट संग।
पाणी पत्थर एक ही ठोर को रण भीजे अंग।।
("हिन्दी को मराठी संतों की देन" - डा० विनय मोहन शर्मा, सन् 1957 पृ० 157)

हिन्दी पदों में एक विशेष बात काबिले गौर है कि तुकाराम ने अपने आराध्य देव पंढरपुर के बिट्‌ठल का कहीं भी जिक्र नहीं किया। उन्होंने गोपाल, रघुराज, हरि, गोविंद आदि का अपने छन्दों में उल्लेख किया है। डा० विनयमोहन शर्मा ने अपनी पुस्तक "हिन्दी को मराठी संतों की देन" के पृष्ठ 167 पर इसका कारण बताया है कि हिन्दी पद हिन्दी भाषी जनता के लिये रचे गये थे जो कि उस काल में पंढ़रपुर के बिट्‌ठल नाम से बहुत कम परिचित थे।

इन पदों के माध्यम से तुकाराम की विचारधारा का परिचय महाराष्ट्रीयेतर जनता को हुआ।

संत तुकाराम जहाँ अपने मराठी अभंगों द्वारा ईश्वर-भक्ति, सत्यनिष्ठा आदि के उपदेश देते थे, वहाँ वे महाराष्ट्र की आम जनता को शूरवीर बनने, जनहित के निमित्त त्याग बलिदान करने, दुष्ट, दुराचारियों का दमन करने तथा देश और धर्म की रक्षा के लिये मर मिटने की भी शिक्षा दिया करते थे। अपने ओज भरे अभंगों द्वारा संत तुकाराम जनता में योद्धावृत्ति, शूरवीरता जाग्रत किया करते थे। वे एक अभंग के माध्यम से आह्वान करते है :-

"जुकाम्हणे रणीं, जीव देता लाभ दुणी में"
(तुकारामचे अभंग, पृ० 767)

अर्थात्- हथियार तो शूर वीरों के हाथों में ही सुहाते हैं, नपुंसक के हाथों में हथियार देखकर लोग खिल्ली उड़ाते हैं।

संत तुकाराम के अभंग (भजन) महाराष्ट्र में गाँव-गाँव, कस्बे-कस्बे तथा नगर-नगर में बड़ी भक्तिभाव से गाये जाते हैं जिसका शीघ्रप्रभाव यह नज़र आया कि महाराष्ट्र का सामाजिक ताना-बाना एकमय होकर सुदृढ़ हो गया। समता के भाव से प्रेरित वे एकता के प्रबल सूत्र में गुंथ गये। लगभग चार सौ वर्षों बाद भी ये अभंग महाराष्ट्र के लोक जीवन में जनता की जुबान पर हैं और वे गा उठते हैं। मराठा राजनीतिक नेता ने भक्तिकालीन महाराष्ट्रियन संतों द्वारा संगठित तथा मानसिक रूप से उनमें स्थापित ऐक्य को देखकर उनमें राजनीतिक चेतना भी सहज रूप से उत्पन्न कर सके। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० ईश्वरी प्रसाद का मत है कि यदि महाराष्ट्र की धार्मिक एकता की ठोस पृष्ठभूमि तैयार न की गयी होती तो वीर शिवाजी के लिये स्वतन्त्र मराठा राज्य के रूप में एक राष्ट्रीय साम्राज्य का स्थापित करना सम्भव न हो पता। यह एकता पेशवा शासन काल में भंग की गई और परिणाम क्या निकला कि शिवाजी का स्थापित मराठा सम्राज्य ताश के पत्तों की तरह बिखर गया और नष्ट कर डाला गया।

तुकाराम और छत्रपति शिवाजी

महाराष्ट्र का यह सौभाग्य था कि ईसा की सत्रहवीं शताब्दी में तुकाराम, रामदास, शाहाजी तथा शिवाजी इन चार नर पुंगवों का कार्य संयोग से एक दूसरे का पूरक रहा और परिणामस्वरूप लगभग 300 वर्ष परंतत्रता की जंजीरों में बंधा महाराष्ट्र स्वतन्त्र हो गया। यदि तुकाराम को अधिक आयु मिल जाती तो निश्चय ही उनके द्वारा सामाजिक और साहित्यक दोनों कार्य अधिक मात्रा में हो पाते। शिवाजी महाराज संत तुकाराम का बड़ा आदर करते थे। वे संत समागम प्रेमी थे। शिवाजी को अपनी माता जीजाबाई से सीख मिली थी कि स्वराज्य संस्थापन में सफलता पाने के लिये साधु-संतों का आशीर्वाद आवश्यक होता है।

ऐसा कहा जाता है कि पूना के निकटवर्ती देहू गाँव में मौका पाते ही शिवाजी अपने प्रारम्भिक जीवन में तुकाराम की अभंगवाणी तथा उपदेशों को सुनने चले जाते थे। तुकाराम के भजन-कीर्तन और उपदेशों ने उन पर बड़ा प्रभाव डाला, यहाँ तक कि एक बार अपने राजनैतिक, शासनिक तथा नैमित्तिक कार्यों को छोड़कर आठ दिन वे देहू गाँव में संत तुकाराम के पास रह गये। शिवाजी में वीतरागता उत्पन्न होती देख माता जीजाबाई अति चिंतिन्त हो उठीं, अत: शिवाजी की प्रवृत्ति में परिवर्तन रोकने के लिये उन्होंने संत तुकाराम के पास प्रार्थना भेजी। माता जीजाबाई की चिन्ता का कारण जानकर संत तुकाराम ने जिन्हें स्नेह से तुकोबा सम्बोधित किया जाता था, अपने कीर्तन में वर्णाश्रम धर्म, क्षत्रियधर्म तथा राजधर्म पर शिवाजी को उपदेश दिया कि क्षत्रियधर्म तथा राजधर्म के लिये उन्हें वैराग्य-भाव मन में न लाना चाहिए।

संत तुकाराम के अभंगों से ऐसा भी हवाला मिलता है कि शिवाजी को समय-समय पर वे उपदेश देते थे और यह बात दुश्मन भी जानते थे कि शिवाजी अक्सर तुकोबा के सत्संग के लिये देहू ग्राम जाते हैं। कहा जाता हैं कि एक बार शत्रु दल के कुछ पठान सैनिकों ने कीर्तन के दौरान यकायक आक्रमण कर शिवाजी को पकड़ना चाहा परन्तु संत तुकाराम के पुण्य प्रताप और शिवाजी की सावधानी के कारण इस संकट की घड़ी में वे साफ़-साफ बच निकले। एक अन्य अभंग के अनुसार प्रसन्न होकर शिवाजी महाराज ने अपने गुरु और मार्ग प्रदर्शक संत तुकाराम को भेंट स्वरूप एक सुन्दर घोड़ा, अबदागीर, कारकून तथा कुछ हीरे जवाहरात भेज दिये थे किन्तु नि:स्वार्थ और विरक्त से तुकाराम ने उसे स्वीकार न करते हुये लौटा दिया। उत्तर में 14 अभंगों का उपदेशपरक-पत्र शिवाजी महाराज के पास भेजा। जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण माना गया है। (मराठी वाङ्मयाचा इतिहास, खंड -2 ल० रा० पागारकर (सन् 1935) पृ० 648-649)

संत तुकाराम और शिवाजी की भेंट

अंत: साक्ष्य तथा बहि: साक्ष्य सामग्री के आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि तुकाराम और शिवाजी की भेंट हुई थी और समय-समय पर वे शिवाजी को राजा का क्या दायित्व है और उसे कठोरता से पालन का उपदेश भी दिया करते थे। सम्भवत: सन् 1649 ई० में तुकाराम और शिवाजी की जब प्रथम भेंट हुई थी तब तुकाराम की आयु 51 वर्ष थी और शिवाजी अपने 19 वें वर्ष में प्रविष्ट हुये थे, जिसको तुकाराम का निम्नलिखित अभंग प्रमाणित करता है :-

घेऊनिया मेटी कोण हा संतोष, आयुष्याचे दिस गेले गले।
रोड के हात पाय दिसे अबकला, काय तो सोहला दर्शनाचा।
("तुकारामची गाथा, सावलाराम अष्णि मंडली प्रकाशन, सन् 19033)

इसके अर्थ है कि मेरे (तुकाराम) के जीवन के दिन पूरे हो चुके हैं, हाथ पाँव दुर्बल तथा कृश हो चुके हैं अतः मैं दर्शनीय नहीं रह गया हूँ। ऐसे जर्जर-शरीर वाले के दर्शन से तुम्हें कौन सा संतोष मिलेगा ? इस अभंग से भेंट होने का साक्ष्य मिलता है।

शिवाजी को "छत्रपति" का यह गौरवपूर्ण विरूद भी उन्हें राज्याभिषेक के पूर्व ही जनता द्वारा प्रदान किया गया था। (शिवकालीन पत्र-व्यवहार क्र० 587, 717 व 722)। तत्कालीन कई पत्रों और काव्य-कृतियों से इसकी सम्पुष्टि भी होती है। इसके अतिरिक्त संत तुकाराम द्वारा शिवाजी के लिये प्रयुक्त विशेषण 'चातुर्य सागर', 'सर्वज्ञराजा' तथा 'गुरु भक्त' आदि का प्रमाण मिलता है। संत तुकाराम सन् 1650 को इन्द्राणी नदी के तट पर भजन कीर्तन करते हुये सदेह नदी जल में अलोप हो गये।

यहाँ यह विचार करना असंगत न होगा कि छत्रपति शिवाजी के आकस्मिक निधन के पश्चात् मराठा स्वराज्य क्यों इतनी तेजी से बिखर कर समाप्त हो गया। विद्वजन इसके अनेक कारण बतायेंगे किन्तु उनमें से प्रमुख है शिवाजी के परिवार में पेशवाओं के हस्तक्षेप से फूट डालकर राज्य को कोल्हापुर, सतारा और नागपुर जैसे नये राज्यों में विभक्त कर देना। शनैः शनैः पेशवाओं का स्वयं मराठा राज्य की सत्ता को अपने हाथों में लेकर उसे अपने मनमाने ढ़ंग से चलाना। जहाँ छत्रपति शिवाजी की अपनी धार्मिक सहनशीलता की भावना और हरेक नागरिक के प्रति समदृष्टि थी। वहाँ पेशवाओं द्वारा कट्टर मनुवादी घोर ऊँच-नीच की भावना का प्रचार-प्रसार होना तथा यही नहीं छत्रपति शिवाजी की कृपा और दान-दक्षिणा पर पले, फले-फूले इस पुरोहित वर्ग ने उन्हीं अपने अन्नदाता और आश्रयदाता शिवाजी को उनके राज्याभिषेक के संदर्भ में उनकी जाति को नीच सिद्ध करने में अपनी ऐंड़ी-चोटी का जोर लगा दिया, जिससे महाराष्ट्र में हिन्दू समाज में पेशवाई के जमाने में ऊँच-नीच की कृत्रिम दरारें फिर खींच दी गई। हिन्दू धर्म के इन तथाकथित ठेकेदारों ने मराठा शासकों को नीची जाति का बताकर सारे महाराष्ट्र की जनता का मनोबल मलीन कर डाला।

इस प्रकार मराठा शक्ति क्षीण होती गयी और सन् 1760 ई० के पानीपत के तृतीय युद्ध में पेशवाओं के नेतृत्व में लड़ी मराठा फौज अहमदशाह अब्दाली की फौज़ से न केवल बुरी तरह हरायी गई अपितु गाजर मूली की तरह काट भी डाली गयी। जबकि इसके विपरीत शिवाजी के बारे में इतिहासज्ञों की सहमति है कि वे दूरदर्शी, प्रतापी और सभी प्रकार से योग्य राष्ट्र नायक के रूप में प्रकट हुये, जिन्होंने असंगठित, बिखरी हुई कृषक जातियों मराठा, कुनबी, धनगड़, कोली, माली तथा मावली को संगठित कर एक शक्तिशाली फौज खड़ी कर मराठा स्वराज्य की नींव डाली। शिवाजी महाराज के लिये 'गो ब्राह्मण प्रतिपालक' की विशेष उपाधि ब्राह्मणों द्वारा दी गई थी। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'शिवाजी उत्सव' शीर्षक से एक सुदीर्घ कविता के अन्त में लिखा था :-

मराठीर साथे आजि है बंगाली,
एक कंठे बोलो 'जयतु शिवाजी'।
मराठीर साथे आजि है बंगाली।
एक संगे चलो महोत्सव साजी।

आज एक समातले, भारतेर
पश्चिम-पूरब दक्षिण व वामे,
एकत्रे करूक भेग एक साथे,
एकटि गौरव एक पुण्य नामे।।

(भावार्थ) :- " हे बंग वासियों ! मरहठों के साथ शिवाजी की जय बोलो। 'शिवाजी महोत्सव' सम्पन्न करने के लिये मरहठों के साथ-साथ चलो ! हे भारतवासियों ! तुम भारत की पूर्व-पश्चिम, उत्तर दक्षिण की सभी दिशाओं से एकत्रित होकर शिवाजी के पावन नाम-गौरव के आनन्द का अनुभव करो।"

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ सर यदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक (हिन्दी में अनूदित) -" शिवाजी और उनका युग-", पृ० 367-368 पर लिखा है- " शिवाजी ने ब्राह्मणों द्वारा किये गये अपने अपमान को बहुत महसूस किया। जिनकी सुरक्षा और समृद्धि के लिये उन्होंने अपना जीवन ही लगा दिया था, वे बार-बार उनको शूद्र मानते थे और इसीलिये उन्होंने बालाजी आवजी का

सहारा लिया, जो कायस्थों का नेता और ब्राह्मणों के गर्व का शिकार था। ब्राह्मण कायस्थों की बुद्धि और साहित्यक योग्यता से डाह करते थे, जो शिक्षा और सरकारी नौकरी में उनके एक मात्र प्रतिद्वन्दी थे, और इतना कहकर सान्त्वना प्राप्त कर लेते थे कि कायस्थ निम्न जाति के हैं और उनको वेदों के अनुसार अनुष्ठान करने का कोई अधिकार नहीं है, तथा उन्होंने बालाजी आवाजी का सामाजिक बहिष्कार भी घोषित कर दिया, क्योंकि उसने अपने बेटे को यज्ञोपवीत धारण करा दिया था। स्वाभाविक ही था कि बालाजी की सहानुभूति अपने स्वामी के प्रति थी और उन्होंने गागाभट्ट के द्वारा शिवाजी को सामाजिक उच्चता प्रदान करवाई जिसने शिवाजी जी को शुद्ध क्षत्रिय बना दिया।"

यही ब्राह्मण एक तरफ जो छत्रपति शिवाजी और सम्पूर्ण मराठा कौम का मनोबल गिराने के लिये उन्हें निम्न जाति का कहते-कहते न थके थे। दूसरी तरफ उनके पूर्वजों को सम्राट अकबर को राजस्थान से स्वत: अनेक राजकुमारियों के डोले जिन राजपूत नरेशों ने भेजे थे उनका शास्त्रवत् विवाह संस्कार वेद मंत्रों से कराने में उन्हें संकोच या लज्जा का अनुभव नहीं हुआ था और न उससे हिन्दू धर्म के रक्षक के रूप में धर्म-विपरीत कर्म नजर आया। इस देश के प्राचीन क्षत्रियों को अक्षत्रिय घोषित करते रहे और हूण, शक, यवन आक्रमणकारियों को शुद्ध कर राजपूत बनाते रहे, जिनसे उन्होंने बौद्ध धर्म और जैनधर्म को नष्ट करवाया। अब जमाना बदल रहा है और आज का शिक्षित वर्ग इस विन्दु पर क्या सोचता है। उसे डा० रामकुमार सिंह डी. लिट. ने अपने काव्य ग्रंथ 'छत्रपति शिवाजी' की भूमिका में पृष्ठ 181 पर इस प्रकार व्यक्त किया है- "सम्पूर्ण भारत में 'हिन्दवी स्वराज्य' की स्थापना का सपना संजोने वाले एवं उसका बाल्य-काल से ही साहसपूर्ण अनुष्ठान करते हुये उसे अन्ततः पूर्ण करने वाले, ध र्म-विभेदहीन धर्म की स्थापना करने वाले, योद्धा, कूटनीतिज्ञ, दूरदर्शी, अतुल पराक्रमी छत्रपति शिवाजी महाराज भारतीय इतिहास के ऐसे देदीप्यमान राष्ट्रोद्धारक महापुरुष थे जो किसी राष्ट्र को भाग्य से ही प्राप्त होते हैं। यदि फ्रांस को नेपोलियन और इंग्लैंड को नेल्सन पर गर्व है तो उससे भी अधिक भारत को शिवाजी पर गर्व होना चाहिए। यदि भारत राम, कृष्ण की परंपरा को पूजता है तो उसे शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, नेता सुभाषचन्द्र बोस, सरदार वल्लभ भाई पटेल की पंरपरायें भी नहीं भूलनी चाहिये।"

महाराष्ट्र के भक्तिकालीन कवियों में अज्ञानदास का नाम भी उल्लेखनीय है। पोवाड़ा महाराष्ट्र का प्रसिद्ध लोक छंद है। उपलब्ध पोवाड़ों में अज्ञानदास का अफजलवध नामक पोवाड़ा सबसे प्राचीन दिखाई देता है। अज्ञानदास महाराष्ट्र के पूना नगर के रहने वाले थे और जाति से वे गोंधली थे। इन्हें शिवाजी महाराज का आश्रय प्राप्त था। इनकी रचना स्वंय शिवाजी, उनकी माता जीजाबाई तथा अन्य सरदारों ने प्रत्यक्ष सुनी थी। जिसके उपलक्ष्य में उन्हें पुरस्कार-स्वरूप शिवाजी ने एक घोड़ा तथा सोने का एक सेर वजन का आभूषण, में 'तोड़ा' दिया था। इस पुरस्कार का वर्णन अज्ञानदास स्वंय इस प्रकार अपने पोवाड़े में करते है :-

म्हणून शिवाजी सरज्यानें, इनाम घोड़ा बक्षीस दिला।
शेर भर सोन्याचा, तोड़ा हाताल छातला।।
(ऐतिहासिक पोवाड़े, य. न० केलकर, सन् 1928, पृ० 221)

हिन्दी भाषा मातृभाषा न होते हुए भी संत कवि अज्ञानदास की रचनाओं में मराठी के साथ-साथ हिंन्दी छंद भी मिले हैं। इन हिंदी छंदों का प्रयोग उन्होंने मुसलमान सरदार अफजल खाँ और शिवाजी के वार्तालाप के प्रंसगों में किया है जो अत्यन्त स्वाभाविक और ऐतिहासिक जानकारी देता है। शिवाजी महाराज जब अफजल खाँ से मिलने के लिये प्रतापगढ़ दुर्ग की तलहटी में स्थित सुनिश्चित स्थान पर पहुँचते है तब उनका अपमान करने के उद्देश्य से अफजल खाँ, 'कुनबी का छोकरा' कहकर शिवाजी का स्वागत करता है। प्रत्युत्तर में शिवाजी ने अफजल खाँ को 'सेर का सवा-सेर' के रूप में टका सा जवाब दिया। इस प्रसंग का आनन्द पाठकगण अज्ञानदास के हिन्दी में रचित इन छंदों से प्राप्त करें।

अफजल खाँ-तू तो कुनबी का छोकरा, सवरत बाच्छाई सदरा।
शिवाजी – तू तरी भटारनी छोरा, शिवाजी सरज्या पर सरज्या पर लाया तोरा।
(ऐतिहासिक पोवाड़े, य० न० केलकर, सन् 1928 पृ० 18-19)

मानस के प्रथम टीकाकार–बाबा बैजनाथ कुर्मी

बाबा बैजनाथ कुर्मी का जन्म, उत्तरप्रदेश के बारांबकी जिले में स्थित मानपुर-डेहुवा नामक ग्राम में आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को सन् 1833 ई० में हुआ था। इस आध्यात्मिक तेजपुंज बालक बैजनाथ के पिता श्री हीरानन्द कुर्मी सुसम्पन्न जमींदार थे। बालक की प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव में ही हुई। वहीं पर इनके शिक्षक से इन्हें हिन्दी, संस्कृत एवं फारसी भाषाओं का प्रारम्भिक ज्ञान कराया। किन्तु गूढ़ चिंतन-मननशीलता और अध्यात्म में गहरी रुचि रखने वाले बालक का उच्चतम विद्यानुरागी मन अपनी इस प्रारम्भिक शिक्षा से सन्तुष्ट न रह सका।

बालक बैजनाथ कुर्मी के पिता श्री हीरानन्द कुर्मी प्रसिद्ध स्वामी रामानन्द-सम्प्रदाय की पंरपरा के सिद्ध-संत श्री फकीरेराम जी के शिष्य थे। पुत्र की रुझान आध्यात्मिक ज्ञान की ओर देखकर श्री हीरानन्द जी बैजनाथ को संत फकीरेराम की छत्रछाया में बड़ा होने दिया। संत फकीरेराम जी अपने शिष्य, श्री हीरानन्द कुर्मी के दिव्य एवं तेजस्वी और सरल मन वाले बालक से इतना ज्यादा प्रभावित हुये कि वे पिता की सहमति से बालक बैजनाथ को अपने मठ अयोध्या ले गये। बालक बैजनाथ की आगे की लौकिक और आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा संत फकीरेराम जी के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। अयोध्या के मठ में रहते हुये बैजनाथ कुर्मी ने संत फकारेराम की देख-रेख में वेद-वेदांग, पुराण-उपनिषद् स्मृतियों और दर्शन-शास्त्रों का गहन-अध्ययन किया। वे पिंगल शास्त्र के भी ज्ञाता होकर कविता करने लगे थे। उन्होंने अपने महान गुरू संत फकीरेराम जी को इन शब्दों द्वारा श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है, जोकि उनके ग्रंथों की प्रस्तावना में उद्घोषित है :-

" अवध - जन्मभू पास बसि,
विदित फकीरे राम।
भक्ति, ज्ञान, बुद्धि-दानि,
श्री गुरुपद-करौ प्रणाम।"

सब प्रकार की शिक्षा-दीक्षा सम्पूर्ण होने के बाद उन्होंने लम्बी अवधि तक अयोध्या के उस मठ में बास किया। तब तक उनकी ख्याति बाबा बैजनाथ के नाम से चारों ओर फैलने लगी थी। इसी बीच पिता जी के निधन से जमींदारी और परिवार की अन्य जिम्मेदारियाँ संभालने वाला कोई नहीं रहा। अत: गुरु फकीरेराम जी की मर्जी से बाबा बैजनाथ ने अपने पैतृक ग्राम मानपुर-डेहूबा लौटकर ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश ले लिया पर संयम के साथ रहे। बाबा बैजनाथ कुर्मी ने एक तरफ निर्लिप्त भाव से ग्रहस्थ जीवन की सारी जिम्मेदारियां निभाई और साथ ही अपना अधिकाधिक समय कठोर ज्ञान-साधना में भी लगाते रहे। समय-समय पर वे धार्मिक साहित्य का सृजन करते रहते थे। वे तीर्थाटिन, देशाटन, अध्ययन, मनन और उच्चकोटि के ज्ञानियों के सत्संग से भी अपना ज्ञानवर्धन निरन्तर करते रहे।

बाबा बैजनाथ कुर्मी की साहित्य साधना

बाबा जी के बारे में कहा जाता है कि उन्हें अर्धशतक से अधिक संख्या में ग्रंथों की रचना की थी। उनकी सम्पूर्ण मौलिक कृतियों को तीन खंड़ों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) **टीका परक ग्रंथ :** जिसके अन्तर्गत उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, गीतावली, जानकी मंगल, बरवै रामायण आदि ग्रंथों पर बड़ी विद्वतापूर्ण तथा उच्च कोटि की टीकाएँ रचीं। इनमें से 'रामचरित मानस' की टीका 'तिलक' का प्रकाशन मई सन् 1890 ई० में लखनऊ, अमीनुदौला पार्क स्थित प्रख्यात मुंशी नवल किशोर प्रेस से किया गया। वर्ष 1929 में प्रकाशित 'विनय पत्रिका' पर उनकी टीका को छोड़कर शेष सारी टीकाएँ 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही प्रकाशित की जा चुकी थीं। खेद है कि बाबा बैजनाथ कुर्मीकृत 'बाल्मीकि रामायण' की टीका का प्रकाशन अब तक नहीं हो सका है, उसकी पाडुंलिपि कहाँ है ? सुरक्षित है अथवा नहीं ? इसका भी कुछ पक्का पता चल नहीं पाया है।

बाबा बैजनाथ ने अपनी टीकाओं की रचना संस्कृत भाषा-माध्यम से करते हुये सायण, श्रीधरस्वामी, नीलकंठ और मल्लिनाथ जैसे प्रतिष्ठित टीकाकारों की शैली एवं पंरपरा को आगे बढ़ाने की चेष्टा की है। गोस्वामी तुलसीदास की तरह बाबा बैजनाथ जी ने भी अपनी सभी कृतियों का श्री गणेश उच्चकोटि के संस्कृत में श्लोकों को रचकर इस पंरपरा को कायम रखा है।

कुछ वर्ष पूर्व इस ग्रंथ के लेखक को कानपुर (उ० प्र०) के डा० रामलखन सचान ने 'मानस के वैज्ञानिक पक्ष' पर किये गए गहन शोधकार्य पर आधारित ग्रंथ ' मानस और विज्ञान ' की एक प्रति भेंट की थी। डा० सचान को कानपुर विश्वविद्यालय से शोध विषय "मानस का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन'' पर डाक्टरेट की डिग्री प्रदान की गई थी। उनके इस शोध कार्य के निर्देशक थे डा० ब्रजवासीलाल, कुलपति बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी तथा बाहरी परीक्षक थे प्रसिद्ध हिन्दी के विद्वान डा० विद्या निवास मिश्र। डाक्टर सचान ने अपने शोधग्रंथ में, प्रकाशकीय अनुलेखों के अन्तर्गत मानस शोध के प्रथम एवं द्वितीय शोधकार के रुप में डा० एल ० पी० तेस्सोतोरी तथा डॉ० जे० एन० कारपेन्टर, विदेशी विद्वानों का उल्लेख किया है पर बाबा बैजनाथ कुर्मी प्रथम टीकाकार का नहीं। इसी कारण शोध ग्रंथ के मौखिक परीक्षक डा० विद्यानिवास मिश्र ने श्री रामलखन सचान से मौखिक परीक्षा में पूछा कि क्या आपने बाबा बैजनाथ कुर्मी जी की मानस पर टीका पढ़ी है ? श्री सचान को उसका सम्भवत: पता न था। अत: नकारात्मक उत्तर दे दिया। तब डा० मिश्र ने कहा यद्यपि आपका शोध कार्य बहुत अच्छा है पर बाबा बैजनाथ कुर्मी की मानस पर की गई प्रथम टीका का शोध-विषय के सम्बन्ध में अनुशीलन किये बिना सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार डा० विद्या निवास मिश्र जैसे उत्कृष्ट हिन्दी भाषा शास्त्री भी बाबा बैजनाथ कुर्मी की टीकाओं को बड़ा महत्त्व देते हैं।

(2) **शास्त्रीय ग्रंथ :**-बाबा बैजनाथ कुर्मी जी की कृतियों का दूसरा खंड शास्त्रीय ग्रंथ सम्बन्धी है, जिनमें **'काव्य कल्प'** प्रमुख माना गया है। यह ग्रंथ शास्त्रीय काव्य-विधा की रीतिकालीन परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। इन ग्रंथों में रस, छंद, अलंकार, नायक-नायिका भेद आदि काव्य शास्त्र के विविध अंगों का प्रौढ़ शैली में विवेचन किया गया है, जो कि निस्सदेह बाबा जी के उत्कृष्ट ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

बाबा बैजनाथ जी द्वारा रचित मौलिक काव्य-गन्थों का तीसरा खंड उन कृतियों का है, जिनमें नायक-नायिका के बड़ी बारीकी से **"नखशिख वर्णन"** तथा **"षडऋतु वर्णन"** आदि प्रधान हैं। बाबा जी के ये काव्य ग्रंथ, रीतिकालीन काव्य परंपरा के प्रतिनिधि होते हुए भी संयम और शालीनता की सीमा में हैं। अत: उनकी काव्य कृतियां पूर्णतया सात्विक, निर्दोष और आध्यात्मिक प्रेम से ओतप्रोत हैं।

'नख-शिख वर्णन' ग्रंथ में भगवान राम के चरणों का मर्मस्पर्शी वर्णन इस प्रकार दृष्टव्य है :-

"लहलहे ललित ललाम लपलप होत,
पोत भवसागर के तारक सबल हैं,
अंकुश, कुलिश, ध्वज, कमल, यवादि चिह्न,
रंगरंग, ऋक्ष किधौ, ज्योति रवि थल हैं।
चीकने-चमक चटकीले चोखे बैजनाथ,
बट के गुलबन के आबदार दल हैं,
अमल कमल लहकि मंजु मखमल हैं,
कि-माखन से कोमल कि राम पग तल हैं।।"

(2) भक्ति भाव से ओत-प्रोत बाबा बैजनाथ जी, कौशलेन्द्र श्री राम के चरण-कमलों में निष्कपट भक्ति रखने को ही सर्वोपरि मानते हैं :—

"कीरत अपार बैजनाथ कौशलेन्द्र जी की,
धरा पै हिमाद्रि श्रंग गंग उर्मि कासी है,
गंग पै सुकर्म, कर्म ऊपर दया सोदान,
दान सनमान पर धर्मशीलता सी है,
धर्मशीलता पर शम-दम पै विराग-त्याग,
त्याग पर शुद्धरूप ज्ञान दीपिका सी है,
ज्ञान-दीप पर मुक्ति चतुर मशाल ऐसी,
मुक्ति पर दीप्ति भक्ति प्रेम लक्षणा सी है।"

(3) **"नख-शिख-वर्णन"** ग्रंथ में भगवान राम के नेत्रों का वर्णन करते हुये काव्य-शिल्पी बाबा बैजनाथ की भाव-विभोरता पर द्रष्टि डालिये :-

"अजब रसीले समशीले हैं सुशीले कंज,
खंजन हंसीले मीन मंजुल मरोर के,
सुजन अशीले उर अन्तर बसीले प्रेम,
मादक नशीले हैं यशीले चित्तचोर के,
कविन के बैन-तैन उपमा बर्नैन दैन,
बैजनाथ नैन-चैन दैन दया कोर के।।"

बाबा बैजनाथ जी द्वारा रचित संस्कृत में रामस्तुति के श्लोक, जो कि बाल्मीकि रामायण की अप्रकाशित टीका को प्रारम्भिक स्तोत्रों के रूप में द्रष्टव्य है :-

" दशरथ सुतरामे, शोभया कोटिकामं,
सजल जलद् गात्रं भूमिजा स्नेह पात्रम्।
सुर नर मुनि पालं, राक्षसानां हिकालं,
रघुकुलमाभिरामं, देव-देवं नमामि।।"

बाबा बैजनाथ जी द्वारा रचित 'कुडंलिया-रामायण' का यह श्लोक उनके सशक्त संस्कृत काव्य शिल्पी होने का द्योतक है :-

"जलधर द्युति गात्रं पूर्ण चन्द्रा भवत्रं,
विमल-कनक वर्ण पीत वस्त्रं दधानम्,
तड़ित निकरभासं जानकी वामभागं,
गुणनिधि पर रूपं रामचन्द्रं भजेऽहम्।।"

उपर्युक्त उदाहरणों और उद्धृत काव्य-कृतियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि शिरोमणि बाबा बैजनाथ कुर्मी का सम्पूर्ण प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं की अमूल्य निधि है। तुलसी साहित्य के गहन अध्येता विदेशी विद्वान डा० जे० ए० ग्रियर्सन से लेकर आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बाबू रामदीन सिंह, श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि अनेकानेक मर्मज्ञ मनीषियों ने मुक्त कंठ से तुलसी साहित्य के अध्येताओं के रूप में बाबा बैजनाथ जी का ऋण स्वीकार किया है। "मानस-पीयूष'' के रचयिता श्री अंजनी नन्दन शरण जी ने बाबा जी को "मानस वाटिका का भ्रमर" की उपमा से अलंकृत किया है। बाबा जी का जन्म कुर्मी जाति में हुआ पर उनका कृतित्व 'सर्व जन सुखाय एवं सर्वजन हिताय' है और हिन्दी-संस्कृत भाषाओं के लिये महान देन है। आवश्यकता है कि बाबा जी के सम्पूर्ण कृतित्व को ग्रंथाकार रूप में क्रमबद्ध प्रकाशित करने की तथा हिन्दी-संस्कृत साहित्य के संदर्भों में उसके विभिन्न पहलुओं के उचित मूल्यांकन की। इस लेख के लिये आभार प्रकट किया जा रहा है स्वजातीय सागर बन्धुओं (म० प्र०) के चौधरी राजेश मोहन जिज्ञासु जी का तथा डा० हरि सिंह गौर विश्व विद्यालय, सागर (म० प्र०) के ही डा० बलवीर सिंह जी का, जिनका बाबा बैजनाथ जी पर एक शोधपूर्ण विस्तृत लेख सागर (म० प्र०) से निकलने वाली स्वजातीय पत्रिका-"कूर्मि क्षत्रिय जागृति" के सितम्बर-दिसम्बर 1992 अंक में प्रकाशित हुआ।

पारखी संत श्री विशाल देव जी महाराज

कूर्मि जाति को तथा बाराबँकी जनपद (उ० प्र०) के कूर्मिजनों को गर्व अनुभव करना स्वाभाविक है कि उनके एक और नर-रत्न ने अध्यात्मिक क्षेत्र में बड़ा उच्च स्थान निर्मित किया है। और अपने अध्यात्म-ज्ञान से सारे हिन्दू समाज को देदीप्यमान कर दिया है।

पारखी संत सम्प्रदाय में, वैसे तो अनेक संत-महापुरुष अवतरित हुये हैं, पर उनमें से श्री विशालदेव महाराज का नाम और कीर्ति सर्वाधिक जाज्वल्यमान है। सन्त विशालदेव का जन्म सन् 1886 में बाराबंकी जनपद के उफ़रपुर नामक ग्राम में एक कुर्मी किसान के परिवार में हुआ था। उनके पिता जी का नाम, श्री सीताराम था और खेती-बाड़ी ही उनका व्यवसाय था। बाल्यावस्था में ही विशालदेव जी में साधु-गुणों के आसार प्रकट होने लगे थे। यद्यपि उनकी स्कूली शिक्षा तो न हो सकी, पर उन्होंने खूब अच्छी तरह धर्म-शास्त्रों का अध्ययन-मनन किया। सन्तों के सहवास से तथा आध्यात्मिक साधना से इसमें उनकी पकड़ और गहरी और सूक्ष्म होती गई। संत विशाल देव को पारखी-संतों की गद्दी पर आसीन किया गया।

उन्हें काव्य-रचना का अच्छा अभ्यास था। वे स्वरचित साखियाँ शिष्यों और भक्त-जनों को आत्म-विभोर होकर सुनाते थे। शिष्यगण् और श्रद्धालुजन उनकी नवरचित साखियाँ लिख लेते थे, और इस प्रकार उनके आध्यात्म-काव्य-सृजन का एक बड़ा संग्रह तैयार होता गया। संत विशालदेव का जीवन सादा, निर्मल, सहज तथा रूढ़िवादिता से मुक्त था। वे जन-संत थे और साधारण जनता के हृदयों में उनकी बड़ी श्रद्धापूर्ण छवि विकसित हुई थी। उनमें उनके आध्यात्मक ज्ञान के कारण लोगों की भक्ति और सच्ची आस्था दृढ़ होती गयी। वे 91 वर्ष की परिपक्क आयु में सन् 1977 में मूंगापुर ग्राम में स्वर्ग सिधारे। वर्तमान में मूंगापुर गाँव का नाम संत विशालदेव की स्मृति में बदलकर विशालनगर हो गया है।

स्वामी आत्मानंद जी महाराज (जन्म 6 अक्टूबर 1929 - निर्वाण 27 अगस्त् 1989)

संस्थापक
श्री रामकृष्ण-मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (म० प्र०)

एक परिचय



है कूर्मि वंश की कोख,
धन्य, जो ऐसे सूर्य उगाता है।

स्वामी आत्मानन्द जी का जन्म मध्यप्रदेश में रायपुर जिले के बरबन्दा नामक ग्राम में 6 अक्टूबर 1929 को, महात्मा गांधी के सान्निध्य में रहने वाले, स्वतंत्रता-सेनानी तथा वर्तमान में अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के संरक्षक एवं कई बार रहे पूर्व अध्यक्ष, श्री धनीराम वर्मा के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में हुआ। इनकी माता जी बड़े सात्विक स्वभाव एवं धार्मिक प्रवृत्ति की भारतीय आदर्श नारी का प्रतिरूप थीं। विद्यार्थी जीवन में वे बड़े मेधावी रहे। उन्होंने सन् 1951 में नागपुर विश्वविद्यालय से शुद्ध गणित में एम० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की तथा सर्वाधिक अंक पाने के कारण वे स्वर्णपदक के अधिकारी हुए। इसके तुरन्त बाद ही उन्होंने सुविख्यात रामकृष्ण-मिशन में प्रवेश ले लिया और तब से उनका जीवन श्री रामकृष्ण, माँ शारदा और स्वामी विवेकानंद के चरणों में समर्पित और सेवारत रहा है।

स्वामी जी ने 1962 में रायपुर नगर में श्रीरामकृष्ण सेवा समिति का कार्य भार अपने कंधो पर लिया। यह संस्था सन् 1968 में रामकृष्ण बेलुड़ मठ के अन्तर्गत कर ली गई तथा रामकृष्ण मिशन् विवेकानन्द के नाम से प्रतिष्ठित हुई। स्वामी जी इस रायपुर केन्द्र के संस्थापक, संचालक और सचिव थे तथा इसके माध्यम से अनेकविध सेवा कार्य चला रहे थे, जिनमें पोली-क्लीनिक, चल-चिकित्सालय, होमियोपैथिक औषधालय, विशाल सार्वजनिक ग्रन्थालय एवं नि:शुल्क छात्रावास तथा भव्य श्री रामकृष्ण मन्दिर आदि प्रमुख है। स्वामी जी के कुशल सम्पादन में रायपुर केन्द्र के द्वारा " विवेक ज्योति " के नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका भी जनवरी 1963 से नियमित रूप से प्रकाशित की जा रही थी, जिसके लगभग 3000 आजीवन तथा 5000 वार्षिक ग्राहक हैं। फिर आश्रम द्वारा समय-समय पर ग्रामीण अंचलों में बड़े पैमाने पर राहत कार्य भी चलाये जाते हैं।

अगस्त सन् 1985 में स्वामी जी ने बस्तर जिले के नारायणपुर नाम स्थान में भी वनवासियों के उत्थान के लिये एक विराट "वनवासी सेवा केन्द्र" प्रारम्भ किया था जिसके अन्तर्गत "अबुझमाड़ ग्रामीण विकास प्रकल्प" चलाया जा रहा है, लागत की दृष्टि से यह प्रकल्प 1990 तक लगभग अढ़ाई करोड़ रुपये का है। यहाँ पर वनबासी बच्चों के लिए नि:शुल्क पब्लिक स्कूल, 40 शय्यावाला अस्पताल चल-चिकित्सालय, वनबासी युवा प्रशिक्षण केन्द्र, कुटीर उद्योग प्रशिक्षण केन्द्र, उचित मूल्य-दुकान आदि चलाये जा रहे हैं। अबुझमाड़ क्षेत्र के गहन जंगलों में भी उन्होंने 10 सेवा केन्द्र खोले थे, जिनमें से प्रत्येक में आश्रम-विद्यालय, स्वास्थ्य-सेवा, पेयजल, उचित मूल्य-दुकान तथा कुटीर उघोग प्रशिक्षण की व्यवस्था है।

स्वामी जी अत्यन्त प्रतिभाशाली वक्ता और लेखक थे। वे वाणी के साथ ही लेखनी के भी धनी थे तथा अध्यात्म एवं अन्य सम्बन्धित विषयों पर अपने सारगर्भित एवं प्रभावी व्याख्यानों, प्रवचनों और लेखों के लिए देशभर में विख्यात थे। हिन्दी भाषा के समान ही अंग्रेजी, बंगला एवं छत्तीसगढ़ी पर भी उनका समान अधिकार था। उनके प्रवचन और लेख उनकी बुद्धि की प्रखरता को तथा आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयों को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिपादित करने की उनकी अपूर्व क्षमता को प्रदर्शित करते थे। विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते उनका विवेचन वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति को मुग्ध और संदेह रहित कर देता था।

स्वामी आत्मानन्द जी को अन्तमानवीय सम्बन्धों की गहरी अन्तदृष्टि प्राप्त थी। वे यह समझते थे कि आज का मानव विज्ञान और तकनीकी ज्ञान से उत्पन्न दुर्धर्ष शक्ति के फलस्वरूप तनाव और दिशाहीनता का शिकार हो गया है। इसलिये वे अपने विवेचन को मात्र शास्त्रीय या सैद्धान्तिक जामा ही नहीं पहनाते अपितु अनुभूति के आलोक में उसे बोधगम्य बनाकर आज की जटिल समस्याओं का व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत करते थे।

उनके श्रीमद भगवतगीता पर हुए कुल 213 प्रवचनों में से प्रथम 44 प्रवचनों का संग्रह 'गीता तत्व चिन्तन' (प्रथम भाग) के रूप में प्रकाशित हुआ हैं। इसमें प्रथम दो अध्यायों पर ही विवेचना हो पायी है। इसकी लोकप्रियता का अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि 15 महीने में ही उसकी 7000 प्रतियां बिक गई।

स्वामी आत्मानंद जी का संगठन-कौशल अपूर्व था। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान में उनके कुशल निर्देशन और संरक्षण में शुरु किये गये रामाकृष्ण-विवेकानन्द के नाम पर लगभग 20 आश्रम परिचालित हो रहे हैं। स्वामी आत्मानन्द जी की यह भी विशेषता कही जा सकती है कि अपने परिवार के मात्र वे ही एक मात्र सन्यासी नहीं थे बल्कि उनके 2 अनुज (स्वामी निखिलात्मानंद जी तथा स्वामी त्यागात्मानंद जी) भी रामकृष्ण मिशन के संयासी है। स्वामी जी इस सबका श्रेय अपने पूज्यपाद गुरु स्वामी विरजानन्द जी महाराज को देते थे जो स्वामी विवेकानन्द जी के शिष्य तथा विश्वव्यापी रामकृष्ण मठ मिशन के छठे महाध्यक्ष थे।

स्वामी विवेकानन्द जी ने अपनी किशोरावस्था में नरेन्द्र के रूप में अपने माता-पिता जी के साथ रायपुर में दो वर्ष बिताये थे। उनकी रस पावन स्मृति को ही मानो अक्षुण्य बनाने के लिये भगवान ने स्वामी आत्मानन्द जी को स्वामी विवेकानन्द जी के तेज से ही अनुप्राणित करके भेजा था। उनकी जैसी ही भव्य आकृति, प्रखर व्यक्तित्व, वाणी में सरस्वती, धर्म और दर्शन की सरस मंदाकिनी प्रवाहित करने की क्षमता, अदम्य आत्म-विश्वास, सेवा के विराट प्रकल्पों की परिकल्पना कर उन्हें साकार करने की क्षमता और इनके साथ सहज सरल सरस वैयक्तिक सम्बन्ध, इतनी विविधताओं के समन्वय, रूप स्वाभी आत्मानन्द जी थे। भगवान उनके माध्यम से जिस लक्ष्य को पूरा कराना चाहते थे। वह शायद पूरा हो गया था। इसलिये रविवार 27 अगस्त 1989 को मध्याह्न में 3 बज कर 15 मिनट पर एकादशी के दिन स्वामी आत्मानन्द जी समाज सेवा में लगे हुये थे। मध्य प्रदेश के बस्तर जिले के महानंदगाँव के निकट उनकी जीप उलटकर स्वामी जी सहित गहरे गड्ढे में जा गिरी, और तत्काल भगवान् ने उन्हें अपनी गोद में खींच लिया।

स्वामी निखिलात्मानंद जी

स्वर्गीय स्वामी आत्मानंद जी के अनुज स्वामी निखिलात्मानंद जी का नाम सन्यास लेने से पूर्व देवेन्द्र वर्मा था। देवेन्द्र वर्मा का जन्म 24 अक्टूबर 1936 को हुआ। उन्होंने सर हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय सागर से एम० एस-सी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और 10 वर्षों तक शासकीय विज्ञान महाविद्यालय रायपुर में प्राध्यापन में कार्यरत रहे; अपने ज्येष्ठ भ्राता स्वामी आत्मानन्द जी के पुनीत जीवन से प्रेरणा लेकर वे शासकीय पद त्याग कर रामकृष्ण मिशन में सम्मिलित हो गए। वे सन् 1978 से 1984 तक रामकिशन मिशन रहड़ा (पश्चिम बंगाल) के महाविद्यालय में प्राध्यापक रहे। सन् 1984 के बाद स्वामी निखिलात्मानंद रामकृष्ण मिशन देवघर (वैद्यनाथ धाम) में विद्यापीठ का संचालन करने लगे।

उन्होंने सन् 1985 में अग्रज स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा संचालित बस्तर जिले के नारायणपुर में अबूझ माड़ के वनवासियों के बालक-बालिकाओं की शिक्षा और छात्रावास का प्रबन्ध किया। इन दोनों स्वामी बन्धुओं के सतत् प्रयास से वहाँ के शिक्षित युवक देश में गौरव पूर्ण स्थान पाते जा रहे हैं। बस्तर जैसे आदिवासी क्षेत्र में वनवासी युवक-युवतियों का उत्तम शैक्षिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास देखकर सभी को एक बार तो भारी आश्चर्य हुआ। सन् 1990 में स्वामी जी को बस्तर आश्रम से इलाहाबाद रामकृष्ण आश्रम के अध्यक्ष पद पर स्थानांतरित किया गया है। वे इलाहाबाद (उ० प्र०) के रामकृष्ण मठ मुट्ठीगंज के वर्तमान अध्यक्ष हैं।

स्वामी त्यागात्मानंद जी

स्व० स्वामी आत्मानंद जी के तीसरे छोटे भाई स्वामी त्यागात्मानंद जी वर्तमान में विवेकानन्द आश्रम रायपुर के सहसचिव के पद पर कार्यरत हैं।

कूर्मि जाति में जन्में महन्त श्री निहासदास-गद्दी गोविन्द साहब, स्थित ग्राम जलालपुर, जिला फैजाबाद, उत्तरप्रदेश

संत पलटू साहब

गोविन्द साहब की गद्दी पर संत कवि पलटू साहब नशीन हुए। जिनके भक्ति-काव्य को, भक्ति कालीन संत कवियों जैसे दादू, कबीर, रैदास आदि उच्च कोटि के भक्त-संतों की श्रेणी में, मान्यता प्राप्त है। पलटू साहब के भक्तों और शिष्यों में यह मान्यता चली आ रही है कि उनका जन्म नगपुर-जलालपुर, जिला फैज़ाबाद, में हुआ था, जहाँ आज भी इनके वंशज रह रहे हैं। पलटू साहब ने गद्दी गोविन्द साहब के पूर्व महन्त भीखा साहब की शिष्य परंपरा में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। ऐसा वर्णन मिलता है कि ये काँदू बनियाँ जाति के थे, जिसका संकेत उन्होंने अपने कवित्त में स्वयं प्रकट किया है :-

बनिया जाति में अधक बड़ा हौं पातकी,
अधरस आठि गाँठ तनिक नहिं सातुकी।

(पलटू साहब की बानी, भाग 2, सन् 1919, पृ० 99)

पलटू साहब आरम्भ में गृहस्थ थे किन्तु इनकी रचनाओं से यह विदित होता है कि ये अंत में मुंड़ (सिर) मुंड़ाकर विरक्त बन गए थे, द्रष्टव्य है उनका यह कवित्त इस संदर्भ में :-

सहर जलालपुर मूँड़ मुड़ाइनि, अवध तोरिन करधनियां,
पलटूदास सतगुरु बलिहारी, पाइनि भक्ति अमानियां।

(वही पुस्तक, भाग 3, सन् 1915, पृ० 79)

पलटू साहब का समय विक्रम की 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध का है, ये अवध के नवाब शुजाऊदौला और दिल्ली के मुगल बादशाह शाह आलम के समकालीन थे। इनकी समाधि अयोध्या से चार मील दूर बनी है जहाँ इनके अनुयायी बसे हुये हैं। इस श्रद्धा-स्थल को पलटू साहब का अखाड़ा के नाम से जाना जाता है।

पलटू साहब की अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं जो इलाहाबाद के प्रसिद्ध वेलवेडियर प्रेस से तीन खंड़ों में प्रकाशित हुई हैं। प्रथम भाग में 266 कुंड़लियां संकलित है, द्वितीय में रेख्ते, झूलने, अरिल्ल, कवित्त और सवैये आदि हैं तथा तृतीय भाग में उनके सबद, उपदेश और साखियों का संकलन है। इनकी भाषा अत्यंत सरल, स्पष्ट और ओजपूर्ण हैं। अत: इन्हें द्वितीय कबीर भी कहा जाता है। ("उत्तरी भारत की संत परंपरा"- श्री परशुराम चतुर्वेदी, पृ० 492)

गद्दी गोविन्द साहब के वर्तमान महन्त निहालदास जी

पाठकों को जानकर प्रसन्नता होगी कि महन्त निहालदास का जन्म कूर्मि क्षत्रिय जाति में हुआ था। उनके माँ-बाप ने इनके जन्म लेते ही इनको गोविन्द साहब मठ को सन्यासी के रूप में अर्पित कर दिया था। कुछ विद्वत्जन कहेंगे कि किसी भी साधु-संत का जातीय आधार पर वर्णन उचित नहीं है क्योंकि सन्यास लेते ही ये सारे बंधन समाप्त हो जाते हैं। इस देश का पुरोहित और ब्राह्मण वर्ग पर जब किसी ऐसे संसार से विरक्त साधु-संत की जाति के आधार पर चर्चा उठाता है, विशेष करके यदि साधु-संत उनकी बिरादरी के न हुये हों और तब उसका जीवन इतना कठिन कर देता है कि वह, शान्त मन से अपना वैराग्य जीवन सम्मानपूर्वक बिता न सकें, तब इसका उल्लेख करना तथा तथाकथित हिन्दू धर्म के ठेकेदारों की काली करतूतों का भंड़ा फोड़ करना परमावश्यक हो जाता है, जिससे वे अपने दूर-उद्देश्य में जाति को लेकर सफल न हो सकें।

बाल्यकाल से निहालदास का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा आदि इस मठ के पूर्व महन्तों की देख रेख तथा साधु-संतों के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। उन्होंने धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान अर्जन किया और अपने गुरु से विधिवत् दीक्षा ली। इस प्रकार उनका एक आदर्श धर्म गुरु के रूप में पूर्णतया विकास हुआ। समय आने पर उन्हें गोविन्द साहब की गद्दी का महन्त बनाया गया, जिस दायित्व को वे बखूबी निभाते आये हैं। पर इधर ब्राह्मण वर्ग के लोगों को, विशेषकर पुजारी-पुरोहितों को किसी अब्राह्मण का मठाधीश होना और परिणामस्वरूप उनके चरणों को छूना विशेष करके ब्राह्मण भक्तों को फूटी आँखों भी नहीं भाता। उद्देश्य तो यहीं था परन्तु मिथ्या कारणों से कुछ और भी बताकर संत निहासदास को गोविन्द साहब मठाधीश के पद से हटाने का जबर्दस्त अभियान चलाया गया। यहाँ तक कि कहा जाता है कि इस उद्देश्य से ब्राह्मणों ने इलाहाबाद उच्चन्यायालय में याचिका पेश की। छै न्यायाधीशों की खंडपीठ ने निर्णय दिया कि जाति पर आपत्ति अनुचित है क्योंकि साधु हो जाने पर उनकी जाति नहीं रह जाती।

फिर भी ब्राह्मण, पुरोहित, पुजारी वर्ग अपने स्वार्थवश महन्त निहालदास को महन्तपद से हटाने के लिये अन्याय प्रकार के बतंगड़ खड़ा करने से बाज़ नहीं आ रहे हैं।

फरवरी 1994 से मंडल आयोग की 27 प्रतिशत की सिफारिशों के लागू होने का सरकारी एलान हुआ है। द्विज वर्ग, जोकि देश में 10 प्रतिशत से अधिक नहीं है और अब तक 80 प्रतिशत पदों को बड़े आसानी से बटोरते आ रहे हैं और मनु आयोग की प्राचीन सिफारिशों के अनुसार चिरकाल से ब्राह्मण-पुरोहित वर्ग मन्दिर-मठों के पदों पर अलिखित और आघोषित शत प्रतिशत आरक्षण का मज़ा दोनों हाथों लूटते चले आ रहे हैं, चाहें वे उन पदों के लिये योग्य हैं या नहीं, वे इसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझ बैठे हैं। और समाज के 80 प्रतिशत वर्ग जो इस पदों से वंचित रहे हैं यदि कहीं उन्हें दिया जाता है तो यह 10 प्रतिशत वाला वर्ग चिल्लपों मचाना शुरु कर देता है। खेद तो यह देखकर होता है कि इनका अपने को प्रबुद्ध कहने वाला वर्ग, एक तरफ मौके पर समता, एकता, एक ब्रह्म, आत्मा-परमात्मा, बसुधैव कुटुम्बकम आदि अनेक सारगर्भित भाषण करते हुये थकता नहीं और आचरण में इन सबसे विपरीत रहता है।

महंत निहालदास के जलालपुर स्थित गोविन्द साहब मठ के आस-पास के गाँवों का कुर्मी बाहुल क्षेत्र है। फैजाबाद जिले से दो कुर्मी, श्री राम देव वर्मा और श्री रामलखन वर्मा, बहुजन समाज पार्टी से उत्तर प्रदेश के विधायक निर्वाचित हुये थे। श्री रामलखन वर्मा जिला के देहाती क्षेत्र से बसपा-टिकट पर तीसरी बार लगातार विधायक चुने गये हैं, उस क्षेत्र में कुर्मी लोग बहुत अधिक संख्या में नहीं हैं और महज उनके मतों से चुनाव जीतना सुनिश्चित नहीं हो सकता। अतः श्री रामलखन वर्मा को अन्य पिछड़ी और दलित जातियों का सहयोग और समर्थन भी प्राप्त हुआ है तभी वे तीन बार, स्थानीय पूर्व रजवाड़े के सदस्य के कठोर विरोध के बाबजूद भी, चुनाव में विजयी रहे हैं। अयोध्या के प्रसिद्ध हनुमान गढ़ी के 50 वर्ष पूर्व आचार्य धर्नीधर महंत हुये जो अवधिया कुरमी थे।

उत्तरप्रदेश सरकार के वर्तमान मुख्य मंत्री श्री मुलायम सिंह यादव की सपा व बसपा की संयुक्त सरकार में श्री रामलखन वर्मा कैबिनेट स्तर के पंचायतीराज मंत्री, बनाये गये हैं। वे नौजवान तथा दबंग राज नेता भी है। 14 अप्रैल 1994 को सरदार पटेल संस्थान, पटेल चौक, मोहन नगर, गाजियाबाद में कूर्मि क्षत्रिय समाज दिल्ली (पंजी) की गाजियाबाद इकाई के तत्त्वावधान में छत्रपति शिवाजी महाराज की 367 वीं पुण्य जयन्ती बड़े हर्षोल्लास से मनाई गई। माननीय श्री रामलखन वर्मा जी को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया था। उन्होंने स्वयं इस ग्रंथ के लेखक को, जोकि कूर्मि क्षत्रिय समाज, दिल्ली के गत् 8 वर्षों से अध्यक्ष होने के नाते उपस्थित थे, अपने भाषण में गोविन्द साहब मठ के वर्तमान महन्त निहालदास का महज जातीय आधार पर फैजाबाद के कट्टर ब्राह्मणवादियों और रूढ़िवादी मनुवादियों के प्रबल विरोध सविस्तार उल्लेख किया। महज स्थानीय अब्राह्मण हिन्दू जातियों के समर्थन से महन्त निहालदास गोविन्द साहब मठ की गद्दी का दायित्व संभाले हुये हैं। श्री रामलखन वर्मा ने सभा को यह भी बताया कि बसपा सरकार और अनुयायियों ने लगभग 2 करोड़ रुपया दान में इकट्ठा करके खस्ता, हालत के इस मठ का जीर्णोद्वार किया है। मठ सभी जनता के हित और आध्यात्मिक विकास के लिये, बिना ऊँच-नीच की भावना से ओत-प्रोत पूर्व सद्गुरुओं एवं संतों ने स्थापित किया था और अब तक संचालित किया जा रहा है।

सिखों के सभी गुरुद्वारों को यही पुरोहित वर्ग अपने कब्ज़े में किये हुये थे। सारा चढ़ौना ये लोग चट कर जाते थे और यात्रियों की सुख-सुविधा का लेशमात्र भी ध्यान न देते थे। सिखों ने अपने गुरुद्वारों को इन पुरोहित वर्ग के शोषण से मुक्त कराने के लिये ही कई दशक पहले सिख शिरोमणि गुरुद्वारा समिति बनाकर आन्दोलन चलाया। काफी बलिदान देकर इन पुरोहितों के चुंगल से अपने गुरुद्वारे निकाल पाये। आज गुरुद्वारों में यात्रियों की सुख-सुविधाओं के इतने ज्यादा साधन उपलब्ध हैं जिनके दर्शन हिन्दू धर्म स्थलों में, जो पुजारियों-पुरोहितों के चगुंल में फँसे हैं, अभी अनेक वर्षों तक भी न हो सकेंगे। इस प्रकार बौद्धगया के बौद्ध धार्मिक स्थल पर एक महन्त परिवार पुश्त दर पुश्त से काविज़ है। दुनिया के बौद्ध देशों की ओर से अनेक बार प्रयास किये गये कि महन्त जी अब तो अपना बोरिया-बिस्तर उन बौद्ध तीर्थ स्थल से समेटें, पर शोषणकर्त्ता कभी आसानी से नहीं बिदा होता। उनका लोभ या तृष्णा उन्हें वहाँ से हटने नहीं देता। इसीको कबीरदास ने कहा है :-

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिसणा ना मुई, यों कहि गया कबीर।।
कबीर माया पापणीं, हरि सूं करै हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की कहण न देई राम।।
कबीर माया पापणीं, फंघ ले बैठी हाट।
सब जग तो फंधे पड़या, गया कबीरा काटि।।

मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मंदिर में बैठे, ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा।।

इस देश की विडम्बना रही है कि यहाँ के ब्राह्मण वर्ग केवल यहाँ के बहुजनों को शूद्र, पिछड़ा तथा न जाने क्या-क्या कहकर सदियों अपमानित करते रहे, यहाँ तक कि संतों और साधुओं की तज़ दी गई जाति को लेकर भी सदैव बवंडर उठाते रहे हैं। ऊपरवर्णित संत निहालदास का ज्वलंत उदाहरण है। स्वामी विवेकानन्द जी ने (भारत में विवेकानन्द- "मेरी समर नीति पृ० 136-137) कहा है - "मैंने समाज-संस्कारकों के मुख्य पत्र में पढ़ा था कि मैं शूद्र हूँ और मुझसे पूछा गया था कि एक शूद्र को संयासी होने का क्या अधिकार है ? मैं यहाँ पर उसका जवाब देता हूँ मैं उस महापुरुष का वंशधर हूँ जिसके चरण कमलों पर प्रत्येक ब्राह्मण पुष्पांजलि चढ़ाकर यह मंत्र उच्चारण करता है "यमाय धर्मराजाय चित्रगुप्ताय वै नमः।" इसी ग्रंथ के पृष्ठ 253 पर पंडितों की इस देश में मौजूदा अवस्था के बारे में कहा है-"यथा, खरश्चन्दन भारवाही भारस्य वेत्ता तु चन्दनस्य।" अर्थात्- "वे उस गधा समान है जिसके ऊपर चन्दन की लकड़ियों का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ की ही बात जान सकता है, चन्दन के मूल्य को क्या वह समझ सकता है।" यह पुस्तक का अनुवाद पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने किया है और उसका तृतीय संस्करण, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर से प्रकाशित हुआ था।

महाकवि वेमना रेड्डी

दक्षिण भारत के, विशेष करके आन्ध्र प्रदेश के कूर्मि रेड्डी वंश में उत्पन्न महाकवि वेमना रेड्डी, उसी उच्च कोटि के भक्तिकालीन आन्दोलन के संत कवि थे जैसे उत्तर भारत में कबीर, रैदास और नानकदेव तथा महाराष्ट्र में संत तुकाराम, एकनाथ, नामदेव आदि। संत वेमना रेड्डी की सही तुलना संत कबीर दास से की जाती है। उनका जन्म 1652 ई० में और उनकी मृत्यु सन् 1710 ई० वाले दशक में हुई, ऐसी मान्यता है। उनका जन्म स्थल मूगाचिन्त पल्ली, जिला कडप, आन्ध्र प्रदेश में बताया गया है।

डा० जे० ए० ग्रियर्सन ने वेमना रेड्डी के बारे में मत व्यक्त किया है कि-" तेलगु लेखकों में वेमना रेड्डी सबसे अधिक जनप्रिय हैं तेलुगू भाषा में शायद ही ऐसा कोई मुहावरा या कहावत हो जिसके वे जनक न समझे जाते हो। संत कबीर की तरह वे सदैव अस्पृर्श्यता, मूर्तिपूजा के विरोधी रहे। आन्ध्रप्रदेश में तथा अन्य तेलुगु भाषी क्षेत्रों में कहीं-कहीं ब्राह्मण अध्यापकों ने वेमना के कुठ पद्य यह कर नहीं पढ़ाये कि उनमें उनके धार्मिक विश्वासों पर प्रहार किया गया है। विलियम हावर्ड केम्पबेल ने सन् 1898 के 'मद्रास किश्चियन कॉलेज मेगजीन' में लिखा-"ब्राह्मण हमेशा वेमना की सूक्तियों के विरोधी रहे हैं और अब भी उनकी कृतियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे घोषित करते हैं कि इनकी शैली और कथा वस्तु दोनों ही भ्रष्ट हैं।" इसी प्रकार कबीर के वचनों को लोगों ने उलटवॉसी का नाम दे दिया। उस समय के ब्राह्मण विद्वत्जनों के अनुसार कबीर की भाषा कोई सुसंस्कृत भाषा नहीं है, उसे सुधक्कड़ी नाम देकर यह जाहिर करना चाहा कि ये साधुओं की अनर्गल, बेतुकी बातें हैं, जिनमें न कोई तर्क है, न संगति है। कबीर चाहे भाषा विज्ञान और पिंगल शास्त्र से अनभिज्ञ थे उनकी बातें, कथन जनमानस पर प्रभाव डाल रहे हैं और वह प्रभाव जितना बढ़ रहा है उतना ही अन्य प्रतिष्ठित संत कवियों का प्रभाव घट रहा है। भविष्य का कोई मिश्रबन्धु हिन्दी कवियों की सूची ख्याति अनुसार तैयार करेगा तो कबीर का स्थान कहीं ऊंचा होगा और कई नाम ऊपर से नीचे आ चुके होंगें जो मिश्रबन्धु की प्रथम सूची में ऊपर थे।

वेमना केवल व्यंग्य कवि ही न थे वस्तुतः वे समाज सुधारक भी थे। यदि कालिदास उपमाओं के कवि हैं तो वेमना दृष्टान्तों के। इनकी कविताओं का अंग्रेजी रूपान्तर सी० पी० ब्राउन ने किया था, जो कि आज भी उपलब्ध है। वेमना रेड्डी की चार हजार कविताएँ हैं। तेलगु साहित्य क्षेत्र में सम्भवतः सिवाय वेमना के ऐसा अन्य कोई लेखक या कवि नहीं है, जिसकी कृतियों से विदेशी विद्वान इतना अधिक आकर्षित हुए हों।

वेमना रेड्डी कोई राज कवि न थे वें तो जनता के कवि, स्वतंत्रता और समता के दार्शिनिक अनुभवी संत और अनेक मानवीय उच्च गुणों से भूषित थे। मध्य युग के कबीर, नानक, चैतन्य आदि दूसरे भक्ति आन्दोलन के महान संतों की अपेक्षा वे यद्यपि अल्पज्ञात हैं, फिर भी उनकी शिक्षा की आज भी समसामयिक सार्थकता है, क्योंकि मनुष्य-मनुष्य के मध्य ऊँच-नीच की दीवारें खड़ी करने वाले पटु संत न होकर वे इंसान-इंसान को समान मानने वाले महान संत कवि थे और मनसा-वाचा-कर्मणा वे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा मानवता के बधुंत्व के समतापूर्ण समाज रचना के स्वप्न दृष्टा थे।

आन्ध्र प्रदेश के रेड्डी और रेड्डी राजा गण

आन्ध्र में रेड्डी को कापू भी कहा जाता है, उन्हें पंट-कापु भी कहते हैं जिसका अर्थ होता है खेतिहर। या यह कहा जा सकता है कि आन्ध्र प्रदेश में सम्पन्न वर्ग अपने को रेड्डी कहना पसन्द करता है पर उसके गरीब किसान या खेतिहर भाई कापु ही कहलाते है, अत: यह नाम भेद महज सम्पन्नता पर आधारित है। जिस प्रकार महाराष्ट्र में आज भी खेतिहार मराठा को कुनबी कहा जाता है जबकि उसके ही सगे सफेदपोश सम्पन्न भाई को खुशी-खुशी मराठा कहा जाता है और वह अन्य मराठों से रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित करता है। अब महाराष्ट्र में मराठा-कुनबी का भेद घटने लगा है पर अभी मिटने में लम्बा अरसा लगेगा।

"आन्ध्र का सामाजिक इतिहास" के मूल तेलुगु लेखक सुखरम् प्रताप रेड्डी, अनुवादक आर० वेकंट राव के अनुसार रेड्डी लोग आन्ध्र (वेंगि) देश के मूल निवासी नहीं थे। ये लोग उत्तर भारत के 'राष्ट्रकूट' से आकार बसे और वे रेड्डी कहलाये गए। पहले जब ये लोग छोटी-छोटी कृषि-भूमि के स्वामी थे, तब ये 'रट्टा गुड़ी' कहे जाते थे। 'रट्टा' शब्द के अर्थ तेलगु में हैं 'राज्य' और 'गुडि' का है 'ठेका'। अर्थात् राज्य की सुरक्षा तथा सुव्यवस्था की दृष्टि से जिन लोगों को कृषि भूखड़ों तथा गाँवों के ठेके दिये गये थे उन्हीं ठेकेदारों को पहले 'रट्टागुड़ी' नाम से सम्बोधित किया गया, जैसे गुजरात में कृषि भूमि के पट्टे पाने वाले कणबी कृषकों को पहले 'पट्टेदार' तथा बाद में पाटीदार कहा गया, जो वर्तमान में पटेल नाम से सुपरिचित हैं। ये -रट्टागुड़ी' ही कालान्तर में बोलचाल में बदलते-बदलते राडि, रहडि और काफी अरसे से महज रेड्डी नाम से सम्बोधित होते आ रहे हैं।

हिन्दुओं की अन्य जातियों के समान अलग-अलग स्थानों में बसने के कारण इन रेड्डियों में भी कई उपजातियाँ उन स्थानों से ही सम्बन्धित नामों से पड़ गई है। रेड्डियों की अनेक अपजातियां हैं, जैसे- पाकनाटी, पंटावेलनाटी, रेनाटी, मोरसा, पल्ले आदि ये नाम नाडु (स्थान) भेद से उत्पन्न हुये कहे गये हैं। वोरगंटी, पेडकंटी, कुंचेटी, मोटाटी, देसूरी आदि रेड्डी-शाखाओं के नाम उन अंचलों विशेष के नामों पर रखे गये जहाँ पर कि वे रेड्डी जन बहुसंख्या में बसते थे।

प्रारम्भ में रेड्डी शैव थे। सम्भवत: इसीलिये शाकाहारी थे और मांस आदि नहीं खाते थे। आज भी शैव रेड्डी मांस नहीं खाते। नेखाटी कापू और नानुकोंड़ा कापु दोनों उपजातियाँ रेड्डियों की हैं और वे शैव हैं। रेड्डी साधारणतया आमिष-भोजी नहीं होतें कुछ मोटाटी उपजाति के रेड्डी भी मांस-मुर्गी नहीं खाते। शैव रेड्डियों के विपरीत वैष्णव रेड्डी मांस-मछली-मुर्गी आदि खा लेते हैं।

रेड्डियों की गिनती ब्राह्मणों ने चतुर्थ जाति में की थी। तब भी रेड्डी राजा क्षत्रियों की तरह यज्ञ, सोमपान, के अधिकारी थे। उन्होने उन अन्य जातियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये जो क्षत्रिय मानी जाती थी। चोलों से, विजयनगर के क्षत्रिय राजाओं से पल्लवों से, हैहयों से तथा अन्य कुलीन राजाओं से उस काल में इनके लगातार विवाह सम्पन्न होते रहे। लेकिन वह भी वर्णाश्रम-धर्म में रूढ़ियों के विकट रूप धारण कर लेने के पश्चात् चौदहवीं व पन्द्रहवीं शताब्दी में नये-नये राजा बने थे। शायद इसी कारण से तत्कालीन ब्राह्मणों ने उन्हें क्षत्रिय न मानकर 'आंघुल चरित्र' के अनुसार केवल उच्चकोटि का शूद्र कहा है।

वारंगल के काकतीय राजाओं का शासन काल सन् 1050 से 1350 ई० तक माना जाता है। काकतीय शासन-काल समाप्त होते ही उनके अधीनस्थ सामंतों और सेनाध्यक्षों ने अपने-अपने अलग स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर ली। जिनमें से रेड्डी और वेल्मों के राज्य प्रमुख हैं। वही काल विजयनगर राज्य की स्थापना का है। परन्तु इन तीनों राज्यों में रेड्डी राज्य को ज्यादा सफ्तलायें अपनी राजकुशलता के कारण मिली। अत: इस युग को आन्ध्र-इतिहास में रेड्डी-युग के नाम से जाना जाता है।

रेड्डी राजाओं ने अपने राज्य का जो विस्तार किया उसकी परिधि में अंद्दक, कोंडवीड, राजमहेन्द्रवरम् (राजमंड्री) और कंटुकूर के इलाके थे। उन्होंने सन् 1324 से सन् 1434 ई० तक राज किया। कुर्नल से लेकर विशाखापट्टम तक रेड्डियों का राज्य फैला हुआ था। आजकल का जिला नेल्लूर रेड्डी राज्य की दक्षिणी सीमा थी।

गुलवर्गा में बहमनी सलतनत की स्थापना हुई। यद्यपि उसकी स्थापना एक हिन्दू धर्म-परिवर्तित मुसलमान द्वारा हुई थी, परन्तु आगे उसके उत्तराधिकारियों में से दो-एक को छोड़कर बाकी सब हिन्दू-द्वेषी बन गये थे। उत्तर में ओढ़ अथवा ओड़ियों (उड़ीसा) की आन्ध्र पर सदा कुदृष्टि बनी रही। इसके अलावा कर्णाटक कहलाने वाला हम्पी राज्य उन्हें सदा काँटे की तरह चुभता रहता था। इस व्यूह-रचना में रेड्डी राजाओं ने पूरे सौ वर्ष तक, चारों ओर की घोर उलझनों और शत्रुओं पर अकुंश लगाते हुए और अपनी शान-शौकत को कायम रखते हुये जो शासन किया, वे उसके लिये सदा प्रशंसा के पात्र रहेंगे। (अधिक विवरण के लिये

देखिये-" हिस्ट्री ऑफ द रेड्डी किंगडम्स्" । वर्तमान आन्ध्र प्रदेश की राजनीति में रेडिड्यों का बर्चस्व स्थापित हो गया है। कापू को मंडल सिफारिशों से बाहर रखा गया था पर इस वर्ष जबरदस्त आन्दोलन कर उन्होंने अपनी जाति को मंड्ल सूची में सम्मिलित करवा लिया है।

स्व० संत बनमाली जी

आप दानापुर (बिहार) के सुप्रसिद्ध समाजसेवी स्व० रायबहादुर बाबू जनकधारी लाल जी द्वितीय सुपुत्र थे। सन्यास ग्रहण से पूर्व उनका नाम बनमाली सिंह था तथा उनके अन्य दो भाई थे। श्री देवधारी सिंह तथा श्री धनराज सिंह। रायबहादुर बाबू जनकधारी लाल कूर्मी क्षत्रिय समाज के एक शताब्दी पूर्व उन चोटी के देशभर के जातीय समाज सुधारकों में से थे, जिन्होंने सुप्तावस्था में पड़ी कुरमी कौम को जगाया, चेतना उत्पन्न की और एक अखिल भारतीय जातीय संगठन सूत्र में पिरोने की प्रारम्भिक चेष्टायें की। वे कुरमियों द्वारा अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के कुशल संचालक तथा प्रभावी वक्ता के रूप में श्रद्धापूर्वक सदैव स्मरण किये जायेंगे। इनके नाम से दानापुर (पटना) में "जनकधारी हाई स्कूल" स्थापित किया गया, जिसके प्रधानाध्यापक होने का सौभाग्य उनके पुत्र श्री बनमाली जी को मिला। वे हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत के बड़े विद्वान और ज्ञानी व्यक्ति थे तथा उनका स्वाध्याय निरन्तर चलता रहता था।

श्री बनमाली जी साधु स्वभाव के थे और विचारधारा से वे पूर्णतया कबीर-पंथी हो गये थे। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक दिशा के प्रेरक तथा मार्गदर्शक संत कबीरदास सम्बन्धी अनेक विद्वतापूर्ण पुस्तकों की रचना की। यही नहीं संत कबीर पर बनी इसी नाम से टेली-फिल्म में श्री बनमाली जी ने कबीर साहिब के गुरु का अभिनय बड़े रोचक और प्रभावशाली ढ़ंग से किया जिसकी दर्शकों ने प्रंशसा की। आपको तत्कालीन राष्ट्रपति स्व० फखरुद्दीन अली अहमद द्वारा विशिष्ट उपलब्धियों के लिये सम्मानित किया गया था। आपकी बहुचर्चित कृतियाँ है। 'साहेब कबीर', 'धनी धर्मदास' तथा 'वारुणि विद्या'।

आपने बड़ौदा गुजरात में, अपने पैतृक स्थान दानापुर (बिहार) से हजारों किलोमीटर दूर, शान्ति कुटीर आश्रम स्थापित किया था। वही उनकी कर्मस्थली बनी और वे आगे का सृजनात्मक कार्य वहीं रहकर करते रहे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से प्रकाशित संत वनमाली जी की उनकी तीसरी कृति 'वारुणि विद्या' पर 60,000 रुपये रायल्टी के प्राप्त हुये, पर संत बनमाली जी ने वह सम्पूर्ण राशि और आगे होने वाली अपनी पुस्तकों पर रायल्टी की राशि आदि उन्होंने अपने परिश्रम तथा धन से स्थापित 'शान्ति कुटीर आश्रम' बड़ौदा को प्रदान कर दिया। इनके रचित सारे ग्रंथों की प्रतियाँ उनके पौत्र प्रोफेसर राजेन्द्र सिन्हा के पास उपलब्ध हैं।

अपनी विद्वता तथा संत-प्रवृत्ति के लिये, संत वनमाली जी बड़ौदा वासी गुजरातियों में बड़े सम्माननीय और अनुकरणीय महामानव माने जाते थे। उनके अनुयायी और प्रशंसक देश-विदेशों में दूर-दूर तक बसे हुये हैं। संत वनमाली जैसी महान विभूति के कृतित्व एवं व्यक्ति पर गहन अध्ययन की आवश्यकता है, तभी हम उनके बारे में, उनकी बहुमुखी प्रतिभा के सम्बन्ध में ठीक से परिचय प्राप्त कर सकेंगे। ऐसे महापुरुषों को जाति विशेष की परिधि में सीमित करना उनके व्यक्तित्व के 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय' पक्ष को और कृतित्व को लघुता प्रदान करना है। संत बनमाली और उनके साहित्य सृजन के बारे में अधिक जानने वाले जिज्ञासुओं को उनसे सम्बन्धित विवरण देखना चाहिये। (आचार्य शिवपूजन सहाय द्वारा सम्पादित पुस्तक "हिन्दी साहित्य और बिहार", द्वितीय खंड़, पृ० 340-341)।

बाबूराम सिंह 'लमगोड़ा'

1 जून 1987 के 'हिन्दी मिलाप' हैदराबाद अंक में इनके बारे में, इनके प्रंशसक, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग हैदराबाद के शोध-छात्र श्री अलीम खाँ ने उद्गार प्रकट किये है :-

"बाबूराम सिंह 'लमगोड़ा' बिहार के उन अल्पचर्चित साहित्यकारों में हैं, जिन्हें नाट्य लेखन में सिद्धि तो मिली किन्तु प्रसिद्धि नहीं। फिर भी, वह अपने कार्य में लगे रहते हैं। उन्होंने अब तक लगभग दो दर्जन हिन्दी एवं मगही नाटकों का प्रणयन तथा नाटकों के माध्यम से जीवन एवं जगत के यथार्थ का जीवंत चित्रण किया हैं। उनकी हरेक नाट्यकृति वक्त के आइने की बेमिसाल सूरत है।" लड़कपन में बाबूराम सिंह के पैर अनुपात में अधिक लम्बे थे। इसीलिए इनके बाल-सखा इन्हें 'लमगोड़ो' कह कर चिढ़ाया करते थे। जब वे कुछ लिखने लगे तो "लमगोड़ा" संबोधन उन्होंने अपने नाम के आगे लगा लिया और तब से वह उनके नाम का अभिन्न अंश बना हुआ है।

हिन्दी साहित्य के मौन साधक एवं प्रमुख नाटककार-उपन्यासकार, **श्री बाबूराम सिंह 'लमगोड़ा'** के 62 वें जन्म दिवस के अवसर पर, 19 अक्टूबर 1987 में पटना के आई० एस० एस० हाल में, **'टाइल्स सांस्कृतिक कोषांग'** द्वारा आयोजित, अभिनन्दन समारोह में कोषांग के अध्यक्ष, **श्री लक्ष्मी निवास पोद्दार** ने श्री **'लमगोड़ा'** को साहित्य साधना के पाँच हजार रुपये नगद के साथ चादर, पगड़ी तुलसी की माला और रोली-अक्षत समर्पित किये। समारोह की अध्यक्षता हिन्दी साहित्य के प्रख्यात विद्वान, नालन्दा खुला विश्वविद्यालय के कुलपति **डा० कुमार विमल** ने की। उद्घाटन बिहार के ग्रामीण विकास एवं राजभाषा मंत्री **प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद** ने किया। प्रो० प्रसाद ने श्री 'लमगोड़ा' की साहित्य साधना एवं उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए उनकी कृतियों को समाज के दिशा निर्देश देने वाली बताया।

'रेणु' के बाद 'लमगोड़ा' आज नाटक जगत के जाज्वल्यमान चन्द्रमा है और इनकी प्रतिभा को बादल अब ज्यादा दिन घेरे नहीं रह सकते। इसके लिये जरूरी है कि 'लमगोड़ा' जी के नाटकों का अधिकाधिक प्रचार और मंचन हो और उनका क्रान्तिकारी संदेश घर-घर गाँव-गाँव पहुँचे।

युगोस्लाविया के प्राग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रसिद्ध हिन्दी के विद्वान **प्रो० ओदोलन स्मेकल** ने लिखा है-"पटने के प्रवास-काल में दिनांक 12-2-1992 की शाम में श्री बाबूराम सिंह 'लमगोड़ा' के नाटक 'गांधारी का शाप' देखने का अवसर मिला। 'नाटक' की यह विधा अपने-आप में एक अद्भुत प्रयोग है। जब तक नाटक चलता रहता है। लेखक, निदेशक, कलाकार, दर्शक तथा परिवेश, सभी एक दूसरे से गुंथे होते हैं। युद्ध धर्म नहीं होता तथा युद्ध लड़कर हम अपनी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकते। यही इस नाटक का विषय है। मानवता का प्रतीक गांधारी कूटनीतिज्ञ कृष्ण से बराबर पीड़ित रहती है-रहेगी। प्रस्तुति सराहनीय और सफल रही। शुभ कामनाएँ।"

स्वामी ब्रह्मानन्द सागर

वर्तमान गुजरात प्रदेश तथा पूर्व बड़ौदा राज्य के अन्तर्गत मिया ग्राम के निकट गणपतपुरा नामक ग्राम के निवासी, **श्री बेचरभाई रायजी भाई पटेल** एक सद्-गृहस्थ हो गये हैं। उनका परिवार जाति प्रेम और समाजोत्थान कार्यों के लिये प्रसिद्ध रहा है। श्री बेचरभाई के अनुज **श्री छोटाभाई रायजीभाई पटेल** ने अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के 9 वें अधिवेशन को अपने ग्राम गणपतपुरा में आयोजित कराने का प्रस्ताव पूर्व अधिवेशन में स्वयं रखा था, जो कि अधिवेशन में करतल ध्वनि से सधन्यवाद स्वीकार किया गया था। किन्तु अगले अधिवेशन का समय आने पर यातायात तथा अन्य प्रतिनिधियों की आवा-गमन की सुविधाओं की दृष्टि से अधिवेशन तो गुजरात राज्य में ही रहा पर स्थल को गणपतपुरा ग्राम से बदलकर अहमदाबाद शहर कर दिया गया। जहाँ 27, 28 और 29 दिसम्बर 1913 को 9 वाँ अधिवेशन **बैरिस्टर विट्ठलभाई झवेरभाई पटेल** (बाद में सुप्रसिद्ध प्रेसीडेन्ट केन्द्रीय धारा सभा, दिल्ली) की अध्यक्षता में बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

उपर्युक्त श्री बेचरभाई रायजी भाई पटेल प्रारम्भ से ही सात्त्विक विचारों वाले संत स्वभाव के व्यक्ति थे। इनका अधिकांश समय समाज की सेवा में व्यतीत होता था। इन्होंने अपने द्वितीय पुत्र, **श्री रामचन्द्र जी** को गुरूकुल वृन्दावन में दाखिल कराकर शिक्षित करवाया था। श्री रामचन्द्र जी ने वहाँ से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रारम्भ से ही वे आर्य समाज के कार्यक्रमों तथा महासभा के अधिवेशनों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे। उन कार्य कलापों में ये **श्री रामचन्द्र स्नातक** नाम से बहुचर्चित समाज सेवी रहे हैं।

श्री बेचरभाई राय जी पटेल अपने सुधारवादी विचारों के प्रचार-प्रसार पर अड़िग रहे और रूढ़िवादी, दकियानूसी लोगों की आलोचना से लेशमात्र भी विचलित न हुए। यहाँ तक कि अपने परिवार के जातीय बहिष्कार को साहस से सहन किया पर अन्याय के सम्मुख न झुके और न हार मानी। अपने सगे और निकट सम्बंधियों और कुटुम्बियों के घोर आपत्ति के बावजूद उन्होंने अपने पुत्र रामचन्द्र स्नातक का विवाह अपने कट्टर विरोधी व्यक्ति की पुत्री से सहर्ष कर दिया। उनका कहना था कि सारे अप्रिय प्रसंग में कन्या का क्या दोष है जो परोक्ष रूप से दंड़ित की जाए ? श्री बेचरभाई पटेल ने अपनी पुत्रवधू को शिक्षित बनाने के लिए, बड़ौदा शहर में एक मकान खरीद कर पुत्र एवं पुत्र-वधू दोनों को वहाँ रखा और पुत्र-वधू इस प्रकार शिक्षित हुई।

सारे देश के अपने कुरमी बन्धुओं की तरह पाटीदार पटेलों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था, यद्यपि वे इनमें जन्मजात निपुण थे। कृषि विज्ञान की खोजों और प्रचार-प्रसार के जरिये कृषि-विज्ञान भी काफी तेजी से विकसित होता जा रहा था, जिसकी जानकारी हर कृषक को देने उसके अपने व्यवसाय के लिये परमावश्यक बन चुका था। अतः नये जमाने की कृषि शिक्षा पाटीदार युवक आसानी

से प्राप्त कर सके, इस हेतु बड़ौदा शहर के कारेली बाग क्षेत्र में एक कडवा पाटीदार छात्रावास की स्थापना की गई। इस छात्रावास में पाटीदार छात्रों को निःशुल्क आवास के अतिरिक्त भोजन, पाठ्यक्रम की पुस्तकें आदि की भी व्यवस्था कर दी गई थी।

श्री बेचर भाई रायजी भाई पटेल ने अपने जीवन को पूर्ण रूपेण समाजोत्कर्ष हेतु समर्पित करते हुए अन्तिम चरण में सन्यास ले लिया। तब वे **स्वामी ब्रह्मानन्द सागर** कहलाये। वे जीवान्त तक शिक्षा प्रचार-प्रसार तथा पाटीदार जाति को रूढ़िवादिता, अन्ध विश्वास तथा अनेक कुरीतियों से निकालकर एक शिक्षित, आधुनिक एवं संस्कारित दृष्टिकोण वाली प्रगतिशील जाति बनाना चाहते थे। **पाटीदार-पटेल के इन्हीं समाज सुधारकों के सतत् प्रयत्नों के प्रतिफल हैं कि ये जाति देश की अगाड़ी जातियों में गिनी जाती है और स्वतः आरक्षण के विरोध में हैं जबकि क्षत्रिय-राजपूत वर्ग गुजरात की आरक्षण की परिधि में हैं। केवल देश में ही नहीं विदेशों में भी पटेल बन्धु अपने परिश्रम से बड़े सम्पन्न बन गये हैं। दुनिया में उनका उच्च स्थान बन गया है।**

भक्तराज श्री राजाराम जी महाराज

आपका जन्म ग्राम शिकारपुरा, जिला जोधपुर राजस्थान में सन् 1882 ई० में **श्री हरींग रामजी** नाम एक **आजणा कलबी (कुर्मी)** वंश में हुआ था। आपके बड़े **भाई रघुनाथ रामजी** आप से साढ़े तीन वर्ष बड़े थे। ज्योतिषियों ने शास्त्रानुसार इनका नाम **राजाराम** बताया। माँ-बाप ने बालक का यहीं नाम रख दिया। चार वर्ष बाद राजाराम जी के माता-पिता दोनों का यकायक निधन हो गया। बिना माँ-बाप इन बालकों पर मुसीबत के पहाड़ टूट पड़े। पर वे समस्याओं से जूझते रहे।

करीब चार वर्षों तक दोनों भाई **राजाराम** जी तथा **रघुनाथ राम** जी ने अपने चाचा **श्री थानाराम** जी और मामा **श्री मानाराम** जी के परिवारों में परवरिश पायीं। बारह वर्ष की आयु में रघुनाथ राम का सम्पर्क नागपंथी साधुओं से हो गया वे उनके साथ चल पड़े। अकेले रह गये **राजाराम** पर 12 वर्ष की आयु के होने पर मामा उनके चाचा जी के घर से अपने घर ले आये। और यह सोचकर कि उनकी **बहिन मोतीबाई** का वंश चले **राजाराम** जी का विवाह करने का विचार किया। किन्तु राजाराम जी को वैवाहिक जीवन लेशमात्र भी पसन्द नहीं था। कहीं विवाह न कर दें इससे बचने के लिये राजाराम ने कोई भी काम, चाहे छोटा ही क्यों नहीं हो, करना चाहा।

राजाराम तब शिकारपुर लौट आये और रेबारियों के यहाँ केवल, रोटी, कपड़े, रहने का ठिकाना मिल जाने के एवज़ में उनकी ऊँटनियां चराने का काम संभाल लिया। बाद में आपने शिकारपुरा की ग्वाली की। रोटी कपड़ों के अलावा सर्दी से बचने के लिये उन्हें खेसला और पैरों में पहनने के लिये एक जोड़े जूते भी मिल गये थे। जाति की रीति-रिवाजों के अनुसार एक लुंगी धोती, साफा, बंगलबँधी, अंगरखा भी मिल जाता था। चरवाहे की हैसियत के अनुसार बाजरे की सूखी रोटियां और छाछ भी नसीब हो जाती थी।

जब वे 17 साल के हो गये तो खेती का काम करने में भी सक्षम हो गये, और तब ग्वाली की नौकरी छोड़कर, शिकारपुर गाँव के ठाकुर **नरसिंह** के यहाँ **बारह सोगरों** (रोटियां) हर रोज, पहनने को आवश्यक कपड़े के बदले में कृषि कर्म करना स्वीकार कर लिया। बारह रोटियों (सोगरों) से रात-दिन की उदर पूर्ति होने लगी। वे बिना रुकावट के नंगे पैर ही कृषि-कार्य करते रहते थे। **उनके दिल में एक ख्याल आया कि जिनके पास दान-पुण्य के लिये धन नहीं होता है वे भी पुण्य कार्य करते हैं। अतः प्रतिदिन के 12 रोटियों के रूप में प्राप्त होने वाले पारिश्रमिक में से मात्र 6 वे खाते थे और बाकी की 6 रोटियाँ (सोगरों) को गाँव के भूखे-कुत्तों को नियमित रुप से खिलाते थे।**

वे सद्गुरु के खोज में भी काफी दिनों से थे। संयोगवंश सन् 1900 ई० में शिकारपुरा तालाब के पास तीर्थयात्रा से लौटते हुये एक बालयोगी **देवभारती जी** नामक महात्मा से इनकी मुलाकात हो गयी और वे उनसे दीक्षा लेकर शिष्य वन गये। दूसरी ओर बिना किसी अड़चन के वे अपना दान-पुण्य करना भी उसी प्रकार जारी रखते रहे। एक दिन गाँव के नाई ने ठाकुर **नरसिंह** के कान भर दिये कि उनका **हलवाया राजाराम** मिलने वाली रोटियों में से आधी नियमित रूप से कुत्तों को खिला देता है। ठाकुर चिढ़ गया और उसने **राजाराम** को मिलने वाली रोटियों की संख्या घटाकर आधी कर दीं, पर फिर भी **राजाराम** उनमें से आधी रोटियाँ पूर्ववत् गाँव के कुत्तों को खिला देता। ठाकुर उसकी रोटियां की संख्या आधी करता गया, **यहाँ तक कि उसे मात्र डेढ़ रोटी भेजने लगा, पर दानवीर राजाराम फिर भी बिना गिला-शिकवा के उसकी आधी अर्थात् पौनी रोटी स्वयं खाता और बाकी की पौनी रोटी पूर्ववत् गाँव के कुत्तों को खिला देता।**

इस सबका गाँव वालों पर और यहाँ तक कि ठाकुर नरसिंह पर भी बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और वे समझने लगे कि यह राजाराम कोई जरूर असाधारण व्यक्ति है और यह उनकी मूर्खता है कि हम सब उसकी खिल्ली उड़ाते हैं और उसे परेशान करने की कोशिशों में लगे हैं। उन्हें अपने किये पर पश्चाताप हुआ।

इसी बीच बालयोगी देवभारती जी महाराज भी राजाराम के आचरण, धर्मकर्म के प्रति अटूट आस्था देखकर बड़े प्रभावित हुये। बालयोगी जी ने राजाराम को गुरूमन्त्र देकर विधिवत् अपना शिष्य बना लिया। आये सद्गुरू के सान्निध्य में राजाराम जी की आध्यात्मिक शिक्षा, योग साधना आदि कार्यक्रम चला। अंत में गुरु ने अपने इस प्रिय शिष्य को ऋद्धि-सिद्धि के मंत्र व साधना विधि सिखला दी। अब वे संत राजाराम के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

संत राजाराम जी कृषि-कार्य करना छोड़ कर सम्पूर्ण समय और ध्यान ईश्वर-भक्ति में लगाने लगे। वे शिकारपुरा के तालाब के पास स्थित जोगमाया मन्दिर में आ गये और वहां रहकर पूजा-पाठ, ईश्वर-भजन मनन आदि में लग गये। सन् 1910 ई० में संत राजाराम जी महाराज द्वारका धाम को तीर्थाटन करने मात्र एक लंगोटी और चादर लेने निकल पड़े। तीर्थ यात्रा सम्पन्न कर संत राजाराम जी ने जोगमाया के मन्दिर में अपना आसन जमाया। जैसे-जैसे संत राजाराम के आध्यात्म बल का विकास होता गया, वे अनुयायियों द्वारा एक सिद्ध पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित होते गये। भक्तराज राजाराम जी महाराज की महिमा और चमत्कारिक शक्ति की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। परिणाम यह निकला कि बिना धर्म, जाति, वर्ण, लिंग भेद के भक्तजन उनका आशीर्वाद लेने और अपनी विपत्ति, व्यथा या कष्ट निवारण कराने बड़े दूर-दूर से आने लगे।

भक्तों को वे मनसा-बाचा-कर्मणा सात्विक जीवन जीने का उपदेश देते थे। 'अहिंसा परमो धर्मा' के महत्त्व को समझाते थे। रोजमर्रा की खराबियों से बचने का वे सबको जोर देते थे। इस प्रकार बहुत से अपने भक्तों को नशीली चीजों की लत से मुक्ति दिलवायी। इसी प्रकार अन्य सामाजिक कुरीतियाँ जैसे बाल-विवाह, दहेज, मृत्युभोज आदि को भी अपने अथक प्रयास से दूर करने की चेष्टा करते रहे।

संत राजाराम जी शैव थे। सन् 1920 ई० में एक शिवमन्दिर का निर्माण कर मूर्तियों की प्रतिष्ठापना विधिवत् करवायी। संत जी के जीवन में शिव-मन्दिर प्रतिष्ठा का दिन इस कारण और शुभ और चिरस्मरणीय बन गया कि उसी दिन यकायक उनके बड़े भ्राता श्री रघुनाथ राम जी जो तीस वर्षों पूर्व साधु संगत में घर छोड़ चले गये थे, नागा-साधुओं की जमात के साथ शिकारपुरा लौट आये।

संत राजाराम जी महाराज ने सन् 1943 ई० दिन शनिवार को शरीर त्यागा और दिनांक 29 अगस्त् सन् 1943 ई० को आश्रम के प्रांगण में उनके अनुयायियों ने उसके मृतक शरीर को विधिवत् समाधिस्थ कर दिया। आज भी शिकारपुरा (जोधपुर) में श्री राजाराम आँजन आश्रम ट्रस्ट कार्यरत है। और उसके द्वारा अनेक सामाजिक, शैक्षिक और धार्मिक संस्थाओं का सफल संचालन हो रहा है। इस आश्रम से 'आँजणा दर्शन' नामक पत्रिका भी प्रकाशित की जाती है।

आँजणा समाज में स्व० संत राजाराम जी के कारण नशीली वस्तुओं का सेवन काफी कुछ रुक गया है। उनके प्रसिद्ध पद आँजणा समाज में बड़े प्रसिद्ध हैं।

शिकारापुरा में ही यहाँ कलबियों का एक गुरुद्वारा है जिससे समाज को बहुत लाभ मिलता है, वह शिकारपुरा में है। श्री किशनाराम जी इस क्षेत्र में बड़े प्रतिष्ठित आंजणा कलबी माने जाते हैं। इनके गुरु संत श्री देवाराम जी है, जोकि वर्तमान में संत श्री राजाराम आश्रम ट्रस्ट, शिकारपुरा (जोधपुर) के अध्यक्ष है तथा राजस्थान एवं गुजरात में इनको लोग खूब जानते हैं और सम्मान करते हैं। इनके प्रयासों से राजस्थान के आंजणा कलबी बहुल क्षेत्रों में कई छात्रावास बने हैं तथा समाज के सर्वांगीण विकास के लिये आपकी अथक कोशिश रही है।

शिकारपुरा (जोधपुर) में श्री राजाराम आश्रम पर लगने वाले वार्षिक भादवी एवं वैशाखी पूनम के मेले में सारे कुलबी के समाज की वास्तविक झलक मिल जाती है। यह मेला कुलबी जाति में कुंभ मेले के समान प्रसिद्ध है। राजस्थान का आँजणा कलबी समाज अभी भी सामाजिक कुरीतियों से, एकता सहयोगी प्रवृति की कमी के कारण अपने गुजराती आँजणा कणबी बन्धुओं की तुलना में पीछे हैं। उनसे प्रेरित होकर उन्हें अपनी तरक्की तथा उत्कर्ष के हरेक साधन को दृढ़ता से अपनाना होगा तब वे गुजराती बन्धुओं से कदम से कदम मिलाकर उन्नति पथ पर अग्रसर हो सकेंगें। अपने अथक प्रयास से पिछड़ापन दूर करने की चेष्टा करते होंगे। उधर गुजरात के पाटीदार-पटेल बन्धुओं का अधिक उन्नत होने के नाते दायित्व बनता है कि भारतवर्ष में जहाँ-जहाँ भी अपने बंधु बसे हैं उन्हें अपने आत्मीय व्यवहार से एक अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के संगठन से जोड़े। और महासभा के कार्य-कलापों में, उसके क्रियान्वयन में अधिकाधिक भागीदारी अपने हाथों में लें।

राजेन्द्र कुमार यौधेय

साधारण कद, साँवला रंग, हँसमुख चेहरा, बदन पर धोती और चादर, पैर में चप्पल, सादगी की प्रतिमूर्ति, मन से मनस्वी और तन से तपसी, कंधे से एक झोला लटकाये, किताबों से भरे हुए, घूमते हुए 'यौधेय' जी को बिहार राज्य में कहीं भी देखा जा सकता है।

पटना जिले के मसौढ़ी प्रखंड के नियामतपुर ग्राम में 23 नवम्बर 1923 ई० को जन्म हुआ। इनके पिता स्व० नोखेलाल सिंह साधारण कुरमी किसान थे। स्कूली शिक्षा मिडल स्कूल तक ही नसीब हुई किन्तु स्वाध्याय के वल पर यशस्वी रचनाकार बन गये। कविता, कहानी लिखने का शौक बचपन से ही रहा। उन्होंनि हिन्दी और मगही भाषा का प्रथम व्याकरण सन् 1956 ई० को प्रकाशित किया, जिसकी साहित्यिक क्षेत्र में भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी। काव्य संकलन के रूप में "गीतार्चन, प्रबन्ध काव्य-'सहमान', उपन्यास—'विशेसरा' हैं। विशेसरा को मगध विश्वविद्यालय के बी० ए० पाठ्यक्रम की पुस्तकों में शामिल किया गया है। मगही महाकाव्य 'धर्मपुत्र' और 'सुलोचना' भी अच्छी कृतियाँ है। 'मानिनी शुकन्तला' नामक प्रबन्ध-काव्य की भी साहित्य जगत् में सराहना हुई है।

इनके अतिरिक्त 'यौधेय' जी की अनेक काव्य-कृतियाँ अप्रकाशित हैं। मगही गीत जब लय के साथ गाने लगते हैं तो श्रोता मंत्र-मुग्ध होकर झूमने लगते हैं। ये वास्तव में श्री रामकृष्ण मेहता जी की तरह यायावर साहित्यकार है। अन्तर केवल इतना है कि ये कल्पना-लोक में विचरण करते हैं और श्री रामकृष्ण मेहता यथार्थ-लोक में। श्री मेहता का जीवनवृत इस पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। श्री महेता को धनाभाव सदा रहा, अत: उन्हें 'कलम का दरोगा' की जगह "कलम का सिपाही" कहना बहुत कुछ उपयुक्त रहेगा।

यौधेय रचित प्रबन्ध काव्य "सहमान" का लोकार्पण-सम्पन्न

दिनांक 5 मई 1994 को अपरान्ह 2 बजे हिन्दी और मगही के सुपरिचित साहित्यकार श्री राजेन्द्रकुमार यौधेय द्वारा रचित हिन्दी प्रबन्ध काव्य "सहमान" का लोकार्पण स्थानीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन भवन में माननीय राजभाषा राज्य-मंत्री के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मंत्री महोदय ने यौधेय जी ने अदम्य उत्साह एवं उनकी अपूर्व कृतियों को मान्यता देते हुये उन्हें राज्य सरकार द्वारा सम्मानित करने की घोषणा की। अनेक वक्ताओं ने यौधेय जी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। प्रसिद्ध विद्वान प्रो० रामबुझावन पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, वी० एन० कालिज, पटना, विश्वविद्यालय ने तो मगही में बोलते हुए इस भाषा के माध्यम से सृजनकार, श्री राजेन्द्रकुमार यौधेय को शतायु होने की मंगल कामना की।

पद्मश्री फणीश्वर नाथ रेणु

रेणुजी का कृतित्व एवं जीवनवृत्त इस पुस्तक में विस्तार से आगे अलग से दिया गया है। यहाँ पर प्रसिद्ध साहित्यकार और समालोचक डा० प्रभाकर माचवे के उनके प्रति उद्गार प्रस्तुत हैं:-

रेणु की याद में

कीमत तो देनी ही पड़ती है जीवन में,
मूल्यों के लिये इस दुनिया के वन में,
एकाकीपन का इलाज नहीं राजनीति,
सुरा और सुन्दरी भी नहीं, वह बड़ी भीति,
न बंबई का समुन्दर, न कोसी की बद्दुआ,
पतझर को रोके क्या बोधगया पीली हवा,
मैला ही बना रहता धरती का 'आँचरवा'
चौथी है कसम, नहीं दर्द की कोई दवा

'साबुन महँगा बिकाय या नगरी-२ यथा,
कौन अब लिखेगा उस परती की परिकथा
गायेगा कौन इस जलूस में ठुमरी ?
'ओ पिंजरेवाली मुनिया' यह चोट बड़ी गहरी।

बालशौरि रेड्डी, पूर्व सम्पादक 'चन्दा मामा ' हिन्दी बाल पत्रिका, हिन्दी के प्रतिष्ठित एवं पुरस्कृत साहित्यकार

उन्होंने अनेक उपन्यास का हिन्दी में सृजन किया है। "दावानल" उनका एक ऐतिहासिक उपन्यास है। आन्ध्र के इतिहास में पलनाडु युद्ध अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। पलनाडु जिला गुंटूर का एक प्रदेश है। यह युद्ध ईसा सन् 12 वीं शती में घटित हुआ था। यह युद्ध पलनाडु के राजाओं के भाइयों के बीच हुआ था। इसकी तुलना महाभारत युद्ध से की जाती है, जबकि मिल्लदेव आदि राजाओं को पांडव तथा ब्रह्मनायडु को श्रीकृष्ण से तुलना की गई है।

महाभारत में जहाँ जुयें में हारकर पांडव अपना राज्य खो बैठते हैं, वहाँ मल्लिदेव राजा वगैरह कुक्कट युद्ध में पराजित होकर। परन्तु इन दोनों जुओं में धोखा दिया गया था। पांडवों ने जहां 12 वर्ष तक वनवास किया, वहाँ मल्लिदेव आदि ने सात वर्ष तक। श्रीकृष्ण ने महाभारत में दूत का कार्य किया, परन्तु पलनाडु में अलराजु ने। कुरुक्षेत्र की भारत कारमपूड़ि रक्षक्षेत्र भी सांसारिक दृष्टि से उतना ही महत्त्वपूर्ण है।

आन्ध्र के इतिहास में रेड्डी साम्राज्य तथा विजयनगर साम्राज्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। उक्त साम्राज्यों की झांकी प्रस्तुत करते हुये श्री बालशौरि रेड्डी ने दो बड़े रोचक ऐतिहासिक उपन्यास 'लुकमा' और 'प्रकाश और परछाई' हिन्दी में प्रस्तुत किये हैं। हिन्दी जगत् में इन दोनों उपन्यासों का समादर किया है। श्री बाल शौरि रेड्डी जोकि कू० क्ष० महासभा के अध्यक्ष, उत्कल में हुये अधिवेशन में मनोनीत किये गये थे। वे अहिन्दी भाषी होते हुये हिन्दी जगत के उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में सुपरिचित साहित्यकार हैं।

पीर बुल्लेशाह और उनके गुरु

प्रसिद्ध पीर बुल्लेशाह का जन्म सन् 1680 ई० को कसूर नामक कसबा (वर्तमान में पाकिस्तान का एक जिला और मशहूर शहर के पास स्थित पाडोंके नामक मुकाम पर हुआ था। इसका असली नाम अब्दुल्ला था पर प्रचलित नाम साईं बुल्लेशाह बुला और पिता का नाम मोहम्मद दरवेश था। बुल्लेशाह का जन्म मुसलमानों की तथाकथित सबसे ऊँची जाति सयैद (जैसे हिन्दुओं में ब्राह्मण) में हुआ। जब ये पैदा हुये तब मुल्क में गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज और मुगल बादशाह औरंगजेब का जमाना था।

बुल्लेशाह के वालिद बच्चों को पढ़ाने का कार्य करते थे जबकि बालक बुल्लेशाह जानवरों को चराया करते थे। फिर भी उन्होंने अपनी सारी मज़हवी किताबें ध्यान से पढ़ ली थीं। बुल्लेशाह ने किताबी-तालीम कसूर (वर्तमान में फिरोज़पुर का पड़ोसी जिला) में हजरत मुरतजा से हासिल की थी। पर इनके मुरशिद गुरु शाह इनायत कसूरी थे, जोकि जाति के अराई मुसलमान थे। अराई मुसलमान हिन्दू-धर्म की सैनी और कम्बोज जातियों के धर्म-परिवर्तन करके बने थे। इनके सान्निध्य में आकर बुल्लेशाह जात-पात का अन्तर, विशेष करके ऊँच-नीच का कृत्रिम दम्भ और बिचार भूल गये।

बुल्लेशाह के आध्यात्मिक गुरु इनायत कादरी के बिचार हिन्दुओं से ज्यादा मेल खाते थे तथा वे कसूर कसबे में रहकर रब (भगवान) का प्रचार-प्रसार करते लोगों को नेक रास्ते पर चलने की हिदायत देते थे। ऊँची जाति वालों को, खासकर मुसलमान हुक्मरानों को ये बड़ा अखरता था। और वे इनायत कसूरी से बैर रखने लगे, उन्हें परेशान तक करने लगे। यहाँ तक कि उनके अत्याचारों से बचकर वे लाहौर आ बसे। इनायत कसूरी अपनी रोज़ी-रोटी के लिये जातीय पेशा सब्ज़ी उगाया करते थे। कहा जाता है कि वे लाहौर के प्रसिद्ध शालीमार बाग के मुख्य माली भी नियुक्त किए गए। पर वे ऊँचे दरजे के दरवेश थे जिससे बुल्लेशाह में भी अध्यात्म की वे सारी बुलन्दी प्राप्त हो गयीं जो पहुँचे हुये पीर-फकीरों में होना चाहियें थीं। बुल्लेशाह गरीबों-दुखियों के मसीहा थे।

बुल्लेशाह का अधिकाँश जीवन लाहौर में बीता। हिन्दू-मुसलमान दोनों इनके मुरीद थे और इनकी शोहरत पूरे पंजाब में थी। उन्होंने अनेक काफियाँ रचीं जोकि जन-जन की जबान पर थीं। पीर बुल्लेशाह का निधन सन् 1718 ई० में हुआ और उनका मकबरा कसूर जिले में बनाया गया, जो आज भी उनके मुरीदों और अनुयायियों के लिये पाक-श्रद्धा-स्थल है।

बुल्लेशाह के रिस्तेदारों, परिवार वालों ने उनका एक नीची जाति वाले का शिष्य, खुद सैय्यद होकर भी बनने पर काफ़ी ऐतराज़ किया, जोकि उनकी इस काफ़ी से प्रतिबिम्बित होता है :-

बुल्ले नुं समझायण आइयां, भैणां ते भरजाइयाँ,
तु क्यों बुल्लेया, सैय्यद होके, कुल नूं लीकां लाइयां,
जे क्यों सानूं सैय्यद आखे, दोजख मिले सजाया।

ऊपर की काफ़ी के अनुसार जब बुल्लेशाह अपने परिवार वालों से मिलने घर आये तो उनकी चाचियाँ, ताइयाँ, बहनों, भाभियों की भीड़ इकट्ठी हो गयी और उनको तरह-तरह से जाति को लेकर ऊंच-नीच समझाने लगी। वें सैय्यद होकर नीची जाति वाले को अपना क्यों गुरु बनाया है, पर बुल्लेशाह पर उसका विपरीत प्रभाव पड़ा, उन्हें ऊँच-नीच, जात-पात से सख्त नफ़रत हो गयी। वे खुदा के सारे बन्दों को समान दृष्टि से देखते थे।

बाबा बुल्लेशाह की शायरी का मुख्य उद्देश्य था कि हिन्दू, मुसलमान ऊँच-नींच की भावना तज़कर, कोई भी उनमें से व्यक्ति दुनिया का मोह त्यागकर अपनी लगन रब (प्रभु) से जोड़ ले तो वह उससे अपने आप मिल जायेगा, उसकी पूर्ण अनुभूति उसे हो जायेगी। बुल्लेशाह अपने जमाने के बड़े प्रसिद्ध पीर-फ़कीर हुये और पंजाबी बोली के द्वारा उन्होंने अपनी बात आम जनता तक पहुँचायी।

देश का विभाजन जब सन् 1947 में हुआ। लोगों का हज्जूम उधर-से इधर और इधर से उधर सरहद पार चला। कत्लेआम दोनों तरफ़ मचा। त्राहि-त्राहि सर्वत्र मच गयी। प्रसिद्ध पंजाबी कवित्री अमृता प्रीतम ने एक बड़ी मार्मिक कविता उस काल में लिखी थी, जिसके अर्थ थे कि बाबा बुल्लेशाह, कब्र से उठ देख तेरे बच्चों पर कैसी आफ्त वरपा हुई है। तू कैसे चैन से कब्र में रह सकता है। उठ देख अपनें पंजाब की हालत।

अध्याय : 16

सरदार वल्लभभाई पटेल एवं पं० जवाहर लाल नेहरू

सरदार वल्लभभाई पटेल, महात्मा गांधी की हत्या के समय भारत के उपप्रधान मंत्री तथा गृहमंत्री भी थे। उन पर दोषारोपण करने का एक अच्छा अवसर मिला। यह प्रचार किया गया कि गृह मंत्रालय ने गांधी जी की सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था नहीं की, जिसके कारण हत्यारे को मौका मिल गया। पर यह गलत प्रचार था क्योंकि गाँधी जी सुरक्षा कर्मियों को अपने आगे पीछे देखना पसन्द नहीं करते थे, इसलिये वे सादे भेष में तैनात किये जाते थे। सरदार पटेल को इन विरोधियों के व्यर्थ के लांछनों की परवाह न थी, उन्हें घोर दुःख अपने राजनैतिक गुरु महात्मा गांधी की हत्या का था। फिर भी गांधी जी का अकाल निधन और राजनैतिक दुश्मनों के कुप्रचार से उन्हें मार्मिक आघात पहुँचा, जिसका उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। वे बीमार रहने लगे। सन् 1950 में बम्बई में उनकी मृत्यु हुई। उनकी अन्त्येष्टि में भी पंडित नेहरू ने तथा कुछ अन्य व्यक्तियों ने अड़ंगा डाला। जनता चाहती थी कि उनकी अन्त्येष्टि चौपाटी पर पूरे मान-सम्मान से होनी चाहिये उसी स्थान पर जहाँ तिलक महाराज की एवं उनके अग्रज विट्ठलभाई पटेल की की गयी थी। उस सम्मान से वंचित रखने के लिये सरदार पटेल की अन्तिम रस्म में भी कोशिश बहुत की गयी कि उन्हें किसी आम साधारण श्मशान घाट पर जलाया जाय। पर जनता कहाँ मानने वाली थी सरकार को खबर मिली कि यदि वह आज्ञा न देगी तो जनता ने अपने हृदय-सम्राट की अन्त्येष्टि जबरन चौपाटी पर निश्चित स्थान पर ही करने की ठान ली है। बम्बई से टेलीफोन दिल्ली बजे, दिल्लीपतियों ने समझ लिया कि उन सबकी भलाई और इज्जत इसी में हैं कि जनता की जिद्द मानकार सरकारी तौर पर चौपाटी पर ही पटेल जी की अन्त्येष्टि होने दें।

फिर दूसरी आपति नेहरू ने राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद को बम्बई अन्त्येष्टि में सम्मिलित होने के उनके जाने से पूर्व इस आधार पर उठायी कि देश का सर्वोच्च राज्याध्यक्ष का किसी अन्य देश के सर्वोच्च राज्याध्यक्षों के अन्त्येष्टि में ही सम्मिलित होना उनकी गरिमा के अनुरूप होगा, किसी उपप्रधान मंत्री के निधन पर सम्मिलित होने की कोई मिसाल नहीं है। डा० राजेन्द्र प्रसाद पंडित नेहरू की आपत्ति पर ध्यान दिये बिना बम्बई चले गये और अपने मित्र सरदार पटेल जी की अन्त्येष्टि में सम्मिलित हुये। वे भूल न पाये थे कि जब राष्ट्रपति के उम्मीदवारों का चयन हो रहा था तब पं० नेहरू ने डा० राजेन्द्र प्रसाद के नाम पर आपत्ति उठायी थी कि वे आधुनिक जीवन के अभ्यस्त न होकर ग्रामीण परवेश के गंवई व्यक्ति थे, और उनका (पंडित जी का) झुकाव चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य की ओर था। एक दफा तो डा० राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्रपति के चुनाव में उम्मीदवार न बनने की भी सोची पर जब सरदार पटेल को पूरी बात का पता चला तो उन्होंने डा० राजेन्द्र प्रसाद को अपना समर्थन देने का वादाकर उम्मीदवार बनने को तैयार किया था। सरदार पटेल के सम्मुख पं० नेहरू की दाल न गली और इस तरह वे डा० राजेन्द्र प्रसाद को भारत का प्रथम राष्ट्रपति बनने से न रोक पाये। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने इसीलिये अपने मित्र सरदार पटेल की अन्त्येष्टि में उपस्थित हुये और कृतज्ञ राष्ट्र की श्रद्धांजलि उसके राष्ट्रपति के द्वारा अर्पित की गयी।

गांधी जी अक्सर अपने अचूक अस्त्र भूख हड़ताल का प्रयोग कर दिया करते थे। मई 1933 का उनका उपवास सबसे दीर्घ था जो 21 दिन चला। उसे उन्होंने हरिजनों के अलग निर्वाचन के प्रस्ताव के विरोध में रखा था।

यह प्रथक निर्वाचन का प्रस्ताव उच्चवर्णी हिन्दुओं में विशेष करके शिक्षित और कट्टरपंथी द्विजों के अस्पृश्यता के पक्ष के कारण हरिजनों की ओर से उठाया गया था। गांधीजी ने इस मुद्दे पर भूख हड़ताल शुरु की कि हिन्दुओं में अस्पृश्यता दूर हो और हरिजन पृथक निर्वाचन अधिकार की मांग वापिस ले लें। सरदार पटेल बड़े चिन्तित थे उन्होंने

कांग्रेस के वरिष्ठ नेता श्री पुरुषोत्तम दास टंडन को पत्र लिखा-"वे (महात्मा जी) उन व्यक्ति में से है जो ईमानदारी से अपने हिन्दूधर्म का पालन करते हैं। हम यदि उन्हें उपवास समाप्त करने के लिये किसी तरह मना भी लें तो उससे देश का या हिन्दू धर्म का क्या भला होने वाला है?" यह पत्र सरदार वल्लभभाई पटेल ने यरवदा जेल की अपनी कोठरी से लिखा था जोकि "कलक्टेड वर्क्स ऑफ सरदार वल्लभभाई पटेल" के चौथे खंड में दिया हुआ है जिसे सन् 1932 से 1934 तक के लिये डा० पी० एन० चौपड़ा ने सम्पादित किया था। यह ग्रंथ श्रृंखला सरदार पटेल सोसायटी की ओर से प्रकाशित की गयी थी।

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन को सरदार पटेल ने फिर लिखा कि "हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर बहुधा लोगों द्वारा सरासर झूठ और धोखे को अपनाया जाता है। बापू ने करोड़ों हरिजनों के साथ अस्पृश्यता उन्मूलन कराने का वायदा कर रखा है, यदि वही बात नहीं मानी जाती तब बापू कैसे उसकी अनदेखी कर सकते हैं? क्या आप धर्म सुधार का कोई अन्य रास्ता सोच सकते हैं? अगर अन्य रास्ता नज़र नहीं आता तो उन जैसा व्यक्ति और क्या कर सकता है, जिसे अपना धर्म अपनी जान से ज्यादा मूल्यवान है?

गांधीजी भी यरवदा जेल में थे जबकि उन्होंने उपवास शुरू करने के निर्णय की घोषणा की थी, लेकिन उन्होंने इसके बारे में सरदार पटेल से राय नहीं ली। सरदार पटेल के अनुसार गांधीजी ने यह निर्णय मध्यरात्रि के बाद 1.00 बजे लिया, जब सब सो रहे थे।

महात्मा जी ने जैसे ही उपवास शुरु किया, अंग्रेज सरकार ने उन्हें कारावास से मुक्त कर दिया। छूटते ही गांधी जी ने सरदार पटेल की प्रशंसा करते हुये एक बड़ा भावुक बयान जारी किया।

गांधीजी ने कहा कि सरदार पटेल ने मेरी इतनी अच्छी तरह देख भाल की कि मुझे मेरी मां याद आ गयी उनकी अटूट हिम्मत और ज्वलंत् साहस को मैं जानता था। पर मुझे यह ज्ञात न था कि इनमें मतलब वाले भी इतने गुण विद्यमान हैं। गांधी जी ने बिना किसी संकोच के निरन्तर 21 दिवस का उपवास पूरा किया, और उसकी समाप्ति पर देश ने काफी राहत महसूस की।

सरदार पटेल की राय में राष्ट्र ध्वज केसरिया

स्वतंत्रता के काफी पूर्व सरदार पटेल जब इंडियन नेशनल कांग्रेस के अध्यक्ष थे तो उनके द्वारा गठित झंडा कमेटी ने चौखटे आकार का गेरुआ रंग का ध्वज राष्ट्रध्वज अपनाने की सिफारिश की थी जिसके मध्य में अशोक चक्र बना हो, राष्ट्रीय झंडे के लिये एक 7 सदस्यीय कमेटी का गठन किया गया था जिसके संयोजक श्री पट्टाभि सीतारमैया बनाये गये थे, तथा अन्य सदस्य थे सर्वश्री सरदार पटेल, पं० जवाहर लाल नेहरू, अब्दुल कलाम आज़ाद, मास्टर तारा सिंह, डी० वी केलकर तथा एन० एस हबड़ीकर।

उपर्युक्त समिति ने यह पता लगाया कि कांग्रेस के तत्कालीन झंडे से यदि चर्खा हटा दिया जाए तो वह बुलगारिया के झंडे जैसा हो जाता है, सफ़ेद रंग बीच में करें तो फारस के झंडे जैसा हो जाता है बहुत सोच बिचारकर और हर पहलू को ध्यान में रखकर समिति ने सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि राष्ट्र ध्वज एक ही रंग का होना चाहिये केवल बीच में चक्र के रंग को छोड़कर समिति की राय थी :-

"यदि ध्वज एक ही रंग का होगा वह सारे भारतीयों को मान्य होगा। वह रंग औरों से भिन्न है। वह इस प्राचीन देश की लम्बी परम्परा से सम्बंधित है और वह है केसरिया या गैरिक रंग" । मूल अंग्रेजी भाषा में सदस्यों ने कहा था :-

"If there is one colour that is more acceptable to the Indians as a whole, even as it is more distinctive than another, one that is associated with this ancient country by long tradition. It is Kesaria or saffron colour."

सन् 1929 तक कांग्रेस का जो झंडा था वह तिरंगा था जिसमें हिन्दू, मुस्लिम तथा ईसाई धर्मावलम्बियों के

क्रमशः ऊपर से लाल, हरे और सफ़ेद रंग रखे गये थे। उस समय नये झंडे की आवश्यकता महसूस की गयी जब सिक्खों ने भी झंडे में अपने रंग को सम्मिलित करने की मांग रखी। उस समय कांग्रेस ने निश्चय किया था कि हमारा राष्ट्रीय ध्वज हो साम्प्रदायिक पुट से रहित हो। तभी उपरोक्त कमेटी का गठन किया गया और जिसने अपनी सर्वसम्मत राय व्यस्त की। पर अन्त में साम्प्रदायिक आधार वाला तिरंगा ही स्वीकार किया गया। (डा० पी० यन० चोपड़ा, "कलक्टेड वर्क्स, आफ सरदार बल्लभ भाई पटेल)

विश्व प्रसिद्ध "सुलभ इण्टरनेशनल" के संस्थापक और "इंडियन एसोशियेशन ऑफ एक्सेन सोसियोलोजिस्ट" के चेयरमैन पद्मविभूषण से अलंकृत बिहार के डा० बिन्देश्वर पाठक ने "Rural Violence in Bihar" शीर्षक से पुस्तक लिखी है जिस पर समीक्षा में श्री जनक सिंह ने नई दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक "दि टाइम्स ऑफ इण्डिया" के 14 फरवरी 1994 के अंक के पृष्ठ 4 पर कुछ महत्वपूर्ण कुरमी जाति सम्बन्धी अंश बड़े विस्तार से दिया गया है, जो मूल भाषा में साभार नीचे उद्धृत किये हैं।

"The book prepared in consultation with Dr. Sachchidananda, Emeritus Professor, A.N. Sinha Institute of Social Studies, Patna, Dr. A. K. Lal, former Director Sulabh Centre of Action Sociology, and Mr. S. P. Singh, a journalist, maintains that the fight between forward and backward has not plunged into the cauldron of violence, Actually, it is a fight between the priviledged and deprived sections of society, whichever caste they belong to that is responsible for violence in the State.

The 147 pages book deals with 27 incidents which rocked the State between 1977 and 1992.

According to the book, the Harijans were the target in as many as 17 incidents. The upper castes had to bear the brunt of retaliation in five cases and the Kurmis, and other intermediate castes in five other incidents.

In some instances, peasant cultivators who were in middle rank in the caste system and who previously were tenants of absentee landlords and jagirdars became owners and this came to wield more influence in rural societies, Kurmis and Yadavs were among the castes who rapidly rose up in the social ladder as a result of land reforms.

Dr. Pathak says the conditions of intermediate castes (Kurmis, Yadavs etc.) have improved a great deal after Independence, whereas people in the lowest rungs of the caste hierarchy have not registered similar improvements.

The Yadavs have their own private army called the Lorik Sena, very active in Gaya and Aurangabad districts Similarly, the Kurmis have raised the banner of Bhumi Sena. The Harijans and landless lobourers are united under the Indian peoples Front and other extremist organisations like the MCC.

In the Shocking incident at Belchi (Nalanda District) on may 27, 1977 eight Harijans and three others were burnt on funeral pyre because Kurmi landlords of the area feared a threat to their strong hold on the power structure of the village.

Initially it was the Kisan Suraksha Samiti, which come into being with the help and guidance of Kurmi leaders belonging to Congress, Lokdal and CPI. However following intensification of operations by extremists, now a Bhoomi Sena of Kurmis has come into being.

realpatidar.com

The usual war cry of Bhoomi sena, an organisation of lumpen youths from the well to do families is"Mazdoor Kisan Bhai Bhai Naxali Beech Mein Kanha Se Aye?" **(मजदूर किसान भाई भाई नक्सली बीच में कहाँ से आये)।**

सरदार पटेल ने कहा "मूर्ति मत उठवाना"

राम जन्मभूमि आन्दोलन के प्रमुख नेता श्री परमहंस रामचन्द्रदास द्वारा 5 सितम्बर 1993 **को अयोध्या के सम्बन्ध** में भारत के प्रथम केन्द्रीय गृह मंत्री तथा उपप्रधानमंत्री द्वारा की गई कार्रवाई का रहस्योद्घाटन किए जाने से श्री नरसिम्हा राव सरकार के साथ जुड़े छद्‌म धर्मनिरपेक्षावादी सहयोगियों में हड़कम्प मच गया । यह समाचार दिल्ली से प्रकाशित होने वाले पंजाब केसरी के 6 सितम्बर 1993 के अँक में काफ़ी विस्तार से दिया गया है ।

श्री परमहंस रामचन्द्र दास ने रहस्योद्घाटन किया कि राम जन्मभूमि पर रखी गई रामलला की मूर्ति को तत्कालीन प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू, हटवाने को तैयार हो गये थे, किन्तु लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह नहीं होने दिया था । **श्री परमहंस ने दावा किया है कि उस समय श्री पटेल ने कहा था कि श्री रामलला की प्रतिमा रखे जाने से हिन्दू समाज का मस्तक स्वाभिमान से ऊँचा हो गया ।**

उल्लेखनीय है कि परमहंस रामचन्द्रदास गत 43 वर्षों से राम जन्मभूमि प्राप्त करने के लिये प्रमुख वादी के रूप में मुकदमा लड़ते रहे हैं और इस समय वह राम जन्मभूमि न्यास के अध्यक्ष भी हैं । श्री परमहंस ने यह रहस्योद्घाटन करके मौजूदा राव सरकार को दुविधा में डाल दिया कि यदि सरदार पटेल उस समय कठोर रुख न अपनाते तो स्थिति बदल सकती थी । **जब 22-23 सितम्बर 1949 की रात्रि को राम जन्मभूमि पर श्री रामलला के प्रकट होने की घटना हुई तब ठीक उसी तरह के मतभेद पैदा हुये थे,जैसे आज प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव और उनके कुछ सहयोगियों के मध्य बने हुये हैं ।**

सन्‌ 1949 में श्री परमहंस अयोध्या नगर पालिका के कार्यकारी अध्यक्ष थे । सारे अयोध्यावासी वहां इकट्ठे हो गये थे । **श्री राम प्रकटोत्सव** के बाद सुबह करीब 15 हज़ार लोग इकट्ठे हो गये थे और शाम तक करीब 50 हजार रामभक्त वहां पहुंच चुके थे । **सिटी मैजिस्ट्रेट गुरुदत्त सिंह** भी पाठ कर रहे थे । यद्यपि कुछ मुसलमान भी गहमा-गहमी करने लगे थे किन्तु वहां कभी नमाज़ नहीं पढ़ी गई थी, इसलिये वे सीधे रूप से टकराव को तैयार न थे । उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत से शिकायत की थी । **मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश, श्री पंत** ने फैजाबाद के जिलाधीश श्री के० के० नैयर आई० सी० यस० (बाद में उन्हें नौकरी इसी मुद्दे पर छोड़नी पड़ी थी और वे और उनके बाद उनकी पत्नी श्रीमती शकुन्तला नैयर भारी बहुमत से लोकसभा सदस्य चुने गये थे) को आदेश दिया कि तुरन्त मूर्तियां हटाओ । दिल्ली से तत्कालीन **प्रधानमंत्री, पं० नेहरू** के भी फोन आने लगे । **श्री पंत ने यू० पी० पुलिस के महानिदेशक** और **उप-महानिरीक्षक को भी अयोध्या** भेजा और आदेश दिया कि **तुरन्त मूर्ति हटानी होगी** । ऐसी परिस्थिति में **श्री परमहंस** ने तुरन्त दिल्ली आकर गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल से भेंट की और हालत से वाकिफ़ कराया ।

श्री परमहंस के कथनानुसार **सरदार पटेल** अपनी कुर्सी से उठकर उनके निकट आए और उनके चरण स्पर्श किए । **सरदार पटेल** ने टेलीफोन पर **श्री पंत** से बातचीत की और कहा कि **रामजन्म भूमि स्थल से श्री रामलला की** मूर्ति मत उठाना । इस विवाद को **गृह विभाग** निपटाएगा । **पं० नेहरू** का दबाव पड़ने पर **सरदार पटेल ने परमहंस** को दोबारा बुलाया और कहा कि तुम हिन्दू महासभा के व्यक्ति हो । **हिन्दू महासभा के श्री एन० सी० चटर्जी** सुयोग्य वकील हैं, उनकी मदद से स्थानीय कोर्ट से अस्थाई स्थगन आदेश ले लो । इसके बाद फैजाबाद की अदालत से **श्री परमहंस** ने स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया ।

उस समय **मानस जन्म भूमि** एक जमींदार के स्वामित्व में थी । वहां बहुत गंदगी थी । **आचार्य विनोबा भावे** भूदान के सम्बन्ध में अयोध्या पधारे और **श्री राम जन्म भूमि स्थली** आए तो उस परम पवित्र प्राचीन ऐतिहासिक स्थान कि दुर्दशा देखकर बहुत दुःखी हुये । उन्होंने कहा कि यदि यह शेक्सपीयर या मिल्टन की भूमि होती तो यह बड़ा रमणीक

स्थान बन गया होता और सारी सुविधाएं यहां पर उपलब्ध होंती । विनोबा भावे की प्रेरणा से "रामायण महासभा" की ओर से "मानस जन्म भूमि" पर रामायण पाठ का आयोजन किया गया । बाद में उत्तर प्रदेश की सरकार को भी राज़ी होना पड़ा तथा वह जमीन अधिग्रहीत की गई जहां 'मानस स्वष्ठ' का स्मारक बना ।

87 वर्षीय संत परमहंस रामचन्द्र दास का कथन है कि सरदार पटेल ने उस समय माना था कि जिस तरह, सोमनाथ जी के मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ, ऐसे ही इस स्थान का भी जीर्णोद्धार होना जरूरी है । यदि सरदार पटेल सरीखा व्यक्ति लम्बी आयु जीता तो बहुत पहले ही राम मन्दिर का जीर्णोद्धार हो जाता और ढांचा ढहने जैसी स्थिति नहीं बनती । और न यह अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा का विषय बनता । आज केन्द्रीय सरकार के सम्मुख यह बड़ी जटिल समस्या है ।

इस सन्दर्भ में यह बता देना जरूरी है कि जैसे 6 दिसम्बर 1992 को अयोध्या का तथा कथित बाबरी मस्जिद का ढांचा कार सेवकों द्वारा ध्वस्त कर देने से वहां के पुलिस कप्तान तथा जिलाधीश को निलम्बित कर दिया गया था। पुलिस कप्तान श्री डी० बी० राय आई० पी० एस० हैं । अब तक सरकार ने कारण बताओ नोटिस भी उन्हें नहीं दिया है । श्री डी० बी० राय ने इस अपमानजनक व्यवहार से खीझ कर हाल ही में अपना त्यागपत्र सरकार के पास भेज दिया है । इसी प्रकार रामलला की मूर्ति के प्रकटीकरण की घटना पर सन् 1949 में फैजाबाद के तत्कालीन जिलाधिकारी श्री के० के० नैयर पर जब दवाब पड़ा तब उन्होंने मूर्ति को हटाने को मनाकर अपने पद से ही त्यागपत्र दे दिया था। इसी के बाद देश के पहले आम चुनाव सन 1952 में हुये । उनकी पत्नी श्रीमती शकुन्तला नायर ने, डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में नयी बनी पार्टी के प्रत्याशी के रूप में गोंड़ा (उ. प्र.) संसदीय क्षेत्र से चुनाव लड़ा था और वे भारी बहुमत से विजयी रहीं थीं । बाद में सन् 1962 के उपचुनाव में श्री के. के. नायर जनसंघ के टिकट पर, बांसी (उ. प्र.) निर्वाचन क्षेत्र से विजयी हुये थे ।) सन् 1968 में मध्यावधि चुनाव में वे बहराइच (उ. प्र.) से लोक सभा में जा पहुचे । यही नहीं उनकी पत्नी श्रीमती शकुन्तला नायर तीन बार विधान सभा और दो बार सांसद का चुनाव जीती थी । नैयर दम्पति दृढ़तापूर्वक राम जन्मभूमि तथा रामलला मूर्ति प्रकटीकरण मुद्दों के अपने निर्णय पर अचल रहे । परिणामतः आई० सी० यस० जैसी उच्चतम प्रशासनिक नौकरी से त्यागपत्र देने में भी संकोच न किया । उन्हें जनता ने अपने स्नेह से अनेक बार लोकसभा में तथा उनकी पत्नी को विधान सभा में सफल बनाकर भेजा । जबकि कांग्रेस ने उन्हें हराने की भरसक चेष्टा की और डा० सुशीला नायर, पूर्व स्वास्थ्य मंत्री भारत सरकार तक को उनसे चुनाव में हार की धूल चाटनी पड़ी । अनेक और कांग्रेसी दिग्गज इस नैयर-दम्पति से चुनावों में लाखों रुपया खर्च करके भी बुरी तरह हारे थे ।

सबसें पुराने प्रजातंत्र अमरीका के काम उलटे

अमेरिका का दावा तो रहता है कि वह विश्व का सबसे पुराना प्रजातन्त्र है और आज विश्व की एकमेव महावली शक्ति है । लेकिन उनकी गतिविधियां अप्रजातान्त्रिक रही हैं । शीतयुद्ध का सबसे बड़ा कारण यही था, और लगभग यही कारण विश्व में आज अशान्ति का है । अमेरिका ने भारत को कभी पसन्द नहीं किया । लाख प्रयासों के बावजूद वह भारत को न तो अपने घेरे में ला सका और न सैनिक संधियों का सदस्य बना सका । और न परमाणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर करा सका । इसी का प्रतिफल है कि वह परोक्ष रूप से भारत पर अपनी इच्छाएं लादा करता है।

तीन युद्धों के बाद भी जब पाकिस्तान कश्मीर को बलपूर्वक हथियाने में नाकामयाब रहा तो उसने दूसरी चाल चली । अल्प संख्यकों पर अत्याचार का रंग अलापना शुरू कर दिया । इसके बाद दौर चलाया आतंकवादियों के उग्रवाद का जिनकी डोर पाकिस्तानी रक्षा मंत्रालय के खुफिया तंत्र (आई. एस. आई.) के पास है । कश्मीर पर अमरीका की शंकालु नजर से भारत बेखबर नहीं है । अमेरिका के इधर के बयान कश्मीर और पंजाब के बारे में भारत के सरासर खिलाफ दिये गये हैं ।

सरदार पटेल ने प्रधानमंत्री बनने का मौका छोड़ा

इतिहास-जिज्ञासु जानते हैं कि भारत को स्वतन्त्रता मिलने से पूर्व भारत का प्रथम प्रधान मंत्री बनने के लिये सभी राज्यों की कांग्रेस कमेटियों और केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति में भी बहुमत स्पष्ट रूप से सरदार वल्लभभाई पटेल के पक्ष में था । किन्तु गांधीजी न जाने क्यों चाहते थे कि पंड़ित नेहरू देश के प्रथम प्रधानमंत्री बनें । सरदार पटेल ने एक अनुशासित अनुयायी की तरह अपने नेता, गांधीजी की मनोच्छा को सहर्ष स्वीकार कर नेहरू जी को आसानी से प्रधान मंत्री बनने दिया । भारतीय राजनीति में इस प्रकार के बलिदान का यह एक अद्वितीय और अनूठा उदाहरण है ।

सरदार पटेल के देहावसान को भी लगभग 43 वर्ष हो गये पर इस अन्तराल में आन्तरिक सुरक्षा जटिल से जटिलतर होती जा रही है, और कश्मीर की तो जटिलतम हो गयी है । समय-समय पर लोग यही कहा करते है कि यदि गांधी जी सरदार पटेल को प्रथम प्रधानमंत्री होने से न रोकते तो जहाँ उन्होंने लगभग 560 देशी रियासतों, राज्यों आदि को भारतीय संघ में सम्मिलित कर देश को सुदृढ़ बना दिया था वहीं वे कश्मीरी समस्या को सदा के लिये हल करके उसे देश का अविभाज्य अंग बना देते । आज हर भारतीय के मन में भय उत्पन्न हो गया है कि अमेरिका के प्रोत्साहन और पाकिस्तानी घुसपैठियों और आतंकवादियों के कारण कश्मीर को कैसे भारत का अभिन्न अंग बनाये रखा जा सकेगा ।

परम आदरणीय दलाई लामा ने हाल में एक वक्तव्य में कहा था कि यदि भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं० नेहरू की जगह सरदार पटेल होते तो तिब्बत की स्थिति इतनी ज्यादा बुरी न होती और चीनियों द्वारा तिब्बत वासियों को जो भयंकर कष्ट सहने पड़े, और हज़ारों-हजारों की संख्या में वे अपना देश छोड़ने पर मजबूर हुये, वह न हुआ होता । नेहरूजी की गलत नीति के परिणाम तो तिब्बती लोगों को तथा भारत को भी भुगतने पड़ेंगे ।

डा० राम मनोहर लोहिया का सामाजिक न्याय

लोहिया जी कहा करते थे कि, "जिस दिन एक खाट पर ब्राह्मणी तथा शूद्रा एक साथ खुशी-खुशी बैठी नज़र आने लगेंगी मैं समझूंगा कि भारत वास्तव में स्वतंत्र हो गया है"

आज शहरी सभ्यता में, उच्च आर्थिक वर्ग की ब्राह्मणी और शूद्रा एक बिस्तर पर बैठी शायद मिल जायं किन्तु लोहिया जी की परिभाषा के अनुसार भारत अभी सही रूप से स्वतंत्र नहीं हुआ है ।

लोहिया साहब जितने अच्छे वक्ता थे, उससे अधिक बड़े चिंतक थे वे निश्छल आदर्शवादी थे और गरीबी के साथ किसी भी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं थे । ईश्वर का खंड़न तो करते नहीं देखे गए, मगर भाग्यवाद और नियतिवाद के प्रबल विरोधी थे ।

सरदार पटेल सेवा संस्थान, बाराबंकी (उ० प्र०)

महासभा को राजनैतिक नौटंकी तथा चुनाव-दंगल को बनाकर, जहाँ लोग केवल अच्छे और बुरे सभी राजनेताओं का एक समान मनसा-वाचा-कर्मणा नेता-चालीसा करने में लगे रहते हैं । यदि कूर्मि समाज का सर्वांगीण विकास तेज़ करना तो है । उसके स्थान पर समाज के अन्य स्वजातीय गौरव स्त्री-पुरुषों, साहित्यकारों, विद्यार्थियों, उद्यमियों, कलाकारों, उद्योगपतियों, शिक्षाशास्त्रियों, डाक्टरों, इंजीनियरों आदि को खोज-खोजकर जनसभाओं में आमंत्रितकर उनका अभिनन्दन करें ऐसा इसी वर्ग द्वारा होना है, महज नेतावाज़ी से नहीं । इस दिशा में सबको प्रेरणा लेनी चाहिये बाराबंकी के "सरदार पटेल सेवा संस्थान" द्वारा आयोजित 'नवप्रतिभा सम्मान' का विवरण मासिक "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" के अक्टूबर 93 अंक के पृष्ठ 15 पर इस प्रकार दिया गया है :-

"बाराबंकी 18 जुलाई "सरदार पटेल सेवा संस्थान" द्वारा आयोजित "आई० ए० एस०" सेवा में आये प्रदेश

के स्वजातीय गौरवों का अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया । जिसमें सर्वश्री **राकेश कुमार वर्मा, श्री राजेन्द्र सिंह, श्री सौरभ सिंह, श्री जीतेन्द्र सिंह गंगवार, श्री नरेशपाल गंगवार, श्री सुरेन्द्र पटेल, विवेक कटियार, कु० नीता वर्मा** तथा उत्तर प्रदेश के हाई स्कूल परीक्षा 1993 में बालिकाओं में सर्वोच्च एवं संयुक्त में द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाली बालिका **कु० अल्का वर्मा,** जो वर्तमान में के० जी० एम० सी० लखनऊ में एम० बी० बी० एस० कर रही है को आमन्त्रित किया गया । तथा इन्जीनियरिंग में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने वाले **पंकज वर्मा, आलोक वर्मा** आदि को भी आमंत्रित किया गया था । **'सरदार पटेल सेवा संस्थान'** ने वास्तव में समाज को नई दिशा दिखाई ।

हिन्दू रसायन शास्त्र तथा वर्ण व्यवस्था :

रसायन शास्त्र के प्रसिद्ध वैज्ञानिक **आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय** सन् 1902 में लिखी और प्रकाशित अपनी पुस्तक **(हिन्दू रसायन शास्त्र का इतिहास- 'हिस्ट्री ऑफ हिन्दू केमिस्ट्री)** में लिखते है कि वर्ण-व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था ने देश में विज्ञान की उन्नति को रोका है । वर्ण पर आधारित समाज ने सिद्धान्त और व्यवहार के मध्य, दिमागी काम और हाथों के काम के बीच विनाशकारी अलगाव का दौर शुरू किया था और उसे पुख्ता बनाया था । ऐसा सच्चे दस्तकारों और तकनीशियनों की निंदा और अपकर्ष के फलस्वरूप हुआ । लेकिन, इन लोगों के पास ही प्रकृति की छानबीन करने के औजार और साज-सज्जा थी, जिनके बिना परिघटनाओं के **"कैसे और क्यों"** का ज्ञान हासिल किया ही नहीं जा सकता था । इस प्रकार कारीगर और तकनीशियन अपनी दस्तकारी विद्या पर आश्रित छोड़ दिये गए, जिसे वे अपनी योग्यता भर सुधारते रहे । लेकिन वास्तविक विज्ञान इससे लाभान्वित और समृद्ध नहीं हो सका । इसका मूल कारण इन लोगों को शिक्षा और ज्ञान से जान-बूझकर वंचित रखना और हाथों से किये जाने वाले कार्य की अवमानना था जो भारत के वैज्ञानिक ह्रास का अनिवार्य परिणाम था । **आचार्य राय (बंगाल कैमिकल एंड फार्मास्यूटिकल लि०-** भारत की प्रथम रसायन उत्पादक कम्पनी के संस्थापक एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के रसायन शास्त्री), ने अपनी उक्त पुस्तक में यहां तक लिखा है -

"मनु और परवर्ती पुराणों की प्रवृति उस पुरोहित वर्ग की प्रशंसा के गीत गाने की ही रही, जिसने नितान्त दंभपूर्ण और अन्यायपूर्ण दावे प्रस्तुत किये थे । सुश्रुत के अनुसार शल्य-चिकित्सा के छात्र के लिये मृत शरीरों का विच्छेदन एक अनिवार्य शर्त है । इस श्रेष्ठ महर्षि ने प्रयोग और पर्यवेक्षण से अर्जित ज्ञान पर विशेष बल दिया था । लेकिन मनु को यह बर्दास्त नहीं था । मृत शरीर का स्पर्श ही, मनु के अनुसार ब्राह्मण की पवित्रता को दूषितकर देने के लिये पर्याप्त था । इस प्रकार हम देखते हैं कि वाग्भट्ट के कुछ ही समय बाद छुरिका को छूना तक निंदनीय करार कर दिया जाने लगा और शरीर किया विज्ञान तथा शल्य-चिकित्सा विज्ञान का उपयोग उठ गया तथा सच कहा जाये तो यह विज्ञान हिंदुओं के हाथों से गायब हो गया । इसी तरह साइक्लोपों की तरह लोगों की भट्टी के सामने पसीना बहाना भी एक हीन कार्य समझा जाने लगा था । (आत्माराम-"प्रत्येक का मुक्त विकास सबके मुक्त विकास की शर्त है"- धर्मयुग, 1 सितम्बर 1993, पृष्ठ 30)

प्रख्यात दर्शनशास्त्री **प्रोफेसर देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय** ने अपनी पुस्तक **"प्राचीन भारत में भौतिकवाद"**-(अनुवादक रामशरण शर्मा 'मुंशी', प्रकाशक पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली) में लिखते हैं-"लेकिन वास्तविक तथ्य खुले तौर पर सामने हैं । पारंपरिक भारतीय राजनीति के प्रवक्ता सर्वोपरि विधि निर्माता थे । उनकी रचनाओं को आम तौर पर **'धर्मशास्त्र'** कहा जाता है । इन विधि निर्माताओं को जिस चीज से बुनियादी सरोकार था वह, निस्संदेह उस सामाजिक ढांचे की सुरक्षा करना था, जिसे वे आदर्श मानते थे । ऐसा सामाजिक ढांचा **वर्णाश्रम व्यवस्था** नाम से प्रचलित था। इससे तात्पर्य एक ऐसे समाज से है जिसमें प्रत्येक स्त्री या पुरुष का आचरण उसकी जाति से आयु के उसके चरण से निर्दिष्ट होता है । किन्तु ठोस रूप में यह एक ऐसे सामाजिक मानदंड का समर्थन था जिसमें आबादी के अल्पसंख्यक भाग को, जिसमें उच्चवर्गीय लोग पुरोहित और व्यापारी आते थे (सामूहिक रूप से जिन्हें द्विज की संज्ञा दी गयी) सभी भौतिक सुविधाओं का

विविध अंशों में विशेषाधिकार प्राप्त था । बाकी जनसंख्या के उत्पादनों के अधिग्रहण से ही द्विज कहे जाने वालों की भौतिक सुविधाओं का निर्माण हो सकता था । शूद्रों के सामान्य कोटि में स्थान दिया था ।

स्व० प्रोफेसर चट्टोपाध्याय के इस अध्ययन का मूल स्वर इस प्रकार के धर्मशास्त्रीय सामाजिक ढांचे को परत-दर-परत उधेड़ कर देखना और जुल्म के विधि-सिद्धान्त की विवेचना करना है, जिसके होते हमारा समाज जातियों और वर्णों में बंटा हुआ है ।

सरदार पटेल देश के अद्वितीय नेता

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष, न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र (सेवानिवृत्त), पूर्व मुख्य न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय ने, 15 नवम्बर 1994 को 'सरदार पटेल सोसायटी दिल्ली' द्वारा आयोजित 'वार्षिक स्वतन्त्रता सेनानी स्मारक भाषण-माला के अन्तर्गत, 'सरदार पटेल का राष्ट्रीयता को परिपुष्टि करने में योगदान-"Sardar Patel's Contribution to Nationhood" विषय पर सारगर्भित भाषण दिया । सरदार पटेल सोसायटी, दिल्ली के चेयरमैन, श्री एस निजालिंगप्पा, पूर्व मुख्यमंत्री कर्नाटक प्रदेश सरकार तथा कांग्रेस पार्टी के पूर्व अध्यक्ष ने इस वार्षिक गोष्ठी का सभापतित्व किया । न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र (सेवानिवृत्त) के लम्बे भाषण के कुछ अंश नीचे यहाँ साभार उद्धृत किये गए हैं :-

With not a single statesman left in the country ever since Sardar Patel's death, the politics has degenarated into petty conducts, lamented Justice Ranganath Misra. According to him-" But unfortunately there is none who can marshal 90-crore Indians and arouse their love".

Sardar Patel had warned that the real danger to India came not from outside but from inside said Justice Mishra. Justice Mishra credited Sardar Patel with creating a strong Bureacracy and Central Services, after the independence. Sardar Patel commanded tremendous respect from the civil servants. [Hindustan Times, dated 16-11-1994].

विज्ञान, हिन्दू जातियाँ और आरक्षण

जाति-विभाजन हिन्दू समाज में आज भी विकट समस्या का रूप धारण किये हुये है, यद्यपि प्राणि-विज्ञान के नवीनतम खोजों की कसौटी पर, जैसे व्यक्ति विशेष की डी. एन. ए. अणु, 'जीनस' की अवस्था अध्ययन करें तो उसके परिणाम से हिन्दुओं में जाति-जाति में भेदान्तर जैसे ऊँच-नीच, श्रेष्ठ-निकृष्ट आदि अवधारणाओं और रहस्य को कोई सत्य सिद्ध नहीं कर पाता। यथार्थ में ये सब धारणायें मनुष्यकृत हैं, स्वार्थपूर्ण वर्ग विशेष द्वारा रची गयी हैं और विज्ञान की कसौटी पर वे गलत सिद्ध होती हैं।

हर मानव शिशु, गर्भावस्था की स्थिति में अपने डी. एन. ए अणु में लगभग 10,000 'जीन्स' अपने जन्मदाता, माता-पिता से ग्रहण करता है। ये पैतृक और मातृक जीन्स हज़ारों नये प्रारूपों में जीवन-धारण के समय भ्रूण कलिल में वे शुक्राणु तथा डिम्बाणु के द्वारा प्रकट होते हैं। सन् 1900 के आरम्भ में सुप्रसिद्ध अमेरिकी वैज्ञानिक डा० सटन के गुण-सूत्रों (क्रोमोसोम्स) के अनुसार हर जीव कोष में गुण सूत्र और जीनूस जोड़े बनकर रहते हैं। प्रत्येक जोड़े का एक भाग मां तथा दूसरा पिता से आता है। शुक्राणु में जोड़े का एक ही भाग विभाजित होकर आता है जो 'Y' (वाय) क्रोमोसोम कहलाता है। डिम्बाणु में जोड़े का दूसरा भाग होता है जिसे 'X' (एक्स) क्रोमोसोम कहते हैं। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि एक्स-वाई क्रोमोसोम मिलकर नर बनते हैं। वैज्ञानिक खोज के आधार पर यह कहा जाता है कि मनुष्य में 23 जोड़े (44 कुल) 'आटोसोम्स' कहलाते हैं। इसी से लिंग (नर या मादा) का निर्धारण होता है। इन्हीं क्रोमोसोमूस में सूक्ष्म न्यूक्लियोप्रोटीन के कण होते हैं, जिन्हें 'जीन्स' कहते हैं।

जीव-शास्त्र के और रहस्य इस विषय पर उद्घाटित करने से पूर्व यह बात साफ़-साफ़ बता देना आवश्यक है कि हिन्दू जाति व्यवस्था की ऊँच-नीच, श्रेष्ठ-निकृष्ट, विद्वान-मूर्ख, वीर-कायर आदि अवधारणायें और परिकल्पना के गूढ़ रहस्य का प्राणि-विज्ञान अथवा जीव शास्त्र से कोई भी सम्बन्ध पता नहीं चला है। या हिन्दू जाति-व्यवस्था मनुष्यकृत समाज का कोरा विभाजन है पर इसका कोई भी वैज्ञानिक अथवा प्राणि-विज्ञान आधार नहीं है। इन्हीं गुणसूत्रों की संरचना के कारण ही एक जैसे दो व्यक्ति नहीं मिलेंगे और वह व्यक्ति इसी आधार पर ज्यादा या कम होगा पर हिन्दू समाज में जाति के आधार पर कोई प्रमाण या साक्ष्य प्राप्त नहीं होता।

प्राणी विज्ञान की आगे की खोजों से पता चला कि विभिन्न प्रकार के जीवों की शरीर रचना बनाने के सूत्र संकेत अपने में समेटे हुए, पदार्थ को वैज्ञानिकों ने डी. एन. ए. (डिऑक्सी-राइबो न्यूक्लिक ऐसिड) नाम दिया है। यही डी. एन. ए. नामक अणु वंशानुक्रम के समस्त रहस्यों को अपने में संग्रहित और निहित रखता है। गुण-सूत्रों (क्रोमोसोमूस) पर चिपके हुए इन डी. एन. ए. अणुओं में अनेकानेक अतिसूक्ष्म तथा नाजुक स्प्रिंग जैसे पदार्थ इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा देखे जा सकते हैं। जिन्हें ही 'जीन्स' नाम से जाना जाता है। 'जीन्स' में स्मृति कोष होते हैं और माइक्रोस्कोपिक कम्प्यूटर में जैसे विभिन्न प्रकार के संकेत एवं विस्तृत सूचनायें निकलती रहती हैं, उसी तरह इनमें शरीर-रचना के सम्बंध में जीव-कोषों को निर्देश मिलते रहते हैं। जिससे शरीर-की करोड़ों विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में परस्पर समन्वय स्थापित होता है। कहा जाता कि प्रत्येक वयस्क मनुष्य के शरीर में कोशिकायें में 600 अरब तक 'ऊर्जा पैकेट्स' पाये जाते हैं। जैसा कहा जा चुका है कि इन सबकी रासायनिक संरचना एक सी होती है। जीवों में भिन्नता लाने के लिये 'कोड' डी. एन. ए. में ही निहित होते हैं, जिससे मनुष्य एवं विभिन्न प्राणियों की सृष्टि होती है। पर ऐसा इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं है जिससे द्विज के डी. एन. ए. 'कोर्ड' अद्विज से भिन्न हो या दलित और अन्त्यज को उनके डी० एन० ए० से पहचाना जा सके। यह भिन्नता मनुष्य तथा अन्य प्राणियों और जीवधारियों में जरूर देखी गयी है, पर मनुष्य-मनुष्य में नहीं मिलती है। भारतीय मूल के डा० हरगोविन्द खुराना ने अमेरिकन विश्वविद्यालय में डी० एन० ए० (डाइराइबो न्यूक्लिक एसिड) की संरचना के सम्बन्ध में विशेष शोध-कार्य किया, जिस पर उन्हें सन् 1961 में विज्ञान विषय में नोबुल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

जुड़वाँ बच्चों के सम्बन्ध में उनके बहुत से गुण और बातों में समानता देखी जाती है, पर जातीय आधार पर धारक के अच्छे और खराब गुणों का पूर्व निर्धारण नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिकों के अनुसार वे अन्य जातीय

लोगों से ज्यादा समानता रखते हैं । कुछ उनमें से अधिक प्रतिभाशाली, उन्नतिशील नज़र आयेंगे, चाहें जाति उनकी ऊँची या नीची कोई भी हो । अतः इस वैज्ञानिक विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य का व्यक्तित्व, उसके स्वभाव की रचना का आधार जाति पर आधारित न होकर 'जीन्स' तथा क्रोमोसोमस गुण-सूत्रों की संख्या पर आधारित होते हैं।

अतः जाति-व्यवस्था पूर्णतः मनुष्यकृत है, उसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है । और जाति का व्यक्ति विशेष की प्राकृतिक डी. एम. ए. संरचना से दूर का भी सम्बन्ध नहीं पाया गया है ।

प्राणि-विज्ञान की नवीनतम खोजों से यह सत्य उद्घाटित होता है कि हरेक आदमी के फेफड़े, हृदय, गुर्दे, रक्त का समूचा भंडार और 35 फुट लम्बी आंतों आदि की रचना का संकेत डी. एन. ए. में छिपा होता है । मानव शरीर विभिन्न जीवकोषों की बाहरी संरचना रासायनिक रूप से एक सी होती है । शरीर के विभिन्न अंग-अवयवों को विभिन्न कार्य करने होते हैं । त्वचा, आँख, कान, नाक आदि की बनावट डी. एन. ए. के संकेत के अनुसार ही होती है । यह प्रक्रिया भ्रूण कलिल में गर्भकाल में ही चलती ही रहती है, परन्तु मनुष्य के पूरे जीवन काल में निरंतर जीवकोषों का रद्दोबदल होता रहता है ।

जीव कोष के केन्द्र में स्थित डी. एन. ए. पूर्व नियोजित संस्कारों के संकेत देता रहता है । उसी के परिणामस्वरूप पाचन-क्रिया, हृदय-धड़कन, बिचार, स्मरणशक्ति एवं संवेदनाएं आदि संचालित हैं । आज के वैज्ञानिकों के अनुसार डी. एन. ए. बायोकैमिकल पैरामीटर्स तथा बी. एम. आर. बेसिक मेटाबॉलिक रेट का संतुलन करने वाला होता है । इसकी रचना के बारे में वैज्ञानिकों ने बताया कि सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखने में वह सर्पिलाकार टेप समान संरचना वाला होता है । डी. एन. ए. का अनुभार 3 लाख से अधिक होता है और यदि उसे अणु के टेप श्रृंखला को खोलकर एक सीध में रखा जाय तो उसकी लम्बाई 5 फुट हो जायेगी । मानवीय शरीर चूंकि कोशिकाओं की ईंटों (कोष्टकों) से बना हुआ होता है। इसलिये मानव शरीर के सम्पूर्ण डी. एन. ए. को खींचकर रस्सी बनायी जाये तो वह इतनी लम्बी होगी, जिससे सारे पृथ्वी के घेरे को घेर लिया जाना सम्भव होगा ।

पैतृक गुणों के निर्वाह के लिये 'जीन्स' को ही उत्तरदायी माना जाता है । एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के गुणों का स्थानांतरण 'आनुवंशिकी' (हेरेडिटी) कहा जाता है । इसका अर्थ है शारीरिक-शरीर कार्य प्रणाली से संबंधित एवं मानसिक गुणों का संप्रेषण चाहे वे दृश्य हों या अगोचर - इस पीढ़ी का सतत निर्वाह या जीवन क्रम के विकास का मूल चरण माना जा सकता है । यद्यपि बच्चे अपने माता-पिता से मिलते-जुलते दिखते हैं, फिर भी उनमें कुछ विभिन्नतायें होती हैं, जिन्हें विज्ञान की भाशा में 'वेरिएन्स' कहा जाता है । एक ही माता-पिता की सन्तानों में एक ही प्रजाति के विभिन्न प्राणियों तथा एक ही वंश परम्परा में अलग-अलग प्रकार की विभिन्नतायें पायी जाती हैं । इस विज्ञान को जिसमें इन विभिन्नताओं के कारण उत्पन्न समानताओं एवं असमानताओं के मूल कारणों का विवेचन किया जाता है तथा संतान के व्यवहार, शरीरगत विशेषताओं एवं पिता की पीढ़ी से संतान की पीढ़ी तक पहुँचने की विधि-व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है उसे 'जेनेटिक्स' कहा जाता है । विद्वानों का मत है कि पर्यावरण अर्थात-वातावरण, अनुभव तथा अभ्यास से होने वाले परिवर्तन 'जेनेटिक्स' से कोई सम्बन्ध नहीं रखते ।

'जेनेटिक्स' अथवा जनन-विज्ञान, जीव-विज्ञान की एक शाखा है जिसकी उपशाखा-'यूजेनिक्स' कहलाती है । हिन्दी में इसे 'सुप्रजनन' अथवा नस्ल सुधार कहते हैं । मानवी विकास में इस विज्ञान का आश्रय लेने की बात आज के वैज्ञानिक गम्भीरता से सोच रहे हैं । मनुष्यों की वर्तमान पीढ़ी की अपेक्षा उसके पूर्वज, शारीरिक, मानसिक तथा दीर्घ जीवन की दृष्टि से बढ़े-चढ़े थे । वर्तमान मानवीय पीढ़ी में इस कमी को पूरा करने तथा 'जीन्स' के घटक डी. एन. ए. के साथ सीधे हस्तक्षेप करके क्षति पहुँचाने वाले तथा वंश परम्परागत रोग पैदा करने वाले अवगुणों को हटाकर 'जेनेटिक इंजीनियरिंग' द्वारा उनके स्थान पर उपयोगी अर्थात शरीर को रोग रहित तथा बलवान रखने वाले तथा स्मरण शक्ति और मानसिक कुशाग्रता में वृद्धि करने वाले 'जीन्स' को बढ़ाने पर प्राणि-वैज्ञानिकों द्वारा अनुसन्धान प्रयास चल रहे हैं । उम्मीद की जाती है कि इक्कीसवीं सदी में प्रारम्भिक दौर में ही व्यापक जीवन-तत्व की संरचना में वांछित परिवर्तन कर ऐसे भावी मानव जन्म लेंगे, जो अपने पूर्वज़ों से अधिक विकसित, सशक्त, समर्थ, प्रतिभा-सम्पन्न, रोगक्षम तथा दीर्घजीवी होंगें।

अभी यह असम्भव सा लगता है । पर जबकि वनस्पति शास्त्री पेड़-पौधों, फल-फूलों तथा विभिन्न खाद्यान्नों की किस्में सुधारने में इसी प्रकार की सफलतायें तेज़ी से प्राप्त करते जा रहे हैं, तब ये उपलब्धियाँ भी प्राणि-शास्त्र वैज्ञानिकों द्वारा अपने अनुसंधान से प्राप्त करना असम्भव नहीं है ।

इस संभावना को प्रदर्शित करते हुये डा० जेम्स वाटसन तथा डा० फ्रांसिस क्रिक ने सन् 1962 में इस विज्ञान-विधा पर सर्वोच्च सम्मान नोबुल पुरस्कार ग्रहण करते हुये उद्घोषणा की थी - "सूत्र हाथ में आ गया है, सूत्रधार नहीं है; संभव है कि निकट भविष्य में वह भी हाथ लग जायेगा तथा मनुष्य प्रकृतिवश न होकर प्रकृति मनुष्य के इशारे पर चलने लगे ।"

श्री एच० के० जैन का इसी विषय संबंधी एक लेख नई दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक "दि हिन्दुस्तान टाइम्स' के 14 अक्टूबर 1994 के अंक में "Science, Caste and Reservaton" शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने विज्ञान, जाति और आरक्षण पर वैज्ञानिक दृष्टि से टिप्पणी करते हुये मत प्रकट किया है :-

"New Combinations of **genes** keep appearing in each generation in all the different social groups with the result that the concept of a **genetically pure** race or **caste** cannot be sustained."

डा० जैन प्रख्यात, जेनेटिक वैज्ञानिक हैं और अपने अनुभव के आधार पर लेख में वे आगे लिखते हैं :-

"Because of **gene combination** some individuals in every **caste** will be more gifted than others in terms of their physical and mental traits. They will have greater similarities with persons of other castes than with those of their own. Some of them will potentially be the upwardly mobile people irrespective of the **caste** to which they belong."

उनके अपने पर्यावरण अर्थात् वातावरण से पौष्टिक तत्वों, स्वास्थ्य की देख-रेख तथा शिक्षा एवं अन्य सुविधाओं के रूप में न्यूनतम सहायता होने की प्राप्त आवश्यकता है । बड़े होने पर यदि इन्हें अवसर प्राप्त होते हैं तो ये व्यक्ति व्यावसायिक एक्जीक्यूटिव अभिवक्ता, अभियंता, चिकित्सिक, वैज्ञानिक, कलाकार तथा अन्यान्य विधाओं में तुलना में उस पैतृक या अनुवंशिक व्यवसाय, जिसमें उनका स्थान उनकी जाति विशेष में जन्म लेने के आधार से बनता है, अधिक योग्य सिद्ध होंगे ।

इस बात को और अच्छी तरह समझाने के लिये उन भारतीय मूल के लोगों का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है जिनके पूर्वज करेबियन देशों, जैसे ग्याना, सूरीनाम, त्रिनिदाद, को भारत से गिरमिट कर्मकार के रूप में 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जबरदस्तीं ले जाकर बसाने का सिलसिला चला था और जोकि बहुधा अहीर, कुरमी, कोइरी तथा अन्य पिछड़े वर्गों से ही थे । इन प्रवासी भारतीयों के बच्चों को उन्नति के लिये वहाँ कोई आरक्षण-नीति नहीं अपनायी गई । ये प्रवासी भारतीय वहाँ के कृषि-कार्यों में, विशेष करके गन्ने के खेतों में मेहनत-मशक्कत करते थे और तब उनका वहाँ के समाज और सत्ता में कोई सम्माननीय स्थान न था । उन्होंने एक ही बात अपनायी, प्रवासी भारतीयों में आपस में अन्तर जातीय शादियां करने से जातीय रूढ़िवादिता स्वतः लुप्त हो गयी । दूसरी सबसे महत्वपूर्ण बात प्रत्येक ने अपनायी कि अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम रखते हुये बच्चों को जितना सम्भव हो सका उच्च से उच्चतर शिक्षा दिलवायी, और शनैः - शनैः निकट भविष्य में वे शिक्षित बच्चे बड़े होकर व्यावसायिक वर्ग में तथा अन्यान्य व्यवसाय, डाक्टरी, इंजीनियर, प्राध्यापक, एडवोकेट, बार-एट-ला, प्रशासकीय सेवाओं. में उच्च पदाधिकारी आदि बनते गये । वर्तमान प्रवासी भारतीय उन देशों में न केवल अधिकाधिक धन पर अधिकार स्थापित कर चुके हैं अपितु उन देशों में उनमें से ही प्रधानमंत्री और प्रसीडेन्ट बने हैं जैसे मोरिशिस के प्रधानमंत्री श्री अनुरुद्ध जगन्नाथ और प्रेसीडेन्ट सर राम गुलाम आदि। उनकी अपने बच्चों को शिक्षित करने की नीति ही कामयाब सिद्ध हुई और मात्र एक शताब्दी में उनका शैक्षिक आर्थिक, सामाजिक स्तर पर कायाकल्प हो चुका है और निस्संदेह आज वे अपने मूल के भारत में बसे स्वजनों से बहुत उन्नति कर चुके हैं और वे वहाँ ससम्मान और खुशहाली में जीवन-यापन कर रहे हैं । स्वाभाविक है कि वे वहाँ के

पूर्णतः नागरिक बन गये हैं । वेस्टइंडीज के गए जमाने के विश्व प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी रोहन कन्हई इन्हीं प्रवासी भारतीयों की सन्तान हैं ।

प्रमुख वैज्ञानिक डा० एच० के० जैन ने अपने विस्तृत लेख में यही सिद्ध करने की चेष्टा की है । प्रवासी भारतीयों ने उन देशों में कभी शिक्षा या नौकरी में अपने बच्चों के लिये आरक्षण नहीं मांगा और ऐसा भी अनुमान लगता है कि यदि वे सरकारें आरक्षण जैसी नीति और उसके अन्तर्गत सुविधा उन पर लागू कर देती, तब इन प्रवासी भारतीयों की वर्तमान पीढ़ी का न इतना विकास तथा उन्नति हो पाती और न वे उन देशों की सामाजिक मूलधारा में आत्मसात हो पाते ।

पाठकगण ! डा० एच० के० जैन के उपर्युक्त मन्तव्य से कहां तक सहमत होते हैं या नहीं, इस पर वे विचार करें । पर डा० जैन ने इस मन्तव्य को बड़े विवेकपूर्ण तर्कों से समझाने की चेष्टा की है, उसका एक अंश साभार नीचे उद्धृत है :-

"Job reservation cannot provide a short-cut to problems of social inequalities based on caste. People of the backward classes must be allowed to join the social main stream on the basis of their genetic potential which tends to be suppresssed. The race should not be fixed against them and that is where the affirmative action programmes became so very important.

In the longer term, it is the eradication of poverty which would go a long way in bringing about assortative matings and social mobility of the kind observed in the western societies. If the process of economic reforms and liberalisation now underway is allowed to gather momentum combined with a social charter, this could happen sooner than we think."

मानव मस्तिष्क की क्षमता असीम एवं अप्रत्याशित है । उसे समस्त शक्तियों अतीन्द्रिय क्षमताओं का केन्द्र माना गया है जैसा 'जेनेटिक्स विज्ञान' के वर्णन में ऊपर दिया गया है कि मानव मस्तिष्क का पूरा नियंत्रण पूरे शरीर पर होता है । उसकी इच्छा से ही नाड़ी संस्थान अपना कार्य संचालित करता है । और ज्ञान तन्तुओं के माध्यम से मस्तिष्क का वर्चस्व छोटे से लेकर बड़े अंगों पर छाया रहता है । मस्तिष्क के अरबों स्नायु कोषों में से प्रत्येक की अपनी सम्भावनाएं हैं । वे प्रायः अपना अभ्यस्त काम निपटाने भर में दक्ष होते हैं । उनकी अधिकांश क्षमता प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है । काम न मिलने पर हर वस्तु निरर्थक रहती है । इसी प्रकार इन ज्ञान-तन्तुओं से स्नायु-कोषों से दैनिक जीवन की आवश्यकतायें पूरा कर सकने के लिये आवश्यक तनिक सा कार्य कर लिया जाता है, तो उतना मात्र करने में वे दक्ष रहते हैं । यदि अवसर मिला होता, उन्हें उभारा और प्रशिक्षित किया गया होता तो वे आज की अपेक्षा लाखों गुनी क्षमता प्रदर्शित कर सकने में सक्षम होते । इस रहस्य को यदि जाना-पहचाना और समझा जा सके तो आज की तथा अनेक आने वाली संतति मनुष्य हज़ारों गुनी अधिक प्रतिभा और विभूतियों से परिपूर्ण हो सकती है ।

देश के मौजूदा परिवेश में, बुद्धिजीवियों के तथा अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों के सम्मुख चिंतन का विषय यह है कि गैर बराबरी की व्यवस्था के समाज में चलते, उसमें आवश्यक परिवर्तन नहीं हो तक दलित एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण परमावश्यक है । अन्यथा वे इस असमान व्यवस्था में पिसते रहेंगे । फलतः औरों से पिछड़े बने रहेंगे। यदि आरक्षण को हटाना है तो ईमानदारी से पहले हर तरह से जातीय आधारित भेद-भाव दूर करने होंगे । भेद-भाव पैदा करने वाले धार्मिक ग्रन्थों को परिष्कृत करना होगा । त्रुटिपूर्ण मत-मतान्तरों और अवधारणाओं का प्रचार-प्रसार रोकना होगा, अन्यथा नये-नये वैज्ञानिक तथ्य अकादमिक महत्व मात्र के रहेंगे इनका न इनके अनुसरण से जो लाभ उन्हें प्राप्त होना चाहिये उन्हें न मिल सकेगा । फिर भी इन विचारधाराओं पर पूरा विचार करना चाहिये और जो लाभकारी लगे उसे ग्रहण भी करें, महज़ यह समझ कर न नकार दें कि समाज के अगाड़ी वर्ग की विज्ञान की आड़ में हज़ारों वर्षों से शोषित वर्गों को पुनः सुप्तावस्था में पहुँचाने की यह नई चाल है ।

कुरमी समाज सावधान

भारत सरकार की 8 सितम्बर 1993 की मंडल आयोग की सिफारिशें लागू करने की अधिघोषणा के पश्चात से सारे देश में बसे हुये और विभिन्न नामों यथा कुरमी, कणबी, कूर्मा, कलमी, पाटीदार, पटेल, कम्मा, कापू, रेड्डी, वक्कलिगा, नायडू, कुनबी, मराठा आदि से ज्ञात, 18 करोड़ से अधिक आबादी वाले मूलतः एक ही प्राचीनतम कृषक जाति के लोगों पर लागू करने की बात किसी न किसी रूप में, समाचार पत्रों में, अक्सर सुर्खियों में छपती रहती है। कभी उनके क्रीमीलेयर (सम्पन्न वर्ग) की व्याख्या की जाती है और कभी तो यहां तक कि क्या कुर्मीजन पिछड़े वर्गों की परिभाषा में सही सम्मिलित किये गये हैं अथवा नहीं। अपने पुरुषार्थ और कठिन प्रयास से गुजरात के पाटीदार, पटेल बन्धु और महाराष्ट्र के तथाकथित मराठा बन्धु प्रारम्भ से ही मंडल आयोग की परिधि से बाहर हैं। इसी कुर्मी जाति के लोग अपने पटेल और मराठे बन्धुओं से प्रेरणा लेकर, मेहनत मशक्कत से, शिक्षित होकर अपने सामाजिक स्तर को इतना उठा दें कि वे भी सम्पन्न वर्ग (क्रीमीलेयर) में गिने जाने लगे यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए, तभी हमारे कदम प्रगतिपथ पर पक्के इरादे से चल पड़ेंगे। रुकने का फिर क्या काम है। कायस्थ इस शताब्दी के प्रारम्भ तक शूद्र माने जाते थे आज वे अगाड़ी जातियों में गिने जाते हैं। कुर्मियों को भी अगले कुछ दशकों में अगाड़ी जातियों में आना है। रविवार, 20 फरवरी 1994 को कल्याण मंत्री, भारत सरकार श्री सीताराम केसरी, ने आसुला (स्वर्णकार) के पिछड़े जाति के श्री बी० राजशेखराचारी का राष्ट्रीय पिछड़े वर्ग वित्त एवं विकास निगम में सहायक प्रबंधक का नियुक्ति पत्र स्वयं, एक अनौपचारिक समारोह में प्रदान कर, मंडल आयोग की सिफारिशों के तहत प्रथम नियुक्ति की। जिसकी तीव्र प्रतीक्षा में पूर्व प्रधान मंत्री, श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह अपने स्वतः रोपित दिल्ली न आने के प्रण, को निकट भविष्य में पूरा होता देख रहे हैं, जबकि मंडल सिफारिशों के तहत नियुक्त कोई व्यक्ति दिल्ली सीमा पर उनकी आगवानी कर सकेगा। उपयुक्त नियुक्ति से निश्चय श्री वी0 पी0 सिंह के लिये 'दिल्ली दूर अस्त' न रह गई है। इसमें भी कोई शक नहीं है कि मंडल आयोग की सिफारिशों के क्रियान्वयन को शीघ्र साकार बनाने में श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह एवं वर्तमान कल्याण मंत्री, श्री सीताराम केसरी, इन दो व्यक्तियों की प्रमुख भूमिका रही है। यह अपनी- अपनी कार्य-शैली का परिणाम है कि उपयुक्त दो महानुभावों में से पहले वाले ने अपना प्रधान मंत्रित्व पद इस असली मुद्दे पर खोया पर दूसरे ने खोया कुछ नहीं और भागीरथ जैसा श्रेय पा लिया। खैर यह राजनैतिक विद्वानों की समीक्षा का विषय है। पर इस परिप्रेक्ष्य में ये दो नाम इस पिछड़ा वर्ग आरक्षण के साथ सदा याद किये जायेंगे। लाभ पाने वाले उनको कृतज्ञता व्यक्त करेंगे।

श्री सीताराम केसरी ने मंडल आयोग के तहत पहला नियुक्ति पत्र सफल उम्मीदवार को प्रदान करने के अवसर पर बताया कि पिछड़े वर्गों को आरक्षण का प्रावधान होने से हर साल लगभग 40 हजार लोगों को नौकरियां मिल सकेंगी। पिछड़े वर्ग के लोगों को स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से 1992 में स्थापित राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त एवं विकास निगम ने 311 परियोजनाओं के लिये 86 करोड़ रुपये ऋण के रूप में दिये हैं। जिससे पिछड़े वर्गों में गरीबी की रेखा से नीचे वाले लगभग 69 हजार व्यक्ति लाभान्वित होंगे। कल्याण मन्त्रालय ने अन्य सरकारी विभागों, उपक्रमों तथा राज्य सरकारों से भी आरक्षण प्रावधानों पर कार्रवाई करने का आग्रह किया है। भारत सरकार ने संघ सेवा आयोग की परीक्षाओं में परीक्षार्थियों की आयु सीमा में वृद्धि घोषित की है।

देश के 14 राज्यों, यथा आंध्रप्रदेश, असम, बिहार, गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश की पिछड़े वर्गों की सूचियाँ 10 सितम्बर 1993 को ही अधिसूचित तौर से दिसम्बर 93 माह के चौथे सप्ताह के "रोजगार समाचार" के अंक में प्रकाशित भी की जा चुकी है। इस सरकारी आरक्षण के प्रावधानों से नौकरी या स्वरोजगार पाने में सारे देश के कुरमियों को जहाँ जहाँ वे मंडल आयोग की सिफारिशों के हकदार हैं अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए। इस अवसर का पूरा फायदा उठाना ही समझदारी होगी।

दिल्ली सरकार के अन्य पिछड़ा वर्ग आयोग ने राजधानीवासी 53 जातियों को अन्य पिछड़ा वर्ग की सूची में शामिल किये जाने की सिफ़ारिश की है । इन जातियों के सम्पन्न वर्ग (क्रीमी लेयर) को छोड़कर शेष को 27 प्रतिशत आरक्षण नौकरियों में दिये जाने की अनुशंसा की गई है । इन 53 जातियों में कुर्मी जाति भी सम्मिलित है ।

आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति जी० सी० जैन (अवकाश प्राप्त) ने दिल्ली के उपराज्यपाल महामहिम पी० के० दवे को 25 अक्टूबर 1994 को इससे संबंधित रिपोर्ट सौंपी । आयोग का गठन उच्च न्यायालय के निर्देश पर अप्रैल 1993 में श्री दवे ने किया था । उसके अन्य सदस्य, दिल्ली समाज सलाहकार बोर्ड की अध्यक्षा सुश्री सुरेन्द्र सैनी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो० के० एल० शर्मा एवं पूर्व महानगर पार्षद चौ० कल्याण सिंह बनाए गए थे ।

दिल्ली की निम्नलिखित जातियां, समुदाय 'अन्य पिछड़ा वर्ग' घोषित :

ये जातियां हैं । (1) अब्बासी, भिश्ती, सक्का, (2) अग्री, खरवारल, खरोल, खारीवाल, (3) अहीर, यादव, ग्वाला, (4) अरयन, रायी, कुंजड़ा, (5) बधई, बरहई, खाती, तरखन, जंगरा-ब्राह्मण, विश्वकर्मा, पंचाल, मथूल-ब्राह्मण, धीमन, रामगढ़िया-सिख, (6) बादी, (7) बैरीगी, (8) बैह्या, बरखा (9) बरई, बारी तम्बोली, (10) बौरिया/बावरिया (अनुसूचित जाति को छोड़कर), (11) बाजीगर, नट, कलंटर (अनुसूचित जाति को छोड़कर), (12) भभूजा कनू, (13) भट, भटरा, दर्पी, रमिया, (14) भटियाला, (15) चक, (16) चिप्पी, टोक दर्जी, इदरिशी (मोमीन), चिम्बा, (17) डकौत, प्रादे, (18) धिनवार, झिनवार, निशाद, केवट/मल्लाह (अनुसूचित जाति को छोड़कर), कश्यप (गैर-ब्राह्मण), कहार (19) धोबी (अनुसूचित जाति को छोड़कर), (20) धुनिया, पिंजाड़ी, कंधेरा-करन धून्नेवाला, नद्दक, मंसोकग्री, (21) फकीर, (22) गडरिया, पाल, बघेल, धांगर निकहार, कुबा, गढ़ेरी, कड्डी गर्री, (23) घसियारा, घोसी, (24) गुजर, गुर्जर (25) जोगी, गोस्वामी, नाथ, योगी, जूगी, गोसेन, (26) जुलाहा, अंसारी (अनुसूचित जाति को छोड़कर), (27) काछी, कोरी, मुरई, मुराव, मौर्य, कुशवाहा, शाक्य, महतो (28) कसाई, कसाब, करैशी, (29) कसेरा, तमेरा, ततिहारा, (30) खटगुने, (31) खटीक (अनुसूचित जाति को छोड़कर) (32) कुम्बर, प्रजापति, (33) **कुर्मी**, (34) लखेड़ा, मनिहार, (35) लोधी, लोधा, लोध, महा-लोध, (36) लुहार, सैफी, भुमलिया, (37) माली, सागरवंशी-माली, नायक,सैनी (38) मोमर, राज, (39) मीना, (40) मेरसी, मिरासी, (41) मोची (अनुसूचित जाति को छोड़कर), (42) नाई, हज्जाम, नाई (सबिता), सेन, सलमानी, (43) नलबंद, (44) नक्कला, (45) पखिवाड़ा, (46) पटवा, (47) पाथार-चेरा, संगतराश, (48) रंगरेज, (49) राया-तंवर, (50) सुनार, (51) तेली, (52) राय-सिख।

दिल्ली में पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण देने के लिए शीघ्र दिसम्बर 94 माह में अधिसूचना जारी हो जायेगी । इस पर **खुराना मंत्रिमंडल** ने स्वीकृति और **रातावाल समिति रिपोर्ट** पर सहमति हो गई है । सूत्रों ने बताया है कि सरकारी नौकरियों में आरक्षण सार्वजनिक उपक्रमों और स्थानीय निकायों में भी समान रूप से प्रभावी होगा । चुनिंदा पिछड़े वर्गों और समुदायों की जाँच करने तथा उन्हें प्रमाण-पत्र देने के लिए **जिला मजिस्ट्रेट, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, उपायुक्त दिल्ली, अतिरिक्त उपायुक्त दिल्ली, एस० डी० एम०** और **कार्यकारी मजिस्ट्रेट** को अधिकार दिये जाने का सुझाव सरकार के विचाराधीन है ।

इसके लिए आवेदक को भारत सरकार की ओर से जारी आवेदन के आधार पर बनाए जाने वाले आवेदन फार्म पर अर्जी देनी होगी । आवेदन पत्र दोनों, भाषाओं, हिन्दी और अंग्रेजी में होगा तथा इसमें सभी स्वीकृत जातियां और समुदाय उल्लिखित होंगे । फार्म पर अनुक्रमांक और पावती का स्थान भी होगा ।

अध्याय - 17

पटना में 12 फरवरी 1994 की अभूतपूर्व कुरमी चेतना महारैली

समाचार पत्रों द्वारा ज्ञात होता है कि सन् 1993 के अन्तिम चतुर्थांश तथा सन् 1994 के प्रथम चतुर्थांश में ज्यों-ज्यों बिहार विधान सभा के चुनावों का समय निकट आता जाता है त्यों-त्यों पटना नगरी में जातीय रैलियों के समागम का जोर बढ़ता जा रहा है। रैलियां चुनाव से पूर्व पहले भी होती थीं और आज भी जो आयोजित की जा रहीं हैं, उन दोनों में एक स्पष्ट मौलिक अन्तर दृष्टिगोचर होता है। पहले वाली रैलियां राजनैतिक दलीय आधार और दल विशेष के तत्वावधान में होती थीं, जिसमें वे अपनी विचार धारा और दल-विशेष की शक्ति का प्रदर्शन करते थे, पर अब बिहार में गत अर्ध-वर्ष में जातीय रैलियों की बड़ी धूम मची रहती है। इन रैलियों को आयोजित करने में आयोजकों का एक ही मकसद होता है - **"सत्ता में भागीदारी के लिए जातिगत प्रदर्शन आज के राजनैतिक माहौल में अति आवश्यक हो गए हैं और रैली उसके लिये ही आयोजित की जाती है।"**

पाठकों को पता होगा कि आज सरकार के पास सही-सही आंकड़े नहीं हैं कि इस समय देश में किस जाति की वास्तविक संख्या क्या है? प्रत्येक जाति अपनी जनसंख्या अपने अन्दाज से बतलाती है। कुरमी और इनसे सम्बन्धित जातियां जैसे **कुनबी, कण्बी, कुलमी, कम्मा, कापू, कूर्मा, रेड्डी, नायडू, मराठा पाटीदार एवं पटेल** आदि की संख्या इस समय देश में अठारह करोड़ से अधिक है। अंग्रेजों के शासनकाल से जनगणना हर दस वर्ष बाद होती है। पर सन् 1931 की जनगणना तक प्रत्येक भारतीय की जाति भी अंकित की जाती रही, इससे तब तक के हमें जातीय आंकड़े बिलकुल सही मिल जाते हैं। बाद में राजनैतिक पार्टियों ने विशेषकर प्रमुख कांग्रेस पार्टी ने अंग्रेज सरकार को लिखा कि जनगणना के समय जातीय आधार पर जानकारी न अंकित की जाए, इससे जातिवाद फैलता है राष्ट्रीय एकता में अवरोध पैदा होते है। पर परिणाम उल्टा ही निकला कर्णधारों ने जो बहुधा द्विज जातियों के होते थे, आजादी के अगले 45 वर्षों में उसको चलाया और अपने सजातियों को लाभान्वित किया। वे लोग खूब तरक्की कर गये। इससे पिछड़ों, शोषित, दलित, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों में बड़ा रोष उत्पन्न हुआ। अनुसूचित जातियों और जनजातियों को तो सरकार ने प्रारम्भ से ही संविधान के जरिये सुविधायें प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया था पर अन्य पिछड़ी जातियों को आन्दोलन करने पड़े, और उनके परिणामस्वरूप 8 सितम्बर 1993 को सरकार ने मंडल कमीशन की सिफ़ारिशें मानकर उसका क्रियान्वयन प्रारम्भ कर दिया। पर अब भी समस्या बड़ी जटिल है। किस जाति के कितने लोग हैं? जो जातियां अनुभव करती है कि सत्ता में उनकी भागीदारी या मंडल आयोग की सिफ़ारिशों का लाभ जातीय संख्या के अनुपात में, नहीं मिल रहा है, तब ही वे अपनी शक्ति-प्रदर्शन के लिये रैलियों के आयोजन का सहारा लेती हैं। यदि सरकार अगली जनगणना में साथ ही साथ जाति आधार पर आँकड़े इकट्ठे कर ले तो सांख्यिकीय आधार पर प्रत्येक जाति मंडल आयोग की न्याय संगत सरकारी सुविधायें प्राप्त करने में तथा सत्ता में भागीदारी लेने में प्रयोग कर सकती है जोकि सबको मान्य होगी। जनगणना में जातीय आंकड़े इसलिये रोके गये थे कि उससे जातिवाद को बढ़ावा मिलेगा पर वह उद्देश्य तो निष्फल रहा। अब प्रत्येक जाति के सही आंकड़े उपलब्ध होने से सबके प्रति सन्तोषजनक निर्णय लिये जा सकेंगें अतः भविष्य में जनगणना में जातीय जानकारी एकत्रित करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। फिर इन रैलियों और महारैलियों की क्या आवश्यकता रहेगी, जिसके बाद भी जाति विशेष की सही संख्या स्थापित नहीं कर पाती हैं। और जो जातियां रैलियां नहीं कर सकेंगी, वे उन लाभों का उचित अंश नहीं पा सकेंगी।

पटना महानगरी के प्रसिद्ध गांधी मैदान में गत् 6 महीनों में रैलियों के साथ-साथ कई जातीय सम्मेलन, आयोजित हुए, जैसे कुशवाहा (कोइरी), लोहार, सुनार, वैश्य, बढ़ई, चौरसिया, कुम्हार, पाल और निषाद आदि जातियों के। ऐसा

प्रचार किया गया कि कुरमी बहुल अन्य प्रादेशिक क्षेत्रों में तथा बिहार प्रदेश भर में 12 फरवरी 1994 को **"कुरमियों की चेतना महारैली"** निकलेगी और विशाल जनसभा पटना के गांधी मैदान में होना है, जिनमें लगभग 6 लाख कुरमियों के सम्मिलित होने की आशा है। काफी प्रतिनिधिगण और कुरमी सामाजिक राजनेता बिहार के बाहर से भी आने की उम्मीद है। बिहार विधान सभा चुनाव से पहले तक, अभी और भी कई जातीय रैलियां और विराट सभायें होने की पूर्ण संभावना है। कई जातीय संगठनों ने विधान सभा क्षेत्रों के अनुसार अपने-अपने जातीय आंकड़े भी प्रकाशित किये हैं। इसके साथ ही इन जातीय संगठनों ने अपनी अखिल भारतीय जातीय परिचय निर्देशिका भी प्रकाशित की हैं जिनमें उनके जाति के डाक्टर, इंजीनियर अभिवक्ता, प्राध्यापक एवं अन्य सरकारी व गैर सरकारी उच्चाधिकारियों की सूची भी प्रकाशित की है। इन रैलियों का उद्घाटन बिहार के वर्तमान मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव द्वारा ही किया जाता रहा है। 8 नवम्बर 1993 को गांधी मैदान में विशाल महारैली आयोजित की गई, जिसमें मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव जी तथा भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय स्तर के नेता श्री सुन्दर सिंह भण्डारी तथा कांग्रेस के श्री सीताराम केसरी, कल्याण मंत्री, भारत सरकार एक साथ मंच पर बैठे थे। 26 नवम्बर 1993 को निषादों की रैली में मुख्यमंत्री श्री यादव श्री सीताराम केसरी के साथ मंच पर बैठे। इन जातीय रैलियों में जातीय नेता अपनी समस्याओं के समाधान के लिये मांगपत्र के माध्यम से केन्द्रीय सरकार तथा प्रादेशिक सरकार के सूचनार्थ विभिन्न मांगे रखते हैं। बिहार की हालत इस समय बड़ी चिन्तनीय है। सरकारी कर्मचारियों को वेतन के लाले पड़े हैं। देहात को तो क्या, राजधानी पटना तक को बिजली उपलब्ध नहीं। जनता पेयजल के लिये तरसती है। एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के लिये यातायात साधन बहुत कम हैं। अस्पताल दवा और उपकरण शून्य, बिना तनख्वाह पाये डाक्टर स्वयं मरीज लगते हैं। स्कूलों पर अनेक जगह छत तक नहीं, ब्लैक बोर्ड और टाट-पट्टी अथवा कुर्सी मेजों की बात छोड़िये। सचमुच बिहार एक आदर्श गरीब प्रदेश बनता जा रहा है। हरेक शुभेच्छुक को इसे रोकना चाहिऐ इसे आगे दरिद्र प्रदेश होने से बचाइये, और पुनः इसके निर्माण और उत्कर्ष के समुचित प्रयत्न शीघ्र प्रारम्भ होने चाहिए।

बिहार राज्य की कुर्मी चेतना रैली

प्रसिद्ध जातीय इतिहासकार श्री रामकृष्ण मेहता ने इस लेखक को अपने 5 जुलाई 1994 के पत्र में जो इस महारैली का विवरण लिख भेजा, उसके अनुसार इस रैली में जातीय-अस्मिता जगाने और नयी राजनीतिक पहचान बनाने की पुरजोर मांग की गयी। जबरदस्त भीड़ थी। सभा की अध्यक्षता भाकपा विधायक सतीश कुमार ने की। आपसी वैमनस्य को दूर करने के लिए सद्भाव समिति गठित करने, कुर्मी रेजीमेन्ट की स्थापना, महिलाओं को राजनीतिक हिस्सेदारी में प्राथमिकता देने सामाजिक उत्थान के लिए सामाजिक ट्रस्ट की स्थापना, दलित एवं शोषित वर्ग के साथ बने वर्तमान सम्बन्ध को मजबूत करने, कृषि को उद्योग का दर्जा देने विधवा-विवाह को सामाजिक मान्यता देने कुर्मी बाहुल, आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र को अनारक्षित करने की बातें की गई। अन्य प्रस्तावों में राजधानी पटना में किसी चौराहे पर छत्रपति शिवाजी की अश्वारोही आदम कद प्रतिमा लगाने (कंकड़बाग में प्रतिमा-स्थल पर शिलान्यास के लिए, पट पर लिखा गया है), प्रत्येक कुर्मी द्वारा अपने नाम के आगे **'पटेल'** लगाने, तिलक-दहेज समाप्त करने, महिला समाज को पूरी तरह शिक्षित करने, राजनीति के प्रति समाज के छात्रों में जागरूकता, शिक्षा के प्रति सम्मान पैदा करने, नालन्दा खुला विश्वविद्यालय बनाने, छोटा नागपुर एवं संथाल परगना के कुर्मी (महतो) को जनजाति घोषित करने की बातें कुर्मी समाज को वृहत्तर फैलाव के लिए विभिन्न शाखाओं में विवाह, घुलनशील जाति को कुर्मी जाति में शामिल करने की अपील भी समाज से की गई है।

रैली का उद्घाटन पूर्व लोकसभाध्यक्ष महोदय श्री रवि राय ने किया तथा अध्यक्षता भाजपा विधायक सतीश कुमार ने की। उन्होंने कहा कि समाज की मुख्यधारा में लाने के लिये हमें एक जुट होकर संघर्ष करना होगा। उन्होंने कहा कि बिहार राज्य कुर्मी चेतना महारैली का एक मुख्य उद्देश्य यह भी है। पिछले डेढ़ हजार वर्षों से बिहार उपेक्षा का शिकार रहा है। समाज व्यवस्था के बदलने के लिए आज हम यहां भारी संख्या में इकट्ठे हुए हैं। शिक्षित होने



मंच पर "कुरमी चेतना महारैली" के बीस महारथी खड़े हुए



मंच पर बैठे नेतागण-बायें से सर्वश्री वृषिण पटेल, नीतीश कुमार, सतीश कुमार, भोला प्रसाद सिंह

realpatidar.com



मंच पर बैठे देशभर से आये नेतागण तथा विशिष्ट कुरमीजन



गांधी मैदान, पटना तथा उसके चारों ओर की 150 फीट चौड़ी सड़कें कुरमी· जनो से खचाखच भरी हुई

realpatidar.com

के साथ-साथ कुसंस्कार और कुरीतियों के खिलाफ जेहाद छेड़ने का भी आह्वान किया। इस जाति के आगे बढ़ने के लिए उपजाति के बन्धनों को तोड़कर आगे निकलना होगा। श्री राय ने कहा कि मूलतः किसान वर्ग की इस जाति को इनके खिलाफ चल रहे षड्यन्त्रों से सचेत रहना होगा।

श्री नीतिश कुमार ने कहा कि रैली में आयी अपार भीड़ ने बिना कुछ कहे ही सब कुछ कह दिया है। चाहे कोई दिल्ली की गद्दी पर बैठा हो या पटना की गद्दी पर इस समाज की उपेक्षा कर ज्यादा दिनों तक अपनी गद्दी को सुरक्षित नहीं रख सकता। उन्होंने कहा कि कुर्मी जाति के लिए यह धारणा पैदा हो गयी थी कि उसकी उपेक्षा हो रही है। श्री नीतिश कुमार ने कहा कि इस जाति की उपेक्षा करके कोई राजनेता जिन्दा नहीं रह सकता, मैं आपको भरोसा दिलाना चाहता हूँ।

पटना सचिवालय के शहीदों में तीन कुर्मी थे। उन्होंने कहा कि सरदार पटेल ने राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का जो काम किया था, उसे आज विखंडित करने की साजिश चल रही है। हमें इस प्रयास को विफल करना होगा।

बजरंग दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष व भाजपा सांसद श्री विनय कटियार ने कहा कि बिहार में सोमालिया जैसी स्थिति बन रही है। हम लोगों को न खाने को अन्न, न पीने को पानी मिल रहा है। उन्होंने इस रैली के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर कर रचनात्मक कार्य करने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि जिस तरह पटना में रैली का आयोजन हुआ है, इसी तरह शक्ति-प्रदर्शन देश के स्तर पर होना चाहिए। आगे उन्होंने कहा कि "देश भिखारी और मंत्री मवारी" बन गये हैं और देश पर संकट छाया हुआ है।

भोला प्रसाद सिंह ने कहा कि बिहार के कुर्मियों को आरक्षण से कोई भी व्यक्ति वंचित नहीं कर सकता। हमें केन्द्र की सरकार के नौकरियों से वंचित रखा गया है क्योंकि आज भी इसमें हुई गलती का संशोधन नहीं हो रहा है। नए बिहार का निर्माण करने के लिए हमें राज्य की गद्दी पर कब्जा जमाना है। बिहार के नवनिर्माण में कुर्मियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके बावजूद इस जाति का कोई भी व्यक्ति बिहार का मुख्यमंत्री नहीं बन सका। आजादी की लड़ाई से लेकर आज तक बिहार को बनाने का ही हमने काम किया है। समुन्नत वर्ग (Creamy Layer) के खिलाफ केन्द्र और बिहार, उत्तर प्रदेश की सरकारों को मिलकर चुनौती देना चाहिए। उत्तर प्रदेश में पंचायती राज्य मंत्री राम लखन वर्मा ने कहा कि आज बिहार के कुरमी समाज के बीच कोई दर्द होगा तभी वह इतनी बड़ी संख्या में उमड़ पड़ा है। कुर्मी जाति पिछड़ी जाति के रूप में अवश्य जानी जाती है, लेकिन इसके हाथ में ऐसी राजनैतिक शक्ति भी है जिससे ताले खोले जा सकते हैं। पूर्व केन्द्रीय मंत्री प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद ने आरक्षण में क्रीमी लेयर के प्रस्ताव का विरोध किया। उन्होंने कहा कि बिहार के निर्माण में कुर्मी जाति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, लेकिन आज तक इस जाति से कोई मुख्यमंत्री नहीं बन सका।

मंगली लाल मंडल ने कहा कि शाखाओं के बन्धन को तोड़ने की दिशा में जिस तरह का हमला होना चाहिए, वैसा नहीं हो रहा है। शैलेन्द्र महतो ने कहा कि गांधी मैदान की आज की भीड़ देखकर लगता है कि बिहार के कुर्मी अभी-अभी जागे हैं। उन्होंने कहा कि मंडल आयोग में जो हिस्सा झारखंड क्षेत्र के कुर्मियों को मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है। झारखंड क्षेत्र के कुर्मियों को अनुसूचित जनजाति में शामिल किया जाय।

सुधीर महतो ने कहा कि कुर्मी जाति से खेलने वालों का हम नामो-निशान मिटा देंगे। उन्होंने कहा कि इस महा-सैलाव में फैसलों को बदलने का साहस अब शायद ही किसी राजनेता को होगा।

राजपूजन पटेल-कुछ लोग दावा करते हैं कि सत्ता में वही आएगा जिसके हाथ में लाठी होगी लेकिन आज वे संदर्भों में सही नहीं है। उन्होंने कहा कि सत्ता बुद्धि और विवेक से चलती है। इसलिए कुर्मी समुदाय को बुद्धि और विवेक के लिये शिक्षित होना होगा। सांसद शिवशरण वर्मा ने कुर्मी जाति में राजनैतिक चेतना लाने पर बल दिया।

सदानन्द सिंह -पहले सत्ताधारी दल में कुर्मी समुदाय के 46 विधायक 10-11 मंत्री हुआ करते थे लेकिन आज विधान सभा में 16 विधायक और मंत्रि परिषद में सिर्फ चार सदस्य ही हैं। इस समुदाय की उपेक्षा नहीं तो क्या है। प्रो. उषा सिन्हा ने लोकसभा को घेरने का आह्वान करते हुए बिहार की महिलाओं की भागीदारी पर बल दिया।

प्रेषकों के अनुसार आज की कुर्मी चेतना महारैली 1991 के अक्टूबर में हुई रैली के बाद की सबसे बड़ी रैली साबित हुई है । पूर्व के रैली के समय केन्द्र में वी. पी. सिंह की सरकार थी और पिछड़ी जातियों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण की घोषणा के बाद रैली का आयोजन किया गया था । खोंचे वालों ने भी सराहा कि इतनी भीड़ के बावजूद भी ग्राहकों ने बिना पैसे के कोई सामान नहीं लिया और सभी का सामान सुरक्षित रहा । बैनरों और लाल झंडों से पटे गांधी मैदान में आखिरी क्षण तक "कुर्मी एकता जिन्दाबाद" के नारे लगते रहे । आगत अतिथियों का स्वागत श्री पी. दयाल ने किया । अन्य वक्ता थे वाणिज्य कर मंत्री उपेन्द्र प्रसाद वर्मा, पूर्व विधायक अरुण चौधरी, पूर्व मंत्री श्याम सुन्दर सिंह, पुनम देवी, पूर्व विधायक छच्चू महतो तथा श्रीमती चन्द्रकांता सिन्हा आदि ने बड़े सारगर्भित भाषण किये । महारैली में 23 सूत्री प्रस्ताव पारित किया गया । प्रस्ताव में कहा गया कि सामाजिक न्याय में हमारी पूर्ण आस्था है किन्तु सत्ता में हमारी भागीदारी महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी हो ।

जनता के नारे

पटना के प्रसिद्ध गांधी मैदान में आते हुए जन समूह ऐसे अर्थ वाले नारे लगा रहे थे ।

1 जो कुर्मी का घात करेगा ।
वो अपना सर्वनाश करेगा ।।

2 आज का नेता कैसा हो ।
शिवा, पटेल जैसा हो ।।

3 कुर्मी होगा जिसके साथ ।
ऊँचा होगा उसका हाथ ।।

4 जो सामाजिक न्याय में भेद करेगा ।
हमसे वह बैर करेगा ।।

5 पटेल का साहस शिवा का शौर्य ।
यही है इतिहास हमारा ।।

कुरमी चेतना : दृश्य और दिशा

प्रसिद्ध हिन्दी के विद्वान प्रो0 राम बुझावन जी के अनुसार विगत 12 फरवरी 1994 को बिहार की राजधानी पटना के गांधी मैदान में इतनी विराट कुर्मी चेतना महारैली आयोजित हुई, जो सन् 1975 की लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण के जन-आन्दोलन रैली के बाद की एक विराट महारैली बन गयी थी । इसमें शामिल होने के लिये मानो कुरमी जनों का सैलाब उमड़ पड़ा था । पटना को आने वाली सभी सड़कों पर कुरमियों की अपार भीड़ चल रही थी और सबका गन्तव्य था गांधी मैदान । वह मैदान प्रातः होते ही हर तरफ से आये लोगों से खचाखच भर गया था।

लोकप्रियता की चर्चा से बिहार से लेकर दिल्ली के पत्रों के पन्ने भरे पड़े हैं । यहाँ तक कि उसका धमाका बी0 बी0 सी0 तक पहुँच गया । दिल्ली का दिल भी दहल उठा है और बिहार के पेट में तो पिलाही चमकने लगी है । इस सम्बन्ध में प्रकाशित कुर्मी चेतना रैली की टिप्पणी उद्धृत कर देना काफी होगा, जो"थी हैसियत की हुंकार"।

कुर्मी चेतना रैली का उद्‌घाटन करने पँहुचे थे पूर्व लोकसभा अध्यक्ष श्री रवि राय । भाजपा सांसद विनय कटियार और जनता दल सांसद रामपूजन पटेल इस विशेष अवसर पर पहुँचे हुए थे । सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि इस रैली में लालू यादव को आमंत्रित नहीं किया गया था ताकि लालू यादव यह समझें की पिछड़ी जाति की इतनी विशाल रैली उनके वगैर भी संभव है ।

बिहार में लालू यादव के उदय के बाद कुर्मियों ने आँख मूँद कर लालू का समर्थन किया । पर अरसे से कुर्मी जाति अपनी उपेक्षा का अहसास करती रही कि लालू यादव कुर्मियों को सत्ता के हाशिए पर रखे हुए हैं । लिहाजा कुर्मियों ने यह मान लिया कि एक विशाल रैली कर इस भ्रम को तोड़ा जाय कि लालू यादव को दर किनार कर उन लोगों ने यह विशाल रैली सफलता पूर्वक बेहद अनुशासित तरीके से आयोजित की । कुर्मी महारैली की सफलता से जाहिर है, लालू में गंभीर चिंता की स्थिति उत्पन्न कर दी है । आगामी विधानसभा चुनाव के पहले कुर्मियों को मना पाने पर अगर लालू यादव विफल रहे तो यह उनके लिये मंहगा पड़ेगा । इस रैली ने डंके की चोट पर साबित कर दिया कि मुर्गे के बांग देने के बगैर भी बिहान (प्रभात) होता रहेगा । आगे की गतिविधियों में इस बिहान को दोपहर की तीखी प्रखर धूप के रूप में परिणत कर देना है जिसके लिये प्रयास जारी हैं । ऐसी ही आशा भरी दृष्टि से वे तमाम अन्य जातियों के लोग कुर्मियों की गतिविधियों को देख रहे हैं जो कुर्मियों की तरह ही अपने समाज को उपेक्षित समझ रहे थे । इस लिये इस बार की यह कुरमी महारैली उन लोगों के दिल के गुबार निकालने का द्वार साबित होकर रही। भारतीय कुर्मी समाज अपने विगत इतिहास के आलोक में वर्तमान पर नज़र रखते हुए भविष्य के निर्माण में लगे रहें यही कामना है ।

इन जन रैलियों के सम्बन्ध में 'सरिता' अर्धमासिक पत्रिका, दिल्ली के फरवरी 1994 अंक में लेखक श्री प्रदीप कुमार झा का "बिहार में जातीय रैलियों की बाढ़" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ था । इस लेख के पृष्ठ 34 पर दिये विवरण से निम्नलिखित अंश साभार उद्‌धृत किया है :-

"लगभग सभी जातियों की रैलियों में श्री लालू प्रसाद को प्रमुख स्थान मिल जाता था । इससे कांग्रेस और अन्य दलों के कुछ नेताओं को अच्छा नहीं लगा । पिछले वर्षों से ही कुर्मी और कुशवाहा (कोइरी) दोनों जातियाँ कई कारणों से लालू से नाराज हैं । पिछड़ी जातियों में कुर्मी और कुशवाहा को सर्वाधिक पढ़ा लिखा और पैसे वाला माना जाता है । कांग्रेस ने इसका फायदा उठाया । गांधी मैदान में कुशवाहा सम्मेलन आयोजित किया । लालू प्रसाद ने इस बात की भरपूर कोशिश की कि उन्हें मंच पर स्थान मिल जाए, पर कांग्रेस और कुशवाहा के एक बड़े नेता, शकुनी चौधरी ने सम्मेलन की पूरी कमान संभाल ली और लालू को मंच पर स्थान नहीं मिल पाया । संख्या की दृष्टि से संभवतः यह सबसे बड़ा कुशवाहा सम्मेलन था । लालू प्रसाद इस बात को मानने को कतई तैयार नहीं थे कि कुशवाहा जाति पर उनकी पकड़ ढीली है । इसलिए उन्होंने तुरन्त ही अपने समर्थक कुशवाहा नेताओं का विशाल कुशवाहा सम्मेलन बुलाने का निर्देश दे दिया । इस प्रकार गांधी मैदान में दो बार कुशवाहा सम्मेलन आयोजित किया गया । यह और बात है कि जनतादल द्वारा बुलाया गया कुशवाहा सम्मेलन फीका-फीका ही रहा ।

मुख्यमंत्री जातीय रैलियों के बारे में यह बात मानने को तैयार नहीं है कि इससे जातिवाद बढ़ता है । उनका कहना है कि इससे छोटी-मोटी जातियां जाग रही हैं । और अपनी पहचान बना रही हैं, उनका भी संगठन जरूरी है।"

"सरिता" पत्रिका के उपर्युक्त लेख में आगे कहा गया है "बिहार जनता दल के अध्यक्ष रमई राम, लालू प्रसाद की आज्ञा के बिना हिल भी नहीं सकते, तो फिर नीचे के पदाधिकारियों की हालत क्या हो सकती है? ऐसे में लालू इन जातीय रैलियों के माध्यम से जातीय नेताओं पर अपना प्रभाव कायम करने में लगे हैं । फिर कुर्मी और कोइरी को टूटते देख लालू अन्य पिछड़ी जातियों की ओर देख रहे हैं, क्योंकि पिछले लोकसभा उपचुनाव में पटना के कुर्मी वोटों का एक बड़ा भाग भाजपा की झोली में जा गिरा था ।

दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स' के 12 फरवरी 1994 के अंक में सम्वाददाता श्री राय अतुल कृष्ण ने 'Congress bid to Woo Kurmis' शीर्षक से एक लेख लिखा, उसी से कुछ महत्वपूर्ण अंश साभार नीचे उद्‌धृत कर रहे हैं :-

"PATNA, Feb 11, 1994: The Congress leadership in Bihar is depending on the success of the proposed "Chetna Rally" of the backward Kurmi caste here tomorrow to catalyse the long inspired split that the rally will be dominated by caste leaders opposed to Chief Minister, Laloo Prasad Yadav.

Highly placed Congress sources here believed that if the tenor of the rally was sufficiently strident in criticism of the Laloo Yadav Government and if the turnout was as large as organisers were expecting, the meet would finally convince the fence sitters in the JDLP (Janta Dal Legislative Party of Bihar) to take the plunge.

The sources said if things worked out to the expectations of the Congress leadership, the exodus of dissident element in the JDLP, for which it had been working over the past 18 months or so could come about in the near future. The Key, of course, was to work out the mathematics of a formal split so as to circumvent the anti-defection law.

Among the factor crucial to the success of the Congress game plan is the participation in the rally of Maharashtra Chief Minister Sharad Pawar. Kurmis of Bihar, who already consider Sardar Patel as one of their own on the strength of the shared surname, have in recent times begun to identify with Marathas also.

Mr. Pawar has been extended a special invitation to address the rally alongwith Bajrang Dal Chief Vinay Katiyar and a host of other leaders, the Kurmis count as their own.

For the Congress think-tank here feels the Maharashtra Chief Minister, has just the kind of staure the Kurmis of Bihar are looking for in a man they can adopt as their leader, who could adequately articulate their interests at the national level in the wake of Their "disenchantment" with the Yadav's, domination of the ruling party in Bihar.

While the Congress leadership in the state has stopped short of doing anything that would convey the impression that it intends to use the Kurmi rally for its own political ends, some close associates of the CLP (Congress Legislature Pary in Bihar) leader, Dr. Jagannath Mishra, have been working overtime to ensure its success.

"कुर्मी चेतना महारैली" में सत्ता में अधिक भागीदारी की कुरमियों की मांग

13 फरवरी 1994 के अंग्रेजी दैनिक "दि हिन्दुस्तान टाइम्स" दिल्ली से प्रकाशित समाचारपत्र ने "कुरमी चेतना महारैली" पटना के गांधी मैदान में एक दिन पहले बड़े जोश-खरोश के साथ आयोजित हुई थी जिसमें, सारे शहर में स्वागत द्वार बनाये गए, झन्डियों से सड़के सजायी गयी । सरदार पटेल और छत्रपति शिवाजी महाराज के कट-आउट और चित्रों के द्वार, मंच आदि सजाये गये और उस महारैली में 6 से 7 लाख लोगों ने भाग लेकर उसे कुरमी जाति के लिये चिरस्मरणीय ऐतिहासिक उपलब्धि बना दिया । इस दैनिक पत्र ने निम्नलिखित समाचार अपने पृष्ठ 14 पर प्रकाशित किया--

"KURMIS DEMAND GREATER SHARE IN POWER"

PATNA, 12 Feb (PTI): The Kurmi Chetna Maharally here today took a pledge to fight for greater and effective share in power reiterating at the same time full faith in the struggle for social justice.

Addressing the rally, leaders, cutting across political lines demanded amendment to Constitution to increase the reservation limit of 50 per cent in Government jobs, setting up of a trust for their social uplift, giving agriculture the status of industry and reservation for jobs in the private sector as well.

In his address, Janta Dal MP **Nitish Kumar** said the massive gathering of the backward caste Kurmis, in the historic Gandhi Maidan, had sent the message loud and clear that they could not be undermined any longer by the powers-that be either at the Centre or in the State."

दिल्ली में अंग्रेजी दैनिक **'दि टाइम्स ऑफ इण्डिया'** के 14 फरवरी 1994 अंक में अपनी न्यूज सर्विस के हवाले से खबर प्रकाशित की कि **श्री विनय कटियार, बजरंग दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष** 12 फरवरी की कुरमी चेतना रैली को पटना में सम्बोधित करने आये थे, तब उन्होंने एक प्रेस कान्फ्रेस में घोषणा की कि 14 अप्रैल 1994 में अयोध्या में कार सेवकगण एकत्रित होने जा रहे हैं । तब वे विचार करेंगे कि चार-पांच घंटों में क्या ढांचा (राम मन्दिर का) बन सकता है । जब पूछा गया कि उच्चतम न्यायालय में जो मुकदमें इस सम्बन्ध में विचाराधीन हैं तो उनका उत्तर था उन्हें खुशी होगी यदि वे राम के विधान का क्रियान्वयन करेगें चाहें उन्हें फांसी पर क्यों न लटकना पड़े ।

यहां यह बताना असंगत न होगा कि 24 अक्टूबर 1994 को सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायधीशों की संविधान पीठ ने अपने सर्वसम्मत ऐतिहासिक फैसले के अंतर्गत राष्ट्रपति को यह राय देने से इन्कार कर दिया कि क्या अयोध्या में ध्वस्त ढांचे की जगह पर अतीत में हिन्दू मंदिर था । इसके साथ ही न्यायालय ने दो के मुकाबले तीन के बहुमत से अयोध्या में विवादास्पद भूमि के 67 एकड़ अधिग्रहण को वैध करार दिया है ।

वर्ष 1992 के जुलाई-अगस्त मास में न्यायमूर्ति एम० एन० वेंकटचलैया और न्यायमूर्ति जी० एन० राय की खंड़पीठ की की गई अवमानना के लिये उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कल्याण सिंह को सर्वोच्च न्यायालय ने इस फैसले द्वारा दोषी करार दिया । इसके लिये उन्हें एक दिन की सांकेतिक कैद और दो हजार का जुर्माना किया गया । बाद में सर्वोच्च न्यायाल के आदेश से श्री कल्याण सिंह को एक दिन की कैद के लिए तिहाड़ जेल भी भेजा गया ।

दो रथ यात्रायें जो शीघ्र शुरू होने वाली हैं उसका विस्तार से विवरण दिया जो कि बिहार प्रदेश में निकाली जायेंगीं- प्रथम **महर्षि बाल्मीकि-संत रविदास यात्रा** 25 फरवरी को **बिथिया के बाल्मीकि नगर** से प्रारम्भ होगी जो **मोतीहारी, गोपालगंज, सिवान, हाज़ीपुर, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, मधुबनी, दरभंगा, पुर्णिया, कटिहार, अराईया, किसनगंज** और राज्य के अनेक जिलों में से गुजरती हुई 12 मार्च 1994 को **वाराणसी** नगरी पहुंचेगी । दूसरी रथयात्रा भगवान बिरसा-सिध्धू कान्हू **यात्रा-गुमला** जिले से, जोकि **बिरसा मुन्डा** का **जन्म-स्थल** है, पर समाप्त होगी । यह दोनों रथ यात्रायें बिहार राज्य में लगभग 3 हजार किलोमीटर का फासला तय करेंगी और इनके मार्ग में लगभग 200 आम सभाऐं भी सम्बोधित की जायेंगी । **बजरंगदल के राज्य शाखा के सदस्य और प्रतिष्ठित नेता इन यात्राओं में भाग लेंगे** ।

विश्व हिन्दू परिषद के नेता **विनय कटियार** तक ने रैली को संबोधित किया । लोकसभा में जनता दल संसदीय पार्टी के उपनेता **नीतिश कुमार** और दूसरे कई सांसदों और राज्य सरकार के के दो मंत्रियों ने "सामाजिक न्याय आन्दोलन" की तो बात की पर **मुख्य मंत्री लालू प्रसाद यादव** का नाम एक बार भी नहीं लिया गया ।

रैली का मुख्य स्वर यह था कि **केन्द्र सरकार** हो या **बिहार सरकार कुर्मी समाज** के लोग अब अपनी उपेक्षा बर्दाश्त नहीं करेंगे । **रैली में मंडल आयोग की सिफारिशों** के प्रति बार-बार आस्था जताई गई । और इस बात पर दुःख व्यक्त किया गया कि सत्ता में इस समाज की भागीदारी प्रभावकारी नहीं है ।

आज सूरज की पहली किरण के साथ ही पटना की सड़कों पर शिवा-पटेल का नारा गूंजना शुरू हुआ तो दोपहर बाद तक गूँजता रहा । हज़ारों बसों और दूसरे वाहनों से कुर्मी समाज के स्त्री- पुरुष, युवक बच्चे पटना पहुंचे।

realpatidar.com

पटना शहर में सैकड़ों तोरण द्वार बनाए गए थे । जगह-जगह घोड़े पर सवार छत्रपति शिवाजी का कट-आउट और सरदार बल्लभ भाई पटेल के चित्र टांगे गये थे । गांधी मैदान को भी इन्हीं चित्रों और कटआउटों से सजाया गया था । मंच के ऊपर और गांधी मैदान के मुख्य द्वार पर छत्रपति शिवाजी महाराज का अश्वारोहित आकर्षक कट-आउट लगाया गया था । मैदान में शिवाजी के साथ ही सरदार वल्लभभाई पटेल और कुर्मी समाज के अमरता के जयघोष सर्वत्र लग रहे थे । 30 जनवरी 1994 की जनता दल रैली और आज की रैली में एक फर्क यह था कि उस रैली में जहां गरीब-गुरुबा लोग पैर में बिना जूता-चप्पल के शामिल हुए वही आज की रैली में किसान और मध्यवर्गीय लोगों की संख्या काफ़ी अधिक थी ।

रैली में एक प्रस्ताव पास किया गया । इसमें कृषि को उद्योग का दर्जा देने, कुर्मी रेजिमेन्ट की स्थापना, संविधान में संशोधन कर आरक्षण की सीमा 50 फीसदी से ज्यादा करने आदि सम्बन्धी 23 मांगे की गई । कश्मीर में पूर्व आतंकवादियों की ओर से अपहृत पूर्व इंका विधायक पंकज कुमार सिन्हा की पत्नी जब मंच पर आई तो कई लोगों की आंखे छलछला गई । श्रीमती सिन्हा भी फूट-फूट कर रो रही थी । रैली में एक प्रस्ताव के जरिये केन्द्र सरकार को चेतावनी दी गई। कि वह पंकज सिन्हा को रिहा कराये, नहीं तो कुर्मी समाज के लोग आन्दोलन का रास्ता अख्तियार करेंगे । जब श्रीमती सिन्हा मंच पर रो रही थी तो मंच के सामने नीचे खड़े एक युवक ने अपनी राईफल से हवा में गोली दाग दी । यहां यह बताना असंगत न होगा कि श्री पंकजकुमार सिन्हा को जून 94 के प्रथम सप्ताह में भारतीय सेना ने आतंकवादियों के चंगुल से सकुशल छुड़ा लिया और उनके परिवार ने उनके सही सलामत लौट आने पर बड़ी खुशियां जाहिर की और उनके घोर निराशा व चिन्ता के दिन समाप्त हुये । सबको उन्होंने सहानुभूति और सहायता के लिये कृतज्ञता ज्ञापित की ।

रैली में बृहत्तर कुर्मी समाज के निर्माण के लिए शाखांतर विवाह करने, समावेशन योग्य जातियों को कुर्मी जाति में शामिल करने का भी संकल्प लिया गया । जनता दल सांसद नीतिश कुमार ने कहा कि कोई दिल्ली पर या पटना की गद्दी पर बैठा हो, उनके लिए इस रैली का संदेश स्पष्ट है कि कुर्मी समाज की उपेक्षा कर कोई स्थिर नहीं रह सकता । उन्होंने कहा कि हमारे समाज को सामाजिक न्याय की शक्तियों को गोलबंद कर उसका इंजन बनना होगा । हमें अपने अन्दर वह ताकृत पैदा करनी होगी कि जब जहां चाहें पहुंच सकें ।

रैली में आमतौर पर दो तरह के भाषण हुए । जनता दल से जुड़े लोगों ने सामाजिक सुधार के मुद्दों पर ज्यादा जोर दिया कि जब कि कांग्रेस, भाजपा और दूसरे लोगों ने कुर्मी समाज की उपेक्षा का सवाल उठाया । रैली को राज्य सरकार के दो कैबिनिट मंत्रियों, मंगली लाल मंड़ल, उपेन्द्र प्रसाद वर्मा, जनता दल सांसद वृषिण पटेल, विधायक लाल चन्द्र महतो, इंका नेता पूर्व मंत्री सदानंद सिंह, सिद्धेश्वर प्रसाद, भाजपा की श्रीमती चन्द्र कान्ता सिन्हा उर्फ उषा सिन्हा, भाजपा सांसद राम टहल चौधरी, झामको सांसद शैलेन्द्र महतो, सुधीर महतो, पूर्व मंत्री श्याम सुन्दर सिंह, पूर्व विधायक विश्वमोहन चौधरी और समाज के बुजुर्ग और पूर्व मंत्री भोला प्रसाद सिंह ने भी संबोधित किया ।"

महारैली के दौरान ट्रेफिक व्यवस्था नियंत्रित रही

पटना से प्रकाशित होने वाले सभी समाचार पत्रों में "कुर्मी महारैली" का बड़े विस्तार से तथा प्रशंसात्मक भाषा में उल्लेख किया गया तथा अनेक चित्र भी छपे । पटना से प्रकाशित 'हिन्दुस्तान दैनिक, के 13 फरवरी 1994 अंक में "कुर्मी चेतना महारैली" के दौरान ट्रैफिक व्यवस्था के सुनियंत्रित रहने के सम्बन्ध में लिखा : -

"राजधानी (पटना) में अब तक आयोजित हुई रैलियों में यह सबसे संयमित और अनुशासित रैली थी । रैली को लेकर कहीं यातायात व्यवस्था बाधित नहीं हुई । रैली के वालंटियरों ने लोगों को आने-जाने में मदद की । यातायात पुलिस थाना के अनुसार आज की रैली के नियन्त्रण के लिये, कहीं कोई असमान्य स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी । रैली के समायोजकों द्वारा यातायात नियंत्रण के लिये बड़ी संख्या में अपने स्वयंसेवक (पटेल ब्रिगेड के) भी तैनात किये हुये थे ।.........बिहार के ट्रांसपोर्ट व्यवसाय में कुर्मी समुदाय की बहुलता होने के कारण ज्यादातर लोग सड़क मार्ग से होकर

ही अपने वाहनों से पटना पहुंचे थे ।................. रेलवे सूत्रों के अनुसार रैली समर्थकों द्वारा आरा, जहानाबाद, बाढ़, मोकामा आदि स्टेशनों पर ज्यादा देर तक पैसेंजर ट्रेनों को रोके रखा गया ।

रैली में उत्तर बिहार से सर्वाधिक गाड़ियां पटना आयी थीं । महात्मा गांधी सेतु और हाजीपुर सेतु आज रैली के बसों के कारण भयंकर जाम में फंसा रहा । जाम को लेकर सुबह 10 बजे दिन में पटना पहुँचने वाली निगम की मोतिहारी, समस्तीपुर और मुजफ्फरपुर की गाड़ियां शाम 3.30 बजे पटना पहुँची ।

रैली में आने वालों के लिये गांधी मैदान में विशेष पंडाल लगाया गया था । पेयजल की भी व्यवस्था की गयी थी, लेकिन उनके लिये भोजन का कोई प्रबन्ध नहीं था । लिहाजा गांधी मैदान, फ्रेजर रोड, बारीपथ और बाकरगंज स्थित होटल वालों के आज पौ-बारह रहे । रैलियों के आयोजन में 'कट-आउट' लगाने का फैशन भी बढ़ गया है । उसके तहत आज की रैली में भी सरदार वल्लभभाई पटेल और शिवाजी के विशाल कट-आउट लहराते रहे ।

रैली का मुआइना करने के लिये कई राजनीतिक दलों के नेता, मंत्री भी मैदान का चक्कर लगाते देखे गये। सहकारिता मंत्री रामदेव सिंह यादव, भाजपा नेता सुशील कुमार मोदी, पूर्व मंत्री नरेन्द्र सिंह, रामाधार पासवान मैदान का मुआयना करते देखे गये । सबों ने रैली को अच्छी रैली कहा ।

नई दिल्ली से प्रकाशित 'दि टाइम्स ऑफ इंडिया' दैनिक समाचार पत्र के 16 फरवरी 1994 के अंक में 'दि टाइम्स ऑफ इंण्डिया न्यूज सर्विस' के श्री अरविन्द एन0 दास का एक लेख "Creamy Layer turns sour" प्रकाशित हुआ है, जिसके कुछ अंश साभार उद्धृत है :-

"NEW DELHI, February 15 : The Maha-rally of Kurmis held in Patna's Gandhi Maidan last week represented a qualitative step in the process of forging an "ethnic" identity based on a peasant caste configuration that is seen to spread across northern and western India. It also signalled that this configuration has now attained self-confidence to seek to play a dominant role in national politics. Indeed, the "Maha-rally" has added a new bi-lingual term to political discourse in both English and Hindi.

While its thrust was political, other social and cultural issues were also raised. There was talk about inter-sub-caste and even inter-caste marriages, rejection of dowry, widow remarraige, etc in addition to calls about forging a broad Kurmi-Kunbi social identity whose heroes would be Chhatrapati Shivaji Maharaj and Sardar Vallabh Bhai Patel. The iconography of "hero making" was extended to people dressing up as these revered figures and riding up to the rally on horses.

The rally was addressed by a galaxy of leaders cutting across party lines : CPI, Janata Dal, BJP-VHP and Congres politicians belonging to the Kurmi caste vied with each other in asserting their 'Jati' identity. (Mr. Sharad Pawar, whose participation had been announced was, however, a notable absentee). A non-partisan slogan which was actually raised was "Garav se **Kaho ham Kurmi hain** - गर्व से कहो हम कुरमी हैं (Declare with pride that you are a Kurmi). It was another matter that, as a sigh of upward social mobility, all members of the caste were called to use the surname :"Patel" or "Patil" regardless of the official connotations which these titles carry.

DISCORDANT NOTE : No slogans were raised against upper castes or against any other castes. The only note of discord was struck when a Janta Dal legislator sought to refer

to the **Laloo Prasad Yadav** as the leader of the **"backward"**, there was uproar at this and the hapless acolyte of the Bihar Chief Minister was forced to withdraw. This was the evidence not only of the growing disillusionment with Mr. Laloo Prasad Yadav among non-Yadavas, OBCs generally but again also of the level of confidence gained by the Kurmis who are definitely upwardly mobile. Mr. Yadav, who has been playing around with the Kurmis by periodically including or excluding them from the category of castes which are to benefit from reserations will not miss the signal.

The **"Maha-rally"** was the culmination of a historical process of the creation of a peasant caste-class identity and which in the present context, even seeks to transcend that identity and get into other "modern" occupations. This transition has, in fact, been dramatically evident since the beginning of this century and can provide object lesson to sociologists who see castes as immutable social formations.

CLASS CONFLICTS : At the same time, the Kurmis in particular also "moved on". The Kulaks-peasent capitalists among them came into inevitable conflict with agricultural labourers, who are mainly Dalits, and formed armed organisations like the Bhoomi Sena in Bihar or the Pik Saurakshak Vahini in Maharashtra to confront the classes below themselves. They also aspired to the status of those who they saw as being "above" their station in life.

Finding agriculture to be increasingly a "dead-end activity"-a sunset industry-as for as possibilities of accumulation went, many of them took to education, uraban living, industrial occupations and government jobs, through reservation if possible or otherwise if necessary. In Bihar for instance, the largest number of engineers from a single caste are said to be Kurmis and the upward mobility of the Kunbis of Maharashtra and Gujrat is an old tale.

The "Maha-rally", therefore, is in the dialectic of "unity and struggle" (with you but also without you) between Kurmis moving on by themselves, and Yadavs and OBCs generally. They have declared that they have come of age as a community and have voiced their need for political power commensurate with their numbers and position in the political economy. The modernisation of India in politifal system thus finds unsuspected expression in caste terms even as a post-modernist globalisation proceeds apace.

महारैली की अद्भुत सफलता पर बधाई - (**'हिन्दुस्तान'** पटना 13 फरवरी 94 से साभार):

विभिन्न राजनीतिक दलों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं ने **कुर्मी चेतना महारैली** को **'महाकुम्भ'** की संज्ञा देते हुए इसे ऐतिहासिक करार दिया है तथा इसकी सफलता के लिये कुर्मी समाज के लोगों को बधाई दी है ।

विधानसभा में विपक्ष के नेता डा० जगन्नाथ मिश्र ने आज की **कुर्मी चेतना महारैली** को पूर्णतः गैर राजनीतिक बताते हुए इसमें शामिल लोगों को हार्दिक बधाई दी है । **डा० मिश्र** ने कहा कि सरकारी तंत्र के सहयोग के बावजूद आज तक पटना में जो रैलियां हुई, वह आज की महारैली के सामने फीकी रहीं । उन्होंने यह भी कहा कि आज की यह रैली पटना में हुई सभी रैलियों से अधिक संयमित एवं आकर्षक थी ।

विधायक दशरथ कुमार सिंह ने रैली की अभूतपूर्व सफलता का दावा करते हुये कहा कि रैली में शामिल लोगों ने जातीय भावना से ऊपर उठकर राष्ट्रहित में कार्य करने का संकल्प लिया है ।

बिहार प्रदेश कुशवाहा महासभा के अध्यक्ष शकुनी चौधरी कुशवाहा, सचिव राम सेवक प्रसाद, कुशवाहा अभियंता फोरम के महासचिव चाणक्य सिंह कुशवाहा एवं सचिव इन्द्रदेव प्रसाद ने महारैली की सफलता पर प्रसन्नता व्यक्त की है।

पटना नगर जिला इंका के नेता डा० रजनीकांत राज ने कुर्मी चेतना महारैली की सफलता पर हर्ष व्यक्त करते हुये कहा कि यह रैली सामाजिक न्याय के लिये एक जुटता का मार्ग प्रशस्त करेगी। 'कुर्मी चेतना महारैली स्वागत समिति' के सदस्य प्रभात किशोर ने रैली में बीस लाख लोगों के शामिल होने का दावा करते हुये कहा कि आज की महारैली हमारा लक्ष्य नहीं, माध्यम है ।

भाजपा नेता राजेश कुमार सिंह उर्फ भोला सिंह ने दावा किया है कि आज की रैली से कुर्मी समाज की एकजुटता प्रदर्शित हुई है । उन्होंने कहा कि फुलवारी प्रखंड के कुर्मी समाज के लोग गाजे-बाजे के साथ रैली में शामिल हुए। महारैली की स्वागत समिति के सदस्यों चन्द्रमणि कुमार 'मणि', मुन्ना सिंह, विवेशनन्दन प्रसाद, अजीत कुमार, संजय सिंह, डा० धर्मेन्द्र पटेल, डा० अरविन्द, अजय कुमार आदि ने दावा किया है कि ऐसी रैली पहले नहीं हुई थी ।

पूर्व उपमहापौर कुमार संबल ने रैली को ऐतिहासिक बताते हुए इसकी सफलता पर बधाई दी । युवा नेता वरुण कुमार सिंह ने रैली को 'महाकुम्भ' करारते हुये कहा है कि कुर्मी समाज अब अपनी उपेक्षा बर्दाश्त नहीं करेगा। सरदार पटेल छात्रावास के उपाधीक्षक डा० सुनील कुमार सिन्हा ने कहा कि अब तक हुई रैलियों में यह सबसे बड़ी रैली थी, जिसकी सुरक्षा का जिम्मा पटेल छात्रावास के छात्रों ने उठा रखा था । सांसद चतुरानन मिश्र ने कहा है कि आज की महारैली एक जाति विशेष की होने के बावजूद सरकार के प्रति उग्रगति से बढ़ते असंतोष को प्रकट करती है ।

"कुरमी चेतना महारैली" की बिहार के प्रत्येक समाचार पत्र ने चर्चा की और इसे कुरमी जाति के लिए एक महान उपलब्धि बताया । नई दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी समाचार पत्र 'दि टाइम्स ऑफ इंडिया' न्यूज सर्विस के श्री जनक सिंह ने " Kurmi rally poses no threat : Laloo " के अन्तर्गत जो समाचार दिया है उसके कुछ अंश साभार नीचे उद्धृत किये जाते हैं -

NEW DELHI, February 16, The Bihar Chief Minister Mr. Laloo Prasad Yadav, today clarified that the recent "maha-rally" of Kurmis in Patna was neither intended to weaken the Janta Dal nor pose any threat to his position. On the contrary, its chief aim was to demonstrate the strength of backwards who are struggling for a place under the sun now." he added.

मुख्यमंत्री श्री लालूप्रसाद यादव,. राजधानी दिल्ली में केन्द्र द्वारा बुलाई गए शिक्षा सम्बन्धी विषय पर मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में भाग लेने आये थे तब एक इन्टरव्यू के दौरान उपर्युक्त बातें बतायीं । उस महारैली में स्वयं उपस्थित न होने का कारण बताते हुए उन्होंने उत्तर दिया था -

"It is wrong to give it any other interpretation, If I did not attend it, it was mainly on account of the presence of BJP elements also in this show."

मुख्यमंत्री जी ने अपनी सरकार की सबसे बड़ी उपलब्धि बताते हुए कहा - "Over 120 castes had been listed as backwards, entitled for benefits under the new reservation formula. The greatest achievement of this government in Bihar was that these castes hitherto a demoralised lot, were now infused with confidence to demand their due in society. Personally, I would like even other backward castes also to organise rallies and show their strength. " he stressed.

हिन्दी पत्रिका 'इंडिया टुडे' के 28 फरवरी 1994 के अंक में पृष्ठ 69 पर 'समाचार भूमि' कालम के अन्तर्गत एक फोटो जिसका शीर्षक था "कुर्मी रैलीः जातीय गोलबन्दी" छपा और उसके साथ छपे श्री फरजद अहमद के एक लेख उसके कुछ अंश नीचे साभार उद्धृत किये जा रहे हैं ।

"बिहार का जातीय ताकत का रंग"

(दबंग कुर्मियों की रैली में मुख्यमंत्री विरोधी नारे)

लोहे को लोहा ही काटता है । जाति की राजनीति के लिए मशहूर बिहार में 12 फरवरी को पटना में हुई **कुर्मी चेतना महारैली** ने मानो जाति की राजनीति के सहारे राज कर रहे मुख्यमंत्री **लालू प्रसाद यादव** को यही संदेश पहुंचा दिया है । 30 जनवरी को शहीद दिवस पर लगभग दो लाख लोगों की रैली के जरिए **लालू यादव** को लगा होगा कि **मुसलमान, यादव और दलित (एम वाइ डी)** का उनका समीकरण जम गया । लेकिन **कुर्मी महारैली** में मौजूद लोगों की संख्या **लालू की रैली** से न केवल दो गुनी थी बल्कि उसमें लालू को आमंत्रित नहीं किया गया । यही नहीं, जब एक जद विधायक **मधुसिंह** ने लालू के गुणगान की कोशिश की तो शोर मचने लगा ।

बिहार में कुल आबादी के 4-5 प्रतिशत कुर्मी हैं लेकिन उपजातियों को मिलाकर यह प्रतिशत 14.05 हो जाता है जबकि यादव 14.10 प्रतिशत है । मगर 1950 में 46 के मुकाबले आज कुर्मी विधायकों की संख्या केवल 14 रह गई है । लालू यादव की "यादवी" राजनीति में कुर्मियों की उपेक्षा और मंडल आयोग की सिफारिशों के लाभ से इस जाति को 'वंचित करने' से युवाओं में बढ़ते आक्रोश के कारण लालू यादव के खिलाफ रैली में माहौल काफी गर्म था ।

अपने को न बुलाए जाने **(कुरमी चेतना महारैली)** पर ख़ास तरजीह न देते हुए **लालू यादव** कहते हैं, "पिछड़ी जातियाँ जागृत हो रही है यह अच्छी बात है ।"

लेकिन यह जागृति **लालू यादव** के लिये भारी पड़ सकती है, क्योंकि केवल **शिवाजी** और **सरदार पटेल** के कट ऑउटों से सजी इस महारैली में **भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी** के **सतीश प्रसाद, लोकसभा जनता दल के उपनेता नीतीश कुमार** ही नहीं **बजरंग दल के मुखिया विनय कटियार** जैसे नेता एक साथ मंच पर मौजूद थे । **इसके मूल में आठ जनवरी के पतरातु, रांची में कुर्मी विकास मंच के बैनर तले** हुआ **कुर्मी महासम्मेलन है । खबरों के अनुसार इसका** आयोजन कांग्रेस (इ) ने किया था, जहां **छोटानागपुर के कुर्मियों** को अनुसूचित जनजाति में शामिल करने की मांग की गई थी ।

इस महा-सम्मेलन के बाद पूरे बिहार में **कुर्मी चेतना रथ** घूमा था और उस रथ-यात्रा के दौरान हर राजनैतिक दल के नेताओं को यह गुप्त संदेश पहुंचाया गया था कि यदि वे इस महारैली में शामिल नहीं होंगे तो उन्हें जाति के वोट मांगने का कोई अधिकार नहीं होगा । और इस दबाव की उपेक्षा संभव न थी, जैसा कि **श्री विनय कटियार** ने तर्क दिया, **"बिहार में कुर्मी समाज का राजनैतिक शोषण हो रहा है ।"** और सम्भवतः इसीलिये **नीतीश कुमार को रैली के माहौल को देखकर "दिल्ली और पटना में बैठे नेताओं" को जाग जाने की चेतावनी देनी पड़ी ।"**

यही नहीं इस महारैली की अध्यक्षता कर रहे **भाकपा विधायक सतीश प्रसाद** ने यह घोषणा तक कर डाली की पार्टी की नीतियों से ज्यादा प्रिय उन्हें अपनी जाति है । लेकिन इस पूरी प्रक्रिया के जरिये खुश कांग्रेसियों को विश्वास है कि कुर्मियों के जरिये वे लालू यादव से निबट सकते हैं । इंका नेता डा. जगन्नाथ मिश्र कहते हैं, **"यह रैली इस बात का प्रमाण है कि किसी बड़े समाज की उपेक्षा नहीं की जा सकती ?.....कुशवाहा जाति की रैली में जब लालू यादव को नहीं बुलाया गया तो लालू के हितैषियों ने आयोजकों में फूट डलवा दी थी । नतीजा यह हुआ कि दो रैलियां हुई जिनमें एक रैली में लालू थे और एक में नहीं । लेकिन इस बार वे ऐसा करने में असफल रहे । लालू समर्थकों का तर्क है कि इस रैली में कुर्मी कम और धानुक जाति के लोग अधिक हैं । जिन्हें साथ लेने के लिये अब कुर्मी अपनी जाति का मानने लगे हैं ।"**

नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली 15 फरवरी 1994 के अंक में प्रकाशित सम्पादकीय में शीर्षक **"लालू और कुर्मी"** के अन्तर्गत लिखते हैं : पटना में 12 फरवरी को सम्पन्न **कुर्मी रैली** पिछले कुछेक वर्षों से जातियों द्वारा की गयी रैलियों से इस अर्थ में भिन्न थी कि **इस बार लालू यादव के खिलाफ आक्रोश व्यक्त करने का माध्यम थी ।** सामाजिक न्याय के लुभावने नारे की आड़ में कुत्सित जातिवादी राजनीति का खेल उलटी मार भी कर सकता है, इसका आभास इस

रैली ने बिहार के मुख्यमंत्री को अवश्य करा दिया होगा । बिहार के कुर्मियों का दावा है कि 1980 से 1990 तक सामाजिक न्याय यानी मंड्ल आयोग के लिये किये जा रहे संघर्ष में कष्ट वे सह रहे थे और जब सत्ता मंडलवादियों के पास आयी तो उसका सारा सुख यादव उठा रहे हैं । यादवों का दावा है कि वे बिहार की कुल आबादी के 14 प्रतिशत हैं । अब कुर्मियों नें 14 जातियों-उपजातियों को मिलाकर यह दावा करना शुरु कर दिया है कि उनकी आबादी भी कुल राज्य की आबादी का 14 प्रतिशत है ।

मंच पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सतीशप्रसाद तथा भाजपा (विश्व हिन्दू परिषद) के विनय कटियार का एक साथ आना ही एक महत्वपूर्ण घटना है । इससे यह सिद्ध होता है कि जाति के सामने वामपंथी या दक्षिण पंथी की राजनैतिक विचार धाराएं अपना सिर नवाने के लिये विवश है । जाति एक सामाजिक संस्था है । राजनीतिज्ञों ने इस संस्था का काफी दुरुपयोग किया है वामपंथी पार्टियों भी इसका अपवाद नहीं । जाहिर है जब किसी सामाजिक संस्था का राजनीतिक दुरुपयोग होगा तो राजनीति की दुर्गति ही होगी । और जब राजनीति की दुर्गति होगी तब राजनीतिज्ञ कब तक खैर मनायेंगे आज कुर्मियों ने मुख्यमंत्री लालू प्रसाद के खिलाफ आक्रोश व्यक्त किया है, कल वे जातियां भी अपना आक्रोश व्यक्त करेंगी जिनकी रैलियों का राजनैतिक उपयोग लालू अब तक करते रहे हैं ।"

जनसत्ता, दिल्ली 19 फरवरी 1994 के विशेष सम्वाददाता ने "लालू अब नाराज कुर्मियों को मनाने की कोशिश में लगे" शीर्षक से जो समाचार प्रकाशित कराया वह साभार नीचे उद्धृत है : "पटना, 18 फरवरी । "बृहत कुर्मी एकता" को तोड़ने में विफल लालू प्रसाद ने अब नाराज कुर्मियों को पटाने की कोशिश शुरू कर दी है । मालूम हो कि बिहार की दबंग पिछड़ी जाति, कुर्मी लालू के "यादवीकरण" से नाराज़ है । बारह फरवरी की कुर्मी महारैली (पटना) पूरी तरह लालू प्रसाद के खिलाफ थी । उस रैली के आयोजकों ने मुख्यमंत्री लालू प्रसाद को उस रैली में शामिल नहीं होने दिया । जबकि एक अपवाद को छोड़कर लालू प्रसाद जातीय रैलियों को सम्बोधित करते रहे हैं । ऐसी रैलियों में लालू प्रसाद की तारीफ होती रहती है । जनता दल के जो नेता उस कुर्मी रैली में शामिल हुए, उन्होंने भी भीड़ का 'मूड' देखकर लालू प्रसाद का नाम तक लेने की हिम्मत नहीं की । एक जद विधायक मधुसिंह ने लालू प्रसाद का नाम लिया तो उन्हें मंच से धकिया कर हटा दिया गया । भीड़ में से मधुसिंह के खिलाफ आवाजें आई । जूते-चप्पल भी चले ।"

"बाद में मधुसिंह ने यह प्रेस बयान जारी किया कि धानुक (कुर्मी की एक उपजाति) होने के कारण कुर्मियों ने उन्हें बेइज्जत किया । यह बयान लेकर मुख्यमंत्री सचिवालय का एक स्टाफ पटना के अखबारों के दफ्तरों में गया।

फिर मुख्यमंत्री लालू प्रसाद ने कुर्मियों को खुश करने की कोशिश शुरू कर दी । कुर्मी रैली के बाद लालू प्रसाद ने दिल्ली में प्रधानमंत्री नरसिंहा राव से मिलकर पूर्व कांग्रेसी विधायक पंकज कुमार सिंह की "रिहाई" की मांग की । पूर्व कांग्रेसी विधायक पंकज का पिछले साल कश्मीरी उग्रवादियों ने श्रीनगर से उस समय अपहरण कर लिया था जब वे वहां घूमने गऐ थे । पंकज कुर्मी जाति के हैं । पंकज की पत्नी ने कुर्मी महारैली में भी मंच से अपना दुखड़ा सुनाया । इस पर कुछ देर के लिये भीड़ उत्तेजित हो उठी थी । उत्तेजना पंकज की सुधि नहीं लेने के कारण थी।

मुख्यमंत्री लालू प्रसाद 15 फरवरी 1994 को सरस्वती पूजा के अवसर पर पटना स्थित सबसे बड़े कुर्मी छात्रावास "पटेल छात्रावास" गये । वहां के छात्र, राजनैतिक नजरिए से जागरूक तथा दबंग रहे हैं । जानकार सूत्रों के अनुसार मुख्यमंत्री लालूप्रसाद कुर्मी जाति के नेताओं के लिये कुछ और करने वाले हैं । मालूम हो कि कूर्मिजाति का बिहार मंत्रिमंडल तथा बोर्ड कारपोरेशन में यादवों की अपेक्षा काफी कम प्रतिनिधित्व है । जबकि कुर्मी नेताओं का दावा है कि यादव और "बृहद कुर्मी समुदाय" की जनसंख्या करीब-करीब बराबर है । बृहद कुर्मी समुदाय में अवधिया, जयसवार, समसवार, कौचेसा, धमैला और धानुक शामिल हैं । इनकी मिली आबादी बिहार की कुल आबादी का चौदह प्रतिशत है ।

1991 के लोकसभा चुनाव में भारी जीत के बाद उस समय साफ-साफ दिखाई पड़ा, जब गत साल पटना लोकसभा उपचुनाव में कुर्मी मतदाताओं के एक बड़े हिस्से ने जनता दल का साथ छोड़ दिया । इसके बावजूद लालू प्रसाद ने कुर्मियों के लिये कुछ ख़ास नहीं किया । उन्होंने हरिजनों की ओर ध्यान दिया । वे हरिजनों के चौदह प्रतिशत

वोट को यादव-मुसलमान वोट (28 प्रतिशत) से जोड़कर निश्चित हो जाना चाहते थे। इस बीच **कुर्मी महारैली** का राजनीतिक धमाका हुआ। रैली अभूतपूर्व थी। इस धमाके में तो कुछ लोग, लालू के अंत की शुरूआत भी देख रहे हैं। हालांकि ऐसा देखना जल्दबाजी होगी।

कुर्मी महारैली का स्वर, प्रारंभ से ही लालू विरोधी रहा। **"कुर्मी चेतना रथ"** पर ही यह नारा लिखा था,

"बक्त गुलशन पर पड़ा, तो खून से सींचा हमने,
बहार आई तो कहते हैं, तेरा काम नहीं।"

महारैली से पहले कुर्मी चेतना रथ बिहार राज्य भर में घूमा। **महारैली** की सफलता की अपील वाले **अखबारी** विज्ञापन में भी यही नारा लिखा गया था। जानकार सूत्रों के अनुसार **"कुर्मी महारैली तैयारी समिति"** की **बैठक** में जद (जनता दल) से जुड़े कुर्मी नेताओं ने कोशिश की थी कि महारैली की अध्यक्षता कोई गैर राजनीतिक **तथा सामाजिक** नेता करें। किन्तु अध्यक्षता **सीपीआई विधायक सतीश कुमार** ने की। **अब कुर्मी का नेता कौन? सतीश या नीतिश?** यह सवाल भी उठाया गया। जनता दल के पक्ष में कुर्मी सम्मेलन करवाने वाले गजेंद्र प्रसाद सिंह (उच्च शिक्षा राज्य मंत्री, बिहार सरकार) को महारैली के दिन सभा-स्थल से भगा दिया था। वहीं भाजपा सांसद विनय कटियार का जिंदाबाद से स्वागत हुआ। नीतिश कुमार ने 31 जनवरी को ही महारैली के संयोजक को चिट्ठी लिखी थी कि यह आयोजन अराजक हो रहा है।

महारैली के दिन **(गांधी मैदान पटना के) मंच** पर सबसे ज्यादा जद (**जनता दल**) नेता ही **थे, लेकिन वे लालू** विरोधी माहौल पर भी चुप्पी साधे रहे यहां तक कि नीतिश **कुमार** को भी यह भाषण करना पड़ा कि **इस भारी भीड़ की अब केन्द्र या राज्य सरकार उपेक्षा नहीं कर पाएगी।** मालूम हो कि नीतिश **कुमार** भी **कुर्मी बहुल** चुनाव क्षेत्र बाढ़ (पटना के निकट) से चुनाव जीतते हैं। **कुर्मी समुदाय के जद नेता बी. के. सिंहा** ने बताया कि **महारैली** को राजनैतिक बनाया गया जबकि उसका घोषित उद्देश्य सामाजिक ही था। आयोजकों ने आश्वासन दिया था कि उसे सामाजिक ही रहने दिया जाएगा। हालांकि छात्र **जनता दल के नेता और कुर्मी चेतना रथ के संचालक उपेन्द्र कुमार ने कहा कि महारैली के नायक सांसद नीतिश कुमार रहे। सांसद विनय कटियार भी आकर्षण के केन्द्र रहे।**

कुर्मी महारैली की सफलता के बाद अब यहां राजनीतिक क्षेत्रों में यह सवाल उठाया जा रहा है कि इसका राजनीतिक लाभ किस राजनैतिक दल को मिलेगा।"

उपर्युक्त समाचार में एक विचित्र बात यह है कि पहली बार **बिहार** की कुल आबादी में से 14 प्रतिशत आबादी वाली जाति को, **जनसत्ता, दिल्ली** 19 फरवरी 1994 अंक में, **"बृहद कुर्मी समुदाय"** से संबोधित किया गया **है और** उसमें शामिल 6 उपजातियों (अवधिया, जयसवार, समसवार, कोचेसा, धमैला, महतो) के नाम भी लिखे गये **हैं।** जबकि **नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली,** 15 फरवरी 1994 के अंक में लिखा है - **"अब कुर्मियों ने 14 जातियों-उपजातियों को मिलाकर यह दावा करना शुरु कर दिया है कि उनकी आबादी भी कुल राज्य की आबादी का 14 प्रतिशत है।"** ऐसा प्रतीत होता **है कि विशाल कुर्मी समाज** को खंड़ित और विभक्त करके बतलाना चाहिये जबकि एक ही विशाल कुर्मी जाति की उपजातियां **अवधिया, जयसवार, समसवार, धमैला, कोचैसा महतो, चंदेल (धनऊ), तैलंग, धानुक, रमैया, पटनवार, सैंथवार, ढेलफोरा, दोजवार एवं घोड़चढ़े** उसी प्रकार हैं जैसे ब्राह्मणों में मिश्र, शर्मा, तिवारी, शुक्ल, झा, द्विवेदी, त्रिपाठी, चतुर्वेदी (चौबे), पाठक, भट्ट, दीक्षित, अवस्थी, वाजपेयी, भार्गव आदि अथवा कान्यकुब्ज, सारस्वत, गौड़, शाडिल्य, श्रोतिय, आदि अलग-अलग समुदाय हैं, कायस्थों में माथुर, श्रीवास्तव, सक्सेना, जौहरी, कुलश्रेष्ठ, वर्मा, सिन्हा, अस्थाना, निगम, भटनागर, आदि उपजातियां या आस्पद हैं। वावजूद इस सच्चाई के जब ब्राह्मण और कायस्थ को **"बृहत ब्राह्मण समुदाय"** या **"बृहत कायस्थ समुदाय"** नहीं कहा जाता तो **यह नया उल्लेख मात्र इस कुर्मी जाति की एकता को खंड़ित करने की अन्य उच्च जातियों की एक नयी चाल लगती है, जिससे हर कुर्मी को सचेत, हो जाना चाहिए।** जब **'बृहत ब्राह्मण समुदाय'** या **"बृहत कायस्थ समुदाय"** नहीं कहा जाता तो केवल **'बृहत कुर्मी समुदाय'** कहने का क्या औचित्य?

कम्युनिष्ट पार्टी ऑफ इंडिया तक का कुर्मी जाति ने ध्यान आकर्षित किया है। यह बात दिल्ली से प्रकाशित "दि टाइम्स ऑफ इंडिया" के 24 फरवरी 1994 में श्री प्रफुल्ल बिदाई के "New Opening For The Left Relating To The Dalit OBC Wave" के अन्तर्गत जो लेख छपा है उसमें कहा गया है - "While the general secretary (of CPI) promotes a Kurmi leader, Mr Satish Kumar in Bihar Mr. A. B. Bardhan supports others,. Matters have got murky since Mr Kumar co-sponsored the Feburary 12 Kurmi Chetra Rally for which he has been served notice by the party (but no action has yet been taken.)" 12 फरवरी की "कुर्मी चेतना महारैली" ने न केवल बिहार में एक जबरदस्त राजनैतिक धमाका किया, बल्कि यह घटना राजधानी दिल्ली के समाचार पत्रों में बहुचर्चित रही। अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा जबकि अपनी स्थापना के शताब्दी वर्ष 1994 में सुप्तावस्था में लगती है वहां बिहार के समस्त कुर्मी बन्धुओं ने इतनी अभूतपूर्व कामयाबी और ऐतिहासिक सफलता प्राप्त कर न अपना बल्कि सारे देश के कुरमियों का सिर समाज में ऊँचा किया है और वे वास्तव में धन्यवाद के पात्र हैं एवं उनका यह महान कृत्य देश के अन्य कुर्मियों के लिये अति प्रेरणाप्रद एवं अनुकरणीय है।

जनसत्ता, दिल्ली 22 फरवरी 1994 में इस "कुर्मी चेतना महारैली" के सम्बन्ध में "नीतिश ने बिहार जद अध्यक्ष को पत्र लिखकर लालू की नींद उड़ाई" शीर्षक से यह समाचार प्रकाशित किया गया :

पटना : 21 फरवरी (जनसत्ता)। "लोकसभा में जनता दल संसदीय दल के उपनेता नीतिश कुमार ने बिहार प्रदेश जनता दल के अध्यक्ष रमईराम को एक पत्र लिखकर मुख्यमंत्री लालू यादव की नींद हराम कर दी है। श्री कुमार ने कल शुक्रवार को यह पत्र खुद अपने हाथ से रमई राम को दिया। इस पत्र को लेकर जनता दल के शीर्षस्थ नेताओं में खुसर-फुसर हो रही है। समझा जाता है कि नीतिश कुमार को यह पत्र लिखने की प्रेरणा "कुर्मी चेतना महारैली" से मिली है। इस तरह का पत्र श्री कुमार ने पहले कभी नहीं लिखा था।

पत्र में श्री कुमार ने जनता दल के कार्यकर्त्ताओं की उपेक्षा का सवाल उठाते हुए दल में अपनी स्थिति का भी दुखड़ा रोया है। जानकार बताते हैं कि नीतिश कुमार को मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव के खिलाफ कुर्मियों के क्षोभ का ठीक-ठाक अन्दाजा 12 फरवरी को लगा। इस दिन पटना में 'कुर्मी चेतना महारैली' की गई थी। इस रैली में उमड़े जन--सैलाब और उसमें व्यक्त की गई भावनाओं ने श्री कुमार को स्थिति का भान कराया है। जनता दल के किसी नेता की रैली में मुख्यमंत्री लालू यादव का नाम लेने की हिम्मत नहीं हुई थी। एक नेता ने मुख्यमंत्री के समर्थन में सिर्फ अभी एक ही वाक्य कहा था जब मंच पर से उसे धकिया दिया गया। दर्शकों ने भी मुख्यमंत्री के खिलाफ नारे बाजी की।"

जानकार समझते हैं कि नीतिश कुमार का तेवर इस रैली के बाद से ही बदल गया है। यह पत्र तो शुरूआत है।

ZEE - टी० वी० पर "कुर्मी चेतना महारैली" का प्रदर्शन

महासभा के इस शताब्दी वर्ष में 12 फरवरी 94 की पटना में सम्पन्न हुई को 26 फरवरी 94 के रात्रि प्रोग्राम में स्टेलाईट जी (ZEE) टी वी पर दिखाना अपने आप में एक ऐसी ऐतिहासिक उपलब्धि है जिसमें कुर्मी जाति की चेतना का प्रचार-प्रसार विश्वस्तर पर टेलीविजन के माध्यम तक से किया गया जिसे अनेक देशों में एक साथ देखा गया।

दिल्ली से निकलने वाले अंग्रेजी दैनिक 'दि टाइम्स आफ इंडिया' के 28 फरवरी 1994 के अंक में श्री एन० आर० मोहन्ती का एक लेख, "Boomerang Effect Of Caste Politics" प्रकाशित हुआ। यह भी 12 फरवरी 1994 की पटना में सम्पन्न हुई "कुरमी चेतना महारैली" से सम्बंधित था। उसके कुछ अंश नीचे साभार उद्धृत किये जा रहे हैं :

The politics of vote Bank has a way of springing nasty surprises. **Mr. Laloo Prasad Yadav**, an ardent practitioner of backward caste politics, discovered this bitter truth on February

12, when a close lieutenant of his was hooted down at the **Kurmi Rally in Patna** and forced to apologise for mentioning the contribution of his mentor to the **Mandalite** cause.

Some have suggested that it was a stray incident that would have no visible impact on **Mr. Yadav's** support base. But the build-up for the Kurmi **"Maha-Rally"** over the last several months had a pronounced anti-Laloo slant. Politicians from all factions and parties were associated with it. The fact that **Mr. Rabi Ray,** a former Speaker of the Lok sabha and a senior Janta Dal leader inaugurated the rally, that a CPI MLA was its chief organiser and that **Mr. Nitish Kumar,** an M. P. and a confidant of the chief minister shared the platform with the Laloo-baiters, emphasized a line-up that casteist politicians would shun at their own peril.

Impressive Turn Out : The turn-out at the rally was impressive by any standard. It drew a bigger crowd than the SC/ST rally, **Mr. Yadav** was not invited to address the meeting despite the best efforts of the **Kurmi** leaders close to him suggested a deep-seated disenchantment, with the chief minster. Arguably, the **Kurmis** have no option but to support **Mr. yadav** in the long run, even then, the **"Maha-rally"** with its anti- Laloo bias deserves more than passing mention in any analysis of caste politics in today's politics.

After all, the **Kurmis** are the most prosperous and enlightened section among the backward castes in **Bihar,** which had been the most articulate supporters of the **Laloo regime** during the first three years of his office. It needs recalling that it was Mr. Yadav who gave an impetus to backward caste associations by organising massive rallies in the state capital.....

The **Kurmis** have taken the lead in exposing the charade of the **"social justice"** plank because they feel that they have been denied their due share in the acquisition of power and privilege. There is no denying, however, of the **Kurmi** grievance that the **Yadavs** enjoy a better access to the corridors of power.

2 मार्च 1994 के दिल्ली से प्रकाशित हिन्दी दैनिक **"पंजाब केसरी"** में प्रसिद्ध पत्रकार ब्रिटेन के पूर्व भारतीय राजदूत **श्री कुलदीप नैयर** ने अपने नाम से **"कुलदीप नैयर की डायरी"** में जहां बिहार के मुख्यमंत्री **श्री लालू प्रसाद यादव** की नीतियों की आलोचना की है वहां 12 फरवरी 1994 की पटना में सम्पन्न हुई **"कुरमी चेतना महारैली"** और कुरमी जाति के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किया, वह साभार नीचे उद्धृत हैं :-

"असली चुनौती **कुर्मियों** और **कोरियों** की ओर से उभरती हुई प्रतीत होती है, ये दो पिछड़े वर्ग अभी तक उनके साथ रहे हैं । इन वर्गों की एक संयुक्त रैली हाल में ही पटना में आयोजित हुई थी । जिसमें **पांच लाख** से भी अधिक लोग जुटे थे । उनकी अवहेलना की मुद्रा का प्रमाण इसी तथ्य से मिल जाता है कि जब कुछ लोगों ने इस रैली में **"लालू जिन्दाबाद"** का नारा लगाया तो लोगों ने शोर-शराबा करके उन्हें मौन करा दिया ।

निचली जातियां चाहे जितनी भी निराश क्यों न हों, अभी भी उनसे उम्मीद लगाए हुए हैं । वे समझती हैं कि जब **लालू** अगली बार पुनः सत्ता में आएंगें तो उनके लिये कुछ न कुछ करेंगे । अभी उनकी निराशा उस हद तक नहीं पहुंची कि जिसमें वह उनसे मुंह मोड़ लें ।"

टाइम्स आफ इंडिया न्यू सर्विस में कार्यरत **श्री जनक सिंह** 13 मार्च 1994 के दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी समाचार पत्र **"दि टाइम्स आफ इंडिया"** में फिल्म कलाकार तथा भारतीय जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति

के सदस्य श्री शत्रुघन सिन्हा के श्री लालू प्रसाद यादव द्वारा शासित बिहार की राजनीति पर विचार "BJP To Gain From Laloo's Follies: Shatrughan" शीर्षक से लिखा, उसमें भी 12 फरवरी की पटना में हुई **"कुरमी चेतना महारैली"** का उल्लेख जिन शब्दों में किया वह अंश साभार नीचे उद्धृत हैं :

"BJP Chances : Asked to elaborate his statemnt that the BJP has better wining chances in Bihar now, he said the Janata Dal Chief Minister, Mr. Laloo Prasad Yadav, has made only himself very "unpopular" by giving to the state, "the Worst-Government", his erstwhile supporters have also turned against him. "You should have seen the recent "Maha Kurmi Rally" Several important Kurmi leaders made no bones about their disenchantment with the chief minister they had elected him with great hopes."

इसी बीच अंग्रेजी पत्रिका "INDIA TODAY" के 15 मार्च 1994 के अंक में श्री एफ० अहमद का "Shaking Citadel Shatrughan plus Kurmis equals a Laloo minus" शीर्षक से विस्तार से एक लेख प्रकाशित हुआ, उसमें दिये **"कुरमी महारैली"** सम्बन्धी अंश नीचे साभार उद्धृत किये गये हैं :

"Sinha's Campaign was well-timed, It's the start of Bihar's election year, and Laloo already has a host of problems on his hands. Last fortnight the Chief Minster suffered a major blow to his public image as lakhs of Kurmis converged on Patna for a rally protesting against the "Yadavisation" of Bihar's politics and bureaucracy. The Kurmis, probably the most "Socially forward" of the backward castes, feel they have been excluded from the benefits of reservation quotas, and they made their displeasure apparent. The crowds at the Kurmi Chetna Maha Rally erupted in catcalls at every mention of Laloo's name. Symbolically, the rally was dominated by huge cut-outs of Shivaji and Sardar Patel, who are being claimed by the Kurmis as legendary representatives of their caste, said Nitish Kumar, the Janta dal deputy leader in the Lok Sabha, and a long time contender for the Chief minister's post : This rally is warning to the rulérs in Delhi and Patna.

A hapless Laloo could only plead that it's difficult to please every one. Turning a brave face to his critics, he said the Kurmis' anger was "a good sign, indicating that Backwards and Dalits are rising and becoming conscious of their rights." In fact, in a series of rallies, several castes have served notice that they feel neglected in Laloo's "Mandal Raj."

..........His (Laloo's) Dalit rally, while, impressive, was only half the size of the Kurmis and there are rumbles even in his Muslim constituency........................ with so many challengers at the gates, Laloo seems at a loss for a strategy. According to Janata Dal sources, he is thinking of appointing more Kurmi ministers such gestures are unlikely to cut much ice as the opposition crystallises."

कुरमी चेतना महारैली की खोंचेवालों ने भी वाह-वाह की

"कुरमी चेतना महारैली" की अद्वितीय सफलता के कारण 12 फरवरी 1994 निस्सन्देह कुर्मी समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित करने योग्य अमिट तारीख बन गयी है, इस दिन पटना के गांधी मैदान में दस लाख से अधिक कुर्मियों की उपस्थिति में मंच से कुर्मी नेताओं ने स्पष्ट शब्दों में उद्घोष किया था कि चाहें बिहार या केन्द्रीय स्तर पर सत्ता में, उनकी सतत् उपेक्षा अब बर्दाश्त से बाहर हो गई है । रैली में सम्मिलित विभिन्न दलों के नेताओं

ने तथा अन्य राजनीतिक जातिगत दलों के वरिष्ठ रहनुमाओं और विभिन्न राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर के समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि के पत्रकारों ने भी एक मत से स्वीकार किया है कि इसके पूर्व में किसी अन्य दल या जाति का इतना बड़ा जनसमूह गांधी मैदान और पटना की सड़कों पर उभरकर कभी नहीं आया था ।

विशेषज्ञों का मत है कि उसे महारैली न कहकर महाकुंभ कहना ज्यादा तर्क संगत होगा । रैली की शालीनता लाखों की भीड़ के बावजूद उसके स्वतःरोपित अनुशासन में निहित थी । पुलिस से सहायता लेना तो दूर स्वयं रैली के स्वयंसेवकों ने ट्रैफिक पुलिस की सहायता कर आवागमन को अविरल एवं सुगम बनाये रखा ।

कुर्मी चेतना महारैली के वाहवाही तो हर क्षेत्र से मिली ही पर रैली में उपस्थित खोंचे वालों की प्रतिक्रिया से और कुर्मी जाति के उपेक्षा करने वालों की आंखे खुल जाना चाहिये । गरीब-गुरवा स्तर के ये लोग अपने-अपने खींचे, ठेले पर सजोये या कन्धे पर उठाये, नाना प्रकार की खाद्य-सामग्री, फल आदि के साथ रैली में सहमे-सहमे आये थे । उन्हें पूर्व का कटु अनुभव था कि अधिकांश लोग बिना दाम दिये सामान लेकर, धींगां-मस्ती से रफ्फू-चक्कर हो जायेंगे और पैसा मांगने पर हंगामा खड़ा करेंगे । इस भय से वे सीमित मात्रा में कम दामी सामान ही लाये थे । पर इस महारैली का माहौल ही कुछ और था । न छीना झपटी, न कोई हंगामा । ग्राहक आते, कायदे से सामान खरीदते, दाम देते और हंसी-खुशी चले जाते । उनकी बोली में मिठास और अपनापन प्रकट होता, भैया, बबुआ कहकर सम्बोधित करते । उन्हें अफसोस इस बात का हुआ कि वे खचाखच भरकर सामान क्यों नहीं लाये । एक बड़ी अच्छी कमाई का मौका उनके हाथ से निकल गया । पर जो सुख और अपनापन उस दौरान उन्हें प्राप्त हुआ वह अर्थ-हानि की बात को तुच्छ समझकर भूल गये पर **उस महारैली के सुखद अवसर को ऐसे मौकों पर जरूर याद करेंगे, गुण गायेंगे।**

डा० राम मनोहर लोहियां ने 'हल्ला बोल' का नारा दिया था

वास्तव में 1960 के दशक में **डा० राम मनोहर लोहिया** ने **'हल्ला बोल'** का नारा दिया था । उनके इस नारे का उद्देश्य शोषित जनता को संगठित कर आगे बढ़ाना था । तब डॉक्टर लोहिया ने **''बोल मजूरा हल्ला बोल'', ''बोल किसान हल्ला बोल'', ''बोल बेरोजगार हल्ला बोल'', 'बोल युवाओं हल्ला बोल', ''बोल महिला हल्ला बोल''** आदि नारे इन शोषित वर्गों के लिए दिए थे । डा० लोहिया का यह **'हल्ला बोल'** नारा प्रतीकात्मक था, जिसमें हिंसा और अराजकता का पुट अथवा उद्देश्य नहीं था । तब का **'हल्ला बोल'** न तो प्रतिक्रियावादी था, न उसकी किसी स्तर पर उस काल में आलोचना ही हुई थी । उस काल में इन नारे लगाने वाले जन समूह का नेतृत्व **डा० राम मनोहर लोहिया** और **श्री राज नारायण**, बाद में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री, जनता सरकार, कई बार सड़कों पर करते देखे गये थे। लेकिन उनका यह नारा **'हल्ला बोल'** प्रतीकात्मक ही बन कर रह गया था । **डा० लोहिया** का नारा बामपंथियों के इस नारे से समानान्तर था कि **'जो जमीन को जोते-बोए, वही जमीन का मालिक होए'** । उन्हीं दिनों **राष्ट्रकवि डा० रामधारी सिंह 'दिनकर'** भी जन-शोषण से द्रवित होकर अपनी काव्य-कृतियों द्वारा आह्वान कर रहे थे । उनकी एक सुन्दर कविता की इसी उद्देश्य हेतु रचित एक पंक्ति थी............... **''सिंहासन खाली करो, कि अब जनता आती है ।''**

आज उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी की सरकार है और **श्री मुलायम सिंह यादव, मुख्यमंत्री** है । कुछ तथाकथित अखबारों ने **उत्तराखंड आन्दोलन** को विभिन्न तरह से हवा दी उनके विरोध में **'हल्ला बोल'** अभियान प्रारम्भ किया गया है । और इलाहाबाद वासी कुरमी **उत्तर प्रदेश सरकार के बहुजन समाज पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष, श्री जंग बहादुर सिंह पटेल** का कहना है - **'हल्ला बोल'** का सही मतलब मेरे हिसाब से शोषितों को जागृत करना भर है, ताकि वे अपने शोषकों के खिलाफ एक जुट हो सकें । शोषक किसी भी क्षेत्र में हो सकते हैं - निस्संदेह अखबारों के हाकर और पत्रकार शोषक हो नहीं सकते, इसलिये **''हल्ला बोल''** के दौरान उन पर हमलों का क्या औचित्य !

गांधी मैदान पटना : 12 फरवरी 1994 को "कुरमी चेतना महारैली" द्वारा सर्वसम्मति से पारित प्रस्तावों के सूची :-

1. सामाजिक न्याय में हमारी पुनः आस्था है, किन्तु सत्ता में हमारी भागीदारी महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी हो ।
2. सामाजिक न्याय के संघर्ष और उसकी उपलब्धियों में हमारी हिस्सेदारी प्रभावकारी हो ।
3. सामाजिक उत्थान के लिए एक सामाजिक ट्रस्ट का गठन किया जाय ।
4. वृहत्तर कुर्मी समाज के निर्माण के लिये शाखान्तर विवाह ही किया जाए ।
5. समावेश योग्य जाति को कुर्मी जाति में सम्मिलित किया जाए ।
6. छोटा नागपुर एवं संथाल परगना क्षेत्र के कुड़मि (महतो) को जन-जाति घोषित किया जाए ।
7. दलित एवं शोषित वर्ग के साथ हमारा अटूट सम्बन्ध है जिसे और मजबूत किया जाए ।
8. कृषि को उद्योग का दर्जा दिया जाए ।
9. कुर्मी रेजिमेन्ट की स्थापना की जाए ।
10. महिलाओं के लिये महिला समाज को पूर्ण रूप से शिक्षित किया जाए ।
11. विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता दी जाए ।
12. महिलाओं को राजनैतिक हिस्सेदारी में प्राथमिकता दी जाए ।
13. छात्रों एवं युवकों के लिए -
    (1) राजनीति के प्रति छात्रों में जागरूकता पैदा की जाए ।
    (2) शिक्षा के प्रति छात्रों में अधिक-से-अधिक रूझान पैदा की जाए ।
    (3) छात्रों के लिये अधिकाधिक छात्रावासों का निर्माण किया जाए ।
14. संविधान में संशोधन कर आरक्षण की सीमा 50% से बढ़ाई जाए ।
15. युवकों को सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों में आगे लाया जाए ।
16. पूर्व विधायक श्री पकंज कुमार सिन्हा की मुक्त के लिये केन्द्रीय सरकार पर पूर्ण रूप से दबाव डाला जाए ।
17. आपसी वैमनस्य दूर करने के लिये सद्भाव समिति का गठन किया जाए ।
18. तिलक-दहेज को समाप्त किया जाए ।
19. प्रत्येक कुर्मी अपने नाम के पीछे पटेल लिखे ।
20. पटना के किसी उपयुक्त चौराहे पर छत्रपति शिवाजी की अश्वारोही आदमकद प्रतिमा लगाई जाए ।
21. कुर्मी बहुल आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र को अनारक्षित किया जाए ।
22. नालन्दा खुला विश्वविद्यालय को नालन्दा विश्वविद्यालय बनाया जाए ।
23. पटेल सेवा संघ, बिहार के आवंटित भू-खंड़ पर सरदार पटेल राष्ट्रीय एकता संस्थान भवन का निर्माण किया जाए ।

कुर्मी चेतना रैली-हैसियत की हुंकार

'माया' पत्रिका के 15 मार्च 1994 के अंक के उपर्युक्त शीर्षक से श्री विकास कुमार झा का एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ । श्री झा के अनुसार 12 फरवरी 1994 को पटना में आयोजित कुर्मी-चेतना-रैली ने मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव के लिये चिन्ताजनक स्थिति उत्पन्न कर दी है । क्योंकि बिहार की इस ताकतवर पिछड़ी कुर्मी जाति का श्री लालू यादव से मोहभंग हो चुका है । जो अन्य महत्वपूर्ण विवरण श्री झा ने दिये है उसके कुछ अंश यहां साभार उद्धृत है :

"देश की जनता अभी तक शिवाजी महाराज और सरदार बल्लभभाई पटेल को राष्ट्रनायक के रूप में ही जानती थी, लेकिन 12 फरवरी को पटना के गांधी मैदान में आयोजित कुर्मी जाति की चेतना-रैली ने बताया कि दोनों महापुरुष जाति के कुर्मी थे । रैली ने लगे हाथों, पिछड़ी जाति की राजनीति के स्वयंभू चौधरी बने बैठे मुख्यमंत्री लालू यादव को भी यह बता दिया के कुर्मी जाति को अगर वे सत्ता में बराबर की हिस्सेदारी नहीं देंगे और हल्के ढंग से लेंगे, तो उनकी पिछड़ी जाति की राजनीति की किलेबंदी ध्वस्त हो जायेगी ।"

दरअसल, कुछ ही दिन पहले पटना के इसी गांधी मैदान में लालू यादव ने ऐंड़ी-चोटी का पसीना एक कर तथा तमाम सरकारी संसाधन झोंककर हरिजन-आदिवासियों की रैली की थी । लेकिन उस रैली के थोड़े ही दिन बाद बगैर किसी विशेष संसाधन के आयोजित "कुर्मी-चेतना रैली" ने यह साबित कर दिया कि लालू की रैली एक दम फीकी थी। लालू यादव के राजनीतिक मित्र और जद सांसद नीतिश कुमार, जोकि कुर्मी जाति के हैं, ने रैली मंच से कहा, "सामाजिक न्याय को उपेक्षा की प्रवृत्ति छोड़नी होगी ।"

कुर्मी चेतना-रैली का उद्‌घाटन करने पूर्व लोकसभाध्यक्ष श्री रवि राय भाजपा सांसद, श्री विनय कटियार और जद सांसद रामपूजन पटेल भी इस विशेष अवसर पर पहुँचे थे । सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि इस रैली में श्री लालू प्रसाद यादव को आमंत्रित नहीं किया गया था । जाहिर है, ऐसा जानबूझ कर किया गया था, ताकि श्री लालू यादव यह समझें कि पिछड़ी जाति की इतनी विशाल रैली उनके बगैर भी संभव है । रैली में कुर्मी जाति के उत्थान के लिये तेईस प्रस्तावों को पारित किया गया, जब पिछले कई महीनों से पाक-परस्त कश्मीरी आतंकवादियों के शिकंजे में फंसे बिहार के भूतपूर्व कांग्रेस विधायक श्री पंकज कुमार सिन्हा की पत्नी, प्रतिभा सिन्हा मंच पर आकर रो पड़ी। उल्लेखनीय है कि पंकज कुमार सिन्हा जाति के कुर्मी हैं । श्री पंकज कुमार सिन्हा बाद में मुक्त करा दिये गये ।"

कुर्मी जाति के लोग मुख्यतः खेतिहर रहे हैं । बिहार की राजनीति में श्री लालू यादव के उदय के बाद कुर्मियों ने आँख मूँदकर लालू यादव को समर्थन दिया । पर अरसे से कुरमी जाति अपनी उपेक्षा का अहसास करती रही कि लालू यादव कुर्मियों को हाशिये पर रखे हुये हैं । इस भ्रम को तोड़ा जाय कि लालू यादव सारी पिछड़ी जातियों के एक छत्र नेता हैं । इसलिये लालू यादव को दर किनार कर उन लोगों ने यह विशाल रैली सफलतापूर्वक बेहद अनुशासित तरीके से आयोजित की । अनुशासित इस मायने में कि लालू यादव द्वारा पटना में आयोजित अब तक की सभी रैलियों के मौके पर जहाँ पूरे पटना में अस्त-व्यस्तता की नौबत आ जाती थी, वहाँ कुर्मी - रैली के दिन पटना में अपार भीड़ के बावजूद रैली के कार्यकर्ता भीड़ और वाहनों को शुरू से आखिर तक नियंत्रित करते रहे । रैली के दौरान मंच पर बस एक जनता दल विधायक मधुसिंह को छोड़कर किसी वक्ता ने न तो अलोचना में और न हीं प्रशंसा में लालू यादव का नाम लिया । पर जब विधायक मधुसिंह ने भी मंच पर अपने भाषण के दौरान यह कहा कि लालू यादव ने बिहार में पिछड़ों का सम्मान बढ़ाया है, तो रैली में मौजूद लोग उत्तेजित हो उठे और मुख्यमंत्री के विरुद्ध नारेबाजी शुरु कर दी । विधायक मधुसिंह को भी मंच से उतारने की मांग होने लगी । इस तरह जो आक्रोश सांकेतिक रूप में व्यक्त किया जा रहा था, वह अंततः खुलकर सामने आ ही गया । कुर्मी रैली की सफलता से जाहिर है, लालू यादव के लिये गंभीर चिंता की स्थिति उत्पन्न हो गई है ।

आगामी. बिहार विधान सभा चुनाव से पहले कुर्मियों को मना पाने में सचमुच लालू यादव विफल रहे, तो यह बेशक उनके लिये मंहगा पड़ेगा । कुर्मियों की शिकायत है कि प्रदेश की जनसंख्या में यादव 14 प्रतिशत हैं, तो कुर्मी भी कुल आबादी के लगभग 14 प्रतिशत हैं । इसलिये सत्ता में बराबर का हिस्सा यादवों की तरह कुर्मियों को भी मिलना चाहिए । बहरहाल देखना है कि जातीय आंकड़ों का राजनैतिक तालमेल लालू यादव कैसे बिठाते हैं और बिठा भी पाते हैं या नहीं ।

कुर्मी चेतना महारैली के सफलता की कहानी-बिहार के सभी प्रमुख समाचार पत्रों के अपने मुख पृष्ठ पर काफी विस्तार के साथ छपी । कुछ मुख्य समाचार शीर्षकों की बानगी :

1. कुर्मी महारैली ने धनघोट की (नवभारत टाइम्स)

2. जबर्दस्त एक जुटता दिखायी कुर्मियों ने ('आज' दैनिक)

3. सत्ता में भागीदारी की उपेक्षा बर्दाश्त नहीं-कुर्मी रैली में जन सैलाब उमड़ा (हिन्दुस्तान)

4. सिद्ध हो गया महारैली नहीं महारैली (चेतना विचार-धारा)

5. कुर्मी समाज ने चेतना शंख फूंका (सन्ध्या प्रहरी)

6. Govt warned against ignoring interest (The Hindustan Times).

7. Kurmi leaders call for share in power (The Sunday Times).

पटना की "कुर्मी चेतना महारैली" का स्पष्ट सन्देश

पटना के 26 हेक्टर में फैले गांधी मैदान में सम्पन्न हुई "कुरमी चेतना रैली" हर दृष्टि से बड़ी सफल रही, ऐसा मत उसे देखने का ऐतिहासिक अवसर प्राप्त करने वाले सभी प्रत्यक्ष दर्शकों का है। प्रत्येक दर्शक का कहना है कि महारैली में कुरमियों की भीड़ 10 लाख से कम न थी और कई लोग तो दावे से 15 लाख से कम नहीं आँकते हैं। उस दिन रैली में उमड़े कुरमियों के जन-सैलाब और उसमें तथा गांधी मैदान मंच से व्यक्त भावनाओं ने न केवल बिहार वासी कुरमियों का चित्त प्रफुल्लित और आनंदित किया, अपितु समस्त देश के कुरमी बन्धुओं को इस साहसपूर्ण ऐतिहासिक महारैली से बड़े गर्व का अनुभव हुआ और वे अपने इन बन्धुओं के इस अद्वितीय सफल चेतना एवं एकता प्रदर्शन से अत्यन्त प्रेरित तथा द्रवित अनुभव करने लगे। हम उन सब आयोजकों का भी साधुवाद करते हैं जिनके सतत प्रयासों से यह चेतना भावना फैल सकी और महारैली इतनी अधिक सफल हो सकी है। इस "कुर्मी चेतना महारैली" ने केवल पटना के श्री लालू प्रसाद यादव को तो झकझोर कर रख ही दिया, बल्कि इसका स्पष्ट सन्देश केन्द्रीय सरकार तक भी पहुँचा दिया है। सड़क पर निकलते समय, महारैली का स्वर, अथवा इसके नेताओं द्वारा गांधी मैदान के मंच से प्रस्तुत उद्‌गारों से स्पष्ट पता चल रहा था कि कुर्मियों की जब सरकार द्वारा अवहेलना की गई है और उनका क्षुब्ध और आहत मन अब आगे इसे बरदाश्त नहीं करेगा। महारैलियाँ पटना में अन्य जातियों ने भी की थीं पर इसकी विशालता भाग लेने वाले अनुशासित और लोगों का दो टूक शब्दों में कथन और देश के हिन्दी एवं अंग्रेजी के समाचारपत्रों में नित्यप्रतिका विवरण प्रस्तुतीकरण समीक्षा और बाद की सम्बंधित बातें जितनी इस 'कुर्मी चेतना महारैली' की रही हैं उसकी तुलना में अन्य रैलियों का विवरण कम ही छपा था।

बिहार के कुर्मियों का सही दावा कि 1980 से 1990 तक सामाजिक न्याय यानी मंडल आयोग के लिये किये जा रहे संघर्ष में कष्ट कुर्मी लोग सह रहे थे और जब सत्ता मंडलवादियों के पास आयी तो उसका सारा सुख यादव लोग उठा रहे हैं, जबकि कुर्मियों की कुल आबादी बिहार की कुल आबादी की 14 प्रतिशत है और लगभग उतनी ही आबादी यादवों की बतायी जाती है पर वे कुर्मियों से कई गुना अधिक लाभ उठाते हैं और ये कुर्मी अब तक श्री लालू प्रसाद यादव का मुंह ताकते रह जाते हैं। उत्तर प्रदेश में भी काफी कुरमी हैं पर सत्ता मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह के हाथों में है। प्रदेश में सर्वत्र यादवों का बोल-बाला कायम है। उत्तर प्रदेश

में भी 19 नवम्बर 1994 को **"कुर्मी महारैली"** होने जा रही है जिसके संयोजक **हैं डा० सोनेलाल पटेल ।**

कोई शक नहीं कि इस रैली द्वारा कुर्मियों ने मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव के खिलाफ आक्रोश व्यक्त किया । यह असन्तोष पहली बार उस समय साफ-साफ दिखाई पड़ा जब गत वर्ष पटना लोकसभा उपचुनाव में कुर्मी मददाताओं के एक बड़े समुदाय ने जनता दल का साथ देना छोड़ दिया । इसके बावजूद श्री लालूप्रसाद यादव ने कुर्मियों के लिये विशेष कुछ नहीं किया । उन्होंने हरिजनों की ओर अधिक ध्यान दिया । वे हरिजनों के चौदह प्रतिशत वोट को यादव-मुसलमान वोट (28 प्रतिशत) से जोड़कर दलित-मुसलमान- यादव (DMY) बल पर निश्चिंत हो जाना चाहते थे । इस बीच 'कुर्मी चेतना महारैली" का राजनैतिक धमाका हुआ, देश के सभी समाचार पत्रों ने इसे एक स्वर से अभूतपूर्व कहा। **'जनसत्ता'** समाचार-पत्र, दिल्ली, 19 फरवरी 1994 के अनुसार **"लालू अब नाराज़ कुर्मियों को मनाने की कोशिश में लगे"** शीर्षक समाचार में लिखा है- **"मालूम हो कि बिहार की दबंग पिछड़ी जाति, कुर्मी, लालू के "यादवीकरण"** से नाराज हैं । **कुर्मी महारैली** का स्वर, प्रारम्भ से ही लालू विरोधी रहा। **"कुर्मी चेतना रथ"** पर भी यह नारा बड़े-बड़े साफ अक्षरों में लिखा गया था ।

"वक्त गुलशन पर पड़ा तो खून से सींचा हमने,
बहार आई तो कहते हैं तेरा काम नहीं ।"

महारैली से पहले **"कुर्मी चेतना रथ"** राज्य भर मे बड़े जलूस के रूप में निकाले गये जिसमें **छत्रपति शिवाजी महाराज** और **लौहपुरूष** सरदार वल्लभ भाई पटेल के बड़े-बड़े कट-आउट्स सजाये गये थे । जहाँ से रथ गुजरता था वहाँ के युवा कुरमीजन अपने-अपने वाहनों में अनुशासित ढ़ंग से रथ के आगे-पीछे चलते साथ में हजारों की संख्या में पैदल यात्रीगण नारे लगा रहे थे, **"गर्व से बोलो कि हम कुर्मी हैं ।"** इस नारे की गूंज समाचार पत्रों के माध्यम से सारे देश में फैल गयी । स्वतः कुर्मी जनों ने **"कुर्मी चेतना रथ"** के मार्ग में प्रमुख स्थलों पर सुसज्जित द्वार-निर्माण किये थे । पटना राजधानी की सजावट और कुर्मी महापुरुषों के नाम पर बनाये स्वागत-द्वार अत्यन्त मनमोहक और प्रेरणा प्रद थे । सब तरफ लोगों के मुख से इस महारैली की प्रशंसा सुनने को मिलती थी ।

पटना कें प्रसिद्ध **गांधी मैदान** के मंच पर महारैली की अध्यक्षता सी. पी. साई के विधायक श्री सतीश कुमार ने की तथा जनता दल के किसी नेता को, यद्यपि वे ही सबसे अधिक मंच पर थे, मुख्य मंत्री **श्री लालू प्रसाद यादव** का नाम तक लेने की हिम्मत नहीं हुई थी । एक जद विधायक मधुसिंह ने श्री लालू प्रसाद का नाम लिया ही था कि उन्हें मंच से धकिया कर हटा दिया गया । भीड़ से मधुसिंह के खिलाफ आवाजें आई । (देखिये **'जनसत्ता'** दिल्ली, 19 फरवरी 94 अंक)।

मंच पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के विधायक की अध्यक्षता में **बजरंग दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं सांसद श्री विनय कटियार** तथा जनता दल के सांसद **श्री नीतीश कुमार एंव श्री रामपूजन पटेल, भारतीय जनता पार्टी के सांसद श्री वृषिण पटेल** आदि अनेक विभिन्न पार्टियों के विधायकों और अन्य नेताओं का एक साथ जमा होना, अपने में **'राष्ट्र के कर्णधारों के लिये'** इस जाति का स्पष्ट संदेश था तथा **यह समागम अपने में एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक उपलब्धि समझी जायेगी । जनतादल के** संसदीय दल के उपनेता, **श्री नीतिश कुमार** को भी महारैली में उपस्थित दर्शकों और भाग लेने वालों का रुख और आक्रोश देखकर अपने भाषण में कहना पड़ा कि इस महारैली का संदेश स्पष्ट है कि पटना और दिल्ली की राज-गद्दी पर बैठे लोग अब इस विशाल जाति की और अधिक अवहेलना न कर सकेंगे । लोकसभा के पूर्व स्पीकर श्री रवि रे भी मंच पर विराजमान थे। **श्री विनय कटियार** ने अपने भाषण में कहा है कि इस विशाल भीड़ और महारैली की अन्य गति विधियों को देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि **-"कोई भी जाति इस जाति के साथ आगे अन्याय न कर सकेगी । महारैली में जातीय-उत्कर्ष के लिये कई प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किये गये ।"**

'जनसत्ता' समाचार के 19 फरवरी 94 के अंक में यह भी लिखा था "मुख्य मंत्री लालू प्रसाद 15 फरवरी को पटना में सरकारी पूजा के अवसर पर **कुर्मियों के पटेल छात्रावास** गए । वहाँ के छात्र, राजनीतिक नज़रिए से जागरूक तथा

दबंग रहे हैं । जानकार सूत्रों के अनुसार मुख्यमंत्री लालूप्रसाद कुर्मी जाति के नेताओं के लिये कुछ करने वाले हैं । मालूम हो कि कुर्मी जाति का बिहार मंत्रिमंडल तथा बोर्ड कारपोरेशन में यादवों की अपेक्षा काफी कम प्रतिनिधित्व है ।

"कुर्मी चेतना महारैली" के सम्बन्ध में हिन्दी और अंग्रेजी के दिल्ली और पटना के समाचार पत्रों में अक्सर 12 फरवरी 1994 के पूर्व से और बाद में भी काफी दिनों तक समाचार-विवेचना, समीक्षायें आदि प्रकाशित होते रहे हैं । उसी श्रंखला में नई दिल्ली के अंग्रेजी अखबार 'दि टाइम्स आफ इंडिया' के 16 फरवरी 1994 के अंक में, एक लेख छपा, जिसमें कुर्मियों के इतिहास सम्बन्धी यह अनर्गल बात लिख दी गई कि **"बीसवीं सदी के प्रारम्भ में, जनगणना-आँकड़ों से कुछ कुरमी समुदायों को 'जनजातियों' और यहाँ तक कि "आपराधिक प्रवृत्ति वाली जातियों" में वर्गीकृत किया गया है.... एक बृहत कृषक वर्ग की संरचना भ्रान्तिपूर्ण उच्चारण-समानता पर आधारित कुर्मी एवं कुनबी के मध्य की गई** । इस अति आपत्तिपूर्ण लेख का रेखांकित अंश सहित, पाठकों के सूचनार्थ यहाँ नीचे मूल अंग्रेजी में साभार उद्धृत किया जा रहा है :

Creamy Layer turns Sour : By Arvind N.DAS

THE term "Kurmi" is said, to derive from the tribal-peasant totemic symbol of the tortoise (Kurm) and in the Census records of the early twentieth century, **some segments of Kurmis were classified as "tribes"**. and even criminal tribes." However, not only did the Kurmis get generally peasantised but a wider agrarian community was sought to be devised on the basis of the **dubious phonetic similarity between Kurmi and Kunbi.**

इस लेखक को उपर्युक्त लेख पढ़कर बड़ा दुःख हुआ, विशेष कर जब वह बिल्कुल निराधार, असत्य तथा कुर्मी जाति के उज्ज्वल इतिहास पर असत्य की कालिमा पोतने जैसा था । इस लेखक ने संबंधित समाचार पत्र के सम्पादक के नाम तुरन्त पत्र लिखा, जो कि मूल अंग्रजी में नीचे, पाठकों के सूचनार्थ सम्पूर्ण उद्धृत किया जा रहा है :

February 25, 1994

Editor,
The Times Of India,
7, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi - 110002.

Dear Sir,

Apropos **Mr. Arvind N. Das's Article,** entitled **"Creamy layer turns sour"**, appeared, under **"News Analysis"** in the New Delhi edition of your esteemed Newspaper,dated 16th Feb. 1994.

While describing and commenting on the disciplined **maha-rally,** of over 10 lakhs **Kurmis** at Patna, the author has also casually mentioned about the history of **the origin of the Kurmi caste,** as under:-

"The term **'Kurmi'** is said to derive from the tribal - peasant totemic symbol of the tortoise **(Kurm)** and in the Census records of the early twentieth Century, **some segments of Kurmis**

were classified as tribes and even criminal tribes": However not only did the Kurmis get generally peasantised but a wider agrarian communtiy was sought to be devised on the basis of the dubious phonetic similarity between Kurmi and Kunbi.

The above underlined description about the **Kurmi caste,** is absolutely wrong, malicious and baseless, either imaginary or written banking upon some unreliable source like this article of the author, particularly in respect of the historical aspect of the caste.

I wish to bring to your kind notice the grave harm, which the above description of Mr.Das has done to the Kurmi caste in general, which are over 18 crores in the country , known as **Kurmi, Kunbi, Kanbi, Kapu, Kamma, Kurma, Reddy, Patidar, Patel and Maratha and to lower the morale of their members, in the society, which is so sensitive to caste status and its history.**

You are requested to kindly go through the following facts to reveal what is historically correct about **Kurmi caste** and how much Mr. Das erred in his said narration and accordingly please publish a suitable correction in your esteemed Paper under the same Column to prevent further spreading of its harmful effect :-

1. **Encyclopaedià Britanica, Vol.13, First Edition, Page 57 States :**
   "**Kunbi,** 'house holder ' the great agricultural caste of western India (Post Vedic Sanskrit **Kutumbika,** which may be sanskritised form of an aboriginal word The name becomes **Kurmi** in the North where the caste is numerous along the Ganges and to the South of that river. the **Kunbi** corresponds to **Kapu** of the Telegu country in Madras, to many castes elsewhere. The **Maratha** is really upper class or **Kunbi,** who in some parts of decan forms an actual majority of population.

2. **Bombay Gazetteer, Belgaun Vol xxi :**
   "**Kunbis** . . . . . . they have two hundred and ninety two surnames. Of the whole number, one hundred and two trace their origin to the Moon, seventy eight trace their origin to the Sun, and eighty one to go to the Brahma. The ninety nine remaining surnames are said to belong to miscellaneous tribes "

3. **Census Report : Bombay Presidency & Central Provinces**
   "These **Kurmis** and **Kunbis** are in reality one class of people, and yet, are known in various parts of the country by these separate, designations and under them are sub divisions into numbers, tribes, some of which do not intermarry. they are very industrious and persevering community thrifty and frugal, and living in the enjoyment of health and much social comfort".

4. **E.T. Dalton 's "Descriptive Ethnology of Bengal :**

"In the province of Chhota Nagpur, the ancestors of these people now called **Kurmis,** appear to have obtained a footing among the aboriginal tribes at a very remote period, and in more than one part of Manbhum have supplanted them"

5. **Syed Siraj Ul Hassan ["The Castes and Tribes of H.E. The Nizam's Dominions" Vol. I. printed by The Times Press, Bombay, 1920]**

Chapter LV: page 370

"**Kurmi, Kurmi Kshatriya, Kunbi :-** a very large landholding and cultivating caste of Northern India, supposed to have come into these dominions as soldiers early in the Seventeenth Century. During the wars of Aurangzeb with the Bijapur and Golconda Kingdoms, and subsequent with the Maratha, they enlisted in Moghal army and held posts of honour as Hajaris, Subedars and Jamadars, or as Commandants, of different forts and districts which were conducted and annexed by the Moghals. Since their disbandment, after the death of Aurangazeb, they have settled down as peaceful cultivators, their ranks being recruited by fresh immigrants from upper India.

Origin : The **Kurmis** of the State allege that they are the descendents of the well known **Kshatriya dynasties** of early Indian tradition, and in support of this claim, refer to the fact that the term **'Kurmi'** was born, as a title, by the prince **Vivashwan (Son of Manu)** and Sharyati of the **Solar race** and by the **Lunar kings Yadu** and **Kuntibhoja.** [Skanda Puran, Sahyadri Khand Adhyaya 3]. Please note that Mr. Hassan was a Muslim, one of the Judges of H.E.H. The Nizam's High Court of Judicature and was appointed Census Commissioner by Nizam for Hyderabad State.

6. Census Commisioner General of India in 1931, agreeing to the petition of **Kurmis** wrote to all the Provincial Census Commissioners to let the **Kurmis** be enumerated as **"Kurmi Kshatriyas",** if they so wish and accordingly it was done. Mr. Das at least should go through the Census reports of North Indian Provinces for the year 1931.

7. **Imperial Gazetter of India, New Edition, Vol. V. Pages 97 and 98, Ahmedabad District :**

"There is no real difference of caste between **Kunbis** and **Patidars,** though **Patidars** will not now intermarry with ordinary **Kunbis** ... Next in position to the **Kunbis** are the Rajputs".

8. **Bombay Presidency & Central Provinces Kurmis**

"The words **Kunbi** an **Maratha** are frequently used indiscriminately in the Poona District. The **Kurmis (Marathas)** and **Kunbis** are in reality one class of people The **Kunbi** is fond of asserting his independence .The following are some of the proverbs, recorded

by British Census Commissioners :-

"Where it thunders the Kunbi is landlord"
"Crores follow Kurmis, Kurmis follow none"

9. **'Kurm'** son of **'Gritsmad',** both son and father were **Vedic Rishis**. Among the 18 Purans, one is **'Kurm' Puran**.

I think the above 9 examples are sufficient to give glimpse about the **Kurmis & Kunbis** in different states of India and to contradict adequately the two wrong version (1) **Kurmis** were classified as "tribes" and even "Criminal tribes " and (2) . . . . dubious phonetic similarity between **Kurmi and Kunbi.** If the author is an honest historian and open minded person he will accept his grave follies and set them right by issuing a correction.

For your information, I wish to mention here that **Kurmis** have their Social / Caste organisation, which is called **"Akhil Bhartiya Kurmi Kshatriya Mahasabha".** It was founded in 1894, at Lucknow, U.P. and it is a registered body . Since then it has completed 100 years, so this is the Centenary year of the Organisation. It is very shocking to read such malicious article, although we know that it may not be the intention of your esteemed News paper . You are to tell the truth fearlessly and freely . During the last 100 years, 37 **Conferences** of this Organisation have been held in various parts of the country and following eminent Indians, who were **Kurmis** have presided them:

1. **Barrister V. Naggappa, Member, Legislative Council, Mysore.**
2. **Barrister C.V. Naidu, Nagpur High Court, Nagpur.**
3. **Prof. J. C. Swaminarayan, Maths. Dept., Gujarat College, Ahemdabad.**
4. **Shri. Vithal Bhai J Patel, President (Speaker) of Central Legislative Assembly of India (Elder brother of Sardar Patel)**
5. **H. E. Sir Sahu Chhatrapati Sahuji Maharaj of Kolhapur.**
6. **Barrister Sampat Rao Gaekward (Younger brother of the Maharaja of Baroda).**
7. **H.E. Sir Tukaji Rao Pawar, Maharaja Dewas (Senior)**
8. **H. E. Khase Saheb Pawar, Maharaja of Dewas (Junior)**
9. **Dr. Punjab Rao Deshmukh, former Cabinet Minister Govt. of India, Founder President, Bharat Krishak Samaj (Regd.) New Delhi .**
10. **Dr. Khub Chand Baghel, former M.P. Raipur .**
11. **Mr. Dahya Bhai Vallabh Bhai Patel, former M. P. Gujrat. (Son of Sardar Patel)**
12. **Mr. Bal Shouri Reddy - Editor, Hindi Magazine 'Chanda Mama' Madras.**
13. **Mr. R. H. Amin, former M. P. Surendra Nagar, Gujarat.**

Some of these names I have mentioned above are well known personalities and so Mr.

Das should realise his folly that the caste of these great men can not be **"Criminal tribe".** I hope that you will refer my letter to the author of the said article and set right at the earliest whatever grave harm has been done, by his issuing a suitable correction of his article in your News Paper, the **Kurmis** are of **'Kshatriya Varn'** and have been mainly agriculturists since time immemorial.

Incidently Rana **Jang Bahadur Singh,** your predecessor in the years 1955-57 happens to be of the same **Kurmi** caste . Now about 93 years old ailing **Rana Sahib** is in Bombay with his daughter and he would also be shocked to read in his own News Paper about his own caste. Thanks God, his eye sight has become so weak that he might have not read it, thus saved being shocked badly, otherwise he could have also written to you. **Rana Sahib's** younger brother late **Shri Prithipal Singh** founded **Deptt. of Journalism in Punjab University, Chandigarh** and after his demise **Punjab** Govt. has set up a **Chair of Journalism** in his memory . Another reputed and elder journalist and former Editor of Hindustan, New Delhi, **Shri Chandulal Chandrakar,** a M. P. and Congress Spokesman is also a Kurmi from Raipur, (M. P.) **Mr. Maheshwar Dayal Gangwar,** now- a- days probably Editor of **Sunday Times, Delhi** and formerly **Dy. Editor** of your group Hindi Magazine, **"Dinman"** is a **Kurmi** from Shahjahanpur (U.P.). Can you still believe that all these well known Editors belong to **Kurmi caste,** which as per Mr. Aravind N. Das is **criminal tribe** as he tried to certify in his article.

I'am the **President** of the **"Kurmi Kshatriya Samaj, Delhi (Regd)** and about 1,00,000 Kurmis reside in Delhi State. So all of us will be thankful to you and to your **Paper,** if you take timelv action and publish the correction at the earliest.

Thanking you,
Yours. Sincerely

sd/-

(Dr. Dilawar Singh Jaiswar)
President,
Kurmi Kshatriya Samaj, Delhi (Reg.)

cc to: **Mr. Arvind N.Das** of The Times of India, News Service, New Delhi.

अखिल भारतीय कूर्मिक्षत्रिय महासभा

ALL INDIA KURMIKSHATRIYA MAHASABHA

डा० बलिराम सिंह
अध्यक्ष

जे० पी० कनौजिया
महामंत्री

के० के० वर्मा
कोषाध्यक्ष

मुख्यालय
118/4 साइट नं० 1, किदवई नगर
कानपुर–208011

Sub:- Classification of Kurmis as Tribes and even Criminal Tribes by A. N. Das in News Analysis published on 16-2-1994.

Dear Sir,

I would like to draw your kind attention to the news in your esteemed newspaper dated 16-2-1994 by Mr. Arvind N. Das under News Analysis entitled ' Creamy layer turns sour' describing Kurmis community as Tribe and even Criminal Tribe . The contention of Mr. Das is not only humiliating but a slur to degrade the Kurmi community in the eyes of society, which is very sensitive.

The article of Mr. Das is not only defamatory but also injures the feeling of about 180 Millions of Kurmis residing through the lenght and breadth of India. I would request you to please contradict suitably the article to avoid legal action against your esteemed newspaper as well as Mr. Das . A photocopy of the letter dated 25-2-1994, already addressed and sent to you by registered post, by Dr. Dilawar Singh Jaiswar,President of our Delhi State Unit is also enclosed for your perusal with the request to please apprise of the action taken on the letter .

Thanking you in anticipation

Yours faithfully
Sd/-
(J. P. Kannaujia)
Secretary-General

Enc:- Six

Copy to:
1. **Mr. Arvind N. Das,** The Times of India News Service, New Delhi with the request to please take suitable action and publish contradiction of false and defamatory information so published against Kurmis to avoid sour taste of legal proceedings.
2. **Dr. Dilawar Singh Jaiswar, President, Kurmi Kshatriya samaj, Delhi State.**

Sd/-
(जे० पी० कनौजिया)
महासचिव

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 'दि टाइम्स आफ इण्डिया' नई दिल्ली, के 28 फरवरी 1994 के अंक में पृष्ठ 12 पर 'लेटर्स टू एडीटर' कालम में इस लेखक के उपयुक्त पत्र का जो सारांश छापा, उसे मूल अंग्रेजी में ही, नीचे ज्यों का त्यों साभार उदधृत किया जा रहा है, किन्तु महामंत्री श्री जे० पी० कनौजिया के पत्र का क्या उत्तर समाचार पत्र ने उन्हें भेजा या न भेजा यह अब तक ज्ञात नहीं हुआ है ।

The Times of India
New Delhi.
Dt. 28-01-94

ALL ABOUT KURMIS

Sir- **Mr. Arvind N. Das** in his article. **"Creamy Layer Turns Sour"** (February 16) has also metioned the history of the origin of the **Kurmi caste.** The Encyclopaedia Britannica states that **Kunbi** is a house holder, the great agricultural caste of western India (post-vedic sanskrit **Kutumbika,** which may be a sanskritised form of an aboriginal word.). The name becomes Kurmi in the north.

Kunbi corresponds to **Kapu** of the **Telugu** country in **Madras,** and to other castes elsewhere. The **Maratha** is really an upper class **Kunbi,** who in some parts of Deccan forms a majority of the population.

The Bombay Gazetteer says that "Kunbis trace their origin to the **Moon.** the **Sun,** and **the Brahma."** The Census report of Bombay Presidency and Central Provinces says, "The **Kurmis** and **Kunbis** are in reality one class of people, and yet are known in various parts of the country by these separate designations. They are a very industrious and persevering community, thrifty and fruga!"

E. T. Dalton in his "Descriptive Ethnology of Bengal says. "In the province of Chhota Nagpur, the ancestors of these people now called **Kurmis,** appear to have obtained a footing among the aboriginal tribes at a very remote period, and in more than one part of Manbhum have supplanted them."

Syed Siraj Ul Hassan says in "The Castes and Tribes of H. E. The Nizam's Dominions" that **"Kurmi, Kurmi Kshatriya, Kunbi,** are suposed to have come into these dominions as soldiers early in the Seventeenth Century. During the wars of **Aurangzeb** with the **Bijapur** and **Golconda** kingdoms, and subsequent with the **Maratha,** they enlisted in the Moghal army ...Since their disbandment, after the death of **Aurangzeb,** they have settled down as peaceful cultivators."

According to the **Imperial Gazetteer of India.** There is no real difference of caste between **Kunbis and Patidars,** though **Patidars** will not now intermarry with ordinary **Kunbis**. About the **Bombay Presidency** and **Central Provinces Kurmis** it is said "The words **Kunbi** and **Maratha** are frequently used indiscriminately in the Poona district The **Kurmis (Marathas)** and **Kunbis**

are in reality one class of people. The **Kunbi** is fond of asserting his independence. "

I think the above examples are sufficient to provide insights about the **Kurmis** and **Kunbis** in different states of India and to contradict the assertion that the **Kurmis were classified as "tribes" and even "criminal tribes" and that there is a dubious phonetic similarity between Kurmi and Kunbi.** For your information, I wish to mention here that **Kurmis** have a social / caste organisation, the **"Akhil Bhartiya Kurmi Kshatriya Mahasabha"**. It was founded in 1894 at Lucknow. During the last 100 years, 37 conferences of this organisation have been held in various parts of the country and **eminent Indians,** who are **Kurmis** have presided over them.

DR. DILAWAR SINGH JAISWAR
New Delhi.

पाठकों से अनुरोध है कि एक तो वह अपने को कुर्मी जाति को घोषित करने में लेशमात्र का भी संकोच न करें। यदि कोई व्यक्ति कुर्मी जाति के सम्बन्ध में किसी गलत फहमी का शिकार है तो उसे सही जानकारी देकर अपनी जाति का सही रूप उसके सम्मुख रखें । भविष्य में वह कुर्मी जाति के बारे में ऐसी भूल नहीं करेगा । इसी प्रकार जब कभी, जहां कहीं भी आप समाचार पत्रों अथवा पत्रिकाओं में किसी कुबुद्धि वाले की कुर्मी जाति सम्बन्धी अनर्गल बात पढ़े उसके सम्पादक को उस गलत समाचार का खंड़न करते हुये सही-सही जातीय इतिहास प्रकाशनार्थ लिख भेंजे । इससे परिणाम यह होगा कि एक तो कुर्मी जाति के बारे में कोई अंट-संट बात लिखने की जुर्रत भी नहीं करेगा । फिर भी कुछ गलत कहीं प्रकाशित हो जाता है तो तुरन्त भूल सुधारने के लिये लिखें । **यह दायित्व कुर्मियों के बुद्धि जीवियों का है, जो कि ज्यादातर अपने फर्ज से केवल मुंह मोड़े हुवे ही नही हैं अपितु मुख छिपाये 'खाने, पीने, सोने' के मात्र पशु-कर्मो में लिप्त रहकर, अपना जीवन बिताकर, इस दुनिया से चले जाते हैं । आशा है कि युवा पीढ़ी जो शिक्षित भी है जोशीली भी है वह इस कमी को अपनी सचेतनता और सक्रियता से जरूर दूर करेगी ।** प्रौढ़ पीढ़ी की सुस्ती और अनदेखी का यह परिणाम है कि आज तक यादव जाति के जो लोग कुर्मियों से बहुत पीछे थे आज वे हर विधा में आगे हो गये । एक यादव लड़की एक नहीं दो दो बार ऐवरेस्ट पर्वत शिखर पर चढ़कर भारत का तिरंगा पहरा चुकी है । इससे कुर्मीजनों को सचेत होकर **'पिछली ताहि बिसार दे आगे की सुध लेइ'** में विश्वास रखते हुये अपना उत्कर्ष और समाज के प्रति दायित्व निभाना प्रारम्भ कर देना चाहिए।

इस लेख को समाप्त करने से पूर्व एक हाल में समाचार-पत्र वालों की चाल नजर आयी है, उसे मैं यहाँ बताना चाहता हूँ कि जिससे यदि मेरा शक ठीक है तो कुर्मी जाति के बन्धुजन उसके सतर्क होकर उसके उपचार का उचित उपाय अपना कर समय से रोकथाम करें ।

दिल्ली से निकलने वाले दैनिक **'जनसत्ता'** के उपयुक्त 19 फरवरी 1994 के अंक में उस लेख में एक नयी बात कुर्मियों के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुई नज़र आयी उसे गौर से पढ़ें जो इस प्रकार है:

"कुर्मी नेताओं का दावा है कि **यादव** और **'बृहत्त कुर्मी समुदाय'** की जनसंख्या बरावर है । **बृहत्त कुर्मी समुदाय** में आपत्तिजनक बात है कि कुर्मी जाति को **'बृहत्त कुर्मी समुदाय'** क्यों कहा और एक अन्य समाचार (नवभारत टाइम्स) 15 फरवरी 1994 पत्र ने इन उपजातियों (अवधिया, जयसवार, समसवार आदि) को विभिन्न जातियां मानकर यह बात कही हैं, जो सर्वथा गलत है । क्या ब्राहमणों, कायस्थों और अन्य जातियों में उपजातियों नहीं होती ? क्या ब्राहमणों में मिश्रा, शुक्ला तिवारी, भारद्वाज, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, पांडे, अवस्थी, झा, गौड, सारस्वत, कान्यकुब्ज, वशिष्ठ, कश्यप, शांडिल्य इत्यादि तथा कायस्थों में, जैसे माथुर, जौहरी, सक्सेना, श्रीवास्तव, वर्मा, निगम, अस्थाना, कुलश्रेष्ठ आदि नहीं हैं? फिर इन्हें **"बृहत्त ब्राह्मण समुदाय"** या **"बृहत्त कायस्थ समुदाय"** या **"बृहत्त वैश्य समुदाय"** क्यों नहीं सम्बोधित किया जाता। यह अलग-अलग मान

यंड़ क्यों और किस अभिप्राय से । कुर्मियों सावधान हो जाओ यह तुम्हें विभाजित कर शक्तिहीन बनाकर निस्तेज करने का षड़यन्त्र रचा जा रहा है । आप अपनी एकता को और मजबूत करते हुए प्रगति पथ पर सतत अग्रसर होते रहो । यदि फिर भी आप न जागे, सचेत न हुये, सक्रिय संगठित होकर समयानुसार न चले तो स्वयं अपनी तथा जातीय दुर्दशा के आप खुद तथा इस जाति के घटक ही जिम्मेवार होंगे ।

महारैली का प्रतिफल समता दल

बिहार के वर्तमान मुख्यमंत्री, श्री लालू प्रसाद यादव की सरकार के प्रति वहाँ के कुरमियों का मोह-भंग और आक्रोश का सफल प्रदर्शन सर्वप्रथम 12 फरवरी 1994 की पटना में **"कुर्मी चेतना महारैली"** का ऐतिहासिक आयोजन करके किया गया । जबकि कुरमी बिहार की एक प्रमुख और प्रभावशाली कृषक जाति है, प्रदेश की उन्नति में हर क्षेत्र में उसका सराहनीय योगदान रहा है । उसकी आबादी कुल जनसंख्या का लगभग 14 प्रतिशत है और इतने ही यादव हैं पर मंत्रिपदों और सरकारी पदों की कुर्सियों पर यादवों का वर्चस्व कायम हो चुका है और कुरमी इक्का-दुक्का को छोड़कर अधिकतर लालू सरकार के रहमो-करम के लिए उनका मुँह ताकते दूर खड़े नज़र आते हैं । इन सब अनेक कारणों से उपेक्षित कुरमी घोर निराशा में डूबा इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि लालू सरकार के विरुद्ध जाये बिना, और संगठित होकर अपनी शक्ति प्रदर्शित किये वगैरह उन्हें अपने हक-हकूक अनुसार कुछ हासिल होने वाला नहीं है । लालू यादव कुछ टुकड़े फेंकते रहे हैं पर हक अनुसार वे कुरमियों को कभी नहीं दे पाये हैं ।

इतने संघर्ष के बाद आज पिछड़े वर्गों के लिये अनुकूल समय बना, पर नतीज़ा क्या निकला । एक ही समय में उत्तर प्रदेश और बिहार में दोनों प्रदेशों में यादव मुख्यमंत्री । इन प्रदेशों में पहली बार यादव मुख्यमंत्री नहीं बने हैं पहले भी कई बार बन चुके हैं । पर दोनों प्रदेशों में कुरमी मुख्य मंत्री कभी नहीं बना । हाँ ! बिहार में कई दशक पूर्व एक बार जातीय आधार पर नहीं, बल्कि अपनी व्यक्तिगत नाम, यश और योग्यता के बल पर स्व० वीर चंद पटेल का, मुख्यमंत्री बनना सुनिश्चित था । पर श्री वीरचन्द्र पटेल की यकायक मृत्यु हो गई । स्व० पटेल जी की धर्म पत्नी, श्रीमती श्यामा पटेल ने जोकि इस ग्रंथ के लेखक के जन्म स्थान, पीलीभीत (उ. प्र.) में जन्मी थी, एक बार इस लेखक को बताया कि पटेल जी शाम तक बिलकुल ठीक-ठाक थे । रात्रि में उनका भोजन किसी नेता के घर पर था । भोजन बाद घर लौटते ही उनकी तबियत इतनी बिगड़ गयी कि उन्हें बचाया नहीं जा सका । बिहार का होने वाला प्रथम कुरमी मुख्यमंत्री, उस पद पर आसीन होने के स्थान में चिर निद्रा में सो गया जबकि निकटतम कुछ व्यक्ति उस मौत को सामान्य मौत कुछ शकों के आधार पर नहीं मानते ।

कुरमियों के इस महारैली रूपी आक्रोश प्रदर्शन से पहले प्रदेश के कोइरी (कुशवाहा) भी पटना में गांधी मैदान में अपनी रैली कर लालू यादव की नींद हराम कर चुके थे । लव-कुश संघ की बढ़ती लोकप्रियता तथा संगठन-बल बहुत से राजनेताओं को नहीं भाता, जबकि यदि ये दोनों सहोदर दृढ़-संकल्प होकर सामाजिक और राजनीतिक मंच पर एक लय में कार्य करें तब उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में बिहार में उन्हें कोई भी पीछे नहीं रख पायेगा ।

"कुरमी चेतना महारैली" की सफलता तथा लालू सरकार के प्रति अयादव पिछड़ी जातियों का मोहभंग तथा सर्वत्र प्रदेश में फैले अंसतोष एवं तीव्र आक्रोश को भांपकर कुरमी जाति का नेतृत्व करते हुए अपने जनता दल के जिगरी-संगी श्री लालू प्रसाद यादव को झटका देने के लिये नीतीश कुमार लगता है मानसिक रूप से तैयार हो गए हैं । किसी ने ठीक ही कहा है कि "Nothing is unfair in love and war" इस बीच लालू प्रसाद ने कुर्सी के दम्भ में आकर नीतीश कुमार को परोक्ष रूप में पत्रकार सम्मेलन में खरी-खोटी सुना डाली । अन्ततः यह बिहार जनता दल के दोनों दिग्गज़ "Point Of No Return". को भी पार कर गये ।

परिणाम सामने आया कि जनता दल (जार्ज ग्रुप) गुट ने 19 अक्टूबर 1994 को 'बिहार बचाओं महारैली और जन अदालत'' का आयोजन सरकार को चुनौती पेश करने के लिए सर्वश्री नीतीश कुमार, वृषिण पटेल तथा अन्य जनता दल

(ज) नेताओं ने प्रदेश में घूम-घूमकर आयोजित किया । उस दिन की रैली में इस नये गुट का नया नामकरण हुआ - समता पार्टी । नवगठित समता पार्टी में कांग्रेस को छोड़कर श्री शकुनी चौधरी भी अपने साथियों सहित सम्मिलित हो गये हैं । जिससे लव-कुश की संयुक्त राजनीतिक शक्ति का ध्रुवीकरण होता नज़र आ रहा है । समता पार्टी के अध्यक्ष श्री जार्ज फर्नेन्डीस का चुनैती के साथ ऐलान है कि बिहार में 10 मार्च, 1995 में विधान सभा चुनाव के पश्चात् समता पार्टी की ही सरकार बनेगी ।

उधर लालू यादव 'कुरमी चेतना महारैली' के झटके से उभर न पाये थे कि 19 अक्टूबर 94 को जार्ज गुट की रैली की सफलता से और अधिक भयभीत हो उठे । इनका असर मिटाने के लिये तथा कुरमियों को पुनः अपने पक्ष में लाने के उद्देश्य से 'सरदार पटेल जयन्ती दिवस' 31 अक्टूबर 94 को चुना और पटना के उसी प्रसिद्ध गांधी मैदान में ''गरीब रैली'' सम्पूर्ण सरकारी तंत्र तथा अन्य अन्य तरह से ऐड़ी-चोटी का जोर लगाकर भीड़ जरूर इकट्ठी कर ली, दिग्गज़ नेतागण आमंत्रित कर लिये, अपनी भावी चुनावी विजय की भविष्य वाणियां भी उनसे करवा लीं पर अब 10 मार्च 1995 के चुनाव फल ही बता पायेंगे कि किसने क्या खोया और किन-किन ने क्या पाया ।

पर इस यथार्थ को नहीं विस्मृत करना है, कि बिहार प्रदेश की धरती अनेक युगपुरुषों को जन्म दे चुकी हैं, और वह क्रान्ति गर्भा है । अतः निराश होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कब इसके अरुणाभ क्षितिज से परिवर्तन का आदित्य उदय हो जाये और सिर्फ प्रदेश नहीं समस्त देश की राजनीति का तिमिर तार-तार हो जाये ।

अध्याय : 18

उपसंहार

इस कृषि प्रधान देश भारत का, विशाल किसान समुदाय, कुरमी समाज, स्थानान्तरण के कारण विभिन्न नामांतरों के साथ देश में बिखरा पड़ा है। इसका अतीत प्रागवैदिक काल से, वैदिक काल और उससे पीछे इधर बौद्धकाल तक, बड़ा उत्कृष्ट तथा शानदार रहा है। किन्तु कट्टर ब्राह्मणवाद ने बौद्धकालीन भारत को पुनः सनातनी हिन्दू ढांचे में तेज़ी से बदला, सामाजिक आपाधापी मची, जिससे बहुत सी ऊँची जातियाँ ब्राह्मणों का कहना न मानने पर तुच्छ घोषित कर दी गई और जो कुछ न थे वे उसी काल में समाज के सर्वेसर्वा बना दिये गये, क्योंकि वे उस समय के ब्राह्मणों को श्रेष्ठ मानकर उनके अच्छे-बुरे सारे आदेशों का पालन करते रहे। उसी समय से डेढ़-दो हजार वर्षों में कुरमी जाति प्रतिकूल परिस्थितियां पाकर शोषित और पिछड़ी बनती गयी। भारत के स्वतन्त्र होने पर अन्य पिछड़ी जातियों के साथ इसे भी प्रगति करने का अनुकूल और सुन्दर समय मिला है, और अब यह पूर्ण रूपेण संगठित होकर, अपने दुर्भाग्य को पुनः सौभाग्य में पलट सकती है, अपने खोये हुये गौरव को पुनः प्राप्त कर सकती है। इक्कीसवीं शताब्दी आने में 5 वर्ष शेष हैं और इस अवधि में यह हर क्षेत्र में अपना उच्च स्थान बनाकर पिछड़ेपन के लक्षण तज सकती है। पर इसके लिये आवश्यकता है चेतना की, साहस की और अपने समुचित मानवता के जन्म-सिद्ध अधिकारों के लिए जीने और मरने की ललक की। साफ़ सुथरे विचार वाला निःस्वार्थ एवं सक्षम नेतृत्व यदि इसे मिल जाये तो लक्ष्य प्राप्ति सुलभ हो सकेगी।

भारतवर्ष में बहुसंख्य होना, कुरमी समाज का बहुत बड़ा संबल है। अब तो केन्द्रीय सरकार ने मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को मानते हुये कुरमी सहित सभी पिछड़े वर्गों के लोगों को सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण "समुन्नत वर्ग" "क्रीमी लेयर" की कुछ शर्तों सहित लागू कर दिया है। कुरमी युवक युवतियों को इसका पूरा फायदा उठाना चाहिए। जैसे बड़े उद्योगपति तक पिछड़े क्षेत्रों के लाभ (Benefits for Industrially Backward and Zero Industry Areas) या अगण्य कल-कारखानों के लाभ उठाने में बड़े से बड़े उद्योग घराने भी नहीं चूकते तब पिछड़ी जातियों को शर्म किस बात की। साथ में देश भर के बिखरे हुए कुरमी बंधुओं को एक दूसरे से मिलकर एकता सूत्र में बांधते हुए, एक सुदृढ़ संगठित तथा जागृत कुरमी समाज की संरचना करना हरेक कुरमी का पहला कर्त्तव्य होना चाहिए। पर यह तभी सम्भव है जबकि हमारे समाज के कर्णधार अपने छोटे-छोटे स्वार्थों को तजकर निःस्वार्थ भावना से महज़ समग्र समाज के उत्कर्ष का चिन्तन, प्रयास तथा सदैव सतर्कता पूर्वक परवाह करें। यह कार्य इतना सहज भी नहीं है।

यह विवेचना समाप्त करने से पूर्व देश में दूर-दूर बसे तथा विभिन्न जाति सूचक नामों से ज्ञात सारे कुरमी बन्धुओं को मैं आश्वस्त करना चाहता हूँ कि उनका, तथा उनकी जाति का भविष्य उज्ज्वल है। जब तक हिन्दुओं में जाति-प्रथा चलती है, हम उससे बंधे रहेंगे, किन्तु जब इसके समाप्त होने के पक्के आसार नज़र आने लगेंगे, हम तब इसे त्यागकर देश की राष्ट्रीय मुख्यधारा का अभिन्न अंग बनने में मोह या संभ्रान्ति ग्रसित न होकर देश के अन्य लोगों के साथ भी कदम से कदम मिलाकर चलेंगे। इस बीच हम अपनी उपजातियों के अन्तर भेद तेज़ी से दूर करेंगे, और जहां भी उनमें ऊँच-नीच की भावना शेष बची है या अन्यान्य प्रकार की सामाजिक कुरीतियां, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास जैसी बुराइयां हैं उनसे विमुक्त कराने हेतु अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा को प्रभावशाली बनाते हुये, उसके माध्यम से समुचित सामाजिक उत्कर्ष के लिये आवश्यक कदम उठाते रहेंगे। दहेज आदि समाप्त करने की सदैव लोगों ने सामाजिक मंचों पर शपथें लीं, पर परिणाम यह निकला कि वह घटने की जगह बढ़ता जा रहा है और किसी भी कुरमी परिवार में आज शादी-विवाह सबसे खर्चीला आयोजन हो गया है। इतनी राशि यदि वे परिवार के लड़के-लड़कियों पर उनकी

शिक्षा-दीक्षा और स्वास्थ्य-संवर्धन में ठीक से व्यय करें जो उनका सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक स्तर काफी उठ सकता है। आज सामूहिक विवाह-समय की मांग बनती जा रही है। तथा इसके द्वारा दहेज पर अंकुश लगाने का एक सरल और सहज मार्ग प्रशस्त होता जा रहा है। समाज प्रेमियों और सुधारकों का दायित्व बनता है कि सामूहिक विवाह-पद्धति को प्रोत्साहन देवें। जहां तक लक्ष्य प्राप्ति का सवाल है कर्मठ सुधारक को दो बात मन में रखकर प्रयत्नरत रहना चाहिये, एक कोई लक्ष्य या चीज़ अलभ्य नहीं है, दो, कोशिश छोटे लक्ष्य के लिये हो या बड़े लक्ष्य के लिये उसे करने में कसर नहीं छोड़ना चाहिए। अपनी राष्ट्रीय पहचान प्रदर्शित करने के लिये सब कुरमीजन 'पटेल' आस्पद का जरूर प्रयोग करें। पटना तथा लखनऊ की "कुरमी चेतना रैलियों" में निर्णय लिया गया कि हरेक कुरमी 'पटेल' विरुद्ध का प्रयोग करें।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा के कुरमियों के सम्मुख केवल एक मसला है कि कैसे शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नति की जाये, जिससे वे भी अन्य अगड़ी जातियों से जीवन के हर क्षेत्र में कदम से कदम मिलाकर राष्ट्रोत्थान कार्यों में हाथ बटा सकें। कैसे वे राजनैतिक जीवन में अपना सम्माननीय स्थान बना सकें। वे इस विचार-मंथन या बखेड़े में न फंसे कि वे आर्य हैं या आर्य नहीं हैं या द्रविड़ हैं। इस मुद्दे पर जो मान्यता उन्हें विरासत में मिली है उसके अनुसार उनके पूर्वज इस भरतखंड में प्रारम्भ से ही बसे हुये थे, कृषि का आविष्कार उन्होंने ही किया। बाद में वे ही हिन्दू कहे जाने लगे। जब समाज का वर्णाश्रम-विभाजन हुआ वे क्षत्रिय वर्ण में थे और आज भी वे अपने को बड़े गर्व के साथ यही मानते हैं। मध्यकालीन भारत में कट्टर और पोंगापंथी ब्राह्मणों ने वैमनस्य तथा महज़ स्वार्थवश उनके अपने वर्चस्व को अस्वीकार करने वाली अनेक जातियों को वर्ण-च्युत करने का प्रयास किया था। उसी काल में अन्य प्राचीन क्षत्रिय जातियों के साथ कुरमियों के सम्बन्ध में भी कुछ भ्रान्तियां फैलायी गयीं, पर अतीत के अवलोकन से कूर्मि क्षत्रिय जाति का उज्जवल इतिहास स्वयं प्रमाण है, जिन्हें संशय हो वे उसे ईमानदारी से पढ़े और विचारें। कुरमी जाति प्रागैतिहासिक काल से है, तब तक तो चातुर्य वर्ण-व्यवस्था अनुसार समाज का विभाजन नहीं हुआ था। तब ब्राह्मण करके अलग जाति भी न बन पायी थी। पुरोहित वर्ग जरूर बन चुना था और वे आर्यों का यज्ञादि कराते थे यद्यपि ये कर्म अन्य वर्ण वाले भी वैदिक युग में कराते थे। तब समाज में समता थी।

बिहार के कुरमी बन्धुओं के साथ इस समय कई प्रकार की समस्यायें एवं अन्तरद्वन्द विद्यमान हैं। झारखंड के कुड़मि बन्धुओं की अलग समस्या है, उनको अपने अतीत से हटकर तथा कूर्मि मूलधारा में यज्ञोपवीत करवाकर जुड़ने से, बहुत तरह से क्षति पहुँची है और उधर उत्तर बिहार के कुरमियों में वे आत्मसात भी न हो पाये। वे अपनी पूर्व स्थिति पर वापिस लौटना चाहते हैं। संघर्षरत हैं, उनके कथन में सच्चाई है तथापि वे उपजातिवाद या ऊँच-नीच की भावना से लगभग मुक्त हैं। उनके संघर्ष में अन्य सब कुरमियों को भी सहयोग देना चाहिये। कुडमियों के अतिरिक्त बिहार के अन्य कुरमियों में अलग-अलग ढ़पली तथा अलग-अलग राग अलापे जा रहे हैं। वे कुड़मियों के यज्ञोपवीत कराके उनका क्षत्रियकरण करते समय एक प्रकार की मान्यता कूर्मि जाति के सम्बन्ध में रखते थे, हरनौत अधिवेशन में उनका क्षत्रियत्व सातवें आसमान पर जा पहुँचा, अपने धानुक बन्धुओं से खुल्लम खुल्ला वहां दुर्व्यवहार करन्दे से भी वे न चूके और परिणामस्वरूप कुरमियों के पैरों तले, दो निर्दोष कुरमीजन कुचल कर मारे गये, वह भी कुरमियों के अधिवेशन में कूर्मि-उत्थान की बड़ी-बड़ी बातें, डींग हाकते हुये वातावरण में। श्री वासू सिंह एडवोकेट पटना जब महासभा के अध्यक्ष बने तो उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कूर्मि शब्द का प्रयोग एकाध बार के अतिरिक्त न किया, वे चाहते थे कि इस संस्था का नाम 'अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा' होना चाहिये। इस बारे में स्व० डा० ध्रुव नारायण सिंह वर्मा का शोधपूर्ण विवरण इस पुस्तक में पढ़ें। वहां की मानसिकता महज़ राजनैतिक लाभ पाने के उद्देश्य से फिर पलटा खा गई, क्षत्रियत्व से अब अक्षत्रित्व की ओर। और आज बिहार की स्थिति यह बन गयी है कि वहां के कुछ कुरमी बन्धु 'क्षत्रिय' शब्द से उतनी नफ़रत करने लगे हैं जितनी अनुसूचित जाति वाले 'हरिजन' शब्द से, और इन दोनों ने क्रमशः क्षत्रिय और हरिजन शब्दों को अपने लिये प्रयोग करना बन्द कर दिया है। बिहार के कुरमियों में कुछ यहां तक कहने लगे हैं कि हम न आर्य हैं, न हिन्दू हैं, हम द्रविड़ हैं। बिहार से बाहर के कुरमियों को अपने इन बन्धुओं के उपरोक्त आचरण से आश्चर्य भी होता है और खेद भी, पर वे इनसे बिल्कुल सहमत नहीं हैं। बिहार में भी तथाकथित

सभी बुद्धिजीवी इनकी बात से सहमत नहीं है । इससे पता चलता है कि वे इस समय उपरोक्त विन्दुओं पर वहां अनेक मत हैं । उनके उपरोक्त प्रश्नों का सही उत्तर तथा मार्ग दर्शन उन्हें बिहार के ही वरिष्ठ राजनीतिज्ञ तथा हिन्दी के जाने-माने विद्वान तथा पूर्व ऊर्जा मंत्री, भारत सरकार, पूर्व मंत्री बिहार सरकार, प्रोफेसर सिद्धेश्वर प्रसाद जी के अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के 33वें झालदा (पुरुलियां पं0 बंगाल) के अधिवेशन में 8 और 9 मार्च 1980 को उनके उद्घाटन भाषण से लिये, नीचे उद्धृत, अंशों में मिल सकता है :-

"कूर्मि समाज का इतिहास बड़ा ही शानदार और गौरवमय रहा है । पर इस अवसर पर इस सम्बन्ध में विस्तार से कुछ न कह कर मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की दो बोलियों का नाम इस जाति से संबंधित है। एक है कुर्माली और दूसरी है अवधी । यह ठीक है कि अवधी, अवध प्रदेश की भाषा है पर कूर्मि जाति की एक उपशाखा के अवधिया कहे जाने की सार्थकता पर भी इस सन्दर्भ में गहराई से विचार किया जाना चाहिये ।"

उन्होंने आगे कहा-"डा0 काशी प्रसाद जायसवाल और डा0 लक्ष्मी नारायण सुधांशुं कुर्माली को मैथिली, मगही और भोजपुरी की तरह एक स्वतंत्र बोली मानते हैं, किन्तु डा0 जार्ज ग्रियर्सन इसे मगही का ही एक अंग मानते हैं। यह खेद की बात है कि कुर्माली भाषा और साहित्य पर जितना काम होना चाहिए अभी तक उसका दशांश भी नहीं हुआ है । फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि कुर्माली इस समाज के स्वतंत्र एवं गौरवमय अस्तित्व का द्योतक है ।"

प्रोफेसर साहब ने जातीय महासभाओं के महत्व पर प्रकाश डालते हुये कहा - "इस जैसी जातीय महासभाओं की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है जब जाति को संगठित कर इसकी कमजोरियों को दूर करने में मदद मिले । संगठन की दुर्बलता हमारी सबसे बड़ी कमजोरी रही है । कूर्मि समाज अभी अनेक शाखाओं में बंटा हुआ है । इतना ही नहीं, इस समाज के कुछ लोग अपने को पिछड़ा वर्ग का और कुछ अपने को क्षत्रिय मानते हैं । सच बात तो यह है कि काका कालेलकर की अध्यक्षता में गठित पिछड़े वर्ग आयोग की रिपोर्ट के पहले कूर्मि समाज में अपने को क्षत्रिय के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिये बड़ा जोरदार आन्दोलन चलाया था । लेकिन इस आयोग की रिपोर्ट के बाद, कम से कम उत्तरी भारत में, यह आन्दोलन प्रायः समाप्त है ।"

उन्होंने आगे कहा कि -"मुझे ऐसा लगता है कि कूर्मि समाज की एकता को कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि मराठों, रेड्डियों और पटेलों की तरह कूर्मि की अन्य उपजातियां भी अपने को कूर्मि क्षत्रिय के रूप में सम्बोधित करें । इससे इस जाति के अपने खोये हुए गौरव और संस्कार को प्राप्त करने के लिये मनोवैज्ञानिक शक्ति प्राप्ति होगी। जो जाति भारतीय कृषि का मेरुदण्ड है, जो शिक्षा और व्यवसाय में अपना सर्वतोन्मुखी विकास करने में सफल हुई है और जिसके सपूतों छत्रपति शिवाजी और लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल ने भारतीय राजनीति को सर्वथा नया आयाम प्रदान करने में आगे बढ़कर पहल की है और जिसके वंश में उत्पन्न व्यक्ति राष्ट्रपति (श्री नीलम संजीवा रेड्डी) का पद सुशोभित कर रहा हो, वह अपने को पिछड़ा कहकर अपने में हीनता की भावना को क्यों पनपने दे? अतः इस हीनता की मनोग्रंथि को काटना होगा और भारतीय समाज के इस मेरुदण्ड को सीधा रखना होगा । हमारा समाज परिश्रम सेवी है, परजीवी नहीं । हमारे समाज के लोग गाढ़े पसीने की कमाई खाते हैं और न कोई काम छोटा समझते हैं; और न उससे जी चुराते हैं । ऐसा लगता है कि हमारा समाज सहज रूप से गीता के कर्मयोग का अभ्यासी है ।"

कुरमी जातीय चेतना के लक्षण

इसमें कोई शक नहीं कि गत सौ वर्षों में सन् 1984 से सन् 1994 तक में, महासभा की प्रथम शताब्दी वर्ष तक कुर्मियों में काफी चेतना आयी है । किसी-किसी प्रदेश में वे लोग सत्ता पर छा सा गये हैं । जैसे गुजरात में पटेल, महाराष्ट्र में मराठा-कुनबी, आन्ध्र में रेड्डी, कम्मा, कापू तथा कर्नाटक में वक्कलिगर आदि, जोकि कुरमी समाज के विभिन्न नामों से पहचाने जाने वाले सजातीय बन्धु हैं । बिहार तथा उत्तर प्रदेश में भी कुरमियों की राजनैतिक स्थिति मजबूत हुई है पर इतनी अधिक नहीं जैसी पटेलों, मराठों और रेड्डियों की अपने-अपने मूल प्रदेशों में है । फिर देश की प्रमुख पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों की क्या राय है उसके दो उदाहरण नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं (1) श्री फरजंद

अहमद का बिहार प्रवेश पर एक लेख, शीर्षक "असंतोष का बिगुल" हिन्दी "इंडिया टुडे" के 15 जनवरी 1994 अंक में प्रकाशित हुआ है, जिसमें उदाहरण देकर बताया गया है कि बिहार राज्य में एक के बाद एक उठ रहे बवालों में मुख्य मंत्री श्री लालू प्रसाद यादव उलझते जा रहे हैं, उसी संदर्भ में पृष्ठ 33 पर वे लिखते हैं :

"छात्रों का आक्रोश उबल ही रहा था कि पिछड़ों में अगड़े माने जाने वाले कुर्मी जाति के लोग यह समझकर कि उन्हें पंचायतों में आरक्षण के लाभ से अलग रखा जा रहा है, सड़कों पर उतर आए। कुर्मी जाति के छात्र और युवाओं ने "कुर्मी कल्याण मंच" और 'कुर्मी विकास परिषद' के झंडे तले उग्र रूप धारण कर लिया। दरअसल बिहार पंचायती राज अधिनियम 1993 में पिछड़ों के लिए पंचायतों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है और इसके लिये लालू ने पंचायत स्तर पर पिछड़ों की जनगणना की भी बात कही है। मगर जिस ढंग से पिछड़ों की सूची में कुर्मी जाति का जिक्र हुआ है उससे उन्हें यह भ्रम हो गया है। लालू ने उन्हें समझाने की कोशिश करते हुए सारी त्रुटियों को तुरंत दूर करने के वादे के साथ कहा कि "वे बेवकूफ नहीं है कि कुर्मी को आरक्षण से अलग रखें। राज्य मंत्रिमंडल ने तुरंत निर्णय लिया कि कुर्मी जाति के लोगों को चाहे वे किसी भी नाम से जाने जाते हो, पिछड़ा वर्ग ही माना जाएगा। उधर जनता दल के राष्ट्रीय महासचिव नीतीश कुमार ने भी कुर्मी जाति के लोगों से कहा कि उनका शक बेबुनियाद और आन्दोलन बेवजह है।" श्री नीतीश कुमार ने यही बात, अपने दिल्ली निवास पर, बिहार से इसी सम्बन्ध में आये प्रो० रामप्रवेश सिंह, जयकिशोर प्रसाद सिंह को इस ग्रंथ के लेखक की मौजूदगी में आश्वस्त कराया थी।

दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक "The Hindustan Times" के 3 जनवरी 1994 के अंक में, उनके पटना सम्वाददाता ने अपने लेख में जिसका शीर्षक था **"Kurmi may desert JD"** लिखा है कि - "PATNA January 2, The **Kurmis,** who have been an important constituent of the vote bank of the Janata Dal in Bihar, today revealed their disenchantment with the party by taking out a **Chetna Yatra** in a bid to create awareness among their community against neglect and chastising at the hands of the party leadership.

"The Rath is being taken to every nook and corner of the **State** before their proposed **"Maharally"** here on **February 12, 1994** to announce their new equation in the political arena. "We have been feeling suffocated for social justice, We have contributed much on the formation of the **Janta Dal Government,** but now we are a neglected lot, " Commented the Convenor of the the **Chetna Rath, Mr. Sidheshwar,**

Senior Kurmi leaders; including **Mr. Bhola Prasad Singh** and **Prof. Ram Prashad Singh,** denied any politics behind organising the **Chetna Rath,** They however admitted that their aim was to create a sense of togatherness among the caste members and rally them against discrimination,neglect and step motherly treatment at the hands of the party leadership.

The **"Chetna Rath"**, led by **Mr. Ajay Kumar Rocket** and **Mr. Upendra Prasad,** was taken in procession from **Patna** to **Danapur,** a two-km-long route, had the blessings of the Congress **leaders** belonging to the caste-**former Minister Sadanand Singh** and **Umendra Kumar.** The **Rath** will halt overnight at **Ara**. It will proceed to other districts from there.

इसी सम्बन्ध में "बिहार राज्य कुर्मी चेतना महारैली" के संचालक मण्डल की ओर से दिनांक 18 दिसम्बर 1993 का एक पत्र क्रमांक 213, इस लेखक के पास भेजा गया है, वह इस प्रकार है :-

"बिहार राज्य कुर्मी चेतना महारैली"

80, एम० एल० ए० फ्लैट, वीरचन्द पटेल पथ, पटना-1

पत्रांक 213 दिनांक 18 दिसम्बर 1993

सेवामें,

डा० दिलावर सिंह जयसवार,
बी-6/57 सफदरजंग एंक्लेव,
नई दिल्ली - 110029

विषय : पटना में 12 फरवरी 1994 को आयोजित "कुर्मी चेतना महारैली" में विशिष्ट अथिति के रूप में पधारकर सम्बोधित करने के सम्बन्ध में

महाशय,

यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इतिहास में प्रथम बार बिहार के कुर्मी समाज के द्वारा आगामी 12 फरवरी 1994 को 12 बजे दिन में बिहार की राजधानी पटना के ऐतिहासिक गांधी मैदान में अपनी संगठित शक्ति एवं एकता का परिचय देने तथा अपने सम्मान के रक्षार्थ एक अभूतपूर्व कुर्मी चेतना महारैली का आयोजन किया गया है। आपका अपेक्षित सहयोग अत्यावश्यक है।

अतः आपसे सादरानुरोध है कि विशिष्ट अतिथि के रूप में पधार कर आयोजित महारैली को सम्बोधित करने की कृपा करें ताकिं बिहार का कुर्मी समाज आपके उद्गारों से प्रेरणा ग्रहण कर सके। बड़ी कृपा होगी। उक्त आयोजन में आपके पधारने की स्वीकृति निम्नलिखित पत्ते पर यथाशीघ्र भेजी जाये।

भवदीय

ह0	ह0	ह0
सिद्धेश्वर	जयकिशोर प्रसाद सिंह	प्रो0 रामप्रवेश सिंह

इस आयोजन की सूचना मिलने के पश्चात् श्री नारायण सिंह अध्यक्ष तथा श्री राजमंगल सिंह उपाध्यक्ष की ओर से 'पटेल विचार मंच' पटना (बिहार) का पत्र दिनांक 13 दिसम्बर 1993 मिला। बिहार में जब 2 फरवरी 1994 को "बिहार राज्य कुर्मी चेतना महारैली" का वृहत आयोजन होने जा रहा है तब इन्हीं दिनों 29 और 30 जनवरी 1994 को 'अखिल भारतीय पटेल विचार मंच' के महासम्मेलन का औचित्य समझ में नहीं आया। इससे यह इंगित भी होता है कि वहां दो विभिन्न संस्थायें राजनैतिक उद्देश्य से प्रयत्नशील हैं उनसे किन्हें वास्तविक लाभ होगा वह तो बिहार वासी कुरमी भलीभांति जान सकते हैं। दूर से कुछ पता नहीं चलता। एक से "बिहार में राज्य कुर्मी चेतना

महारैली" से स्पष्ट पता चलता है कि वह बिहार के कुरमी समाज से सम्बन्धित अपने सम्मान के रक्षार्थ महारैली का आयोजन करने वाली है । पर 'पटेल विचार मंच' के 13 दिसम्बर 1993 के पत्र में एक बार भी कुरमी शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। जब 'पटेल विचार मंच' के द्वारा आप खुलकर अपने को कुरमी तब कहने का साहस नहीं रखते, तब आप उनकी जातीय समस्याओं पर क्या खुलकर विचार कर पायेंगे, क्या ऐसी छद्मवेश में रहने वाली संस्था से कुरमी जाति अपनी समस्याओं के समाधान की कोई उम्मीद रखे? ऐसी संस्थाओं के ओर से 'कहीं पर निगाहें और कहीं पर निशाना' जैसे कार्यक्रम किसके हित में होंगे यह पटना से दूर बैठे कुरमियों को स्पष्ट पता नहीं चल पा रहा है ।

यह जितनी पटेल जी के नाम पर कुरमियों द्वारा कुरमियों के लिये संचालित संस्थायें हैं वे इस बात को स्पष्ट करें कि किन कारणों से कुरमी शब्द अपने नाम में उनके द्वारा नहीं जोड़ा गया है और उनके छद्मवेशी नाम से जो देश के महान सपूत सरदार बल्लभभाई पटेल के स्मरणार्थ रखा गया है उसमें संचालन, संगठन और उद्देश्यों में क्या वास्तव में कुरमी या उनसे सम्बंधित हित सम्मिलित हैं या यह कोई कुछ व्यक्तियों के निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिये एक संस्था मात्र है और उसका कुर्मी जाति से विशेष कुछ लेना-देना नहीं हैं । स्पष्ट दो टूक बात करें । यदि वे कुरमी हितों के लिये सामाजिक संस्थायें हैं तो क्या वे अ0 भा0 कू0 क्ष0 महासभा की सहयोगी संस्था हैं या उससे बिल्कुल अलग इन भ्रान्तियों को दूर करना अति आवश्यक है । अन्यथा महासभा से अलग यह नये जातीय मठ, कुछ मठाधीशों द्वारा बनते रहेंगे । किन्तु पटना, वाराणसी एवं इलाहाबाद आदि के 'पटेल स्मारक संस्थान' बड़ा अच्छा कार्य कर रहे हैं ।

पटना, 31 अक्टूबर 1994 को श्री लालू प्रसाद यादव की "गरीबी रैली"

बिहार में लगता है कि अभी रैलियों का दौर समाप्त नहीं हुआ है । 12 फरवरी 1994 की पटना की "कुरमी चेतना महारैली" सफलता से प्रेरणा लेकर उत्तर प्रदेश में भी 'कुर्मी महारैली' लखनऊ में 19 नवम्बर 1994 को आयोजित करने की घोषणा उसके संयोजक, डा० सोनेलाल पटेल, अध्यक्ष उ. प्र. कू. क्ष. समाज द्वारा की गई है । रैली की सफलता के लिये "कूर्मि चेतना रथ यात्रा" उत्तर प्रदेश में कुर्मी बहुल जनपदों में निकाली गयी । 5 अक्टूबर 1994 में फर्रुखाबाद जिले में बसे स्थानीय कुर्मियों ने जोश-खरोश से भाग लेकर उसे सफल एवं प्रभावशाली बनाया । भोलेपुर जो जिले का महत्वपूर्ण मुहल्ला है, में मेन रोड पर पांच स्वागत द्वार बनाये गये । डा० सोनेलाल पटेल का रास्ते भर स्वागत किया गया । सर्वश्री वीरेन्द्र कटियार, सपा प्रदेशीय सदस्य कैलाश कटियार, जिला जनता दल अध्यक्ष अयोध्यासिंह, जिला भाजपा अध्यक्ष डा० जितेन्द्र कटियार, अध्यक्ष जिला कू० क्ष० समाज के साथ हज़ारों कुर्मियों ने अपने प्रिय नेता को मालाओं से लादकर हार्दिक स्वागत किया । अब देखना है लखनऊ में 19 नवम्बर 1994 को "कुर्मी महारैली" का क्या आकार एवं रूप रहता है ? उस रैली का विवरण आगे के पृष्ठों में दिया गया है ।

इसके साथ-साथ पटना में 31 अक्टूबर 1994 को जनता दल द्वारा, विशेष करके, मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव की ऐतिहासिक "गरीब रैली" भी आयोजित हुई । इस रैली में जनता दल के नेताओं ने साम्प्रदायिक शक्तियों और केन्द्रीय सरकार की नई आर्थिक नीतियों के विरुद्ध गरीबों और शोषितों की एक जुटता का आह्वान किया । सरदार पटेल जयन्ती के अवसर पर यहाँ आयोजित विशाल रैली को पूर्व प्रधान मंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह, पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री, श्री ज्योति बसु, उत्कल के मुख्यमंत्री बीजू पटनायक और बिहार के मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव, जनता दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री एस० आर० बोमाई, जद संसदीय दल के नेता श्री शरद यादव, और सांसद जयपाल रेड्डी आदि ने सम्बोधित किया। रैली को सम्बोधित करते हुए पूर्व प्रधान मंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपने भाषण की शुरुआत में कहा कि वे श्री लालू प्रसाद की पीठ ठोंकने यहाँ आये हैं । उन्होंने कहा कि यह "रैली' अब "रैले" की शक्ल में दिल्ली जायेगी । पं० बंगाल के मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु ने रैली में शामिल लोगों का आह्वान किया - "पटना तुम्हारा है, अब दिल्ली पर कब्जा करो ।" समाचार पत्रों ने छापा कि जन-सैलाब में तब्दील हुई यह रैली,

आने वाले वर्षों की रैलियों के लिए पैमाना तो बनेगी ही, इसके जरिए जनता दल ने बिहार के अपने चुनावी अभियान का श्रीगणेश भी किया है ।

पटना के गांधी मैदान के पश्चिमी छोर पर बने सभा मंच के पीछे **सांस्कृतिक कर्मियों** का एक जत्था रखा गया था, जिन्होंने **विश्वनाथ प्रताप सिंह, ज्योतिबसु, बीजू पटनायक, लालू प्रसाद यादव** आदि नेताओं के सभास्थल पर पहुँचने पर उनके स्वागत में बाजे बजाए । रैली के कारण पटना के कई जिलों से सांस्कृतिक जत्थे आये थे । इस **"गरीब रैली"** के कारण पटना की आम यातायात-व्यवस्था लगभग अस्त-व्यस्त हो गयी । रैली के कारण मध्य और पश्चिमी पटना के अधिकांश छोटे-बड़े दुकानदारों ने अपना कारोबार बन्द रखा ।

समता पार्टी के संसदीय बोर्ड के अध्यक्ष और बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री श्री रामसुन्दर दास ने लालू प्रसाद यादव की इस रैली को सफेद पोशों की ऐसी रैली कहा है जिसमें सरकारी मशीनरी का घोर दुरुपयोग किया गया है । इस रैली में गरीबों का कोई लेना-देना न था । इसे सफल बनाने के लिए **बिहार प्रदेश में कलेक्टर से लेकर पटवारी तक सभी एक साथ जुटे देखे गये थे** । इस तरह करोड़ों रुपये बहाकर इस तथाकथित **"गरीब रैली"** को आयोजित किया गया । पर इस प्रतिक्रिया का दूसरा रूप भी समाचार पत्रों का टीका-टिप्पणियों से प्रस्तुत किया गया है, जिसके अनुसार **बिहार के मुख्यमंत्री, श्री लालू प्रसाद यादव** ने फिर यह साबित कर दिया है कि **राज्य में उनकी लोकप्रियता में कमी नहीं हुई है** । किसी भी पार्टी की रैली का मुख्य उद्देश्य शक्ति-प्रदर्शन होता है, परन्तु दर्शकों को यह साफ पता लग जाता है कि रैली में लोग स्वेच्छा से आए हैं या उन्हें लोभ-लालच के माध्यम से या जबर्दस्ती लाया गया । दिल्ली के हिन्दी दैनिक **"हिन्दुस्तान"** के 2 नवम्बर 1994 अंक के सम्पादकीय अनुसार 31 अक्टूबर 94 को पटना के गांधी मैदान में जनता दल और उसके सहयोगियों ने साबित कर दिया कि जनता दल से कुछ नेताओं के अलग होने से भी लालू जी की लोकप्रियता पर ज्यादा असर नहीं पड़ा है ।

राजनीतिक दलों को यह भी सोचना चाहिए कि **शक्ति-प्रदर्शन** से ज्यादा जरूरी है **जनता की कठिनाइयों** को दूर करना । बिहार के कुंरमीजन सजग हैं वे किसी राजनीतिक दल विशेष अथवा व्यक्ति विशेष का **अन्धानुकरण** न करके, जो उनके अपने, जाति के समाज के तथा देशहित में है वही मार्ग इस राजनीतिक उथल-पुथल के वातावरण में अपनायेंगे। दिल्ली से निकलने वाले 2 नवम्बर 1994 के अंग्रेजी दैनिक **"दि हिन्दुस्तान टाइम्स"** के सम्वाददाता, **श्री विनोद शर्मा** अपने लेख में लिखते हैं :-

"The rally, indeed, was meant to deliver a political riposte to the break away JD group. As the Samta Dal's challenge to Mr. Nitish Kumar;' support among the Kurmis, constituting roughly four per cent of the State electrorate. The ruling group timed its show to coincide with the 119th birth anniversary of **Sardar Vallabh Bhai Patel.**

It's another matter that the **Kurmis** did not turn up in large numbers in Mr. Yadav's rally dominated by his own caste and the Muslims, together accounting for nearly 30 per cent of the population of Bihar."

जो भी हो 12 फरवरी 1994 की **"कुरमी चेतना महारैली"** की ऐतिहासिक सफलता से चकाचौंध हुए लालू यादव, तथा वैशाली संसदीय उपचुनाव में उनके उम्मीदवार को बुरी तरह पराजय और 19 अक्टूबर 1994 को जनता दल तज़ने वाले ग्रुप **(श्री नीतिश कुमार आदि)** की सफल आयोजित रैली से उदासीन अब **"गरीब रैली"** की तथाकथित कामयाबी के नशे में वे बिहार में पुनः अपने को सर्वशक्तिमान समझने लगे हैं ।

इसमें कोई शक नहीं है कि पिछले सौ वर्षों में, जिस अवधि का अवलोकन इस पुस्तक का मुख्य लक्ष्य है, देश में दूरगामी और मूल रूपेण परिवर्तन लाने में राजनीतिक नेता वर्ग की भी बहुत अहम् भूमिका रही है । **देश का यह महासौभाग्य था कि उस दौरान लगभग सभी राष्ट्रीय स्तर के नेता सच्चरित्र, सादा एवं स्वच्छ जीवन तथा उच्च चिंतन वाले, समर्पित और निष्काम भाव से देश के दरिद्रनारायणों का सदैव ख्याल रखने वाले थे** । प्रारम्भ में राजसत्ता

हाथ में आते भी वे इतना न बदले, जितना घृणित रूप इस वर्ग ने गत एक दशक में धारण कर लिया है।

चुनाव की प्रक्रिया में हरेक स्तर पर भ्रष्टाचार हावी होता जा रहा है । चुनाव-प्रचार में अब पुरानी राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत गीतों की जगह लाउडस्पीकर जो फिल्मी धुनपर गाने गाते फिरते हैं, वे इस प्रकार के हो गये हैं :-

"कुर्सी के पीछे क्या? कुर्सी के नीचे क्या है?"

या

"कुर्सी हो मेरे नीचे, हर्षद हो मेरे पीछे,"

आज हालत यह है कि जब कोई समाज की बात करता है, या भारतीय संस्कृति की बात करता है, तो उसका मतलब केवल राजनीति से होता है । सांस्कृतिक चेतना या सामाजिक चेतना का आज एक मात्र अर्थ लगाया जाता है राजनैतिक चेतना और वह भी अपने दल की राजनैतिक चेतना । आज की राजनीति भावी पीढ़ियों के भाग्य-दुर्भाग्य के बारे में सोचने में अक्षम है । मुख्य चुनाव आयुक्त श्री टी० एन० शेषन की कड़ी चुनाव आचार-संहिता के क्रियान्वयन से जरूर चुनाव माहौल सुधरेगा, ऐसी आशा बलवती हो रही है ।

विजयी सांसद अथवा विधायक जो व्यय सम्बन्धी ब्यौरा सरकार को सूचित करते हैं, वे कितने गलत होते हैं, लगभग सभी पाठकगण यह भलीभांति जानते हैं । जब ऊल-जलूल खर्चे के चुनाव में कोई विजय प्राप्त करेगा, तब फिर भ्रष्टाचार अपनाकर वह न पिछली व्यय की पूर्ति तो करेगा ही अपितु आगे का भी कुछ प्रबन्ध कर रखेगा, इसके अलावा उसके सम्मुख अन्य क्या मार्ग है? इस समय दिल्ली में अनेक वर्षों के बाद विधान सभा के लिये 70 स्थानों के चुनाव हुए । चुनाव आयोग ने इधर चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा बढ़ाकर 50 हजार कर दी है, पर ऐसी अफवाहें प्रचलित है कि राष्ट्रीय दलों के उम्मीदवारों को टिकट पाने के लिये कम से कम 2 लाख से 50 लाख दल-कोष के लिये देने पड़े । मान लीजिए इतनी राशि कम से कम वह चुनाव पर खर्च करेगा, यह बात केन्द्र में किसी से छिपी हुई नहीं है, पर चुनाव के पश्चात सब झूठे कम खर्च का ब्यौरा बनाकर सरकार को पेश करेंगे । और वे स्वीकार भी कर लिये जायेंगे । विरला ही ईमानदार-नेता निकलेगा जैसे स्वजातीय स्व0 जयराम वर्मा जो फैजाबाद (उ. प्र.) से कांग्रेस (इन्दिरा) के टिकट पर चुनाव लड़े । पार्टी हर उम्मीदवार को चुनाव लड़ने को जैसी राशि देती है उन्हें भी दी गयी । वे चुनाव में सफल हो लोकसभा सदस्य भी हो गये । एक दिन उस समय की प्रधान मंत्री तथा कांग्रेस अध्यक्षा, श्रीमती इन्दिरा गांधी से वे भेंट करने उनके निवास पर पहुँचे, जब साक्षातकार हुआ, वे पूछ बैठी "वर्मा जी कैसे आना हुआ है?" वर्माजी ने बड़े संकोच से एक नोटों की पोटली उनके सम्मुख रख दी, और कहा कि पार्टी-कोष से जो राशि मुझे चुनाव लड़ने को दी गयी थी, उसमें बची यह राशि आपको सधन्यवाद लौटाने आया हूँ ।" इन्दिरा जी स्तब्ध रह गयी और सामने बैठे गांधीवादी वर्माजी की ईमानदारी पर शान्त मुस्कराती रहीं, शायद वे सोच रही होंगी कि काश! सब नेता इन जैसे ईमानदार होते? तो आज भारत का राष्ट्रीय चरित्र कुछ और ही होता ।"

आज समाज में सर्वत्र पैसे का बोलबाला होता जा रहा है । "सबसे बड़ा रुपइया" कवित्त कदम-कदम पर सही सिद्ध होता जा रहा है । आज धन का मान है, मर्यादा है, यही श्रेष्ठ योग्यता है और यही सबसे बड़ी आकर्षक वस्तु बन बैठी है । शिक्षा और चारित्रक गुणों की उसके सामने नहीं चलती नज़र आती और अनेक स्थानों पर गुण धारक व्यक्ति नवधनवालों से अपमानित भी होते हैं । अब तो "पकड़ गये तो अपराधी, और नहीं तो साहूकार" तक ही बात नहीं बिगड़ी है, लोगों की धारणा है "रिश्वत लेते पकड़े जाओ, रिश्वत देकर छूट भी जाओ ।" आज के जमाने में आर्थिक अपराधी यदि अपनी कर गुजारी में सफल रहता है तो बुरी निगाह से देखने की जगह उसे जमाना सम्मान देने लगा है । दरिद्र और समाज के सर्वहारा वर्ग को न पहले कोई सच्ची सहानुभूतिपूर्ण निगाह से देखता था, जैसे गांधी या निराला जैसे लोग देखकर द्रवित हो जाते थे, और न आज भी । आज के नेता उसी पीड़ित वर्ग के नाम

पर ज्यादातर राजनीति करते हैं वे समाज के हितों को तिलांजलि देकार उन्हें सरासर नज़र अंदाज करते रहते हैं ।

यही प्रमुख कारण है कि समाज में 10 या 20 प्रतिशत उच्च वर्ग के लोग खूब तरक्की करते जाते हैं और बाकी के लोग, विशेष करके नीचे के 60 प्रतिशत व्यक्ति, जो 'दरिद्रता की रेखा' के नीचे आते हैं या महात्मा गांधी की परिकल्पना के 'दरिद्र नारायण वर्ग' के लोगों के जीवन में कोई मूलभूत परिवर्तन, उसके "रोटी, कपड़ा और मकान" की आवश्यकताओं में नहीं आया है, और आधुनिक विकास के फलों को चखना उनकी पहुँच से और भी बाहर होता जा रहा है । उनमें जो नेतृत्व कार्यरत है, बहुधा उसकी अवस्था ऐसी है :-

"अन्धा-अन्धा के रहनुमा, दोनों गये कुयें में समा"

उनके नेता होना चाहिए महात्मा गांधी, महात्मा ज्योतिबा फूले, विनोबा भावे तथा मदर टरेसा, जैसी महान विभूतियां, जो निष्काम भाव से उनके बीच कार्य करें तभी उन दरिद्रजनों के ओठों पर स्थायी मुस्कान देखी जा सकेगी। यह बात कदापि भूली नहीं जानी चाहिए कि परहित, परमार्थ और परसेवा से बढ़कर अन्य कोई भी धर्म नहीं है, और ऐसे धर्म के निर्वाह में, किसी जाति विशेष, सम्प्रदाय या मानव समुदाय का हित ही निहित है ।

या परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।।

अर्थात् - इस परिवर्तनशील संसार में मर कर कौन पैदा नहीं होता लेकिन जन्म उसी का सार्थक है जो जाति (समाज) या वंश की समुन्नति के लिये जीता है । ऐसी एक हिन्दू की अभिधारणा है ।

अंग्रेजों ने अपने शासन काल में हज़ारों परिवारों को पालने वाले देशी गृहोद्योगों को अमानुषी तरीके से नष्ट किया । महमूद गजनवी के बेकायदे लूट से हिन्दुस्तान को कुछ भी नुकसान नहीं हुआ उन्होंने सिर्फ बड़े-बड़े वैभवशाली नगरों, धर्म स्थलों आदि को लूटा, किन्तु अंग्रेज़ों की लूट ने ग्रामों का आर्थिक ढांचा तहस-नहस कर दिया । कृषि के बाद मूलोद्योग खादी-उद्योग को बरबाद कर दिया । गांधीजी ने गांव की बेकारी को देखा और समझा जहां कृषि-कर्म न रहने पर कृषक सात महीने यों ही बैठे रहते हैं, उन्होंने वहाँ की समस्या को कताई द्वारा दूर करना चाहा । डाक्टर मैन ने कहा था चाहे और दृष्टि से गांधी उचित मार्ग से भटक गये हों, लेकिन उन्होंने चरखे का जो पक्ष लिया है उसमें वह भारत की दरिद्रता के असली रहस्य के भीतर पैठ गए हैं । गांधी जी के बाद उनके उत्तराधिकारियों का न चर्खे के प्रति मोह रहा और न खादी के लिए । रोजमर्रा की जिन्दगी से खादी का उपयोग भी नाम मात्र का रह गया है वह भी वृद्ध वर्ग के कांग्रेसियों द्वारा । हाँ जब चुनाव आते हैं तब तो खादी वस्त्रों में वोट मांगने जाना होता है। गांधी टोपी का तो लगता है प्रचलन बन्द हो चुका है उसकी जगह कपड़े का पटका जिस अंग-वस्त्रम कहते हैं आधुनिक नेता के लिवास का एक आकर्षण परिधान बन गया है । खादी और गांधी के ग्रामीणोद्योग की परिकल्पना तो लगता है वर्तमान शासक ने बिसरा दी है और इण्टरनेशनल मॉनिटरी फण्ड्स तथा विश्व डंकल प्रस्ताव जैसी नई-नई बातें जनता के सम्मुख आ रही हैं देश की भावी पीढ़ी के 60 प्रतिशत बच्चों को दूध और न्यूनतम संतुलित आहार तो जुटा नहीं पा रहे हैं पर 5 रुपये प्रति बोतल वाले कोका कोला का फिर देश में उत्पादन शुरू हो चुका है । जनता ने खूब शोर मचाया तब जाकर रुका नहीं तो गांधीजी के जन्म स्थान के पास कच्छ में एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी समुद्रतट का बहुत बड़ा रकबा पट्टे पर नमक बनाने को लेने वाली थी । उससे न केवल आगे नमक बड़े ऊँचे दामों पर बेचा जाता अपितु इस नमक उद्योग में लगे हुये लाखों भारतीय मजदूर और छोटे-छोटे व्यापारी वे भी बेरोजगार हो जाते । विश्व की अन्यान्य मॉनिटरी फंडस का हम पर अब तक कुल 5,00,000 करोड़ ऋण हो गया है । ऋण वापिस करना तो दर किनार हम इस विशाल ऋण-राशि पर वार्षिक ब्याज अदा करने के लिए भी और ऋण लेते हैं इस तरह विदेशी काबुली वालों के शिकंजे में अपने देश को फंसाते जा रहे हैं । गांधी का नारा विदेशियों को था - "Quit India" पर मात्र पचास साल बाद वह बदलकर उनके लिये हो गया है "Welcome to India" दोनों का प्रारम्भिक रूप व्यापारी का रहा है ।

कवि शैली ने सन् 1819 में इंग्लैण्ड में अपनी रोटी-रोज़ी से जूझ रहे अंग्रेज मजदूरों को आह्वान करते हुए लिखा था :

"Rise like Lions after slumber,
In unvanguishable number,
Shake your Chains to earth like dew,
Which in sleep had fallen on you,
Ye are many - they are few."

अर्थात -"उठो! नींद से जागे हुए शेरों की तरह उठो,
अजेय समुदाय बनकर उठो !
सोते में जो जंजीर तुम पर आ पड़ी थी,
उसे ओस की बूंदों की तरह झटककर,
जमीन पर गिरा दो, तुम अनगिनत
हो, वे मुट्ठी भर हैं ।"

कवि शैली के उपयुर्क्त आह्वान भरी कविता से कुरमी बन्धुओं को प्रेरणा लेनी चाहिए और तन्द्रा से अपने को मुक्त करके नयी चेतना नये जोश के साथ अपने को, अपने परिवार को, अपनी जाति को, अपने समाज तथा अपने देश को बुलन्दी की चरम सीमा तक उन्नति करके बढ़ते जाना है, इसी में सबका हित निहित है ।

महासभा की इस प्रथम शताब्दी वर्ष में हमें ईमानदारी से कुछ दृढ़ संकल्प करने होंगे, और उनका पालन करना होगा । सबसे प्रथम और मूल कर्तव्य है अपने कूर्मि क्षत्रिय समाज में, अखिल भारतीय रूप में, सुदृढ़ संघशक्ति उत्पन्न करना हरेक सामाजिक उत्थान के प्रयास के लिये यह परमावश्यक है । सफलता उन्हीं प्रयासों से सम्भव है । जब कूर्मि क्षत्रिय समाज संगठित होगा उसका संघबल स्वतः बढ़ जायेगा तभी दूसरे समाज के लोग हमारी और आकर्षित होंगे, हमसे सम्मानीय व्यवहार करेंगे संघबल बढ़ाने या स्थापित करने के लिये हमें व्यक्तिगत स्वार्थ को त्यागना होगा या उसे बाधक बनने से रोकना होगा । यह कहना सरल है पर करना कठिन है पर समाज हित ऐसा करने में ही होगा । अपनी महासभा के पदाधिकारियों को सम्मान करना और उनके निर्देशन के अनुसार आचरण करना सीखना होगा । पदाधिकारियों के चयन में सावधानी बरतनी होगी । एक गंदी मछली सारे ताल को प्रदूषित कर देती है अतः इस विन्दु पर सतर्कता अति अनिवार्य है । उन पदाधिकारियों को ही समाज कार्य में आना चाहिये, जिन्हें स्वार्थ-त्याग कर जाति के लिये जीना और मरना है । किन्तु हमारा संगठन अन्य जाति या व्यक्ति पर अत्याचार के लिये नहीं है वह आत्म-रक्षा एवं आत्म विकास के लिये होना चाहिये, समग्र राष्ट्र के कल्याण के लिये होना चाहिये । जय सरदार पटेल । जय शिवाजी।

अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के वर्तमान कर्णधार महासभा का प्रथम शताब्दी समारोह भी स्थापना वर्ष सन 1994 में आयोजित करने में असफल

सारे देश के कुरमी जन इस घोषणा से बड़े हताश हुये कि अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा का प्रथम स्थापना शताब्दी समारोह तथा 38 वॉं महाधिवेशन, स्थापना वर्ष 1989 के अनुसार 29 एवं 30 दिसम्बार 1994 को लखनऊ में न करके अपरिहार्य कारणों से जनवरी 1995 तक के लिए स्थगित कर दिया गया है । निर्धारित तिथि की सूचना "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" के अगले अंक (दिसम्बर 94) में दी जायेगी । लगता है कि प्रथम शताब्दी समारोह को गम्भीरता से नहीं लिया गया है और न इसके लिये समुचित योजनाबद्ध प्रचार-प्रसार अब तक किया गया है । महासभा



"कुरमी चेतना महारैली" पटना के पंच का एक अन्य दृश्य

'कुरमी चेतना महारैली"-19 नवम्बर 1994 का बेगम हजरत महल पार्क की जनसभा का विहंगम दृश्य



उ.प्र. राज्य कू. क्ष. समाज के अध्यक्ष, डा. सोनेलाल पटेल सम्बोधन करते हुए



'करम राजा' देव की प्रतिष्ठा-मंच पर करम-वृक्ष की तहनी को भाद्र शुक्ल एकांदशी को स्थापित कर



'जावा-नृत्य' कुड़मियों द्वारा 'करम एकादशी' के दिन 'करम राजादेव' के सम्मुख-बौदुनगुरी, धनवाद में एक पूजन-समारोह

के मौजूदा पदाधिकारीगण उन पर लगे इस कलंक को सन 1995 में शताब्दी समारोह आयोजित करके धोते हैं या नहीं अब यह तो आने वाला समय ही बताएगा । कुरमी जनों को मात्र निम्नलिखित सूचनाएं 'कू० क्ष० जागरण' के माध्यम से पढ़ने को मिली हैं, उनसे संतोष होना सम्भव नहीं है :-

आवश्यक सूचना

उत्तर प्रदेश के ग्राम पंचायत चुनाव के कारण दिनांक 22-10-1994 एवं 23-10-1994 के स्थान पर दिनांक 29-12-1994 एवं 30-12-1994 को बेगम हजरत महल पार्क में आयोजित होने वाला शताब्दी समारोह में सहभागिता के साथ यथायोग्य सहयोग कर अपनी पहचान बनाइए । अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें ।

संयोजक : डा० बलिराम सिंह, अध्यक्ष अ. भा. कू. महासभा — ई० राम बाबू गंगवार
(कू० क्ष० जागरण, अक्टूबर 94 अंक से उद्धृत) — 20/123 इन्द्रानगर, लखनऊ

सूचना

उत्तर प्रदेश में सम्भावित ग्राम पंचायत चुनावों के कारण दिनांक 29-12-1994 एवं 30-12-1994 को बेगम हजरत महल पार्क में आयोजित होने वाला शताब्दी समारोह एवं 38वां महाधिवेशन जनवरी 1995 तक के लिए स्थगित कर दिया गया है । निर्धारित तिथि की सूचना अगले जागरण अंक (दिसम्बर 94) में दी जायेगी ।

महासचिव

निस्संदेह अ० भा० कू० क्ष० महासभा के पदाधिकारीगण महासभा की स्थापना का प्रथम शताब्दी वर्ष समारोह ऐतिहासिकता के अनुसार सन् 1994 के अन्तर्गत मनाने में पूर्णतः असफल रहे हैं, और नवीनतम घोषणानुसार सन् 1994 वर्ष की औपचारिकता भी जनवरी 1995 में मना पाते हैं, कि नहीं, यह तो समय बतायेगा । यह अन्तिम ऊपर वर्णित निर्णय भी लगता है महामंत्री एवं अन्य पदाधिकारियों ने अपने स्तर पर लिया है कार्यकारिणी समिति की विधिवत सहमति प्राप्त कर नहीं, अतः यह निर्णय महासभा की नियमावली के अनुसार नहीं है । वैसे तो इस पूर्णतः तदर्थ कार्यकारिणी समिति ने अवैधानिक तरीके से अपना कार्यकाल लगभग 4 वर्ष तो खींच डाला है, अतः इसके अस्तित्व का वैधानिक स्तर भी नहीं रह गया है । मनमौजी तरीके से महासभा का कार्यकलाप इसके महामंत्री चलाये जा रहे हैं । लगता है सारा कुरमी समाज अब तो सुप्तावस्था में पड़ा है और उदासीन है । इसका प्रौढ़ और युवा वर्ग दोनों भी जागरूक नहीं लगते, अन्यथा वे ऐसी निराशामय परिस्थितियों को बनने नहीं देते । अब भी वे सचेत और सक्रिय हो जायें तो कुछ अधिक क्षति होने से महासभा को बचाया जा सकता है । कुरमी जाति की भावी पीढ़ियां उनकी इन अकर्मण्यता की भर्त्सना करेंगी ।

महासभा के बारे में इस लेखक की गम्भीर चिन्ता की पुष्टि उत्तर प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय महासभा के अध्यक्ष, डा सोनेलाल पटेल के उस वक्तव्य से होती है जोकि अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा की कार्यकारिणी समिति की 19 मार्च 1994 को कानपुर में हुई बैठक के दौरान दिया था और जिसे "कूर्मि क्षत्रिय जागृति" ने अपने अप्रैल-जुलाई 1994 के अंक में इन शब्दों में प्रकाशित किया :-

"हमारा अखिल भारतीय संगठन मात्र कागज़ी संगठन बनकर रह गया है, उन्होंने अखिल भारतीय संगठन को जिला संगठन की उपमा देते हुये अपील की हमें जन-जन से जुड़ना होगा कागज़ों पर नहीं ।"

इस दो दिवसीय कार्यकारिणी समिति में 22 एवं 23 अक्टूबर 1994 को लखनऊ में सर्वसम्मति से शताब्दी समारोह मनाने का निर्णय लिया गया । जिसे, जैसा "कूर्मि क्षत्रिय जागरण" में बाद में प्रकाशित सूचनाओं से विदित

हुआ कि पहले 29 एवं 30 दिसम्बर 94 को वह समारोह टाला गया और बाद में उसे जनवरी 1995 तक के लिए स्थगित कर दिया गया है । आगे समारोह करते भी है या नहीं यह तो अपने वाला समय बतायेगा, इस प्रकार जैसा ऊपर कहा है यह महासभा अपनी स्थापना का प्रथम शताब्दी समारोह भी ऐतिहासिकता-अनुसार शताब्दी वर्ष 1994 में मनाने में असफल रही है । यह ग्रन्थ जोकि महासभा की कार्यकारिणी के सर्वसम्मति प्रस्ताव से लिखने का दायित्व इस लेखक को दिया गया था, उसकी पांडुलिपि तैयार होने पर महामन्त्री जी उसे महासभा की ओर से प्रकाशित न करा सके, मजबूरन पूरे अपने व्यय पर यह ग्रन्थ लेखक को स्वयं प्रकाशित करना पड़ा है । अन्यथा कई वर्षों का गवेषणात्मक अध्ययन और लेखन-परिश्रम फल प्रिय पाठकों तक पहुँचने से रह जाता । यदि यह कृति पाठकों को लाभप्रद लगी तब लेखक को सारे झेले कष्ट अखरेंगे नहीं ।

लखनऊ, बेगम हज़रत महल पार्क में 19, नवम्बर, 1994 को कुरमी विशाल रैली

उत्तर प्रदेश के कुरमियों ने अपनी राजनीति तथा सत्ता में अवहेलना, का गुबार, एक **विशाल जन प्रदर्शन स्वरूप** में राजधानी **लखनऊ के प्रसिद्ध बेगम** हज़रत महल पार्क में 19 नवम्बर 1994 को एकत्र हो, एक बृहत सभा की, जिसका समाचार नई दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक **'दि टाइम्स ऑफ इंण्डिया'** के 20 नवम्बर 94 के अंक में इन शब्दों में व्यक्त किया :

Kurmi Urged to unite

"Lucknow, November 19 : Cutting across party lines, the **Kurmis** who constitute a sizeable chunk of UP's population, came under one banner in an impressive rally held at **Begum Hazrat Mahal Park** here today.

In his inaugural address, **Dr. sonelal Patel,** State president of the **KURMI MAHASABHA,** said community's representation in the corridors of power had been **"depleted"** over the years. The community had enough wealth for its subsistance but lagged behind other castes in the political field, because it was **"not united"** he added.

He said, the community had **41 MLAs** in the state assembly, but they were not functionaing as an effective **"pressure group"** because they were divided along party lines- Dr. Sonelal Patel lamented the loss of political power by the **Kurmi Community** which had produced leaders like **Shivaji, Sahuji Maharaj, Gaekward of Baroda State** and **Sardar Patel**. The speakers included leaders from different political parties,, Dr. Balram singh Patel president of the **All India Kurmi Kshatriya Mahasabha,** was the chief guest.

Dr. Gendan Lal Patel, BJP, MP from **Lakhimpur-Kheri** also addressed the rally. He declared that the **"People want a Kurmi Chief Minister and Prime Minister"** and that no other community had more money power and numerical strength than the **KURMIS** in the state.

Some speakers expressed regret over the fact that the **KURMIS** were the most divided among the other backward castes."

इस रैली की चर्चा लखनऊ, कानपुर, वाराणसी, बरेली तथा दिल्ली आदि अनेक नगरों से प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार पत्रों, पाक्षिक, मासिक पत्रिकाओं में बड़े विस्तार से प्रकाशित हुई जो सब जानकारी स्थानाभाव के कारण यहाँ दे नहीं पा रहे हैं । सिर्फ दिल्ली से प्रकाशित **'इंडियन एक्सप्रेस'** अंग्रेजी दैनिक के 22 नवम्बर 1994 में लखनऊ

में हुई रैली का विवरण "Kurmi out to browbeat yadav's Hegemony in UP" दिया है । लखनऊ से सम्वाददाता शरद्गुप्ता ने इस शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है कि सत्ता हथियाने के लिये शक्ति-संघर्ष उत्तर प्रदेश की अन्य पिछड़ी जातियों में बढ़ा है, विशेष करके कुरमी जाति में जोकि खुले आम, यादवों के सत्ता में बर्चस्व को चुनौती देने के उद्देश्य से 19-11-94 को बृहत कुर्मी रैली आयोजित की गई । कुर्मी उत्तर प्रदेश में अन्य पिछड़े वर्गों में जनसंख्या के आधार पर द्वितीय स्थान पर है जबकि यादवों की आबादी उनसे तथाकथित ज्यादा है । उत्तर प्रदेश में कुरमियों ने सर्वाधिक संख्या में अनुशासित ढ़ंग से आयोजित रैली तथा सभा करके अपनी शक्ति का सफल प्रर्दशन किया ।

इस रैली में राजनीतिक विरोधाभास को पीछे छोड़ते हुए **सभी पार्टियों के कुर्मी शीर्षस्थ नेताओं** ने भाग लिया और उन सबने एक स्वर में यादवों के राजनीतिक वर्चस्व को समाप्त करने का आह्वान किया । क्योंकि वर्तमान में उत्तर प्रदेश विधान सभा में 41 कुरमी विधायक हैं, किन्तु श्री मुलायम सिंह की मंत्रिपरिषद में दो ही कुरमी मंत्री हैं **(सर्वश्री बेनी प्रसाद वर्मा तथा श्री राम लखन वर्मा)** जबकि यादवों के 37 विधायक हैं, जिनमें मुख्यमंत्री सहित छः मंत्री हैं । उत्तर प्रदेश में अभी तक कोई कुरमी मुख्यमंत्री नहीं बना है जबकि यादवों के कई बार मुख्यमंत्री बने हैं ।

पूर्व मंत्री तथा वर्तमान में **भाजपा** के विधायक **श्री रामकुमार बर्मा** का कथन था -"यदि राजसत्ता में अपनी न्यायिक अधिकार चाहते हैं तो तुम्हें यादवों के हाथों से पिछड़ों का नेतृत्व छीनना होगा । आपको (कुरमियों को) प्रदेश में ऐसा माहौल बनाना पड़ेगा जिससे खुशी-खुशी अन्य पिछड़े वर्गों के लोग कुरमियों का नेतृत्व स्वीकार कर लें। उन सबको अपने साथ लेकर चलना होगा, उनका विश्वास अर्जित करना होगा ।"

यादवों के पास जिस प्रकार मुख्यमंत्री **श्री मुलायम सिंह** जैसे राष्ट्रीय स्तर के नेता हैं कुरमियों के पास दुर्भाग्य से इस टक्कर का नेता नहीं उभर पाया है जबकि बिहार में **श्री नीतीश कुमार** जैसे नेता हैं । **नीतिश कुमार** के नेतृत्व में बिहार के कुरमियों ने लालू यादव सरकार को आढ़ हाथों ले लिया है । यहाँ भी मुख्यमंत्री की प्रशंसा में उनकी पार्टी के मंत्री **श्री बेनी प्रसाद बर्मा** ने कुछ कहना चाहा तो जनता ने शोर मचाकर उनकी फजीहत की ।

लखनऊ कुरमी रैली का आयोजन **बहुजन समाज पार्टी राज्याध्यक्ष, श्री सोनेलाल पटेल** जी ने किया था पर उसमें जन कार्य विभाग तथा सांसदीय मामलों के मंत्री आमंत्रित थे । पूर्व मंत्री तथा कांग्रेस पार्टी के विधायक **चौधरी नरेन्द्र सिंह** तथा महाराजगंज के सांसद **श्री पंकज चौधरी** तथा सप्रा विधायक **श्री राकेश सचान** भी थे । इसी लखनऊ शहर में सन् 1894 में 'कुरमी सदर सभा' की स्थापना हुई थी ।

उ० प्र० सरकार ने सितम्बर 1994 माह में पंचायती चुनाव के सिलसिले में जो जातीय आधार पर जनगणना करायी उसमें कुरमियों की जनसंख्या यादवों से काफ़ी कम निकली, जिससे कुरमी लोग सहमत नहीं हैं । कुरमी नेताओं ने यही आह्वान किया कि आपस के मत-भेद, मिटकर प्रदेश के सारे कुरमी संगठित हो जाएँ । अपनी पहचान सुलभ करने के लिए सभी लोग अपने नाम के साथ **'पटेल'** विरुद का प्रयोग तुरन्त प्रारम्भ कर दें । जिस जाति में **छत्रपति शिवाजी** और **लौह पुरुष सरदार पटेल** पैदा हुये हैं । उसे कोई उन्नति करने से रोक नहीं सकता । दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक "दि इकानोमिक टाईम्स" के 23 नवम्बर 1994 के अंक ने लखनऊ सम्वाददाता का एक विस्तृत लेख "Kurmis prepare to take on Yadavs in UP" शीर्षक से प्रकाशित किया गया है । उसमें मुख्य रूप से यही कहा गया है कि **उत्तर प्रदेश में तेज़ी से बढ़ते यादवीकरण तथा सत्ता में भागीवारी में उनके साथ निरन्तर अन्याय किए जाने से कुरमियों में घोर असंतोष और आक्रोश उबरकर सामने आ रहा है । और लखनऊ की बृहत कुरमी रैली उसका प्रथम सफल प्रदर्शन आँका गया है** । कुरमियों ने अनुभव किया है कि उत्तर प्रदेश में यदि सत्ता में वह अपना उच्च स्थान बनाना चाहता है तो आपसी उपजातियों के ऊँच-नीच के शेष मतभेदों को समाप्त करके उन सबको एकत्र हो संगठित होकर शक्ति बल स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है । उसे अपना योग्य और सक्षम राष्ट्रीय स्तर का नेतृत्व आगे लाना होगा ।

लखनऊ की इस कुरमी रैली को आयोजित करने में **उत्तर प्रदेश कूर्मि क्षत्रिय समाज** के अध्यक्ष **श्री सोनेलाल पटेल** की एक सफल संगठनकर्त्ता की भूमिका भी स्पष्ट नज़र आयी । जोकि विशाल जन-समूह और विभिन्न प्रकार के

वाहनों की लम्बी-लम्बी कतारों से सब देख रहे थे । यथार्थ यह है कि कुरमीजन किसी से पैसे में कम नहीं है किन्तु उसकी राजनीतिक पकड़ मजबूत नहीं हो पायी है । और यह रैली उसी को उपलब्ध करने की दिशा में कुरमियों का पहला कदम समझना चाहिए । आगे के वर्णन के कुछ अंश सम्वाददाता के अपने शब्दों में नीचे साभार उद्धृत है :-

"The idea for a rally seems to have come from **Bihar** where the caste earlier organised it. The **Bihar Kurmi Rally** was the launching pad for **Mr. Nitish Kumar."** **In both the states, the Kurmis feel they have been neglected and have not got the representation they deserved.**

The rally in **Lucknow** was attended by **Kurmi leaders** from different parties, including the **Samajwadi Party**, **BSP** and **BJP** so it was an all party affair.

Though the Chief Minister, Mr. Mulayam Singh Yadav, was not directly attacked nor was he mentioned by name, the Patels made it more than clear that they had a grouse against the Yadav leadership, which had not cared much for the Kurmis. A close lieutenant of Mr. Mulayam Singh Yadav and a Kurmi leader of standing, Beni Prasad Verma (presently senior minister in Mr. Yadav's cabinet, who tried to defend Mr. Yadav was jeered at.)"

इसी प्रकार का प्रतिरोध प्रदर्शन 12 फरवरी 1994 को पटना की **"कुरमी चेतना महारैली"** के दौरान गांधी मैदान की विशाल जनसभा में हुआ था । जनता दल विधायक श्री मधुसिंह ने अपने भाषण में श्री लालू प्रसाद यादव का नाम लिया ही था कि उन्हें मंच से धकिया कर हटा दिया गया ।

जनता दल बनाम समतादल "माया" पत्रिका, 30 नवम्बर 1994, पृ० 73

"पटना में 19 अक्टूबर 1994 को **"बिहार बचाओ महारैली और जन अदालत"** का आयोजन **श्री लालू यादव** को चुनौती पेश करने के लिए ही किया गया था । **श्री नीतिश कुमार, श्री वृषिण पटेल** और अन्य जनता दल (जार्ज) नेताओं ने प्रदेश में घूम-घूम कर यह कहा कि 19 अक्टूबर की रैली अगर कामयाब हो गयी तो यह **श्री लालू यादव** को आधी शिकस्त होगी । इस रैली के जरिये इन नेताओं को यह भी आंकना था कि यादवों को छोड़कर किस हद तक प्रदेश की अन्य पिछड़ी जातियों का झुकाव इस नयी पार्टी की तरफ होता है । यों जनता दल (जार्ज) बनने और इसमें श्री नीतिश कुमार तथा श्री वृषिण पटेल सरीखे बिहार की कुरमी जाति के प्रमुख सांसदों के शामिल होने के साथ ही यह स्पष्ट हो गया था कि कुरमी श्री लालू प्रसाद यादव के पाले से फांद चुके हैं ।"

आगे यह पत्रिका लिखती है- "लालू सरकार के प्रति कुरमियों ने अपने आक्रोश का कारगर इज़हार सबसे पहले 12 फरवरी 1994 को पटना में **'कुर्मी चेतना रैली'** का सफल आयोजन करके किया था । दरअसल, लालू सरकार में सत्ता में उपेक्षित कुरमी इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि विद्रोह करके ही वे लोग इस सूबे की राजनीति में कुछ हासिल कर सकते हैं । **कुरमी बिहार की एक प्रमुख और प्रभावशाली जाति है, जो प्रायः कृषि कर्म में रत है । कुरमियों को इस बात की कसक हो रही थी कि प्रदेश की कुल जनसंख्या के 14 प्रतिशत जहां यादव हैं, वहीं कुरमी भी तो लगभग 14 प्रतिशत है, पर यादव राज कर रहे हैं और कुरमियों की कोई पूछ नहीं ।**

अध्याय-19

महान कुरमी विभूतियाँ

(1) राष्ट्रपति श्री नीलम संजीव रेड्डी

रेड्डी शब्द छठी-सातवीं शताब्दी से हिन्दुओं की एक जाति के लोगों के लिए प्रयोग में आया **"आन्ध्र का सामाजिक इतिहास"** के मूल तेलगु लेखक **सुखराम प्रताप रेड्डी** अनुवादक आर० वेंकटराव, के बिचार में रेड्डी लोग आन्ध्र (वेंगि) देश के मूल निवासी नहीं थे। ये लोग उत्तरी भारत के **'राष्ट्रकूट'** में आ बसे और वहाँ वे रेड्डी कहलाये। पहले जब ये लोग छोटे-छोटे भूखंडों के स्वामी थे, तब ये 'रट्टागुडी' कहलाये। **'रट्टा'** शब्द के अर्थ है राज्य और **'गुड़ि'** के अर्थ है ठेका। अर्थात् राज्य की रक्षा एवं सुव्यवस्था हेतु जिन लोगों को भूखंडों तथा गांवों के ठेके दिये पहले 'रट्टागुडी' और बाद में बदलते-बदलते **रट्टाडि, रट्टडि** ओर अन्त में रेड्डी हो गये। इन्हें **कापू** नाम से भी जाना जाता है। रेड्डी आज अपने को कापू से उन्नत मानते हैं और आन्ध्र प्रदेश में उनका वर्चस्व है।

उपरोक्त रेड्डी **बंश (कूर्मि बंश)** में **श्री नीलम संजीव रेड्डी** का जन्म 19 मई 1913 में हुआ था। ये कापू **(रेड्डी)** किसान परिवार के हैं 'कपि' शक्तिशाली होता है इसलिये ये भी अपने को कापू से सम्बोधित करने लगे। पुराने जमाने में बराबर अकाल पड़ने के कारण यहाँ के लोग बड़े ही संघर्षशील एवं सहिष्णु हो गये हैं। **नीलम संजीव रेड्डी** के पिता और मामा दोनों राष्ट्रवादी थे। इनका विवाह **नागरत्नम्मा** से हुआ।

सन् 1931 ई0 में **श्री नीलम संजीव रेड्डी** देश की पुकार पर कॉलेज छोड़कर आज़ादी के आन्दोलन में आ गए। वे मातृभाषा **तेलुगु** के बड़े **पटुवक्ता** हैं। आप सन् 1936 में **आन्ध्र कांग्रेस कमेटी के सचिव** मनोनीत हुए। सन् 1940 में पहली बार छः महीने के लिये जेल भेजे गये। सन् 1946 में वे मद्रास विधान सभा के सदस्य चुने गये। अगले वर्ष सन् 1947 में **कान्सटीट्युयेन्ट असेम्बली के सदस्य** चुने गये।

सन् 1949 में **कुमार स्वामी के मद्रास राज्य मंत्रिमण्डल** के मंत्री तथा सन् 1952 में **राज्य सभा के सदस्य** चुने गये। कांग्रेस पार्टी के निर्विरोध नेता चुने जाने पर भी स्वयं **उपमुख्यमंत्री** का स्थान ग्रहण कर **श्री टी0 प्रकाशम्** को **आन्ध्र प्रदेश** का **मुख्यमंत्री** बनाया। सन् 1956 में **आन्ध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री** बने। सन् 1960 में **आल इण्डिया कांग्रेस पार्टी** के तथा सन् 1964 में **केन्द्रीय मंत्री** बने। सन् 1969 में **राष्ट्रपति** के पद पर अपने साथियों के कुचक्र से **श्री बी0 बी0 गिरि** से हार गये। **कांग्रेस** छोड़कर मार्च सन् 1977 को वे **जनता पार्टी** से चुनकर **लोकसभा के अध्यक्ष** बने और 25 जुलाई सन् 1977 को **सर्वसम्मति** से **राष्ट्रपति का पद** ग्रहण किया। सन् 1982 तक अध्यक्ष रहे और उसी दौरान प्रारम्भ में **जनता पार्टी के श्री मुरारजी भाई देसाई** तथा उसके बाद **चौधरी चरण सिंह भारत के प्रधान मंत्री बने**। वे अपने को स्पष्ट किसान पुत्र कहा करते हैं। वे राजनीति के मर्मज्ञ विद्वान एवं स्पष्ट वक्ता तथा बेदाग़ चरित्र के मजे-हुये नेता हैं। **इस कृषक-पुत्र का प्रजातंत्र में उठते-उठते राष्ट्रपति पद पर आसीन हो जाने पर गांधीजी का एक और सपना साकार हुआ। वे सेवानिवृत्त जीवन बिता रहे हैं।**

2 सितम्बर 1979 को **तिरुपति मन्दिर** में दर्शन के समय राष्ट्रपति श्री रेड्डी ने कहा कि वह सदा अपनी आत्मा तथा **भगवान वेंकटेश्वर** से प्रेरणा लेकर निर्णय लेते रहे हैं। उन्होंने कहा कि "I have reached the highest office in the country from a farm. I am a small man, and have nothing to please any one. My only wish through prayer now is that my action should not bring disrepute to my village people and the country."

(2) भारत रत्न लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल

सरदार पटेल की गणना आधुनिक भारत के शीर्षस्थ महान नेताओं जैसे महात्मा गांधी, पं0 जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस आदि में की जाती है, जिनका नाम एवं कीर्ति भारतीय इतिहास में सदैव स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेंगे। भारत को स्वतंत्र कराने हेतु जन-आंदोलनों को सफल रूप में संचालित करने और स्वतंत्रता के तुरन्त बाद देश-निर्माण और उसके सर्वांगीण विकास में उनकी अद्वितीय सफल भूमिका के लिये उन्हें सदैव सादर-स्मरण किया जाता रहेगा।

चरोतर या चारूतर नाम से प्रसिद्ध गुजरात के ह्रदय जैसे प्रदेश में छोटा सा करमसद गांव है, वहाँ झवेरभाई पटेल का घर था। इन्हीं झवेर भाई पटेल के घर 31 अक्टूबर 1857 के शुभ दिन नड़ियाद गांव में पुत्र रत्न वल्लभभाई का जन्म हुआ। यह वल्लभभाई के ननिहाल का गांव था। सरदार वल्लभभाई के बारे में हिन्दी के प्रख्यात् लेखक तथा वरिष्ठ सांसद स्व० डा० सेठ गोविन्द दास ने उनके जीवन-चरित्र 'सरदार पटेल' (प्रकाशक, राज्यपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 6) में लिखा है - "गुजरात प्रदेश की कुरमी नामक क्षत्रिय जाति में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र जी के पुत्र लव-कुश के नाम पर लेवा व कदवा दो उपजातियां बनी। इनमें से लेवा जाति में 31 अक्टूबर 1857 को बोरसाद ताल्लुके के करमसद गांव में एक कृषक परिवार में, श्री झवेरभाई को पुत्र लाभ हुआ। उस बालक का जन्म उनके ननिहाल नड़ियाद में हुआ था और उनका नाम वल्लभभाई पटेल रखा गया।" डा० सुदर्शन सिंह की पुस्तक "आदर्श देश-भक्त" गीताप्रेस गोरखपुर से हाल ही में प्रकाशित हुई है। सरदार वल्लभभाई पटेल का जीवन-चरित्र पृष्ठ 52 के अन्तर्गत लिखा है - "विट्ठलभाई पटेल के छोटे भाई वल्लभभाई पटेल का जन्म भी अपने करमसद गांव में ही 31 अक्टूबर सन् 1875 को हुआ था। उनका परिवार कृषक कुरमी परिवार था।"

वीर पिता :- गांधीजी के निजी सचिव श्री महादेव देसाई कणबी पाटीदार कूर्मि जाति के थे। उन्होने अपनी पुस्तक में झवेर भाई के छोटे पुत्र काशीभाई द्वारा अपने पिता के बारे में बतायी यह बात लिखी है कि "हमारे पिताजी ने बचपन में सन् 1857 की क्रान्ति में ठेठ झांसी की रानी के प्रदेश में जाकर हिस्सा लिया था। दो तीन साल तक वे घर पर लौटे भी न थे। इन्दौर के मल्हारराव होल्कर ने उन्हें कैद कर लिया था। उनके सामने मल्हारराव होल्कर अक्सर शतरंज खेला करते थे। शतरंज में होल्कर गलत प्यादा चलाते, तब झवेरभाई कहते : 'महाराज यह नहीं वह मोहरा चलिये।' शतरंज में उनकी दक्षता देखकर मल्हारराव होल्कर दंग रह गये थे। उन्होंने झवेरभाई को मुक्त करके उनसे दोस्ती कर ली थी।' इतना स्पष्ट है कि झवेरभाई पटेल वीर स्वतंत्र तथा सख्त मिजाज वाले थे। सम्भवतः उन्होंने सन् 1857 के विप्लव में भाग लेने की वजह से झवेरभाई को कैद किया हो।

ऐसे वीर पिता की कुल छः सन्तान थीं। उनमें पांच पुत्र थे - सोमाभाई, नरसिंह भाई, विट्ठलभाई, वल्लभभाई तथा काशीभाई, एक पुत्री डाही बहन थी। आगे चलकर विट्ठलभाई तथा बल्लभभाई बड़े प्रसिद्ध हुए।

बाल्यकाल और विद्यार्थी जीवन और वकालत की शुरुआत

वल्लभभाई ने अपना भविष्य निर्माण स्वयं किया था। 22 वर्ष की आयु में सन् 1877 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने मुख्तारगिरी की परीक्षा पास की। उस समय के रिवाज के अनुसार विवाह 12-13 साल की लड़की झवेरबा से 18 वर्ष की उम्र में हो गया था। एल-एल0 बी0 पासकर डिस्ट्रिक्ट प्लीडर बनने में छः साल लगते थे अतः अपना सांसारिक जीवन उन्होंने मुख्तारगिरी से प्रारम्भ किया। डिस्ट्रिक्ट प्लीडर बनने के बाद वल्लभभाई को कुछ अच्छे वकीलों ने नडियाद में अपने साथ रहकर वकालत करने को कहा लेकिन वे स्वतंत्र रूप से वकालत करना चाहते थे। अतः उन्होंने गोधरा जाना पसन्द किया।

विद्रोही वल्लभभाई

उस जमाने में पाटीदार-पटेल कौम में वर-विक्रय का चलन था, जिससे वल्लभभाई को प्रारम्भ से ही नफरत थी। किसी लड़के के दहेज लेने की बात सुनकर वे उपहास में पूछते **'सांड के कितने दाम मिले?' पाँच हजार या सात हजार?"** एक बार अपने निकट के सम्बन्धी के लड़के का ब्याह होने वाला था उस सम्बन्ध में लेन-देन की चर्चा चल रही थी, तो वे बोल पड़े, **'यह सब बेकार बातें छोड़कर लड़के को हाट में भाव लगवाने को खड़ा कर दो ।"**

वल्लभभाई ने समाज-सुधार की दिशा में काफ़ी कार्य किया था। अहमदाबाद में **"पाटीदार युवक मंडल"** मृत्यु-भोज के खिलाफ विद्रोह कर रहा था। उसमें वल्लभभाई का भी साथ था। कई कौमी अग्रणीयों के लड्डू उन्होंने छीने थे। वल्लभभाई के साथ अन्य पाटीदार नवयुवक सर्वश्री **हरिप्रसाद देसाई, डा० कानूनगो, गणेश वासुदेव मावलंकर (बाद में भारतवर्ष के लोकसभा के प्रथम स्पीकर)** आदि इस मंडल के कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेते थे।

बैरिस्टर वल्लभभाई

वकालत में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बाद **वल्लभभाई** की इच्छा हुई कि वे इंग्लैंड जाकर **बैरिस्टर** बनें। यहां वे कितनी ही कुशलता से अपने मुवक्किलों के मुकदमें लड़कर जीत दिला दें पर सम्पन्न मुवक्किल तो मंहगे बैरिस्टरों को अपने केस देते थे, जिससे उनकी कमाई भी खूब ज्यादा होती थी। **बैरिस्टर** ऊँची फीस लेने में माहिर थे चाहे वे कितना भी कम अक्ल क्यों न हो। यह देखकर ही **वल्लभभाई** विलायत जाकर **बैरिस्टर** बनने के लिये आतुर हो उठे थे। अप्रैल 1903 में पुत्री **मणिबेन** का तथा नवम्बर 1905 में पुत्र **डाह्या भाई** का जन्म हुआ। सन् 1905 में विलायत जाकर **बैरिस्टर** बनने की पूरी तैयारी कर ली। पासपोर्ट आदि तैयार हो गए, पर अंतिम कागजात उनके **बड़े भाई विट्ठलभाई** के हाथ में आ गये। उन्होंने पहले जाने की इच्छा व्यक्त की, **वल्लभभाई** मान गये। **विट्ठलभाई** सन् 1908 में **बैरिस्टर** होकर लौटे। **बम्बई** में प्रैक्टिस शुरु की। इस दौरान **झवेरबा** बीमार पड़ी उन्हें **बम्बई** के **मेडम कामा अस्पताल** में दाखिल करवाया गया। **वल्लभभाई** अपनी पत्नी की खबर लेने **बम्बई** गये, खबर पूछकर आणंद लौटे।

आणंद (Anand) के कोर्ट में **वल्लभभाई** एक हत्या का मुकदमा लड़ रहे थे। वादी के गवाहों के बयान कलमबद्ध किये जा रहे थे। कहीं भी चूक होने पर केस निर्बल हो सकता था तथा आरोपी को फांसी लग सकती थी। तभी **वल्लभभाई** को एक टेलिग्राम दिया गया। उसे एक निगाह देखकर जेब में डालकर वे फिर मुकदमें की आगे की कार्यवाई में व्यस्त हो गये।

शाम को जब कोर्ट का काम पूरा हुआ तो उन्होंने अपनी **पत्नी के देहान्त** की बात प्रकट की। अंतिम समय पर न मिल पाने का ग़म रह गया। उस समय वे तैंतीस वर्ष के थे। **पाटीदार जाति** में उस समय के चलन के अनुसार सगे-संबंधियों ने दूसरा विवाह करने के लिये उन्हें बहुत समझाया। लेकिन **वल्लभभाई** अडिग रहे तथा उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। सारा जीवन विधुर रहकर संयम के साथ काट दिया।

सन् 1910 में **वल्लभभाई पटेल** बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिये इंग्लैंड गये। बैरिस्टर की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये, भारत लौटने पर अहमदाबाद में बैरिस्टरी करने लगे। चन्द वर्षों में उनकी गणना सफलतम **बैरिस्टरों** में होने लगी। उधर **बम्बई उच्च न्यायालय** में उनके बड़े भाई अपने समय के सफल तथा **योग्य बैरिस्टर** माने जाने लगे, **किन्तु यही उन दोनों के जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य न था। दोनों देश और समाज के लिये भी कुछ करना चाहते थे। अतः दोनों ने आपस में तय किया कि बड़े भाई, विट्ठलभाई समाज सेवा और राजनीति में भाग लेंगे तथा छोटे वल्लभभाई बैरिस्टरी से धनोपार्जन कर दोनों परिवारों की आर्थिक जरूरतों और उत्तरदायित्व का निर्वाह करेंगे।**

अहमदाबाद नगरपालिका तथा बारदोली सत्याग्रह में

सरदार पटेल सन् 1917 में **अहमदाबाद नगरपालिका** के सदस्य चुने गये। प्रारम्भ में **वल्लभभाई पटेल गांधीजी**

से विशेष प्रभावित नहीं थे किन्तु जब गांधी जी ने चम्पारण आन्दोलन के समय अंग्रेजों द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों की अवहेलना कर दी, तो वह उनके इस कार्य से अत्यन्त प्रभावित हुए । कुछ ही अरसे में वे उनके अनन्य भक्त बन बैठे ।

बारदोली प्रायः चार सौ वर्गमील का एक अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्र था । यहां के अधिकांश कृषक कणबी-पाटीदार, उपजाति के कूर्मि क्षत्रिय थे । किन्तु पूर्व बारदोली की भूमि विशेष उपजाऊ नहीं है । उस समय यहाँ के किसानों पर साहूकारों का कमर तोड़ कर्ज लदा रहता था । गांधीजी ने बल्लभभाई की सलाह पर खेड़ा की जगह बारडोली सत्याग्रह के लिये उपयुक्त समझा । सरदार पटेल के लिये यह सत्याग्रह जीवन-मरण का प्रश्न बन गया था । वह पूर्णतवा उसके लिये समर्पित हो गये और विजय श्री उन्हें प्राप्त हुई । बारडोली सत्याग्रह के समय उसकी सफलता पर सन् 1928 में बल्लभभाई को गांधी जी से 'सरदार' का विरुद मिला था । इस आन्दोलन से सरदार बल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय स्तर के नेता बन गये । कवि आह्वान करते थे, "विराट रूप हो किसान । स्वराज्य आज लो किसान ।" इतिहास साक्षी है कि सन् 1921, 1931 तथा 1942 के गांधी जी द्वारा चलाये आन्दोलनों के वे ही प्रमुख सूत्रधार रहे थे । सन् 1935 से 1940 तक आप कांग्रेस के पार्लियामेन्टरी बोर्ड के अध्यक्ष रहे । बल्लभभाई को सन् 1930, 1940 तथा 1942 में राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेने के लिये जेल-यात्रा भी करनी पड़ी । एक बार मोहम्मद अली जिन्ना ने देश विभाजन से पूर्व कहीं भाषण में कह दिया कि "गांधीजी ने क्या किया?" इसके जवाब में सरदार ने उत्तर दिया कि "निश्चय गांधीजी ने कुछ नहीं किया, किन्तु जिन्ना को कुरान पढ़वा दिया ।"

सत्ता में सरदार

भारत की प्रथम अन्तरिम सरकार में आपने गृहमंत्री के पद को सुशोभित किया और 15 अगस्त 1947 के अनन्तर आप स्वतन्त्र भारत के प्रथम उप-प्रधानमंत्री तथा गृहमंत्री बनाये गये । शासन-डोर हाथ में लेते ही उनका प्रथम कार्य केन्द्रीय पदों पर अभारतीयों की नियुक्ति बन्द कर देना था । रेडियों और सूचना विभाग उनके पास था । उसके कार्यक्रमों तथा कार्यसंचालन में मूलभूत परिवर्तन तुरन्त कर डाले गये । विभाजन से उत्पन्न अनेक समस्याओं को उन्होंने दूर किया ।

राष्ट्र का एकीकरण

भारत से जाते समय अंग्रेज़ भारत को विभाजित तो कर ही गये, साथ ही देशी राज्यों को भी स्वतन्त्र कर गये । इन देशी राज्यों को भारत में मिलाना एक जटिल समस्या थी । सरदार पटेल की लौह-इच्छा शक्ति तथा अद्भुत दूरदर्शिता के कारण ही इनका भारतीय संघ में विलय सम्भव हो सका । इस प्रकार अनेक देशी राज्यों का भारत में विलय हो गया था, किन्तु तब तक दो राज्य भारत में सम्मिलित न हुये थे हैदराबाद और जूनागढ़, उसके लिये उन्हें शक्ति का प्रयोग करना पड़ा । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने उस समय सरदार पटेल के प्रति ये उद्‌गार प्रकट किये:-

"मातृभूमि के सौ-सौ खण्डों को, जोत कलम नामक हल से,
एक खेत में परिणत जिसने किया, स्वबल से, कौशल से,
अटल पुरुष अपना पटेल, वह तृप्त आज निज कृषि-फल से,
उपल कठिन भी मंजुल-जलमय, है तुलनीय हिमाचल से ।।"

सरदार की चेतावनी

कश्मीर और चीन के बारे में सरदार पटेल ने पूर्व चेतावनी दे दी थी । यदि नेहरू जी उनकी राय मान जाते तो इन दोनों समस्याओं का समाधान उसी समय हो जाता । सरदार पटेल में अनोखा गुण यह भी कहा जाता था कि

वे दिखावे की राजनीति में विश्वास नहीं करते थे । वे जो उचित समझते उसे करने में कतई नहीं कतराते थे । जब सोमनाथ के जीर्णोद्धार का मसला उनके सामने आया तो बिना संकोच के उस कार्य को भलीभाँति सम्पन्न करवाया। अयोध्या में 22, 23 सितम्बर 1949 की रात्रि में राम जन्मभूमि पर श्री रामलला को हटाने के लिये पं. नेहरू ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पंडित पंत पर जोर डाला, वे मूर्ति हटाने को तैयार हो गये थे, पर सरदार पटेल ने उन्हें रोका और कहा कि यह विवाद उनका गृह विभाग निबटायेगा । वे उसे भी निपटा देते यदि अगले वर्ष तक उनकी मृत्यु न हो गई होती ।

महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी, हीरे जैसे अनमोल, स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, स्वतंत्र भारत के शिल्पी, आज़ाद हिन्दुस्तान के सामने उठे तूफानी प्रश्नों को सुलझाने वाले दक्ष सरदार पटेल का मूल्यांकन कैसे किया जाय । उन्हें त्यागमूर्ति भीष्म कहा जाय तो गलत न होगा । इस महारथी का निधन बम्बई के नेपियर रोड़ स्थित बिड़ला भवन में 15 दिसम्बर 1950 को प्रातः 9 बजकर 30 मिनट पर हुआ । सरदार पटेल को भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के द्वारा मानद उपाधियाँ 'डाक्टर ऑफ ला' प्रदान की गई ।

सरदार पटेल के मरणोपरान्त 42 वर्ष बाद भारत सरकार के कुम्भकरणों की निद्रा-तन्द्रा भंग हुई और सन् 1991 में उन्हें भारत रत्न, के अलंकरण से विभूषित करके अपनी भूल सुधारने की चेष्टा की । हाल ही में "भारत के लौह पुरुष सरदार पटेल" पर एक पूरी फिल्म पूर्व वित्तमंत्री श्री एच0 एम0 पटेल द्वारा निर्मित की गई । श्री पटेल का हाल में 93 वर्ष की आयु में निधन हुआ । उनकी पुत्री डा० कुमारी अमृता पटेल को 11 जनवरी 1994 को राष्ट्रपति डा० शंकरदयाल शर्मा ने उनके पूज्य पिता के लिये राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक प्रदान किया । डा० कुमारी अमृता पटेल, नेशनल डेयरी डवलपमेन्ट बोर्ड की मैनिजिंग डाइरेक्टर है ।

सरदार पटेल देश का सर्वोच्च सम्मान : 'भारत रत्न'

भारत को स्वतन्त्रता मिलते ही जिस व्यक्ति ने 563 स्वतंत्र रजवाड़ों, रियासतों और जागीरों का विलय कर एक सुदृढ़ राष्ट्र की नींव डाली, क्या कोई बता सकता है कि तब से अब तक किसी अन्य भारतीय ने देशहित में उससे बढ़कर या उसके बराबर का भी "कोई कृत्य कर दिखाया हो?" फिर उस व्यक्ति को इस देश के सर्वोच्च सम्मान से 42-43 वर्षों तक क्यों वंचित रखा गया? वह कोई साधारण व्यक्ति न था बल्कि वह था सरदार बल्लभभाई पटेल, जिसके रहमोकरम और गांधी जी की देश की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में भी अपनी विशेष अप्रजातान्त्रिक ख्वाहिश पूरा कराने के लिये, पंड़ित जवाहरलाल नेहरू को अपनी जगह प्रधान मंत्री बनने का हाथ आया मौका, उन्हें सहर्ष सौंप दिया था। इस दरियादिली को पंड़ित नेहरू ने जीवन भर और उनके परिवार के उत्तराधिकारीगण तक ने बखूबी भुलाये रखा । अकृतज्ञता का और इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है? यह कोई साधारण भूल न थी बल्कि जान बूझकर की गई थी, जिस पर आगे के इतिहासकार बेहतर प्रकाश डाल सकेंगे । यहां तक कि पं0 नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गांधी और श्री राजीव गांधी तीनों को 'भारत रत्न' से सरदार पटेल से पूर्व सम्मानित किया गया ।

नेहरू परिवार के अलावा जब श्री मुरारजी भाई देसाई प्रधानमंत्री बने उन्होंने 'बादशाह खान' को 'भारत रत्न' से सम्मानित करना उचित समझा पर सरदार पटेल को वे भी भूल गये । श्री विश्वनाथ सिंह जब प्रधानमंत्री बने तो डा० भीमराव अम्बेडकर को मरणोपरान्त 'भारत रत्न' से सम्मानित किया, तब भी वे भूल गये कि कांग्रेस के न होने पर भी सरदार पटेल ने ही उन्हें (डा0 अम्बेडकर को) पं0 बंगाल से राज्य सभा का सदस्य बनवाकर, मंत्रिमंडल और संविधान सभा में अपने प्रभाव से स्थापित करवाया था । और वे भारत के आधुनिक मनु कहलाये । यद्यपि 'मनु' शब्द से अम्बेडकर साहब को सख्त चिढ़ थी । फिर भी डा0 अम्बेडकर को, विरोधीदल के नेता से एक सर्वमान्य राष्ट्रीय नेता बनने में सरदार बल्लभभाई पटेल का राजनैतिक संरक्षण मिला । जिससे ही यह सम्भव हो सका । श्री वी0 पी0 सिंह ने जो अपने को पिछड़ों के मसीहा समझते हैं दलितों के मसीहा बनाने में डा० अम्बेडकर को जो सरदार पटेल के योगदान पर उन्हें 'भारत-रत्न' न देकर, सिर्फ डा० अम्बेडकर को देकर उन्होंने भी बड़ी भूल की, इतना कहा जाय

पर्याप्त रहेगा ।

श्री चन्द्रशेखर जी की सरकार आयी अपने 'यंग टर्क्स' के जमाने में जिन मुरारजी देसाई से उनकी अक्सर नोंक-झोंक संसद भवन में होती थी, उन्हें तो 'भारत रत्न' से सम्मानित किया पर सरदार पटेल की देश को महान उपलब्धि को उन्होंने भी भुला दिया । आज जब भी देश पर संकट के बादल आते हैं लोग यकायक सरदार पटेल का स्मरण करते हैं, महात्मा गांधी या पं० जवाहरलाल नेहरू को नहीं ।

अनेक देशवासी सरदार पटेल की अवहेलना को उस समय ज्यादा बुरा मानते थे जब मरणोपरान्त फिल्मी कलाकार, श्री एम० जी० रामचन्द्रन तक को इस सर्वोच्च पदक से सम्मानित कर दिया गया । समाजवादी चिन्तक श्री मधु लिमये इस अवहेलना को सह न सके, उन्होंने श्री चन्द्रशेखर के पास एक मार्मिक पत्र लिखा, जिसे पढ़कर तत्कालीन प्रधानमंत्री, श्री चन्द्रशेखर जी, ने अपनी भूल को स्वीकार किया और पत्र की प्रतिलिपि राष्ट्रपति को भेजी । तत्कालीन राष्ट्रपति जी, श्री आर0 वी0 वेंकटरमन ने सुझाव दिया कि स्व0 राजीवगांधी को 'भारत रत्न' सम्मान दिया जाये । चन्द्रशेखर ने सरदार पटेल और राजीव गांधी दोनों को ही 'भारत रत्न' सम्मान देने का औपचारिक प्रस्ताव राष्ट्रपति जी को भेज दिया । राष्ट्रपति कार्यालय ने एक विचित्र सुझाव दिया कि राजीव गांधी के नाम पर अधिसूचना तुरन्त जारी कर दी जाये और सरदार पटेल की अधिसूचना बाद में । सम्भवतः नयी सरकार के बन जाने के बाद वह जारी की जाये । श्री चन्द्रशेखर जी समझ गए कि नयी सरकार के बन जाने के बाद शायद वह कभी सम्भव न हो सके, इसलिये राष्ट्रपति कार्यालय को उनके दबाव पर दोनों को 'भारतरत्न' देने की अधिसूचना एक साथ जारी करनी पड़ी और इस प्रकार 'भारत रत्न' पदक राष्ट्रपति भवन के अशोक हाल में सरदार पटेल के पौत्र तथा श्री डाह्याभाई पटेल के पुत्र ने एक विशेष अलंकरण समारोह में ग्रहण किया । श्री चन्द्रशेखर जी ने अपनी सूझ-बूझ से अब तक के सभी प्रधान मंत्रियों के कलंक को धो दिया था । किन्तु इस भूल-सुधार का वास्तविक श्रेय जागरूक नेता श्री मधु लिमये को ही जाना चाहिए , अन्यथा यह मसला बर्षों और खटाई में बड़ा रहता । पर सरदार पटेल को इस सरकारी उपाधि की क्या जरूरत थी, जनता ने उन्हें सच्चे हृदय से अनेक उपाधियां दी थी, "सरदार", "लौह पुरुष", "भारत का बिस्मार्क," "राष्ट्र-निर्माता" आदि। इस देश में "भारत रत्न" उपाधि प्राप्त तो अनेक हैं पर इस देश में 'लौहपुरुष' केवल एक है - सरदार बल्लभभाई पटेल ।

सरदार पटेल ने स्वयं सादा जीवन, दीनता, दुःख-दर्द भरा जीवन अपनाया ताकि भावी पीढ़ी का जीवन सुख-समृद्धि पूर्ण हो सके । उन्होंने देश की आज़ादी के दौरान अनेक सत्याग्रह किये, जेल गये, अनेक प्रकार के कष्ट झेले, परिवार की परवाह न कर सके और देश-हित के लिये अपनी अन्तिम सांसों तक जूझते रहे । वे सच्चे कर्मयोगी थे उनका जीवन शुद्ध और हर प्रकार से अनुकरणीय है । विशेष करके इस देश का नेतृत्व अपने को जितना पटेल-मय बना सकेगा यह देश सही माने में उतना शीघ्र और अधिक उन्नत और देशवासियों को लाभप्रद और आदर्श राष्ट्र बना सकेगा । पटेल साहब के शाश्वत और प्रजातान्त्रिक विचारों की प्रासंगिकता आज भी है और चिरकाल तक रहने वाली है जनता का भी दायित्व बनता है कि देशहित में वे सच्चे मन से पटेल जी के सिद्धान्तों, आदर्शों और नीतियों को अपने जीवन में व्यवहार में लायें ।

राष्ट्र के स्मृति-पटल से उस महानायक के स्मृति-चिह्नों को मिटाने के लिये सारे उपाय मुकम्मिल तौर पर किये गये थे । दिल्ली के लालकिले में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने जो काल-पात्र गड़वाया था । (जिसे सन् 1977 में जनता पार्टी सरकार ने उखड़वा डाला । उसमें सरदार पटेल का नाम था ही नहीं जबकि नेहरू परिवार के छोटे - बड़े सभी लोगों का उल्लेख बार-बार था ।) महज़ पटेल जी के प्रति हीनता की मनोग्रन्थियों के कारण सरदार पटेल को पूरे नेहरू परिवार ने 'भारत रत्न' के मान से बंचित रखा । लौहिया जी कहा करते थे कि हमने सरदार के साथ अन्याय किया। नेहरू की चकाचौंध से हम चौंधियां गये । नेहरू और उनके पारिवारिक सदस्यों के प्रधान मंत्रित्वकाल में 'सरदार पटेल जयन्ती' समुचित ढंग से, जैसे राजघाट पर मनती है, नहीं मनायी जाती थी और कहीं अन्य श्रद्धालुयों ने मनायी भी तो उसमें कांग्रेसी नेता सम्मिलित होने से कतराते थे कि कहीं उनके राजनीतिक आका रुष्ट न हो जाएं।

सरदार पटेल और कश्मीर समस्या

सरदार पटेल ने अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए कश्मीर समस्या को हल करने के लिये भरसक प्रयत्न किए थे पर पं0 नेहरू और उनके एकाध अन्य सलाहकारों की दखलनदाज़ी से वे आशातीत सफलता न पा सके । नेहरू कश्मीर से अपना भावनात्मक सम्बन्ध रखते थे पर उनके सम्बन्ध तत्कालीन कश्मीर महाराजा सर हरि सिंह से अच्छे न थे । उन्होंने स्वयं सरदार पटेल से कहा कि उनकी बात महाराजा जरूर सुनेंगे, नहीं तो पाकिस्तान के पंजाब तथा उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त से घुसबैठिये वहां की मुस्लिम लीग सरकार कश्मीर में भेजने का प्लान बनाये बैठे हैं। पटेल ने तुरन्त अपने विश्वसनीय व्यक्ति के माध्यम से महाराजा हरि सिंह तथा उनके प्रधानमंत्री श्री मेहरचन्द महाजन से बातचीत कर जम्मू और कश्मीर का भारतीय संघ में तुरन्त विलय कर लिया था । जब 27 सितम्बर 1947 को पता चला कि घुसबैठिये कश्मीर में घुसने वाले हैं तो भारतीय सेना के अंग्रेज जनरल बूचर व जनरल रसैल की इच्छा के विपरीत सरदार पटेल के कारण भारतीय सेना दल को हवाई मार्ग से श्रीनगर उतारा गया । तब पटेल ने सेना के जनरलों को निर्देश दिये थे — "Kashmir must be defended at all costs, come what may, resources or no resources." जबकि मंत्री परिषद की बैठक में जनरलों को निर्देश दिये कि भारतीय लड़ाकू दल को हवाई मार्ग से शीघ्र कश्मीर उतारने के उचित प्रबन्ध किये जाये ।

युद्ध में मेजर जनरल कुलवंत सिंह के नेतृत्व में कश्मीर के काफ़ी भागों से घुसबैठियों को खदेड़ दिया गया था, तब तक नेहरू जी मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाकर युद्ध-विराम की घोषणा तुरन्त करने की जाल में फंस गये । पटेल इस सबके पक्ष में न थे । जनरल थिमैया ने जब मेजर जनरल कुलवंत सिंह को सरकार के युद्ध विराम के आदेश दिये तो वे बोले कि 'सर' कम से कम एक दिन के लिये आप अपने अधिकार से युद्ध-विराम न लागू होने दें हमारे बहादुर जवान सारे के सारे घुसबैठियों को भारतीय सीमा {(Redcliffe Award) के अनुसार बनी सीमा रेखा} के उस पार मार के खदेड़ देंगे । पर नेहरू को अपनी अन्तरराष्ट्रीय छवि की ज्यादा चिन्ता थी वे आखिर युद्ध-विराम कराके काफ़ी कश्मीर का भाग पाकिस्तानियों के अधिकार में दे बैठे । उनकी यह भूल इस देश को कितनी मंहगी पड़ी यह भविष्य बतायेगा । तब से अब तक हर वर्ष हज़ारों करोड़ का खर्च वहाँ सेना पर करना पड़ता है और जान-माल की भयंकर क्षति होती है सो अलग ।

नेहरू जी ने अपने चहेते शेख अब्दुल्ला, जिनको बाद में जेल में भी डालना पड़ा, को कश्मीर का प्रधान मंत्री बनाया । फलतः महाराजा हरि सिंह को गद्दी और उनके प्रधानमंत्री श्री मेहरचन्द महाजन को प्रधान मंत्रिपद छोड़ने पड़े महज जबकि वे सरदार पटेल की बात मानकर भारतीय संघ में विलय को राजी हुये थे । सरदार पटेल ने एक बार वरिष्ठ सांसद श्री हरि विष्णु कामथ से कहा कि यदि पं0 नेहरू और उनके सलाहकार गोपालस्वामी आयंगार कश्मीर को अपने अधिकार क्षेत्र में न लेते तो मैं उसे गृहमंत्रालय के अंतर्गत हैदराबाद की तरह ठीक-ठाक कर लेता ।

ये सरदार पटेल के यश से इतना जलते थे कि बम्बई में आयोजित कांग्रेस की प्रथम शताब्दी समारोह में प्रसिद्ध 'फोटो' जिसमें गांधीजी बीच में बैठे हैं और नेहरू व पटेल एक-एक तरफ, उसमें सरदार पटेल वाला भाग फोटो से काट कर मात्र नेहरू व गांधीजी वाला अंश मात्र परिवर्तित करके दिखाया । वही फोटो सब जगह लगाये गये यदि मूल फोटो की तरह सरदार पटेल उसमें रहते तो क्या नेहरू की कीर्ति बौनी हो जाती ? ऐसा भय नेहरू के भक्त तथा सरदार पटेल के विरोधी कार्यकर्ताओं को क्यों हैं ?

(3) डा० सर हरिसिंह गौर

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के न्यायविद्, शिक्षा-शास्त्री, सागर विश्वविद्यालय के संस्थापक, दानवीर हरि सिंह गौर का जन्म 26 नवम्बर 1870 को मध्य प्रदेश स्थित सागर शहर में हुआ था । उनका जन्म कूर्मि क्षत्रिय कुल की 'गौर' उपजाति में हुआ था । पाठकगण जानते होंगे कि 'गौड़' ब्राह्मणों की उपजाति है, और 'गौर' कूर्मि क्षत्रिय लोगों की। अंग्रेजी

में दोनों उपजातियां 'Gaur' लिखी जाती हैं, पर हिन्दी में 'र' या 'ड़' अक्षर का इसमें शब्द के अन्त में होने से स्पष्ट भेद हैं। 'गौर' उपजाति के कूर्मि क्षत्रिय अपने को बुन्देला क्षत्रिय भी कहते हैं।

हरिसिंह गौर एक अति साधारण कूर्मि क्षत्रिय परिवार में जन्में थे, उनके पिताजी एक आरक्षी थे। परिवार की गरीबी का यह आलम कि प्रारम्भिक शिक्षा के दिनों में वे बिजली के खम्भे के नीचे पढ़े, और अपनी शिक्षा पूरी करने के लिये अनेक प्रकार के कष्ट झेले। परन्तु वे बड़े मेधावी छात्र थे, अपने शिक्षकों के प्रिय शिष्य थे। उन्हें अपने छात्र-जीवन में उत्कृष्ट परीक्षा फल प्राप्त कर सकने के फलस्वरूप सदैव छात्र वृत्तियां मिलती गयीं जिससे आगे की शिक्षा पाना सुलभ होता गया। भारत में अपनी शिक्षा पूरी करके हरिसिंह ने इंग्लैंड के कैम्ब्रिज़ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और वहां से सन् 1892 में कानून में ट्राइपास (Tripos) की विरल डिग्री प्राप्त की। वे बैरिस्टर होकर भारत लौटे। सन् 1893 में उनका विवाह डा0 बलदेवराम सिंह की सुपुत्री से हुआ।

बैरिस्टर हरिसिंह गौर की सम्पूर्ण शिक्षा तो मेधावी छात्र होने के कारण छात्र-वृत्तियों से हुई पर परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय थी कि बैरिस्टर हरिसिंह गौर को भारत लौटते ही मजबूरी में मध्यप्रदेश के भण्डारा शहर में डिप्टी कलेक्टर पद को स्वीकार कर वहां कार्य करना पड़ा। किन्तु 3 माह बाद इस सरकारी पद से त्यागपत्र देकर उन्होंने भण्डारा शहर में ही कानून की प्रैक्टिस शुरू कर दी। अपनी विद्वता, उत्कृष्ट विवेकशीलता से विधिवक्ता के रूप में खूब ख्याति अर्जित करते गये। भण्डारा से रायपुर की और वहाँ से कुछ वर्ष बाद नागपुर को अपनी वकालत के पेशे का केन्द्र बनाया। अपनी मेधा और प्रतिभा से वे अपनी विधा में सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे।

बैरिस्टर हरिसिंह गौर ने अल्पकाल में एक विधिवक्ता के रूप में शहरीय परिधि से प्रादेशिक और उससे भी उठकर राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान स्थापित कर ली। सन् 1905 में लन्दन विश्वविद्यालय ने और उसके बाद ट्रिनटी कॉलिज, डब्लिन ने आपको कानून विधा में डाक्ट्रेट (डी. लिट.) की उपाधि प्रदान की।

सर हरिसिंह गौर बिन्दु से सिन्धु बने। सागर शहर का यह अद्वितीय मोती, सात समुन्दर पार जाकर इंग्लैण्ड में चमका। कभी वे शिक्षा पाने के लिये दर-दर की ठोकरें खाते थे। बाद में डा0 हरिसिंह इंग्लैंण्ड में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत सत्ताईस विश्वविद्यालयों के पच्चीस दिवसीय वृहत सम्मेलन के अध्यक्ष बने। अपनी बहुमुखी प्रतिभा, शिक्षाव्रत, उत्कट विधिविद होने के कारण वे समूचे ब्रिटिश साम्राज्य पर शिक्षा-शास्त्री व विधिज्ञ–मार्तण्ड की तरह छा गये थे।

आपका नाम देश-विदेश के चोटी के विधिवक्ताओं के रूप में विख्यात हो चुका था। वे उन सफल वकीलों में से थे जोकि जटिल मुकदमों में भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के शहरों की अदालतों में उच्च-न्यायालयों तथा विदेशों में भी, विशेष करके प्रिवी कौंसिल (Privy Council) के सम्मुख अक्सर अपने मुवक्किल की बड़ी खूबी से पैरवी करते थे। उनका कानूनी पेशे का तथा सार्वजनिक जीवन बड़ा उज्जवल, उत्कृष्ट एवं अनेकानेक सफलताओं और उपलब्धियों से भरपूर रहा, उनमें से निम्नलिखित उपलब्धियां प्रमुख है :-

1. भण्डारा नगरपालिका के सदस्य चुने गये, तब वे वहां वकालत करते थे।
2. नागपुर नगरपालिका के अध्यक्ष चुने गये।
3. केन्द्रीय विधान सभा (Central Legislative Assembly) के सन् 1921 से 1935 तक सदस्य रहे।
4. 1 जनवरी 1925 को आपको ब्रिटिश सरकार द्वारा 'सर' के खिताब से अलंकृत किया गया।
5. दिल्ली विश्वविद्यालय का प्रथम भारतीय कुलपति होने का इन्हें गौरव प्राप्त हुआ।
6. नागपुर विश्वविद्यालय के कुलपति के पद को सुशोभित किया।
7. अपने जन्म स्थान सागर में "सागर विश्वविद्यालय" की स्थापना के लिये अपनी करोड़ों की सम्पत्ति दान की और उसे एक उच्च स्तर का विश्वविद्यालय बनाने में लगे रहे। वे जीवन-पर्यन्त उसके कुलपति रहे।

सर डा० हरिसिंह गौर ने परतंत्र भारत के शिक्षा जगत को गौरवान्वित किया। जहाँ वे बचपन में परिवारिक दरिद्रता के कारण सदैव, पाठ्य-पुस्तकों तक के लिये मोहताज़ रहे। इधर-उधर से पुस्तकें थोड़े समय के लिये मांगकर

परीक्षाओं की तैयारी करते थे । पर डा० गौर का शैक्षणिक जीवन सर्वदा प्रथम श्रेणी का उत्तमतम स्थान लेकर रहा, और बाद में उनकी ही लिखी विधि सम्बन्धी पुस्तकें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पाश्चात्य विश्वविद्यालयों में तथा देश में भी पाठ्य-ग्रन्थों के रूप में पढ़ाई जाती थी । सर फ्रेड्रिक पेलाक जैसे मनीषी न्यायविद् ने उनके ग्रन्थों की मुक्त कंठ से सराहना की थी । बौद्ध धर्म पर लिखित उनकी अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति "The Spirit of Budhism". से उनको बौद्ध देशों में बहुत ख्याति और सम्मान मिला । कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर और महात्मा गांधी भी इन पुस्तकों के बड़े प्रशंसक थे । उन्होंने भारतीय संस्कृति के महामंत्र 'त्याग' और शुद्ध आचरण को सदा अपनाये रखा और मानवता की सेवा उनका जीवन लक्ष्य था । उनका बाद का जीवन सादगी, पर-सेवा, परहित की भावना से ओत-प्रोत ऋषि का जीवन था ।

आपकी धर्मपत्नी का निधन सन् 1941 में हुआ उनकी पुत्रियां थीं, पुत्र न था । विश्व में डा० सर हरिसिंह गौर जैसा दूसरा विद्यादानी और अर्थदानी खोजने पर भी नहीं मिलेगा । वे अखिल भारतीय प्रतिष्ठा प्राप्त अग्रणी अधिवक्ता थे और भारत में तथा प्रिवी कौन्सिल में वकालत करके उन्होंने विपुल यश, एवं धन अर्जित किया था । अपनी सम्पदा के दो तिहाई भाग अर्थात लगभग दो करोड़ रुपए की विपुल धन राशि सागर विश्व विद्यालय की स्थापना के लिये दे दी । उस सस्ते जमाने में जब सोना 40-45 रुपया तोला था जो आज 5000 रुपये से अधिक का हो गया है। तब के उनके दान किये दो करोड़ रुपये आज के 250 करोड़ रुपयों के लगभग होते हैं । आज उस विश्वविद्यालय का नाम "डा० हरिसिंह विश्वविद्यालय, सागर" है और शिक्षा जगत में उसका अपना उच्च स्थान बन चुका है । अपनी सम्पदा का बाकी एक तिहाई भाग अपनी पुत्रियों में बांट दिया । एक पुत्री अंग्रेज से शादी करके इंग्लैंड बस गयी थी। उस पुत्री ने अपने पिता डा० हरिसिंह गौर की वृद्धावस्था में बड़ी सेवा की । वे उसी पुत्री के पास बाद में रहे । इंग्लैंड में श्री माननीय चन्दूलाल चन्द्राकर, वर्तमान सांसद, उस समय 'हिन्दुस्तान' समाचार पत्र के संवाददाता के तौर पर थे । वे डा० गौर के निकट ही रहते थे । माननीय चन्द्राकर जी ने इस लेखक को बतलाया कि किसी पुस्तक में यह लिखा जाना गलत है कि वे जीवन के अन्तिम वर्षों में ईसाई हो गये थे क्योंकि वे उनसे अक्सर मिलते रहते थे। वे अपने को हिन्दू और कूर्मि क्षत्रिय होने पर नाज़ करते थे । 25 दिसम्बर 1949 को भारत के इस महान सपूत की जीवन-लीला समाप्त हुई । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने इस महान सपूत के निधन पर अपने उद्गार इन शब्दों में प्रकट किये :-

सरस्वती लक्ष्मी दोनों ने दिया तुम्हें सादर जयपत्र ।
साक्षी है हरिसिंह, तुम्हारा ज्ञान-दान का अक्षयसत्र ।।

(4) श्री विट्ठलभाई झवेरभाई पटेल

श्री विट्ठल भाई पटेल का कुछ परिचय सरदार वल्लभभाई पटेल के अग्रज के रूप में इस पुस्तक में उनके जीवन वृत्त में दे दिया गया है अतः उसकी पुनरावृत्ति करना उचित न रहेगा । यह भी वहाँ वर्णन किया जा चुका है कि बैरिस्टरी पढ़ने के लिये पर्याप्त धन-संचय कर वल्लभभाई इंग्लैंड जाने के लिये प्रयत्नशील थे । विदेशी यात्रा कम्पनी का स्वीकृति-पत्र दोनों भाइयों के समान नाम वी0 जे0 पटेल होने के कारण बड़े भाई विट्ठलभाई पटेल के हाथों में पड़ गया । उसे पढ़कर उनकी सुप्त इच्छा बैरिस्टरी पढ़ने इंग्लैंड जाने की जागृति हुई । अनुज वल्लभभाई को जब पता चला वे तुरन्त पहले अपने अग्रज भ्राता को इंग्लैण्ड भेजने को तैयार हो गये और सारी संचित राशि पढ़ाई-व्यय के लिये दे दी । इस प्रकार वे सन 1908 में बैरिस्टर बन कर भारत लौटे । उन्होंने बम्बई में प्रेक्टिस प्रारम्भ की । आपने वकालत के क्षेत्र में काफ़ी धन और यश अर्जित किया ।

सन् 1910 में जब वल्लभभाई विलायत जाने के तैयार हुए, उससे पूर्व उनकी पत्नी का निधन हो चुका था, अतः बेटी मणिबहन और पुत्र डाह्या भाई उनके अग्रज श्री विट्ठलभाई के साथ बम्बई रहते थे । वे इन दोनों बच्चों को बहुत प्यार करते थे, दूसरे वे निस्संतान थे, यद्यपि शिक्षा के लिये ये दोनों बच्चे वहां की सेन्ट मेरीज स्कूल की

मिस विल्सन के घर पर छात्र के रूप में रखे गये पर श्री विट्ठलभाई अभिभावक के रूप में दोनों का पूरा ध्यान रखते थे। डाह्या भाई तो एक तरह से विट्ठलभाई की देख-रेख में उनके साथ रहकर ही बड़े हुये थे।

13 फरवरी 1913 को बम्बई बन्दरगाह पर बल्लभभाई बैरिस्टर होकर लौटे तो बड़े भाई बैरिस्टर विट्ठलभाई पटेल ने उनके दोनों बच्चों के साथ उनका हार्दिक स्वागत किया। बल्लभभाई दोनों बच्चों को लेकर अहमदाबाद चले गये और वहाँ से वकालत शुरु की।

समाज सेवा के लिये बैरिस्टरी का पेशा छोड़ा

विट्ठलभाई पटेल का नाम बम्बई में वकालत के क्षेत्र से भी अधिक आम जनता और समाज सेवा के क्षेत्र में विख्यात होता जा रहा था। वे उत्तरी हिस्से की स्थानिक स्वराज संस्थाओं की ओर से बम्बई की धारासभा के सदस्य चुने गये थे। विट्ठलभाई और बल्लभभाई दोनों भाई मानते थे कि वकालत का पेशा और राजनीति और समाज सेवा दोनों भलीभांति एक साथ नहीं चलाये जा सकते। अतः इन पटेल बन्धुओं ने आपस में कार्य बांट लिये। विट्ठलभाई पटेल सक्रिय राजनीति और समाज सेवा करें और बल्लभभाई पटेल वकालत। बल्लभभाई ने वकालत में खूब धन कमाकर विट्ठलभाई को आर्थिक जिम्मेदारी से मुक्त किया। इस बात का उल्लेख बल्लभभाई पटेल ने सन 1921 की एक आम सभा में इन शब्दों में किया था :

"यदि इस देश की स्वतंत्रता चाहिए तो सभी स्वार्थों को त्यागकर सन्यासी बनना होगा। इसलिये हमने निर्णय लिया है कि दोनों में से एक देश सेवा करेगा और दूसरा परिवार सेवा करेगा। तब से मेरे भाई ने अपना सफल वकालत का पेशा त्यागकर देश सेवा करनी शुरू की। दोनों परिवारों का निर्वाह करने का दायित्व मेरे सिर आया। पुण्य का काम उनके सिर गया और पाप मेरे सिर। लेकिन उनके पुण्य में मेरा भी कुछ हिस्सा है। यह समझ कर मैं मन को समझा लेता हूँ।"

'सर' की उपाधि अस्वीकार की

विट्ठलभाई पटेल जब बम्बई धारासभा के सदस्य थे तो 'अनिवार्य शिक्षा विधेयक' उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। उनके इस प्रारम्भिक कार्य से प्रसन्न होकर अंग्रेज सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि से अलंकृत करना चाहा, परन्तु आपने बड़ी विनम्रतापूर्वक उसे ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया।

बारडोली आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया

बल्लभभाई पटेल को गांधी जी ने बारडोली आन्दोलन का नायक बनाया था। वे जी जान से उसे सफल बनाने में जूझ रहे थे। उससे पूर्व गांधी जी ने बारडोली का सही रुख जानने का काम विट्ठलभाई को सौपा था। 24 जनवरी 1922 से श्री विट्ठलभाई ने बारडोली में अपना पड़ाव डाला। गाँव-गाँव घूमकर जांच शुरू की। विट्ठलभाई ने जांच कर ली। बारडोली आन्दोलन के लिये मानसिक रूप से तैयार हो चुका है ऐसा प्रतीत होने पर बारडोली ताल्लुका परिषद गठित करके उसे आयोजित करना निश्चित हुआ। उस परिषद के प्रमुख के रूप में श्री विट्ठलभाई पटेल को चुना गया। परिषद की बैठक बुलायी गयी जिसमें गांधी जी और वल्लभभाई भी आये। परिषद के प्रमुख विट्ठलभाई पटेल ने उपस्थित सभासदों को स्पष्ट शब्दों में कहा, "आपने जो कीर्ति पायी है, उसकी कीमत हिन्दुस्तान आपसे मांग सकता है। यदि आप उस कीर्ति की कीमत देने में असमर्थ हों तो अभी से बता देना। ऐसा करेंगे तो आपका सारे हिन्दुस्तान पर उपकार होगा। एक बार आन्दोलन रूपी जंग में कूदने के बाद कायरों की भांति पीछे हटने से बेहतर प्रारम्भ से ही असमर्थता को स्वीकार कर लेने की शूरवीरता है।" विट्ठलभाई पटेल जाति-व्यवस्था के घोर विरोधी थे। उन्होंने 17 सितम्बर 1918 को केन्द्रीय धारासभा में 'हिन्दू-बिल' प्रस्तुत किया जिसमें अन्तर्जातीय विवाह प्रस्तावित था।

गांधीजी ने सत्याग्रह की योग्यता के लिए कितनी तैयारियां चाहिए तथा उसमें कितना जोखिम रहा है, उसका

स्पष्टीकरण करते हुये कहा, "खूब प्राण देकर, माल-मिलकियत गंवाकर, बरतन ढोर-ढंगर खोकर, सब कुछ खोकर ही स्वराज घर में लाना है ।"

गांधीजी और विट्ठलभाई की उपस्थिति में बल्लभभाई को कुछ बोलने के लिये नहीं रहा था, उन्होंने अपनी पैनी दृष्टि से बारडोली ताल्लुका की आन्दोलन के प्रति कटिबद्धता नाप ली थी । गांधीजी तथा विट्ठलभाई ने बारडोली में अपना डेरा डाला । देश के बड़े-बड़े अग्रणी बारडोली की पवित्र भूमि पर आने लगे । मैथलीशरण गुप्त जैसे महाकवि ने इस आंदोलन के लिये काव्य लिखा, 'विश्वस्त बारडोली, भारती की धर्मोपोली ।' इस प्रकार बारडोली स्वराज्य का तीर्थधाम बन गया । यहाँ की सफलता से जहाँ अन्यान्य उपलब्धियाँ प्राप्त हुई, यह भी स्थापित हुआ कि बारडोली प्रथम सफल कृषक आन्दोलन था जोकि मुख्यतः पाटीदार कणबियों द्वारा लड़ा गया और इसके कारण अनेक और अन्दोलनों को जन्म मिला और देश को सरदार बल्लभभाई पटेल जैसा निर्भीक, दृढ़संकल्प, दूरदर्शी नेता मिला ।

बारडोली आन्दोलन के दौरान की एक अन्य घटना यहां उल्लेखनीय है । गांधी का उधर सविनय अविज्ञा कानून भंग आन्दोलन चल रहा था । देश में जगह-जगह कानून भंग की घटनाएं घट रहीं थी अंग्रेज सरकार उसे रोकने की बड़ी सख्ती से कार्रवाई भी करती थी । जनोत्तेजना बढ़ती जा रही थी ।

बारडोली के एक भवन के दो कमरों में गांधीजी तथा विट्ठलभाई रहकर आन्दोलन की स्थिति पर निगाह रख रहे थे । वहीं दूर में रेलवे के एक बेकार पड़े डिब्बे में आन्दोलनकारी कार्यकर्त्ता जो सब पाटीदार जाति के थे, रहते थे । वहीं रात में उसे 'मनोरंजन क्लब' बनाकर सब दिन की थकावट दूर करते थे । श्री बल्लभभाई और श्री विट्ठलभाई बड़ी विनोदी प्रवृत्ति वाले थे । (निम्नलिखित वृतान्त साभार डा० मंगुभाई रा० पटेल की पुस्तक "युग पुरुष सरदार बल्लभभाई पटेल", प्रकाशन पाटीदार संशोधन और प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 1990 पृष्ठ 41 से) ।

एक बार विट्ठलभाई भागते हुए इस क्लब के दरवाजे पर आए और बोले, "अरे कणबे । आप सब यहाँ 'हीं-हीं' कर रहे हैं, और वहां बीमार प्राणी पड़ा है ।' क्लब के सदस्य समझे कि भवन के पास मैदान वाले गड्ढे में कोई प्राणी गिरा होगा । अतः क्लब के सदस्य कुँवरजी भाई बोले, "वह तो वहाँ हर रोज़ गिरता है ।" विट्ठलभाई पटेल जी ने कहा, "अरे कणबे, वह बूढ़ा तो पल्टी मार गया !" कुंवर जी भाई ने हँसते हुये कहा, "बापू तो रोज पाल्थी लगाते हैं, उसमें क्या है ?" विट्ठलभाई पटेल ने तब ऊँची आवाज में कहा, "अरे पगलों । सात सौ मील दूर से (देवदास गांधी) का तार आया कि कुछ पुलिसवालों को जनता ने थाने में फूँक दिया । (चौरा चौरी की घटना) । अतः बूढ़े (गांधीजी) ने आंदोलन (सविनय कानून भंग) बंद करने का निर्णय कर लिया है ।"

यह सुनकर सब स्तब्ध रह गये । फौरन वे गांधीजी के पास दौड़ गये । गांधी जी की व्यथा का पार न था । अहिंसा की प्रतिमा भीतर से मथ रही थी । विट्ठलभाई पटेल ने गांधी जी से कहा, "इतना बड़ा देश है, तब कहीं न कहीं ऐसा दंगा तो होगा ही । हम वाइसराय को अल्टिमेटम दे चुके हैं । हमारे वचनों पर श्रद्धा रख करके लोगों ने इतनी बड़ी तैयारियां की हैं । फिर आगे हमारा विश्वास कोई नहीं करेगा । जेल में पड़े हुओं के साथ दगा होगी ।" गांधी जी पर फिर भी असर न हुआ और उनकी अन्तर्व्यथा देखकर फिर विट्ठल भाई ने अधिक दलीलें न की ।"

गांधीजी के विशाल हृदयी साथियों में बल्लभभाई तथा राजेन्द्र बाबू मुख्य थे । उन्हें गांधीजी की बात समझ में आ गयी । लाला लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, आदि गांधीजी के इस कदम से नाराज़ हुये थे, तथा उन्हीं लोगों ने उसकी टीका-टिप्पणी भी की । गांधीजी अपने निर्णय पर अडिग रहे । "देश तथा जनता अभी परिपक्व नहीं हुए हैं । यह आन्दोलन चालू करने में मेरी हिमालय जैसी भूल थी ।" ऐसा कहकर उन्होंने सारा दोष अपने सिर पर ले लिया । उन्होंने नेताओं से किसी रचनात्मक कामों में जुट जाने का अनुरोध किया । पर सविनय कानून भंग की लड़ाई गांधीजी द्वारा रोक देने से बारडोली की जनता निराश भी हुई और नाराज भी ।

दिल्ली में केन्द्रीय धारा सभा के अध्यक्ष बनने से पूर्व बैरिस्टर विट्ठलभाई पटेल कई वर्ष तक उसके सदस्य रहे। केन्द्रीय धारा सभा के स्पीकर (उस समय अध्यक्ष सम्बोधित करने का प्रचलन था) के कार्य को बड़ी दक्षता से वह दिन-रात

जुटे रहकर सुचारु रूप से संचालित करते थे वे अपने उच्च पदासन के प्रति निराभिमानी पर उसकी गरिमा के कट्टर संरक्षक थे ।

धारा सभा की प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए छोटे-बड़े लाट महोदयों को भी वे धता बताने में सकुचाते नहीं थे । उस समय अंग्रेजों का भारत पर शासन था । ऐसे समय में विट्ठलभाई सिद्धान्त के लिये अंग्रेज के आँगन में अंग्रेज को आह्वान करते थे । अंग्रेज शासन के चक्रव्यूह में वह अभिमन्यु की भाँति जूझते थे राजनैतिक क्षेत्र में वे प्रेसीडेन्ट पटेल के नाम से विख्यात हो गये थे ।

वे केन्द्रीय धारा सभा के अधिवेशन में पूरे समय तक स्पीकर पद पर उपस्थित रहकर अंग्रेज डिप्टी स्पीकर को सदन की अध्यक्षता करने का अवसर बहुत कम देते थे । काफी देर रात्रि तक वह कार्यवाही के कागजातों को देखकर अगले दिन का विषयक्रम आदि तैयार करते रहते थे । बड़े-बड़े अंग्रेज स्तब्ध थे, पर साहस किसी का न होता था कि वह विट्ठलभाई पटेल को कुछ कह सके । उनका स्वाभिमान सदा उन्नत और ओजस्वी रहा ।

विट्ठल भाई पटेल को बारडोली सत्याग्रह के दौरान किसानों पर किये गये अत्याचारों का विवरण सुनाया जाता तो आप अत्यन्त दुखी होते । स्वयं आप समय-समय पर वाइसराय के पास जाते और उनको सत्याग्रहियों के कष्टों से अवगत कराते ।

सन् 1927 में गुजरात में भयंकर बाढ़ आयी, जिससे समूचे प्रदेश में जान-माल की काफ़ी हानि हुई श्री विट्ठलभाई पटेल गुजरात के इस विकट संकट की घड़ी में नयी दिल्ली से दो मास तक नडियाद जाकर रहे और राहत-कार्यों में हाथ बटाया । उन्होंने वाइसराय लार्ड इर्विन को आग्रहपूर्वक गुजरात बुलाकर बाढ़ की विनाश लीला का दृश्य दिखलाया। जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी भारत सरकार ने अपने अकाल कोष से 1 करोड़ रुपये की राशि वाढ़ पीढ़ियों के सहायतार्थ प्रदान की ।

विट्ठलभाई पटेल के कोई संतांन न हुई । सरदार पटेल की पत्नी के निधन के बाद उनकी 6 वर्षीय बेटी मणिबेन तथा 3 वर्षीय डाह्या भाई की परवरिश ताऊ, श्री विट्ठलभाई पटेल की देख-रेख में बम्बई में उनके घर रहकर हुई। श्री वल्लभभाई के विलायत से बैरिस्टर बनकर लौटने के वावजूद भी उनके दोनों बच्चे ताऊजी ने यहाँ बम्बई में सन 1920 तक रहे ।. उनके साथ रहते हुये डाह्या भाई मैट्रिक तक पढ़े श्री विट्ठलभाई केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के पहले सदस्य बनकर दिल्ली 1918 आये तो डाह्याभाई भी उनके साथ अन्त तक रहे । सबसे गौरवशाली और ऐतिहासिक उपलब्धि 22 अगस्त 1928 को केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष निर्वाचित होना था । बड़े संघर्ष के बाद यह चुनाव उन्होंने जीता था ।

विट्ठलभाई पटेल बीमार पड़े । उस समय वल्लभभाई पटेल को नासिक जेल में रखा गया था तब सुभाष चन्द्र बोस चिकित्सा के लिये विट्ठलभाई को वियना ले गए थे । वहां सुभाष चन्द्र बोस विट्ठलभाई के कृपापात्र बन गये । जिस समय विट्ठलभाई पटेल का निधन 22-10-1933 को हुआ उस अन्तिम समय सुभाषबाबू उनके पास थे । ये दुःखद समाचार वल्लभभाई को नासिक जेल में मिला । विट्ठलभाई का शव लेकर सुभाषबोस भारत आये । गांधीजी की इच्छा थी कि विट्ठलभाई की अन्तेष्टि वल्लभभाई के हाथों हो । किन्तु अंग्रेज सरकार उन्हें कुछ शर्तों के साथ छोड़ने को तैयार थी जो वल्लभभाई को मान्य न थी अतः वे जेल के बाहर न आ सके । बम्बई नगरी ने विशाल शवयात्रा निकालकर अपने दिवंगत रहनुमा को, नेता की भाव भीनी, बड़ी दुःखभरी विदाई दी। कुमारी मणिबेन पटेल तथा डाह्याभाई शव-यात्रा में उपस्थित थे । डाह्या भाई ने अपने ताऊश्री का अन्तिम संस्कार किया । उस दिन नासिक जेल में वल्लभभाई ने ढेर सारा सूत कातकर सान्त्वना पायी ।

ऊपर उल्लेख किया गया है कि विट्ठलभाई पटेल की मृत्यु के समय विऐना में सुभाष चन्द्र बोस उनकी परिचर्या में थे । उन्होंने वहाँ एक वसीयत लिखी, जिसके अनुसार एक बहुत बड़ी रकम उन्होंने दान में देकर सुभाषचन्द्र बोस को ट्रस्टी बना दिया । श्री वल्लभभाई पटेल को इसमें कुछ दाल में काला नज़र आया । बाद में बम्बई हाईकोर्ट में वसीयतनामा के सम्बन्ध में मुकदमा चला और सुभाषचन्द्र बोस के नाम पर उनके अनुज वल्लभभाई पटेल का नाम लिखे

जाने की आज्ञा दी गई । कहा जाता है कि इस घटना को लेकर सुभाष चन्द्र बोस और सरदार वल्लभभाई पटेल के बीच मन-मुटाव पैदा हो गया ।

सरदार पटेल का सही-सही चरित्र अपने विरोधी के प्रति उनके व्यवहार से प्रकट होता है । सुभाष बोस की कथित मृत्यु के बाद जर्मनी में जन्मी उनकी एक मात्र असहाय पुत्री की सम्पत्ति का मामला सरदार वल्लभभाई पटेल ने अपने एक मित्र वकील को पुत्री की तरफ से पैरवी को कलकत्ता भेजा था।

(5) विश्व प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी पद्म भूषण कर्नल सी. के. नायडू

स्वर्गीय कर्नल सी० के० नायडू वह व्यक्तित्व है जिसने देश को क्रिकेट की विरासत दी । आज उनका सपना आकार ग्रहण कर चुका है । उन्होंने प्रथम श्रेणी की क्रिकेट 37 वर्ष खेली अंतिम मैच सन् 1956-57 में वे 61 वर्ष की आयु में खेला ।

पद्म भूषण सी० के० नायडू सरीखे क्रिकेट खिलाड़ियों का भारतीय क्रिकेट में योगदान किन्हीं सुनील गावस्करों, कपिल देवों, मोहम्मद अजहरों से कम नहीं हैं । बीते जमाने के भारतीय क्रिकेट खिलाड़ियों को जब स्मरण किया जाता है तो प्रमुख तीन-चार नामों जैसे लाला अमरनाथ, सी. के. नायडू, मुश्ताक अहमद, विजय मर्चेन्ट का नाम लेते ही वे सामने आ जाते हैं । इससे यह आभास हो जाना चाहिये कि कर्नल सी. के. नायडू भारतीय क्रिकेट जगत् के सदा चमकते रहने वाले सितारे हैं । वे इतने योग्य खिलाड़ी थे कि एक बार 100 मीटर दौड़ को 10.5 सैकंड में पूरा कर प्रथम आए ।

सी. के. नायडू जैसे प्रारम्भिक खिलाड़ियों ने अभावों के बीच खेलते हुए भारतीय क्रिकेट की नींव रखी । जैसे मेजर ध्यानचन्द का नाम भारतीय हाकी में सबसे अधिक देदीप्यमान सितारे के रूप में है । वे प्रारम्भ में आजीराजपुर रियासत के मामूली कर्मचारी रहे । सी. के. नायडू ने इंगलैंड के लार्ड्स के ऐतिहासिक मैदान पर सन् 1932 में अपने टैस्ट जीवन का प्रारम्भ किया । इंगलैंड के खिलाफ खेले गये इस टीम के कप्तान स्वयं सी. के. नायडू उर्फ कोटारी कंकैया नायडू थे । 31 अक्टूबर सन् 1894 में नागपुर में जन्में इस हरफन मौला खिलाड़ी के शानदार जीवन का अन्त 14 नवम्बर 1967 को हुआ । सी. के. ने सात टेस्ट मैंचों की 14 पारियों में 350 रन बनाए, जिसमें दो अर्धशतक शामिल है। उन्होंने इन्हीं पारियों में 858 गेंदें फेंककर 386 रन दिये और नौ विकिट चटकाये । इन्दौर स्टेट में होल्कर राजपरिवार ने भी उन्हें सभी सुविधायें दी और वे वहाँ की फौज में दाखिल होकर कर्नल पद तक उन्नति करते गये। अवकाश प्राप्त कर वे इन्दौरवासी बन गये । उनके पटु शिष्य हीरालाल गायकवाड़ के शब्दों में - "गांधीजी ने जो भारत के लिये किया वैसे ही नायडू ने भारतीय क्रिकेट के लिए किया ।"

सुना है कि इस वर्ष सन् 1994 में भारतीय डाक विभाग ने इस महान् क्रिकेट खिलाड़ी स्व० सी. के. नायडू पर डाक टिकट जारी करने का निर्णय ले लिया है, देरी से सही, इस घोषणा के लिए हर भारतीय क्रिकेट खिलाड़ी या दर्शक को भारत सरकार को धन्यवाद जरूर देना चाहिये । पाठकगण कलयुगी भीम प्रो0 राममूर्ति नायडू को भी न भुला सकेंगे, उन्होंने कुरमी युवकों को शिष्य बनाकर शारीरिक बल प्रदर्शन में खूब ख्याति दिखलायी । डाक विभाग द्वारा सी. के. नायडू को डाक टिकट जारी करने की घोषणा से उनकी बेटी तथा प्रथम महिला क्रिकेट उद्घोषिका सुश्री चन्द्रा नायडू को अपने पिता का अतीत जरूर याद आया होगा । हाल ही में, रिचर्ड हैडली के 85 टैस्ट में 431 विकेट को तोड़कर लेकर विश्व रिकार्ड कपिल देव 130 टैस्ट में 432 विकेट लेने का नया कीर्तिमान स्थापित करने पर भारतीय क्रिकेट टीम के पूर्व कप्तान तथा क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के उपाध्यक्ष श्री राजसिंह डूंगरपुर ने कहा कि विश्व क्रिकेट में कपिलदेव का नाम मध्यम गेंदबाज के रूप में स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जायेगा उनकी नज़र में कर्नल सी. के. नायडू के बाद कपिलदेव ही ऐसे खिलाड़ी है जिसने भारतीय टीम को कई बार असम्भव जीत दिलाई है । कपिलदेव ने भी नवम्बर 94 में टैस्ट मैंचों से सन्यास ग्रहण कर लिया है और अब वे उद्घोषक बन गए हैं।

हाल ही में मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्वर्गीय सी0 के0 नायडू जन्म शताब्दी समारोह समिति गठित की गई है, जिसके अध्यक्ष सांसद श्री माधवराव सिंधिया और संयोजक श्री दिग्विजय सिंह, मुख्यमंत्री मध्यप्रदेश हैं । श्री मुकेश नायक, राज्य मंत्री खेल और युवक कल्याण, श्री मुश्ताक अली, भूतपूर्व क्रिकेट खिलाड़ी, श्री प्रभाष जोशी, प्रधान संपादक जनसत्ता, श्री ए0 डब्ल्यू0 कनमडीकर, चेयरमैन एम0 पी0 सी0 ए0 और श्री प्रकाश नायडू समिति के अन्य सदस्य हैं ।

समारोह के मौके पर विशेष डाक टिकिट एवं सोविनियर का प्रकाशन राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय मैचों का आयोजन होगा । इस इतिहास पुरुष के स्मरण में उनकी क्रिकेट के प्रति शानदार विरासत के लिये मध्यप्रदेश शासन, मध्यप्रदेश क्रिकेट एसोसिएशन और भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड, सन् 1994, में उनका जन्म शताब्दी समारोह मनाने जा रहा है। यह कैसा विचित्र मौका है कि अ0 भा0 कू0 क्ष0 महासभा का जन्म शताब्दी वर्ष और स्वर्गीय सी0 के0 नायडू का जन्म शताब्दी वर्ष एक ही वर्ष में सन् 1994 में मनाये जा रहे हैं । इस कुरमी-पुत्र ने क्रिकेट जगत में अपना नाम अमर कर दिया ।

(6) पद्मश्री फणीश्वरनाथ रेणु

हिन्दी आँचलिक उपन्यास के क्षेत्र में पद्मश्री फणीश्वरनाथ रेणु का नाम बड़ी श्रद्धा से तथा इस विधा के अग्रणी रचनाकार के रूप में अजर-अमर रहेगा । इस महान् साहित्य-शिल्पी का जन्म 4 मार्च 1921 के पूर्णिया जिला (अब अररिया) के "औराही हिंगाना" गांव के साधारण कुर्मी (धानुक उपजाति) परिवार में हुआ था । पिता शीलानाथ मंडल और माता श्रीमती पानोदेवी के एक साधारण कुरमी कृषक परिवार में वे जन्मे थे । अररिया स्कूल एवं फॉरबिसगंज में नवीं कक्षा तक पढ़ने के बाद, उनकी पढ़ाई (विराट नगर) नेपाल में आदर्श विद्यालय में कोइराला बन्धुओं के साथ हुई । तदुपरान्त 1939 से 1941 तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में इनकी इन्टर तक पढ़ाई हो सकी । इसके पूर्व 1932 में सिमरबनी स्कूल के काल में पहली बार इनकी कविताएँ प्रकाशित हुई थी । सन् 1940 में आचार्य नरेन्द्र देव से इन्होंने मार्क्सवाद की दीक्षा ली थी । सन् 1942 में "भारत छोड़ो" आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के परिणाम स्वरूप तीन वर्षों के लिए नज़रबन्द रहे, तभी लोकनायक जयप्रकाश नारायण से इनका सान्निध्य हुआ था । सन् 1955 में "बट बाबा" शीर्षक से इन्होंने पहली कहानी लिखी । सन् 1944 में पूर्णिया से प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका "नई दिशा" का सम्पादन किया । सन् 1950 में नेपाल में वहाँ के सामंती राजतंत्र के विरुद्ध क्रान्ति-आन्दोलन में उन्होंने जोखिम भरा भाग लिया । वह श्री बी0 पी0 कोइराला के सहयोगी रहे । उनके पिता श्री 'रेणु' को अपना पांचवाँ पुत्र मानते थे ।

श्री जयप्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रान्ति आन्दोलन में भी वे सहयोगी रहे । आपातकाल में उन्होंने जेल भी काटी । सन् 1971 में भारत सरकार ने उन्हें "पद्मश्री" से सम्मानित किया । सन् 1974 में रेणु जी ने तत्कालीन भारत सरकार के दमनात्मक रुख के विरोध में "पद्म श्री" की उपाधि तथा बिहार सरकार से प्राप्त तीन सौ रुपये का मासिक अनुदान वापिस कर न केवल अपने आत्म-सम्मान का परिचय दिया बल्कि सत्ता के अन्य चाटुकार लेखकों के लिए एक समस्या भी खड़ी कर दी । सन् 1975 में आपातकाल के दौरान भूमिगत होकर वे नेपाल चले गये । सन् 1977 में पेट का अल्सर फट जाने से कुछ दिनों की बेहोशी के बाद, 11 अप्रैल 1977 को पटना मेडिकल कालेज अस्पताल में उनका निधन हो गया । वे उच्च कोटि के साहित्यकार ही नहीं अपितु एक जांबाज नेता थे । वे वैसे नेता नहीं थे जैसे हम आज सर्वत्र देख रहे हैं । वे सिद्धान्तवादी, संवेदनशील, पदलोलुपता से बिल्कुल मुक्त थे ।

रेणुजी की रचनाओं से उनके सामाजिक क्रान्ति सम्बन्धी विचार स्पष्ट पता चलते हैं । वे पूंजीवाद एवं शोषण के विरुद्ध जीवन-पर्यन्त संघर्ष करते रहे । प्रारम्भ में एक बार उनका नारा था :-

"जो जोतेगा, सो बोयेगा ।
जो बोयेगा, सो काटेगा ।
जो काटेगा, सो बाँटेगा ।"

लोगों का कथन था कि वे तन, मन, धन से आन्दोलनकारी थे पर 'रेणु' कहा करते थे कि, "मैं आन्दोलन में नहीं, आन्दोलन मुझ में है ।"

श्री फणीश्वर नाथ रेणु, हिन्दी साहित्य के एक ऐसे यशस्वी कथाकार थे । उनको "मैला आँचल" - नामक एक आंचलिक उपन्यास से लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचने का गौरव प्राप्त हुआ । उनकी कहानी "मारे गए गुलफ़ाम" पर आधारित "तीसरी कसम" फिल्म बनी, जिसे राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत भी किया गया । "मैला आँचल", "परती परिकथा" नामक- दो उपन्यासों मानो उपन्यास के विकास को एक नयी लीक दी । हिन्दी साहित्य जगत में वे प्रेमचन्द्र के बाद हिन्दी के ग्रामीण मानस से जुड़े और सृजनकारी उपन्यासों और कहानियों के वे सबसे महत्वपूर्ण कथाकार माने जाते हैं।

कृतियां

उपन्यास : 1 मैला आँचल, 2 परती परिकथा, 3 दीर्घतपा 4 कितने चौहारे, 5 पलटू बाबू रोड, 6 जुलूस और 7 कलंक मुक्ति

कहानियाँ : 1 ठुमरी 2 आदिम रात्रि की महक 3 अग्निखोर 4 अच्छे आदमी, 5 श्रावणी दोपहर की धूप 6 प्रतिनिधि कहानियाँ और 7 मेरी प्रिय कहानियां आदि, प्रमुख हैं ।

रिपोर्ताज/संस्मरण : 1 ऋणजल, धनजल 2 नेपाली क्रान्ति कथा 3 वन-तुलसी की गंध 4 श्रुत अश्रुत पूर्व 5 एकांकी के दृश्य 6 उत्तर नेहरू चरितम् 7 समय की शिला में 8 आत्म परिचय आदि प्रमुख हैं । कविताओं, निबन्धों आदि की रचना करके भले ही रेणु जी ने अधिक महारत प्राप्त की हो, सफल आंचलिक उपन्यासकार के अतिरिक्त हिन्दी की एक सर्वथा उपेक्षित मगर टेढ़ी और दुरूह विधा "रिपोर्ताज़" लिखने में उन्हें महारत हासिल रही थी । हिन्दी में "रिपोर्ताज़" के लिये उनका शीर्षस्थ ऐतिहासिक स्थान है । डा० रांगेय राघव और रेणु के सिवा कोई और ऐसा नाम नहीं दीख पड़ता, जिसने मात्रा और महत्ता-दोनों दृष्टियों से हिन्दी के रिपोर्ताज़ लिखे हों । एक छोटी-सी साहित्य-सजृनात्मक अवधि में इतना सारा इतिहास रच डालना, वह भी उच्च-स्तरीय हैरानगी की बात है ।

रेणु की पत्नी की "पहली कसम"

दिल्ली से प्रकाशित जनसत्ता में प्रकाशित 5 मार्च 1994 से निम्नलिखित समाचार साभार उद्धृत :

"रेणुगाँव (बिहार) 4 मार्च 1994, ग्रामीण परिवेश की बदहाल जिंदगी को सदैव उजागर करने वाले आँचलिक कथाकार स्व0 फणीश्वर नाथ रेणु का परिवार आज उपेक्षा की जिंदगी जीने को मजबूर है । पूर्णिया प्रमंडल मुख्यालय से करीब 50 कि0 मी0 दूर बसे रेणु के गांव आरोही हिंगना (अब रेणु गांव) में रेणु की पत्नी पद्मादेवी टूटी-फूटी झोपड़ी में अपने परिवार के साथ फटे हाल जिंदगी जी रही हैं ।

खंडहर में तब्दील हो चुका रेणु का बैठक खाना, रेणु परिवार की बदहाली और बेबसी की मूक गवाही दे रहा है । बैठक खाने की एक ओर टंगी रेणु की तस्वीर अपने परिवार की बदहाली का मूल्यांकन और अवलोकन करती लगती है । बैठक खाने के एक कोने में रेणु की "तीसरी कसम" के "हीरामन गाड़ीवान" का टप्पड़ पड़ा है ।

रेणु की अंतरग जिन्दगी की गवाह पहली पत्नी पद्मादेवी सामाजिक और सरकारी उपेक्षा से व्यथित होकर कहती हैं, "मैंने अपने परिवार की नई पीढ़ियों को रेणुजी की "तीसरी कसम" के बदले "पहली कसम" दे रखी है कि अब इस घर में किसी को साहित्यकार नहीं बनने देना है ।" अर्थाभाव से जूझ रही पद्मादेवी की इन बातों से ऐसा लगता है कि साहित्यकार की पत्नी के दिल को गहरी ठेस लगी है ।

सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं की ओर से रेणु जयन्ती और पुण्य तिथि के अवसर पर साहित्य प्रेमी उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की प्रशंसा तो करते हैं, लेकिन हकीकत में उनकी फटेहाल पत्नी की खोज़ खबर आज तक किसी ने नहीं ली । अभाव ग्रस्त रेणु-परिवार के गुजर-बसर का एक मात्र आधार थोड़ी सी खेती है । जिससे किसी प्रकार उनके परिवार वालों को दो वक़्त की रोटी नसीब हो पाती है । पद्मादेवी की शिकायत है कि प्रकाशक उन्हें समय पर उचित रायल्टी का भुगतान भी नहीं करते हैं ।

पद्मश्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 65 वर्षीय भाई उपेन्द्रनाथ मंडल कहते हैं कि रेणु के आजादी की लड़ाई में कूदने के साथ ही परिवार की स्थिति बिगड़ने लगी । जमीन, जायदाद, खेती, ग्रहस्थी डूबने लगी । 1952 के बाद वैसे भी जमीन कम बची थी । कुछ जमीन सरकार ने ले ली और कुछ जमीन रेणु ने स्वयं बेचकर अपनी गृहस्थी की गाड़ी को किसी तरह खींचा । श्री मंडल के अनुसार जो जमीन सरकार ने ली उसका मुआवजा आज तक नहीं दिया। परिवार के लोग दौड़ते-दौड़ते थक कर अब निराश हो गए हैं ।

अनपढ़ पद्मादेवी दूसरों से पढ़वाकर रेणु की रचनाओं का आनन्द लेती हैं । वे कहती हैं, "मैला आँचल" के प्रेम-प्रसंग का नायक डा0 प्रशान्त हकीकत में कोई और नहीं स्वयं रेणु ही तो हैं । रेणु की सफल रचना धर्मिता की प्रेरणा उनकी पत्नी पद्मा देवी और लतिका जी ही मानी जाती हैं ।

रेणु गांव का परिवेश सालों बाद आज भी रेणुकालीन ही है । वही गरीबी और पिछड़ापन, जो उनकी रचनाओं में वर्णित है । रेणुगांव तक जाने के लिये ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़क है जिस पर बरसात के दिनों में चलना दूभर सा हो जाता है ।

स्व0 रेणु जी के पुत्र पद्म नारायण राय 'बेणु' ने बताया कि रेणु की सरकारी उपेक्षा रेणु परिवार की बदहाली और रेणु गांव के सर्वांगीण विकास के लिये रेणु की जयन्ती के अवसर पर आज चार मार्च 1994 को पूरे परिवार की जिला मुख्यालय पर धरना देने की योजना है ।"

4 मार्च 1994 को मुख्यालय के सम्मुख धरने का क्या परिणाम रहा यह तो पता नहीं चला, पर कुरमी जातीय संस्था का भी दायित्व है कि वे मात्र नेतागणों की परिक्रमा करने में सारा समय बिताने के स्थान पर सामाजिक और गैर राजनैतिक लोगों की समस्याओं को भी दूर करने में मदद करें ।

पद्मश्री फणीश्वरनाथ की आकृति एवं व्यक्तित्व का चित्रण जाने-माने साहित्यकार श्री परमानन्द दोषी ने इन शब्दों में किया है :-

"लम्बा, छरहरा, सुडौल शरीर, गोरावर्ण, लम्बी भुजाएं, नाक, प्रशस्त ललाट, लावण्य से लबरेज लुभावनी आकृति, रस से भरी भाव प्रवण आंखें, शानों पर लहराते गेसू, करीने से सजा-धजा, साफ़-स्वच्छ पहरावा-परिधान, पाँवों में नफ़ीस चप्पलें, सदैव मुस्कान विखेरता आनन । गालों पर कभी फैली सघन केश राशि, कभी दाढ़ी-मूँछ का नामोनिशान तक नहीं, रस से भरे श्याम वर्ण के जामुनी रंग हुए होंठ द्वय-यही रंग-रूप था हिन्दी तथा साहित्य के बेताज बादशाह और नगर-ग्राम के लोगों, परिवेश-उनके मन-मिजाज का कागज के पन्नों पर अमिट चित्र उकेर देने वाले चतुर-चितेरे शब्द-शिल्पी रेणु जी का । फनीश्वर नाथ ने अपनी पीढ़ी-दर-पीढ़ी वाली वंश परम्परा से चले आते हुए जाति-सूचक उपनाम 'मंडल' का परित्याग कर उसकी जगह पर 'रेणु' साहित्यिक उपनाम रख लिया था । 'रेणु' का शाब्दिक अर्थ होता है धूल । शायद उन्होंने अपने गाँव की गलियों की धूल समझकर इस उपनाम को ग्रहण किया था, मगर औराही-हिंगना की माटी की एक दिन यह धूल, हिमालय के प्रशस्त ललाट का चन्दन बन गयी ।"

भारत की हिन्दीतर भाषाओं को छोड़ भी दीजिए, विश्व की भी कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसमें रेणु की किसी न किसी कृति का अनुवाद नहीं हुआ हो । फिल्म, धारावाहिक और टेलिफिल्म भी रेणुजी की कई कहानियों-उपन्यासों से बन चुकी हैं, जिनमें तीसरी कसम, मैला आँचल, डागदर बाबू आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

रेणुजी की तीन शादियाँ हुई थी । प्रथम ब्याहता पत्नी, श्रीमती रेखा देवी के पश्चात श्रीमति पद्मा देवी नामक

एक विधवा स्त्री से शादी रचाकर रेणुजी ने अपने समय में सामाजिक क्रान्ति की थी। पीछे चलकर ललिता जी से आपने तीसरा विवाह रचाया। रेणु जी की दोनों पत्नियां जीवित हैं। रेणु जी के तीन पुत्र, सर्वश्री पद्मपराग राय वेणु, अपराजित राय, दक्षिणेश्वर प्रसाद और पाँच पुत्रियाँ, सुश्री कविता, नवनीता, निवेदिता विश्वास, अन्नपूर्ण राय और वहीदा रहमान हैं।

'रेणु की याद में' प्रसिद्ध साहित्यकार डा० प्रभाकर माचवे की दीर्घ कविता से कुछ पंक्तियां नीचे उद्धृत हैं:-

प्रतिभा की बिजली से हम सब हैं आलोकित,
पर हमने क्या किया उसके लिए? बिहारी?
हिन्दी का? भारतीय? साहित्यक अपराजित?
हम तो सब अकृतज्ञ, केवल नामधारी।
'रेणु' नाम रक्खा इस रजकण को रौंदा,
हम सबने पददलितों के लिए नहीं कुछ किया
उसने बनाया था सुन्दर एक घरौंदा......
सूने मकान में निःस्नेह बुझा दिया
कैसे-कैसे तिल ताड़, राई के परबत हम
रोज राजनीति में बनाते पार्थिव मिटाते
निज पुत्र खा जाती क्रान्ति बड़ी निर्मम
कब हम निज नयनों के पर्दों को हटाते
गोधूलि मिटती नहीं, कसाई घर भेजी गई धेनु,
दशाब्दियां अनुगुंजित-तेरी वह कथा वेणु।

(7) कानपुर विश्वविद्यालय के नये कुलपति प्रो० सर्वज्ञसिंह कटियार

उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति एवं राज्यपाल श्री मोतीलाल वोरा ने इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलोजी (I.I.T.) कानुपर के रसायन विज्ञान के वरिष्ठ प्रोफेसर डा० सर्वज्ञसिंह कटियार को कानपुर विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया है। फर्रूखाबाद जनपद के मेहरूपुर ग्राम में एक सम्पन्न कुरमी परिवार में जन्मे प्रोफेसर कटियार विश्व विख्यात शिक्षा शास्त्री हैं। उन्होंने कानपुर के डी० ए० वी० महाविद्यालय से एम० एस-सी० की डिग्री उत्तीर्ण कर विश्वविद्यालय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था। प्रारम्भ से ही प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले डा० कटियार को "दयानन्द पुरस्कार" तथा "आचार्य पी० सी० रे एवार्ड"से सम्मानित किया जा चुका है।

डा० सर्वज्ञसिंह ने उच्च शिक्षा अमेरिका के विसकान्सेंट विश्वविद्यालय से प्राप्त की इसके बाद कानुपर आई० आई० टी० में 25 वर्षो तक रसायन शास्त्र के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। इसी रसायन विभाग के वे 1989 से 1992 तक अध्यक्ष रहे। पिछले 25 वर्षों से नियमित रूप से वर्ष में 4 माह के लिए अमेरिका में विशेष व्याख्यान एवं शोध सहायता कार्य के लिए बुलाये जाते हैं। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित विशेष 500 वैज्ञानिकों की सूची में डा० कटियार शामिल हैं। अमेरिकन बायोग्राफिकल इन्स्टीट्यूट द्वारा प्रकाशित "हू इज हू" में विश्व के वैज्ञानिकों में प्रो० कटियार का नाम जोड़ा गया है। उन्होंने अब तक अंतर्राष्ट्रीय सेमिनारों में लगभग 150 शोध-पत्र प्रस्तुत किये हैं। वे विश्व के अनेक देशों की यात्राएं कर चुके हैं। उन्होंने 1979 में नेशनल ऐकेडेमी ऑफ साइंसेज़ इन इंडिया तथा 1983 में इंडियन नेशनल साइंसेस एकेडमी की फेलोशिप प्राप्त की है। प्रो० कटियार ने कुलपति रूप में कार्य भार संभाल लिया है।

सरदार पटेल जयन्ती समारोह का आयोजन 31 अक्टूबर 1994 को सरदार पटेल सेवा संस्थान के तत्वाधान में पटेल धर्मशाला, बाईपास, किदवईनगर में श्री मुन्नीलाल वर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस समारोह के मुख्य

अथिति कानपुर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० सर्वज्ञसिंह कटियार ने कहा कि पटेल जी को लौहपुरुष की संज्ञा लौह के पुरुष की नहीं बल्कि उनके दृढ़ प्रतिज्ञ और असीम साहस तथा निर्भीक देशभक्ति के कारण मिली । उन्होंने कहा कि शिक्षा रत्न की प्राप्ति छात्र कड़ी मेहनत और लग्न से करें जिससे उन्हें उज्ज्वल भविष्य की दिशा मिले । उन्होंने उपस्थित छात्र-छात्राओं को शिक्षाध्ययन को प्रथम प्राथमिकता देने पर बल दिया । कार्यक्रम को सर्वश्री आर० बी० कटियार, श्यामसिंह कटियार, डा० अनिल कटियार, हीरालाल वर्मा, प्राचार्य शैलेन्द्र चौधरी, विश्वनाथ वर्मा, सी० पी० सचान, बी० डी० सचान आदि ने भी सम्बोधित किया । उस महानायक की जयंती मनाना तभी सार्थक होगा जब उसके स्वप्न के भारत के निर्माण में सब प्राण-प्रण से जुट जाएं ।

(8) "भारतीय ज्ञानपीठ" पुरस्कार विजेता विख्यात गुजराती साहित्यकार श्री पन्नालाल पटेल

(श्री रामकृष्ण मेहता की पुस्तक-"समाज के अनमोल रतन" से साभार)

सुप्रसिद्ध साहित्यकार, ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता और राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 'साहित्य मनीषी' के रूप में सम्मानित श्री पन्नालाल पटेल का जन्म 7 मई, 1912 को राजस्थान में सीमलवाड़ा पंचायत समिति के अन्तर्गत ग्राम मांडुली में एक साधारण आँजणा कुनबी कृषक, श्री नाना पटेल के घर हुआ ।

पन्नालाल पटेल बाल्यकाल से ही गृह-त्यागकर एक विद्वान संत जयशंकरानन्द के साथ शिक्षा-प्राप्त की उमंग लिये गुजरात प्रस्थान कर गये । आर्थिक कठिनाइयों के कारण आठवीं कक्षा से आगे स्कूली शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकें। किन्तु निजी स्वाध्याय से साहित्य की अनेक विधाओं का ज्ञानवर्धन करते रहे । फिर सोने में सुहागा, उनको साहित्य की मूल बातें श्री उमाशंकर जोशी तथा अन्य मूर्धन्य साहित्यकारों के सान्निध्य में प्राप्त हुई।अपनी सृजनात्मक आकांक्षाओं को पूर्ण करने हेतु लेखनी की ओर वे अपने पूरे ज्ञान-सामर्थ्य से जुट गये । कुछ ही वर्षों में साहित्य जगत में उन्होंने अपने आप को उच्च कोटि के कहानीकार के रूप में स्थापित कर लिया, पर वे प्रमुख रूप में उपन्यासकार थे । उनका प्रथम उपन्यास 'बतामना' (विदाई) सन् 1940 में प्रकाशित हुआ । फिर उपन्यास लेखन का सिलसिला इस विधा की गति लेता गया और गुजराती भाषा में 34 कृतियां प्रकाशित हुई । उनमें प्रमुख उपन्यास थे 'मणेला जीव', 'मानवीनी भवाई', 'न छटई', 'भग्याना भूरु' और 'पाछले करणे' ।

उनकी कहानी 'कंकु' पर आधारित प्रयोगवादी फिल्म 'कंकु' शिकागो में आयोजित 'अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह' में पुरस्कृत हुई । उन्होंने अनेक बाल-कथाएँ, नाटक एवं संस्मरण लिखे । सन् 1950 में श्री पन्नालाल पटेल गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'रणजी रांम स्वर्ण पवक' से सम्मानित किये गये और उनकी अन्य कई कृतियों के लिये भी गुजरात सरकार ने उन्हें सम्मानित किया । सन् 1972 में उनका बलसाव (गुजरात) में सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया । पन्नालाल की षष्ठि पूर्ति समारोह समिति ने सन् 1973 में बम्बई में तथा सन् 1977 में डूंगरपुर में भी उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया ।

वे भारतीय संस्कृति के ग्रन्थों पर आधारित पौराणिक साहित्य से भी जुड़े रहे । उनकी अनेक कृतियां हैं । पन्नालाल पटेल ने गुजराती अंचल की जटिल मानव-स्थिति और समस्याओं को पकड़ने में और अपने साहित्य के माध्यम से उसे प्रकट करने में अनुपम कला वक्षता प्रदर्शित की । ग्राम जीवन के परिवेश का सही आकलन लिपिबद्ध करने में वे सक्षम थे । गुजरात भाषा के महान साहित्यकार एवं इस आंजणा कणबी पटेल महान सपूत का निधन अस्पताल में 5 अप्रैल 1989 को हो गया ।

(9) पद्मश्री नेपाल महतो

लोकनृत्य और लोकगीत झारखंड के जनजीवन में मनोरंजन का प्रमुख माध्यम है इसे वे प्राचीनकाल से अपनाये

चले आ रहे हैं । प्रत्येक गाँव में यहाँ छौ नाच तथा झूमर नाच होता है । शिव पूजा (मण्डा पर्व) में छौ नाच कुरमाली संस्कृति की अपनी देन है । कुरमाली अन्य जनजातीय भाषाओं से भी एक समृद्ध एवं विकसित भाषा है जो झारखंड में बोली जाती है । घनी आबादी वाले कुड़मि बहुल क्षेत्र की मुख्य भाषा कुरमाली है । अब तो राँची विश्वविद्यालय में कुरमाली भाषा की एम० ए० तक की पढ़ाई हो रही है । शान्ति निकेतन विश्वविद्यालय तथा राँची विश्वविद्यालय ने कुरमाली भाषा सम्बन्धित विषयों पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर डाक्ट्रेट की डिग्री भी प्राप्त की गई है ।

हर कुड़मि घर में ढोल, नगाड़ा तथा बाँसुरी देखे जाते हैं । मर्दों से ज्यादा झारखंड की स्त्रियाँ लोकगीतों और लोक-नृत्यों को सीखती हैं । नेपाल महतो तथा अन्य कलाकारों ने विदेश में अच्छा नाम कमाया हैं । नेपाल महतो का एक साधारण कुड़मि परिवार में जन्म हुआ था पर अपनी नृत्य निपुणता के कारण इस कुड़मि ने अपना, अपनी कुड़मि जाति और झारखंड तथा देश का भी नाम सारे विश्व में फैलाया । श्री नेपाल महतो पुरुलिया शैली के छौ (Chhau) नृत्य के प्रख्यात नर्तक है । इस महान कलाकार को राष्ट्रपति जी द्वारा 'पद्मश्री' अलंकार से अलंकृत किया गया है।

झारखंड़ भौगोलिक दृष्टि से पहले चुटआ नागपुर और बाद में छोटा नागपुर पठार (प्लेटो) नयी सीमाओं के साथ प्रतिष्ठित हुआ । पालवंश, मुस्लिम काल एवं अंग्रेजों के समय में यह प्रदेश कई बार बंगाल के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया । बिहार राज्य के छोटा नागपुर, संथाल परगना (जिसमें बारह जिले), बंगाल राज्य के मेदिनीपुर, पुरुलिया, बाँकुड़ा, उड़ीसा राज्य के क्योंझर, मयूरभंज, सम्बलपुर तथा सुन्दरगढ़ एवं मध्यप्रदेश के सरगुजा और रायगढ़, कुल मिलाकर 21 जिलों को मिलाकर भारतीय संघ के अन्दर झारखंड राज्य के गठन की मांग स्पष्ट रूप से रखी गई है । झारखंड का क्षेत्रफल 1,87,646 वर्ग किलोमीटर है । वर्तमान में झारखंड क्षेत्र की आबादी 4 करोड़ हैं जिनमें सिर्फ कुड़मि जनों की जनसंख्या एक करोड़ से अधिक ही है ।

(10) झूमर नृत्य सम्राट श्री गिरीश महान्ता

झारखंड क्षेत्र, जोकि मुख्यतः बिहार, पं0 बंगाल, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश में फैला है, यहाँ की कुल आबादी की 30 प्रतिशत के लगभग कुरमी जाति के लोग हैं, जिन्हें 'कुड़मि' नाम से सम्बोधित किया जाता है । इनकी मातृभाषा कुरमाली है ।

जैसाकि छौ (chhau) नृत्य सम्राट पद्म श्री नेपाल महतो के जीवन-वृत्त में उल्लेख किया जा चुका है, इस नृत्य की दो विभिन्न शैलियाँ हैं, एक है पुरुलिया छऊ और दूसरा मयूरभंज शैली । ये नृत्य कृष्ण-राधा और चन्द्रावली की कथा आदि पर आधारित होते हैं । इन नृत्यों में झारखंड के कुड़मियों के जन-जीवन लोक कथाओं आदि का दिग्दर्शन करवाया जाता है । इन नृत्य के साथ झूमर संगीत दिया जाता है । इस संगीत में जो साज प्रयुक्त होते हैं वे हैं ढोल, मवला, नगाड़ा, बाँसुरी और एक झूमर । संगीत के सम्राट के नाम से उड़ियाभाषी झारखंड अँचल में है, श्री गिरीश चन्द्र महान्ता ।

झूमर सम्राट श्री गिरीश चन्द्रा महान्ता ने लोककला की उपर्युक्त विधा के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है । वे कुड़मि जाति के हैं और अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के सन् 1960 के रायरंगपुर (उड़ीसा) के 26 वें अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे । उन्होंने झूमर संगीत के 12 कैसेट तैयार करवाये हैं । वैसे पेशे से अधिवक्ता हैं । सम्पन्न परिवार है । जयेष्ठ पुत्र डा0 अनिल महान्ता टोरान्टो (कनाड़ा) में बस गये हैं । वे एक सफल चिकित्सक हैं । श्री गिरीश चन्द्र महान्ता के दामाद श्री विपिन महान्ता ने इस पुस्तक के लेखक को अक्टूबर 1993 में बताया कि उनके ससुर जी कनाड़ा में अपने पुत्र के पास प्रव्रजन करने का विचार कर लिया है । श्री विपिन महान्ता कलाकार हैं ।

(11) बायलिन वादक स्व० श्री बेचनराम (मिरजापुर, उ० प्र०)

मिरजापुर उ. प्र. में डा० माता प्रसाद एक प्रसिद्ध चिकित्सक हुये, उनकी पत्नी से एक विवाह-समारोह में हाल

ही में इस लेखक की इलाहाबाद में भेंट होने पर उन्होंने बताया कि उनके देवर स्व० श्री बेचनराम अपने जमाने के भारत प्रसिद्ध वायलिन कलाकार थे । देशभर में अनेक सार्वजनिक संगीत सभाओं और उत्सवों में उन्होंने वायलन पर अपने जमाने के प्रसिद्ध संगीत तथा प्राचीन धुनें प्रस्तुत कर न केवल आम जनता में ख्याति प्राप्त की अपितु संगीतज्ञों को उपलब्ध बड़े-बड़े पुरस्कार भी प्राप्त किये । वे मिरजापुर के एक सम्पन्न जयसवार कुरमी परिवार में जन्में थे । वे संगीत सभाओं में बड़े आदर पूर्वक आमंत्रित किये जाते थे ।

श्री बेचन राम एकल वादन (solo) वायलिन प्रस्तुत करते थे तथा सामूहिक संगीत वाद्यवृन्द में संगत भी करते थे । वे दोनों में बड़े निपुण थे और अपने संगीत श्रोताओं को शीघ्र अपने संगीत से मन्त्र-मुग्ध कर देते थे। एक बार जब वे प्रौढ़ावस्था में पहुँच चुके थे तो एक बड़े उच्चस्तर के संगीत समारोह में एक अन्य भारत ख्याति के तबला-वादन, जिनका नाम श्री बेचनराम की वृद्ध भाभी इस लेखक को याद कर न बता सकीं, का युगल बन्दी कार्यक्रम वायलिन वादक श्रीं बेचन सिंह के साथ रखा गया । दोनों ने पहले अपने-अपने वाद्य पर एकल वादन प्रस्तुत कर श्रोताओं की दीर्घ करतल ध्वनि से प्रशंसा अर्जित की । फिर दोनों उस्तादों ने युगलबन्दी प्रारम्भ की, जब समा बंधा तो तबला वादक को अपने वाद्य पर तरह-तरह की तेज़ी से बदल-बदलकर तालों की ध्वनि निकालना था और उसे संगत देते हुये श्री वेचनराम को वायलिन बजाना था । दोनों ने खूब अच्छी युगलबंदी प्रस्तुत की । पर तबला उस्ताद ने बड़ी तेज़ी से तबले पर ताले निकलना शुरु की । उसी तेज़ी से वायलिन वादक ने भी संगत दी । घंटों यह वादन चला । थक गये वेचनराम फिर भी संगत उसी तेज़ी से देते रहे । रुके नहीं । लोगों ने उन दोनों भी भूरि-भूरि प्रशंसा की । कार्यक्रम के बाद निवास स्थल पर तुरन्त लौट आये और पलंग पर लेट गये । अपने पुत्र से कहा कि एक टेबलेट दवा की आल्मारी में रखी शीशी से ढूंढ़कर उन्हें देदें । वे शीशी ढूँढते रह गये । उनकी हृदय-गति रुकने से तुरन्त उनका निधन हो गया था ।

(12) राष्ट्रीय 'तुलसी सम्मान' से पुरस्कृत लौह मूर्त्तिकार श्री चामर राम बघेल

मध्यप्रदेश सरकार ने 1991-92 का राष्ट्रीय 'तुलसी सम्मान' बस्तर के लौह मूर्तिकार श्री चामर राम बघेल को देने का निर्णय लिया है । मध्य प्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग द्वारा लोक कलाओं में कार्यरत प्रतिभाओं को दिए जाने वाले इस पुरस्कार के अंतर्गत एक लाख रुपए तथा प्रशस्ति पत्र भेंट दिये जाते हैं ।

(13) हिन्दीं चल-चित्रों में कूर्मि क्षत्रिय कलाकार

हिन्दी भाषी छोटे-मोटे चलचित्र बनाने वाले कई कुरमी प्रोड्यूसर हैं जैसे मध्यप्रदेश के हरीश वर्मा जो बम्बई में रहकर बनाते हैं मुंगेर के श्री बाल्मीकि सिंह के सुपुत्रों द्वारा दूरदर्शन के लिये एक सीरियल 'कर्ण' पर बनाया गया है, अभी वह दिखाया जाना है । श्री बाल्मीकि सिंह अपने पुत्रों सहित इसी संबंध में इस लेखक से दिल्ली आकर मिले थे । नौटंकी सम्राट के नाम से कानपुर के श्री त्रिलोचन अपने जमाने के स्वांग-सम्बन्धी बड़े प्रसिद्ध कलाकार थे ।

मराठी रंगमंच और चलचित्र जगत के अनेक मराठा-कुनबी स्त्री-पुरुष कलाकर हैं, किसके-किसके नाम गिनाये जाएं। प्रारम्भ से अब तक हुए प्रसिद्ध कलाकारों की दीर्घ सूची बन सकती है ।

अहिन्दी क्षेत्रों के कुरमियों से सम्बंधित जातियों में जो सर्वाधिक ख्याति प्राप्त अभिनेत्रियां हिन्दी चल-चित्र जगत की हैं उनमें कम्मा-कापू (नायडू) जाति की श्रीदेवी तथा कणबी-पाटीदारों में आशा पारिख के नाम गिनाये जाने योग्य हैं । अन्य भी कई हैं पर प्रमाणित जानकारी इस लेखक को न होने के कारण उनका उल्लेख करना अनुचित रहेगा, इसलिये नहीं किया जा रहा है । लोक-संगीत, लोक-नाट्य कलाकारों, लोक नृत्यों में अनेक कुरमी पुरुष-स्त्रियां होंगी। उन सबकी प्रामाणिक सूची बनाना शोधकों का कार्य है ।

(14) श्री विजय पाटीदार दक्षिणी अफ्रीका में चुनाव सम्पन्न कराने के हेतु यू० एन० आवज़र्वर नियुक्त

मध्यप्रदेश राज्य के उपचुनाव अधिकारी श्री विजय पाटीदार को संयुक्त राष्ट्र पर्यवेक्षक नियुक्त गया है । श्री पाटीदार दक्षिणी अफ्रीका में हाल ही होने वाले चुनाव को अपनी निगाहरानी में करायेंगे । मध्य फरवरी 1994 तक वे अफ्रीका के लिए प्रस्थान कर देंगे । (हिन्दुस्तान टाइम्स, अंग्रेजी दैनिक दिनांक 10 फरवरी 1994 से साभार उद्धृत,)

(15) श्री विपिन महान्ता, एक युवा फिल्म-नाट्य जगत के कुरमी कलाकार

श्री विपिन महान्ता, झूमर सम्राट श्री गिरीश चन्द्र महान्ता के सबसे छोटे दामाद हैं उड़िया भाषी इस युवा कलाकार ने नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा में स्नातकोत्तर डिप्लोमा प्राप्त कर अनेक नाटकों एवं फिल्मों में भी अभिनय किया है । उड़िया या कुरमाली मातृ-भाषाओं के अतिरिक्त हिन्दी भी बड़े सहज रूप से बोलते हैं । उनका स्थायी पता है :- श्री विपिन महान्ता, करमराजा इण्टरनेशनल, फिल्म प्रोड्यूसर एवं निर्देशक, 228 शहीद नगर, भुवनेश्वर (उड़ीसा) । श्री विपिन महान्ता ने अपने अगस्त 1993 के दिल्ली प्रवास में इस लेखक को विस्तृत जानकारी दी, उसी पर आधारित निम्नलिखित 'करम राजा' की धार्मिक कथा है, जिस पर श्री महान्ता एक वृत्त-चित्र बनाने वाले हैं । और उसके लिये आवश्यक अर्थ-व्यवस्था के उद्देश्य से दिल्ली आये थे ।

करम राजा (KARAM RAJA)

'करम राजा' की कथा, वास्तव में 'करम वृत्त' के रूप में अति प्राचीन काल से बड़ी श्रद्धापर्वूक समस्त छोटा नागपुर अंचल में तथा उससे मिले हुये पं0 बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा प्रदेश के झारखंड़ी जनपदों में प्रचलित हैं । इसको विशेष तौर पर कुरमाली भाषी कुड़मिजन बड़ी श्रद्धा से सामूहिक रूप से बड़े परम्परागत ढंग से मनाते हैं। यह कथा और पूजा उसी तरह की है जैसे उत्तर भारत की हिन्दू स्त्रियां "करवा-चौथ" का व्रत रहती हैं या हिन्दू-परिवार "सत्यनारायण कथा" व्रत का अनुष्ठान रखते हैं । प्रकृति से जुड़े इस मानव-समुदाय का धर्म प्रकृति-पूजा से जुड़ा है।

झारखंड अँचल में इस धार्मिक अनुष्ठान को 'करमपर्व', अथवा 'करमा एकादशी' के रूप में बड़े विधि-विधान से सम्पन्न किया जाता है । भाद्रमास (सितम्बर माह के आस-पास) की ग्यारहवीं तिथि अथवा 'एकादशी' की रात्रि को 'करमव्रत' मनाने का दिन हर वर्ष में निश्चित है । इसमें 'करम वृक्ष' की विशेष महत्ता है । इस करम वृक्ष (हल्द) का वानस्पतिक नाम है अडीना काडीफोलिया (Adina cordifolia)। इस करम वृक्ष की पत्ती पान के पत्ते जैसी मीडियम साईज़ आकार से मिलती जुलती हैं । करमावृक्ष बढ़कर काफ़ी ऊँचाई तक उठता है, फैलता है और दीर्घजीवी वर्ग का होता है । इसकी पूजा-वन्दना कुड़मि 'करम व्रत' के रूप में करते हैं, उसी तरह से मिलती-जुलती अम्रवृक्ष (Mango tree) की पूजा खानदेश के कुरमी जन अपने विवाह-संस्कार के समय करते हैं । (देखिये इस लेखक की प्रथम पुस्तक), "प्रागैतिहासिक काल में कूर्मि जाति"। 'करमवृक्ष' की डाल को श्रद्धापूर्वक लाकर विधिवत भूमि पवित्रकर उसमें उसे प्रतिष्ठित करते हैं, जिसमें 'करम देवता' को प्रतिविम्बित मानकर भक्ति जन उनकी पूजा करते हैं ।

इस 'करम पर्व' के सम्बन्ध में एक और आयोजन किया जाता है जिसका उल्लेख करना आवश्यक है, जिसे जावा संस्कार (अंकुरण-प्रक्रिया पूजा) भी कहा जाता है इन दिनों में पूजा में भाग लेने वाले लोग सात्विक भोजन, शुद्ध आचरण तथा शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता का पूरी तरह पालन करते हैं । यह अनुष्ठान 'करम पूजा' से 3 या 5 दिन पूर्व सम्पन्न किया जाता है । कन्यायें इस दौरान गायन और नृत्य में अधिकाधिक समय देती है जावा-संस्कार का समापन भाद्रमास की एकादशी की रात्रि को होता है ।

उपरोक्त एकादशी की सन्ध्या को मनसा-वाचा-कर्मणा शुद्ध रहते हुये घर को पवित्र करके 'करमा वृक्ष' की एक डाल को पूरे मान-सम्मान के साथ घर लाया जाता है । साफ-सुथरे घर के प्रांगण में पूजा वेदी बनाकर उस डाल को

प्रतिष्ठापित किया जाता है । जावा कन्यायें, सुन्दर पुष्पों से सुसज्जित जावा-डाला, "करमा वृक्ष' को अर्पित करती हैं इस तरह "करम राजा" की पूजा बड़ी श्रद्धापूर्वक सम्पन्न की जाती है एक कथावाचक को भक्त लोग बुलाते हैं, इस अवसर पर 'करम राजा' की कथा और उसके महत्व को विस्तार से भक्तजनों को सुनाता है । ऐसी मान्यता है कि करम राजा अपने श्रद्धालुओं के लिये उत्तम वर्षा, सुख-समृद्धि, सौभाग्य एवं सन्तान प्रदान करते हैं ।

करम राजा की कथा

प्राचीनकाल की बात है कि बीरसिंह नामक राजा एक बार जंगल में शिकार खेलने निकल पड़े । वहाँ उन्हें काफ़ी देर हो गयी । सूर्यास्त हो चुका था । रात्रि में उन्होंने थक कर एक वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करना चाहा। राजा के अनुचर भी खोजते-खोजते वहाँ आ पहुँचे । अनुचरों ने उस पेड़ की डालियों को तोड़कर अपने राजा के लिये उस पर पत्तों से शैया बना दी । उस वृक्ष की टूटी एक डाल पर एक काली मधुमक्खी का जोड़ा सम्भोगरत था। डाल टूटने ही वे दोनों मधुमक्खियाँ क्रोधित हो उठीं और गुस्से में राजा को सदा निस्संतान रहने का श्राप दे दिया । राजा को जब उस श्राप का पता चला, वे चिन्तित हो उठे । शिकार से लौटने समय राजा को एक सन्यासी मिले । उन ऋषि को राजा ने श्राप की बात बतलायी और उनसे श्राप से मुक्ति पर बहुत विचार कर राजा को बतलाया कि केवल एक ही उपाय है । राजा यदि देवता समझकर 'करमा वृक्ष' की पूजा, श्रद्धापूर्वक करें, और 'करम-व्रत का अनुष्ठान विधिवत सम्पन्न करायें तब वे श्राप के कुप्रभाव से मुक्त हो जायेंगे । सन्यासी जी ने 'करमव्रत' सम्पन्न करने की विधि के बारे में भी बतलाया ।

'करम व्रत' को भाद्र माह की एकादशी की रात्रि को विधि-विधान से श्रद्धापूर्वक करने पर इन्द्रदेव प्रसन्न हो जाते हैं । भाद्रमाह की एकादशी की सन्ध्या को स्वर्ग से देव कन्यायें उन ऋषि के तपोवन में पुष्प लेने आती हैं । यदि राजा उन देव कन्याओं को अपने महल में ले जायें, और उनसे ही 'करम देवता' की पूजा पद्धति की जानकारी प्राप्तकर उसी प्रकार पूजा सम्पन्न करने में सफल हो जाते हैं तो उनको सन्तान प्राप्त होगी।

राजा बीरसिंह ने उपरोक्त वर्णन के अनुसार भाद्रमाह की एकादशी के दिन स्वर्ग से देव-कन्याओं के आगमन की प्रतीक्षा की । राजा ने किसी प्रकार उन ऋषि के तपोवन में पुष्प चुनने आयी देव-कन्याओं को अपने महल में चलकर 'करम पूजा' की अनुष्ठान करने को राज़ी कर लिया । महल में ले जाकर उनसे करम देवता के पूजा-विधान को ठीक से जाना और उसी के अनुसार वह पूजा श्रद्धापूर्वक सम्पन्न की । फलस्वरूप उन्हें आगे दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुये, जिनका नाम क्रमशः करमू और धरमू रखा गया ।

बड़े होकर करमू व्यापार करने लगा और धरमू कृषि-कार्य में लग गया । दोनों परिश्रमी थे अतः शीघ्र सम्पन्न हो गये । करमू अब एक बड़ा व्यवसायी बन चुका था और अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में बहुधा वह विदेश रहने लगा। एक बार काफ़ी अरसे बाद करमू घर लौटा । वह भाद्रमाह की एकादशी की रात्रि थी और उसका भाई धरमू स्वजनों के साथ 'करम पूजा' सम्पन्न करने में व्यस्त था । 'करम राजा' के चारों ओर घूम-घूमकर कन्याएं तथा स्त्रियाँ गायन और नृत्य कर रही थी ।

यह सब देखकर करमू क्रोध से आग-बबूला हो गया । उसने 'करम-वृक्ष' की डाल को उखाड़कर हवा में उछालते हुए फेंका जिससे वह सात समुद्र-पार जाकर गिरी यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये । करमू कहने लगा कि महज एक वृक्ष की डाल के चारों ओर नृत्य और गायन करना असभ्यता की बात है ।

इस घटना से करमू और धरमू दोनों भाइयों में मनो-मालिन्य प्रारम्भ हो गया । आश्चर्य की बात है कि उस दिन की घटना के बाद से करमू दिन-प्रतिदिन बरबाद होता गया । और गरीब हो जाने से उसे पेट-पालने के लिए, मजदूरी तक करनी पड़ी । धरमू की सम्पन्नता तथा खुशहाली पूर्वत कायम रही । पर करमू और उसकी पत्नी को दो जून के भोजन के लिये दूसरे के खेतों पर मजदूरी करनी पड़ी । एक दिन उन दोनों को धरमू के धान के खेतों पर भी काम करने को विवश होना पड़ा । शाम को मजदूरी के पैसे मांगे । लेकिन उनकी मजदूरी के देने के पैसे जो

धरमू के घर पर रखे थे, वह यकायक वहाँ से गायब हो गए । इससे करमू और उसकी पत्नी बड़े निराश और क्रोधित हुये । बदले की भावना से उन दोनों ने निश्चय किया कि वे दिन भर के अपने किए खेत के काम को उखाड़कर रख देंगे । घोर रात्रि में वे धरमू के खेत में अपना किया काम उजाड़ने पहुँचे । उसी समय उन्हें अदृश्य दिशा से आती आवाज़ सुनायी दी ।

"करमू ! कृषि कार्य उत्तम है, इसे मत उजाड़ । तेरा दम्भ और अहंकार ही तेरे दुर्भाग्य का कारण है । तूने 'करम राजा' का अनादर किया है । उन्हें तूने दूर फेंका जिससे ही तेरा सौभाग्य नष्ट हो गया है । इसके लिये अन्य किसी को दोषी न ठहरा । केवल इसके उपचार के लिये एक उपाय है कि तुम **'करम राजा'** को वापिस लाकर, सादर उन्हें प्रतिष्ठित करो, उनका **विधिवत् पूजन सम्पन्न करो, तुम अपना खोया सौभाग्य पुनः प्राप्त कर सकते हो ।"** अतः करमू ने सात समुद्र पार से **'करम राजा'** को वापिस लाने की तथा पूजा करने की ठान ली। इस उद्देश्य से करमू अगले दिन प्रातः **'करम राजा'** को वापिस लाने के लिए सफ़र पर निकल पड़ा । उसके घर पर खाने को कुछ भी न था । इसलिए वह बिना भोजन किये घर से निकल पड़ा ।

कुछ फासला तय करते ही उसे **एक वृद्धा मिली**, जो **च्यौड़ा** बेचा करती थी, उससे च्यौड़ा खाने को माँगा । पर वह स्वयं इतनी ज्यादा गरीब थी कि ऐसे ही दे देना, उसके लिए संभव न था । उस **वृद्धा** ने **करमू** से अपनी यात्रा का मकसद पूछा । **करमू** ने **वृद्धा** को पूरी बात बतायी कि भूल करने से उसके भाग्य नष्ट हो गया है और इसीलिए वह **'करम राजा'** को वापिस लाने के लिए जा रहा है, जिससे वह पुनः अपने सौभाग्य को प्राप्त कर ले । वृद्धा ने करमू से निवेदन किया कि वह **'करम राजा'** से **मेरे दुर्भाग्य** का कारण भी पता लगाए । करमू वृद्धा से विदा लेकर अपनी यात्रा पर आगे बड़ा । रास्तें में उसे एक अति सुन्दर तालाब दिखाई पड़ा, जिसके किनारे **फलदार वृक्ष** लगे हुये थे और वहाँ देखने में एक **सम्पन्न सा व्यक्ति** उदास मुद्रा में बैठा हुआ था । **करमू** ने सोचा कि यात्रा में आगे बढ़ने से पहले क्यों न यहाँ कुछ फल खा लूँ और तालाब से जल पीलूँ । उसने कुछ **डिमरी** (Dimri) फलों को (अंजीर जैसे फलों को) तोड़ा, पर जब उसके खाने के लिये टुकड़े किये तो देखा कि उसमें अनेक कीड़े हैं । इसलिये उसने उन फलों को नहीं खाया । फिर सोचा कि चलो थोड़ा जल पीकर प्यास बुझाली जाय । लेकिन जैसे ही उसने तालाब से अपने चुल्लू में पानी लिया तो उसमें भी उसे बहुत कीड़े तैरते नज़र आये । अतः उसने पानी भी न पिया।

करमू तालाब के पास बैठे **सम्पन्न व्यक्ति** से जाकर मिला । उससे फलों और तालाब के पानी में कीड़े होने का कारण जानना चाहा । उस आदमी ने कहा वह अभागा ही इस तालाब और फलदार पेड़ों का स्वामी है । उसने काफी धन कमाया था और उसी से यह विशाल तालाब बनवाया और उसके चारों ओर फलदार वृक्षों को लगवाया । पर दोनों में कीड़े पड़ जाने के कारण न कोई फल खाता है ओर न इस तालाब का जल पीता है ।

करमू ने **धनवान** की यह सब **दुखद कथा** सुनी और उसे बताया कि किसी भूल से आपका सौभाग्य नष्ट हो गया है। अपनी बात भी उसे बता दी कि उसका भी सौभाग्य नष्ट हो गया है और वह **'करम राजा'** को इसीलिए वापिस लाने जा रहा है, जिससे उसका सौभाग्य उसे पुनः प्राप्त हो सके । उस **सम्पन्न व्यक्ति** ने करमू से अनुरोध किया **"कृपया मेरे दुर्भाग्य का कारण पूछना"** करमू ने हाँ करते हुये उस व्यक्ति से बिदा ली और अपनी यात्रा पर आगे चल पड़ा ।

काफी चलने के बाद आगे मार्ग में एक **ग्वाला** दिखाई पड़ा, उसके साथ में अनेक सुन्दर गायें थीं । उसने ग्वाले से कुछ दूध पीने को मांगा, लेकिन ग्वाले ने कहा - **"भाई आप दूध देने की बात कह रहे हो, मेरी गाएँ मुझे दूध निकालने के लिए अपने थनों को छूने तक नहीं देती हैं, मैं दूध निकाल ही नहीं पाता हूँ मैं तो बर्बाद हो गया"** **करमू** ने अपनी यात्रा का मकसद उसे बताया, अपने दुर्भाग्य का कारण बताया और कहा कि उसे दूर करने हेतु **'करम राजा'** को वापिस लाने जा रहा है, यह भी बता दिया । **ग्वाले** ने **करमू** से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि वह **'करम राजा'** से उसके दुर्भाग्य की वजह पूछे ताकि वह भी अपने अच्छे दिन वापिस देख सके । **करमू** ने उसे इसके लिए आश्वस्त किया और फिर अपनी यात्रा पर चल पड़ा ।

आगे की यात्रा में काफ़ी दूर बाद करमू को मार्ग में एक घोड़े का व्यापारी मिला, जिसके पास अनेक स्वस्थ और सुन्दर घोड़े थे । करमू ने उस व्यापारी को अपने दुर्भाग्य की कहानी बतायी और 'करम राजा' को वापिस लाने का अपना उद्देश्य उसे बताया । आगे की शेष यात्रा वह शीघ्र पूरी कर सके, इसलिये करमू ने उस व्यापारी से उसका एक घोड़ा मांगा । व्यापारी ने बड़ी खेदजनक मुद्रा में कहा - "मेरा कोई भी घोड़ा मुझे अपने पास नहीं आने देता, उस पर बैठने की बात तो दूर रही । मेरा तो व्यापार ठप्प हो गया है । मैं बर्बाद हो गया हूँ । तुम 'करम राजा' को लाने जा रहे हो, कृपया मेरे दुर्भाग्य के कारण का पता करना, जिससे मैं भी प्रायश्चित करके अपने दुर्दिन दूर कर सकूँ ।" करमू उसे भी आश्वासन देकर आगे की यात्रा पर चल पड़ा । अन्ततोगत्वा वह समुद्र के तट पर जा पहुँचा ।

यात्रा के मार्ग में विशाल समुद्र आ गया देखकर करमू का परेशान हो उठना स्वाभाविक था, वह समुद्र तट पर चिन्ता की मुद्रा में बैठकर सोचने लगा कि समुद्र कैसे पार किया जाये । कुछ समय बाद समुद्र जल में एक मगरमच्छ तैरता और कभी गोता लगाते दिखाई पड़ा । करमू ने उसे अपने पास आने के लिये संकेत किया । मगरमच्छ जब पास आया तब निडर होकर करमू ने उसे अपना किस्सा सुना डाला और कहा कि वह 'करम राजा' को वापिस ले जाने के लिये यात्रा पर है, पर एक के बाद एक करके सात समुद्र व्यवधान बन गये हैं । क्या वह करमू को समुद्र पार करा देगा ? जिससे वह 'करम राजा' के पास जाकर उन्हें वापिस ला सके । बड़ी आनाकानी के पश्चात् मगरमच्छ इस शर्त पर करमू को समुद्र अपनी पीठ पर बिठाकर पार कराने को तैयार हुआ कि ढेर सी मछलियों और अन्य जानवरों और मनुष्यों तक को वह खा वह हल्का-फुल्का रह जाने भी कर पानी पर तैरता रहता है, समुद्र जल में अन्दर नहीं रह पाता, इसका क्या कारण है? यह करमू जरूर 'करम राजा' से पूछे। करमू ने जब हाँ कर दी तब मगरमच्छ ने ख़ुशी-ख़ुशी करमू को अपनी पीठ पर बैठाकर आराम से सात समुद्र पार करा दिये ।

सात समुद्र की दीर्घ यात्रा पूरी कर जब करमू उस पार पहुँचा तो देखा कि 'करम राजा' निर्बोध बालक की तरह समुद्र तट पर खेल - खेलने में मस्त थे । करमू ने सर्वप्रथम साष्टांग दंडवत की और करबद्ध सच्चे हृदय से 'करम राजा' से क्षमा याचना की । 'करम राजा' करमू का प्रायश्चित करना देखकर उसकी क्षमा याचना से प्रसन्न हो गये।

करमू यह देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । करमू ने 'करम राजा' को श्रद्धापूर्वक अपने सिर पर रखकर घर लौटने की यात्रा प्रारम्भ की । मगरमच्छ पहले से ही करमू के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था । मगरमच्छ ने करमू से उसके पानी पर तैरने का कारण पूछ ही लिया । करमू ने उसे सातों समुद्रों को पार करके उस पार उतरने पर बताने का वायदा किया । मगरमच्छ ने करमू को अपनी पीठ पर बिठाकर उस पार पहुँचा दिया । समुद्र तट पर उतरते ही करमू ने मगरमच्छ को बताया - "तुम ऐसे अनेक धनाढ्य व्यापारियों, राजाओं, रानियों को उनके बहुमूल्य आभूषणों सहित निगल गये हो, जो निर्दोष थे । उनके कीमती हीरे-जवाहरातों वाले आभूषण तुम्हारे पेट में जमा पड़े हैं । अगर उन सब बहुमूल्य वस्तुओं को तुम गरीबों और वैष्णवों में बाँट दो, तब उस दान द्वारा पाप-मुक्त हो सकते हो, तब तुम इच्छानुसार जलमग्न रह सकते हो ।" मगरमच्छ ऐसा करने को तैयार हो गया और वह बोला - "मैं गरीबों और वैष्णवों को कैसे ढूँढूगा । मैं अभी ये सब कीमती आभूषण आपको सौंपता हूँ ।" ऐसा कहने के पश्चात् मगरमच्छ ने अपने पेट से सारे बहुमूल्य आभूषण उल्टीकर करमू के सम्मुख निकालकर रख दिये । आश्चर्यचकित करमू ने उन सब आभूषणों को एक गठरी में बाँध लिया । गठरी पीठ पर लटकायी, सिर पर फिर श्रद्धापूर्वक 'करम राजा' को उठाया और वापिस घर लौटने की यात्रा शुरु कर दी ।

करमू घोड़ों के व्यापारी के पास पहुँचा । उस व्यापारी ने बड़ी आतुरता से अपने दुर्भाग्य का कारण करमू से जानना चाहा । करमू ने बताया - "तुम्हारा बहुत बड़ा व्यापार रहा है । तुमने उससे अपार धन भी अर्जित किया, लेकिन उसमें तुमने परोपकारी कार्यों में कुछ भी खर्च नहीं किया, जिससे तुमने अपने दुर्भाग्य को स्वयं उत्पन्न किया। यदि अब भी तुम अपने धन से परोपकारी कार्यों में कुछ भी खर्च करो तुम्हारा सौभाग्य पुनर्स्थापित हो जायेगा। तुम्हारे बिगड़ैल घोड़े शान्त और आज्ञाकारी बन जायेंगे, फलतः तुम पुनः धनाढ्य, सम्पन्न और सुखी हो सकोगे । व्यापारी ने

सर्वप्रथम करमू को बहुत सा धन दिया और कहा कि इसे परोपकार में व्यय कर देगा । एक घोड़ा भी दिया ।

अब करमू घोड़े पर सवार होकर, आभूषणों और धन-दौलत की बजनी पौटली पीठ पर रखे, सिर पर श्रद्धापूर्वक 'करम राजा' को उठाकर अपने घर की ओर चल पड़ा । मार्ग में ग्वाला मिला, जोकि उसकी प्रतीक्षा कर रहा था । ग्वाले ने भी करमू से अपने दुर्भाग्य का कारण जानना चाहा । करमू ने कहा - "दूध में पानी मिलाकर लोगों में बेचना महापाप है, जिसके कारण तुम्हें दुर्भाग्य ने आ घेरा । तुम अपने सौभाग्य को पुनः प्राप्त कर सकते हो, यदि तुम परोपकारी कार्य करना प्रारम्भ कर दो और पाप से कमाये धन को गरीबों और वैष्णवों में दान कर दो ।" ग्वाले ने करमू को काफ़ी धन दिया । और निवेदन किया कि वह इसे परोपकारी कार्यों में खर्च कर दें । करमू को ग्वाले ने कुछ गायें भी दीं जो दूध निकलवाने लग गयी थीं । करमू ने ग्वाले से मिलकर फिर अपनी घर वापिसी का सफ़र शुरू कर दिया । रास्ते में पहले वाला तालाब पड़ा जहाँ धनवान व्यक्ति बैठा करमू का बड़ी तीव्रता से प्रतीक्षा कर रहा था । करमू को घोड़े पर सवार, पीठ पर वजनी गठरी तथा साथ में दुधारू गायें देखकर उसका विस्मित हो उठना स्वाभाविक था। उसने तुरन्त करमू से पूछा कि 'करम राजा' के अनुसार मेरे तालाब के जल तथा फलों में कीड़े क्यों हैं? करमू ने कहा - "जमाखोरी एक सामाजिक पाप है । तुमने इस पापकर्म से बहुत धन कमाया है जिसे तुमने तालाब के चारों ओर लगे फलों वाले वृक्षों के नीचे तथा कोनों में जमीन में गाड़ रखा है । यदि तुम इस धन को जमीन से निकालकर गरीबों और वैष्णवों में दान कर दो तो तुम्हारे तालाब के जल और फलों में कीड़े नहीं रहेंगे, और फल खाने लायक और जल पीने योग्य हो जायेगा ।" धनवान के ज्ञानचक्षु खुल गये, वह सद्मार्गी बनना चाहता था । उसने जमीन से सारा धन निकलवाया, जो बर्तनों में भरा पड़ा था और सबको करमू को इस विनती के साथ दे दिया कि "वह इसे परोपकार में लगा दे, गरीबों और वैष्णवों में दान कर दें ।" धनवान के तालाब का जल तथा पेड़ों के फल कीड़े रहित हो गए ।

अन्त में करमू मार्ग में से दिया गया सारा धन, आभूषण, गायों सहित घोड़े पर सवार सिर पर श्रद्धापूर्वक 'करम राजा' को रखे हुये वापिस हुआ । गाँव की सरहद पर वृद्धा प्रतीक्षा कर रही थी, उसने भी अपनी विकट गरीबी की वजह जानना चाही । करमू ने बताया, "तुम ज्यादा धान लेकर बदले में कम च्यौड़े देती रही हो, यही तुम्हारा पाप कर्म रहा है, आगे ऐसा न करना तभी तुम्हारे अच्छे दिन वापिस लौटेंगे ।" यह बुढ़िया को बताकर वह खुशी-खुशी अपने घर पहुँचा । गाँव वालों, परिजनों, स्वजनों ने करमू को इतनी अधिक धन-दौलत, आभूषण, दुधारू गायें, सुन्दर घोड़ा सहित 'करम राजा' को वापिस लाते देखा वे सब आश्चर्यचकित रह गये ।

घर में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम उसने धरमू से क्षमा याचना की । फिर स्नान-ध्यान कर पवित्र होकर घर की सफ़ाई कर विधिवत 'करमराजा' का पूजन किया और कन्याओं तथा अन्य नर-नारियों सहित श्रद्धापूर्वक 'करम-राजा' की डाल को पवित्र की गयी भूमि में रोपित कर प्रतिष्ठित किया, फिर करमा-पर्व को सुचारु ढंग से सम्पन्न किया । सारे परिवार के तथा गाँव के लोग आनन्दित हो गये । करमू और धरमू दोनों भाई बड़े मेल-मिलाप के साथ सुखी जीवन बिताने लगे ।

इस 'करम पर्व' अथवा 'करम एकादशी' से निम्नलिखित शिक्षा मिलती है :-

1. अंकुरण प्रक्रिया से, जावा-समारोह द्वारा, छोटी कन्याओं को अवगत कराया जाता है ।

2. दूसरे के हक पर अधिकार करना पाप है, जैसा कि काली मुधमक्खी और यहाँ तक की कीड़े भी अभिशाप देने की शक्ति रखते हैं ।

3. अति धनवान होना और उस पर दम्भी होना उचित नहीं है और एक पारम्परिक विश्वास और पूजा-वन्दना का अनादर करना भी महापाप है, जैसा कि करमू, व्यापारी, के बारे में था ।

4. भगवान में आस्था न करने वाले, बर्बादी को प्राप्त होते हैं ।

5. दुगना अथवा अनुचित मुनाफा कमाना भी पाप हैं, जैसा उस औरत के सम्बन्ध में था जो च्यौड़े (Flattend rice) के धन्धे में लगी थी ।

6. जमा खोरी सामाजिक अपराध है, अतः पाप है, जैसा कि धनवान व्यक्ति ने तालाब तथा उसके आस-पास के फलदार वृक्षों के नीचे अपार सम्पत्ति जमा करके गाड़ रखी थी ।

7. दूध में पानी मिलाना अपराध है । पाप है ।

8. अधिकाधिक धन कमाना, आय के बिना परोपकारी कार्यों पर खर्च किये हुये या गरीबों और सही जरूरतमंदों को दान दिये बगैरह प्रयोग करना भी एक पाप है, जैसा घोड़े के व्यापारी के बारे में कहा था ।

9. निर्दोषियों को सताना और ऊल-जलूल मुनाफा कमाना भी प्रभु के दृष्टि में अनुचित ही नहीं, पाप है,जैसा मगरमच्छ के बारे में ।

उपरोक्त 'करम-पर्व' की शिक्षाएँ हैं, इस विश्वास के अतिरिक्त कि 'करम राजा' की अनुकम्पा से ही समय से लोगों के लिये वर्षा, होती है, धन-दौलत, यश और पुत्र तथा सौभाग्य उनके भक्तों को प्राप्त होते हैं ।

श्री विपिन महान्ता ने "JHUMAR ACADEMY, ORISSA", झूमर का सांस्क तिक संस्थान खोला है और "करम राजा" फिल्म की सूटिंग भी झूमर-अभिनय के साथ-साथ प्रगति पर है ।

विजयमल की लोकगाथा

विजयमल लोकगाथा को सर्वप्रथम अंग्रेज नृ-शास्त्री (अन्थ्रोपालोजिस्ट) जी0 ए0 गियर्सन ने बिहार के शाहाबाद जिले में बोली जाने वाली भोजपुरी के रूप में प्रस्तुत किया, जिसका उल्लेख इस पुस्तक में अन्यत्र किया गया है । बाज़ारों और मेलों में बिकने वाली पुस्तक 'कुँवर बिजई' है, जिसके प्रकाशक मेसर्स दूधनाथ एंड पुस्तकालय, हावड़ा, प० बंगाल हैं । इस लोकगाथा का तीसरा रूप मौखिक है । इस प्रकार अब तक हम 'विजयमल' लोक गाथा के तीन भोजपुरी के रूपों से अवगत हुए हैं ।

'मल्ल' और 'साइथवार' या सैंथवार' पूर्वी उत्तर प्रदेश के जनपदों में कुरमियों की सम्पन्न तथा जागृत उपजातियां हैं । "साइथवार" शब्द की उत्पत्ति सम्भवतः 'संस्थागार' से हुई है । कदाचित ये लोग प्राचीन एवं बौद्ध-कालीन "संस्थागार" (सभाभवन के रक्षक रहे होंगे । ये 'मल्ल और सैंथवार" बुद्ध युग के प्राचीन क्षत्रिय थे । 'मल्ल' लोग गणतन्त्री थे। बहुत सम्भव है कि इन्हीं वीरों की कोई कथा 'विजय मल' के रूप में प्रचलित हो गई हो (डा० उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, डि० लि०, "ओरिजन एंड डेवलेपमेन्ट, आफ भोजपुरी, पृष्ठ 104.105)।"

'विजय मल्ल' लोक गाथा के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्रत्येक पंक्ति के प्रारम्भ में 'रामा', तथा अन्त में "रैना" रहता है । गायक द्रुतलय से गाथा की प्रत्येक पंक्ति गाता चला जाता है, वर्णित भावों के अनुसार उसके स्वर में उतार-चढ़ाव हुआ करता है । परन्तु 'रामा', 'रैना' का कम नहीं टूटने पाता है; जैसे :-

रामा सपना देले देवि भाई दूलगवा रेना ।
बबुआ तोहरा पुतर होइहें तेज मानवा रेना ।।

रामा तब उड़े मरले पगो चैंपवा रेना ।
रामा चैंपवा जाके गिरल बावनगढ़ मुलुकवा रेना ।

रामा देख तारे तिलकी के सुरतिया रेना ।
रामा गिरी परले पोखरा उपटवा रेना ।

तबले कनखी देखेला छिंछल बछेड़वा रेना ।
ओहजा तड़पल बाटे छिछल बछेड़वा रेना ।।

सरऊ फेंकऽ तुहूँ मखमल चवरिया रेना ।
तोहरा तिले तिले लागल बा ऊँघरया रेना ।

सरऊ अवतारी सोरह सौ लंउडिया रेना ।
संगे आवतारी तिलकी बबुनिया रेना ।।

इस प्रकार इस भोजपुरी लोकगाथा में विजयमल का चरित्र, एक मल्ल कुरमी वीर का चरित्र है जो अपनी प्रतिज्ञा पर मर मिटने वाला होता है वह शत्रु से ब.ला लेना जानता है । उसका सत्य, ईश्वर तथा देवी-देवता पर अटूट विश्वास तथा आस्था है ।

लोक साहित्य के अध्ययन से हम देश अथवा प्रदेश-विशेष के लुप्त ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाश में ला सकते हैं । जो विषय हमें **ऐतिहासिक ग्रन्थों** में नहीं प्राप्त होते वे सहज रूप में **लोक-साहित्य** में मिल जाते हैं । लोक-साहित्य में अनेक राजाओं के जीवन की घटनाएँ, प्रादेशिक वीरों का जीवन-चरित्र बड़े मार्मिक रूप में चित्रित रहता है । अतएव इनके सम्यक अध्ययन से इतिहास से प्राप्त ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है । लोक-साहित्य में साधारण ग्रामीण समाज का खान-पान, रहन-सहन तथा रीति-रिवाज़ इत्यादि का भी परिचय मिलता है । **श्री राम नरेश त्रिपाटी** का मत है कि **-"जिस प्रकार वेद अपौरुषेय माने जाते हैं, उसी तरह ग्राम-गीत भी अपौरुषेय है ।"**

इस शताब्दी पूर्व भोजपुरी लोकगाथाओं को एकत्र करने का सराहनीय प्रयास सर्वप्रथम **अंग्रेज विद्वान श्री जी0 ए0 ग्रियर्सन ने किया था । विजयमल की गाथा** को उन्होंने जे0ए0 एस0 बी0, 1884 (i) पृष्ठ 94 की दूसरी प्रति में पूर्णरूपेण प्रकाशित करवाया है । एक विदेशी द्वारा भारत के दूर-दराज के गांवों, कस्बों में हाटों और मेलों के समय **घूम-घूमकर, वह भी उन्नीसवीं सदी के उस काल में जब कि यातायात और यात्रा के साधन अति सीमिति थे, पक्के रास्ते और सड़कें लगभग नहीं के बराबर थीं, ऐसी परिस्थिति में इस कार्य को करना एक महान साधक की साधना ही कही जा सकती है, अतः लोक गाथाओं का एकत्रीकरण इस दृष्टि से अत्यन्त प्रसंशनीय तथा सराहनीय कार्य था।**

डा0 ग्रियर्सन की मूल पुस्तक का अंग्रेजी टाइटिल है - "The Song of Bijay Mal"-Edited & Traslated by Dr. Grierson, J.A.S.B., Vol. LIII (1884), page 94."

इस लोकगाथा में कुँवर विजयमल्ल का चरित्र प्रधान रूप से चित्रित किया गया है । विजमल्ल या विजयमल **देवी कृपा-युक्त एक वीर पुरुष हैं ।** इस लोक-गाथा में प्रमुख रूप से विजयमल का विवाह, विजयमल के पिता के कष्टों का वर्णन कष्ट देने वालों से वीरतापूर्वक बदला लेना वर्णित है । अतः इस लोकगाथा से मध्ययुगीन वीरता का सुन्दर **चित्रण प्राप्त होता है ।** जैसे कि भोजपुरी और अन्य लोक-बोलियों में वर्णित गाथायें के नायक बाबू कुंवरसिंह (जगदीशपुर वाले), आल्हा-ऊदल, गोपी चन्द भरथरी आदि का चरित्र-चित्रण बड़े कलात्मक एवं भावनात्मक पूर्ण शब्दों द्वारा किया गया है ।

भोजपुरी संस्कृति में वीरत्व की भावना प्रमुख रूप से वर्तमान है । इस दृष्टि से लोकगाथाओं में क्षत्रिय वीरों का जीवनवृत्त अत्यन्त उदात्त रूप से चित्रित हुआ है । क्षत्रिय का धर्म है राज्य करना, तथा प्रजा की रक्षा करना । अन्याय से डटकर टक्कर लेना । इन लोक गाथाओं के नायकों ने, जिनके नाम ऊपर दिये गए हैं, कभी भी कोई निकृष्ट कर्म नहीं किया । वस्तुतः भोजपुरी प्रदेश में प्राचीन क्षत्रियों की एक बहुत बड़ी आबादी रहती है । इसी कारण भोजपुरी समाज क्षत्रियों, वीरों का बड़ा सम्मान करता है ।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों, विशेष करके गोरखपुर प्रभाग एवं बिहार में पश्चिमी अँचल में अधिकांशतः 'मल्ल' या 'मल' क्षत्रिय अभी भी वास करते हैं । इसलिये इस बात की सम्भावना सर्वाधिक है "विजय मल" लोकगाथा के नायक कुंवर विजय मल भी कूर्मि क्षत्रिय जाति के अन्तर्गत 'मल्ल' उपजाति के रहे हों । अपनी पुस्तक-("ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेस एवं अवध", भाग तीसरा, पृष्ठ 450)" में डब्लू0 कुक ने 'मल' जाति पर विचार करते हुये लिखा है कि 'मल' लोग कुर्मी जाति के होते हैं । बुद्ध कालीन सोलह महाजन जन पदों में से एक 'मल्ल-जनपद' भी था । महात्मा बुद्ध ने कुशीनारा में देह त्यागी थी, और उनका मृतक शरीर श्रद्धालुओं ने मल्लों के 'संस्थागार' में जन-मानस के दर्शनार्थ एवं उन्हें अन्तिम नमन तथा श्रद्धासुमन प्रस्तुत करने को रखा गया था ।

कहा जाता है कि मल्ल वशिष्ठ गोत्री कूर्मिक्षत्रिय थे । मल्ल जन कुशीनारा और पावा में बंट गये थे । मनु ने मल्लों को क्षत्रियों और व्रात्य क्षत्रियों की सन्तान भी कहा है । मल्लों ने न केवल भारत के अपितु विश्व के महानतम धर्माचार्य महात्मा बुद्ध,जो तथागत् भी कहे जाते थे, का अन्तिम संस्कार बड़े आदर-सम्मानपूर्वक सम्पन्न किया था जैसा कि किसी चक्रवर्ती राजा-महाराजा का किया जाता था ।

मल्लों का गणराज्य अपनी अनेक उपलब्धियों के लिये जाना जाता था । मल्ल स्वभावतः योद्धा होते थे । शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखने के लिये शारीरिक व्यायाम तथा कुश्ती आदि में बड़े अभ्यस्त एवं निपुण होते थे । सम्भवतः कुश्ती का नाम मल्ल-युद्ध उसकाल से ही उन पर ही आधारित होगा । तथा चार-पाँच हाथ लम्बा मोटा लकड़ी का डंडा, जो भूमि में गड़ा रहता है, जिस पर अनेक प्रकार का व्यायाम किया जाता है, उसे इन्हीं मल्लों के कारण मल्लखंभ, मलखंभ या मलखम भी आज भी बोला जाता है । महाराष्ट्र में मलखम का प्रयोग व्यायाम में आज भी गाँव-गाँव में खूब प्रचलित है । कोल्हापुर नरेश शाहू जी महाराज मल्ल विद्या के संरक्षक माने गए हैं ।

(16) स्व० वीरचन्द पटेल, पूर्व मंत्री बिहार सरकार

वीरचन्द का जन्म पटना महानगरी में बसे एक साधारण कुरमी परिवार में 12 मार्च 1911 को हुआ था । इनके पिता श्रीलाल पटेल के असामयिक निधन से वीरचन्द जी का बचपन आर्थिक कष्टों तथा अन्याय प्रकार की अभावजनित समस्याओं और उनसे जूझते संघर्षों में बीता । वीरचन्द जी प्रारम्भिक शिक्षा से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के निकले । ननिहाल गंगापार हाजीपुर, किन्तु प्राचीन काल के वैभवशाली नगर वैशाली, में स्थित था । इनका ननिहाल राजनीतिक चेतना से ओत-प्रोत था उसकी प्रसिद्ध विभूतियों में स्व. गुलजार पटेल और वहाँ से वर्तमान सांसद श्री वृषणि पटेल, पूर्व मंत्री बिहार सरकार आदि हैं । इनके बड़े भाई, डाक्टर विजय पटेल का इस ग्रंथ के लेखक से परिचय हुआ था जबकि वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सन् 1959 में डाक्ट्रेट डिग्री हेतु विद्यार्थी था ।

पितृहीन भान्जे, वीरचन्द, पर उनके मामा की कृपा दृष्टि हुई और इन्हें हाजीपुर अपने परिवार में लाकर उनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया । वीरचन्द जी की प्रखर बुद्धि और प्रतिभा में उत्तरोत्तर निखार आता गया। सन् 1928 में हाजीपुर हाई स्कूल से 17 वर्ष की आयु में मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की । वह न केवल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए, वरन तिरहुत प्रमंड़ल के शीर्षस्थ विद्यार्थियों में उन्होंने स्थान अर्जित किया । फलतः उन्हें सरकारी छात्रवृत्ति भी प्रदान की गई, जिससे आगे उनकी उच्च शिक्षा सुलभ हो गयी ।

सन् 1930 में मुजफ्फरपुर के जी० बी० बी० कालेज से आई० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और पूरे विश्वविद्यालय में आपका द्वितीय स्थान रहा । जैसा पहले कहा जा चुका है उनकी ननिहाल में अनेक लोग अंग्रेजों के विरोध में संघर्षरत

है। स्वाभाविक था कि वीरचन्द जी पर अपने अनुवांशिक वातावरण का प्रभाव पड़ा। किशोर वीरचन्द अध्ययन के साथ-साथ स्वतन्त्रता संग्राम के कार्य-कलापों में, जहाँ तक सम्भव हो सका, भाग लेने लगे। संयोगवश उन्हीं दिनों सन 1930 ई० में गांधी जी का नमक सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ गया। उसमें सक्रिय भाग लेने के कारण वीरचन्द तत्कालीन अंग्रेज शासकों के निगाह में चढ़ गए। परिणामस्वरूप उनकी आगे की पढ़ाई के लिए बिहार के विश्वविद्यालयों में प्रतिबन्ध लगा दिया गया। कलकत्ता शहर में भी इस प्रतिबन्ध के कारण उन्हें किसी कालेज में प्रवेश नहीं मिला। अन्त में उन्हें महामना पं० मदनमोहन मालवीय के बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पनाह मिली और वे उच्च पढ़ाई के लिये वहाँ प्रवेश पा गए। वहाँ से बी. ए., एल-एल. बी. परीक्षाएं ऊँचे अंकों से प्राप्तकर अपने कीर्तिमान में वृद्धि करते गए।

उनकी स्वतंत्रता संग्राम में रुचि बढ़ोत्तरी पर थी, समय भी काफ़ी उपलब्ध था क्योंकि तब वे हाजीपुर शहर में वकालत करने लगे थे। शीघ्र ही वीरचन्द पटेल एक प्रखरबुद्धि तथा तेज़-तरार वकील के रूप में प्रसिद्ध हो गये। मुकदमें वालों के आग्रह पर वे मुजफ्फरपुर जिला सत्र न्यायालय में भी पैरवी करने जाने लगे।

स्थानीय समाज के प्रमुख व्यक्तियों में होने के कारण वे हाजीपुर स्थानीय बोर्ड के चेयरमैन चुन लिये गये। उधर स्वतंत्रता संग्राम में भी भाग लेते रहे। अंग्रेज सरकार उनके पीछे हाथ धोकर पड़ी थी, तिरहुत षड्यन्त्र केस में इनकी संलिप्तता के कारण सन् 1935 में वे गिरफ्तार कर कई माह तक कारावास में रखे गये। हाजीपुर के लोकल बोर्ड की चेयरमैनी से त्यागपत्र दे दिया। तब तक सन् 1942 का वर्ष आ गया था, गांधी जी का 'अंग्रेज भारत छोड़ो' आन्दोलन का श्री गणेश हो चुका था, उन्होंने भी उसमें पूर्णरूपेण भाग लिया। सरदार पटेल तब तक बारडोली आन्दोलन की अभूतपूर्व सफलता से राष्ट्रीय क्षितिज पर उभर कर आये थे। सरदार पटेल का स्वजातीय होना जब श्री वीरचन्द को पता चला तो वे उनसे इतने प्रभावित हुए कि वे अपने नाम के पीछे 'पटेल' आस्पद प्रयोग करने लगे। यह अतिशयोक्ति न होगी यदि कहा जाय कि बिहार के कुरमियों में वीरचन्द जी प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 'पटेल' आस्पद को अपनाया। उनकी देखा-देखी श्री राजेश्वर पटेल पूर्व सांसद ने भी यही किया। आज बिहार और उत्तर प्रदेश में 'पटेल' आस्पद का प्रयोग नाम के साथ बड़ी तेज़ी बढ़ता जा रहा है। वीरचन्द पटेल जी ने अनेक वार कारावास भोगा और कुल मिलाकर सात वर्षों से अधिक अवधि का उनका जीवन विभिन्न जेलों में बीता।

वीरचन्द पटेल प्रथम बार सन् 1945 में हाजीपुर क्षेत्र से निर्विरोध विधायक निर्वाचित हुए। सन् 1946 में बिहार में जब अन्तरिम सरकार बनी, तब आपको संसदीय सचिव मनोनीत किया गया। सन् 1947 में सम्पन्न हुए आम चुनाव में आप पुनः हाज़ीपुर से विधायक चुने गए, और बिहार मंत्रिमंडल में उपमंत्री बनाए गए। बाद में वे कबीना स्तर के मंत्री बनाये गए और स्वास्थ्य और कृषि जैसे महत्वपूर्ण विभाग उन्हें सौंपे गये। सन् 1961 में तत्कालीन मुख्यमंत्री पं० विनोदानन्द झा के मंत्रिमंडल में आप वित्त मंत्री बनाए गए। श्री कृष्ण वल्लभ सहाय के मुख्यमंत्रित्व में सन् 1963 ई० की सरकार में भी आप वरिष्ठ मंत्री रहे। वीरचन्द पटेल की मृत्यु यकायक हुई जबकि उनके बारे में बिहार के अगले मुख्य मंत्री बनने की चर्चायें तेज़ी से चल रही थी।

श्री वीरचन्द पटेल जी की पत्नी श्रीमती श्यामादेवी, पीलीभीत (उ. प्र.) के प्रसिद्ध मुख्तयार और जयसवार कुरमी बाबू डोरीलाल की बेटी हैं। वे भी विधायक रही हैं। श्री वीरचन्द पटेल की अनेक राजनैतिक एवं सामाजिक उपलब्धियां हैं। बिहार सरकार ने उनकी स्मृति में एक प्रमुख सड़क का नाम 'वीर चन्द पटेल पथ' रख दिया है। निस्संदेह उनकी गणना बिहार प्रदेश के चोटी के राजनेताओं में सदैव की जाती रहेगी।

(17) राणा जंग बहादुर सिंह

पूर्व सम्पादक दैनिक "ट्रिब्यून" तथा "टाइम्स आफ इण्डिया" दिल्ली तथा पूर्व विधायक, दिल्ली विधान सभा

राणा जंग बहादुर सिंह का जन्म 2 दिसम्बर 1901 को हुआ। उनके पिताजी श्री श्याम सिंह, उत्तर प्रदेश के जिला आजमगढ़ के मूल निवासी तथा जयसवार कूर्मि क्षत्रिय जाति के थे। श्री श्यामसिंह जी डाक विभाग की सरकारी

नौकरी में थे और बहुत वर्षों तक लखीमपुर खीरी में पोस्टमास्टर रहने के बाद वे लाहौर में पोस्ट मास्टर पद पर पर कार्यरत रहे । इसी कारण श्री जंगबहादुर सिंह और उनके अनुज श्री पृथ्वीपाल सिंह का लालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा सब पहले यू० पी० में तथा बाद में लाहौर (अब पाकिस्तान में) हुयी थी । इन्होंने अलीगढ़ विश्वविद्यालय से बी० ए० किया इनके पिताजी श्री श्याम सिंह, दिसम्बर 1937 में छपरा (बिहार) आयोजित अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के 21वें अधिवेशन के महामंत्री (तब प्रधानमंत्री कहा जाता था) चुने गए और उस पद पर अगले दस वर्ष तक लगातार रहे । भारत-विभाजन के बाद ये दोनों बन्धु अपने-अपने परिवारों के साथ नयी दिल्ली आकर बस गए । राणा जंगबहादुर सिंह दिल्ली आकर पहले दैनिक 'ट्रिब्यून" तथा बाद में दैनिक "टाइम्स ऑफ इण्डिया" के सम्पादक रहे । उनका स्थायी पता है :- सी-7, निजामुद्दीन ईस्ट, नयी दिल्ली-110013 ।

राणा जंग बहादुर सिंह ने पत्रकारिता में बड़ा यश कमाया तथा अनेक कीर्तिमान स्थापित किये । संक्षिप्त में उनकी पत्रकारिता की उपलब्धियां इस प्रकार हैं :-

उप-सम्पादक 'द कामरेड' (दिल्ली, सन् 1924-225); संपादक 'द नेशन' (लाहौर सन् 1925-27), सह-सम्पादक 'द ट्रिब्यून' (लाहौर सन् 1927-45); इसी अंग्रेजी समाचार पत्र के सम्पादक (लाहौर सन् 1946-48); सम्पादक 'द नेशनल काल', "दैनिक नवभारत" (दिल्ली 1948-49); 'द प्युपल' (दिल्ली 1949-50); सम्पादक 'द टाइम्स आफ इंण्डिया (दिल्ली 1950-51); राणा जंग बहादुर सिंह की रचनाएँ हैं 'पतितोद्धार', 'बारदोली विजय', 'हिन्दुस्तानी संस्कृति' आदि। पत्रकारिता के नाते इन्होंने देश के बाहर भी काफी भ्रमण किया, जैसे सोवियत संघ अनेक बार, चीन तथा यूरोप के लगभग सभी देश, विशेष रूप से अनेक पत्रकार संगठनों के पदाधिकारी होने के कारण इनका सक्रिय जीवन देश-विदेश की यात्राओं से ही भरा हुआ रहा, उनका कहाँ तक उल्लेख किया जाए ।

नेपाल के राणाशाही के जमाने में उनके पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य को देखकर श्री जंग बहादुर सिंह को 'राणा' की सम्मानित उपाधि दी गई थी वही उनकी विरुद बन गयी । राणा जंग बहादुर सिंह भारत-विभाजन से पूर्व लाहौर के पत्रकारिता जगत की प्रसिद्ध हस्ती थे, बाद में इनका कार्य क्षेत्र दिल्ली रहा ! एस्कार्ट्स कम्पनी से उनकी एक पत्रिका के सम्पादक के रूप में सदा सम्बन्ध रहा है । वे अनेक संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़े हुये थे । दिल्ली के लिये पहली बार विधान सभा के चुनाव हुये । अपनी जाति के वोटों के बल पर चुने हुए सैकड़ों विधायक मिलेंगें लेकिन राज्य विधान सभा के जिस निर्वाचन क्षेत्र से स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में, 'लालटेन' चुनाव चिहन लेकर वे खड़े थे और विजयी हुए, वहाँ स्वजातीय लोगों के वोटों की संख्या नगण्य थी । इस चुनाव में राणाजी की व्यक्तिगत कार्यकुशलता तथा कीर्ति, प्रभावशाली पत्रकार होना आदि उनके देदीप्यमान प्रमाण थे । भारत विभाजन के समय दिल्ली में 100 से ज्यादा कुरमी नहीं बसे हुये थे । अब इनकी आबादी 1 लाख से अधिक लगती है । इस प्रकार वे सन् 1952-55 तक दिल्ली राज्य विधान सभा के सदस्य रहे ।

आगरा के स्व0 श्री ध्रुव नारायण सिंह बर्मा, पूर्व सदस्य, विधान परिषद (उ0 प्र0) ने 17 नवम्बर 1983 को एक पत्र राणा जंग बहादुर सिंह को लिखा कि वे अपने पूज्य पिताजी स्व0 श्री श्यामसिंह जी का फोटो और जीवनवृत्त भेंजे । राणा साहब ने 20 नवम्बर 1983 को अपने विनम्र उत्तर में श्री बर्माजी को लिखा कि :-

"आप सही कहते हो, मेरे पिता, श्री श्यामसिंह अनेक प्रकार से एक महापुरुष थे । उन्होंने जन-जीवन में जो महत्वपूर्ण पद प्राप्त किए उनसे उनकी महत्ता प्रतिबिम्बित नहीं होती, क्योंकि प्राप्त करने के प्रयास के बिना ही वे उन्हें प्राप्त हुये थे । उनकी महत्ता लोगों की भलाई करने की प्रेरणा देने में निहित थी। वे अनियन्त्रणीय समाज सुधारक थे, अनन्य देशभक्त थे लेकिन, अपनी मातृभूमि के एक प्रेमी के रूप में उनकी गतिविधियों की कुछ सीमाएँ थी; क्योंकि वे राजकीय सेवा में थे । मैं उनके मन और मस्तिष्क के असाधारण गुणों के शब्दचित्र अंकित करने की प्रतिभा नहीं रखता हूँ, लेकिन, मैने आपकी इच्छा की पूर्ति का प्रयास अवश्य किया होता, यदि मैं बीमार और कमजोर न होता । मैं 2 दिसम्बर 1983 को 81 वर्ष की आयु पूरी कर लूँगा । मैं गत 3 वर्षों से दुखदायी हृदय रोग-टैकी कर्डिया

से तीसरी बार ग्रसित हो चुका हूँ । जब मैं लिखता हूँ, तो मेरा हाथ कठिनाई से स्थिर रह पाता है ।" (अंग्रेजी से अनूदित) ।

"सोवियत भारत मित्रता संघ" से आप सदैव सक्रिय रूप से जुड़े रहे । आप को सोवियत संघ ने 'नेहरु पुरस्कार' से पुरस्कृत किया था । इस समय राणाजी की आयु 2 दिसम्बर 1994 को 93 वर्ष की हो जायेगी । इस समय वे इलाज के लिये बम्बई में अपनी बेटी के पास हैं । इनके दो पुत्रियां ही हैं और छोटी बेटी प्रतिमा के पति श्री योगेन्द्रपाल कैडबरी इण्डिया लिमिटेड के चेयरमैन हैं । परमात्मा से प्रार्थना है कि वह इन्हें शतायु करें ।

राणा जी के छोटे भाई श्री पृथ्वीपाल सिंह ने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए०, एल-एल० बी० पास की। वे इस विश्वविद्यालय की विद्यार्थी यूनियन के प्रेसीडेन्ट रहे । आप पत्रकारिता में उच्च शिक्षा प्राप्त करने लन्दन गये । लौटकर पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर में प्रोफेसर रहे । विभाजन के बाद चंडीगढ़ में पंजाब विश्वविद्यालय में पत्रकारिता विभाग स्थापित किया और उसके विभागाध्यक्ष रहे । पत्रकारिता जगत के अनेक प्रसिद्ध पत्रकार जैसे श्री कुलदीप नायर और श्री कुमारमंगलम इनके विद्यार्थियों में से थे । दिल्ली में इनका स्थायी निवास का पता है - एफ-438 न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली, दूरभाष 5741712 । प्रोफेसर पृथ्वीपाल सिंह का स्वर्गवास 17 अगस्त 1978 को हो गया । दिल्ली के पत्रकारों की ओर से प्रोफेसर साहब के नाम से एक स्मारक व्याख्यान-माला का कार्यक्रम होता है । पंजाब विश्वविद्यालय में 'प्रोफसर पृथ्वीपाल सिंह मेंमोरियल चेयर" की घोषणा करके पत्रकारिता और प्रोफेसर साहब को सम्मान प्रदान किया गया है । प्रोफेसर साहब सर्वसम्मति से दिल्ली कूर्मि क्षत्रिय समाज के प्रथम अध्यक्ष मनोनीत किये गये थे ।

हिन्दू कौन है ? इलाहाबाद उच्चन्यायालय का निर्णय (रूलिंग)

दो नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा के मुकदमें में 30 जुलाई 1991 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ खंडपीठ के न्यायमूर्ति एच० एन० तिलहरी ने जो फैसला दिया उसमें 'हिन्दू' की परिभाषा भी दी गई, जो मूल अंग्रेजी भाषा में नीचे उद्धृत हैं :-

"Every one, who is neither a Muslim nor a Christian nor a Parsi, nor a Jew, is a Hindu" Mr. Justice H. N. Tilhari of the **Lucknow Bench** of **All-ahabad High Court** further observed that **"Hindu"** and **"Hinduism"** were not sectarian or communal expressions. Hindus owed their allegiance to our motherland **"Bharat Mata". Hindu** was the geographical name of a geographical territory, he said [The Times of India, New Delhi dated 31-07-1991].

(18) प्रसिद्ध पत्रकार श्री चन्दूलाल चन्द्राकर एवं वरिष्ठ सांसद

आपका जन्म 1 जनवरी 1920 को ग्राम निपानी, जिला दुर्ग (मध्यप्रदेश) में साधारण कुरमी कृषक के परिवार में हुआ था। पिताजी का नाम था श्री राम सहाय। श्री चन्दूलाल चन्द्राकर की शिक्षा स्नातक स्तर हुई जब जबलपुर से बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। प्रारम्भ से उनकी रुचि पत्रकारिता के माध्यम से समाज सेवा करने की ही रही, वैसे ही ढंग बन गए और उसका श्रीगणेश वाराणसी के दैनिक 'आज' से हुआ। वहाँ अपने समय के पत्रकारिता के दिग्गजों के सम्पर्क में आने से तथा स्वतः प्रयास से उनकी पत्रकारिता बहुत निखरी। आप फिर 'आर्यावर्त' के उप-संपादक, वित्तीय संपादक, रिपोर्टर लगभग 8 माह तक रहे। फिर दिल्ली आ गए और सन् 1945 से 1970 तक हिन्दी समाचार पत्र 'हिन्दुस्तान' के विशेष संवाददाता, विशेष प्रतिनिधि के रूप में कार्यरत रहे। सन् 1970 से 1975 तक इसी दैनिक के संयुक्त सम्पादक रहे और सन् 1976 में इसके संपादक बने और अनेक वर्ष तक रहे और पत्रकारिता जगत में अपने अमिट हस्ताक्षर तथा प्रशंसनीय स्थान स्थापित किया।

आपके जीवन का काफ़ी अरसा विश्वयात्रा में एक पत्रकार के रूप में व्यतीत हुआ। कई महीनों तक आपने लाओस, कंबोडिया, वियतनाम, सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया, जापान, फिलीपींस, कोरिया आदि देशों का भ्रमण किया तथा उनसे सम्बंधित लेख लिखे जो समाचार पत्रों/पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इस प्रकार कुल मिलाकर 120 देशों का भ्रमण पहले ही कर कर चुके थे और तब से अब तक तथा आगे भी यह भ्रमण प्रक्रिया जारी है अतः इसे संख्यावद्ध करना त्रुटिपूर्ण रहेगा।

आप गांधी हत्याकांड मुकदमें के विशेष सम्वाददाता रहे। संविधान निर्मात्री सभा की, ताशकंद भारत-पाक शिखरवार्ता के तत्कालीन प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री तथा पाक राष्ट्रपति आयूब खान के मध्य, कांग्रेस के खुले अधिवेशनों तथा सभी महासमिति की बैठकों की रिपोर्टिंग, विश्व ओलियंपिकों तथा एशियाई खेलों की रिपोर्टिंग की। तीन बार आप 'प्रेस एसोसिएशन ऑफ इण्डिया' के अध्यक्ष बने। लोकसभा में चौथी और पांचवी के सदस्य रहे, बाद भी रहे और अब दशमी लोकसभा के लिए आप अपने जन्म स्थान दुर्ग से चुनकर आये हैं। कांग्रेस पार्टी के मुख्य प्रवक्ता प्रेस के लिये यही हैं। छत्तीसगढ़ क्षेत्र की समस्याओं के समाधान में आप संघर्षरत हैं। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आपकी विशेष रुचि है।

Dr. Sant Singh
M. Sc., Ph. D. (London)
Rtd. Senior Prof. of Agricultural
Chemistry & Head, Dept. of Soil Sci.
Agril. Chemistry, B. H. U. etc

"Sant Niwas"
29, Sankat Mochan Colony,
Varanasi - 221005
Dated : 2229-08-1994

प्रिय डा० दिलावर सिंह जी,
सस्नेह नमस्कार।

दिल्ली से लौटते समय मुझे आठ नौ दिन कानपुर रुक जाना पड़ा, जिससे आपकी पुस्तक- सामग्री और शीघ्र न भेज सका। हो सकता है कि मुझसे संबंधित सामग्री कुछ बड़ी दीखे लेकिन उसमें उद्धृत एक दर्जन से अधिक विशिष्ट सम्बन्धियों के बारे में संक्षिप्त उल्लेख भी आवश्यक लगा क्योंकि कुरमी समाज का मस्तक ऊँचा करने वाले लोगों में वे प्रमुख स्थान रखते हैं।

आशा है कि आप सपरिवार स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं। सभी आत्मीय जनों को सस्नेह नमस्कार कहें।

शुभेच्छु आपके,
संतसिंह

(19) प्रोफेसर डा० संत सिंह

एम० एस-सी० (बी० एच० यू०), पी-एच० डी० (लंदन)

अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, अध्यक्ष एवं डीन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

प्रोफेसर संतसिंह वाराणसी जिले के सात हजार आबादी वाले मशहूर ग्राम **शाहंशाहपुर के कुलीन एवं संभ्रात जयसवार उपजाति के कुरमी किसान स्व० बा० जयनारायण सिंह के द्वितीय पुत्र हैं** । आपके पिताजी ही नहीं बल्कि पितामह **बा० रूपनारायण सिंह** जी भी कई दशकों तक **ग्राम सभापति (मुखिया) एवं सरपंच** रहे तथा दोनों लोग अपनी न्यायप्रियता धर्मनिष्ठा एवं कार्यकुशलता की बदौलत पूरे क्षेत्र में तथाकथित अगड़ी जातियों में भी बड़ी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते रहे । आपके पिताजी ने गाँव में ही **महामना मालवीय स्कूल** की स्थापना की जो अब **इंटर तक** की शिक्षा दे रहा है । तथा आपके चाचा **बा० जगतनारायण सिंह** जी ने **कन्या-स्कूल** की स्थापना की जो अब क्षेत्र के विशिष्ट स्कूलों में से एक है ।

डा० संतसिंह की स्कूल एवं कालेज की शिक्षायें **काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई** । उस समय के **भारत प्रसिद्ध सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल, वाराणसी** में आपकी स्कूली शिक्षा हुई । वहाँ की ऊपर की कक्षाओं में आपको **आदर्श बोर्डर स्कालरशिप** भी मिला था । जिले को अंतर्स्कूली वादविवाद एवं लेख प्रतियोगिताओं में आप खूब भाग लेते रहे तथा प्रथम आने के पारितोषिक एवं स्कूल के लिये शील्ड भी ले आये थे । हाई स्कूल से एम. एस-सी. तक उच्च श्रेणियों में उत्तीर्ण होकर आपने पहले 2 वर्षों तक **आगरा विश्वविद्यालय** में अध्यापन कार्य किया। सन् 1947 में आपकी नियुक्ति **काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर** के तौर पर हुई । इस **विश्वविद्यालय** में एक शिक्षक की हैसियत से नियुक्ति पाने वाले आप प्रथम सजातीय बंधु हैं और वहां भी तत्कालीन कुलपति **डा. सर्पपल्ली राधाकृष्णन** ऐसे **विश्वविख्यात शिक्षाविद** के हाथों । यहीं से आप **इंग्लैंड** गये और 2 वर्षों तक अनुसंधान कर **लंदन विश्वविद्यालय** से **डाक्टरेट** की उपाधि हासिल की । सन् 1955 में तत्कालीन कुलपति **सर सी. पी. रामास्वामी अइयर** ने आपको **रीडर** बनाया, तीन वर्षों बाद, आपके अनुसंधानों से प्रभावित होकर, **बि. बि.** ने आपको चार विशेष (स्पेशल) **बढ़ोत्तरी (इन्क्रीमेंट्स)** दिये, तब तक आपके विभाग में प्रोफेसर की पोस्ट नहीं थी । केन्द्रीय सरकार ने नई पोस्ट की स्पेशल तौर से स्वीकृति प्रदान की, जिसके फलस्वरूप 1966 में आप प्रोफेसर नियुक्ति हुये, ग्रेड में चार बढ़ोत्तरी के साथ तथा 1972 में **भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मंत्री एवं तत्कालीन कुलपति डा. के. एल. श्रीमाली** ने आपके कार्यों की सराहना-स्वरूप वरिष्ठ प्रोफेसर (सीनियर प्रोफेसर) बनाया। कृषि कालेज में जहाँ पहले कुछ नहीं था वहीं आपने मृदाविज्ञान एवं रसायन शास्त्र नामक नये विभाग की परिकल्पना कर उसको केवल जन्म ही नहीं दिया, बल्कि उसकी संरचना की, उसका विस्तार कर उसे संगठित एवं सुदृढ़ किया तथा उसे देश के उच्चकोटि के विभागों की श्रेणी में ले आने में सफल रहे जिसका सुफल यह है कि आज उसी विभाग में रीडर्स तथा लेक्चरर्स के अतिरिक्त सात प्रोफेसर्स कार्यरत हैं । **आप इस विभाग के संस्थापक ही नहीं बल्कि अवकाश प्राप्त करने तक, पच्चीस वर्षों तक, निरंतर अध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहे । यही नहीं कृषि कालेज के कई बार, कभी-कभी महीनों तक, प्रिंसिपल की हैसियत से कार्य करते रहे । अपनी डीन शिप के दौरान सन् 1973 में कृषि संकाय को आपने कृषि विज्ञान संस्थान के रूप में प्रस्तावित एवं संस्थापित कराया तथा इसे एक लघु कृषि बि. बि. की श्रेणी में उठाने में सफल हो गये । अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद भी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली ने आपको इमरिटस साइंटिस्ट बनाया जिस हैसियत से आप कई वर्षों तक कार्य करते रहे ।**

शासकीय व्यस्तता के बावजूद डा. साहेब अपने अनुसंधान कार्यों में सतत लगे रहे जिसके फलस्वरूप आपके 100 से ऊपर अच्छे शोध-पत्र देश एवं विदेश की शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं एवं 30 से ऊपर छात्रों को आपके निर्देशन में पी-एच. डी. की डिग्री मिल चुकी है । यही नहीं छः से अधिक उच्च कोटि की वैज्ञानिक पुस्तकें लिखने का भी श्रेय आपको प्राप्त है । अन्य विश्वविद्यालयों के कई सौ पी-एच. डी. शोध-प्रबंधों (थीसिस) को जाँचने

एवं उनके प्रस्तुत कर्त्ताओं की मौखिक परीक्षायें लेने का भी कार्य आपने संपन्न किया है ।

आपकी कुछ अन्य विशेष उपलब्धियों का जिक्र कर देना यहाँ आवश्यक है । भारत, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, उत्तर तथा दक्षिणी अमेरिका, चीन, रूस, आदि अनेक देशों एवं महाद्वीपों में बहुत दूर-दूर तक फैली एवं विभिन्न नामों से पुकारी जाने वाली काले रंग की मृदाओं के बनने एवं उनके कालेपन के कारणों पर सैकड़ों वैज्ञानिक अपने-अपने देशों में अनुसंधान कार्यों में कई दशकों से जुटे हुये थे लेकिन उनके लिये ये रहस्य ही बने रह गये थे । डा. साहब अपने गहन अनुसंधानों से पहली बार इस रहस्य का पता पाने में सफल हुये तथा प्रयोगशाला में उन्हें बनाकर निश्चयपूर्वक सिद्ध कर सके कि वे कैसे बनीं और क्या हैं । इन काली मृदाओं के काले बनने एवं उनके कारणों पर आपके सिद्धान्त को संसार भर के वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया । भारतीय मृदाओं में जैवांश पर भी कार्य करने वाले आप प्रथम एवं अग्रणी वैज्ञानिक हैं । आपके विशिष्ट अनुसंधानों से संबन्धित शोध-पत्र विदेशों की उच्च कोटि की पत्रिकाओं में छपे तथा उनका उद्धरण विदेशी लेखकों की पुस्तकों में भी सविस्तार हुआ । उनसे प्रभावित होकर संसार की सर्वश्रेष्ठ उपाधि 'नोबेल प्राइज' देने वाली 'स्वीडिश अकेडेमी आफ साइंसेज' के कई सदस्यों ने हस्ताक्षर कर आपके यहाँ पत्र लिखा कि नोबेल प्राइज़ हेतु वे अपने अनुसंधानों के बारे में उनके द्वारा फार्म के अनुसार सूचना भेजने का अनुरोध किया । ऐसा पत्र स्वयं में एक बड़ा सम्मान है जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ही नहीं बल्कि प्रदेश एवं देश के अन्य विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों, आदि के किसी ज्ञात विद्वान या वैज्ञानिक के पास अब तक नहीं आया है ।

आपका दूसरा व्यावहारिक अनुसंधान भी बहुत अभूतपूर्व एवं विलक्षणता पूर्ण है । सन् 1971 के पूर्व तक 'पाइराइट्रीस' नामक खनिज की ऊसर भूमि के सुधार में उपयोगिता के बारे में किसी को ज्ञात नहीं था । सर्वप्रथम आपने इसकी उपयोगिता की कल्पना की, प्रयोगशाला में पहले प्रयोग किया, फिर किसानों के ऊसर खेतों पर अपने प्रयोगों द्वारा पहली बार सिद्ध कर दिया कि सैकड़ों वर्षों से ऊसर रही भूमि केवल पंद्रह दिनों में किस प्रकार सुधार कर उपजाऊ बन जाती है । आपके इस अनुसंधान को देश के अन्य कई कृषि विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों ने अपनाया, प्रयोग किया जिसके फलस्वरूप अब तक हज़ारों एकड़ ऊसर भूमि का सुधार हो चुका है तथा कई दर्जन विद्यार्थियों को इस पर कार्य कर डाक्टरेट की उपाधि मिल चुकी है । अब तक उत्तर प्रदेश, बिहार तथा अन्य प्रदेशों की सरकारों ने पाइराइट्स को अपना लिया है तथा प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों की पाइराइट्स ऊसर भूमि के सुधार हेतु किसानों के खेतों तक पहुँचा रहे हैं। आपके पाइराइट्स पर अनुसंधानों से प्रभावित होकर आस्ट्रेलिया में होने वाली एक अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठी में विचार प्रस्तुत करने के लिये आपको आमन्त्रित किया गया वहाँ दर्जनों राष्ट्रों के वैज्ञानिकों ने आपसे विचार विमर्श किया और आपके कार्यों की बहुत सराहना हुई ।

आप उत्तर प्रदेश सरकार के योजना आयोग के पाँच वर्षों तक माननीय सदस्य रह चुके हैं । राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक गोष्ठियों में आप प्रायः अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष की हैसियत से कार्य करते रहे है । आप कई विश्वविद्यालयों की कार्यकारिणी समिति के माननीय सदस्य रह चुके हैं । देश के अधिकांश कृषि विश्वविद्यालयों, संस्थानों, संघ लोकसेवा आयोग (नई दिल्ली), कई प्रान्तीय लोक सेवा आयोगों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (नई दिल्ली) भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद एवं ए. एस. आर. बी. (नई दिल्ली), शिक्षा परिषदों, चयन समितियों आदि के सम्मानित विशेषज्ञ या सदस्य के रूप में कार्य कर चुके हैं । आपके शिष्य देश के प्रायः सभी तथा अनेक विदेशी कृषि वि. विद्यालयों एवं संस्थानों में अच्छे-अच्छे पदों पर सम्मानपूर्वक कार्यरत हैं । भारत पोलैंड सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अन्तर्गत आप पोलैंड के विभिन्न स्थानों में भ्रमण कर व्याख्यानों एवं विचारों का आदान-प्रदान कर चुके हैं । आप शतआयु हों यही कुर्मी समाज की प्रार्थना है ।

प्रोफेसर संतसिंह का परिवार

आपके परिवार के अन्य महत्वपूर्ण सदस्यों के बारे में संक्षेप में चर्चा की जा रही है । आपके बड़े, पुत्र डा. आनंद प्रकाश सिंह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही रीडर के पद पर कार्यरत हैं वे कामनवेल्थ पोस्ट डाक्टोरल फेलोशिप

पर दो वर्षों तक एडीलेड (आस्ट्रेलिया) में अनुसंधान कार्य कर चुके हैं । कम अवस्था में ही उनकी अच्छे वैज्ञानिकों के तौर पर ख्याति हो चुकी है । विद्यार्थी जीवन में ही कई कक्षाओं में प्रथम आने के फलस्वरूप कई स्वर्णपदक पा चुके थे ।

आपके दूसरे पुत्र डा. रवि प्रकाश सिंह भी कक्षाओं में प्रथम स्थान पाने के फलस्वरूप स्वर्णपदक प्राप्त कर चुके हैं । वे सिडनी (आस्ट्रेलिया) विश्वविद्यालय के पी-एच. डी. हैं और इस समय संसार प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय संस्थान सिमिट (मैक्सिको) में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक हैं । कुछ ही वर्षों में उन्होंने बहुत ऊँची ख्याति अर्जित कर ली है । तथा भविष्य में उनसे बड़ी-बड़ी आशायें हैं अस्तु उनके बारे में अलग से विवरण दिया जा रहा है । आपके तीसरे पुत्र श्री विवेक कुमार सिंह बी. टेक, एम. बी. ए. (बी. एच. यू.) हैं तथा इस समय उत्तर प्रदेश सरकार में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद में प्रथम ग्रेड के वैज्ञानिक हैं । तथा भारतीय गन्ना अनुसंधान लखनऊ में कार्यरत हैं । विद्यार्थी जीवन में वे भी कई स्वर्ण पदकों के विजेता रह चुके हैं ।

आपके बड़े दामाद श्री बी. एम. के. सिन्हा बी. टेक. (सिविल) बिहार सरकार में एक्जीक्यूटिव इंजीनियर हैं तथा इस समय नगर महापालिका (पटना) में कार्यरत हैं । दूसरे दामाद डा. अशोक कुमार कटियार कानपुर के प्रमुख चिकित्सकों में से हैं । तथा अपने निजी चिकित्सालय के संचालक हैं । तीसरे दामाद श्री आलोक कुमार वर्मा एम. टेक. (सिविल) भारतीय रेलवे सर्विस में उच्चपदस्थ अधिकारी हैं । आपकी तीनों पुत्रियां श्रीमती किरण कुमारी सिंह, मृदुलता कटियार एवं आभारानी वर्मा उच्च शिक्षा प्राप्त विज्ञान की स्नातक एवं उत्तर स्नातक (एम. एस-सी.) हैं ।

डा० साहेब के बड़े भाई प्रोफेसर रामशंकर सिंह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अवकाश प्राप्त प्रोफेसर हैं । उनके २ लड़के डा० अविनाश चंद्र सिंह, डॉ० अम्बरीष सिंह एवं एक दामाद डा० अजय वर्मा कैनेडा तथा अमेरिका में उच्च पदों पर कार्यरत हैं तथा सबसे छोटे पुत्र श्री अश्विनीकुमार सिंह एन. टी. पी. सी. में फाइनेंस आफीसर हैं ।

डा० संत सिंह के उनसे छोटे चार भाई हैं - श्री महंत सिंह, स्व० श्री मान सिंह, श्री आत्मासिंह तथा सबसे छोटे श्री नन्द सिंह । इन भाइयों में श्री महंत सिंह गांव की सम्मिलित पैत्रिक सम्पत्ति की देखभाल कर रहे हैं । इनके चार दामाद हैं, क्रमशः डा० नरेन्द्रसिंह, हरियाणा कृषि वि. वि. (बिहार), दूसरे दामाद डा. महेन्द्र बहादुर सिंह काशी हिन्दू वि. वि. वाराणसी में भूगोल में, तीसरे दामाद डा० राम आसरे सिंह डा० सर हरिसिंह वि० वि० सागर (म. प्र.) में फिजिक्स में तथा चौथे दामाद डा० रामचन्द्र सिंह राजेन्द्र कृषि वि. वि. (भागलपुर) में रीडर हैं । पुत्र श्री ध्यानपाल सिंह वकील हैं घर का काम देखते हैं वे बंबई के पूर्व मेयर श्री रामचरित्र रामभजन सिंह के दामाद हैं ।

दूसरे छोटे भाई स्व० श्रीमानसिंह स्वयं बम्बई की एक दवा बनाने वाली कम्पनी के चीफ केमिस्ट थे उनकी दो पुत्रियां क्रमशः केमिस्ट्री और फिजिक्स में डाक्टरेट हैं । बेटा दिव्य प्रकाश सिंह भूगर्भ शास्त्र में पी-एच. डी कर रहा है । तीसरे छोटे भाई श्री आत्मासिंह ने जे. के. मिल्स कोटा में उच्च पदों पर रहकर अवकाश ग्रहण किया। उनके तीन सुशिक्षित पुत्र हैं सर्वश्री रविकुमार सिंह, आलोक कुमार सिंह, संजय कुमार सिंह तथा सब अच्छे स्थानों पर कार्यरत हैं ।

आपके सबसे छोटे भाई श्री नन्द सिंह, बी० टेक (बी. एच. यू.) राउरकेला स्टील प्लांट तथा बाद में बोकारों में डिप्टी डाइरेक्टर (अनुसंधान) पद से अवकाश ग्रहण कर अब नौएडा में स्थायी निवास में रह रहे हैं । श्री नन्द सिंह इस ग्रंथ के लेखक के साढू हैं । इनके एक मात्र पुत्र श्री राजेश सिंह बी० टेक० (खड़गपुर) तथा एम. बी. एम. (अहमदाबाद) एक अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी में कार्यरत हैं । दो पुत्रियां हैं, श्रीमती रश्मीसिंह बी. टेक. और उनके पति श्री धनन्जय जोशी, मूल अमरावती (महाराष्ट्र) निवासी, दोनों नोएडा में कार्यरत हैं । छोटी बेटी कु० शालिनीसिंह बी० टेक० (खड़गपुर) एम० बी० एम० (बंगलौर) बम्बई में कार्यरत हैं । पुत्रवधू श्रीमती रुचिसिंह बी. टेक. (लखनऊ) सुपुत्री श्री गोपालदास, एक्जीक्यूटिव इंजीनियर (लखनऊ) की हैं तथा नौएडा की एक कम्पनी में कार्यरत हैं । पत्नी श्रीमती रमासिंह हैं ।

समाज के इस परमयशस्वी एवं शिक्षाविद सपूत का व्यक्तिगत जीवन भी आदर्शमय है । वे स्वयं में एक संस्था

है । आप प्रसिद्ध योगी लहरी महाशय की शिष्य परंपरा वाले एक सिद्धयोगिराज द्वारा **'सहजयोग'** में दीक्षित हैं । आपके संपर्क में आने वाले लोगों को आपसे बराबर उच्च कोटि की प्रेरणायें मिलती रहती हैं । आपके दीर्घायु, स्वस्थ एवं सुखी जीवन की हम कामना करते हैं ।

(20) **डा० रवि प्रकाश सिंह,** एम. एस-सी. (एजी.), पी-एच. डी. (सिडनी)
वैज्ञानिक-गेहूँ कार्यक्रम सिमिट (CIMMYT)
लिस्बोआ-27, एप्डो पोस्टल 6-641 06600 मेक्सिको डी. एफ., मेक्सिको

डा. रवि प्रकाश सिंह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित कृषि विज्ञान संस्थान के अवकाश प्राप्त अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति लब्ध मृदा वैज्ञानिक **प्रोफेसर सन्त सिंह** के द्वितीय पुत्र हैं । आपने स्कूल की शिक्षा केन्द्रीय विद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त की तथा वहाँ अत्यन्त मेधावी, परिश्रमी एवं शान्त स्वभाव के छात्र के रूप में अपने सहपाठियों एवं अध्यापकों के मध्य जाने जाते रहे । तत्पश्चात् आपने बी० एस-सी. (कृषि), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया तथा प्रत्येक वर्ष हरेक विषय में सर्वोच्च अंक प्राप्त करते हुए एक नया कीर्तिमान बनाया । इसके लिये आपको विश्वविद्यालय **स्वर्णपदक वैजयन्ती** प्रदान की गई । आपने **भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली** द्वारा आयोजित अखिल भारतीय लिखित परीक्षा में भाग लिया तथा आगे अध्ययन के लिये केन्द्रीय छात्रवृत्ति प्राप्त की । तत्पश्चात आपने एम. एस-सी (कृषि) हेतु आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग में प्रवेश लिया तथा पुनः प्रत्येक पेपर में सर्वोच्च अंक प्राप्त करते हुए **पूर्ण संकाय** (जिसमें दस विभाग हैं) में **प्रथम स्थान** प्राप्त किया । इसके लिये आपको **विश्वविद्यालय स्वर्णपदक एवं बिनानी स्वर्ण पदक** से सम्मानित किया गया ।

इस बीच आपको पी-एच. डी. के लिये **आस्ट्रेलिया** के दो विश्वविद्यालयों **एडीलेड** एवं **सिडनी** से छात्रवृत्ति मिल गई । आपने **सिडनी** में पी-एच. डी. करने का निश्चय किया तथा वहाँ प्रवेश लेकर शोध-कार्य प्रारंभ कर दिया। वहाँ आपने **अग्रणी गेहूँ रोग वैज्ञानिक डा. मैकइनटॉश** के निदेशन में अति उच्च श्रेणी का कार्य किया तथा गेहूँ की **मोर्चा रोग (रस्ट)** प्रतिरोध क्षमता के बारे में नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया एवं पी-एच. डी. डिग्री प्राप्त की। सिडनी में कार्य प्रारंभ करने के कुछ माह पश्चात ही **डा. रवि** ने वहाँ अति प्रचलित गेहूँ की एक किस्म के **'जीन'** पर वहाँ के वैज्ञानिकों की मान्यता पर अपनी असहमति प्रकट की । उनकी इस असहमति पर वहाँ के एक लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक ने टिप्पणी की कि **सारा आस्ट्रेलिया इस 'जीन' के बारे में जानता है और तुम्हारी धारणा गलत है** । डा. रवि ने तत्संबन्धी अपने प्रायोगिक निष्कर्ष उन्हें दिये तो करीब दो सप्ताह बाद उन वैज्ञानिक महोदय ने स्वयं आकर कहा **"रवि जो तुमने पाया है । वह सही है और अब तक की हम लोगों की मान्यतायें गलत थी ।"** इस प्रकार अत्यल्प समय में ही **डा. रवि ने वहाँ अपनी अद्भुत वैज्ञानिक प्रतिभा का परिचय देकर सबको प्रभावित किया ।**

उनके शोध-कार्य से प्रभावित होकर अर्न्तराष्ट्रीय संस्थान **'सिमिट'** (CIMMYT) मेक्सिको ने उन्हें अपने यहाँ उच्च अध्ययन हेतु दो वर्षों के लिए आमंत्रित किया । स्मरण रहे कि **'सिमिट'** ही वह संस्थान है जहाँ गेहूँ की बौनी प्रजाति का विकास हुआ था तथा उस कार्य के लिये संस्थान के **संस्थापक डा. बोर्लाग** को **नोबेल पुरस्कार** प्राप्त हुआ था । **डा. रवि प्रकाश सिंह** को **डा. बोर्लाग** की ही प्रयोगशाला में उनके सान्निध्य में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ जिसका उन्होंने पूरा सदुपयोग किया । **'सिमिट'** में दो वर्षो तक उच्च स्तरीय शोध कार्य पूरा होने के पूर्व ही उन्हें **सिडनी विश्वविद्यालय** ने अपने यहाँ प्रवक्ता पद पर **स्थायी नियुक्ति देकर आमंत्रित किया** । किन्तु सिमिट ने उनसे सिमिट छोड़कर न जाने का आग्रह करते हुए उन्हें अपने **यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक के अति सम्मानित पद पर नियुक्ति प्रदान की** । **अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक पद पर इतनी कम उम्र में नियुक्ति पाने वाले वे एशिया के प्रथम वैज्ञानिक हैं ।**

डा. रवि तब से लगातार सिमिट में कार्यरत हैं तथा वर्तमान में विश्व में अपने विषय के अग्रणी वैज्ञानिकों में से हैं । आपके द्वारा किये गये गेहूँ के रस्ट रोग सम्बन्धी शोध कार्यों को संपूर्ण विश्व में मान्यता मिली है । आपको अनेक देशों यथा अमेरिका, ब्राजील, अर्जेन्टीना, आस्ट्रेलिया, इटली, जापान, चीन, चिली, भारत, नेपाल तथा यूरोप एवं अफ्रीका के विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों ने व्याख्यान हेतु आमंत्रित किया तथा आपके अनुसंधानों को सराहा । इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में अन्तर्राष्ट्रीय कान्फरेंसों में आपने आमंत्रित व्याख्यान दिये हैं । आपके शोध-कार्यों को मिली अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति से प्रभावित होकर अमेरिका के प्रमुख समाचार पत्र 'वाल स्ट्रीट पत्रिका' तथा 'साइंस' मैग्नीज ने उन्हें प्रमुखता से प्रकाशित किया । यही नहीं, अमेरिका से प्रकाशित विश्व की उक्त विषय की प्रमुख शोध-पत्रिका 'फाइटोपैथोलॉजी' ने उन्हें अपने संपादक मण्डल में सम्मिलित किया है । यह सम्मान पाने वाले वे संभवतः दूसरे भारतीय वैज्ञानिक है ।

इतनी कम अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करने वाले डा. रवि प्रकाश सिंह को सम्पूर्ण भारत को गर्व है तथा विश्वास है कि भविष्य में वे देश का नाम उज्ज्वल करेंगे । डा० रवि ने सिद्ध कर दिया है कि कुरमी जन श्रेष्ठ कृषक ही नहीं श्रेष्ठ कृषि वैज्ञानिक भी बन सकते हैं ।

(21) राम प्रताप पटेल को 'विक्रम पुरुस्कार'

भोपाल के गांधी चिकित्सा महाविद्यालय में 8 सितम्बर 1994 को प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह की अध्यक्षता एवं राज्यपाल श्री मोहम्मद शफी कुरेशी के मुख्य अतिथित्व में मध्यप्रदेश शासन के सर्वोच्च खेल-सम्मान 'विक्रम पुरस्कार' से कुर्मी युवक खिलाड़ी, राम प्रताप पटेल को सम्मानित किया गया ।

श्री राम प्रताप पटेल ने सन् 1988 में एथलेटिक्स में ओपन, मध्य प्रदेश, मध्य प्रदेश पुलिस एवं अखिल भारतीय पुलिस की खेल प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन से नाम कमाना प्रारम्भ किया । 1991 में गुजरात में इन्टर स्टेट राष्ट्रीय प्रतियोग्यता में 800 मीटर दौड़ में प्रथम स्थान प्राप्त किया । इसी वर्ष आई. टी. सी. (Indian Tobacco Company द्वारा प्रत्याभूतित) अन्तर्राष्ट्रीय परमिट मीट में भारतीय टीम का प्रतिनिधित्व किया । 1993 में श्री राम प्रताप पटेल ने यू० एस० ए० वर्ल्ड पुलिस एवं फायर गेम्स (U.S.A. World Police & Fire Games) में कास्य, रजत एवं स्वर्ण पदक विभिन्न दौड़ों में जीते । अभी तक श्री पटेल 7 स्वर्ण, 5 रजत, 1 कास्य पदक जीत चुके हैं । खेल जगत के उदीयमान इस कूर्मि रत्न से अनेक नये कीर्तिमान स्थापित किये जाने की आशा है ।

(22) स्व० श्री रामेश्वर गुरु जी

श्री रामेश्वर जी का जन्म ग्राम, पो० टेटिया, खड़कपुर अंचल के मुंगेर जिला (बिहार) के एक सम्पन्न जयसवार कुर्मी कृषक परिवार में हुआ था । समाज सेवा, विशेष करके स्वजातीय गरीब तथा निर्धन मेधावी छात्रों को हर प्रकार का सहयोग प्रदान कर, उनके पूर्ण शिक्षित होने और जीवन-संघर्ष में प्रेरित कर आगे बढ़ाने में वे सदैव तत्पर रहे । यहाँ तक कि गरीब छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं, की पूर्ति के लिए वे अपनी निज़ी वस्तुएँ भी बेचकर उसकी समय से मदद करने में न चूकते थे । लाभार्थी तथा लाभान्वित विद्यार्थीगण उन्हें स्नेह एवं आदर से 'गुरुजी' नाम से सम्बोधित करते थे । फलतः वे श्री रामेश्वर गुरुजी के नाम से दूर-दूर तक विख्यात हो गए । गुरु जी जानते थे कि कुर्मी जाति की उन्नति और समृद्ध होने की कुंजी शिक्षा में निहित है । श्री रामेश्वर गुरुजी ने जीवनांत तक कुर्मी समाज के शिक्षित नवयुवकों की संख्या बढ़ाकर, उन्हें आगे लाने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । ऐसी महान विभूतियों को शत शत नमन । (प्रस्तुति : श्री महेन्द्र नारायण सिंह, अधिवक्ता मुंगेर कोर्ट, ग्राम, पो० भदोरा, खड़कपुर, मुंगेर, बिहार) ।

(23) राष्ट्रपति द्वारा "वीर चक्र" से अलंकृत



कैप्टन आलोक सिंह (वर्तमान में मेजर)
आई० सी० 47422,
12वीं वटालियन, जाट रेजीमेन्ट
भारतीय सेना

ये तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम आर० वी० वेंकटरमन द्वारा 20 अप्रैल 1991 को **अशोक हॉल, राष्ट्रपति भवन** में, भव्य रक्षा अलंकरण समारोह में **'वीर चक्र'** से अलंकृत किए गए। इनके माता-पिता भी इस समारोह में आमंत्रित थे।

जीवन वृत्त

17 दिसम्बर 1965 को दिल्ली में जन्में। अपने माता-पिता, **श्रीमती गीता जयसवार एवं डा० दिलावर सिंह जयसवार**, स्थायी निवासी बी-6/57 सफदरजंग एन्क्लेव नई दिल्ली 110029, दूरभाष 604382, के द्वितीय पुत्र। बड़े भाई **संजय सिंह**, वरिष्ठ इंजीनियर अमेरिका में, छोटी बहिन, **श्रीमती सुनीता सिंह**, न्यूक्लियर इंजीनियर अमेरिका में बहनोई **डा० सतीश नारायण कामत** वहीं पर कैमिकल इंजीनियरिंग कम्पनी में वरिष्ठ वैज्ञानिक। पिता मूल निवासी पीलीभीत (उ. प्र.) तथा माता **कलकत्ता के स्व० लक्ष्मी नारायण सिंह** की सुपुत्री।

सन् 1986 में दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्तर्गत **श्री अरविन्द कालेज** से बी. काम. उत्तीर्ण करते-करते उसी वर्ष **संघ लोक सेवा आयोग** द्वारा संचालित **संयुक्त रक्षा सेवाओं की प्रतियोग्यता** में उनका **चयन भारतीय सैन्य अकाडेमी**, देहरादून में प्रशिक्षण के लिए हुआ। 19 दिसम्बर 1987 को **भारतीय स्थानी सेना में कमीशन प्राप्त करके सैकन्ड लेफ्टिनेन्ट पद** से कार्य शुरु किया। **भारतीय शान्ति सेना** (Indian Peace Keeping Force) के अन्तर्गत इन्हें श्रीलंका में तैनात किया गया। वहां कार्य के दौरान विद्रोहियों का डटकर मुकाबला करते हुए **उत्कृष्ट साहस, अतिकुशल नेतृत्व और असाधारण वीरता तथा शौर्य का प्रर्दशन करने के लिये तत्कालीन महामहिम आर० बी० बैंकटरमन** ने 20 अप्रैल 1991 **को अशोक हाल, राष्ट्रपति भवन, दिल्ली, में भव्य रक्षा अलंकरण समारोह में 'वीर चक्र' से अलंकृत किया गया।** इस अलंकरण का ब्यौरा भारत के राजपत्र दिनांक 27 अप्रैल 1991 के अंक में प्रकाशित हुआ, जोकि नीचे उद्घृत किया जा रहा है। इनका विवाह 4 दिसम्बर 1992 को पटना विश्वविद्यालय के वी० एन० कालिज के गणित विभाग के प्रोफेसर तथा पूर्व अध्यक्ष, **प्रोफेसर लालजी प्रसाद** की सुपुत्री, **अंजूसिंह** एम० ए० (इतिहास) से दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इनको 3 मार्च 1994 को पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ, जिसका नाम **अंगद सिंह पटेल** रखा गया।

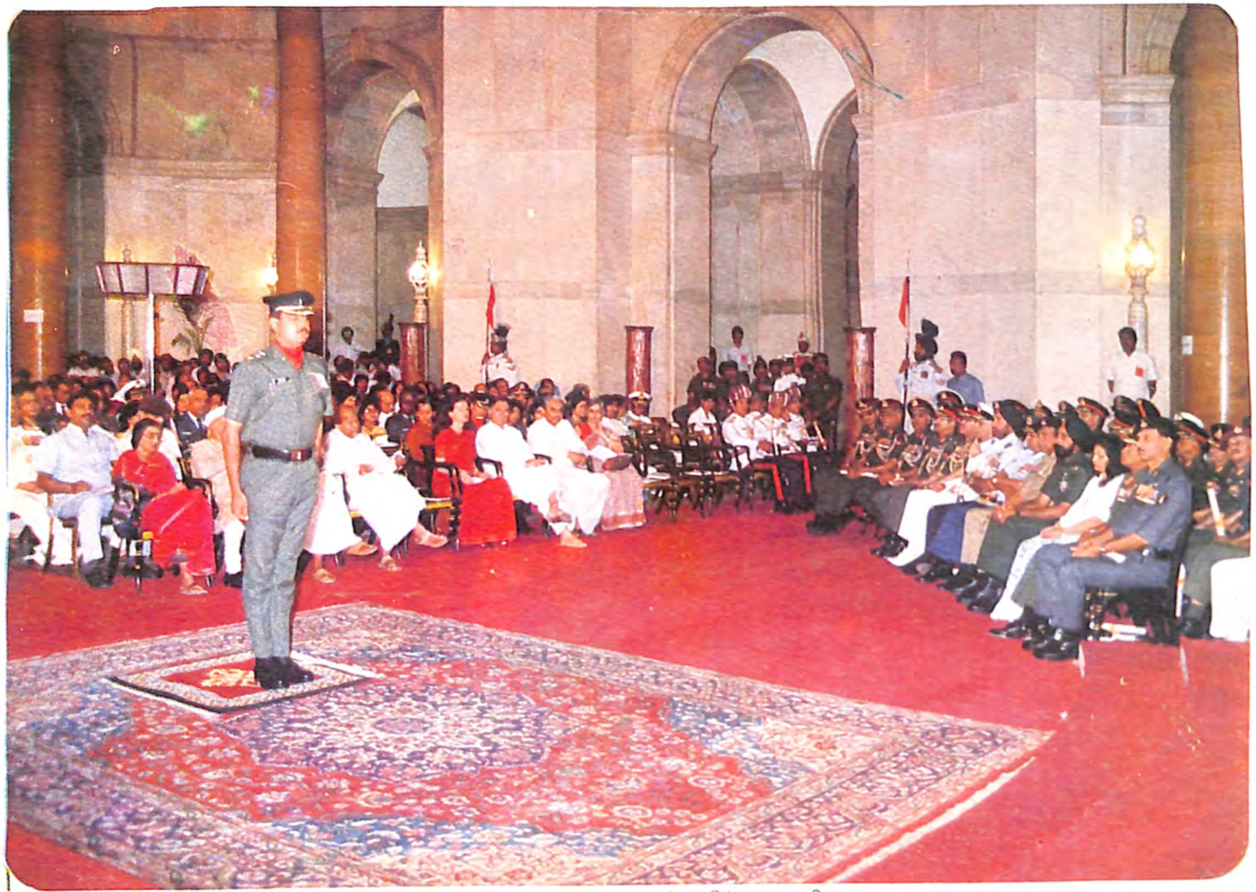
भारत का राजपत्र, अंक दिनांक 27 अप्रैल सन् 1991 से साभार उद्धृत

कैप्टन आलोक सिंह (आई० सी० 47422) जाट रेजीमेन्ट **'वीर चक्र'** पुरस्कार की प्रभावी तिथि : 09 सितम्बर 1989

12वीं जाट रेजिमेन्ट के कम्पनी कमाण्डर, **कैप्टन आलोक सिंह** ने अपनी कम्पनी सहित 8 और 9 सितम्बर, 1989 को निषेधादेश योजना के एक भाग के रूप में श्रीलंका में **अनन्तार पुलियान कुलम** और **परिया पुयारुलन कुलम** में घात लगाकर हमला किया। 09 सितम्बर 1989 को विद्रोहियों के साथ हुई मुठभेड़ के परिणामस्वरूप, एक महत्वपूर्ण **एरिया लीडर** और **विद्रोही संगठन के अर्थ-प्रबंध सदस्य** को बन्दी बना लिया गया और 22 विद्रोहियों को मौत के घाट उतार दिया गया। हमारे सैन्य दलों को कोई नुकसान पहुँचाए बिना 27 केडरों को हताहत कर दिया गया। मुठभेड़



भारतीय सैन्य अकादमी देहरादून में 19 दिसम्बर 1987 को से. ले. आलोक सिंह, भारतीय सेना में कमीशन प्राप्त करने के उपरान्त अपने माता-पिता, भाई-बहिन के साथ



अशोक हाल, राष्ट्रपति भवन में कैप्टन, आलोक सिंह, का 'वीर चक्र' अलंकरण समारोह का भव्य दृश्य राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, पूर्व प्रधानमंत्री, सेना के तीनों अध्यक्षों आदि की उपस्थिति में सम्पन्न होते हुए

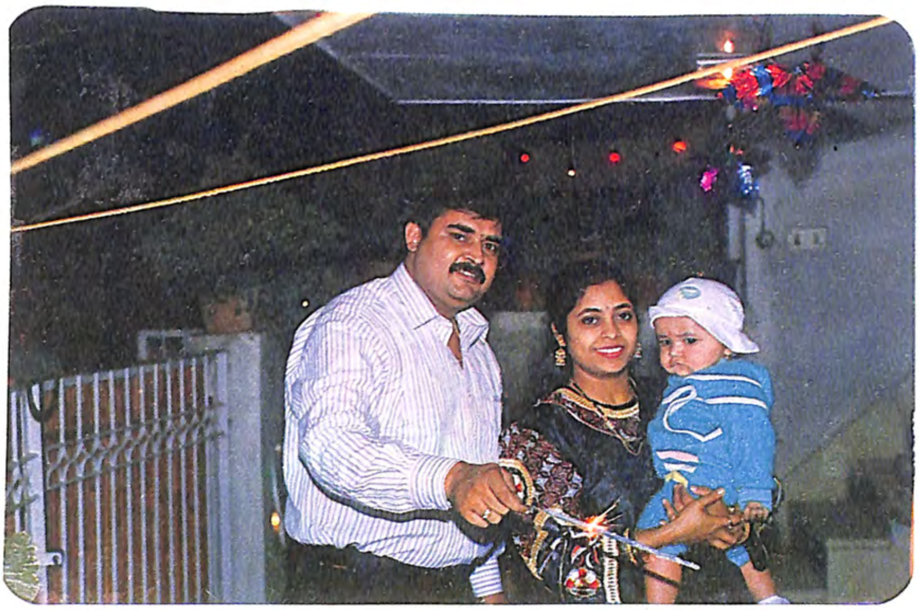
realpatidar.com



राष्ट्रपति भवन के लॉन पर राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, तीनों रक्षा सैन्याध्यक्षों के साथ वीर चक्र विजेता कैप्टन आलोक (पिछली पंक्ति में बायें से पांचवें खड़े हुए) अन्य अलंकृत व्यक्तियों के साथ

महामहिम राष्ट्रपति श्री आर.वी.वेंकटरमन कैप्टन आलोक सिंह को 'वीर चक्र' से अलंकृत करते हुए





मेजर आलोक सिंह, पत्नी श्रीमती अंजुसिंह, पुत्र अंगद के साथ उसकी प्रथम दीपावली पर्व मनाते हुए



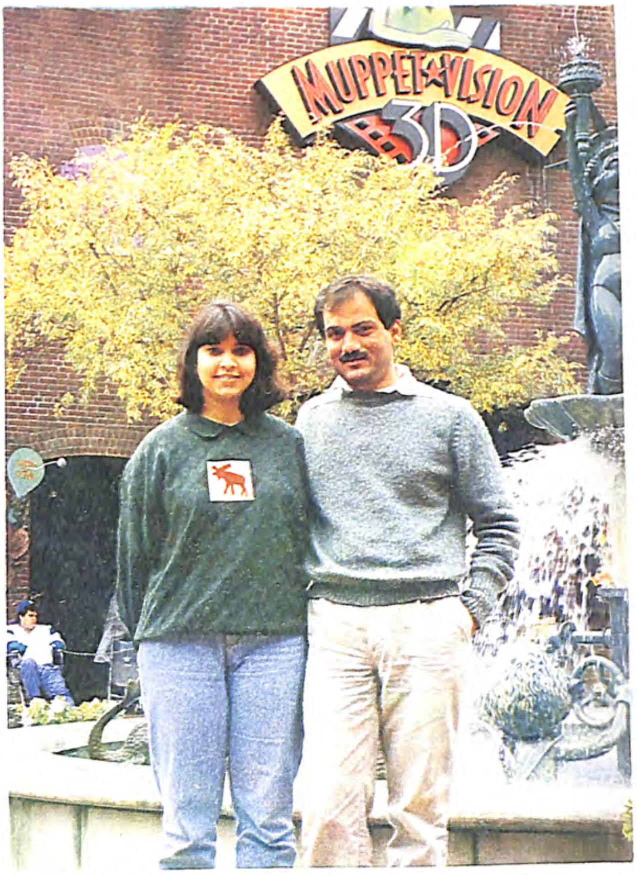
लेखक अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में सन् 1990 में संसद-भवन (Capitol) के सम्मुख बैठे हुए



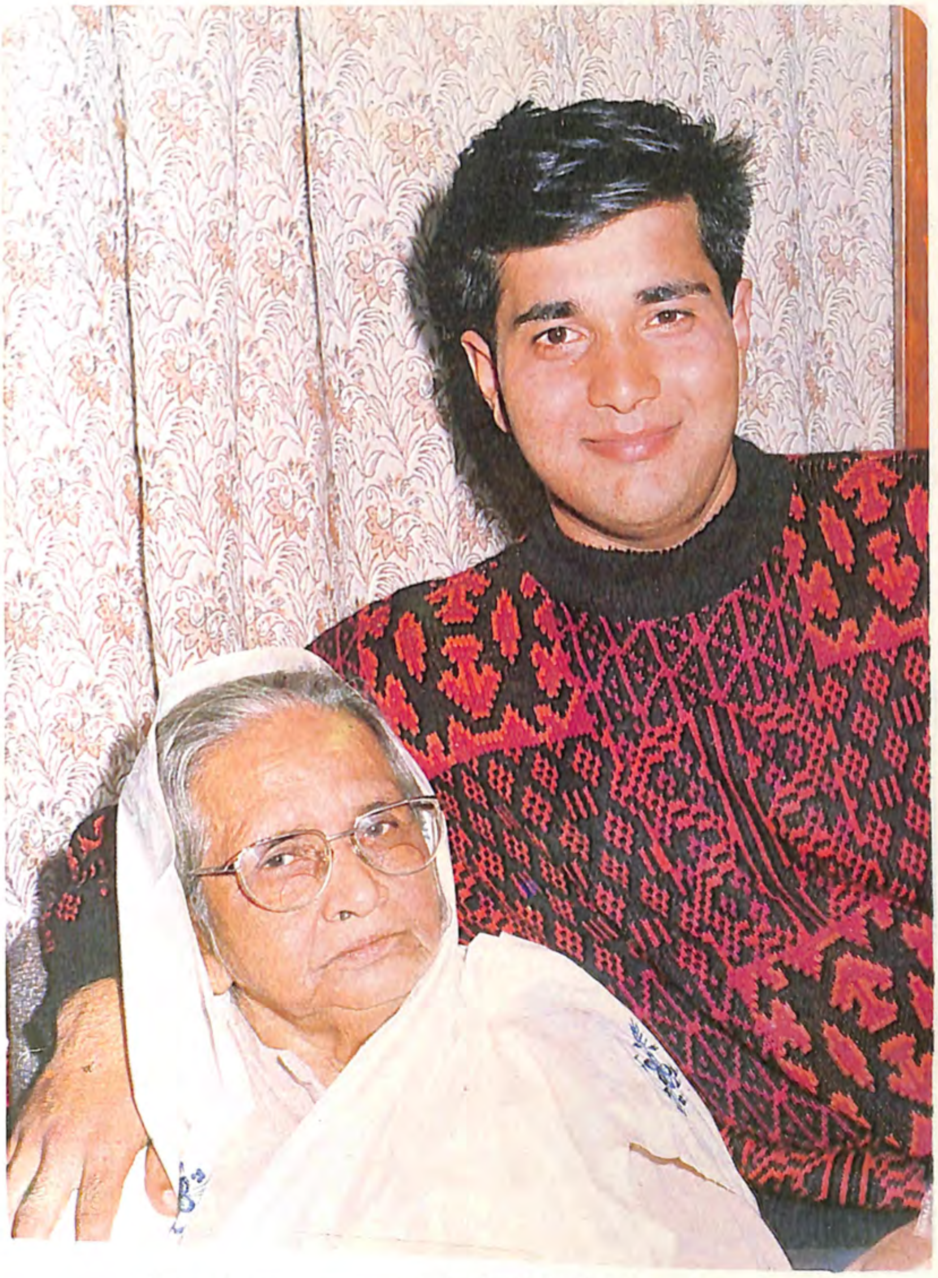
न्यूयार्क शहर के निकट "Statue of Liberty" को देखने जाते हुए जलपोत पर श्रीमती गीता जयसवार, संजय सिंह तथा सुनीता सिंह का चित्र लेखक द्वारा



लेखक का ज्येष्ठ पुत्र संजय सिंह, पत्नी रोज़ी सिंह के साथ अमेरिका के विश्व प्रसिद्ध पर्यटन स्थल के सम्मुख खड़े हुए



लेखक की पुत्री श्रीमती सुनीता सिंह तथा दामाद डा. सतीश नारायण कामत, फ्लोरिडा, अमेरिका के प्रसिद्ध पर्यटन स्थल MGM Studio में



लेखक की सास, कलकत्ता वासी श्रीमती देवकी देवी, पत्नी स्व. श्री लक्ष्मी नारायण सिंह,अपने पौत्र राजीव सिंह के साथ



लेखक के दोनों पुत्रों, संजय सिंह एवं मेजर आलोक सिंह, के विवाहोपरान्त 5 दिसम्बर 1992 को संयुक्त स्वागत-भोज पर उपस्थित अतिथियों में पूर्व केंद्रीय मंत्री, चौ. अजीत सिंह जी, श्री शिव सरन वर्मा, सांसद, सामाजिक कार्यकर्त्ता श्री श्याम सुन्दर सिंह, श्री हरिहरनाथ सिंह, श्री प्रेम नारायण सचान, श्री सतीश चन्द्र गंगवार, डा. आर. एन. कटियार, डा. अशोक सिंह आदि

में उन्होंने धैर्य, साहस और मोर्चा बनाने में कुशल नेतृत्व का परिचय दिया तथा अपने सैन्यदल को पुनः तैनात करके और पुनः संगठित करने में उत्कृष्ट सूझ-बूझ दिखाई । अपनी सुरक्षा की परवाह न करते हुए कैप्टन आलोक सिंह एक सेक्शन से दूसरे सेक्शन में जाते रहे और सामने मड़राते हुए गम्भीर खतरे का मुकाबला करते हुए अपने सैन्यदल का मार्ग निर्देश करते रहे । इस कार्रवाई में उनके 2 एल० एम० जी० ग्रुप विद्रोहियों के मुख्य निशाने बन गए और उनकी पुनः तैनाती की आड़ लेते हुए वे खुले मैदान में आ गए और प्वाइंट ब्लैंक रेंज पर उन चार विद्रोहियों को गोली मारकर मौत के घाट उतार दिया, जो लाइट मशीन गन ग्रुप को पराजित करने के लिये आगे बढ़ आये थे । अपने लीडर की इस बहादुरी पूर्ण कार्रवाई से प्रेरित होकर सैन्य दल ने नई संकल्प शक्ति के साथ युद्ध किया और बहुत से विद्रोहियों को हताहत किया ।

इस प्रकार कैप्टन आलोक सिंह ने विद्रोहियों का मुकाबला करते हुए उत्कृष्ट, साहस, कुशल नेतृत्व और असाधारण वीरता का परिचय दिया । (जून 1993 से इनकी पदोन्नति हुई, अब ये मेजर आलोक सिंह 'वीर चक्र' होकर जम्मू-कश्मीर सीमा पर कार्यरत हैं ।)

(24) डॉ० मोहन सिंह

एम० बी०, बी० सी० पी० (पटना), पूर्व प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, पटना मेडिकल कालेज

चिकित्सा-विज्ञान के मर्मज्ञ, प्रसिद्ध समाज सेवी, बिहार राज्य कुर्मी सभा के अध्यक्ष

यही प्रकृति का नियम है कि संसार में मनुष्य जन्म लेते हैं, अपने तौर-तरीके से जीवन जीते हैं और एक दिन इस दुनिया से कूच कर जाते हैं । लेकिन इस पृथ्वी पर कुछ ऐसे मनस्वी भी सबके बीच आते हैं, जिनमें अन्यों से भिन्न विशिष्टता होती है, वे अपने से ज्यादा दूसरों के लिये जीते हैं, और उनकी सेवा-सुश्रूषा में उन्हें आनन्द की अनुभूति होती है । ऐसे कर्मयोगी परोपकारी मानव अपने कार्यों से युग-युगों तक समाज पर अमिट छाप, पहचान छोड़ जाते हैं । वे अपने कृपा-पात्रों तथा समाज के लोगों के मन में स्थायी जगह बना लेते हैं । और उनके इस दुनिया से बिदा होने पर भी उन्हें श्रद्धा से सदैव याद किया जाता है । ऐसे श्रेष्ठ महापुरुषों में डा० मोहनसिंह की गणना करना सर्वदा उचित है । वे देश के प्रसिद्ध चिकित्सा-विज्ञान शास्त्री ही नहीं सज्जन पुरुष भी हैं।

आपका जन्म **ग्राम मोडिया,** पो0 मणिपुर, जिला रोहतासपुर के नोखा थाना के अन्तर्गत, 18 जनवरी 1919 ई0 को **एक सम्पन्न कुरमी कृषक के यहाँ हुआ था ।** इनके पिताजी **स्व० देवलाल सिंह** तथा माता **स्व० पौढारों देवी थी ।** मिडिल तक प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने **नोखा मध्य विद्यालय** से प्राप्त की । आई० एस-सी० की परीक्षा को सन् 1940 ई० उत्तीर्ण कर मेडिकल शिक्षा दरभंगा और पटना से विशिष्ट योग्यता प्राप्तकर पूर्ण की । **मोहनसिंह जी** ने सन् 1942 **के राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से योगदान दिया । वे आजादी के आन्दोलन में कूद पड़े । परिणामस्वरूप 11 अगस्त 1942 को प्रातः सत्रह विद्यार्थी साथियों सहित गिरफ्तार कर लिये गये । मेडीकल स्कूल से नाम कट गया। एक वर्ष बाद 10 अगस्त् 1943 को मोहनसिंह जेल से छूटे ।** सन् 1945 में पटना मेडिकल कालेज में संघनित पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया । मेधावी छात्र थे अतः सुगमता से सन् 1947 ई० में एम० बी० बी० एस० की परीक्षा पास की। सन् 1957 ई० तथा 1958 ई० में क्रमशः **पैथोलोजी की विशिष्टता तथा डाक्टर ऑफ मेडीसिन** की डिग्रियां प्राप्त की । **डा० मोहन सिंह** ने चिकित्सा शास्त्र के विद्यार्थियों के लिये "Introduction to General Pathology and Haemotology नामक पुस्तक की रचना कर प्रकाशित कराया । व्यावहारिक प्रशिक्षण की समाप्ति के पश्चात् **डा० मोहनसिंह पटना मेडिकल कॉलेज** में ही 28 जून, 1948 ई0 में **प्रदर्शक** नियुक्त किये गये 26 सितम्बर 1950 को उसी कॉलेज में

व्याख्याता के पद पर प्रोन्नत हो गए । अपनी योग्यता के बल पर वे 9 जून 1964 ई0 को प्राध्यापक तथा विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए । सन् 1971 ई० में ये पटना विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और उसी वर्ष बिहार सरकार के बैक्टोरोलोजिस्ट नियुक्त हुए । सन् 1978 ई० के जनवरी माह में डीन फैकल्टी ऑफ मेडिसन भी बने । डा० मोहनसिंह ने 30 विद्यार्थियों को एम० डी० की उच्चतम डिग्री दिलाने में सहायता की है । इनकी कृपा से समाज के लगभग सौ से ऊपर लोग Laboratory Technician का प्रशिक्षण प्राप्त कर बिहार के हरेक सरकारी अस्पताल एवं मेडिकल कालिजों में पदस्थापित हैं । इन्होंने 1 जनवरी 1979 ई0 को सरकारी सेवा से अवकाश प्राप्त किया । आज ये सरकारी पेंशन एवं स्वतंत्रता सेनानी की पेंशन का उपयोग कर रहे हैं । 'बिहार राज्य कुर्मी सभा' के वर्तमान अध्यक्ष डा० साहब ही हैं ।

परिवारिक विवरण

डा० मोहनसिंह जी की तीन सुपुत्रियां हैं- डा० सरस्वती सिन्हा, नालंदा कालिज हास्पिटल में पैथोलोजी विभाग में सहायक प्रोफेसर तथा इनके पति डा० बसन्त कुमार सिन्हा, मुजफ्फर मेडिकल कॉलेज सर्जरी विभाग में सहायक प्राध्यापक सर्जरी हैं । दूसरी पुत्री डा० सुमित्रा सिंह, नालन्दा मेडिकल कालिज हास्पिटल (N.M.C.H.) में मेडिकल ऑफिसर हैं तथा इनके पति डा० अनिल कुमार सिंह विभागाध्यक्ष, क्लीनिकल पैथोलोजी विभाग, नालंदा मेडिकल कालेज, पटना में कार्यरत हैं। तीसरी पुत्री डा० नीलू सिंह - हाजीपुर में पदस्थापित हैं । इनके पति डा० सुनील कुमार, पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल के इन्दिरा गांधी ह्रदय रोग संस्थान में सहायक निदेशक हैं ।

डा० मोहनसिंह जी के सुपुत्र, डा० सत्येन्द्र नारायण सिंह का शुभ विवाह डा० रेखासिंह के साथ बिना तिलक-दहेज के हुआ । यह शाखा तोड़ विवाह राँची में सम्पन्न हुआ । डा० रेखा सिंह के पिता श्री गोविन्द चन्द्र महतो तथा चाचा डा० कृष्णचन्द्र मेहता हैं । डा० सत्येन्द्र नारायण सिंह, पटना मेडिकल कॉलेज हास्पीटल के पैथोलोजी विभाग में अध्यापक पद पर कार्यरत हैं । डा० सत्येन्द्र नारायण सिंह जी ने एक पुस्तिका "कुरमी-कोयरी की दुर्दशा" शीर्षक से अपना छद्म-नाम, कुमार कान्ति से, 20 फरवरी 1994 की पटना गांधी मैदान में आयोजित "कुरमी चेतना महारैली" के सुअवसर पर लिखी थी । इस अपनी कृति की एक प्रति तथा महारैली के कुछ रंगीन फोटो इन्होंने इस लेखक के पास भेजे थे, वही चित्र इस पुस्तक में, डा० सत्येन्द्र नारायण सिंह और इनके पूज्य पिताजी डॉ० मोहनसिंह जी, अध्यक्ष बिहार राज्य कुर्मी सभा, को आभार ज्ञापित करते हुये, प्रकाशित किये गए हैं ।

डा० मोहनसिंह जी के अनुज डा० रामचन्द्र सिंह के दो पुत्र और दो पुत्रियां हैं । उनकी पत्नी डा० उर्मिला सिंह, सीतामढ़ी अस्पताल में पदस्थापित हैं । एक पुत्र डा० दीपक कुमार सिंह का विवाह डा० प्रतिमा सिंह के साथ सम्पन्न हुआ । पुत्री डा० नम्रता सिंह का विवाह डा० रवीन्द्र सिंह के साथ हुआ । दूसरी पुत्री, डा० संजनासिंह की शादी भी एक चिकित्सक डाक्टर से हुई है । डा० मोहनसिंह के दूसरे अनुज डा० राममूर्ति सिंह हैं । इस तरह डाक्टर मोहन सिंह जी के परिवार में 18 डाक्टर (चिकित्सक) और एक इंजीनियर हैं । कुरमी बन्धुओं को डा० मोहनसिंह के जीवन से तथा उपर्युक्त पारिवारिक विवरण से प्रेरणा लेनी चाहिये । सतत मेहनत तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने से पचास वर्ष-पूर्व का मध्यम वर्ग का उनका परिवार आज मात्र पटना के और बिहार प्रदेश में ही नहीं अपितु सारे देश के कुरमी समाज का आदर्श परिवार बन गया है और मेडिकल शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय है ।

सामाजिक कार्य

पटना में स्थित 'सरदार पटेल छात्रावास' की नींव महासभा के पूर्व अध्यक्ष, श्री दासूसिंह, एडवोकेट, पटना हाईकोर्ट ने डाली थी । उसके छात्रावास भवन के जीर्णोद्धार का महानकार्य डा० मोहनसिंह जी द्वारा विजयदशमी, 20 अक्टूबर 1969 को प्रारम्भ किया था और उसमें पहले पचासों नये कमरों का निर्माण कराया गया । हाल मे ही बड़ा हाल, पुस्तकालय कक्ष और अनेक सुविधाएं स्थापित की गई हैं । इस छात्रावास से अनेक व्यक्ति उपकृत हुए । पाँच चीफ

इंजीनियर, एक आई० ए० एस०, दो डी० एस० पी०, पाँच डिप्टी मजिस्ट्रेट, 150 से अधिक इंजीनियर और इतने ही डाक्टर और उससे बड़ी संख्या में बैंक कर्मचारी कृषि पदाधिकारी, अध्यापक, वकील और अन्य रेलवे कर्मचारी लाभांवित हुये हैं । बिहार के मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव इस छात्रावास के एक नम्बर कमरे में रहते थे । शिक्षा-प्राप्ति के साथ-साथ उनका राजनैतिक जीवन भी इसी छात्रावास में रहते हुए प्रारम्भ हुआ था । तब वे बी० एन० कालिज, पटना के विद्यार्थी नेता के रूप में उभरे थे । सरदार पटेल छात्रावास में 155 छात्रों के रहने की व्यवस्था है । और डा० मोहनसिंह को सर्वसम्मति से बिहार राज्य कुर्मी सभा का अध्यक्ष बनाया गया है । और आपके अध्यक्षीय काल में जातीय संगठन ओर उपजाति-शाखान्तर भेद-भाव मिटाने के लिये अनेक प्रभावशाली कदम उठाये गये हैं । बिहार राज्य कुर्मी सभा के लिये डा० मोहनसिंह ने अपने आवास में एक कमरा दे रखा है, जिसमें सभा का कार्य सुचारु रूप से चलता है । इस सभा का आवश्यक विवरण इस प्रकार है :

वर्तमान बिहार राज्य कुर्मी सभा तथा उसके पदाधिकारीगण

राज्य कार्यालय	:	डा० मोहन सिंह का निवास स्थान, जगत नारायण रोड, कदम कुंआ, पटना -3,
अध्यक्ष	:	**डा० मोहन सिंह**, एम० डी०, डी० सी० पी० (पटना) पूर्व प्रध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, पैथोलोजी विभाग, पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल, पटना,
उपाध्यक्ष	:	श्री रामवृन्दावन सिंह, पूर्व प्रोफेसर और हिन्दी विभागाध्यक्ष बी० एन. कालिज, पटना विश्वविद्यालय, पटना
महामंत्री	:	श्री भगवान प्रसाद सिंह
संयुक्त मंत्री	:	श्री सिद्धेश्वर, श्री केदार महतो
प्रचार मंत्री	:	श्री के० के० मण्डल
कोषाध्यक्ष	:	डा० कृष्णदेवप्रसाद



श्री रामरतन चौधरी

गांधी मैदान पटना, में आयोजित 12 फरवरी 94 की **"कुरमी चेतना महारैली"** की ऐतिहासिक सफलता के पीछे इन्हीं सब महानुभावों के अथक परिश्रम का प्रतिफल निहित है ।

(25) श्री रामरतन चौधरी
अध्यक्ष : पश्चिम बंग कूर्मि क्षत्रिय सभा (हावड़ा)

आपका जन्म लगभग 37 वर्ष पूर्व पश्चिम बंगाल के हावड़ा जिले के एक सम्भ्रान्त एवं प्रतिष्ठित चौधरी कुरमी परिवार में हुआ था । आपके पिता स्व० श्री दीपनारायन चौधरी पं० बंगाल के हावड़ा जिले के एक विख्यात ट्रांस्पोर्टर, थे, जोकि मूलतः उत्तर प्रदेश के जिला बलिया के निवासी थे और जयसवार कुरमी होने के कारण 'चौधरी' आस्पद नाम के साथ प्रयोग करते थे, जेसे कि आज भी बलिया के ज्यादातर जयसवार कुरमी चौधरी आस्पद का नाम में प्रयोग करते मिलेंगे । वे रोटी-रोज़ी की तलाश में बलिया (उ. प्र.) से हावड़ा (पं० बंगाल) में आ बसे थे और धीरे-धीरे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते चले गये और अपना ट्रास्पोर्ट का व्यवसाय स्थापित कर काफ़ी धन अर्जित किया ।

श्री रामरतन चौधरी अपने माता-पिता के पाँच पुत्रों में चौथे हैं आपके पिता अब नहीं हैं, माताजी हैं जोकि एक आदर्श भारतीय नारी की तरह सदैव पूजा-पाठ में रत, धार्मिक प्रवृत्ति की साधू संतों के प्रवचनों में लीन दीन-दुखिया

के प्रति असीम ममता और आर्थिक मदद देने को तत्पर रहने वाली साध्वी स्त्री हैं ।

श्री रामरतन चौधरी में शालीनता, सादगी सरलता और कर्मठता अपने माता-पिता से ही विरासत में प्राप्त हुई है । आप प्रारम्भ से ही मेधावी छात्र रहे, अतः सदैव गुरुजनों के पटु शिष्य रहे । आपकी प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा हावड़ा जिले के विद्यालयों में ही हुई, किन्तु बी० एस-सी० डिग्री विज्ञान में आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त की । स्नातक स्तर (इंजीनियरिंग) की तकनीकी शिक्षा आपने स्थानीय रामकृष्ण मिशन के कॉलिज से प्राप्त की । उच्च शिक्षा इंजीनियरिंग में प्राप्त करने के लिये विदेश जाने का संयोग भी आया । पर तभी उनके पिताजी के अकस्मात निधन के कारण वह मजबूरन स्थगित करना पड़ा ।

आपने सिविल इंजीनियरिंग के स्नातक होने के नाते उससे संबंधित व्यवसाय में भवन निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया । और शीघ्र ही भवन निर्माण में वे दिन-दूनी, रात-चौगुनी तरक्की करते चले गये । और शीघ्र इस व्यवसाय में उनका नाम एवं विशिष्ट उच्च स्थान बन गया । 24 वर्ष की आयु में आपका विवाह, जमशेदुर के निवासी एक स्वजातीय परिवार की पुत्री, सुश्री आशा देवी चौधरी के साथ हुआ । आपकी माताजी के चरण-चिह्नों का अनुकरण कर इनकी पत्नी, श्रीमती आशा देवी भी धार्मिक एवं सामाजिक जनहित के कार्यों में लगी रहती हैं ।

श्री राम रतन चौधरी ने अपनी युवावस्था के प्रथम चरण में ही हावड़ा शहर में बहुमंजिला भवनों, आवासीय तथा व्यावसायिक दोनों प्रकार की, कतारों पर कतारें बनाकर खड़ी कर दी हैं । आज आपका भवन निर्माण व्यवसाय कलकत्ता, हावड़ा के साथ-साथ, पास के प्रदेशों के नगर भुवनेश्वर, पुरी, अगरतल्ला तथा बिहार आदि स्थानों तक फैल चुका है । आपके उच्च प्रशासनिक अधिकारियों एवं राजनैतिक नेताओं से मधुर सम्बन्धों के कारण आप के कार्यों में बहुधा कोई विघ्न या अवरोध नहीं उत्पन्न होता है । आपकी इसी सफल तकनीक और निर्देशन के कारण पूंजीनिवेशक आपकी ओर आकृष्ट होकर आप द्वारा संचालित प्रोजेक्ट में स्वतः और सहर्ष पूंजी निवेश करते हैं ।

आज 37 वर्ष की आयु में श्री राम रतन चौधरी ऐसी बहुत सारी कम्पनियों एवं बहुत से विभिन्न उद्योगों के मालिक हैं । आपके सबसे बड़े भाई कपड़ों के शोरूम का हावड़ा में संचालन करते हैं । दो भाई पैतृक ट्रांसपोर्ट व्यवसाय को वहीं पर चलाते हैं । छोटा भाई इस्टेट-जायदाद का क्रय-विक्रय इनके साथ देखता है और श्री रामरतन चौधरी तो अनेक व्यवसायों का संचालन स्वयं करते हैं । आपके व्यवसाय की कुल वार्षिक आय 50 करोड़ के लगभग पहुँच चुकी है । आज के समय आप जूट मिल, भवन निर्माण कम्पनी एक आधुनिक वस्त्र थोक व्यवसाय, 40 एकड़ भूमि पर "पंचवटी होलिडे रिजोर्ट्स लिमिटेड" नाम से होटल एवं रिज़ोर्ट, चाय और काफी के बागात एवं कम्पनियों के कार्यों का बखूबी संचालन कर रहे हैं । उनके पंजीकृत कार्यालय का पता है 545 जी० टी० रोड, हावड़ा (प० बंगाल) ।

व्यवसाय में श्री रामरतन चौधरी का अत्यधिक व्यस्त होना स्वाभाविक है, किन्तु फिर भी आप हर समय समाज के संचालन, आदि कार्यों में समय देते रहते हैं । यह कूर्मि क्षत्रियों का सौभाग्य है कि उनका अपना एक व्यक्ति तन, मन एवं धन से जातीय उत्कर्ष. के लिये तत्पर है, समर्पित है ।

श्री राम रतन चौधरी के निस्वार्थ सहयोग, श्रमदान और कठोर परिश्रम और जातीय-प्रेम के कारण ही समाज ने अल्पायु होते हुये भी आपको सहर्ष एवं सर्वसम्मति से पश्चिम बंग कूर्मिक्षत्रिय सभा (हावड़ा) का अध्यक्ष मनोनीत किया है, जिस कार्य को आप बहुत अच्छी तरह निभाते आ रहे हैं । आप पर सभी कूर्मि क्षत्रियों का अगाध स्नेह और अटूट विश्वास है ।

परम पिता परमात्मा से यही हम सबकी हार्दिक प्रार्थना है कि इन्हें दीर्घ आयु के साथ-साथ सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करें, जिससे हमारी आशाओं और आकांक्षाओं के अनुसार श्री रामरतन चौधरी, आगे भी पुष्प की तरह प्रस्फुटित होकर समाज की शोभा बढ़ाते रहे और अपने गुणों से सुगन्धित करते रहे । भविष्य में और अधिक उन्नति करते हुए उच्चतर कीर्तिमान स्थापित करें, अपने परिवार, कूर्मि समाज और देश का नाम रोशन करें, साथ ही साथ एक ऐसी कृति स्थापित करें जिसका उपयोग समाज के साधन हीन लोग कर सकें । प्रभु इन्हें सदैव स्वस्थ एवं शतायु बनाये, इस मंगल कामना के साथ-प्रस्तुतकर्त्ता, श्री चन्द्रशेखर राय, सचिव पं० बंग कुर्मि क्षत्रिय सभा (हावड़ा) ।

(26) झारखंड के मसीहा-शहीद निर्मल महतो

निर्मल महतो सिंहभूम जिलान्तर्गत जमशेदपुर के प्राचीनतम गाँव उलियान में 1950 ई0 में 25 दिसबर को उसी दिन जन्में, जिस दिन ही महात्मा यीशू मसीह ने जन्म लिया था । वे भी अपने सुकार्यों से झारखंड के मसीहा नाम से विख्यात हुए । पिता, श्री जगबन्धु महतो ने जमशेदपुर के टिस्को कारखाने की नौकारी से अवकाश प्राप्त कर लिया था, माता प्रिया महतो थी । एक सीधे-साधे कुड़मि परिवार में जन्में निर्मल महतो घर की आमदनी में बच्चों को ट्युशन पढ़ाकर योगदान करते थे, साथ-साथ अपनी पढ़ाई भी जारी रखते थे । जनजातियों के व्यसन बीड़ी, सिगरेट, खैनी,-गुड़ाखू, दारू-ताड़ी इन सबसे वे सदैव दूर रहे । सदा प्रसन्नचित रहने वाले निर्मल महतो में प्रारम्भ से नेतृत्वकारी गुण नज़र आते थे। वे छात्र जीवन से ही राजनीति में रुचि लेने लगे थे ।

निर्मल महतो को लगा कि झारखंड के जन-जीवन में सूद खोरों और जमीन हथियाने वालों के कारण सम्पन्नता और खुशहाली आ नहीं सकती, अतः इन सामाजिक जोकों के विरुद्ध वे सदैव उनके उन्मूलन का अभियान चलाये रखते थे । और जिसके कारण वे इनके जानी दुश्मन बन बैठे थें । वे जब कालेज में पढ़ते थे तो उपर्युक्त शोषक तत्वों ने मौका पाकर किराये के गुंडों से उन पर प्राण-घातक प्रहार करवा दिया । वे बुरी तहर घायल हुये पर अपनी दृढ़ इच्छा तथा लम्बे उपचार से वे फिर चंगे हो गये और शोषण विरोधी अभियान में जुट गये ।

15 नवम्बर 1980 को निर्मल महतो ने झारखंड मुक्तिमोर्चा में योगदान किया । उन्हें 18 जुलाई 1981 को जमशेदपुर में ही झारखंड मुक्ति मोर्चा का जिला उपाध्यक्ष बनाया गया । फिर वे राजनीति में अग्रसर होते गये । जनवरी 1983 में झा० मु० मोर्चा की केन्द्रीय समिति के सदस्य और उसी वर्ष जून में अध्यक्ष भी चुने गये थे । 21 अक्टूबर 1982 के सुवर्ण रेखा डैम से विस्थापित परिवारों को पुर्नवार्सित करने तथा नौकरी दिलवाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । सन् 1980 ई को गुआ गोली कांड में बिना लाठीचार्ज और गैस प्रयोग के गोली से अनेक लोग मारे गए । तत्कालीन मुख्य मंत्री डॉ० जगन्नाथ मिश्र ने तीर-धनुष पर ही प्रतिबन्ध लगा दिया । अन्त में निर्मल महतो के सफल आन्दोलन के कारण डा० मिश्र को अन्त में अपना काला आदेश वापिस लेना पड़ा ।

जहाँ भी सूदखोरों द्वारा या जमीन हड़पने वालों का अत्याचार सुनने में आता निर्मल मेहतो अपने साथियों सहित, हाथ में तीर धनुष, हरा झंडा और हाकी स्टिक लेकर जाते और पीड़ित व्यक्तियों का दुःख निवारण करते उनकी अनेक उपलब्धियां हैं जिनके कारण वे अपने झारखंड के 'निर्मलदा' के नाम से बच्चे-बच्चे की जवान पर थे ।

सन् 1984 में इन्दिरा गांधी की निर्मम हत्या के बाद जमशेदपुर में व्यापी दंगों के असर को रोकने के लिये झा. मु. मोर्चा ने निर्मल महतो की रहनुमाई में अहम भूमिका निभाई और अनेक सिख परिवारों को सुरक्षा प्रदान की। 8 अगस्त 1987 को कांग्रेस और पूँजीपतियों की मिली भगत से कुछ गुंड़ों ने निर्मल महतो की निर्मम हत्या कर दी। निर्मल ने अपना बलिदान देकर कुड़मियों को स्वाभिमान सिखाया और झारखंड आन्दोलन को नया बल प्रदान किया । जिससे अब सारा देश अवगत है बिरसा मुंडा के बाद झारखंड में चेतना लाने में द्वितीय प्रखर व्यक्ति शहीद निर्मल महतो का है ।

साम्प्रदायिक सद्भावना कायम रखने के लिये निर्मल महतो के नेतृत्व में पार्टी ने ठोस क़दम उठाये । शहीद निर्मल महतो ने सत्ता से तालमेल कायम करने की बजाय संगठन और जन-जागृति पर ही अधिक ध्यान दिया । फलस्वरूप मुक्ति मोर्चा दिन व दिन अपार लोकप्रिय होता गया । झारखंड के मसीहा निर्मल मेहता की कीर्ति लोग सदा याद रखेंगे।

परिशिष्ट - 1

Extracts from the book
The
"Castes and Tribes"-Volume I
of
H. E. The Nizam's Dominions"
By
Syed Siraj Ul Hassan

One of the Judges of H.E.H. the Nizam's High Court of Judicature : Lately Director of Public Instruction Hyderabad State-

Printed at : The Times Press Bombay, in 1920
Chapter LV & Page 370-372, Vol. I.

KURMI

Kurmi, Kurmi Kshatriya, Kunbi :- a very large land holding and cultivating caste of Northern India supposed to have come into these dominions as soldiers, early in the seventeenth century. During the wars of **Aurangazeb** with the **Bijapur** and **Golconda** kingdoms, and subsequent with the **Marathas,** they enlisted in the **Moghals** army and held posts of honour as Hajaris, Subedars and Jamadars, or as Commandants of different forts and districts, which were conquered and annexed by the **Moghals.** Since their **disbandment,** after the death of **Aurangazeb,** they have settled down as peaceful cultivators, their ranks being recruited by fresh immigrants from upper India.

Origin : The **Kurmis** of the State allege that they are the direct descendants of the well known Kshatriya dynasties of early Indian tradition, and , in support of this claim, refer to the fact that the term "Kurmi' was borne, as little son, by the prince **Vivashwan** (son of Manu) and Sharyati of the solar race and by the lunar kings **Yadu** and **Kuntibhoja** (Skanda Puram, Sahyadri Khand, Adhyaya 33).

It was the designation of son of the solar king Sumitra (Vansha Bhaskar, page 1013) and of the son of Gritsamad, author of several hymns of the Rigveda (Vishnu Puram IV,

Adhyaya 8, Shlok - 1). The famous Chauhan king **Prithvi Raj of Delhi** and his descendants, Jagat Singh and Jai Singh, were also distinguished **Kurmi** (Prithvi Raj Rayaso, Jagat Vinod and Kalpadruma). Agreeably to this tradition the Kurmis derive their name from the word **"Kurma"** occuring in the Rigveda (Mandala 8, Sukta 66, Humn12; Mandala 3, Sukta 30, Hymn 3) and Shatpatha Brahman (Khand 6, Adhyaya 6, Brahmans), and meaning **Lord, Master, Powerful** etc.

The Physical appearanace of the **Kurmis** tends to support the view of their Kshatriya origin. They are tall, well made with regular features and generally of fair complexions. **"The Kurmi has"**, says the Revd. sherring (in his book entitled" Tribes and Castes ", Vol. III, Page 258), **"a strong, bony hand, natural to a man of his employment. He is frequently tall and powerful, manly, outspoken and independent in manner, and is altogether free from cringing obsequiousness** "Colonel Dalton regards them as the descendants of some of the earliest Aryan Colonists," **a brown, tawny coloured people, of an average height, well proportioned and with a fair amount of good looks. They show well-shaped heads and high features; and except when they have obviously intermixed with aborigins, they are unquestionable Aryans in looks. Grey eyes and brownish hair are sometimes met with amongst them. The women usually have small and well formed hands and feet,** ("Ethnology of Bengal page 320)".

Sir George Campbell, speaking of the **Kurmis of Hindustan**, says they are on an average darker and less good looking than the Brahmans and Rajputs, but still quite Aryan in their features, institutions and manners ("Ethnology of India", page 92). "In Gorakhpur are found the **Patanwars, Saithwars,** whom **Dr. Buchanan** identifies with the **Audhias** of **Behar,** who claim to be of the highest dignity and of the purest blood." (**W. Crook's** "Tribes and Castes of the North West Provinces and Oudh)."

The foregoing description holds good as regards the Kurmis of this State (Hyderabad), who are, on the whole, a fine manly race, conforming to the usages and manners of Brahmans, wearing the sacred thread and forbidding their widows to re-marry. An examinations of the exagamous sections into which they are divided, seems to tell strongly in favour of the hypothesis that they have sprung from the same original stock as the Rajputs. The section names, a list of which is given at the conclusion of this article, correspond to, or closely resemble, those concurrent among the Rajputs. Putting even tradition aside and looking, on the one hand, to the physical type of the Kurmis and, on the other, to their internal organisation, it would appear that their claim to a Kshartiya descent cannot be wholly rejected.

Internal Structure : No information is available regarding the endogamous devisions of the Caste. The exogamous sections, are of two different types - one original and the other borrowed from the Brahmans. Only the original of the tribal series is taken in account for purpose of marriage. The rule is absolute that a man may not marry a woman or the same tribal section as himself; but the fact that two persons belong to the same Brahmanical gotra does not operate as a bar to intermarriage, provided that the tribal sections are different. Apart from section rule prohibited degrees are reckoned on the system in vogue among the Kanojia Brahmans. Man may marry two sisters but he must take them in order of age, and he can not marry the elder sister if he is already married to the younger. Two brothers can marry two sisters, the elder marrying the elder sister and the younder marrying the younger one. Polygamy is permitted, to any extent, but in practice man takes second wife only if the first is barren or suffers from incurable disease.

Marriage : Girls are married before they attain puberty, between the ages of nine and twelve. Immediately after marriage i.e. on the third day after ceremony, the bride goes in procession, with her husband, to his house, but is brought back again to her father's house on the fifth day after the ceremony. But the final ceremony **(Gauna)**, by which she is made over to her husband, may take place one year, three years, or five years after the regular marriage. This is to say, if the husband does not claim wife after the expiration of one year, he must wait three years, and if he does not come forward then, he must wait five years. This custom prevails among most of the higher castes in Northern India. Another ceremony known as **"Rauna"** takes place when the bride goes to live with her husband the third time, and is generally performed after the girl has attained puberty.

The marriage ceremony is of the orthodox type in use among the higher castes of Northern India, the essential portions being **Sindurdan** or the smearing of vermilion on the parting of the bride's hair, and **Bhonware or the seven circuits** taken by the bridal pair around the milk-post and the sacred fire, the bridegroom leads in the first six circuits and the bride in the last one. This is followed by **Kanyadan,** or the presentation of the bride to the bridegroom and his acceptance of her. A feast to the members of the caste concludes the ceremony. The marriage takes place at night and, before the bridegroom starts in the wedding procession to the bride's house, a ceremony known as **Durga Janeo Sanskar** is peformed, when he is invested with the sacred thread by a Brahman priest.

The re-marriage of widows is strictly forbidden among the **Kurmis** of this place. Divorce is also prohibited and if a woman is taken in adultary she is summarily expelled from the caste. If, however, a married couple cannot live in harmony together a separation is arrived at by mutual consent. In such cases, the wife returns to her father's house and the husband marries again.

Religion : The religion of the **Kurmis** does not differ materially from that of the highest Hindu Castes in Northern India. Votaries are found among them of the main Hindu sects Vaishnava, Saiva, Sakta and the like for religious and ceremonial observences, they employ Kanojia Brahmans, who are received on equal terms by other members of the sacred order. The dead are burnt in a lying posture and the ashes are collected on the third day after death and thrown into the river Ganges, or any other sacred stream. On the eleventh day after death the mourners shave their heads and after libations of water in the name of the deceased. Sradh is performed on the 12th day after death and on the thirteenth a feast is given to the Brahmans of the neighbourhood. In the first or third year after death, the chief mourner makes a pilgrimage to **Gaya** and performs the **Sradha Ceremony** there for the benefit of the soul of the deceased.

Social Status : The social status of the Kurmis is respectable. They will eat Kachi food cooked only by a Kanojia Brahman, who is their family priest. All castes, including Brahman, will eat Pakki food from their hands.

Occupation : The characteristic occupation of the Kurmis caste is that of settled agriculturists. They are very tenacious of their ancestral holdings and seldom alienate right in land unless under the great pressure of circumstances. The great majority of the caste are occupancy or non-occupancy raiats and a few have risen to be zamindars. Some have, in recent years, taken to trade and learned pursuits. As a class, they are most peaceable set of men and have always been remarkable for their loyalty to the ruling power.

Raja Darshan Singh 'Ghalib Jang' & His Son, Raja Jailal Singh :

Raja Darshan Singh served the **Oudh Government** for nearly 55 years in various capacities. His son, **Raja Jailal Singh**, also served the Oudh rulers for 35 years. He was in command of an army, which was kept in readiness for deployment against rebellious subjects, defaulting or declining to pay land revenues. The **Oudh Court** was paying him a "salary of Rs. 300/- per mensem" other emoluents in excess of salary was Rs. 1000/-". His continued affluence was an evidence of his uniterrupted influence with the royal court ....
When the Revolutionary Govt. was formed **Jailal** had to forego his claim for the position of **'Dewan Khana'** in favour of **Mummoo Khan. Begum (Hazrat Mahal)** dreaded more the position of **Jailal,** because the sepoy army was under **his complete command.** The **Begum,** however, managed to pacify the **Raja** with **Chuckledari** of **Durriabad,** and control of 4 Regiments and 1 Rissala (a troop of horses) with 6 or 7 guns and a **"Khulut of Surufaraze** (a robe of honour for eminence)." In the new government he was made a collector of revenues and a Minister of War. [Excerpts from **S.N. Chanda's** "1857 - Some untold Stories", published by Sterling Publishers (P) Ltd. New Delhi-16]

परिशिष्ट-2

EXTRACTS FROM BOOKS OF EUROPEAN SCHOLARS

CARNEY'S RACES, TRIBES AND CASTES OF OUDH

"**Sindhia of Gwalior,** the **ex-Raja of Satara,** and the **ex-Bhonsale of Nagpur** were **Kurmis** or of the classes akin to them. Mr. campbell has pointed out that the **Kurmi** element was the foundation of the **Maharatha** power, and **Shivaji** and many of his chiefs were **Kurmis**. There are also **Kurmi Rajas** in **Gorakhpur** and **Gujrat. Darshan Singh of Atraulia** of this caste earned the title of **Raja** during rebellion."

"Well to-do members of these classes adopt the honorary distinction of **Choudhari.** There were formerly many and still are some **Kurmi** land proprietors in **Oudh.** A Tupa sub-division containing more than 50 villages was formerly owned by them in Fyzabad."

Encyclopaedia Britannica, (Vol 13, Published in 1954 by Encyclopaedia Britannica Inc. Chicago, London, Toronto)

Kunbi : 'house holder', the great agricultural caste of Western India (post-vedic skt. **Kutumbika,** which may be a sanskritised form of an aboriginal word.) The name becomes **Kurmi** in the north where the caste is numerous along the Ganges and to the south of that river. The **Kunbi** corresponds to the **Kapu** of the **Telugu** country in Madras, and to many castes elsewhere. The **Maratha** is really an upper class **Kunbi,** who in many parts of the population **Maratha** or **Mahratta,** is not originally a caste name, being derived from the sanskrit **Maharashtra, "Great Kingdom",** a territory. In 1921, the **Kunbis** numbered 67,69,502 including the **Kurmis.**

BOMBAY GAZETTEER, BELGAUM, VOL. XXI

'**Kunbis** .... they have two hundred and ninety two surnames. Of the whole number one hundred and twenty two trace thier origin to the moon, seventy eight trace their origin to the sun, and eighty one go to the Brahma. The ninety nine remaining surnames are said to belong to miscellanious tribes."

CASTES IN INDIA - BY G. H. HUTTON

"The wide spread cultivating caste of the west, the **Kunbi,** the typical peasent of Western India, who probably contributed largely to the rank and file of that fighting race of Marathas. The marathas first heard of in the thirteenth or fourteenth century and nearby became masters of India in the eighteenth."

E. T. DALTON'S DESCRIPTIVE ETHNOLOGY OF BENGAL, PAGE 318

"The celebrated Bhonsale family were orginally Patels of Deori, and also, I believe **Kurmis**."

BOMBAY GAZETTEER - BY SIR J. CAMPBELL K.C.S.I.

"The derivation, which has the approval of Prof. Bhandarkar, remains that Maharashtra is the Sanskritised form of Maharatha, that is, the country of the Marathis or Maharathas, that is, the Great Rathis, a tribe which under the name of Ratta or Ratthis and its Sanskrit form Rashtrakas or Rastrikas, from very early time and have at intervals ruled in the Bombay Deccan, and Bombay Karnatak."

THE PRINCIPAL NATIONS OF INDIA

"**Maharattas** - the agricultural **Kunbis** are the chief tribe, the same as the **Kurmis** of Northern India. To them peculiarly belongs the name **Mahratta.** About the middle of the 16th century, the **Mahrattas** under **Shivaji,** recovered the power they had before the Muhammadans invaded the Deccan. **Shivaji** was born in fort, his greatness arose from his forts and in a fort he died."

BOMBAY PRESIDENCY & CENTRAL PROVINCES

"The **Kurmis** and **Kunbis** are in reality one class of people and yet are known in various parts of the country by these separate designations and under them are submissions into numerous tribes some of which do not intermarry. They are very industrious and peseviering, commonly thrifty and frugal and living in the enjoyment of health and much social comfort."

VALLABHBHAI PATEL - POWER ORGANISATION IN INDIAN POLITICS
by R. D. Shankardass, Orient Longman Ltd., New Delhi-1988

Page 1 : The learned author nas stated, Gujarat has been called the **"Garden of India"** because some areas like **charotar**, the central part of **Kaira district**, are blessed with rich and fertile soil. The farmers of such areas are, therefore, well rewarded for their hardwork and enterprise by far the most well-known and economically well-off community in rural Gujarat is the **Patidar** community. It is not easy to define in precise terms what a **Patidar** is. Fitting this community into one of the four varnas of Hindu society poses problems. In the last century, **Patidars** formed part of a large caste group called **Kanbis**, which in turn was divided into **Levas** and **Kadvas**, names which originate from those of the two sons of **Ram, Lav** and **Kush.**"

Shankardass further states - "According to the migrant theory" Patidars are alleged to have come from the north and spread out from there over the Surat plain.

I. Breman (Of Peasants, Migrants and Paupers, Rural Labour Circulation &

Capitalist Production in Western India, Delhi 1985, page 834) describes this process of upward social mobility. As the **kanbi patidars** began to improve their social position since the end of the last century their past history was adjusted to the new conditions. Their not-very-respectable background was hidden behind the claim to kinship with the caste of the same name in Kaira district in central Gujarat......... In any event, most research on the community and its origin emphasizes their capacity to transform themselves from ordinary cultivators to enterprising farmers and then set about allineating thier social status by setting social norms in order to define their **Patidar - hood.** Their tracts vary and help to establish a hierarchy and differentiates **Patidars** from other **Kanbis** as well as categorize **"Superior"** and **"Inferior" Patidars.**

Colonel William Henry Sleeman's Journey through Oudh.

W.H. Sleeman's "Journey through the Kingdom of Oude" is the most detailed account that we have of conditions prevailing in pre-annexation of Oudh. (Edited by P.D. Reeves,at the University Press, Cambridge. 1971)

Chapter VIII (Mahamdee 'district' 29 January - 4 February 1850)

The first village we passed through emerging from the jungle, was **Pureylee,** which is held and occupied by a large family of cultivating proprietors, of the **Koormee caste,** upto the year 1847, it had, for many years been in good condition, and paid a revenue of two thousand rupees a year to government. In that year, Ahmed Allee, the collector demanded a thousand more. They could not pay this and he sold all their bullocks and other stock to make up the demand. The lands became waste as usual, and Lonee Singh of Mitholee, a Rajput offered the next contractor one thousand rupees a year for the lease, and got it. The village has now been permanently absorbed in his estate in the usual way and as the **Koormees** are a peaceful body they have quietly acquisced in the arrangment, and get all the aid they require from their new land lord. Before this time they had held their lands, as proprietors, directly under government. From allodial (by **Allodial** means the land held in proprietory right, immediately under crown, but liable to the land tax) proprietors became feudal tenants under a powerful Rajpoot Chief.

Sleeman saw at other places

"These are all well cultivated and certainly a great many cultivators of the best classes, such as **Koormees, Lodhies** and **Kachies"**

PATELS OF GUJARAT (Times of India, New Delhi, Dated 3-8-1985

The British anthropologist **D.F. Pocock** has spoken of the "perpetual defining process in **Patidar** life, a constant interplay of integrative and differentiative currents."

Till the 1931 Census the **Patidars** were known as **Kanbis (agriculturist).** This term itself speaks of thier heterogeneous origins. Since we do not know much about them before

the 19th century when British officers took note of thier existence, we do not know how this community known as **kanbis** evolved. The words **Patidar** and **Patel** were initially used to distinguish certain **kanbis** as superior by virtue of their land rights. Gradually, however, the two names were adopted by all **kanbis** and this differentiating feature bacame an integrative one. However, even today the distinction of rank between the two terms continue to exist.

The **Patidars** of the **Charotar** region in Kaira district were accorded the highest respect in the community. There were two main groups among the **Patidars.** The **Leva Patidars** and the **Kadva Patidars;** some traced the origin of these names to the two sons of **Lord Ram** (**Lav** and **Kush**). As in the case of many other castes the genealogists seem to have been at work here also. Others derive these names from the **Narmada** river (called **Reva**) and a division of the former Baroda State (called **Kadi**). The latter theory would imply that the **Kanbis** were originally inhabitants of these areas.

The **Patidars** did not vigorously interact with other castes in thier localities. For the **Patidars** it was enough to know that the Brahmin was above them and the untouchable below. The **Patidars** did not engage the services of any one particular Brahmin caste. Consequently the Brahmins differed among themselves about the relative status of the **Patidars.** Some regarded them as **Kshatriyas,** other vaishyas and still & others Sudras. The **Patidars** were among the few upcoming communities that did not wear the sacred thread. The bania, largely influenced by Jainism and Vaishavism, provided the model for **Patidars.**

During the **Mughal** and **Maratha** rule, some **Kanbis** were appointed **assistant revenue officers.** They were placed in charge of the actual collection of revenue and were given the titles of **Desai, Amin** and **Patel.** These offices gradually became hereditary. Other excerpts from this article are as under :-

PATIDAR RIGHTS

1. In the 19th Century families in certain **Kanbi** villages enjoyed **Patidar** rights. Here the revenue was assessed for the whole village and not for each cultivator. The **Patidars** emerged as principal beneficiaries of the attempts made by the British Administration to increase the land under cultivation. The British officers were also favourably disposed towards the **Patidars** whom they recommended for their industriousness, their skills in agriculture and their lawful ways. They were frequently contrasted with the **Rajputs** who shunned manual work and the Kolis who lived largely on robbery.

2. The **Patidars** fully utilised the irrigation, drainage and transport facilities provided by the British. During this period more and more land came into their hands. By the 1860s there was great prosperity in the **sharehold (Patidar) villages.**

3. A British account of 1879 states : "The best farmers in the district, sober, quiet, industrious and except on such speical occasion as marriages, thrifty........ Among the members of each of these castes (i.e. **Leva and Kadva**) there exists a subordinate division into Patidars originally village shareholders, men of considerable status, and **Kanbis** or simple cultivators. This distinction, though based on wealth and social position and not in variety of blood or race, is sufficiently marked to form an obstacle to intermarriage.

4. Term Replaced : The descendants of these who held **patidari rights** were given the title **Patidar.** Once the original meaning of the term **Patidar** had lost its relevance many **Kanbis** began to call themselves by that name. Finally in 1931 the term **Kanbi** was replaced by **'Patidar'.**

   The widespread use of this term was closely connected with certain socio-economic developments. As noted earlier, certain **Kanbi** villages with **patidari rights** had done remarkably well despite the discrepancies in the preceeding decades. By the mid- 19th Century there were at least 27 remarkably prosperous villages (in Kaira). the families of 15 of these villages and some of the 16th formed an elite of large land owners. Some of them held top positions under the **Gaikward of Baroda** and the princes of **Saurashtra.** The inhabitants of these villages regarded the rest of their castemen as **Kanbi.** Their castemen were quick to adopt a similar attitude. Today every member of the caste who regards himself as **Patidar** is dismissed as **Kanbi** by those above him, while he himself so designated castemen below-him.

5. Toward the end of the 19th Century, Gujarat witnessed severe famine and from 1899 to 1902 plague. Whole villages were wiped out. Many **Patidars** now took advantage of the Centuries - old trade links between their State and Africa and migrated to the latter.

   To began with they accepted any work they could get in the new country. A large number of them served as labourers and clerks. Within half a century, however they had become a prosperous trading community. They invested a large part of their wealth in land in Gujarat. Wealth enabled them to lessen the gap between the wealthy and the poor castemen.

6. This provides us with another insight into the community. Any **Patidar** could raise his social status by increasing his wealth. Another means of doing so was to marry his daughter to those of higher status. Status among the **Patidars** was partly ascribed and partly achieved. No wonder they came to figure so prominently in the freedom movement, so much so that the historian **David Hardiman** has discussed the **Patel** contribution to the nationalist struggle in terms of peasant nationalism.

VOKKALIGAS [Times of India, New Delhi Edition Dt. 1-9-1985]

Much water has flowed down the river Çauvery since **Havanur Commission** made the first systematic attempt to classify backward castes and recommend reservations for them in **Karnataka.**

Mr. Ramakrishna Hedge's government has made the second move by appointing the **Venkataswany Commission**. The task before this commission is stupendous-ten years of vigorous application of the reservation policy which has created a new frame of reference for the backward and other castes.

The revolt against Brahminical orthdoxy in the Karnataka can be traced to the forming of **veerashivanism** (which gave rise to the **Lingayat Community**) by Basava, himself a Brahmin in the 12th century.

The term **"Vokkaliga"** is derived from the kannada word, **"Vokku",** which means "to thrash", Directly "Vokkaliga" means a cultivator. The word appears in the Census of Mysore conducted by the British between 1799 and 1804 and is used synonymously with "ryot" (farmer) and "husbandsman". In the earlier days, Vokkaligas" were not a single community, but a number of quite distinct cultivator castes.

By 1891, **"Vokkaligas"**, had become a catch-call **census** grouping, which included salt makers, cowherds, dyers, extractors of iron. Tamil Vellalas and Telugu group which had a vagrant life-style. Major sub-divisions were Morasu, Kunchitaga, Reddy, Halu and Hallikara. The Census in 1901 and after listed the Vokkaligas as a single categoary without sub-divisions. The princely government used these categories, to deal with various sections of the populations and, of these categories, the Vokkaligs constituted the largest community, a fifth of the total populations.

The first three Chief Ministers of Mysore were Vokkaligas, **Mr. K. C. Reddy, Mr. Hanumanthaiya** and **Mr. Kadilal Manjappa.** Personally they were distinguished men, non-casteist. The ascendary of the Lingayats in the power structure of Mysore, after its reorganisation in 1956, is illustrated by the succession of Lingayat Chief Ministers - **Mr. S. Nijalingappa, Mr. B. D. Jatti, Mr. S. R. Kanti** and **Mr. Virendra Patil.**

The Vokkaligas and Lingayats began to fall apart as the re-orgnization of states came to be seriously discussed in Delhi. The Vokkaligas appeared quite happy with princely State of Mysore, which they dominated. A reorganisation would mean expansion of the State and their strong position would be diluted. But the Karnataka State was formed merging Mysore into it and conseuently the dominance, in the re-organized State of Karnataka of Vokkaligas decreased.

Note : after Assembly elections in Nov. 1994, H. D. Deve Gowda, a vokkaliga, is the Chief Minister of Janta Party.

CENTRAL PROVINCES, DISTRICT GAZETTEERS (1908)
Hoshangabad District, Volume A,
Descriptive by G L Corbett, Asstt. Commissioner, Hoshangabad

THE HISTORY OF KURMIS CASTE IN HOSHANGABAD DISTT.

1. The **Kurmis** number 20,000 or 4% of the population but have only four villages. Elliott describes them as follows: "The **Kurmis** of Hoshangabad are of three classes. The eldest of all are the **Chauria Kurmis,** who profess to have come originally from **Gwalior** about eight generations ago. They are also known as Destri and are spread largely over the Hoshangabad Pargana. The Bundelkhandi Kurmis have been for three or four generations. They are preponderant in Hoshangabad, but there are a few also in **Sohagpur, Seoni** and **Harda.**

2. The **Pardesi Kurmis** came from **Patan, Bihar** in the **Rae-Bareli District** of **Oudh,** three generations ago and occupied the newly reclaimed villages of the **Zamani taluka** under the hills. They are by for the best cultivators in the district as might naturally be expected from their having come most recently from the well tilled fields of Oudh. Though they neither manure and irrigate in general, they spend more labour on preparing the land and their fields are cleaner and better kept than any others and they are only of the regular cultivationg castes who plant sugar cane and sow garden crops.

3 These **Kurmis** are ralated to **Pardesi Kurmis** of **Betul.** they really belong to the **Kanaujia** sub-caste and have now formed two sub-divisions, the Kanaujias proper and the Andhrandas, as to whom the following story is told. A Kanujia Kurmi once went to Hyderabad and did not return for a long period. Finally the news was received that he was dead and his family set about to perform the furneral ceremonies. But while his wife's bangles were being removed from one hand to show that she was a widow her husband come back home. Woman was thus considered to be a half window and her family developed into a separate sub-caste. Women of the **Andhranda (अधरांड़ा)** only sub-caste wear bangles on one hand.

4. **Kurmis** women are strong and industrious and of great help to their husbands in cultivation. These men, who can afford it therefore marry two three wives. Divorce is not allowed on any ground but that of infidelity. At a divorce the caste committee direct that a piece of the husband's pagri should be cut off and the women's anchal or that part of her cloth, which covers her breasts. The term **Anchal Katni (अंचल कटनी)** has come to be used to signify a divorce.

CENTRAL PROVINCES, DISTRICT GAZETTEERS (1907)

Betul District, volume A

Descriptive Edited by R. V. Russell I. C. S.,

The **Kunbis** are the most numerous caste in the District next to the Gonds. They are immigrants from the south or Maratha country and probably entered Betul in the 17th or 18th

century. They are the principal cultivators in all the best villages of the trap plateau, except those situated immediately around **Betul,** and in the part of **Multai** tehsil, lying between **Ramli, Dunawa, Barkhed, Mails** and **Kurmis** do not improve their villages. So often Most of the **Kunbis** of the District belong to the Lonhare, sub-Caste and derive their name from **lonar Mehkar** place in the **Buldana District** of **Berar**. The Salt lake of Lonar lies surrounded by hills and is the fabled den of the demon giant **Lavanasur**, who was cv -come by **Vishnu,** and is buried beneath the lake, whose salt water is supposed to be his blood. The **Tiroles,** another sub-caste, who in Wardha rank as the highest, that their ancestors were **Rajputs,** who came from Thero in **Rajputana** and were merged in the **Kunbi caste** taking to cultivation.

A Kunbi marriage takes two days and a night to perform. On the first day the bride and bride groom are seated together, and as the sun sets, drums are beaten and rice juar are thrown onto their heads. On the second day a leaf of the Pipal tree and a piece of turmeric are tied by a string around both their wrists. They are seated in the centre of a square made of four plough yokes and the untying of the string by the officiating Brahman constitutes the essential and binding portion of the marriage. Among the **Lonhare** subcastes a curious ceremony is performed after the marriage.

The **Kunbi** is a great believer in spirits and ghosts and is always careful to worship them to avoid their displeasure. A proverb says **Brahmans die of indigestion, Sonars from bile and Kunbis from ghosts. The Brahmans are always feasted as an act of charity and given the best food, so that he overfeasts himself, while the Sonar gets bilious from sitting all day before a furnace.**

The **Kunbi** women are very strong and do a lot of field work. The Kurmis are only about half as numerous as the Kunbis and they also own about half as many villages. Their cultivation is generally superior and they are better off. The caste men have immigrated into **Betul** from the north, some coming from **Malwa** and others from **Oudh,** the latter as already mentioned having settled in the District little more than 100 years ago, on the grant of an estate to the ancestors of the Betul proprietory family. These are called **Pardesi Kurmis** or foreigners, while those coming from **Malwas,** who are found in the north of the District between **Shahpur** and **Ranipur**, are called **Dholewar** from **Dhola**, a town in Rajputana. These latter are the earliest immigrants and are sometimes called **Deshi Kunbis** or Kunbis of the soil to distinguish them from the latter Maratha Kunbis. They are not really **Kunbis at all,** but the **Kurmis and kunbis,** who are **the great cultivating castes of Hindustan and the Deccan respectively, are sometimes** confused the **Kurmis** do not eat fowls and their women wear Saris.

CENTRAL PROVINCES, DISTRICT GAZETTEERS (1910)
Drug District, Volume A
Descriptive Edited by A. E. Nelson, I. C. S.

THE HISTORY OF KURMIS' CASTE IN DRUG DISTRICT

1 Among the **Kurmis** the proprietors of **Bimbhori** are the most prominent. **Jagdeo Singh** of **Bimbhori** has four villages in the **Bemetara tahsil** and has recently purchased the **Sonakhan (सोनाखान)** estate in **Raipur**. This estate was confiscated for the misconduct of the Zamindar of Sonakhan in the Mutiny, and was subsequently sold to a **European** firm which owned it for many years and prospected for gold, but as the turn out was not encouraging, finally parted with the estate. Sonakhan means gold mine. **Jagdeo Singh's** brother, **Tularam** is a graduate of **Calcutta University** and a **Tahsildar** in Government services.

2. The **Kurmis** of **Thanod** were formerly managers of the **Balod** and **Sanjari Parganas, Santokh Singh** of **Thanod** has 14 villages, and has obtained the **Kaiser-i-Hind medal** of the second class. The proprietor of **Kathotia** in the **Bemetara** tahsil, **Ram Sahai Kurmi**, has nine villages and is considered to be a good landlord. The **Kurmi proprietor** of **Khanda Tejram**, is the local leader of the caste. His ancestor collected supplies for the **Bhonsla army** during an invasion of **Bastar** and was rewarded with a grant of property. The family now have four villages.

C. H. PHILIPS' "POLITICS AND SOCIETY IN INDIA

"The **Kammas** are a caste of prosperous farmers, who are said to own about eighty per cent of fertile delta land of Krishna Godawari Delta. their caste status approximately equals that of the other main Telugu cultivting castes of **Kapu** and **Reddi**. The **Kammas** like the **Reddis**, pride themselves in the tradition of having been warriors in the armies of the **Andhra kings**, and they tend to claim **Kshattriya status.**

THE GAZETTEER OF INDIA, COUNTRY AND PEOPLE (1973)

"In many parts of rural India there exist castes, which are locally numerically preponderant, own the bulk of the arable land, occupy a fairly high position in ritual hierarchy and yield power over the other castes, examples of such castes are **Jats, Ahirs, Kurmis** and **Rajputs** in the North, **Patidars in central Gujrat, Marathas in Maharastra, Kamma and Reddi in Andhra Pradesh.**

HISTORY OF THE CENTRAL PROVINCES & BERAR (Ist. EDITION) BY J. N. SIL, B. A., L.L.B. (Seori M. P.) - 1917)

"**Marathas** as **Military Race**........... The **Marathas** are a caste formed from military services and it seems proable that they sprang mainly from the peasants, population of **Kunbis,**

who took arms and followed **Shivaji** in his warfare against the armies of **Aurangzeb.** They had lost nothing of the hardy warlike nature for which they were famous in the days of Hwen Tsang."

BOMBAY PRESIDENCY & CENTRAL PROVINCES - KURMIS

"The word **'Kunbi"** and **'Maratha'** are frequently used word, indiscriminately in the Poona District the **Kurmis** (Marathas) and Kunbis are in reality one class of people. The **Kunbi** is fond of asserting his independence the following are some of the proverbs :-

"where it thunders the Kunbi is land lord".

"Crores follow a Kunbi, he follows no one"

William Cooke's TRIBES AND CASTES OF N. W. P. AND OUDH "Kurmis" - their social status is respectable they will not eat **kachchi** even if cooked by a Brahman, who is not his Guru. The same applies to **pakki.** some local Brahman will eat **pakki** from their hands without hesitation."

"The western **Kurmis** have a vague tradition that are descended from and named after **"The Kauravas"** of the great **Mahabharata** war."

"HINDU TRIBES AND CASTES," Vol III, Page 258, "The Unity of The Hindu Race."

"The Kurmis has a strong bony hand, natural to a man of his employment. His complexion is of a deep Mahogany colour, never black nor approaching to it. He is sometimes and in Upper India frequently, tall and powerful, is manly, out spoken and independent in manner."

N. W. P. AND OUDH & BENGAL, Vol. Page 156-157

"In some parts of this country members of this caste have large possessions in land. In the year 1848, out of 31 estates of which the Pargana of **Dhata** in the **Fatehpur District** was composed, no fewer than twenty seven were in the hands of the **Kurumbhis,** there called **Kurmis,** in which circumstances, it was originally conjectured was the chief cause of the thriving conditions of that Pargana."

AZAMGARH GAZETTEER : Page 191-192, Atraulia, Azamgarh (U. P.)

"Sometime before the mutiny the proprietory rights in villages were purchased by **Raja Jailal Kunbi**, who held a high position at the **Court of Lucknow,** and a new fort was built by him. This fort was held at the time of Mutiny by his brother **Beni Madho**, who turned a rebel. The fort was dismantled in November 1857 by **Colonel Longden's Coloumn,** but it was all through the period of the disturbances a rallying place for the **oudh rebels** and it **was in its neighbourhood that Colonel Milman suffered defeat at the hands of Kuwar Singh".**

GORAKHPUR GAZETTEER : Page 286, 1909

"The rise of present town **(Padrauna)** is due to the establishment of the **Padrauna Principality** by the **Kurmis,** who have been settled here for atleast two centuries. In the early days of **British Rule** the **Rai** of **Padrauna** lost much of their estate and fortune but the loss was restored by **Rai Isri Pratap Rai,** who bought the large part of **Padrauna** jungle on the death of **Mr. Sym,** the Original purchaser. The present representative of the family holds the tille of Raja and is one of the largest landowners in the district residing in a fine house near the town."

"The **Kurmi** family of Padrauna traces its descent from one Bhopal Rai"-[Page 119 (1909) same **Gazetteer of Gorakhpur"]**. Now **Padrauna** is an independent new district of **Uttar Pradesh. Late Shri C.P.N. Singh** of Padrauna Kurmi Royalty was elected twice **Member of Parliament** from there and he was a Union Minister too later, when **Smt. Indira Gandhi** was Prime Minister. Later on he was brutally murdered in some landed property dispute.

Appendix-A (History of 4 SIKH)

CHAPTER ONE

The Beginnings

FIRST RAISING

The Battalion was Raised as the Bareilly Levy in 1858. In May 1861 it was redesignated as the 40th Bareilly Regiment of Bengal Infantry. However, in October 1861 the Battalion was renumbered as the 30th Regiment of Bengal Infantry. It is from this date that the 36th SIKHs take their precedence in the Indian Army today, and accounts for the fact that this Battalion is senior on parade to the 3rd Battalion (45th Rattray's Sikhs), who first appear in the Army List as a regular regiment in 1864, though raised as a police Battalion in 1856. The class composition of the Battalion at that time is not known.

In 1864, a new scheme for the composition of the Bengal Native Regiments was drawn. The class composition of the 36th Native Regiment was as follows :

(a)	2 Companies	-	Brahmins and Rajputs.
(b)	1 Company	-	Jats
(c)	2 Companies	-	Ahirs.
(d)	**2 Companies**	-	**Kurmis.**
(e)	1 Company	-	All races and castes.

In 1876 (vide G. O. No. 60), Colours were granted to the Battalion. However, in 1882, 24 years after its first raising, the Battalion was among those seleced for reduction.

THE CASTE SYSTEM OF NORTHERN INDIA

(with special reference to the United Provinces of Agra and Oudh)

BY

E. A. H. Blunt, C. I. E., O. B. E., Indian Civil Service

"With the **Rajput** may be contrasted the **Jat** and the **Kurmi**. The Jat takes a high rank amongst the cultivating races of the provinces. He is simply a slave to his farm....... He never

dreams of taking any service except in the army, he is thrifty to the verge of meanness and industrious beyond compassion.

As far as the Kurmi, he is even more caring in money matters than Jat, though less quarrelsome. Most money lenders amongst the tenantry are Kurmis. It is reported from one registration office in the Basti District, where the Kurmis are particularly strong in numbers, that of the total sum which passes from lender to borrower in a certain Tehsil, the Kurmi contributes a full half. Generally his own indebtedness is small and he has money to put by at the end of the year. His ambition is always the acquisition of additional land. For the rest there is nothing to choose between the Jat and the Kurmi. The Kurmi is always planting whether his crop lives or dies.

PEASANTS, MIGRANTS AND PAUPERS [Oxford University Press 1983] By Jan Breman-Professor of Sociology, University of Roterdom

salient excerpts :

1 The rural upper status of middle and large farmers consists primarily of **Kanbi Patidars**, a caste which is concentrated in the central belt of the famous black soil.

2 As the **Kanbi Patidars** in **Surat District** began to improve their social position since the end of the last century their past history was adjusted to the new conditons. Their not very respectable background become hidden behind the claim of the same name in Kheda District in Central Gujrat. In this area to the north several prominent sections **(Patidars)** had in this course of the nineteenth century already gone through a process of upward social mobility, which ultimately also benefitted **Kanbis** living elsewhere.

3 In the area of ascribed descent itself there are sufficient indications of the early emigration of the **Kanbis** to north Gujrat among other places, where they also established themselves as reclaimers of land (G. Shah 1975 : 24-5). The Trek to the south probably occurred in several waves which can be explained chiefly in terms of economic need. Thus, the **Levas** of **Surat District**-the biggest sub-caste among the **Kanbi Patidars**-trace their arrival in the area back to the famine that prevailed in Charotar Central Gujrat in 1786-1787...... It has become a standard and frequently repeated story that..................... they **(Leva Patidars)** are in majority in this taluka (Bardoli) and they mostly migrated from **Charotar** and surrounding villages (S. D. Patel 1965). Informants from smaller Patidars sub-castes-for examble **Bhakta, Kadva** and **Anjana**-whom I met in **Surat District**, told me that they had originated from north Gujrat."

4 Shortly after the turn of the century a movement for emancipation beginning among the younger generation,put an end to the localized existence of the **Kanbis** and freed them from the stigma of backwardness accompanying that isolation. The derogatory term **'Kanbi'** gradually fell into disuse and by dissociating themselves and by adopting the new caste name **Patidar** they gave themselves the respect they thought due to them and compelled others to follow suit.

5 In the **1931 Census** the Kanbis of Kheda District themselves officially registered as Patidars, and from then on the members of the dominant caste in **Surat District** also wanted to be known by this name. At the beginning of the twentieth century the word **Patidars** hardly ever occurred in school registers, they were recorded as **kanbis,** a custom to which the **Patidar Yuvak Mandal** put an end (A. Bhatt. 1970, "Caste and Political Mobilization in a Gujrat District.)"

6 There was,however, also a consciousness of having interests in common with rising peasants castes elsewhere. As early as 1913, the leader of the **Patidar Yuvak Mandal** visited the **"All India Kurmi Parishad"** and in the same year an article appeared in **"Patel Bandhu"** pleading for natural unity on the basis of shared identity. **'Marathas of Maharashtra, Vokkaligas of Mysore, Reddis of Andhra, Naidus of Madras, are all Patidars, according to the slogan, that was raised (A. Bhatt, 1970 Page 310).**

AIN - A- AKBARI - Translated by Jarrett, Vol. III (1894) **Emperor Akbar's** famous historian and courtier **Abul Fazal** remarks that the **Vaishyas** and **Shudras** are divided into numerous branches. He actually mentions the following castes **Kayasth, Bhar, Bachgoti Chandel, Chauhan, Gaharwal, Gautami, Ghelot, Kausik** and **Raghwanshi** evidently as sub-division among the **Rajputs. Ahir, Lodh, Gujar, Kurmi, Bagri, Mina, Meo,**..............................."

KURMI, KANBI & KUNBI :

These perhaps signify the occupation of the group viz. that the name may be of tribal origin [**G. S. Ghurye,** "Caste and Race in India", Popular Prakashan Bombay, 5th Edition, 1969 page 31.]

THE KURMIS & THE KUNBIS [The Clean Agricultural Castes]:-

J. N. Bhattacharya wrote in his book entitled "Hindu Castes & Sects [Published by S. Ghatak, 12 Krishnaram Bose Street, Calcutta-4 , First Edition 1896, Reprinted 1975, Foreward by **Shri N. K.** Bose, **then Commissioner For Scheduled Castes & Scheduled Tribes, Govt. of India,** Part XIII, Page 216]:-

The most important agricultural castes of Northern India are those called Kurmis and Kunbis. They are divided into many sections which, for practical purposes are independent castes. But the status of these sections, is generally speaking, the same, and they all designate themselves as **Kurmis or Kunbis.** They may be treated, as a single caste. The deviation of their name is not very clear, It may be traceable to some aboriginal language, or to an abbreviated form of the sanskrit compound **Krishi Karmi** which means an agriculturist.

The Kurmi population of India is very large, the total exceeding ten millions (Note : this book was first published in 1896, so the population figure relates to that time). They are distributed as follows :

Bombay	35, 77, 873
N. W. Province	20, 35, 568
Bengal	13, 21, 628
Hyderabad	12, 33, 930
Berar	8, 34, 432
Central Provence	8, 05, 766
TOTAL	98,09, 197

The **Kurmis** are an illiterate class. But they make good soldiers and there are big land holders among them, the poor and landless members of the caste live chiefly by domestic service.

The **Kurmis** have no peculiar surnames but when any one of them attains such wealth or position as to be respected by local people, he would add to his name one or other of the following :-

1 Chowdhury 2 Mahto 3 Mahanto 4 Raut etc.

KURMI-KUNBI-KSHATRIYA
by
Brig Dilbagh Singh (Retd.)

Men or Tribes first were savage and pastoral, then many settled down on land as farmers and thereafter many other professions followed gradually. Warrior tribes ruled India, Asia and elsewhere, who gradually one after other and one over other in succession, pushing each other, usurping each other's lands or villages, finally settled down owning land as farmers or herdsmen; strong in respective pockets; once won by their ancestors and weak where lost or in minority. These tribes were republicans as still are in Pathanistan and Bilochistan under Assembly of clan Chiefs and there were many such republics in Punjab, U P, Bihar. Fertile land of U. P., Bihar came under rule of powerful dynasties, helped by strong Brahaminism (unlike Hinduism) with-their Avtars, Acharyas and Dhams (John Whitney Hall). In India warrior tribes of various grades and shades, own all the land from Hindukush to Kanya Kumari and known under various names, showing mixture of broadly Northerners fairer Aryan Race and Southerner darker called Dravidian and Tribals, with Narbada as general dividing line.

2 Kshatriya, derived from the word Kshetra, field or territory, applied to Vedic Aryans as well as Vedic Dravadian Tribes, those who fought for land and its protection and retention. They were glorified to the highest pitch by bards, Brahamins and writers for self interest, in the same way as they wrote for later rulers, Moghul, Rajputs and British for rewards. Manu Smriti or Manav Dharma Shastra was updated around 6-8th centuray, when North India was overrun by foreigners , and corruptions and interpolations were rampant in later editions. Its Chapter X, Shlokas 20, 22, 43, 44 & 45 states that upto then Regal Castes of **Jhalla, Mala, Licchivi, Nata, Krana, Khasa, Dravida and Kshatriya** Castes of **Paundrakas, Odras Dravidas, Kambojas, Yavanas (Greek), China (Chinese, Gurkha, Naga or Mongols), Kiratas, Dardas, Khasas** were later declared **Vratya** and **Vrsala**, for not following Brahaminical rituals; perhaps on the dictates of some powerful new ritual following rulers or conquerors of **M. P.-Gujrat-Deccan** like **Chalukya** or **Gurjara Pratihara**. Kshatriya therefore included all warrior tribes; whether Vedic Aryans or Vedic Dravidians or the foreigners Scythian Aryans. Many new caste names in History appear thereafter only with Arab-Turkish invasions, the rest of the Kshatriya castes are not mentioned by Smriti by design or by ommission.

3 Manu Smriti, Chapter XI, Shlokas 33-34 ordains that Brahamin's weapon is speech (add pen), muttered prayers and oblations (add curses) with which he is to slay his enemies; Kshatriya by power of his arm; Vaisha by power of wealth and it is declared legal by Manu Chapter X, Shloka 113 ordains that kings be besought by Brahmins, when in distress; and if

he does not give (Dan) he ought to be deserted (in favour of Dani). Chapter X, Shlokas 91 & 92, Chapter XI, Shlokas 25 and many others make most Brahmins as Shudras, but they side track such verdicts when it applies to themselves saying that **Brahmin always remains Brahamin,** by interpretation or later interpolation or ridiculous stories; even if he takes to farming, shopkeeping, labour, domestic cook, dancing singing, telling lies, cheating, putting money on interest and like Manu, Chapter I, Shloka 88, says Brahmin's right is to receive Dan and others to give Dan. Chapter VII, Shloka 158 says," Next king (neighbour) is enemy, one next a friend (next neighbour), the one beyond be treated as neutral (to change as per situation).

4. Kshatriya caste names also appear in Puranas and post Mahabharata Gupta periods, in UP-Bihar-MP i. e. Mid India, which later became Aryavart, after loss of **Sapta-Sindhu** to new tribes, were **Sakya, Buli, Bhagga, Kalama, Koliya, Malla, Moriya, Videhan, Licchivi, Vrij, Puru-Panchala (Puru-Bharatakurus,** including Drupad branch in East UP, **Jarasandh** branch in Bihar); **Rashtrika, Bhojas, Andhra and Abhira. Trigarta, yaudheya** in **East, Malla** or **Mallavas** around Multan, **Samma** in Sindh were famous Republics along river Byas-Satluj to Sarswati-Yamuna (KP Jaiswal, Mahajan). At one time Licchivi Sakya, Mauriya and Vaisala were very powerful in UP-Bihar.

5. Correlating to present clan pockets with numerical strength of various clans in UP of Rajput (34 lakhs), Ahir (39 lakhs), **Kurmi** (18 lakhs), Lodha (11 lakh), Jat, Kachhi, Murao (7 lakhs each), Koeri (4 lakh), Gujar (4 lakhs), Mali (2 lakhs), Saini (0.6 lakh), (Jat, Gujar, Saini are mainly castes of Northern India and Punjab), as per 1911 Census of India, their origin could be traced to one of the above Republics or tribes of Mid India or those mentioned in the Budhist and Jain literature and to puranas, Brahmins were 46 lakhs, Chamars were 58 lakhs, Pathans 10 Lakhs, Turk-Mangol 0.1 lakh. Meo 0.6 Lakhs, Rangars 2 lakhs, Saiyed 2.5 lakhs, Seikh 13 lakhs, were some Moslem castes. One lakh Mughals and 10 lakh Pathans ruled UP with Rajput, Brahmins and Saiyeds as allies, same was in Bihar. These allies obtained many a rent free lands, villages and Jagirs for supplying soldiers collection of revenues and other useful services rendered to Moslem Kings or their local Chiefs.

6. **Kurmi-kunbi** were earlier listed as one caste and are major premier farming tribes of Mid India like Jats (69 lakhs) in Sapta-Sindhu. Upto 1891 Census they were listed jointly but from 1901 (Census is being done every 10 years), they were listed separately. Following figures reveal an interesting phenonmena :

	Census	**Kurmi**	**Kunbi**	**Total**	**Marathas**	**Grand Total**
(a)	1891	I Crore	5 lakhs..	105 lsks	33 lakhs	1 crore 38 lakhs
(b)	1901	38 lakhs	37 lakhs	75 lakhs	50 lakhs	1 crore 25 lakhs
				(-30 lakhs)	(+17 lakhs)	(-13 lakhs)

(c)	1911	37 lakhs (-1 lakh)	45 lakhs (+8 lakhs)	82 lakhs (+7 lakhs)	50 lakhs -	1 crore 32 lakhs (+7 lakhs)
(d)	1921	35 lakhs (-2 lakhs)	31 lakhs (-14 lakhs)	66 lakhs (-16 lakhs)	65 lakhs (+15 lakhs)	1 crore 31 lakhs (-1 lakhs)

7. Population of all castes must increase proportionately in every decade of Census. Kurmis progressively lost by inclusion into **Kunbi, Maratha** or others. **Kunbis** gained in 1911 but heavily lost their number in 1921, is even lower than **Kurmis.** 1931 perhaps will reveal similar trend. Marathas gained from 33 lakhs in 1891 to 50 lakhs in 1901-1911 again to be 65 lakhs in 1921, and their number doubled from 1891 to 1921 in 30 years at the cost of others by inclusion and exclusion of clans and sub-clans, having common names. Like **Jut-Jat** in the North, **Maratha-Kunbi-Kurmi-Dhangar** combine was even a bigger force, in 18th century onward, to overwhelm 6 lakh small community of Rajasthan Rajputs, distributed in 5-6 Parganas and all other Hindu communities elsewhere. By absorbing other elite clans, Marathas, concentrated in Deccan, rose in social order with correponding fall of **Kunbi-Kurmi** and others must have absorbed into Marathas to make it a most dominant force number in Maharashtra, as **Jut** in Punjab and **Jat** in Haryana, each making over 25% of population and over 50% of farmers and owning major slice of land in these three provinces. No where else one farming caste make even 10% of population oppposite.

8. Vegetable growing **Mali (malla** or **Malava** of Multan retreating through Rajasthan, M.P. into Maharashtra) fell in lower order and as minority, on rise of **Kunbi-Patels** and Yadavs by listing in armies of Deccan Pathan Sultans and then under **Shivaji**, a **Bhosle Patel,** as powerful Maratha confederacy. They may be connected with **Jadavas** of **Vidharbha** or **Malla of Multan** as **Yadu Vanshi** or formed lower rung of **Kurmi-kunbi** stock. Flower growing Malis are artisan caste found all over India, like **Teli, Nai, Sonar,** who do not own land or own little land around Palaces and Temple towns for growing flowers for kings and deities as Mala-Kar (i. e. Kar se Mala vanane wale- **कर से माला बनाने वाले**). They are different than Mali as farmer, growing crops or and vegetables. Both Mali, Malawale and Mala (va) got mixed up in name and Census Reports. The later are remanent of Mala (va) Tribes and Republics and have great history of their own in retreat from Multan to Rajasthan. Their coins have been found near Jaipur, when they ruled this area before they fell to Saka-Kushans. Dhangars, who under their Holkar Chief played an eminent role in the 18th century, may be out of Gujar stock of neighbouring North, also fell in lower order before or after, inspite of Royal Holkars. There were some Gujar Chiefs also in the army of Shivaji, besides much talked Mawalis; and where or who are Mawalis today. Lower- higher order is more connected with political rise or fall of clans. The defeated become minority could give lesser Dan, losing their Rajas; and the Calcutta-Kashi-Poona-Panditji put them in lower gradation to please East India Company at Calcutta to divide Hindu Society and gain rewards.

9. British were the first and last one to introduce the caste Census, recording many or earlier known and unknown tribal castes or farming castes, their clans and sub-clans. They did some for Brahmin and Vaishya group and others. In every Census they included or excluded clans and sub-clans of major castes having common clan names like Rajput-Jat-Gujjar in North, **Kurmi-Kunbi-Marathas** in **Mid India**; where every one, under Moghul and Brahaminical gradation, made claim for inclusion in Rajput or Kshatriya in North, Maratha in Mid India, Jat in Punjab, Brahmin or Vaishya group also. Dominant groups, thus found an increase in their numbers in many cases. Census Reports give details in many castes, as Lohar. Tarkhan, Bhat, Nai becoming Brahmin, Teli and sweet-sellers or sellers as Aggarwal-Baniya, and Sonar as Rajput.

10. After 1931 Kunbi (Patidar-Patels) of Gujrat parted as **Patel** under new surname to further deplete Kunbis, strength into a minority.

11. In 1911, Census of India, major Hindu castes were Brahamins (145 lakhs), Chamars (115 lakhs), Ahirs (95 lakhs) Rajputs (94 lakhs), Jats (69 lakhs), Maratha (50 lakhs), Kunbi (45 lakhs), Kurmi (37 lakhs), Kappu (33 lakhs)-i.e. a combine of Maratha+Kunbi+Kurmi+Kappu (total 1 crore 65 lakhs) and so on. Rajputs decreased by 20 lakhs, Jats by 25 lakhs, being muslims and now in Pakistan. This indicates the political strength of each caste by sword or vote. Rajput along with Turks-Pathans ruled North India since 1149 AD, when turks conquered Delhi. Only few dynasties can trace their geneology to 644 or 711 AD, when Arabs came in Sindh or 60 years earlier to end of Ghazani-Harsha time of 606-647 AD or 56 years earlier to the fall of Huns Empire. It is said to be the Rajput Period, though the word RAJPUT appears around **Akbar's** time. It is incorrect to call it a Rajput period though sundary India. Clan Chiefs of Hun-Saka-Kushan, Vedic or mixed lineage established their small Kingdoms all over North India under a confederate name of Med (Mer) Jat, Jat and Bhati, Thakurs of Ghazani and other unknown confederacies.

12. **Kurmis** are in East, in UP, Bihar and **Kunbis** are in West, in Maharashra-Gujrat. They Join in Central Provinces (now MP) and Brar; with **Khandaits, Kappus, Kammas** in South. Where one ends, other starts. In Deccan, **Maratha** arose mainly out ot **Kurmi-Kunbi-Patels** or Village Chief. **Bhosles** were farmers and Shivaji was of Bhosle clan, a branch of **Kunbis,** who rose to Royalty; like Suraj Mal Hindu Jat, Ranjit Singh and Patiala rulers, **Sikh Juts,** around same era. But for their names these castes too do not have any other earlier Kings to pride upon, because their earlier Chiefs, as of all other minority tribes, persecuted or were perhaps absorbed in Rajput fraternity. All Sikh, Jat, Marathas Sidhus, Bhosles, Chohans, Rathores are not Rajas but mostly farmers or foot soldiers with their common projection on land owning big and small Zamindars of or in villages. **Shivaji's** mother **Jijabai** was the daughter of **Jadav Rao,**

a **Yadu** noble of **Sindh-kher,** who trace their origin to **Devgiri Yadava. Yadava** took over after **Rashtrakutas,** who claim **Yadu** decent from **Satyaki. Pulkesin** and **Vidharva Yadava** of Vedic period ruled in some regions earlier.

13. It is a well known fact that the **Kunbis of Gujrat, after Census of 1931, adopted the name of Patidar and after that and also as at present they have switched over to Patel, title of village chief, first as surname and now as caste name.** After the Census of 1931 further caste census could not take place in the year 1941, due to World War II and abolished after 1947, when India got independence. Likewise Ahirs and Goala adopted a common caste name of Yadav, though many famous large Yadava clan abound outside Ahir belt in Punjab. Sindh, Rajasthan. **Patel** is used as popular surname and title by village chiefs in southern part as **Choudhary, Sardar, Rai, Thakur, Malik, Verma, Mukhia** or **Lambardar** are being used in North. **Kunbis** of Gujrat came out of Moslem and Rajput bondage when British took over and started collecting land revenues directly, which led to their rise and corresponding fall of militarily stronger Rajput (Kshatriya) under their then chiefs, who collected revenue from assigned **Kunbi** villages for themselves or for Moslem rulers. One hundred years earlier in Punjab also when Sikh rose to demolish about 800 years old Moslem rule, mainly as jut sikh, whose ranks were strengthened by other Hindu-Sikh castes, farmer became owner of their own ancient lands. Maratha too came out of bondage of Moslem Deccan Sultan, even earlier. With fall and intercine war of Turks, Jats and Sikhs; and then came fall of all of them, including Turks, Pathan, Bloch etc., under British regime. Now fall of these Sword with Latha (लट्ठ) wielding tribal castes is even greater with rise of modern world.

14. **Russel, William Crooke, Census Reports and others write that Kurmis appear to be ANCIENT KSHATRIYA CASTE, showing more of Aryan blood in North, which gradually decreases south-ward, as in case of all tribes, finally merging with local darker races in south by continuous intermarriages. They perhaps have many grades like all other as High-lower grade Rajputs or High-lower grade Brahmins. Some have also taken to business.**

15. After upheavals of Scythian (Kushan-Hun) period, Indian Tribes are where Islamised Arabs or Turks joined them. Med, Jats, Bhats including ancestors of present Baloch, Pathan Rajputs, then of unknown name and other tribal castes of Sapta-Sindhu living in North resisted Arabs and Turks in the years 644, 711, 1000, 1192 AD, for 500 years. Name of Med (or Mer) was wiped off. Castes of Sindh were persecuted severally for resisting for over 200 BC to 550 AD i. e. for 750 years. When Saka Kushan-Hun became a spent force in advance south of Jamuna-Chambal line. Today again people of the Sapta-Sindhu region are facing each other. Jat and Rajputs are powerful on both sides of the river Sutluj and Pathan and Baloch across the river Sindh. Province of Sindh, then included Blochastan (Zabul) or even Kabul.

16. After 100 years of 1192 Turks, Pathans crossed Narbada river into the heart-land of the ancestors of the present **Kurmi, Kunbi, Maratha, Yadava** belt, they over ran Ramchandra Deva Yadava of Devagiri around 1300 AD, under Allauddin khilji, whose converted general Malik Kafoor devastated the whole of Deccan in one advance. After subjugation of 350 years these clans rose in a Confederacy, called **Maratha,** under **Shivaji Bhonsale, Gaikward, Holkar, Sindhia** advanced in south upto Tanjore, in East upto Bengal and in west upto Gujrat. In north Holkars & Sindhias overran Rajasthan states, part of UP and advanced through Delhi to Lahore and Attock after severe losses at the third battle of Panipat (1760-1761). Marathas still held vast terrain upto Chambal. Maratha phenomenon in Deccan is same as Jat phenomenon in Sapta-Sindhu. Pulkesin may be Rashtrakuta if of indigenous stock **(Kunbi-Kurmi-Yadava-Dhangar** stock) or of mixed lineage of Chalukya or Gurjara-Pratihara. He led the confederacy of tribes and tribal chief, as their king and deflated or stopped Harsha at Narbada in 630 AD. **Huien Tsang** then travelling through Maharashtra country writes that- **"People were warlike, vindictive, went into battle making their elephants also drunk, their king was proud."** This fits in the character of the present Marathas and episode of Shivaji Bhonsale, Gaekwad and Sindhia. Sindhia Maharajas gave many villages and land-grants to Marathas, Thakurs and Rajput Chieftains of his domain of M.P. For some reason Harsha Vardhan himself migrated from Thaneshwar across Yamuna to Kannauj, perhaps under pressure of tribes from North. After Harsha's death around year 647, there was no powerful king except later ruler Jaichand of Kannauj in UP, Bihar before arrivals of Turks in Delhi. People were weak and there was no central authority. Tripartite struggle of Gujar-Pratiharas (perhaps mixed but of foreign lineage) of North Rashtrakutas of Mid India (claiming Satyaki Yadavas lineage) and Pallas of Bihar, Bengal, from 8th to 9th centuray for 200 years caused weakness and disorganised state. A lot has been written on Gurjara-Pratihara-Parmaras, who ruled Rajasthan upto Narbada and in the East area of Kannauj. They had constant wars with Rashtrakuta on south of Narbada, who like Marathas invaded upto Kannauj and sometime won and sometime lost to Gurjara-Pratihara and Chalukya. Chalukya did not come upto or even near MP perhaps, and remained in West in Gujrat and adjoining Rajasthan, MP, and western Maharashtra. Mid India therefore fell like a cake on Turkish advance from Delhi after 1192 AD, inspite of powerful tribal castes of ancestors of present **Rajput, Kunbi, Kurmi, Yadavas, Marathas** and others.

17. Sapta-Sindhu i.e. Sindh, Punjab i.e. North India resisted Arabs and Turks for 500 Years, from 711 AD to 1192 AD, came under Moslem influence after 1192 AD. In 1194, UP was over-run within two years. Bukhtiar Khilji conquered Bihar in 1197, within 5 years, and Bengal in 1204, i.e. within 12 years of reaching Delhi. From 644 AD to 714 AD Arabs had already conquered Bilochistan, Sindh, West Punjab upto Multan, but kings and tribes of the rest of the Sapta-Sindhu, Gangetic valley and Madhya Pradesh, all North of Narbada were busy in their intercine wars, without seeing and caring for the dangerous storm in the North-Western side of India.

18. Pathans joined Turks in larger numbers in every invasion train and became rulers of UP, Bihar, placing even two dynasties of Lodhi and Suri on Delhi throne. Turkish Sultan of Delhi were given final jolt by Abdali Pathan. Indian chiefs or clans, who fought, succumbed, wiped off, enslaved, others finally made vassals by Turks and Pathans, later acquired titles of Rajput (Raj-putra) around Akber's time, as loyal clans, perhaps on advice of Brahamins or Moghul Durbaris like Birbal. Earlier titles were Rais or Zamindar and even Rawal, Rana, Thakur, Choudhary for big and small clan chiefs. It was only British, who with the help of paid Munshis, Maulvis and Pandits translated Hindu books, compiled Indian history and wrote on castes, whose names appeared only after 1657, and by 1857 and later. Rajput mostly were those who allied with Turks of Delhi and Pathans of UP, Bihar, and they were given rent free lands; and rest of the land owning castes were made permanent tennants of King or his Jagirdars (**Manu says 'Land belongs to King'**) on their own clan lands in villages, reclaimed; won and owned by their ancestors since times immemorial. Even Brahamins and their private temples were granted rent free villages for some loyal services, rendered in the past. Trading people were given concessions by Akbar and they rarely fought invaders as a class.

19. **Kurmi** and **Lodh** are in tug with **Ahirs**, who are in tug with **Rajputs** and who compete with **Brahmins** and rest too are gearing up to contest in UP and Bihar for political posts fo 140 MPs (new Rajas) and about 800 MLAs (new Wazirs), ignoring vast Class I and Class-II bureaucracy of all types over many lakhs. Against advancing English education and industrial development in the world and in big cities of India, these land owing castes, with illiterate or semi-literate and few literate people had to go a long way to find their share in self-rule to safeguard their class interests, which is farming of various types. Their Creamy Layer, all put together, is small and overwhelmed in towns, by town classes who have advanced in education and industry in last few generations, mostly from a very humble beginning. SC/ST have got their 100% shares in legislature and in bureaucracy by reservation. All other Rurals need to be given their shares, justly and fully, in letter and spirit. Govt. now is **OF mass of people For the rich industry and businessmen By MP-MLAs and Higher Bureaucracy,"**

20. Ibbatson in **"Punjab Castes"** writes that **"Upper and Yeoman Class"** is of agriculturists owning all the land. Amonst them are over-lords and or rulling clans and others as subject clans, all under their village chief, graded in social layers as per political status won in past or recent past. Gurjar and Rajput of West Punjab were pastoral people like Pathan and Biloch across river Sindh. "Many a Rajput clans fo Rajasthan and Gujrat are out of Gurjar stock. Where Gurjars end along Yamuna-Chambal, Ahirs take over in East in UP-Bihar and Dhangars, a military caste, take over in MP-Maharashtra. Ibbatson further writes that in Punjab families and clans, whose head rose to political power, on its own strength or as vassal, became Rajput in time. There is a continuous process of Noble changing into Rajput, Farmer into Jats, Purohit

as Acharya and Hawker as Seth and so on. What applies to Punjab applies elsewhere also. **Clans and confederacies won dominant position by sheer sword number; whether Rajput, Jat, Sikh, kurmi or Maratha etc; now game is of vote number.**

21. **Kurmis may trace their origin to Vedic Kurus as well as later Republics as mentioned above. Whatever be the origin, their further progress and interest is same as of all and land owning illiterate, Lathi wielding village tribe; and to ally with other rurals of villages and small towns to face onslaught of Modern India. Rulers have become ruled and ruled have become rulers, commencing with British regime who ended the rule of powerful tribes since ancient times. It has gained momentum after 1947, when those who never ruled and were service classes of village India, have gone three four generations ahead of rural India as migrants to big cities.** Rajput Pathan, Bloch, Turk, Jat, Maratha and Gujar became the worst sufferers in British era except their few figure-head Rajas for notional pride to common clan men. They lost power in India more than in Pakistan now. And all rural classes and rural Hindus need to first control their population to save, land which cannot expand, and to fight for their share in Bureaucracy or Self-governance, because educational field is not level for them compared to urban India of 20% Indians or Hindus. Rural India of 80% Indian or Hindus need to join hands to protect Bharat.

22. **I have writtem above paper, on inspiration from Dr. Dilawar Singh Jaiswar, who is writing a book, in Hindi, entitled-"KURMI CHETNA KE SAU VARSH" I wish him all the success in his effort. His book should be useful not only to Kurmis-Kunbis-Patels-Marathas-Kappus-Kammas, but also to all other farming and non-farming rurals in village and small towns, who make 80% India and Hindus in particular. Let us look beyond caste, class and then whole India that is BHARAT, with Ghunghat, (घूँघट) and not Delhi-Bombay with Jeans and tops (जीन्स एवं टाप्स) Westerners. Amongst my other papers, readers may find "Sapta-Sindhu and History" and "Invaders of Sapta-Sindhu", as useful reading.**

New Delhi
May, 1994

Sd/-
Brig Dilbagh Singh Retd.

सैनी समाज

महाभारत में 'सूर' और 'सैनी' दो चचेरे भाई हुये हैं जोकि संयुक्त शासक 'सूरसैनी' गणतंत्र नाम से महाभारत काल में प्रसिद्ध हुये, जिसे प्रथम प्रजातान्त्रिक प्रणाली के उदाहरण के रूप में भी स्मरण किया जाता है। यह मथुरा के आस-पास का क्षेत्र है।

ऐसा भी विवरण मिला है कि सैनी ने सोमदत्त को हराकर देवकी हरण करके उसका विवाह अपने भतीजे वासुदेव से किया। सोमदत्त का पुत्र भूरेश्वा सात्यकि द्वारा मारा गया। सात्यकि और कृतिवर्मन वृश्निी और अंधक कुलों के प्रमुख थे, जिनका द्वारिका में आपसी युद्ध में वध हुआ था। महाभारत, पारगिटर, पुराणों आदि के द्वारा यह स्पष्ट पता चलता है कि कृष्ण सूर के पौत्र थे तथा सात्यकि सैनी के पौत्र थे। अतः सैनी प्राचीन काल में यदु क्षत्रिय थे।

स्वयं इसी जाति के हैं सेवा निवृत्त ब्रिगेडियर दिलबाग सिंह, सैनी बन्धुओं के बारे में बड़ी प्रामाणिक ऐतिहासिक खोज की है और उससे इस लेखक को अवगत कराया। सैनी प्राचीन क्षत्रिय कबीले के रूप में रहे थे। महाभारतकाल में उनका गणराज्य था, जैसा विवरण ऊपर दिया है। कुरमियों की तरह इनका भी व्यवसाय कृषि और अन्य साग-सब्जी उपजाना आदि रहा है। इनका फूल उगाने और बेचने वाली माली जाति से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है जोकि मल्ला या मलावा बंश से नाता रखते हैं। अतः सैनी और माली को एक जाति करके मानना ब्रिगेडियर साहब के अनुसार त्रुटिपूर्ण होगा। उत्तर-पश्चिमी भारत में सैनी समाज का बड़ा उज्जवल एवं कीर्तिमान इतिहास रहा है और ये सदा अपने-अपने ग्रामीण क्षेत्र में बड़े-बड़े भूपति एवं कृषक रहे हैं। तिजारत की तरफ़ रुझान बहुत कम रहा है। ये लोग अंग्रेजों के जमाने से अधिक से अधिक संख्या में फौज में भर्ती होते रहे और इसके अनेक आफीसर ले0 जनरल तथा मेजर जनरल तक उन्नति करके सेवानिवृत्त हुए और आज भी वे हर स्तर पर पाये जाते हैं। सेना के कारण जाटों और सिखों की सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति हुई। वहीं लाभ सैनी समाज ने उठाया। पर पंजाब और उसके आस-पास के सैनियों की तरह यू० पी० और बिहार आदि में उनकी हालत अच्छी नहीं है। लोकसभा के पूर्व स्पीकर स्व० सरदार गुरुदयाल ढिल्लों भी सैनी थे।

ब्रिगेडियर दिलबाग सिंह का इस लेखक पर अपार स्नेह है उनका सुझाव है कि सब कृषक जातियों तथा कृषि व्यवसाय से सम्बंधित बुद्धिजीवियों एवं आम व्यक्तियों को भी देश की समस्त कृषक एवं ग्रामीण परिवेश में रहनी वाली जातियों के हित में एक साझा मंच बनाना चाहिए, जहाँ अपनी जाति विशेष के दायरे से निकलकर साझे चिन्तन एवं प्रयास द्वारा सबके उत्कर्ष को ध्येय मानकर प्रयत्न करना चाहिये। तब यह जातीय न रहकर राष्ट्रीय विचार मंच का रूप ग्रहण कर सकेगा। ब्रिगेडियर सिंह के अनुसार समस्त कृषि आधारित जातियाँ आदि काल से क्षत्रिय वर्ण की रही हैं। किन्तु हिन्दू समाज के ठेकेदारों के शोषण और कुप्रचार के कारण, उनके उज्ज्वल इतिहास को असत्यता के द्वारा धूल मंडित करने की चेष्टा की, और जो सम्मान उन्हें समाज से अपेक्षित था उससे उन्हें वंचित रखा गया। पर भविष्य में ऐसा होने नहीं दिया जायेगा, पर उसके लिए इसके हरेक घटक का पावन दायित्व भी है, जिसे निभाने से उसे आगे जी नहीं चुराना चाहिये। ब्रिगेडियर सिंह ने कृषक जातियों की मानसिक पीड़ा को, इतिहास को तोड़ने-मरोड़ने को इन पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है :-

जात की खोज में

ब्रिगेडियर दिलबाग सिंह (सेवानिवृत्त)

1 हमारा आगाज क्या है? - हमारा अनजाम क्या है?
इतिहास जानता नहीं - हमारा नाम क्या है ?

2 राज बदल जाय, हुक्मरान बदल जाय,
धर्म बदल जाय, ईमान बदल जाय,

किस्सा बदल जाय, इंसान बदल जाय,
नाम बदल जाय, निशान बदल जाय ।

3 लिखने वाले ने लालच में - इतिहास को बदल दिया,
हुक्मरान की तारीफ़ में - हकीकत को बदल दिया,
जो हारे वो गिरा दिये - बे-नाम से बदनाम किया
कलम को हिला दिया - नाम उसका मिटा दिया,
वंशों का इतिहास बदल दिया - कुछ लिख दिया कुछ भुला दिया,
जात का नाम मिटा दिया - या बदल दिया या दबा दिया,
देखते हैं बड़े गौर से - इतिहास में बयान को,
अब ढूंढ़ते फिरते हैं हम - अपने नाम और निशान को ।

पाद टिप्पणी : उपर्युक्त वर्णन प्रत्येक शोषित एवं पीड़ित जाति अथवा वर्ग वाले के लिये, जोकि अपनी उत्पत्ति तथा पहचान इतिहास के पन्नों में तलाशने में लगे हैं, सार्थक हैं । दूसरे किसी की जाति का बुरा न सोचो, और अपने जाति के साथ होने वाले अन्याय का प्रतिरोध करो ।

परिशिष्ट - 3

* श्री *

कौर्मि वंशावली

श्रीयुत लाला खूबचन्द बलदेव प्रसाद जी
आनरेरी मजिस्ट्रेट व साहूकार
की प्रार्थनानुसार

श्रीमान् पंडित साधुसिंह जी महाराज राजघाट
निवासी ने प्रगट किया है । विक्रमी
सम्वत् 1952 भाद्र शुदि 15 ।।

प्रकाशक :-
गीताँजलि प्रकाशन
बी-6/57 सफदरजंग एन्कलेव,
नई दिल्ली - 110029

प्रथम संस्करण	सन् 1895 ई०
तृतीय आवृत्ति	29 दिसम्बर सन् 1994 ई०

* श्री गणेशाय नमः *

कौर्मिवंशावली प्रारम्भः

यह बात प्रकट हो जो कि संस्कृत में कौर्मि वंशावलि निर्माण करी है तिसकी सरल भाषा बनाकर और मूल संस्कृत रचना को लिखते हैं । संस्कृत का पाठक संस्कृत को विचारेगा और जो संस्कृत को नहीं देख सकता सो भाषानुवाद को देखे ।।

ओं तत्सत् श्रीगणेशाय नमः ।। उमयासहितोदेवः करो-
त्वज्ञाननाशनम् । स्वभालचन्द्रकिरणैः सन्तापंशम यनुसदा।। 1 ।।

भाषानुवाद-ओं तत्सत् इस प्रकार का जो तीन नामों का परमेश्वर का एक नाम है सो सर्व विघ्न का निवारक है तिसको उच्चारण करके श्री युक्त गणेश जी को नमस्कार हो (उमा) श्री पार्वती जी के सहित वर्तमान (देव) श्री शिव जी हमारे अज्ञान का नाश करो और अपने मस्तक स्थित चन्द्र की किरणों से हमारे संताप को सदा ही शमन करो।।

इदिध्यात्वातमनिशं चन्द्रवंशस्यविस्तृतिम् ।
कुतर्कार्णांनिरासाय कुर्वेसज्जनतुष्टये ।। 2 ।।

भा-तिस चन्द्रभाल भगवान् को अन्तःकरण में चिन्तन कर कुतर्क निरास तथा सज्जन तोष के वास्ते चन्द्रवंश के विस्तार को करता हूँ ।। 2 ।।

यद्यपिकूर्म्मवंशस्यैवनिरूपणमपेक्षितंकुतस्तत्रैवविवादात्त थापिचंद्रवंशस्य विस्तारनिरूपणेसति तदन्तर्वर्त्तिनःकूर्म्मवंशस्या पिनिरूपणं भविष्यत्येवतस्य चंद्रवंश शाखारूपत्वात् ।।

भा0-यद्यपि हमको केवल कूर्म्मवंश का ही अभी निरूपण आपेक्षित है क्योंकि तिसमे ही विवाद हो रहा है तथापि जब चन्द्रवंश का विस्तार निरूपण करा जायगा तब चन्द्रवंश के अन्तर्वर्तमान कूर्म्मवंश का भी निरूपण हो जायगा क्योंकि कूर्म्मवंश भी चन्द्रवंश की एक शाखा है । इस वास्ते चन्द्रवंश का जहाँ से प्रचार हुआ है तिस मूल से निरूपण करते हैं ।। तथाहि ।।

जज्ञिरेकश्यपोब्रादौ तस्मादत्रिभूत्पुरा ।
विद्युत्तेजः समोलोके जातोऽत्रिस्तपसापुरा ।। 8 ।।
अत्रिचक्षुःस त्पन्नस्तेजसांपतिरीश्वरः ।
आल्हादकोहिलोकाना मौषधीनाच्चपोषकः ।। 9 ।।
धात्वर्थस्यवलात्सोपि चंद्रनामेतिविश्रुतः ।
चदि आल्हादनेदीप्तौचेतिधातोनिष्पन्नत्वेनतस्थचन्द्र नाम त्वमितिबोधम् ।। 10 ।।

भा0 - सृष्टि के आदि काल में कश्यप जी होते भये तिनसे अत्रि ऋषि हुए और अत्रि के चक्षु से सर्वतेजों का पति (ईश्वर) समर्थ सर्व लोक को सुख देने वाला और सब औषधि को पुष्ट करने वाला हुआ तिसका चन्द्र नाम हुआ क्योंकि चदि धातु का सुख तथा प्रकाश अर्थ है तिस धातु से चन्द्र शब्द बनता है और सो अत्रि की चक्षु से पैदा होने वाला आदि राज सर्व को सुख देता है तथा प्रकाश करता है इस वास्ते चन्द्र नाम को धारण करता है -

तत्पत्नीरूपसौभाग्या नाम्नारूपांगनाशुभा ।
तस्यांचनिर्मितःपुत्रो रूपलावण्यसंयुतः ।। 11 ।।
वदान्योवीरजिद्वीरो वरकर्म्मावराननः ।
नाम्नाबुधइतिख्यातो बुधानांबोधकारकः ।। 12 ।।
पुराणेषुचसर्वेषु विश्रुतोवरदोविभुः ।
तत्पुत्रःश्रीमतांश्रेष्ठः पुरुरवोमहामतिः ।। 13 ।।

भा0-तिस आदिराज चन्द्र की रूप तथा सौभाग्य से संपन्न रूपांगना नाम से विख्यात श्रेष्ठ गुण युक्त पत्नी होती भई तिस पत्नी से अत्यंत दिव्य रूप पुत्र निर्माण करा बुध तिसका नाम था और सो स्वयं वीर होता भया और सो बुध बुद्धिमान पुरुषों को बोध करने वाला सर्वपुराणों में प्रसिद्ध सामर्थ्य युक्त वरदाता है और तिसका श्रीमान् पुरुषों में उत्तम पुरुरवा पुत्र महाबुद्धिमान होता भया ।। 13 ।।

पुरुरवात्त्रपुःपुत्रो ह्यनुजोह्यायुरित्यभूत् ।
स्कन्दपुराणे सह्याद्रिखन्डे० आदिरहस्ये० अ० 30
एतेषुश्लोकेषुप्रथमः कश्यपः ततोअत्रितस्माचन्द्रः तस्माद्बुधः तस्मात्पूरुरवाः ततस्त्र्पुःआयुश्चनिर्णीतः ।। अग्रेत्रपोःपुत्र मात्रादीनाँ बामनामक कुशनामकादीनांविस्तारःतत्रैवस्कान्दे । निरूपितः ।। तत्रापित्रपुवंशविस्तारकाणांप्रशंसाबोधकाःश्लोकाः सन्ति ।। तथाहि । धऽतिमंतोमहावीर्य्यालोकविख्यातपौरुषः ।। 38 ।। देवीभक्तामहात्मानो ब्राह्मणातिथ्यकारकाः । दाननिष्ठास्तपोनिष्ठा वेदशास्त्रनुचिन्तकाः ।। 39 ।। एषांहिवंशाविस्तारो जातोवैवसुधातले ।।

भा0-और पुरुरवा नामक राजा का त्रपु पुत्र हुआ और तिस त्रपु का कनिष्ठ भ्राता आयु नाम वाला होता भया फिर पश्चात् त्रपु तथा आयु के वंश की विशेष करके प्रवृत्ति होती भई तिसमें इतना विचार है जो कि आयु के वंश का विस्तार महाभारत में विशेष करके निरूपण करा है । त्रपु के वंश का इस स्कन्दपुराण में निरूपण करा है । त्रपु का पुत्र बाम और पौत्र कुश होता भया । इनके वंश के विस्तार करने वालों की स्तुति भी स्कन्दपुराण के दो श्लोकों में करी है । धीर्यवान् और अत्यन्त पराक्रम वाले तथा लोक में प्रसिद्ध पुरुषार्थ वाले दीर्घ दृष्टि महात्मा भगवती के भक्त होते भये और ब्राह्मणों से आतिथ्य करने वाले और दान तथा तप में 'निष्ठापूर्वक वेद शास्त्र का चिन्तन करने वाले होते भये । ऐसे महान पुरुषों का वंश जगत में प्रसिद्ध है सो तिस वंश का विस्तार अब तक पृथिवी में विख्यात है ।।

एतेषाँदेवीभक्तानां मध्यएवकूर्मवंशस्यनिरूपणांकृतम् । तथाहि ।

मालमालिनीभक्तस्य कूर्म्मनाम्नोऋषेःकुले ।। 64 ।। जातः प्रथमतोराजा प्राणनाथइतीरितः । तस्यवंशेनृपोयज्ञेबाहुशाली इतीरितः ।। 65 ।। तदन्वयेनृपोजातो दीर्घबाहुरितिश्रुतः । तस्मातच्ववीरसेनाद्या बभूवुः प्रीतिविर्द्धनाः ।। 66 ।। स्कन्द पुराणे० आदिरहस्ये सह्याद्रिखण्डे० अ० 33

भा-पूर्व युक्त प्रभाव युक्त इन देवी भक्तों के मध्य कूर्म्म ऋषि के वंश का निरूपण करा है । माल मालिनी भगवती के कूर्म्म नामक ऋषि के कुल में प्रथम प्राणनाथ नामक राजा हुए और तिसके वंश में बाहुशाली राजा हुआ तिसके वंश में दीर्घबाहु नामक राजा हुए तिससे संसार में अपनी प्रीति वर्द्धक वीर सेनादिक होते भये ।। यह श्लोक कूर्म्म वंश के कहने वाले स्कन्द पुराण के सह्याद्रि खण्ड के आदि रहस्य प्रकरण में 33 अध्याय में लिखे हैं, जिसको देखने की जरूरत होवे सो देख लेवे ।।

अमिस्त्नवंशेयेप्रारानाथादयस्तेषां कौर्म्मिरित्याख्याकूर्म्मस्यर्षेः साक्षात्परंपरयावाअपत्यत्वेन तद्वंशेप्रविष्टत्वात् । यथा युधिष्ठिरपरीक्षिज्जमेजयादीनां सर्वेषांपाण्डवइति संज्ञा कुत अभयत्रापत्यबोधक प्रत्ययस्यविद्यमानत्वात् । इयांस्तुविशेषः पाण्डुशब्दे तस्यापत्य मिति पारिानिसूत्रेण अराप्रत्ययस्तथा चपाणडवइति शब्दप्रयोगोभवतिकूर्म्मशब्दस्याकारान्तत्वेनअतइ इतिपूर्वसूत्रसमानार्थेनसूत्रेराञइप्रत्ययान्तत्वेकौर्म्मिरित्ये वभवति ।

भाव0-इस वंश में जो जो प्राणनाथ आदि राजा हुये हैं तिन सर्व की कौर्मि इस प्रकार संज्ञा हुई क्योंकि कूर्म्म ऋषि के साक्षात् अथवा परंपरा से अपत्य होने से तिसके वंश में प्रविष्ट हैं जैसे युधिष्ठिर आदिक और जनमेजय तथा परीक्षित आदिक सर्व पाण्डव नाम से बोले जाते हैं क्योंकि साक्षात् अथवा परंपरा से पाण्डुराजा की अपत्य नाम संतान हैं । इसी प्रकार सर्व प्राणानाथादिक तथा तिनकी सन्तान सर्वथा कूर्म्म ऋषि की सन्तान होने से कौर्म्मि बोले जाते हैं पाण्डु तथा कूर्म्म शब्द से अपत्य अर्थ में प्रत्यय है परन्तु इतना विशेष है पाण्डु शब्द में (तस्यापत्यम्) इस करके अण् प्रत्यय होने से पाण्डव यह शब्द प्रयोग होता है और कूर्म्म शब्द को आकारान्त होने से अतइञ) इस सूत्र से इञ प्रत्यय होता है इससे कौर्म्मि शब्द प्रयोग होता है ।।

यद्यपिवर्त्तमानकालेतज्जातौ कुलमीकुरमीत्यादि शब्दानाँ प्रवृत्तेविद्यमानत्वात् कथंनिश्चीयतइयंजातिःकूर्म्मवंशीयातथापि प्रथमाध्यायस्यप्रथमान्हिके माहभाष्ये ।। एकैकस्यशब्दस्य वह वोऽपभ्रंशाः तद्यथागौरित्यस्यशब्दस्य गावीगोणीगोतागोपो तालिकादयोऽपभ्रंशाः इत्युक्तंतथाचकौर्म्मिरित्याकारकशब्दस्य कुलमीकुरमीत्यादयों देशभाषयाऽपभ्रंशतांप्राप्ताइतिनकाचिदनुप पात्तिरितिबोध्यम् ।।

भाव0 शंका-इस वक्त तो इस जाति को लोग बहुधा कुलमी कुरमी इत्यादि नामों से बोलते हैं । तब यह निश्चय कैसे हो जोकि यह जाति कूर्म्म ऋषि के वंश की है ।। उत्तर ।। व्याकरण महाभाष्य में लिखा है जोकि एक एक शुद्ध शब्द के बिगड़े हुये शब्द बहुत होते हैं जैसे गौ इस शुद्ध शब्द के गावी गोणी गोता गोपातलिका आदिक (अपभ्रंश) बिगड़े हुए शब्द है तैसे कौर्म्मि इस शुद्ध शब्द के कुलमी कुरमी कुर्मी इत्यादिक देश भाषा की बोली चाल से बिगड़े

शब्द हैं ।। परन्तु अपभ्रंश शब्द भी अर्थ बोधक हैं इस वास्ते कौम्मि शब्द में किसी प्रकार की अनुपपत्ति नहीं ।। इन कौर्म्मि लोगों में जो क्षत्रिय जाति के शूरवीरता प्रगलभता धीर्य्यता चातुर्य्य युद्ध से न भागना दान ईश्वर भावादिक गुण हैं वह सर्वही वर्त्तमान हैं । इस वास्ते इस जाति का चन्द्रवंशी क्षत्रियों में अन्तर्भाव है ।। क्योंकि कूर्म्म ऋषि की संतान प्राणनाथ आदिक क्षत्रिय शास्त्र परिपाद्य हैं और प्रधान पुरुष के नाम से कुल में प्रसिद्धि होती है जैसे प्रधान रघु के नाम से सर्वजाति मात्र पुरुषों को राघव नाम से बोलते हैं । इसी प्रकार सर्वजाति में कूर्म्म शब्द की प्रतीति होती है। इससे यह जाति चन्द्रवंश की एक शाखा कूर्म्मवंशी क्षत्रिय हैं । जब ऐसा हुआ तब इस जाति को कूर्म्म ऋषि की संतान से पृथक मानने में प्रमाण नहीं क्योंकि लोक परंपरा से प्रसिद्ध परम प्रमाण है । इस वास्ते यह लोग कूर्म्म ऋषि से प्रवृत्त क्षत्रिय जाति की श्रेणी के हैं इसमें किंचित भी संशय नहीं करना चाहिये यह वार्ता सिद्ध हुई ।। और किंचित शास्त्रानुनिज्ञ पुरुष यह भी कहते हैं कि इन अढ़ाई श्लोकों से क्या हो सकता है किन्तु यदि कोई दो चार अध्याय में इनकी वंशावली का निरूपण होता तब निश्चय करते । परन्तु यह कथन उनका सर्वथा उपेक्षा करने के योग्य है क्योंकि वहाँ स्कन्दपुराण में तो चन्द्रवंश का ही निरूपण विस्तार से करा है और जो तिस वंश की 77 सतत्तर शाखा हैं तिनका निरूपण संक्षेप से करा है, क्योंकि यदि तिन सर्व शाखान के विस्तार से सर्वपुराण भरजाता इस वास्ते जैसे योगेश्वरी भक्त पद्माक्षादि मुनि प्रचलित शाखान का संक्षेप में निरूपण करा है तैसे मालमालिनी भक्त कूर्म्म ऋषि प्रचलित कौर्म्मि शाखा का भी संक्षेप से निरूपण करा है । किंचित ऐसे भी कहते हैं जोकि मालमालिनी देवी तथा कूर्म्म ऋषि कल्पना करके यह वंशावलि कल्पना करी है परन्तु यह कथन उनका अज्ञान मूलक है क्योंकि स्कन्दपुराण में सतत्तर ऋषि चन्द्रवंश की शाखान के प्रर्वतक लिखे हैं तिनके मध्य छियालिसवां कूर्म्मऋषि है । यदि कूर्म्मऋषि को कल्पित कहेगा तब तिससे भिन्न 76 छियत्तर ऋषि भी कल्पित ही होने चाहिये इस वास्ते प्रमाणित लेखकों को कल्पित कहने वाला ही विचार शून्य है ।। अब जो स्कन्दपुराण से सह्याद्रिखंड में चार अध्यायों में सतत्तर ऋषि चन्द्रवंश की शाखान प्रवर्त्तक लिखे हैं तिनके क्रम से नाम लिखते हैं जिन नामों को देखने से कूर्म्म के ऋषि होने में संशय निवृत्त हो जाय ।। तथाहि ।। योगेश्वरी भक्त पद्माक्ष मुनि ।। 1 । महालक्ष्मी भक्त च्यवन मुनि ।। 2 ।। एक वीरा भक्त गौतम मुनि ।। 3 ।। कालिका भक्त कौडिन्य मुनि ।। 4 ।। पद्मावती भक्त सौनस मुनि ।। 5 ।। कुमारिका भक्त चम्पक मुनि ।। 6 ।। का-भक्त कश्यप मुनि ।। 7 ।। जगदम्बा भक्त बसिष्ट मुनि ।। 8 ।। यह अष्ट ऋषि इकतीस के अध्याय में लिखे हैं । सरस्वती भक्त विश्वामित्र मुनि ।। 9 ।। बागीश्वरी भक्त अत्रि ऋषि ।। 10 ।। यह दो ऋषि बत्तीस के अध्याय में लिखे हैं । ललिता भक्त भारद्वाज मुनि ।। 11 ।। हिरण्यास्या भक्त हिरण्य ऋषि ।। 12 ।। चण्डिका भक्त हारित मुनि ।। 13 ।। रेणुका भक्त देवराज मुनि ।। 14 ।। महाकाली भक्त भूचण्ड मुनि ।। 15 ।। तामसा भक्त अंगिरा मुनि ।। 16 ।। इन्द्राणी भक्त गार्ग्य मुनि ।। 17 ।। ब्रह्माणी भक्त माण्डव्य ऋषि ।। 18 ।। पद्मावती भक्त सौनस्य मुनि ।। 19 ।। नीलाम्बा भक्त पार्श्वत मुनि ।। 20 ।। कोलाम्बा भक्त प्रियर्षि ।। 21 ।। अम्बा भक्त वृद्ध विश्नुमुनि ।। 22 ।। बागीश्रवरी भक्त वैवस्त मुनि ।। 23 ।। रक्ताक्षी भक्त भद्र मुनि ।। 24 ।। महादेवी भक्त कृपायु मुनि ।। 25 ।। तामसी देवता भक्त चामर मुनि ।। 26 ।। वज्रिणी देवता भक्त मार्कण्ड मुनि ।। 27 ।। मातृनंदा भक्त वालभ मुनि ।। 28 ।। लीला देवी भक्त पूतिमाक्ष मुनि ।। 29 ।। जलवेध्याभक्त जांबील मुनि ।। 30 ।। मोहिनि देवता भक्त वैलक्ष मुनि ।। 31 ।। भद्राभक्त चैतन मुनि ।। 32 ।। उर्शिला देवता भक्त जमदग्नि मुनि ।। 33 ।। योगेश्वरी भक्त भानु ऋषि ।। 34 ।। अरुण देवता भक्त सोम मुनि ।। 35 ।। वर्णाक्षी देवासुर भक्तना नाभि ऋषि ।। 36 ।। करालदेवता भक्त दुंदुभि मुनि ।। 37 ।। पानमालिनी भक्त द्रविण ऋषि ।। 38 ।। चंपावती भक्त गोप ऋषि ।। 39 ।। दुर्गा भक्त कुमार मुनि ।। 40 ।। ईश्वरी देवता भक्त कुमार मुनि ।। 41 ।। वीरेश्वरी भक्त मित्र ऋषि ।। 42 ।। षड्गुणी देवता भक्त मंडन मुनि ।। 43 ।। पाटला देवी भक्त बकवाल्भ्य मुनि ।। 44 ।। त्वरिता देवता भक्त रोमहर्ष मुनि ।। 45 ।। माल मालिनी भक्त कूर्म्म ऋषि ।। 46 ।। इसी ऋषि के वंश का निरूपण कर रहे हैं इतनी बड़ी ऋषियों की पंक्ति लिखने का इतना तात्पर्य है जो कि कूर्म्म ऋषि प्रामाणिक हैं जिसके प्रथम इतने ऋषि हैं अब इस कूर्म्म ऋषि के पश्चात् जो ऋषि लिखे हैं तिनको भी दिखलाते हैं ।। तथाहि ।। मुंजा देवी भक्त सुकुमार मुनि ।। 47 ।। माहेश्वरी भक्त सावन मुनि ।। 48 ।।

कात्यायनि भक्त शालिवंत ऋषि ।। 49 ।। कात्यायनी भक्त चित्र ऋषि ।। 50 ।। इतने ऋषि तेंतीस के अध्याय में हैं । अप्सरो देवता भक्त अंतरिक्ष मुनि ।। 51 ।। दाडिमा देवता भक्त मत्रस ऋषि ।। 52 ।। बंदना देवी भक्त पारिजाति ऋषि ।। 53 ।। बेश्रवी देवता भक्त पार्वण ऋषि ।। 54 ।। उग्रिणी देवता भक्त अगस्त्य मुनि ।। 55 ।। मोहिनी देवता भक्त शाल्मली मुनि ।। 56 ।। सुवर्ण देवता भक्त अत्रायु ऋषि ।। 57 ।। भैरवी देवता भक्त भोमर्षि मुनि ।। 58 ।। भामिनी देवता भक्त महातप ऋषि ।। 59 ।। जातिका देवता भक्त उपमन्यु ऋषि ।। 60 ।। सौमिनी देवता भक्त शांडिल्य ऋषि ।। 61 ।। दलिनी देवी भक्त विभांडक ऋषि ।। 62 ।। दैत्य नाशिनी भक्त धार्मिक ऋषि ।। 63 ।। प्रभावती भक्त सात्विक ऋषि ।। 64 ।। शिला देवी भक्त ब्रह्मर्षि ऋषि ।। 65 ।। बगला राधक जनार्दन ऋषि ।। 66 ।। भामिनी देवता भक्त विमल ऋषि ।। 67 ।। अमरा राधक भातृ ऋषि ।। 68 ।। चित्र रेखा राधक बारणख्य ऋषि ।। 69 ।। शक्ति देवी पूजक उग्र ऋषि ।। 70 ।। सोमेश्वरी पूजक ब्रमाख्य मुनि ।। 71 ।। महामारी पूजक भाषण मुनि ।। 72 ।। तूलनाख्या राधक सोमर्षि मुनि ।। 73 ।। लालनीका राधक नभ नामक ऋषि ।। 74 ।। पत्रगेश्वरी भक्त वायु नामक ऋषि ।। 75 ।। त्रिपुरा देवता भक्त वामक ऋषि ।। 76 ।। अंत भैरवी भक्त प्रायण्ड्य ऋषि ।। 77 ।। इतने चौंतीस के अध्याय में हैं । इन सर्ववंश प्रवर्तक ऋषि तथा देवतावों के नाम लिखने का हमारा केवल इतना ही तात्पर्य ही है जो कि कूर्म्म ऋषि के लोप करने वाले वाचाल को ऋषियों की पंक्ति मालुम हो जाय सो देखना चाहिये ।। 77 ।। सत्तत्तर ऋषियों की पंक्ति के मध्य 46 छियालीस के स्थान में कूर्म्म ऋषि आया है यदि तिसका निषेध करेंगे तो सर्व ऋषियों का निषेध प्राप्त होवेगा इस वास्ते कूर्म्म ऋषि के होने में किंचित् मात्र भी संशय नहीं। कूर्म्म ऋषि के निषेध करने वाले पुरुष का केवल मिथ्या प्रलाप है जिस प्रकार से हमने वंश प्रवर्त्तक ऋषियों का क्रम लिखा है इसी क्रम के स्कन्दपुराण के सह्याद्रि खण्ड के आदि रहस्य नामक प्रकरण में 31 । 32 । 33 । 34 । इन चार अध्याय में इनकी पृथक-पृथक वंशावलि का निरूपण करा है जिनको इच्छा होव सो देख लेवे ।।

कौर्म्मित्वंचदेवताविष्यकभक्तिमत्वे सतिकूर्म्मर्षिवंशोत्पन्नत्वम् । वंशप्रवर्तकस्यऋषेर्भक्तिमत्वेतद्वश्यानपामपि भक्तियुक्तत्वमुचि तम् । अस्मिन्नर्थप्रमारांतुमनुवचनम् ।। तथाहि । येनास्य पितरोयता येनयाता पितामहातेनयायात्सतांमागतेनगच्छन्न रिष्यते । मनु० अ० 4 श्लोक० 178 ।।

भा0-कौर्म्मि का लक्षण यह है जोकि देवता में भक्तिमान हो और कूर्म्म ऋषि के वंश में उत्पन्न हो क्योंकि वंश के प्रवर्त्तक पुरुष में देवता की भक्ति है इस वास्ते तिस वंश में वर्तमान पुरुषों में भी अवश्य भक्ति चाहिये । अपने वंश के प्रधान पुरुष का मार्ग सर्व को अंगीकार करना उचित है इसी वास्ते मनुजी कहते हैं जिस मार्ग में इसके पितर प्रवृत्त हुये हैं और पितामह प्रवृत्त हुये हैं तिस सत्पुरुषों के मार्ग करके प्रवृत्त होना चाहिये तिसमें प्रवृत्ति से पुरुष परमार्थ से भ्रष्ट नहीं होता तो देवता की भक्ति अनन्त प्रकार की है किसी की सर्व प्रपंच के मूल कारण परमात्मा में भक्ति है और किसी की जगत् रक्षक पुरुषाकार वा ऋषि आकार में भक्ति है सो तीन दीनों में भेद नहीं एक ही बात है जैसे जो बीज है तिसमें सर्वप्रकार की शक्ति है क्योंकि तिस बीज में अंकुर तथा वृक्ष और फूल फल इनके प्रगट करने की शक्ति है इसी प्रकार साकार फल में भी अनन्त बीज हैं तिनमें भी सर्वही प्रकार की शक्ति है तैसे बीच स्थानान्न परमेश्वर के मूल कारण में जो जो शक्ति है सो सो सर्वहा फलन्धानापत्र स्त्री पुरुषाकार विग्रह में भी है । इन तोनों में भेद नहीं इसी वास्ते सत्पुरुषों ने कहा है ।

निर्गुण आप सगुण भी ओही । कलाधार जिन सगली मोही ।।

इस वास्ते शास्त्र विचार शून्य पुरुषों को भेद प्रतीत होता है वास्तव में भेद नहीं । इस वास्तें जिसमें किसी

प्रकार से परमेश्वर में प्रीति है सो भक्तिमान है और किंचित् पुरुष परमेश्वर को सर्व शक्तिमान मुख से कहते भी हैं परन्तु तिसमें अवतार लेने की शक्ति का लोप करते हैं वह पुरुष सर्वथा उपेक्षा करने के योग्य है क्योंकि अथर्वण वेद में परमात्मा को स्त्री पुरुषाकारता का प्रतिपादन करा है ।। तथाहि ।।

त्वंस्त्री त्वंपुमानसित्वं कुमारोउतवाकुमारी । त्वंजीर्णो दण्डेनवचसित्वंजातोभवसिविश्वतोमुखः ।। अथर्वण० का० 10 अ० 4 मंत्र ।। 27 ।।

भा0-हे परमेश्वर आप ही भारती भवानी लक्ष्मी आदि स्वरूप के स्त्री हैं और ब्रह्मा शिव विष्णु आदिक स्वरूप से पुरुष हैं और स्वामी कार्तिकेय सनत्कुमारीदिक स्वरूप से कुमार हैं । आप ही योगेश्वरी से लेकर अंत भैरवी पर्यन्त 77 कुमारी रूप हैं और किसी विशेष कार्य के वास्ते आपही जीर्ण स्वरूप को धारण कर दंड से (वंचसि) गमन करते हैं और विराट रूप को प्रगटकर (विश्व तो मुख) सर्व तरफ मुख वाले होते हैं ।। हमको केवल इतना ही दिखाना है जो कि निराकार तथा साकार दोनों परमात्मा का स्वरूप हैं । इस विषय में विशेष विचार देखना होवे तो सत्यार्थ विवेक का विचार करो । इस वास्ते चन्द्र वंश के प्रवर्तक ऋषि लोगों को देवी भक्त होना उचित है ।।

एवञ्चमालमालिनीदेवीभक्तकूर्म्मर्षिसहितानां चन्द्र वंशप्रवर्त्तकानां महानुभावानांपद्माक्षादिपुरुषाणंदेवीभक्त त्वंयुक्तमेव । तथाच पूर्वोक्तरीत्याकूर्म्मवंशीयानां चन्द्रवंश प्रविष्टत्वेन क्षत्रियत्वेसिद्धेसति देशवृत्तान्तानाभिज्ञस्यभवतां कस्मादेशात् अस्मिनूदेशे निवासार्थमागमनमितिप्रशनस्य सर्वथानवकाशएव ।। कथम् अस्यभारतखण्डस्यचन्द्रवंशीय राजस्थानत्वात् सर्वथाऽत्रैवास्माकंनिवासोनतुमुहंदीयादि वतूदेशांतरादागत्य निवासइति बोध्यम् ।। इति श्रीपीलीभीताख्यनगरनिवासी लाला खूबचन्द्र बलदेवप्रसादा ख्यकौर्म्मिप्रार्थित पंडित साधूसिंहोद्‌धृत कौर्म्मिवंशावलिः समाप्तिमगात् ।। सम्वत् 1952 भाद्र शुदि 15 ।।

भा0- इस रीति से माल मालिनी देवी भक्त कूर्म्म ऋषि सहित पद्माक्ष आदिक पुरुषों को देवी भक्तत्व उचित है । इस वास्ते पूर्व उक्त प्रकार से कूर्म्म वंश में प्रविष्ठ पुरुषों को क्षत्रियत्व के सिद्ध हुए जो देश वृत्तान्त के न जानने वाले का किस देश से तुम आकर यहाँ बसे हो इस प्रकार का प्रश्न सो सर्वथा असंगत है क्योंकि इस स्थान में चन्द्रवंशी राजा सदा से निवास करते हैं । इस वास्ते हम लोग यहाँ के ही रहने वाले हैं मुसलमान ईसाई पुरुषोंवत देशान्तर से नहीं आकर बसे ।।

।। इति कौर्म्मिवंशावलिः ।।

पाद टिप्पणी :- उपर्युक्त "कौर्मि वंशावली" प्रकाशन के प्रेरक एवं अर्थ-व्यवस्थापक श्रीयुत लाला खूबचन्द जी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट और साहूकार पीलीभीत के अनुज श्रीयुत लाला अयोध्या प्रसाद जी का विवाह इस ग्रंथ के लेखक (डॉ विलावरसिंह जयसवार) के पर-पितामह, डा० द्वारिकादास जी की सुपुत्री भाग्यवती देवी से बड़े ठाट-बाट के साथ सम्पन्न हुआ था । अधिक विवरण के लिए इस ग्रंथ में अन्त में दिये लेखक के वंश-वृक्ष सारिणी को कृपया देखें ।

भाषा काव्य वद्ध वंशावली ।

दोहा

वृहद् स्कन्द पुराण महँ चन्द्र वंश शुभ जान ।
कूर्म्मवंशि क्षत्रिय तहाँ निज मुख व्यास बखान ।।

चौपाई

कश्यप सुत शुभ अत्रि महाना । अत्रि तनय चन्द्रमा बखाना ।।
तनय चन्द्रमा बुद्ध सुजाना । बुध के नृपति पुरूरव जाना ।।
नृपति पुरूरव के भ्पु जाये । जासु तनय अनुजायु कहाये ।।
भ्पु के पुत्र पात्र बलवाना । बामकुशाविक नृप जग जाना ।।
दानी तपीं वेद गुण ज्ञाता । वीर्यवान् पृथ्वी के त्राता ।
इनके कुल ऋषि कूर्म्म अवतंसा । चन्द्रवंश की धरे प्रशंसा ।।
प्राणनाथ तेहि तनय भुवारा । बाहुशालि सुत तस्य उदारा ।।
दीर्घबाहु जनमें पुनि आई । बाहुश ले नृपतनय कहाई ।।
दीर्घबाहु सुत कहा मुनीशा । बीरसेन आदिक अवनीशा ।।
ऋषि कूर्म्मज ये नृप सुखदाता । कौर्मि नाम से भे विख्याता ।।

दोहा

यथा द्रोरा से द्रोणि अरु सोरि सूर से होय ।
तथा कूर्म्म से कौर्म्मिसिध अपत्यार्थनहिं गोय ।।

देवी प्रसाद वर्मा
मुस्काबाद, जि0 बाराबंकी (यू. पी.)

परिशिष्ट - 4

BIBLIOGRAPHY - Books on History, Tribes and Castes in India

1. D. Ibbetson; Punjab Castes. 1883 (published in 1916) (Lyall and Barne, Kangra Report)
2. W. Crooke Rep 1974; Tribes and Castes of NW India-UP (4 vols, A-Z)
3. JN Bhatacharya; Castes Hindu and Sects, 1896, Rep 1973
4. Sherring; Hindu Castes and Tribes.
5. J. Wilson; Indian Castes
6. G. Cambell; Ethnology of India
7. J. H. Hutton; Castes in India
8. Illiot; Races of NWP
9. H.H. Risley; Tribes and Castes in Bengal, People of India
10 J. D. Cunningham; History of Sikhs
11. Grant Duff, revised by Edwardes, 1921; History of Marathas.
    Jadu Nath Sarkar 1973; "Shivaji and his Times".
12. Tod; Annals and Antiquities of Rajasthan
13. M. Elphinstone; Ancient India-Hindu and Moslem Period.
14. E. H. Blunt; Castes and Tribes of NWP-UP
15. Malcom; Central India
16. Dalton; Ethnology of Bengal
17. R. V. Russel and Rai Bahadur Hiralal, Rep 1975; Tribes and Castes of C. P.
18. Thurston; Tribes and Castes of South India
19. Sterling; Orissa Brahmins.
20. Berkley; Castes in India
21. Whitney; History of World (Vol. I; India ; Nomads of Central Asia)
22. Illiot and Dowson; History of India (8 vols)
23. History books by VD Mahajan, Smith, Mazumdar etc.
24. FE Pargiter; Ancient Indian Historical Traditions (Vedic period) 1922 Oxford Unversity Press
25. PL Bhargava; India in Vedic Age. (vedic period). 1956
26. KP Jayaswal; Hindu Polity 1924 (Ancient Post Mahabharat Republics)
27. RC Mazumdar; The Vedic Age
28. Hiuen Tsang Travels (by Watter) in 629 AU; Fahien and Itsing.
29. Greek Writers like Mackrindle's India
30. Vishnu and other Purans
31. Manav Dharma Shastras i. e. Manu Smriti
32. Hopkin 1884 and other writers.
33. All India and State Census of 1881, 1891, 1901, 1911, 1921, 1931; Population,

Description And Doings of Castes, And Percentage In Various Professions.

34. Imperial Gazetteer of India, 1908, A-Z
35. T. Postan 1843; Sindh
36. A. Adm 1899; Rajputana States
37. L Von Orlich, 1845; Travernier Travels in India
38. W. Crook Vol I, Rep 1925 ; Travernier Travels in India
39. Parkash A. Raj and others; India - A Travel Survival Kit, 1981 4th Ed 1990; for tourism in India and gives history.
40. Fraser Tytler, 1950; Afghanistan. T. L. Pennell; 1909; Among the Wild Tribe of Afghan Frontier.
41. T.D. Broughton; Maharatha Camp during 1809 (Daulat Rao Sindhia)
42. Mohan Lal travels in North India in 1831
43. Sleeman W.H., Journey Through The Kingdom of Oude".
44. M J Akbar; Nehrus
45. Pannikar K. M.; Hindu Society on Cross Roads
46. Ghurye G. S.; Vedic India
47. Wilkins W. J.; Modern Hinduism
48. Prabhu P. H.; Hindu Social Organization
49. Wiser (W. H.); Hindu Jajmani System
50. Scharmehom; Ethnic Plurality in India
51. Tucson; Ethnic Plurality in India
52. Rostogi P. N. Ethnic Tensions in India
53. Jain R. C.; Ethnology of Ancient Bharata
54. Jan Breman; Of Peasants. Migrants and Paupers, Delhi (1985)
55. David Pocock; "Kanbi and Patidar, A Study of the Patidar Community of Gujrat (Oxford 1972)
56. Chandrasekhar Shastri, "Rastra Nirmata Sardar Patel" (Hindi), Bombay 1963
57. Enthoven R. E., "The Tribes and Castes of Bombay, Vol. II (Bombay 1922)
58. Verma Mukat Bihari, "Loh Purush Sardar Patel (Hindi) (Delhi 1970)
59. Dutt Krishna; "Sardar Patel and the Bardoli movement, Ph. D. thesis Meerut 1972
60. Patel G.I., 'Vithalbhai Patel, Life and Times, Vo. I & II (Bombay - 1950)
61. Rani Dhavan Shankardass, 'Vallabhbhai', Orient Longman Ltd. (1988)
62. Rajni Kothari, Bharat Mein Rajneet, Translated by Ashok Ji, Orient Longman Ltd. (1972).
63. Backward Classes Commission (K. Kalelkar, Chairman) 1953 Report, 3 Vols.
64. Backward Classes Commission (B.P. mandal, Chairman), 1981 Report, 2 Vols.
65. Deshmukh B.D., Chairman, Committee on Reservation for OBC's in Services (1967)
66. Smith V.A., Early History of India
67. Amrit Lal Nagar, "Gadar ke Phool" (Hindi), Rajpal & Sons, Delhi (1982)

परिशिष्ट-5 (क)

सौ वर्षों में महासभा के 37 अधिवेशनों का संक्षिप्त विवरण

क्रमांक	अधिवेशन	तिथियां	अधिवेशन स्थल	अध्यक्ष महोदय	प्रधानमंत्री/महामंत्री
1	पहला	29, 30 दिसम्बर 1894	लखनऊ (यू0 पी0) मोहल्ला मोहसिन गंज	रायसाहब बाबू गेंदनलाल, वकील, फर्रुखाबाद (यू0 पी0)	बाबू राम अधीन सिंह लखनऊ (उ. प्र.)
2	दूसरा	29, 30 दिसम्बर 1895	लखनऊ (यू0 पी0)	बाबू नन्दलाल जी सुपरिन्टेन्डेन्ट चुंगी विभाग लखनऊ	बाबू राम अधीन सिंह लखनऊ (उ. प्र.)
3	तीसरा	28, 29 दिसम्बर 1896	पीलीभीत (यू0 पी0) मोहल्ला इनायतगंज	बाबू मिथिलाशरण सिंह एडवोकेट, पटना	बाबू राम अधीन सिंह लखनऊ (उ. प्र.)
4	चौथा	6, 7, 8, मई 1909	एखलासपुर भभुआ (बिहार)	बाबू मिथिलाशरण सिंह एडवोकेट, पटना	चौधरी देवी प्रसाद सिंह बाराबंकी (उ. प्र.)
5	पाँचवाँ	28, 29, 30 सितम्बर 1909	चुनार मिरजापुर (यू0 पी0)	बैरिस्टर बी0 नागप्पा	चौधरी देवी प्रसाद सिंह बाराबंकी (उ. प्र.)
6	छठवाँ	25, 26, 27 दिसम्बर 1910	पीलीभीत (यू0 पी0)	बैरिस्टर कोटारी वेंकटराव नायडू	बाबू उमाचरण कटियार एडवोकेट, पीलीभीत (उ. प्र.)
7	सातवाँ	27, 28, 29 दिसम्बर 1911	इटावा (यू0 पी0) पुरबिया टोला	बाबू संजीवन लाल सिन्हा हेड मास्टर, पटना (बिहार)	
8	आठवाँ	24, 25, 26 दिसम्बर 1912	बाराबंकी (यू0 पी0)	श्री जे0 सी0 स्वामी नारायण प्राध्यापक, अहमदाबाद (गुजरात)	
9	नवाँ	27, 28, 29 दिसम्बर 1913	अहमदाबाद (गुजरात)	प्रेसीडेन्ट विट्ठलभाई पटेल केन्द्रीय धारा सभा दिल्ली	
10	दसवाँ	27, 28, 29 दिसम्बर 1915	लखनऊ (यू0 पी0)	श्रीमंत सम्पतराव गायकवाड़ अनुज महाराजा बड़ौदा	बाबू राम अधीन सिंह लखनऊ (उ. प्र.)

11 ग्यारहवाँ	29, 30, 31 दिसम्बर 1916	आगरा (यू0 पी0)	बैरिस्टर मगनभाई चतुरभाई पटेल अहमदाबाद	बाबू उमाचरण कटियार एडवोकेट, पीलीभीत (उ. प्र.)
12 बारहवाँ	30, 31 मार्च 1918	फर्रुखाबाद (यू0 पी0)	महाराजा देवास (द्वितीय श्रेणी)	
13 तेरहवाँ	19, 20 21 अप्रैल 1919	कानपुर (यू0 पी0)	महाराजा कोल्हापुर	
14 चौदहवाँ	29, 30, 31 दिसम्बर 1924	सीतापुर (यू0 पी0)	महाराजा देवास (प्रथम श्रेणी)	
15 पन्द्रहवाँ	1, 2, 3 मार्च 1927	लखीमपुर खीरी (यू0 पी0)	महाराजा देवास (द्वितीय श्रेणी)	बैरिस्टर वृन्दावन कटियार फतेहगढ़ (यू0 पी0)
16 सोलहवाँ	27, 28, 29 दिसम्बर 1928	जबलपुर (सी0 पी)	बैरिस्टर वृन्दावन कटियार फर्रुखाबाद (यू0 पी0)	श्री बेचन सिंह (देवास)
17 सत्रहवाँ	27, 28, 29 दिसम्बर 1929	मुजफ्फरपुर (बिहार)	श्रीमंत जगदेवराव पंवार, देवास (प्रथम श्रेणी)	श्री बेचन सिंह
18 अठारहवाँ	19, 20 21 अप्रैल 1930	रायपुर (सी0 पी0)	श्री रामचन्द्रराव अर्जुनराव गोले बम्बई	श्री बेचन सिंह
19 उन्नीसवाँ	4, 5, 6 अप्रैल 1931	पुरुलिया (बिहार)	श्री नामदेव एकनाथ नावले बम्बई	श्री बेचन सिंह
20 बीसवाँ	27, 28, 29 दिसम्बर 1933	हरनौत, पटना (बिहार)	श्रीमंत सदाशिव राव खासे साहब पंवार	श्री बेचनसिंह
21 इक्कीसवाँ	7, 8, 9 अप्रैल 1937	छपरा (बिहार)	श्री बृजनन्दन लाल कटियार एडवोकेट, फर्रुखाबाद	श्री श्याम सिंह (उ. प्र.)
22 बाईसवाँ	7, 8, 9 अप्रैल 1939	मिदनापुर (बंगाल)	बाबू दासू सिंह एडवोकेट पटना	श्री श्याम सिंह (उ. प्र.)

23 तेईसवाँ	7, 8, 9 अप्रैल 1944	इटावा (यू0 पी0)	डा0 पंजाबराव देशमुख होम मेम्बर देवास	श्री श्याम सिंह
24 चौबीसवाँ	7, 8, 9 मई 1948	झारामऊ कानपुर (यू0 पी0)	डा0 खूबचन्द बघेल विधायक, रायपुर (म. प्र.)	श्री गुप्तनाथ सिंह भभुआ (बिहार)
25 पच्चीसवाँ	25, 26, 27, 28 दिसम्बर 1958	कलकत्ता (पं बंगाल)	श्रीमती विमलादेवी देशमुख अमरावती (महाराष्ट्र)	श्री गुप्तनाथ सिंह
26 छब्बीसवाँ	25, 26, 27, 28 फरवरी 1960	रायरंगपुर (उड़ीसा)	श्री रामदीन गौर आई0 ए0 एस0 (सेवानिवृत्त) जबलपुर	श्री गुप्तनाथ सिंह
27 सत्ताईसवाँ	26, 27, 28, 29 मई 1961	होशंगाबाद (म0 प्र0)	श्री कृष्णकुमार देशमुख जबलपुर	श्री गुप्तनाथ सिंह
28 अट्ठाईसवाँ	10, 11, 12 दिसम्बर 1966	नागपुर (महाराष्ट्र)	डा0 खूबचन्द बघेल	श्री गुप्तनाथ सिंह
29 उन्तीसवाँ	27, 28 फरवरी 1 मार्च 1970	नाजिरा (शिवसागर) असम	श्री लक्ष्मण चंद्र सिंह कलकत्ता	श्री गुप्तनाथ सिंह
30 तीसवाँ	30 अप्रैल 1, 2, 3 मई 1971	पटना	श्री डाह्याभाई वल्लभभाई पटेल, सांसद (गुजरात)	श्री गुप्तनाथ सिंह
31 इक्तीसवाँ	23, 24, 25 मई 1976	भंजनगर, गंजाम (उड़ीसा)	श्री बालशौरि रेड्डी मद्रास, सम्पादक 'चन्दा मामा'	श्री सिद्धेश्वर प्रसाद पटना
32 बत्तीसवाँ	10, 11 जून 1978	दिल्ली (रामलीला मैदान)	श्री आ0 के0 अमीन सदस्य लोकसभा (सुरेन्द्र नगर, गुजरात)	श्री सिद्धेश्वर प्रसाद श्री श्याम नारायण कूर्मि एवं 2 अन्य
33 तैतीसवाँ	8, 9 मार्च 1980	झालवा पुरुलिया (पं0 बंगाल)	श्री धनीराम वर्मा रायपुर (म0 प्र0)	श्री सिद्धेश्वर प्रसाद तथा 3 और
34 चौतीसवाँ	29, 30, 31 मई 1981	रायपुर (म0 प्र0)	श्री धनीराम वर्मा रायपुर (म0 प्र0)	श्री सिद्धेश्वर प्रसाद एवं श्री श्यामनारायण कूर्मि

35 पैंतीसवाँ	30 सितम्बर तथा 1, 2 अक्टूबर 1983	बम्बई महानगर	श्री देशराज कटियार फर्रुखाबाद (उ0 प्र0)	डा0 बलिराम सिंह, वाराणसी
36 छत्तीसवाँ	14, 15 फरवरी 1987	सारनाथ (वाराणसी)	श्री महेन्द्र सिंह आई0पी0एस० (सेवानिवृत्त)	डा0 बलिराम सिंह,
37 सैंतीसवाँ	16, 17 मार्च 1991	पटना गांधी मैदान	डा0 बलिराम सिंह (पटेल)	श्री जगदेव प्रसाद कनौजिया पटेल

महासभा के नाम में परिवर्तन

1 सर्वप्रथम **'कुरमी सवर सभा'** का नाम 29 दिसम्बर 1894 को इसके स्थापना दिवस पर लखनऊ में आयोजित अधिवेशन में सर्वसम्मिति से स्वीकार किया गया ।

2 चुनार, जिला मिरजापुर (यू0 पी0) के पंचम अधिवेशन में 28-30 दिसम्बर 1909 को महासभा का नाम **'कुरमी सवर सभा'** से बदलकर **"ऑल इंण्डिया कुर्मी क्षत्रिय एसोसिएशन"** रखा गया, जोकि 7 मार्च 1910 को विधान (नियमावली) के साथ **'अखिल भारत कुर्मी क्षत्रिय एसोसिएशन'** के रूप में बांकीपुर (बिहार) में पंजीकृत हुआ।

3 छपरा, जिला सारण (बिहार) में 29, 30, 31 दिसम्बर 1937 के 21वें अधिवेशन में इसका नाम फिर बदला गया और नया नाम हुआ **'अखिल भारतवर्षीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा"**, जिसमें **'कुर्मी'**, अपभ्रंश शब्द का तत्सम **'कूर्मि'** कर दिया गया ।

4 आगे इस नाम में **'भारतवर्षीय'** शब्द को बदलकर **'भारतीय'** करने से परिवर्तित हुआ, **"अखिल भारतवर्षीय'** शब्द को बदलकर **'अखिल भारतीय'** करने से परिवर्तित नाम हुआ, **"अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा।"**

5 झालदा अधिवेशन 33वें सन 1980 में महासभा के नाम से **'क्षत्रिय'** शब्द हटा दिया । पर अगले अधिवेशन 34वें सन 1981 रायपुर में पुनः जोड़ दिया गया ।

6 महासभा की नियमावली का पालन किये बिना फिर पटना अधिवेशन, 37वें में 16 मार्च 1991, में **'क्षत्रिय'** शब्द महासभा के नाम से हटा दिया गया और अपभ्रंश शब्द **'कुर्मी'** को **'कूर्मि'** शब्द में बदल दिया । पर महासभा अपने नाम को पूर्ववतः **'अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा'** कायम रखे हुये हैं । और वही नाम सब जगह प्रयोग होता है । महासभा की मुख्य पत्रिका पूर्वतः **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'** नाम से ही निरन्तर प्रकाशित हो रही है। यहाँ तक कि **गिरवर, सागर (केन्ट)** (मध्यप्रदेश) से निकलने वाली पत्रिका का नाम भी **"कूर्मि क्षत्रिय जागृति"** है, और जातीय हितों के प्रचार-प्रसार में सर्वश्री रतनसिंह पटेल, उमाकान्त वर्मा तथा रूप सिंह पटेल आदि के नेतृत्व में गत चार वर्षों से वह बड़ा सराहनीय कार्य, कर रही है । वे सब धन्यवाद के पात्र हैं।

महासभा की नियमावली में 100 वर्षों में अनेक परिवर्तन

1 29, 30 दिसम्बार 1894 को हुए 'कुरमी सवर सभा' के प्रथम अधिवेशन के दौरान अन्तिम दिन महामंत्री बाबू राम अधीन सिंह ने सभा के नियम व उपनियम, जोकि उन्होंने रातभर जागकर बनाये थे, पढ़कर सभासदों को सुनाये, कुछ सदस्यों ने सभा के नाम पर मतभेद प्रकट किया, जिस पर सभापति ने हाथ उठवाकर प्रतिनिधियों की राय जानकार निर्णय दिया कि हमारी इस सभा का नाम 'कुरमी सवर सभा' रखा जाये । प्रथम नियमावली यहाँ बनी ।

'कुरमी सवर सभा' के प्रारम्भ में प्रधान मंत्री कहा जाता था वहीं पद बाद में 'महामंत्री' नाम से जाना जाने लगा है ।

2 चुनार अधिवेशन (सन् 1909) में ऐसोसिएशन के पदाधिकारियों के नियमावली सहित संस्था के स्मरणपत्र को बांकीपुर (बिहार) स्थित कम्पनियों के रजिस्ट्रार के कार्यालय में 5 मार्च 1910 को पेश किया गया था । और उक्त रजिस्ट्रार ने प्रमाण-पत्र संख्या 882, दिनांक 7 मार्च 1910 के अधीन इस ऐसोसिएशन को नियमावली सहित पंजीकृत किया था बिहार मशीन प्रेस, बांकीपुर द्वारा अंग्रेजी भाषा में मुद्रित यह एक 14 पृष्ठीय लघु पुस्तिका थी ।

क. ऐसोसिएशन की नियमावली के नियम 2 में कहा गया था, "ऐसोसिएशन का प्रधान कार्यालय अब बांकीपुर में रहेगा, लेकिन ऐसोसिएशन इसे अपने निश्चय द्वारा किसी समय किसी स्थान पर बदल सकेगा ।"

ख पंजीकरण हेतु प्रस्तुत संस्था के स्मरण-पत्र में ऐसोसिएशन के पदाधिकारियों और सदस्यों की सम्पूर्ण सूची दी गयी थी, जिसमें अध्यक्ष का नाम बाबू मिथिलाशरण सिंह वकील, बांकीपुर (बिहार) तथा मंत्री-बाबू बैजनाथ सिंह लखनऊ थे । यह सूची इस पुस्तक में पाँचवें अधिवेशन के विवरण में दी गयी है ।

इस कार्यकारिणी समिति में अध्यक्ष और कोषाध्यक्ष के साथ ही एक उपाध्यक्ष, एक सहायक मंत्री तथा एक लेखा-निरीक्षक, इस तरह कुल पाँच पदाधिकारी बांकीपुर के निवासी थे तथा कार्यालय मंत्री का कोई पदाधिकारी अपने आवास पर प्रधान कार्यालय का संचालन करता होगा । चुनार-अधिवेशन में यह कार्यसमिति, जिसकी अध्यक्षता श्री बी0 नागप्पा ने की थी कि नयी नियमावली के नियम 25 में कहा गया था कि "बी0 नागप्पा महोदय संरक्षक, आम समिति के पदेन अध्यक्ष होंगे । और रायपुर (मध्य प्रदेश) के श्री राम प्रसाद बी0 ए0 उसके मंत्री होंगे । (रजत जयन्ती स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ 7, अंग्रेजी से)।

श्री मिथिलाशरण सिंह द्वारा ऐसोसिएशन के प्रधान कार्यालय का संचालन

ग आगरा (उ0 प्र0) में 11वाँ अधिवेशन दिसम्बर 1916 में श्री मगनभाई चतुरभाई पटेल, वार-एट-लॉ की अध्यक्षता में हुआ, उस समय की अंग्रेजी से मुद्रित रिपोर्ट के पृष्ठ 41-43 पर कार्य समिति के पदाधिकारियों और सदस्यों की सूची छपी थी, उसी से इस पुस्तक में 11 वें अधिवेशन के विवरण के अन्तर्गत दिया गया है । उस कार्यसमिति की सूची से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं- प्रथम तो यह कि ऐसोसिएशन के प्रधान कार्यालय पर स्थित बैंक में ऐसोसिएशन का खाता था, और द्वितीय यह कि बांकीपुर, जहाँ ऐसोसिएशन का प्रधान कार्यालय था, के निवासी केवल कार्यसमिति के अध्यक्ष बाबू मिथिलाशरण सिंह थे । अतः यह निश्चत रूप से पता चलता है कि बांकेपुर निवास से वे ऐसोसिएशन के प्रधान कार्यालय का संचालन करते थे ।

एसोसिएशन का स्थायी अध्यक्ष

इस विवेचना से यह भी स्पष्ट होता है कि अधिवेशनों के अध्यक्ष केवल सम्मानित अध्यक्ष होते थे; जबकि नैत्यिक संगठनात्मक कामों के लिए पृथक रूप से कार्यसमिति के अध्यक्ष होते थे, जो प्रायः बदले नहीं जाते थे । अनुमान होता है कि बाद में कार्यसमिति का अध्यक्ष ही 'स्थायी अध्यक्ष' कहलाने लगा । इस तरह बाबू मिथिलाशरण दिसम्बर 1924 तक ऐसोसिएशन के स्थायी अध्यक्ष पद पर कार्य करते रहे और तब तक प्रधान कार्यालय उनके निवास से संचालित रहा ।

हिज़ हाइनेस महाराजा सर तुकोजीराव पंवार (देवास) द्वारा एसोसिएशन को संरक्षण

सीतापुर (उ0 प्र0) में दिसम्बर 1924 के 14वें अधिवेशन में देवास नरेश (प्रथम श्रेणी) ने सम्मानित अध्यक्ष पद को सुशोभित किया था । अनुमान है कि इस अवसर पर उन्हें एसोसिएशन का स्थायी अध्यक्ष भी बनाया गया। और वे जून 1934 तक, जबकि ब्रिटिश सरकार ने उनको रियासत की गद्दी से हटाया, वे ऐसोसिएशन के प्रधान अध्यक्ष बने रहे और ऐसोसिएशन के नैत्यिक कार्यों का संचालन देवास में प्रधान कार्यालय स्थापित कर करते रहे । इस अनुमान की पुष्टि श्री शिवरामसिंह और स्वामी अभयानन्द की पुस्तक 'कूर्मि क्षत्रिय इतिहास' के पृष्ठ 178 पर 17वें अधिवेशन के विवरण में की गई है, जिसके श्रीमन्त जगदेवराव पंवार अनुज देवास नरेश (प्रथम श्रेणी) अध्यक्ष थे पर लेखक उसी सम्बन्ध में लिखते हैं, "इस समय भारत में साइमन कमीशन का आगमन हुआ था और सम्पूर्ण भारतीयों ने इनका विरोध किया था ऐसे अवसर पर महासभा ने बहुत सोच-विचार कर अपना अधिकार सभा के स्थायी सभापति महाराजा देवास (प्रथम श्रेणी) के हाथ में उचित कार्यवाही करने के लिए सौंप दिया था ।"

तीसरी नयी नियमावली : छपरा अधिवेशन (सन् 1937) में नये सिरे से नयी नियमावली बनायी गयी । दिसम्बर 1958 में महासभा के तत्कालीन प्रधानमंत्री, श्री गुप्तनाथ सिंह ने इसे एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करवाया था। इसकी विशेषताएँ मुख्यतः निम्नलिखित थीं :-

क नियम 4 में केवल एक प्रकार की सदस्यता थी, सदस्यता का वार्षिक शुल्क चार आना (वर्तमान पच्चीस नये पैसे) था । लेकिन कोई आवेदन पत्र निर्धारित नहीं था । जिला सभा सदस्य बनाती थी, लेकिन इसके अभाव में प्रान्तीय सभा या महासभा के प्रधान मंत्री के पास सीधे शुल्क भेजकर सदस्य बनाने की छूट थी ।

ख नियम 5 में आय का 5/8 भाग अपने पास रखते हुए 1/8 भाग प्रान्तीय सभाओं को और 1/4 भाग महासभा को देने की व्यवस्था थी । इसी नियम में जिला सभाओं को हर वर्ष अपने भाग में से 'कुछ रुपये' तहसील सभाओं को देने की छूट है ।

ग इस नियमावली के नियम 31 में हर स्तर की इकाई को विशेष कार्य हेतु विशेष चन्दे की छूट थी और निधि पर नियम 30 का बटवारा लागू न था ।

टिप्पणी : महासभा की यह नियमावली ऐसोसिएशन की पूर्व नियमावली से अधिक विकसित और विस्तृत थी, लेकिन इसमें आय के साधनों को या तो कम कर दिया गया था अथवा खत्म कर दिया गया था और व्यय के तरीकों को अपना लिया गया था । परिणामस्वरूप महासभा आर्थिक रूप से कमजोर होती गयी ।

चौथी नियमावली

झालदा के 33 वें अधिवेशन (सन् 1980) में आमूल परिवर्तन कर नयी नियमावली पारित की गयी। तत्कालीन महामंत्री सिद्धेश्वर प्रसाद ने इस नियमावली को पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया।

इस नियमावली के नियम 4 मे तीन प्रकार की सदस्यता निर्धारित की गयी है - साधारण 2 रुपये वार्षिक, क्रियाशील 31 रुपये त्रिवार्षिक और आजीवन 101 रुपया एक मुश्त। 25 साधारण सदस्य बनाने वाले किसी साधारण सदस्य को क्रियाशील सदस्य होने की सुविधा दी जायेगी।

चौथी नियमावली में नियम संशोधन विधि : इस नियमावली में **'संस्था के स्मरण-पत्र'** के पैरा 1 में संस्था का नाम **'अखिल भारतीय कूर्मि महासभा'** था अर्थात **'क्षत्रिय'** हटा दिया गया था। जबकि नियमावली-संशोधन के नियम 15 में कहा गया था कि **"विधान में संशोधन.... तभी हो सकेगा, जब महासभा के किसी अधिवेशन में उपस्थित $^2/_3$ के बहुमत से और प्रस्तावित संशोधन की पूर्व सूचना सभी सदस्यों को सभा के सूचनापत्र के साथ देना अनिवार्य होगा।"** (मासिक **'कूर्मि क्षत्रिय जागरण'** पटना, अप्रैल-मई-जून 1980, पृष्ठ-12) वर्तमान सदस्यता शुल्क अ0 भा0 कू0 क्ष0 महासभा (अंक 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' अक्टूबर 1993 के अनुसार):-

1	सामान्य सदस्य	रु. 5.00 वार्षिक
2	क्रियाशील सदस्य	रु. 25.00 वार्षिक
3	आजीवन सदस्य	रु. 101.00 एक मुश्त
4	संरक्षक सदस्य	रु. 1000.00 एक मुश्त
5	सम्मानित सदस्य	रु. 5000.00 एक मुश्त

महासभा के स्थायी कोष की स्थापना

1. एक करोड़ रुपये का स्थायी कोष

झारग्राम, जिला मिदनापुर (बंगाल) में 7, 8, 9 अप्रैल 1939 को हुये 22वें अधिवेशन में अध्यक्ष, श्री वासु सिंह, एडवोकेट, उच्च न्यायालय पटना हाई कोर्ट ने अनेक सुझावों में से एक यह भी था कि, **"अपनी कूर्मि क्षत्रिय महासभा को एक पर्याप्त धन-राशि की स्थायी निधि के रूप में कम-से-कम एक करोड़ रुपये फौरन इकट्ठे करने के सम्बन्ध में प्रयत्न करना चाहिए।"** (रजत जयन्ती स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ 368-69, अंग्रेजी से अनूदित)

2. दस लाख रुपये का स्थायी कोष

दिसम्बर सन् 1958 में कलकत्ता में हुये महासभा के 25 वें अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए स्वागताध्यक्ष, श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह ने अपना पाँच सूत्रीय सुझाव दिया, जिसके सूत्र 1 में उन्होंने कहा कि **'महासभा के सम्यक संचालनार्थ महासभा-कोष के लिए तत्काल दस लाख रुपयों की आवश्यकता है, जिसे हमें संग्रह करना होगा।"**

3. (रजत जयन्ती स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ 423 अंग्रेजी से अनूदित)

एक संचित कोष की अपील गंजाम (उड़ीसा) को महासभा के अध्यक्ष, श्री बाल शौरि रेड्डी, सम्पादक-मासिक **'चन्दा-मामा'** मद्रास ने महासभा का बीस सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया। जिसके सूत्र संख्या 7 और 11 में उन्होंने कहा कि "(7) (कूर्मि) समाज के पास एक संचित कोष या निधि हो, जिसके द्वारा सामाजिक कार्यक्रम चलाया जा सके। (11) (कूर्मि) समाज की सम्पत्ति के एक भी पैसे का दुरुपयोग न हो, प्रत्येक पैसे का समुचित हिसाब हो। उस सम्पत्ति का दुरुपयोग

होने पर सम्बद्ध कार्यकर्त्ता पर आवश्यक कार्यवाही की जाय । (मासिक कूर्मोदय, पटना, जून 1976 अंक, पृष्ठ 4)

4. एक लाख का स्थायी कोष

26 नवम्बर 1978 को श्री महादेव प्रसाद वर्मा, सदस्य राज्य सभा के नयी दिल्ली आवास पर अध्यक्ष श्री आर0 के० अमीन, सदस्य लोकसभा (सुरेन्द्रनगर-गुजरात) की अध्यक्षता में महासभा की कार्यसमिति की बैठक में 'एक स्थायी कोष संग्रहण' पर विचार हुआ । तत्काल बिहार को 40 हज़ार रुपये और उत्तर प्रदेश को 60 हजार रुपये संग्रह करने का भार दिया गया निर्णय लिया गया कि अगले 6 माह में यह एक लाख रुपये की राशि संग्रह की जाएगी, (मासिक कूर्मि क्षत्रिय जागरण दिसम्बर 1978, पृष्ठ 29 पटना)।

5. दो लाख का रुपयों का स्थायी कोष

मासिक 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' पटना, सितम्बर 1980, पृष्ठ 10 के अनुसार दिल्ली में 9 अगस्त 1980 को अध्यक्ष, श्री धनीराम वर्मा की अध्यक्षता में हुई कार्यसमिति की बैठक में निश्चय हुआ कि 'दो लाख रुपयों की एक स्थायी निधि की स्थापना की जाय ।' प्रयत्न किये गये पर स्थायी कोष आज तक भी संग्रहीत न हो सके ।

अगले 13 वर्षों में भी अनेक प्रयत्न किये गये, समय-समय पर अनेक अपीलें जारी की गईं पर परिणाम क्या निकला? वह बड़ा निराशा जनक ही रहा है । इसी कारण से अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के महामन्त्री श्री जगदेव प्रसाद कनौजिया ने मासिक 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' कानपुर के अंक, सितम्बर से 93 में सम्पादकीय में अपना निम्नलिखित संकल्प की घोषणा की :-

"यदि आप दृढ़ संकल्प कर लें कि महासभा एवं जागरण को अब रुग्ण एवं परावलम्बी नहीं रहने देंगे तो वह दिन दूर नहीं जब आपकी महासभा एवं जागरण आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी होकर आपको आपके समाज की राष्ट्रीय क्षितिज पर सूर्य की भाँति चमका देंगे और तब आप शासित नहीं वरन पूर्व की भांति शासक होंगे और इसी कड़ी में आपका सेवक होने के नाते मैंने जागरण को जन-जन तक पहुँचाने एवं महासभा के प्रत्येक स्वजन को जोड़ने हेतु यह संकल्प लिया है कि जब तक महासभा एवं जागरण स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर नहीं हो जाते, तब तक मैं संगठन के लिए प्रतिदिन दस घंटे कार्य करता रहूँगा तथा चौबीस घंटे में एक बार अन्न (भोजन) ग्रहण करूँगा साथ ही उन स्वजनों परिजनों के यहाँ जो जागरण महासभा के सदस्य नहीं हैं, न तो अतिथ्य स्वीकार करूँगा और न ही अन्न-जल ग्रहण करूँगा।"

'सिंह' आपस्द के लिये सिंह-गर्जन कर पटना उच्चन्यायालय से प्राप्तकर्त्ता धथूरी सिंह

लगभग सौ साल पहले मुंगेर कोर्ट अंचल खड़गपुर, ग्राम एवं पो० भदोरा, जिला मुंगेर (बिहार) में एक जयसवार कुर्मी परिवार में जन्में धथूरी सिंह पर एक दम्भी राजपूत जमींदार ने 'धथूरी मंडल' नाम इंगित कर उन पर फौजदारी का मुकदमा किया, किन्तु उन्होंने अपना स्वाभिमान के लिए अपने साहसी मनोबल एवं अपने स्वाभिमान हेतु मुख्यतः 'सिंह' पदवी नाम के साथ के लिए वे जिला कोर्ट में हाजिर नहीं हुए । अन्त में मुकदमाकर्त्ता (राजपूत जमींदार) ने पटना उच्च न्यायालय में केस दायर किया । पर स्वाभिमानी धथूरी सिंह ने वहाँ भी जमकर चक्कर ली । अन्त में पटना उच्च न्यायालय ने उनका नाम सुधार कर श्री धथूरी सिंह किया, तब वे मुकदमे में उपस्थित होकर वाइज्जत जीते और हमारे स्वजातीय तथा हम भी सिंह की तरह गर्जना करने वाले हैं इसको न्यायालय से सिद्ध करवा दिया । तब से मुंगेर जिले के कुर्मी, 'सिंह' पदवी को धारण करते हैं । इसे धारण करने का साहस प्रदान करने वाले 'शेरे मुंगेर' बाबू धथूरीसिंह थे और उनके उपयुक्त साहसिक योगदान ने मुंगेर अंचल का ही नहीं सारे देश में बसे कुर्मि सिंह सपूतों को तथा कूर्मी क्षत्रिय जाति विशेष को गौरवान्वित किया । वे अपने पीछे एक सम्पन्न परिवार छोड़ गए हैं- प्रस्तुत कर्ता : श्री महेन्द्र नारायण सिंह, अधिवक्ता मुंगेर कोर्ट, अध्यक्ष, मुंगेर जिला कुर्मी सभा, निवासी ग्राम पो० भदौरा, अंचल खड़गपुर, जिला मुंगेर (बिहार) उन्होंने ने 13-11-1994 को दिल्ली निवास पर आकर इस ग्रंथ के लेखक को उपर्युक्त विवरण लिखकर प्रकाशनार्थ दिया ।

परिशिष्ट - 5 (ख)

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, हिन्दवी स्वराज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज, राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल के वंशज कूर्मि क्षत्रिय समाज के दसवीं लोकसभा के मंत्री एवं सांसदों की सूची

महाराष्ट्र

	नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता दूरभाष
1	सर्व श्री शरद पवार,	मुख्यमन्त्री महाराष्ट्र, कांग्रेस ई	सचिवालय, बम्बई (महाराष्ट्र)
2	शंकरराव बी. चव्हाण	गृहमंत्री, कांग्रेस ई	4-कृष्णमेनन मार्ग नई दिल्ली 3014809/3014962
3	उदयसिंहराव गायकवाड़	कांग्रेस ई, कोल्हापुर	ए0 बी0-98, शाहजहान रोड़ नई दिल्ली 3782180
4	प्रकाश वी. पाटिल	कांग्रेस ई, सांगली	33 फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली, 3782321
5	शंकरराव डी. काले	कांग्रेस ई, कोपरगांव	2 फिरोजशाह रोड, 3782159
6	पृथ्वीराज डा0 चव्हाण	कांग्रेस ई, करांड	सी0-1/2, हुमायूँ रोड़, नई दिल्ली 616160
7	अंकुशराव रावसाहब टोपे	कांग्रेस ई, जालना	120 साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली, 3792539
8	प्रफुल्लभाई मनोहर भाई पटेल	कांग्रेस ई, भंडारा	26-गुरुद्वारा रकाबगंज रोड, नई दिल्ली 3782317
9	डॉ वसन्त एन० पवार	कांग्रेस ई, नासिक	68-साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792797
10	उत्तमराव देवराव पाटिल	कांग्रेस ई, यवतमाल	79-नार्थ एवेन्यु, नई दिल्ली 3792353
11	यशवंत राव पाटिल	कांग्रेस ई, अहमदनगर	158-साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3010309
12	विजय नवल पाटिल	कांग्रेस ई, इरन्दौल	17-बलवन्तराय मेहता लेन, नई दिल्ली 3782476
13	श्रीमती सूर्यकान्ता पाटिल	कांग्रेस ई,	ए-4, एस. एस. फ्लैट्स, नई दिल्ली 3782489
14	पांडुरंग पुण्डलिक फुंडकर	भाजपा, अकोला	12-नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792681
15	दत्ता राघोबाजी मेघे	कांग्रेस ई, नागपुर	1-हरीश चन्द्र माथुर लेन, नई दिल्ली 3782588
16	तेजसिंहराव भोंसले	कांग्रेस ई, रामटेक	9-हरीशचन्द्र माथुर लेन, नई दिल्ली 3718101
17	प्रतापराव बी० भोंसले	कांग्रेस, सतारा	64-लोदी एस्टेट, नई दिल्ली 4621213
18	अनन्तराव देशमुख	कांग्रेस ई, वाशिम	42-केनिंग लेन, नई दिल्ली 3782066
19	प्रो० अशोकराव, आनंदराव देशमुख	कांग्रेस ई, परभानी	33-नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792548
20	वी. वी नवाले	कांग्रेस ई, खेड़	72-साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792377
21	श्री गोविन्दराव निकम	कांग्रेस ई, रत्नगिरि	179-साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792406
22	मोहन रावले,	शिव सेना, दक्षिण मध्य बम्बई	76-नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792753
23	डॉ0 गुणवन्त रामभाऊ सरोदे	भाजपा, जलगाँव	175-नार्थ एवेयू, नई दिल्ली 3792826
24	सुधीर सावंत	कांग्रेस ई, राजापुर	32-मीना बाग, नई दिल्ली 3792301
25	राजाराम राणे	कांग्रेस ई, इवलकराजी	29-मीना बाग, नई दिल्ली 3792008

आन्ध्र प्रदेश

नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता
26 एन. टी. रामाराव	तेलगू देशम	मुख्यमंत्री, आन्ध्र प्रदेश, सचिवालय, हैदराबाद
27 श्री अनल्ल बेंकट रेड्डी	कांग्रेस ई, अन्नतपुर	18-नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792220
28 अल्लोटा इन्द्रकरण रेड्डी	तेलगू देशम, आदिलाबाद	13-फीरोजशाह रोड, नई दिल्ली 2782575
29 आर सुरेन्द्र रेड्डी	कांग्रेस, वारंगल	3-पुराना किला रोड, नई दिल्ली 3782092
30 एम. ज्ञान रेड्डी	कांग्रेस ई, चित्तूर	46-नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3712660
31 एम0 बागा रेड्डी	कांग्रेस ई, मेडक	9-फीरोजशाह रोड, नई दिल्ली 3782284
32 जी. गंगा रेड्डी	ते0 दे0 निजामाबाद	डी-1/8, भारतीय नगर, नई दिल्ली 4633461
33 बी0 एन0 रेड्डी	कम्यु0 गिरयालगुडा	319-विट्ठलभाई पटेलहाऊस, नई दिल्ली 3718238
34 एम0 सुव्वरामा रेड्डी	कांग्रेस ई, आगोले	
35 वाई0 एस0 राज शेखर रेड्डी	कांग्रेस ई, कडप्पा	सी.-3, एम. एस. फ्लैट्स, खड़कसिंह मार्ग 3712808
36 वेकट कृष्ण रेड्डी	कांग्रेस ई, नरसा राव पेट	सी.-1/33, लोदी गोर्डन, नई दिल्ली 462953
37 श्रीभनार्दीश्वर राव	ते0 दे0, विजयवाड़ा	186-साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792153
38 डा० के0 वी0 आर चौधरी	(राजामुंदरी)	48-नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792324
39 एम. बी. बी. एस. मूर्ति	ते0 दे0	34-मीना बाग, नई दिल्ली 3792793
40 बेंकटेश्वर डी. राव	ते0 दे0 तापतला	
41 डा0 बोल्ला वल्लि रंगैया	ते0 दे0, एल्लूर	41-मीनाबाग, नई दिल्ली 3792694
42 टी0 सुब्बाराव एस०	ते. दे., काकीनाडा	12-ए फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली 3755398
43 वेंकटेवरल्लु उमा रेड्डी	ते0 दे0 तेनाली	46-साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792153
44 श्रीमती रेणुका चौधरी	राज्यसभा	18-विलिंगटन क्रीसेंट, नई दिल्ली 3010859
45 श्री एम. पद्मनाभम	राज्यसभा	133, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3011696
46 तुलसी वेंकटरमन रेड्डी	राज्यसभा	ए. बी 9, तिलक मार्ग, नई दिल्ली 3782628
47 जयपाल रेड्डी	जद, राज्यसभा	14, अकबर रोड, नई दिल्ली 3792634
48 चन्द्रशेखर रेड्डी	राज्यसभा	40 मीना बाग, नई दिल्ली 3792133
49 पी0 उपेन्द्र	राज्यसभा	11, अकबर रोड, नई दिल्ली 3017686
50 ए. एस. चौधरी	राज्यसभा	ए. बी 82, शाहजहां रोड, नई दिल्ली 3782583

गुजरात

नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता
51 श्री चन्द्रेश पटेल	भाजपा, जामनगर	152, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792642
52 श्रीमती भावना चिखालिया	भाजपा, जूनागढ़	131, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792521
53 डॉ0 अमृतलाल पटेल	भाजपा, महसाणा	20, गुरुद्वारा रकाबगंज रोड, नई दिल्ली 3782922
54 श्री हरीभाई एम0 पटेल	भाजपा, पोरबन्दर	126 साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792770

55	हरिभाई नन्जी पटेल	कांग्रेस ई, कच्छ	77, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792679
56	एस. एन. वेकरिया	भाजपा राजकोट	14, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792749
57	दिलीप भाई संघानी	भाजपा, अमरेली	7, हरीशचन्द्र माथुर मार्ग, नई दिल्ली 3723240
58	सोमाभाई पटेल		176, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792446

उत्तर प्रदेश

	नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता
59	श्री विनय कटियार	भाजपा, फैजाबाद	73, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792491
60	डॉ0 जी0 एल0 कनौजिया	भाजपा, खीरी	174, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792722
61	डा0 परशुराम गंगवार	भाजपा, पीलीभीत	130, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792407
62	श्री संतोष कुमार गंगवार	भाजपा, बरेली	14-डी फीरोजशाह रोड, नई दिल्ली 3723777
63	पंकज चौधरी	भाजपा, महराजगंज	65, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792733
64	राम पूजन पटेल	जद फूलपुर	18, जनपथ, नई दिल्ली, 3782736
65	शिवशरण वर्मा	जद, मछली शहर	9, महादेव रोड, नई दिल्ली 3782018
66	रुद्रसेन चौधरी	भाजपा, बहराइच	149 साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792614

बिहार

	नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता
67	श्री नीतिश कुमार	जद, बाढ़	वी0-5, बहुमंजिल फ्लैट्स, खडक सिंह मार्ग 3755448
68	वृषिण पटेल	जद, सीवांन	31, केनिंग लेन नई दिल्ली 3782815
69	राजकिशोर महतो	झामुमो, गिरीडीह	22, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792374
70	शैलेन्द्र महतो	झामुमो, जमदेशपुर	51, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792559
71	रामटहल चौधरी	भाजपा, रांची	1-नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792710
72	ब्रह्मानन्द मण्डल	मुंगेर, कम्युनिस्ट	165, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792987

उड़ीसा

	नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता
73	श्री रवि राय	जद, केन्द्रपाडा	20 अकबर रोड, नई दिल्ली 3018264
74	श्रीकान्त जेना	जद कटक	ए. बी.-14, पंडारा रोड, नई दिल्ली 3782602

75 नरेन्द्र प्रधान	राज्यसभा उड़ीसा	79, साउथ एवेन्यु, नई दिल्ली 3792662
76 सतीश प्रधान		88 नार्थ एवेन्यु, नई दिल्ली 3792454

महाराष्ट्र राज्यसभा

नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता, दूरभाष
77 श्री शिवाजी राव जी0 पाटिल		ए. बी.- 29, शाहजहाँ मार्ग नई दिल्ली 3782690
78 गोपाल विट्ठल राव पाटिल		212, महाराष्ट्र सदन 3782780
79 श्री विश्वास राव पाटिल	सदस्य राज्यसभा	110, नई दिल्ली, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली
80 श्री विट्ठल जाधव	सदस्य राज्यसभा	34, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3019602

बंगाल

नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता, दूरभाष
81 वीर सिंह महतो	फारवर्ड ब्लाक पुरुलिया	11 नार्थ एवेन्यु, नई दिल्ली - 3792943

मध्य प्रदेश

नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता, दूरभाष
32 श्रीमती विजयराजे सिंधिया	भाजपा, गुना	गुना मध्य प्रदेश
83 श्री चन्दूलाल चन्द्राकर	कांग्रेस ई, दुर्ग	26, तुगलक क्रीसेट, नई दिल्ली 3792266,
84 श्रवण कुमार पटेल	कांग्रेस ई, जबलपुर	1-तीनमूर्ति लेन, नई दिल्ली 3792593
85 भवानी लाल वर्मा	कांग्रेस ई, जांजगीर	81-साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792388
86 रामेश्वर पाटीदार	भाजपा, खरगोन	147, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792657
87 भीम सिंह पटेल	बसपा. रीवां	163, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792803
88 रामकृष्ण कुसमरिया	भाजपा, दमोह	204, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली 3792363
89 माधवराव सिन्धिया	कांग्रेस ई, ग्वालियर	नई दिल्ली 3019383/3792174

मध्य प्रदेश

नाम	दल/क्षेत्र	वर्तमान पता, दूरभाष
90 श्रीमती आनन्दीबेन जेठाभाई पटेल		20, गुजरात भवन, नई दिल्ली 6884926
91 श्रीमती उर्मिलाबेन चिमनभाई पटेल		11, गुजरात भवन, नई दिल्ली 6881470

Phone : 3142, 2929

Phone : 372 32 40

DILEEPBHAI SANGHANI
MEMBER OF PARLIAMENT
(LOK SABHA)
AMRELI (GUJARAT)

7, Harishchandra Mathur Lane,
Ferozshah Raod,
New Delhi

MPDS/Ref./38/94
5 Aug. 1994

आदरणीय डा० दिलावर सिंह जयसवार जी,

नमस्कार ।

मान्यवर,

आपका भेजा हुआ दिनांक 5-7-94 का खत मिला जोकि कूर्मि क्षत्रिय महासभा स्थापना के प्रथम शताब्दी वर्ष पर स्मृति-ग्रंथ में प्रकाशन हेतु मेरा संदेश भेजने के बारे में है ।

सबसे पहले तो मैं अपनी ओर से श्री अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा की प्रथम शताब्दी में अपनी शुभ कामनाएं भेजता हूँ ।

मैं आपको आपके लिखे हुए "कुरमी चेतना के सौ वर्ष - (1894-1994)" नामक ग्रंथ के लिये धन्यवाद करता हूँ और आशा रखता हूँ की आप अपने समाज को आने वाले वर्षो में ऐसे और ग्रंथ आपनी ओर से देते रहेंगे, जिसकी वजह से आपके समाज को एक नई दिशा और आप जैसे लेखक का योगदान मिलता रहे ।

धन्यवाद ।
सादर,

आपका

दिलीप संघाणी

प्रतिष्ठा में,
डा० दिलावर सिंह जयसवार
बी-6/57, सफदरजंग एन्क्लेव
नई दिल्ली - 29

ब्रह्मानन्द मंडल
संसद सदस्य
(लोक सभा)

सत्यमेव जयते

165, नार्थ एवेन्यू,
नई दिल्ली-110001
फोन : 3792987

दिलावरपुर,
जिला मुंगेर (बिहार)
फोन : 22419

सदस्य :
सलाहकार समिति | मानव संसाधन विकास मंत्रालय
स्थायी समिति

19.12.94

"कुर्मी चेतना के सौ वर्ष

डा० दिलावर सिंह जयसवार ने पुस्तक लिखकर न सिर्फ कुर्मी समाज के शौर्य और उत्थान-पतन के इतिहास पर प्रकाश डाला है बल्कि देश के शौर्य और उत्थान-पतन के इतिहास पर भी प्रकाश डाला है ।

मुझे पूर्ण आशा और विश्वास है कि यह पुस्तक न सिर्फ कुर्मियों की एकता और एकजुटता के लिए प्रेरणा का काम करेगी, बल्कि देश की अन्य पिछड़ी जातियों के साथ एकता और एकजुटता में प्रेरणा का काम करेगी और इस एकता से देश मजबूत होगा ।

(ब्रह्मानन्द मण्डल)

नीतीश कुमार, संसद सदस्य
(लोक सभा)
सभापति
कृषि सम्बन्धी स्थायी समिति

सत्यमेव जयते

कार्यालय : 118, संसदीय सौध,
नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 3034785

निवास : बी–5, एम०एस० फ्लैट्स,
बाबा खड़क सिंह मार्ग,
नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 3755448, 3718486

संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रहा है कि अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा की स्थापना के प्रथम शताब्दी वर्ष पर "कुरमी चेतना के सौ वर्ष (1894-1994)" स्मृति-ग्रंथ का प्रकाशन करने जा रही है । इस संस्था का यह प्रयास अत्यन्त ही सराहनीय है । आशा है स्मृति-ग्रंथ में प्रकाशित लेख कूर्मि समाज एवं जन साधारण के लिए उपयोगी, ज्ञानबर्द्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध होंगे।

मैं उक्त संस्था के प्रथम शताब्दी वर्ष पर स्मृति-ग्रंथ के सफल प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ ।

(नीतिश कुमार)

राम टहल चौधरी
संसद सदस्य
(लोक सभा)
49, रांची, बिहार
सदस्य, परामर्शदात्री समिति
कोयला और ऊर्जा

1, नार्थ एवेन्यू,
नई दिल्ली – 110001
फोन : 3792710

राम भवन, ओरमांझी,
जिला–रांची, बिहार
फोन : 435700
रांची कार्यालय फोन : 303878

क्रमांक

दिनांक 23.7.94.

प्रिय जयसवार जी,

अखिल भारतीय कुर्मी क्षत्रिय महासभा स्थापना के प्रथम शताब्दी वर्ष पर स्मृति-ग्रंथ के प्रकाशन की जानकारी मिली, आपका यह प्रयास अति सराहनीय है । मुझे पूरी आशा है आप अपने प्रयासों के माध्यम से कुर्मी समाज में जानकारी एवं उनमें चेतना लाने के कार्य में पूरी तरह से सफल होगें ।

कुरमी चेतना के सौ वर्ष के सफल प्रकाशन एवं वितरण हेतु हमारी पुनः शुभकामनाएं ।

सादर,

भवदीय,

(रामटहल चौधरी)

डा० दिलावर सिंह जयसवार,
बी-6/57, सफदरजंग एन्कलेव,
नई दिल्ली,

LOK SABHA
MEMBER OF PARLIAMENT
Chandresh Patel
MEMBER OF ENVIRONMENT AND FOREST COMMITEE

Resi Nandanvan Society,
Ranjit Sagar Road,
JAMNAGAR,
Phone : 71666

152, Sol Avenue
New Delhi
Ph.: 3792642

सत्यमेव जयते

Off. Golden Market,
Sumeir Club Road,
JAMNAGAR.
Ph.: (O) 70777 (R) 71666

Ref No

Date 27•7•94



प्रिय श्री दिलावर सिंह जयसवार,
प्रणाम

अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा स्थापना के प्रथम शताब्दी वर्ष पर स्मृति-ग्रंथ में प्रकाशन हेतु शुभ संदेश भेजने हेतु आपके 5-7-1994 का पत्र प्राप्त हुआ ।

मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपके संपादन में "कुरमी चेतना के सौ वर्ष (1894-1994) ग्रंथ का प्रकाशन होने जा रहा है । सौ वर्ष का इतिहास लिखने का कार्य आसान नहीं है जिसके लिए कितना अध्ययन एवं शोध कार्य करना पड़ता है ।

आपके 750 पृष्ठीय ग्रंथ में अनेक जानकारी होंगी ही क्योंकि आप एक अनुभवी व्यक्ति हैं तथा आपने कुरमी जाति के बारे में अनेक पुस्तकें लिखी हैं ।

ज्ञात है कि प्रथम शताब्दी वर्ष समारोह तथा महासभा का 38 वां अधिवेशन 11 व 12 मार्च 1995 को लखनऊ में आयोजित होगा जिस अवसर पर उपरोक्त पुस्तक का विमोचन होगा।

मेरी शुभ कामना के साथ-साथ पूर्ण सफलता भी चाहता हूँ ।

भवदीय

(चन्द्रेश पटेल)

डा० दिलावर सिंह जयसवार,
अध्यक्ष, कूर्मि क्षत्रिय समाज-दिल्ली
बी-6/57, सफदरजंग एन्कलेव,
नई दिल्ली-110029

सन्तोष गंगवार
एडवोकेट
संसद सदस्य
(लोक सभा)

सत्यमेव जयते

दिनांक: 14·7·94·

डा० दिलावर सिंह जी,
सप्रेम नमस्ते !

महासभा के प्रथम शताब्दी अवसर पर प्रकाशित होने वाले स्मृति ग्रंथ हेतु मेरी शुभकामनायें स्वीकार करें ।

मुझे विश्वास है कि आप सभी के नेतृत्व में समाज को कई चेतना मिलेगी और हम अपनी सामाजिक कुरीतियों को दूर कर, राष्ट्र निर्माण में अग्रणी भूमिका निभायेंगे ।

पुनः हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ,

आपका

(सन्तोष गंगवार)

डा० दिलावर सिंह जयसवार,
अध्यक्ष, कूर्मि क्षत्रिय समाज-दिल्ली
बी-6/57, सफदरजंग एन्कलेव,
नई दिल्ली-29

Dr. K.V.R. CHOWDARY
MEMBER OF PARLIAMENT
(LOK SABHA)
Rajahmundry Constituency

No. 48 North Avenue
NEW DELHI - 110 001.
Phone : 011 - 3792324

MANDAPETA.533 308.
East Godavari Dt (A.P.)
Phone : 08853 - 2095

207. Regancy Zeenat Appts,
Panjagutta.
HYDERABAD 500 482
Phones : 040 - 36789, 211388

RAJAHMUNDRY 533 101
Phone : 0883 - 71983, 76862



To
Dr. Dilawar Singh Jaiswar,
President,
Kurmi Kshatriya Samaj Delhi,
B-6/57, Safdarjung Enclave,
New Delhi-110029

Dear Jaiswarji,

I am very happy that you are bringing out a Souvenir on the occasion of Kurmi Chetna Ke Sow Varsh.

I am very much pleased the efforts you are taking to unite the Kurmi Kshatriya Community to solve the common problems, we are facing and extending it to South India where Kapu, Kamma and Reddy castes belong to corresponding castes of Kurmi Kshatriya as all belong to agriculture vocation.

I wish the function a grand success.

With regards,

Yours sincerely

(K. V. R. CHOWDARY)

Shravan Kumar Patel
B.A., LL. B
Member of Parliament
(Lok Sabha)

सत्यमेव जयते

1, Teen Murti Lane, New Delhi-110011
Phone 3792593

933, Gol Bazar, Jabalpur-482002
Phone : 311579
FAX : 311597

Please reply at Delhi/Jabalpur

Ref. No.

Date : **28.7.1994**

Dear Shri Jaiswarji,

I am enclosing a message conveying my blessings and best wishes for the success of the centenary celebrations of the Kurmi Kshatriya Samaj.

I am happy to learn about the activities of the Mahasabha and its role in uniting the community in the context of national integration.

With best wishes,

Yours sincerely

(SHRAVAN KUMAR PATEL)

Dr. Dilawar Singh Jaiswar,
President,
Kurmi Kshatriya Samaj Delhi,
B-6/57, Safdarjung Enclave,
New Delhi-110029

Shravan Kumar Patel
B.A., LL. B
Member of Parliament
(Lok Sabha)

सत्यमेव जयते

1, Teen Murti Lane, New Delhi-110011
Phone : 3792593

933, Gol Bazar, Jabalpur-482002
Phone : 311579
FAX : 311597

Please reply at Delhi/Jabalpur

Ref. No.

Date : **28.7.1994**

I am glad to learn that Akhil Bhartiya Kurmi Kshatriya Mahasabha is celebrating its first centenary year. The Mahasabha has had during these 100 years 37 all India Sessions in different parts of the country and proposes to organise the 38th session and the 1st Centenary all India meet on March 11 and 12, in Lucknow.

At this occasion the Mahasabha proposes to bring out a comprehensive volume tracing its history over the 100 years of its existance.

I wish the Mahasbha all success in its venture and activities.

(Shravankumar Patel)

Dr. Dilawar Singh Jaiswar,
President,
Kurmi Kshatriya Samaj Delhi
B-6/57, Safdarjung Enclave,
New Delhi-110029

प्रकाशन मंड़ल के सदस्यगण तथा पुस्तक प्राप्ति हेतु उनका पता :

1. श्री श्यामसुन्दर सिंह पटेल : सुपुत्र श्री राजनबाबू सिंह, प्रधानाचार्य, ग्राम बैसकांटी, मंझनपुर, इलाहाबाद (उ० प्र०) दूरभाष : 622003

2. श्री राजेन्द्र सिंह : 94 नर्मदा अपार्टमेन्ट्स, अलकनंदा, नई दिल्ली - 19 दूरभाष : 6448909 / 6448366

3. श्री राम नगीना सिंह : नगीना आटो इन्टरप्राइज, मोहम्मदपुर मार्केट, सफदरजंग एंक्लेव, नई दिल्ली - 110029 दूरभाष : 6116647

4. श्री सतीश चन्द्र गंगवार : 12 टैगोर गली, बाबरपुर, शाहदरा, दिल्ली - 52 दूरभाष : 2276480

5. श्री पी0 सी0 आर0 पटेल : डब्लू - 224 जयदुर्गा स्ट्रीट, बाबरपुर, शाहदरा, दिल्ली - 32 फोनः 2283803, 525599

6. श्री लोकनाथ सिंह सिंगरौर : 95 सी /1 जेड, चक निरातुल, इलाहाबाद (उ0 प्र0)

7. श्री हरिमान सिंह सिंगरौर : जी - 248 लाजपतनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)

8. श्री दीपक कुमार : पैरामाउंट पब्लिकेशन, गोविन्द मित्रा रोड, पटना - 4

9. श्री मणि सिंह : फाटक लाला खूबचंद (बाबू डोरीलाल) स्टेशन रोड, पीलीभीत (उ. प्र.) 262001 दूरभाष : 2912

10. श्री हरि किशोर उत्तम : पटेल सार्वजनिक पुस्तकालय, आर0 जेड0 एफ0 - 174/2, गली नं0 32 साध नगर, पालम कालोनी, नई दिल्ली - 45 दूरभाष : 5501406

11. श्री रामकेवल वर्मा : मेसर्स वर्मा ट्रेडिंग कम्पनी, 105 नारायण बाजार, भागीरथ प्लेस, चाँदनी चौक, नई दिल्ली दूरभाष : 2917978

12. श्री राजीव सिंह : 41 डी, डायमण्ड हारबर रोड कलकत्ता - 700027 दूरभाष : 49-6376

सम्मान - पत्र

अखिल भारतीय कूर्मि महासभा देवेन्द्र नगर, झालदा (जिला पुरुलिया, पं० बंगाल) के प्रांगण में आयोजित समारोह में डॉ० दिलावर सिंह जयसवार, बी - 6/57 सफदरजंग एन्कलेव, नई दिल्ली-110029, को आपकी साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में सम्मान एवं श्रद्धा व्यक्त करते हुए आपके दीर्घ जीवन और आपकी कलाकृतियों के उत्तरोत्तर विकास की कामना करती है ।

आप स्वजातीय गौरव के प्रतीक है । एतदर्थ यह सम्मान - पत्र आपको भेंट किया जाता है । स्वीकार करें ।

देवेन्द्र नगर झालदा
33 वाँ अधिवेशन
8 व 9 मार्च 1980 ई0

हस्ताक्षर
(धनीराम वर्मा)
अध्यक्ष
अखिल भारतीय कूर्मि महासभा

[illegible]

DTD 14TH JUNE 1894 IN AN APPEAL REVISION ORDER OF RAI NANAK CHAND, DY.COLLECTOR, DTD.24-04-1894 REGARDING DAKHIL KHARIJ OF MAUZA MAIDANA, PARGANA PILIBHIT, MAHAL 15 BISWAS, R/o HOUSE NO. 58 B, MOHALLA GOPAL SINGH, PILIBHIT, U.P.

LALLU MAL

- Mannu Lal
  - Devi Das M. to Mrs. Khusalo
    - Jai Kunwar (Daughter)
      - Lachma (Daughter & Issueless)
      - Another Married daughter
        - Jawala Sahaye
        - Another Son
- HET RAM
  - Dr.Dwarka Das L.M.P
    - Daughter M to Prabhu Dayal F/O Sahu Ram Kishan
    - Bhagwati Devi M. to Ayodhia Prasad B/o Lala Khub Chand Rais & Hony Magistrate, organized 3rd & 4th conferences of Kurmi Sadar Sabha at Pilibhit in 1896 & 1910.
      - Ram Prasad
      - Girdhari Lal
  - PREM SUKH DAS
    - GENDA MAL
      - Mishri Lal
        - Nunne Mal
        - Ram Lal
        - Sahodhra (Suddha)
      - Makkhan Lal Married & Issueless
      - Man Singh
        - Kishan Lal
        - Kanai Lal
        - Radha Lakshmi M.to Sahu Ram Kishan\Munni M.& Issueless
        - Daulti Devi M.to Ram Singh
          - Prosperous family
      - TULA RAM M to Anant Pyari Devi
        - Darshan Singh M.to Rama Devi, both deceased.
          - Manju Shree (M to Vinod Katiyar)
          - Devendra Singh (M. & Children)
          - Jayshree (M to Dharam Vir Gangwar)
          - Ajai Singh (M.& Child)
          - Rajshree (M.to Sarvesh)
          - Sandeep Singh
          - Sanjiv Singh
        - Puttu Lal Singh, (Hony, Magistrate) M.to Sarojini Devi
          - Gopal Singh (M.& Children)
          - Dr.Rajesh Kumar (M & Children)
          - Sangeeta (M.to Devendra Katiyar)
          - Meera (M.to Govind Verma)
          - Neeta (Married)
          - Shakti
        - Dr.DILAWAR SINGH JAISWAR M.to Geeta Jaiswar
          - Er.Sanjay Singh: M.to Rosey Singh (U.S.A.)
          - Maj.Alok Singh Vr.C: M.to Anju Singh (S.Angad born on 3rd March, 1994)
          - Er.Suneeta Singh: M.to Dr.Satish N. Kamat (U.S.A.)
        - Krishna Kumari deceased in childhood
        - Ranvir Singh, deceased. M. to Asha
          - Mamta (M. to Manohar Katiyar)
          - Jitendra Singh (M. & Child)
          - Madhu
          - Manisha
      - Gopi Devi M.to Shyiam Lal Kirana Merchants
        - Prosperous Family
      - Sita Ram
        - Lackhoo Devi M.to Lala Laik Ram, Rais & Hony Mag.
          - Vishva Mohini M.to Sushil Chandra

लेखक, डा० दिलावरसिंह जयसवार का जीवन वृत्त



आपका जन्म 5 मई 1934 ई० को उत्तर प्रदेश के पीलीभीत शहर में एक संभ्रान्त परिवार में हुआ । आपके पिताजी **श्री तुलाराम सिंह** पीलीभीत शहर के नामी रईस और जमींदार तथा माता **श्रीमती अनन्त प्यारी** देवी बड़ी धर्मपारायण एवं दान-दात्री थीं । स्कूली शिक्षा **ड्रमण्ड राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय पीलीभीत** तथा **इण्टरमीडिएट (साइन्स) मेरठ कालिज मेरठ** में एवं बी० एस-सी०, एम एस-सी० तथा रसायनशास्त्र (केमिस्ट्री) में डाक्ट्रेट डिग्री (डी० फिल०) **इलाहाबाद विश्वविद्यालय** से प्राप्त की । डाक्ट्रेट शोधकार्य के लिए क्वीन विक्टोरिया रीडरशिप का स्कॉलरशिप प्रदान किया गया । कई शोध-लेख विज्ञान-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए । शोध कार्य **प्रो० एस० घोष, डी० एस-सी०, विभागाध्यक्ष, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय** की देख-रेख में किया ।

गत 34 वर्षों से दिल्ली की कैमिकल कम्पनी, **मैसर्स एवन सर्विसस प्राइवेट लि०** की **फरीदाबाद कैमिकल फैक्टरी** में प्रारम्भ के 21 वर्ष **चीफ कैमिस्ट** रहकर तदोपरान्त पदोन्नति प्राप्त कर गत 13 वर्षों से उसी कम्पनी के दिल्ली कार्यालय में **चीफ एक्जीक्यूटिव** पद पर कार्य कर रहे हैं । **डा० जयसवार** के निरीक्षण में, इस कम्पनी में अग्नि-शमन के लिये तरल रसायनों का उत्पादन किया जाता है । आप सन 1972 में अमेरिका के **सोसायटी ऑफ फायर इंजीनियर्स** के सदस्य बनाये गये । इसी तरह **इंस्टीट्यूशन ऑफ वर्क्स मैनेजर्स**, इंग्लैंण्ड के भारतीय चापटर के सह-सदस्य भी बनाये गये । अग्निशमन सम्बन्धी आपके लगभग 25 शोध लेख देश-विदेश की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए । **भारतीय मानस** संस्था, नई दिल्ली, अग्नि-शमन कमेटी के लगभग दो दशक तक सदस्य रहे और अग्नि-शमन रसायनों के तथा यंत्रों के मानक बनाने में आपका सक्रिय सहयोग रहा है ।

कलकत्ता के प्रसिद्ध समाजसेवी, **श्री लक्ष्मी नारायण सिंह ("कूर्मि क्षत्रिय जागरण" के संस्थापक** और अ0 भा0 कु0 क्ष0 **महासभा के शिवसागर (असम) अधिवेशन के अध्यक्ष, श्री लक्ष्मण चन्द्र सिंह** के ज्येष्ठ भ्राता) की सुपुत्री, कु0 **गीता सिंह** से 5 फरवरी 1959 को विवाह हुआ । इनके दो पुत्र और एक पुत्री हैं और तीनों उच्च शिक्षा प्राप्त कर बड़े अच्छे-अच्छे पदों पर कार्यरत हैं और अब तीनों विवाहित हैं । मूल निवासी 58 बी, मोहल्ला गोपालसिंह स्ट्रीट पीलीभीत, उत्तर प्रदेश के हैं वहाँ अभी भी आपकी काफी जमीन-जायदाद है पर सन् 1973 में दिल्ली में अपना भवन बनाकर यहीं के स्थायी निवासी बन गये हैं । आपका दिल्ली का पता है : **गीतांजलि निवास, बी-6/57 सफदरजंग एन्कलेव, नई दिल्ली-110029, दूरभाष : 604382**

बी0 ई0 **(दिल्ली कालिज ऑफ इंजीनियरिंग)**, एम0 एस0 **(ऐराज़ोना स्टेट युनीवर्सिटी, अमेरिका से)** की डिग्रियां प्राप्त करने के पश्चात् **डा0 जयसवार** के सबसे बड़े पुत्र, **संजय सिंह** का चयन **न्यू यार्क स्टेट डिपार्टमेंट ऑफ ट्रांसपोर्टेशन में सहायक इंजीनियर** पद पर सन् 1987 में हुआ और उन्होंने हार्नल शहर में विभाग के मुख्यालय में कार्य प्रारम्भ किया। गत 7 वर्षों में अन्य परीक्षायें पासकर पद्दोन्नति पाते हुए इस समय **वहीं सीनियर ट्रान्सपोर्टेशन एनालिस्ट इंजीनियर पद** पर कार्यरत हैं । एक वर्ष पूर्व उसी **अमेरिकन नगर, हार्नल में प्रमुख आवासीय क्षेत्र** में 830 वर्ग गज़ भूखंड पर **बना द्विमंजिला बंगला खरीदा है** इस समय उनका, अमेरिका का स्थायी पता है :-

Sanjay Singh
3 Elmwood Avenue,
North Hornell, NY-14843, USA

संजयसिंह का विवाह 3 दिसम्बर 1992 को लखनऊ की **कुमारी रोजीसिंह**, एम0 एस-सी0 (गणित-लखनऊ विश्वविद्यालय),

सुपुत्री श्री वीरेन्द्र सिंह कटियार (सेवानिवृत्त) चीफ इंजीनियर टेलीकम्युनिकेशन रेलवेज [पौत्री स्व0 सेठ रामचन्द्र, ग्राम भोलेपुर, फर्रुखाबाद (उ. प्र.)], से सम्पन्न हुआ ।

द्वितीय पुत्र मेजर आलोकसिंह, 'वीर चक्र' विजेता (सेवानिवृत्त) हैं आपको सन् 1989 में श्री लंका में भारतीय शान्तिसेना के अन्तर्गत कार्य करते हुए, लिट्टे के प्रबल विरोध में सफल कार्रवाई के उपलक्ष्य में, अप्रैल 1991 में तत्कालीन राष्ट्रपति श्री आर० वी० वेंकटरमन द्वारा 'वीर चक्र' से अलंकृत किया गया । उस समय आप 12 जाट रेजीमेन्ट में कार्यरत थे । उत्तर प्रदेश सरकार ने 22 फरवरी 1994 को 50,000 रुपयों का नकद पारितोषिक और 300 रुपये की वार्षिक वृद्धि 'वीर चक्र' विजेता होने के नाते प्रदान की । मेजर आलोक सिंह का विवाह 4 दिसम्बर 1992 को कुमारी अंजु प्रसाद एम० ए० (हिस्ट्री) (पटना विश्वविद्यालय) से हुआ जोकि गणित विषय पर प्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक तथा पूर्व गणित विभागाध्यक्ष, बी० एन० कालिज, पटना विश्वविद्यालय के प्रो० लालजी प्रसाद की सुपुत्री हैं । 3 मार्च को 1994 आपको पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ जिसका नाम अंगद सिंह पटेल रखा गया है ।

अपने भविष्य के हित तथा पारिवारिक जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुये मेजर आलोक सिंह ने यकायक फौज छोड़ने का विचार बनाया । जिससे सब स्वजन स्वाभाविक था आश्चर्यचकित हुये क्योंकि फौज में अपनी निजी रिपोर्ट्स बहुत अच्छी और फिर 'वीर चक्र' से अलंकृत थे। बड़ी मुश्किल से फौज़ से अवकाश मिला पर आते ही स्वतः एक से एक उत्तम नौकरियों के प्रस्ताव इन्हें प्राप्त होने लगे । इन्हें दिल्ली में अपने निवास पर रहकर, माता-पिता की सेवा-सुश्रूषा करते हुये नौकरी चुननी थी और वैसी ही वे पा गये । इस समय बहुराष्ट्रीय विद्युत इंजीनियरिंग कम्पनी, SAE INDIA LTD. के प्रशासन विभाग में मैनेजर पद पर कार्यरत है । फौज से इस विश्व प्रसिद्ध इंजीनियरिंग कम्पनी में मेजर आलोक सिंह का चयन, यह बदलाव हर दृष्टि से, लाभप्रद रहा । दिल्ली में कार्यरत रहते हुये और अब वे अपने माता-पिता की उनकी वृद्धावस्था में देखभाल कर सकेंगे । बड़े भाई संजयसिंह का अमेरिका में बसने का इरादा है ।

इस जयसवार दम्पत्ति की तीसरी सन्तान, पुत्री सुनीता सिंह हैं, जिन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से भौतिकी में एम0 एस-सी० करके अमेरिका के आईयोवा स्टेट यूनीवर्सिटी (Iowa State University, Ames) से न्यूक्लियर इंजीनियरिंग में एम० एस० डिग्री प्राप्त की और एक बड़ी कम्पनी में न्यूकिलियर इंजीनियर के पद पर कार्यरत हैं । सुनीता का विवाह 1 जनवरी 1992 को औरंगाबाद (महाराष्ट्र) के डा० एम० डी० कामत के सुपुत्र डा० सतीश नारायण कामत से हुआ, जो अमेरिका से कैमिकल इंजीनियरिंग में डाक्ट्रेट करके एक अमेरिकन बड़ी कम्पनी में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर हैं दोनों एक ही शहर में कार्यरत हैं । डा० जयसवार की तीनों संतानों ने अपने आप प्रयत्न कर शिक्षा प्राप्त की, ऊँची-ऊँची नौकरियां बिना किसी सिफारिश या आरक्षण लाभ से प्राप्त की हैं ।

डा० जयसवार को कूर्मि क्षत्रिय समाज, दिल्ली (पंजी०) का प्रथम बार 12 मई 1985, दूसरी बार जनवरी 1989 तथा तीसरी बार 18 अप्रैल 1993 को सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुना गया और अनेक वर्ष आप अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के वरिष्ठ उपाध्यक्ष रहे ।

अब तक आपकी जातीय इतिहास सम्बन्धी 3 पुस्तकें और 'कूर्मि क्षत्रिय जागरण' में आपके अनेक लेख समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं । यह चौथी कृति ग्रंथ रूप में इनके कई वर्ष के गवेषणापूर्ण अध्ययन और कठोर परिश्रम का प्रतिफल है । डा० जयसवार और श्रीमती गीता जयसवार, सन् 1989-90 में लगभग चार माह, अमेरिका के अनेक राज्यों और महानगरों, पर्यटक स्थलों आदि का तथा इंग्लैंड का भ्रमण कर चुके हैं ।

realpatidar.com

लेखक डा० दिलावर सिंह जयसवार

एम० एस-सी, डी० फिल० (इलाहाबाद)

शिक्षा के क्षेत्र में रसायन शास्त्र में, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से, डाक्ट्रेट डिग्री प्राप्त तथा दिल्ली की एक रासायनिक कम्पनी का 35 वर्षीय व्यावसायिक अनुभव तथा अग्नि-शमन के अनेक रसायन का उत्पादन कराने वाले व्यक्ति में, साहित्यकार जैसा कुछ पाना आश्चर्यचकित कर देने जैसा ही होगा।

डा० जयसवार अपने छात्र-जीवन से विज्ञान के विद्यार्थी रहते हुए भी, प्रारम्भ से उनकी अभिरुचि हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों साहित्य की ओर रही। उसका एक कारण था कि उस समय का इलाहाबाद का वातावरण साहित्यमय था क्योंकि वहां के कवि सम्मेलनों, साहित्य संगोष्ठियों में तब श्रोता सहज रूप से महान साहित्यकारों, जैसे पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री सुमित्रानन्दन पंत, श्री हरिवंशराय 'बच्चन', श्री फिराक गोरखपुरी, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', डा० रामकुमार वर्मा, धर्मवीर 'भारती' आदि चोटी के साहित्य-सृजकों के मुखारविन्द से उनकी रचनायें सुनने का आनन्द प्राप्त करते थे। इस परिवेश ने डा० जयसवार के अन्तर्मन में साहित्यिक-रुचि अंकुरित, पल्लवित तथा फूलने-फलने में सहायक वातावरण प्रदान किया।

फलतः इलाहाबाद विश्वविद्यालय से विद्यार्थियों द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका 'दि थिंकर' के वे कई वर्ष सह-सम्पादक रहे। विश्वविद्यालय के अन्तर-छात्रावास 'हिन्दी कहानी प्रतियोगिता' में 'रधिया' शीर्षक से लिखी कहानी पर प्रथम पारितोषिक, प्रतियोगिता समारोह के विशेष अतिथि, डा० गोपाल स्वरूप पाठक, बाद में भारत के उपराष्ट्रपति बने, के कर-कमलों से प्राप्त हुआ। अन्य विषयों पर भी डा० जयसवार ने काफी सृजन-कार्य किया है। जातीय इतिहास सम्बन्धी इनकी तीन लघु पुस्तकें हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। यह बृहत ग्रंथ अनेक वर्षों का उनकी गवेषणा का प्रतिफल है। विज्ञ पाठकगणों को इसके पठन से यदि आनन्द की अनुभूति हुई तो लेखक का सारा परिश्रम सफल हुआ समझा जायेगा। निश्चय ही यह ग्रंथ कुरमी जाति के गौरव में अभिवृद्धि करेगा।

युग पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल



जन्म, 31-10-1875 निधन 15-12-1950

विशाल भारत के निर्माता

वे स्पष्टवादी थे इसीलिए शब्दों में उलझना उन्हें नहीं आता था। जो हृदय में था वही जबान पर था। उन्हें उनके पास जाकर पहचाना जा सकता था। जो पास नहीं जा पाते थे, वे उन्हें शत्रु समझ बैठते थे। सौराष्ट्र के एक राजा ने उनके लिए कहा था, "चरोतर के एक कुनबी की क्या ताकत कि वह हमें अपने राज्य से उखाड़ दे।"

उन्होंने सरदार की हत्या का षड़यंत्र भी रचा था। परन्तु जब वे सरदार के सम्पर्क में आये, उनको पहचाना, तब वे ही नरेश उन्हें अपना बड़ा भाई मानने लगे।

- विष्णु प्रभाकर लघु जीवनियां (7), 1991,
सरदार वल्लभभाई पटेल,' पृ० 185, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली